ऋग्वेद

मण्डल २-५

स्वाध्याय मण्डल

किल्ला पारडी

(जिला वलसाड)

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य

द्वितीय भाग

[मण्डल २-५]

भाष्यकार

पद्मभूषण डा० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

स्वाध्याय मण्डल

पारडी

प्रकाशक
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर
स्वाध्याय मण्डल, पारडी
[जि० बलसाड]

This book has been published with financial
assistance from the Ministry of Education
and Culture, Government of India

1 9 8 5

Rs. 460 for 10 Vols.

मुद्रक
मेहरा आफसेट प्रेस, नई दिल्ली

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

प्रस्तावना

ॐ नमः पूर्वजेभ्यः ऋषिभ्यः पथिकृद्भ्यः

हमारे पूर्वज ऋषि "पथिकृत्" के नामसे अभिहित हैं। उन्होंने अपने ज्ञानके द्वारा लोगोंको सन्मार्गका दर्शन कराया। उनका ध्येय वाक्य था- "मा प्रगाम पथो वयं," हम सन्मार्गसे कभी विचलित न हों। यह सन्मार्ग कौनसा है? उसपर किस तरह चला जा सकता है? उस पर चलनेका क्या फल है? ये सभी बातें उन्होंने ईश्वरीय ज्ञानकी सहायतासे स्वयं समझीं और दूसरोंको भी समझायीं। यह ईश्वरीय ज्ञान ही "वेदों" की संज्ञासे अभिहित होता है।

वेदोंका स्थान आज भी भारतमें महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुओंके परिवारोंमें जितने भी संस्कार होते हैं, वे सभी संस्कार वेदमंत्रोंके द्वारा ही होते हैं, इसलिए हिन्दुओंमें जबतक ये संस्कार अक्षुण्ण रहेंगे, तबतक वेदोंका महत्त्व भी अक्षुण्ण ही रहेगा।

वेदोंने मानवमात्रको अमूल्य उपदेश दिए हैं। पर उपदेश देनेकी वैदिकपद्धति विलक्षण है। चारों वेदोंमें विधि निषेधके मंत्र बहुत ही थोडे हैं। वैदिक ऋषियोंने बाइबिलके "मैं तुमसे कहता हूँ" की पद्धति कभी नहीं अपनाई। "मैं तुमसे कहता हूँ" में एक प्रकारकी अनिवार्यता है, जबर्दस्ती है और उपदेशकके घमण्डका भी दर्शन होता है। "मैं तुमसे अधिक ज्ञानी हूँ, इसलिए मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, तुम मेरे उपदेशके अनुसार चलो" इसप्रकारकी अहंकारकी भावना "मैं तुमसे कहता हूँ" इस वाक्यमें छिपी हुई है। यह अहंकारकी भावना ऋषियोंके लिए अभीप्सित नहीं थी। उनके हर शब्दोंसे विनम्रता प्रकट होती है। वेदोंमें अमूल्य ज्ञान हैं, पर इस ज्ञानके रचयिता कहलानेकी ऋषियोंने कभी धृष्टता नहीं की। अपितु उस ज्ञानके आविष्कारका सारा श्रेय ऋषियोंने परमात्माको दे दिया। इतनी विनम्रता उन ऋषियोंमें थी। इसीलिए "मैं तुमसे कहता हूँ" की अभिमानात्मक भावनाको उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया।

मानवको देव, नरको नारायण, जीवको शिव बनानेका ऋषियोंका एकमात्र ध्येय था। इस ध्येयके लिए उन्होंने मनोवैज्ञानिक पद्धतिका सहारा लिया। यह मनोवैज्ञानिक पद्धति थी देवताओंके गुण वर्णन करनेकी। किसीको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गमें प्रवृत्त करनेके दो ही तरीके हैं- (१) उससे जोर जबर्दस्ती करके कुमार्गसे परावृत्त करके सुमार्गमें प्रवृत्त किया जाए। यह मार्ग वैदिकेतर सम्प्रदायोंका है। (२) दूसरा उपाय है कि कुमार्ग पर चलनेसे होनेवाली हानियों और सुमार्ग पर चलनेसे होनेवाले लाभोंका विश्लेषण करके मनुष्यको सुमार्गमें चलनेके लाभोंको आकर्षक रीतिसे बताया जाए, तो वह स्वयं कुमार्गको छोडकर सुमार्गमें प्रवृत्त हो जाएगा। किसी जुआरी पर "तुम जुआ खेलना छोड दो" यह कथन इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता, क्योंकि यह कथन उसके अन्तर्मन पर प्रभाव नहीं डालता पर यदि उसके सामने जुएसे होनेवाली हानियोंका बतलाया जाए, तो शीघ्र ही उसका उसके मनपर प्रभाव पडेगा। इसी तरह एक बालकसे "तुम दूध पीओ" यह कहनेकी अपेक्षा उसके सामने दूध पीनेसे होनेवाले लाभोंका वर्णन

किया जाए, तो वह शीघ्र ही उस बालमन पर प्रभाव डाल सकता है। वैदिकऋषि इस मनोवैज्ञानिक तथ्यसे भलीभांति परिचित थे, इसीलिए उन्होंने वेदोंमें "सत्य बोलो, धर्म करो, दान करो, देव बनो" आदि विध्यात्मक आज्ञायें देनेके बजाए देवोंके गुणोंका वर्णन आकर्षक शब्दोंमें किया कि मनुष्योंके मनपर उन गुणोंकी छाप अनायास ही पड जाए। यही कारण है कि वेदोंमें विधिनिषेध न होकर देवोंके गुणवर्णन ही अधिक हैं। ऋषियोंकी यह मनोवैज्ञानिक पद्धति विलक्षण थी।

वेदार्थके क्षेत्र

प्रायः सभी वैदिक ऋचाओंके अर्थ अधिभूत, अधिदेव, अधियज्ञ, अध्यात्म आदि अनेकों क्षेत्रोंमें लगता है। अधिभूत अर्थ वह है कि जो समाज या राष्ट्रके बारेमें किया जाता है। अधिदेव अर्थ वह है जो विश्वके बारेमें किया जाता है। यज्ञसम्बन्धी अर्थको अधियज्ञ कहा जाता है तथा शरीर सम्बन्धी अर्थकी संज्ञा अध्यात्म है। इन सभी क्षेत्रोंमें देवताओंका अर्थ भी बदल जाता है, यथा– अधिभूतमें अग्नि तथा इन्द्र क्रमशः ज्ञानी तथा क्षत्रियके प्रतीक हैं। अधिदेवमें भौतिक अग्नि तथा विद्युत्के निर्देशक हैं, अध्यात्ममें प्राण और जीवके प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार इन देवताओं तथा वैदिक ऋचाओंके भिन्न भिन्न अर्थ हो सकते हैं और ये सभी अर्थ अपने अपने क्षेत्रमें संगत हैं।

वेदोंके विषय

वेदोंके विषयके बारेमें अनेक मतभेद हैं, कुछ विद्वान् वेदोंका विषय ज्ञान मानते हैं कुछ कर्म मानते हैं, तो कुछ उपासना मानते हैं। पर उपासना तथा कर्मकी पृष्ठभूमिमें ज्ञानका आधार न हो तो वे दोनों ही व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए वैदिक संस्कृतिमें ज्ञानको मुख्यता दी गई है। इसीकारण ज्ञानकाण्डात्मक ऋग्वेद भी चारों वेदोंमें मुख्य माना गया है।

ऋग्वेद पर हमारे द्वारा किए जानेवाले हिन्दी सुबोध-भाष्यका प्रथम भाग (प्रथम मंडल) इससे पूर्व प्रकाशित हो ही चुका है। इसी मालाका यह दूसरा पुष्परूप दूसरा भाग प्रस्तुत है। इस भागमें दूसरा, तीसरा, चौथा और पांचवां इस प्रकार चार मण्डल हैं। इन चारों मण्डलोंमें ऋचायें तथा देवता अनेक हैं। इस भागमें देवताओंके जो वर्णन आए हैं, वे इस प्रकार हैं—

अग्नि

ऋग्वेदमें अग्नि ज्ञानका प्रतिनिधित्व करता है। ज्ञानकी मुख्यता होनेके कारण ऋग्वेदमें केवल आठवें और नौवें मंडलको छोडकर बाकी सभी मंडलोंकी शुरुआत अग्निसे ही की गई है। उदाहरणार्थ—

अग्निमीळे पुरोहितं	(प्रथम मंडल)
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः	(द्वितीय मंडल)
सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने	(तृतीय मंडल)
त्वमग्ने सदमित् समन्यवो	(चतुर्थ मंडल)
अबोध्यग्निः समिधा जनानां	(पंचम मंडल)
त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता	(षष्ठ मंडल)
अग्निं नरो दीधितिभिः	(सप्तम मंडल)
अग्निर्भानुना रुशता	(दशम मंडल)

इसप्रकार उपर्युक्त सभी मंडलोंका प्रारंभ अग्निकी प्रार्थनासे हुआ है। अग्निके सूक्तोंके बाद इन्द्रके सूक्त हैं। इन्द्र कर्मशक्तिका प्रतिनिधि है। संभवतः सूक्तोंकी इस व्यवस्थामें ऋषियोंकी यह मनीषा रही हो कि कर्मशक्तिका आधार ज्ञानशक्ति हो। कर्म ज्ञानसे ही प्रेरित हो। क्योंकि ज्ञानसे प्रेरित कर्म ही शिवका उत्पादक होता है। केवल कर्म या ज्ञानहीन कर्म उद्धतताका जनक होकर समाज या राष्ट्रमें अराजकता या अव्यवस्थाका कारण बनता है। इसलिए इन्द्रशक्तिको अग्निशक्तिसे नियंत्रित करनेके लिए ही ऋग्वेदमें अग्निसूक्तोंको प्राथमिकता दी गई है।

अग्निके गुण

इन मंडलोंमें अग्निके अनेक गुण बताये गए हैं- जैसे—

१ नृणां नृपतिः— यह अग्नि सभी मनुष्योंका स्वामी है। समाज या राष्ट्रमें सच्चा राजा तो अग्नि अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मण ही होता है। क्षत्रिय राजा तो ब्राह्मण-मंत्रीकी सलाहसे राज्यशासन करनेवाला होता है। राज्यशासककी अपेक्षा राज्यनिर्माताका स्थान मुख्य होता है। इसलिए राष्ट्रमें शासककी अपेक्षा ज्ञानीका स्थान श्रेष्ठ होता है और वही सच्चा राजा होता है।

२ अग्ने! पोत्रं तव— हे अग्ने! पवित्रता करनेका काम तेरा है। राष्ट्रमें सर्वत्र ज्ञानका प्रचार हो, सभी ज्ञानी हों, अज्ञानका नामोंनिशान न हो, इस कामकी जिम्मेदारी राष्ट्रके ज्ञानियों पर है। वह अपने उपदेशों तथा प्रवचनोंसे प्रजाओंकी बुद्धिको पवित्र बनाये। उन्हें अच्छे मार्गमें प्रेरित करके

देशमें सत्पुरुषोंकी संख्या अधिक बढाये। देशमें एक भी अविद्वान् न रहे, यह देखनेका काम ज्ञानीका है।

इसी तरह भौतिक अग्नि भी घरमें पवित्रता करती है। अग्निमें सुगंधित तथा रोगनाशक पदार्थोंका हवन करनेसे सारे रोगजन्तु नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार अग्नि भी जल-वायुको पवित्र बनानेवाला है। प्राचीनकालमें प्रत्येक चौराहों पर बडी बडी यज्ञशालायें होती थीं और उन यज्ञशालाओंमें प्रतिदिन यज्ञ किए जाते थे, इससे सारे नगरके रोगजन्तु नष्ट हो जाते थे और नगरका स्वास्थ्य बना रहता था। ब्राह्मण-ग्रंथोंके कालमें तो घर-घरमें हवन होते थे, ऐसा महाराज अश्वपतिकी घोषणासे व्यक्त होता है। महाराज अश्वपतिके राज्यमें कोई भी यज्ञ न करनेवाला (अनाहिताग्नि) नहीं था। इसीलिए उस समयके लोगोंका स्वास्थ्य अक्षुण्ण रहता था।

शरीरमें अग्नि प्राणरूप है। शरीरको शुद्ध करना प्राणोंका काम है। श्वासोच्छ्वासके रूपमें प्राण ही फेफडोंमें जाकर अशुद्ध रक्तको शुद्ध करनेका काम करता है। नसनाडियोंमें भी यही प्राण संचार करता है और रक्त प्रवाहको वेग प्रदान करता है। यदि रक्त प्रवाहमें वेग न हो तो रक्त नसोंमें ही जम जाए और मनुष्यकी मृत्यु हो जाए। इसको एक उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है- " मनुष्यके शरीरमें चोट लगती है और चोट लगनेके साथ ही शरीरका रक्त उधरकी तरफ दौडने लगता है, वहांकी क्षतिको पूरा करनेके लिए और बाह्यतत्त्वोंसे युद्ध करनेके लिए। उस समय जो रक्त प्रवाहमें साधारणस्थितिकी अपेक्षा ज्यादा वेगसे आता है और रक्त उस क्षतिग्रस्त भागकी तरफ दौडने लगता है, उसका कारण प्राण ही है। इस प्रकार प्राण शरीरमें सर्वत्र संचार करके शरीरगतमलको मलमूत्र, पसीने आदिके द्वारा निकाल कर शरीरको स्वच्छ और पवित्र बनाये रखता है। इसीलिए इस शरीरस्थ प्राणकी संज्ञा " प्राणाग्नि " है। इस प्राणाग्निको प्राणायामके द्वारा बढाया और बलवान् बनाया जा सकता है। यह प्राण बलवान् होकर पवित्रता करनेका कार्य और ज्यादा अच्छी तरह कर सकता है। इसीलिए वेदमें अग्निको 'पोत्र' कहा है।

३ होत्रं तव- यह अग्नि होता भी है। होताका अर्थ है आहाता अर्थात् बुलानेवाला। समाजमें ज्ञानी इतर विद्वानोंकी सभायें बुलाकर उन सभाओंमें समाजकी उन्नतिके बारेमें विचार करे, उनके द्वारा समाजमें ज्ञानप्रसारका कार्य करवाये। अग्निको 'देवोंको बुलाकर' लानेवाला कहा है। देवोंका अर्थ है विद्वान्। अतः जो विद्वानोंको जो बुलाकर लाता है, वही अग्नि है।

शरीरमें देव इन्द्रियां हैं। प्राणरूपी अग्नि जबतक शरीरमें रहती है, तभी तक ये इन्द्रियां इस शरीरमें रहती हैं। जब एक भ्रूणके शरीरमें प्राण प्रवेश करता है, उसी समय इतर देव भी उसकी इन्द्रियोंमें प्रवेश करके शरीरको चेतनता प्रदान करते हैं। इस प्रकार इस शरीररूपी घरका सच्चा स्वामी तो अग्निही है, इसीलिए उसे " गृहपति " भी कहा है।

अग्निमें इतर देवोंका रूप

" एकही अग्नि अनेक देवोंके रूप धारण करके अनेक कार्य करता है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्राविश्य।
रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव॥ उपनिषद्

अग्निही इस पृथ्वीमें प्रविष्ट होकर सब पदार्थोंका रूप धारण करती है। इसी बातको द्वितीय मंडलकी एक ऋचामें इस प्रकार कहा गया है—

त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि
त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते
त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या॥ २।१।३

१ हे अग्ने ! त्वं सतां वृषभः इन्द्रः— यह अग्नि सज्जनोंमें सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण इन्द्र है। यह देवोंमें सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् होनेके कारण इन्द्र है। यही अग्नि-

२ उरुगायः विष्णुः— सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु है। यही सबसे बृहत् होनेके कारण " ब्रह्मा " है और नाना तरहकी बुद्धियोंसे युक्त होनेके कारण " मेधावी " है। व्रतोंको धारण करके उनका पालन करनेवाला होनेके कारण " वरुण " है। सज्जनोंका पालन करनेवाला होनेके कारण " अर्यमा " है। यह सबको प्राणोंका प्रदान करनेवाला होनेके कारण " असु-र " है।

३ आदित्यासः आस्यं— (१२) यह अग्निदेवोंका मुख है। यज्ञाग्निमें डाली गई आहुति आदित्योंमें जाती है।

अथवा अग्निमें डाली गई हवि देवोंके पास पहुंचती है। देवगण इसी अग्निके द्वारा हविका भक्षण करते हैं। इसलिए अग्निको देवोंका मुख बताया है।

४ शुचयः जिह्वा— (१३) इस अग्निकी किरणें जिह्वाको पवित्र करनेवाली हैं। अग्निके प्रज्वलित होनेपर वेदोंकी ऋचायें बोली जाती हैं और इन ऋचाओंके उच्चारणसे बोलनेवालेकी जीभ; मन और बुद्धि सभी पवित्र हो जाते हैं। इसलिए अग्निको जीभको पवित्र करनेवाला कहा गया है।

५ सुदंससं देवाः बुध्ने परिरे— (१९) उत्तमकर्म करनेवाली अग्निको देवगण सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं। अग्निदेव सब देवोंमें इसलिए श्रेष्ठ माने जाते हैं कि वे सदा उत्तम कर्म करते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य उत्तम कर्म करते हैं, वे सदा उत्तम स्थान पर रहते हैं। उत्तम कर्म करनेवालेको विद्वान् सदा सम्मानित करके श्रेष्ठ बनाते हैं।

शरीरका रक्षक अग्नि

१ देवासः प्रियं मानुषीषु विक्षु क्षेष्यन्तः मित्रं न धुः— (४३) देवोंने प्रिय और हितकारी अग्निको मानवी प्रजाओंमें उसी प्रकार स्थापित किया, जिस प्रकार प्रवास पर जानेवाला मनुष्य अपने घरकी रक्षाके लिए किसी अपने मित्रको रख जाता है।

मनुष्यके समाजमें जब तक अग्निरूपी ज्ञानी रहता है; तभी तक समाजमें चैतन्य रहता है। ज्ञानी ही अपने ज्ञान-रसकी धारासे सभी मनुष्योंमें स्फूर्ति और उत्साह भरा करता है। यही स्फूर्ति और उत्साह समाजको चेतना प्रदान करता है। यही चेतना समाजकी रक्षा करती है। जिस समाजमें क्रियाशून्यता है, निरुत्साहता है, चैतन्यका अभाव है, वह समाज मृतवत् हो जाता है। इसलिए समाजकी उन्नति या रक्षा ज्ञानी ही कर सकते हैं।

इसी तरह शरीरमें अग्नि उष्णताका निर्माण करता है और यही उष्णता शरीरको बनाये रखती है। जिसके शरीरमें यह प्राणाग्निकी उष्णता जितनी अधिक होगी, इतना ही उत्साह और चैतन्य उस शरीरमें होगा। यह उष्णताका अभाव होना ही मृत्यु है। मरे हुए मनुष्यके लिए कहा ही जाता है– " वह तो ठंडा हो गया। " यह ठंडा होना ही प्राणाग्निका बुझ जाना है। इसलिए शरीरमें स्थित उष्णता ही शरीरका रक्षक है।

आधिदैविक या विश्वके क्षेत्रमें भी उष्णता अनिवार्य तत्व है सूर्य प्रतिदिन उदय होकर समस्त विश्वके प्राणि, ओषधि वनस्पतियोंको उष्णता प्रदान करता है। इसी उष्णतासे ओषधि वनस्पतियां तथा वृक्षके फल पककर खाने योग्य बनते हैं। इसी उष्णताके कारण समस्त भूतत्त्व प्राण धारण करते हैं। इसीलिए उष्णताको जीवन बताया है। ऋग्वेदमें सूर्यको चराचर जगत्की आत्मा (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च) कहा है।

इस प्रकार अग्नितत्त्व ही सर्वत्र व्याप्त होकर जगत्को धारण करता है।

अग्निके व्रत

१ अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते— (५३) इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान् पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है।

अग्निकी उपासना करनेसे मनुष्य उन्नति करता जाता है। उपासनाका अर्थ केवल किसी देवके गुणोंका गान करना ही नहीं है, अपितु उस देवके गुणोंको धारण करके तद्वत् बनना ही उस देवकी सच्ची उपासना है। इसी तरह अग्निकी उपासनाका अर्थ है उसके नियमोंके अनुसार आचरण करके उन्नतिशील बननेकी कोशिश करना। अब अग्निके नियम कौन कौनसे हैं, यह बताते हैं—

१ शुचिः— (५३) अग्नि शुद्ध रहता है। अग्निकी स्वयं शुद्धता निर्विवाद है। जल अशुद्ध हो सकता है, वायु अशुद्ध हो सकता है, अन्न अशुद्ध हो सकता है, पर अग्नि कभी अशुद्ध नहीं हो सकता। वह सदा शुद्ध रहती है, इतना ही नहीं, उसमें जो भी पदार्थ डाले जाते हैं, वे भी शुद्ध बन जाते हैं। इस प्रकार अग्निका यह पहिला नियम है— " स्वयं शुद्ध रहकर अन्योंको भी शुद्ध बनाना।" मनुष्य स्वयं शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूपसे शुद्ध बनकर अन्योंको भी शुद्ध तथा पवित्र करे।

२ प्रशास्ता— यह अग्नि उत्तम शासक है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त होकर सब पदार्थोंपर नियंत्रण रखता है। वह अपने शासनको उत्तम रीतिसे चलाता है। यह दूसरा नियम है—" दूसरोंपर उत्तम रीतिसे शासन करना। "

३ शुचि क्रतुः — यह तीसरा नियम है। वह सब पर शासन तो करता है, पर स्वयं भी शासनके अन्तर्गत रहकर उत्तम कर्म करता है। उस अग्निके कर्म सदा शुद्ध रहते हैं।

वह स्वयं भी शुद्ध कर्म करता हुआ दूसरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देता है। इस प्रकार तीसरा नियम बना- **" स्वयं उत्तम कर्म करते हुए इतरोंको भी उत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा देना ! "**

४ ऊर्ध्वशोचिः— अग्निका ऊर्ध्वज्वलन प्रसिद्ध ही है। अग्निकी ज्वालायें सदा ऊपरकी ओर ही उठती हैं। इसी तरह मनुष्य सदा ऊपर उठनेका ही प्रयत्न करे। संकटके समयमें भी उसका प्रयत्न सदा उन्नतिकी तरफ ही रहे। अथर्ववेदका एक मंत्र है—

" उद्यानं ते पुरुष नावयानं " ८।१।६

" हे पुरुष ! उन्नतिही तेरा लक्ष्य है अवनति नहीं। इस प्रकार अग्निका चौथा नियम है— ' सदा उन्नतिके लिए प्रयत्न करना। '

५ सर्वतः शोचि— यों अग्निकी शिखायें सदा ऊपर की तरफ ही जलती हैं, पर उसका तेज चारों ओर फैलता है। वह अपने चारों ओरके अन्धकारको नष्ट करती हुई जलाती है। इसी प्रकार मनुष्य सदा उन्नतिकी ओर प्रयत्न करे, पर अपने तेजसे अपने चारों ओरके अन्धकारको दूर करता हुआ उन्नति करे।

६ मित्रः इव जन्यः— यह अग्नि सबका मित्र है अर्थात् सबका हित करनेवाला है। मनुष्य भी उसी तरह सबका हित करे।

७ अदब्धव्रतः— अग्नि अपने नियमोंका पालन करनेमें कभी भी आलस्य नहीं करता। इसीलिए उसके नियमोंको कोई तोड नहीं सकता।

इस प्रकार अग्नि देवके नियम हैं। इन नियमोंके अनुसार चलनेवाला भी अग्निके समान तेजस्वी और दीप्तिमान् बनता है।

अग्निका स्थान

मनुष्य शरीरमें प्राणाग्निका स्थान हृदय है, ऐसा ऋग्वेदका कथन है। प्राण हृदयमें रहता हुआ हृदयकी गतिको नियमित करता है। इस प्रकार सारे शरीरको धारण करता है। वह—

१ अन्तः इयते— (६४) लोगोंके हृदयोंमें विचरता है। इसीलिए प्राणको " हृदयमें सन्निविष्ट " बताकर उसे " हृदय गुहाका अधिपति " कहा है। अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण हृदयको केन्द्र बताया गया है। इसीतरह समाजमें ज्ञानी केन्द्रस्थान हो।

शोभाओंका धारक

१ अग्नि स्वराज्यं अग्नि अनु विश्वाः श्रियः अधि दधे— (७१) शत्रुओंका विनाशक तथा स्वयं प्रकाशक अग्नि संपूर्ण शोभाओंका धारक है। शोभाको वही मनुष्य धारण कर सकता है जो शत्रुओंका विनाशक हो तथा स्वयं प्रकाशमान् है। समाजमें जबतक शत्रु रहेंगे, तबतक न वह समाज उन्नतिशील हो सकता है, न तेजस्वी ही हो सकता है। अतः समाजमें रहनेवाले विद्वानोंको चाहिए कि वे समाजकी अवनतिमें कारण बननेवाले शत्रुओंका विनाश करके समाजको तेजस्वी बनायें, इसप्रकार स्वयं भी तेजस्वी होकर स्वराज्यकी स्थापना करें।

ऋषियोंका आविष्कार

दूसरे मंडलके पहले मंत्रमें एक चरणको देखनेसे ऋषियोंकी वैज्ञानिकताका पता चलता है। वह मंत्रचरण यह है।

हे अग्ने ! त्वं अद्भ्यः अश्मनः वनेभ्यः परि— (१) हे अग्ने ! तू जलों, पत्थरों और वृक्षोंसे उत्पन्न होता है।

ऋषिगण इस बातसे सम्यक् परिचित थे कि पत्थरमें अग्नि है और पत्थरोंके द्वारा अग्नि उत्पन्न की जा सकती है। आधुनिक पुरातत्ववेत्ता यह जो कहते हैं कि आगका आविष्कार बहुत बादमें हुआ और वैदिक ऋषि अग्निके आविष्कारकी पद्धतिसे अनभिज्ञ थे, उनकी मान्यता इस मंत्र भागसे खंडित हो जाती है। पत्थरसे आगको उत्पन्न करनेकी रीति वे जानते थे।

इसी तरह वे लकडियोंसे भी अग्नि उत्पन्न करना जानते थे। प्राचीन कालमें यज्ञके लिए वही अग्नि पवित्र मानी जाती थी कि जो अग्नि पत्थरको घिसकर अथवा अरणियोंको मथकर उत्पन्न की जाती थी। एक अधरारणि होती थी, उस अरणीके बीचोबीच एक छोटासा गड्ढा होता था, उसमें एक दण्ड, जिसे उत्तरारणि कहा जाता था, डालकर मंथन करते थे। उन दोनों अरणियोंके रगड खानेसे आगकी चिनगारियां प्रकट होती थीं और उन चिनगारियोंसे यज्ञाग्नि प्रकट की जाती थी। इसी तरह दो पत्थरके टुकडोंको आपसमें टकराने पर चिनगारियां प्रकट होती थीं और उनसे यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती थी। इस प्रकार पत्थरों तथा लकडियोंके द्वारा अग्नि प्रकटानेकी विद्यासे ऋषिगण अच्छी तरह परिचित थे। पत्थर और लकडीसे तो अग्नि प्रकटानेकी बात तो समझमें

जा सकती है, पर " अद्भ्यः परि " अर्थात् जलसे अग्नि प्रकटानेकी बात समझमें नहीं आती, जलसे अग्नि प्रकट करनेकी रीति ऋषियोंने नहीं बताई। आज तो हम जलसे बिजलीरूपी अग्नि प्रकट करनेकी विद्यासे भलीभांति परिचित हैं। आज जलविद्युत् की अग्निसे भोजन पकाना आदि सभी काम कर सकते हैं। पर वैदिक कालमें ऋषिगण किस प्रकार जलसे अग्नि उत्पन्न करते थे, यह संशोधनीय है। संभवतः आजकी ही पद्धति किसी और दूसरे रूपमें रही हो। बहरहाल यह निश्चित है कि ऋषियोंने उस समयतक अग्निका आविष्कार कर लिया था और उसका उपयोग करना वे जान गए थे।

इस भागमें इस प्रकार अग्निका वर्णन किया है, इस वर्णनको देखकर मनुष्य अग्निके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके अग्निके समान बननेका प्रयत्न करें। अब हम इन्द्रका वर्णन देखेंगे—

इन्द्रकी महिमा

वेदोंमें अग्नि ज्ञानीका प्रतिनिधित्व करता है, इसीलिए उसके मंत्रोंमें ज्ञानकी महिमा अधिक गाई गई है। इन्द्र क्षत्रिय या राजाका प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसके मंत्रोंके द्वारा ऋषियोंने राजा तथा क्षत्रियवीरोंके लिए उपयुक्त बोधपाठ दिए हैं। अब उन बोधोंको हम देखेंगे—

देवोंका राजा

पुराणों तथा अन्य प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथोंमें इन्द्रको देवोंका राजा कहा है। यह पद इसने किस तरह प्राप्त किया, इसका वर्णन ऋग्वेदकी एक ऋचा इस तरह करती है—

१ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः— (१११) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है। वह बहुत बलशाली है, इसीलिए वह इन्द्र बना।

इन्द्रकी व्युत्पत्ति है— इन् + द्र अर्थात् जो शत्रुओंको भगाता है। इन्द्रने शत्रुओंका विनाश करके देवोंकी रक्षा की, इसलिए देवोंने उसे अपना राजा चुना। इसी तरह जो वीर शत्रुओंका विनाश करके प्रजाकी रक्षा करेगा, उसे ही प्रजा अपना राजा चुनेगी। वह वीर इतना बलशाली है कि—

२ शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्— (१११) उसके बलको देखकर द्यु और पृथ्वीलोक भी कांपते हैं।

३ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्— (१११) मनस्वी इन्द्रने पैदा होते ही अपने कर्मोंसे देवोंको प्रसन्न किया।

जो वीर अपने शौर्यके कर्मोंसे राष्ट्रके लोगोंको प्रसन्न करता है, प्रजायें उसे ही अपना राजा मानती हैं।

वीरका लक्ष्य

१ यः दासं अधरं अकः, लक्षं जिगीवान्— (११४) इस इन्द्रने दासको नष्ट किया और अपने लक्ष्यको जीत लिया। दास नामक एक असुर था, देवोंको दास बनाना ही उसका काम था। इन्द्रने उस दासको मारकर स्वातंत्र्यप्राप्तिरूप अपने लक्ष्यको जीत लिया अर्थात् दासको मारकर उसने सारे देवोंको स्वतंत्र बनाया। इसीतरह राष्ट्रके वीरका लक्ष्य अपने देशकी स्वतंत्रता ही होनी चाहिए। जो शत्रु देशके नागरिकोंको दास बनाना चाहते हैं, उन शत्रुओंको राजा नष्ट करे। देशमें दासप्रथा न रहे, इस बातकी तरफ ध्यान देना वीरका कर्तव्य है।

२ सः इन्द्रः अर्यः पुष्टीः आ मिनाति— (११५) वह शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर देता है। वीर अपने शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर दे। इस प्रकार उनकी आर्थिक स्थितिको कमजोर कर दे।

३ अच्युतच्युत् स इन्द्रः— (११९) जो वीर अपने स्थान पर दृढतासे खडा होनेके कारण हिलाया नहीं जा सकता, उसे भी जो हिला देता है, वह इन्द्र है। वही वीर ऐश्वर्यवान् हो सकता है।

४ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते— (१२३) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इस इन्द्रके सामने झुकते हैं।

मनुष्योंका रक्षक

१ सः नरां पाता— (१९९) वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है।

२ त्वायतः जनान् अभिप्रिपा असि— (१९८) इस इन्द्रकी शरणमें जानेवालेकी वह रक्षा करता है।

३ देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्— (२०२) तेजस्वी, प्रसिद्ध, यशस्वी और सुन्दर इन्द्रकी रक्षा करनेके लिए हमेशा तैय्यार रहता है।

यह इन्द्र अपनी शक्तिका उपयोग सदा लोगोंकी रक्षा करनेके कार्यमें ही करता है। इसीतरह वीर भी अपनी शक्तिका उपयोग प्रजाओंकी रक्षा करनेके कार्यमें ही करे।

गायोंका रक्षक

इन्द्रके लिए ऋग्वेदमें " गोपा " शब्द आया है, " गो-पा का अर्थ है " गायोंकी रक्षा करनेवाला। " इन्द्र गायोंके रक्षणकर्ताके रूपमें ऋग्वेदमें प्रसिद्ध है। कथा है कि एक बार पणियोंने देवोंकी सब गायें चुराकर एक गुहामें बंद कर दीं, तब इन्द्रने उन गायोंका पता लगाकर पणियोंका संहार करके उन गायोंको मुक्त किया। इन्द्रने गायोंको इसीलिए उत्पन्न किया कि मानव उन गायोंका दूध पीयें।

१ उस्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्— (२७२) गौओंमें जो मीठा दूध है, वह सबके भोजनके लिए है। दूध स्वयंमें एक भोजन है। वह अन्न है। अन्नमें जितने भी कुछ शक्तिप्रदायक तत्त्व हैं, वे सभी तत्त्व दूधमें हैं। इसीलिए दूधको भोजन कहा है। वेदोंमें सर्वत्र गौका उल्लेख है और गोदुग्ध पीनेका ही आदेश है। " राष्ट्रमें सर्वत्र हृष्टपुष्ट गायें विचरें, हरी हरी घास खायें और शुद्ध पानी पियें " ऐसा वर्णन वेदोंमें है। राष्ट्रकी प्रजायें गोदुग्ध पीकर हृष्टपुष्ट हों और शत्रुओंसे राष्ट्रकी रक्षा करके देशको उन्नत करें।

" गो-पा " का एक दूसरा भी अर्थ है गाय अर्थात् इन्द्रियोंका रक्षक। गच्छति इति गौः " इस व्युत्पत्तिके अनुसार विषयोंमें अत्यधिक विचरनेके कारण इन्द्रियोंकी एक संज्ञा 'गौ' भी है। इन गायोंकी रक्षा करनेवाला शरीरस्थ जीवात्मा है। जीव इन्द्र है और उसकी शक्ति चक्षु आदि इन्द्रियां हैं इन इन्द्रियोंकी रक्षा इन्द्र करता है। जबतक आत्मा शरीरमें रहती है, तभी तक इन इन्द्रियोंकी शक्ति भी अक्षुण्ण रहती है। तथा आत्माके अदृश्य होनेके साथ ही इन्द्रियोंकी शक्ति भी समाप्त हो जाती है।

इन इन्द्रियोंमेंसे एक प्रकारका रस चूता रहता है, इस रसको पचानेसे यह शरीर स्वस्थ बनता है। यह रस ही इन इन्द्रियरूपी गायोंका दूध है। इस दूधकी रक्षा इन्द्र करता है और शरीरको पुष्ट बनाता है।

१ स अर्कैः हव्यैः उस्रियाः असृजत्— (२९१) उस इन्द्रने पूज्य तत्त्वोंसे संपन्न गायोंको उत्पन्न किया। गायोंमें निहित तत्त्व पूज्य होते हैं। आज भी हिन्दुधर्ममें पंचगव्य (गायके दूध, दही, घी, मूत्र, गोबर) को अत्यन्त पूज्य माना जाता है, और पवित्र होनेका एक सर्वोत्तम साधनके रूपमें इनकी प्रतिष्ठा है। इस प्रकार गायमें पूज्य तत्त्व सन्निहित हैं।

इसी तरह गौरूपी इन्द्रियोंमें भी उत्तम तत्त्व हैं। इन्द्रियोंके भीतर अपारशक्ति छिपी हुई है। इनमें उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों तरहकी शक्तियां हैं। यदि निकृष्ट शक्तियोंको प्रोत्साहन मिला तो मनुष्य राक्षस बन जाता है और उत्कृष्ट शक्तियोंको प्रोत्साहन मिलने पर देव भी बन सकता है, और इन्हीं शक्तियोंके कारण वह पूज्य भी बन सकता है। इसप्रकार ये इन्द्रियें पूज्य तत्त्वोंसे सम्पन्न हैं। इन्हीं पूज्य तत्त्वोंके कारण ये इन्द्रियां भी पूज्य हैं। पर ये ही पूज्य इन्द्रियां जब विषयोंकी ओर दौडती हैं, तो स्वयं भी अपूज्य बनकर मनुष्यको भी अवनत करके उसे समाजमें तिरस्कृत बना देती हैं। विषयोंकी ओर भागना इनका स्वभाव ही है। उपनिषद्का एकवचन है—

परांच खानि व्यतृणत् स्वयंभू
तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मा।
कश्चित् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्
आवृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन् ॥ उप० ॥

स्वयंभू विधाताने इन इन्द्रियोंको बाहर अर्थात् विषयोंकी ओर दौडनेवाली ही बनाया, इसलिए ये बाहरकी ओर ही दौडती हैं अन्दरकी तरफ नहीं। पर कोई बुद्धिमान् जब इन्द्रियोंको आत्माकी तरफ दौडा देता है, तब उसे अमृतत्त्वकी प्राप्ति हो जाती है।

इन इन्द्रियोंमें शक्तिका अनन्त सागर है, पर जब तक ये सांसारिक विषयवासनाओंकी ओर दौडती हैं, तब तक उनकी शक्ति रिसरिस कर व्यर्थ होती जाती है, पर जब उनके मुख अन्दरकी ओर मोड दिए जाते हैं, तब वही शक्ति अन्दर संचित होने लगती है, और मनुष्य बहुत शक्तिशाली हो जाता है।

आर्योंके लिए भूमिदान

इन्द्र सदा आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषोंकी ही रक्षा करता है। उन्हें हर तरहसे सुखी करता है, इन्द्रकी प्रतिज्ञा है—

१ अहं भूमिं आर्याय अददां— (४।२९५) मैंने यह भूमि आर्योंके लिए ही दी है।

इस भूमिपर शासन करनेका अधिकार आर्योंका ही है। वेदोंमें आर्य और दस्यु शब्द किसी विशेष जाति या धर्माव-लम्बी लोगोंके वाचक नहीं हैं, अपितु आर्यका अर्थ है श्रेष्ठ पुरुष और दस्युका अर्थ है दुष्ट। जो स्वयं भी श्रेष्ठ नियमोंके अधीन रहकर लोगोंको उत्तम रीतिसे सुख पहुंचाये, वह आर्य है, और जो स्वयं भी उद्धत तथा उच्छृंखल होकर लोगोंको सताये, वह दुष्ट है। आर्योंकी शक्ति लोगोंकी रक्षा करनेके लिए है तो दस्युओंकी शक्ति लोगोंको पीडा देनेके लिए। आर्योंमें यह शक्ति विनम्रता पैदा करती है, तो दस्यु-ओंमें घमंड। इसी कारण वेदमें कहा है कि आर्य ही इस पृथ्वीपर शासन करें। जब आर्य और दस्युओंके बीच युद्ध होता है तो उस युद्धमें इन्द्र आर्योंकी ही सहायता करता है और दस्युओंका नाश करता है। आर्य और दस्यु तो हमेशासे होते आए हैं और आगे भी होते रहेंगे। इनमें परस्पर युद्ध भी होते रहे हैं, और होते रहेंगे। पर वीरोंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे राष्ट्रपर दस्युओंका शासन कभी न होने दें। वीर इस बातको ध्यानमें रखें कि राष्ट्रमें आर्योंकी ही संख्या ज्यादा हो। वे सत्पुरुषोंकी दुष्टोंसे रक्षा करें।

२ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं— (४।२९।१) यह इन्द्र दानशील मनुष्योंको हर तरहके सुख प्रदान करता है। राष्ट्रमें दान कर्मको बढावा मिलना चाहिए। देशमें कोई दुःखी या दीन न हों, सभी सुखी हों। देशवासियोंकी दीनता और गरीबी दानके द्वारा ही दूर की जा सकती है। इसलिए राजा स्वयं भी दान करे और प्रजाओंको भी दानकर्मकी तरफ प्रेरित करे।

इस प्रकार ऋग्वेदमें इन्द्रके गुणोंका वर्णन है। इन्द्रके गुण वीरों और राजाओंके लिए आदर्शरूप हैं। राष्ट्रके सैनि-कोंके लिए आदर्शरूप देव मरुत् हैं। ये सभी मरुत् समान हैं, न इनमें कोई बडा है, न छोटा है। सभी उत्तम वस्त्रोंसे और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रहते हैं। अपने निवासस्थानोंमें सभी भाइयोंके समान रहते हैं, आदि वर्णन मरुतोंके हैं। इन गुणोंको अपनाकर सैनिक मरुत् देवोंके समान बने।

इसी प्रकार अश्विनौ देवोंके गुण राष्ट्रके वैद्योंके लिए आदर्शरूप हैं। जिस तरह अश्विनौ देव देवोंके घर घरमें जाकर- उनकी पूछताछ तथा चिकित्सा करके देवोंका स्वास्थ्य उत्तम रखते हैं, उसी प्रकार वैद्य भी प्रजाओंके घर घर जाकर उनके स्वास्थ्यकी परीक्षा करें और उत्तम चिकित्सा करके राष्ट्रकी प्रजाओंके स्वास्थ्यको उत्तम रखें।

उषा स्त्रियोंके लिए आदर्शरूप है। वह सबेरे शीघ्र उठकर सारे विश्वको प्रकाशित करती है, साफ करती है और स्वयं भी उत्तम उत्तम वर्ण धारण करके आकर्षक बनती है। इसी तरह राष्ट्रकी स्त्रियां मुंह सबेरे उठकर घरमें उजाला करें, साफसफाई करके घरको उत्तम बनायें। घरके बच्चोंको साफ रखें, इस प्रकार सब स्वच्छ करनेके बाद स्वयं भी रंगबिरंगे वस्त्र पहनकर आकर्षक बनें।

इस तरह वेदोंने देवताओंके गुण वर्णनके बहाने मनुष्योंके लिए अनेक उत्तम उपदेश दिए हैं। इन गुणोंके अनुसार यदि राष्ट्रकी प्रजायें अपना जीवन बनायें तो वह देश स्वर्ग बन सकता है। वेदोंका उपदेश एकदेशी नहीं है अपितु सर्व-देशी है अर्थात् वेदोंके उपदेश केवल भारतवासियोंके लिए ही हो, यह बात नहीं है अपितु, वे सारे संसारके लिए है। वेदोंकी दृष्टिमें हिन्दु, मुसलमान, ईसाई आदि भेद नहीं हैं, उसके लिए तो विश्वके सभी मानव उसी एक अमृत पिताके अमृत पुत्र हैं, फिर चाहे कोई हिन्दु हो, या मुसलमान या ईसाई। वेदोंके उपदेशोंके अनुसार चलकर कोई भी अपने जीवनको उन्नत कर सकता है और आर्य बन सकता है। इस दृष्टिसे वेदोंका अध्ययन करना चाहिए।

कृतज्ञता प्रकाशन

ऋग्वेद भाष्यके इस द्वितीय भागके प्रकाशन कार्यमें भी हमें सेठ श्री गंगाप्रसादजी बिरलासे अत्यधिक सहायता मिली है। उनका वरदहस्त सदैव हमपर रहा है और जब जब हमने उनसे सहायता की प्रार्थना की तब तब उन्होंने हमें सहायता देकर हमें उत्साहित किया। आधुनिक भामाशाहके नामसे विख्यात स्वर्गीय सेठ श्री जुगलकिशोर-जी बिरलाके दानकी परम्पराको उनके भ्रातृज श्री गंगाप्रसादजीने अटूट बनाये रखा, यह सचमुच आनन्दकी बात है। उनकी इस सहायताके लिए हम उनके हृदयसे आभारी हैं।

इस भागके प्रकाशनमें किन्हीं अनिवार्य कारणोंसे अत्यन्त विलम्ब हो गया। इस विलम्बके कारण हमारे प्रिय तथा उदार पाठकोंको जो कष्ट पहुंचे, तदर्थ हम क्षमाप्रार्थी हैं।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

द्वितीय-मण्डल

[१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

१ त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणि--स्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्य--स्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥ १ ॥

२ तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥ २ ॥

[१]

अर्थ— [१] हे (नृणां नृपते अग्ने) मनुष्योंके स्वामी अग्ने ! (त्वं द्युभिः जायसे) तू तेजोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है। (त्वं आशुशुक्षणिः शुचिः) तू शीघ्र सर्वत्र दीप्तिमान् और सबको शुद्ध करनेवाला है। (त्वं अद्भ्यः अश्मनः परि) तू जल और पत्थरसे उत्पन्न होता है। (त्वं वनेभ्यः, त्वं ओषधीभ्यः) तू वनोंसे और औषधियोंसे उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

[२] हे (अग्ने) अग्ने! (होत्रं तव) होताका काम तेरा है, (पोत्रं तव) पवित्रताका काम तेरा है, और (ऋत्वियं नेष्ट्रं तव) ऋत्विक् नेष्टाका काम भी तेरा है। (त्वं अग्नित्) तू अग्निध्र है, जिस समय तू (ऋतायतः) यज्ञकी इच्छा करता है उस समय (प्रशास्त्रं तव) प्रशास्ताका भी काम तेरा है, (त्वं अध्वरीयसि) तू अध्वर्यु है, (ब्रह्मा असि) ब्रह्मा है (च नः दमे गृहपतिः) और हमारे घरका स्वामी है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्रणी तेजस्वी और प्रकाशमान् होनेके कारण सबको शुद्ध करनेवाला है, यह जल, पत्थर, वन और औषधियोंसे उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अग्नि ही होता, पोता, (पवित्र करनेवाला) नेष्टा, अग्निध्र, प्रशास्ता (शासन करनेवाला) अध्वर्यु, ब्रह्मा और यजमान है। इस मंत्रमें ८ ऋत्विजोंके नाम बताए हैं ॥ २ ॥

३ त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः ।
त्वं ब्रह्मा रयिविद् ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरंध्या ॥ ३ ॥

४ त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य संभुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥ ४ ॥

५ त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३] हे (अग्ने त्वं सतां वृषभः) अग्ने ! तू श्रेष्ठोंका बलवान् नेता (इन्द्रः असि) इन्द्र है । (त्वं विष्णुः उरुगायः नमस्यः) तू व्यापक होनेसे विष्णु और बहुतोंसे स्तुत्य है । हे (ब्रह्मणस्पते, त्वं रयिवित् ब्रह्मा) वेदके पालक अग्ने ! तू धनका वेत्ता ब्रह्मा है । हे (विधर्तः पुरंध्या सचसे) धारण करनेवाले अग्ने ! तू विविध प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त मेधावी है ॥ ३ ॥

१ सतां वृषभः इन्द्रः— यह अग्नि सज्जनोंमें बलवान् नेता होनेके कारण इन्द्र है ।
२ उरुगायः विष्णुः— यह अग्नि सर्व व्यापी होनेसे विष्णु है ।
३ रयिवित् ब्रह्मा— यह अग्नि ज्ञानादि ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण ब्रह्मा है । और
४ पुरंध्या सचते— नाना प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त होनेके कारण मेधावी है ।

[४] हे (अग्ने ! त्वं धृतव्रतः वरुणः राजा) अग्ने ! तू व्रतका धारण करनेवाला वरुण राजा है । तू (दस्मः ईड्यः मित्रः) सुन्दर और स्तुतिके योग्य मित्र है । (त्वं सत्पतिः अर्यमा भवसि यस्य संभुजं) तू सज्जनोंका पालक अर्यमा है जिसका दान सर्वव्यापी है । (त्वं अंशः, देव विदथे भाजयुः) तू सूर्य है, अतः दिव्य गुणयुक्त अग्ने ! यज्ञमें अभीष्ट फल दे ॥ ४ ॥

१ धृतव्रतः वरुणः— नियमोंमें चलनेवाला मनुष्य ही वरणीय होता है ।
२ सत्पतिः अर्यमा— सज्जनोंका पालक ही श्रेष्ठ आर्य होता है ।

[५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं विधते सुवीर्यं त्वष्टा) तू अपनेको धारण करनेवालेको उत्तम वीर्य देनेवाला त्वष्टा है । (ग्नावः तव) सम्पूर्ण स्तुतियाँ तेरी ही हैं । हे (मित्रमहः) हितकारी तेजवाले ! तू (सजात्यं) हमारा बन्धु है और हमको (त्वं आशुहेमा स्वश्व्यं ररिषे) तू शीघ्र उत्तम कर्मोंमें प्रोत्साहित करता तथा श्रेष्ठ अश्वयुक्त धन देता है । हे (पुरूवसुः त्वं नरां शर्धः असि) प्रभूत धनवाले अग्ने ! तू ही मनुष्योंका वास्तविक बल है ॥ ५ ॥

१ विधते सुवीर्यं— जो मनुष्य इस अग्निको अच्छी तरह धारण करता है, वह उत्तम वीर्यसे युक्त होकर पराक्रमी होता है ।
२ नरां शर्धः असि— यह अग्नि ही वास्तवमें मनुष्योंका बल है । जिस मनुष्यमें अग्नि जितना बलवान् रहता है, उतना ही बलवान् मनुष्य भी होता है ।

भावार्थ— यह अग्नि ही विविध गुणोंके कारण इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा और मेधावीके नामसे पुकारा जाता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि नियमानुकूल चलनेवाला, वरणीय, सुन्दर, सबसे प्रेम करनेवाला, सज्जनोंका पालक, सर्व श्रेष्ठ और प्रकाशमान् है ॥ ४ ॥

जो इस अग्निको अच्छी तरह धारण करता है वह उत्तम वीर्यसे युक्त होकर सदा उत्साहित रहता है और अपने शत्रुओंको जीतकर अनेक प्रकारके धनैश्वर्य प्राप्त करता है इसलिए वह अग्नि ही वास्तवमें बल है ॥ ५ ॥

६ त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिव--स्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे ।
त्वं वातैररुणैर्यासि शंगय--स्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥ ६ ॥

७ त्वमग्ने द्रविणोदा अरंकृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।
त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥ ७ ॥

८ त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विश--स्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥ ८ ॥

९ त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नर--स्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।
त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत् त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥ ९ ॥

अर्थ— [६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं महः दिवः असु-रः रुद्रः) तू द्युलोकसे प्राणोंको देनेवाला रुद्र है । (त्वं मारुतं शर्धः) तू मरुतोंका बल है तथा (पृक्षः ईशिषे) अन्नका स्वामी है । (त्वं वातैः अरुणैः शंगयः यासि) तू वायुके समान शीघ्रगामी लोहित वर्णवाले अश्वोंके द्वारा कल्याणकारीके घर जाता है । एवं (त्वं पूषा नु) तू सबका पोषण करनेवाला है (त्मना विधतः पासि) इसलिये शीघ्र कृपा करके स्वयं मनुष्योंकी हर प्रकारसे रक्षा करता है ॥ ६ ॥

१ असु-रः- (असून् प्राणान् राति-ददाति)— प्राणोंको देनेवाला प्राणदाता ।

२ महः दिवः असु-रः— महान् द्युलोकसे प्राणको देनेवाली वायु नीचे उतरकर प्राणियोंको जीवन देती है ।

[७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अरंकृते द्रविणोदाः) तू अपनी सेवा करनेवालेको धन देता है (त्वं देवः सविता रत्न-धा असि) तू रत्नोंको धारण करनेवाला सविता है । हे (नृपते) मनुष्योंके पालक ! (त्वं भगः वस्वः ईशिषे) तू भग देवके रूपमें धनोंका स्वामी है (यः दमे ते अविधत्, त्वं पाहि) जो अपने गृहमें तेरी सेवा करता है, उसकी तू रक्षा कर ॥ ७ ॥

[८] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्पतिं, त्वां विशः दमे आ) प्रजाओंके पालक तुझको प्रजायें अपने गृहमें प्राप्त करती हैं । और प्राप्त करके (राजानं सुविदत्रं त्वां ऋञ्जते) प्रकाशमान् और शोभन ज्ञानसे युक्त तुझको प्रसन्न करती हैं । (सु अनीक ! त्वं विश्वानि पत्यसे) हे सुन्दर ज्वाला युक्त अग्ने ! तू विश्वका स्वामी है, तथा (त्वं दश शता सहस्राणि प्रति) तू दसों, सैकडों और हजारों फलोंको देनेवाला है ॥ ८ ॥

[९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नरः) मनुष्य (पितरं त्वां) सबका पालन करनेवाले तुझे (इष्टिभिः) यज्ञोंसे तृप्त करते हैं और (भ्रात्राय) तेरा स्नेह पानेके लिए (तनूरुचं त्वां) शरीरको तेजस्वी बनानेवाले तुझे (शम्या) कर्मसे प्रसन्न करते हैं । (यः ते अविधत्) जो तेरी सेवा करता है, उसके लिए (त्वं पुत्रः भवसि) तू दुःखोंसे पार करानेवाला होता है । तू (सखा सुशेवः आ धृषः पासि) मित्र, सुखरूप और वीर होकर लोगोंकी रक्षा करता है ॥ ९ ॥

भावार्थ— वह अग्नि ही प्राणदाता रुद्र है, मरुतोंमें बल भी इसी अग्निके कारण ही है, यह अपनी ज्वालाओंसे सबका पोषण करके सबकी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

जो अग्निकी अपने घरमें सेवा करता है वह धन प्राप्त करता है और अग्नि भी उसकी हर तरहसे रक्षा करता है ॥ ७ ॥

इस उत्तम ज्ञानसे युक्त अग्निको लोग अपने घरोंमें प्रज्वलित करते हैं । यह सारे संसारका स्वामी है ॥ ८ ॥

वह अग्नि पिताके समान पूजा करनेवालेके लिए पिता रूप, भाईके समान पूजा करनेवालेके लिए भाईरूप, पुत्रके समान प्यार करनेवालेके लिए पुत्ररूप और मित्रके समान स्नेह करनेवालेके लिए मित्ररूप होता है ॥ ९ ॥

१० त्वमग्न ऋभुराके नमस्यः स्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।
त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥ १० ॥
११ त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।
त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥ ११ ॥
१२ त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वय स्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥ १२ ॥
१३ त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥ १३ ॥

अर्थ— [१०] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं ऋभुः आके नमस्यः) तू अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ भी पाससे स्तुतियोंके योग्य है। (त्वं क्षुमतः वाजस्य रायः ईशिषे) तू सर्वत्र प्रसिद्ध अन्न और धनका स्वामी है। (त्वं दक्षि विभासि) तू काष्ठोंको जलाता और प्रकाशित होता है, (त्वं दावने यज्ञं आतनिः विशिक्षुः असि) तू दानशीलके यज्ञको विस्तृत करके उसे पूर्ण करनेवाला है ॥ १० ॥

१ त्वं ऋभुः आके नमस्यः— यह अग्नि बहुत तेजस्वी होता हुआ भी पाससे प्रणाम करने योग्य है।

[११] हे (अग्ने) अग्ने! हे (देव) देव! (त्वं दाशुषे अदितिः) तू दान देनेवालेके लिये अदिति है। (त्वं होत्रा भारती, गिरा वर्धसे) तू होता और वाणी है इसलिये स्तुति द्वारा बढता है। (त्वं शतहिमा इळा दक्षसे) तू सैंकडों वर्षोंकी भूमि है इसलिये दान करनेमें समर्थ है। हे (वसुपते) धनके पालक! तू (वृत्रहा, सरस्वती) वृत्रका मारनेवाला और सरस्वती है ॥ ११ ॥

[१२] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुभृतः त्वं उत्तमं वयः) अच्छे ढंगसे पोषित हुआ हुआ तू श्रेष्ठ अन्न है। (तव स्पार्हे संदृशि वर्णे श्रियः आ) तेरे स्पृहणीय और सम्यक् दर्शनीय वर्णमें ऐश्वर्य रहता है। (त्वं वाजः प्रतरणः, बृहन् असि) तू अन्नकी समृद्धि देनेवाला पापसे बचानेवाला और महान् है; तथा (त्वं रयिः बहुलः विश्वतः पृथुः) तू धन एवं ऐश्वर्यकी बहुलतासे सर्वत्र विस्तीर्ण है ॥ १२ ॥

१ तव स्पार्हे संदृशि वर्णे श्रियः आ— इस अग्निकी सुन्दर और दर्शनीय ज्वालाओंके वर्णमें ऐश्वर्य रहता है।

[१३] हे (अग्ने) अग्ने ! (आदित्यासः त्वां आस्यं) आदित्योंने तुझे अपना मुख बनाया। हे (कवे) दूरदर्शी! (शुचयः त्वां जिह्वां चक्रिरे) पवित्र देवताओंने तुझको अपनी जीभ बनाई। (रातिषाचः अध्वरेषु त्वां सश्चिरे) दान देनेवालोंमें उत्तम देवगण यज्ञमें तेरा आश्रय लेते हैं, और (त्वे आहुतं हविः देवाः अदन्ति) तुझमें आहुति रूपसे दिये गये हव्यको देवतालोग खाते हैं ॥ १३ ॥

१ आदित्यासः आस्यं— यह अग्नि आदित्योंका मुख रूप है।
२ शुचयः जिह्वां— पवित्र करनेवाले देवोंका यह अग्नि जीभ रूप है।

भावार्थ— यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी होता हुआ भी प्रिय लगता है। यह अत्यन्त प्रकाशमान् अग्नि दानशीलके यज्ञको विस्तृत कर उसे पूर्ण करता है ॥ १० ॥

यही अग्नि अदिति, होता, भारती, इळा, वृत्रको मारनेवाला और सरस्वती है ॥ ११ ॥

अच्छी तरह पोषित होकर यह अग्नि हर तरहके ऐश्वर्यको प्रदान करता है, क्योंकि इसकी ज्वालामें हर तरहका ऐश्वर्य रहता है ॥ १२ ॥

यह अग्नि सब देवोंका मुख रूप है अतः यज्ञमें देवगण इसी अग्निका आश्रय लेते हैं और इस अग्निमें दी गई आहुतियोंको खाते हैं ॥ १३ ॥

१४ त्वे अ॑ग्ने॒ विश्वे॑ अ॒मृता॑सो अ॒द्रुह॑ आ॒सा दे॒वा ह॒विर॑दन्त्याहु॑तम् ।
त्वया॒ मर्ता॑सः स्वदन्त आसु॒तिं त्वं गर्भो॑ वी॒रुधां॑ जज्ञिषे॒ शुचि॑ः ॥ १४ ॥

१५ त्वं तान्त्सं च॒ प्रति॑ चासि म॒ज्मना ऽग्ने॑ सुजात॒ प्र च॑ देव रिच्यसे ।
पृ॒क्षो यद॒त्र म॑हि॒ना वि ते॒ भुव॒—दनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी रोद॑सी उ॒भे ॥ १५ ॥

१६ ये स्तो॒तृभ्यो॒ गोअ॑ग्रा॒मश्व॑पेशस॒—मग्ने॑ रा॒तिमु॑पसृ॒जन्ति॑ सू॒रय॑ः ।
अ॒स्मांश्च॒ तांश्च॒ प्र हि नेषि॒ वस्य॒ आ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीरा॑ः ॥ १६ ॥

[२]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

१७ य॒ज्ञेन॑ वर्धत जा॒तवे॑दस॒—म॒ग्निं य॑जध्वं ह॒विषा॒ तना॑ गि॒रा ।
स॒मि॒धा॒नं सु॑प्र॒यसं॒ स्व॑र्णरं द्यु॒क्षं होता॑रं वृ॒जने॑षु धू॒र्षद॑म् ॥ १ ॥

अर्थ— [१४] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्वे अमृतासः, अद्रुहः देवाः) सब अमर, द्रोह न करनेवाले देवगण (त्वे आसा, आहुतं हविः अदन्ति) तेरे मुखसे ही हविको खाते हैं । (मर्तासः त्वया आसुतिं स्वदन्ते) मनुष्य भी तेरे कारण ही अन्नादिका आस्वादन करते हैं । (वीरुधां गर्भः शुचिः त्वं जज्ञिषे) लता आदिके मध्य अवस्थित होकर पवित्र तू अन्नादिको उत्पन्न करता है ॥ १४ ॥

[१५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं मज्मना तान् सं च असि च प्रति) तू अपने बलसे उन प्रसिद्ध देवोंसे मिल भी जाता है और पुनः उनसे पृथक् भी हो जाता है, (च सुजात देव महिना प्ररिच्यसे) तथा उत्तम प्रकारसे उत्पन्न दिव्य गुण युक्त हे अग्ने ! अपनी महिमाके कारण उन सबोंसे भी अधिक श्रेष्ठ है । (यत् अत्र पृक्षः ते वि भुवत्) जो कुछ भी अन्न यहां तुझमें डाला जाता है, यह (रोदसी उभे द्यावा पृथिव्यौ अनु) विस्तृत द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनोंके बीचमें फैल जाता है ॥ १५ ॥

१ यत् पृक्षः ते अत्र वि भुवत् द्यावापृथिव्यौ अनु— जो भी अन्न इस यज्ञमें तेरे अन्दर डाला जाता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैल जाता है ।

[१६] हे (अग्ने) अग्ने ! (ये सूरयः स्तोतृभ्यः) जो मेधावी लोग स्तोताओंको (गो अग्रां अश्वपेशसं रातिं) प्रमुख गौ और घोडे आदि पशुओंको (उपसृजन्ति) दान देते हैं (तान् च अस्मान् वस्यः आ प्र हि नेषि) उन दानियोंको तथा हमको श्रेष्ठ स्थानमें शीघ्र ले चल । (सुवीराः विदथे बृहद् वदेम) वीर सन्तानसे युक्त हुये हम यज्ञमें श्रेष्ठ स्तुतियाँ करें ॥ १६ ॥

[२]

[१७] हे यज्ञ करनेवालो ! तुम (जातवेदसं समिधानं) उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाले, समिधासे प्रदीप्त होनेवाले (सुप्रयसं स्वर्ण-रं द्युक्षं होतारं) उत्तम अन्नसे युक्त, सोनेको देनेवाले, तेजस्वी देवोंको बुलानेवाले (वृजनेषु धूर्षदं) युद्धोंमें बलको देनेवाले (अग्निं यज्ञेन वर्धत) अग्निको यज्ञसे बढाओ तथा (हविषा तना गिरा यजध्वं) हवि और स्तुतियोंसे उसकी पूजा करो ॥ १ ॥

भावार्थ— इसी अग्निके आश्रयसे देव गण और मनुष्य अपना अपना अन्न खाते है। यह अग्नि सब वृक्ष वनस्पतियोंके अन्दर रहकर अपनी उष्णतासे उनको बढाता है ॥ १४ ॥

यह अग्नि देवोंके बीचमें रहता हुआ भी अपने महत्त्वके कारण सर्वश्रेष्ठ होकर उनसे ऊपर ही रहता है। इस यज्ञमें जो कुछ डाला जाता है, वह द्यु और पृथ्वीमें फैल जाता है ॥ १५ ॥

हे अग्ने ! स्तोताओंको गौ आदि पशु देनेवाले दानियोंको उच्च स्थानमें ले जा । और हम भी पुत्र पौत्रादियोंसे युक्त होकर यज्ञमें इस अग्निकी स्तुति करें ॥ १६ ॥

१८ अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥
१९ तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिष मग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥
२० तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥ ४ ॥
२१ स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद् द्यौर्न स्तृभिश्चितयद् रोदसी अनु ॥ ५ ॥

अर्थ— [१८] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वसरेषु धेनवः न वत्सं) गौशालामें गायें जैसे अपने बछडेकी इच्छा करती हैं उसी प्रकार (अभि नक्तीः उषसः त्वा ववाशिरे) मनुष्य रात्री और दिनमें तेरी इच्छा करते हैं । (पुरुवार, संयतः दिवः इव इत् अरतिः) अनेकोंके द्वारा माननीय तू संयत होकर द्युलोककी तरह विस्तृत होता है; (मानुषा, युगा, क्षपः आ भासि) मनुष्य सम्बन्धी युगोंमें तू हमेशा वर्तमान है तथा रात्रीमें भी सर्वत्र प्रदीप्त होता है ॥ २ ॥

[१९] (सुदंससं दिवः पृथिव्योः अरतिं) उत्तम कर्मवाले, द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैली हुई ज्वालाओंवाले, (रथं इव वेद्यं) रथके समान सब ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले, (शुक्रशोचिषं) तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त (क्षितिषु मित्रं न प्रशस्यं) प्रजाओंमें मित्रके समान प्रशंसनीय (तं) उस अग्निको (देवाः) देवगण (रजसः बुध्ने नि एरिरे) लोकोंके श्रेष्ठ स्थानमें स्थापित करते है ॥ ३ ॥

१ सुदंससं देवाः बुध्ने एरिरे— उत्तम कर्म करनेवालेको विद्वान् सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं।

[२०] (रजसि उक्षमाणं) अन्तरिक्षमें जल गिरानेवाले (चन्द्रं इव सुरुचं) चन्द्रके समान आनन्ददायक (पृश्न्याः पतरं) पृथ्वीपर सर्वत्र गमन करनेवाले (अक्षभिः चितयन्तं) ज्वालाओंसे ज्ञात होनेवाले (पाथः न पायुं) जलके समान रक्षा करनेवाले (उभे जनसी अनु) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त (तं) उस अग्निको लोग (स्वे दमे ह्वारे आ दधुः) अपने घरमें एकान्त स्थानपर स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

१ चन्द्रं न सुरुचम्— चन्द्रके समान आनन्ददायक, सोनेके समान तेजस्वी ।

[२१] (सः होता, विश्वं अध्वरं परिभूतु) वह अग्नि होम निष्पादक होकर सारे यज्ञको सब ओरसे व्याप्त करता है । (उ तं मनुषः हव्यैः गिरा ऋञ्जते) उसको मनुष्य हव्य और स्तुति द्वारा अलंकृत करते हैं । (हिरिशिप्रः वृधसानासु जर्भुरत्) तेजस्वी ज्वालाओंवाला अग्नि बढती हुई औषधियोंके बीचमें पुनः पुनः जलकर (स्तृभिः द्यौः न, रोदसी अनुचितयत्) जैसे नक्षत्रोंसे आकाश प्रकाशित होता है, उसी प्रकार अपने प्रकाशसे द्यावापृथ्वीको प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे याजको ! तुम ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले, समिधा प्रदीप्त होनेवाले, सोने आदि ऐश्वर्यको देनेवाले, युद्धोंमें बलशाली अग्निको प्रज्ज्वलित करो ॥ १ ॥

यह अग्रणी मनुष्यों द्वारा वरणीय है, क्योंकि यह महान् और सदा तेजस्वी है ॥ २ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले, ऐश्वर्यदायक प्रजाओंके मित्र इस अग्निको सब विद्वान् मिलकर उत्तम स्थान पर स्थापित करते हैं ॥ ३ ॥

वह अग्नि अन्तरिक्षसे वृष्टिको गिरानेवाला, पृथ्वीमें स्थित, सर्व रक्षक और आनन्द देनेवाला है, उसे सब लोग अपने घरमें स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

यह अग्नि यज्ञको पूरा करनेवाला होकर यज्ञको व्याप्त करता है, अतः मनुष्य उसे सुशोभित करते हैं । वह अपनी ज्वालाओंसे लोकोंको उसी तरह प्रकाशित करता है, जिस प्रकार नक्षत्र आकाशको ॥ ५ ॥

२२ स नो॑ रे॒वत् स॑मिधा॒नः स्व॒स्तये॑ संद॑दस्वा॒न् र॒यिम॒स्मासु॑ दीदिहि ।
आ नः॑ कृणुष्व सुवि॒ताय॒ रोद॑सी॒ अग्ने॑ ह॒व्या मनु॑षो देव वी॒तये॑ ॥ ६ ॥

२३ दा नो॑ अग्ने बृह॒तो दाः स॑ह॒स्रिणो॑ दु॒रो न वाजं॒ श्रुत्या॒ अपा॑ वृधि ।
प्राची॒ द्यावा॑पृथि॒वी ब्रह्म॑णा कृधि॒ स्व१॒॑र्ण शु॒क्रमु॒षसो॒ वि दि॑द्युतः ॥ ७ ॥

२४ स इ॑धा॒न उ॒षसो॒ राम्या॒ अनु॒ स्व१॒॑र्ण दी॑देदरु॒षेण॑ भा॒नुना॑ ।
होत्रा॑भिर॒ग्निर्मनु॑षः स्वध्व॒रो राजा॑ वि॒शामति॑थि॒श्चारु॑राय॒वे॑ ॥ ८ ॥

२५ ए॒वा नो॑ अग्ने अ॒मृते॑षु पूर्व्य॒ धीष्पी॑पाय बृ॒हद्दि॒वेषु॒ मानु॑षा ।
दुहा॑ना धे॒नुर्वृ॒जने॑षु का॒रवे॒ त्मना॑ श॒तिनं॑ पुरु॒रूप॑मि॒षणि॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [२२] हे (देव अग्ने) देव अग्ने ! (सः, नः स्वस्तये रेवत् रयिं अस्मासु) वह तू हमारे कल्याणके लिये, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले धनको हम लोगोंमें (संददस्वान् दीदिहि) सम्यक् प्रकारसे देकर दीप्तमान् हो तथा (रोदसी नः सुविताय आ कृणुष्व) द्यावापृथ्वीको हमारे लिये, सुख देनेवाला बना और (मनुषः हव्या वीतये) मनुष्यों द्वारा दी गई हवियाँ देवताओंको प्राप्त करा ॥ ६ ॥

[२३] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः बृहतः दाः) हमें बहुत सम्पत्ति दे, (सहस्रिणः दाः) हजारों तरहके धन दे, (श्रुत्यै वाजं दुरः नः अप वृधि) कीर्तिके लिये अन्नके द्वारको हमारे लिये खोल दे। (ब्रह्मणा द्यावापृथिवी प्राची कृधि) ब्रह्मसे अर्थात् ज्ञानसे इस द्युलोक और पृथ्वी लोकको हमारे अनुकूल कर, क्योंकि (स्वः न शुक्रं उषसः वि दिद्युतुः) आदित्यके समान प्रकाशमान् तुझको उषायें प्रकाशित करती हैं ॥ ७ ॥

[२४] (राम्याः उषसः अनु सः इधानः) रमणीय उषाके पश्चात् वह अग्नि प्रज्ज्वलित होकर (अरुषेण भानुना स्वः न दीदेत्) अपने प्रकाशमान् उज्ज्वल तेजसे आदित्यकी तरह प्रकाशित होता है और (मनुषः होत्राभिः) मनुष्योंकी स्तुति द्वारा प्रशंसित होकर (स्वध्वरः, विशां राजा अग्निः आयवे चारुः अतिथिः) उत्तम यज्ञवाला, प्रजाओंका स्वामी, यह अग्नि मनुष्योंके लिये प्रिय अतिथिकी तरह पूज्य होता है ॥ ८ ॥

[२५] हे (बृहत् दिवेषु अमृतेषु पूर्व्य अग्ने) अत्यधिक तेजस्वी देवोंमें सर्व श्रेष्ठ अग्ने ! (मानुषा) मनुष्योंके बीचमें (नः धीः एव पीपाय) हमारी स्तुति ही तुझे तृप्त करती है। (दुहाना धेनुः वृजनेषु कारवे) पयस्विनी धेनुके समान तू यज्ञमें कर्म करनेवालेको (त्मना, शतिनं, पुरुरूपं इषणि) स्वयं असंख्य विविध प्रकारके धनोंको दे ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला धन दे। तथा दोनों द्यावापृथिवियोंको हमारे लिए सुखकारक बना दे ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! उषाओं द्वारा प्रज्ज्वलित होकर तू हमें अनेक तरहकी सम्पत्ति और धन दे ॥ ७ ॥

उषःकालमें प्रदीप्त होकर यह अग्नि अत्यधिक प्रकाशित होता है। प्रजाओंका पालक यह अग्नि सबके लिए अतिथिवत् पूज्य है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तू अत्यधिक तेजस्वी देवोंमें भी सर्वाधिक तेजस्वी है, ऐसे तुझे हमारी स्तुतियां तृप्त करती हैं। तू भी उत्तम कर्म करनेवालोंको विविध प्रकारका धन दे ॥ ९ ॥

२६ वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १० ॥
२७ स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥ ११ ॥
२८ उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२ ॥
२९ ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

अर्थ— [२६] हे (अग्ने) अग्ने! (वयं अर्वता वा, ब्रह्मणा वा सुवीर्यं) हम कुशल घोडोंसे तथा ज्ञानसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके (जनान् अति चितयेम) सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जाँय। (अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं) हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धन राशि (स्वः न पञ्च कृष्टिषु शुशुचीत) सूर्यकी तरह पाँचों वर्णोंमें प्रकाशित हो ॥ १० ॥

१ अर्वता ब्रह्मणा सुवीर्यं जनान् अति चितयेम— घोडों एवं ज्ञानसे उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त कर हम सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जाएं।

२ अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं पञ्च कृष्टिषु शुशुचीत— हमारी श्रेष्ठ और दूसरोंके लिए अप्राप्य सम्पत्ति पंच जनोंमें अत्यधिक प्रकाशित हो। पंचकृष्टि = ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद।

[२७] हे (सहस्य अग्ने) बलवान् अग्ने! (यस्मिन्) जिस तुझमें (सुजाताः सूरयः) उत्तम कुलमें उत्पन्न विद्वान् (इषयन्त) अन्नकी कामना करते हुए यज्ञ करते हैं, तथा (यज्ञं दीदिवांसं यं) पूजनीय और तेजस्वी जिस तुझको (वाजिनः) धन सम्पन्न मनुष्य (स्वे दमे उपयन्ति) अपने घरमें प्रज्वलित करते हैं (स प्रशस्यः) वह प्रशंसनीय तू (नः बोधि) हमारी इच्छाओंको जान ॥ ११ ॥

[२८] हे (जातवेदः अग्ने) ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने! (स्तोतारः च सूरयः उभयासः ते शर्मणि स्याम) स्तोत्रगान करनेवाले और मेधावी हम दोनों सुख प्राप्तिके लिये तेरे आश्रित हों (नः) हमारे लिए तू (वस्वः पुरुश्चन्द्रस्य, भूयस प्रजावतः रायः सु अपत्यस्य) निवासके स्थान अतिशय आह्लादप्रद, अधिक भृत्यादि भोगपदार्थोंसे युक्त, धन धान्यसे सम्पन्न और श्रेष्ठ पुत्रके द्वारा अलंकृत सम्पत्ति (शग्धि) तू प्रदान कर ॥ १२ ॥

[२९] (ये सूरयः) जो बुद्धिमान मनुष्य (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालोंको (गो अग्राम् उत्तम उत्तम गाएं (अश्वपेशसम्) बलयुक्त घोडे तथा (रातिं) धन आदि (उपसृजन्ति) प्रदान करते हैं, तू (तान् अस्मान् च) उन्हें और हमें (वस्यः नेषि) सम्पत्तिके मार्गपर ले चल, (सु वीराः) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम (विदथे बृहत् वदेम) यज्ञमें तेरी अच्छी तरह प्रशंसा करें ॥ १३ ॥

भावार्थ— हम उत्कृष्ट सामर्थ्यसे युक्त होकर सबसे श्रेष्ठ बनें और हमारी सम्पत्ति भी सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ हो ॥ १० ॥

हे बलसे उत्पन्न अग्ने! तेरी उत्तम कुलोत्पन्न बुद्धिमान् अन्नकी कामनासे स्तुति करते हैं और कुछ मनुष्य पुत्रकी कामनासे स्तुति करते हैं, इसलिए हे अग्ने! तू हमारी भी इच्छाओंको जानकर उन्हें पूर्ण कर ॥ ११ ॥

हे ज्ञानको उत्पन्न करनेवाले अग्ने! स्तुति करनेवाले हम बुद्धिमान् सुखकी प्राप्तिके लिए तेरा ही आश्रय लेते हैं, अतः तू हमें हर तरहकी सम्पत्ति दे ॥ १२ ॥

जो स्तोताओंको उत्तम घोडे, गाय और धन देता है, उसकी अग्नि सहायता करता है ॥ १३ ॥

[३]

(ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- आप्रीसूक्तं=१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः। छन्दः- त्रिष्टुप्; ७ जगती।)

३० समि॑द्धो अ॒ग्निर्निहि॑तः पृथि॒व्यां प्र॒त्यङ् विश्वा॑नि॒ भुव॑नान्यस्थात् ।
होता॑ पाव॒कः प्र॒दिवः॑ सुमे॒धा दे॒वो दे॒वान् य॑जत्व॒ग्निरर्ह॑न् ॥ १ ॥

३१ नरा॒शंसः॒ प्रति॒ धामा॑न्य॒ञ्जन् ति॒स्रो दिवः॒ प्रति॑ म॒ह्ना स्व॒र्चिः ।
घृ॒त॒प्रुषा॒ मन॑सा ह॒व्यमु॒न्दन् मू॒र्धन् य॒ज्ञस्य॒ सम॑नक्तु दे॒वान् ॥ २ ॥

३२ ई॒ळि॒तो अ॑ग्ने॒ मन॑सा नो॒ अर्ह॑न् दे॒वान् य॑क्षि॒ मानु॑षा॒त् पूर्वो॑ अ॒द्य ।
स आ व॑ह म॒रुतां॒ शर्धो॒ अच्यु॑त॒मिन्द्रं॑ नरो ब॒र्हि॒षदं॑ यजध्वम् ॥ ३ ॥

अर्थ—[३०] (पृथिव्यां निहितः) पृथ्वीमें स्थापित (समिद्धः अग्निः) भलीभांति प्रज्वलित अग्नि (विश्वानि भुवनानि प्रत्यङ् अस्थात्) सब भुवनोंके सामने स्थित होता है। (होता पावकः प्रदिवः सुमेधाः) हवि ग्रहण करनेवाला, पवित्र करनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी और उत्तम बुद्धिवाला यह (देवः अग्निः) देव अग्नि (अर्हन् देवान् यजतु) स्वयं पूज्य होता हुआ देवोंकी पूजा करे ॥ १ ॥

[३१] (नराशंसः) मनुष्योंसे प्रशंसित तथा (सु-अर्चिः) उत्तम ज्वालाओंवाला यह अग्नि (तिस्रः दिवः धामानि) तीनों तेजस्वी लोकोंको (मह्ना प्रति अंजन्) अपने सामर्थ्यसे प्रकट करता हुआ (घृतप्रुषा मनसा) स्नेहयुक्त मनसे (हव्यं उन्दन्) हविको स्वीकार करता हुआ (यज्ञस्य मूर्धन् देवान् सं अनक्तु) यज्ञके श्रेष्ठ स्थानमें अ देवोंके साथ संयुक्त हो ॥ २ ॥

[३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अर्हन् ईळितः) पूजाके योग्य तू हमारे द्वारा पूजित होकर (नः) हमारे हितके लिए (अद्य मानुषात् पूर्वः) आज साधारण मनुष्योंसे पहले (मनसा) उत्तम मनसे (देवान् यक्षि) देवोंकी पूजा कर। तथा (सः) वह तू (मरुतां शर्धः अच्युतं इन्द्रं) मरुतोंके सामर्थ्य और अपने स्थानसे न हटनेवाले इन्द्रको (आ वह) हमारे पास ले आ। (नरः) हे मनुष्यो ! (बर्हिसदं यजध्वं) यज्ञमें बैठनेवाले अग्निका तुम यजन करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— जब यह अग्नि यज्ञकी वेदीमें भलीभांति प्रज्वलित होता है, तब सभी लोक इस अग्निकी तरफ अपना मुंह कर लेते हैं, अर्थात् सभी प्राणी इस यज्ञमें सम्मिलित होते हैं। यह अग्नि हवि ग्रहण करनेवाला, जलवायु एवं वातावरणको पवित्र करनेवाला, अत्यन्त तेजस्वी, उत्तम बुद्धिवाला तथा दिव्य है। यह स्वयं लोगोंसे पूजित होता हुआ देव अर्थात् विद्वानोंकी पूजा करता है ॥ १ ॥

यह अग्नि उत्तम ज्वालाओंसे युक्त होनेके कारण सभी मनुष्योंके द्वारा प्रशंसित है। यह अपने प्रकाश करनेके सामर्थ्यसे सभी लोकोंको प्रकट करता है। पहले जो लोक अन्धकारमें छिपे हुए थे, उन्हें यह अग्नि अपने प्रकाशसे व्यक्त करता है। उसी समय सर्वत्र यज्ञ शुरु होते हैं और उनमें घृतमिश्रित हवियां डाली जाती हैं। इन हवियोंसे सन्तुष्ट होकर यह अग्नि सूर्य, वायु आदि अन्य देवताओंके साथ संयुक्त होता है ॥ २ ॥

इस अग्निकी जो पूजा करता है, उसके लिए यह अग्नि हित करता है। यों तो वह सभीका हित करता है, पर उसके उपासक चाहते यही हैं कि वह अग्नि अन्य साधारण मनुष्योंकी अपेक्षा पहले ही उनका हित करे। वह भी साधारण मनुष्योंको अपेक्षा विद्वानोंकी पूजा प्रथम करता है। अतः मनुष्योंको चाहिए कि वह अग्निकी पूजा करें ॥ ३ ॥

३३ दे॒वं ब॒र्हिर्वर्ध॑मानं सु॒वीरं॑ स्ती॒र्णं रा॒ये सु॒भरं॒ वेद्य॑स्याम् ।
घृ॒तेना॒क्तं व॑सवः सीदते॒दं विश्वे॑ देवा आदित्या य॒ज्ञिया॑सः ॥ ४ ॥
३४ वि श्र॑यन्तामुर्वि॒या हू॒यमा॑ना॒ द्वारो॑ दे॒वीः सु॑प्राय॒णा नमो॑भिः ।
व्यच॑स्वती॒र्वि प्र॑थन्तामजु॒र्या वर्णं॑ पुना॒ना य॒शसं॑ सु॒वीर॑म् ॥ ५ ॥
३५ साध्वपां॑सि स॒नता॑ न उक्षि॒ते उ॒षासा॒नक्ता॑ व॒य्येव रण्वि॒ते ।
तन्तुं॑ त॒तं सं॒वय॑न्ती समी॒ची य॒ज्ञस्य॒ पेशः॑ सु॒दुघे॒ पय॑स्वती ॥ ६ ॥

अर्थ—[३३] हे (देव बर्हिः) दिव्य यज्ञ ! तू (राये) हमें धन प्राप्त करानेके लिए (अस्यां वेदी) इस वेदी अर्थात् यज्ञ कुण्डमें (वर्धमानं) बढते हुए (सुवीरं) हमें उत्तम सन्तान प्रदान करते हुए (सुभरं) हमारा उत्तम रीतिसे भरण पोषण करते हुए (स्तीर्णं) विस्तृत हो । हे (वसवः यज्ञियासः आदित्याः विश्वे देवाः) सबको बसानेवाले, पूजनीय आदित्यो तथा सम्पूर्ण देवो ! तुम सब (घृतेन अक्तं इदं सीदत) घीसे सिंचित इस यज्ञमें आकर बैठो ॥ ४ ॥

[३४] (उर्विया) अत्यन्त विस्तृत (सु प्र अयनाः) आने जानेके लिए सुखकारक (नमोभिः हूयमानाः) तथा नमस्कारपूर्वक बुलाये जाने योग्य जो (देवीः द्वारः) दिव्य द्वार हैं, उनका (वि श्रयन्तां) मनुष्य आश्रय ले, और (व्यचस्वतः अजुर्याः) परस्पर संयुक्त होनेवाले तथा कभी न टूटनेवाले ये द्वार (वर्णं पुनानाः) यजमानके रूपको पवित्र करते हुए (सुवीरं यशसं) तथा उसे उत्तम सन्तान और यश प्रदान करते हुए (वि प्रथन्तां) विशेष रीतिसे विस्तृत हों ॥ ५ ॥

[३५] (नः साधु अपांसि सनता) हमारे उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देनेवाली (उक्षिते) पूजित (वय्या इव रण्विते) बाजे बजानेमें कुशल लोगोंके समान स्तुत होती हुई (ततं तन्तुं सं वयन्ती) फैले हुए धागोंको बुनती हुई (समीची) उत्तम प्रकारसे गति करनेवाली, (सुदुघे) सभी प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली तथा (पयस्वती) जल आदि तत्त्वोंसे परिपूर्ण (उषासानक्ता) दिन और रात ये दोनों देवियां (यज्ञस्य पेशः) यज्ञके रूपको सुन्दर बनाती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यज्ञ समृद्धिका एक उत्तम साधन है, यज्ञको करनेवाला मनुष्य हमेशा उत्तम सन्तान एवं उत्तम धनधान्यसे युक्त होता है । जिस यज्ञको उत्तम घीसे सींचा जाता है, उस यज्ञमें सभी देव आकर बैठते हैं । इसीलिए यज्ञको सदा फैलाना चाहिए ॥ ४ ॥

यज्ञशालाके द्वार सभीके लिए सुखकारक हों । जो यजमान यज्ञ करता है, उसे हर तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों । यह शरीर भी एक यज्ञशाला है, जिसमें दो नाक, दो आंख, दो कान, मुख, उपस्थ और जननेन्द्रिय ये नौ द्वार हैं, जो देवी हैं और इन द्वारोंसे देवगण प्रवेश करके इस शरीरमें रहते हैं । मनुष्य इन दिव्य द्वारोंकी अच्छी तरह सुरक्षा करे ॥ ५ ॥

उषा और नक्ता ये दोनों देवियां दिन और रातकी प्रतीक हैं । ये दोनों देवियां मनुष्योंके उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देती हैं । ये दोनों देवियां बुननेमें भी कुशल हैं । क्षण, मिनट आदि काल विभाग चारों ओर फैले हुए हैं, ये कालविभाग ही मानों फैले हुए धागे हैं, इनसे ये दोनों देवियां मनुष्यके जीवन रूपी वस्त्रको बुनती हैं । ये देवियां यद्यपि परस्पर विरुद्ध हैं, तथापि परस्पर मिलकर चलती हैं । ये दोनों देवियां मानव जीवनरूपी वस्त्रको बुनती हुईं मनुष्यजीवनके यज्ञको उत्तम रूपसे युक्त करती हैं ॥ ६ ॥

३६ दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान् यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥

३७ सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥

३८ पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥

अर्थ— [३६] (दैव्या होतारा) दिव्य गुणसे युक्त तथा देवोंको बुलानेवाले (प्रथमा विदुष्टरा वपुष्टरा सबसे प्रथम पूजनीय अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान् और सुन्दर रूपवान् दो देव (ऋचा ऋजु सं यक्षतः) ऋचाओंसे सरलतापूर्वक पूजा करते हैं । (ऋतुथा) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाले दोनों देव (देवान् यजन्ता) अन्य देवोंकी उपासना करते हुए (त्रिषु सानुषु) तीनों ही सवनोंमें (पृथिव्या नाभा) पृथिवीकी नाभि वेदिमें (सं अञ्जतः) अच्छी तरह संयुक्त हों ॥ ७ ॥

[३७] (नः धियं साधयन्ती) हमारी बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करती हुई (सरस्वती) सरस्वती (देवी इळा) दिव्य गुणसे युक्त इळा तथा (विश्वतूर्तिः भारती) सबको तृप्त करनेवाली भारती (तिस्रः देवीः) ये तीनों देवियां (इदं शरणं निषद्य) इस यज्ञ गृहमें बैठकर (स्वधया) अपनी धारणा शक्तिसे (इदं बर्हिः अच्छिद्रं पान्तु) इस यज्ञकी पूर्ण रूपसे रक्षा करें ॥ ८ ॥

[३८] (पिशंगरूपः) उत्तम सोनेके से रंगवाला, (सुभरः) उत्तम हृष्टपुष्ट (वयः धाः)-उत्तम अन्न और दीर्घायुको धारण करनेवाला, (श्रुष्टी) अत्यन्त बुद्धिमान् (वीरः) वीर तथा (देवकामः) विद्वानोंकी इच्छा करनेवाला पुत्र (त्वष्टा देवकी कृपासे) (जायते) उत्पन्न होता है । (त्वष्टा) त्वष्टा देव (अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु) हमारे वंशके केन्द्र प्रजाको हमें प्रदान करे (अथ) और वह पुत्र (देवानां पाथः अपि एतु) देवोंके द्वारा बताये गए रास्ते पर चले ॥ ९ ॥

१ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु— त्वष्टा देव हमें हमारे वंशको आगे चलानेवाले पुत्रको प्रदान करे ।
२ अथ देवानां पाथः अपि एतु— वह पुत्र देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चले ।

भावार्थ— स्त्री पुरुष ये दो दिव्य देव हैं, जो गृहस्थाश्रममें रहते हुए, विद्वान् और सुन्दर रहते हुए ऋचाओंसे यज्ञ करते हैं। ये आदर्श गृहस्थी हैं। सब गृहस्थियोंको ऋतुके अनुसार कर्म करने चाहिए। अपनी आयुके तीन सवनोंमें ये दोनों अच्छी तरह संयुक्त होकर यज्ञ करते रहें ॥ ७ ॥

सरस्वती बुद्धिकी देवी होनेसे सबकी बुद्धियोंको पवित्र करते हुए उत्तम मार्गमें प्रेरित करती है । इला अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है तथा भारती या उत्तम वाणी सबको तृप्त करनेवाली है । इस प्रकार ये तीनों देवियां इस यज्ञगृह–रूपी शरीरमें बैठकर इस मानव जीवनरूपी यज्ञको हर प्रकारसे सुरक्षित रखें ॥ ८ ॥

त्वष्टा देवकी कृपासे प्राप्त पुत्र उत्तम सुन्दर, हृष्टपुष्ट, अन्न और दीर्घायु धारण करनेवाला, अत्यन्त बुद्धिमान्, वीर और विद्वानोंकी संगतिमें रहनेवाला होता है । जो त्वष्टा द्वारा दिया गया पुत्र हमेशा विद्वानोंके द्वारा प्रदर्शित उत्तम मार्ग पर चलता है ॥ ९ ॥

×

३९ वनस्पतिरवसृजन्नुप स्था अग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन् देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १० ॥
४० घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ११ ॥

[४]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४१ हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद् देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥
४२ इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वायोः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥

अर्थ— [३९] (वनस्पतिः) वनोंका स्वामी अग्नि (अवसृजन) अपने प्रकाशको चारों ओर फैलाता हुआ (उप स्थात्) हमारे पास बैठे । (अग्निः धीभिः हविः सूदयाति) अग्नि अपनी शक्तिसे हविको तय्यार करता है । (दैव्यः शमिता) दिव्यगुणयुक्त शान्त स्वभावी अग्नि (त्रिधा समक्तं हव्यं) तीन प्रकारसे तैय्यार की गई हविको (प्रजानन्) जानता हुआ (देवेभ्यः उप नयतु) उस हविको देवोंके पास ले जाए ॥ १० ॥

[४०] (अस्य योनिः घृतं) इस अग्निका मूल स्थान घी है, इसलिए (घृतं मिमिक्षे) इस अग्निको घीसे सींचता हूँ । यह अग्नि (घृते श्रितः) घी पर ही आश्रित है, (अस्य धाम घृतं) इसका तेज भी घी है । (वृषभ) हे बलवान् अग्ने ! (अनुष्वधं आ वह) हविको सब देवोंके पास पहुंचा, और उन्हें (मादयस्व) प्रसन्न कर, (स्वाहाकृतं हव्यं वक्षि) स्वाहाकार पूर्वक दी गई हविको देवों तक ले जा ॥ ११ ॥

[४]

[४१] हे मनुष्यो ! (यः देवः जातवेदाः) जो दिव्यगुण युक्त, सब भूतोंका ज्ञाता अग्नि (मित्रः इव, आदेवे जने दिधिषाय्यः भूत्) सूर्यके समान मनुष्योंसे लेकर देवोंतकका धारक है, ऐसे (वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं) तुम्हारे लिये अत्यन्त दीप्तिसे युक्त, निष्पाप (विशां अतिथिं सु प्रयसं अग्निं) प्रजाओंके लिए अतिथि स्वरूप, शोभन हवि लक्षण युक्त अन्नसे सम्पन्न अग्निको मैं (हुवे) बुलाता हूं ॥ १ ॥

[४२] (इमं विधन्तः भृगवः) इस अग्निकी सेवा करनेवाले भृगुओंने इसे (अपां सधस्थे, आयोः विक्षु द्विता अदधुः) जलके निवासस्थान अन्तरिक्ष और मनुष्योंके बीच इस प्रकार दो स्थानोंमें स्थापित किया । (देवानां अरतिः जीराश्वः एषः अग्निः) समस्त देवोंका स्वामी और शीघ्रगामी घोडोंवाला यह अग्नि (भूमा विश्वानि अभ्यस्तु) हमारे समस्त विरोधी शत्रुओंको पराभूत करे ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने चारों ओर प्रकाश फैलाता है, तथा अपनी शक्तिसे हवि तैय्यार करके उसे यह अग्नि देवोंके पास पहुंचाता है ॥ १० ॥

इस अग्निका मूल स्थान, सेचक द्रव्य आश्रय और तेज सभी कुछ घी है । इसी घीसे प्रज्वलित होकर यह अग्नि हविको देवोंके पास पहुंचाता है और उन्हें प्रसन्न करता है ॥ ११ ॥

जिस प्रकार सूर्य सब संसारका आधार है, उसी प्रकार यह अग्नि देवों और मनुष्यका आधार है ॥ १ ॥

भृगुओंने अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन दो स्थानोंमें अग्निका स्थापन किया । यह अग्नि तेजस्वी होकर हमारे सभी शत्रुओंको पराभूत करे ॥ २ ॥

४३ अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥

४४ अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥

४५ आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥ ५ ॥

४६ आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४३] (देवासः) देवोंने (प्रियं) प्रिय और हितकारी अग्निको (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (धुः) इसी प्रकार स्थापित किया जिस प्रकार (क्षेष्यन्तः मित्रं न) प्रवास पर जानेवाला मनुष्य अपने घरकी रक्षाके लिए किसी अपने मित्रको रख जाता है। (यः दास्वते) जो दानशीलके हित करने लिए (दमे आ हितः) उसके घरमें स्थापित किया गया, (दक्षाय्यः सः) दक्षतासे युक्त वह अग्नि (उशतीः ऊर्म्याः आ दीदयत्) सुन्दर ज्वालाओंसे युक्त होकर चारों ओर प्रकाशित होता है ॥ ३ ॥

[४४] (स्वस्य पुष्टिः इव अस्य रण्वा) अपने शरीरकी पुष्टिके सदृश इस अग्निकी रमणीयता होती है। (हियानस्य दक्षोः अस्य संदृष्टिः) समृद्धिको प्राप्त हुए हुए और काष्ठादिको भस्म करनेवाले इस अग्निकी तेजस्विता भी रमणीय होती है। (यः ओषधीषु जिह्वां वि भरिभ्रत्) जो अग्नि वृक्षवनस्पतियोंपर अपनी ज्वालारूपी जीभको अत्यधिक घुमाता है, उस समय वह ऐसा दिखाई देता है (न रथ्यः अत्यः वारान् दोधवीति) जैसे रथमें जुडा हुआ घोडा अपनी पूँछके बालको बार बार कँपाता है ॥ ४ ॥

१ स्वस्य पुष्टिः रण्वा— अपने शरीरकी स्वस्थता सबके लिए आनन्ददायक होती है।

[४५] (मे वनदः यत् अभ्वं आ पनन्त) मेरे सम्बन्धित स्तोता लोग, चूंकि अग्निके महत्त्वकी चारों ओर स्तुति करते हैं इसलिए (सः उशिग्भ्यः वर्णं न अमिमीत) वह अग्नि कामना करनेवाले स्तोताओंके लिये अपने जैसा तेज प्रदान करता है। तथा (रंसु चित्रेण भासा चिकिते) रमणीय आहुतिके दिए जानेपर कान्तिसे युक्त होकर प्रकट होता है। और (यः जुजुर्वान् मुहुः आ युवा भूत्) जो वृद्ध होकर भी पुनः पुनः तरुण होता रहता है ॥ ५ ॥

१ चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्— विचित्र तेजसे युक्त वृद्ध भी तरुण ही होता है।

२ अभ्वं आ पनन्त वर्णं अमिमीत— इस अग्निकी स्तुति करनेवाले स्तोता इसके तेजसे युक्त होते हैं।

[४६] (वना तातृषाणः न यः आ भाति) जिस प्रकार एक प्यासा जल्दी जल्दी पानी पी जाता है उसी प्रकार वनोंको शीघ्र जलाकर जो सब ओर प्रकाशित होता है और जो (पथा वाः न रथ्या इव स्वानीत्) ढालकी तरफ वेगसे जानेवाला जलकी तरह और रथवाहक अश्वकी तरह शब्द करता है वह (कृष्ण-अध्वा तपुः रण्वः) अपने काले मार्गसे जानेवाला तापक और रमणीय अग्नि (नभः अभिः स्मयमानः द्यौः इव चिकेत) नक्षत्रोंसे प्रकाशमान द्युलोककी तरह शोभायमान होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि रात्रीमें प्रकाशित होकर घरोंका संरक्षण करता है और इस प्रकार वह सब मनुष्योंका मित्रके समान हित करता है ॥ ३ ॥

वृद्धिको प्राप्त इस अग्निकी तेजस्विता और पुष्टि बहुत आनन्ददायक होती है। यह वृक्षवनस्पतियोंपर अपनी ज्वालाओंको फैलाता है, और उस समय वह बहुत तेजस्वी होता है ॥ ४ ॥

जो इस अग्निकी उपासना (उप–आसन पासमें बैठना) अर्थात् यज्ञ करता है, वह अग्निके ही उत्तम तेजसे युक्त होता है। और इस तेजसे युक्त होकर वृद्ध भी तरुणोंके समान क्रियाशील हो जाता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार एक प्यासा जल्दी जल्दी पानी पीता है उसी तरह वह अग्नि जंगलोंको क्षण भरमें जला देता है। और ढालकी तरफ बहते पानीकी तरह यह अग्नि शब्द करता है। ऐसा धुंएके द्वारा जाना जानेवाला यह अग्नि उसी प्रकार प्रकाशित होता है, जिस तरह नक्षत्रोंसे आकाश ॥ ६ ॥

४७ स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन् कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७ ॥

४८ नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥

४९ त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद् वयो धाः ॥ ९ ॥

[५]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

५० होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

अर्थ— [४७] (यः वि अस्थात्) जो विविधरूपोंमें सर्वत्र व्याप्त है (उर्वी अभि दक्षत्) विस्तृत पृथ्वीको और अधिक विस्तृत बनाता है ऐसा वह (शोचिष्मान् कृष्णव्यथिः) तेजस्वी दुष्टोंको पीडित करनेवाला (अग्निः) अग्नि (भूम अतसानि) बहुतसे वृक्ष वनस्पतियोंको (उष्णन्) जलाकर (अस्वदयन्) उन्हें खाता हुआ (अ-गोपाः पशुः इव) रक्षकहीन पशुके समान (स्वयुः एति) अपनी इच्छासे इधर उधर जाता है ॥ ७ ॥

[४८] हे अग्ने ! तेरे (पूर्वस्य अवसः अधीतौ) पहले किए गए रक्षणको याद करके (नु तृतीये विदथे ते मन्म शंसि) आज हम तृतीय सवनमें तेरे लिये मनोहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अस्मे बृहन्तं क्षुमन्तं) हमें महान् कीर्तिमान् (वाजं रयिं सु संयत् वीरं अपत्यं दाः) उत्तम धन और श्रेष्ठ तथा संयमी वीर संतान प्रदान कर ॥ ८ ॥

[४९] हे (अग्ने) अग्ने ! (गुहा वन्वन्तः गृत्समदासः त्वया यथा) गुफामें बैठे हुये तेरी स्तुति करनेवाले अहंकाररहित लोगोंने तेरी कृपासे जिस प्रकार रक्षित होकर, (सुवीरासः अभिमातिषाहः उपरान् अभिस्युः) उत्तम पुत्रादिको प्राप्त कर और शत्रुओंको पराजित करके उत्कृष्ट स्थान प्राप्त किया । तत् सूरिभ्यः गृणते स्मत् वयः धाः) उसी प्रकारसे तू मेधावी स्तुति करनेवाले हमारे लिये वरणीय धनोंको प्रदान कर ॥ ९ ॥

१ गृत्समदः— अहंकाररहित ।

[५]

[५०] (होता, चेतनः, पिता, पितृभ्यः ऊतये अजनिष्ट) होमनिष्पादक, चेतना देनेवाला, पालक अग्नि पितरोंकी रक्षाके निमित्त उत्पन्न हुआ । हम भी (वाजिनः प्रयक्षं जेन्यं यमं) बलशाली होकर, पूज्य, विजेता और रक्षा-साधन सम्पन्न (वसु शकेम) धन प्राप्त करनेमें समर्थ होवें ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि इस विश्वमें अनेक रूप धारण करके सब जगह व्याप्त है । इस प्रकार दुष्टोंको नष्ट करनेवाला वह अग्रणी अपनी इच्छानुसार सब जगह जाता है उसे रोकनेवाला कोई नहीं है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तेरे द्वारा पहले भी हमारी रक्षा हो चुकी है, इस बातको याद करके हम आज भी तेरी उपासना करते हैं । हे अग्ने ! तू हमें बहुत धन और संयमी श्रेष्ठ वीर पुत्र प्रदान कर ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तूने जिस प्रकार अहंकाररहित ऋषियोंको पुत्र पौत्रादि प्रदान करके उनकी शत्रुओंसे रक्षा की, उसी प्रकार तू हमें भी उत्तम धन देकर हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

शरीरमें स्फूर्ति देनेवाला यह अग्नि हमारी रक्षाके लिए उत्पन्न हुआ है, अतः हम भी इससे सुरक्षित होकर उत्तम धन प्राप्त करें ॥ १ ॥

५१ आ यस्मिन् त्सप्त रश्मय॑स्तता य॒ज्ञस्य॑ ने॒तरि॑ ।
मनु॒ष्वद् दैव्य॑मष्ट॒मं पोता॒ विश्वं॒ तदि॑न्वति ॥ २ ॥
५२ दु॒ध॒न्वे वा॒ यदी॒मनु॒ वोच॒द् ब्रह्मा॑णि॒ वेरु॒ तत् ।
परि॒ विश्वा॑नि॒ काव्या॒ नेमि॑श्च॒क्रमि॑वाभवत् ॥ ३ ॥
५३ सा॒कं हि शुचि॑ना॒ शुचि॑: प्रशा॒स्ता क्रतु॒नाज॑नि ।
वि॒द्वाँ अ॑स्य व्र॒ता ध्रु॒वा व॒या इ॒वानु॑ रोहते ॥ ४ ॥
५४ ता अ॑स्य॒ वर्ण॑मा॒युवो॒ नेष्टु॑: सचन्त धे॒नव॑: ।
कु॒वित् ति॒सृभ्य॒ आ वरं॒ स्वसा॑रो॒ या इ॒दं य॒युः ॥ ५ ॥
५५ यदी॑ मा॒तुरुप॒ स्वसा॑ घृ॒तं भर॒न्त्यस्थि॑त ।
तासा॑मध्व॒र्युराग॑तौ॒ यवो॑ वृ॒ष्टीव॑ मोदते ॥ ६ ॥

अर्थ— [५१] (यज्ञस्य नेतरि यस्मिन्) यज्ञके नायक जिस अग्निमें, (सप्तरश्मयः आ ततः) सात रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं, (तत् पोता मनुष्वत्) वह पवित्र करनेवाला अग्नि मनुष्यकी तरह (दैव्यं अष्टमं विश्वं इन्वति) यज्ञका आठवें स्थानीय होकर पूर्ण रूपसे व्याप्त होता है ॥ २ ॥

[५२] (वा, ईं अनु यत् दधन्वे) अथवा इस यज्ञमें अग्निको लक्ष्य करके जो हव्यादि धारण किया जाता है; तथा (ब्रह्माणि वोचत् तत् वेरु) वेदमन्त्रोंको पढा जाता है, उन सबोंको अग्नि जानता है । और (नेमिः चक्रं इव) जिस प्रकार धुराके चारों ओर चक्र होते हैं, उसी प्रकार (विश्वानि काव्या परि अभवत्) सारी स्तुतियां इस अग्निके चारों ओर ही घूमती हैं ॥ ३ ॥

[५३] (शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं हि अजनि) पवित्र, अच्छे ढंगसे शासन करनेवाला अग्नि शुद्ध करनेवाले कर्मोंके साथ ही उत्पन्न हुआ । (अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान्) इस अग्निके अटल नियमोंको जाननेवाला (वया इव अनुरोहते) पेडोंकी शाखाओंके समान प्रतिदिन बढता ही रहता है ॥ ४ ॥

१ शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि— शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला यह अग्नि शुद्ध करनेवाले गुणोंके साथ ही पैदा हुआ ।

२ अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते— इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान् पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है ।

[५४] (याः इदं ययुः) जो यह कर्म करती हैं, (ताः आयुवः धेनवः) वे मनुष्योंको तृप्त करनेवाली (स्वसारः) बहिनें-अंगुलियां (नेष्टुः तिसृभ्यः) इस नेता अग्निके तीनों रूपोंके (वरं वर्णं) सुन्दर तेजको (सचन्ते) बढाती हैं ॥ ५ ॥

[५५] (यत्) जब (स्वसा घृतं भरन्ति) बहिन रूपी अंगुलियां घीको भरती हैं और (मातुः उप अस्थित) माता रूपी वेदिके पास आती हैं, तब (तासां आगतौ) उन अंगुलियोंके पास आनेपर (अध्वर्युः मोदते) अध्वर्यु अग्नि उसी प्रकार खुश होता है, जिस प्रकार (वृष्टी यवः इव) वर्षाको पाकर अन्न ॥ ६ ॥

भावार्थ— वह सात रश्मियोंसे युक्त अग्नि इस सारे संसारमें व्याप्त है ॥ २ ॥

सब आहुति और प्रार्थनाएं इसी अग्निको लक्ष्य करके की जाती हैं । यही सब विश्वका केन्द्र है ॥ ३ ॥

इस अग्निके अन्दर स्थित सबको शुद्ध करनेका गुण उसका जन्मजात गुण है । इसलिए जो इसके नियमोंमें रहता है, वह शुद्ध होकर प्रतिदिन बढता जाता है ॥ ४ ॥

कर्मको करनेवाली अंगुलियां इस नेता अग्निको प्रज्ज्वलित करके तेजस्वी बनाती हैं ॥ ५ ॥

जब अंगुलियों द्वारा वेदिमें घीकी आहुति दी जाती है, तब अग्नि प्रसन्न होता है ॥ ६ ॥

५६ स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥
५७ यथा विद्वाँ अरं करद् विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥

[६]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

५८ इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ १ ॥
५९ अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
६० तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
६१ स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ॥ ४ ॥

अर्थ— [५६] (ऋत्विक् स्वाय स्वः ऋत्विजं कृणुतां) ऋत्विक् रूप होकर यह अग्नि अपनी पुष्टिके लिये अपने आप ऋत्विक्के कर्मको करे । (वयं आत्) हम भी उसके अनन्तर ही (स्तोमं च यज्ञं अरं वनेम ररिम) स्तोत्र और यज्ञको अधिक करें और हविको भी दें ॥ ७ ॥

[५७] हे (अग्ने) अग्ने ! (यथा विद्वान् विश्वेभ्यः यजतेभ्यः अरं करत्) जिस प्रकार विद्वान् सब देवोंकी तृप्ति भलीभाँति करता है । उसी प्रकार (वयं यं यज्ञं चकृम अयं त्वे अपि) हम भी जिस यज्ञको करें वह तेरी तृप्तिके लिए ही है ॥ ८ ॥

[६]

[५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे इमां, समिधं, इमां उपसदं वनेः) मेरी इस समिधा और इस आहुतिको स्वीकार कर । तथा मेरे (इमा उ गिरः सु श्रुधि) इस स्तोत्रको भी अच्छी प्रकारसे सुन ॥ १ ॥

[५९] हे (ऊर्जः नपात् अश्वं इष्टे सुजात) बलको कम न करनेवाले, व्यापक यज्ञवाले तथा उत्तम जन्मवाले अग्ने ! हम (अया एना सूक्तेन) इस स्तुति और इस सूक्तसे (ते विधेम) तेरी सेवा करें ॥ २ ॥

[६०] हे (द्रविणोदः) धनके दाता अग्ने ! (गिर्वणसं द्रविणस्युं तं) स्तुति करने योग्य तथा धन प्रदान करनेवाले तेरी (सपर्यवः, गीर्भिः सपर्येम) तेरे सेवक हम स्तुतियोंसे आदर सत्कार करें ॥ ३ ॥

[६१] (वसुदावन् वसुपते) हे धन प्रदान करनेवाले धनके स्वामी अग्ने ! (मघवा सूरिः सः) धनवान् और विद्वान् वह तू हमारी इच्छाओंको जान तथा (अस्मत् द्वेषांसि युयोधि) जो हमसे द्वेष करनेवाले शत्रु हैं उनको भगा दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि अपने पोषण और शक्तिके लिए ऋत्विक् होकर ऋत्विजोंका काम करे । उसके बाद हम भी उसकी स्तुति करके उसको आहुति प्रदान करें ॥ ७ ॥

जिस प्रकार सभी विद्वान् देवोंकी तृप्तिके लिए कर्म करते हैं, उसी प्रकार हम भी इस अग्निकी तृप्तिके लिए ही यज्ञ करें ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! तू हमारे उत्तम कार्योंकी प्रशंसा कर और हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥ १ ॥

हम नित्यप्रति अग्निकी स्तुति और सूक्तोंसे सेवा करें ॥ २ ॥

यह अग्नि स्तुतिके योग्य और धनको देनेवाला है, अतः इसका उत्तम रीतिसे सत्कार करना चाहिए ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू सब चीजोंका जाननेवाला है, अतः हमारी इच्छाओंको भी जान और हमसे शत्रुओंको दूर हटा ॥ ४ ॥

६२ स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥ ५ ॥
६३ ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
६४ अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वान् जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥ ७ ॥
६५ स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् । आ चास्मिन् त्सत्सि बर्हिषि ॥ ८ ॥

[७]

(ऋषिः- सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।)

६६ श्रेष्ठं यविष्ठ भारता ऽग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥ १ ॥
६७ मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥

अर्थ — [६२] (सः नः दिवः परि वृष्टिं) वह अग्नि हमारे लिये अन्तरिक्षसे वर्षा करे । (सः नः अनर्वाणं वाजं) वह हमको महान् बल प्रदान करे; तथा (सः नः सहस्रिणीः इषः) वह हमें सहस्रों प्रकारके अन्नोंको भी देनेवाला हो ॥ ५ ॥

[६३] हे (यविष्ठ दूत) बलवान् दूत, (यजिष्ठः होतः) अतिशय यजनीय, देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (अवस्यवे नः गिरा) तेरे संरक्षणकी इच्छा करते हुए अपनी स्तोत्ररूपी वाणीसे (ईळानाय, आगहि) पूजन करनेवाले मेरे पास तू आ ॥ ६ ॥

[६४] हे (कवे अग्ने) मेधावी ! हे अग्ने ! तू (अन्तः हि ईयसे) मनुष्योंके हृदय अन्दर विचरता है तथा उनके (उभया जन्म विद्वान्) दोनों जन्मोंको भी जानता है । तू (मित्र्यः दूतः इव जन्यः) मित्रके समान व्यवहार करनेवाले दूतके समान मनुष्योंका हित करनेवाला है ॥ ७ ॥

१ अन्तः ईयते— यह अग्नि लोगोंके हृदयोंमें विचरता है ।

२ मित्र्यः इव जन्यः— मित्रके समान सबका हितकारी है ।

[६५] हे अग्ने ! (विद्वान् सः आ पिप्रयः) वह ज्ञानी तू हमारी कामनायें पूर्ण कर । (च चिकित्वः आनुषक् यक्षि) और तू चेतनावान् है इसलिये यथाक्रमसे देवताओंको हवि पहुंचा । (च अस्मिन् बर्हिषि आ सत्सि) तथा इस यज्ञमें विराजमान हो ॥ ८ ॥

[७]

[६६] हे (यविष्ठ) अत्यन्त बलशाली और (भारत, वसो) सबके पालक सबको बसानेवाले अग्ने ! तू (श्रेष्ठं, द्युमन्तं पुरुस्पृहं रयिं आ भर) श्रेष्ठ, तेजस्वी और बहुतों द्वारा इच्छित धनोंको हमें भरपूर दे ॥ १ ॥

[६७] हे अग्ने ! (देवस्य च मर्त्यस्य) देवता और मनुष्यका (अरातिः नः मा ईशत) शत्रु हमपर शासन न करे । (उत तस्याः द्विषः पर्षि) अपितु उन शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर ॥ २ ॥

भावार्थ— वह अग्नि द्युलोकसे पानी बरसा कर हमें अन्न प्रदान करता है और उस अन्नके द्वारा हमें पुष्ट भी करता है ॥ ५ ॥

हे बलवान् और पूज्य अग्ने ! मैं तेरे संरक्षणकी इच्छासे तेरी स्तुति करता हूँ अतः तू मेरे पास आ ॥ ६ ॥

यह अग्नि सब प्राणियोंके हृदयोंमें विचरता है और उनके सभी जन्मोंको जानता हुआ उनका हर तरहसे हित करता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू सर्वज्ञ है, अतः हमारी कामनायें पूर्ण कर और सब देवोंको हवि पहुंचा तथा हमारे यज्ञको सुशोभित कर ॥ ८ ॥

हे अत्यन्त बलशाली, सबका भरणपोषण करनेवाले तथा सबको बसानेवाले अग्ने ! हमें तेज और धन भरपूर दे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! देव और मनुष्यके शत्रु हम पर शासन न करें, तू हमें सदैव ऐसे शत्रुओंसे सुरक्षित रख ॥ २ ॥

६८ विश्वा॑ उ॒त त्वया॑ व॒यं धारा॑ उ॒दन्या॑ इव । अति॑ गाहेमहि॒ द्विषः॑ ॥ ३ ॥
६९ शुचिः॑ पावक॒ वन्द्यो ऽग्ने॑ बृ॒हद्वि रो॑चसे । त्वं घृ॒तेभि॒राहु॑तः ॥ ४ ॥
७० त्वं नो॑ असि॒ भार॒ता ऽग्ने॑ व॒शाभि॑रु॒क्षभिः॑ । अ॒ष्टाप॑दीभि॒राहु॑तः ॥ ५ ॥
७१ द्रु॒अ॑न्नः स॒र्पिरा॑सुतिः प्र॒त्नो होता॒ वरे॑ण्यः । सह॑सस्पु॒त्रो अद्भु॒तः ॥ ६ ॥

[८]

(ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः
छन्दः- गायत्री; ६ अनुष्टुप् ।)

७२ वा॒ज॒यन्नि॑व॒ नू रथा॒न् योगाँ॑ अ॒ग्नेरुप॑ स्तुहि । य॒शस्त॑मस्य मी॒ळ्हुषः॑ ॥ १ ॥
७३ यः सु॒नी॒थो द॑दा॒शुषे॑ ऽजु॒र्यो ज॒रय॑न्न॒रि॑म् । चारु॑प्रतीक॒ आहु॑तः ॥ २ ॥

अर्थ— [६८] हे अग्ने ! (त्वया) तुझसे सुरक्षित होकर (उदन्याः धारा इव , जलकी धाराकी तरह (वयं विश्वाः द्विषः) हम सम्पूर्ण द्वेष करनेवाले शत्रुओंको (उत अति गाहेमहि) भी लाँघ जायें ॥ ३ ॥

[६९] हे (पावक अग्ने) पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (शुचिः वन्द्यः त्वं) पवित्र और वन्दनीय तू (घृतेभिः आहुतः बृहत् विरोचसे) घृतकी आहुतियां पाकर अत्यन्त प्रकाशमान होता है ॥ ४ ॥

[७०] हे (भारत अग्ने) भरण पोषण करनेवाले अग्ने ! (त्वं नः वशाभिः उक्षभिः अष्टपदीभिः) तू हमारी गौवों, सोम और गर्भिणी धेनुओं द्वारा (आहुतः असि) आराधित हुआ है ॥ ५ ॥

१ वशभिः— गाय, गायका दूध; २ उक्षभिः— सोमरस ।

[७१] (द्रु-अन्नः सर्पिः आसुतिः प्रत्नः होता, वरेण्यः) समिधा जिसका अन्न है, जिसमें घृत सिंचन होता है, जो पुरातन, होमनिष्पादक और वरणीय है ऐसे गुणोंसे युक्त (सहसः पुत्रः अद्भुतः) बलका पुत्र यह अग्नि अतीव रमणीय है ॥ ६ ॥

[८]

[७२] हे मनुष्य ! तू (यशस्तमस्य मीळ्हुषः अग्ने) अत्यन्त महान् यशवाले और सबको सुख देनेवाले अग्निकी (वाजयन् योगान् रथान् इव) धनधान्यको पानेकी इच्छा करनेवाले जुडे हुए रथोंकी जिस प्रकार स्तुति करते हैं, उसी प्रकार (उप स्तुति) स्तुति कर ॥ १ ॥

[७३] (यः सुनीथः अजुर्यः चारुप्रतीकः) जो अग्नि उत्तम मार्गसे ले जानेवाला उत्तम नेता, नित्य जरारहित और मनोहर गतिवाला है, ऐसा (ददाशुषे अरिं जरयन् आहुतः) दान देनेवालेके लिए शत्रुओंका नाश करनेवाला वह अग्नि चारों ओरसे बुलाया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! जिस प्रकार जलकी धारा बडी बडी चट्टानों और गढ्ढोंको लांघ जाती है, उसी तरह हम भी तुझसे सुरक्षित होकर बडेसे बडे शत्रुको भी पार कर जाएं ॥ ३ ॥

हे सर्वत्र पवित्रता करनेवाले अग्ने ! तू शुद्ध और पूज्य होकर आहुतियोंके द्वारा बढता है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हम गौवोंके दूध और सोमरससे तेरी सेवा करते हैं, तुझे तृप्त करते हैं । वेदोंमें अंशभागके लिए संपूर्णका प्रयोग होता है, जैसे दूधके लिए गाय, धनुषके लिए वृक्ष आदि ॥ ५ ॥

यह अग्नि समिधारूपी अन्नको खानेवाला, घी पीनेवाला और सनातन होनेके कारण बहुत तेजस्वी है ॥ ६ ॥

यह अग्नि सबको सुख देनेके कारण अत्यन्त यशस्वी है, इसलिए जिस प्रकार धन धान्यादि पानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथोंको उत्तम रीतिसे तैय्यार करते हैं, उसी प्रकार इस अग्निकी स्तुति करके उसे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित करना चाहिए ॥ १ ॥

वह अग्नि उत्तम नेता बुढापेसे रहित और सुन्दर है, वह दानियोंका सहायक है, इसलिए उसे मनुष्य अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ २ ॥

७४ य उं श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥

७५ आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥

७६ अत्रिमनु स्वराज्य॑मग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥

७७ अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥ ६ ॥

[९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

७८ नि होता होतृषदने विदान॒स्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [७४] (यः उ श्रिया दमेषु-आ) जो अग्नि उत्तम ज्वालाओंसे युक्त होकर घरोंमें प्रतिष्ठित होता है, जो (दोषा उषसि प्रशस्यते) रात्री एवं दिनमें लोगोंसे प्रशंसित होता है, तथा (यस्य व्रतं न मीयते) जिसके नियमका कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता, वह पूज्य है ॥ ३ ॥

[७५] (स्वः भानुना न) जिस तरह द्युलोक सूर्यसे प्रकाशित होता है, उसी प्रकार (अजरैः यः चित्रः) अपनी ज्वालाओंके कारण जो चित्र विचित्र है, ऐसा वह अग्नि (अर्चिषा अंजानः) अपनी ज्वालासे प्रकट होकर (आ विभाति) चारों ओर प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

[७६] (अत्रि स्वराज्यं अग्निं अनु) शत्रुओंके विनाशक स्वयमेव प्रकाशमान् अग्निको (उक्थानि अनु वावृधुः) स्तुतियां हैं वह अग्नि (विश्वाः श्रियः अधि दधे) सम्पूर्ण शोभा धारण किये हुये है ॥ ५ ॥

[७७] (वयं) हम (अग्नेः इन्द्रस्य सोमस्य, देवानां) अग्नि, इन्द्र, सोम आदि अन्य देवोंकी (ऊतिभिः सचेमहि) रक्षाओंसे सुरक्षित हैं, इसलिये (अरिष्यन्तः) नष्ट न होते हुए हम (पृतन्यतः अभिष्याम) शत्रुओंको पराजित करें ॥ ६ ॥

[९]

[७८] अग्निः, होता, विदानः त्वेषः दीदिवान्) यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला, विद्वान्, प्रज्वलित होनेवाला, दीप्तिमान् (सुदक्षः अदब्धव्रतः प्रमतिः) बिना आलस्यके नियमोंका पालन करनेवाला तथा बुद्धिवाला (वसिष्ठः सहस्रंभरः, शुचिजिह्वः) निवास दाता, अनेक प्रकारसे भरण पोषण करनेवाला और पवित्र जिह्वायुक्त है। ऐसे गुणोंवाला वह अग्नि (होतृसदने नि असदत्) होताके भवनमें उत्तम आसन पर विराजमान् होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह अग्नि आलस्यरहित होकर अपने नियमोंपर चलनेवाला है, तथा अन्य भी अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है अतः वह उत्तम आसन पर बैठता है ॥ १ ॥

वह अपनी तेजस्वी ज्वालाओंके कारण सर्वत्र पूजा जाता है। उसके नियम बडे पक्के होते हैं, इसलिए उसके नियमका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

द्युलोकको जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अनेक रंगवाला अग्नि इस पृथ्वीको अपनी ज्वालासे प्रकाशित करता है ॥ ४ ॥

सारी स्तुतियां उस शत्रु विनाशक, स्वयं प्रकाशक समस्त शोभाको धारण करनेवाले अग्निकी बढाती है ॥ ५ ॥

अग्नि, इन्द्र, सोम आदि देवोंसे सुरक्षित मनुष्य कभी भी नष्ट नहीं होता, इसके विपरीत वह अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि आलस्यरहित होकर अपने नियमोंपर चलनेवाला है, तथा अन्य भी अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है, अतः वह उत्तम आसनपर बैठता है ॥ १ ॥

×

७९ त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पा स्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूना मप्रयुच्छन् दीद्यद् बोधि गोपाः ॥ २ ॥

८० विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद् योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥

८१ अग्ने यजस्व हविषा यजीया ञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥

८२ उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥

अर्थ— [७९] हे (वृषभ अग्ने) बलवान् अग्ने ! (त्वं दूतः त्वं उ नः परस्पाः) तू हमारा दूत हो, तू हमको आपत्तियोंके भयसे बचा (त्वं वस्यः आ प्रणेता) तू धनका देनेवाला है (अप्रयुच्छन् दीद्यत् नः तोकस्य तने) प्रमाद रहित होकरके तथा दीप्तिशाली बन करके हमारे एवं हमारे पुत्रोंके कुलका विस्तार कर तथा हम सबोंके (तनूनां गोपाः) शरीरकी रक्षा कर और तू स्वयं भी (बोधि) अच्छी प्रकारसे प्रज्ज्वलित हो ॥ २ ॥

[८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (परमे जन्मन् ते विधेम) उत्कृष्ट स्थान द्युलोकमें स्थित तेरी स्तुतियोंसे सेवा करें (अवरे सधस्थे स्तोमैः विधेम) द्युलोकसे नीचे अन्तरिक्ष लोकमें स्थित तेरी स्तोत्रोंसे पूजा करें । और (यस्मात् योनेः उत् आरिथ तं यजे) नीचेका स्थान पृथ्वीलोक, जिससे तू प्रादुर्भूत हुआ उस पृथ्वीलोकमें स्थित तेरी पूजा करें । (त्वे सं इद्धे हवींषि प्रजुहुरे) तेरे यज्ञमें प्रज्ज्वलित होने पर लोग हवियोंकी आहुति देते हैं ॥ ३ ॥

[८१] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (यजीयान् हविषा यजस्व) श्रेष्ठ यज्ञकर्ता है अतः हव्य द्वारा यज्ञ कर । (देष्णं राधः श्रुष्टी अभि गृणीहि) हमको दिये जाने योग्य धन शीघ्र ही दे । (त्वं हि रयीणां रयिपतिः असि) तू निश्चयसे श्रेष्ठ धनका स्वामी है तथा (त्वं शुक्रस्य वचसः मनोता) तू हमारी तेजस्वी वाणियों पर मननपूर्वक विचार करता है ॥ ४ ॥

[८२] हे (दस्म अग्ने) दर्शनीय अग्ने ! (दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते) प्रतिदिन उत्पन्न होनेवाले तेरे दिव्य और पार्थिव दोनों तरहके धन नष्ट नहीं होते, अतः तू (जरितारं क्षुमन्तं कृधि) स्तोत्रकर्ता को कीर्तिसे युक्त कर । और उसको (सु आपत्यस्य रायः पतिं) सुन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बना ॥ ५ ॥

१ दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते— प्रतिदिन नये उत्साहसे उत्पन्न होनेवाले इस अग्रणीका दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता ।

भावार्थ— यह अग्नि दूत, संकटोंसे बचानेवाला, धन देनेवाला, प्रमाद रहित, तेजस्वी तथा सबका रक्षक है ॥ २ ॥

उत्कृष्ट स्थान द्युलोक, मध्यम स्थान अन्तरिक्ष लोक और पृथ्वीमें स्थित यह अग्नि सबके लिए उपास्य है ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू स्वयं यज्ञमय है अतः दूसरोंको भी यज्ञमय बना और तू हमारी वाणियोंपर मननपूर्वक विचार कर हमें शीघ्र धन दे ॥ ४ ॥

यह अग्नि प्रतिदिन नया उत्पन्न होता है इसलिए यह कभी बूढा नहीं होता और सदा उत्साहसे भरपूर रहता है ॥५॥

८३ सेनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद् दिदीहि ॥ ६ ॥

[१०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८४ जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेव इळस्पदे मनुषा यत् समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥ १ ॥

८५ श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वो तारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥

८६ उत्तानायामजनयन् त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभि रपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

अर्थ— [८३] हे (अग्ने) अग्ने! (सः) वह तू अपने (एना अनीकेन अस्मे सुविदत्रः) इन तेजस्वी ज्वालाओंसे हमें उत्तम धन धान्यसे युक्त कर। तू (देवान् यष्टा, आयजिष्ठः अदब्धः) देवताओंका पोषक उत्तम यागका कर्ता किसीसे भी तिरस्कृत न होनेवाला (गोपाः उत नः परस्पाः) रक्षक और हमें पापोंसे पार लगानेवाला है। तू (द्युमत् उत रेवत् स्वस्ति दिदीहि) कान्तिमान् और धनयुक्त होकर कल्याणके लिए सर्वत्र प्रकाशित हो ॥ ६ ॥

[१०]

[८४] (यत् मनुषा इळः पदे समिद्धः) जो मनुष्यसे यज्ञ स्थानमें प्रज्वलित होता है वह (अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव) अग्नि सबसे मुख्य और पूज्य और पिताके समान सबका पालक है। (सः श्रियं वसानः अमृतः विचेताः) वह शोभाको धारण करनेवाला, मरणधर्म रहित, विशेष प्रज्ञायुक्त, (श्रवस्यः वाजी मर्मृजेन्यः) अन्नवान्, बलवान् और सबके द्वारा सेवा करने योग्य है ॥ १ ॥

१ अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव— वह अग्नि मुख्य, पूज्य और पिताके समान सबका पालक है।

[८५] (अमृतः विचेताः चित्रभानुः अग्निः) मरणधर्म रहित, विशेष प्रज्ञावाला, विचित्र तेजसे युक्त अग्नि (मे विश्वाभिः गीर्भिः हवं श्रूयाः) मेरी सब प्रार्थनाओंसे निकलनेवाली पुकारको सुने। (श्यावा वा रोहिता उत अरुषा रथं वहतः) श्याम वर्णवाले दो घोडे, अथवा लाल वर्णवाले अथवा शुक्लवर्णवाले घोडे अग्निके रथको खींचते हैं। उससे वह अग्नि (विभृतः चक्रे) नाना स्थानोंमें विचरण करता है ॥ २ ॥

[८६] लोगोंने (उत्तानायां सुषूतं अजनयन्) ऊर्ध्वमुख अरणिमें अच्छे प्रकारसे प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया। वह (अग्निः पुरुपेशासु गर्भः भुवत्) अग्नि विविध रूपवाली औषधियोंमें गर्भरूपसे व्याप्त होता है। और (शिरिणायां अक्तुना अपरिवृतः प्रचेताः महोभिः वसति) रात्रीमें भी अन्धकारसे आच्छादित न होकर प्रकृष्ट बुद्धिवाला वह अग्नि अपने महान् तेजसे युक्त होकर वास करता है ॥ ३ ॥

१ शिरिणायां अक्तुना अ-परिवृतः महोभिः वसति— रात्रीमें भी अन्धकारमें न छिपकर अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता रहता है। इसी प्रकार अग्रणी नेताको भी आपत्तियोंमें घिरकर भी अपने तेजसे प्रकाशित होना चाहिए।

भावार्थ— हे अग्ने! तू अपनी इन तेजस्वी ज्वालाओंसे हमारे परिवारको उत्तम तेजस्वी बना। तू देवोंको हवि पहुंचाकर उनका पोषण करता है। और कभी भी किसीसे दबाता नहीं। इसीलिए तू अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

सबका पालक वह अग्नि सब पूज्य देवताओंके मध्यमें मुख्य है। वह शोभाको धारण करनेवाला, अमर और बहुत बुद्धिमान है इसलिए वह सबके द्वारा पूज्य भी है ॥ १ ॥

सर्व गुणोंसे युक्त यह अग्नि हमारा प्रार्थनाओंको सुने। इस अग्निके रथमें अनेक रंगके घोडे जुडे हुए हैं, जो इसे अनेक जगहोंपर ले जाते हैं। अग्निकी अनेक रंगकी ज्वालाएं ही उसके घोडे हैं। इन्हीं ज्वालाओंके कारण वह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

८७ जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानं ॥ ४ ॥
८८ आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्य–रक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्नि–र्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥
८९ ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद् वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥ ६ ॥

[११]

[ऋषिः– गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता– इन्द्रः ।
छन्दः– विराट् स्थाना; २१ त्रिष्टुप् ।]

९० श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥

अर्थ— [८७] (विश्वा भुवनानि प्रतिक्षियन्तं) सम्पूर्ण भुवनोंमें निवास करनेवाले (पृथुं, तिरश्चा वयसा बृहन्तं) महान्, टेढी ज्वालाओंवाले, तेजसे बढे हुए (अन्नैः व्यचिष्ठं रभसं दृशानं अग्निं) अन्न द्वारा बलवान् और सुन्दर दर्शनीय अग्निको मैं (हविषा घृतेन जिघर्मि) हव्य और घृतसे प्रदीप्त करता हूँ ॥ ४ ॥

[८८] (विश्वतः प्रत्यञ्चं आजिघर्मि) सर्वव्यापी अग्निको मैं घृत द्वारा सब ओरसे प्रदीप्त करता हूँ। वह (अरक्षसा मनसा तत् जुषेत) शान्त चित्तसे उस घृतकी आहुतिका सेवन करे । (मर्यश्रीः, स्पृहयद्वर्णः अग्निः) मनुष्योंके द्वारा पूजनीय, प्रशंसनीय वर्णवाला अग्नि जब अपने (तन्वा जर्भुराणः) तेजसे पूर्ण प्रदीप्त होता है, तब उसे कोई भी (नाभिमृशे) स्पर्श नहीं कर सकता है ॥ ५ ॥

[८९] हे अग्ने ! (वरेण सहसानः भागं ज्ञेयाः) अपने तेज बलसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला तू हमारी स्तुतियोंको समझ । (त्वादूतासः मनुवत् वदेम) तेरे दूत होनेपर हम मनुकी तरह तेरी स्तुति करते हैं । (अनूनं मधुपृचं अग्निं) सब ओरसे पूर्ण और मधुरतासे भरपूर इस अग्निको, (धनसाः) धनका संभक्त करनेवाला मैं (जुह्वा वचस्या जोहवीमि) घृतकी चमससे स्तुतिपूर्वक आहुति प्रदान करता हूँ ॥ ६ ॥

[११]

[९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू हमारी (हवं) पुकार (श्रुधि सुन हम पर (मा रिषण्यः) क्रोध मत कर । हम (वसूनां) धनोंके (दावने) दान देते समय (ते) (स्याम) हो कर रहें । (इमाः हि) ये (वसु–यवः) धनकी इच्छासे बनाये गये (ऊर्जः) रस (क्षरन्तः) झरते हुए (सिन्धवः) जलके (न) समान (त्वां) तुझे (वर्धयन्ति) बढाते हैं ॥ १ ॥

१ हवं श्रुधि, मा रिषण्यः— हे इन्द्र ! तू हमारी पुकार सुन, हम पर तू क्रोध मत कर ।
२ वसूनां दावने ते स्याम— दान देते समय हम तेरे होकर रहें ।

भावार्थ— यह अग्नि वनस्पतियोंमें गुप्त रूपसे जबतक रहता है, तबतक इसका तेज अन्धकारको नहीं भगा पाता, पर जब वही अग्नि अरणियोंसे प्रकट हो जाता है तब गाढ अन्धकारमें भी वह प्रकाशित होता रहता है और अन्धकार उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल पाता ॥ ३ ॥

सर्वत्र निवास करनेवाला महान् तेजसे प्रवृद्ध, बलवान् और दर्शनीय यह अग्नि घी द्वारा प्रदीप्त होता है ॥ ४ ॥

यह कोमल अग्नि घृतसे प्रदीप्त होकर इतना भयंकर हो जाता है कि इसे कोई छू नहीं सकता ॥ ५ ॥

मैं इस अग्निकी उसी तरह स्तुति करता हूं, जिस तरह कोई सेवक अपने स्वामीकी और इसे आहुति द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥ ६ ॥

९१ सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥

९२ उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन् स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥

९३ शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥

अर्थ— [९१] हे (शूर) वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (अहिना) अहि असुरसे (परि-स्थिताः) घिरे (याः) जिन (पूर्वीः) श्रेष्ठ जलोंको (अपिन्वः) पुष्टिकारक बनाया और उन (महीः) प्रशंसनीय जलोंको तूने अब (सृजः) मुक्त किया । (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (वावृधानः) बढते हुए तूने (मन्यमानं) घमण्डी (अमर्त्यं चित्) न मरनेवाले (दासं) दासको भी (अव अभिनत्) तोड दिया नष्ट कर दिया ॥ २ ॥

[९२] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! तू (यासु) जिन स्तुतियोंमें (मन्दसानः) आनन्दित होता है, (येषु) जिन (उक्थेषु इत् नु) उक्थोंमें (रुद्रियेषु च) और रुद्र सम्बन्धी (स्तोमेषु) स्तोत्रोंमें (चाकन्) प्रेम रखता है, (तुभ्य इत्) तुझ (वायये) बलधारी इन्द्रके लिये (एताः) ये (शुभ्राः न) उत्तम स्तुतियां (प्र सिस्रते) बोली जाती हैं ॥ ३ ॥

१ रुद्रः— रुलानेवाला, बारह प्राण "रोदयतीति रुद्रः ।"

२ वायुः— गति युक्त करनेवाला " वा गति गन्धनयोः ।"

[९३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (नु) तत्काल (ते) तेरे (शुभ्रं) कलंक-रहित (शुष्मं) बलको (वर्धयन्तः) बढानेवाले और तेरे (बाह्वोः) हाथोंमें (शुभ्रं) चमकीला (वज्रं) वज्र (दधानाः) धारण करानेवाले बनें । (शुभ्रः) पाप-रहित (त्वं) तू (ववृधानः) बढता हुआ, (सूर्येण) प्रेरक वज्रसे (अस्मे) हमारी (दासीः) असुरोंवाली (विशः) प्रजाओंको (सह्याः) नष्ट कर दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमारी पुकार सुन और उसे सुनकर तू हमपर क्रोध मत कर । दान देते समय तू हमारा विशेष ध्यान रख, क्योंकि हम तेरे ही हैं । दान देनेके समय मनुष्य इन्द्रके समान उदार बने और उदारतापूर्वक दान दें । मनुष्योंके द्वारा प्रेमसे दिए रस इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं, उसी प्रकार अन्योंके द्वारा कहे गए प्रेमके वचन दानियोंकी शक्ति बढावें ॥ १ ॥

अहि यह मेघ है, जो जलको सदा रोके रखता है, बरसने नहीं देता । इन्द्र विद्युत् है, जो जलकी शक्ति इतनी प्रबल कर देता है कि वह अहिके बन्ध तोडकर बाहर आकर बरसने लगता है । वर्षाका यह जल सूर्य किरणोंसे सदा तृप्त होनेके कारण सूर्यकी सभी शक्तियोंसे युक्त होता है इसलिए वह पुष्टिकारक होता है ॥ २ ॥

इन्द्रका एक रूप रुद्र भी है । रुद्र रुलानेवालेको कहते हैं । इस शरीरमेंसे यह आत्मारूपी इन्द्र निकलता है, तब वह सबको रुलाता है, इसीलिए यह आत्मा या इन्द्र रुद्र कहलाता है । अतः रुद्रके रूपमें की जानेवाली स्तुति भी इसी इन्द्रकी होती है । यही इन्द्र वायु है, क्योंकि यही शरीरको गतिमान् करता है ॥ ३ ॥

इन्द्रका बल और वज्र पापसे रहित है उसने कभी पाप या अन्याय्य नहीं होता । इन्द्र स्वयं पाप रहित है । वह शक्तिमान् होकर भी पाप नहीं करता । वह केवल असुरोंकी सेनाको ही मारता है ॥ ४ ॥

९४ गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्व—पीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांस—महन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥
९५ स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महा—न्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
९६ हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टा—ऽरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥ ७ ॥
९७ नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन् नि ॥ ८ ॥

अर्थ—[९४] हे (शूर) शूर इन्द्र ! तूने (गुहा) गुफामें (हितं) छिपे हुए (गुह्यं) गुप्त (अप्सु) जलोंमें (गूढं) डूबे जलको (अपि-वृतं) रोक रखनेवाले (मायिनं) माया-युक्त (क्षियन्तं) सोये (उत) और (अपः) जल तथा (द्यां) द्यौको (तस्तभ्वांसं) बांध रखनेवाले (अहिं) अहि असुरको अपने (वीर्येण) पराक्रमसे (अहन्) मारा ॥ ५ ॥

[९५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (ते) तेरे (पूर्व्या) पूर्व (महानि) उत्तम कर्मोंका (स्तव नु) गुणगान करें (उत) और (नूतना) नवीन (कृतानि) कार्योंकी भी (स्तवाम) प्रशंसा करें । (बाह्वोः) हाथोंमें रखे तेरे (उशन्तं) प्यारे (वज्रं) वज्रकी (स्तव) प्रशंसा करें । (सूर्यस्य) सूर्यकी (केतू) किरणोंके समान सुन्दर, तेरे (हरी) घोडोंकी हम (स्तव) प्रशंसा करें ॥ ६ ॥

[९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे (वाजयन्तौ) वेगवान् (हरी) घोडोंने (नु) शीघ्र (घृत-श्चुतं) पानी बरसानेवाले मेघके (स्वारं) शब्दको (अस्वार्ष्टं) गर्जाया । (भूमिः) पृथिवी (समना) सब ओरसे (वि अप्रथिष्ट) फैल गई । (पर्वतः चित्) पर्वत भी (सरिष्यन्) सरकता हुआ (अरंस्त) रुक गया ॥ ७ ॥

[९७] (पर्वतः) मेघ आकाशमें (अप्रयुच्छन्) प्रमाद-रहित होता हुआ (नि सादि) स्थिर था । वह (मातृभिः) जलोंके साथ (वावशानः) गर्जता हुआ, (अक्रमीत्) घूम रहा था । स्तोता लोगोंने उस (वाणीं) वाणीको (दूरे पारे) बहुत दूर, अन्तरिक्षके भी पार (वर्धयन्तः) बढाते हुए (इन्द्र-इषितां) इन्द्रसे प्रेरित उस (धमनिं) वाणी-शब्दको और भी (नि पप्रथन्) फैलाया ॥ ८ ॥

भावार्थ— अहि असुर जलको रोक रखता और द्यौ पर चढाई करके उसे घेर लेता है । देवोंके जीवनके लिये ये दोनों आवश्यक हैं अतः इन्द्र इस असुरको मारकर दोनोंको मुक्त करता है ॥ ५ ॥

इन्द्रने पहले जो भी काम किए, अथवा इस समय भी वह जो कुछ काम करता है, वह उसके सभी काम प्रशंसनीय हैं । उसके हाथोंमें स्थित वज्र भी बहुत प्रशंसनीय है । उसके घोडे भी बहुत चमकीले एवं बलवान् हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रके बलवान् घोडे अर्थात् विद्युत्की किरणें जब संचार करती हैं, तब पानीको बरसानेवाले मेघ गर्जने लगते हैं और पानी बरसने लगता है, उसमें पृथ्वी गर्भवती होकर धान्यादिको उत्पन्न करके विस्तृत हो जाती है, पुत्रके रूपमें माता विस्तृत होती है अथवा पुत्रको उत्पन्न करके मानों माता अपना ही विस्तार करती है । इसी प्रकार वृष्टि जलको पाकर धान्यादि उत्पन्न करके अपना विस्तार करती है । और तब इधर उधर भागनेवाले पर्वत, बादल भी पानी बरसाकर स्थिर हो जाते हैं । पानीसे भरे बादल इधर उधर भागते हैं, पर पानीसे रिक्त होकर वे ही बादल स्थिर हो जाते हैं ॥ ७ ॥

सबका पालन पोषण करनेके कारण वृष्टिको माता कहा है । उन जलोंसे भरा हुआ मेघ जब घूमता रहता है, बरसता नहीं, तब स्तोता गण अपने मंत्रोंसे उस बादलमें गर्जना उत्पन्न करते हैं और विद्युत्को प्रेरित करके पानी बरसवाते हैं । इस मंत्रमें वर्षणेष्टिका प्रकार बताया गया है । यज्ञसे पानी बरसाया जा सकता है ॥ ८ ॥

९८ इन्द्रो॑ म॒हां सिन्धु॑मा॒शया॑नं मा॑या॒विनं॑ वृ॒त्रम॑स्फुर॒न्निः ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी भिया॒ने कनि॑क्रदतो॒ वृष्णो॑ अस्य॒ वज्रा॑त् ॥ ९ ॥

९९ अरो॑रवी॒द् वृष्णो॑ अस्य॒ वज्रो ऽमा॑नुषं॒ यन्मानु॑षो नि॒जूर्वा॑त् ।
नि मा॒यिनो॑ दान॒वस्य॑ मा॒या अपा॑दयत् पपि॒वान्त्सु॒तस्य॑ ॥ १० ॥

१०० पिबा॑पि॒बेदि॑न्द्र शूर॒ सोमं॒ मन्द॑न्तु त्वा म॒न्दिनः॑ सु॒तासः॑ ।
पृ॒णन्त॑स्ते कु॒क्षी व॑र्धयन्त्वि॒त्था सु॒तः पौ॒र इन्द्र॑माव ॥ ११ ॥

१०१ त्वे इ॑न्द्रा॒प्य॑भूम॒ विप्रा॒ धियं॑ वनेम ऋत॒या सप॑न्तः ।
अ॒व॒स्यवो॑ धीमहि॒ प्रश॑स्तिं स॒द्यस्ते॑ रा॒यो दा॒वने॑ स्याम ॥ १२ ॥

अर्थ— [९८] (इन्द्रः) इन्द्रने (सिन्धुं) जलमें (आशयानं) सोये हुए (महां) बहुत बडे (मायाविनं) कपट नीति-कुशल (वृत्रं) वृत्रको (निः अस्फुरत्) मार दिया। उस समय (अस्य) इस (वृष्णः) बलधारी इन्द्रके (कनिक्रदत्) सनसनाते हुए (वज्रात्) वज्रसे (भियाने) डरे हुए (रोदसी) दोनों लोक (अरेजेतां) काँपने लगे ॥ ९ ॥

[९९] (यत्) जब (मानुषः) प्रजाके हितैषी इन्द्रने (आमनुषं) प्रजाका अहित करनेवाले वृत्रको (नि-जूर्वात्) मारा, तब (अस्य) इस (वृष्णः) बलशाली इन्द्रका (वज्रः) वज्र (अरोरवीत्) भयानक शब्द करने लगा। (सुतस्य) सोमके (पपिवान्) पीनेवाले इन्द्रने इस (मायिनः) कपट करनेवाले (दानवस्य) दानवकी (मायाः) कपटोंको (निः अपादयत्) बहुत दूर कर दिया ॥ १० ॥

१ मानुषः अमानुषं नि जूर्वात्— प्रजाका हित करनेवाले वीर प्रजाका अहित करनेवालेको मारे।

[१००] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र! तू यह (सोमं) सोम (पिब-पिब) अवश्य पी, (इत्) अवश्य पी। ये (सुतासः) निचोडे गए (मन्दिनः) आनन्दकारक सोमरस (त्वा) तुझे (मन्दन्तु) प्रसन्न करें। वे (ते) तेरे (कुक्षी) पेटको (पृणन्तः) भरते हुए तुझ (इन्द्र) इन्द्रको (वर्धयन्तु) बढायें। (सुतः) बनाया हुआ सोमरस (पौरः) प्रजाओंकी (इत्था) इस प्रकार (आव) रक्षा करे ॥ ११ ॥

[१०१] हे (इन्द्र) इन्द्र! हम (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (त्वे अपि) तुझमें ही (अभूम) रहा करें। (ऋतया) यज्ञकी कामनासे तेरी (सपन्तः) सेवा करते हुए तेरी (धियं) बुद्धिको (वनेम) प्राप्त करें। (अवस्यवः) रक्षाकी कामनावाले हम लोग तेरे (प्रशस्तिं) प्रशंसनीय गुणोंको (धीमहि) धारण करें, इस प्रकार हम (सद्यः) शीघ्र ही (ते) तेरे (रायः) धनके (दावने) दानके अधिकारी (स्याम) हों ॥ १२ ॥

१ विप्राः सपन्तः धियं वनेम— हम बुद्धिमान् जन इन्द्रकी सेवा करते हुए उसकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करें।

२ अवस्यवः प्रशस्तिं धीमहि— रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्रके प्रशंसनीय गुणोंको धारण करें।

भावार्थ— वृत्र जलका मार्ग रोक कर उसीमें लेटा हुआ था। जिस समय इन्द्रने उस पर वज्र फेंका उस समय उससे द्यौ और पृथिवीको कँपानेवाला शब्द हुआ ॥ ९ ॥

यह इन्द्र मननशील मनुष्यों अर्थात् बुद्धिमानोंका हित करनेवाला है, अतः जो उनका अहित करता है, उनको यह इन्द्र नष्ट कर देता है। उस समय वह इतना क्रोधित हो जाता है कि उसके द्वारा फेंका हुआ वज्र बहुत भयंकर शब्द करता हुआ शत्रु पर गिरता है और इस प्रकार छल कपट करनेवाले दानवकी माया भी नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥

स्तोता लोग इन्द्रको पेट-भर सोम-रस पिलाते हैं। यह सोमरस इन्द्रको शक्तिशाली बनाते हैं और तब इन्द्र प्रजाकी रक्षा करता है। इस प्रकार मानों सोमरस ही प्रजाओंकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥

जो बुद्धिमान जन इन्द्रके आश्रयसे रहते हैं और उसकी सेवा करते हुए उसकी उत्तम बुद्धि एवं प्रशंसनीय गुणोंको धारण करते हैं, वे ही उसके दानके अधिकारी होते हैं अर्थात् उत्तम आचरण करनेवालोंको ही इन्द्र धन देता है ॥ १२ ॥

१०२ स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवा ऽस्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥
१०३ रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥
१०४ व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत् सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रा ऽवर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥
१०५ बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रो क्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत् त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥

अर्थ— [१०२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अवस्यवः) रक्षा चाहनेवाले (ये) जो हम (ते) तेरी (ऊर्जं) तेज (वर्धयन्तः) बढाते हैं, इसलिये (ते) वे हम (ते ऊती) तेरी रक्षामें (स्याम) सदा रहें। हे (देव) देव! हम (यं) जिस (शुष्मिन्तमं) बडे बलकारी धनकी (चाकनाम) चाह रहे है, तू (अस्मे) हमें वह (वीरवन्तं) वीरोंसे युक्त रयिं) धन (रासि) दे ॥ १३ ॥

[१०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! जो (सजोषसः) समान प्रीतिवाले (ये च और जो (मन्दसानाः) प्रसन्न होकर युद्धकी ओर (वायवः) जानेवाले मरुत् (अग्रनीतिं अपनेको आगे ले जानेवाले नेताकी प्र पान्ति) रक्षा करते हैं, (नः) हमें उन (मारुतं) मरुतोंका (शर्धः) बल (रासि) दे। हमें रहनेका (क्षयं) घर (रासि) दे और (अस्मे) हमें (मित्रं मित्र (रासि) दे ॥ १४ ॥

१ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति— एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले उत्तम रीतिसे शत्रुओंपर आक्रमण करनेवाले सैनिक आगे ले जानेवाले नेताकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करें।

[१०४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (येषु) जिन यज्ञोंमें तू (मन्दसानः) आनन्दित हुआ, उनमें (द्रह्यत्) दृढ होकर (तृपत्) तृप्त करनेवाले (सोमं) सोमको (पाहि) पी। वे स्तोता भी (नु) शीघ्र उसे (व्यन्तु इत्) सेवन करें। हे तरुत्र) तारक ! तू हमारे (बृहद्भिः) बडे (अर्कैः) स्तोत्रोंसे (पृत्सु) युद्धोंमें (अस्मान्) हमें और (द्यां) द्यौको (सु आ अवर्धयः) भली प्रकार बढाता है ॥ १५ ॥

[१०५] हे (तरुत्र) शत्रु-नाशक (इन्द्र) इन्द्र ! (ये) जो (बृहन्तः इत्) बडे उद्देश्यवाले स्तोता (नु) तत्काल, (उक्थेभिः वा) स्तोत्रसे. (ते) तेरी (सुम्नं) सदिच्छाको (आ-विवासान्) सेवा द्वारा मांगते हैं, (बर्हिः) दर्भ आसन (स्तृणानासः) बिछानेवाले (त्वा ऊताः इत्) तुझसे रक्षा पाये हुए वे (पस्त्यवत्) गृह सहित (वाजं) अन्न (अग्मन्) प्राप्त किया करते है ॥ १६ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रके तेजको बढाते हैं, वे सदा इन्द्रकी रक्षामें रहते हैं और वे ही वीर पुत्र से युक्त धनको प्राप्त करते है ॥ १३ ॥

सैनिक ऐसे हों कि जो एक साथ रहें और सदा आनन्दयुक्त रहें और उत्तम गति अथवा शत्रुओंपर उत्तम रीतिसे आक्रमण करनेवाले हों, ये सैनिक अपने नेताकी हर तरहसे रक्षा करें। ऐसे शूर सैनिक अपने देशकी प्रजाओंको संशक्त बनायें और उनके मित्र बनकर उनकी रक्षा करें ॥ १४ ॥

इन्द्र सोम और स्तोत्रसे प्रसन्न होकर स्तोता और उनके कार्योंको बढाता है ॥ १५ ॥

जो केवल, इन्द्रकी स्तुति-मात्र करते हैं, वे भी अन्न और घर प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

१०६ उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥ १७ ॥

१०७ धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ १८ ॥

१०८ सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥ १९ ॥

१०९ अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत् सूर्यो न चक्रं भिनद् वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥

अर्थ— [१०६] हे (शूर) वीर (इन्द्र) इन्द्र ! (उग्रेषु इत नु) जो बहुत बल देनेवाले हैं ऐसे (त्रि-कद्रुकेषु) त्रिपात्रमें तू (मन्दसानः) हर्ष मनाता हुआ (सोमं) सोमको (पाहि) पी । तू वहाँ (प्रीणानः) प्रसन्न होकर (श्मश्रुषु) दाढीके बालोंपर (प्र-दोधुवत्) कम्पन देते हुए, उन्हें हिलाते हुए अपने (हरिभ्यां) घोडों द्वारा हमारे (सुतस्य) सोमके पीति) पान स्थान पर (याहि) जा ॥ १७ ॥

[१०७] हे (शूर) शूर (इन्द्र) इन्द्र ! तू वह (शवः) बल (धिष्व) धारण कर (येन) जिसके द्वारा (और्णवाभं) मकडीके जालके समान फैले हुए (दानु) असुर (वृत्रं) वृत्रको तूने (अव अभिनत्) टुकडे टुकडे किये । (आर्याय) आर्यके लिये (ज्योतिः) प्रकाश (अप अवृणोः) खोला और जिस बलसे (दस्युः) दुष्ट असुर (सव्यतः) उलटी दिशामें (नि सादि) बिठा दिया गया, मारा गया ॥ १८ ॥

१ आर्याय ज्योतिः अपावृणोः— यह इन्द्र श्रेष्ठ पुरुषके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाता है ।

[१०८] हे इन्द्र ! तेरी (ऊतिभिः) रक्षाओंसे (आर्येण) आर्यकी सहायतासे तथा (विश्वाः) सारी (स्पृधः) शत्रुसेनाओं और (दस्यून्) दुष्टोंको (तरन्तः) पार करते हुए (ये) जो हम (ते) तेरे भक्त हैं वे धन (सनेम) प्राप्त करें । तूने (त्रिताय) त्रितका साख्यस्य मित्रताके लिये (तत्) उस (त्वाष्ट्रं) त्वष्टाके पुत्र (विश्व-रूपं) विश्वरूपको (अस्मभ्यं) हमारे (अरन्धयः) वशमें किया । मार दिया ॥ १९ ॥

[१०९] इन्द्रने स्वयं (वावृधानः) बढते हुए अस्य) इस (सुवानस्य) यज्ञकर्ता और (मन्दिनः) आनन्दयुक्त (त्रितस्य) त्रितके शत्रु (अर्बुदं) अर्बुदको (नि अस्तः मारा । (सूर्यः न) सूर्यके समान अपने रथके (चक्रं) चक्रको (अवर्तयत्) फिराया और उस (अङ्गिरस्वान्) अंगिराके साथी (इन्द्रः) इन्द्रने (वलं) वल असुरको (भिनत्) मारा ॥ २० ॥

भावार्थ— इन्द्र तीन पात्रोंमें रखा सोम पीता और दाढीके बालोंमें लगा हुआ सोम झाडते हुए यागकी ओर जाता है ॥ १७ ॥

इन्द्र अपने बलसे शत्रुको नीचा दिखाता और आर्यको प्रकाश देता है ॥ १८ ॥

भक्त गण इन्द्रके द्वारा सुरक्षित होकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंका सहायता पाकर शत्रुओंको नष्ट करके उनका धन प्राप्त करते हैं ॥ १९ ॥

इन्द्र रथ घुमाकर त्रित ऋषिके शत्रु अर्बुद और वलको मारता है ॥ २० ॥

×

११० नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ २१ ॥

[१२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१११ यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

११२ यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

अर्थ— [११०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा) वह (मघोनी) ऐश्वर्यसे भरी (दक्षिणा) दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिये (वरं) श्रेष्ठ धन (प्रति दुहीयत्) प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोता लोगोंके लिये (शिक्ष) दे । हमें (मा अति धक्) छोडकर मत दे अर्थात् देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु-वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोता लोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिये (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ २१ ॥

[१२]

[१११] हे (जनासः) मनुष्यो ! (यः) जिस (मनस्वान्) मनस्वी (देवः) देवने (प्रथमः) पहले पहल (जातः एव) उत्पन्न होते ही अपने (क्रतुना) कर्मसे सारे (देवान्) देवोंको (परि अभूषत्) भूषित कर दिया, (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बलसे (रोदसी) दोनों लोक (अभ्यसेतां) काँप उठे; अपने (नृम्णस्य) बलके (मह्ना) प्रभावसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध यही (सः) वह (इन्द्र) इन्द्र है ॥ १ ॥

१ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्— मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने कर्मसे देवों अर्थात् विद्वानोंको प्रसन्न करता है ।

२ शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्— इस इन्द्रके बलके डरसे पृथ्वी और द्यौ दोनों लोक कांप उठते हैं ।

३ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः— अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है ।

[११२] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (व्यथमानां) कांपनेवाली (पृथिवीं) पृथिवीको (अदृंहत्) दृढ किया, (यः) जिसने (प्र-कुपितान्) क्रोधित (पर्वतान्) पर्वतोंको (अरम्णात्) स्थिर किया, (यः) जिसने (वरीयः) विस्तृत (अन्तरिक्षं) आकाशको (वि-ममे) माप दिया और (यः) जिसने (द्यां) द्योको (अस्तभ्नात्) थामा (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे-बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ २१ ॥

पराक्रममें इन्द्रकी समता करनेवाला कोई देव नहीं । वह अपनी शक्तिसे दोनों लोकोंको वशमें रखता है । वह अपने बलके कारण ही इन्द्र है । दूसरोंके बलपर वह इन्द्र नहीं बनता ॥ १ ॥

इन्द्र पृथिवीको बसने योग्य करता, पर्वतोंको रमणीय करता, वह इतना विस्तृत है कि वह विस्तृत आकाशको भी नाप देता है और द्यौको व्यवस्थित रखता है । वही इन्द्र है ॥ २ ॥

११३ यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
११४ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाद- दर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
११५ यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोर- मुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥
११६ यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

अर्थ— [११३] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (अहिं) मेघको (हत्वा) मार कर (सप्त) सात (सिन्धून्) नदियोंको (अरिणात्) बहाया, (यः) जिसने (वलस्य) वल असुरकी (अप-धा) छिपाई हुई (गाः) गायोंको (उत्-आजत्) वहाँसे प्रेरित किया (यः) जिसने (अश्मनोः) दो पत्थरोंके (अन्तः) बीच (अग्निं) अग्निको (जजान) उत्पन्न किया और जो (समत्सु) युद्धोंमें शत्रुका (संवृक्) नाशक होता है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥ ३ ॥

[११४] हे (जनासः) लोगो ! (येन) जिसने (इमा) ये (विश्वा) सारे लोक (च्यवना) हिलनेवाले (कृतानि) बनाये हैं, (यः) जिसने (दासं) दास (वर्णं) वर्णको (अधरं) नीचे (गुहा) गुप्त स्थानमें (अकः) कर दिया है, (यः) जिसने अपने (लक्षं) अभीष्टको (जिगीवान्) जीत लिया और (श्वघ्नी-इव) कुत्तों द्वारा शिकार करनेवाले व्याधके समान जिसने (अर्यः) शत्रुके (पुष्टानि) पुष्टिकारक पदार्थोंको (आदत्) छीन लिया है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ४ ॥

१ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः— जो अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है, वही ऐश्वर्यवान् हो सकता है ।

[११५] लोग (यं स्म) जिस (घोरं) भयदायक इन्द्रको (पृच्छन्ति) पूछते हैं कि (सः) वह (कुह इति) कहाँ है ? (उत) और (एनं ईं) इस उस इन्द्रको (आहुः) कहते हैं कि (एषः) यह (न अस्ति इति) नहीं है । (सः) वह इन्द्र (विजः-इव) वीरके समान उन इन्द्रके न माननेवाले (अर्यः) शत्रुओंकी (पुष्टीः) पुष्टि देनेवाली सम्पत्तियोंको (आ मिनाति) नष्ट करता है । हे (जनासः) लोगो ! (अस्मै) इसके लिए (श्रत्) श्रद्धाका भाव (धत्त) धारण करो, (सः) वह सबसे बडा यह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥ ५ ॥

१ सः इन्द्रः अर्यः पुष्टीः आ मिनाति— वह इन्द्र शत्रुओंकी धन सम्पत्तिको नष्ट कर देता है ।

[११६] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जो (रध्रस्य) धन- सम्पन्न और (यः) जो (कृशस्य) दरिद्रका, तथा (यः) जो (ब्रह्मणः) ज्ञानी (नाधमानस्य) भक्त (कीरेः) कविका (चोदिता) प्रेरक है । (यः) जो (सुशिप्रः) सुन्दर शिरस्त्राण धारण करनेवाला (युक्त ग्राव्णः) पत्थर तैयार रख कर (सुत सोमस्य) सोम बनानेवाले यजमानका (अविता) रक्षक है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्र अहि असुरको मारके जल बहाता और वलको मार कर उसकी अधीनतासे गायोंको छुडाता है, वही अग्निका उत्पादक है ॥ ३ ॥

इन्द्र इन सारे लोकोंको बनानेवाला और असुरको नीची दशामें पहुँचानेवाला है । वह एक वार जो अपना उद्देश्य निश्चित कर लेता है, उसे वह प्राप्त कर ही लेता है ॥ ४ ॥

असुर लोग इन्द्रको नहीं मानते, न उसकी पूजा करते हैं, इसलिये वह उन अविश्वासियोंका धन और बल नष्ट कर देता है । उस लिए मनुष्योंको चाहिए कि वे इन्द्र पर श्रद्धा रखें ॥ ५ ॥

इन्द्र अपने स्तोताका प्रेरक और सोमयाग बनानेवालेका रक्षक है । वह अपने साथियोंका सदा ध्यान रखता है ॥ ६ ॥

११७ यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।
यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां नेता॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ७ ॥
११८ यं क्रन्द॑सी सं॒यती॑ वि॒ह्वये॑ते॒ परेऽव॑र उ॒भया॑ अ॒मित्राः॑ ।
स॒मा॒नं चि॒द् रथ॑मातस्थि॒वांसा॒ नाना॑ हवेते॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ८ ॥
११९ यस्मा॒न्न ऋ॒ते वि॒जय॑न्ते॒ जना॑सो॒ यं युध्य॑माना॒ अव॑से॒ हव॑न्ते ।
यो विश्व॑स्य प्रति॒मानं॑ ब॒भूव॒ यो अ॑च्युत॒च्युत् स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ ९ ॥
१२० यः शश्व॑तो॒ मह्येनो॒ दधा॑ना॒नम॑न्यमाना॒ञ्छर्वा॑ ज॒घान॑ ।
यः शर्ध॑ते॒ नानु॒ददा॑ति शृ॒ध्यां यो दस्यो॑र्ह॒न्ता स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [११७] हे (जनासः) लोगो ! (यस्य) जिसकी आज्ञामें (अश्वासः) घोडे, (यस्य) जिसकी आज्ञामें (गावः) गायें, (यस्य) जिसकी आज्ञामें (ग्रामाः) ग्राम और (यस्य) जिसकी आज्ञामें (विश्वे) सारे (रथासः) रथ हैं। (यः) जिसने (सूर्यं) सूर्य और (यः) जिसने (उपसं) उषाको (जजान) उत्पन्न किया तथा (यः) जो (अपां) जलोंका (नेता) चलानेवाला अर्थात् संचालक है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र ही है ॥ ७ ॥

१ इन्द्रः सूर्यं उषसं अपां नेता— यह इन्द्र सूर्य, उषा और जलोंका संचालक है ।

[११८] हे (जनासः) लोगो ! (संयती) साथ-साथ चलनेवाली (क्रन्दसी) द्यौ और पृथिवी (यं) जिसको (विह्वयेते) सहायार्थ बुलाती हैं। (परे) उत्तम और (अवरे) निकृष्ट (उभयाः) दोनों प्रकारके (अमित्राः) शत्रु भी जिसे युद्धके लिये बुलाते हैं। (समानं चित्) एकसे (रथं) रथ पर (आतस्थिवांसा) बैठे दो वीर जिसे (नाना) पृथक् पृथक् रूपसे सहाय्यार्थ (हवेते) बुलाते हैं (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ८ ॥

[११९] हे (जनासः) लोगो ! (जनासः) वीर लोग (यस्मात्) जिसकी सहायताके (ऋते) बिना (न विजयन्ते) विजय नहीं पाते, (युध्यमानाः) लडनेवाले वीर अपनी (अवसे) रक्षाके लिये (यं) जिसे (हवन्ते) पुकारते हैं, (यः) जो (विश्वस्य) सबका (प्रतिमानं) यथावत् जाननेवाला (बभूव) हुआ था और (यः) जो (अच्युतच्युत्) अटल-शक्तिवाले शत्रुको भी नष्ट कर देता है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ९ ॥

१ जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते— वीर लोग इस इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकते।

२ यः अच्युतच्युत् स इन्द्रः— जो अपने स्थानसे न हटनेवाले वीरको हटा देता है, वही इन्द्र है ।

[१२०] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने, (महि) बडे (एनः) पाप (दधानान्) धारक (शश्वतः) अनेक (अमन्यमानान्) विरोधि शत्रुओंको अपने (शर्वा) हिंसक वज्रसे (जघान) मारा, (यः) जो (शर्धते) अहंकारी मनुष्यको (शृध्यां) गर्वका अवसर (न) नहीं (अनुददाति) देता और (यः) जो (दस्योः) दस्युका (हन्ता) नाशक है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ १० ॥

१ यः शर्धते न अनुददाति— यह इन्द्र अहंकारीको कुछ भी नहीं देता ।

भावार्थ— इन्द्रके अधीन घोडे, गायें, अनेक ग्राम और असंख्य रथ हैं। वही सूर्य और उषाको प्रकाशित करता है। वही जलको बहाता है ॥ ७ ॥

द्यौ और पृथिवी ये दोनों लोक साथ-साथ रहते हैं, परन्तु दोनों ही पृथक् पृथक् इन्द्रका यश गाते हैं। शत्रु इन्द्रको वीर मानकर गर्वसे उसे बुलाते हैं। यदि दो वीर साथ-साथ हों तो वे इन्द्रको सबसे प्रथम अपने पास बुलाते हैं ॥ ८ ॥

कोई वीर इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकता। लडनेवाले वीर रक्षार्थ उसे ही बुलाते हैं। वह सारे संसारकी माप-तोल रखता है अर्थात् सब पदार्थोंका गुण-धर्म ठीक-ठीक जानता है। वह बडेसे बडे बलवान्को भी गिरा देता है, पछाड देता है ॥ ९ ॥

इन्द्र ऐसे बडे अपराधियोंको मार देता है जो उसे न मानकर उसकी आज्ञाका भङ्ग करते हैं। अभिमानियोंका अभिमान तोडता और दुष्ट कर्मवालेको दण्ड देता है ॥ १० ॥

१२१ यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥
१२२ यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
१२३ द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
१२४ यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

अर्थ— [१२१] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिसने (पर्वतेषु) पर्वतोंमें (क्षियन्तं) छिपे (शम्बरं) शम्बरको (चत्वारिंश्यां) चालीसवें (शरदि) शरद्‌में, (अनु-अविन्दत्) ढूँढ लिया, (यः) जिसने (ओजायमानं) बल दिखानेवाले, (शयानं) सोये हुए (दानुं) दानव (अहिं) अहिको (जघान) मारा, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ ११ ॥

[१२२] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जिस (सप्त-रश्मिः) सात किरणोंवाले (वृषभः) बलवान् और (तुविष्मान्) ओजस्वीने (सर्तवे) बहनेके लिये (सप्त) सात (सिन्धून्) सिन्धुओंको (अव-असृजत्) बहाया (यः) जिस (वज्रबाहुः) हाथमें वज्र रखनेवालेने (द्यां) द्यौ पर (आरोहन्तं) चढते हुए (रोहिणं) रौहिणको (अस्फुरत्) नष्ट कर दिया, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ १२ ॥

[१२३] हे (जनासः) लोगो ! (द्यावा) द्यौ (पृथिवी चित्) और पृथिवी (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (नमेते) झुकती हैं । (पर्वताः) पर्वत (अस्य) इसके (शुष्मात् चित्) बलसे (भयन्ते) डरते हैं । (यः) जो (सोमपाः) सोम पीनेवाला, शरीरसे (निचितः) बलवान् और (वज्रबाहुः) वज्रके समान भुजावाला है, (यः), जो (वज्रहस्तः) हाथमें वज्र रखता है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ १३ ॥

१ द्यावा पृथिवी अस्मै नमेते— द्युलोक और पृथ्वीलोक इस इन्द्रकी शक्तिके आगे झुक जाते हैं ।

[१२४] हे (जनासः) लोगो ! (यः) जो सोम (सुन्वन्तं) निचोडनेवालेकी, (यः) जो सोम (पचन्तं) पकानेवालेकी, (यः) जो (शंसन्तं) स्तोत्र बोलनेवाले और (यः) जो (शशमानं) उत्तम वाणीका प्रयोग करनेवाले की, अपने (ऊती) रक्षा साधनोंसे (अवति) रक्षा करता है । (यस्य) जिसका (ब्रह्म) स्तोत्र, (यस्य) जिसका (सोमः) सोम और (यस्य) जिसका (इदं) वह (राधः) धन (वर्धनं) बढानेका साधन है, (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र है ॥ १४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके भयसे भाग कर शम्बर पर्वतमें छिपा था, वह चालीस वर्षके बाद पकडा गया । वृत्र जलको रोककर सोया था, उसे इन्द्रने मारा ॥ ११ ॥

इन्द्रने सात नदियोंको बहाया और द्यौको घेरनेवाले रौहिणको नष्ट किया । इन्द्रमें सात रश्मियां हैं ॥ १२ ॥

इन्द्र द्यौ, पृथिवी और पर्वतोंका भी स्वामी है । सभी लोक इसकी शक्तिको देखकर डरकर उसके सामने झुक जाते हैं । वह हाथमें सदा वज्र रखता है । ॥ १३ ॥

इन्द्र सोमके सोता, पाचक और अपने स्तोताकी रक्षा करता है । स्तोत्र, सोम और दूसरे प्रकारके दान इन्द्रकी शक्तिको बढाते हैं ॥ १४ ॥

१२५ यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥

[१३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; १३ त्रिष्टुप् ।]

१२६ ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद् यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥

१२७ सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१२५] (यः) जो (दुध्रः) अत्यन्त शक्तिशाली तू इन्द्र सोमका (सुन्वते) यज्ञ करनेवाले और उसे (पचते चित्) पकानेवालेको (वाजं) धन (आ दर्दर्षि) दान करता है (सः किल) निश्चय वह तू (सत्यः) सत्य (असि) है, सत्य व्यवहार करनेवाला है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम (सुवीरासः) उत्तम वीरोंवाले तेरे (प्रियासः) प्रिय जन (विश्वहा) सब-दिन (ते) तेरी (विदथं) कीर्तिको (आ वदेम) बोला करें ॥ १५ ॥

[१३]

[१२६] वर्षा (ऋतुः) सोमकी (जनित्री) माता है । सोम (तस्याः) उस वर्षासे (जातः) उत्पन्न होकर, (यासु) जिन जलोंमें (वर्धते) बढता है, उसने उन्हीं (अपः परि) जलोंमें (मक्षु) शीघ्र (आ अविशत्) प्रवेश किया । (आहनाः) कूटी जानेवाली वह लता (तत्) उस (पयः) जलको (पिप्युषी) बढानेवाली (अभवत्) बनी । उस (अंशोः) सोमका जो (प्रथमं) श्रेष्ठ (पीयुषं) रस है, (तत्) वह इन्द्रकी (उक्थ्यं) प्रशंसनीय हवि है ॥ १ ॥

[१२७] (ईं) ये (सध्री) अनुकूल बहनेवाली नदियाँ (पयः) जल (परि बिभ्रतीः) धारण करती हुई (आ) सब ओरसे (यन्ति) आती हैं । ये (विश्व प्स्न्याय) सब प्रकारके जलोंके आश्रय समुद्रके लिये (भोजनं) भोजन (प्र भरन्त) देती हैं । इन (प्रवतां) बहनेवाली नदियोंका (अनुस्यदे) बहनेके लिये, (अध्वा) मार्ग (समानः) एक ही दिशामें जाता है । हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने, उन नदियोंके बहनेके लिये (ता) वे प्रसिद्ध कार्य अबसे (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किये हैं, (सः) वह तू उन कामोंके कारण (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ २ ॥

१ यः ता प्रथमं अकृणोः, सः उक्थ्यः— जिस कारण इन्द्रने उन उत्तम कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय होता है ।

भावार्थ— इन्द्र सत्य है, उसकी सत्ता है, ' वह नहीं है ' ऐसा नहीं कह सकते । उसका व्यवहार भी सत्य रूप है । वह स्तोताओं और याज्ञिकोंको सदा धन दिया करता है ॥ १५ ॥

सोम वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होता है । वह जलसे बढता है । जब उसे जलमें भिगोकर कूटते हैं और जलमें या दूधमें निचोडते हैं तब उससे जल रसरूपमें बढता है । यह रस इन्द्रका उत्तम पेय है ॥ १ ॥

इन्द्र अपने पराक्रमसे जल बहाता है । वही जल समुद्रको भरता है । जल सदा समुद्रकी ओर ही बढता है । इन उत्तम कर्मोंको इन्द्रने किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय होता है ॥ २ ॥

१२८ अन्वेको वदति यद् ददाति तद् रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
१२९ प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन् दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
१३० अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन् त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥
१३१ यो भोजनं च दयसे च वर्धन-मार्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१२८] (एकः) एक (यत्) जो कुछ (ददाति) देता है (तत्) उसे (अनु वदति) बोलता जाता है। (तत् अपाः) उस कर्मसे युक्त (एकः) एक (रूपा) रूपोंका (मिनन्) भेद करता (ईयते) जाता है। ब्रह्मा (एकस्य) एकके (विश्वाः) सारे (वि नुदः)) हटाने योग्य कर्मोंको (तितिक्षते) दूर करता है। हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने उनके लिये (ता) उन कर्मोंको (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया, (सः) वह तू (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ३ ॥

[१२९] देव लोग (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके लिये (आयते) आनेवाले अतिथिके लिये (पृष्ठं) जीवन धारक, पालनमें (प्र भवन्तं) समर्थ (रयिं इव) धनके समान, (पुष्टिं) पुष्टिकर अन्न (वि भजन्तः आसते) बाँटते रहते हैं (दंष्ट्रैः) दांतोंसे (पितुः) पालक अन्नका (भोजनं) भोजन (अत्ति) खाता है। हे इन्द्र ! (यः) जिस तूने इन देवों और मनुष्योंके (ता) उन हितकर कार्योंको सबसे (प्रथमं) पूर्व (अकृणोः) किया है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ४ ॥

[१३०] हे (अहिहन्) अहिके मारनेवाले इन्द्र ! (यः) जिस तूने (धौतीनां) नदियोंके (पथः) मार्गोंको (अरिणक्) खोला (अध) और (संदृशे) देखनेके लिये (दिवे) सूर्यके प्रकाशमें (पृथिवीं) पृथिवीको (अकृणोः) स्थापित किया। (देवाः) देवोंने, (उदभिः न) जैसे जलसे धोकर (वाजिनं) घोडेको वेगवान् बनाते हैं, वैसे, (तं) उस (त्वा) तुझ (देवं) देवको (स्तोत्रेभिः) स्तोत्रोंसे (अजनन्) बलवान् बनाया। (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ५ ॥

१ धौती— कंपानेवाली, नदी, धारा।

[१३१] हे इन्द्र ! (यः) जो तू यजमानके लिए (भोजनं च) भोजन और (वर्धनं च) वृद्धिका साधन (दयसे) प्रदान करता है और (आर्द्रात्) गीले वृक्षादिसे (शुष्कं) सूखा (मधु-मत्) मीठा फल (आ दुदोहिथ) दुहता, उत्पन्न करता है। (सः) वह तू (विवस्वति) यजमानके घरमें (शेवधिं) धन (नि दधिषे) स्थापित करता है। जो तू (एकः) अकेला (विश्वस्य) समस्त जगत्का (ईशिषे) स्वामित्व करता है (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ६ ॥

भावार्थ— इन्द्रके निमित्त यज्ञमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा अपना अपना काम करते हैं। इनमें ब्रह्मा यज्ञके दोषोंको दूर करता है ॥ ३ ॥

यज्ञसे इन्द्रकी शक्ति बढती है। वह बलवान् होकर वृष्टि करता, इससे अन्न होता है और उस अन्नको खाकर प्राणी जीते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्र अहिको मारकर जलको प्रवाहित करता है और वृत्रका अन्धकार मिटाकर सूर्यके प्रकाशमें पृथिवीको स्थापित करता है। जैसे मनुष्य घोडेको मलकर पानीसे धोकर उसमें स्फूर्ति भर देते हैं वैसे देव स्तुति द्वारा इस इन्द्रको प्रोत्साहित कर देते हैं। उत्साहसे भर देते हैं ॥ ५ ॥

१३२ यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणा ऽधि दाने व्यवनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥

१३३ यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्य-मुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥

१३४ शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून् त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१३२] हे इन्द्र! (यः) जिसने (दाने अधि) खेतमें (पुष्पिणीः च) फल उत्पन्न करनेवाली (अवनीः) संरक्षक औषधियोंको उनके (धर्मणा) गुणोंसे युक्त करके (वि अधारयः) विविध रूपोंमें स्थापित किया, (यः च) और जिसने (दिवः) चमकते हुए सूर्यसे (असमाः) समानता रहित अनेक गुणोंवाली (दिद्युतः) किरणें (अजनः) उत्पन्न कीं, जिस (उरुः) महान्ने (अभितः) सब ओर (ऊर्वान्) दूर तक फैले हुए पर्वतोंको उत्पन्न किया; (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ७ ॥

[१३३] हे (पुरुकृत्) अनेक कार्योंके कर्ता इन्द्र! (यः) जिस तूने (सह-वसुं) धनसे सम्पन्न (नार्मरं) नार्मरको (निहन्तवे) मारनेके लिये, (पृक्षाय च) अन्नकी प्राप्ति तथा (दासवेशाय) दस्यु लोगोंके विनाशके लिये अपनी (ऊर्जयन्त्याः) बलवाली वज्रकी धारके (अपरिविष्टं) निर्मल (आस्यं) मुखको (उत एव अद्य) ठीक आज, उसी समय उस शत्रुपर (अवहः) फेंका (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (असि) है ॥ ८ ॥

१ नार्मर (नृ-मर्-अण्)— मनुष्योंकी हत्या करनेवाला नृमर और उसका पुत्र नार्मर, असुर, मेघ, दुष्टका पुत्र, दुष्ट।

[१३४] हे इन्द्र! (यत् ह) जब कि तूने (एकस्य) एकवार (श्रुष्टौ) सुखके निमित्त (चोदं) दाता यजमानकी (आविथ) रक्षा की, (यस्य) जिसके रथको (दश) दस (शतं वा) सौ घोडे एक (साकं) साथ खींचते हैं, जो तू सबका (आ अद्यः) भोज्य है, जिसने (दभीतये) दभीति ऋषिके लिये, (अरज्जौ) रस्सीसे बांधे विना ही (दस्यून्) दुष्टोंको (सं उनप्) नष्ट कर दिया और उस दभीतिका (सुप्र-अव्यः) उत्तम साथी (अभवः) बना, (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्र यजमानको धन देता और उसके खेतको फूल-फलसे सम्पन्न करता है। इस प्रकार अपने यजमानको हर तरहसे समृद्ध बनाता है। उसका यह काम सचमुच प्रशंसनीय है ॥ ६ ॥

खेतोंमें फूल फलसे लदे जौ-गेहूं आदि दिखाई देते हैं, ये इन्द्रके स्थापित किये हुए हैं। इन औषधियोंमें अनेक शक्तियां हैं ये ही इनके धर्म हैं। सूर्यका प्रकाश भी एक प्रकारका नहीं, उसमें अनेक रंग और अनेक गुण हैं। ये सब प्रकाश-किरण तथा पर्वतादि इन्द्रकी रचना हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रके वज्रकी धारा तीक्ष्ण है। उस धारका मुंह चमचमाता है। इस वज्रसे ही नार्मरका वध होता है। इसी वज्रसे वह दासका वध करके अन्न प्रदान करता है ॥ ८ ॥

इन्द्र जिसके यहां एक बार भी आनन्द प्राप्त करता है, उसकी सदा रक्षा करता है। उस इन्द्रके रथको एक हजार घोडे खींचते हैं। वह सबका सेव्य है। दुष्टोंको दूरसे ही नष्ट कर देता है। उसके उपासक उसके पास निर्भय होकर जा सकते हैं। क्योंकि वह उनका मित्र और साथी है ॥ ९ ॥

१३५ विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १० ॥

१३६ सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥

१३७ अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन् त्सास्युक्थ्यः ॥ १२ ॥

१३८ अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥

अर्थ—[१२५] (विश्वा इत्) सारी ही (रोधनाः) नदियां (अस्य) इस इन्द्रके (पौंस्यं) पराक्रमके (अनु) अनुकूल चलती हैं । यजमान (अस्मै) इसके लिये हवि (ददुः) देते हैं, उन्होंने इस (कृत्नवे) क्रियावान्‌के लिये (धनं) धन (दधिरे) एकत्र किया है । हे इन्द्र ! तूने (षट्) छः (विस्तिरः) विस्तृत पदार्थोंको (अस्तभ्नाः) धारण कर रखा है, तू (पञ्च) पांच प्रकारके (संदृशः) देखनेवाली प्रजाओंका (परि) सब ओरसे (परः अभवः) पालक हुआ है । (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ १० ॥

[१२६] हे (वीर) वीरतासे पूर्ण इन्द्र ! (यत्) जिस कारण तू (एकेन) एक बारके (क्रतुना) प्रयत्नसे ही अभीष्ट (वसु) धन (विन्दसे) प्राप्त कर लेता है; इस कारण (तव) तेरा वह (वीर्यं) पराक्रम (सुप्रवाचनं) प्रशंसनीय है। तू (सहस्वतः) बलधारी (जातूस्थिरस्य) जातूष्ठिरका (वयः) अन्न (प्र) स्वीकार करता है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (या) जिन (विश्वा) समस्त उत्तम कर्मोंको (चकर्थ) किया है, उनके कारण (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ ११ ॥

[१२७] हे इन्द्र ! तूने (तूर्वीतये च) तुर्वीति और (वय्याय च) वय्यको (कं) सुखपूर्वक (सरपसः) जलसे (तराय) पार जानेके लिये जलके (स्रुतिं) प्रवाहको (अरमयः) नियममें रखा, शान्त किया। जलकी (नीचा) गहराईमें (सन्तं) पडे हुए (परावृजं) परावृक् ऋषिको जलसे (उत् अनयः) ऊपर किया । अपनी (श्रवयन्) कीर्तिको बढाते हुए तूने (अन्धं) अन्धे और (श्रोणं) पङ्गुको (प्र) उत्तम आंख और पांव दान किये । (सः) वह तू (उक्थ्यः) प्रशंसाके योग्य (असि) है ॥ १२ ॥

[१२८] हे (वसो) धन-सम्पन्न (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे पास (वसव्यं) धन (बहु) बहुत है । तू (तत्) वह (राधः) धन (दानाय) दान करनेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (सं अर्थयस्व) दे । (यत्) जो तेरा (चित्रं) चाहने योग्य धन है, उसे तू (अनु द्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) देनेकी इच्छा कर । हम (सु-वीराः) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (बृहत्) बृहत् साम (वदेम) बोलें ॥ १३ ॥

भावार्थ— इन्द्र जलको बहाता, यजमानोंका दान स्वीकार करता, सब पदार्थोंको वशमें रखता और सब प्रजाओंको पालता है ॥ १० ॥

इन्द्रका प्रयत्न कभी विफल नहीं जाता। उसने एक नहीं, अनेक उत्तम कार्य किये हैं जिससे उसकी प्रशंसा हो रही है। वह स्वयं भी बलवान् है इसलिए वह बलवान् लोगोंके द्वारा दिए गए अन्नको ही स्वीकार करता है, कायरोंका नहीं ॥ ११ ॥

इन्द्र पार जानेके लिये जलकी गहराई कम करता, जलमें डूबे हुओंको बचाता, अन्धेको आंख और पङ्गुको पांव देता है ॥ १२ ॥

इन्द्रके पास असंख्य धन हैं। स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते हैं ॥ १३ ॥

×

[१४]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ।]

१३९ अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोम--मामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥
१४० अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
१४१ अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वात--मिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥
१४२ अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥

---

[१४]

अर्थ— [१३९] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (सोमं) सोम (भरत) भरपूर दो । (अमत्रेभिः) पात्रोंसे इसके लिये (मद्यं) आनन्ददायक (अन्धः) अन्न (आ सिञ्चत) दो । यह (वीरः) वीर इन्द्र (अस्य) इस सोमके (पीतिं) पानको (सदं) सदा (कामी हि) चाहनेवाला है । इस (वृष्णे) सुखकी वर्षा करनेवालेके लिये (तत् इत्) उसीका (जुहोत) हवन करो । (एषः) यह इन्द्र उसे (वष्टि) चाहता है ॥ १ ॥

[१४०] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिस इन्द्रने (अशन्या इव) जैसे बिजली (वृक्षं) वृक्षको मार देती है वैसे ही वज्रसे, (अपः) जलको (वव्रिवांसं) रोकनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (जघान) मार दिया है, (तत् वशाय) इच्छावाले (तस्मै) उस इन्द्रके लिये (एतं) यह सोम (भरत) दो । (एषः) यह (इन्द्रः) इन्द्र (अस्य) इस सोमके (पीतिं) पीनेकी (अर्हति) योग्यता रखता है ॥ २ ॥

[१४१] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (दृभीकं) दृभीकका (जघान) वध किया, (यः) जिसने (गाः) गौएं (उत् आजत्) प्रकट की और (वलं) वलको (अप वः हि) अनावरण कर दिया- वलके घेरेको तोड दिया, (अन्तरिक्षे न वातं) जैसे आकाशमें अर्थात् वायुको स्थापित करते हैं वैसे (तस्मै) उस इन्द्रके लिये (एतं) यह सोम स्थापित करो । (जूः न वस्त्रैः) जैसे निर्बल मनुष्य वस्त्रसे अपने अंगोंको ढकता है, वैसे (सोमैः) सोमसे (इन्द्रं) इन्द्रको (आ ऊर्णुत) आच्छादित कर दो ॥ ३ ॥

१ दृभीक- (सर्वान् विदारयति भियं करोतीति दृभीको नामासुरः-सायणः)— जो सबको मारता और भय उत्पन्न करता है उसका नाम दृभीक है, असुर मेघ ।

[१४२] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (उरणं) उरणको (जघान) मारा, उसकी (नव) नौ (चख्वांसं) आंखों और (नवतिं) नव्वे (बाहून् च) भुजाओंको नष्ट किया, (यः) जिसने (अर्बुदं) अर्बुदको (नीचा) नीचेकी ओर (अव बबाधे) गिरा दिया (सोमस्य) सोमके (भृथे) यज्ञकी ओर (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (हिनोत) प्रेरित करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्र सोमकी इच्छा करता है । यह सोम उसका आनन्द और उत्साहवर्धक अन्न है ॥ १ ॥

इन्द्र वृत्रको नष्ट करता है, इसलिये वह सोम पीनेका अधिकारी है । वृत्र अन्धकारका प्रतीक है और सोम ब्रह्मज्ञानका प्रतीक है । जो वृत्ररूपी अज्ञानान्धकारको नष्ट करता है, वही ब्रह्मज्ञान पानेका अधिकारी होता है ॥ २ ॥

इन्द्र दृभीक और वल असुरोंका नाश करता है । वलके बन्धनसे गौओंको छुडाता है, इसलिये अध्वर्यु लोग उसका पेट सोम-रससे पूर्ण कर देते हैं ॥ ३ ॥

जो इन्द्र अनेक असुरोंका वध करता है, वही सोम पीनेका अधिकारी है ॥ ४ ॥

१४३ अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
१४४ अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्र-मपावपद् भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥
१४५ अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान् न्यावृणग् भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
१४६ अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुताये-न्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

अर्थ— [१४३] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (अश्नं) अश्नको (सु जघान) मारा, (यः) जिसने (अशुषं) न मरने योग्य परन्तु दूसरोंके प्राणशोषक (शुष्ण) शुष्णको, (यः) जिसने (वि अंस) बाहु रहित अहिको, (यः) जिसने (पिप्रुं) पिप्रुको (नमुचि) नमुचिको और (यः) जिसने (रुधिक्रां) रुधिक्राको मारा, (तस्मै) उस (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (अन्धसः) अन्नका (जुहोत) हवन करो ॥ ५ ॥

१ अश्न— पराया धन खानेवाला ।
२ नमुचि— न छोडनेवाला, अत्यागी ।
३ रुधिक्रा— दूसरोंकी सीमा या घरमें घुसनेवाला, डाकू, चोर, असुर, दुष्ट ।

[१४४] हे ! (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिसने (अश्मना इव) पत्थरके समान कठोर वज्रसे (शम्बरस्य) शम्बरके (पूर्वीः) पुराने (शतं) सौ (पुरः) नगर (बिभेद) तोड दिये, (यः) जिस (इन्द्रः) इन्द्रने (वर्चिनः) वर्चीके (शतं सहस्रं) सैंकडों सहस्रों वीर भूमिपर (अप अवपत्) गिरा दिये, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये (सोमं) सोम (भरत) दो ॥ ६ ॥

[१४५] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जिस (जघन्वान्) घातकने (भूम्यः) भूमिके (उपस्थे) ऊपर (शतं) सैंकडों और (सहस्रं) सहस्रों असुरोंको मारकर (आ अवपत्) चारों ओर बिछा दिया, जिसने (कुत्सस्य) कुत्स, (आयोः) आयु और (अतिथिग्वस्य) अतिथिग्वके (वीरान्) वीरोंको (नि अवृणक्) नीचा दिखाया, (अस्मै) इस इन्द्रके लिये, (सोमं) सोम (भरत) जुटाओ ॥ ७ ॥

[१४६] हे (नरः) नेता (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! तुम (यत्) जो कुछ (कामयाध्वे) चाहो, (इन्द्रे) इन्द्रके निमित्त (श्रुष्टी) शीघ्र हवि (वहन्तः) देते हुए, (तत्) उस वस्तुको (नशथ) प्राप्त करो । हे (यज्यवः) (गभस्तिपूतं) अंगुलियोंसे छाने हुए (सोमं) सोमको (श्रुताय) कीर्तिमान् (इन्द्राय) इन्द्रके आगे (भरत) भरपूर दो और उसकी अग्निमें (जुहोत) हवन करो ॥ ८ ॥

१ नरः ! यत् कामयाध्वे, इन्द्रे हवन्तः तत् नशथ— हे मनुष्यो ! तुम जो चाहते हो, उसे इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर लो ।

भावार्थ— यह इन्द्र पराये धनको खानेवाले, दूसरोंके रक्तको चूसनेवाले, सर्पवत् कुटिल व्यवहार करनेवाले आदि दुष्टोंको मारता है और तब वह सोम प्राप्त करनेका अधिकारी बनता है, उसी प्रकार राजा भी दुष्टोंका विनाश करे, तभी वह प्रजाके आदरका पात्र हो सकेगा ॥ ५ ॥

इन्द्र शत्रुके बडे-बडे गढोंको तोड देता और असंख्य वीरोंको भूमिपर सुला देता है ॥ ६ ॥

इन्द्र अपने पक्षके राजा और ऋषियोंकी सहायता करके उनके शत्रुओंका नाश करता है और इसके फल-स्वरूप उनसे सोम प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

मनुष्य जो कुछ चाहता है, उस वह हवि देकर इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर सकता है । इन्द्र सर्वैश्वर्यवान् है अतः वह हरप्रकारसे अपने भक्तोंकी सहायता करता है ॥ ८ ॥

१४७ अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥

१४८ अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद् दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥

१४९ अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥

१५० अस्मभ्यं तद् वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून् बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥

अर्थ— [१४७] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (अस्मै) इस इन्द्रके निमित्त (श्रुष्टिं) सुखकर सोम यज्ञ (कर्तन) करो । (वने) लकडीके वर्तनमें (निपूतं) छाने हुए सोमको (वने) लकडीके पात्रमें रखकर इन्द्रके (उत् नयध्वं) आगे ले जाओ। सोमको (जुषाणः) सेवन करनेवाला इन्द्र (वः) तुम्हारे (हस्त्यं) हाथके बनाये हुए सोमको (अभि वावशे) बहुत चाहता है । इसलिये (इन्द्राय) इन्द्रके लिये (मदिरं) आनंदकारी (सोमं) सोमका (जुहोत) हवन करो ॥ ९ ॥

[१४८] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो! (यथा) जिस प्रकार (गोः) गायका (ऊधः) थन (पयसा) दूधसे भरा रहता है, उसी प्रकार (ईं) इस (भोजं) भोजनदाता (इन्द्रं) इन्द्रको (सोमभिः) सोमोंसे (पृणत) पूर्ण करो । (अहं) मैं (मे) मेरे (अस्य) इस सोमके (एतत्) इस (निभृतं) गुप्ततत्त्वको (वेद) जानता हूं । (यजतः) पूजनीय इन्द्र (दित्सन्तं) देनेकी इच्छावाले यजमानको (भूयः) और अधिक (चिकेत) देता है ॥ १० ॥

१ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत— यह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

[१४९] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो ! (यः) जो इन्द्र (दिव्यस्य) द्युलोकमें उत्पन्न (यः) जो (पार्थिवस्य) अन्तरिक्षमें उत्पन्न और (क्षम्यस्य) पृथ्वीपर उत्पन्न (वस्वः) धनका (राजा) स्वामी है (यवेन) जौ आदि अन्नसे (ऊर्दरं न) जैसे कोठेको भरते हैं वैसे (तं) उस (इन्द्रं) इन्द्रको (सोमेभिः) सोमोंसे (पृणत) पूर्ण करो । (वः) तुम्हारा (तत्) वह (अपः) कार्य सदा (अस्तु) बना रहे ॥ ११ ॥

[१५०] हे (वसो) धन-सम्पन्न (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरे पास (वसव्यं) धन (बहु) बहुत है । तू (तत्) वह (राधः) धन (दानाय) दान करनेके लिये (अस्मभ्यं) हमें (सं-अर्थयस्व) दे । (यत्) जो तेरा (चित्रं) चाहने योग्य धन है, उसे तू (अनु द्यून्) प्रतिदिन (श्रवस्याः) देनेकी इच्छा कर । हम (सु-वीराः) उत्तम वीरोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें, सभामें तेरे सामने (बृहत्) बृहत् साम (वदेम) बोलें ॥ १२ ॥

भावार्थ— इन्द्रको पात्रमें आनंदकारी वर्धक सोम दिया जाता है ॥ ९ ॥

जिस प्रकार गायके थनोंमें दूध भरा रहता है उसी प्रकार इन्द्रको सोमरससे भरपूर करो । यह पूज्य इन्द्र दानियोंका हर तरहसे संरक्षण करनेवाला है । दानी जितना दान करता है, उससे अधिक ही यह इन्द्र उन दानियोंको प्रदान करता है । ॥ १० ॥

इन्द्र द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवीके धनोंका स्वामी है, अध्वर्यु उसे सोमसे तृप्त करके धन प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥

इन्द्रके पास असंख्य धन है । स्तोता उसी धनको प्राप्त कर देवोंके निमित्त यज्ञका प्रबन्ध करते हैं ॥ १२ ॥

[१५]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१५१ प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्या- स्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

१५२ अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्त- मा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥

१५३ सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानै- र्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥

१५४ स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीते- र्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥

---

[१५]

अर्थ— [१५१] (सत्यस्य) सत्यस्वरूप (अस्य) इस (महतः) महान् इन्द्रके सर्वदा (सत्या) स्थिर (महानि) महान् (करणानि) कर्मोंको मैं (प्र घ नु वोचं) भली-भांति कहता हूं । (इन्द्रः) इन्द्रने (त्रिकद्रुकेषु) तीन पात्रोंमें (सुतस्य) सोमका (अपिबत्) पान किया और उसने (अस्य) इस सोमके (मदे) उत्साहमें (अहिं) अहिको (जघान) मारा ॥ १ ॥

[१५२] इन्द्रने (द्यां) द्युलोकको (अवंशे) बिना बांसके ऊपर (अस्तभायत्) स्थिर किया । (बृहन्तं) बडे (अन्तरिक्षं) आकाश और (रोदसी) दोनों लोकोंको अपनी सत्तासे (अपृणत्) पूर्ण कर दिया । (सः) उसने (पृथिवीं) पृथिवीको (धारयत्) धारण किया और उसे (पप्रथत्) फैलाया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कार्य (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ २ ॥

[१५३] इन्द्रने (मानैः) माप-तोलके अनुसार नदियोंको (सद्म इव) गृहके समान (प्राचः) पूर्वकी और चलनेवाली (वि मिमाय) बनाया । अपने (वज्रेण) वज्रसे उन (नदीनां) नदियोंके (खानि) मार्गोंको (अतृणत्) खोदा । उन्हें (दीर्घयाथैः) दूरतक जाने योग्य (पथिभिः) मार्गोंसे (वृथा) सहज ही (असृजत्) बहा दिया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ३ ॥

[१५४] (सः) उस इन्द्रने (दभीतेः) दभीतिके (प्र वोळ्हॄन्) अपहरण करनेवाले असुरोंको (परिगत्य) चारों ओरसे घेरकर उनके (विश्वं) सारे (आयुधं) शस्त्र-अस्त्र (इध्मे) प्रदीप्त हुई (अग्नौ) अग्निमें (अधाक्) जला दिये । उसे दभीतिको (गोभिः) गाय, (अश्वैः घोडे और (रथेभिः) रथोंसे (सं असृजत्) संयुक्त किया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) आनन्दमें (चकार) किये ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन्द्रके कार्य महान् और स्थिर हैं । वह सोमके प्रभावमें अहि आदिका नाश करता है । उसके महान् कर्मोंका हमेशा गुणगान करना चाहिए ॥ १ ॥

निराधार आकाशमें द्युको इन्द्रने स्थिर किया, विशाल अन्तरिक्ष और भूमें उसकी महिमा भरी हुई है उसीके कारण यह भूमि स्थिर है । यह सभी काम वह सोमके उत्साहसे करता है ॥ २ ॥

नदियोंको इन्द्रने पूर्व दिशाकी तरफ बहनेवाली बनाया । पूर्व दिशा मुख्य है । उसी दिशाकी ओर द्वार रखकर घर बनानेका विधान है । सभी नदियां पूर्वकी तरफ प्रवाहित होती हैं । यह मस्तिष्क भाग पुरोभाग होनेसे पूर्व है, जो सभी नाडी रूप नदियोंका केन्द्र है । सभी नाडियां इसी मस्तिष्ककी तरफ प्रवाहित होती हैं । इन्द्र आत्मा अपनी शक्तिसे इन नाडियोंके जानेके मार्ग बनाता है ॥ ३ ॥

इन्द्र असुरोंको और उनके शस्त्रास्त्रोंको अग्निमें जला देता और दभीतिको गौ घोडे आदिसे सम्पन्न करता है ॥ ४ ॥

१५५ स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातॄनपारयत् स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥
१५६ सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥
१५७ स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद् व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
१५८ भिनद् वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥

अर्थ— [१५५] (सः) उस इन्द्रने ऋषियोंको पार (एतोः) जानेके लिये (ईं) इस (महीं) बडी (धुनिं) नदीको (अरम्णात्) धीमा किया । (सः) उसने (अस्नातॄन्) पार जानेमें असमर्थोंको (स्वस्ति) कुशलपूर्वक नदीके (अपारयत्) पार कर दिया । (ते) वे ऋषिलोग नदीको (उत् स्नाय) तर कर (रयिं) धनके स्थानकी ओर (अभि प्र तस्थुः) चले । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ५ ॥

१ धुनि— तटको नष्ट करनेवाली नदी जल-प्रवाह ।

[१५६] (सः) उस इन्द्रने अपने (महित्वा) बलसे (सिन्धुं) नदीको (उदञ्चं) उत्तरकी ओर (अरिणात्) बहाया । उसने अपनी (जवनीभिः) वेगवाली सेनाओं द्वारा (अजवसः) निर्बल सेनाओंको (विवृश्चन्) नष्ट करते हुए (वज्रेण) वज्रसे (उषसः) उषाकी (अनः) गाडीको (सं पिपेष) तोड-फोड दिया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ६ ॥

[१५७] (सः) वह (परावृक्) परावृक् ऋषि (कनीनां) सुन्दरी स्त्रियोंके (अपगोहं) न दीखनेके कारणको (विद्वान्) जानकर, इन्द्रकी कृपासे, पुनः (आविः भवन्) प्रकाशित होता हुआ उनके (उत् अतिष्ठत्) सम्मुख हुआ । (श्रोणः) पङ्गु ऋषि पांव प्राप्त कर उनके पास (प्रति स्थात्) गया । (अनक्) नेत्रहीन ऋषि नेत्र प्राप्त कर (वि अचष्टे) पूर्णतया देखने लगा । (इन्द्रः) इन्द्र ऊपर कहे हुए (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ७ ॥

१ कनी— (कन्-दीप्ति) कमनीय, कन्या, सुन्दरी स्त्री ।

२ परा-वृक्— दूर फेंका हुए, जिसे कोई न चाहे परन्तु वह किसीको चाहे ।

[१५८] (अङ्गिरोभिः) अङ्गिरा लोगोंसे (गृणानः) प्रशंसित होकर इन्द्रने (वलं) वलको (भिनत्) तोड दिया । (पर्वतस्य) पर्वतके (दृंहितानि) सुदृढ द्वारोंको (वि ऐरत्) खोल दिया । (एषां) इन असुरोंकी (कृत्रिमाणि) रची हुई (रोधांसि) बाडोंको (रिणक्) दूर हटा दिया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे सब कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र ऋषियोंकी सहायता करता है । एकबार कुछ ऋषि कहीं जा रहे थे कि बीचमें वेगवती नदी पडी, तब इन्द्रने आकर नदीके प्रवाहको धीमा किया। इस प्रकार वे ऋषिगण उस नदीको पार करके अपने अभीष्ट स्थानपर गए। यह सब काम इन्द्र अपने सोमके उत्साहमें करता है ॥ ५ ॥

इन्द्र आवश्यकता पडने पर नदियोंका प्रवाह बदल देता है । वह सुदृढ रथोंकी भी तोड देता है ॥ ६ ॥

परावृक् स्त्रियोंकी इच्छा करता था । पङ्गु और नेत्रहीन होनेके कारण कुमारियां उसे नहीं चाहतीं थीं । इन्द्रने परावृक्को पांव और नेत्र देकर उसकी इच्छा पूर्ण की ॥ ७ ॥

इन्द्र अङ्गिरा आदि स्तोताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वल आदि असुरोंको मारता है, सोमके उत्साहमें वह किसी भी विघ्नकी परवाह नहीं करता । असुरोंके द्वारा बनाये गए बाडोंको भी तोडकर वह आगे बढ जाता है ॥ ८ ॥

१५९ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥

१६० नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥

[१६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः । छन्दः- जगती; ९ त्रिष्टुप् ।]

१६१ प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद् युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

अर्थ— [१५९] हे इन्द्र! तूने (दस्युं) दुष्ट (चुमुरिं) चुमुरि (धुनिं च) और धुनिको (स्वप्नेन) निद्रासे (अभि-उप्य) युक्तकर (जघन्थ) मार दिया और (दभीतिं) दभीतिकी (प्र आवः) रक्षा की । (रम्भी चित्) दण्डधारीने (अत्र) यहां पर (हिरण्यं) धन (विविदे) प्राप्त किया । (इन्द्रः) इन्द्रने (ता) वे कर्म (सोमस्य) सोमके (मदे) उत्साहमें (चकार) किये ॥ ९ ॥

१ रम्भी— दण्डवाला, दण्ड लेकर रक्षा करनेवाला, द्वारपाल ।

[१६०] (इन्द्र) इन्द्र । (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु-वीराः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ १० ॥

[१६]

[१६१] हे यजमानो ! मैं (वः) तुम्हारी रक्षाके निमित्त (सतां ज्येष्ठतमाय) सज्जनोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्रके लिये (सं इधाने) खूब प्रज्वलित (अग्नौ हविः इव) अग्निमें हवि देनेके समान (सु स्तुतिं) सुन्दर स्तुति (प्र भरे) देता हूं । कभी (अजुर्यं) नष्ट न होनेवाले, पर शत्रुओंको (जरयन्तं) नष्ट करनेवाले सोमसे (उक्षितं) तृप्त किये गये (सनात्) सनातन और सदा (युवानं) शक्ति सम्पन्न (इन्द्रं) इन्द्रको हम तुम्हारी (अवसे) रक्षाके लिये (हवामहे) पुकारते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— इन्द्र अपने मोहनेवाले अस्त्रसे शत्रुओंको सुला देता और उन्हें इसी अवस्थामें मार देता है । शत्रुसे जीते हुए धनमेंसे योग्य भागको बांटता है ॥ ९ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वह इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलता है ॥ १० ॥

जलती हुई आगमें जिस प्रकार घी आदि सामग्री डालते हैं, इन्द्रके लिये भी उसी प्रकार प्रेमसे हवन करना चाहिये । वह इन्द्र स्वयं कभी नष्ट न होते हुए शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है ॥ १ ॥

१६२ यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन् त्संभृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
१६३ न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
१६४ विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
१६५ वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥

अर्थ— [१६२] (यस्मात्) जिस (बृहतः) बडे (इन्द्रात्) इन्द्रके (ऋते) विना और (किं चन ईं) कोई भी बडा नहीं है (अस्मिन् अधि) इसमें ही (विश्वानि) सब (वीर्या) पराक्रम (सं भृता) भरे हुए हैं । इन्द्र (जठरे) पेटमें (सोमं) सोम, (तन्वि) शरीरमें (महः) बडा (सहः) बल, (हस्ते) हाथमें (वज्रं) वज्र और (शीर्षणि) शिरमें (क्रतुं) ज्ञान (भरति) धारण करता है ॥ २ ॥

१ जठरे सोमं तन्वि महः हस्ते वज्रं शीर्षणि क्रतुं भरति— यह इन्द्र पेटमें सोमको, शरीरमें महान् शक्तिको, हाथमें वज्रको और मस्तिष्कमें ज्ञानको धरण करता है ।

[१६३] (यत्) जब तू अपने (आशुभिः) शीघ्रगामी घोडों द्वारा (पुरु) बहुत (योजना) योजनोंतक (पतसि) जाता है, उस समय (तेरा) तेरा (इन्द्रियं) बल, (क्षोणीभ्यां) दोनों लोकोंसे (न) नहीं (परिभ्वे) रुकता, थमता। है (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरा (रथः) रथ (समुद्रैः) समुद्रों और (पर्वतैः)पहाडों द्वारा (न) नहीं रोका जा सकता। (कः चन) कोई भी वीर (ते) तेरे (वज्रं) वज्रको (न) नहीं (अनु अश्नोति) रोक सकता ॥ ३॥

१ यत् आशुभिः पुरु योजना पतसि ते इन्द्रियं क्षोणीभ्यां न परिभ्वे— जब यह इन्द्र शीघ्रगामी घोडोंके द्वारा अनेकों योजन तय कर जाता है, उस समय इसके वेगको द्यु और पृथ्वी लोक भी नहीं रोक सकते ।

२ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न— तेरा रथ समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोका जा सकता ।

[१६४] (विश्वे हि) सारे लोग (अस्मै) इस (यजताय) पूजनीय, शत्रुके (धृष्णवे) नाशक, (वृषभाय) बलवान्, तथा स्तोताओंके यहां (सश्चते) रहनेवाले इन्द्रके लिये (क्रतुं) यज्ञको (भरन्ति) आरम्भ करते हैं । हे यजमान् ! देवोंको (विदुष्टरः) भली भाँति जाननेवाला और उनके लिये सोम आदि (वृषा) देनेवाला तू इन्द्रको (हविषा) हविसे (यजस्व) पूज । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (वृषभेण) बलवान् (भानुना) तेजके साथ (सोमं) सोमको (पिब) पी ॥ ४ ॥

[१६५] देवोंको (वृष्णः) तृप्त करनेवाले सोमका (कोशः) रस और (मध्वः) मीठे सोमकी (ऊर्मिः) धारा (वृषभ-अन्नाय) बलवर्धक अन्नवाले (वृषभाय) बलवान् इन्द्रके (पातवे) पीनेके लिये (पवते) झरती है । (वृषणा) तृप्त करनेवाले (अध्वर्यू) दो अध्वर्यु तथा (वृषभासः) बलवाले (अद्रयः) पत्थर (वृषभाय) बलवान् इन्द्रके निमित्त (वृषणं) बलकारक (सोमं) सोम (सुष्वति) बनाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रसे बडा कोई नहीं । यह सब बलोंका भण्डार और ज्ञानका मूल-स्थान है । ज्ञानका प्रकाश यही किया करता है । इसके शरीरमें शक्ति, हाथमें वज्र और मस्तिष्कमें ज्ञान है अर्थात् यह शत्रुओंपर ज्ञानपूर्वक आक्रमण करके अपनी शक्तिसे शस्त्रोंकी सहायतासे उन्हें मारता है । शक्तिके साथ साथ ज्ञान भी हो ॥ २ ॥

इन्द्रके बल, रथ और वज्रको रोकनेका किसीमें भी सामर्थ्य नहीं है। इसलिये वह विना रुके दूरतक चला जाता है॥३॥

सब लोग इन्द्रके निमित्त यज्ञ करते और उसमें इन्द्र तथा उसके साथियोंको सोम पिलाते हैं ॥ ४ ॥

यह सोमरस देवोंको तृप्त करता है अतः जब अध्वर्यु मिलकर पत्थर पर कूट पीसकर इसे छानकर तैय्यार करते हैं, तब उसे इन्द्र पीता है और आनन्दित होता है ॥ ५ ॥

१६६ वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥ ६ ॥
१६७ प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिष दिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
१६८ पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
१६९ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

अर्थ— [१६६] हे (वृषभ) बलशाली (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरा (वज्रः) वज्र (वृषा) शक्तिशाली है (उत) और (ते) तेरा (रथः) रथ भी (वृषा) शक्तिसे भरा हुआ है । तेरे (हरी) घोडे (वृषणा) बलवान् और तेरे (आयुधा) हथियार भी (वृषभाणि) शक्तिसे भरपूर हैं । (त्वं) तू (वृष्णः) बलसे भरे (मदस्य) मदका (ईशिषे) स्वामित्व करता है, अतः इस (वृषभस्य) बलसम्पन्न (सोमस्य) सोमसे (तृप्णुहि) तृप्त हो ॥ ६ ॥

[१६७] शत्रुओंको (दाधृषिः) मिटा देनेवाला मैं, (नावं न) नावके समान, (समने) युद्धमें (वचस्युवं) स्तुतिको प्राप्त करनेवाले (ते) तेरे पास (सवनेषु) यज्ञोंमें (ब्रह्मणा) स्तुति द्वारा (प्र यामि) आता हूँ । वह इन्द्र (नः) हमारी (अस्य) इस (वचसः) वाणीको (कुवित्) बहुत बार (नि बोधिषत्) जाने। हम (उत्सं न) कूँएके समान, (वसुनः) धनके भण्डार (इन्द्रं) इन्द्रको सोमसे (सिचामहे) सींचते हैं ॥ ७ ॥

[१६८] हे (शत-क्रतो) सैंकडों कर्मोंके करनेवाले इन्द्र ! (यवसस्य) घास खाकर (पिप्युषी) मोटी बनी हुई (धेनुः) गाय (न) जैसे (वत्सं) बछडेके पास दूध पिलाने पहुंच जाती है, वैसे तू (संबाधात्) आपत्ति आनेसे (पुरा) पहले ही (नः) हमारे पास (अभि आ ववृत्स्व) पहुँच जा । (पत्नीभिः) पत्नियों द्वारा (न) जैसे (वृषणः) समर्थ पति पास बुलाये जाते हैं, वैसे (ते) तेरी (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियोंसे हम (सकृत्) एक बार (सं सु नसीमहि) उत्तम बुद्धियोंसे संयुक्त हों ॥ ८ ॥

१ यवसस्य पिप्युषी धेनुः वत्सं न संबाधात् पुरा नः अभि आ ववृत्स्व— हे इन्द्र ! घास खाकर पुष्ट बनी हुई गाय जिस प्रकार बछडेके पास दूध पिलानेके लिए पहुंच जाती है, उसी प्रकार तू हम पर आपत्ति आनेसे पहले ही हमारे पास पहुंच जा ।

२ ते सुमतिभिः सकृत् सं सु नसीमहि— तेरी उत्तम बुद्धियोंसे हम एक बार संयुक्त हों ।

[१६९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु-वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोता लोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्रके रथ, वज्र, घोडे, सोम और शस्त्र सभी शक्तिवाले हैं, इसीसे इन्द्रका बल बढा हुआ है ॥ ६ ॥

इन्द्र युद्धके समय स्तोताओंकी पुकार सुनता है । स्तोता स्तुति द्वारा उसके समीप जाते और उसे सोमसे तृप्त करते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्र हमें कष्ट आनेसे पहले ही सहायता दे । उसकी कृपा हम पर सदा बनी रहे । हम हमेशा उसकी उत्तम बुद्धिके अनुसार चलें ॥ ८ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है, दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे-बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ ९ ॥

×

[१७]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती; ८-९ त्रिष्टुप् ।]

१७० तद॑स्मै॒ नव्य॑मङ्गिर॒स्वद॑र्चत॒ शुष्मा॒ यद॑स्य प्र॒त्नथो॒दीर॑ते ।
विश्वा॒ यद् गो॒त्रा सह॑सा॒ परी॑वृता॒ मदे॒ सोम॑स्य दृंहि॒तान्यैर॑यत् ॥ १ ॥

१७१ स भू॑तु॒ यो ह॑ प्रथ॒माय॒ धाय॑स॒ ओजो॒ मिमा॑नो महि॒मान॒माति॑रत् ।
शूरो॒ यो यु॒त्सु त॒न्वं॑ परि॒व्यत॑ शी॒र्षणि॒ द्यां म॑हि॒ना प्रत्य॑मुञ्चत ॥ २ ॥

१७२ अधा॑कृणोः प्रथ॒मं वी॒र्यं॑ म॒हद् यद॒स्याग्रे॒ ब्रह्म॑णा॒ शुष्म॒मैर॑यः ।
र॒थे॒ष्ठेन॒ हर्य॑श्वेन॒ विच्यु॑ताः॒ प्र जी॒रयः॑ सिस्रते स॒ध्र्य१॑क् पृथ॑क् ॥ ३ ॥

१७३ अधा॒ यो विश्वा॒ भुव॑नाभि म॒ज्मने॑शान॒कृत् प्रव॑या अ॒भ्यव॑र्धत ।
आद् रोद॑सी॒ ज्योति॑षा॒ वह्नि॒रात॑नो॒त् सीव्य॒न् तमां॑सि॒ दुधि॑ता॒ सम॑व्ययत् ॥ ४ ॥

---

[१७]

अर्थ— [१७०] (यत्) जिस कारण (अस्य) इस इन्द्रकी (शुष्माः) शक्तियाँ (प्रत्नथा) पूर्व कालके समान ही (उत्-ईरते) बढ रही हैं, (यत्) क्योंकि उस इन्द्रने (सोमस्य) सोमके (मदे) प्रभावमें शत्रुओं द्वारा (दृंहितानि) सुदृढ और (परीवृता) घिरे हुए (विश्वा) सम्पूर्ण (गोत्रा) गढ अपने (सहसा) बलसे (ऐरयत्) गिरा दिये हैं (तत्) उस लिये (अस्मै) इसके निमित्त (अङ्गिरस्वत्) अङ्गिरा लोगोंके स्तोत्रोंके समान उत्तम (नव्यं) स्तोत्र (अर्चत) पढो ॥ १ ॥

[१७१] (यः ह) जिस इन्द्रके (प्रथमाय) प्रथम वार (धायसे) पीनेके लिये (ओजः) बल (मिमानः) संचित करते हुए अपने (महिमानं) बलको (आ) और भी (अतिरत्) बढाया, (सः) वह सदा बलवान् (भूतु) हो । (यः) जिस (शूरः) पराक्रमी इन्द्रके (युत्सु) युद्धोंमें अपने (तन्वं) शरीर पर कवच (परि-व्यत) धारण किया, उसने अपने (महिना) सामर्थ्यसे (शीर्षणि) सिरके स्थानमें (द्यां) द्यौको (प्रति अमुञ्चत) स्थापित किया ॥ २ ॥

[१७२] हे इन्द्र ! (यत्) जब कि तूने (अस्य) इस स्तोताके (अग्रे) सम्मुख (ब्राह्मणा) स्तोत्रके बलसे इस शत्रुके (शुष्मं) बलको (ऐरयः) हिला दिया (अध) तो तूने वह सबसे (प्रथमं) पहला (महत्) बडा (वीर्यं) पराक्रम (अकृणोः) किया । इस कारण (जीरयः) नाश करनेवाले, तुझ (रथे रथेन) रथ पर बैठे (हरि-अश्वेन) लाल घोडोंवाले इन्द्रसे, (विच्युताः) नीचे गिराये हुए असुर (सध्र्यक्) एक साथ मिले हुए भी भयसे (पृथक्) पृथक् पृथक् (प्र सिस्रते) भागते हैं ॥ ३ ॥

[१७३] (अध) और (यः) जिस (ईशानकृत्) स्वामित्व देनेवाले (प्रवयाः) उत्कृष्ट अन्नवाले इन्द्रने अपने (मज्मना) बलसे (विश्वा) सारे (भुवना) भुवनोंको (अभि अवर्धत) बढाया । (आत्) फिर उस (वह्निः) आगे बढानेवालेने (ज्योतिषा) तेजसे (रोदसी) दोनों लोकोंको (आ अतनोत्) व्याप्त किया और (दुधिता) दुःखके स्थानमें रखे हुए (तमांसि) अन्धकारोंको और भी (सीव्यन्) बढाते हुए (सं अव्ययत्) चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रकी शक्तियां सोम पीनेके बाद बढती ही जाती हैं । तब वह उन शक्तियोंके कारण शत्रुओंके सम्पूर्ण विघ्नोंको विध्वस्त कर देता है ॥ १ ॥

इन्द्र सोम पीनेके प्रथम समयमें ही बहुत पराक्रम दिखाता है । वह युद्धमें शरीर पर कवच धारण करता और द्यु आदि लोकोंको ठीक स्थान पर रखता है ॥ २ ॥

असुर इन्द्रके पराक्रमसे डर कर, उसे देखते ही इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्र अपने बलसे लोकोंकी शक्ति बढाता है । फिर अपने तेजसे सभी लोकोंको व्याप्त कर देता है । पर जो दुष्ट हैं उन्हें वह गाढ अन्धकारमें स्थापित करता है ॥ ४ ॥

१७४ स प्राचीनान् पर्वतान् दृंहदोजसा ऽधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत् पृथिवीं विश्वधायस—मस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥

१७५ सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद् विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः ॥ ६ ॥

१७६ अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥

१७७ भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दुदिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

अर्थ— [१७४] (सः) उस इन्द्रने (प्राचीनान्) हिलनेवाले (पर्वतान्) पर्वतोंको अपने (ओजसा) बलसे (दृंहत्) स्थिर किया। उसने (अपां) जलोंके बहाव रूप (अपः) कर्मको (अधराचीनं) नीचेकी ओर (अकृणोत्) प्रवाहित किया। (विश्वधायसं) सबको धारनेवाली (पृथिवीं) पृथिवीको (अधारयत्) धारण किया और अपने (मायया) सामर्थ्य द्वारा (द्यां) द्यौको (अवस्रसः) नीचे गिरनेसे (अस्तभ्नात्) रोका ॥ ५ ॥

१ प्राचीन (प्र-अञ्च्)— इधर उधर चलनेवाले।

[१७५] (पिता) पालन करनेवाले इन्द्रने (यं) जिस वज्रको (विश्वस्मात् जनुषः वेदसः परि आ अकृणोत्) सभी जन्मधारी पदार्थों एवं धनोंसे उत्कृष्ट बना दिया तथा (येन वज्रेण) जिस वज्रसे (तुविष्वणिः) अत्यन्त गर्जना करनेवाले इन्द्रने (पृथिव्यां शयध्यै) पृथ्वी पर सोनेके लिए (क्रिविं हत्वी नि अवृणक्) क्रिविको मारकर नष्टकर दिया, (सः) वह वज्र (अस्मै) इस इन्द्रको (बाहुभ्यां अरं) भुजाओंसे समर्थ करे ॥ ६ ॥

[१७६] (पित्रोः) मातापिताके (सचा) साथ (सती) रहती हुई पिताके (अमाजूः इव) घरमें बूढी हो जानेवाली कन्याके समान (समानात्) एक ही (सदसः) स्थानसे (त्वा) तुझसे (भगं) धन (आ इये) माँगता हूँ। तू हमारे लिये (प्र केतं) उत्तम अन्न (कृधि) कर दे। तू (उप मासि) धनका दाता है, हमारे पास धन (आ भर) ले आ। (येन) जिस धनसे तू स्तोताओंको (मामहः) बडा बनाता है, (तन्वः) शरीरके लिए उपयोगी वह (भागं) धन हमें (दद्धि) दे ॥ ७ ॥

१ अमा-जूः— घरमें जीर्ण होनेवाली।

[१७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम लोग (त्वां) तुझ (भोजं) पालक स्वामीको (हुवेम) बार बार बुलाते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं) तू (अपांसि) कर्मों और (वाजान्) अन्नोंका (ददिः) दाता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू अपने (चित्रया) अद्‌भुत (ऊती) रक्षाके साधनोंसे (नः) हमारी (अविड्ढि) रक्षा कर। हे कामनाओंके (वृषन्) वर्षकदाता (इन्द्र) इन्द्र ! तू (नः) हमें (वस्यसः) धनवान् (कृधि) कर दे ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन्द्र मेघोंको एकत्र कर जल बरसाता और पृथिवी तथा द्यौको अपने-अपने स्थान पर स्थिर रखता है। ये चलते हुए भी अपनी कक्षाको नहीं त्यागते। द्यौ निराधार होते हुए भी इसी इन्द्रके कारण स्थिर है ॥ ५ ॥

इन्द्रके लिए वज्रका मूल्य बहुत है। उसे वह सभी धनोंसे उत्तम मानता है, क्योंकि वह वज्रकी सहायतासे सभी शत्रुओंको मारता है वह वज्र इन्द्रको शक्तिशाली बनाता है ॥ ६ ॥

जैसे अविवाहिता लडकी पिताके घरमें बैठी पतिकी इच्छा करती है वैसे धनार्थी स्तोता धन की ॥ ७ ॥

इन्द्र अपने स्तोताओंकी रक्षा करता और उन्हें धनवान् बना देता है ॥ ८ ॥

१७८ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१८]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७९ प्राता रथो नवो योजि सस्नि- श्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥

१८० सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीय- मुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥

१८१ हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योज- मायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥

अर्थ— [१७८] (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (आ शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात् धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

[१८]

[१७९] हे इन्द्र ! तेरा वह (नवः) नया (सस्निः) दानशील, (चतुर्युगः) चार जुओंवाला, (त्रिकशः) तीन कोडे, (सप्तरश्मिः) सात लगाम (दश अरित्रः) दश चक्रवाला, (मनुष्यः) मनुष्योंके लिये उपयोगी (स्वः-साः) स्वर्गतक पहुंचानेवाला (रथः) रथ (प्रातः) प्रातःकाल (योजि) जोडा गया है । (सः) वह (इष्टिभिः) यज्ञोंसे और (मतिभिः) स्तोत्रों द्वारा (रंह्य) गतिमान् (भूत्) हो ॥ १ ॥

[१८०] (सः सः) वह (मनुषः) मनुष्योंकी इच्छाओंका (होता) प्राप्त करानेवाला रथ (अस्मै) इस इंद्रके लिए (प्रथमं) प्रथम, प्रातःकाल यज्ञको पहुँचानेमें (अरं) समर्थ होता है (सः) वह (द्वितीयं) द्वितीय (उतो) और (तृतीयं) तृतीय यज्ञमें ले जानेमें भी समर्थ होता है । यहाँ (अन्ये उ) दूसरे ही (अन्यस्याः) दूसरोंके (गर्भं) गर्भको (जनन्त) बनाते हैं । (सः) वह (जेन्यः) जयशील (वृषा) बलवान् इन्द्र (अन्येभिः) दूसरोंके साथ (सचते) संयुक्त होता है ॥ २ ॥

[१८१] मैंने (इन्द्रस्य) इन्द्रके (रथे) रथमें, (कं) सुख-पूर्वक (आयै) आने-जानेके लिये, (नवेन) नये (सु उक्तेन) उत्तमतासे बोले गए (वचसा) इशारेसे (हरी नु) दोनों घोडोंको (योजं) जोड दिया है । (अत्र) इस यज्ञमें, हे इन्द्र ! (अन्ये) दूसरे (बहवः हि) बहुतसे (विप्राः) बुद्धिमान् (यजमानासः) यजमान (त्वां) तुझे (मो सु) मत (नि रीरमन्) प्रसन्न कर सकें ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते हैं ॥ ९ ॥

हे इन्द्रके रथमें चार जूए, तीन चाबुक, सात लगाम, दश चक्र लगे हुए हैं । वह स्तोताओंके हितके लिये इन्द्रको स्वर्ग तक पहुँचाता और नीचे लाता है ॥ १ ॥

इन्द्र अपने रथसे तीनों यज्ञोंमें पहुँचता है । कुछ स्तोता स्तुतियोंकी रचना करते हैं मानो वे गर्भ बनाते हैं । इन्द्र उन्हीं स्तोताओंके साथ मेल करता है ॥ २ ॥

इन्द्रके रथमें उसके घोडे इशारेसे जोडे जाते हैं । यजमान इससे इतना प्रेम करते हैं कि इन्द्रका दूसरोंके यज्ञोंमें जाना उन्हें सह्य नहीं होता ॥ ३ ॥

१८२ आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र या॒ह्या च॒तुर्भि॒रा ष॒ड्भिर्हू॒यमा॑नः ।
आ॒ष्टाभि॑र्द॒शभि॑ः सोम॒पेय॑म॒यं सु॒तः सु॑मख॒ मा मृध॑स्कः ॥ ४ ॥
१८३ आ विं॒शत्या॑ त्रिं॒शता॑ याह्य॒र्वाङा च॑त्वारिं॒शता॒ हरि॑भिर्युजा॒नः ।
आ प॑ञ्चा॒शता॑ सु॒रथे॑भिरिन्द्रा ऽऽ ष॒ष्ट्या स॑प्त॒त्या सो॑म॒पेय॑म् ॥ ५ ॥
१८४ आशी॒त्या नव॒त्या या॑ह्य॒र्वाङा श॒तेन॒ हरि॑भिरु॒ह्यमा॑नः ।
अ॒यं हि ते॑ शु॒नहो॑त्रेषु॒ सोम॒ इन्द्र॑ त्वा॒या परि॑षिक्तो॒ मदा॑य ॥ ६ ॥
१८५ मम॒ ब्रह्मे॑न्द्र या॒ह्यच्छा॒ विश्वा॒ हरी॑ धु॒रि धि॑ष्वा॒ रथ॑स्य ।
पु॒रु॒त्रा हि वि॒हव्यो॑ ब॒भूथा॒स्मिञ्छू॑र॒ सव॑ने मादयस्व ॥ ७ ॥
१८६ न म॒ इन्द्रे॑ण स॒ख्यं वि यो॑ष॒दस्मभ्य॑मस्य॒ दक्षि॑णा दुहीत ।
उप॒ ज्येष्ठे॒ वरू॑थे॒ गभ॑स्तौ प्रा॒येप्रा॑ये जिगी॒वांसः॑ स्याम ॥ ८ ॥

अर्थ— [१८२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हमारे द्वारा (हूयमानः) बुलाया गया तू इस (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानपर (द्वाभ्यां) दो (हरिभ्यां) घोडोंके द्वारा (आ याहि) आ। (चतुर्भिः) चार और (षड्भिः) छः घोडों द्वारा (आ) आ। (सुमख) उत्तम यज्ञवाले ! तेरे लिये (अयं) यह सोम (सुतः) तैयार है, तू इसे पी। मेरी (मृधः) हिंसा (मा कः) मत कर ॥ ४ ॥

[१८३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (विंशत्या) बीस और (त्रिंशता) तीस घोडों द्वारा हमारे (अर्वाङ्) पास (आ याहि) आ। (चत्वारिंशता) चालीस (हरिभिः) घोडोंसे (युजानः) युक्त तू हमारे पास (आ) आ। (पञ्चाशताः) पचास (षष्ट्या) साठ और (सप्तत्या) सत्तर (सुरथेभिः) रथके योग्य उत्तम, घोडोंसे (सोम पेयं) सोमरस पीनेके लिये (आ) आ ॥ ५ ॥

[१८४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वाया) तेरे (मदाय) आनन्दके लिये (शुनहोत्रेषु) सुन्दर पात्रोंमें (ते) तुझे (अयं हि) यह (सोमः) सोम (परिसिक्तः) डाला गया है। तू (आशीत्या) अस्सी (नवत्या) नब्बे और (शतेन) सौ (हरिभिः) घोडोंसे (उह्यमानः) ढोये जाकर हमारे (अर्वाङ्) सम्मुख (आ आ याहि) आ ॥ ६ ॥

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मम) मेरे (ब्रह्म) स्तोत्रकी (अच्छ) ओर (याहि) जा। इसके लिये (रथस्य) रथके (धुरि) जूएमें अपने (विश्वा) सारे (हरी) घोडोंको (धिष्व) जोड। तू (पुरुत्रा) बहुत स्थानोंमें (वि हव्यः) निमंत्रित (बभूथ) हुआ है, हे (शूर) शूर इन्द्र ! तू हमारे (अस्मिन्) इस (सवने) यज्ञमें (मादयस्व) आनन्द मना ॥ ७ ॥

[१८६] (इन्द्रेण) इन्द्रके साथ (मे) मेरी (सख्यं) मित्रता (न वि योषत्) न टूटे। (अस्य) इस इन्द्रका (दक्षिणा) दान (अस्मभ्यं) हमको (दुहीत) प्राप्त होता रहे। हम उसके (वरूथे) उत्तम (ज्येष्ठे) दाहिने (गभस्तौ) हाथके (उप) समीप रहा करें। इसकी कृपासे हम (प्राये प्राये) प्रत्येक युद्धमें (जिगीवांसः) विजयी (स्याम) हों ॥ ८ ॥

१ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप— हम उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहें अर्थात् हमपर इन्द्रका वरदहस्त सदा रहे।

भावार्थ— इन्द्रके रथमें अनेक घोडे जोडे हैं। यह हमेशा उत्तम यज्ञ अर्थात् उपकार आदि उत्तम कर्म करनेवाला है। यह जिस यजमानका सोम पीता है, उसकी हर तरहसे सहायता करता है ॥ ४ ॥

इन्द्र अपने अनेक घोडोंसे युक्त रथपर इधर उधर जाता है ॥ ५ ॥

इन्द्र सौ घोडोंके रथपर सवार होकर सोम पीने जाता है ॥ ६ ॥

इन्द्र रथमें घोडे जोड कर यज्ञोंमें आता और वहाँ सोम पीकर तृप्त होता है ॥ ७ ॥

१८७ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

[१९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८८ अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥

१८९ अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तो ऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद् वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥

अर्थ— [१८७] (इन्द्र) इन्द्र ! (ते) तेरी (सा मघोनी दक्षिणा) वह ऐश्वर्यसे भरी दक्षिणा (नूनं) निश्चयसे (जरित्रे) स्तोताके लिए (वरं प्रति दुहीयत्) श्रेष्ठ धन प्राप्त कराती है । तू ऐसी दक्षिणा हम (स्तोतृभ्यः) स्तोताओंके लिए (शिक्ष) दे । (मा अति धक्) हमें छोडकर मत दे अर्थात धन देते समय हमारा त्याग मत कर । तेरी कृपासे (नः) हमें (भगः) ऐश्वर्य प्राप्त हो । हम (सु वीरः) अच्छे वीरोंवाले स्तोतालोग (विदथे) यज्ञमें तेरे लिए (बृहत्) बडा स्तोत्र (वदेम) बोलें ॥ ९ ॥

[१९]

[१८८] (यस्मिन्) जिस (प्र दिवि) प्रकाशमें (वावृधानः) बढते हुए (इन्द्रः) इन्द्र (ब्रह्मण्यन्तः च) और ज्ञानवान् (नरः) नेताओंने (ओकः) निवास (दधे) किया, (अस्य) इस उस (अन्धसः) अन्नके (मदाय) आनंदके लिये इन्द्र द्वारा इस (मनीषिणः) बुद्धिमान् (सुवानस्य) यजमानका (प्रयसः) सोम (अपायि) पिया गया है ॥ १ ॥

१ ब्रह्मण्यन्तः नरः दिवि ओकः दधे— ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रकाशमें निवास करते हैं ।

[१८९] (यत्) जब (नदीनां) नदियोंकी (प्रयांसि च) धारायें, (वयः न) पक्षी जैसे अपने (स्वसराणि अच्छ) घोंसलोंकी ओर जाता है वैसे, (प्र चक्रमन्त) बहने लगी, उस समय ही (अस्य) इस (मध्वः) सोमके रससे (मन्दानः) प्रसन्न (वज्रहस्तः) हाथमें वज्र धारण किये (इन्द्रः) इन्द्रने (अर्णः वृतं) जलको रोक रखनेवाले (अहिं) अहिको (वि वृश्चत्) छिन्न-भिन्न किया ॥ २ ॥

भावार्थ— जो इन्द्रका मित्र रहता है, उसका दान प्राप्त करता और उसके समीप रहा करता है वह प्रत्येक युद्धमें विजयी होता है । उसपर इन्द्रकी हमेशा कृपा रहती है ॥ ८ ॥

इन्द्र यज्ञके समय स्तोताओंको दक्षिणा देता है । वह दक्षिणा बहुत धनकी होती है । वह स्तोताको ही प्राप्त होती है दूसरेको नहीं, क्योंकि वे इन्द्रको बढानेवाले बडे बडे स्तोत्र बोलते है ॥ ९ ॥

इन्द्र पुराने कालोंकी भांति इन कालोंमें भी यज्ञोंसे तृप्त होता है । ज्ञानी जन सदा प्रकाशमें निवास करते हैं ॥ १ ॥

इन्द्र वृत्रका घेरा तोडकर जलको बहा देता है । उस समय, जिस प्रकार शामके समय पक्षीगण अपने घोंसलोंकी तरफ उडते हैं, उसी प्रकार पानीके प्रवाह बहने लगे ॥ २ ॥

१९० स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत् सूर्यं विदद् गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥
१९१ सो अप्रतीनि मनवे पुरूणी-न्द्रो दाशद् दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४ ॥
१९२ स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा ऽऽ देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद् रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१९०] (माहिनः अहि-हा सः इन्द्रः) पूजनीय तथा अहिको मारनेवाले उस इन्द्रने (अपां अर्णः) जलके प्रवाहोंको (अच्छ समुद्रं प्रैरयत्) सीधे समुद्रकी ओर बहाया, (सूर्यं अजनयत्) सूर्यको प्रकट किया, (गाः विदद्) गायोंको प्राप्त किया अथवा किरणोंको प्रकट किया तथा (अक्तुना) अपने तेजसे (अह्नां वयुनानि साधत्) दिनमें होनेवाले कर्मोंकी साधना की ॥ ३ ॥

[१९१] (यः) जो इन्द्र (सूर्यस्य सातौ) सूर्यको प्राप्त करनेकी (पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः) स्पर्धा करनेवाले वीरोंके लिए (सद्यः अतसाय्यः भूत्) शीघ्र ही आश्रय करने योग्य है, ऐसा (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (दाशुषे मनवे) दान देनेवाले मनुष्यके लिए (पुरूणि अप्रतीनि दाशद्) बहुतसे उत्तम धनोंको देता है और (वृत्रं हन्ति) वृत्रको मारता है ॥ ४ ॥

१ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्— दान देनेवालेको वह अप्रतिम धन देता है ।
२ पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः सद्यः अतसाय्यः भूत्— स्पर्धा करनेवाले वीरोंके द्वारा वह तत्काल आश्रय करने योग्य है ।

[१९२] (यत्) जब (दशस्यन् एतशः) दान देनेवाले एतशने (अस्मै) इस इन्द्रके लिए (गुहद् अवद्यं रयिं) गुप्त और प्रशंसनीय धनको (अंशं न) जैसे पिता पुत्रको अपने धनका अंश देता है, उसी प्रकार (भरत्) दिया, तब (स्तवान् देवः सः इन्द्रः) प्रशंसित और तेजस्वी उस इन्द्रने (सुन्वते मर्त्याय) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके लिए (सूर्यं आ रिणक्) सूर्यको प्रकाशित किया ॥ ५ ॥

१ स देवः इन्द्रः सुन्वते मर्त्याय सूर्यं आरिणक्— उस इन्द्र देवने यज्ञ करनेवाले याजकके लिये सूर्यको प्रकाशित किया । सूर्योदयके पश्चात् यज्ञ होते हैं ।

भावार्थ— मेघको तोडनेवाले इन्द्रने जलप्रवाहोंको समुद्रतक पहुंचाया । सूर्य मेघोंमें छिपा हुआ था, वह मेघ दूर होनेसे प्रकट हुआ । सूर्यकी किरणें प्रकाशने लगी । प्रकाशसे दिनके कार्य होने लगे ॥ ३ ॥

युद्ध करनेवाले वीर जब युद्ध करनेके लिए जाते हैं, तब सब इसीका आश्रय लेकर जाते हैं और तब वह इन्द्र उस युद्धमें उन्हींकी रक्षा करके बहुत धन प्रदान करता है, जो स्वयं दूसरोंको धन देकर गरीबोंकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

यह इन्द्र दानियोंको अपने धनका भाग उसी प्रकार देता है जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रको । इस प्रकार धन देता हुआ इन्द्र यज्ञ करनेके लिए सूर्यको प्रकाशित करता है । जिस समय सूर्य प्रकाशित होता है, उस समय यज्ञ किए जाते हैं ॥ ५ ॥

१९३ स रन्धयत् सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥
१९४ एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत् साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥
१९५ एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥
१९६ नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥

अर्थ — [१९३] (सदिवः सः) तेजस्वी उस इन्द्रने (सारथये कुत्साय) सारथि कुत्सके लिए (शुष्णं, अशुषं, कुयवं) शुष्ण, अशुष और कुयव नामक असुरोंको (रन्धयत्) मारा, तथा (इन्द्रः) इन्द्रने (दिवोदासाय) दिवोदासके लिए (शम्बरस्य) शम्बरासुरके (नव नवतिं पुरः वि ऐरयत्) निन्यानवे नगरोंको तोडा ॥ ६ ॥

[१९४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (श्रवस्याः वाजयन्तः) अन्न तथा बलकी इच्छा करनेवाले हम (त्मना) स्वयं ही (ते) तेरे लिए (एव) ही (न उचथं अहेम) अभी स्तोत्र पहुंचाते हैं । तेरी (तत् साप्तं अश्याम) उस मित्रताको प्राप्त करें, तूने (अदेवस्य पीयोः) देवोंको न माननेवाले तथा हिंसा करनेवाले दुष्टके (वधः ननमः) शस्त्रको दूर किया ॥ ७ ॥

१ तत् साप्तं अश्याम— तेरी मित्रताको हम प्राप्त करें । " साप्तपदीनं सख्यम् " (सायण)
२ अ-देवस्य पीयोः वधः ननमः— तूने देवोंको कुछ भी न समझनेवाले तथा हिंसा करनेवाले शत्रुके शस्त्रको दूर किया । " णमु प्रह्वत्वे "

[१९५] हे (शूर इन्द्र) शूरवीर इन्द्र ! (ते) तेरे लिए (गृत्समदाः) बुद्धिमान् गृत्समदोंने (मन्म) स्तोत्रोंको (अवस्यवः वयुनानि न) जिस प्रकार अपनी सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले लोग कर्मोंको करते हैं उसी प्रकार (तक्षुः) बनाया (नवीयः ते) नये स्तोता (ब्रह्मण्यन्तः) ब्रह्मज्ञानी (सुक्षितिं, इषं, ऊर्जं, सुम्नं अश्युः) उत्तम निवास, अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

१ अवस्यवः वयुनानि तक्षुः— ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिये उत्तम कर्म करते हैं ।
२ ब्रह्मण्यन्तः सुक्षितिं इषं ऊर्जं सुम्नं अश्युः— ज्ञानी उत्तम निवास स्थान, अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं ।

[१९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सा ते दक्षिणा) वह तेरी दक्षिणा (जरित्रे मघोनी) स्तोताके लिए धन देनेवाली है । और (वरं प्रति दुहीयत्) वरणीय पदार्थोंको भी दे । ऐसी दक्षिणा तू (स्तोतृभ्यः शिक्ष) स्तोताओंको दे, (भगः) ऐश्वर्यवान् तू (नः मा अति धक्) हमें छोडकर और किसीको न दे, (सु-वीराः विदथे बृहद् वदेम) उत्तम सन्तानवाले हम यज्ञमें उत्तम स्तोत्र बोलें ॥ ९ ॥

भावार्थ— तेजस्वी इन्द्र (कुत्स) बुराईको दूर करनेवाले सज्जनकी रक्षा करनेके लिए (शुष्ण) प्रजाओंका शोषण करनेवाले (अशुष) स्वयं कभी शोषित न होनेवाले (कुयव) धान्यको नष्ट करनेवाले असुरोंको मारता है । उसी प्रकार देवोंके दास अर्थात् भक्तके लिए शम्बरको मारता है और इस प्रकार दुष्टोंका संहार करके सज्जनोंकी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो देवको कुछ भी नहीं समझते और सबको हिंसा करनेके लिए तत्पर रहते हैं, ऐसे दुष्टोंको इन्द्र नष्ट करता है । इस इन्द्रकी मित्रता अवश्य प्राप्त करनी चाहिए ॥ ७ ॥

निरहंकारी ब्रह्मज्ञानी जन अपनी सुरक्षाके लिए इन्द्रकी स्तुति करते हैं और ऐसे ज्ञानी जन हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! वह तेरा दान स्तुति कर्ताको धन देनेवाला है । वह तेरा दान श्रेष्ठ पदार्थोंको देवे । तू धनवान् हमें छोडकर किसी दूसरेको दान न दे । यज्ञमें उत्तम स्तोत्र गायें और युद्धमें उत्तम वीर बनकर हम शत्रुको अच्छा उत्तर दें ॥ ९ ॥

[२०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ३ विराड्रूपा ।]

१९७ वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
१९८ त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥
१९९ स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥

[२०]

अर्थ— [१९७] (विपन्यवः) स्तुति करनेवाले (मनीषा दीध्यतः) बुद्धिसे तेजस्वी होकर (त्वावतः सुम्नं इयक्षन्तः) तुझसे सुखकी इच्छा करके (वयं) हम, हे इन्द्र ! (ते वयः) तेरे लिए हविको (वाजयुः रथं न) अन्नकी इच्छा करनेवाले जिस प्रकार रथको अन्नसे भरते हैं, उसी प्रकार (प्रभरामहे) हम भरपूर भर देते हैं, (नः विद्धि) हमारा यह कार्य जान ॥ १ ॥

१ विपन्यवः मनीषा दीध्यतः— ज्ञानी बुद्धिको धारण करते हैं ।

२ सुम्नं इयक्षन्तः— अपना मन उत्तम हो ऐसा चाहते हैं ।

[१९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं त्वाभिः ऊती नः) तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर, क्योंकि (त्वायतः जनान् अभिष्टिपाः असि) तेरे पास आनेवाले मनुष्योंको तू चारों ओरसे रक्षा करनेवाला है, (यः त्वा नक्षति) जो तेरी सेवा करता है, ऐसे (दाशुषः त्वं इनः) दानशीलका तू संरक्षक है तथा (वरूता) उसके शत्रुओंका निवारक है तथा तू (इत्था-धीः) इस प्रकार बुद्धिमान् है ॥ २ ॥

१ त्वं त्वाभिः ऊती नः— तू अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारा रक्षण कर ।

२ त्वायतः जनान् अभिष्टि-पा असि— अपने पास आनेवाले जन का तू रक्षण करता है ।

३ यः त्वा नक्षति, दाशुषः त्वं इनः— जो तुझे देता है उसका तू रक्षक है ।

[१९९] (यः शंसन्तं) जो वर्णन करनेवाले (यः शशमानं) तथा जो प्रशंसा करनेवाले, (पचन्तं) हवि पकानेवाले (स्तुवन्तं च) स्तुति करनेवाले यजमानको (ऊती) अपने संरक्षणोंसे (प्रनेषत्) दुःखोंसे पार ले जाता है, ऐसा (युवा जोहूत्रः सखा शिवः सः इन्द्रः) तरुण, सहायार्थ पास बुलाने योग्य, मित्र तथा सुखदायी वह इन्द्र (नः नरां पाता अस्तु) हम प्रजाओंका रक्षा करनेवाला हो ॥ ३ ॥

१ स्तुवन्तं ऊती प्रनेषत्— स्तुति करनेवालेको अपने संरक्षणों द्वारा दुःखोंसे पार ले जाता है ।

२ युवा जोहूत्रः सखा शिवः— तरुण, पास बुलाने योग्य, मित्र और कल्याण करनेवाला है ।

३ स नरां पाता— वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है ।

भावार्थ— परमात्माकी उपासना करनेवाले भक्त हमेशा उत्तम बुद्धि प्राप्त करते हैं और उस बुद्धिसे वे ऐसे कर्म करते हैं कि जिनसे उन्हें सुख प्राप्त होता है । ये बुद्धिमान् व्यक्ति सदा इन्द्रको हविसे तृप्त करते रहते हैं ॥ १ ॥

जो समर्पणकी भावना लेकर इन्द्रके पास जाता है, इन्द्र उस भक्तकी हरतरहसे रक्षा करता है । वह ऐसे मनुष्योंकी ही सेवा करता है, जो मनुष्योंकी दान आदि देकर सेवा करते हैं । संचय करनेवालोंका वह शत्रु है ॥ २ ॥

यह शक्तिशाली इन्द्र स्तुति करनेवालेकी रक्षा करता है और उसे हर तरहके दुःखोंसे पार करता है । वह सदा तरुण रहता है । सभीका हित करता है और इसीलिए सब उसकी उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

×

२०० वर्धुं स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन् पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
२०१ सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥
२०२ स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद् दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥

---

[२००] (यस्मिन्) जिस इन्द्रके आश्रयमें रहकर मनुष्य (पुरा वावृधुः) पहले बढे और उन्होंने अपने शत्रुओंको (शाशदुः) मारा, ऐसे (तं इन्द्रं स्तुषे) उस इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ (तं गृणीषे) उस इन्द्रका गुण वर्णन करता हूँ (इयानः सः) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होता हुआ वह इन्द्र (ब्रह्मण्यतः नूतनस्य आयोः) ज्ञानी तथा नवीन आयुवाले तरुण मनुष्यके (वस्वः कामं) धनकी इच्छाको (पीपरत्) पूर्ण करे ॥ ४ ॥

१ यस्मिन् वावृधुः शासदुः तं स्तुषे— मनुष्य जिसके आश्रयसे बढे और उन्होंने शत्रुको दूर किया, उस इन्द्रकी स्तुति करता हूं।

२ सः ब्रह्मण्यतः आयोः वस्वः कामं पीपरत्— वह ज्ञानी मनुष्यकी धनेच्छाको पूर्ण करता है।

[२०१] (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (अंगिरसां उचथा जुजुष्वान्) अंगिरसोंकी स्तुतियोंको सुनता है, और उन्हें (गातुं इष्णन्) अच्छे मार्गपर जानेके लिए प्रेरित करता है तथा उनके (ब्रह्म) ज्ञानको (तूतोत्) बढाता है, (स्तवान्) प्रशंसित होता हुआ वह इन्द्र (सूर्येण उषसः मुष्णन्) सूर्यके पाससे उषाओंको चुराता हुआ (अश्नस्य पूर्व्याणि शिश्नथत्) अश्नासुरके पुराने नगरोंको गिराता है ॥ ५ ॥

१ अश्न— बहुत खानेवाला, दूसरोंको न देकर स्वयं खानेवाला।

[२०२] (देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः) तेजस्वी, यशस्वी, प्रसिद्ध, अत्यन्त सुन्दर इन्द्र (मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्) विचारशील मनुष्यके रक्षणके लिए हमेशा तैय्यार रहता है, (साह्वान् स्वधावान्) शत्रुओंको हरानेवाले बलवान् इन्द्रने (अर्शसानस्य दासस्य) लोगोंको कष्ट देनेवाले दास नामक असुरके (प्रियं शिरः अव भरद्) प्रिय सिरको काट डाला ॥ ६ ॥

१ देवः श्रुतः नाम दस्मतमः इन्द्रः मनुषे ऊर्ध्वः भुवत्— तेजस्वी प्रसिद्ध यशस्वी सुन्दर इन्द्र मानवके लिये तैय्यार रहता है।

२ साह्वान् स्वधावान् दासस्य प्रियं शिरः अवभरत्— शत्रुओंका पराभव करनेवाले बलवान् इन्द्रने शत्रुका प्रिय सिर काटा।

भावार्थ— इस इन्द्रके अनुकूल रहकर मनुष्य बढते और शक्तिशाली होते हैं। वे इसीके आसरे रहते हैं। जो मनुष्य इस इन्द्रके आगे आत्मसमर्पण कर देता है, उसकी हरतरहकी सुरक्षा यह इन्द्र करता है ॥ ४ ॥

इन्द्र ज्ञानियोंकी प्रार्थना सुनता है और उन्हें उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है। उनके ज्ञानको बढाता है। यह इन्द्र सूर्यके उदय होते ही उषाओंको नष्ट कर देता है और सबको खाजानेवाले अश्नासुरको नष्ट करता है। सूर्यके उदय होते ही उषाओंका लोप हो जाता है। अश्नासुर रात्रि है, जो सबको खा जाती है, रातके समय अन्धकारमें सब विलीन हो जाता है, यही उसका खाना है। इस रात्रिको सूर्य नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

यह तेजस्वी और प्रसिद्ध यशस्वी इन्द्र विचारशील बुद्धिमान् मनुष्यकी रक्षा करनेके लिए हमेशा तैय्यार रहता है। पर जो शत्रु है, जो लोगोंको नष्ट करता है अथवा जो दूसरोंको दास बनाना चाहता है, उसे यह इन्द्र काट डालता है। बुद्धिमानोंकी रक्षा और दुष्टोंका निर्दलन आवश्यक है ॥ ६ ॥

२०३ स वृ॒त्र॒हेन्द्रः॑ कृ॒ष्णयो॑नीः पुरंद॒रो दासी॑रैरय॒द्वि ।
अज॑नय॒न्मन॑वे॒ क्षाम॒पश्च॑ स॒त्रा शंसं॒ यज॑मानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
२०४ तस्मै॑ तव॒स्य१॒॑मनु॑ दायि स॒त्रे-न्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।
प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धु-र्ह॒त्वी दस्यू॒न्पुर॒ आय॑सी॒र्नि ता॑रीत् ॥ ८ ॥
२०५ नू॒नं सा ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे दु॑ही॒यदि॑न्द्र॒ दक्षि॑णा म॒घोनी॑ ।
शिक्षा॑ स्तो॒तृभ्यो॒ माति॑ ध॒ग्भगो॑ नो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ [२०३] (सः वृत्र-हा पुरं-दरः इन्द्रः) उस वृत्रको मारनेवाले तथा शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने (कृष्णयोनीः दासीः वि ऐरयद्) कृष्णासुरकी सभी स्त्रियोंको मार डाला, (मनवे क्षां अपः च अजनयत्) मनुष्यके लिए जमीन और जलको उत्पन्न किया, ऐसा इन्द्र, (यजमानस्य सत्रा शंसं तूतोत्) यजमानके प्रशंसनीय कर्मको बढावे ॥७॥

१ वृत्रहा पुरंदरः इन्द्रः दासीः वि ऐरयत्— वृत्रनाशक और शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने सब दासस्त्रियोंको मारा। इससे दासोंका वंश नष्ट हुआ।

२ मनवे क्षां अपः च अजनयत् — मनुष्योंके लिये भूमि और जलका निर्माण किया।

[२०४] (अर्णसातौ) युद्धमें (तस्मै इन्द्राय) उस इन्द्रको (देवेभिः सत्रा तवस्यं अनु दायि) देवोंने संगठित होकर बल प्रदान किया, (यत् अस्य बाह्वोः) जब इसकी भुजाओंने (वज्रं प्रति धुः) वज्रको धारण किया, तब इन्द्रने (दस्यून् हत्वी) दस्युओंको मारकर उनके (आयसीः पुरः नि तारीत्) लोहेसे बने हुए नगरोंको भी नष्ट किया ॥८॥

१ अर्णसातौ इन्द्राय देवेभिः सत्रा तवसं अनुदायि— युद्धमें इन्द्रके लिये देवोंने संघटित होकर सामर्थ्य दिया।

२ बाह्वोः वज्रं प्रति धुः— बाहुओंने वज्रको धारण किया।

३ दस्यून् हत्वी— दुष्टोंको मारा।

४ आयसीः पुरः नितारीत्— लोहेके नगरोंको तोडा।

५ आयसीः पुरः— पत्थर और लोहेसे बने नगर, मजबूत दिवारोंके नगर, किले।

[२०५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (ते सा दक्षिणा) तेरी वह दक्षिणा (जरित्रे मघोनी) स्तोताके लिए धन देनेवाली है (वरं प्रति दुहीयद्) और श्रेष्ठताको देती है, ऐसी दक्षिणा तू (स्तोतृभ्यः शिक्ष) स्तोताओंको दे (भगः नः मा अति धक्) ऐश्वर्य हमें न छोडे, हम (सुवीरा विदथे बृहद् वदेम) उत्तम वीर सन्तानवाले होकर यज्ञमें स्तोत्र बोलें ॥९॥

१ भगः नः मा अति धक् — धन हमें न छोडे, धन हमारे पास सदा रहे।

२ विदथे सुवीराः बृहत् वदेम— युद्धमें उत्तम वीर बनकर हम शत्रुको बडा उत्तर दें।

भावार्थ— जो दुष्ट शत्रु हैं, उनका समूलनाश करना चाहिए। उनके वंशमें कोई भी नहीं रहे, इसलिए उस वंशको आगे चलानेवाली स्त्रियोंका भी नाश करना चाहिए। इन्द्र बडा बुद्धिमान् है, वह यह बात जानता है, इसीलिए वह दासकी स्त्रियोंको भी नष्ट करता है और मानवोंकी रक्षा करता है ॥ ७ ॥

जब इन्द्र असुरोंसे युद्ध करनेके लिए जाता है, तब सभी देव संघटित होकर उसकी सहायता करते हैं, उसे बल प्रदान करते हैं और इन्द्र भी देवोंके उस संघटित बलसे युक्त होकर असुरोंके लोहेके समान सुदृढ किलोंको भी तोड डालता है। इसी प्रकार जब राजा शत्रुओंपर आक्रमण करे, तब सभी विद्वान् और प्रजायें परस्पर संघटित होकर उस राजाकी सहायता करें। उस समय पारस्परिक कलहोंसे दूर रहें। उस बलसे युक्त होकर राजा इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह सुदृढसे सुदृढ शत्रुका भी मुकाबला आसानीसे कर सकता है और उनके किलोंको नष्ट कर सकता है। वैदिक समयके शत्रुके नगर लोहे और पत्थरोंके मजबूत शक्तिशाली नगर थे। जिनको आर्य तोडते थे और शत्रुको परास्त करते थे, और इन नगरोंपर अपना अधिकार जमाते थे ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! वह तेरा धन हमें कभी न छोडे, ऐश्वर्यसे भी हम कभी हीन न हों। ऐसी दक्षिणा अर्थात् धन और चतुरताके बलसे सम्पन्न होकर हम युद्धमें शत्रुओंको अच्छा उत्तर दें अर्थात् शत्रुओंको परास्त करें ॥ ९ ॥

[२१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- जगती; ५ त्रिष्टुप्।]

२०६ विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥

२०७ अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

२०८ सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥

२०९ अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥

---

[२१]

अर्थ— [२०६] हे मनुष्य ! तुम (विश्वजिते, धनजिते, स्वः-जिते) विश्वको जीतनेवाले, शत्रुओंके धनको जीतनेवाले, सुखोंको जीतनेवाले, (सत्राजिते, नृ-जिते उर्वराजिते) संगठित होकर जीतनेवाले, वीर मनुष्योंको जीतनेवाले, भूमिको जीतनेवाले, (अश्वजिते, गोजिते, अप्-जिते) घोडे, गाय और पानीको जीतनेवाले (यजताय इन्द्राय) पूजनीय इन्द्रके लिए (हर्यतं सोमं भर) तेजस्वी सोमको दो ॥ १ ॥

[२०७] (अभिभुवे अभिभंगाय) शत्रुओंको हरानेवाले तथा उन्हें तोडनेवाले (वन्वते अषाळ्हाय) धन लूटनेवाले, शत्रुओंके लिये असह्य (सहमानाय वेधसे) स्वयं शत्रुओंके आक्रमणोंको सहनेवाले, ज्ञानी (तुविग्रये वह्नये) मोटी गर्दनवाले, आगे ले जानेवाले (दुः-तरीतवे सत्रासाहे) शत्रुओंके लिए जिसको हराना अशक्य है, संगठित होकर लडनेवाले (इन्द्राय नमः वोचत) इन्द्रके लिए नमस्कार कहो, उसका गुण वर्णन करो ॥ २ ॥

[२०८] (सत्रासाहः जनभक्षः) संगठित होकर लडनेवाला, मनुष्योंका हित करनेवाला, (जनंसहः च्यवनः) शत्रुजनोंको हरानेवाला, शत्रुको अपने स्थानसे हटानेवाला (युध्मः जोषं अनु उक्षितः) योद्धा, प्रीतिपूर्वक सोम पीनेवाला, (वृतंचयः सहुरिः) घेरनेवाले शत्रुका मारनेवाला, तेजस्वी यह इन्द्र (विक्षु आरितः) प्रजाओंमें सहायार्थ बुलाया जाता है, ऐसे (इन्द्रस्य कृतानि वीर्या प्र वोचं) इन्द्रके द्वारा किये गए पराक्रमोंका वर्णन करता हूँ ॥ ३ ॥

[२०९] (अनानुदः) दान देनेमें जिससे आगे कोई नहीं निकल सकता, ऐसे (वृषभः) बलवान् (दोधतः वधः) संसारको कंपानेवाले शत्रुको मारनेवाले, (गम्भीरः) गम्भीर (ऋष्वः) महान् (असमष्टकाव्यः) असाधारण कुशल, (रध्रचोदः) समृद्धियोंके प्रेरक (श्नथनः) शत्रुओंको मारनेवाले (वीळितः) दृढ अंगोंवाले (पृथुः) प्रसिद्ध तथा (सु-यज्ञः) उत्तम कर्म करनेवाले (इन्द्रः) इन्द्रने (उषसः स्वः जनत्) उषाओंको और सूर्यको प्रकट किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सभी प्रकारके ऐश्वर्योंको जीतनेवाला होकर हर-तरहके सुख प्राप्त करता है। यह अपने बलके कारण समस्त विश्वका स्वामी है। ऐसे इन्द्रका हर तरहसे सत्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

यह इन्द्र शत्रुओंको हरानेवाला, उन्हें नष्ट करनेवाला पर स्वयं शत्रुओंके लिए असह्य और ज्ञानी है। वह हमेशा संगठित होकर लडता है। ऐसे इन्द्रकी पूजा करनी चाहिए ॥ २ ॥

यह इन्द्र प्रथम अपनी सेनाओंको संगठित करता है, फिर मानवोंका हित करनेके लिए शत्रुओंसे युद्ध करता है। तब लोग उसके पराक्रमोंका वर्णन करते हैं। इसी प्रकार राजा प्रथम अपनी सेनाओंको संगठित करके अपनी प्रजाओं और उत्तम मनुष्योंका हित करनेके लिए शत्रुओंसे युद्ध करता है, तब लोग उस राजाकी प्रशंसा करते हैं ॥ ३ ॥

यह इन्द्र दान देनेमें सर्वश्रेष्ठ बलवान्, शत्रुका नाशक और असाधारण ज्ञानी है। इसका शरीर सुदृढ है, यह उत्तम कर्म करनेवाला है। वह अपने सामर्थ्यसे उषाओं और सूर्यको प्रकट करता है ॥ ४ ॥

२१० यज्ञेनं गातुमप्तुरों विविद्रिरे धियों हिन्वा॒ना उशिजों मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अंवस्यव इन्द्रें हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
२११ इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥

[२२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- १ अष्टिः; २-३ अतिशक्करी; ४ अष्टिः अतिशक्करी वा ।]

२१२ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

अर्थ— [२१०] (धियः हिन्वानाः) स्तुतियोंको करते हुए (उशिजः) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा (अप्तुरः) शीघ्रतासे कर्म करनेवाले (मनीषिणः) बुद्धिमानोंने (यज्ञेन) यज्ञके द्वारा (गातुं विविद्रिरे) योग्य मार्गको जाना, तथा (इन्द्रे गाः हिन्वानाः) इन्द्रके लिए स्तुतियां करते हुए (अवस्यवः) अपने रक्षणकी इच्छा करनेवालोंने (अभिस्वरा निषदा) इन्द्रकी स्तुतिके द्वारा तथा उसके पास रहकर (द्रविणानि आशत) धनोंको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

१ उशिजः अप्तुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे— समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान् यज्ञके द्वारा योग्य मार्गका पता लगाते हैं ।

[२११] हे इन्द्र ! हमें (श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि) श्रेष्ठ धन दे, तथा (अस्मे दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं) हमें बलकी प्रसिद्धि तथा सौभाग्य दे, (रयीणां पोषं तनूनां अरिष्टिं) धनोंका पोषण तथा शरीरकी नीरोगता (वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं) वाणीमें मधुरता तथा दिनोंकी उत्तमता प्रदान कर ॥ ६ ॥

१ श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि— हमें श्रेष्ठ धन दे ।
२ दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं अस्मे धेहि— बलका विचार और सौभाग्य हमें दे ।
३ रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं— धनोंकी वृद्धि और शरीरोंकी नीरोगिता दे ।
४ वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं— वाणीकी मधुरता और दिनोंकी उत्तमता दे ।

[२२]

[२१२] (महिषः) पूज्य (तुविशुष्मः) बहुत बलशाली (तृपत्) तृप्त करनेवाले इन्द्रने (विष्णुना) विष्णुके साथ (त्रिकद्रुकेषु सुतं) लकडीके बर्तनोंमें निचोड कर रखे गए (यवाशिरं) जौके आटे तथा दूधसे युक्त (सोमं यथावशत् अपिबद्) सोमको जी भरकर पिया । (सः) उसने (महां उरूं) बहुत प्रसिद्ध इसे (महि कर्म कर्तवे) बडे बडे काम करनेके लिए (ममाद) उत्साहित किया, (सः सत्यः देवः इन्दुः) उस अविनाशी चमकनेवाले सोमने (सत्यं देवं इन्द्रं सश्चद्) अविनाशी और तेजस्वी इन्द्रको उत्साहित किया ॥ १ ॥

१ सः महि कर्म कर्तवे ममाद— उस सोमने बडा कार्य करनेके लिये उस इन्द्रको उत्साहित किया ।

भावार्थ— समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कर्मोंको करनेवाले बुद्धिमान् जन यज्ञके द्वारा उत्तम मार्गोंका पता लगाते हैं और उस पर चलकर इन्द्रकी मित्रता प्राप्त करते हैं । उत्तम मार्गोंपर चलनेवालोंसे ही इन्द्र मित्रता करता है ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यकी वाणीमें मधुरता होती है, जो लोगोंसे मीठी वाणीसे बोलता है उसके सभी दिन सुखसे बीत जाते हैं, उसका कोई शत्रु नहीं होता, उसे हर तरहके धन प्राप्त होते हैं, उस धनसे उत्तम सौभाग्य मिलता है, उस सौभाग्यके कारण वह हमेशा प्रसन्न मनवाला होता है, और जिसका मन प्रसन्न होता है, उसका शरीर भी हृष्टपुष्ट होता है । अतः वाणीकी मधुरता ही सब सुखोंका मूल है ॥ ६ ॥

इन्द्र विष्णुके साथ सोम पीता है और सोमपानसे उत्साहित होकर वह इन्द्र अनेक तरहके श्रेष्ठ कर्म करता है, इसी लिए वह पूजनीय होता है ॥ १ ॥

२१३ अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

२१४ साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद् देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥

२१५ तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद् विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२१३] (अध) सोम पीनेके बाद (त्विषीमान्) तेजस्वी इन्द्रने (ओजसा) बलने (क्रिविं युधा अभि अभवत्) क्रिवि नामक असुरको युद्धसे मारा, तथा वह (प्रवावृधे) वृद्धिको प्राप्त हुआ, फिर इन्द्रने (अस्य मज्मना) अपने बलसे (रोदसी आ अपृणद्) द्यावापृथिवीको भर दिया। इन्द्रने सोमके दो भाग करके (अन्यं जठरे अधत्त) एक भागको पेटमें डाल लिया तथा (ईं) दूसरे भागको (प्र अरिच्यत) देवोंके लिए रख दिया, (सः सत्यः देवः इन्दुः) वह अविनाशी चमकनेवाला सोम (एनं सत्यं देवं इन्द्रं सश्चद्) इस अविनाशी तेजस्वी इन्द्रको उत्साहित करता है ॥ २ ॥

[२१४] हे इन्द्र ! तू (क्रतुना साकं जातः) बुद्धिके साथ उत्पन्न हुआ, (ओजसा साकं ववक्षिथ) बलके साथ तू सब स्थान पर गया, (वीर्यैः साकं वृद्धः) पराक्रमसे तू बढा, (मृधः सासहिः) शत्रुओंको तूने मारा, तथा तू ही (विचर्षणिः) सबको देखनेवाला है, तू ही (स्तुवते) स्तोताके लिए (राधः) सम्पत्ति तथा (काम्यं वसुः) इच्छित धनको (दाता) देनेवाला है। (सः सत्यः देवः इन्दुः) वह अविनाशी और चमकनेवाला सोम (एनं सत्यं देवं इन्द्रं सश्चद्) इस अविनाशी और तेजस्वी देवको उत्साहयुक्त करता है ॥ ३ ॥

१ क्रतुना साकं जातः— वह इन्द्र बुद्धिके साथ उत्पन्न होता है।
२ वीर्यैः साकं वृद्धः— पराक्रमसे बढता है।

[२१५] हे इन्द्र ! (यत्) जो तूने (शवसा) बलसे (देवस्य असुं रिणन्) देवोंके मारनेवाले असुरके प्राणोंको निकालते हुए (अपः प्रारिणाः) पानियोंको बहाया, हे (नृत) नेता इन्द्र ! (तव) तेरे द्वारा (कृतं त्यत् प्रथमं पूर्व्यं) किया गया वह प्रसिद्ध तथा अद्भुत (नर्यं) और मनुष्योंका हितकारी (अपः) कर्म (दिवि प्रवाच्यं) द्युलोकमें प्रशंसनीय है, इस इन्द्रने (विश्वं अदेवं ओजसा अभिभुवत्) सारे असुरोंको अपने बलसे जीता, (ऊर्जं विदात्) बल प्राप्त किया तथा (शतक्रतुः) सैकडों काम करनेवाले उस इन्द्रने (इषं विदात्) अन्न प्राप्त किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— सोम प्रकाशमान्, तेजस्वी और उत्साह देनेवाला है। यह सोम पीनेके बाद इन्द्र और अधिक तेजस्वी होकर युद्धमें असुरोंको मारता है और अपने यशका विस्तार करता है ॥ २ ॥

यह इन्द्र बुद्धिसे सम्पन्न होकर जन्म लेता है। अपने ओज और तेजके कारण सर्वत्र जाता है और पराक्रमके कारण बढता है अर्थात् इसके पराक्रमके कारण इसकी कीर्ति चारों ओर फैलती है। यह सर्वद्रष्टा है, इससे कुछ भी नहीं छिपाया जा सकता ॥ ३ ॥

इस इन्द्रने शत्रुओंको मार कर जलोंको बहाया, यह इसका कर्म अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस नेताका यह कर्म बहुत अद्भुत और मनुष्योंके लिए हितकारी है ॥ ४ ॥

[२३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता-बृहस्पतिः; १, ५, ९, ११, १७, १९ ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः- जगती; १५, १९ त्रिष्टुप् ।]

२१६ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥

२१७ देवाश्चित् ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥

२१८ आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥

[२३]

अर्थ— [२१६] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके अधिपति देव ! हम (गणानां गणपतिं) गणोंके गणपति (कवीनां कविं) दूरदर्शियोंके भी दूरदर्शी (उपमश्रवः तमं) अत्यंत उपमा देनेवाले यशसे युक्त (ज्येष्ठराजं) श्रेष्ठ तेजस्वी (ब्रह्मणां) मंत्रोंके स्वामी (त्वा) तुमको (हवामहे) बुलाते हैं। (नः शृण्वन् ऊतिभिः सादनं आ सीद) हमको सुनते हुए रक्षण साधनोंके साथ हमारे घरमें आकर हमारी सहायता करनेके लिये बैठो ॥ १ ॥

[२१७] हे (असुर्य बृहस्पते) बलवान् बृहस्पते ! (प्रचेतसः देवाः चित्) विशेष ज्ञानवाले देवोंने भी (ते यज्ञियं भागं आनशुः) तेरे यज्ञके भागको प्राप्त कर लिया । (ज्योतिषा महः सूर्यः उस्राः इव) तेजसे महान् सूर्य जैसे किरणोंको उत्पन्न करता है, वैसे ही तू (विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि) सम्पूर्ण ज्ञानोंको प्रकाशित करनेवाला है ॥ २ ॥

१ असुर्य बृहस्पते प्रचेतसः देवाः चित् ते यज्ञियं भागं आनशुः— हे बलवान् बृहस्पते ! प्रकृष्ट ज्ञानवाले देवोंने भी तेरे यज्ञके भागको प्राप्त कर लिया ।

२ ज्योतिषा महः सूर्यः उस्राः इव, विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि— अपने तेजसे, महान् सूर्य जैसे किरणोंको फैलाता है, उसी प्रकार बृहस्पति सारे ज्ञानोंका प्रसार करता है । प्रकाशमें लाता है ।

[२१८] (बृहस्पते) हे बृहस्पति देव ! (परिरापः तमांसि च आ विबाध्य) चारों ओरसे दुःख देनेवालोंका और अन्धकारोंका प्रतिबन्ध करके (ऋतस्य ज्योतिष्मन्तं, भीमं) यज्ञके प्रकाश करनेवाले, भयंकर (अ-मित्र-दम्भनं, रक्षः हनं) शत्रुओंको दबानेवाले, राक्षसोंको मारनेवाले (गोत्रभिदं स्वःविदं) पर्वतीय किलोंको तोडनेवाले और सुखको देनेवाले (रथं आतिष्ठसि) रथ पर बैठते हो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ब्रह्मणस्पते ! ज्ञानियोंमें भी विशेष ज्ञानी गणोंके गणपति, दूरदर्शियोंके भी दूरदर्शी, अनुपमेय, श्रेष्ठ, तेजस्वी तुझको हम सहायतार्थ बुलाते हैं । हमारी स्तुतिको सुनते हुए रक्षण साधनोंके साथ हमारे घरमें सहायतार्थ आकर बैठो ॥ १ ॥

उत्तम ज्ञानवाले सभी विद्वान् यज्ञके भागी होते हैं । देवगण इस बृहस्पति अर्थात् ज्ञानके स्वामीका आश्रय लेकर उत्तम कर्म करते हैं । यह बृहस्पति ज्ञानका स्वामी होनेसे सर्वत्र ज्ञानको उसी प्रकार फैलाता है, जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणोंको । ज्ञानका प्रकाश सर्वत्र फैले ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! तुम दुःख देनेवालोंका और अन्धकारोंका बाध करके यज्ञके प्रकाश करनेवाले भयंकर, शत्रुओंको दबानेवाले, राक्षसोंको मारनेवाले, पर्वतीय किलोंको तोडनेवाले, सुखको देनेवाले रथ पर बैठते हो । बृहस्पति ज्ञानी होनेके साथ साथ शूरवीर भी है । इसी प्रकार राष्ट्रके सभी ज्ञानी शूरवीर भी हों ॥ ३ ॥

२१९ सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत् ते महित्वनम् ॥ ४ ॥
२२० न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥

अर्थ— [२१९] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (यः तुभ्यं दाशात्) जो तुम्हें हवि देता है, उस (जनं सु-नीतिभिः नयसि त्रायसे) जनको अच्छी नीतिके मार्गसे ले जाते हो, और उसकी रक्षा करते हो (तं अंहः न अश्नवत्) उसको पाप नहीं लगता। तुम (ब्रह्म-द्विषः तपनः मन्यु-मीः असि) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंको तपानेवाले तथा शत्रुके क्रोधके नाशक हो । (ते तत् महि महित्वनं) तुम्हारी उस प्रकार बडी महिमा है ॥ ४ ॥

१ बृहस्पते ! यः तुभ्यं दाशात्, जनं सु-नीतिभिः नयसि, त्रायसे— हे बृहस्पते ! जो तुम्हें हवि देता है, उसे तुम अच्छे मार्गोंसे ले जाते हो, और उसकी रक्षा करते हो ।

२ तं अंहः न अश्नवत्— उसको पाप नहीं लगता ।

३ ब्रह्म-द्विषः तपनः मन्यु-मीः असि— ज्ञानके द्वेष करनेवालोंको तपानेवाले, तथा शत्रुके क्रोधके नाश करनेवाले हो ।

४ ते तत् महि महित्वनम्— तुम्हारी वह बडी महिमा है ।

[२२०] (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके अधिष्ठाता देव ! (सु-गोपा यं रक्षसि) अच्छी तरह पालन करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, (अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे) उससे सम्पूर्ण हिंसकोंको तुम दूर करते हो, इसी प्रकार (तं अंहः न दुरितं न) उसको पाप और बुरे कर्म दुःख नहीं देते, (अरातयः कुतश्चन न तितिरुः) शत्रु भी कहींसे भी उसको कष्ट नहीं पहुंचाते (द्वयाविनः न) और वंचक भी ठग नहीं सकते ॥ ५ ॥

१ ब्रह्मणस्पते ! सुगोपा यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे— हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तम पालना करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, इससे संपूर्ण हिंसक दूर करते हो ।

२ तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः कुतश्चन न तितिरुः, द्वयाविनः न— पाप, बुरे कर्म, शत्रु भी कहींसे उसकी हिंसा नहीं कर सकते, न ठग ही ठग सकते हैं ।

३ द्वयाविन्— दो प्रकारके व्यवहार करनेवाला, अन्दर एक और बाहर एक, ठग ।

४ अ-रातिः— अदानशील व्यक्ति । कंजूस ।

भावार्थ— यह बृहस्पति दानशील मनुष्योंकी हर तरहसे रक्षा करता है, वह जिसकी रक्षा करना चाहता है, उसे वह उत्तम मार्गोंमें ले जाता है । जब वह उत्तम मार्गमें चलता हुआ उत्तम कर्म करता है, तब उससे कोई भी पापकर्म नहीं होता । इस प्रकार वह कभी पापी नहीं होता ॥ ४ ॥

यह ब्रह्मणस्पति जिस मनुष्यकी रक्षा करता है, उसका पाप कुछ नहीं बिगाड सकते । हिंसक भी उससे दूर रहते हैं और दो प्रकारका व्यवहार करनेवाले अर्थात् अन्दरसे कुछ और बाहरसे कुछ और ही व्यवहार करनेवाले भी उसे कुछ हानि नहीं पहुंचा सकते ॥ ५ ॥

२२१ त्वं नो॑ गो॒पाः प॑थि॒कृद् वि॑चक्ष॒णस्तव॑ व्र॒ताय॑ म॒तिभि॑र्जरामहे ।
बृह॑स्पते॒ यो नो॑ अ॒भि ह्वरो॑ द॒धे स्वा तं म॑र्मर्तु दु॒च्छुना॒ हर॑स्वती ॥ ६ ॥
२२२ उ॒त वा॒ यो नो॑ म॒र्चया॒दना॑गसो ऽराती॒वा मर्तः॑ सानु॒को वृकः॑ ।
बृह॑स्पते॒ अप॒ तं व॑र्तया प॒थः सु॒गं नो॑ अ॒स्यै दे॒ववी॑तये कृधि ॥ ७ ॥
२२३ त्रा॒तारं॑ त्वा त॒नूनां॑ हवाम॒हे ऽव॑स्पर्तरधिव॒क्तार॑मस्म॒युम् ।
बृह॑स्पते देव॒निदो॒ नि ब॑र्हय॒ मा दु॒रेवा॒ उत्त॑रं सु॒म्नमुन्न॑शन् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२२१] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (त्वं नः गोपाः पथि-कृत्) तुम हमारे रक्षक तथा हमारे मार्ग दर्शानेवाले हो। हम (वि-चक्षणः तव व्रताय मतिभिः जरामहे) बुद्धिमान् तुम्हारे नियमोंके अनुसार चलनेके लिए अपनी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं। (यः नः ह्वरः अभिदधे) जो हमारे प्रति कुटिलता धारण करते हैं, (तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु) उसको उसकी अपनी ही दुर्बुद्धि शीघ्र ही मार दे, नष्ट कर दे ॥ ६ ॥

१ बृहस्पते ! त्वं नः गोपाः पथि-कृत्— हे देव ! तुम हमारे रक्षक तथा हमारे लिए उत्तम मार्गके बनानेवाले हो।

२ वि-चक्षणः तव व्रताय मतिभिः जरामहे— हम बुद्धिमान् तुम्हारे व्रतके लिए अपनी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं।

३ यः नः ह्वरः अभि दधे— जो हमारे प्रति कुटिलता धारण करता है।

४ तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु— उसको उसकी अपनी ही दुर्बुद्धि शीघ्र मार दे। उसको नष्ट कर दे।

[२२२] (बृहस्पते) हे बृहस्पति देव ! (उत वा अरातीवा मर्तः) अथवा शत्रुके समान आचरण करनेवाला मनुष्य (स-अनुकः वृकः वा) अथवा क्रोधित भेडियेके समान क्रूर (अन् आगसः नः मर्चयात्) निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे, (तं पथः अप वर्तय) उसको हमारे मार्गसे दूर कर। (अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि) इस देवत्व प्राप्तिकी ओर जानेका मार्ग हमारे लिए सुगम बना ॥ ७ ॥

१ बृहस्पते ! उत वा अरातीवा मर्तः, स-अनुकः, वृकः अन्-आगसः नः मर्चयात्— बृहस्पते ! शत्रु मनुष्य या क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे।

२ तं पथः अपवर्तय— तो उसको हमारे मार्गसे दूर कर।

३ अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि— इस देवत्व प्राप्तिके मार्गको हमारे लिए सुगम बना।

[२२३] (अवः पर्तः बृहस्पते) रक्षणोंसे पार करनेवाले बृहस्पते ! हम (तनूनां त्रातारं, अधि वक्तारं अस्मयुं, त्वा हवामहे) शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारे पास आनेवाले तुझको बुलाते हैं, (देव-निदः नि-बर्हय) देवोंके निन्दकोंका नाश कर, (दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्) दुर्बुद्धिवाले शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त करें, अपितु वे नष्ट हो जायें ॥ ८ ॥

१ अवः पर्तः बृहस्पते ! तनूनां त्रातारं, अधिवक्तारं अस्मयुं त्वा हवामहे— रक्षणोंसे पार करानेवाले बृहस्पते ! हमारे शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारी सहायता करनेवाले तुझको हम अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

२ देव-निदः नि-बर्हय— देवनिन्दकोंका तू नाश कर।

३ दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्— दुष्ट शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त हों, अपितु वे नष्ट हो जायें।

भावार्थ— परमात्माके द्वारा बताये गये उत्तम मार्गपर चलने और उसके द्वारा बनाये गये नियमोंपर चलनेके लिए परमात्माकी उपासना करनी चाहिए। परमात्माकी भक्ति करनेसे मनुष्य सदा उत्तम आचरण ही करता है। तब ऐसे परमात्मभक्तके प्रति जो कुटिलताका व्यवहार करता है, वह कुटिल मनुष्य अपने ही कामोंसे स्वयं मारा जाता है ॥ ६ ॥

हे बृहस्पति देव ! यदि कोई शत्रु अथवा क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप हमको दुःख दे, तो हमारी उनसे रक्षा कर और जिससे हम देवत्वकी प्राप्ति कर सकें, ऐसा सरल मार्ग हमें बता ॥ ७ ॥

२२४ त्वया॑ व॒यं सु॒वृधा॑ ब्रह्मणस्पते स्पा॒र्हा वसु॑ मनु॒ष्या द॑दीमहि ।
या नो॑ दू॒रे त॒ळितो॒ या अरा॑तयो॒ऽभि सन्ति॑ ज॒म्भया॒ ता अ॑न॒प्नसः॑ ॥ ९ ॥
२२५ त्वया॑ व॒यमु॑त्त॒मं धी॑महे॒ वयो॒ बृह॑स्पते॒ पप्रि॑णा॒ सस्नि॑ना यु॒जा ।
मा नो॑ दुः॒शंसो॑ अभिदि॒प्सुरी॑शत॒ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्तारिषीमहि ॥ १० ॥

अर्थ— [२२४] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानाधिपते! (त्वया सु-वृधा स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि) तुझसे उत्तम प्रकार बढनेवाले स्पृहणीय धनको हम मनुष्योंके लिए प्राप्त करना चाहते हैं। (याः दूरे याः तळितः) जो दूर और जो पास (अरातयः) शत्रु (नः अभि सन्ति) हमारे चारों तरफ हैं, (ताः अन्-अप्नसः जम्भय) उन कर्महीनोंको नष्ट करो ॥ ९ ॥

१ ब्रह्मणस्पते ! त्वया सु-वृधा स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि— ज्ञानाधिपते ! तुझसे उत्तम प्रकार बढनेवाले स्पृहणीय धनको हम मनुष्योंके लिए प्राप्त करना चाहते हैं।

२ याः दूरे याः तळितः अरातयः नः अभि सन्ति ताः अन्-अप्नसः जम्भय— जो दूर तथा जो पास शत्रु हमारे चारों ओर हैं, उन कर्महीनोंका विनाश करो।

[२२५] हे (बृहस्पते) वाणीके स्वामी देव ! (पप्रिणा, सस्निना, युजा त्वया वयं) पूर्णता करनेवाले प्रेमी तुझ जैसे सहायकसे मिलकर हम (उत्तमं वयः धीमहे) उत्तम बलको प्राप्त करें। (दुःशंसः अभि-दिप्सुः नः मा ईशत) अपकीर्तीवाला, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाला, हमारे ऊपर स्वामित्व न करे। (सु-शंसाः मतिभिः प्र तारिषीमहि) प्रशंसनीय रहकर हम अपनी बुद्धियोंसे दुःखके पार हो जावें ॥ १० ॥

१ बृहस्पते ! पप्रिणा सस्निना युजा त्वया वयं उत्तमं वयः धीमहे— हे वाणीके स्वामी देव ! कामनाओंके पूरक, शुद्ध सहायक, तेरे द्वारा हम उत्तम अन्नको या बलको प्राप्त करें।

२ दुःशंसः, अभि-दिप्सुः नः मा ईशत— अपकीर्तीवाला, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाला हमारा स्वामी न हो।

३ सु-शंसाः मतिभिः प्र तारिषीमहि— उत्तम प्रशंसित हम अपनी बुद्धियोंके द्वारा दुःखसे पार हो जावें।

पप्रिन्— पूरक- " पृ पालनपूरणयोः "

भावार्थ— यह बृहस्पति अपनी रक्षाके साधनोंसे अपने भक्तोंको दुःखोंसे पार करता है, वह मनुष्योंकी सहायता करता है, इस लिए उसे सभी अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं। वह देवनिन्दकों अर्थात् नास्तिकोंको कभी सुख नहीं देता, उन्हें वह पूर्णतया नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

हम देवोंसे धन मनुष्योंका हित करनेके लिए ही प्राप्त करें। जो भी धन हमारे पास हो उससे हम अपने स्वार्थकी पूर्ति कभी न करें अपितु समाजकी उन्नतिमें ही उस धनका व्यय करें। समाजमें कोई निष्क्रिय होकर परावलम्बी न हो, क्योंकि जो कर्महीन होते हैं, ब्रह्मणस्पति उन्हें नष्ट कर देता है। कर्महीन मनुष्य समाजके शत्रु हैं, अतः ऐसोंका नाश अवश्य होना चाहिए ॥ ९ ॥

बृहस्पति वाणीका स्वामी है। वह अपने उपासकोंकी हर कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसकी सहायता प्राप्त करके हम उत्तम अन्न प्राप्त करें। उस अन्नसे हम इतना पुष्ट हों कि हमें कोई भी अपना दास न बना सके और हम अपनी बुद्धियोंके द्वारा हर दुःखसे पार हो जायें ॥ १० ॥

२२६ अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद् दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११ ॥
२२७ अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक् तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥
२२८ भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३ मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥ १३ ॥
२२९ तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत् कृष्व यदसत् त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥

अर्थ— [२२६] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामी ! तुम (अन् अनु-दः) तुम्हारे जैसा दूसरा दाता नहीं है । (वृषभः, आहवं जग्मिः) तुम बलवान्, संग्राममें जानेवाले (शत्रुं नि तप्ता, पृतनासु सासहिः) शत्रुको तपानेवाले, युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले (ऋण-या, वीळुहर्षिणः उग्रस्य चित् दमिता सत्यः असि) ऋणको दूर करनेवाले, उत्तम हर्षवाले, शत्रुके वीरका भी दमन करनेवाले और सत्य हो ॥ ११ ॥

[२२७] (यः अदेवेन मनसा रिषण्यति) जो आसुरीवृत्तिवाले मनसे हमें पीडित करता है जो (उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति) निर्दयी, अपनेको बहुत समर्थ मानता हुआ स्तोताओंको मारता है, (बृहस्पते) हे बृहस्पते ! (तस्य वधः नः मा प्रणक्) उसका शस्त्र हमारे ऊपर न आजाये (दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि कर्म) दुष्ट मार्गसे जानेवाले, स्पर्धा करनेवालेके क्रोधको हम दूर करते हैं ॥ १२ ॥

१ यः अदेवेन मनसा रिषण्यति— जो आसुरी मनसे हमें दुःख देता है ।
२ उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति— जो भयंकर, अपनेको बहुत बडा मानता हुआ स्तोताओंको मारना चाहता है ।
३ बृहस्पते ! तस्य वधः नः मा प्रणक्— हे बृहस्पते ! उसका शस्त्र हमारे ऊपर न आ पडे ।
४ दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि-कर्म— दुष्ट मार्गसे चलनेवाले बलशालीके क्रोधको हम निकम्मा करते हैं ।

[२२८] (भरेषु हव्यः) संग्रामोंमें सहायार्थ बुलाने योग्य (नमसा उप सद्यः) नमस्कार करके समीप बैठने योग्य (वाजेषु गन्ता) संग्रामोंमें जानेवाले (धनं धनं सनिता) धनोंके दाता (अर्यः बृहस्पतिः) श्रेष्ठ बृहस्पति (अभि-दिप्स्वः विश्वा इत् मृधः) दबानेकी इच्छा करनेवाले सम्पूर्ण हिंसक शत्रुओंको (रथान् इव) रथोंके समान (वि आ ववर्ह) विशेष रूपसे निर्बल कर देता है ॥ १३ ॥

[२२९] (बृहस्पते) वाणीके देव ! (ये दृष्टवीर्यं त्वा) जिसका पराक्रम स्पष्ट दीखता है ऐसे तुम्हारी जो (निदे दधिरे) निन्दा करते हैं उन (रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तप) राक्षसोंको अत्यधिक तापदायक तेजसे तपा । (ते उक्थ्यं यत् असत्) तुम्हारा प्रशंसनीय जो पराक्रम है, (तत् आविष्कृष्व) उसको प्रकट करो, (परिरापः वि अर्दय) चारों ओरसे बाधा करनेवाले शत्रुओंका वध करो ॥ १४ ॥

१ दृष्टवीर्यं त्वा ये निदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तप— हे बृहस्पते ! जिसका पराक्रम स्पष्ट दीखता है वैसे तुम्हारी जो निन्दा करते हैं, उनको अपने तापदायक तेजसे तपाओ, उनको कष्ट पहुंचाओ ।

भावार्थ— ज्ञानाधिपति देव ! तुम्हारे जैसा दाता अन्य कोई नहीं है, तुम बलवान्, युद्धमें जानेवाले, शत्रुको तापना देनेवाले, युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाले, ऋणसे छुडानेवाले, उत्तम हर्षयुक्त, शत्रु वीरका भी दमन करनेवाले और सच्चे हो ॥ ११ ॥

जो समर्थ न होते हुए भी स्वयंको बहुत समर्थ मानता है, ऐसे आसुरवृत्तिवाले मनुष्य हमें नष्ट न कर पायें । ऐसे शत्रुओंके शस्त्रास्त्र हमारे पास न आवें । अर्थात् इनके द्वारा प्रयुक्त किए गए शस्त्र हमें नुकसान न पहुंचायें । इसके विपरीत हममें ऐसा आत्मशक्ति दो कि हम अपने शत्रुके सभी बलोंको बेकार कर दें ॥ १२ ॥

संग्रामोंमें सहायार्थ बुलाने योग्य, नमस्कार करके पास जाने योग्य, संग्रामोंमें जानेवाले, धनोंके दाता, श्रेष्ठ बृहस्पतिने, हमें दबानेकी इच्छा करनेवाली सम्पूर्ण हिंसक शत्रु सेनाको रथोंके समान, विशेष रूपसे निर्बल कर दिया ॥ १३ ॥

जो देवोंकी निन्दा करता है, उनका अपमान करता है, उन्हें देवगण अपनी शक्तिसे अत्यधिक पीडित करते हैं ॥ १४ ॥

२३० बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद् वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु ।
यद् दी॒दय॒च्छव॑स ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम् ॥ १५ ॥
२३१ मा नः॑ स्ते॒नेभ्यो॒ ये अ॒भि द्रु॒हस्प॒दे निरा॒मिणो॑ रि॒पवोऽन्ने॑षु जागृ॒धुः ।
आ दे॒वाना॒मोह॑ते॒ वि व्रयो॑ हृ॒दि बृह॑स्पते॒ न प॒रः साम्नो॑ विदुः ॥ १६ ॥
२३२ विश्वे॑भ्यो॒ हि त्वा॒ भुव॑नेभ्य॒स्परि॒ त्वष्टाज॑नत्॒ साम्नः॑साम्नः क॒विः ।
स ऋ॑ण॒चिदृ॑ण॒या ब्रह्म॑ण॒स्पति॑र्द्रु॒हो ह॒न्ता म॒ह ऋ॒तस्य॑ ध॒र्तरि॑ ॥ १७ ॥

अर्थ— [२३०] (ऋत-प्र-जात बृहस्पते) सरलताके लिए प्रसिद्ध बृहस्पते ! (अर्यः यत् अति अर्हात्) ज्ञानी जिस धनका अधिक सत्कार करता है, जो (जनेषु द्यु-मत्, क्रतु-मत् विभा-ति) मनुष्योंमें तेजस्वी और कर्म करनेवाला होकर प्रकाशित होता है, (यत् शवसा दीदयत्) जो बलसे प्रकाशित होता है (तत् चित्रं द्रविणं अस्मासु धेहि) वह विलक्षण धन हमें दो ॥ १५ ॥

[२३१] हे (बृहस्पते) बृहस्पति देव ! (ये अभि द्रुहः पदे नि-रामिणः रिपवः) जो द्रोह करनेमें नित्य आनन्द माननेवाले शत्रु (अन्नेषु जागृधुः) अन्नोंकी प्राप्तिकी इच्छा रखते हैं और (हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते) हृदयमें देवताओंका निरादर करते हैं, (साम्नः परः न विदुः) और केवल शान्त वचन बोलनेसे अधिक कुछ नहीं जानते, उन (स्तेनेभ्यः नः मा) चोरोंसे हमें डर न हो ॥ १६ ॥

१ ये अभि द्रुहः पदे नि-रामिणः रिपवः अन्नेषु जागृधुः— जो द्रोह करनेमें नित्य आनन्द माननेवाले शत्रु अन्नोंको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं ।
२ हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते— हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं ।
३ साम्नः परः न विदुः— शान्त वचन बोलनेके सिवाय जो कुछ और नहीं जानते हैं ।
४ स्तेनेभ्यः नः मा— ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो ।

[२३२] (त्वष्टा त्वा विश्वेभ्यः भुवनेभ्यः परि अजनत्) प्रजापतिने तुझको सम्पूर्ण लोकोंसे श्रेष्ठ बनाया, अतः तुम (साम्नः साम्नः कविः) प्रत्येक सामके कवि हो । (सः ब्रह्मणस्पतिः महः ऋतस्य धर्तरि ऋणचित्) वह ब्रह्मणस्पति महान् यज्ञके धारण कर्त्ताका ऋण चुकानेवाला (ऋण-या) ऋणसे छुडानेवाला और (द्रुहः हन्ता) द्रोहिको मारनेवाला है ॥ १७ ॥

१ त्वष्टा त्वा विश्वेभ्यः भुवनेभ्यः परि अजनत्— त्वष्टाने तुमको सम्पूर्ण प्राणियोंसे श्रेष्ठ बनाया है ।
२ साम्नः साम्नः कविः— तुम सम्पूर्ण सामोंके कवि हो ।
३ सः ब्रह्मणस्पतिः महः ऋतस्य धर्तरि ऋणचित्, ऋणया, द्रुहः हन्ता— वह ब्रह्मणस्पति बडे यज्ञके धारणकर्ताका ऋण चुकानेवाला, और उसे ऋणसे मुक्त करनेवाला, तथा शत्रुको मारनेवाला है ।

भावार्थ— हे सरलतासे कार्य करनेके लिये ही जो उत्पन्न हुआ है ऐसे बृहस्पते ! ज्ञानी जिस धनका अत्यधिक आदर करते हैं, जो जनोंको तेजस्वी करके उनसे शुभ कर्म कराता है, वह धन हममें प्रकाशित होता रहे । हमारे पास रहे । जो अपने बलसे लोगोंको तेजस्वी करता है, उस विलक्षण धनको हमें दो ॥ १५ ॥

जो सदा देवभक्तोंसे द्रोह करते हैं, तथा उन्हें पीडा देनेमें ही जो आनन्द मानते हैं, इसके बावजूद भी जो अन्न प्राप्त करना चाहते हैं, तथा जो हमेशा मीठी वाणी बोला करते हैं अर्थात् मीठी वाणी बोल बोलकर दूसरोंको ठगा करते हैं, ऐसे छिपे हुए चोरों और दुष्टोंसे भी हमें कोई भय न हो ॥ १६ ॥

ब्रह्मणस्पति ज्ञानका अधिपति देवता है । देवोंमें यह सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि प्रजापतिने ही इसे सर्वश्रेष्ठ बनाया है । इसी लिए यह सम्पूर्ण ऋचाओंका ज्ञानी है, सभी ज्ञान इसमें रहते हैं । यह देव यज्ञ करनेवालोंको ऋणसे मुक्त करके उन्हें सम्पन्न बनाता है ॥ १७ ॥

२३३ तव॑ श्रि॒ये व्य॑जिहीत॒ पर्व॑तो॒ गवां॑ गो॒त्रमु॒दसृ॑जो॒ यद॑ङ्गिरः ।
इन्द्रे॑ण यु॒जा तम॑सा॒ परी॑वृतं॒ बृह॑स्पते॒ निर॒पामौ॑ब्जो अर्ण॒वम् ॥ १८ ॥

२३४ ब्रह्म॑णस्पते॒ त्वम॒स्य य॒न्ता सू॒क्तस्य॑ बोधि॒ तन॑यं च जिन्व ।
विश्वं॒ तद् भ॒द्रं यदव॑न्ति दे॒वा बृ॒हद् व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ १९ ॥

[२४]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ब्रह्मणस्पतिः, १, १० बृहस्पतिः, १२ इन्द्राब्रह्मणस्पती । छन्दः- जगती; १२, १६ त्रिष्टुप् ।]

२३५ से॒माम॑वि॒ड्ढि प्रभृ॑तिं॒ य ईशि॑षे॒ ऽया वि॑धेम॒ नव॑या म॒हा गि॒रा ।
यथा॑ नो मी॒ढ्वान्त्स्तव॑ते॒ सखा॒ तव॒ बृह॑स्पते॒ सीष॑धः॒ सोत नो॑ म॒तिम् ॥ १ ॥

अर्थ— [२३३] (अङ्गिरः बृहस्पते) हे अंगिर बृहस्पते ! (गवां पर्वतः) गौओंसे युक्त पर्वत (तव श्रिये वि अजिहीत) तुम्हारे आश्रयमें गए, और (यद् गोत्रं उत् असृजः) जब गोरक्षकको ऊपर भेजा, तब तुमने (इन्द्रेण युजा) इन्द्रकी सहायतासे (तमसा परीवृतं) अन्धकारसे घिरे हुए (अपां अर्णवं) जलोंके समुद्रको (निर् औब्जः) नीचे मुखवाला किया अर्थात् पानी बरसाया ॥ १८ ॥

[२३४] (यन्ता ब्रह्मणस्पते) नियामक ब्रह्मणस्पते ! (त्वं अस्य सूक्तस्य बोधि) तुम इस सूक्तको जानो । (तनयं च जिन्व) हमारे पुत्रको पुष्ट करो । (देवाः यत् अवन्ति तत् विश्वं भद्रं) देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसका उत्तम कल्याण होता है (सु-वीराः विदथे बृहद् वदेम) उत्तम सन्तान वाले हम यज्ञमें बडी महिमाका वर्णन करेंगे ॥ १९ ॥

१ देवाः यत् अवन्ति, तत् विश्वं भद्रम्— देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सब प्रकारसे कल्याण होता है ।

[२४]

[२३५] हे (बृहस्पते) बृहस्पति देव ! (यः ईशिषे) जो तुम शासन करते हो (सः इमां प्रभृतिं अविड्ढि) वह तुम इस यज्ञको अपने विचारमें लो । हम (अया नवया महा गिरा विधेम) इस नवीन बडी स्तुतिसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, (उत नः मीढ्वान्) और हममें जो स्तोता (तव सखा यथा स्तवते) तुम्हारे मित्रके समान तुम्हारी स्तुति करता है, (स नः मतिं सीषध) वह हमारी बुद्धिको उत्तम करे ॥ १ ॥

भावार्थ— अंगरस विद्याके ज्ञाता बृहस्पते ! गौओंवाले पर्वत तुम्हारे आश्रयमें गए । और जब गौओंके रक्षकोंको तुमने ऊपर भेज दिया, तब तुमने इन्द्रकी सहायतासे अन्धकारसे घिरे हुए जलोंके समुद्रको-मेघोंको नीचे मुखवाला किया, अर्थात् पानी बरसाया ॥ १८ ॥

यह बृहस्पति स्तोत्रोंको समझकर अपने भक्तोंके पुत्रोंको हर तरहसे पुष्ट करता है । देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका हर तरहसे कल्याण होता है, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता । अतः हम भी यज्ञमें इस देवकी महिमाका गान करें ॥ १९ ॥

जो तुम शासन करते हो, वह तुम इस उत्तम यज्ञको अपने विचारमें ले लो । हम इस नवीन बडी स्तुतिसे तुम्हारी प्रशंसा करते हैं और हमारे बीचमें स्तुति करनेवाला तुम्हारा मित्र जिस प्रकार तुम्हारी स्तुति करता है । वह हमारी बुद्धिको उत्तम करे ॥ १ ॥

२३६ यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोता—दर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पति—रा चाविशद् वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥ २ ॥
२३७ तद् देवानां देवतमाय कर्त्व—मश्रध्नन् दृळ्हाव्रदन्त वीळिता ।
उद् गा आजदभिनद् ब्रह्मणा वल—मगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः ॥ ३ ॥
२३८ अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पति—र्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥ ४ ॥
२३९ सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद् या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२३६] (यः ब्रह्मणस्पतिः) जिस ब्रह्मणस्पतिने (नन्त्वानि ओजसा नि अनमत्) नमनके योग्य शत्रुओंको अपने बलसे नम्र किया (उत) और (मन्युना शम्बराणि वि अदर्दः) क्रोधसे शम्बरोंको फाड डाला। (अ-च्युता प्र अच्यवयत्) न हिलनेवालोंको हिला दिया, (वसुमन्तं पर्वतं च वि आविशत्) और धनवाले पर्वतमें घुस गया ॥ २ ॥

[२३७] (देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्) देवोंमें सबसे अधिक दिव्यशक्तिवाले ब्रह्मणस्पतिका वह कर्म है, कि उसने (दृळ्हा अश्रथ्नन्) दृढ किलोंको शिथिल कर दिया। (वीळिता अव्रदन्त) सुदृढ शत्रुको नरम बना दिया। (गाः उत् आजत्) गायोंको बाहर निकाला, (ब्रह्मणा वलं अभिनत्) ज्ञान द्वारा बल असुरको मारा, (तमः अगूहत्) अन्धकारको दूर किया (स्वः वि अचक्षयत्) सूर्यको प्रकाशित किया ॥ ३ ॥

१ देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्— देवोंमें अत्यधिक दिव्यशक्तिवाले ब्रह्मणस्पतिका वह पराक्रम है।

[२३८] (ब्रह्मणस्पतिः) ज्ञानके अधिपति देवने (अश्म-आस्यं यं मधु-धारं ओजसा अभि अतृणत्) पत्थर जैसे मुखवाले हौज जैसे मीठी धारावाले मेघको बलसे तोडा। (तं एव विश्वे स्वः-दृशः पपिरे) उसीको सम्पूर्ण सूर्यकी किरणोंने पीया और उससे (उत्सं उद्रिणं साकं बहु सिसिचुः) हौज जैसे पानीवाले मेघको एक साथ बहुत सींचा ॥ ४ ॥

[२३९] (ब्रह्मणस्पतिः या वयुना चकार) ब्रह्मणस्पतिने जिन कर्मोंको किया। (सना ता का चित् भवीत्वा भुवना दुरः माद्भिः शरद्भिः वः वरन्त) सनातन रूप उनको तथा हुए और होनेवाले मेघोंके द्वारोंको मास और वर्षोंसे तुम्हारे लिए खोला है। (अ-यतन्ता अन्यत् अन्यत् इत् चरतः) विना प्रयत्नके ही दोनों लोग परस्पर व्यवहारसे जलोंका उपभोग करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस ब्रह्मणस्पतिने नमनके योग्य शत्रुको अपने बलसे नम्र किया। और अपने क्रोधसे शम्बरोंको फाड डाला, न हिलने वाले शत्रुओंको हिला दिया। धनवाले पर्वतमें घुस गया। धनके खजानेको प्राप्त किया। वह ब्रह्मणस्पति पूज्य है ॥ २ ॥

ब्रह्मणस्पति बडा ही पराक्रमी है, यह उसीका पराक्रम है कि उसने दृढ बन्धनोंको शिथिल कर दिया, सुदृढ किलोंको नरम बना दिया, गायोंको बाहर निकाला, वज्रसे बलासुरको मारा, अन्धकारका नाश किया, और आदित्यको प्रकाशित किया ॥ ३ ॥

ब्रह्मणस्पतिने पत्थर जैसे मुखवाले मेघोंको तोडा और तोडकर पानी बरसाया, जब वह पानी बरसकर पृथ्वी पर पडा तब उस पानीको सूर्य किरणोंने पिया अर्थात् वह पानी सूर्य किरणोंके द्वारा सोख लिया गया, तब वह भाप बनकर ऊपर गया और फिर मेघ पानीसे भर गया ॥ ४ ॥

ब्रह्मणस्पति अपने कर्मोंसे मेघोंको जलसे भर देता है, और उन जलसे भरे हुए मेघोंको वर्ष भरमें एक बार खोल देता है अर्थात् रुके हुए जलोंके द्वारोंको वह वर्षमें एक बार खोल देता है, तब पानीका प्रवाह बह निकलता है, इस जलोंसे सभी लोकोंका हित होता है और सभी इन जलोंका उपभोग करते हैं ॥ ५ ॥

२४० अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशु—र्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् ।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुन—र्यत उ आयन् तदुदीयुराविशम् ॥ ६ ॥

२४१ ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुन—रात आ तस्थुः कवयो महस्पथः ।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥ ७ ॥

२४२ ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पति—र्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२४०] (अभि-नक्षन्तः ये पणीनां गुहा-हितं तं परमं निधिं अभि आनशुः) चारों तरफ जाते हुए जिन देवोंने पणियों द्वारा गुहामें रखे हुए उस उत्तम गौरूपी खजानेको उत्तमतासे प्राप्त किया । (ते विद्वांसः अनृ-ऋता प्रति-चक्ष्य, आ-विशं यतः उ आयन् तत् इत् पुनः ईयुः) विद्वान् देव यज्ञके विरोधी उस स्थानको देखकर, उसमें घुसनेके लिए, जिस स्थानसे आये थे, उसी स्थानको दुबारा चले गए ॥ ६ ॥

[२४१] (ऋतावानः कवयः अनृ-ऋता प्रतिचक्ष्य) सत्यवादी और दूरदर्शी देव मायाको देखकर (अतः पुनः महः पथः आ तस्थुः) वहांसे फिर महान् मार्गपर खडे हो गये । (अ-रणः सः नकिः अस्ति) प्रगति न करनेवाला वहां नहीं था । उस (बाहुभ्यां धमितं अग्निं अश्मनि ते हि जहुः) बाहुओंसे उत्पन्न की गई अग्निको पर्वतमें उन्होंने छोड दिया ॥ ७ ॥

१ ऋतावानः कवयः अनृ-ऋता प्रति-चक्ष्य अतः पुनः महः पथः आ तस्थुः— सत्यवाले, दूरदर्शी देवगण मायाको देखकर उस स्थानसे फिर महान् मार्गपर स्थिर हो गए ।

२ सः अरणः नकि— ऐसा माया या छलकपट करनेवाला व्यक्ति कभी भी उन्नति नहीं कर सकता ।

[२४२] (ऋतज्येन क्षिप्रेण धन्वना) सरल डोरीवाले जल्दी चलनेवाले धनुषके द्वारा (ब्रह्मणस्पतिः यत्र वष्टि तत् प्र अश्नाति) ज्ञानका देव जहां चाहता है वहां पहुंच जाता है । (तस्य कर्णयोनयः साध्वीः इषवः) उसके पास कानोंतक खींचे जानेवाले उत्तम बाण हैं, (याभि नृचक्षसः दृशये) जिनसे शत्रुके मनुष्योंको देखनेके लिए (अस्यति) वह फेंकता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह ब्रह्मणस्पतिका ही पराक्रम है कि उसने पणि अर्थात् मेघोंके द्वारा छुपाये गए सूर्य किरणरूपी खजानेको प्रकट किया । जब मेघोंके आनेके कारण सूर्य छिप जाता है, तब यही ब्रह्मणस्पति उन मेघोंको फोडकर पानी बहाता है और उन बादलोंके छंट जाने पर सूर्य निकल आता है । उस समय सूर्यके निकलने पर भी जो मनुष्य यज्ञ नहीं करता, उस मनुष्यके पास देवगण कभी भी नहीं जाते, वे वापस अपने स्थान पर चले जाते हैं ॥ ६ ॥

देवगण हमेशा दूरदर्शी और सत्यके मार्गपर चलनेवाले हैं, वे कभी भी छल और कपटको पसन्द नहीं करते । इसलिए जो छलकपटका व्यवहार करते हैं, उनसे देवगण सदा दूर रहते हैं । ऐसे मायावियोंमें कोई भी प्रगति या उन्नति नहीं कर सकता । इसीलिए ऐसे लोग अपनी आत्माकी भी उन्नति नहीं कर सकते ॥ ७ ॥

इस ब्रह्मणस्पतिके पास बुद्धिरूपी एक उत्तम धनुष है, जिससे वह ज्ञानरूपी बाणोंको बुद्धिमानोंके कानोंतक पहुंचाता है । इस अपनी बुद्धिसे अपने मित्र और शत्रुका पता लगाकर अपने ज्ञानके द्वारा अपने शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

२४३ स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद् वाजं भरते मती धना ऽऽदित् सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥ ९ ॥

२४४ विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥ १० ॥

२४५ योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥

अर्थ—[२४३] (सः सु-स्तुतः सः पुरोहितः सः ब्रह्मणस्पतिः) वह उत्तम प्रकारसे प्रशंसित, वह सबसे आगे स्थित वह ब्रह्मणस्पति (युधि सः सं-नयः वि-नयः) युद्धमें वह ही उत्तम प्रकारसे संगठन और आक्रमण करता है। (यत् चाक्ष्मः वाजं मती धना भरते) जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति बल और प्रशस्त धनको धारण करता है (आत् इत् तप्यतुः सूर्यः वृथा तपति) उसके बाद ही तापक सूर्य बिना परिश्रम ही दीप्त होता है ॥ ९ ॥

१ सः सु-स्तुतः पुरोहितः, ब्रह्मणस्पतिः युधि सं-नयः वि-नयः— वह भली प्रकार प्रशंसित सबसे आगे खडा रहनेवाला ब्रह्मणस्पति युद्धमें अपनी सेनाका संगठन और शत्रुसेनाका विघटन करता है।

२ यत् चाक्ष्मः वाजं मती धना भरते, आत इत् तप्यतु· सूर्यः वृथा तपति— जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति बल और प्रशस्त धनको धारण करता है, तब ही तापक सूर्य विना परिश्रमके ही प्रकाशित होता है।

[२४४] (विभु प्रभु) व्यापक सामर्थ्य देनेवाले (प्रथमं सु-विदत्राणि) प्रथम उत्तमतासे जानने योग्य (राध्या इमा सातानि) सिद्धि देनेवाले ये धन (वेन्यस्य वाजिनः मेहनावतः बृहस्पतेः) वर्णनीय बलवान् वर्षा करनेवाले बृहस्पतिके हैं। (येन उभये जनाः विशः भुंजते) जिससे दोनों प्रकारकी मानवी प्रजायें भोग करतीं हैं ॥ १० ॥

[२४५] (विश्वथा विभुः रण्वः ब्रह्मणस्पतिः) सर्वत्र व्यापक, आनंद देनेवाला ऐसा, जो ब्रह्मणस्पति (अवरे वृजने महां उ शवसा ववक्षिथ) छोटे युद्धमें भी अपनी महत्ताको अपने बलसे प्रकट करता है। (सः देवः देवान् प्रति पृथु पप्रथे) वह देव अन्य देवोंसे बहुत विशाल होकर (ता विश्वा इत उ परिभूः) उन सभीके चारों ओर रहता है। ॥ ११ ॥

१ विश्वथा विभु रण्वः ब्रह्मणस्पतिः अवरे वृजने महां शवसा ववक्षिथ— सर्वत्र व्याप्त, और आनंद देनेवाला वह ब्रह्मणस्पति छोटे युद्धमें भी अपने महत्त्वको अपने बलसे प्रकट करता है।

२ सः देवः देवान् प्रति पृथु पप्रथे— इस कारण वह देव ब्रह्मणस्पति अन्य देवोंसे अत्यधिक विशाल हुआ है।

भावार्थ— ब्रह्मणस्पति एक उत्तम नेता है, वह युद्धमें हमेशा आगे रहता है, अपनी नीतिके द्वारा वह अपनी सेनाका संगठन और शत्रुओंकी सेनामें फूट करता है। वह सर्वद्रष्टा है, उसीका यह बल है कि यह सूर्य प्रदीप्त हो रहा है ॥ ९ ॥

व्यापक और सामर्थ्य प्रदान करनेवाले, प्रथम उत्तमतासे जानने योग्य, सम्यक् प्रकारसे सिद्ध होनेवाले ये धन वर्णनीय, बलवान् और वर्षा करनेवाले बृहस्पतिके हैं। इस धनका ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकारकी मानवी प्रजायें भोग करती हैं ॥ १० ॥

यह सर्वत्र व्याप्त ब्रह्मणस्पति छोटे छोटे युद्धोंमें भी अपने पराक्रमको प्रकट करता है, इसीलिए यह अन्य देवोंसे श्रेष्ठ है, यह अपने पराक्रमसे सर्वत्र संचार करता है ॥ ११ ॥

२४६ विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥ १२ ॥
२४७ उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥ १३ ॥
२४८ ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत् स दिवे वि चाभजन् महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥ १४ ॥
२४९ ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [२४६] हे (मघवाना इन्द्रा-ब्रह्मणस्पती) ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र और ब्रह्मणस्पति (युवोः इत् विश्वं सत्यं) तुम दोनोंके सभी व्रत सत्य होते हैं, इसी लिए (वां व्रतं) तुम दोनोंके नियमको (आपः चन प्रमिनन्ति) किसी प्रकारके भी कर्म नहीं तोड सकते । तुम दोनों (नः हविः अन्नं) हमारी हवि और अन्नकी तरफ (युजा वाजिना इव) जुएमें जोडे हुए घोडोंके समान (अच्छ जिगातं) सीधे चले आओ ॥ १२ ॥

[२४७] (उत आशि-स्थाः वन्हयः अनु शृण्वन्ति) और शीघ्रगामी घोडे सुनते हैं । (सभेयः विप्रः मती धना भरते) सभ्य ज्ञानी प्रशस्त धनको धारण करता है । (वीळुद्वेषाः वशा ऋणं आददिः) बलवान् शत्रुओंका द्वेष करनेवाला वह ऋणसे उऋण करे (सः ह ब्रह्मणस्पतिः समिथे वाजी) वह ब्रह्मणस्पति युद्धमें बलवान् है ॥ १३ ॥

१ सभेयः विप्रः मती धना भरते— सभामें जाने योग्य ज्ञानी प्रशंसित धनोंको धारण करता है ।
२ वीळुद्वेषाः वशा ऋणं आददिः— बलवान् शत्रुओंका द्वेष करनेवाला वह ब्रह्मणस्पति हमें मातृऋणसे उऋण करे ।
३ वशा — स्त्री, पत्नी, पुत्री, वन्ध्यागाय, वन्ध्यास्त्री ।

[२४८ (महि कर्म करिष्यतः ब्रह्मणस्पतेः) महान् कर्म करनेवाले ब्रह्मणस्पतिका (मन्युः यथावशं सत्यः अभवत्) क्रोध उसकी इच्छानुसार सफल हुआ । (यः गाः उत् आजत्) जिसने गायें बाहर निकालीं (सः दिवे वि अभजत् , उसीने उनको प्रकाशके लिए विभक्त कर दिया, वे गायें (मही रीतिः इव शवसा पृथक् असरत्) बडी पद्धतिके अनुसार अपने सामर्थ्यसे पृथक् पृथक् चलायी गईं ॥ १४ ॥

[२४९] हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके अधिष्ठाता देव ! हम (सु-यमस्य वयस्वतः विश्व-हा रथ्यः स्याम) उत्तम प्रकारसे नियमित, अन्नयुक्त धनके सर्वदा स्वामी हों । (नः वीरेषु वीरान् उप पृङ्धि) हमारे वीरोंसे वीरोंका जन्म होता रहे, (ईशानः त्वं ब्रह्मणा मे हवं वेषि) सबके ईश्वर तुम ज्ञानपूर्वक मेरी पुकारको सुनो ॥ १५ ॥

भावार्थ— इन्द्र और ब्रह्मणस्पतिके नियम इतने दृढ हैं कि इनके नियमको कोई भी नहीं तोड सकता । इसीलिए इनके हर एक नियम सत्य होते हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्मणस्पतिकी कृपासे बुद्धि सर्वत्र संचार करने लगती है और ऐसा उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य सभामें जानेके योग्य होकर सब तरहके ऐश्वर्योंको प्राप्त करता है और वह सभी तरहके ऋणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १३ ॥

महान् कर्म करनेवाले ब्रह्मणस्पतिका उत्साह उसकी इच्छानुसार सत्य ही हुआ । जैसा वह चाहता था, वैसा उसने किया । जिस ब्रह्मणस्पतिने गायें बाहर निकालीं, उसीने उन्हें प्रकाशमें विभक्त कर दीं और वे गायें बडे मार्गके अनुसार अपने बलसे पृथक् पृथक् चलायीं गईं ॥ १४ ॥

हे ज्ञानके अधिपति देव ! हम उत्तम प्रकारसे नियममें चलनेवाले, अन्नसे युक्त होकर धनके सर्वदा स्वामी हों । हमारे वीर पुत्रोंके साथ वीर पुत्रोंको मिला दो । हमारे बहुतसे वीर पुत्र हों । सबके ईश्वर तुम ज्ञानपूर्वक मेरी प्रार्थनाको सुनो ॥ १५ ॥

×

२५० ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥

[२५]

[ऋषिः– गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता– ब्रह्मणस्पतिः । छन्दः– जगती ।]

२५१ इन्धानो अग्निं वनवद् वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद् रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ १ ॥

२५२ वीरेभिर्वीरान् वनवद् वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ २ ॥

अर्थ— [२५०] (यन्ता ब्रह्मणस्पते) हे नियामक ब्रह्मणस्पते ! (त्वं अस्य सूक्तस्य बोधि) तुम इस सूक्तको जानो (तनयं च जिन्व) हमारे पुत्रको पुष्ट करो । (देवाः यत् अवन्ति तत् विश्वं भद्रं) देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, उसका उत्तम कल्याण होता है । (सुवीराः विदथे बृहद् वदेम) उत्तम सन्तानवाले हम यज्ञमें बडी महिमाका वर्णन करें ॥ १६ ॥

[२५]

[२५१] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है । (सः अग्निं इन्धानः वनुष्यतः वनवत्) वह अग्निको प्रज्वलित करते हुए हिंसकोंको मारता है । और वह (कृतब्रह्मा रातहव्या शूशुवद्) ज्ञानी बनकर हवि देनेवाला होकर बढता है । (जातेन जातं अति प्र सर्सृते) उत्पन्न हुए पुत्रसे होनेवाले पौत्र द्वारा वह बहुत विस्तृत होता है ॥ १ ॥

१ यं यं ब्रह्मणस्पति युजं कृणुते— जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है ।

२ सः अग्निं इन्धानः वनुष्यतः वनवत्— वह अग्निको प्रज्वलित करते हुए हिंसकोंको मारता है ।

३ जातेन जातं अति प्रसर्सृते— उत्पन्न हुए पुत्रसे, होनेवाले पौत्र द्वारा वह बहुत विशाल होता है ।

[२५२] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह (वीरेभिः वनुष्यतः वीरान् वनवत्) अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको मारता है । (गोभिः रयिं पप्रथद्) गायोंसे धनका विस्तार करता है । (त्मना बोधति) स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है और ब्रह्मणस्पति (तस्य तोकं च तनयं च वर्धते) उसके पुत्र पौत्रोंको बढाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह बृहस्पति स्तोत्रोंको समझकर अपने भक्तोंके पुत्रोंको हरतरहसे पुष्ट करता है । देव जिसकी रक्षा करते हैं उसका हरतरहसे कल्याण होता है, उसका कोई भी कुछ भी नहीं बिगाड सकता । अतः हम भी यज्ञमें इस देवकी महिमाका गान करें ॥ १६ ॥

जिसको यह ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है, वह हमेशा यज्ञ करता हुआ अपने शत्रुओंको नष्ट करता है, वह ज्ञान प्राप्त करता है और हवि देता है । ऐसा व्यक्ति पुत्र और पौत्रोंसे समृद्ध होकर बहुत समृद्ध होता है ॥ १ ॥

ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बना लेता है वह अपने वीरोंसे शत्रुके वीरोंको मारता है । गायोंसे धनका विस्तार करता है । स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है । उसके पुत्र पौत्रादि बढते हैं ॥ २ ॥

२५३ सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्टयोजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ३ ॥
२५४ तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ४ ॥
२५५ तस्मा इद् विश्वे धुनयन्त सिन्धवो ऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२५३] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है, वह (शिमीवान्) कर्मशील वीर (ओजसा) बलसे (क्षोदः सिन्धुः न) क्षुब्ध हुए समुद्रके समान (वध्रीन् वृषा इव) निवीर्य बैलोंको बलशाली बैलके समान (ऋघायतः अभि वष्टि) हिंसक शत्रुओंको चारों ओरसे मार देता है। और (अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे) अग्निकी ज्वालाके समान निश्चय ही उसका निवारण कोई नहीं कर सकता ॥ ३ ॥

१ शिमीवान् ओजसा, क्षोदः सिन्धुः न, वध्रीन् वृषा इव, ऋघायतः अभि वष्टि— कर्मशील वीर अपने बलसे, जैसे तूफानोंसे क्षुब्ध सागर नौकाओंका नाश करता है, अथवा जैसे निर्वीर्य किए गए बैलोंको वीर्यवान् बैल मार देता है, उसी प्रकार हिंसक शत्रुओंको चारोंसे ओरसे मार देता है।
२ अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे— अग्निकी ज्वालाके समान वह किसीसे नहीं रोका जा सकता।
३ अह— निश्चयसे।
४ वध्रि— निर्वीर्य किया गया बैल।

[२५४] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बनाता है, (तस्मै अ-सश्चतः दिव्याः अर्षन्ति) उसके लिए, बिना रोके हुए दैवी सामर्थ्य प्राप्त होते हैं। (सः सत्वभिः प्रथमः गोषु गच्छति) वह सत्यवान् परिजनों सहित सर्वप्रथम गायोंमें जाता है। (अनिभृष्ट-तविषिः ओजसा हन्ति) अपराजित रहकर वह अपने बलसे शत्रुओंको मारता है ॥ ४ ॥

१ तस्मै अ-सश्चतः दिव्याः अर्षन्ति— ब्रह्मणस्पतिके मित्रको बिना रुकावटके दैवी शक्तियां प्राप्त होती हैं।
२ सः सत्वभिः प्रथमः गोषु गच्छति— वह बलवान् परिजनों सहित सबसे प्रथम गौवोंमें जाता है, अर्थात् गौ आदियोंको प्राप्त करता है।
३ अनि-भृष्टतविषिः ओजसा हन्ति— अपराजित रहकर बलवाला वह बलसे शत्रुको मारता है।

[२५५] (यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है। (तस्मै इत् विश्वे सिन्धवः धुनयन्त) उसीके सहायार्थ सारी नदियां बहती हैं (अ-च्छिद्रा पुरूणि शर्म दधिरे) छिद्ररहित अनेक सुखको वह प्राप्त करता है। (सु-भगः सः देवानां सुम्ने एधते) उत्तम भाग्यवाला वह देवोंके सुखमें बढता जाता है ॥ ५ ॥

१ तस्मै इत् विश्वे सिन्धवः धुनयन्तः- ब्रह्मणस्पति जिसे मित्र बनाता है उसीके हितके लिए सारी नदियां बहती हैं।
२ अ-च्छिद्रा पुरूणि शर्म दधिरे— छिद्ररहित अनेक सुखोंको वह धारण करता है।
३ सु-भगः सः देवानां सुम्ने एधते— उत्तम ऐश्वर्यवाला वह देवोंके सुखमें बढता जाता है।

भावार्थ— ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बना लेता है, वह बहुत शक्तिशाली बन जाता है वह क्षुब्ध हुए हुए समुद्रके समान उत्साहपूर्ण हो जाता है और मस्त बैलके समान बलवान् हो जाता है और वह अपने शत्रुओंका नाश करता है। तब वह अग्निके समान किसीसे नहीं रोका जा सकता ॥ ३ ॥

ब्रह्मणस्पति जिसे अपना मित्र बनाता है उसे अनेक दैवीशक्तियां प्राप्त होती हैं, वह परिजनोंके साथ हर तरहकी समृद्धि प्राप्त करता है और बलसे युक्त होकर अपने शत्रुओंको मारता है ॥ ४ ॥

जिसे ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बनाता है उसीके लिए सभी नदियां बहती हैं, वह सुखोंको प्राप्त करता है और ऐश्वर्य सम्पन्न होकर वह सुखमें ही बढता है ॥ ५ ॥

[२६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः। देवता- ब्रह्मणस्पतिः। छन्दः- जगती।]

२५६ ऋजुरिच्छंसो वनवद् वनुष्यतो देवयन्निदेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥ १ ॥

२५७ यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥ २ ॥

२५८ स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥

---

[२६]

अर्थ— [२५६] (ऋजुः शंसः इत् वनुष्यतः) सीधा सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है। (देवयन् इत् अ-देवयन्तं अभि असत्) देवका पूजक ही देवको न पूजनेवालेको मारता है। (सु-प्राविः इत् पृत्सु दुः-तरं वनवत्) उत्तम प्रकारसे रक्षण करनेवाला ब्रह्मणस्पति युद्धमें कठिनतासे पार करने योग्य शत्रुओंको मारता है। (यज्वा इत् अयज्योः भोजनं वि भजाति) यज्ञ करनेवाला मनुष्य ही यज्ञ न करनेवालेके भोगसाधनका उपभोग करता है ॥ १ ॥

१ ऋजुः शंसः इत् वनुष्यतः वनवत्— सीधा सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है।
२ देवयन् इत् अ-देवयन्तं अभि असत्— देवका पूजक ही देवके न पूजनेवालेको मारता है।
३ यज्वा इत् अ-यज्योः भोजनं वि भजाति— यज्ञ करनेवाला ही यज्ञ न करनेवालेके भोगसाधनका उपभोग करता है।

[२५७] हे (वीर) वीर मनुष्य ! (यजस्व) यज्ञकर, (मनायतः प्र विहि) अभिमानी शत्रुओंका नाश कर (वृत्रतूर्ये मनः भद्रं कृणुष्व) संग्राममें मनको कल्याण करनेवाले विचारसे युक्त कर (हविः कृणुष्व) हविको तैय्यार कर (यथा सु- भगः अससि) जिससे उत्तम भाग्यवान् हो, हम भी (ब्रह्मणस्पतेः अवः आ वृणीमहे) ब्रह्मणस्पतिके रक्षणको स्वीकार करना चाहते हैं ॥ २ ॥

१ वृत्रतूर्ये भद्रं मनः कृणुष्व— संग्राममें मनको हमेशा कल्याण करनेवाले विचारोंसे युक्त करना चाहिए।
२ ब्रह्मणस्पतेः अव आ वृणीमहे— ब्रह्मणस्पतिके रक्षणको हम स्वीकार करना चाहते हैं।

[२५८] (यः श्रद्धा-मनाः देवानां पितरं ब्रह्मणस्पतिं आ-विवासति) जो श्रद्धायुक्त मनवाला देवोंके पालनेवाले ब्रह्मणस्पतिकी हवि द्वारा सेवा करता है। (सः इत् जनेन, सः विशा, सः जन्मना, सः पुत्रैः वाजं भरते) वह ही जनके द्वारा, वह ही प्रजा द्वारा, वह ही पुत्रों द्वारा बलको धारण करता है। और (नृभिः धना) और मनुष्योंसे धनोंको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— सीधे और सरल मार्गपर चलनेवाला, देवोंकी पूजा करनेवाला और यज्ञशील ही ब्रह्मणस्पतिका मित्र होता है और वही कुटिल मार्गसे चलनेवाले, देवोंको न माननेवाले और यज्ञोंको न करनेवालोंको नष्ट करता है॥ १ ॥

हे वीर ! यज्ञ कर और अभिमानी शत्रुओंको नष्ट कर। संग्राममें कल्याण करनेवाले विचारोंवाला मन बना। हविको कर, जिससे उत्तम ऐश्वर्यवाला तू बने ॥ २ ॥

जो श्रद्धासे युक्त होकर देवोंके रक्षक ब्रह्मणस्पतिकी हवि द्वारा सेवा करता है। वह ही मनुष्यसे, प्रजासे, जन्मसे, बल और मनुष्यों द्वारा धन प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

२५९ यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत् प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषों ऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥ ४ ॥

[२७]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता- आदित्याः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६० इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥ १ ॥

२६१ इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥

अर्थ— [२५९] (यः अस्मैः घृतवद्भिः अविधत्) जो इस ब्रह्मणस्पतिके लिये घृतसे युक्त हवियोंसे यज्ञ करता है। (ब्रह्मणस्पतिः तं प्राचा प्र नयति) ब्रह्मणस्पति उसे आगे बढाता है। (ईं अंहसः उरुष्यती) इसको पापसे बचाता है, (रिषः रक्षति) हिंसकोंसे रक्षण करता है और (अंहोः चित्) पापमय दारिद्र्यसे रक्षण करता है और (अद्भुतः अस्मै उरु चक्रिः) अद्भुत ब्रह्मणस्पति इसको महान् बनाता है ॥ ४ ॥

[२७]

[२६०] मैं (आदित्येभ्यः इमाः घृतस्नूः गिरः) आदित्योंके लिए इन स्नेहसे भरी हुई वाणियों-स्तुतियोंको बुलाता हूँ। (राजभ्यः जुह्वा सनात् जुहोमि) इन तेजस्वी देवोंके लिए वाणीसे प्राचीनकालसे मैं हवि देता आया हूँ। अतः (मित्रः अर्यमा भगः) मित्रके समान हित करनेवाला, शत्रुओंपर शासन करनेवाला, ऐश्वर्यवान् (तुविजातः वरुणः) अत्यधिक बलके साथ उत्पन्न हुआ हुआ श्रेष्ठ तथा (दक्षः अंशः) सामर्थ्यशाली अंश आदि देव (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥ १ ॥

१ आदित्येभ्यः इमाः घृतस्नूः गिरः— मैं इन आदित्य देवोंके लिये ये स्नेहसे और तेजसे भरी हुई वाणियां बोलता हूँ।

[२६१] (शुचयः धारपूताः) शुद्ध तथा घृतकी धारासे पवित्र हुए हुए (अवृजिनाः अनवद्याः अरिष्टाः) कुटिलता न करनेवाले, निन्दनीय पाप कर्म न करनेवाले, कभी भी हिंसा न करनेवाले और स्वयं भी कभी हिंसित न होनेवाले तथा (सक्रतवः) एक साथ मिलकर कर्म करनेवाले (आदित्यासः) आदित्य गण तथा (मित्रः वरुणः अर्यमा) मित्र, वरुण और अर्यमा (मे इमं स्तोमं अद्य जुषन्त) मेरे इस स्तोत्रको आज सुनें ॥ २ ॥

भावार्थ— जो इस ब्रह्मणस्पतिके लिए घी युक्त हवियोंसे यज्ञ करता है। ब्रह्मणस्पति उसे प्रमुखमार्गसे उन्नतिके प्रति ले जाता है। इसको पाप, हिंसक और दारिद्र्यसे रक्षा करता है। इसको महान् बनाता है ॥ ४ ॥

सभी देव मित्रके समान हितकारी, शत्रुओंके विनाशक, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ तथा सामर्थ्यशाली हैं, अतः इनके हमेशा स्नेहसे भरी हुई वाणी ही बोलनी चाहिए। इनकी स्तुति सदा प्रेमसे की जाए ॥ १ ॥

ये सभी आदित्य अर्थात् देवगण शुद्ध, पवित्र, कुटिलव्यवहार न करनेवाले, निन्दनीय कर्म न करनेवाले तथा बिना कारण किसीकी हिंसा न करनेवाले, मित्रके समान स्नेह करनेवाले, श्रेष्ठ और शत्रुओंपर शासन करनेवाले हैं। इन देवोंका अनुकरण करके मनुष्य भी देवोंके समान बननेका प्रयत्न करें ॥ २ ॥

२६२ त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥
२६३ धारयन्त आदित्यासो जगत् स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥
२६४ विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन् भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२६२] (ते आदित्यासः) वे आदित्यदेव (उरवः) महान् (गभीराः) गंभीर (अदब्धासः) शत्रुओंसे कभी न दबाये जानेवाले (दिप्सन्तः) स्वयं शत्रुओंको दबानेवाले तथा (भूरि अक्षः) हजारों आंखोंवाले हैं । इसलिए वे (अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति) सबके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता देखते हैं इन (राजभ्यः) राजाओंके लिए (सर्वं परमा चित् अन्ति) सब कुछ दूर होते हुए भी पास है ॥ ३ ॥

१ भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति— ये आदित्य अनेकों आंखोंसे युक्त होनेके कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं ।

२ राजभ्यः सर्वे परमा चिद् अन्ति— इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी चीजें दूर होती हुई भी पास हैं ।

[२६३] (देवाः आदित्यासः) ये देव आदित्य (जगत् स्था धारयन्तः) जंगम अर्थात् चलनेवाले और स्था अर्थात् स्थिर रहनेवाले प्राणियोंको धारण करते हैं ये (विश्वस्य भुवनस्य गोपाः) ये सभी संसारके रक्षक हैं । (दीर्घाधियः) विशाल बुद्धिवाले ये देवगण (असुर्यं रक्षमाणाः) प्राण देनेवालेकी रक्षा करते हैं और (ऋतावानः) सत्यके मार्गपर चलनेवाले हैं तथा (ऋणानि चयमानाः) स्तोताओंके ऋणोंको दूर करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[२६४] हे (आदित्याः) आदित्यो ! (भये आ) किसी प्रकारका भय प्राप्त होनेपर (यत् वः मयोभु) जो तुम्हारा सुख देनेवाला संरक्षण है, (अस्य अवसः विद्यां) उस संरक्षणको मैं प्राप्त करूं । हे (अर्यमन् मित्रा वरुणा) अर्यमा और मित्र तथा वरुण ! (युष्माकं प्रणीतौ) तुम्हारे द्वारा बताये मार्गपर चलता हुआ मैं (दुरितानि) पापोंको (परि वृज्यां) उसी प्रकार छोड दूं (श्वभ्रा इव) जिस प्रकार मनुष्य गड्ढोंसे भरी हुई ऊबड खाबड जमीनको छोड देते हैं ॥ ५ ॥

१ भये आ मयोभु अवसः विद्याम्— भयके प्राप्त होनेपर इन आदित्योंके सुखकारक संरक्षणको मैं प्राप्त करूं ।

२ प्रणीतौ दुरितानि परि वृज्यां— उत्तम मार्गपर चलते हुए मैं पापोंको छोड दूं ।

भावार्थ— ये आदित्यगण बहुत महान् और गंभीर हैं, इनकी गहराईका कोई पता नहीं लगा सकता । ये अनेकों आंखोंवाले हैं, इसलिए ये मनुष्योंके अन्दरकी बातें भी जानते हैं, मनुष्य अपने हृदयमें भले बुरे विचार करे, तो वह भी इन आदित्योंसे छिपा नहीं रहता । ये आदित्य सर्वत्र व्याप्त हैं अतः इनके लिए कुछ न दूर है न पास है ॥ ३ ॥

ये आदित्य जंगम और स्थावर दोनों तरहके प्राणियोंको धारण करनेवाले हैं, सारे संसारकी रक्षा करते हैं । इनकी बुद्धि बहुत विशाल है और ये हमेशा महान् कर्म ही करते हैं । जो दूसरे जीवोंपर दया करता है उनके प्राणोंकी रक्षा करता है उसके प्राणोंकी रक्षा ये आदित्य करते हैं । ये सदा सत्यके मार्गपर ही चलते हैं । इसी तरह सब मनुष्य सत्यके मार्गपर चलें ॥ ४ ॥

किसी भी प्रकारका भय आ पडे तो मैं इन आदित्योंके सुख देनेवाले संरक्षणको प्राप्त करूं और मित्र, वरुण और अर्यमा आदि देवोंके द्वारा बताये गए उत्तम मार्गपर चलते हुए मैं पापोंको उसी प्रकार छोड दूं, जिस प्रकार मनुष्य गड्ढोंसे भरी हुई ऊबड खाबड जमीनको छोड देते हैं, और उसपर रहना पसन्द नहीं करते ॥ ५ ॥

२६५ सुगो हि वो अर्यमन् मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥

२६६ पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रा ऽति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥ ७ ॥

२६७ तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून् त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन् वरुण मित्र चारु ॥ ८ ॥

अर्थ— [२६५] हे (अर्यमन् मित्र वरुण) अर्यमा, मित्र और वरुण ! (वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति) तुम्हारा रास्ता कांटों अर्थात् विघ्नोंसे रहित, सुगमतासे जाने योग्य और सरल है, (तेन) उस मार्गसे हमें ले चलो। हे (आदित्याः) आदित्यो! (नः अधि वोचत) हमें उत्तम उपदेश दो तथा (नः दुष्परिहन्तु शर्म यच्छत) हमें नष्ट न होनेवाला सुख दो ॥ ६ ॥

१ वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति— देवोंका मार्ग कांटोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य और उत्तम है ।

२ आदित्याः नः अधिवोचत— हे आदित्यो ! हमें उत्तम उपदेश दो ।

[२६६] (राजपुत्राः अदितिः) तेजस्वी पुत्रोंवाली अदिति तथा (अर्यमा) अर्यमा (नः) हमें (सुगेभिः) आसानीसे जाने योग्य मार्गोंसे (द्वेषांसि अति) राक्षसोंके पार पहुंचाये, तथा (पिपर्तु) हमें हरतरहसे पूर्ण करे । हम (पुरुवीराः अरिष्टाः) बहुतसे वीर पुत्रोंसे युक्त होकर तथा हिंसित न होकर (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुणके (बृहत् शर्म उप स्याम) महान् सुखको प्राप्त करूं ॥ ७ ॥

[२६७] ये आदित्य (तिस्रः भूमीः धारयन्) तीन भूमियों अर्थात् लोकोंको धारण करते हैं (उत) और (त्रीन् द्यून्) तीन तेजस्वी लोकोंको धारण करते हैं, (एषां विदथे अन्तः व्रता) इन लोकोंके कामोंके बीचमें नियमोंका संचालन करते हैं । (आदित्याः) हे आदित्यो ! (वः महित्वं ऋतेन महि) तुम्हारी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बडी है । (अर्यमन्, मित्र, वरुण तत् चारु) हे अर्यमा, मित्र और वरुण देवो ! तुम्हारा वह महत्त्व बहुत सुन्दर है ॥ ८ ॥

१ एषां विदथे अन्तः व्रता— ये आदित्य इन लोकोंके कामोंमें नियमोंका संचालन करते हैं ।

२ वः महित्वं ऋतेन महि— इन आदित्योंकी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बडी है ।

भावार्थ— देवोंके द्वारा बताया हुआ मार्ग कांटोंसे रहित अर्थात् किसी भी तरहके विघ्नोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य होनेके कारण उत्तम है । अतः देवोंके द्वारा बताये गए मार्गपर ही मनुष्योंको सदा चलना चाहिए । आदित्यगणोंसे मनुष्य उत्तम उत्तम उपदेश प्राप्त करें और उन उपदेशोंपर आचरण करके मनुष्य शाश्वत सुख प्राप्त करें ॥ ६ ॥

तेजस्वी पुत्रोंवाली अदिति तथा शत्रुओंका नाशक देव हमारी हर तरहसे रक्षा करे । हमें ऐसे मार्गसे ले जाए, ताकि राक्षस हमें कष्ट या दुःख न दे सकें । हम भी अनेकों वीर पुत्रोंसे युक्त हों तथा किसीसे भी हिंसित न होकर महान् सुख प्राप्त करें ॥ ७ ॥

ये आदित्य, अर्यमा, मित्र और वरुण आदि देव इन तीनों तेजस्वी लोकोंको धारण करते हैं । इन लोकोंमें जो नियम चल रहे हैं । इन आदित्योंके निरीक्षणमें ही सारे लोक अपने अपने नियमोंमें चल रहे हैं । सरल और सत्य व्यवहार करनेके कारण इन देवोंकी महिमा बहुत बडी है । सरल एवं सत्य मार्गपर चलनेसे यशकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

२६८ त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥ ९ ॥

२६९ त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षे ऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥

२७० न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद् वसवो धीर्या चिद् युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [२६८] (हिरण्ययाः शुचयः धारपूताः) सोनेके समान तेजस्वी, शुद्ध और पवित्र तथा निर्मल (अस्वप्नजः अनिमिषाः) कभी न सोनेवाले, कभी पलक न मारनेवाले (अदब्धाः उरुशंसाः) हिंसाके अयोग्य और बहुत यशवाले आदित्य (ऋजवे मर्त्याय) सरल अर्थात् छलकपटसे रहित मार्गपर चलनेवाले मनुष्यके लिए (दिव्या त्री रोचना धारयन्त) अत्यन्त प्रकाशमान् तीन तेजस्वी पदार्थोंको धारण करते हैं ॥ ९ ॥

[२६९] हे (असु-र वरुण) प्राणोंके रक्षक वरुण ! (ये च देवाः ये च मर्ताः) जो देव और जो मरणशील मनुष्य हैं (विश्वेषां) उन सबका (त्वं राजा असि) तू राजा है, (विचक्षे नः शतं रास्व) विशेष रूपसे देखनेके लिए हमें सौ वर्ष प्रदान कर, (सुधितानि पूर्वा आयूंषि अश्याम) अमृतके समान उत्तम आयुको हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

१ ये च देवाः ये च मर्ताः विश्वेषां राजा— जो देव और जो मनुष्य हैं, उन सभीका यह वरुण देव राजा है।

२ विचक्षे सुधितानि आयूंषि अश्याम— संसारको अच्छी तरह देखनेके लिए अमृतके समान आयुको प्राप्त करें ।

[२७०] हे (आदित्याः) आदित्यो। (दक्षिणा न वि चिकिते) मेरे दक्षिण दिशामें क्या है, मैं नहीं जानता, (न सव्या) बायीं तरफ भी नहीं जानता, (न प्राचीनं) आगे भी नहीं जानता (उत न पश्चा) और पीछे भी क्या है, नहीं जानता। फिर भी, हे (वसवः) सबको निवास करानेवाले आदित्यो ! मैं (पाक्या धीर्या चित्) अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होते हुए भी (युष्मानीतः) तुम्हारे द्वारा ले जाया जाकर (अभयं ज्योतिः अश्यां) भयसे रहित ज्योतिको प्राप्त करूं ॥ ११ ॥

१ पाक्या धीर्या चित् युष्मानीतः अभयं ज्योतिः अश्याम— अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होनेपर भी मैं आपके द्वारा बताये मार्गपर चलकर भयरहित ज्योति प्राप्त करूं ।

भावार्थ— ये आदित्य सोनेके समान तेजस्वी, शुद्ध और पानीकी धारके समान निर्मल, कभी न सोनेवाले अर्थात् हमेशा सावधान रहनेवाले और कभी पलक न मारनेवाले हैं। ये छल कपटसे रहित होकर सरलताका व्यवहार करनेवाले मनुष्यके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाते हैं ॥ ९ ॥

यह वरुण राजा असु-र अर्थात् प्राणोंकी रक्षा करनेवाला या प्राणोंको देनेवाला है, इसीलिए वह देवों और मनुष्योंका अर्थात् सम्पूर्ण संसारका स्वामी है। वह मनुष्योंको विशेष दर्शनके लिए अर्थात् संसारमें रहकर अभ्युदय करनेके लिए सौ वर्षकी पूर्ण और अमृतमय दीर्घायु प्रदान करे। आयु अमृतमय हो। सभी इन्द्रियें स्वस्थ एवं प्रसन्न रहकर अमृत रसको दुहती रहें ॥ १० ॥

मनुष्य बहु अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान् होता है, अतः वह अपने दायें, बायें, आगे और पीछे स्थित संसारकी सभी चीजोंको नहीं जान सकता, अथवा सदोष और निर्दोष मार्गको नहीं जानता। अतः उसे चाहिए कि वह देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्गपर चलकर उस अमर ज्योतिको प्राप्त करे ॥ ११ ॥

२७१ यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥
२७२ शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद् य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥
२७३ अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद् वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥ १४ ॥

अर्थ— [२७१] (यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश) जो तेजस्वी और यज्ञके करनेवालोंको धन देता है, (नित्या पुष्टयः च यं वर्धयन्ति) सदा प्राप्त होनेवाले पुष्टिकारक पदार्थ जिसे बढाते हैं, (सः रेवान् वसुदावा) वह धनवान् और धनोंको देनेवाला तथा (प्रशस्तः) प्रशंसाके योग्य मनुष्य (विदथेषु) सभी कर्मोंमें (रथेन प्रथमः याति) रथसे सबसे आगे चलता है ॥ १२ ॥

१ यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश, पुष्टयः वर्धयन्ति— जो तेजस्वी यज्ञ करनेवालोंको धन देता है, उसे सभी पुष्टिकारक पदार्थ बढाते हैं ।

२ स वसुदावा विदथेषु प्रथमः याति— वह धनोंको देनेवाला सभी तरहके कर्मोंमें सबसे आगे रहता है ।

[२७२] (आदित्यानां प्रणीतौ भवति) जो आदित्योंके बताये मार्गपर चलता है, वह (शुचिः) पवित्र (अदब्धः) किसीसे नष्ट न होकर (वृद्धवयाः) दीर्घायु और (सुवीरः) उत्तम पुत्रोंवाला होकर (सुयवसाः अपः उप क्षेति) उत्तम अन्न और उत्तम कर्मोंको प्राप्त करता है और (तं अन्तितः न किः घ्नन्ति) उसे पाससे कोई नहीं मार सकता और (न दूरात) दूरसे भी कोई नहीं मार सकता ॥ १३ ॥

१ यः आदित्यानां प्रणीतौ भवति, शुचिः अदब्धः वृद्धवयाः अपः क्षेति— जो आदित्योंके बताये गए मार्गमें चलता है, वह शुद्ध, अहिंसनीय और दीर्घायुयुक्त होकर उत्तम कर्म करता है ।

२ तं दूरात् अन्तितः नकिः घ्नन्ति— उसे दूरसे या पाससे कोई भी नहीं मार सकता ।

[२७३] हे (अदिते, मित्र उत वरुण) अदिति, मित्र और वरुण ! (यत् वयं वः कच्चित् आगः चकृम) यद्यपि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध भी कर दें, तो भी हमें (मृळ) सुखी करो । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् देव ! मैं (उरु अभयं ज्योतिः अश्यां) विस्तीर्ण और भयसे रहित ज्योति प्राप्त करूं । तथा (दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्) दीर्घ अन्धकार हमें व्याप्त न करें ॥ १४ ॥

१ यत् वयं वः कच्चित् आगः चकृम मृळ— यद्यपि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध कर भी दें, तो भी, हे देवो ! तुम हमें सुखी करो ।

२ उरु अभयं ज्योतिः अश्याम— मैं विस्तीर्ण और भयसे रहित ज्योतिको प्राप्त करूं ।

३ दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्— दीर्घ अन्धकार हमें कभी व्याप्त न करें ।

भावार्थ— जो मनुष्य तेजस्वी और ऋत अर्थात् यज्ञको (नयति) आगे ले जानेवालोंको धन देता है, वह हरतरहके पदार्थोंसे पुष्ट होता है । ऐसा धनोंका दाता मनुष्य यशस्वी होकर सभी तरहके कर्मोंमें सबसे आगे रहता है ॥ १२ ॥

जो आदित्योंके द्वारा ले जाया जाता है अर्थात् उनके बताये हुए मार्गपर चलता है, वह हर तरहसे पवित्र और दीर्घायु वाला होकर हर तरहके उत्तम अन्नको प्राप्त करता है और उत्तम कर्मोंको करता है । ऐसे व्यक्तिको पाससे या दूरसे कोई भी नहीं मार सकता, आदित्योंके द्वारा बताये गए मार्गपर चलनेवाला अहिंसनीय या अवध्य हो जाता है ॥ १३ ॥

हे देवो ! यद्यपि हम तुम्हारे प्रति अपराध कर भी दें, तो भी हमें सुखी करो, उन अपराधोंके लिए हमें दण्ड न दो । इन देवोंकी कृपासे हम ज्योतिको प्राप्त करके भयरहित हों तथा कभी भी हमें अन्धकार व्याप्त न करें । हम सदा प्रकाशके मार्गमें ही चलते रहें, कभी भी अन्धकारके मार्गमें कदम न रखें ॥ १४ ॥

×

२७४ उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन् याति पृत्सू- भावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥
२७५ या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेना- रिष्टा उरावा शर्मन् त्स्याम ॥ १६ ॥
२७६ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १७ ॥

अर्थ— [२७४] (अस्मै उभे समीची पीपयतः) इस उत्तम मनुष्यको दोनों द्यावापृथ्वी पुष्ट करती हैं। (सुभगः नाम) उत्तम ऐश्वर्यवाला यह (दिवः वृष्टिं पुष्यन्) द्युलोककी वृष्टिसे पुष्टि प्राप्त करता है, (पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति) ऐसा वीर मनुष्य युद्धमें शत्रुओंको जीतकर दोनों लोकोंको जाता है। (अस्मै उभौ अर्धौ साधू भवतः) इसके लिए दोनों भाधे अर्थात् चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं ॥ १५ ॥

१ पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति— वीर पुरुष युद्धोंमें शत्रुओंको जीतकर इहलोक और परलोक दोनोंको प्राप्त करता है।

२ अस्मै उभौ साधू भवतः— इस पुरुषके लिए दोनों चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं।

[२७५] हे (यजत्राः आदित्या) पूज्य आदित्यो ! (वः) तुम्हारी (याः मायाः पाशाः अभिद्रुहे रिपवे विचृत्ताः) जो माया और बन्धन द्रोह करनेवाले शत्रुओंपर फैले हुए हैं (तान् रथेन अति येषं) उन पाशोंको मैं रथपर बैठकर उसी तरह पारकर जाऊं, (अश्वी इव) जिस प्रकार घुडसवार कठिन मार्गोंको पार कर जाते हैं। तथा (अरिष्टाः) शत्रुओंसे अहिंसित होकर (उरौ शर्मन् स्याम) हम विस्तृत घरमें रहें ॥ १६ ॥

१ मायाः पाशाः अभिद्रुहे रिपवे विचृत्ताः— इस आदित्यकी माया एवं बन्धन द्रोह करनेवाले शत्रुओंपर ही फैले रहते हैं।

[२७६] हे (वरुण) वरुण ! (अहं) मैं (मघोनः प्रियस्य) ऐश्वर्यवान्, प्रिय (भूरिदाव्नः आपेः) बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी (शूनं मा आ विदं) वृद्धिकी निन्दा न करूं। हे (राजन्) तेजस्वी देव ! (सुयमात् रायः मा अवस्थाम्) उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु (सुवीराः) उत्तम-सन्तानोंसे युक्त होकर हम (विदथे) यज्ञमें (बृहद् वदेम) देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥ १७ ॥

१ अहं भूरिदाव्नः शूनं मा आ विदं— मैं बहुत दान देनेवाले तथा कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं।

२ सुयमात् रायः अवस्थाम्— उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं।

भावार्थ— जो देवोंके बताये मार्गपर चलता है, उसे द्यावापृथिवी दोनों पुष्ट करते हैं, द्युलोकसे गिरनेवाली वृष्टि भी उसे पुष्ट करती है। ऐसा वीर मनुष्य युद्धमें यदि जीतता है, तो इहलोकमें ऐश्वर्यका उपभोग करता है और यदि मारा जाता है, तो स्वर्गको प्राप्त करता है। ऐसे वीरकी सहायता दोनों चराचरात्मक जगत् अर्थात् सारा संसार करता है ॥ १५ ॥

जो द्रोह करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें ये आदित्य छल या कपटसे बन्धनमें डाल देते हैं, वे बांध दिए जाते हैं, पर जो सज्जन हैं, वे इन बन्धनोंको उसी प्रकार पारकर जाते हैं, जिस प्रकार एक घुडसवार कठिन मार्गोंको पारकर जाते हैं और वे विशाल घरोंमें सुखसे रहते हैं, अर्थात् वे बन्धनसे रहित होकर सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं ॥ १६ ॥

जो बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं। तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझूं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों एवं धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥ १७ ॥

[२८]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता- वरुणः (१० दुःस्वप्ननाशिनी) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२७७ इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥ १ ॥

२७८ तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥

२७९ तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥ ३ ॥

[२८]

अर्थ— [२७७] (कवेः स्वराजः आदित्यस्य) दूरदर्शी और अपनी शक्तिसे प्रकाशमान आदित्यके लिए (इदं) यह स्तोत्र है। यह आदित्य (मह्ना) अपनी शक्तिसे (विश्वानि सांति अभि अस्तु) सभी विनाशोंको दूर करे। (यः देवः) जो देव (यजथाय अति मन्द्रः) यज्ञ करनेवालोंको अत्यन्त सुख प्रदान करता है, उस (भूरेः वरुणस्य) भरण-पोषण करनेवाले वरुणकी (सुकीर्तिं भिक्षे) उत्तम कीर्तिको मैं मांगता हूँ ॥ १ ॥

१ मह्ना विश्वानि सान्ति अभि अस्तु— यह आदित्य अपनी शक्तिसे सभी विनाशकारक पदार्थोंको दूर करे।

२ वरुणस्य सुकीर्तिं भिक्षे— मैं वरुण देवके उत्तम यशको मांगता हूँ।

[२७८] हे (वरुण) वरुण! (सु-आध्यः) उत्तम स्वाध्याय करनेवाले (तुष्टुवांसः) स्तुति करनेवाले हम (तव व्रते सुभगासः स्याम) तेरे नियममें चलते हुए उत्तम भाग्यवाले हों, तथा (गोमतीनां उषसां उपायने) किरणोंसे युक्त उषाओंके आनेके समय (अनु द्यून् जरमाणाः) प्रतिदिन स्तुति करते हुए हम (अग्नयः न) अग्नियोंके समान तेजस्वी हों ॥ २ ॥

१ सु-आध्यः तव व्रते सुभगासः स्याम— उत्तम स्वाध्याय करनेवाले हम तेरे नियममें रहकर उत्तम भाग्यवाले हों।

२ गोमतीनां उषसां उपायने जरमाणाः अग्नयः न—किरणोंसे युक्त उषाओंके आनेपर स्तुति करते हुए हम अग्निके समान तेजस्वी हों।

[२७९] हे (प्रणेतः वरुण) उत्तम नेता वरुण ! (उरुशंसस्य पुरुवीरस्य तव) अनेकोंके द्वारा प्रशंसनीय तथा अनेकों वीरोंसे युक्त तेरे (शर्मन् स्याम) शरणमें या सुखकारक आश्रयमें हम रहें। हे (अदितेः अदब्धाः पुत्राः देवाः) अदितिके अवध्य पुत्र देवो ! (यूयं) तुम सब (युज्याय नः अभि क्षमध्वं) तुम्हारी मित्रताको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हमारे अपराधों और पापोंको क्षमा करो ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह आदित्य दूरदर्शी और स्वराट् है, यह अपनी शक्तिसे तेजस्वी है, अपनी तेजस्विताके लिए यह किसी दूसरेकी शक्ति नहीं लेता। यह स्वयं शक्तिमान् आदित्य विनाशकारक पदार्थोंको हमसे दूर करे, हमारे पास विनाशको न आने दे। वरुण देव यज्ञ करनेवालेको बहुत सुख प्रदान करता है, अतः उससे मैं उत्तम यश मांगता हूँ। यज्ञ करनेसे उत्तम सुख और यशकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

उत्तम ग्रंथोंका स्वाध्याय करनेवाले तथा उस वरणीय प्रभुके नियमोंमें चलनेवाले मनुष्य उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं। तथा उषःकालमें जो प्रभुकी स्तुति करते हैं, वे अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ २ ॥

यह वरुण एक उत्तम नेता होनेके कारण सभीके द्वारा प्रशंसनीय है, इस वरुणमें अनेकों वीरोंकी शक्तियां भरी पड़ी हैं अ-दिति अर्थात् न मारे जाने योग्य माताके पुत्र होनेके कारण ये देव भी अवध्य हैं। जो इनके सुखकारक आश्रयमें रहता है, वह सभी तरहके पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

२८० प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥ ४ ॥
२८१ वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥ ५ ॥
२८२ अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत् सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद् वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥ ६ ॥

अर्थ— [२८०] (विधर्ता आदित्यः) सभीका धारण पोषण करनेवाले अदितिके पुत्र वरुणने (ऋतं प्र सीं असृजत्) पानीको चारों ओरसे प्रवाहित किया। इसी (वरुणस्य) वरुणकी शक्तिसे (सिन्धवः यन्ति) नदियां बहती हैं। (एते न श्राम्यन्ति) ये नदियां कभी थकती नहीं, (न वि मुचन्ति) न ये कभी अपना प्रवाह बन्द करती हैं, अपितु (वयः न) पक्षीके समान (रघुया) तेजीसे (परिज्मन् पप्तुः) पृथ्वीपर घूमती रहती हैं ॥ ४ ॥

[२८१] हे (वरुण) वरुण तू (मत्) मुझसे (आगः) पापको (रशनां इव श्रथाय) रस्सीके समान ढीला कर, (ऋतस्य ते खां ऋध्याम) ऋत मार्गमें चलनेवाले तेरी इन्द्रियोंकी शक्तिको प्राप्त करें। (धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि) कामोंके ताने बाने बुनते हुए मेरे तन्तुओंको बीचमेंसे ही मत तोड, (ऋतोः अपसः पुरा) ऋतमार्गमें चलनेवाले तेरे कामोंसे पूर्व ही (मात्रा मा शारि) मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर ॥ ५ ॥

१ मत् आगः रशनां इव श्रथय— हे वरुण। मेरे पापोंको रस्सीके समान मुझसे शिथिल कर।
२ ऋतस्य ते खां ऋध्याम— ऋतके मार्गपर चलनेवाले तुझसे इन्द्रियोंकी शक्तियोंको हम प्राप्त करें।
३ धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि— कामका ताना बाना बुनते हुए मेरे धागोंको बीचमें ही न तोड।
४ अपसः पुरा मात्रा मा शारि— काम पूर्ण होनेसे पहले मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर।

[२८२] हे (वरुण) वरुण! (मत् भियसं सु अपः क्षम्य) मुझसे डरको अच्छी तरह दूर कर। (सम्राट् ऋतावः) अच्छी तरह तेजस्वी और ऋतके रक्षक वरुण! (मा अनु गृभाय) मुझे स्वीकार कर। (वत्सात् हि दाम इव) जिस प्रकार बछडेसे रस्सीको दूर करते हैं, उसी तरह (अंहः मुमुग्धि) मुझसे पापोंको दूर कर। (त्वदारे) तेरे अलावा और कोई (निमिषः चन नहि ईशे) आखोंकी पलक पर भी प्रभुत्व नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह धारण पोषण करनेवाला वरुण चारों ओरसे जलके प्रवाहोंको प्रेरित करता है। यह वरुणका ही प्रभाव है कि ये नदियां बह रही हैं। ये नदियां न कभी थकती हैं और न कभी अपना प्रवाह ही बन्द करती हैं, अपितु पक्षीके समान वेगसे इस पृथ्वीपर चारों ओर घूमा करती हैं ॥ ४ ॥

हे वरणीय प्रभो। जिस प्रकार बन्धनोंको ढीला करते हैं, उसी प्रकार मुझसे पापोंको दूर कर। यह वरुण हमेशा ऋतके मार्गपर चलता है, अतः उसकी शक्तियां कभी नष्ट नहीं होतीं, इसी प्रकार हम उत्तम मार्गपर चलकर अपनी इन्द्रियोंको शक्तिसे युक्त करते रहें। हम जो कामोंका वस्त्र बुन रहे हैं, वह बीचमेंसे ही न टूट जाए अर्थात् कामके बीचमें ही हमारा जीवन नष्ट न हो जाए। तथा कामोंको पूरा करनेके पूर्व ही हमारी इन्द्रियोंकी शक्तियां समाप्त न हो जाएं ॥ ५ ॥

हे वरुण देव! हमसे डरको दूर कर, हम निडर और निर्भीक हों। तू हमें अपना बना ले और जिस प्रकार रस्सी खोलकर बछडेको स्वतंत्र करते हैं, उसी प्रकार हमें पापोंसे मुक्त कर। तू ही सबका स्वामी है। तेरे ही आदेशपर संसार चल रहा है, इसलिए तुझे छोडकर और कोई भी आंखकी पलकके समान छोटेसे पदार्थ पर भी शासन नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

२८३ मा नो॑ व॒धैर्व॑रुण॒ ये त॑ इ॒ष्टा॒वेनः॑ कृ॒ण्वन्त॑मसुर भ्री॒णन्ति॑ ।
मा ज्योति॑षः प्रवस॒थानि॑ गन्म॒ वि षू मृधः॑ शिश्रथो जी॒वसे॑ नः ॥ ७ ॥
२८४ नमः॑ पु॒रा ते॑ वरुणो॒त नू॒नमु॒ताप॒रं तु॑विजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं॒ पर्व॑ते॒ न श्रि॒तान्यप्र॑च्युतानि दूळभ व्र॒तानि॑ ॥ ८ ॥
२८५ परा॑ ऋ॒णा सा॑वीर॒ध मत्कृ॑तानि॒ माहं रा॑जन्न॒न्यकृ॑तेन भोजम् ।
अव्यु॑ष्टा॒ इन्नु भूय॑सीरु॒षास॒ आ नो॑ जी॒वान् व॑रुण॒ तासु॑ शाधि ॥ ९ ॥

अर्थ— [२८३] हे (असु-र वरुण) प्राण रक्षक वरुण! (ये ते इष्टौ) जो शस्त्र तेरे यज्ञके कार्यमें (एनः कृण्वन्तं भ्रीणन्ति) पाप या अपराध करनेवालेको मारते हैं, उन (वधैः) शस्त्रोंसे (न मा) हमें मत मार। हम (ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म) प्रकाशसे दूर न जायें, (नः जीवसे मृधः वि सु शिश्रथः) हमारे जीनेके लिए हिंसकोंको अच्छी तरह नष्ट कर ॥ ७ ॥

१ वरुण! ये ते इष्टौ एनः कृण्वन्तं भ्रीणन्ति वधैः न मा— हे वरुण! जो तेरे यज्ञमें पाप करनेवालेको मारते हैं, उन शस्त्रोंसे हमें न मार।

२ ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म— हम प्रकाशसे दूर न जाएं।

[२८४] हे (दूळभ तुविजात वरुण) अवध्य और अनेक शक्तियोंके साथ उत्पन्न वरुण! (हि) क्योंकि (पर्वते न) जिस प्रकार पर्वतमें सभी तरहकी औषधियां रहती हैं, उसी प्रकार (त्वे) तुझमें (अच्युतानि व्रतानि श्रितानि) न टूटनेवाले नियम आश्रित हैं, इसलिए हमने (पुरा ते नमः) पहले भी तुझे नमस्कार किया (उत नूनं) और आज भी करते हैं (उत अपरं) और आगे भी करेंगे ॥ ८ ॥

[२८५] हे (वरुण) वरुण! (अध) और (मत्कृतानि ऋणा परा सावीः) मेरे द्वारा किये गए ऋणोंको दूर कर, हे (राजन्) तेजस्वी वरुण! (अहं) मैं (अन्यकृतेन मा भोजं) दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे उपभोग न करूं। (भूयसीः उषासः) जो बहुतसी उषायें (अव्युष्टाः इत् नु) अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं, (तासु) उन उषाओंमें (नः जीवान् आ शाधि) हमारे जीवनोंको उत्तम बना ॥ ९ ॥

१ मत्कृतानि ऋणा परा सावीः— मेरे द्वारा किए गए ऋणोंको दूर कर।

२ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्— मैं दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे उपभोग न करूं

भावार्थ— हे प्राणोंकी रक्षा करनेवाले वरणीय प्रभो! तुम्हारे यज्ञके काममें जो विघ्न डालता है, उसे जिन शस्त्रोंसे मारते हो, उन शस्त्रोंसे हमें न मारो। हम यज्ञके काममें कभी विघ्न न डालें। हम प्रकाशसे कभी दूर न जायें, और हम दीर्घकाल तक जी सकें, इसलिए हमारे शत्रुओंको मार। राष्ट्रमें प्रजाओंके संगठनके कार्यमें जो विघ्न डालें, उन्हें विनष्ट करना चाहिए ॥ ७ ॥

जिस प्रकार इस वरुणमें सभी तरहके व्रत या नियम हैं और ये नियम उसके कभी टूटते नहीं। वरुण भी इन नियमोंमें बंधा हुआ है, अतः वह भी इन नियमोंको तोड नहीं सकता, इसीलिए सदा लोग इसे नमस्कार करते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य नियमोंमें चलेगा, उसकी भी सदा पूजा होगी ॥ ८ ॥

मनुष्य कभी भी ऋणी न हो, यदि हो भी जाए तो उसे यथाशीघ्र दूर करके अनृणी हो जाए। मनुष्य स्वयं प्रयत्नशील हो और स्वयं कमाए गए धनसे पदार्थोंका उपभोग करे, दूसरेके धनपर आश्रित होकर न रहे और न दूसरोंके धनपर पदार्थोंका उपभोग ही करे। जो ऋणी रहता है और दूसरोंपर आश्रित होकर जीवन व्यतीत करता है उसके लिए उषायें कभी नहीं प्रकाशित होतीं, वह मनुष्य चिन्ताके कारण हमेशा जागता रहता है, अतः उसके लिए रात दिन आदि कुछ भी नहीं होते। अतः उसे चाहिए कि वह स्वावलम्बी बनकर आगे आनेवाली उषाओंमें उत्तम जीवन व्यतीत करे ॥ ९ ॥

२८६ यो मे राजन् युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद् वरुण पाह्यस्मान् ॥ १० ॥

२८७ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ११ ॥

[२९]

[ऋषिः- कूर्मो गार्त्समदो, गृत्समदो वा । देवता- विश्वेदेवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८८ धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥ १ ॥

अर्थ— [२८६] हे (राजन् वरुण) तेजस्वी वरुण ! (मे यः युज्यः वा सखा वा) मेरा जो साथी या मित्र (भीरवे मह्यं) डरनेवाले मुझे (स्वप्ने भयं आह) सोते हुए भय दिखाता है, (यः स्तेनः वा वृकः वा नः दिप्सति) अथवा जो चोर या भेडियेके समान दुष्ट मनुष्य हमें मारना चहता है, (त्वं तस्मात् अस्मान् पाहि) तू उनसे हमें बचा ॥ १० ॥

[२८७] हे (वरुण) वरुण ! (अहं) मैं (मघोनः प्रियस्य) ऐश्वर्यवान्, प्रिय (भूरिदाव्नः आपेः) बहुत दान देनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी (शूनं मा आ विदं) वृद्धिकी निन्दा न करूं। हे (राजन्) तेजस्वी देव ! (सुयमात् रायः मा अव स्याम्) उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु (सुवीराः) उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम (विदथे) यज्ञमें (बृहद् वदेम) देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥ ११ ॥

१ अहं भूरिदाव्नः आपेः शूनं मा आ विदं— मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं ।

२ सुयमात् रायः अव स्याम्— उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं ।

[२९]

[२८८] (धृतव्रताः इषिराः आदित्याः) हे व्रतोंको धारण करनेवाले तथा सर्वत्र गमन करनेवाले आदित्यो ! (रहसूः इव) जिस प्रकार कोई व्यभिचारि स्त्री अपने बच्चेको दूर छोड जाती है, उसी प्रकार (आगः मत् आरे कर्त) पापको मुझसे दूर करो। (वरुण मित्र देवाः) हे वरुण और मित्र देवो ! (वः भद्रस्य विद्वान्) तुम्हारे कल्याणको जानता हुआ मैं (शृण्वतः वः अवसे हुवे) प्रार्थनाओंको सुननेवाले तुम्हें अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— हे वरुण जो मेरा सम्बन्धी या मित्र डरनेवाले मुझको सोते समय डराता है अथवा कोई चोर या दुष्ट मनुष्य सोये हुए हमको मारना चाहता है, उनसे हमारी रक्षा कर, हमें बचा अर्थात् सोते समय भी हम सुरक्षित रहें ॥ १० ॥

बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं। तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझूं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों एवं धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥ ११ ॥

ये आदित्य व्रतोंको धारण करनेवाले तथा सर्वव्यापक होनेके कारण सर्वत्र गमन करनेवाले हैं। जिस प्रकार कोई व्यभिचारिणी स्त्री किसी एकान्त और दूर स्थलमें अपने गर्भको प्रसूत करके चली जाती है, उसी प्रकार पाप हमसे दूर और एकान्त स्थानमें चले जायें, हे देवो ! मैं तुम्हारे कल्याण करनेवाले स्तोत्रोंके बारेमें अच्छी तरह जानता हूँ, अतः उन स्तोत्रोंके द्वारा मैं तुम्हें बुलाता हूँ ॥ १ ॥

२८९ यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥ २ ॥
२९० किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥ ३ ॥
२९१ हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥ ४ ॥
२९२ प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥ ५ ॥

अर्थ— [२८९] हे (देवाः) देव ! (यूयं प्रमतिः) तुम उत्तम बुद्धिवाले हो, (यूयं ओजः) तुम ओजस्वी हो, (यूयं सनुतः द्वेषांसि युयोत) तुम छिपकर द्वेष करनेवाले शत्रुओंको बाहर प्रकट करते हो, (अभिक्षत्तारः) शत्रुओंको चारों ओरसे नष्ट करनेवाले तुम (च अभि क्षमध्वं) शत्रुओंको हर तरहसे मारो, तथा (नः अद्य अपरं च मृळयत) हमें आज और आनेवाले दिनोंमें भी सुखी करो ॥ २ ॥

[२९०] हे (वसवः) निवास करानेवाले देवो ! हम (सनेन आप्येन) अपने प्राचीन कर्मसे (वः किं नु कृणवाम) तुम्हारा क्या कल्याण करें, (अपरेण किं) तथा दूसरे उपायसे भी क्या कल्याण करें, इसके विपरीत हे (मित्रा-वरुणा अदिते इन्द्रामरुतः) मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गणो ! (यूयं) तुम्हीं (नः स्वस्ति दधात) हमारे लिए कल्याणको धारण करो ॥ ३ ॥

[२९१] (हये देवाः) हे देवो ! (यूयं इत् आपयः स्थ) तुम्हीं हमारे बन्धु बान्धव हो, अतः (ते) वे तुम (नाधमानाय मह्यं मृळत) तुम्हारी स्तुति करनेवाले मुझे सुखी करो, (वः रथः ऋते मध्यमवाट् मा भूत्) तुम्हारा रथ हमारे यज्ञकी तरफ आते हुए मन्दगतिवाला न हो और हम भी (युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म) तुम जैसे बन्धुओंकी सेवा करते हुए न थकें ॥ ४ ॥

१ देवाः ! यूयं इत् आपयः स्थ— हे देवो ! तुम्हीं हमारे भाई हो ।
२ युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म— तुम जैसे भाईयोंकी सेवा करते हुए हम कभी न थकें ।

[२९२] (पिता कितवं इव) पिता जिस प्रकार बच्चेको उपदेश देता है, उसी प्रकार (यत् मा शशास) चूंकि तुमने मुझे उपदेश दिया है, इसलिए (वः) तुम्हारे भक्त मैंने (एकः) अकेले (भूरि आगः मिमय) बहुतसे पापोंको नष्ट कर दिया है । हे (देवाः) देवो ! (पाशा आरे) पाश मुझसे दूर रहें, (अघानि आरे) पाप मुझसे दूर रहें, तथा (पुत्रे अधि विं इव) जिस प्रकार शिकारी पुत्रके देखते देखते पिताको पकड ले जाता है, उसी प्रकार (मा मा ग्रभीष्ट) मुझे मत पकडो ॥ ५ ॥

१ यत् मा शशास एकः भूरि आगः मिमय— चूंकि इन देवोंने मुझे उपदेश दिया, इसलिए मैंने अकेले ही बहुतसे पापोंको नष्ट कर दिया ।

भावार्थ— देवोंकी बुद्धि बहुत उत्कृष्ट है, वे बडे ओजस्वी हैं । इनसे कोई भी चीज बची नहीं रहती, जो छिपकरके भी द्वेष करते हैं, उन्हें भी ये देव अच्छी तरह जानते हैं । ये देव सभी शत्रुओंको दूर करके अपने उपासकोंको हर तरहसे सुखी रखते हैं ॥ २ ॥

हे देवो ! हम मनुष्य अत्यन्त अल्पशक्तिमान् होनेके कारण तुम्हारी क्या भलाई कर सकते हैं । देव सर्वशक्तिमान् हैं और मनुष्य अल्प शक्तिमान्, अतः मनुष्यके द्वारा देवोंका कुछ कल्याण नहीं हो सकता, इसके विपरीत देव ही मनुष्योंका कल्याण कर सकते हैं ॥ ३ ॥

देवगण ही मनुष्यके सच्चे भाई बन्धु हैं, वे मनुष्यको हरतरहसे सुखी करते हैं । जिस प्रकार देवगण मनुष्योंके सुखकी चिन्ता करते हैं, उसी प्रकार मनुष्यको चाहिए कि वह भी बन्धुओंके समान प्यार करनेवाले इन देवोंकी सतत सेवा करता रहे, उनकी सेवा करते हुए वह कभी न थके ॥ ४ ॥

२९३ अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥ ६ ॥
२९४ माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन् त्सुयमादव स्थां बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ७ ॥

[३०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- इंद्रः, ६ इन्द्रसोमौ, ८ (पूर्वाऽर्धर्चस्य) सरस्वती, ९ बृहस्पति, ११ मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ११ जगती ।]

२९५ ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्ग आसाम् ॥ १ ॥

अर्थ— [२९३] हे (यजत्राः) पूजाके योग्य देवो ! (अद्य अर्वाञ्चः भवतः) आज हमारी तरफ आनेवाले होओ, तथा (भयमानः) डरता हुआ मैं (वः हार्दिः आ व्ययेयं) तुम्हारे हृदयमें स्थित प्रेमको प्राप्त करूं । (देवाः) हे देवो ! तुम (नः वृकस्य निजुरः त्राध्वं) हमारी दुष्ट मनुष्यके शस्त्रोंसे रक्षा करो, हे (यजत्राः) पूज्य देवो ! (अवपदः कर्तात् त्राध्वं) आपत्तियों या कष्टोंको देनेवालोंसे हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥

[२९४] हे (वरुण) वरुण ! (अहं) मैं (मघोनः प्रियस्य) ऐश्वर्यवान्, प्रिय (भूरिदाव्नः आपेः) बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी (शूनं मा आ विदं) बुद्धिकी निन्दा न करूं । हे (राजन्) तेजस्वी देव ! (सुयमात् रायः मा अव स्थाम्) उत्तम उपभोगके योग्य धन पाकर मैं अभिमानी न हो जाऊं, अपितु (सुवीराः) उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम (विदथे) यज्ञमें (बृहद् वदेम) देवोंकी अच्छी स्तुति करें ॥ ७ ॥

१ अहं भूरिदाव्नः आपेः शूनं मा आविदं— मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी बुद्धिकी निन्दा न करूं ।

२ सुयमात् रायः अव स्थाम्— उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न रहूँ अर्थात् दूसरोंको नीचा न समझूं ।

[३०]

[२९५] (ऋतं कृण्वते) जलको प्रेरित करनेवाले, (देवाय सवित्रे) तेजस्वी तथा सबको प्रेरित करनेवाले (अहिघ्ने) अहिको मारनेवाले (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (आपः न रमन्ते) ये यज्ञादि कर्म कभी नहीं बन्द होते, (अपां अक्तुं अहरहः याति) इन कर्मोंका करनेवाला प्रतिदिन प्रयत्न करता है, (आसां प्रथमः सर्गः कियति आ) इन कर्मोंका सर्वप्रथम प्रचलन कब हुआ ? ॥ १ ॥

भावार्थ— ये देवगण जिसको उपदेश देते हैं, वह अकेला होते हुए भी अनेकों पापों या पापियोंसे मुकाबला करके उन्हें नष्ट कर सकता है । उन्हींकी कृपासे पाश और पाप दूर रहते हैं । हे देवो ! तुम हमारी आयु कम मत करो, जिस तरह शिकारी पक्षीको पकडकर ले जाता है, उसी तरह हमें न पकडो अर्थात् कार्यके बीचमें ही हमारा नाश न करो ॥ ५ ॥

हे पूजाके योग्य देवो ! आज तुम हमारी तरफ आओ, ताकि डरनेवाला मैं तुम्हारे हृदयमें स्थित प्यारको प्राप्त करके निडर हो जाऊं । तुम दुष्ट मनुष्योंके शस्त्रास्त्रोंसे हमें बचाओ तथा जो मनुष्य हमें कष्ट देता है, उससे भी हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥

जो बहुत दान देनेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऐश्वर्यशालीके ऐश्वर्यवृद्धिकी निन्दा न करूं अर्थात् उसकी वृद्धि देखकर ईर्ष्या न करूं । तथा मैं भी धन पाकर दूसरोंको नीचा न समझूं और अभिमान न करूं, अपितु उत्तम वीर सन्तानों एवं धनोंसे युक्त होकर देवोंकी हम स्तुति करें ॥ ७ ॥

जल प्रेरित करनेवाले, तेजस्वी तथा सबको प्रेरित करनेवाले, अहिनामक असुरको मारनेवाले इन्द्रके लिए यज्ञके कर्म कभी बन्द नहीं होते, इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिए इन यज्ञके कर्मोंको यज्ञकर्ता हमेशा करता रहता है । पर इन यज्ञोंका सर्वप्रथम प्रचलन कब हुआ, कौन जानता है ? ॥ १ ॥

२९६ यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥ २ ॥
२९७ ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षे ऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत् तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥ ३ ॥
२९८ बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चि-देवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥ ४ ॥
२९९ अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरे-रस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२९६] (यः) जो (वृत्राय अत्र सिनं अभरिष्यत्) वृत्रके लिए अन्न दिया करता था, (तं जनित्री विदुषे उवाच) उसका नाम सबको उत्पन्न करनेवाली माताने विद्वान् इन्द्रको बता दिया। (अस्मै अनु जोषं पथः रदन्तीः) इस इन्द्रकी इच्छाके अनुसार मार्गोंको बनाती हुई (धुनयः) नदियां (दिवे दिवे अर्थं यन्ति) प्रतिदिन समुद्रकी तरफ बढती चली जाती हैं ॥ २ ॥

[२९७] (हि) क्योंकि यह वृत्र (अन्तरिक्षे अधि ऊर्ध्वः अस्थात्) अन्तरिक्षमें बहुत ऊपर स्थित था, (अध) इसलिए (वृत्राय वधं प्र जभार) इन्द्रने वृत्रके प्रति वज्रको फेंका, तब वह भी (मिहं वसानः) मेघको ओढकर वृत्र (ईं उप अदुद्रोत्) इस इन्द्रकी तरफ दौडा, तब (तिग्मायुधः इन्द्रः शत्रुं अजयत्) तीक्ष्ण शस्त्रवाले इन्द्रने शत्रुको जीता ॥ ३ ॥

[२९८] हे (बृहस्पते) बडे वीरोंका पालन करनेवाले इन्द्र! (तपुषा) अपने शत्रुको ताप देनेवाले वज्रसे (अश्मा इव) विद्युत्के समान (वृक-द्वरसः असुरस्य वीरान्) द्वारोंको बंद करनेवाले असुरके वीर पुत्रोंको (विध्य) वींध, ताडन कर। हे इन्द्र! (यथा पुरा) जैसे प्राचीन समयमें (धृषता जघन्थ) वज्रसे शत्रुको जीत लिया था (एव चित्) वैसे ही (अस्माकं शत्रु जहि) हमारे शत्रुको आज भी मार ॥ ४ ॥

[२९९] हे इन्द्र! (मन्दसानः) उत्साह युक्त होते हुए तूने (येन शत्रुं निजूर्वाः) जिस वज्रसे शत्रुको मारा था, उस (अश्मानं) वज्रको (उच्चात् दिवः) ऊंचे द्युलोकसे (अव क्षिप) हमारे शत्रुओंपर फेंक, (भूरेः तोकस्य तनयस्य सातौ) भरणपोषणके योग्य पुत्र पौत्रोंका पालनेके लिए तथा (गोनां) गौओंको पालनेके लिए (अस्मान् अर्धं कृणुत) हमें समृद्धि युक्त कर ॥ ५ ॥

१ तोकस्य तनयस्य सातो अस्मान् अर्धं कृणुत— पुत्र और पौत्रोंको पालनेके लिए हम समृद्धि युक्त हों।

भावार्थ— जो शत्रुके लिए अन्न आदि पहुंचाता है, वह देशका शत्रु है, उसे भी शत्रुके साथ ही नष्ट कर देना चाहिए। इस इन्द्रके द्वारा प्रेरित हुई नदियां इसके इच्छानुसार बहती हुई समुद्रकी तरफ जाती हैं ॥ २ ॥

अन्तरिक्षमें बहुत ऊंचे स्थानपर यह वृत्र स्थित था, इसलिए इन्द्रने वृत्रपर-वज्र फेंककर मारा, तब वृत्र भी मेघोंका वस्त्र ओढकर इस इन्द्रकी तरफ चढ दौडा, तब तीक्ष्ण वस्त्रको धारण करनेवाले इन्द्रने इस वृत्रको जीत लिया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! तू वीरोंका पालन करनेवाला है, स्वयं भी वीर है, इसलिए द्वारोंको बन्द करनेवाले अर्थात् अच्छे कामोंमें विघ्न डालनेवालेको तू मारता है। तू जिस प्रकार पहले शत्रुओंको जीतता था, उसी प्रकार अब भी जीत ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! उत्साहसे युक्त होकर तूने अपने जिस वज्रसे अपने शत्रुओंको मारा था, उसी वज्रसे हमारे शत्रुओंको भी मार। तथा पुत्र और पौत्रोंका पालन करनेके लिए हमें समृद्धि युक्त कर। हम समृद्धि युक्त होकर पुत्र और पौत्रोंका पालन करें अर्थात् कंजूस न बनें ॥ ५ ॥

३०० प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥ ६ ॥
३०१ न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद् यो ददद् यो निबोधाद् यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ७ ॥
३०२ सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।
त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥ ८ ॥
३०३ यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।
बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥ ९ ॥

अर्थ— [३००] (इन्द्रासोमौ) हे इन्द्र और सोम ! (यं वनुथः) तुम दोनों जिसके शत्रुको मारते हो, तथा (रध्रस्य यजमानस्य चोदौ स्थः) तुम्हारी आराधना करनेवाले यजमानको प्रेरणा देनेवाले हो, उसके (क्रतुं प्र हि वृहथः) यज्ञको तुम उन्नत करते हो । (अस्मिन् भयस्थे युवां अस्मान् अविष्टं) इस भयवाले स्थानमें तुम दोनों हमारी रक्षा करो तथा (लोकं कृणुतं) लोकोंको भयरहित करो ॥ ६ ॥

[३०१] (यः मे पृणाद्) जो इन्द्र मेरी अभिलाषाओंको पूर्ण करता है, (यः ददत्) जो धन देता है, (यः निबोधाद्) जो हमें ज्ञान देता है, तथा (यः सुन्वन्तं मा गोभिः उप आयत्) जो सोम तैय्यार करनेवाले मेरे पास गायोंके साथ आता है, वह इन्द्र (मा न तमत्) मुझे दुःखी न करे, (न श्रमत्) मुझे न थकावे (न तन्द्रत्) मुझे आलस्य युक्त भी न करे और हम भी उसके लिए (मा सुनोत) सोम रस मत तैय्यार करो (इति) ऐसा लोगोंसे (मा वोचाम) न कहें ॥ ७ ॥

[३०२] हे (सरस्वति) सरस्वती देवी ! (त्वं अस्मान् अविड्ढि) तू हमारी रक्षा कर, तथा (मरुत्वती धृषती शत्रून् जेषि) मरुतोंसे युक्त होकर तथा अत्यन्त बल युक्त होकर शत्रुओंको जीत, यह (इन्द्रः) इन्द्र भी (शर्धन्तं) सहनशक्तिसे युक्त (तविषीयमाणं) अत्यधिक बलशाली (शण्डिकानां वृषभं) शाण्डवंशमें अत्यधिक बलवान् (त्यं हन्ति) उस असुरको मारता है ॥ ८ ॥

[३०३] (बृहस्पते) हे ज्ञानके पति ! (यः नः सनुत्यः) जो हमारा गुप्त शत्रू (उत वा जिघत्नुः) अथवा वध करनेवाला है, (तं अभिख्याय तिगितेन विध्य) उसको कहकर तीक्ष्ण अस्त्रसे बींध दो तथा (आयुधैः शत्रून् जेषि) शस्त्रोंसे शत्रुओंको जीतो, अतः हे (राजन्) तेजस्विन् ! (द्रुहे रिषन्तं परि धेहि) द्रोह करनेवालेपर हिंसक अस्त्र फेंको । ॥ ९ ॥

१ बृहस्पते ! यः नः सनुत्यः उत वा जिघत्नुः तं अभि-ख्याय तिगितेन विध्य— हे बृहस्पते ! जो हमारा गुप्त शत्रू अथवा हमें मारनेवाला है, उसको कह करके तीक्ष्ण शस्त्रसे बींध दो ।

भावार्थ— हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों जिस यजमानके शत्रुको नष्ट करते हो, तथा जिसे प्रेरणा देते हो, उसके यज्ञको भी तुम उन्नत करते हो, तुम भयसे युक्त स्थानमें हमारी रक्षा करो, तथा हमारे लिए लोकोंको भयसे रहित करो ॥ ६ ॥

वह इन्द्र हमें धन और ज्ञान आदि देकर पूर्ण करता है, हमारी हर तरहसे वह रक्षा करता है, अतः वह हमें कभी निर्बल और आलस्य युक्त न करे और इस प्रकार वह हमें कभी दुःखी न करे । हम भी दूसरोंसे यह न कहें कि तुम इन्द्रकी पूजा मत करो । इसके विपरीत हम सभीको इन्द्रकी पूजा करनेके लिए प्रेरित करें ॥ ७ ॥

सरस्वती तथा इन्द्र दोनों मिलकर हमारी रक्षा करें । सरस्वती हमें ज्ञानसे युक्त करें और इन्द्र हमें बलसे युक्त करे और असुरोंको मारे । सरस्वतीके पूजक ज्ञानी ब्राह्मणगण राष्ट्रमें ज्ञानका प्रसार करके प्रजाओंको ज्ञानी बनायें और इन्द्रके पूजक क्षत्रियगण राष्ट्रमें प्रजाओंको शक्तिशाली बनाकर उन्हें समर्थ बनायें और राष्ट्रमें शत्रुओंको मारकर राष्ट्रकी रक्षा करें ॥ ८ ॥

हे बृहस्पते ! जो हमारा शत्रु हमारा वध करना चाहता है, उसे सावधान करके उसे मारो । सच्ची वीरता शत्रुको असावधानीमें मारनेमें नहीं है, अपितु उसे सावधानीमें मारनेमें ही है । शस्त्रोंसे शत्रुओंको जीतना चाहिए ॥ ९ ॥

३०४ अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरै - र्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥ १० ॥

३०५ तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरो - प ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

[३१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- विश्वे देवाः ।
छन्दः- जगती; ७ त्रिष्टुप् ।]

३०६ अस्माकं मित्रावरुणावतं रथ - मादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥

३०७ अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥

अर्थ- [३०४] हे (शूर) शूर इन्द्र! तू (अस्माकेभिः सत्वभिः शूरैः) हमारे बलवान् शूरवीरोंके साथ रहकर (यानि ते कर्त्वानि) जो तेरे द्वारा करने योग्य हैं उन (वीर्या कृधि) पराक्रमोंको कर, तथा जो शत्रु (ज्योग्) बहुत समयसे (अनुधूपितासः अभूवन्) घमण्डी रहे हैं, उन्हें (हत्वी) मार कर (तेषां वसूनि नः आ भर) उनके धनोंको लाकर हमें भरपूर दे ॥ १० ॥

१ अनुधूपितासः— घमण्डी, अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाले ।

[३०५] (वः) तुम्हारे (दैव्यं जनं मारुतं शर्धं) उस तेजस्वी प्रकट हुए वीर मरुतोंके बलकी (सुम्नयुः) मैं सुखको चाहनेवाला, (नमसा गिरा) नमनसे और वाणीसे (उप ब्रुवे) सराहना करता हूँ। (यथा) इस उपायसे हम (सर्व-वीरं) सभी वीरोंसे युक्त (अपत्यसाचं) पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त तथा (श्रुत्यं) कीर्तिसे युक्त (रयिं) धनको (दिवे दिवे नशामहै) प्रतिदिन प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[३१]

[३०६] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण! (आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः सचाभुवा) आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ साथ रहनेवाले तुम (अस्माकं रथं अवतं) हमारे रथकी रक्षा करो। (यत्) क्योंकि (श्रवस्यन्तः हृषीवन्तः वनर्षदः वयः न) अन्नकी इच्छा करनेवाले, हर्षसे युक्त तथा पेड़ोंपर रहनेवाले पक्षियोंकी तरह हमारे घोडे (वस्मनः परि प्र पप्तन्) अपने स्थानसे दौडते हैं ॥ १ ॥

[३०७] (सजोषसः देवासः) हे साथ साथ रहनेवाले देवो! (अध) अब (नः वाजयुं रथं) हमारे अन्नके अभिलाषी रथको (विक्षु अभि उत् अवत) प्रजाओंकी तरफ प्रेरित करो। (यत् आशवः पद्याभिः रजः तित्रतः) जब शीघ्रगामी घोडे पैरोंसे मार्गोंको पार करते हैं तब वे (पाणिभिः) अपने पैरोंसे (पृथिव्याः सानौ जंघनन्त) पृथिवीके ऊपर आघात करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र! हमारे बलवान् शूरवीरोंके साथ अर्थात् उनकी सहायता लेकर जो पराक्रमके कार्य करने योग्य हैं, उन्हें कर, जो घमण्ड मारनेवाले शत्रु हैं, उन्हें भी मार। घमण्ड करना दुर्गुण है, अभिमानी हमेशा इन्द्रका शत्रु होता है और अन्तमें वह नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

मैं वीरोंके बलकी प्रशंसा करता हूँ। इससे हम सभीको वीरतायुक्त धन मिलता रहे। वह धन इस भांति मिले कि उसके साथ शूरता, वीरता, धीरज, वीर सन्तान एवं यश भी प्राप्त हो। अगर शूरता आदि स्पृहणीय गुणोंसे रहित धन हो, तो हमें वह नहीं चाहिए ॥ ११ ॥

हे मित्र और वरुण! तुम आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ रहकर सब कार्य करते हो। हम जब अपने घोडोंको अन्नकी प्राप्तिके लिए प्रेरित करते हैं, तब तुम पक्षियोंके समान उडनेवाले घोडोंसे युक्त हमारे रथकी रक्षा करो ॥ १ ॥

३०८ उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणि—र्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥
३०९ उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणि—स्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद् रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरंधिरश्विनावधा पती ॥ ४ ॥
३१० उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशो—षासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद् वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥
३११ उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्य—हिर्बुध्न्योऽज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधे ऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥

अर्थ—[३०८] (विश्वचर्षणिः सुक्रतुः स्यः इन्द्रः) सबको देखनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला वह इन्द्र (मारुतेन शर्धेन) मरुतोंके बलसे युक्त होकर (महे सनये वाजसातये) महान् धन और अन्नकी प्राप्तिके लिए (अवृकाभिः ऊतिभिः) सरल संरक्षणकी शक्तिसे सम्पन्न होकर (दिवः नु) द्युलोकसे आकर (नः रथं अनु स्थाति) हमारे रथपर बैठे ॥ ३ ॥

[३०९] (उत) और (भुवनस्य सक्षणि) सभी लोकोंके द्वारा उपास्य (सजोषाः) सभीसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करनेवाला (स्यः देवः त्वष्टा) वह तेजस्वी त्वष्टा अपनी (ग्नाभिः) शक्तियोंसे (रथं जूजुवद्) रथको प्रेरित करे । उसी तरह (इळा) इडा (बृहद्दिवा भगः) अत्यन्त तेजस्वी भग (उत रोदसी) और द्यावापृथिवी (पुरंधिः पूषा) ज्ञानसे युक्त पूषा और (पती अश्विना) सबका पालक करनेवाले अश्विनौ हमारे रथको प्रेरित करें ॥ ४ ॥

[३१०] (उत) और (त्ये देवी सुभगे मिथूदृशा उषासानक्ता) वे तेजस्वी, उत्तम ऐश्वर्यवाली और परस्पर देखनेवाली उषा और रात्री (जगतां अपी जुवा) जगत्को प्रेरणा देनेवाली है। हे (पृथिवि) द्यावापृथिवि ! (यत्) जब (वां नव्यसा वचः स्तुषे) तुम दोनोंकी मैं नवीन स्तोत्रसे स्तुति करता हूँ, तब तुम्हारे लिए (स्थातुः च त्रिवयाः वयः) भूमिसे उत्पन्न होनेवाली तीन प्रकारकी हविको (उपस्तृणे) समर्पित करता हूँ ॥ ५ ॥

[३११] (उशिजां इव) जिस प्रकार कामना करनेवाली स्त्रीकी पुरुष कामना करता है, उसी प्रकार हे देवो ! (वः शंसं श्मसि) हम तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं। (अहिर्बुध्न्यः अजः एकपात्) अहिर्बुध्न्य, अज एकपात् (त्रितः ऋभुक्षाः) विस्तृत ऋभुक्षा देव (सविता अपां नपात्) सविता तथा जलोंसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि (शमि) यज्ञकर्ममें (धिया) हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर हमें (चनः दधे) अन्न प्रदान करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे साथ साथ रहनेवाले देवो ! हमारे रथको प्रजाओंकी तरफ प्रेरित करो, ताकि हमें अन्नकी प्राप्ति हो। जब शीघ्रगामी घोडे पैरोंसे मार्गको पार करते हैं अर्थात् मार्गपर दौडते हैं, तब वे अपनी टापोंसे पृथ्वीपर आघातकरते हैं ॥२॥

यह इन्द्र सबको देखनेवाला तथा उत्तम कर्म करनेवाला है। ऐसा वह इन्द्र हमें उत्तम धन एवं अन्न प्राप्त करानेके लिए हमारे रथकी रक्षा करे। उसके संरक्षणमें हम शत्रुओंपर आक्रमण करके धन और अन्नको प्राप्त करें ॥ ३ ॥

सभी लोकोंके द्वारा सेवनीय और सभीसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करनेवाले त्वष्टा, इडा, भग, पूषा, द्यावापृथिवी, भग और अश्विनौ आदि देव अपनी शक्तियोंसे हमारे रथको प्रेरित करें ॥ ४ ॥

उषा और रात्री ये दोनों देवियां अत्यन्त तेजसे युक्त, ऐश्वर्य सम्पन्न और हमेशा साथ साथ दिखाई देती हैं। ये दोनों ही सारे जगत्को प्रेरित करती हैं। इन्हींके कारण सारे प्राणी अपने अपने कार्य करते हैं ॥ ५ ॥

जिस प्रकार कामनायुक्त स्त्रीकी पुरुष मनसे कामना करता है, उसी प्रकार हम भी मनसे देवोंकी स्तुति करें। (अहिर्बुध्न्य) अन्तरिक्षमें रहनेवाली विद्युत्, (अजः एकपात्) सूर्य, (ऋभुक्षा) ऋभुओं अर्थात् मरुतोंको बसानेवाला देव इन्द्र सविता और अग्नि आदि देव हमारे स्तुतिरूप कर्मसे प्रसन्न होकर हमें अन्न प्रदान करें ॥ ६ ॥

३१२ एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥ ७ ॥

[३२]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- १ द्यावापृथिवी, २-३ इन्द्रस्त्वष्टा वा, ४-५ राका, ६-७ सिनीवाली, ८ लिङ्गोक्ताः । छन्दः- जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।]

३१३ अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥ १ ॥

३१४ मा नो गुह्या रिप आयोरहन् दभन् मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे ॥ २ ॥

अर्थ— [३१२] हे (यजत्राः) पूजनीय देवो ! (वः) तुम्हारे (एता उत् यता वश्मि) इन उन्नतिकारक कर्मोंको मैं चाहता हूँ। (आयवः नव्यसे सं अतक्षन्) मनुष्य यश प्राप्त करनेके लिए उत्तम कर्म करते हैं। (श्रवस्यवः) यशकी अभिलाषा करनेवाले तथा (वाजं चकानाः) बलकी कामना करनेवाले मनुष्य (रथ्यः सप्ति न) रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह (धीतिं अश्याः) कर्मको करते रहें ॥ ७ ॥

१ एता उत् यता वश्मि— देवोंके इन उन्नतिकी ओर ले जानेवाले कर्म मैं करना चाहता हूँ।
२ आयव नव्यसे सं अतक्षन्— मनुष्य यश प्राप्त करनेके लिए उत्तम कर्म करते हैं।
३ श्रवस्यवः रथ्यः सप्तिः न धीतिं अश्याः— यशकी इच्छा करनेवाले रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह हमेशा काममें व्यस्त रहें।

[३२]

[३१३] (ऋतायतः सिषासतः अस्य मे) सत्यधर्मके अनुसार चलनेवाले तथा तुम्हारी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले इस मेरी (वचसः) वाणीकी, हे (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी ! (अवित्री भूतं) रक्षा करनेवाली होओ। (ययोः आयुः प्रतरं) जिनका बल उत्तम है, ऐसे (ते-पुरः) उन दोनोंके आगे (वसुयुः) धन पानेकी इच्छा करनेवाला मैं (इदं उप स्तुते) यह प्रार्थना करता हूँ। (वां महः दधे) तुम दोनोंको मैं बहुत श्रेष्ठ मानता हूँ ॥ १ ॥

१ ऋतायतः सिषासतः आयुः प्रतरम्— सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवालेकी आयु और बल बढता है।

[३१४] हे इन्द्र ! (आयोः गुह्याः रिपः) शत्रुकी छिपी हुई मायायें (अहन्) दिन या रातमें (नः मा दभन्) हमें नष्ट न करें। तू भी (नः) हमें (आभ्यः दुच्छुनाभ्यः मा रीरधः) इन दुःखदायक सेनाओंसे हिंसित मत कर। (नः सख्या मा वि यौः) हमें अपनी मित्रतासे दूर मत कर। (नः तस्य सुम्नायता मनसा विद्धि) हमारी उस मित्रताको तू अपने उत्तम मनसे जान। (त्वा तत् ईमहे) तुझसे हम उस मित्रताको चाहते हैं ॥ २ ॥

१ आयोः गुह्याः रिपः नः मा दभन्— शत्रु मनुष्यकी छिपी हुई मायायें हमें नष्ट न करें।
२ नः सख्या मा वि यौः— हे इन्द्र ! हमें अपनी मित्रतासे दूर मत कर।

भावार्थ— मनुष्य सदा देवोंके उन्नतिकारक कर्मोंको ही करें। क्योंकि बिना उत्तम कर्म किए यश प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए यशको और बलको प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाले मनुष्यको चाहिए कि वह रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह सदा कर्ममें संलग्न रहे ॥ ७ ॥

मैं द्यावापृथिवीको बहुत श्रेष्ठ मानता हूं, अतः उनसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे धन दें। उनका बल बहुत उत्तम है, अतः वे सत्यमार्गपर चलनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवाले मेरी वाणीकी रक्षा करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंकी छिपी हुई मायायें हमें नष्ट न करें, तथा तू भी हमें मत मार, न हमें अपनी मित्रतासे दूर ही कर। हम तुझसे कितनी मित्रता करते हैं, यह अपने उत्तम मनसे जान, क्योंकि हम तुझसे तेरी मित्रता ही चाहते हैं। मनुष्य हमेशा उत्तम मनसे मित्रता करें, किसी स्वार्थसे नहीं ॥ २ ॥

३१५ अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥
३१६ राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥
३१७ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥
३१८ सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३१५] हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! (अहेळता मनसा) क्रुद्ध न होते हुए मनसे तू (श्रुष्टिं दुहानां पिप्युषीं असश्चतं धेनुं आ वह) सुख देनेवाली, दुधारु, वृद्धि करनेवाली तथा उत्तम अवयवों वाली गाय हमें दे, तथा (पद्याभिः आशुं) पैरोंसे मार्गको शीघ्रतापूर्वक पार करनेवाले (वचसा) कहनेमात्रसे रथमें जुड जानेवाले (वाजिनं) घोडेको (विश्वहा हिनोमि) सब दिन मैं प्राप्त करूं ॥ ३ ॥

[३१६] (अहं) मैं (सुहवां राकां) उत्तम प्रकारसे बुलाये जाने योग्य राका देवीको (सुस्तुती हुवे) उत्तम स्तुतिसे बुलाता हूँ । (सुभगा नः शृणोतु) उत्तम ऐश्वर्यवाली वह हमारी प्रार्थना सुने और सुनकर (त्मना बोधतु) अपने मनसे समझे । (अच्छिद्यमानया सूच्या अपः सीव्यतु) न टूटनेवाली सुईसे हमारे कर्मोंको सीये तथा (उक्थ्यं शतदायं वीरं ददातु) प्रशंसाके योग्य तथा बहुत धन देनेवाले वीर पुत्रको प्रदान करे ॥ ४ ॥

१ अच्छिद्यमानया सूच्या अपः सीव्यतु— न टूटनेवाली सुईसे हमारे कर्मोंको सीये ।

[३१७] हे (सुभगे राके) उत्तम ऐश्वर्यशालिनि राका देवी ! (ते याः सुपेशसः सुमतयः) तेरी जो उत्तम रूपवाली उत्तम बुद्धियां हैं, (याभिः दाशुषे वसूनि ददासि) जिनसे तू दाताको अनेक प्रकारके धन देती है, (ताभिः सहस्रपोषं रराणा) हजारों तरहके पुष्टिकारक अन्न प्रदान करती हुई (नः अद्य सुमना उप आगहि) हमारे पास आज उत्तम मनसे आ ॥ ५ ॥

१ सुमतयः दाशुषे वसूनि ददासि— उत्तम बुद्धियोंके द्वारा राका देवी दाताको धन प्रदान करती है ।

[३१८] (पृथुष्टुके सिनीवालि) हे विस्तृत रूपवाली सिनीवाली ! (या देवानां स्वसा असि) जो तू देवोंकी बहिन है, वह तू (आहुतं हव्यं जुषस्व) अग्निमें दी गई आहुतिका सेवन कर, और हे (देवि) देवी ! (नः प्रजां दि दि ड्ढि) हमें प्रजा प्रदान कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र! प्रसन्न मनसे हमें गाय और घोडा दे । गाय सुखदायक, दुधारु, पुष्ट करनेवाली तथा सुन्दर और पुष्ट अवयवोंवाली हो । घोडे वेगवान् तथा इशारा समझनेवाले और बलवान् हों ॥ ३ ॥

राका पूर्णिमाकी अधिष्ठात्री देवी है । यह उत्तम ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाली है । वह हमारी प्रार्थना सुने और सुनकर उसे हृदयमें धारण करे । यह रात और दिन हमारे कर्मोंको न टूटनेवाली सुईसे सीया करें । यह मनुष्य जीवन एक वस्त्र है, जिसे कर्मरूपी सुईसे सिया जाता है । रात और दिन सीनेवाले हैं । यह कर्मरूपी सुई बीचमें ही न टूट जाए अर्थात् मनुष्यके कर्म बीचमें ही समाप्त न हो जाएं, मनुष्य पूर्णायुका उपभोग करे और निरन्तर कर्म करता रहे ॥ ४ ॥

हे ऐश्वर्यशालिनि राका देवी ! जिन उत्तम बुद्धियोंसे तू दानदाताको उत्तम धन देती है, उन्हीं उत्तम बुद्धियोंसे हमें पुष्टिकारक अन्न देती हुई उत्तम मनवाली होकर हमारे पास आ ॥ ५ ॥

सिनीवाली अमावस्याकी अधिष्ठात्री देवी है, अथवा शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाको सिनीवाली है । इस दिनसे चन्द्रमाकी कलायें बढती हैं । यह देवोंकी बहिन है । यह देवोंको तेजस्वी बनाती है ॥ ६ ॥

३१९ या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥ ७ ॥
३२० या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥

[३३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३२१ आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥
३२२ त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद् द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

अर्थ— [३१९] (या) जो सिनीवाली (सुबाहुः सु-अंगुरिः सुषूमा बहुसूवरी) उत्तम बाहुओंवाली, उत्तम अंगुलियोंवाली, उत्तम पदार्थ उत्पन्न करनेवाली तथा अनेक प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाली है, (तस्यै विश्पत्न्यै सिनीवाल्यै) उस प्रजाओंका पालन करनेवाली सिनीवालीके लिए (हविः जुहोतन) हवि प्रदान करो ॥ ७ ॥

[३२०] (या गुंगूः सिनीवाली या राका या सरस्वती) जो गुंगू, जो सिनीवाली, जो राका, जो सरस्वती आदि देवियां हैं, उन्हें (ऊतये अह्वे) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ, उसी प्रकार (इन्द्राणीं) इन्द्राणीको बुलाता हूँ, (वरुणानीं स्वस्तये) तथा वरुणानीको भी कल्याणके लिए बुलाता हूँ ॥ ८ ॥

[३३]

[३२१] हे (मरुतां पितः) मरुतोंके पालक रुद्र ! (ते सुम्नं आ एतु) तेरा सुख हमें प्राप्त हो, (नः सूर्यस्य संदृशः मा युयोथाः) हमें सूर्यकी उत्तम दृष्टिसे दूर मत कर । (नः वीरः) हमारे वीर (अर्वति अभि क्षमेत) युद्धमें शत्रुओंका परास्त करें । हे (रुद्र) रुद्र ! प्रजाभिः प्र जायेमहि) प्रजाओंसे हम विस्तृत हों ॥ १ ॥

[३२२] हे (रुद्र) रुद्र ! (त्वादत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः) तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधोंसे (शतं हिमाः अशीय) मैं सौ वर्ष कर्म करता रहूँ । (अस्मत् द्वेषः वि तर) हमसे द्वेष भावोंको दूर कर, (अंहः वि) पापको दूर कर और (विषूचीः अमीवाः चातयस्व) सारे शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको हमसे दूर करके नष्ट कर ॥ २ ॥

१ त्वादत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः शतं हिमाः अशीय— हे रुद्र ! तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक औषधोंसे सौ वर्षतक मैं कर्म करता रहूँ ।

२ अस्मत् द्वेषः अंहः विषूचीः अमीवाः चातयस्व— हमसे द्वेष, पाप तथा सब शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको दूर कर ।

भावार्थ— यह सिनीवाली देवी उत्तम किरणोंवाली होनेके कारण अनेक तरहके उत्तम उत्तम पदार्थोंको उत्पन्न करती है, और इस प्रकार उन पदार्थोंके द्वारा प्रजाओंका पालन करती है ॥ ७ ॥

मैं (गुंगू) शुक्ल प्रतिपदाके चन्द्रमा, अमावास्या, पूर्णिमा, सरस्वती, इन्द्राणी और वरुणानी आदि देवियोंको अपनी रक्षा एवं कल्याणके लिए बुलाता हूँ ॥ ८ ॥

हे मरुतोंके पालक रुद्र ! तेरा सुख हमें प्राप्त हो । तेरे बताये हुए मार्गपर चलकर हम सुखी हों । हम सूर्यके प्रकाशसे कभी दूर न हों । हमें कभी अन्धकारमें न रख । हमारे वीर और पुत्रादि युद्धमें शत्रुओंको परास्त करें तथा ऐसे वीर पुत्रोंके द्वारा हम अपने वंशका विस्तार करते रहें ॥ १ ॥

हे रुद्र ! तेरे द्वारा दिए गए औषधोंसे मैं बलवान् बनकर सौ वर्षतक कर्म करता रहूँ । मैं अन्न आदि खाकर पुष्ट होऊं और उत्तम कर्म करता रहूँ । और इस प्रकार हर तरहके रोगोंसे मैं दूर रहूँ, तथा द्वेष और पाप आदि दुर्भावनाओंसे भी दूर रहूँ ॥ २ ॥

३२३ श्रेष्ठो॑ जा॒तस्य॑ रुद्र श्रि॒यासि॑ त॒वस्त॑मस्त॒वसां॑ वज्रबाहो ।
प॒र्षि णः॑ पा॒रमंह॑सः स्व॒स्ति विश्वा॑ अ॒भीती॒ रप॑सो युयोधि ॥ ३ ॥

३२४ मा त्वा॑ रुद्र चुक्रुधामा॒ नमो॑भि॒र्मा दुष्टु॑ती वृषभ॒ मा सहू॑ती ।
उन्नो॑ वी॒राँ अ॑र्पय भेष॒जेभि॑र्भि॒षक्त॑मं त्वा भि॒षजां॑ शृणोमि ॥ ४ ॥

३२५ हवी॑मभि॒र्हव॑ते॒ यो ह॒विर्भि॒रव॒ स्तोमे॑भी रु॒द्रं दि॑षीय ।
ऋ॒दू॒द॒रः सु॒हवो॒ मा नो॑ अ॒स्यै ब॒भ्रुः सु॒शिप्रो॑ रीरधन्म॒नायै॑ ॥ ५ ॥

अर्थ— [३२३] हे (रुद्र) रुद्र ! तू (श्रिया) अपने ऐश्वर्यसे (जातस्य श्रेष्ठः असि) सभी उत्पन्न हुए पदार्थोंमें श्रेष्ठ है। हे (वज्रबाहो) हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र ! (तवसां तवस्तमः) बलवानोंमें सबसे अधिक बलवान् है। (नः अंहसः पारं स्वस्ति पर्षि) हमें पापोंसे पार कल्याणपूर्वक ले जा तथा (रपसः विश्वाः अभीती युयोधि) पापकी तरफ जानेवाले सभी मार्गोंको हमसे दूर कर ॥ ३ ॥

१ श्रिया जातस्य श्रेष्ठः असि— रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण ही उत्पन्न हुए प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

२ तवसां तवस्तमः— बलशालियोंमें बलशाली है।

३ रपसः विश्वाः अभीतीः युयोधि— पापकी तरफ जानेवाले सभी मार्ग हमसे दूर हों।

[३२४] हे (रुद्र) रुद्र ! (त्वा नमोभिः मा चुक्रुधाम) हम तुझे झूठे नमस्कारोंसे क्रोधित न करें, हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (दुष्टुती मा) बुरी स्तुतियोंसे भी तुझे क्रोध युक्त न करें, (सहूती मा) अन्य साधारण लोगोंसे बुलाकर तुझे क्रोधित न करें। (भेषजेभिः नः वीरान् उत् अर्पय) औषधियोंसे हमारी सन्तानोंको बलयुक्त कर, (त्वां भिषजां भिषक्तमं शृणोमि) तुझे मैं वैद्योंमें उत्तम वैद्य सुनता हूँ ॥ ४ ॥

१ त्वा नमोभिः दुस्तुती मा चुक्रुधाम— हे रुद्र ! हम तुझे झूठे नमस्कार करके तथा बुरी स्तुतियोंसे कभी भी क्रोधित न करें।

२ त्वां भिषजां भिषक्तमं शृणोमि— तुझे हम वैद्योंमें उत्तम वैद्य समझते हैं।

[३२५] (यः) जो रुद्र (हविर्भिः हवीमभिः हवते) हवियों और स्तुतियोंसे बुलाया जाता है, (रुद्रं) उस रुद्रको (स्तोमेभिः अव दिषीय) स्तोत्रोंसे शान्त करूं। (ऋदूदरः सुहवः) कोमल हृदयवाला, उत्तम प्रकारसे बुलाये जाने योग्य, (बभ्रुः सु शिप्रः) धारण पोषण करनेवाला तथा उत्तम रीतिसे रक्षण करनेवाला रुद्र (अस्यै मनायै) इस ईर्ष्याके हाथोंमें देकर (नः मा रीरधत्) हमारी हिंसा न करे ॥ ५ ॥

१ ऋदूदरः अस्यै मनायै नः मा रीरधत्— कोमल हृदयवाला यह रुद्र ईर्ष्याके हाथोंमें हमें सौंपकर हमारी हिंसा न करे। "ऋदूदरो मृदूदरः" (निरु. ६।४)

भावार्थ— यह रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण सबसे श्रेष्ठ है। जो अपनी शक्तिसे ही ऐश्वर्यवान् बनता है, वही सर्वश्रेष्ठ बन सकता है। वही बलवानोंमें बलवान् बन सकता है तथा जो पापकी तरफ जानेवाले मार्गपर कदम ही नहीं रखता वही पापोंसे पार जा सकता है ॥ ३ ॥

हे रुद्र ! हम कभी भी दिखावेके लिए तुझे प्रणाम न करें, अथवा बुरे मनसे कभी स्तुति न करें और इस प्रकार तुझे क्रोधित न करें। ढोंगसे स्तुति करनेपर ईश्वर नाराज होता है, इसलिए परमात्माकी स्तुति हमेशा शुद्ध और पवित्र मनसे ही करनी चाहिए। तब वह रुद्र स्तोता एवं उपासकके पुत्रपौत्रादिकोंकी हर तरहसे रक्षा करता है। परमात्मा सभी वैद्योंसे उत्तम वैद्य है, अतः अपनी रक्षाके लिए उसीकी शरणमें जाना चाहिए ॥ ४ ॥

जो अनेक प्रकारकी हवियोंके द्वारा और स्तुतियोंके द्वारा बुलाया जाता है, उस रुद्रके क्रोधको मैं शान्त करूं। वह बहुत कोमल हृदयवाला है, अतः जो भी शुद्ध और पवित्र मनसे उसकी प्रार्थना करता है, उसपर प्रसन्न हो जाता है। ऐसा पवित्र हृदयवाला मनुष्य कभी भी ईर्ष्याके वशमें नहीं होता। ईर्ष्या एक ऐसा मानसिक रोग है, जो मनुष्यकी हिंसा कर देता है, पर परमात्माका उपासक कभी भी ईर्ष्याके वशमें नहीं होता, इसलिए वह कभी भी नष्ट नहीं होता ॥ ५ ॥

३२६ उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान् त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव च्छायामरपा अशीया ऽऽ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥
३२७ क्व१ स्य ते रुद्र मृळयाकु र्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
३२८ प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥
३२९ स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरे र्न वा उ योषद् रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [३२६] (वृषभः मरुत्वान्) बलवान् और मरुतोंसे युक्त रुद्र (नाधमानं मा) मांगनेवाले मुझे (त्वक्षीयसा वयसा) तेजस्वी अन्नसे (उत् ममन्द) तृप्त करे, तथा (घृणि छायां इव) जिस प्रकार धूपसे पीडित व्यक्ति छायाका आश्रय लेता है, उसी प्रकार मैं भी (अरपाः) पापसे रहित होकर (रुद्रस्य सुम्नं अशीय) रुद्रके सुखको प्राप्त करूं और (आ विवासेयं) रुद्रकी सेवा करूं ॥ ६ ॥

१ अरपाः रुद्रस्य सुम्नं अशीय— पापसे रहित होकर रुद्रके सुखको प्राप्त करूं ।

[३२७] हे (रुद्र) रुद्र ! (ते यः) तेरा जो (भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः) रोग दूर करके जीवन देनेवाला तथा सुखकारक हाथ है, (स्यः क्व) वह कहां है ? हे (वृषभ) बलवान् ! (दैव्यस्य रपसः अपभर्ता) देवोंके द्वारा लाई गई आपत्तियोंको दूर करनेवाला तू (मा अभि चक्षमीथाः) मेरे अपराधोंको क्षमा कर ॥ ७ ॥

१ भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः— रुद्रका हाथ रोग दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुख देनेवाला है ।

२ दैव्यस्य रपसः अपभर्ता— दैवी आपत्तियोंको यह दूर करनेवाला है ।

[३२८] (बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे) सबका धारण पोषण करनेवाले, बलवान् और तेजस्वी पदार्थोंमें व्याप्त रहनेवाले रुद्रके लिए (महः महीं सुस्तुतिं प्र ईरयामि) बडीसे बडी स्तुति करता हूँ । (कल्मलीकिनं नमोभिः नमस्य) तेजसे प्रदीप्त होनेवाले इस रुद्रको नमस्कारोंसे प्रसन्न करो । हम भी (रुद्रस्य त्वेषं नाम गृणीमसि) रुद्रके उस तेजस्वी नामकी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[३२९] (स्थिरेभिः अंगैः) दृढ अंगोंसे युक्त, (पुरुरूपः) अनेक रूपोंसे युक्त, (उग्रः बभ्रुः) तेजस्वी और धारणपोषण करनेवाला रुद्र (शुक्रेभिः हिरण्यैः पिपिशे) पवित्र तेजोंसे प्रदीप्त होता है । (अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात्) इस भुवनका भरणपोषण करनेवाले तथा सबपर शासन करनेवाले (रुद्रात्) रुद्रसे (असुर्यं न वा उ योषत्) असुरोंको मारनेवाला बल अलग नहीं होता ॥ ९ ॥

१ अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात् असुर्यं न योषत्— इस भुवनका पालन करनेवाले सबके शासक रुद्रसे असुरोंका विनाशक बल कभी अलग नहीं होता ।

भावार्थ— वह बलवान् रुद्र अन्नको मांगनेवाले मुझे तेजस्वी अन्न देकर तृप्त करे । तथा जिस प्रकार कोई धूपसे पीडित मनुष्य छायामें बैठकर सुख प्राप्त करता है, उसी प्रकार मैं पापसे रहित होकर रुद्रकी कृपासे सुख प्राप्त करूं और रुद्रकी सेवा करूं । मनुष्य सुख या ऐश्वर्य प्राप्त करके घमण्डी न हो जाए, अपितु उस समय भी वह पवित्र मनसे भगवान्‌की भक्ति करे ॥ ६ ॥

रुद्रका हाथ रोगोंको दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुखकारक है । रुद्र भगवान्‌की जिसपर कृपा होती है, वह कभी भी रोगी नहीं होता, अपितु उत्तम जीवन बिताता हुआ सुखसे रहता है । दैवी आपत्तियां भी उसका कुछ बिगाड नहीं सकतीं । वह अपने उपासकके अपराधोंको क्षमा कर देता है ॥ ७ ॥

सबका धारण पोषण करनेवाले, बलवान् तथा तेजस्वी पदार्थोंमें व्याप्त होनेवाले रुद्रको बडीसे बडी स्तुतिसे प्रसन्न करना चाहिए । वह नमस्कारोंसे प्रसन्न होता है । वह अग्निके समान तेजस्वी है । उसके नामोंका ध्यान करना चाहिए ॥ ८ ॥

३३० अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वा- र्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० ॥
३३१ स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानो ऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११ ॥
३३२ कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥
३३३ या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता न- स्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

अर्थ— [३३०] हे रुद्र ! (अर्हन्) योग्य तू (सायकानि धन्वा बिभर्षि) बाणों और धनुषको धारण करता है। (अर्हन्) योग्य तू (यजतं विश्वरूपं निष्कं) पूजाके योग्य और अनेक रूपोंवाले सोनेको धारण करता है। (अर्हन्) योग्य तू (इदं विश्वं अभ्वं दयसे) इस सारे विस्तृत जगत्की रक्षा करता है। हे (रुद्र) रुद्र ! (त्वत् ओजीयः न अस्ति) तुझसे अधिक तेजस्वी और कोई नहीं है ॥ १० ॥

१ अर्हन् इदं विश्वं अभ्वं दयसे— यह योग्य रुद्र इस सारे विस्तृत विश्वकी रक्षा करता है ।

२ त्वत् ओजीयः न अस्ति— इस रुद्रसे ज्यादा तेजस्वी और कोई नहीं है ।

[३३१] हे मनुष्य ! तू (श्रुतं, गर्तसदं) प्रसिद्ध, रथमें बैठनेवाले (युवानं) तरुण (मृगं न भीमं) सिंहके समान भयंकर (उपहत्नुं उग्रं) शत्रुको मारनेवाले और वीर रुद्रकी (स्तुहि) स्तुति कर। हे (रुद्र) रुद्र ! (स्तवानः) स्तुत होता हुआ तू (जरित्रे मृळ) स्तुति करनेवालेको सुखी कर और (ते सेनाः) तेरी सेनायें (अस्मत् अन्यः नि वपन्तु) हमसे भिन्न जो दूसरे शत्रु हों, उन्हें ही मारें ॥ ११ ॥

१ ते सेनाः अस्मत् अन्यः नि वपन्तु— तेरी सेनायें हमसे भिन्न जो दूसरे शत्रु हैं, उन्हें ही मारें ।

[३३२] (रुद्र) रुद्र ! (वन्दमानं पितरं कुमारः चित्) जिस प्रकार वन्दनाके योग्य पिताको पुत्र प्रणाम करता है उसी तरह (उपयन्तं प्रति नानाम) समीप आनेवाले तुझे प्रणाम करते हैं। (भूरेः दातारं सत्पतिं गृणीषे) अत्यधिक दान देनेवाले तथा सज्जनोंके स्वामी रुद्रकी मैं स्तुति करता हूँ, (स्तुतः त्वं अस्मे भेषजा रासि) स्तुत होकर तू हमें औषधियां दे ॥ १२ ॥

[३३३] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः या शुचीनि भेषजा) तुम्हारी जो शुद्ध और पवित्र औषधियां हैं, तथा हे (वृषणः) बलवान् मरुतो ! (या शंतमा या मयोभु) जो कल्याण करनेवाले तथा जो सुख देनेवाले औषध हैं, (यानि) जिन औषधियोंको (नः पिता मनुः अवृणीत) हमारे पिता मनुने स्वीकार किया था, (ता रुद्रस्य च शं च योः वश्मि) उन रुद्रके कल्याण करनेवाले तथा रोगोंको दूर करनेवाले औषधोंको मैं चाहता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ— दृढ अंगोंवाला अनेक रूपोंवाला तथा तेजस्वी रुद्र अपने पवित्र तेजोंके कारण और अधिक तेजस्वी होता है। वह रुद्र इस भुवनका पालन करनेवाला तथा शासक है, अतः उसमें सदा शक्ति रहती है ॥ ९ ॥

यह रुद्र बहुत योग्य है, वह धनुष बाण धारण करके धन प्राप्त करता है और अनेक रूपोंवाले सोनेको प्राप्त करता है। वह सारे विस्तृत विश्वकी रक्षा करता है। इसलिए उससे बढकर तेजस्वी और कोई नहीं है ॥ १० ॥

यह रुद्र सर्वत्र प्रसिद्ध, रथमें बैठनेवाला तरुण और सिंहके समान भयंकर है। यह शत्रुको मारनेवाला और वीर है, इसकी लोग स्तुति करते हैं और यह भी स्तुत होता हुआ स्तोताको सुखी करता है। ऐसा रुद्र हमें कभी न मारे, इसके विपरीत जो हमारे शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करे ॥ ११ ॥

जिस प्रकार कोई पुत्र वन्दनाके योग्य पिताकी वन्दना करता है, उसी प्रकार हम रुद्रकी प्रार्थना करते हैं, वह रुद्र बहुत धन देनेवाला तथा सज्जनोंका पालन करनेवाला है, स्तुतिको प्राप्त करके वह रुद्र हमें हरतरहकी औषधियां देवे ॥ १२ ॥

मरुतो ! तुम्हारे जो पवित्र, कल्याणकारी और सुखदायक औषध हैं, जिन्हें मननशील विद्वान् अपने उपयोगमें लाते हैं, उन कल्याणकारी तथा रोगोंको दूर करनेवाले औषधोंको मैं चाहता हूँ ॥ १३ ॥

३३४ परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ १४ ॥
३३५ एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

[३४]

(ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- मरुत् । छन्दः- जगती; १५ त्रिष्टुप् ।)

३३६ धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥ १ ॥

अर्थ—[३३४] (रुद्रस्य) रुद्रके (हेतिः नः परि वृज्याः) शस्त्रास्त्र हमें छोड दें तथा (त्वेषस्य) उस तेजस्वी (मही दुर्मतिः) महान् क्रोधवाली बुद्धि (परि गात्) दूसरी जगह चली जाए । हे (मीढ्वः) सुख देनेवाले रुद्र ! (स्थिरा) दृढ रहनेवाले अपने धनुषोंको (मघवद्भ्यः अव तनुष्व) ऐश्वर्यसे युक्त जनोंके लिए शिथिल कर दे तथा (तोकाय तनयाय मृळ) हमारे पुत्र और पौत्रोंको सुखी कर ॥ १४ ॥

१ रुद्रस्य हेतिः नः परि वृज्याः— रुद्रके शस्त्रास्त्र हमें छोड दें ।

२ त्वेषस्य मही दुर्मतिः परि गात्— उस तेजस्वी रुद्रको क्रोधित करनेवाली बुद्धि हमें छोडकर दूर चली जाए ।

[३३५] (बभ्रो वृषभ चेकितान देव) जगत्का धारण पोषण करनेवाले, बलवान्, सर्वज्ञ, तेजस्वी तथा (हवन-श्रुत् रुद्र) प्रार्थनाओंको सुननेवाले रुद्र ! (यथा एव न हृणीषे न च हंसि) जिस प्रकार तू क्रुद्ध न हो और न हमें मारे, वह उपाय (नः इह बोधि) यहां तू हमें बता । हम भी (सुवीराः) उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें (बृहत् वदेम) तेरी उत्तम स्तुति करें ॥ १५ ॥

[३४]

[३३६] (धारा-वराः) युद्धके मोर्चे पर श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले, (धृष्णु-ओजसः) शत्रुको पछाडनेके बलसे युक्त, (मृगाः न भीमाः) सिंहकी भांति भीषण, (तविषीभिः) निज बलसे (अर्चिनः) पूजनीय ठहरे हुए, (अग्नयः न) अग्निके जैसे (शुशुचानाः) तेजस्वी, (ऋजीषिणः) वेगसे जानेवाले या सोमरस पीनेवाले और (भृमिं) वेगको (धमन्तः) उत्पन्न करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (गाः) किरणोंको [या गौओंको] शत्रुके कारागृहसे (अप अवृण्वत) रिहा कर देते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— रुद्रके शस्त्रास्त्र हमारी हिंसा न करें, वे हमसे दूर ही रहें तथा जिसके कारण रुद्र क्रोधित हो, वह बुद्धि भी हमसे दूर ही रहे । हम कोई भी काम ऐसा न करें, कि जिससे रुद्र क्रोधित हो । इस प्रकार वह हमें मारनेके लिए कभी भी अपने धनुषको तैय्यार न करे अपितु हमारे प्रति उसके धनुष हमेशा शिथिल ही रहें और उस रुद्रके आश्रयमें हमारे पुत्रपौत्र सदा सुखी रहें ॥ १४ ॥

हे जगत्को धारण करनेवाले, बलवान्, तेजस्वी, सर्वज्ञ तथा पुकारको सुननेवाले रुद्र ! हमें यह उपाय या मार्ग बता, ताकि तू हमपर कभीको क्रुद्ध न हो और न हमारी हिंसा ही कर । हम भी अपने परिवारोंके साथ मिलकर तेरी उत्तम और महती स्तुति किया करें ॥ १५ ॥

ये वीर घमासान लडाईके मोर्चेपर श्रेष्ठता सिद्धकर दिखाते हैं और वीरतापूर्ण कार्य करके बतलाते हैं । वे शत्रुको पछाड देते हैं । अपने निजी बलसे उच्च कोटिके कार्य निभाकर करके वंदनीय बन जाते हैं । शत्रुदलको हराकर अपहरण की हुई गौओंको छुडा लाते हैं ॥ १ ॥

३४५ चित्रं तद् वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद् वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥ १० ॥
३४६ तान् वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान् ककुहान् यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥ ११ ॥
३४७ ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२ ॥
३४८ ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥

अर्थ—[३४५] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः तत् चित्रं) तुम्हारा वह आश्चर्यजनक (याम) हमला (चेकिते) सबको विदित है, (यत्) क्योंकि सबसे (आपयः) मित्रता करनेवाले तुम (पृश्न्याः अपि ऊधः) गौके दुग्धाशयका (दुहुः) दोहन करके दूध पीते हो । (यत्) उसी प्रकार हे (अ-दाभ्याः) न दबनेवाले (रुद्रियाः !) महावीरो ! (नवमानस्य) तुम्हारे उपासककी (निदे) निंदा करनेहारे तथा (त्रितं) त्रित नामवाले ऋषिको (जुरतां) मारनेकी इच्छा करनेवाले शत्रुओंके (जराय वा) विनाशके लिए तुम ही प्रयत्नशील हो, यह बात विख्यात है ॥ १० ॥

[३४६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (एव याव्नः) वेगसे जानेवाले (महः) तथा महत्त्वयुक्त ऐसे (तान् वः) तुम्हें हमारे (विष्णोः) व्यापक हितकी (एषस्य) इच्छा की (प्रभृथे) पूर्तिके लिए (हवा महे) हम बुलाते हैं । (ब्रह्मण्यन्तः) ज्ञानकी इच्छा करनेहारे तथा (यत-स्रुचः) पुण्य कर्मके लिए कटि बद्ध हो उठनेवाले हम (हिरण्य-वर्णान्) सुवर्णवत् तेजस्वी एवं (ककुहान्) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐसे इन वीरोंके समीप (शस्यं राधः) सराहनीय धनकी (ईमहे) याचना करते हैं ॥ ११ ॥

[३४७] (दश-ग्वाः) दश मासतक यज्ञ करनेवाले तथा (प्रथमाः) अद्वितीय ऐसे (ते) इन वीरोंने (यज्ञं ऊहिरे) यज्ञ किया । (ते) वे (नः) हमें (उषसः व्युष्टिषु) उषःकालके प्रारंभमें (हिन्वन्तु) प्रेरणा दें । (उषाः न) उषा जिस प्रकार (अरुणैः) रक्तिम किरणोंसे (रामीः) अँधेरी रात्रीको आच्छादित करती है, वैसे ही वे वीर (महः) बडे (शुचता) तेजस्वी (गो अर्णसा) किरणोंके तेजसे (ज्योतिषा) प्रकाशसे सारा संसार (अप ऊर्णुत) ढक देते हैं ॥ १२ ॥

[३४८] (रुद्राः ते) शत्रुओंको रुलानेवाले वे वीर (क्षोणीभिः) चकनाचूर किये हुए (अरुणेभिः न) केसरियाके समान पीतवर्णवाले (अञ्जिभिः) वस्त्रालंकारोंसे युक्त होकर (ऋतस्य) उदकयुक्त (सदनेषु) घरोंमें (वावृधुः) बढे । उसी प्रकार (नि-मेघमानाः) पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करनेवाले वे (अत्येन पाजसा) अपने वेगयुक्त बलसे (सु चन्द्रं) अत्यन्त आह्लाददायक एवं (सु-पेशसं) अति सुन्दर (वर्णं) कान्तिका (दधिरे) धारण करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ—वीर सैनिक शत्रुदल पर जब धावा करते हैं, तो उस चढाईको देखकर प्रेक्षक अचम्भेमें आते हैं । ये वीर गोदुग्धको पीते हैं और अपने अनुयायिओंकी रक्षा करते हैं, अतः वे शत्रुओं तथा निन्दकोंसे बिलकुल नहीं डरते हैं ॥ १० ॥

वीरोंको बुलानेमें हमारा यही अभिप्राय है कि वे हमारे सार्वजनिक हितकी जो अभिलाषाएँ हैं उन्हें पूर्ण करनेमें सहायता दें । हम ज्ञान पानेकी अभिलाषा करते हैं और एतदर्थ हम प्रयत्नशील भी हैं इसीलिए हम इन श्रेष्ठ वीरोंके निकट जाकर उनसे प्रशंसनीय धन माँग रहे हैं । वे हमारी इच्छा पूर्ण करें ॥ ११ ॥

ये वीर वर्षमें दस महीने यज्ञकर्म करनेमें बिताते हैं । ये हमें प्रतिदिन सत्कर्मकी प्रेरणा दें अर्थात् इनके चारित्र्यको देखकर हमारे दिलमें प्रति पल सत्कर्मकी प्रेरणा होती रहे । ये वीर अपने पवित्र तेजसे द्योतमान रहते हैं ॥ १२ ॥

इन वीरोंके वस्त्राभूषण पीले रंगमें रँगे हुए हैं । जिधर जल विपुलतया मिलता हो, उधर ही ये रहते हैं । प्रीतिपूर्वक मिलकर रहनेवाले ये अपने वेग एवं बलसे वीरताके कार्य करते रहते हैं, इसलिए बहुत तेजस्वी दीख पडते हैं ॥ १३ ॥

३४९ ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्च होतृनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥ १४ ॥

३५० यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।
अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥

[३५]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अपांनपात् । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३५१ उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥ १ ॥

अर्थ— [३४९] (यान् अवरान्) जिन अत्यन्त श्रेष्ठ (पंच होतॄन्) पांच याजकों तथा वीरोंको (चक्रिया) चक्रकी शक्लवाले हथियारसे (अवसे) रक्षण करनेके लिए (अभीष्टये न) तथा अभीष्ट पूर्तिके लिए (त्रितः) ऋषि (आववर्तत्) अपने पास बुलाया था, (तान्) उनके समीप (ऊतये) संरक्षणके लिए (महि वरूथं) बडा विस्तृत आश्रयस्थान (इयानः) मांगनेवाले हम (एना नमसा) इस नमस्कारसे (उप इत्) समीप जाकर उनकी (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥

[३५०] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यया) जिसकी सहायतासे तुम (रध्रं) उपासकको (अंहः) पापके (अति पारयथ) पार ले जाते हो, (यया) जिससे (वन्दितारं) वन्दन करनेवालेको (निदः मुंचथ) निन्दा करनेवालेसे छुडाते हो, (या वः ऊतिः) जो इस भांति तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति है, (सा अर्वाची) वह हमारी ओर आवे और तुम्हारी (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (वाश्रा इव) रंभानेवाली गौके समान (ओ सु जिगातु) अच्छी तरह हमारे पास आए ॥ १५ ॥

[३५]

[३५१] (वाजयुः) अन्न और बलकी इच्छा करनेवाला मैं (ईं वचस्यां उप असृक्षि) इस स्तुतिको प्रकट करता हूँ । वह (नाद्यः आशु हेमा अपांनपात्) नदियोंसे उत्पन्न तथा शीघ्र जानेवाला अपांनपात् देव (मे गिरः कुवित् जोषिषत्) मेरी स्तुतियोंको अनेक बार सुनता हुआ (चनं दधीत) अन्नको धारण करे तथा (सः सुपेशसः करति) वह देव हमें उत्तम रूपवान् करे ॥ १ ॥

भावार्थ— ये मरुत् वीर स्वयं यज्ञ करनेवाले हैं और अपने अनुयायियोंकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेनेवाले हैं । हम उनसे अपनी रक्षाकी अपेक्षा करते हैं, इसलिए हम उन्हें नमन करके उनकी प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥

हे मरुतो ! तुममें विद्यमान जिन संरक्षण शक्तियोंकी सहायतासे तुम उपासकोंको पापोंसे बचाते हो, निन्दक लोगोंसे बचाते हो, उस तुम्हारे संरक्षणकी छत्रच्छायामें हम रहें और उत्तम बुद्धिसे लाभ उठायें ॥ १५ ॥

मैं इस अपांनपात्की स्तुति करता हूँ, वह हमें अन्नादि देकर तथा पुष्ट करके हमें रूपवान् करे । यह अपांनपात् अग्निका ही एक रूप है । क्योंकि जलसे औषधियां उत्पन्न होती हैं और औषधियोंसे अग्नि उत्पन्न होती है, इस प्रकार अग्नि जलका नाती है ॥ १ ॥

३५२ इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥ २ ॥
३५३ समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥ ३ ॥
३५४ तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥
३५५ अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[३५२] मैं (अस्मै) इस अपांनपात् देवके लिए (हृदः सुतष्टं) हृदयसे बनाये गए (इमं मंत्रं वोचेम) इस मंत्रका गान करूं, वह (अस्य कुवित् वेदत्) इस हमारे मंत्रको अच्छी तरह जाने । (अर्यः अपांनपात्) सबके स्वामी इस अपांनपात्ने (असुर्यस्य मह्ना) असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे (विश्वानि भुवना जजान) सभी भुवनोंको उत्पन्न किया ॥ २ ॥

१ असुर्यस्य मह्ना विश्वानि भुवना जजान— इस अपांनपात् देवने असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे सभी लोकोंको पैदा किया ।

[३५३] (अन्याः सं यन्ति) दूसरे प्रकारके जल पास आते हैं और (अन्याः उप यन्ति) दूसरे प्रकारके जल दूर चले जाते हैं और तब (नद्यः समानं ऊर्वं पृणन्ति) नदियां मिलकर समुद्रको भरती हैं । (शुचयः आपः) वे शुद्ध और पवित्र जल (तं शुचिं दीदिवांसं अपां नपातं परि तस्थुः) उस पवित्र और तेजस्वी अपांनपात् देवको चारों ओरसे घेर लेते हैं ॥ ३ ॥

[३५४] जिस प्रकार (अस्मेराः युवतयः युवानं) अभिमानसे रहित युवतियां तरुण पुरुषको सजाती हैं, उसी प्रकार (तं मर्मृज्यमानाः आपः) उस अपां नपात् देवको शुद्ध करनेवाले जल (परि यन्ति) चारों ओर बहते हैं । (घृतनिर्णिक् सः) तेजस्वी रूपवाला वह देव (अप्सु अनिध्मः दीदाय) जलोंमें ईंधनसे रहित होकर भी तेजस्वी होता है । वह (शुक्रेभिः शिक्वभिः) प्रदीप्त तेजोंसे (अस्मे रेवत्) हमें धन प्रदान करे ॥ ४ ॥

१ सः अप्सु अनिध्मः दीदाय— वह अपां नपात् देव जलोंमें ईंधनसे रहित होकर भी प्रदीप्त होता रहता है ।

[३५५] (नारीः तिस्रः देवीः) आगे ले जानेवाली तीन देवियां (अव्यथ्याय अस्मै देवाय) दुःख न देनेवाले इस अपांनपात् देवके लिए (अन्नं दिधिषन्ति) अन्नको धारण करती हैं । (अप्सु कृताः इव उप प्रसर्स्रे) पानीमें चलनेके समान ये देवियां आगे चलती हैं और (पूर्वसूनां) पहलेसे उत्पन्न जलोंके (पीयूषं) अमृतको (सः धयति) वह अपां नपात् देव पीता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं इस अपांनपात् देवकी हृदयसे स्तुति करता हूँ, वह इस स्तुतिको अच्छी तरह जाने । वह सब लोकोंका स्वामी है और वह अपनी शक्तिसे लोकोंको प्रकट करता है ॥ २ ॥

दूसरे प्रकारके जल अर्थात् बरसातका पानी ऊपरसे गिरकर भूमिसे संयुक्त होता है और दूसरे प्रकारका जल भाप बनकर इस पृथ्वीसे ऊपर चला जाता है, फिर वहांसे गिर कर वह पानी नदियोंमें चला जाता है और वे नदियां समुद्रको भरती रहती हैं । वे जल पवित्र और तेजस्वी हैं और वे सब अपां नपात् देवको चारों ओरसे घेरे रहते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार सेवा करनेवाली युवतियां किसी तरुणको अलंकृत करती हैं, उसी प्रकार जल भी अपां नपात् देवको शुद्ध और अलंकृत करते हैं । वह देव जलोंमें ईंधनसे रहित होकर भी प्रदीप्त होता है । वह देव अपने तेजोंसे हमें ऐश्वर्य प्रदान करे ॥ ४ ॥

आगे ले जानेवाली इडा, सरस्वती और भारती ये तीन देवियां दुःख न देनेवाले इस अपां नपात् देवको अन्न देती हैं और जिस प्रकार कोई पदार्थ जलके प्रवाहमें पडकर आसानीसे आगे बढ जाता है, उसी प्रकार ये तीनों देवियां भी आगे बढती हैं और अपां नपात् देव जलोंके सारभूत पीयूष या अमृतको पीता है ॥ ५ ॥

३५६ अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥ ६ ॥
३५७ स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ७ ॥
३५८ यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥
३५९ अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥ ९ ॥

अर्थ– [३५६] (अत्र अश्वस्य जनिम) इस अपां नपात् देवसे ही घोडेका जन्म होता है, (अस्य स्वः च) इसीसे सुख भी प्राप्त होता है। ऐसा वह देव (रिषः द्रुहः संपृचः सूरीन् पाहि) हिंसकों और द्रोह करनेवालेके सम्बन्धसे विद्वानोंकी रक्षा करे। (आमासु पूर्षु परः) कच्चे जल जिसमें भरे रहते हैं, एसे मेघोंके उसपार रहनेवाले (अप्रमृष्यं) न मार जानेवाले देवको (अरातयः न नशन्) शत्रु नहीं मार सकते तथा (अनृतानि न) झूठ बोलनेवाले भी नहीं मार सकते ॥ ६ ॥

[३५७] जो (अपां नपात् स्वे दमे आ) अपां नपात् देव अपने स्थानमें रहता है, (यस्य धेनुः सुदुघा) जिसकी गाय आसानीसे दुही जा सकती है, वह देव (स्वधां पीपाय) अन्नकी वृद्धि करता है, तथा (सुभु अन्नं अत्ति) उस उत्तम अन्नको खाता भी है। (सः अप्सु अन्तः ऊर्जयन्) वह जलोंके बीचमें बल प्रकट करता हुआ (विधते वसुदेयाय वि भाति) सेवा करनेवालेको धन प्रदान करनेके लिए विशेष रूपसे प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

[३५८] (अप्सु) जलोंमें रहनेवाला (ऋतावा) जलोंको धारण करनेवाला (अजस्र) अविनाशी तथा (उर्विया) अत्यन्त विस्तृत यह देव (शुचिना दैव्येन) पवित्र और दैवी तेजसे (आ वि भाति) चारों ओर प्रकाशित होता है। (अस्य अन्या भुवनानि वया इत्) इसके दूसरे लोक शाखाओंके समान हैं। (प्रजाभिः वीरुधः प्र जायन्ते) प्रजाओंके साथ वनस्पतियां इसीसे उत्पन्न होती है ॥ ८ ॥

[३५९] यह (अपां नपात्) अपां नपात् देव (विद्युतं वसानः) विद्युत्से आच्छादित होकर (जिह्मानां ऊर्ध्वः उपस्थं ह्यस्थात्) कुटिल गतिसे चलनेवाले जलोंके ऊपर अन्तरिक्षमें रहता है। (यह्वीः हिरण्यवर्णाः) बडी बडी नदियां (तस्य ज्येष्ठं महिमानं) उस देवकी बडी महिमाको (वहन्तीः) ढोती हुई (परि यन्ति) चारों ओर बहती हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ– अपांनपात् अर्थात् अग्नि देव जिसके शरीरमें उत्तम रीतिसे रहते हैं, वह मनुष्य अश्व अर्थात् घोडेके समान शक्तिशाली होता है और वही जीवनका सुख प्राप्त कर सकता है। वह देव विद्वानोंको द्रोह करनेवाले और हिंसकोंसे बचाता है। वही अपांनपात् देव बिजलीके रूप मेघमण्डलमें रहता है, उसका कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

यह अपांनपात् देव विद्युत्के रूपमें अन्तरिक्षमें रहता है और इस विद्युत्की किरणोंसे पानीको आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है, उस वृष्टिसे अन्नकी वृद्धि होती है और उस अन्नको मनुष्यके शरीरमें जठराग्निके रूपमें स्थित यह अपांनपात् देव खाता है। जलोंके बीचमें स्थित यह देव स्तोताके लिए जल बरसाकर अनेक तरहके धन प्रदान करता है ॥ ७ ॥

जलोंमें रहनेवाला, जलोंको धारण करनेवाला अविनाशी तथा अत्यन्त विस्तृत यह देव पवित्र और दैवी तेजसे चारों ओर प्रकाशित होता है। दूसरे सभी भुवन इस देवकी शाखायें हैं और सभी वनस्पतियां इसी देवसे उत्पन्न होती हैं और उस अन्नसे प्रजायें उत्पन्न होती हैं ॥ ८ ॥

यह अपां नपात् देव विद्युत्से आच्छादित होकर कुटिल गतिसे चलनेवाले जलोंके ऊपर अन्तरिक्षमें रहता है। वह जब जल बरसाता है, तब उससे बडी बडी नदियां प्रवाहित होती हैं और सोनेके समान तेजसे युक्त नदियां इस देवकी महान् महिमाको गाती हुई बहती हैं ॥ ९ ॥

×

३६० हिर॑ण्यरूपः॒ स हिर॑ण्यसंदृग॒पां नपा॒त् सेदु॒ हिर॑ण्यवर्णः ।
हि॒र॒ण्यया॒त् परि॒ योने॑र्नि॒षद्या॑ हिरण्य॒दा द॑द॒त्यन्न॑मस्मै ॥ १० ॥
३६१ तद॒स्यानी॑कमु॒त चारु॒ नामा॑पी॒च्यं॑ वर्धते॒ नप्तु॑र॒पाम् ।
यमि॒न्धते॑ युव॒तय॒ः समि॒त्था हिर॑ण्यवर्णं घृ॒तमन्न॑मस्य ॥ ११ ॥
३६२ अ॒स्मै ब॑हू॒नाम॑व॒माय॒ सख्ये॑ य॒ज्ञैर्वि॑धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भि॑ः ।
सं सानु॒ मार्ज्मि॒ दिधि॑षामि॒ बिल्मै॒र्दधा॒म्यन्नै॒ः परि॑ वन्द ऋ॒ग्भिः ॥ १२ ॥
३६३ स ईं॒ वृषा॑जनय॒त् तासु॒ गर्भं॒ स ईं॒ शिशु॑र्धयति॒ तं रि॑हन्ति ।
सो अ॒पां नपा॒दन॑भिम्लातवर्णो॒ऽन्यस्ये॑वे॒ह त॒न्वा॑ विवेष ॥ १३ ॥

अर्थ— [३६०] (सः अपां नपात् हिरण्यरूपः) वह अपां नपात् देव सोनेके समान रूपवाला, (हिरण्य-संदृक्) सोनेके समान आंखोंवाला तथा (हिरण्यवर्णः) सोनेके समान वर्णवाला है, वह (हिरण्ययात् योनेः परि निषद्य) सोनेके समान तेजस्वी स्थानपर बैठकर प्रज्वलित होता है, तथा (हिरण्यदाः अस्मै अन्नं ददति) सोनेको देनेवाले मनुष्य इस देवके लिए अन्न प्रदान करते हैं ॥ १० ॥

[३६१] (अस्य अपां नप्तुः) इस अपां नपात् देवकी (तत् अनीकं) वे किरणें (उत) और (नाम चारु) नाम सुन्दर हैं, वह (अपीच्यं वर्धते) मेघमें रहकर बढता है। (यं हिरण्यवर्णं इत्था) जिस सोनेके समान तेजस्वी वर्णवाले देवको इस प्रकार (युवतयः सं इन्धते) युवतियां प्रज्ज्वलित करती हैं, (अस्य अन्नं घृतं) इस देवका अन्न घी है ॥ ११ ॥

[३६२] (बहूनां अवमाय) बहुतोंमें श्रेष्ठ (सख्ये) मित्रके समान हितकारी (अस्मै) इस अपां नपात्‌की हम (यज्ञैः नमसा हविर्भिः विधेम) यज्ञोंसे, नमस्कारोंसे और हवियोंसे सेवा करते हैं। (सानु सं मार्ज्मि) वेदिमें इसे शुद्ध करता हूँ (बिल्मैः दिधिषामि) समिधाओंसे प्रदीप्त करता हूँ, (अन्नैः दधामि) अन्नोंसे धारण करता हूं-और (ऋग्भिः परि वन्दे) ऋचाओंसे इस देवकी वन्दना करता हूँ ॥ १२ ॥

[३६३] (सः ईं वृषा) वह यह बलवान् अपां नपात् देव (तासु गर्भं अजनयत्) उन मेघस्थ पानियोंमें गर्भ स्थापित करता है, (सः ईं शिशुः धयति) वह यह बच्चा उसे पीता है, (तं रिहन्ति) उसे फिर यह जल चाटते हैं। (सः अपां नपात्) वह अपां नपात् देव (अनभिम्लातवर्णः) अत्यन्त प्रदीप्त वर्णवाला होकर (इह अन्यस्य इव तन्वा विवेष) यह इस भूमिपर दूसरे शरीरके रूपमें व्याप्त होता है ॥ १३ ॥

भावार्थ— यह अपां नपात् रूप अग्नि सोनेके समान तेजस्वी शरीरवाला, सोनेके समान तेजस्वी इन्द्रियोंवाला तथा सोनेके समान तेजस्वी रंगवाला है। यह स्वर्णके समान तेजस्वी स्थान वेदीमें बैठकर प्रज्ज्वलित होता है और सोनेको दानमें देनेवाला धनी मनुष्य इसे घी रूपी अन्न प्रदान करता है ॥ १० ॥

इस देवकी किरणें और नाम सुन्दर हैं। चमकीली किरणें तथा " न गिरानेवाला " यह नाम दोनों ही सुन्दर हैं। यह देव विद्युत् रूपमें बादलोंके अन्दर रहकर बढता रहता है। युवतियां अर्थात् उंगलियां इस देवको बढाती हैं, उस देवका भोजन घी है ॥ ११ ॥

यह अपां नपात् देव अनेकों देवोंमें बहुत मुख्य है और मित्रोंके समान यह हित करनेवाला है, अतः यज्ञों, नमस्कारों और हवियोंके द्वारा यह पूज्य है ॥ १२ ॥

वीर्य सेचनमें समर्थ वह अपां नपात् देव सूर्यके रूपमें इन मेघोंमें जलरूपी वीर्य स्थापित करके उन्हें पानीसे भर पूर करके मानों उन्हें गर्भसे युक्त बनाता है। तब उन मेघोंके परस्पर संघर्षसे उनका पुत्र रूप विद्युत् रूपी अग्नि उत्पन्न होता है, और वह पुत्र अर्थात् विद्युत् मेघोंमें रहकर पानी पीता रहता है, और जल भी उस विद्युत्‌का चारों ओरसे घेरे रहते हैं। यही अपां नपात् देव दूसरा रूप धारण करके अर्थात् भौतिक अग्नि बनकर इस पृथ्वीमें व्याप्त होता है ॥ १३ ॥

३६४ अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांस॑मध्वस्मभि॑र्विश्वहा॑ दीदिवांस॑म् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥ १४ ॥

३६५ अयांसमग्ने सुक्षितिं जनाया॒ऽयांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद् भद्रं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

[३६]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ऋतुदेवताः- १ इन्द्रो मधुश्च, २ मरुतो माधवश्च, ३ त्वष्टा शुक्रश्च, ४ अग्निः शुचिश्च, ५ इन्द्रो नभश्च ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च । छन्दः- जगती ।]

३६६ तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपो ऽधुक्षन् त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥ १ ॥

अर्थ— [३६४] (यह्वीः आपः) महान् जल (अत्कैः) अपने हमेशा बहनेवाले रूपोंसे (नप्त्रे) इस अपां नपात् देवके लिए (घृतं अन्नं वहन्तीः) जलरूपी अन्नको ढोती हुई या ले जाती हुई (अस्मिन् परमे पदे तस्थिवांसं) इस उत्तम स्थानपर बैठे हुए (अध्वस्मभिः विश्वहा दीदिवांसं) अपने अविनाशी तेजोंसे सदा प्रदीप्त होनेवाले इस देवके (परि दीयन्ति) चारों ओर चलते हैं ॥ १४ ॥

[३६५] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुक्षितिं अयांसं) उत्तम रीतिसे निवास करनेवाले तेरे पासमें आता हूँ, (मघवद्भ्यः सुवृक्तिं अयांसं) ऐश्वर्यशालियोंसे उत्तम व्यवहार प्राप्त करूं, (यत् देवाः अवन्ति) जिसकी देवगण रक्षा करते हैं, (तत् विश्वं भद्रं) वह सभी कल्याण हमें प्राप्त हों, तथा हम भी (सुवीराः) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (विदथे) यज्ञमें (बृहत् वदेम) इन देवोंका गुणगान करें ॥ १५ ॥

१ मघवद्भ्यः सुवृक्तिं अयांसं— ऐश्वर्यवानोंसे मैं उत्तम व्यवहार प्राप्त करूं ।

२ यत् देवाः अवन्ति तत् विश्वं भद्रं— जिसकी देवगण रक्षा करते हैं, वह सभी कल्याण हमें प्राप्त हों ।

[३६]

[३६६] (तुभ्यं हिन्वानः) तुझे प्रेरणा देता हुआ यह सोम (गाः अपः वसिष्ट) गौ और जलोंसे आच्छादित होता है । (नरः) यज्ञ करनेवाले (सीं अद्रिभिः) इस सोमको पत्थरोंसे कूटकर (अविभिः अधुक्षन्) भेडके बालोंकी बनी छलनीसे (अधुक्षन्) छानते हैं । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ईशिषे) क्योंकि सबपर शासन करता है, इसलिए (प्रथमः) सबसे पहले तू ही (स्वाहा प्रहुतं) स्वाहाके शब्दके साथ अग्निमें डाले गए, (वषट्कृतं) वषट्कारपूर्वक समर्पित किए गए (सोमं) सोमको (होत्रात् आ पिब) यज्ञमें आकर पी ॥ १ ॥

भावार्थ— ये महान् जल इस देवके लिए हमेशा जलरूपी भोजन प्रदान करते हैं । तथा उत्तम स्थानमें स्थित तथा तेजोंसे युक्त इस देवके चारों ओर बहते रहते हैं ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! मै सदा तेरी शरणमें आता हूँ । तेरी कृपासे ऐश्वर्यशाली भी मुझसे अच्छा व्यवहार करें और देवगण भी जिसकी रक्षा करते हैं, उन सभी कल्याणोंको हम प्राप्त करें । उत्तम सन्तानोंसे युक्त होकर हम यज्ञमें देवोंका गुणगान करें ॥ १५ ॥

पत्थरोंसे कूटकर और भेडके बालोंकी छलनीसे छाना गया यह सोम पानी और गायके दूधमें मिलाया जाता है, तब वह इन्द्रको उत्साहित करता है । इस सोमको पीनेका सबसे पहला अधिकारी इन्द्र ही है, क्योंकि वही सबपर शासन करता है ॥ १ ॥

३६७ यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभि र्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ २ ॥

३६८ अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धस स्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥ ३ ॥

३६९ आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चो शन् होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात् तव भागस्य तृष्णुहि ॥ ४ ॥

३७० एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन् तुभ्यमाभृत स्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत् पिब ॥ ५ ॥

अर्थ - [३६७] (यज्ञैः संमिश्लाः) यज्ञ जैसे उत्तम कार्यमें सहायता देनेवाले (पृषतीभिः यामन्) चितकबरी घोडियोंसे सर्वत्र जानेवाले (ऋष्टिभिः शुभ्रासः) शस्त्रास्त्रोंसे सुशोभित (उत अञ्जिषु प्रियाः) आभूषणोंसे प्रेम करनेवाले, (भरतस्य सूनवः) भरणपोषण करनेवाले देवके पुत्र तथा (दिवः नरः) तेजस्वी नेता मरुतो ! (बर्हिः आसद्य) यज्ञमें बैठकर (पोत्रात् सोमं आ पिबत) बर्तनसे सोमको पीओ ॥ २ ॥

[३६८] (सुहवाः) हे उत्तम रीतिसे बुलाये जाने योग्य मरुतो ! तुम (अमा इव नः गन्तन) बलसे युक्त होकर हमारे पास आओ, (बर्हिषि नि सदतन) इन आसनोंपर बैठो और (रणिष्टन) आनन्दसे शब्द करो। हे (त्वष्टः) त्वष्टा देव ! तू (सुमत् गणः) उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर (जनिभिः देवेभिः) सबको पैदा करनेवाले देवोंके साथ (अन्धसः जुजुषाणः) सोमरूपी अन्नको खाता हुआ (मन्दस्व) आनन्दित हो ॥ ३ ॥

[३६९] हे (विप्र) विद्वान् अग्ने ! तू (देवान् इह वक्षि) देवोंको इस यज्ञमें बुला ला और (यक्षि च) उनकी पूजा कर, हे (होतः) यज्ञ करनेवाले अग्ने ! (उशन्) हमारे यज्ञकी इच्छा करता हुआ तू (त्रिषु योनिषु नि सद) तीनों लोकोंमें प्रतिष्ठित हो, (प्रस्थितं सोम्यं प्रति वीहि) तैय्यार किए गए सोमरसकी तू इच्छा कर और (आग्नीध्रात् मधु पिब) यज्ञके पात्रसे मीठे सोमको पी तथा (तव भागस्य तृष्णुहि) अपने भागसे तू तृप्त हो ॥ ४ ॥

[३७०] हे इन्द्र ! (एषः स्यः) यह सोम (ते तन्वः नृम्णवर्धनः) तेरे शरीर और बलको बढानेवाला है, इसी सोमके कारण (प्रदिवि बाह्वोः सहः ओजः हितः) अत्यन्त तेजस्वी तेरी बाहुओंमें बल और ओज स्थित है। हे (मघवन्) इन्द्र ! यह सोम (तुभ्यं सुतः) तेरे लिए निचोडा गया है और (तुभ्यं आभृतः) तेरे लिए ही लाया गया है, (त्वं ब्राह्मणात् अस्य पिब) तू ज्ञानीके द्वारा प्रदान किए गए इस सोमको पी और (तृपत्) तृप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह मरुत यज्ञ जैसे उत्तम कामोंमें ही मनुष्यकी सहायता करते हैं, ये हमेशा धब्बेवाली चितकबरी घोडियोंपर बैठकर सर्वत्र घूमते हैं, शस्त्रास्त्रोंको सदा धारण किए रहते हैं, आभूषणोंसे इन्हें प्रेम है, ये संसारका भरणपोषण करनेवाले देवके पुत्र हैं और तेजस्वी नेता हैं ॥ २ ॥

हे उत्तम रीतिसे बुलाये जाने योग्य मरुतो ! तुम बलके सहित इस आसनपर बैठकर आनन्दित होओ और त्वष्टा भी उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर सोमको पीकर आनन्दित हो ॥ ३ ॥

हे ज्ञानवान् अग्ने ! तू देवोंको इस यज्ञमें बुलाकर उनका सत्कार कर और तू भी इसमें सोमपान करनेकी इच्छा करता हुआ इस मीठे सोमको पी ॥ ४ ॥

इस सोमके कारण इन्द्रके शरीरमें बल रहता है और उसकी भुजाओंमें तेज, ओज और बल भी रहता है। वह इस सोमरसको पीकर तृप्त होता है ॥ ५ ॥

३७१ जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥

[३७]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- ऋतुदेवताः- १-४ द्रविणोदा ऋतवश्च, ५ अश्विनौ ऋतवश्च, ६ अग्निः ऋतुश्च । छन्दः- जगती ।]

३७२ मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसो ऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥

३७३ यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥

अर्थ— [३७१] हे (राजाना) अत्यन्त तेजस्वी मित्र और वरुण तुम दोनों (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो, (हवस्य बोधतं) हमारी प्रार्थनाको समझो, (मे होता) मेरा होता (सत्तः) यज्ञमें बैठकर (पूर्व्याः निविदः अनु) उत्तम उत्तम स्तोत्रोंका गान करता है । हे देवो ! (आवृतं नमः) दूधसे अच्छी तरह घिरा हुआ यह सोमरूपी अन्न (अच्छ एति) तुम्हारी तरफ आ रहा है, तुम दोनों (प्रशास्त्रात्) उत्तम स्तुति करनेवालेके द्वारा दिए गए (मधु सोम्यं आ पिबतं) मधुर सोमको पीओ ॥ ६ ॥

[३७]

[३७२] हे (द्रविणोदः) धन प्रदान करनेवाले देव ! तू (होत्रात्) होताके द्वारा दिए गए इस (अन्धसः अनु जोषं) सोमरसरूपी अन्नका प्रसन्नतापूर्वक पीकर (मन्दस्व) आनन्दित हो, हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युगण ! (सः) वह द्रविणोदा देव (पूर्णां आ सिचं वष्टि) पूरी तरह भरी हुई आहुतिको चाहता है, अतः (तस्मै एतं भरत) उसके लिए यह सोमरस प्रदान करो, (तत् वशः) सोमकी इच्छा करनेवाला वह देव भी तुम्हें (ददिः) धन देगा हे देव ! (होत्रात्) होताके द्वारा दिए गए इस (सोमं) सोमरसको (ऋतुभिः पिब) ऋतुओंके साथ मिलकर पी ॥ १ ॥

[३७३] (यं उ पूर्वं अहुवे) जिस देवकी मैंने पहले प्रार्थना की थी, (इदं तं हुवे) अब भी उसकी प्रार्थना करता हूँ । (यः नाम ददिः) जो निश्चयसे भक्तोंको धन देनेवाला है, (स इत् उ हव्यः) वही प्रार्थनाके योग्य होता है । (पत्यते) उसी रक्षण करनेवाले देवके लिए (अध्वर्युभिः मधु सोम्यं प्रस्थितं) अध्वर्युओंके द्वारा मीठा सोम तैय्यार किया गया है, हे (द्रविणोदः) धन देनेवाले देव ! तू (पोत्रात् सोमं ऋतुभिः पिब) पोत्रसे सोमको ऋतुओंके साथ पी ॥ २ ॥

१ यं उ पूर्वं अहुवे, इदं तं हुवे— जिसकी मैंने पहले प्रार्थना की थी, उसकी प्रार्थना अब भी करता हूँ ।
२ यः नाम ददिः सः इत् हव्यः— जो धनको देनेमें उदार है, उसीकी प्रार्थना करनी चाहिए ।

भावार्थ— हे तेजस्वी मित्र और वरुण ! तुम दोनोंके लिए मेरा होता यज्ञमें बैठकर स्तुति करता है, तुम्हारे लिए वह गायके दूधसे मिश्रित सोम प्रदान करता है, उसे पीकर तुम तृप्त होओ ॥ ६ ॥

हे धन प्रदान करनेवाले देव ! तू इस सोमरसको पीकर आनन्दित हो और सोम प्रदान करनेवालेको हर तरहके धन प्रदान कर ॥ १ ॥

यह धनको देनेवाला देव सनातन है, अतः पहले भी मैं इसी देवकी प्रार्थना करता था और आज भी उसकी प्रार्थना करता हूँ । जो धन देनेमें उदार देव हो उसीसे मांगना चाहिए, उसीकी स्तुति करनी चाहिए, कंजूससे मनुष्य कभी धन न मांगे, न उसकी स्तुति करें ॥ २ ॥

३७४ मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे ऽरिषण्यन् वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥
३७५ अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तो त नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥
३७६ अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गत मथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
३७७ जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन् देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३७४] हे (द्रविणोदः) धनके प्रदाता देव ! (यैः ईयसे) जिनसे तुम जाते हो, (ते मेद्यन्तु) वे तुम्हारे घोडे तृप्त हों । हे (वनस्पते) वनस्पतियोंके देव ! (अरिषण्यन् वीळयस्व) तू हमारी हिंसा न करते हुए हमें शक्तिशाली बना । हे (धृष्णो) शत्रुओंके नाशक देव ! (त्वं आयूय) तू आकर और (अभिगूर्य) खडा होकर (नेष्ट्रात्) यज्ञ कर्ताके द्वारा दिए गए (सोमं) सोमको (ऋतुभिः पिब) ऋतुओंके साथ पी ॥ ३ ॥

[३७५] (द्रविणोदाः) जिस धनके प्रदाता देवने (होत्रात् अपात्) होत्रसे (हितं प्रयः) हित कारक अन्नको पिया, (उत पोत्रात् अमत्त) पोत्रसे पीकर आनन्दित हुआ और (नेष्ट्रात् अजुषत) नेष्ट्रसे सोमको पिया, वह (द्राविणोदसः) द्रविण अर्थात् धन देनेवाला देव (अमृक्तं अमर्त्यं तुरीयं पात्रं) अच्छी तरह छाने गए अमरता देनेवाले चौथे पात्रमें रखे हुए सोमको (पिबतु) पीवे ॥ ४ ॥

[३७६] हे अश्विनौ ! (अद्य) आज (यय्यं) वेगसे जानेवाले (नृवाहनं) तुम जैसे नेताको ले जानेवाले (इह वां विमोचनं) यहां इस यज्ञमें तुम्हें छोडनेवाले (रथं) रथको (अर्वाञ्चं युंजाथां) हमारी तरफ आनेके लिए जोडो और (आ गतं) आ जाओ तथा आकर (हवींषि मधुना पृंक्त) हमारी हवियोंको मिठाससे युक्त कर दो । तथा (वाजिनीवसू) हे बलकारक अन्न देकर सबको बसानेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनों (सोमं पिबतं) सोम पियो ॥ ५ ॥

[३७७] हे (अग्ने) प्रकाशक देव ! (समिधं जोषि) हमारे द्वारा दी गई समिधाओंका सेवन कर, (आहुतिं जोषि) आहुतियोंका सेवन कर, (जन्यं ब्रह्म जोषि) मनुष्योंका हित करनेवाले ज्ञानका सेवन कर तथा (सुष्टुतिं जोषि) उत्तम स्तुतिका सेवन कर। हे (वसो) सबको बसानेवाले अग्ने ! तू (उशतः महः विश्वान् देवान्) सोम पीनेकी इच्छा करनेवाले बडे बडे सभी देवोंको (हविः पायय) सोम पिला और (उशन्) सोम पीनेकी इच्छा करते हुए स्वयं भी (ऋतुना विश्वेभिः) ऋतुके और सम्पूर्ण देवताओंके साथ पी ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे धनके प्रदाता देव ! तुझे ले जानेवाले घोडे भी तृप्त हों, तू हमारी हिंसा न करते हुए हमें शक्तिशाली बना और दृढ कर । तथा तू भी आनन्दित हृदयसे सोम पी ॥ ३ ॥

इस धनको प्रदान करनेवाले देवने सभी तरहका सोम पिया । वह देव अमरता देनेवाले सोमको पीनेके कारण ही शक्तिशाली है ॥ ४ ॥

हे अश्विनौ ! वेगसे जानेवाले तथा उत्तम मार्गसे जानेवाले अपने रथको जोडकर हमारी तरफ आओ और हमारी हवियोंको मिठाससे युक्त करो और तुम भी हमारे द्वारा दिए गए सोम पीकर तृप्त होओ ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू हमारे द्वारा दी गई समिधाओं और ज्ञानपूर्वक किए गए स्तोत्रोंका सेवन कर । जो बडे बडे देव गण सोम पीनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें तू पिला और स्वयं भी तू सोम पी ॥ ६ ॥

[३८]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- सविता । छन्दः- त्रिष्टुप्]

३७८ उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्न- मथाभजद् वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥

३७९ विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद् वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥

३८० आशुभिश्चिद्यान् वि मुचाति नून- मरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्या- मनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥

---

[३८]

अर्थ— [३७८] (तत् अपाः) वह कर्म करनेवाला (वह्निः) सब जगत्‌को धारण करनेवाला (स्यः देवः सविता) वह तेजस्वी देव सविता (सवाय) सबको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए (शश्वत्तमं अस्थात्) प्रतिदिन उदय होता है। वह (नूनं) निश्चयसे (देवेभ्यः रत्नं वि धाति) देवोंके लिए रत्न धारण करता है। (अथ) इसलिए वह (स्वस्तौ) कल्याण करनेके लिए (वीतिहोत्रं अभजत्) इस यज्ञका सेवन करे ॥ १ ॥

१ स्यः देवः सविता सवाय शश्वत्तमं अस्थात्— वह तेजस्वी सविता सूर्यदेव प्रत्येकको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए प्रतिदिन उदय होता है।

२ देवेभ्यः रत्नं वि धाति— वह सविता देव विद्वानोंके लिए रत्नों अर्थात् धनोंको धारण करता है।

[३७९] (पृथुपाणिः देवः) विस्तृत हाथोंवाला यह तेजस्वी सविता देव (विश्वस्य श्रुष्टये) सम्पूर्ण जगत्‌के सुखके लिए (ऊर्ध्वः) उदय होकर (बाहवा प्र सिसर्ति) अपनी बाहुओंको फैलाता है। (निमृग्राः आपः चित्) अत्यन्त पवित्र करनेवाले ये जल भी (अस्य व्रते आ) इसी सविता देवके नियममें बहते हैं, (अयं वात चित् परिज्मन्) यह वायु भी चारों ओर बहता हुआ (रमते) आनन्दित होता है ॥ २ ॥

१ पृथुपाणिः देवः विश्वस्य श्रुष्टये बाहवा प्र सिसर्ति— बडे बडे हाथों अर्थात् किरणोंवाला यह तेजस्वी सूर्य सारे संसारके सुखके लिए अपनी किरणरूपी हाथोंको प्रसारित करता है।

२ निमृग्राः आपः चित् अस्य व्रते आ— पवित्र करनेवाले जल भी इसके नियममें रहकर बहते हैं।

[३८०] (यान्) अस्त होता हुआ सविता देव (आशुभिः नूनं वि मुचाति) शीघ्र चलनेवाली किरणोंसे मुक्त हो जाता है, तब वह देव (अतमानं चित्) हमेशा चलनेवाले यात्रीको भी (एतोः अरीरमत्) चलनेसे रोक देता है। (अह्यर्षूणां चित् अविष्यां न्ययान्) शत्रुओंका नाश करनेवाले वीरोंके आक्रमणकी इच्छाको भी नियंत्रित कर देता है, (सवितुः व्रतं अनु मोकी आ अगात्) सविता देवके कर्म समाप्त हो जानेके बाद रात आती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— स्वयं भी कर्म करनेमें कुशल वह सविता सूर्यदेव प्रतिदिन उदय होता है, उसके उदय होते ही सभी प्राणी जागकर अपने अपने कामोंमें लग जाते हैं, इस प्रकार मानों सूर्य ही उदय होकर लोगोंको कर्ममें प्रवृत्त करता है। यह सूर्य विद्वानोंके लिए धन धारण करता है। विद्वान् जन इस सूर्यसे भरपूर लाभ उठाकर शक्तिशाली होते हैं। उसके उदय होते ही यज्ञ शुरु हो जाते हैं, और उस यज्ञसे जनताका कल्याण होता है। इस प्रकार सूर्य यज्ञके द्वारा भी प्राणियोंका कल्याण करता है ॥ १ ॥

लम्बी लम्बी किरणोंरूपी हाथोंवाला तेजस्वी देव उदय होते हुए समस्त संसारके सुखके लिए अपनी किरणोंको फैलाता है। सूर्यके उदय होनेपर समस्त संसारको जीवन प्राप्त होता है और इस जीवनसे उसे सुख मिलता है। यह जल और वायु भी सूर्यके निकलनेसे पवित्र हो जाते हैं ॥ २ ॥

२८१ पुनः समव्यद् विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत् संहायास्थाद् व्यृ१तूँरदर्धर् अरमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥

२८२ नानौकांसि दुर्यो विश्वमायु-र्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधा-दन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥

२८३ समाववर्ति विष्ठितो जिगीषु-र्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागा-दनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥

अर्थ— [२८१] (वयन्ती) अन्धकारको बुनती हुई रात्री (विततं पुनः समव्यत्) फैले हुए प्रकाशको फिर घेर लेती है, तब (धीरः) बुद्धिमान् मनुष्य (शक्म कर्तोः मध्या न्यधात्) किए जाने योग्य कर्म को भी बीचमें ही छोड देता है । तदनन्तर फिर जगत् (संहाय उत् अस्थात्) निद्राको छोडकर उठ खडा होता है, क्योंकि (अरमतिः देवः सविता) कभी न रुकनेवाला देव सूर्य (आगात्) उदय हो जाता है और (ऋतून् अदर्धः) ऋतुओंका विभाग करता है ॥ ४ ॥

[२८२] (दुर्यः प्रभवः अग्नेः शोकः) घरमें ही उत्पन्न होनेवाला अत्यधिक अग्निका तेज (नाना ओकांसि विश्वं आयुः वि तिष्ठते) अनेक घरों और सभी आयुओं पर अपना अधिकार चलाता है । (माता) माता (सवित्रा इषितं) सविता देवके द्वारा दिए गए (अस्य केतं) इस अग्निके प्रज्ञापक चिन्ह (ज्येष्ठं भागं) श्रेष्ठ भागको (सूनवे आधात्) अपने पुत्रके लिए धारण करती है ॥ ५ ॥

[२८३] (दैव्यस्य सवितुः व्रतं अनु) तेजस्वी सूर्यके अस्तरूपी कर्मके हो जाने पर (जिगीषुः विस्थितः सं आववर्ति) शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाला वीर अपने आक्रमणको रोक देता है । (विश्वेषां चरतां अमा कामः अभूत्) सभी चलनेवाले प्राणियोंमें घर जानेकी इच्छा पैदा हो जाती है, (शश्वान्) हमेशा काम करनेवाला भी (विकृतं अपः हित्वी आ अगात्) आधे किए हुए कामको छोडकर घर आ जाता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— अस्त होता हुआ सूर्य अपनी शीघ्रगामी किरणोंको समेट लेता है, उससे अन्धेरा होने लगता है, अन्धेरा हो जानेके कारण, जो यात्री दिन भर चलते रहते हैं, वे भी चलना बन्द कर देते हैं, तथा जो वीर शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए उनपर आक्रमण करना चाहते हैं, वे भी अन्धेरेको देखकर आक्रमण नहीं करते । जब सूर्यदेवके कर्म समाप्त हो जाते हैं, तब उसके बाद रात्रीका आगमन होता है ॥ ३ ॥

अन्धकाररूपी कपडेको बुनती हुई रात्री चारों ओर फैले हुए प्रकाशको घेर लेती है, चारों ओर अन्धेरा फैल जाता है, अन्धेरा फैलनेके साथ ही बुद्धिमान् मनुष्य किए जाने योग्य कामको भी बीचमें ही समाप्त कर देता है। फिर अगले दिन जब फिर सूर्य उदय होता है, तब वह बुद्धिमान् फिर अपनी नींदको छोडकर काम करने लग जाता है । उदय होता हुआ यह सूर्य ऋतुओंका निर्माण करता है ॥ ४ ॥

अग्निके तेजका हर घरों और मनुष्यों पर अधिकार रहता है। जिस मनुष्यके शरीरमें अग्नि स्वस्थ होगी, वह मनुष्य भी स्वस्थ होगा। यह अग्नि सूर्यका एक भाग है और सूर्य अग्निका चिन्ह है । सूर्य भी प्रकाशक होनेसे अग्नि ही है । सूर्यको उत्पन्न करनेवाली उषा जब सूर्यको पैदा करती है, तब मानों वह अग्निको ही प्रकट करती है ॥ ५ ॥

जब सविता देव अस्त होजाते हैं, तब शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करनेवाला वीर अपने आक्रमणको रोक देता है, रात्रिके समय वह शत्रुओं पर आक्रमण नहीं करता । जो सभी चलनेवाले या उडनेवाले प्राणी हैं, वे घर जानेकी इच्छा करने लगते हैं और तब दिन भर काममें लगा रहनेवाला मनुष्य अपने कामको अधूरा ही छोडकर घर चला जाता है ॥ ६ ॥

३८४ त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयासो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥

३८५ याद्राध्यं वरुणो योनिमप्य- मनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात् स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥

३८६ न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥

अर्थ— [३८४] हे सविता देव ! (अप्सु) अन्तरिक्षमें (त्वया हितं अप्यं भागं) तेरे द्वारा स्थापित जलके भागको (धन्व अनु मृगयासः वितस्थुः) रेगिस्तानके प्रदेशोंमें प्राणी प्राप्त करते हैं। तथा तूने ही (विभ्यः वनानि) पक्षियोंके लिए जंगल दिए। (अस्य देवस्य सवितुः) इस तेजस्वी सविता देवके (तानि व्रता) उन कर्मोंको (न किः मिनन्ति) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

[३८५] (निमिषि) सूर्यके आंखें मूंद लेने पर अर्थात् अस्त हो जाने पर (वरुणः) वरुण (यात् राध्यं अप्यं अनिशितं योनिं) चलनेवालोंके द्वारा चाहने योग्य, प्राप्त करने योग्य और सुखदायक स्थानको प्रदान करता है । (जर्भुराणः) दिन भर उडनेवाले (विश्वः मार्ताण्डः) सब पक्षी भी (आ गात्) वापस आ जाते हैं, (विश्वः पशुः व्रजं आ) सब जानवर भी अपने बाडेमें आ जाते हैं, इस प्रकार (सविता) यह सूर्यदेव (जन्मानि) सभी प्राणियोंको (स्थशः वि आ अकः) हर स्थानमें अलग अलग कर देता है ॥ ८ ॥

[३८६] (यस्य व्रतं) जिसके नियमको (न इन्द्रः वरुणः न मित्रः न अर्यमा रुद्रः मिनन्ति) न इन्द्र, वरुण न मित्र, न अर्यमा और न रुद्र ही तोड सकते है और (नः अरातयः) न शत्रु ही तोड सकते हैं, (तं देवं सवितारं) उस तेजस्वी सविता देवको (स्वस्ति) अपने कल्याणके लिए (इदं नमोभिः हुवे) अब नमस्कारोंसे बुलाता हूँ ॥ ९ ॥

१ यस्य व्रतं इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा रुद्रः अरातयः न मिनन्ति— इस सविता देवके नियमको इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, रुद्र और शत्रु तोड नहीं सकते ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह सूर्य अपनी किरणोंके द्वारा मेघोंमें पानी स्थापित करता है और वे जल वृष्टिके रूपमें रेगिस्तानोंमें बरसते हैं, जहां उस जलको जन्तु पीते हैं । इसी प्रकार जंगलोंमें उत्पन्न होनेवाले वृक्षों और फलोंमें यह सूर्य रस स्थापित करता है और उन रससे भरे फलोंको पक्षी खाते हैं और वृक्षों पर रहते हैं । ये सविता देवके काम कभी भी नष्ट नहीं होते ॥ ७ ॥

दिन भर प्रयत्न करनेके बाद जब मनुष्य थक जाते हैं, तब सूर्यके अस्त हो जानेके बाद श्रेष्ठ देव सबको अत्यन्त सुखदायक स्थान प्रदान करता है । सभी मनुष्य अपने स्थानों पर जाकर निद्राका सुख लेते हैं, उस समय दिन भर उडने वाले पक्षी भी अपने अपने घोंसलोंमें वापस आ जाते हैं और पशु भी अपने बाडेमें आ जाते हैं । दिन भर मनुष्य, पशु और पक्षी एक जगह मिलकर काम करते हैं, पर शाम होते ही सब अलग अलग हो जाते हैं, इन सबको पृथक् पृथक् करनेका काम सूर्य ही करता है ॥ ८ ॥

इस सविता देवके नियमको इन्द्र, वरुण आदि मित्र तो तोड ही नहीं सकते, पर उसके जो शत्रु हैं, वे भी नहीं तोड सकते । नियमके अनुसार चलनेवालोंका वह देव कल्याण करता है ॥ ९ ॥

३८७ भगं धियं वाजयन्तः पुरंधिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य संगथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥ १० ॥

३८८ अस्मभ्यं तद् दिवो अद्भ्यः पृथिव्या--स्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवा--त्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥

[३९]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३८९ ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥ १ ॥

अर्थ— [३८७] (भगं धियं पुरन्धिं) सेवाके योग्य, ध्यान किए जानेके योग्य तथा बुद्धिमान् सविताको (वाजयन्तः नः) अन्न देनेवाले हमारी (नराशंसः ग्नास्पतिः) मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय तथा छन्दोंका स्वामी सविता देव (अव्याः) रक्षा करे । (वामस्य रयीणां आये संगथे) उत्तम धन और ऐश्वर्योंके प्राप्त होने और उनसे युक्त होनेपर भी हम (सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम) सविता देवके प्रिय हों ॥ १० ॥

१ वामस्य रयीणां आये सवितुः देवस्य प्रियाः स्याम— उत्तम धन और ऐश्वर्योंके प्राप्त होनेपर भी हम सविता देवके प्रिय बने रहें ।

[३८८] हे (सवितः) सविता देव ! (यत्) क्योंकि (त्वया दत्तं राधः) तेरे द्वारा दिया गया धन (स्तोतृभ्यः आपये उरुशंसाय जरित्रे) स्तोताओं, उनके बन्धुओं और बहुत प्रशंसनीय स्तुति करनेवालेके लिए (शं भवाति) कल्याणकारी होता है, (तत् काम्यं) वह चाहने योग्य धन (दिवः अद्भ्यः पृथिव्याः अस्मभ्यं आ गात्) द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोकसे हमें प्राप्त हो ॥ ११ ॥

[३९]

[३८९] तुम दोनों (ग्रावाणा इव) दो पत्थरोंकी तरह (तत् अर्थं इत्) उस एक ही वस्तुके प्रति जाकर (जरेथे) उसकी स्तुति करते हो, (वृक्षं गृध्रा इव) पेडके समीप जैसे दो गिद्ध जाते हैं वैसे ही तुम (निधिमन्तं अच्छ) निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, (विदथे) यज्ञमें (ब्रह्माणा इव) दो ब्राह्मणोंके समान तुम (उक्थशासा) स्तोत्र कहनेवाले हो और (जन्या दूता इव) जनताके हित लिये भेजे दो दूतोंके समान तुम दोनों (पुरुत्रा हव्या) विविध स्थानोंमें बुलाने योग्य हो ॥ १ ॥

भावार्थ— यह सविता उत्तम बुद्धिमान् मनुष्योंसे प्रशंसनीय और छन्दोंका स्वामी है। छन्दोंमें गायत्री बहुत श्रेष्ठ माना जाता है, इस गायत्री मंत्रका देवता यह सविता है, इसी कारण सविताको छन्दोंका स्वामी कहा है । वह सविता हम स्तुति करनेवालोंकी रक्षा करे और हम भी धनोंके प्राप्त होनेपर भी इस देवके प्रिय बने रहें अर्थात् कभी अभिमानी न हों ॥ १० ॥

सविता देवके द्वारा दिया गया धन स्तुति करनेवालोंका कल्याण करता है । ऐसा वह धन हमें चारों ओरसे प्राप्त हो ॥ ११ ॥

हे अश्विनौ ! जैसे दो पत्थर एक ही सोमवल्लीको कूटते हुए शब्द करते हैं, उस तरह तुम दोनों एक ही विषयकी चर्चा करते हो । जैसे दो पक्षी एक ही फलोंसे लदे वृक्षके पास जाते हैं वैसे तुम दोनों धनधान्यसम्पन्न यजमानके पास जाते हो । यज्ञमें जैसे दो ब्राह्मण स्तोत्रपाठ करते हैं वैसे तुम भी करते हो । जैसे जनताके हित करनेके लिए राजाके द्वारा भेजे दो दूत बहुत मनुष्यों द्वारा करनेके योग्य समझे जाते हैं, वैसा ही तुम्हारा आदर होता है ॥ १ ॥

३९० प्रातर्यावाणा रथ्येव वीरा ऽजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दंपतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥
३९१ शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा ऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
३९२ नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
३९३ वातेवाजुर्या नद्येव रीति रक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥

अर्थ— [३९०] हे अश्विनौ ! तुम दोनों (जनेषु) जनताके मध्य (दम्पती इव) पतिपत्नीके समान (क्रतुविदा) कार्य जाननेवाले हो, (मेने इव) दो महिलाओंके समान (तन्वा शुंभमाने) अपने शरीरोंकी सजावट करते हो, (रथ्या इव वीरा) महारथियोंके समान वीर हो; (प्रातः यावाणा) प्रातःकाल ही उठकर यात्रा करनेवाले और (अजा इव यमा) दो बकरोंके समान युगल मूर्ति हो । तुम (वरं आ सचेथे) श्रेष्ठके पास जाते हो ॥ २ ॥

[३९१] (तरोभिः) वेगोंसे (शफौ इव जर्भुराणा) घोडेके खुरके समान खूब चलनेवाले (नः अर्वाक् गन्तं) हमारे पास आओ ! (शृंगा इव प्रथमा) किसी पशुके सींगोंके समान पहले ही हमारे पास चले आओ; (प्रति वस्तोः) हरदिन (चक्रवाका इव) चक्रवाकचक्रवाकीके समान हमारे पास आओ (उस्रा शक्रा) शत्रुओंको हटानेवाले और शक्ति संपन्न तुम दोनों (रथ्या इव अर्वाञ्चा यातं) रथारूढ वीरोंके समान हमारे पास चले आओ । ॥ ३ ॥

[३९२] (नः) हमें (नावा इव) नौकाओंके समान, (युगा इव) रथके डंडोंके समान, (नभ्या इव) पहियोंके केन्द्रमें रखे लट्ठोंके समान, (उपधी इव) चक्रके पार्श्वमें रखे तख्तोंके तुल्य, (प्रधी इव) चक्रके वृत्तके समान संकटोंसे (पारयतं) पार ले चलो; (श्वाना इव) कुत्तोंके समान (नः तनूनां) हमारे शरीरोंकी (अरिषण्या) अहिंसक होकर रक्षा करो, (अस्मान्) हमें (खृगला इव) कवचके समान (विस्रसः पातं) जरासे बचाओ ॥ ४ ॥

[३९३] (वाता इव अजुर्या) वायुप्रवाहके तुल्य जीर्ण न होनेवाले, (नद्या इव रीतिः) नदियोंके समान सदा आगे बढनेवाले, (अक्षी इव चक्षुषा) आँखोंके तुल्य दृष्टिशक्तिसे युक्त तुम दोनों (अर्वाक् आयातं) हमारे पास आओ; (तन्वे हस्तौ इव शंभविष्ठा) शरीरके लिए हाथोंके समान सुख देनेवाले तुम दोनों (नः) हमें (वस्यः अच्छ) श्रेष्ठ धनके प्रति (पादा इव नयतं) पैरोंके समान ले चलो ॥ ५ ॥

भावार्थ— तुम जनतामें पतिपत्नीके समान अपने कर्तव्यमें तत्पर, स्त्रियोंके समान शोभायमान वीर और युगल भाई जैसे हो । वे तुम श्रेष्ठ यजमानके पास जाते हो ॥ २ ॥

वेगसे घोडोंके समान दौडते हुए हमारे पास आओ । पशुके सींग जैसे पहिले पहुंचते हैं वैसे तुम भी हमारे पास पहिले पहुंचो । चक्रवाक पक्षियोंके समान शीघ्र ही हमारे पास आओ । शत्रुको परास्त करनेवाले शक्तिमान् वीरोंके समान तथा महारथियोंके समान तुम हमारे पास शीघ्र आ पहुंचो । ॥ ३ ॥

नौकाके समान तथा रथके अंगोंके समान हमें सब संकटोंसे पार ले चलो । कुत्तोंके समान हमारी रक्षा करो और कवचोंके समान हमें सुरक्षित रखो, नाशसे बचाओ ॥ ४ ॥

वायुके समान क्षीण न होनेवाले, नदियोंके समान आगे बढते रहनेवाले, आंखोंके समान देखनेवाले तुम दोनों हमारे पास आओ । हाथोंके समान शरीरके लिये सुखदायक होओ और पावोंके समान हमें अच्छे धनके पास ले चलो । इसी प्रकार मनुष्य वायुके समान जीवन देनेवाला, नदियोंके समान आगे बढनेवाला, आंखोंके समान देखनेवाला बने, पावोंके समान उत्तम स्थानके पास पहुंचे और हाथोंके समान सुख दे ॥ ५ ॥

३९४ ओष्ठा॑विव॒ मध्वा॒स्ने वद॑न्ता॒ स्तना॑विव पिप्यतं जी॒वसे॑ नः ।
ना॒सेव॑ नस्त॒न्वो॑ रक्षि॒तारा॒ कर्णा॑विव सु॒श्रुता॑ भूतम॒स्मे ॥ ६ ॥
३९५ हस्ते॑व श॒क्तिम॒भि सं॑द॒दी नः॒ क्षामे॑व नः॒ सम॑जतं॒ रजां॑सि ।
इ॒मा गिरो॑ अश्विना युष्म॒यन्तीः॒ क्ष्णोत्रे॑णेव॒ स्वधि॑तिं॒ सं शि॑शीतम् ॥ ७ ॥
३९६ ए॒तानि॑ वामश्विना॒ वर्ध॑नानि॒ ब्रह्म॒ स्तोमं॑ गृत्सम॒दासो॑ अक्रन् ।
तानि॑ नरा जुजुषा॒णोप॑ यातं॒ बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ ८ ॥

[४०]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- सोमापूषणौ, ६ (अन्त्यार्धर्चस्य) अदितिः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३९७ सोमा॑पूषणा॒ जन॑ना रयी॒णां जन॑ना दि॒वो जन॑ना पृथि॒व्याः ।
जा॒तौ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पौ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ १ ॥

अर्थ—[३९४] (आस्ने) मुँहके लिए (ओष्ठौ इव) होठोंके तुल्य (मधु वदन्ता) मिठास भरा वचन कहते हुए तुम दोनों (नः जीवसे) हमारे जीवनके लिए हमें (स्तनौ इव पिप्यतं) स्तनोंके समान पुष्ट करते रहो; (नासा इव) नासापुटके तुल्य (नः तन्वः रक्षितारा) हमारे शरीरोंके संरक्षक बनो और (अस्मे) हमारे लिए (कर्णौ इव) कर्णेन्द्रियके समान (सुश्रुता भूतं) भली भाँति सुननेवाले बनो ॥ ६ ॥

[३९५] (नः हस्ता इव) हमें हाथोंके समान (शक्तिं अभि संददी) बल ठीक प्रकार दो, (क्षामा इव) द्यावापृथिवीके समान (नः रजांसि सं अजतं) हमें पर्याप्त स्थान भलीभाँति दो, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इमाः) इन (युष्मयन्तीः गिरः) तुम्हारी कामना करनेवाले हमारे वचनोंको (स्वधितिं क्ष्णोत्रेण इव) कुल्हाडीको सानसे जिस तरह तीक्ष्ण करते हैं, वैसे ही (सं शिशीतं) अच्छी तरह तेजसे- प्रभावशाली कर दो ॥ ७ ॥

[३९६] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वर्धनानि) तुम्हारे यशकी वृद्धि करनेवाले (एतानि) ये (ब्रह्म स्तोमं) ज्ञानदायक स्तोत्र (गृत्समदासः अक्रन्) गृत्समदोंने बनाये हैं, (तानि जुजुषाणा) उनको स्वीकार करते हुए तुम दोनों (उप यातं) हमारे समीप आओ, (विदथे) यज्ञमें (सुवीराः) अच्छे वीरोंसे युक्त बनकर हम (बृहत् वदेम) महान् यशका गान करें ॥ ८ ॥

[४०]

[३९७] हे (सोमापूषणा) सोम और पूषा ! तुम दोनों (रयीणां जनना) धनोंके उत्पादक (दिवः जनना पृथिव्याः जनना) द्युलोकके उत्पादक और पृथिवीके उत्पादक हो । (जातौ) उत्पन्न होते ही तुम दोनों (विश्वस्य भुवनस्य गोपौ) सारे भुवनोंके रक्षक हुए । तुम्हें (देवाः) देवोंने (अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्) अमृतका केन्द्र बनाया ॥ १ ॥

१ जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ— सोम और पूषा देव उत्पन्न होते ही सारे भुवनोंके रक्षक बनाये गए ।

२ देवाः अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्— देवोंने इन्हें अमृतका केन्द्र बनाया ।

भावार्थ— मुखके लिये जैसे होंठ वैसे तुम मीठा भाषण करो, स्तनोंके समान दीर्घ जीवनके लिये पोषक रससे हमें पुष्ट करो, नासिकासे जैसे प्राणके द्वारा संरक्षण होता है वैसी हमारी सुरक्षा करो, कानोंके समान हमारे कथनका श्रवण करो । इस प्रकार मनुष्य भी मीठा भाषण करे, पोषक अन्नपानसे पोषण करे, दीर्घायु बने, सबके कथनोंको सुने, बहुश्रुत बने ॥ ६ ॥

हाथोंके समान हमें शक्ति दो, द्यावापृथिवीके समान हमें पर्याप्त स्थान दो, ये तुम्हारी स्तुतियाँ, शस्त्रको सानसे तीक्ष्ण करती है, उसी तरह तेजस्वी हों ॥ ७ ॥

हे नेता अश्विदेवो ! तुम्हारा वर्णन करनेवाले ये स्तोत्र गृत्समद ऋषियोंने बनाये हैं । तुम इनको सुनकर हमारे पास आओ और जब तुम आओगे, तब हम उत्तम वीर बनकर तुम्हारी बहुत स्तुति करें ॥ ८ ॥

३९८ इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥
३९९ सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥
४०० दिव्य१न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४ ॥
४०१ विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ ५ ॥

अर्थ— [३९८] (इमौ देवौ) सोम और पूषा इन दोनों देवोंकी (जायमानौ) उत्पन्न होते ही (जुषन्त) सब देव सेवा करने लगे । (इमौ अजुष्टा तमांसि गूहतां) ये दोनों देव न चाहने योग्य अन्धकारको नष्ट करते हैं, (आभ्यां सोमापूषभ्यां) इन सोम और पूषाकी सहायतासे (इन्द्रः) इन्द्रने (आमासु उस्रियासु) अपक्व गायोंमें (पक्वं जनयत्) पक्व दूधको उत्पन्न किया ॥ २ ॥

[३९९] (सोमापूषणा) सोम और पूषा दोनों देवो ! (रजसो विमानं) लोकोंको नापनेवाले (विषूवृतं) सर्वत्र व्याप्त (अविश्वमिन्वं) जगत्से विशाल (सप्तचक्रं) सात चक्रोंवाला (मनसा युज्यमानं) इच्छासे जोडे जानेवाला (पंचरश्मिं रथं) पांच लगामोंवाले रथको (जिन्वथः) हमारी तरफ प्रेरित करो ॥ ३ ॥

[४००] (अन्यः) उनमें एकने (उच्चा दिवि सदनं चक्रे) ऊंचे द्युलोकमें रहनेका स्थान बना रखा है, (अन्यः) दूसरा (अन्तरिक्षे पृथिव्यां अधि) अन्तरिक्ष और पृथिवीमें रहता है । (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यं) हमारे लिए (पुरुवारं) बहुतोंके द्वारा चाहने योग्य (पुरुक्षुं) बहुत यशस्वी (रायः पोषं) ऐश्वर्य और पुष्टि (वि स्यतां) प्रदान करें तथा (अस्मे नाभिं) हमें सन्तान प्रदान करें ॥ ४ ॥

[४०१] (अन्यः) उनमेंसे एक (विश्वानि भुवना जजान) सम्पूर्ण भुवनोंको उत्पन्न करता है, (अन्यः) दूसरा (विश्वं अभिचक्षाण एति) सब लोकोंको देखता हुआ जाता है । हे (सोमापूषणा) सोम और पूषा । (मे धियं अवतं) मेरे कर्म और बुद्धिकी तुम रक्षा करो, (युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम) तुम दोनोंकी सहायतासे हम सब शत्रुओंको जीतें ॥ ५ ॥

भावार्थ— सोम और पूषा देव धनोंके, द्युलोकके और पृथिवीके उत्पादक हैं । ये ही सब भुवनोंके रक्षक और अमृतका केन्द्र भी यही हैं ॥ १ ॥

सोम और पूषा इन दोनों देवोंकी सभी देव सेवा करते हैं । क्योंकि ये उत्पन्न होते ही अन्धकारका नाश करते हैं । यह इन्हींकी महिमा है कि ये अपक्व गायोंमें पक्व दूधको उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

हे सोम और पूषा ! तुम सारे संसारको नापनेवाले, सर्वत्र व्याप्त जगतसे भी विशाल सात पहियोंवाले तथा इच्छानुसार जुड जानेवाले पांच लगामवाले रथको हमारी ओर प्रेरित करो ॥ ३ ॥

सोम और पूषा इन दोनों देवोंमें एक देव अर्थात् पूषा ऊंचे द्युलोकमें रहता है और दूसरा सोम अन्तरिक्षमें चन्द्रके रूपमें और पृथिवीमें सोम औषधिके रूपमें रहता है । ये दोनों देव हमें उत्तम ऐश्वर्य और पुष्टि प्रदान करें तथा सन्तानोंसे हमें बढावें ॥ ४ ॥

इन दोनों देवोंमें एक देव सोम सभी लोकोंको उत्पन्न करता है और दूसरा देव पूषा या आदित्य सभी भुवनोंका निरीक्षण करता हुआ जाता है । ये दोनों देव मेरे कर्म और बुद्धिकी रक्षा करें और इनकी सहायतासे हम शत्रुओंको जीतें ॥ ५ ॥

४०२ धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥

[४१]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता-१-२ वायुः, ३ इंद्रवायू, ४-६ मित्रावरुणौ, ७-९ अश्विनौ, १०-१२ इन्द्रः, १३-१५ विश्वे देवाः, १६-१८ सरस्वती, १९-२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा । (१९ तृतीयपादस्य अग्निर्वा) । छन्दः- गायत्री; १६-१७ अनुष्टुप्, १८ बृहती ।]

४०३ वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान् त्सोमपीतये ॥ १ ॥

४०४ नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

४०५ शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।
आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

अर्थ-- [४०२] (विश्वं-इन्वः) सबको तृप्त करनेवाला (पूषा) पोषण कर्ता आदित्य (धियं जिन्वतु) हमारी बुद्धियोंको तृप्त करे। (रयिपतिः सोमः) ऐश्वर्योंका स्वामी सोम (रयिं दधातु) हमें ऐश्वर्य प्रदान करे । (अनर्वा देवी अदितिः) प्रतिकूल व्यवहार न करनेवाली तेजस्वी अदिति (अवतु) हमारी रक्षा करे, हम भी (सुवीराः) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त होकर (विदथे बृहद् वदेम) यज्ञमें उत्तम गुणगान करें ॥ ६ ॥

[४१]

[४०३] हे (वायो) वायुदेव! (ये ते सहस्रिणः रथासः) जो तेरे हजारों रथ हैं, (तेभिः) उनसे (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त तू (सोमपीतये आ गहि) सोम पीनेके लिए आ ॥ १ ॥

[४०४] हे (वायो) वायुदेव ! तू (नियुत्वान्) नियुत नामक घोडोंसे युक्त होकर (आ गहि) हमारे पास आ, (अयं शुक्रः ते अयामि) यह तेजस्वी सोमरस तेरे लिए तैय्यार कर रहा हूँ, तू भी (सुन्वतः गृहं गन्ता असि) सोम निचोडनेवालेके घरमें जानेवाला है ॥ २ ॥

[४०५] (नरा इन्द्रवायू) उत्तम रीतिसे ले जानेवाले इन्द्र और वायु ! (अद्य) आज (नियुत्वतः) घोडोंके द्वारा (गवाशिरः शुक्रस्य) गौदुग्धसे मिले हुए तेजस्वी सोमको पीनेके लिए (आयातं) आओ और (पिबतं) पीओ ॥ ३ ॥

भावार्थ-- सबको तृप्त करनेवाला पोषणकर्ता आदित्य हमारी बुद्धियोंको तृप्त करे और ऐश्वर्योंका स्वामी हमें ऐश्वर्य प्रदान करे । प्रतिकूल व्यवहार न करनेवाली देवी अदिति हमारी रक्षा करे, तथा हम भी वीर सन्तानोंसे युक्त होकर यज्ञमें देवोंका उत्तम गुणगान करें ॥ ६ ॥

हे वायु ! तेरी जो हजारों लहरें हैं, उन लहरोंसे युक्त होकर तू हमें प्राण दे और हमारे द्वारा प्रदत्त सोमको तू पी ॥ १ ॥

हे वायो ! चूंकि तू हमेशा सोम निचोडनेवालेके घर जानेवाला है, इसलिए मैं भी तेरे लिए ये तेजस्वी सोमरस तैय्यार कर रहा हूँ अतः तू घोडोंके द्वारा हमारे पास आ ॥ २ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों उत्तम नेता हो, मनुष्योंको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले हो, अतः तुम दोनों आओ और हमारे द्वारा दिए गए गौदुग्धसे मिश्रित सोमरसको पीओ ॥ ३ ॥

४०६ अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥
४०७ राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥
४०८ ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥ ६ ॥
४०९ गोमदू षु नासत्या ऽश्वावद् यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥
४१० न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

अर्थ— [४०६] हे (ऋतावृधा मित्रावरुणा) ऋतको बढानेवाले मित्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं सोमः सुतः) यह सोम निचोडकर तैयार किया गया है, अतः (इह) यहां आकर (मम हवं श्रुतं इत्) मेरी प्रार्थनाको अवश्य सुनो ॥ ४ ॥

[४०७] (राजाना) अत्यन्त तेजस्वी (अन् अभिद्रुहा) किसीसे द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण (सहस्रस्थूणे उत्तमे ध्रुवे सदसि) हजार खम्भोंवाले उत्तम और दृढ घरमें (आसाते) बैठते हैं ॥ ५ ॥

[४०८] (सम्राजा) अत्यन्त तेजस्वी (घृतासुती) घृतकी आहुति स्वीकार करनेवाले (आदित्या) रसका आदान करनेवाले (दानुनः पती) दान देनेवालोंके पालन करनेवाले (ता) वे दोनों मित्र और वरुण (अनवह्वरं सचेते) कुटिलता रहित मनुष्यके पास जाते हैं ॥ ६ ॥

१ ता अनवह्वरं सचेते— वे दोनों मित्र और वरुण देव कुटिलतासे रहित उपासकके पास जाते हैं ।

[४०९] हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (नासत्या) सत्यपालक (अश्विना) अश्विदेवो ! तुम दोनों (गोमत् अश्वावत्) गायों और घोडोंसे पूर्ण (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे पालन करनेयोग्य घरके पास (सु यातं) भलीभाँति जाओ ॥ ७ ॥

[४१०] (यत्) जिसे (वृषण्वसू) हे धनकी वर्षा करनेवाले अश्विनौ ! (दुःशंसः रिपुः) बुरी बातें कहनेवाला शत्रुभूत (मर्त्यः) मानव (न परः न अन्तरः) न पराया न अन्दरका हमारे ऊपर (आदधर्षत्) आक्रान्त करनेका साहस कर सके ॥ ८ ॥

भावार्थ— अत्यन्त तेजस्वी और किसीसे भी द्रोह न करनेवाले ये मित्र और वरुण ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठते हैं, जो हजार खम्भोंवाला, उत्तम और दृढ होता है । ऐसे यज्ञ मण्डपमें बैठकर ये दोनों सोम पीते हैं और उपासककी प्रार्थनाको सुनते हैं ॥ ४-५ ॥

ये दोनों देव मित्र और वरुण अत्यन्त तेजस्वी रस देनेवाले और दानियोंका पालन करनेवाले हैं । वे दोनों देव कुटिलतासे रहित मनुष्यके पास ही जाते हैं, कपटीके पास नहीं जाते ॥ ६ ॥

हे शत्रुको रुलानेवाले सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तुम दोनों गौओं और घोडोंसे युक्त तथा वीरों द्वारा पालन करनेयोग्य हमारे घरके पास आओ । जिससे, हे धन देनेवाले देवो ! हमारे अन्दरका अथवा बाहरका कोई भी दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण करनेके लिये समर्थ नहीं होगा ॥ ७-८ ॥

४११ ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥
४१२ इन्द्रो अङ्ग महद् भय- मभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥
४१३ इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥
४१४ इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १२ ॥
४१५ विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।
एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥

अर्थ— [४११] हे (धिष्ण्या अश्विना) उच्चपदके योग्य अश्विदेवो! (नः) हमारे लिए (वरिवोविदं) धनको बढानेहारे (पिशंगसंदृशं) सुवर्णयुक्त होनेके कारण पीले रंगवाली (रयिं) सम्पत्तिको (ता आ वोळ्हं) वे तुम दोनों इधरले आओ ॥ ९ ॥

[४१२] हे (अंग) प्रिय ! (स्थिरः विचर्षणिः सः इन्द्रः) युद्धमें स्थिर रहनेवाला, बुद्धिमान् वह इन्द्र (अभीषत्) शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके (महद् भयं अप चुच्यवत्) बडे भयको दूर करता है ॥ १० ॥

[४१३] यदि (इन्द्रः नः मृळयाति) इन्द्र हमें सुखी करे, तो (नः पश्चात् अघं न नशत्) हमें पीछेसे पाप नष्ट न करे और (पुरः नः भद्रं भवाति) आगेसे हमें कल्याण प्राप्त हो ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः नः मृळयाति— यदि इन्द्र हमें सुखी करे तो—
२ नः पश्चात् अघं न नशत्— हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, तथा
३ पुरः नः भद्रं भवाति— हमें सदा कल्याण प्राप्त हो सकता है ।

[४१४] (शत्रून् जेता विचर्षणिः इन्द्रः) शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् इन्द्र हमें (सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) सब दिशाओंसे (अभयं करत्) निर्भय करे ॥ १२ ॥

१ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्— इन्द्र सभी दिशाओंसे हमें निर्भय करे ।

[४१५] हे (विश्वे देवासः) सम्पूर्ण देवो ! (आ गत) आओ (इदं बर्हिः आ नि षीदत) इस यज्ञमें आकर बैठो और (मे इमं हवं आ शृणुत) मेरी इस प्रार्थनाको सुनो ॥ १३ ॥

भावार्थ— हे प्रशंसाके योग्य अश्विनो ! तुम दोनों हमें ऐसी सम्पत्ति दो कि जिसमें सुवर्ण बहुत हो और जो धन बढ़ानेमें समर्थ हो ॥ ९ ॥

युद्धमें सदा स्थिर रहनेवाला बुद्धिमान् वह इन्द्र शत्रुओंको भयभीत करता है और उनके द्वारा होनेवाले भयको दूर करता है ॥ १० ॥

जिस उपासककी रक्षा इन्द्र करता है, उसे पाप नष्ट नहीं कर सकते , वह सदा कल्याण प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

वह इन्द्र शत्रुओंको जीतनेवाला, बुद्धिमान् है । वह हमें उपासकोंको सब दिशाओंसे भयरहित करे ॥ १२ ॥

४१६ तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।
एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥
४१७ इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥
४१८ अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥
४१९ त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

अर्थ— [४१६] (शुनहोत्रेषु) पवित्र करनेवाले यज्ञोंमें (मत्सरः) आनन्द देनेवाला (अयं तीव्रः मधुमान्) यह तीक्ष्ण और मीठा सोमरस (वः) तुम्हारे लिए तैय्यार किया गया है, तुम सब (एतं) आओ और (काम्यं पिबत) इच्छानुसार पीओ ॥ १४ ॥

[४१७] (पूषरातयः) पुष्टिको देनेवाले (इन्द्रज्येष्ठाः मरुद्गणाः) इन्द्रको बडा माननेवाले मरुत् और दूसरे (देवासः) देवगणो ! (विश्वे) तुम सब (मम हवं-श्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो ॥ १५ ॥

[४१८] (अम्बितमे) हे अत्यन्त श्रेष्ठ माता (नदीतमे) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करानेवाली तथा (देवितमे) अत्यन्त तेजस्विनि (अम्ब सरस्वति) माता सरस्वती ! हम (अप्रशस्ता इव स्मसि) अत्यन्त निन्दनीयके समान हैं, इसलिए (नः प्रशस्तिं कृधि) हमें यशसे युक्त कर ॥ १६ ॥

१ अम्ब सरस्वति ! अप्रशस्ता स्मसि, नः प्रशस्तिं कृधि— हे माता सरस्वती ! हम निन्दनीय हैं अतः तू हमें प्रशंसाके योग्य कर ।

[४१९] हे (सरस्वति) सरस्वती ! (देव्यां त्वे) तेजसे युक्त तुझमें (विश्वा आयूंषि श्रिता) सब आयु आश्रित हैं, तू (शुनहोत्रेषु मत्स्व) पवित्रकारक यज्ञोंमें आनन्दित हो, हे (देवि) देवि सरस्वति ! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि) हमें प्रजा दे ॥ १७ ॥

१ देव्यां विश्वा आयूंषि श्रिता— इस देवी सरस्वतीमें सभी आयु आश्रित हैं ।

भावार्थ— हे विश्वे देवा ! इस यज्ञमें आओ और तुम्हारे लिए निचोडे गए इस मीठे और आनन्ददायक रसको इच्छानुसार पीओ और हमारी प्रार्थनाओंको सुनो ॥ १३-१४ ॥

मरुद्गण और अन्य देवगण इन्द्रको ही सबसे बडा मानते हैं । इन्द्र सबसे वीर और श्रेष्ठ होनेके कारण सब देव इसकी आज्ञामें चलते हैं । ये सब देव मेरी प्रार्थना सुनें ॥ १५ ॥

यह सरस्वती देवी अत्यन्त श्रेष्ठ निर्माता है । मनुष्यको उत्तम बनाती है । इसके उपासकको अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है और वह तेजस्वी होता है । यह सरस्वती सबकी माता है । दुष्ट मनुष्य भी सरस्वतीकी कृपा पाकर सज्जन और विद्वान् बन जाता है ॥ १६ ॥

इस सरस्वती देवीमें सभी तरहके अन्न और आयु आश्रित हैं । जो सरस्वती देवीकी उपासना करता है, वह हर तरहके अन्नोंसे समृद्ध होता है और उन अन्नोंको खाकर वह दीर्घायु प्राप्त करता है, जो सरस्वतीकी उपासना करते हैं वे दीर्घायुसे युक्त होते हैं और उत्तम सन्तान प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

४२० इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥
४२१ प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे ।
अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥
४२२ द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥
४२३ आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥

[४२]

[ऋषिः- गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- शकुन्तः (= कपिञ्जल-रूपीन्द्रः) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२४ कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥

अर्थ— [४२०] हे (वाजिनीवति ऋतावरि सरस्वति) अन्न व बलसे युक्त तथा सत्यके मार्गपर चलानेवाली सरस्वती देवी ! (गृत्समदा) निरभिमानी उपासक (देवेषु प्रिया या मन्म) देवोंको प्रिय लगनेवाले जिन स्तोत्रोंको (ते जुह्वति) तेरे लिए समर्पित करते हैं, (इमा ब्रह्म जुषस्व) उन इन स्तोत्रोंको तू सुन ॥ १८ ॥

[४२१] हे (शंभुवा) कल्याण करनेवाली द्यावा और पृथिवी देवियो ! हम (युवां हव्यवाहनं अग्निं च) तुम दोनों और हविको ले जानेवाले अग्निकी (आ वृणीमहे) कामना करते हैं, तुम दोनों (यज्ञस्य प्र एतां) हमारे यज्ञकी तरफ आओ ॥ १९ ॥

[४२२] (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी दोनों देवियां (अद्य) आज (सिध्रं दिविस्पृशं) सुखके साधक और आकाशको छूनेवाले (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवेषु यच्छतां) देवोंतक पहुंचायें ॥ २० ॥

[४२३] (अद्रुहा) हे द्रोह न करनेवाली द्यु और पृथिवी देवियो ! (अद्य इह) आज यज्ञमें (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए (यज्ञियाः देवाः) पूजाके योग्य (वां उपस्थं आ सीदन्तु) तुम्हारे पास ही आकर बैठें ॥ २१ ॥

[४२]

[४२४] (कनिक्रदत्) बार बार शब्द करता हुआ तथा (जनुषं प्रब्रुवाणः) मनुष्यको उपदेश देता हुआ यह शकुनि (वाचं इयर्ति) उत्तम वाणीको उसी प्रकार प्रेरित करता है, जिस प्रकार (अरिता नावं इव) मल्लाह नावको। हे (शकुने) पक्षी ! (सुमंगलश्च भवासि) तू कल्याणकारक हो, (काचित् अभिभा) कोई आक्रमणकारी शत्रु (त्वा विश्व्या मा विदत्) तुझे चारों ओरसे न घेरे ॥ १ ॥

१ जनुषं प्रब्रुवाणः वाचं इयर्ति— परिव्राजक मनुष्योंको उपदेश देता हुआ वेदवाणीका सर्वत्र प्रचार करता है ।

भावार्थ— यह सरस्वती अन्न और बलसे युक्त तथा अपने उपासकोंको सत्य मार्गपर चलानेवाली है । निरभिमानी व्यक्तिकी उपासनासे यह देवी प्रसन्न होती है ॥ १८ ॥

द्यु और पृथिवी तथा अग्नि सब कल्याण करनेवाले हैं । सब इनको चाहते हैं । हमारे बुलाये जानेपर ये हमारे यज्ञमें आयें ॥ १९ ॥

हे द्यु और पृथिवी ! आज इस यज्ञमें सोम पीनेके लिए पूजनीय देव तुम्हारे पास ही बैठें और तुम भी इस सुख प्राप्त करानेवाले यज्ञको देवोंतक पहुंचाओ ॥ २०-२१ ॥

४२५ मा त्वा श्येन उद् वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत् सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
४२६ अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

[४३]

[ऋषिः- गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । देवता- शकुन्तः (= कपिञ्जलरूपीन्द्रः) । छन्दः- जगती; २ अतिशक्वरी अष्टिर्वा ।]

४२७ प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥

अर्थ—[४२५] हे शकुने ! (त्वा) तुझे (श्येनः मा उत् वधीत्) श्येन पक्षी न मारे (त्वा सुपर्णः मा) तुझे सुपर्ण न मारे, (अस्ता इषुमान् वीरः) अस्त्र फेंकनेवाला धनुर्धारी कोई वीर भी (त्वा मा विदत्) तुझे प्राप्त न करे। (पित्र्यां प्रदिशं अनु) पितरोंकी दिशामें (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (सु मंगलः भद्रवादी इह वद) कल्याण करनेवाला तथा कल्याणकारक वाणीका उच्चारण करनेवाला तू यहां कल्याणकारक वचनोंको ही बोल ॥ २ ॥

१ सुमंगलः भद्रवादी इह वद— कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही यहां उपदेश दे।

[४२६] हे (शकुन्ते) पक्षी (सुमंगलः भद्रवादी) कल्याणकारक और कल्याणमय वचनोंको बोलनेवाला तू (गृहाणां दक्षिणतः अव क्रन्द) घरोंके दाहिनी बाजूमें बैठकर बोल । (नः स्तेनः मा ईशत) हम पर कोई चोर प्रभुत्व न करे, (अघशंसः मा) पापसे युक्त वचनोंको बोलनेवाला भी हम पर शासन न करे, हम (सुवीराः) उत्तम पुत्र पौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे बृहत् वदेम) यज्ञमें इस शकुनिकी बडी प्रशंसा करें ॥ ३ ॥

[४३]

[४२७] (शकुन्तयः) ये पक्षी (ऋतुथा) ऋतुओंके अनुसार (वयः वदन्तः) अन्नकी सूचना देते हुए (कारवः) स्तोताओंके समान (प्रदक्षिणित् अभि वदन्ति) दायीं बाजू पर बैठकर बोलें। (सामगा इव) सामको गानेवालेके समान यह पक्षी भी (गायत्रं त्रैष्टुभं उभे वाचौ) गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दसे युक्त दोनों वाणियोंको (वदति) बोलता है (च अनु राजति) और शोभित होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें परिव्राजकको शकुनि या पक्षी मानकर कहा है हे परिव्राजक ! तू बार बार बोलता हुआ सब मनुष्योंको उत्तम उपदेश दे और इस प्रकार उत्तम वेदवाणीका सर्वत्र प्रचार करता जा । तू सबका कल्याण करनेवाला हो, तेरा कोई शत्रु न हो, यदि हो तो भी वह तुझे कष्ट न दे ॥ १ ॥

इस परिव्राजकको श्येनके समान दुष्टता करनेवाला कोई मनुष्य न मारे तथा सुपर्णके समान बलशाली तथा शस्त्रधारी मनुष्य भी न मारे । पितरोंकी दिशा अर्थात् संकटोंकी अवस्थामें भी परिव्राजक कल्याणकारक वचन ही बोले । कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही मनुष्योंकी सभामें उपदेश दे ॥ २ ॥

हे पक्षी ! तू हमारे घरोंकी दायीं तरफ बैठकर शब्द कर । घरके दायीं तरफ बैठकर पक्षीका शब्द करना शकुन माना जाता है । परिव्राजक भी घरके मनुष्योंके अनुकूल होकर व्यवहार करे और वह हमेशा कल्याणकारक वचनोंको ही बोले । कोई चोर या अकल्याणकारक वचनोंको बोलनेवाला मनुष्य हम पर कभी शासन न करे । ऐसे उत्तम परिव्राजकका हम गुणगान करें ॥ ३ ॥

जिस प्रकार पक्षी आनेवाले ऋतुओंकी सूचना देते हैं उसी प्रकार यह परिव्राजक समयके अनुसार उपदेश दे । ऐसा उत्तम उपदेशक गायत्री और त्रिष्टुप् दोनों छन्दोंसे युक्त वेदमंत्रोंका घोष करता है और इस प्रकार वह सभामें सुशोभित होता है ॥ १ ॥

४२८ उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद ।
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥
४२९ आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥

अर्थ— [४२८] हे (शकुने) पक्षी! तू (उद्गाता इव) उद्गाता अर्थात् मंत्रोंके उच्चारण करनेवालेके समान (साम गायसि) सामका गान करता है और (ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि) ब्रह्माके पुत्रके समान यज्ञोंमें स्तोत्रोंका उच्चारण करता है। (वृषा वाजी शिशुमतीः अपि इत्य इव) जिस प्रकार एक बलवान् अश्व घोडीके पास जाकर शब्द करता है उसी प्रकार हे (शकुने) पक्षी! तू (सर्वतः न भद्रं आ वद) चारों ओरसे हमारे कल्याण करनेवाले वचन बोल और हे (शकुने) पक्षी! (विश्वतः नः पुण्यं आ वद) चारों ओरसे हमारे लिए पुण्यकारक वचन बोल ॥ २ ॥

[४२९] हे (शकुने) पक्षी (यत्) जब तू (उत्पतन्) ऊपर उठते हुए (कर्करिः यथा) कर्करि बाजेके समान (वदसि) बोलता है, तब (आवदन् त्वं) बोलता हुआ तू (भद्रं आ वद) उत्तम कल्याणकारक वचन ही बोल। (तूष्णीं आसीनः) शान्त बैठे रहनेपर भी तू (नः सुमतिं चिकिद्धि) हमारी उत्तम बुद्धियोंको प्रेरित कर। हम भी (सुवीराः) उत्तम वीर पुत्रों और पौत्रोंसे युक्त होकर (विदथे बृहद् वदेम) यज्ञमें उत्तम रीतिसे गुणगान करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार उद्गाता और ब्रह्मा यज्ञोंमें वेदमंत्रोंको बोलता है, उसी प्रकार, हे उपदेशक! तू उपदेश दे। तू हमारे चारों ओरसे कल्याणकारक और पुण्यकारक वचनोंको बोल ॥ २ ॥

हे परिव्राजक! उन्नति करता हुआ तू हमेशा उत्तम कल्याणकारक वचन बोल और जब शान्त बैठा हो तब भी हमारी उत्तम बुद्धियोंको उत्तम मार्गकी तरफ प्रेरित कर ॥ ३ ॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

द्वितीय मण्डल

सु भा षि त

१ नृणां नृपते अग्ने ! त्वं द्युभिः जायसे— (१) हे मनुष्योंके पालक ज्ञानी ! तू तेजोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है ।

२ अग्ने ! पोत्रं तव— (२) हे ज्ञानी ! सर्वत्र पवित्रता करनेका काम तेरा है ।

३ सतां वृषभः इन्द्रः— (३) यह अग्नि सज्जनोंमें बलवान् नेता होनेके कारण इन्द्र है ।

४ उरुगायः विष्णुः— (३) सर्वव्यापी होनेसे यह अग्नि विष्णु है ।

५ रयिवित् ब्रह्मा— (३) ज्ञानादि ऐश्वर्योंसे युक्त होनेके कारण यह अग्नि ब्रह्मा है ।

६ पुरंध्या सचते— (३) नाना प्रकारकी बुद्धियोंसे युक्त होनेके कारण यह मेधावी है ।

७ धृतव्रतः वरुणः— (४) व्रतोंको धारण करने वाला या नियमोंमें चलनेवाला मनुष्यही वरणीय होता है ।

८ सत्पतिः अर्यमा— (४) सज्जनोंका पालन करने वाला ही श्रेष्ठ आर्य होता है ।

९ विधते सुवीर्यं— (५) जो मनुष्य इस अग्निको धारण करता है, वह बहुत बलशाली होता है ।

१० अरंकृते द्रविणोदाः— (७) जो सेवा करना जानता है वह धन प्राप्त करता है ।

११ आदित्यासः आस्यं— (१३) यह अग्नि आदित्यों - देवोंका मुखरूप है ।

१२ यत् पृक्षः ते अत्र विभुवत् द्यावापृथिव्यौ अनु— (१५) जो भी अन्न इस अग्निमें डाला जाता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें फैल जाता है ।

१३ सुदंससं देवाः बुध्ने एरिरे— (१९) उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको विद्वान् सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं ।

१४ ब्रह्मणा सुवीर्यं जनान् अति चितयेम—(२६) ज्ञानसे उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके हम सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ बन जायें ।

१५ अस्माकं उम्रा दुस्तरं द्युम्नं पंच कृष्टिषु शुशु-चीत— (२६) हमारी श्रेष्ठ और दूसरोंके लिए अप्राप्य संपत्ति सभी मनुष्योंमें अत्यधिक प्रकाशित हो ।

१६ सु वीराः विदथे बृहत् वदेम— (२९) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम यज्ञमें इस अग्निकी उत्तम स्तुति करें ।

१७ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि स्यतु— (३८) सब जगत्को बनानेवाला देव हमें हमारे वंशको आगे चलाने-वाले पुत्रको प्रदान करे ।

१८ अथ देवानां पाथः अपि एतु— (३८) वह हमारा पुत्र देवों या विद्वानोंके द्वारा बताये गये मार्ग पर चले ।

१९ स्वस्य पुष्टिः रण्वा— (४४) अपने शरीरकी स्वस्थता सब मनुष्योंके लिए आनन्ददायक होती है ।

२० चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्— (४५) विचित्र या सुन्दर तेजसे युक्त वृद्ध भी तरुण ही होता है ।

२१ अभ्वं आ पनन्त वर्णं अमिमीत— (४५) इस अग्निकी स्तुति करनेवाले स्तोता इसके तेजसे युक्त होते हैं ।

२२ अस्य ध्रुवा व्रता विद्वान् वया इव अनुरोहते— (५३) इस अग्निके अटल नियमोंमें रहनेवाला विद्वान पेडोंकी शाखाओंकी तरह प्रतिदिन बढता ही रहता है ।

२३ शुचिः प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि— (५३) शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला वह ज्ञानी शुद्ध और पवित्र करनेवाले गुणोंके साथ ही उत्पन्न हुआ है।

२४ वसुपते अस्मत् द्वेषांसि, युयोधि— (६१) हे धनोंके स्वामी ! जो हमसे द्वेष करनेवाले शत्रु हैं, उन्हें तू भगा दे ।

२५ अन्तः ईयते – (६४) यह अग्नि सबके हृदयोंमें विचरता है ।

२६ मित्र्यः इव जन्यः— (६४) वह अग्नि मित्रके समान सबका हितकारी है ।

२७ देवस्य मर्त्यस्य च अरातिः न मा ईशत— (६७) देवोंका शत्रु अर्थात् देवनिन्दक नास्तिक तथा मानवताका शत्रु मनुष्य हम पर शासन न करे ।

२८ त्वया वयं विश्वाः द्विषः अति गाहेमहि— (६८) हे अग्ने ! तुझसे सुरक्षित होकर हम सभी शत्रुओंसे आगे निकल जायें ।

२९ दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयं वसव्यं न क्षीयते— (८२) प्रतिदिन नये उत्साहसे उत्पन्न होनेवाले इस अग्निका दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्य नष्ट नहीं होता ।

३० अग्निः प्रथमः जोहूत्रः पिता इव— (८४) वह अग्नि सबसे श्रेष्ठ, पूज्य और पिताके समान पालक है ।

३१ मानुषः अमानुषं नि जूर्वात्— (९९) प्रजाका हित करनेवाला वीर प्रजाका अहित करनेवालेको मारे ।

३२ विप्राः सपन्तः धियं सनेम— (१०१) हम ज्ञानीजन अपनेसे श्रेष्ठ ज्ञानियोंकी सेवा करते हुए उत्तम बुद्धि प्राप्त करें ।

३३ अवस्यवः प्रशस्तिं धीमहि— (१०१) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हम प्रशंसनीय गुणोंको धारण करें ।

३४ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति – (१०३) एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले और उत्तम रीतिसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर सैनिक आगे चलनेवाले अपने नेताकी हर तरहसे रक्षा करें।

३५ आर्याय ज्योतिः अपावृणोः— (१०७) यह इन्द्र श्रेष्ठ पुरुषके लिए प्रकाशका मार्ग दिखाता है ।

३६ ऊतिभिः आर्येण विश्वाः स्पृधः दस्यून् तरन्तः— (१०८) हम इन्द्रसे रक्षित होकर तथा श्रेष्ठ पुरुषोंकी सहायता प्राप्त करके सभी शत्रुओं और दुष्टोंको जीत जाएं ।

३७ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्— (१११) मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने उत्तम कर्मोंसे देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करता है ।

३८ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः— (१११) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है ।

३९ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः— (११४) जो अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है, वही ऐश्वर्यवान् होता है ।

४० जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते— (११९) वीर लोग भी इस इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं पा सकते ।

४१ यः अच्युतच्युत् सः इन्द्रः— (११९) जो अपने स्थानसे न हटनेवाले वीरको भी हटा देता है, वही इन्द्र या राजा हो सकता है ।

४२ यः शर्धते न अनु ददाति— (१२०) जो मनुष्य अहंकार करता है, उसे यह इन्द्र कुछ भी नहीं देता।

४३ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते— (१२३) द्युलोक और पृथ्वीलोक भी इस इन्द्रकी शक्तिके सामने झुक जाते हैं।

४४ ता प्रथमं अकृणोः, स उक्थ्यः— (१२७) इन्द्रने उन श्रेष्ठ कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय हुआ ।

४५ नरः! यत् कामयाध्वे, इन्द्रे हवन्तः तत् नशथः— (१४६) हे मनुष्यो! तुम जो चाहते हो, उसे इन्द्रको प्रसन्न करके प्राप्त कर लो।

४६ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत— (१४८) यह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है।

४७ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न— (१६३) इस इन्द्रका वेग या गति समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोकी जा सकती।

४८ संबाधात् पुरा नः अभि आ ववृत्स्व—(१६८) हे इन्द्र! हम पर आपत्ति आनेसे पहले ही तू हमारे पास पहुंच जा।

४९ ते सुमतिभिः सु नसीमहि— (१६८) हे इन्द्र! तेरी उत्तम बुद्धियोंसे हम संयुक्त हों।

५० इन्द्रेण मे सख्यं न वि योषत्— (१८६) इन्द्रके साथ मेरी मित्रता न टूटे।

५१ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप— (१८६) हम उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहें। हमपर इन्द्रका वरदहस्त सदा रहे।

५२ ब्रह्मण्यन्तः नरः दिवि ओकः दधे— (१८८) ज्ञानी मनुष्य हमेशा प्रकाशमें रहते हैं।

५३ पस्पृधानेभ्यः नृभ्यः सद्यः अतसाय्यः भूत्— (१९१) युद्ध करनेवाले वीरोंके द्वारा वह तत्काल आश्रय करने योग्य है।

५४ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्— (१९१) दान देनेवाले मनुष्यको वह अप्रतिम धन देता है।

५५ अवस्यवः वयुनानि तक्षुः— (१९५) ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

५६ ब्रह्मण्यन्तः सुक्षितिं इषं ऊर्जं सुम्नं अश्युः— (१९५) ब्रह्मज्ञानी उत्तम निवास, अन्न, बल और सुख प्राप्त करते हैं।

५७ विपन्यवः मनीषा दीध्यतः— (१९७) ज्ञानी बुद्धिको धारण करते हैं।

५८ सुम्नं इयक्षतः— (१९७) अपना मन उत्तम हो ऐसा चाहते हैं।

५९ सः नरां पाता— (१९९) वह इन्द्र मनुष्योंका रक्षक है।

×

६० अर्णसातौ इन्द्राय देवेभिः सत्रा तवसं अनुदायि— (२०४) युद्धमें इन्द्रके लिए देवोंने संघटित होकर सामर्थ्य प्रदान किया।

६१ भगः नः मा अति धक्— (२०५) ऐश्वर्य हमारा त्याग न करे।

६२ उशिजः अप्तुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे— (२१०) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान् यज्ञके द्वारा योग्य मार्ग का पता लगाते हैं।

६३ श्रेष्ठानि द्रविणानि, दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं, वाचः स्वाद्मानं अह्नां सुदिनत्वं देहि— (२११) हे इन्द्र! तू हमें श्रेष्ठ धन, बलका विचार, सौभाग्य, ऐश्वर्यकी वृद्धि, शरीरोंकी नीरोगता, वाणीमें मिठास और उत्तम दिन प्रदान कर।

६४ स महि कर्म कर्तवे ममाद्— (२१२) उस सोमने बडा काम करनेके लिए उस इन्द्रको उत्साहित किया।

६५ क्रतुना साकं जातः— (२१४) वह इन्द्र उत्तम कर्तृत्वशक्तिसे युक्त होकर जन्मा था।

६६ वीर्यैः साकं वृद्धः— (२१४) मनुष्य पराक्रमसे बढता है।

६७ प्रचेतसः देवाः ते यज्ञियं भागं आनशुः— (२१७) बुद्धिशाली ज्ञानीजन बृहस्पतिके यज्ञीय भागके अधिकारी होते हैं।

६८ विश्वेषां ब्रह्मणां इत् जनिता असि— (२१७) वाणीका स्वामी अर्थात् ज्ञानी सर्वत्र ज्ञानका प्रसार करता है।

६९ बृहस्पते यः तुभ्यं दाशात्, जनं सु-नीतिभिः नयसि त्रायसे— (२१९) हे बृहस्पते अर्थात् ज्ञानी! जो तुम्हें धन आदि देता है, उसे तुम उत्तम मार्गोंसे ले जाकर उसकी रक्षा करते हो। ज्ञानीकी हर तरहसे सहायता करनी चाहिए।

७० तं अंहः न अश्नवत्— (२१९) ऐसे मनुष्यको पाप कभी नहीं खाता।

७१ ब्रह्मद्विषः तपनः मन्यु-मीः असि— (२१९) यह बृहस्पति ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको दुःख देता है, और शत्रुके क्रोधको नष्ट करनेवाला है।

७२ ब्रह्मणस्पते ! सुगोपा यं रक्षसि, अस्मात् इत् दिश्वाः ध्वरसः वि बाधसे— (२२०) हे ब्रह्मणस्पते ! उत्तम पालन करनेवाले तुम जिसकी रक्षा करते हो, उसे सभी हिंसकोंसे दूर ही रखते हो।

७३ तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः न, द्वयाविनः न तितिरुः— (२२०) ब्रह्मणस्पतिसे सुरक्षित मनुष्यको पाप, बुरे कर्म और शत्रु भी कहीं हिंसा नहीं कर सकते और न ठग ही उसे ठग सकते हैं।

७४ बृहस्पते ! त्वं नः गोपाः पथिकृत्— (२२१) हे बृहस्पते ! तुम हमारे रक्षक तथा हमारे लिए उत्तम मार्गके बनानेवाले हो।

७५ यः नः ह्वरः अभि दधे, तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु— (२२१) जो हम ज्ञानियों के प्रति कुटिलता धारण करता है, वह अपनी कुटिल बुद्धिसे मारा जाए।

७६ बृहस्पते ! अरातीवा मर्तः स-अनुकः, अन्-आगसः नः मर्चयात्, तं पथः अपवर्तय— (२२२) हे बृहस्पते ! शत्रु मनुष्य या क्रोधित भेडियेके समान क्रूर मनुष्य निष्पाप रहनेवाले हमको पीडित करे, तो उसे हमारे मार्गसे दूर कर।

७७ अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि (२२२) इस देवत्व की प्राप्तिके लिए हमारे मार्गको सुगम बना।

७८ तनूनां त्रातारं अधिवक्तारं अस्मयुं त्वा हवामहे — (२२३) हमारे शरीरोंके रक्षक, सबसे ऊपर रहकर बोलनेवाले, हमारी सहायता करनेवाले तुझको हम अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

७९ देवनिदः नि बर्हय— (२२३ देवनिन्दकोंका नाश करना चाहिए।

८० दुरेवाः उत्तरं सुम्नं मा, उत् नशन्— (२२३) दुष्ट शत्रु उत्तम सुखको न प्राप्त हों, अपितु वे नष्ट हो जायें।

८१ स्पार्हा वसु वयं मनुष्या आददीमहि— (२२४) स्पृहणीय धन हम मनुष्योंका हित करनेके लिए ग्रहण करें।

८२ याः दूरे याः तळितः अरातयः सन्ति, ताः अन्-अप्नसः जम्भय — (२२४) जो शत्रु हमारे पास हों, या दूर हों, उन कर्महीन शत्रुओंको तुम नष्ट करो। काम न करनेवाले-कर्महीन मनुष्य राष्ट्रके शत्रु हैं, ऐसे शत्रुओंको नष्ट करना चाहिए।

८३ दुःशसः अभि-दिप्सुः नः मा ईशत— (२२५) अपकीर्तिवाला अर्थात् बदनाम और हमें दबाकर रखनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य हमारा स्वामी न हो।

८४ मतिभिः प्र तारिषीमहि— (२२५) हम अपनी उत्तम बुद्धियोंसे हर तरहके संकटोंसे पार हो जायें।

८५ यः अदेवेन मनसा रिषण्यति, उग्रः मन्यमानः शासां जिघांसति, तस्य वधः नः मा प्रणक्— (२२६) जो आसुरी मनसे युक्त होकर हमें दुःख देना चाहता है, जो अपनेको बहुत बडा मानता हुआ स्तोताओंको मारना चाहता है, उसके शस्त्र हम पर आकर न गिरें।

८६ दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि कर्म (२२६) दुष्ट मार्गसे चलनेवाले बलशालीके क्रोधको हम निकम्मा करते हैं।

८७ दृष्टवीर्यं त्वा ये निदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तपः— (२२९) पराक्रमको स्पष्ट देखनेके बावजूद भी जो नास्तिक ईश्वरकी निन्दा करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

८८ ये अभिद्रुहः पदे निरामिणः हृदि देवानां व्रयः वि आ ओहते साम्नः परः न विदुः स्तेनेभ्यः नः माः — (२३१) जो दूसरेसे द्रोह करनेमें ही आनन्द मानते हैं, हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं तथा मधुरवाणी बोलकर दूसरोंको ठगा करते हैं, ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो।

८९ देवाः यत् अवन्ति, तत् विश्वं भद्रं— (२३१) देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सब तरहसे कल्याण होता है।

९० देवानां देवतमाय तत् कर्त्वम्— (२३७) देवोंमें सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पतिका पराक्रम प्रशंसनीय है।

९१ सः अरणः नकिः— (२४१) छलकपट करनेवाला मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता

९२ सः पुरोहितः ब्रह्मणस्पतिः युधि सं नयः वि नयः— (२४३) देवोंका पुरोहित ब्रह्मणस्पति युद्धमें अपनी सेनाका संघटन और शत्रुसेनाका विघटन करता है। राष्ट्रके पुरोहितमें युद्ध संचालनकी क्षमता होनी चाहिए।

९३ यत् चाक्मः वाजं भरते आत् इत् सूर्यः वृथा तपाति— (२४३) जब सर्वद्रष्टा ब्रह्मणस्पति शक्ति भरता है, तभी सूर्य बिना परिश्रमके प्रकाशित होता है।

९४ रण्वः ब्रह्मणस्पतिः अवरे वृजने महां शवसा ववक्षिथ, स देवः देवान् प्रति पप्रथे— (२४१) आनन्द प्रदान करनेवाला ब्रह्मणस्पति छोटे युद्धमें भी अपने बलको प्रकाशित करता है, इसीलिए वह देवोंमें अत्यधिक महान् है।

९५ सभेयः विप्रः धना भरते— (२४७) सभामें बैठनेकी योग्यतावाला ज्ञानी धनोंको प्राप्त करता है।

९६ वीळुद्वेषा वशा ऋणं आददिः— (२४७) बलवान् शत्रुओंसे द्वेष करनेवाला ब्रह्मणस्पति हमें मातृऋणसे उऋण करे।

९७ यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते सः वनुष्यतः वनवत्, जातेन जातं अति प्रसर्सृते— (२५१) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपना मित्र बना लेता है, वह हिंसकोंको मारता है और अपने उत्पन्न हुए पुत्रसे होनेवाले पौत्रद्वारा वह बहुत विशाल होता है।

९८ यं यं ब्रह्मणस्पतिः युजं कृणुते, त्मना बोधति. तस्य तोकं तनयं च वर्धते— (२५२) जिस जिसको ब्रह्मणस्पति मित्र बना लेता है. वह स्वयं अपने प्रयत्नोंसे ज्ञान प्राप्त करता है और उसके पुत्र और पौत्र बढते हैं।

९९ शिमीवान् ओजसा ऋघायतः अभिवष्टि— (२५३) कर्मशील वीर अपने बलसे हिंसक शत्रुओंको चारों ओरसे मार देता है

१०० अग्नेः प्रसितिः इव अह न वर्तवे— (२५३) अग्निकी ज्वालाके समान वह किसीसे नहीं रोका जा सकता।

१०१ तस्मै असश्चतः दिव्याः अर्षन्ति— (२५४) ब्रह्मणस्पतिके मित्रको बिना रुकावटके दैवी शक्तियां प्राप्त होती हैं।

१०२ ऋजुः शंस इत् वनुष्यतः वनवत् —(२५६) सीधा और सरल स्तोता ही हिंसकोंको मारता है।

१०३ देवयन् इत् अदेवयन्तं अभि असत्— (२५६) देवका पूजक ही देवकी पूजा न करनेवालेको मारता है।

१०४ यज्वा इत् अयज्योः भोजनं वि भजाति— (२५६) यज्ञ करनेवाला ही यज्ञ न करनेवालेके भोग-साधनका उपभोग करता है।

१०५ वृत्रतूर्ये भद्रं मनः कृणुष्वः - (२५७) संग्राममें मनको सदा कल्याणकारी विचारोंसे ही युक्त करना चाहिए।

१०६ इमाः गिरः घृतस्नू— (२६०) ये वाणियां स्नेह और तेजसे भरी होनी चाहिए।

१०७ भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति— (२६२) देवगण अनेकों आंखोंसे युक्त होनेके कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं।

१०८ राजभ्यः सर्वं परमा चिद् अन्ति— (२६२) इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी चीजें दूर होती हुई भी पास हैं।

१०९ भये मयोभु अवसः विद्याम्— (२६४) भयके प्राप्त होने पर इन देवोंके सुखकारक संरक्षणको मैं प्राप्त करूं।

११० प्रणीतौ दुरितानि परि वृज्यां— (२६४) उत्तम मार्ग पर चलते हुए मैं पापोंको छोड दूं।

१११ वः पन्थाः अनृक्षरः सुगः साधुः अस्ति— (२६५) देवोंका मार्ग कांटोंसे रहित, आसानीसे जाने योग्य और उत्तम है।

११२ एषां विदथे अन्तः व्रता— (२६७) देवगणे इन लोकोंमें नियमोंका संचालन करते हैं।

११३ वः महित्वं ऋतेन महि— (२६७) इन देवोंकी महिमा सत्य और सरलताके कारण ही बडी है।

११४ ये च देवाः ये च मर्ताः विश्वेषां राजा— (२६९) जो देव और मनुष्य हैं, उन सभीका यह वरुण देव राजा है।

११५ विचक्षे सुधितानि आयूंषि अश्याम— (२६९) संसारको अच्छी तरह देखनेके लिए अमृतके समान आयुको प्राप्त करें।

११६ पाक्या धीर्या चित् युष्मानीतः अभयं ज्योतिः अश्याम— (२७०) अपरिपक्व बुद्धिवाला तथा शक्तिहीन होने पर भी मैं आपके द्वारा बताये मार्ग पर भय-रहित ज्योति प्राप्त करूं।

११७ यः राजभ्यः ऋतनिभ्यः ददाश, पुष्टयः वर्धयन्ति— (२७१) जो मनुष्य तेजस्वी यज्ञ करनेवालोंको दान देता है, उसे सभी पुष्टिकारक पदार्थ बढाते हैं।

११८ वसुदावा विदथेषु प्रथमः याति— (२७१) धनका दान करनेवाला मनुष्य सभी तरहके कर्मोंमें सबसे आगे रहता है।

११९ यः आदित्यानां प्रणीतौ भवति, शुचिः अदब्धः वृद्धवयाः अप क्षेति— (२७२) जो देवोंके बताये गए मार्ग पर चलता है, वह पवित्र, अहिंसनीय और दीर्घायुयुक्त होकर कर्म करता है।

१२० तं दूरात् अन्तितः नकिः घ्नन्ति— (२७२) उस उत्तम कर्म करनेवालेको पाससे या दूरसे कोई नहीं मार सकता।

१२१ यत् वयं वः काच्चित् आगः चकृम, मृळ— (२७३) यदि हम तुम्हारे प्रति कोई अपराध कर भी दें, तो भी हे देवो ! तुम हमें सुखी करो।

१२२ उरु अभयं ज्योतिः अश्याम— (२७३) मैं विस्तृत और भयसे रहित ज्योति प्राप्त करूं।

१२३ दीर्घाः तमिस्राः नः मा अभिनशन्— (२७३) दीर्घ अन्धकार हमें कभी व्याप्त न करें।

१२४ पृत्सु आजयन् उभा क्षयौ याति— (२७४) वीर पुरुष युद्धोंमें शत्रुओंको जीतकर इहलोक और परलोक दोनोंको प्राप्त करता है।

१२५ अस्मै उभौ साधू भवतः— (२७५) इस पुरुषके लिए दोनों चराचरात्मक जगत् उपकारक होते हैं।

१२६ मायाः पाशाः अभिद्रुहे रिपवे विचृत्ताः— (२७५) इन देवोंकी माया और फांसे द्रोह करनेवाले शत्रुओं पर ही फैले रहते हैं।

१२७ अहं भूरिदाव्नः शूनं मा आ विदं— (२७६) मैं बहुत दान देनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यकी वृद्धिकी निन्दा न करूं।

१२८ सुयमात् रायः मा अवस्थाम्— (२७६) उत्तम धन पाकर मैं दूसरोंके ऊपर न होऊं अर्थात् अपने धन पर अभिमान करता हुआ मैं दूसरोंको नीचा न समझूं।

१२९ सु आध्यः तव व्रते सुभगासः स्याम— (२७८) उत्तम स्वाध्याय करनेवाले हम देवोंके नियममें रहकर उत्तम भाग्यवाले हों।

१३० मत् आगः रशनां इव श्रथय— (२८१) हे वरुण ! मेरे पापोंको रस्सीके समान मुझसे शिथिल कर।

१३१ ऋतस्य ते खां ऋध्याम— (२८१) ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्गपर चलनेवाले वरुणसे हम इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्राप्त करें।

१३२ धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि— (२८१) कामका ताना बाना बुनते हुए मेरे प्राणोंको बीचमें ही न तोड़।

१३३ अपसः पुरा मात्रा मा शारि— (२८१) काम पूर्ण होनेसे पहले ही मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर।

१३४ वरुण ! ये ते इष्टौ एनः कृण्वन्तं श्रीणन्ति, वधैः न मा— (२८३) हे वरुण ! जो शस्त्र तेरे यज्ञमें पाप करनेवालेको मारते हैं, उन शस्त्रोंसे हमें न मार।

१३५ ज्योतिषः प्रवसथानि मा गन्म— (२८३) हम प्रकाशसे दूर न जायें।

१३६ मत्कृतानि ऋणा परा सावीः— (२८५) मेरे द्वारा किए गए ऋणोंको दूर कर।

१३७ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्— (२८५) मैं दूसरेके द्वारा कमाये गए धनसे भोग न करूं।

१३८ देवाः ! यूयं इत् आपयः स्थ— (२९१) हे देवो ! तुम्हीं हमारे भाई हो।

१३९ युष्मावत्सु आपिषु मा श्रमिष्म— (२९१) हे देवो ! तुम जैसे भाईयोंकी सेवा करते हुए हम कभी न थकें।

१४० तोकस्य तनयस्य सातौ अस्मान् अर्धं कृणुत— (२९९) पुत्र और पौत्रोंका पालन करनेके लिए हम समृद्धियुक्त हों।

१४१ अनुधूपितासः हत्वी तेषां वसूनि नः आभर— (३०४) हे देव ! जो घमण्डी हैं और अपनी झूठी प्रशंसा करते हैं, उन्हें मारकर उनके धन हमें प्रदान कर।

१४२ एता उत् यता वह्मि— (३१२) उन्नतिकी ओर ले जानेवाले उत्तम कर्म मैं करना चाहता हूँ।

१४३ आयवः नव्यसे सं अतक्षन्— (३१२) मनुष्य यश प्राप्त करनेके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

१४४ श्रवस्यवः रथ्यः सतिः न धीतिं अश्याः— (३१२) यशप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य रथमें जुडे हुए घोडेकी तरह सदा उत्तम काम करनेमें ही व्यस्त रहें।

१४५ ऋतायतः सिषासतः आयुः प्रतरं— (३१३) सत्य मार्गपर चलनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवालेकी आयु दीर्घ होती है।

१४६ त्वा दत्तेभिः शंतमेभिः भेषजेभिः शतं हिमाः अशीय— (३२२) हे रुद्र ! तेरे द्वारा दिए गए सुखकारक ओषधियोंसे मैं सौ वर्ष तक सुकर्म करने योग्य होऊं।

१४७ अस्मत् द्वेषः अंहः विषूचीः अमीवा चातयस्व— (३२२) हे रुद्र ! हमसे द्वेष, पाप तथा सब शरीरमें व्याप्त होनेवाले रोगोंको दूर कर।

१४८ श्रिया जातस्य श्रेष्ठः असि— (३२३) रुद्र अपने ऐश्वर्यके कारण ही उत्पन्न हुए प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ है।

१४९ त्वा नमोभिः दुस्तुती मा चुक्रुधाम—(३२४) हे रुद्र ! हम तुझे झूठे नमस्कार करके तथा बुरी स्तुतियोंसे कभी भी क्रोधित न करें।

१५० भिषजां भिषक्तमः— (३२४) यह रुद्र ! सभी वैद्योंमें उत्तम वैद्य है।

१५१ ऋदूदरः अस्यै मनाय नः मा रीरधत्— (३२५) कोमल हृदयवाला यह रुद्र ईर्ष्याके हाथोंमें हमें न सौंपकर हमारी हिंसा न करे।

१५२ भेषजः जलाषः मृळयाकुः हस्तः— (३२७) रुद्रका हाथ रोग दूर करनेवाला, जीवन देनेवाला तथा सुख देनेवाला है।

१५३ दैव्यस्य रपसः अपभर्ता— (३२७) दैवी आपत्तियोंको यह रुद्र दूर करनेवाला है।

१५४ अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात् असुर्यं न योषत्— (३२९) इस भुवनका पालन करनेवाले सबके शासक रुद्रसे असुरोंका विनाशक बल कभी अलग नहीं होता।

१५५ अर्हन् इदं विश्वं अभ्वं दयसे— (३३०) यह श्रेष्ठ रुद्र सारे संसार पर दया करता है।

१५६ त्वत् ओजीयः न अस्ति— (३३०) इस रुद्रसे अधिक तेजस्वी और कोई नहीं है।

१५७ त्वेषस्य मही दुर्मतिः परि गात्— (३३४) उस तेजस्वी रुद्रको क्रोधित करनेवाली बुद्धि हमें छोडकर दूर चली जाए।

१५८ असुर्यस्य महा विश्वानि भुवना जजान— (३५२) देवने असुरोंको नष्ट करनेवाली अपनी शक्तिकी महिमासे सभी लोकोंको पैदा किया।

१५९ सः अप्सु अनिध्मः दीदाय— (३५४) वही ईश्वर जलोंमें बिना ईंधनके भी प्रदीप्त हो रहा है।

१६० मघवद्भ्यः सुवृक्तिं अयांसं— (३६५) ऐश्वर्यशालियोंसे मैं उत्तम व्यवहार करूं।

१६१ यः नाम ददिः स इत् हव्यः— (३७३) जो धन देनेमें उदार है, उसीकी प्रार्थना करनी चाहिए।

१६२ स्यः देवः सविता सवाय शश्वत्तमं अस्थात्— (३७८) वह तेजस्वी सवितादेव-सूर्यदेव प्रत्येकको कर्मकी तरफ प्रेरित करनेके लिए प्रतिदिन उदय होता है।

१६३ पृथुपाणिः देवः विश्वस्य श्रुष्टये बाहवा प्र सिसर्ति— (३७९) बडे बडे हाथों अर्थात् किरणोंवाला यह तेजस्वी सूर्य सारे संसारके सुखके लिए अपनी किरणरूपी हाथोंको प्रसारित करता है।

१६४ निमृग्राः आपः चित् अस्य व्रते आ- (३७९) पवित्र करनेवाले जल भी इस सूर्यके आदेशानुसार चलते हैं।

१६५ यस्य व्रतं इन्द्रः वरुणः अर्यमा रुद्रः अरातयः न मिनन्ति— (३८६) इस सवितादेवके नियमको इन्द्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र और शत्रु भी नहीं तोड सकते।

१६६ वामस्य रयीणां आये देवस्य प्रियाः स्यमा— (३८७) सुन्दर धनको प्राप्त करके भी हम देवोंके प्रिय बने रहें।

१६७ जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ— (३९७) सोम और पूषा ये दोनों देव उत्पन्न होते ही सभी भुवनोंके पालक एवं रक्षक बनाये गए।

१६८ देवाः अमृतस्य नाभिं अकृण्वन्— (३९७) देवोंने सोम और पूषाको अमृतका केन्द्र बनाया।

१६९ ता अनवह्वरं सचेते— (४०८) सोम और पूषा ये दोनों देव कुटिलतासे रहित उपासकके पास जाते हैं।

१७० इन्द्रः नः मृळयाति, नः अघं न नशत्, पुरः नः भद्रं भवाति— (४१३) यदि इन्द्र हमें सुखी करे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, तथा सदा कल्याण प्राप्त हो सकता है।

१७१ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्— (४१४) इन्द्र हमें सभी दिशाओंसे भय रहित करे।

१७२ अम्ब सरस्वति! अप्रशस्ता इमसि, नः प्रशस्तिं कृधि— (४१८) हे माता सरस्वती! हम निन्दनीय हैं, अतः तू हमें प्रशंसाके योग्य कर।

१७३ देव्यां विश्वा आयूंषि श्रिता— (४१९) इस देवी सरस्वतीमें सभी आयु आश्रित हैं।

१७४ जनुषं प्रब्रुवन्तः वाचं इयर्ति— (४२४) परिव्राजक विद्वान् मनुष्योंको उपदेश करता हुआ सर्वत्र वेदवाणीका प्रचार करता है।

१७५ सुमंगलः भद्रवादी इह वद— (४२५) कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही इस सभामें उपदेश करे।

१७६ शकुने! सर्वतः नः भद्रं पुण्यं आ वद— (४२८) हे परिव्राजक विद्वान्! तू चारों ओरसे हमारा कल्याण करनेवाले तथा पुण्य देनेवाले वचन कह। हमें ऐसा उपदेश दे कि हम अपना कल्याण करके पुण्य प्राप्त कर सकें।

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

द्वितीय मण्डल

द्वितीय मंडलमें कुल ४३ सूक्त हैं। इन सूक्तोंमें ४२९ मंत्र हैं। इन मंत्रोंमें सर्वाधिक मंत्र इन्द्र देवताके हैं और ऋषियोंमें सबसे ज्यादा मंत्र गृत्समदगोत्रीय भृगुपुत्र शौनकके हैं। द्वितीयमंडलके ऋषि, सूक्त, मंत्र और देवताओंकी संख्या इस प्रकार है—

ऋषिवार सूक्तसंख्या

ऋषि	सूक्तसंख्या
१ गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गवः शौनकः	३६
२ सोमाहुतिर्भार्गवः	४
३ कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा	३
	४३

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
१ गृत्समदो भार्गवः शौनहोत्रः	३६३
२ कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा	३५
३ सोमाहुतिर्भार्गवः	३१
	४२९

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	१३६
२ अग्निः	७८
३ ब्रह्मणस्पतिः	२८
४ विश्वेदेवाः	१७
५ आदित्याः	१७
६ बृहस्पतिः	१६
७ मरुत्	१६
८ रुद्रः	१५
९ अपांनपात्	१५
१० ऋतवः	१२
११ सविता	११
१२ अश्विनौ	११
१३ आप्रीसूक्त	११
१४ वरुणः	११
१५ सोमापूषणौ	६
१६ शकुन्तः	६
१७ सरस्वती	४
१८ द्यावापृथिवी	४
१९ सिनीवाली	३
२० मित्रावरुणौ	३
२१ इन्द्रस्त्वष्टा	२
२२ राका	२
२३ वायुः	२
२४ इन्द्रवायू	१
२५ इन्द्राब्रह्मणस्पतिः	१
२६ इन्द्रासोमौ	१
	४२९

ऋग्वेदमें "ऐसा करो, ऐसा न करो" आदि विध्यात्मक और निषेधात्मक वाक्य नहीं हैं। ऋग्वैदिक ऋषियोंने लोगोंके सामने देवताओंका आदर्श प्रस्तुत किया है, वह भी इसी दृष्टिसे कि मनुष्य इन देवताओंके आदर्श पर चलें और स्वयं भी देवोंके समान बनकर अन्योंके लिए आदर्शरूप बनें। इस प्रकार आदर्शात्मक रीतिसे ऋग्वेद मनुष्योंको उत्तम मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा देता है। ऋषियोंकी यह रीति मनुष्योंकी अन्तःप्रेरणा पर अवलम्बित है। विधि या निषेधमें एक प्रकारकी जो जबर्दस्ती है, वह ऋषियोंकी रीतिमें नहीं हैं। यहां तो स्वेच्छा पर निर्भर है। जो स्वेच्छया इन देवोंके गुणकर्मोंको अपनायेगा, जो इनके बताये मार्ग पर अपनी अन्तःप्रेरणासे चलेगा, वह देववत् ही होगा। इसीलिए ऋषियोंने सर्वत्र देवोंके गुणोंका ही वर्णन किया है।

नेताके गुण

मनुष्योंमें जिस प्रकार नेता सबसे आगे रहता है, उसी प्रकार अग्नि देवोंमें सबसे अग्रणी रहता है। अग्रणी होनेके नाते ही वह अग्नि है। अग्निके द्वारा ऋग्वेदने नेताके गुणोंका वर्णन किया है। जो इस प्रकार है—

१ नृणां नृपतिः— (१) वह अग्नि मनुष्योंका स्वामी है। अग्नि प्राणके रूपमें सभी प्राणियोंमें वास कर रहा है, प्राण होनेके नाते ही भूत प्राणी कहाते हैं। इसीलिए प्राणको सबका स्वामी कहा गया है। प्राणके रहने तक ही मनुष्यके सब क्रियाकलाप चलते हैं। प्राणके अभावमें सभी कुछ निस्सार है। इसी तरह किसी राष्ट्रके नेता उस राष्ट्रके प्राणरूप होते हैं। उत्तम नेताके कारण ही राष्ट्र और जागृत रहता है। उत्तम नेताके अभावमें राष्ट्र मृतवत् हो जाता है। वह नेता भी—

२ द्युभिः जायसे (ते) (१) तेजोंसे उत्पन्न हुआ हो। अरणिमें गुप्त अग्नि मथे जाने पर जब अपनी ज्वालाओंके द्वारा अपने तेजको फैलाकर प्रकट होती है तभी मनुष्य कहते हैं कि अग्नि उत्पन्न हुई। अरणिमें निहित अग्नि सबके लिए "दाभ्य" दबाये जाने लायक है, पर उत्पन्न होकर वही "अ-दाभ्य" न दबने योग्य हो जाती है। इसी तरह जब तक मनुष्य अपने तेजोंको नहीं फैलाता, तबतक वह प्रकाशमें नहीं आता, और ऐसे मनुष्यको हर कोई आसानीसे दबा लेता है, पर जब वही मनुष्य तेजस्वी बनकर अपने तेजोंको प्रकट करने लगता है, तब वह "अ-दाभ्य" बन जाता है। कोई भी शत्रु उसे अपने वशमें नहीं कर पाता। इसलिए नेताको तेजस्वी होना चाहिए।

३ पोत्रं तव— (२) अग्रणीका काम राष्ट्रमें पवित्रता रखनेका भी है। घरमें यदि अग्नि रोज जला करे, और उसमें उत्तम उत्तम पदार्थोंका होम हो, तो उस घरका वातावरण, हवा आदि पदार्थ पवित्र हो जाते हैं। इसी प्रकार अग्रणी या नेता भी अपने राष्ट्रमें सर्वत्र पवित्रता करनेवाला हो। वह इस बातकी देखभाल करे कि राष्ट्रमें कहीं भी कूडा कचरा न हो। राष्ट्रभरमें उत्तम वातावरण और उत्तम वायुमण्डल रहे, ताकि प्रजाका स्वास्थ्य उत्तम रहे। इस प्रकार नेताका काम पवित्रता करना भी है।

४ सतां वृषभः इन्द्रः— (३) अग्रणी नेता सज्जनोंकी कामनाओंका पूरक है तथा स्वयं भी ऐश्वर्यवान् है। नेता इस बातमें सदा दक्ष रहे कि राष्ट्रके सत्पुरुष सुरक्षामें रहें, दुष्ट उन्हें सताने न पायें। सत्पुरुषोंकी हर इच्छा पूर्ण होवे, ताकि राष्ट्रमें सर्वत्र सज्जनोंकी संख्या अधिक हो। एक नेता सत्पुरुषोंकी इच्छा तभी पूरी कर सकता है, जब कि वह स्वयं ऐश्वर्यवान् हो। इसलिए नेता प्रथम स्वयं ऐश्वर्यवान् बने फिर दुष्टोंका दमन करके सत्पुरुषोंकी रक्षा करे और उन्हें ऐश्वर्यसे सम्पन्न करे। तभी वह अग्रणी उरुगायः (३) सर्वत्र प्रशंसित होता है। ऐसे नेताकी सभी लोग प्रशंसा करेंगे, इसमें सन्देह क्या ?

ऐसा नेता पुरंध्या सचते (४) उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है। नेताको उत्तम बुद्धिसे युक्त होना चाहिए। उसकी बुद्धि संकटके समयमें भी डगमगानेवाली न हो, ऐसी बुद्धिके बलपर ही यह नेता पुरं-धी (पुरं धीयते धार्यते यया) नगर या राष्ट्रको धारण कर सकता है। राष्ट्रको शक्तिशाली बना सकता है।

५ धृतव्रतः वरुणः— (४) व्रतोंको अर्थात् नियमोंको धारण करनेके कारण ही मनुष्य वरुण अर्थात् वरणीय या पूजनीय हो सकता है। राष्ट्रका नेता नियमोंके अनुसार चलनेवाला हो, वह स्वयं अनुशासनबद्ध हो और प्रजाओंको भी अनुशासनबद्ध करे। वह सदा सावधान रहे कि उसके द्वारा किसी नियमका उल्लंघन न हो, नहीं तो प्रजा भी उसका अनुकरण करेगी और राष्ट्रमें सर्वत्र अनुशासनहीनता का साम्राज्य छा जाएगा। अतः नेता धृतव्रत हो। क्योंकि—

६ सुदंससं देवाः बुध्ने परिरे— (१९) ऐसे उत्तम कर्म करनेवाले नेताको राष्ट्रके विद्वान् मनुष्य सबसे श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करते हैं। ऐसे उत्तम मनुष्यको ही विद्वान् जन राष्ट्रका राजा या शासक बनाते हैं। राजाकी नियुक्ति गुणोंके आधार पर हो, वंशके आधार पर राजाकी नियुक्ति न हो, तथा कोई मनुष्य राजा होने योग्य है या नहीं, इसकी परीक्षा विद्वान् ब्राह्मणजन ही करें। इस प्रकार राष्ट्रका शासन वस्तुतः विद्वान् ब्राह्मणोंके हाथोंमें हो, राजा भी इन ब्राह्मणोंकी आज्ञामें रहकर राष्ट्रका शासनसूत्र चलाये। इस मंत्रभागमें प्रजातंत्रात्मक शासनकी तरफ संकेत किया गया है। ऐसे प्रजातंत्रमें भी मत देनेका अधिकार उन्हींको हो, जो विद्वान् हों और गुणोंको पहचाननेवाले हों। आयुके आधारपर मतदानकी प्रणाली न हो। ऐसा होनेपर उत्तम कर्म करनेवाला ही राजा बन सकेगा और राष्ट्रकी उन्नति और समृद्धि हो सकेगी।

ज्ञानका महत्त्व

१ ब्रह्मणा सुवीर्यं जनान् अति चितयेम— (२६) हम अपने उत्कृष्ट ज्ञानसे लोगोंसे श्रेष्ठ बनें। ज्ञानसे उच्चता प्राप्त करना दैवी सम्पत्ति है और बलसे श्रेष्ठता प्राप्त करना आसुरी सम्पत्ति है। दैवी सम्पत्ति शाश्वत उन्नतिका कारण है और आसुरी सम्पत्ति क्षणिक उन्नति पर शाश्वत विनाशका कारण है, इसलिए वेद हमें ज्ञान या दैवी सम्पत्तिके द्वारा ही उन्नति करनेका उपदेश देता है।

२ अस्माकं उच्चा दुस्तरं द्युम्नं पंचकृष्टिषु शुशुचीत— (२६) हमारा ऊंचा या उन्नत ऐश्वर्य अजेय होकर सभी मनुष्योंमें प्रकाशित हो। ज्ञानके द्वारा प्राप्त किया गया ऐश्वर्य अजेय होता है, उसे कोई जीत नहीं सकता, उसे चुरा या छीन नहीं सकता और उस ज्ञानकी सभी मनुष्योंमें प्रशंसा होती है।

३ शुचि प्रशास्ता शुचिना क्रतुना साकं अजनि— (५३) शुद्ध और उत्तमतासे शासन करनेवाला यह ज्ञानी शुद्ध और पवित्र करनेवाले ज्ञानके साथ ही उत्पन्न हुआ है। ज्ञान मन और बुद्धिको शुद्ध और पवित्र करके ज्ञानीको भी शुद्ध बनाता है। ज्ञानसे मन शुद्ध होता है, मनकी शुद्धतासे बुद्धि शुद्ध होती है और शुद्ध बुद्धिसे किए गए काम भी शुद्ध और पवित्र होते हैं।

×

शरीरका स्वास्थ्य

१ स्वस्य पुष्टिः रण्वा— (४४) अपने शरीरकी स्वस्थता सभी मनुष्योंके लिए आनन्ददायक होती है। मनुष्य स्वस्थ हो, तो उसे सारा जग आनन्दमय दीखता है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मन रहता है।

२ चित्रेण भासा जुजुर्वान् मुहुः युवा भूत्— (४५) उत्तम तेजसे युक्त मनुष्य वृद्ध होने पर भी तरुणके समान दीखता है। स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मनसे युक्त मनुष्यके पास बुढापा शीघ्र नहीं आता। ऐसा मनुष्य वृद्धावस्थामें भी तरुणके समान तेजस्वी और कार्य करनेमें उत्साही होता है। उसके चेहरे पर तरुणों जैसा तेज होता है। ऐसा वृद्ध मनुष्य भी अपने पुत्रपौत्रोंके बीचमें रहकर गृहस्थाश्रमका आनन्द भोगता है।

३ सुवीराः विदथे बृहत् वदेम— (२९) हम सब उत्तम वीरपुत्रोंसे युक्त होकर हर पवित्र कार्यमें देवोंकी प्रशंसाका गान करें। जीवनका सच्चा सुख देवोंका गुण गानेमें है। जो मनुष्य सदा देवोंका गुणगान करता रहेगा, उसका मन भी सदा देवोंमें रमे रहनेके कारण दैवी मन बन जाएगा। उसका मन भी दिव्य हो जाएगा, मनके दिव्य होते ही उसकी इन्द्रियां भी दिव्य हो जाएंगी, इस प्रकार उसका सारा जीवन ही दिव्य हो जाएगा।

पुत्र कैसा हो ?

१ त्वष्टा अस्मे नाभिं प्रजां वि ष्यतु— (३८) सब जगत्को बनानेवाला देव हमें हमारे वंशको आगे चलानेवाला पुत्र प्रदान करे। सब जगत्का निर्माण करनेवाला प्रभु हमें ऐसा पुत्र प्रदान करे कि जिससे हमारा कुल चमके। हजार मूर्खपुत्रोंकी अपेक्षा एक ही गुणवान् और ज्ञानवान् पुत्र बेहतर है। सौ पुत्रोंके होने पर भी यदि वे सब निकम्मे निकल जायें, तो कुल डूब जाता है, पर गुणी और ज्ञानी एक ही पुत्र हो, तो उस इकलौते पुत्रसे भी कुलका उद्धार हो जाता है। सगरकुलका उद्धार उसके साठ हजार पुत्र भी नहीं कर सके, पर अकेले भगीरथने सगरकुलको अमर कर दिया। इसीलिए भगवान्से केवल एक ही कुलोद्धारक, ज्ञानी और गुणी पुत्र प्रदान करनेकी प्रार्थना की गई। पुत्र कैसा हो, इस विषयमें और भी आगे कहते हैं—

२ अथ देवानां पाथः अपि एतु— (३८) वह हमारा पुत्र देवों और विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चले। पुत्र इकलौता हो, पर यदि वह ज्ञानियोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर नहीं चलेगा, तो अज्ञानी और मूर्ख ही रह जाएगा। ऐसा मूर्ख पुत्र भाररूप ही होता है। इसलिए पुत्र ऐसा हो कि विद्वानोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलकर स्वयं विद्वान् बने और उत्तम हो। ऐसे पुत्रसे ही वंशका उद्धार होता है। ऐसे ही पुत्रोंसे राष्ट्रका भी उद्धार होता है।

देवनिन्दकोंका नाश हो

१ देवस्य मर्त्यस्य च अरातिः नः मा ईशत— (६७) देवोंका शत्रु अर्थात् देवोंकी निन्दा करनेवाला नास्तिक तथा मानवताका शत्रु मनुष्य हम पर शासन न करे। देवोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक होते हैं, ऐसे मनुष्योंको राजा कभी नहीं बनाना चाहिए। ऐसे नास्तिक यदि देशके राजा बनेंगे, तो सारा देश नास्तिक हो जाएगा और वाममार्गियोंका राज्य हो जाएगा और इससे सारा देश नष्ट हो जाएगा। इसलिए देशका शासक आस्तिक ही हो। देशमें जो भी नास्तिक या देवनिन्दक हों, उनका नाश राजा करे। इसी तरह मानवताका शत्रु भी हम पर शासन न करे। जो मनुष्यकी उन्नतिके कार्यमें बाधा उपस्थित करते हैं, वे मानवताके शत्रु हैं। जो राष्ट्रमें अव्यवस्था पैदा करते हैं, राष्ट्रकी प्रजाओंको कष्ट देते हैं, वे भी मानवताके शत्रु हैं, ऐसे शत्रुओंको भी नष्ट करना शासकका कर्तव्य है।

२ पशुपते असत् द्वेषांसि युयोधि— (६१) हे धनके स्वामी राजन्! तू हमसे द्वेष करनेवालोंका नाश कर। राष्ट्रमें जो आस्तिकों, मनुष्यका हित करनेवालों तथा सज्जनोंसे द्वेष करनेवाले हों, उन्हें नष्ट करना चाहिए। राजाका यह कर्तव्य है कि वह ऐसे दुष्टोंको कठोरतम दण्ड दे।

३ त्वया वयं विश्वाः द्विषः अति गाहेमहि— (६८) हे अग्रणी! तुमसे सुरक्षित होकर हम सभी शत्रुओंसे आगे निकल जायें। अग्रणी–नेतासे सुरक्षित होकर राष्ट्रकी प्रजायें अपने अन्य शत्रु राष्ट्रकी अपेक्षा अधिक समृद्ध हों। राष्ट्रकी बाहरी सीमाओंकी जब रक्षा होती है, तभी राष्ट्रके अन्दर प्रजायें उन्नति कर सकती हैं। इसलिए नेता प्रथम राष्ट्रकी बाहरी रक्षापंक्तिको सुदृढ बनाये।

४ मानुषः अमानुषं नि जूर्वात्— (९९) मनुष्योंका हित करनेवाला अग्रणी मनुष्यका अहित करनेवालेको मारे। राष्ट्रका नेता स्वयं प्रजाका हित करे तथा जो दुष्ट प्रजाका अहित करते हैं, उन्हें नष्ट करे।

५ सजोषसः मन्दसानाः वायवः अग्रनीतिं प्र पान्ति (१०३) एक साथ रहकर आनन्दित होनेवाले और उत्तम रीतिसे शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले वीर सैनिक आगे चलनेवाले अपने नेताकी अच्छीतरह रक्षा करते हैं। जिस तरह नेता अपनी प्रजाओंकी रक्षा करता है, उसी तरह प्रजाओंको भी चाहिए कि वे अपने राजाकी रक्षा करें। इस प्रकार राजा द्वारा प्रजाकी और प्रजा द्वारा राजाकी सुरक्षा होनेसे दोनोंकी उन्नति होती है।

ऐश्वर्य-प्राप्तिका उपाय

ऋग्वेदने इहलोकमें ऐश्वर्यप्राप्तिके पक्ष पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। ऐश्वर्यप्राप्तिके उपायके बारेमें ऋग्वेदका कथन है—

१ यः लक्षं जिगीवान् सः इन्द्रः— (११४) जो मनुष्य अपने लक्ष्य पर पहुंच जाता है। वह ऐश्वर्यवान् होता है। ऐश्वर्यप्राप्तिका यह सर्वोत्तम उपाय है। मनुष्यको अपने सामने कोई न कोई लक्ष्य अवश्य रखना चाहिए। मनुष्य अपना एक लक्ष्य निर्धारित करके उसकी तरफ बढता चला जाए और उस तक पहुंच जाए, तो वह ऐश्वर्यशाली बन सकता। लक्ष्यहीन मनुष्य अपार समुद्रमें भटकती हुई नावके समान है। अतः हर मनुष्यको अपना एक लक्ष्य निश्चित करना चाहिए।

२ मनस्वान् जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषयत्— (१११) मनस्वी मनुष्य पैदा होते ही अपने उत्तम कर्मोंसे देवों और विद्वानोंको प्रसन्न करता है। जो अपने लक्ष्यका निर्धारण करके मनुष्य आगेकी तरफ बढता जाता है, उसका आत्मबल बहुत उच्च हो जाता है। जिसका मन शक्तिशाली होता है, उसे ही मनस्वी कहते हैं। ऐसा मनस्वी पुरुष अपने उत्तम कर्मोंसे देवोंको प्रसन्न करता है। देवोंको प्रसन्न करना ऐश्वर्यप्राप्तिका दूसरा उपाय है। जिसपर देवगुण प्रसन्न हो जाते हैं, वह हर तरहका ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है। पर देवगण मनुष्यके कर्मसे ही प्रसन्न होते हैं। उन्हें खुशामदके द्वारा प्रसन्न नहीं किया जा सकता। वे तो पुरुषप्रयत्नसे प्रसन्न होनेवाले हैं। ऋग्वेदके एक अन्य मंत्रमें ही " न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः " अर्थात् देवगण भी बिना परिश्रम किए मनुष्यसे मित्रता नहीं

करते, ऐसा कहा है। जो सदा प्रयत्नशील रहते हैं, उन्हें ही देवगण ऐश्वर्य प्रदान करते हैं।

इन्द्रकी महिमा

इन्द्र सब देवोंका राजा है, और सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है। " इदि-परमैश्वर्ये " इस धातुसे इन्द्र शब्द बना है। अतः इन्द्रका अर्थ ऐश्वर्यशाली है। द्वितीय मण्डलमें इन्द्रकी बहुत महिमा गाई गई है। वह इन्द्र क्यों और कैसे बना, इसका कारण बताते हुए लिखा है—

१ नृम्णस्य मह्ना सः इन्द्रः— (११५) अपने बलके प्रभावके कारण ही वह इन्द्र है। बल और शक्तिके कारण ही मनुष्य प्रभावशाली होता है। यह इन्द्र सभी युद्धोंमें अपना बल प्रदर्शित करता है, इसीलिए यह सब देवोंका राजा है। इसी प्रकार जो मनुष्य शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है, वही राजा होने योग्य है।

२ जनासः यस्मात् ऋते न विजयन्ते— (११९) मनुष्य इस इन्द्रकी सहायताके बिना विजय नहीं प्राप्त कर सकते। यह इन्द्र मनुष्योंकी भी सहायता करता है और उन्हें युद्धोंमें विजयी बनाता है।

३ यः अच्युतच्युत् सः इन्द्रः— (११९) जो अपने स्थानसे न हटनेवाले शत्रुको भी विचलित कर देता है, वह इन्द्र है। राजाको चाहिए कि वह इतना शूरवीर हो कि उसके सामने दृढसे दृढ शत्रु भी स्थिर न रहने पायें।

४ द्यावापृथिवी अस्मै नमेते— (१२३) इस इन्द्रकी शक्तिके आगे द्युलोक और पृथ्वीलोक भी झुक जाते हैं।

५ ते रथः समुद्रैः पर्वतैः न (१६३) इस इन्द्रका वेग या गति समुद्रों और पर्वतोंसे भी नहीं रोकी जा सकती।

इन्द्रका दान

इन्द्रका दान महान् है। पर यह दान सबको नहीं मिल पाता अपितु किसी किसीको ही मिलता है। इन्द्रके दानके अधिकारी एवं अनधिकारीके बारेमें ऋग्वेदमें कहा है—

१ यः शर्धते न अनु ददाति— (१२०) जो मनुष्य अहंकार करता है, उसे यह इन्द्र कुछ भी नहीं देता। अहंकारी मनुष्य इन्द्रका कभी प्रिय नहीं हो सकता। घमण्ड करनेवाला मनुष्य परमात्मासे हमेशा दूर रहता है। अहंकार परमात्मासे मिलनेके मार्गमें सबसे बडा रोडा है। अतः जो अहंकारको छोडकर सरल मनसे परमात्माके शरणमें जाता है तो-

२ वरूथे ज्येष्ठे गभस्तौ उप— (१८६) वह मनुष्य उस इन्द्रके उत्तम और श्रेष्ठ हाथोंके समीप रहता है। ऐसे मनुष्य पर परमात्माका वरदहस्त हमेशा रहता है।

३ यजतः दित्सन्तं भूयः चिकेत— (१४८) वह पूज्य इन्द्र दान करनेकी इच्छावाले मनुष्यको और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है। जो मनुष्य दानकी महिमा समझता है और वेदभगवान्की आज्ञाके अनुसार हजारों हाथोंसे धनका दान करता है, उसे परमात्मा और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करता है।

४ दाशुषे पुरूणि अप्रतीनि दाशत्— (१९१) दान देनेवाले मनुष्यको वह अप्रतिम धन देता है।

५ श्रेष्ठानि द्रविणानि, दक्षस्य चित्तिं सुभगत्वं, रयीणां पोषं, तनूनां अरिष्टिं, वाचः स्वाद्मानं, अह्नां सुदिनत्वं देहि— हे इन्द्र! तू हमें श्रेष्ठ धन, बलका विचार, सौभाग्य, ऐश्वर्यकी वृद्धि, शरीरोंकी नीरोगता, वाणीमें मिठास और उत्तम दिन प्रदान कर।

कर्मोंसे महत्ताकी प्राप्ति

१ ता प्रथमं अकृणोः, स उक्थ्यः— (१२७) इन्द्रने उन श्रेष्ठ कर्मोंको प्रथम किया, इसीलिए वह प्रशंसनीय हुआ।

२ अवस्यवः वयुनानि तक्षुः— (१९५) ज्ञानी अपनी सुरक्षाके लिए उत्तम कर्म करते हैं।

३ उशिजः अप्तुरः मनीषिणः यज्ञेन गातुं विविद्रिरे— (२१०) समृद्धिकी कामना करनेवाले तथा शीघ्रतासे कार्य करनेवाले बुद्धिमान् यज्ञके द्वारा योग्य मार्गका पता लगाते हैं।

४ क्रतुना साकं जातः— (२१४) वह इन्द्र उत्तम कर्तृत्वशक्तिसे युक्त होकर जन्मा था।

५ वीर्यैः साकं वृद्धः— (२१४) मनुष्य अपने कर्मोंके कारण बढता जाता है।

इस प्रकार कर्मकी महिमा गाई गई है। उत्तम कर्म करनेसे मनुष्य बहुत ऊंचा उठ सकता है। देवगण अपने कर्मोंके कारण ही सबसे श्रेष्ठ हुए।

पापसे बचनेका उपाय

१ बृहस्पते जनं सुनीतिभिः नयसि, तं अंहः न अश्नवत्— (२१९) हे बृहस्पते ! जिस मनुष्यको तू उत्तम मार्गोंसे ले जाता है, उसे पाप नहीं खाता। पापसे बचनेका एकमात्र उपाय है, उत्तम मार्गपर चलना। जो मनुष्य बृहस्पति अर्थात् वाणीके स्वामी या ज्ञानी मनुष्यके द्वारा बताये गए उत्तम मार्गपर चलता है, उसे कभी भी पाप नहीं लगता। उत्तम मार्ग पर चलनेसे मनुष्य खराब काम नहीं करता, इसलिए उसे कोई पाप भी नहीं लगता। पर जो ज्ञानसे द्वेष करते हैं अर्थात् ज्ञानियोंके द्वारा बताये मार्गसे उल्टा आचरण करता है, वह पापी होता है और—

२ ब्रह्मद्विषः तपनः मन्यु-मीः आसि— (२१९) यह बृहस्पति ऐसे ज्ञानसे द्वेष करनेवाले मनुष्योंको दुःख देता है और ऐसे ज्ञानद्वेष्टा शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है।

३ सुगोपाः यं रक्षसि, अस्मात् इत् विश्वाः ध्वरसः वि बाधसे— (२२०) उत्तम रक्षा करनेवाला बृहस्पति जिसकी रक्षा करता है, वह सभी हिंसकोंसे सुरक्षित रहता है। ज्ञानी जिसकी रक्षा करता है, जो ज्ञानके मार्ग पर चलता है, वह हमेशा सत्कर्म ही करता है, अतः प्रथम तो उसका कोई शत्रु होता ही नहीं, और यदि कोई होता भी है, तो वह शत्रु ऐसे सदाचरणी व्यक्तिका कुछ बिगाड नहीं सकता।

४ तं अंहः न, दुरितं न, अरातयः, द्वयाविनः न तितिरुः— (२२०) ज्ञानीसे सुरक्षित मनुष्यकी पाप, बुरे कर्म और शत्रु भी कहीं हिंसा नहीं कर सकते और न चालबाज ठग ही उसे ठग सकते हैं। ऐसे ज्ञानियोंको कोई नहीं मार सकता, पर यदि कोई पापबुद्धिसे प्रेरित होकर उसे मारनेके लिए उपाय रचता है, तो—

५ यः नः ह्वरः अभि दधे तं स्वा दुच्छुना हरस्वती मर्मर्तु— (२२१) जो इन ज्ञानियोंके प्रति कुटिल बुद्धिका उपयोग करता है, वह दुष्ट अपनी ही कुटिल बुद्धिसे मारा जाता है।

६ मतिभिः प्र तारिषीमहि— (२२५) हम अपनी उत्तम बुद्धियोंसे हर संकटोंको पार कर जाएं। कुटिल बुद्धि-वाला कोई शत्रु यदि हम ज्ञानियों पर आक्रमण कर भी दे, तो हम अपनी उत्तम बुद्धियोंसे उन दुष्टोंके कारण आये हुए संकटोंसे पार हो जाएं। उत्तम बुद्धि हर संकटोंसे मनुष्यको पार करा देती है।

७ द्दष्टवीर्यं त्वा ये निदे दधिरे, रक्षसः तपनी तेजिष्ठया तपः— (२२९) जो इस परमात्माके पराक्रमको चारों तरफ देखकर भी उसकी निन्दा करते हैं, वे राक्षस हैं, वे परमात्माके ही तेजसे जल जाते हैं। परमात्माका प्रताप चारों ओर फैल रहा है, इस विश्वके अणु-अणुमें परमात्माके तेज हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि सभी ग्रहोंमें उसी परमात्माका तेज चमक रहा है। इस प्रकार एक आस्तिकको तो सर्वत्र परमात्माका ही तेज दीखता है, पर एक नास्तिक परमात्माके तेजको सर्वत्र देखता हुआ भी कहता है कि परमात्मा कहां है ? परमात्मा कहीं नहीं है। इस प्रकार कहता हुआ वह परमात्माका तिरस्कार करता है। आस्तिक मनुष्य परमात्माकी रक्षासे रक्षित होकर उत्तरोत्तर समृद्ध होता जाता है। जब कि नास्तिक अपनी नास्तिकताके कारण ही मारा जाता है।

८ ये अभिद्रुहः पदे निरामिणः, हृदि देवानां व्ययः वि ओहते, स्तेनभ्यः नः मा— (२३१) जो दूसरोंसे द्रोह करनेमें ही आनन्द मानते हैं, हृदयमें देवताओंका विरोध करते हैं, ऐसे चोरोंसे हमें डर न हो। जो दूसरोंसे द्रोह करते हैं, अथवा दूसरोंसे शत्रुता करनेमें ही जो आनंद मानते हैं, हृदयसे परमात्माका तिरस्कार करते हैं वे चोर हैं, वे देशके लिए घातक हैं। अतः राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि सत्पुरुषोंको ऐसे चोरोंसे जरा भी डर न रहे।

९ अरणः नकिः— (२४१) छल कपट करनेवाला मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। छल कपटसे समृद्ध होनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य भले ही प्रथम दृष्टिमें समृद्ध होता दीखता है, पर अन्तमें उसका समूल विनाश होता है। ऐसे ही लोगोंके बारेमें मनुजीने कहा है—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति, समूलस्तु विनश्यति।

एक अधर्मशील मनुष्य प्रथम अधर्मसे बढता है, इसके बाद अपने चारों तरफ समृद्धि देखता है, उसके बाद अपने शत्रुओंको जीतता है अन्तमें समूल नष्ट हो जाता है। ऐसे छली मनुष्यका अन्तमें वंश ही नष्ट हो जाता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह कभी भी छल कपटसे समृद्ध होनेका प्रयत्न न करे।

देवोंकी सर्वद्रष्टा आंखें

जो मनुष्य यह सोचकर कि मुझे कोई नहीं देख रहा है, पाप कर्म करनेमें प्रवृत्त होता है, वह भूल करता है। वह भले ही मनुष्यकी आंखोंसे बच जाए, पर उस परमदेवकी आंखोंसे बचना असंभव है। उसकी आंखें विश्वके एक एक अणुमें विराज रही हैं, यहांतक कि मनुष्य अपने मनमें जो विचार करता है, वह भी उस सर्वद्रष्टाकी आंखोंसे बच नहीं पाता। इसलिए मनुष्य कभी भी कुटिलताका व्यवहार न करे—

१ भूर्यक्षः अन्तः वृजिना उत साधु पश्यन्ति—(२६२) देवगण अनेकों आंखोंसे युक्त होनेके कारण मनुष्यके अन्दरकी कुटिलता और सज्जनता सभी कुछ देखते हैं। ये देव सर्वत्र हैं और सर्वत्र विचरनेवाले हैं, अतः इन देवोंके लिए कोई पदार्थ या स्थान न पास है न दूर है—

२ राजभ्यः सर्वं परमा चित् अन्ति—(२६२) इन तेजस्वी देवोंके लिए सभी स्थान दूर होते हुए भी पास हैं इसलिए मनुष्य सदा सावधान रहकर व्यवहार करे और यथासाध्य ऐसा व्यवहार करे कि उसकी किसी भी इन्द्रियसे कुकर्म न हो। इन इन्द्रियोंसे जितना सत्कर्म किया जाएगा, उतनी ही ये तेजसे युक्त होंगी।

३ इमाः गिरः घृतस्नूः—(२६०) ये हमारी वाणियां अर्थात् वाक् उपलक्षक सभी इन्द्रियां तेजसे युक्त हों। वेदोंमें वाक् सभी इन्द्रियोंका उपलक्षक है। अतः यहां वाणीका अर्थ हमने सभी इन्द्रियां ऐसा किया है।

४ ऋतस्य ते खां ऋध्याम—(२८१) ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्गपर चलनेवाले वरुणसे हम इन्द्रियोंकी शक्तियोंको प्राप्त करें। नैतिकताके मार्गपर चलनेसे इन्द्रियां शक्तिसम्पन्न होती हैं।

कामोंका ताना वाना

जिस प्रकार एक जुलाहा खड्डी पर ताना बाना डालकर वस्त्र बुनता है, उसी तरह मनुष्य अपने जीवनकी खड्डीपर बैठकर अपने कर्मोंके ताने बाने डालकर वस्त्र बुनता है, और वही वस्त्र वह अपने अगले जन्ममें जाकर पहनता है। यह आलंकारिक वर्णन है, मनुष्य जो भी कुछ कर्म करता है, उसका फल संचित होता रहता है, और वह फल वह अपने अगले जन्ममें भोगता है। अतः मनुष्यको चाहिए कि वह अपनी इन्द्रियोंको शक्तिसम्पन्न बनाकर दीर्घकाल तक सत्कर्म करता रहे। वह अकाल मृत्युसे ग्रस्त न हो, और उसके कर्मोंका ताना बाना बीचमें ही न टूट जाए। मनुष्यको १००-१२५ वर्षतक जीनेका अधिकार है, अर्थात् उसे इतने वर्षतक तो अवश्य ही जीवित रहना चाहिए। इससे अधिक ज़िन्दा रहे तो अच्छी ही बात है, पर १००-१२५ वर्ष कमसे कम जीना ही चाहिए। इससे पूर्व ही यदि मृत्यु हो जाए, तो वह अकाल मृत्यु है। इस दृष्टिसे तो आजकल क्वचित् ही कोई काल मृत्युसे मरता है, नहीं तो सभी अकाल मृत्युके भोग बनते हैं। मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वह १००-१२५ वर्षतक शक्तिशाली होकर जीए, और उतने वर्षतक वह अपनी इन्द्रियोंसे भरपूर काम करता रहे, अपने कर्मोंके ताने बाने रूप वस्त्रको पूरा बुनकर ही यहांसे जाए। इसके लिए वह परमात्मासे भी प्रार्थना करे।

१ धियं वयतः मे तन्तुः मा छेदि—(२८१) कामका ताना वाना बुनते हुए मेरे धागोंको बीचमें ही न तोड।

२ अपसः पुरा मात्रा मा शारि—(२८१) काम पूर्ण होनेसे पूर्व ही मेरी इन्द्रियोंको शिथिल मत कर। काम तो अमर है। वही कभी समाप्त नहीं होता। सारा संसार खत्म हो जाय, पर काम खत्म होनेमें नहीं आता। अतः मनुष्यको अपना एक उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिए, और उस उद्देश्यकी पूर्तिमें वह सर्वतोमना लग जाए। अपने जीवनमें वह उस उद्देश्य तक पहुंच जाए, यही उसका काम पूर्ण होना है। अपने उद्देश्य तक पहुंचने तक वह अपने शरीर तथा इन्द्रियोंको शक्तिशाली बनाये रखे। उद्देश्य-प्राप्तिके बाद जानेमें बडा ही सन्तोष एवं समाधान होता है।

३ अहं अन्यकृतेन मा भोजम्—(२८५) मैं दूसरेके द्वारा कमाये गए धनका भोग न करूं। पराश्रित रहना संसारमें सबसे बडा दुःख है। पराश्रित रहते रहते उसकी आत्मा भी हीन बन जाती है। इसीलिए मनुजीने परवशताको सबसे बडा दुःख माना है—

सर्वं परवशं दुःखं सर्वं आत्मवशं सुखम्।

दूसरेके अधीन रहना ही दुःख है और स्वाधीन रहना ही सुख है। इसलिए वेदमें भी स्वाधीन रहकर इस संसारके भोग भोगनेके लिए कहा है।

परिव्राजकके कर्तव्य

द्वितीय मंडलके अन्तिम दो सूक्तोंमें कपिंजल पक्षीके रूपमें इन्द्रका वर्णन किया गया है। बाह्यदृष्टिसे देखने पर सूक्तोंमें किसी पक्षीका वर्णन प्रतीत होता है, पर यह वस्तुतः एक ऐसे परिव्राजक उपदेशकका वर्णन है कि जो सारे देशमें घूम घूमकर सत्य सिद्धान्तोंका प्रचार करता है। जिस तरह एक शकुनि अर्थात् पक्षी किसी एक पेडपर नहीं बैठती, हमेशा इस पेडपरसे उस पेडपर इस प्रकार सर्वत्र घूमा ही करती है, उसी तरह उपदेशक भी देशभरमें सर्वत्र घूम घूमकर प्रचार करे। वह उपदेशक कैसा हो, यह इस प्रकार बताया है—

१ जनुषः प्रब्रुवन्तः वाचं इयर्ति— (४२४) परिव्राजक विद्वान् मनुष्योंको उपदेश देता हुआ सर्वत्र वेदवाणीका प्रचार करता है। विद्वान् देशमें सर्वत्र घूम घूमकर वेदवाणीका प्रचार करके वैदिकधर्मकी उत्कृष्टता सिद्ध करे। वैदिकधर्मके सिद्धान्तोंका प्रचार करके देशकी प्रजाओंको सत्यमार्ग पर चलाये और उन्हें उन्नत करे।

२ सुमंगलः भद्रवादी इह वद— (४२५) कल्याणकारक और उत्तम वचनोंको बोलनेवाला ही इस सभामें उपदेश करे। मनुष्योंकी सभामें उपदेशक सदा ही कल्याणमय वचन बोले। ऐसे भाषण देवे कि जिससे श्रोताओंकी उन्नति हो।

३ सर्वतः पुण्यं आ वद— (४२८) विद्वान् सर्वत्र पुण्यदायी वचन ही बोले। श्रोताओंको पुण्यमार्ग पर ही ले जानेवाला भाषण देवे। उन्हें गुमराह करनेवाला भाषण न दे। ऐसे उत्तम उपदेशकसे ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है।

इस प्रकार इस द्वितीय मण्डलमें अनेक उत्तम उपदेश दिए गए हैं, जिन पर आचरण करके मनुष्य उन्नत हो सकता है।

ऋग्वेदका सुबोध – भाष्य

द्वितीय मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अग्नि देवासो मानुषीषु ४३
अग्ने यजस्व हविषा ८१
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य ७७
अग्निमन् स्वराज्यं ७६
अदिते मित्र वरुणोत २७३
अदेवेन मनसा यो २२७
अध त्विषीमां अभ्योजसा २१३
अध स्मा न उदवता ३०७
अधाकृणोः पृथिवीं सदृशे १३०
अधाकृणोः प्रथमं १७२
अधा यो विश्वा भुवनाभि १७३
अध्वर्यव: कर्तना १४७
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा १४८
अध्वर्यवो भरतेन्द्राय १३९
अध्वर्यवो य उरणं १४१
अध्वर्यवो यन्नरः १४६
अध्वर्यवो य: शत १४४
अध्वर्यवो य: शतमा १४५
अध्वर्यवो य: स्वश्नं १४३
अध्वर्यवो यो अपो १४०
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य १४९
अध्वर्यवो यो दृभीक १४१
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं २२६
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो २०९
अन्तर्ह्यग्न ईयसे ६४
अन्नेको वदति यद् १२८
अपाद्धोत्रादुत पोत्रात् ३७५
अपा नपादा ह्यस्थात् ३५९
अपाय्यस्यान्धसो मदाय १८८
अपो सु म्यक्ष वरुण २८०
अभि त्वा नक्तीरुषसा ९८
अभिनक्षन्तो अभि ये २४०
अभिभुवेऽभिभङ्गाय २०७
अमाजूरिव पित्रोः १७६
अमेव नः सुहवा आ ३६८
अम्बितमे नदीतमे ४१८
अयं वा मित्रावरुणा ४०६
अया ते अग्ने विधेमोः ५९
अयांसमग्ने सुक्षिति ३६५
अरमयः सरपसस्तराय १३७
अरोरवीद् वृष्णो ९९
अर्वाञ्चमद्य यय्यं ३७६
अर्वाञ्चो अद्या भवता २९२
अर्हन् बिभर्षि सायकानि ३३०
अव क्रन्द दक्षिणतो ४२६
अव क्षिप दिवो अश्मानं २९९
अवंशे द्यामस्तभायद् १५२
अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः २३८
अश्वस्यात्र जनिमास्य ३५६
अस्मभ्यं तद् दिवो ३८८
अस्मभ्यं तद् वसो दानाय १३८,१५०
अस्माकेभिः सत्वभिः ३०४
अस्माकं मित्रावरुणावतं ३०६
अस्मिन् पदे परमे ३६४
अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय ३५५
अस्मै बहूनामवमाय ३६२
अस्य मन्दानो मध्वो १८९
अस्य मे द्यावापृथिवी २१३
अस्य रण्वा स्वस्येव ४४
अस्य सुवानस्य मन्दिनः १०९
अहेळता मनसा ३१५
आ ते पितर्मरुतां ३२१
आ द्वाभ्यां हरीभ्यां १८२
आ नो ब्रह्माणि मरुतः ३४१
आ यन्मे अभ्वं वनदः ४५
आ यस्मिन्त्सप्त ५१
आ यः स्वर्ण भानुना ७५
आ यो वना तातृषाणो ४६
आ वक्षि देवां इह ३६९
आवदंस्त्वं शकुने ४२९
आ वामुपस्थमद्रुहा ४२३
आ विवाध्या परिरापः २१८
आ विंशत्या त्रिंशत्या १८३
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं ८८
आशुभिश्चिद्यान् वि ३८०

आशीत्या नवत्या	१८४
इद कवेरादित्यस्य	२७७
इन्द्र आशाभ्यस्परि	११४
इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा	४१७
इन्द्रश्च मृळयाति नो	४१२
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि	२११
इन्द्रो अङ्ग महद् भयं	४१९
इन्द्रो महां सिन्धुम्	९८
इन्धन्वभिर्धेनुभी	३४०
इन्धानो अग्निं वनवद्	२५२
इमं बिभ्रतो अपां सधस्थे	४२
इमं स्तोमं सक्रतवो	२६१
इमं स्वस्मै हृद आ	३५२
इमा गिर आदित्येभ्यो	२६०
इमा ब्रह्म सरस्वति	४२०
इमं मे अग्ने समिधं	५८
इमा देवी जायमानो	३९८
ईळतो अग्ने मनसा	३२
ईळानायावस्यवे	६३
उक्थेष्विन्नु शूर येषु	९२
उक्षन्ते अश्वां अत्यां	३३८
उग्रेष्विन्नु शूर	१०६
उत्तानायामजनयन्	८६
उत त्ये देवी सुभगे	३१०
उत व शासमुशिजां	३११
उत वा यो नो मर्चयात्	२२२
उत स्य देवा भुवनस्य	३०९
उत स्य न इन्द्रो	३०८
उताशिष्ठा अनुश्रृण्वन्ति	२४७
उदु ष्य देवः सविता	३७८
उद्गातेव शकुने	४२८
उन्मा ममन्द वृषभो	३२६
उपेमसृक्षि वाजयुः	३५१
उभयं ते न क्षीयते	८२
उभयासो जातवेदः	२८
उभे अस्मै पीपयतः	२७४
ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्य	२९७
ऋजुरिच्छंसो वनवद्	२५६
ऋतं देवाय कृण्वते	२९५

ऋतज्येन क्षिप्रेण	२४२
ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता	२४१
ऋतुर्जनित्री तस्या	१२६
एतानि वामश्विना	३९६
एता वो वश्म्युद्यता	३१२
एवा त इन्द्रोचथमहेम	१९४
एवा ते गृत्समदाः	१९५
एवा नो अग्ने अमृतेषु	९५
एवा बभ्रो वृषभ	३३५
एष स्य ते तन्वो	३७०
ओष्ठाविव मध्वास्ने	३९४
कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण	४२४
किमू नु वः कृणवाम	२९०
कुमारश्चित् पितरं	३३१
क्व स्य ते रुद्र मळयाकुः	३२७
गणानां त्वा गणपतिं	२१६
गुहा हितं गुह्यं	९४
गोमदू षु नासत्या	४०९
ग्रावाणेव तदिदर्थं	३८९
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य	४०
चित्रं तद् वो मरुतो	३४५
जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन	८७
जुषेथां यज्ञं बोधतं	३७१
जोष्यग्ने समिधं	३७७
जोहूत्रो अग्निः प्रथम.	८४
ज्ञेया भाग सहमानो	८९
त आदित्यास उरवो	२६२
तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत	१७०
तदस्यानीकमुत चारु	३६१
तद् देवानां देवतमाय	२३७
तमस्मेरा युवतयो	३५४
तमुक्षमाणं रजसि	२०
तमु स्तुष इन्द्रं तं	२००
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप	२१५
तव व्रते सुभगासः	२७८
तव श्रिये व्यजिहीत	२३३
तव स्याम पुरुवीरस्य	२७९
तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं	२
तस्मा अर्षन्ति दिव्या	२५४

तस्मा इद् विश्वे	२५५
तस्मै तवस्य मनु दायि	२०४
ता अस्य वर्णमायुवो	५४
ता न आ वोळ्हमश्विना	४११
तान् वो महो मरुत	३४६
तां इयानो महि वरूथं	३४९
ता सम्राजा घृतासुती	४०८
तिस्रो भूमीर्धारयन्	२६७
तीव्रो वो मधुमा	४१६
तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट	३६६
ते क्षोणीभिररुणेभिः	३४८
तेजिष्ठया तपनी	२२९
ते दशग्वाः प्रथमा	३४७
त त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं	६०
तं देवा बुध्ने रजसः	१३
तं वः शर्धं मारुतं	३०५
तं नो दात मरुतो	३४२
त्रातारं त्वा तनूनां हवामहे	२२३
त्रिकद्रुकेषु महिषो	२११
त्री रोचना दिव्या	१६४
त्वमग्न इन्द्रो वृषभः	३
त्वमग्न ऋभुराके	१०
त्वमग्ने अदितिर्देव	११
त्वमग्ने त्वष्टा विधते	५
त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणि.	१
त्वमग्ने द्रविणोदा	७
त्वमग्ने राजा वरुणो	४
त्वमग्ने रुद्रो असुरो	६
त्वमग्ने सुभृत उत्तमं	१२
त्वयमग्ने अर्वता वा	२६
त्वया यथा गृत्समदासो	४९
त्वया वयं सुवृधा	२२४
त्वया वयमुत्तमं धीमहे	२२५
त्वया हितमप्यमप्सु	३८४
त्वादत्तेभी रुद्र	३२२
त्वामग्न आदित्यास	१३
त्वामग्ने दम आ विश्पतिं	८
त्वामग्ने पितरमिष्टिभिः	९
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो	१४

त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा १०१
त्वे विश्वा सरस्वति ४१९
त्वं तान्त्सं च प्रति १५
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पाः ७९
त्वं न इन्द्र त्वाभिः १९८
त्वं नो असि भारता ७०
त्वं नो गोपाः पथिकृद् २२१
त्वं विश्वेषां वरुणासि २६९
दधन्वे वा यदीमनु ५२
दा नो अग्ने बृहती २३
दिव्यन्यः सदनं चक्र ४००
देव बर्हिवर्धमानं सुवीरं ३३
देवाश्चित् ते असुर्य २१७
दैव्या होतारा प्रथमा ३६
द्यावा चिदस्मै पृथिवी १२३
द्यावा नः पृथिवी इमं ४२८
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त ३३७
द्रवन्न सर्पिरासुतिः ७१
धारयन्त आदित्यासो २६३
धारावरा मरुतो ३३६
धियं पूषा जिन्वतु ४०२
धिष्वा शवः शूर येन १०७
धृतव्रता आदित्या २८८
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे १६३
न तमंहो न दुरितं २२०
न दक्षिणा वि चिकिते २७०
न म इन्द्रेण सख्यं १८६
नमः पुरा ते वरुणोत २८४
न मा तमन्न श्रमत् ३०१
न यत् परो नान्तर ४१०
न यस्येन्द्रो वरुणो ३८६
नराशंसः प्रति धामान् ३१
नानौकांसि दुर्ये ३८२
नावेव नः पारयतं ३९२
नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन् ९७
नियुत्वान् वायवा ४०४
नि होता होतृषदने ७८
नू ते पूर्वस्यावसो ४८
नूनं सा ते प्रति वरं ११०, १६०, १६९, १७८, १८७, १९६, २०५
पर ऋणा सावीरध २८९
परि णो हेती रुद्रस्य ३३४
पिपर्तु नो अदिती २६६
पिबापिबेदिन्द्र शूर १००
पिशङ्गरूपः सुभरो ३८
पुनः समव्यद् विततं ३८८
पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व १६८
पृक्षे ता विश्वा भुवना ३३९
प्र घा न्वस्य महतो १५१
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त १२९
प्र ते नावं न समने १६७
प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति ४२७
प्र बभ्रवे वृषभाय ३२८
प्र व एको मिमय २९२
प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय १६१
प्र सीमादित्यो असृजद् २८०
प्र हि क्रतुं बृहथो ३००
प्रातर्यावाणा रथ्येव ३९०
प्राता रथो नवो योजि १८९
प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा ४११
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रो १०५
बृहस्पते अति यदर्यो २३०
बृहस्पते तपुषाश्नेव २९८
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य २३८
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता २५०
ब्रह्मणस्पतेरभवद् २४८
ब्रह्मणस्पते सुयमस्य २४९
भगं धियं वाजयन्तः ३८७
भरेषु हव्यो नमसो २२८
भिनद् वलमङ्गिरोभिः १५८
भोजं त्वामिन्द्र वयं १७७
मन्दस्व होत्रादनु ३७२
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा १८१
मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा ३२४
मा त्वा श्येन उद् ४२५
मा नो अरातिरीशत ६७
मा नो गुह्या रिप ३१४
मा नो वधैर्वरुण ये २८३
मा नः स्तेनेभ्यो ये २३१
माहमघोनो वरुण २७६, २८७, २९४
मेद्यन्तु ते वह्नयो ३७४
य उ श्रिया दमेष्वा ७४
यजस्व वीर प्र विहि २५७
यज्ञेन गातुमप्तुरो २१०
यज्ञेन वर्धत जातवेदसं १७
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिः ३६७
यद् युञ्जते मरुतो २४३
यथा विद्वां अरं ५७
यदी मातुरुप स्वसा ५५
यमु पूर्वमहुवे तमिदं ३७५
यया रध्रं पारयथात् ३५०
यस्मादिन्द्राद् बृहतः १६९
यस्मान्न ऋते विजयन्ते ११९
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य ११७
ये क्रन्दसी संयती ११८
यं स्मा पृच्छन्ति कुह ११५
यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च १३२
यः पृथिवीं व्यथमानाम् ११२
यः शम्बरं पर्वतेषु १२१
यः शश्वतो मह्येनो १२०
यः सप्तरश्मिर्वृषभः १२२
यः सुनीथो ददाशुषे ७३
यः सुन्वन्तमवति यः १२४
यः सुन्वते पचते दुध्र १२५
या गुङ्गूर्या सिनीवाली ३२०
याद्राध्यं वरुणो योनिं ३८५
या वो भेषजा मरुतः ३३३
या वो माया अभिद्रुहे २७५
या सुबाहुः स्वङ्गुरिः ३१९
यास्ते राके सुमतयः ३१७
यूयं देवाः प्रमतिः २८९
येनेमा विश्वा च्यवना ११४
ये स्तोतृभ्यो गोअग्राम० १६, २९
यो अप्स्वा शुचिना २५८
यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिः २५९
यो जात एव प्रथमो १११

×

यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसो.	२२६
यो न: सनुत्य उत	३०३
यो नार्मर सहवसुं	१३३
यो नो मरुतो वृकताति	३४४
यो भोजनं च दयसे	१३१
यो मे राजन् युज्यो	२८६
यो रध्रस्य चोदिता	११६
यो राजभ्य ऋतनिभ्यो	१७१
योऽत्ररे वृजने विश्वथा	२४५
यो वृत्राय सिनं	२९६
यो हत्वाहिमरिणात्	११३
राकामहं सुहवां	३१६
राजानावनभिद्रुहा	४०७
रासि क्षयं रासि मित्रं	[illegible]०३
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थात्	३९
वय ते वय इन्द्र	१९७
वाजयन्निव नू रथान्	७२
वातेवाजुर्या नद्येव	३९३
वायो ये ते सहस्रिणो	४०३
विद्यामादित्या अवसो	२६४
विधेम ते परमे	८०
विभु प्रभु प्रथमं	२४४
वि मच्छ्रथाय रशनां	२८१
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना	३४
विश्वजिते धनजिते	२०६
विश्वस्य हि श्रुष्टये	३५९
विश्वा उत त्वया वयं	६८
विश्वान्यन्यो भुवना	४०१
विश्वेदनु रोधना अस्य	१३५
विश्वे देवास आ गत	४१५
विश्वेभ्यो हि त्वा	२३२
विश्वे ह्यस्मै यजताय	१६४
विश्वं सत्यं मघवाना	२४६
वृषा ते वज्र उत	१६६
वृष्णः कोशः पवते	१६५
व्यन्तिवन्नु येषु मन्दसानः	१०४
शतं वा यस्य दश	१३४
शुक्रस्याद्य गवाशिरं	४०५
शुचिः पावक वन्द्यो	६९
शुचिरपः सूयवसा	२७२
शुभ्रं नु ते शुष्मं	९३
शृङ्गे व नः [illegible]	३३१
श्रुधी हवमिन्द्र मा	९०
श्रिया अग्निश्चित्र भानुः	८५
श्रेष्ठो जातस्य रुद्र	३२३
श्रेष्ठं यविष्ठ भारता	६६
स इज्जनेन स विशा	२५८
स इधान उषसो	९४
स ईं महीं धुनिं	१५५
स ईं वृषाजनयत्	३६३
सत्रासाहो जनभक्षो	२०८
सद्येव प्राचो वि	१५३
सध्रीमा यन्ति परि	१२७
सना ता का चिद् भुवना	२३९
सनेम ये त ऊतिभिः	१०८
स नो बोधि सहस्य	२७
स नो युवेन्द्रो	१९९
स नो रेवत् समिधानः	२२
स नो वृष्टिं दिवस्परि	६२
स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या	१५४
स प्राचीनान् पर्वतान्	१७४
स बोधि सूरिर्मघवा	६१
स भूतु यो ह प्रथमाय	१७१
समन्या यन्त्युप	३५३
समाववर्ति विष्ठितो	३८[illegible]
स माहिव इन्द्रो	१९०
समिद्धो अग्निर्निहितः	३०
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वी	४७
स रन्धयत् सदिवः	१९३
सरस्वति त्वमस्माँ	३०२
सरस्वती साधयन्ती धियं	३७
स विद्वाँ अपगोहं	१५७
स विद्वाँ आ च पिप्रयो	६५
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः	२०३
स सुन्वत इन्द्रः	१९२
स संनयः स विनयः	२४३
स ह श्रुत इन्द्रो	२०२
स होता विश्वं परि	२१
साकं जातः क्रतुना	२८४
साकं हि शुचिना	५३
साध्वपांसि सनता न	३५
सास्मा अरं प्रथमं स	१८०
सास्मा अरं बाहुभ्यां	१७५
सिनीवालि पृथुष्टुके	३१८
सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ	२५३
सुगो हि वो अर्यमन्	२६[illegible]
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे	२१९
सुप्रवाचनं तव वीर	१३६
सृजो महीरिन्द्रः या	९१
सेनानीकेन सुविदत्रो	८३
सेमामविड्ढि प्रभृति	२३५
सो अङ्गिरसामुचथा	२०१
सो अप्रतीनि मनवे	१९१
सोदञ्चं सिन्धु	१५६
सोमापूषणा जनना	३९७
सोमापूषणा रजसो	३९९
स्तवा नु त इन्द्र	९५
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं	३३१
स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप	३२९
स्याम ते त इन्द्र ये	१०२
स्व आ दमे सुदुघा	३५७
स्वः स्वाय धायसे	५६
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं	१५९
हुये देवा यूयं	२९१
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य	१८१
हरी नु त इन्द्र	९६
हवीमभिर्हवते यो	३२५
हस्तेव शक्तिमभि	३९५
हिरण्यरूपः स हिरण्यसं	३६०
हुवे वः सुद्योत्मानं	४१
होताजनिष्ट चेतनः	५०

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय-मण्डल

[१]

[ऋषिः- (गाथिनो विश्वामित्रः) । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

१ सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद् युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥

२ प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित् तवसे गातुमीषुः ॥ २ ॥

[१]

अर्थ— [१] हे (अग्ने) अग्ने ! तूने (विदथे यजध्यै सोमस्य वह्निं चकर्थ) यज्ञमें, यज्ञ करनेके लिये मुझे सोमका वाहक बनाया है इसलिये मुझे (तवसं वक्षि) बल भी दे । हे (अग्ने) बलके पुत्र ! मैं (दीद्यत् देवान् अच्छ) प्रकाशमान होकर देवोंको लक्ष्य कर (अद्रिं युञ्जे, शमाये, तन्वं जुषस्व) पत्थरको जोडता हूँ और स्तुति करता हूँ तू अपने शरीरकी पुष्टिके लिए इस सोमरसका सेवन कर ॥ १ ॥

[२] (समिद्भिः नमसा अग्निं दुवस्यन्) समिधाओंसे और हव्यसे अग्निको प्रसन्न करते हुए हमने (प्राञ्चं यज्ञं चकृमः गीः वर्धतां) भलीभाँति यज्ञ किया है अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो । (दिवः कवीनां विदथा शशासुः) स्तोताओंको यज्ञ करना सिखाया है अतः (गृत्साय तवसे गातुं ईषुः चित्) स्तुतिके योग्य तथा बलवान् इस अग्निका यश स्तोतालोग गानेकी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्नि जिसको यज्ञमें सोम निचोडनेके लिए तैय्यार करता है, उसे बलवान् भी बनाता है, फिर इस तैय्यार किए गए सोमका सेवन करता है ॥ १ ॥

उत्तम मनसे समिधाओं और हव्योंके द्वारा अग्निको प्रसन्न करते हुए यज्ञ करनेसे मनुष्यकी वाणीमें उत्साह बढता है और वह शुद्ध होती है । क्योंकि यज्ञोंमें स्तोत्र बोले जाते हैं और स्तोत्र देवोंके और दूरदर्शी विद्वानोंके होते हैं ॥ २ ॥

३ मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥

४ अवर्धयन् त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन् वपुष्यन् ॥ ४ ॥

५ शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥ ५ ॥

६ वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] यह अग्नि (मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः) मेधावान् पवित्र बलशाली एवं जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है तथा (दिवः पृथिव्याः मयः दधे) द्युलोक और भूमिमें सुख स्थापित करता है । (देवासः) देवोंने (स्वसॄणां अप्सु अन्तः) बढनेवाली नदियोंके जलमें गुप्तरूपसे स्थित उस (दर्शतं अग्निं) दर्शनीय अग्निको (अपसि अविन्दन्) अपने कार्यके लिये प्राप्त किया ॥ ३ ॥

[४] (सुभगं श्वेतं महित्वा अरुषं) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त, उज्ज्वल, महिमावान् प्रदीप्त अग्निके (जज्ञानं सप्त यह्वीः अवर्धयन्) उत्पन्न होते ही, उसे सात नदियोंने संवर्धित किया । (न अश्वाः जातं शिशुं अभ्यारुः) जिस प्रकार घोडी नव जात शिशुकी ओर दौडती है उसी प्रकार (देवासः अग्निं जनिमन् वपुष्यन्) देवोंने अग्निको उत्पन्न होते ही दीप्तिमान् किया ॥ ४ ॥

[५] (शुक्रेभिः अङ्गैः रजः आततन्वान्) शुभ्रवर्ण तेजके द्वारा लोकोंको व्याप्त कर यह अग्नि (क्रतुं) कर्म करनेवाले भक्तको अपनी (कविभिः पवित्रैः पुनानः) बुद्धि और पवित्र तेजके द्वारा पवित्र करके, तथा (शोचिः परिवसानः) ज्वालाओंके कपडोंको पहनकर (अपां, आयुः बृहतीः अनूनाः श्रियः मिमीते) स्तोताको अन्न, प्रभूत और सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ५ ॥

[६] (अन्-अदतीः) हिंसा न करनेवाले (अ-दब्धाः) तथा स्वयं भी हिंसित न होनेवाले जलोंको यह अग्नि (सीं वव्राज) चारों ओरसे घेर लेता है । (अ-वसानाः अ-नग्नाः) वस्त्र न पहननेपर जो नग्न नहीं रहती हैं, ऐसी (सनाः युवतयः) प्राचीनकालसे यौवनावस्थामें रहनेवाली (सयोनीः) एक ही स्थानमें रहनेवाली (दिवः वाणीः) दिव्यशब्दोंसे युक्त (सप्त यह्वीः) सात नदियां (एकं गर्भं दधिरे) एक अग्निके गर्भको धारण करती हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सबका भाई है अतः प्राणियोंके लिए सर्वत्र सुख देता है । यह प्रथम जलमें गुप्त रूपसे विद्यमान था, पश्चात् देवोंने इसे अपने कामके लिए ढूंढ निकाला ॥ ३ ॥

उत्पन्न होते ही इस अग्निको सातों नदियां बढाती हैं और देवगण इसे प्रकाशित करते हैं ।

सप्त नदियां— पंच ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि ।

अग्नि— प्राणाग्नि; देव — इन्द्रियें ॥ ४ ॥

यह अग्नि उत्पन्न होकर सभी लोगोंको प्रकाशित कर देता है, तथा अपने पवित्रताके गुणसे सब जगह पवित्र करता है, तथा अपने भक्तोंको सब तरहका ऐश्वर्य देता है ॥ ५ ॥

अग्नि चारों ओरसे जलोंको घेरे रहता है । तथा जल भी इस अग्निको गर्भमें धारण करते हैं । बिजली मेघोंको चारों ओरसे घेरे रहती है और उनके बीचमें चमकती है ॥ ६ ॥

७ स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥
८ बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद् दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥
९ पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद् वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥
१० पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत् पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ॥ १० ॥

अर्थ—[७] (मधूनां स्रवथे, घृतस्य योनौ) जलके बरसनेपर, जलके उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्षमें (अस्य संहतः विश्वरूपाः स्तीर्णाः अस्थुः) इस अग्निकी इकट्ठी हुई हुई-नानावर्णोंवाली, सर्वत्र फैली हुई किरणें ठहरी रहती हैं। उस समय (अत्र पिन्वमानाः धेनवः) यहाँ इस पृथ्वीपर सबको पूर्ण करनेवाले तथा प्रसन्नता देनेवाले जल बरसते हैं। इस (समीची, दस्मस्य, मही मातरा) सुन्दर और दर्शनीय अग्निके पृथ्वी और आकाश माता पिता हैं ॥ ७ ॥

[८] (सहसः सूनो बभ्राणः) बलके पुत्र और सबको धारण करनेवाले अग्ने ! तू (शुक्रा रभसा वपूंषि दधानः व्यद्यौत्) उज्ज्वल वेगवान् किरणें धारण करके प्रकाशित होता है। (वृषा यत्र काव्येन वावृधे) बलवान् अग्नि जब स्तोत्रोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है, तब (मधुनः घृतस्य धाराः श्चोतन्ति) अत्यन्त मधुर घृतकी धारायें इसपर गिरती हैं ॥ ८ ॥

[९] अग्निने (पितुः ऊधः जनुषा विवेद) अन्तरिक्षके स्तनस्थानीय जलप्रदेशको अपने जन्मसे ही जान लिया। और (अस्य धाराः धेनाः वि असृजत्) इसके अन्तरिक्षकी जलकी धारा अर्थात् वृष्टिने बिजलीको गिराया। (शिवेभिः सखिभिः दिवः, यह्वीभिः गुहा चरन्तं) अपने शुभकर्ता मित्रों और द्युलोककी जलधाराओंके साथ (गुहा चित् न बभूव) गुहामें स्थित उस अग्निको कोई भी नहीं प्राप्त कर सका ॥ ९ ॥

[१०] यह अग्नि (पितुः च जनितुः गर्भं बभ्रे) पिता और माताके गर्भका पोषण करता है। (च एकः पूर्वीः पीप्यानाः अधयत्) और वही एक वृद्धिको प्राप्त औषधियोंका भक्षण करता है। (सपत्नी मनुष्ये उभे) एक पतिवाली तथा मनुष्योंका हित करनेवाली दोनों द्यावापृथिवी (वृष्णे अस्मै शुचये सबन्धू) बलवान् इस पवित्र अग्निके बन्धु सदृश हैं। हे अग्ने ! तू आकाश और पृथ्वीकी (नि पाहि) अच्छी प्रकारसे रक्षा कर ॥ १० ॥

भावार्थ— जिस समय अन्तरिक्षमें अग्निकी किरणें बिजलीके रूपमें चमकती हैं, तब इस पृथ्वीपर पानी बरसता है। इस जलका पिता द्यु अर्थात् सूर्य और माता पृथ्वी है। क्योंकि सूर्य पानीको खींचकर मेघ बनाता है और पृथ्वी उस जलको धारण करती है ॥ ७ ॥

जब इस अग्निको घीकी धाराओंसे उत्तम प्रकारसे प्रज्ज्वलित करके स्तोत्रोंसे बढाया जाता है, तब यह अग्नि अपनी वेगवान् किरणोंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥

जन्मते ही अग्निने अन्तरिक्षमें संग्रहीत जलोंको जान लिया और उन जलोंको वर्षाके रूपमें नीचे गिराया। पर इस वर्षाके गिरानेवालेको कोई पा न सका ॥ ९ ॥

यह अग्नि द्यु और पृथ्वीलोकके गर्भरूप जलोंका पोषण करता है। फिर उन्हीं जलोंसे पुष्ट हुए हुए वन वृक्षोंको खा जाता है। एक सूर्य ही जिनका पति है, ऐसे दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोक इस अग्निकी रक्षा करते हैं और अग्नि भी उन दोनोंकी रक्षा करता है ॥ १० ॥

×

११ उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धा ऽऽपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद् दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥ ११ ॥
१२ अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजाना ऽपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ १२ ॥
१३ अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥ १३ ॥
१४ बृहन्त इद् भानवो भाऋजीक मग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्त रपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] (महान् अनिबाधे उरौ ववर्ध) यह महान् अग्नि, बाधारहित विस्तारवाली पृथ्वीमें बढता है। वहाँ (हि पूर्वीः यशसः आपः, अग्निं संवर्धयन्ति) बहुत यशवाले घृत अग्निको भली प्रकार बढाते हैं। (ऋतस्य योनौ अग्निः) यज्ञके गर्भ स्थानमें वास करनेवाला अग्नि (जामीनां स्वसॄणां अपसि दमूनाः अशयत्) परस्पर बहनरूप अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले कार्यमें शान्तिपूर्वक रहता है ॥ ११ ॥

[१२] (यः अग्निः जनिता, अपां गर्भः नृतमः) जो अग्नि सबका पिता, जलके अन्दर रहनेवाला, मनुष्योंमें सर्व श्रेष्ठ, (यह्वः समिथे अक्रः न महीनां बभ्रिः) महान् संग्राममें अपराजित अपनी महती सेनाका भरणपोषण करनेवाला, (दिदृक्षेयः भाऋजीकः) सबके देखने योग्य तथा अपने तेजसे प्रकाशित है, उसने ही (सूनवे उस्रियाः उत् जजान) अपने पुत्रवत् प्रिय भक्तोंके लिये प्रकाश उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

१ अग्निः समिथे अक्रः महीनां बभ्रिः उस्रियाः जजान— यह अग्नि संग्राममें अपराजित, बडी बडी सेनाओंका भरणपोषण करनेवाला है, इसीने प्रकाशको पैदा किया।

[१३] (सुभगा वना दर्शतं विरूपं) सौभाग्यशाली अरणीने दर्शनीय विविध रूपवान् तथा (अपां ओषधीनां गर्भं जजान) जल और औषधियोंके गर्भमें रहनेवाले अग्निको उत्पन्न किया। (देवासः चित् पनिष्ठं तवसं जातं) सारे देवता लोग भी स्तुतिके योग्य, बलशाली और तुरन्त उत्पन्न अग्निके पास (मनसा सं जग्मुः) मनसे होकर पहुँचे और (हि दुवस्यन्) उन्होंने अग्निकी सेवा की ॥ १३ ॥

१ उत्तरारणि = पिता। २ अधरारणि = माता।
३ अग्नि = पुत्र या प्राणाग्नि। ४ देव = इन्द्रियें।
५ जल = वीर्य।

[१४] (विद्युतः न शुक्राः) विद्युत्के समान अत्यन्त कान्तियुक्त (बृहन्तः इत् भानवः अपारे ऊर्वे अन्तः) महान् किरणें अगाध समुद्रके बीचमें (अमृतं दुहानाः गुहा इव) अमृतका मन्थन करके गुहाके समान (स्वे सदसि अन्तः वृद्धं भाऋजीकं, सचन्त) अपने घर अन्तरिक्षमें बढते हुये, प्रकाशमान अग्निका आश्रय प्राप्त करती हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ — यह अग्नि पृथ्वीमें अनेक स्थलोंपर बढता है और घृतकी धारायें इसे बढाती हैं। अंगुलियों द्वारा किए जानेवाले यज्ञके मध्यमें यह पडा रहता है ॥ ११ ॥

यह अग्नि जलके अन्दर रहते हुए सबका भरणपोषण करता है, और अपने तेजसे उपासकोंके लिए प्रकाश उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥

अरणियोंने जलोंके अन्दर रहनेवाले अग्निको पैदा किया, तब सब देवता इसके पास पहुंचकर इसकी सेवा करने लगे ॥ १३ ॥

अत्यन्त प्रकाशमान किरणें समुद्रके अन्दर रहती हुई भी अन्तरिक्षस्थ अग्निको हर तरहसे बढाती हैं ॥ १४ ॥

१५ ईळे च त्वा यजमानो हविर्भि-रीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥ १५ ॥

१६ उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥

१७ आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ॥ १७ ॥

१८ नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] हे अग्ने ! मैं (यजमानः हविर्भिः त्वा ईळे) यजमान हवियोंके द्वारा तेरी स्तुति करता हूँ । (च, सुमतिं निकामः सखित्वं ईळे) और अच्छी बुद्धिकी प्राप्तिको इच्छा करनेवाला मैं तेरे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ । तू (देवैः जरित्रे अवः मिमीहि) देवोंके साथ मुझ स्तोताकी रक्षा कर । (च दम्येभिः अनीकैः नः रक्ष) और दुर्दम्य तेजसे हमारी रक्षा कर ॥ १५ ॥

१ सुमतिं निकामः सखित्वं— उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है ।

[१६] हे (सुप्रणीते अग्ने) उत्तम नेता अग्ने ! (तव उपक्षेतारः) तेरे पास रहनेवाले हम (विश्वानि धन्या दधानाः तुञ्जमानाः) सम्पूर्ण धनोंको धारण करते हुए तेरे द्वारा पालित पोषित होते हुए हम (सुरेतसा श्रवसा अदेवान् पृतनायून् अभिष्याम) पुष्टिदायक अन्नसे युक्त होकर देवविरोधी शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें ॥ १६ ॥

[१७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (देवानां केतुः आ मन्द्रः अभवः) देवताओंका प्रज्ञापक तू सब प्रकारसे रमणीय है, (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता तू (मर्तान् दमूना अवासयः) मनुष्योंको उनके अपने अपने घरोंमें बसानेवाला है, तथा (रथिरः साधन् देवान् अनुयासि) उत्तम रथवाला तू देवताओंका हित करते हुए उनका अनुसरण करता है ॥ १७ ॥

१ देवानां केतुः मन्द्रः— यह अग्नि देवोंका प्रज्ञापक और रमणीय है ।

[१८] (अमृतः राजा विदथानि साधन्) अमर और तेजस्वी अग्नि यज्ञ करता हुआ (मर्त्यानां दुरोणे नि ससाद) मनुष्योंके घरमें विराजता है । यह (विश्वानि काव्यानि विद्वान्) सम्पूर्ण स्तोत्रोंका ज्ञाता है । (घृतप्रतीकः, उर्विया अग्निः वि अद्यौत्) घृतके द्वारा प्रदीप्त शरीरवाला विस्तीर्ण अग्नि प्रकाशित होता है ॥ १८ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! मैं तेरी स्तुति करता हूँ ताकि मुझे उत्तम बुद्धि, तेरा बन्धुत्व और तेरा संरक्षण मिले ॥ १५ ॥

यह उत्तम नेता अग्नि अपने भक्तोंका हर तरहका धन देकर पालन करनेवाला है । इसके दिए हुए अन्नसे पुष्ट होकर भक्त नास्तिकोंपर विजय प्राप्त करते हैं ॥ १६ ॥

यह देवोंका दूत है, और मनुष्योंका निवासक है । यह देवों अर्थात् विद्वानोंका हित करता है ॥ १७ ॥

कभी नष्ट न होनेवाला यह अग्नि यज्ञोंको सिद्ध करता और मनुष्योंके घरोंमें रहता है । घृतसे प्रदीप्त होकर यह सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ १८ ॥

१९ आ नो गहि सख्येभिः शिवेभि- र्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं संतरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥ १९ ॥

२० एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥ २० ॥

२१ जन्मन्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या- ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

२२ इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नो ऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥ २२ ॥

अर्थ— [१९] (सरण्यन् महान्) सर्वत्र जानेवाले महान् अग्ने ! तू अपनी (शिवेभिः सख्येभिः महीभिः ऊतिभिः नः आ गहि) मंगलकारी मैत्रीसे और महती रक्षाशक्तियोंसे युक्त होकर हमारे पास आ । (अस्मे बहुलं संतरुत्रं) हमारे लिये विस्तीर्ण, उपद्रव रहित, (सुवाचं भागं यशसं, रयिं कृधि) शोभन स्तुतियुक्त, भजनीय और कीर्तिशाली धनको प्रदान कर ॥ १९ ॥

[२०] (अग्ने) अग्ने ! (पूर्व्याय ते सनानि, नूतनानि एता जनिमा प्र वोचं) पुरातन तेरी सनातन और नवीन सब स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं । (जातवेदाः) सर्वज्ञ तू (जन्मन् जन्मन् निहितः) सब मनुष्योंके बीचमें स्थापित किया गया है, (वृष्णे इमा महान्ति सवना कृता) बलवान् तेरे लिये हमने इन बडे बडे यज्ञोंको किया है ॥ २० ॥

[२१] (जन्मन् जन्मन् निहितः जातवेदाः) सारे मनुष्योंमें स्थापित हुआ हुआ सर्वज्ञ अग्नि (विश्वामित्रेभिः अजस्रः इध्यते) विश्वामित्रों द्वारा सदा ही प्रदीप्त किया जाता है । (वयं तस्य यज्ञियस्य) हम उस यजनीय अग्निके (भद्रे सौमनसे अपि स्यां) उत्तम मनके अनुकूल रहें ॥ २१ ॥

१ वयं यज्ञियस्य भद्रे सौमनसे स्याम— हम उस पूजनीय अग्निके कल्याणकारी बुद्धिके अनुकूल रहें ।

[२२] हे (सहसावन् सुक्रतो) बलवान्, शोभन कर्म करनेवाले अग्ने ! (त्वं रराणः न इमं यज्ञं देवत्रा धेहि) तू आनन्दित होता हुआ हमारे इस यज्ञको अन्य देवताओंतक ले जा । हे (होतः) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (बृहतीः इषः नः प्रयंसि) अत्यधिक अन्न हमें प्रदान कर । तथा हे (अग्ने महि द्रविणं आयजस्व) अग्ने ! महान् पश्वादि युक्त उत्तम धन भी हमें दे ॥ २२ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू मंगलकारी मित्रता और रक्षाशक्तिसे युक्त होकर हमारे पास आ, तथा उपद्रव रहित और कीर्ति देनेवाले धनको प्रदान कर ॥ १९ ॥

यह अग्नि सबसे प्राचीन है, इसलिए सब इसकी स्तुति करते हैं और सब इसे अपने घरमें स्थापित करते हैं और इसमें यज्ञ करते हैं ॥ २० ॥

प्रत्येक मनुष्यमें स्थित यह अग्नि सज्जनों द्वारा प्रदीप्त किया जाता है । हम भी उस अग्निकी श्रेष्ठ बुद्धिके अनुसार चलें ॥ २१ ॥

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञको तू देवताओंतक पहुंचा और सब तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर ॥ २२ ॥

२३ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ २३ ॥

[२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती ।]

२४ वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥ १ ॥

२५ स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥

अर्थ— [२३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे । (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र और पौत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले हों । हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गोसनिं इळाम्— हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे ।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्— वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ।

[२]

[२४] (ऋतावृधे वैश्वानराय अग्नये) यज्ञकी वृद्धि करनेवाले तथा सबको आगे ले जानेवाले अग्निके लिए हम (घृतं न पूतं) घीके समान पवित्र (धिषणां जनामसि) स्तुतिको प्रकट करते हैं । (मनुषः वाघतः च) मनुष्य तथा अन्य उपासक (द्विता होतारं) दो प्रकारसे विभक्त तथा देवोंको बुलानेवाले अग्निको (धिया) अपनी बुद्धिसे (सं ऋण्वति) उसी प्रकार संवारते हैं जिस प्रकार (कुलिशः रथं न) बढई रथको ॥ १ ॥

[२५] (सः) वह अग्नि (जनुषा) जन्म लेते ही (उभे रोदसी रोचयत्) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको प्रकाशित करता है, (सः मात्रोः) वह अग्नि द्यु और पृथ्वीरूप अपनी दोनों माताओंका (ईड्यः पुत्रः अभवत्) प्रशंसनीय पुत्र है । वह अग्नि (हव्यवाट्) हविको ले जानेवाला (अ-जरः) जीर्णतासे रहित (चनः हितः) अन्नका भण्डार (दूळभः) अवध्य (विभावसुः) प्रदीप्त किरणोंवाला तथा (विशां अतिथिः) प्रजाओंका अतिथि है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू देवोंकी पूजा करनेवालेको हरतरहका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी और उपजाऊ भूमि दे । साथ ही उत्तम बुद्धि भी प्रदान कर ॥ २३ ॥

यह अग्नि यज्ञका साधक और सबका नेता है । सबको उत्तम मार्गकी तरफ ले जाता है । मनुष्य उसकी पवित्र स्तुति करें । जिस प्रकार घी पवित्र एवं तेजस्वी होता है, उसी प्रकार स्तुति भी पवित्र एवं तेजस्वी हो । स्तोतागण भौतिक और आध्यात्मिक रूपसे दो भागोंमें विभक्त इस अग्निको प्रदीप्त करके सुशोभित करते हैं ॥ १ ॥

यह अग्नि द्यौ और पृथ्वीरूप अपने पिता माताका योग्य और प्रशंसनीय पुत्र है, इसलिए यह जन्म लेते ही उनके यशको फैलाता है । इसी प्रकार सब अपने जीवनमें श्रेष्ठतम कर्म करके अपने मातापिताके यशको फैलायें । वह अग्नि अजर अवध्य, प्रदीप्त किरणोंसे युक्त और प्रजाओंमें अतिथिके समान पूज्य है ॥ २ ॥

२६ क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महा- मत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥
२७ आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतु- मग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥
२८ अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२६] (तरुषः दक्षस्य विधर्मणि) अत्यन्त पराक्रमी और चतुर मनुष्यके यज्ञमें (देवासः) देवगण अपने (क्रत्वा चित्तिभिः) कर्म और ज्ञानसे (अग्निं जनयन्त) अग्निको उत्पन्न करते हैं। (भानुना ज्योतिषा रुरुचानं) अत्यन्त तेजस्वी तेजसे शोभित होनेवाले (महां) इस महान् अग्निकी (वाजं सनिष्यन्) अन्न और बलकी कामना करता हुआ मैं (अत्यं न उप ब्रुवे) घोडेके समान स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

१ तरुषः दक्षस्य विधर्मणि देवासः क्रत्वा चित्तिभिः अग्निं जनयन्त— पराक्रमी और कुशल मनुष्यके यज्ञमें ही देवगण अपने पराक्रम और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं।

[२७] (मन्द्रस्य) पूजाके योग्य इस अग्निके, (वरेण्यं अह्रयं ऋग्मियं वाजं) चाहने योग्य, लज्जासे रहित और प्रशंसाके योग्य अन्नको (सनिष्यन्तः) प्राप्त करनेकी इच्छावाले हम (भृगूणां रातिं) भृगुओंको ऐश्वर्य देनेवाले, (उशिजं) कामना करनेवाले (कविक्रतुं) उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाले (दिव्येन शोचिषा राजन्तं) अत्यन्त दिव्य तेजसे प्रकाशित उस अग्निको (आ वृणीमहे) हम अपनाते हैं, स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

१ अह्रयं वाजं ऋग्मियं— लज्जासे रहित मार्गसे कमाया गया अन्न ही प्रशंसाके योग्य होता है।

[२८] (वृक्तबर्हिषः यतस्रुचः जनाः) आसनको बिछाये हुए और स्रुचाओंको हाथमें लिए हुए याजक (सुम्नाय) अपने सुखके लिए (वाजश्रवसं) बल और अन्नसे सम्पन्न (सुरुचं) उत्तम तेजस्वी (विश्वदेव्यं) सभी विद्वानोंका हित करनेवाले (रुद्रं) शत्रुओंको रुलानेवाले (यज्ञानां अपसां इष्टिं साधत्) श्रेष्ठतम कर्मों एवं यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले (अग्निं) अग्निको (इह पुरः दधिरे) यहां इस यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

१ सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां अपसां अग्निं इह पुरः दधिरे— उत्तम तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, शत्रुओंको रुलानेवाले, श्रेष्ठतमको करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं।

भावार्थ— देवगण केवल उसी मनुष्यके यज्ञमें इस अग्निको प्रकट करते हैं, जो पराक्रमी और कुशल होता है। देव अर्थात् विद्वान् ऐसे ही मनुष्यके यज्ञमें जाते हैं और उस यज्ञमें जाकर वे अपने श्रेष्ठ कर्मों और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं। विद्वान् ज्ञानी ब्राह्मण अपने राष्ट्रमें अपने कर्मों और ज्ञानसे नेताका निर्माण करते हैं, राष्ट्रके यज्ञमें नेताको उत्पन्न करते हैं, तब उस नेताको देखकर सारी प्रजायें बल प्राप्त करनेकी इच्छासे उस नेताकी प्रशंसा करता है, जिस प्रकार कोई वीर उत्तम घोडेको देखकर उसकी प्रशंसा करता है ॥ ३ ॥

जो नेता हो, वह ऐसे ही मार्गसे धन कमाये कि जिसमें लज्जा न रहे, जिस धनको कमाकर उसे छिपाना न पडे। ऐसा ही अन्न प्रशंसनीय है। ऐसे ही अन्नकी प्रजायें भी कामना करें अर्थात् प्रजायें भी उत्तम मार्गसे ही धनको प्राप्त करें। वह अग्रणी उत्तम ज्ञान और कर्म करनेवाला होकर उत्तम दिव्य तेजसे सम्पन्न हो, ऐसे ही अग्रणीको प्रजायें अपनाती हैं, अपना नेता स्वीकार करती हैं ॥ ४ ॥

प्रजायें बल और अन्न देनेवाले, तेजस्वी, सभी विद्वानोंका हित करनेवाले, पर शत्रुओंको रुलानेवाले तथा श्रेष्ठतम कर्मोंको करनेवाले और प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्रणीको अपने सुखके लिए हर काममें आगे स्थापित करती हैं। ऐसे उत्तम नेताका सत्कार करनेके लिए प्रजायें हमेशा आसन बिछाये रहती हैं ॥ ५ ॥

२९ पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्य-मुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥
३० आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कवि-रत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥
३१ नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणि-रग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥ ८ ॥
३२ तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनो ऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुज-मु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥

अर्थ—[२९] हे (पावकशोचे होतः अग्ने) पवित्र ज्वालाओंवाले तथा देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! (यज्ञेषु परि वृक्तबर्हिषः) यज्ञोंमें चारों ओर आसन बिछाये हुए तथा (दुवः इच्छमानासः नरः) तेरी सेवा करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य (आप्यं तव क्षयं उपासते) अत्यन्त श्रेष्ठ तेरे यज्ञगृहमें बैठे हुए हैं, (तेभ्यः द्रविणं धेहि) उन्हें तू धन दे ॥ ६ ॥

[३०] (यत् जातं एनं अपसः अधारयन्) जब उत्पन्न हुए इस अग्निको कर्म करनेवालोंने धारण किया, तब इस अग्निने अपने तेजसे (रोदसी आ अपृणत्) द्यु और पृथ्वीलोकको भर दिया (महत् स्वः) महान् अन्तरिक्षको भी भर दिया, (सः चनोहितः कविः) वह अन्नमें सम्पन्न तथा ज्ञानी अग्नि (अध्वराय वाजसातये) हिंसारहित यज्ञमें (अत्यः न परि णीयते) घोडेके समान चारों ओर ले जाया जाता है ॥ ७ ॥

[३१] (रथीः) उत्तम गति करनेवाला (बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः) महान् यज्ञका द्रष्टा वह (अग्निः) अग्नि (देवानां पुरोहितः अभवत्) देवोंका पुरोहित हुआ । ऐसे (हव्यदातिं) हविको ग्रहण करनेवाले (सु-अध्वरं) उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाले (दम्यं) शत्रुओंका दमन करनेवाले (जातवेदसं नमस्यत दुवस्यत) जातवेदा अग्निको प्रणाम करो, उसकी सेवा करो ॥ ८ ॥

१ रथीः बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्— उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है ।

[३२] (उशिजः अमृत्यवः) कामना करनेवाले अमरणशील देवोंने (यह्वस्य परिज्मनः अग्नेः) महान् और चारों ओर जानेवाले अग्निके (समिधः तिस्रः अपुनन्) अत्यन्त तेजस्वी तीन शरीरों या रूपोंको पवित्र किया । (तासां एकां भुजं) उनमेंसे एक सर्वभक्षक रूपको (मर्त्ये अदधुः) मर्त्यलोकमें स्थापित किया, (द्वे उ) बाकी दो शरीर या रूप (जामिं लोकं ईयतुः) दो परस्पर सम्बन्धित लोकोंमें चले गए ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे शुद्ध और पवित्रकारी ज्वालाओंसे युक्त अग्ने ! यज्ञके चारों ओर तेरे निवास स्थान यज्ञगृहमें बैठे हुए मनुष्य तेरी सेवा करनेकी अभिलाषा करते हैं, इसी अभिलाषासे वे यज्ञगृहमें बैठे हुए हैं, उन्हें तू धन दे ॥ ६ ॥

जब यज्ञ कर्म करनेवालोंमें इस अग्निको और अधिक प्रदीप्त किया, तब इसके प्रकाशसे द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी तीनों लोक भर गए । यह हिंसारहित यज्ञमें चारों ओर ले जाया जाता है, जिस प्रकार घोडा चारों ओर घुमाया जाता है ॥ ७ ॥

उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंका निरीक्षण करनेवाला ही देवों अर्थात् विद्वानोंका पुरोहित हो सकता है । ऐसे शत्रुओंका दमन करनेवाले तथा उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाले तथा सभी तरहके धनसे सम्पन्न अग्रणीको सब प्रजायें प्रणाम करती हैं और उसकी सेवा करती हैं ॥ ८ ॥

मृत्युसे रहित देवोंने महान् और सर्वव्यापक अग्निको पार्थिव, आन्तरिक्ष और दिव्य इन तीन रूपोंमें विभक्त किया । उनमें एक भौतिक अग्नि थी, जो सब पदार्थोंको खा जाती थी, उसे पृथ्वी पर स्थापित किया, बाकी दोमेंसे एकको अन्तरिक्षमें विद्युतके रूपमें दूसरीको सूर्यके रूपमें द्युलोकमें स्थापित किया ॥ ९ ॥

३३ विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन् त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत् स गर्भमेषु दीधरत् ॥ १० ॥
३४ स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥ ११ ॥
३५ वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद् दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२ ॥
३६ ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१ मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥

अर्थ— [३३] (इषः मानुषीः) अन्नकी इच्छा करनेवाली मानवी प्रजायें (विशां विश्पतिं कविं सीं) प्रजाके पालक और ज्ञानी इस अग्निको (तेजसे) तीक्ष्ण बनानेके लिए (स्वधितिं न) तलवारके समान (सं अकृण्वन्) उत्तम बनाते हैं। (सः) वह अग्नि (उद्वतः निवतः वेविषत् याति) ऊंचे और नीचे प्रदेशोंको व्याप्त करता हुआ जाता है, (सः एषु भुवनेषु गर्भं दीधरत्) वह अग्नि इन लोकोंमें गर्भ स्थापित करे ॥ १० ॥

[३४] (पृथुपाजाः) अत्यन्त बलवान् (अमर्त्यः) न मरनेवाला, (दाशुषे वसु रत्ना वि दयमानः) दानशीलको धन और रत्नोंको देनेवाला, (प्रजज्ञिवान् वृषा) अत्यन्त ज्ञानवान और बलवान् (सः वैश्वानरः) वह वैश्वानर अग्नि (जठरेषु जिन्वते) मनुष्योंके जठरमें बढता है और (सिंहः न) सिंहके समान (चित्रेषु नानदत्) अनेक प्रकारके वनोंमें गर्जता है ॥ ११ ॥

[३५] (प्रत्नथा वैश्वानरः) प्राचीन वैश्वानर अग्नि (सुमन्मभिः भन्दमानः) उत्तम स्तोत्रोंसे प्रशंसित होता हुआ (नाकं) अन्तरिक्षमें होता हुआ (दिवः पृष्ठं आरुहत्) द्युलोककी पीठपर चढ जाता है। (पूर्ववत्) पहलेके समान ही (जन्तवे धनं जनयन्) मनुष्य या प्राणीमात्रके लिए धारण करनेवाले पदार्थोंको उत्पन्न करता हुआ (जागृविः सः) सदा जाग्रत रहनेवाला वह अग्नि (समानं अज्मं पर्येति) उत्तम मार्गसे चारों ओर जाता है ॥ १२ ॥

[३६] (ऋतावानं) ऋतका पालन करनेवाले (यज्ञियं) पूजनीय (विप्रं उक्थ्यं) ज्ञानी और प्रशंसनीय (दिवि क्षयं) द्युलोकमें रहनेवाले (यं) जिस वैश्वानर अग्निको (मातरिश्वा आ दधे) वायु धारण करता है, (चित्रयामं) अनेक तरहसे जानेवाले (हरिकेशं) तेजस्वी ज्वालाओंवाले (सुदीतिं) उत्तम दीप्तिवाले (तं अग्निं) उस अग्निको (नव्यसे सुविताय) प्रशंसाके योग्य तथा उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिए (ईमहे) चाहते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थ— अन्नको चाहनेवाली मानवी प्रजायें प्रजाओंके पालक तथा ज्ञानी इस अग्निको तीक्ष्ण करनेके लिए उसी प्रकार उत्तम बनाते हैं, जिस प्रकार एक तलवारको तेज करते हैं। प्रदीप्त हुई अग्नि ऊंचे और नीचेके प्रदेशोंको अपने प्रकाशसे व्याप्त करती हुई चलती हैं। वह अग्नि इस पृथ्वीमें उत्पादक शक्ति स्थापित करे। पृथ्वीमें अग्नि ही उत्पादक शक्ति बढाती है ॥ १० ॥

अत्यन्त बलवान् और मरणधर्मसे रहित यह अग्नि दानशीलको अनेक रत्न और धन प्रदान करता है, वही अग्नि मनुष्योंके उदरोंमें जठराग्निके रूपमें बढता है और दावाग्निके रूपमें वही अनेक वनोंमें गरजता हुआ बढता है ॥ ११ ॥

यज्ञमें प्रदीप्त होनेपर इस अग्निका प्रकाश अन्तरिक्षमें होता हुआ द्युलोकमें जाता है। यह अग्नि संसारमें प्राणीमात्रको धारण करनेवाले पदार्थोंको उत्पन्न करता है और हमेशा जागृत रहता हुआ उत्तम मार्गसे चारों ओर जाता है ॥ १२ ॥

ऋत अर्थात् नियमोंका पालन करनेवाले, पूज्य, ज्ञानी और प्रशंसनीय तथा द्युलोकमें रहनेवाली इस वैश्वानर अग्निको वायु अन्तरिक्षमें धारण करता है। ऐसे अनेक तरहसे गमन करनेवाले तेजस्वी इस अग्निको हम प्रशंसनीय तथा उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करनेवाले धनको प्राप्त करनेके लिए चाहते हैं ॥ १३ ॥

३७ शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४ ॥
३८ मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद् राय ईमहे ॥ १५ ॥

[३]

[ऋषिः- ११ गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- जगती ।]

३९ वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ १ ॥

अर्थ— [३७] (शुचिं) शुद्ध पवित्र (यामन् इषिरं) यज्ञमें जानेवाले (स्वर्दृशं) सबको देखनेवाले (दिवः केतुं) द्युलोकके पताकास्वरूप (रोचनस्थां उषर्बुधं) सदा तेजमें ही प्रतिष्ठित रहनेवाले, उषःकालमें उठनेवाले (दिवः मूर्धानं) द्युलोकके ऊंचे भागपर रहनेवाले (अप्रतिष्कुतं) प्रतिबन्ध रहित गतिवाले (वाजिनं) बलवान् (बृहत् तं) महान उस अग्निको (नमसा ईमहे) नमस्कारोंसे प्रसन्न करते हैं ॥ १४ ॥

[३८] (मन्द्रं होतारं शुचिं) आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलानेवाले, शुद्ध पवित्र, (दमूनसं उक्थ्यं विश्वचर्षणिं) शत्रुओंका दमन करनेवाले, प्रशंसनीय, सारे संसारको देखनेवाले (रथं न चित्रं) रथके समान सुन्दर (वपुषाय दर्शतं) शरीरसे सुन्दर (मनुर्हितं) मनुष्योंका हित करनेवाले उस अग्निसे (रायः सदं इत् ईमहे) हमेशा धन मांगते हैं ॥ १५ ॥

[३]

[३९] (विप्रः) ज्ञानी मनुष्य (गातवे) उत्तम मार्गपर जानेके लिए (धरुणेषु) यज्ञोंमें (पृथुपाजसे वैश्वानराय) विशाल बलवाले विश्वानर अग्निकी (विधन्त) सेवा करते हैं और (रत्ना) रत्न प्राप्त करते हैं। (अमृतः अग्निः) मरणरहित अग्नि (देवान् दुवस्यति) देवोंकी सेवा करता है, (अथ) इसीलिए (सनता धर्माणि) प्राचीन धर्म (न दुदूषति) दूषित नहीं होते ॥ १ ॥

१ विप्रः गातवे पृथुपाजसे वैश्वानराय विधन्त— ज्ञानी जन उत्तम मार्गपर जानेके लिए विशाल बलवाले वैश्वानरकी सेवा करते हैं ।

२ अमृतः अग्निः देवान् दुवस्यति— मरणधर्मसे रहित अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है ।

३ अथ सनता धर्माणि न दुदूषति— इसलिए प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते ।

भावार्थ— शुद्ध पवित्र, यज्ञमें जानेवाले, प्रकाशके मार्ग, द्युलोककी पताका रूप, उषःकालमें उठनेवाले, द्युलोकमें सबसे ऊंचे स्थानपर रहनेवाले इस अग्निको हम नमस्कारोंसे प्रसन्न करते हैं ॥ १४ ॥

आनन्द देनेवाले, देवोंको बुलानेवाले, शुद्ध पवित्र, शत्रुओंका दमन करनेवाले, प्रशंसनीय समस्त संसारका निरीक्षण करनेवाले, सुन्दर ज्वालाओंवाले तथा मनुष्योंका हित करनेवाले अग्निसे हम सदा धन मांगते हैं ॥ १५ ॥

ज्ञानी जन उत्तम मार्गपर जानेके लिए अग्निकी सेवा करते हैं और रत्न आदि धन प्राप्त करते हैं और अमर अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है । निःस्वार्थ सेवाकी यह परम्परा अखण्ड चली आती है। सेवाकी इस परम्पराके कारण ही धर्म दोषरहित रहता है, जब सेवामें स्वार्थ प्रविष्ट हो जाता है, तब सेवा भी खण्डित हो जाती है– साथ ही धर्म भी दूषित हो जाता है ॥ १ ॥

×

४० अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभि र्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥
४१ केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि संदधुर्गिर स्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥
४२ पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥

अर्थ— [४०] (दस्मः होता) सुन्दर और होता तथा (दूतः) देवोंका दूत यह अग्नि (रोदसी अन्तः) द्यु और पृथ्वी लोकके अन्दर व्यापक होकर (ईयते) चलता है । (देवेभिः इषितः) देवोंके द्वारा भेजा गया तथा (धियावसुः) ज्ञानसे निवास करानेवाला यह अग्नि (मनुषः पुरोहितः निषत्तः) मनुष्यके पुरोहितके रूपमें बैठा हुआ (द्युभिः) अपने तेजोंसे (बृहन्तं क्षयं परि भूषति) महान् यज्ञगृहको अलंकृत करता है ॥ २ ॥

१ मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्तं क्षयं परि भूषति— मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित करे ।

[४१] (विप्रासः) ज्ञानी जन (यज्ञानां केतुं) यज्ञोंकी पताका रूप और (विदथस्य साधनं) और यज्ञके साधनरूप (अग्निं) अग्निको (चित्तिभिः महयन्त) अपने ज्ञानोंसे पूजा करते हैं । (गिरः) ज्ञानियोंने (यस्मिन् अपांसि अधि संदधुः) जिसमें कर्म स्थापित किए, (तस्मिन् यजमानः सुम्नानि आ चके) उसीमें यज्ञ करनेवाला सुखोंको पाना चाहता है ॥ ३ ॥

१ यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि— जहां पर कर्म है, वहीं पर सुख है ।

[४२] यह अग्नि (यज्ञानां पिता) यज्ञोंका पालक (विपश्चितां असु-रः) ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता और (वाघतां वयुनं विमानं) स्तोताओंके मार्गको नापनेवाला है । वह अग्नि अपने (भूरिवर्पसा) अनेक रूपोंसे (रोदसी आ विवेश) द्यु और पृथ्वीलोकमें प्रविष्ट हुआ है । वह (पुरुप्रियः कविः) बहुतोंका प्रिय और ज्ञानी अग्नि (धामभिः भन्दते) अपने तेजोंसे प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

१ यज्ञानां पिता विपश्चितां असु-रः वाघतां वयुनं विमानं— वह अग्नि यज्ञोंका पालक, ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता या बल देनेवाला और स्तोताओंको उत्तम मार्ग दिखानेवाला है ।

भावार्थ— सुन्दर और देवोंका आह्वाता अग्नि द्यु और पृथ्वी दोनों लोकोंमें व्याप्त होकर चलता है, यह अग्नि देवोंका दूत है, इसलिए वह देवोंके द्वारा इस पृथ्वीपर भेजा जाता है और वह आकर देवोंका पुरोहित बनता है । मनुष्य हर काममें इस अग्निको ही आगे स्थापित करते हैं । तब यह अग्नि अपने प्रकाशसे विशाल यज्ञगृहको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

यह अग्नि यज्ञकी पताका है, अर्थात् इस अग्निके प्रदीप्त होनेपर लोगोंको यज्ञ होनेका पता चलता है, इस अग्निसे यज्ञ सिद्ध होते हैं, इसलिए यह यज्ञका साधन है । यज्ञ करनेवाला ज्ञानी उसी सुखको पाना चाहता है, जिसमें कर्म हों । कर्म करनेमें ही जीवनका सुख है, आलस्यमें जीवनका नाश है ॥ ३ ॥

इस अग्निसे यज्ञोंकी सिद्धि होती है, इसलिये यह यज्ञोंका पालक है, ज्ञानियोंको प्राणशक्तिको बलवान् बनाता है और स्तुति करनेवालोंको उत्तम मार्ग दर्शाता है । वह सूर्य और भौतिक अग्निके रूपमें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें व्याप्त होता है । ऐसा वह ज्ञानी अग्नि तेजोंसे सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

४३ चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥ ५ ॥
४४ अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥ ६ ॥
४५ अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥ ७ ॥
४६ विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥

अर्थ— [४३] (चन्द्रं) चन्द्रके समान तेजस्वी रथवाले (हरिव्रतं) तेजस्वी कर्मवाले (अप्सुषदं) जलोंमें निवास करनेवाले (स्वर्विदं) सर्वज्ञ (विगाहं) सर्वत्र व्याप्त (तूर्णिं) शत्रुओंके विनाशक (तविषीभिः आवृतं) बलोंसे घिरे हुए (भूर्णिं) भरणपोषण करनेवाले (सुश्रियं) उत्तम शोभावाले (वैश्वानरं) वैश्वानर अग्निको (देवासः इह दधुः) देवगण यहां इस यज्ञमें स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

[४४] (साधदिष्टिभिः जन्तुभिः) यज्ञ करनेमें कुशल ऋत्विजोंके द्वारा चलाए गए (मनुषः यज्ञं) मनुष्यके यज्ञको (धिया तन्वानः) अपने कर्मसे विस्तृत करते हुए (रथीः) सर्वत्र गति करनेवाला (जीरः) शीघ्रतासे काम करनेवाला (दमूनाः) दयासे युक्त चित्तवाला, (अभिशस्तिचातनः) शत्रुओंका विनाशक (अग्निः) अग्नि (अन्तः ईयते) दोनों लोकोंमें व्याप्त होकर चलता है ॥ ६ ॥

[४५] हे मनुष्य (आयुनि सु-अपत्ये) दीर्घ आयुवाले उत्तम पुत्रसे लिए (जरस्व) अग्निकी स्तुति कर । हे (अग्ने) अग्ने ! तू (ऊर्जा पिन्वस्व) ओजसे हमें पूर्ण कर, (नः इषः सं दिदीहि) हमें अन्न प्रदान कर । हे (जागृवे) सदा जागृत रहनेवाले अग्ने ! (बृहतः) स्तुति करनेवालेकी (वयांसि जिन्व) आयुको दीर्घ कर । (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला तू (विपां देवानां उशिक् असि) ज्ञानियों और देवोंका प्रिय है ॥ ७ ॥

१ आयुनि सु अपत्ये जरस्व— दीर्घायुवाले उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए ।

[४६] (नरः) मनुष्य (वृधे) अपनी समृद्धिके लिए (विश्पतिं) प्रजाओंके पालक (यह्वं) महान् (अतिथिं) अतिथिके समान पूज्य (धीनां यन्तारं) बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले (वाघतां उशिजं) स्तोताओंको अत्यन्त प्रिय (अध्वराणां चेतनं) यज्ञोंके जीवन (जातवेदसं) जातवेदा अग्निको (नमसा जूतिभिः प्रशंसन्ति) नमस्कारों और स्तुतियोंसे प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि चन्द्रमाके समान आनन्ददायक, तेजस्वी किरणोंवाला, उत्तम कर्म करनेवाला, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त शत्रुओंका विनाशक, बलसे युक्त और भरणपोषण करनेवाला है । ऐसे देवको अन्य सभी देव यज्ञमें स्थापित करते हैं ॥ ५ ॥

सर्वत्र-गति करनेवाला यह अग्नि अपने उत्तम कर्मसे मनुष्योंके द्वारा चलाए गए यज्ञको और विस्तृत करता है । यह अग्नि दयासे युक्त चित्तवाला, शत्रुओंका विनाशक है ॥ ६ ॥

हे मनुष्य ! लम्बी उम्रवाले पुत्रको प्राप्त करनेके लिए तू अग्निकी स्तुति कर । वह अग्नि भी तेरे वीर्यको पुष्ट करे, अन्न प्रदान करे । तू दीर्घायु हो । शरीरके अन्दरकी अग्निकी जो उपासना करता है, उससे वह अग्नि प्रवृद्ध होकर खाये हुए अन्नको पचा डालती है, अन्नके पचनेसे शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है, और वह वीर्य पुष्ट होनेपर उसकी उत्तम और दीर्घायु-वाली सन्तानें उत्पन्न होती हैं ॥ ७ ॥

मनुष्य अपनी समृद्धिके लिए अतिथिके समान पूज्य, प्रजाओंके पालक, बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले, स्तुति करनेवालोंको अत्यन्त प्रिय अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥ ८ ॥

४७ विभावा देवः सुरणः परि क्षिती—रग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वय—मुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥

४८ वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १० ॥

४९ वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृह—दरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायता—ग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥ ११ ॥

अर्थ— [४७] (सुरणः) उत्तम आनन्द देनेवाला (सुमद्रथः) उत्तम रथवाला (विभावा देवः अग्निः) तेजस्वी और उत्तम गुणोंवाला अग्नि (शवसा) अपने बलसे (क्षितीः परि बभूव) मनुष्योंके चारों ओर व्याप्त है। (भूरिपोषिणः दमे) बहुतसे मनुष्योंको पुष्ट करनेवालेके घरमें बैठकर (वयं) हम (तस्य व्रतानि) उस अग्निके कर्मोंको (सुवृक्तिभिः) अपने उत्तम वचनोंसे (उप आ भूषेम) और अलंकृत करें ॥ ९ ॥

[४८] हे (विचक्षण वैश्वानर) बुद्धिमान् अग्ने ! (येभिः स्वर्विद् अभवः) जिनसे तू स्वर्गको प्राप्त करनेवाला हुआ, (तव धामानि) तेरे उन तेजोंको (आ चके) मैं चाहता हूँ। हे (अग्ने) अग्ने ! तूने (जातः) उत्पन्न होकर ही (रोदसी भुवनानि आ पृणो) द्यु, पृथ्वी एवं अन्य लोकोंको अपने प्रकाशसे भर दिया। (ता विश्वा) उन सब लोकोंको तू (त्मना) अपनी शक्तिसे ही (परि भूः असि) व्याप्त करता है ॥ १० ॥

१ विचक्षण ! येभिः स्वर्विद् अभवः, तव धामानि आ चके— हे बुद्धिमान् अग्ने ! जिनसे तूने स्वर्ग प्राप्त किया उन तेरे तेजोंको हम चाहते हैं।

[४९] (वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः) वैश्वानरके समान कर्म करनेसे (बृहत्) महान् धन प्राप्त होता है। तब (एकः कविः) एक ज्ञानी (सु-अपस्यया अरिणात्) उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे दान कर देता है। (अग्निः) यह अग्नि (भूरिरेतसा) अपने अत्यधिक बलसे (उभा पितरा महयन्) दोनों मातापिताकी पूजा करता हुआ (अजायत) प्रकट हुआ ॥ ११ ॥

१ वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः बृहत्— वैश्वानर अग्निकी तरह कर्म करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।

२ कविः सु-अपस्यया अरिणात्— ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे उस धनका दान कर देता है।

भावार्थ— उत्तम रीतिसे आनन्द देनेवाला यह तेजस्वी देव अग्नि मनुष्योंके चारों ओर व्याप्त रहता है। मनुष्य भी अपने उत्तम वचनोंसे इस अग्निके कर्मका वर्णन करें ॥ ९ ॥

अग्नि जिन तेजोंके कारण सुख एवं आनन्द प्राप्त करता है, उन तेजोंको प्राप्त करनेका प्रयत्न मनुष्यको करना चाहिए। यह उत्पन्न होते ही सारे लोकोंको प्रकाशसे भर देता है। उसी तरह मनुष्य भी अपने तेजसे सर्वत्र अपना यश फैलाकर जितने भी लोक हैं, उन सबको यह अग्नि अपनी शक्तिसे व्याप लेता है। उसी तरह मनुष्य भी अपनी ही शक्तिसे चारों ओर यश फैलाए ॥ १० ॥

सबके नेता अग्रणीके समान उत्तम कर्म करनेसे सबको बहुतसा धन मिल सकता है। ज्ञानीजन उस धनको प्राप्त करके उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे दूसरोंको दे डालते हैं, जब कि अज्ञानी दूसरोंको न देकर स्वयं उपभोग करते हैं। यह अग्नि अपने बलसे माता पृथ्वी और पिता द्युकी पूजा करता हुआ प्रकट होता है ॥ ११ ॥

[४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- आप्रीसूक्तं [= १ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ तनूनपात्, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः] । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५० समित्समित् सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान् यजथाय वक्षि सखा सखीन् त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥
५१ यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥ २ ॥
५२ प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान् यक्षदिषितो यजीयान् ॥ ३ ॥

[४]

अर्थ— [५०] हे अग्ने ! (समित्समित्) समिधाओंसे अच्छी तरह प्रदीप्त होकर (सुमनाः) उत्तम मनवाला तू (अस्मे बोधि) हमें जागृत कर, (शुचाशुचा) अत्यन्त पवित्र और तेजस्वी तेजसे युक्त होकर हमें (वस्वः सुमतिं रासि) धनके विषयमें उत्तम बुद्धि प्रदान कर । हे (देव) अग्ने ! (देवान् यजथाय वक्षि) देवोंको यज्ञके लिए बुला ला । हे (अग्ने) अग्ने ! (सखा) मित्रके समान हितकारी (सुमनाः) उत्तम मनवाला होकर (सखीन्) मित्र देवोंका (यक्षि) सत्कार कर ॥ १ ॥

१ वस्वः सुमतिं रासि— धनके बारेमें हमें उत्तम बुद्धि दे ।

[५१] (वरुणः मित्रः अग्निः देवासः) वरुण, मित्र, अग्नि आदि देव (यं) जिस तनूनपात् देवकी (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अहन् त्रिः) दिनमें तीन बार (आ यजन्ते) पूजा करते हैं । (सः तनूनपात्) वह तनूनपात् देव तू (नः) हमारे (घृतयोनिं) घीसे जीवन प्राप्त करनेवाले (विधन्तं) देवोंकी सेवा करनेवाले (इमं यज्ञं) इस यज्ञको (मधुमन्तं कृधि) मधुरतासे पूर्ण कर ॥ २ ॥

१ नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि— हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर ।

[५२] (विश्ववारा दीधितिः) सारे संसारके द्वारा वरणीय तथा प्रकाश करनेवाली (इळः) बुद्धि (प्रथमं यजध्यै) सबसे प्रथम पूजा करनेके लिए (होतारं प्र जिगाति) होता अग्निके पास जाती है । (वृषभं) उस बलवान् अग्निकी (वन्दध्यै) वन्दना करनेके लिए हम (नमोभिः अच्छ) नमस्कार करते हुए उसके पास जाएं, (इषित सः) हमारे द्वारा प्रेरित होकर वह अग्नि भी (यजीयान् देवान् यक्षत्) पूजनीय देवोंकी पूजा करे ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! समिधाओंसे प्रज्वलित होकर तू हमें जागृत कर, तू हमें धनके बारेमें उत्तम बुद्धि दे, हम धन पाकर अभिमानी न हो जाएं । धन पाकर भी हम उदार और उत्तम बुद्धिसे युक्त रहें । तू उत्तम मनवाला होकर यज्ञ करनेके लिए देवोंको बुला ला और उनका सत्कार कर ॥ १ ॥

इस तनूनपात् देवकी पूजा सभी देव प्रतिदिन, वह भी प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और सायं सवनके रूपमें दिनमें तीन बार करते हैं । हे तनूनपात् देव ! घीसे जीवन प्राप्त करनेवाले तथा देवोंकी सेवा करनेवाले हमारे इस यज्ञको मधुरतासे युक्त करो ॥ २ ॥

बुद्धि इतनी उत्तम हो कि वह सारे संसारको उन्नत करनेवाली और सर्वत्र ज्ञानका प्रकाश फैलानेवाली हो । उस बुद्धिसे युक्त होकर हम बलवान् अग्निकी पूजा करें और हमारे द्वारा पूजित होकर वह अग्नि भी अन्य देवोंकी पूजा करे ॥ ३ ॥

५३ ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकारि ऊर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥ ४ ॥
५४ सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीइमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥ ५ ॥
५५ आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६ ॥
५६ दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥

अर्थ— [५३] (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (ऊर्ध्वः गातुः अकारि) हमने उन्नतिशील मार्गका ही आश्रय लिया है, हे बर्हि और अग्ने ! (वां) तुम दोनोंकी (शोचींषि) ज्वालायें (रजांसि ऊर्ध्वा प्रस्थिता) अन्तरिक्ष आदि लोकोंमें बहुत ऊपर चली गई हैं । (होता) होता (दिवः नाभा नि असादि) तेजस्वी यज्ञके केन्द्रमें बैठ गया है, हम भी (देवव्यचा) देवोंसे व्याप्त (बर्हिः स्तृणीमहि) आसनको बिछाते हैं ॥ ४ ॥

१ अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि— हिंसारहित यज्ञमें उन्नतशील मार्गको ही हमने पकडा है ।

[५४] (मनसा वृणानाः) मनसे हमारे यज्ञको चाहते हुए तथा (ऋतेन विश्वं इन्वन्तः) ऋतसे विश्वको तृप्त करते हुए देवगण (सप्त होत्राणि प्रतियन्) सात होताओंसे युक्त यज्ञोंकी तरफ जाते हैं । (विदथेषु प्रजाताः) यज्ञोंमें उत्पन्न (नृपेशसः) मनुष्यके रूपवाले (पूर्वीः) बहुतसे देवता (इमं यज्ञं अभिविचरन्ति) इस यज्ञके चारों ओर घूमते हैं ॥ ५ ॥

[५५] (भन्दमाने) प्रशंसित होते हुए (विरूपे उपाके) विरुद्ध रूपोंवाली होनेपर भी एक साथ रहनेवाली (उषसा) उषा और रात्री (तन्वा स्मयेते) अपने शरीरसे प्रकाशित होती हैं । (यथा) जिस प्रकार (मित्रः वरुणः उत मरुत्वान् इन्द्रः नः जुजोषत्) मित्र, वरुण और मरुतोंसे युक्त इन्द्र हमपर प्रसन्न रहें, उस प्रकार (महोभिः) तेजोंसे हमें तेजस्वी करें ॥ ६ ॥

[५६] मैं (प्रथमा) सब देवोंमें मुख्य (दैव्या होतारा) दिव्य होताओंको (न्यृंजे) प्रसन्न करता हूँ । (सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति) सात होता भी इन दोनोंको अन्नसे आनन्दित करते हैं । (ऋतं शंसन्तः) स्तुति करते हुए (व्रतपाः दीध्यानाः) व्रतका पालन करनेवाले तथा तेजस्वी (ते) वे होता (ऋतं अनु व्रतं इति आहुः) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है ऐसा कहते हैं ॥ ७ ॥

१ ऋतं अनु व्रतं इति आहुः— सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है ऐसा कहते हैं ।

भावार्थ— मनुष्य जब यज्ञमें दीक्षित हो जाए तब वह सदा कर्म ही करे, ऐसे ही कर्म करे कि जिससे उनकी उन्नति हो । इस प्रकार उत्तम कर्म करते हुए वह यज्ञाग्निको प्रदीप्त करे और उसकी ज्वालायें अन्तरिक्षतक पहुंचे । यज्ञके केन्द्रमें अग्नि स्थापित करनेके बाद आसन बिछाये जाएं ॥ ४ ॥

हमारे यज्ञको मनसे चाहते हुए तथा नियमोंके अनुसार सारे विश्वको तृप्त करते हुए देवगण यज्ञकी तरफ आएं और इस यज्ञकी चारों ओरसे रक्षा करें ॥ ५ ॥

उषा और रात्री दोनों विरुद्ध रूपवाली हैं, उषा उज्ज्वल है और रात्री कृष्ण, फिर भी दोनों मिलकर रहती हैं और प्रकाशित होती हैं । ये दोनों देवियां हमें तेजसे युक्त करें, ताकि मित्र, वरुण आदि देव भी हम पर प्रसन्न हों ॥ ६ ॥

मैं देवोंमें सबसे मुख्य दिव्य होताओंको प्रसन्न करता हूँ । अन्य भी स्तोता अन्नसे इन्हें तृप्त करते हैं । सत्यमार्ग पर चलना ही सर्वश्रेष्ठ व्रत है ॥ ७ ॥

५७ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
५८ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
५९ वनस्पतेऽव सृजोप देवा—नग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥
६० आ याह्यग्ने समिधानो अर्वा—ङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [५७] (भारती भारतीभिः सजोषाः) हमारी वाणी दूसरे लोगोंकी वाणियोंके साथ मिल जाए, (मनुष्येभिः दैवैः इडा) मनुष्योंकी और देवोंकी बुद्धि एक हो (अग्निः च) तेज भी एक हो (सरस्वती सारस्वतेभिः) हमारा ज्ञान अन्य लोगोंके ज्ञानके साथ मिले, इस प्रकार (तिस्रः देवीः) वाणी, बुद्धि और ज्ञानरूपी तीनों देवियां (अर्वाक्) हमारे पास आकर (इदं बर्हिः सदन्तु) इस आसन पर बैठें ॥ ८ ॥

१ भारती भारतीभिः सजोषाः— (देशमें) एककी वाणी अन्योंकी वाणियोंके अनुकूल हो ।
२ मनुष्येभिः दैवैः इडा— साधारण मनुष्योंकी बुद्धि विद्वानोंकी बुद्धिके अनुसार चले ।
३ सरस्वती सारस्वतेभिः एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञानके अनुकूल हो ।

[५८] (देव त्वष्टः) हे त्वष्टा देव ! (रराणः) आनन्दित होता हुआ तू (नः) हमें (तुरीपं पोषयित्नु) बलकारक और पुष्टिकारक (तत्) वह अन्न (विस्यस्व) प्रदान कर, (यतः) ताकि (वीरः) वीर (कर्मण्यः) कर्म करनेवाला, (सुदक्षः) चतुर (युक्तग्रावा) यज्ञ करनेवाला और (देवकामः) देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला पुत्र (जायते) उत्पन्न हो ॥ ९ ॥

[५९] हे (वनस्पते) वनके स्वामिन् ! तू (देवान् अव उप सृज) देवोंको हमारे समीप कर । (शमिता अग्निः) शान्ति देनेवाला अग्नि देव (हविः सूदयाति) हविको परिपक्व करे, (यथा) चूंकि वह अग्नि (देवानां जनिमानि वेद) देवोंके कर्मोंको जानता है, इसलिए (सत्यतर सः इत् उ होता) अत्यन्त सत्यशील वह अग्नि होता ही (यजाति) देवोंकी पूजा करे ॥ १० ॥

[६०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (समिधानः) अच्छी तरह प्रदीप्त होता हुआ (इन्द्रेण) इन्द्रके साथ और (तुरेभिः देवैः) बलशाली देवोंके साथ (सरथं) एक रथपर बैठकर (अर्वाक् आ याहि) हमारी तरफ आ । (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंवाली अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे आसनपर बैठे, तथा (स्वाहा) उत्तम रीतिसे दी गई हविसे (अमृताः देवाः मादयन्तां) अमर देव आनन्दित हों ॥ ११ ॥

भावार्थ— देशके सभी लोग आपसमें प्रेमसे बोले, सबकी वाणियां परस्पर अनुकूल हों, विरोधी न हों । सबकी बुद्धियां एक सी हों, सब विद्वानोंके बताये मार्गपर चलें और सब मनुष्योंका ज्ञान भी परस्पर अनुकूल हो ॥ ८ ॥

मनुष्य सदा बलकारक और पुष्टिकारक अन्नका ही सेवन करे, उस अन्नसे वीर्यवान् होकर वीर, कर्मशील, चतुर, यज्ञशील और देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले पुत्रको उत्पन्न करे ॥ ९ ॥

हे वनस्पते ! देवोंको हमारे समीप कर और शान्तिदायक अग्नि हविको परिपक्व कर । वह अग्नि ही देवोंके जन्म एवं कर्मोंको जानता है और वही सत्यका पालन करनेवाला है, इसलिए वही देवोंकी पूजा करे ॥ १० ॥

यह अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होकर इन्द्र तथा अन्य देवोंके साथ हमारी तरफ आवे । अदिति भी हमारे आसनपर बैठे तथा अमर देव भी हमारे द्वारा उत्तम मेधसे दी गई आहुतिको लेकर आनन्दित हों ॥ ११ ॥

[५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६१ प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो ऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धो ऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥

६२ प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभि- र्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥

६३ अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्व१- पां गर्भो मित्र ऋतेन साधन् ।
आ हर्यतो यजतः सान्वस्था- दभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥ ३ ॥

६४ मित्रो अग्निर्भवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

---

[५]

अर्थ— [६१] (अग्निः उषसः चेकितानः) उषाओंका ज्ञाता (विप्रः कवीनां पदवीः अग्निः प्रति अबोधि) मेधावी क्रान्तदर्शी विद्वानोंके मार्ग पर जानेवाला यह अग्नि चैतन्य होता है । (पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धः वह्निः) अत्यन्त तेजस्वी और देवताभिलाषी व्यक्तियों द्वारा प्रदीप्त किया हुआ यह अग्नि (तमसः द्वारा अप आवः) अन्धकारके द्वारोंको खोल देता है ॥ १ ॥

१ उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि— उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर जानेवाला ही ज्ञानवान् होता है ।

[६२] (नमस्यः अग्निः) पूज्य अग्नि (स्तोतॄणां गीर्भिः उक्थैः स्तोमेभिः प्र इत् वावृधे) स्तुति करनेवालोंके वाणी, मन्त्र और गायनोंसे बढता है । वह (दूतः पूर्वीः ऋतस्य संदृशः चकान्) देवताओंका दूत अग्नि बहुत आदित्योंके समान प्रकाशित होता हुआ (उषसः विरोके इत् उ सं अद्यौत्) प्रातः उषःकालमें विशेष रूपसे प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

[६३] मनुष्योंका (मित्रः ऋतेन साधन् अपां गर्भः अग्निः) मित्र, यज्ञसे अभिलाषाको पूर्ण करनेवाला, जलके गर्भमें रहनेवाला अग्नि (मानुषीषु विक्षु अधायि) मनुष्यकी प्रजाओंमें स्थापित किया जाता है । (हर्यतः यजतः सानु आ अस्थात्) स्पृहणीय और पूजनीय अग्नि उन्नत स्थानपर बैठता है, और (विप्रः, मतीनां हव्यः अभूत) मेधावी है इसलिये स्तुति करनेवालोंके द्वारा पूजाके योग्य है ॥ ३ ॥

[६४] (यत् अग्निः समिद्धः मित्रः भवति) जिस समय अग्नि पूर्ण रूपसे प्रकाशमान होता है उस समय सखा भावसे युक्त होता है । वही (मित्रः होता जातवेदाः वरुणः) मित्र, होता और सबको जाननेवाला वरुण होता है । तथा वही (मित्रः दमूनाः अध्वर्युः) मित्र भाववाला, दानमय स्वभाव युक्त, अध्वर्यु एवं (इषिरः) प्रेरणा देनेवाला वायु रूप होता है । (उत् सिन्धूनां पर्वतानां मित्रः) और वही नदियों और पर्वतोंका भी मित्र होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— उषःकालमें चैतन्य होनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला अग्रणी जागृत होता और है जागृत होकर अन्धकार-अज्ञानके द्वारोंके खोल देता है ॥ १ ॥

यह अग्नि स्तोताओंके स्तोत्रोंसे बहुत बढता है । वह बहुतसे आदित्योंके प्रकाशसे युक्त होकर उषःकालमें प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

मनुष्योंका हर तरहसे हित करनेवाला यह अग्रणी मानवी प्रजाओंको उन्नत करनेके लिए प्रजाओंकी उन्नतिके लिए उनके बीचमें जाकर कार्य करता है, तब प्रजा उसे ऊंचा स्थान देती है और उसकी आराधना करती है ॥ ३ ॥

प्रज्वलित होकर अग्नि अपने कार्योंसे वरुण, होता, जातवेद, अध्वर्यु, वायु और नदी तथा पर्वतोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥

६५ पाति॑ प्रि॒यं रि॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः पाति॑ य॒ह्वश्चर॑णं॒ सूर्य॑स्य ।
पाति॑ ना॒भा स॒प्तशी॑र्षाणम॒ग्निः पाति॑ दे॒वाना॑मुप॒मादं॑मृ॒ष्वः ॥ ५ ॥

६६ ऋ॒भुश्च॑क्र॒ ईड्यं॒ चारु॒ नाम॒ विश्वा॑नि दे॒वो व॒युना॑नि वि॒द्वान् ।
स॒सस्य॒ चर्म॑ घृ॒तव॑त् प॒दं वे॒स्तदिद॒ग्नी र॑क्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥

६७ आ योनि॑म॒ग्निर्घृ॒तव॑न्तमस्थात् पृ॒थुप्र॑गाणमु॒शन्त॑मुशा॒नः ।
दीद्या॑नः॒ शुचि॑र्ऋ॒ष्वः पा॑व॒कः पुनः॑पुनर्मा॒तरा॒ नव्य॑सी कः ॥ ७ ॥

६८ स॒द्यो जा॒त ओष॑धीभिर्ववक्षे य॒दी वर्ध॑न्ति प्र॒स्वो॑ घृ॒तेन॑ ।
आप॑ इव प्र॒वता॒ शुम्भ॑माना उरु॒ष्यद॒ग्निः पि॒त्रोरु॒पस्थे॑ ॥ ८ ॥

अर्थ—[६५] (ऋष्वः अग्निः) दर्शनीय अग्नि (वेः, रिपः, प्रियं, अग्रं, पदं पाति) सर्व व्याप्त पृथ्वीके प्रिय और श्रेष्ठ स्थानकी रक्षा करता है। (यह्वः सूर्यस्य चरणं पाति) महान् सूर्यके घूमनेके स्थानकी रक्षा करता है। तथा (नाभा सप्तशीर्षाणं पाति) अन्तरिक्षके मध्यमें मरुत्‌गणोंका पालन करता है, एवं (देवानां उपमादं पाति) देवताओंके प्रसन्न करनेवाले यज्ञको पुष्ट करता है ॥ ५ ॥

[६६] (वेः ससस्य चर्म घृतवत्) व्याप्त तथा सुप्त रहने पर भी जिसका रूप चमकता रहता है। ऐसा (ऋभुः विश्वानि, वयुनानि विद्वान् देवः) महान् सम्पूर्ण कर्मोंको जाननेवाला दिव्य गुण युक्त अग्नि (ईड्यं चारु नाम चक्रे) प्रशंसनीय और सुन्दर जलको उत्पन्न करनेवाला है तथा वही (अग्निः तत् अप्रयुच्छन् रक्षति) अग्नि उस जलकी सावधानीसे रक्षा करता है ॥ ६ ॥

[६७] (उशानः अग्निः) इच्छा करता हुआ अग्नि (घृतवन्तं पृथुप्रगाणं, उशन्तं योनिं आ अस्थात्) तेजस्वी लोगोंसे प्रशंसित तथा प्रिय स्थान पर बैठता है और (दीद्यानः शुचिः ऋष्वः पावकः) दीप्तिशाली, शुद्ध महान् और पवित्र अग्नि अपने (मातरा पुनः पुनः नव्यसीकः) माता पिता अर्थात् पृथ्वी और द्युलोकको बारम्बार नवीनता प्रदान करता है ॥ ७ ॥

१ अग्निः घृतवन्तं पृथुप्रगाणं योनिं आ अस्थात्— तेजस्वी मनुष्य सदा तेजयुक्त और प्रशंसित स्थान पर ही बैठता है।

[६८] (सद्यः जातः यदि औषधीभिः ववक्षे) जन्म लेते ही अग्नि जब औषधियों द्वारा धारण किया जाता है तब (प्रवता आपः इव) मार्गमें बहते हुये जलके समान (शुम्भमानाः) शोभित औषधियाँ (घृतेन वर्धन्ति प्रस्वः) जलके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होती हैं और फलोंको प्रदान करती हैं। (पित्रोः उपस्थे अग्निः उरुष्यत्) पृथ्वी और द्युलोकके बीचमें बढता हुआ अग्नि हमारी रक्षा करे ॥ ८ ॥

भावार्थ— यह अग्नि पृथ्वीके श्रेष्ठ स्थानकी, महान् सूर्यके स्थानकी, मरुतोंकी और यज्ञोंकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

गुप्त रहनेपर भी महान् अग्रणीका तेज चमकता रहता है। यह अग्नि जलोंको उत्पन्न कर उनकी बडी सावधानीसे रक्षा करता है ॥ ६ ॥

तेजस्वी अग्नि लोगोंसे प्रशंसित प्रिय स्थान पर बैठता है, और द्युलोक एवं पृथ्वीलोकको बार बार नया नया बनाता है ॥ ७ ॥

जन्म लेते ही अग्निको औषधियां धारण करके घृतसे बढाती हैं और स्वयं भी फल उत्पन्न करती हैं। वह अग्नि स्वयं भी बढते हुए हमारी भी रक्षा करे ॥ ८ ॥

×

६९ उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद् वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा ऽऽ दूतो वक्षद् यजथाय देवान् ॥ ९ ॥

७० उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वो३ ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १० ॥

७१ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः। देवता- अग्निः। छन्दः- त्रिष्टुप्]

७२ प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥

अर्थ— [६९] (स्तुतः समिधा यह्वः अग्निः) हमारे द्वारा स्तुत्य और दीप्ति द्वारा महान् अग्नि (पृथिव्याः नाभा दिवः वर्ष्मन् उत् अद्यौत्) पृथ्वीके बीचमें प्रतिष्ठित होकर द्युलोककी ऊंचाई तक प्रकाशित हुआ। वह अग्नि सबका (मित्रः ईड्यः मातरिश्वा) सबका सुहृद्, स्तुति योग्य मातरिश्वा है। ऐसे गुणोंवाला वह (दूतः यजथाय देवान् आ वक्षत्) देवताओंका दूत होकर हमारे यज्ञके लिये सब देवोंको सब ओरसे बुलावे ॥ ९ ॥

[७०] (यदि मातरिश्वा भृगुभ्यः) जब मातरिश्वाने भृगुओंके निमित्त (गुहा सन्तं हव्यवाहनं समीधे) गुहामें स्थित हव्य वाहक अग्निको प्रज्वलित किया, उस समय वह (रोचनानां उत्तमः भवन्) शोभायमान तेजोंके मध्यमें सबसे उत्कृष्टतम तेजस्वी हुआ। और उस (ऋष्वः अग्निः समिधा नाकं उदस्तम्भीत्) महान् अग्निने अपने महान् तेज द्वारा सूर्यको भी स्तब्ध कर दिया ॥ १० ॥

[७१] हे अग्ने! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली अनेक उपायोगोंमें आनेवाला और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ११ ॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां— हे अग्ने! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्— वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[६]

[७२] (कारवः) स्तोताओ (देवयन्तः मनना वच्यमानाः) देवत्वकी इच्छा करते हुए तुम सब स्तोत्रोंसे प्रेरित होकर (देवद्रीचीं प्र नयत) देवोंकी ओर जानेवाली स्रुचाको ले चलो। (दक्षिणावाड्) दक्षिण दिशासे लाई गई (वाजिनी) अन्न और बल प्रदान करनेवाली (प्राची) श्रेष्ठ (हविः भरन्ती) हविसे भरी हुई तथा (घृताची) घृतसे परिपूर्ण यह स्रुचा (अग्नये एति) अग्निकी ओर जाती है ॥ १ ॥

भावार्थ— प्रज्ज्वलित होकर अग्नि अपनी ज्वालायें द्युलोक तक पहुंचाता है। वह ही मित्र स्तुत्य और मातरिश्वा वायु है। ऐसा वह अग्नि हमारे यज्ञमें सब देवोंको बुलाकर लाए ॥ ९ ॥

जब गुप्तरूपमें स्थित इस अग्निको प्रज्ज्वलित किया गया, तब वह सबसे अधिक तेजवाला हुआ और उसने तेजसे सूर्यको भी निस्तेज कर दिया ॥ १० ॥

हे अग्ने! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ११ ॥

हे स्तोताओ! देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करते हुए तुम बल प्रदान करनेवाली स्रुचाको घीसे भर कर अग्निको दो ॥ १ ॥

७३ आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २ ॥
७४ द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥
७५ महान् त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो ऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥
७६ व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमान—स्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (जायमानः रोदसी आ अपृणाः) जन्म लेनेके साथ ही द्यावापृथ्वीको सब ओरसे पूर्ण कर देता है और (प्रयज्यो, महिना, दिवः चित् पृथिव्या प्ररिक्थाः) पूजाके योग्य अग्ने ! अपनी महिमा द्वारा तू द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीलोकसे भी उत्तम हो गया है (ते सप्तजिह्वाः वन्हयः नु वच्यन्तां) तेरी सात ज्वालाओंसे युक्त किरणें प्रशंसित हों ॥ २ ॥

[७४] (यदि मानुषी विशः देवयन्तीः प्रयस्वतीः) जिस समय मनुष्यकी प्रजायें देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे हव्ययुक्त होकर (त्वा होतारं शुक्रं अर्चिः ईळते) तुझ होता रूप अग्निके तेजस्वी ज्वालाकी स्तुति करती हैं उस समय (द्यौः च पृथिवी यज्ञियासः दमाय निसादयन्ते) द्युलोक, पृथ्वी और देवता घरकी सुरक्षाके लिये तेरी स्थापना करते हैं ॥ ३ ॥

[७५] (महान् हर्यमाणः द्यावा अन्तः) श्रेष्ठ, भक्तोंकी उन्नतिकी इच्छा करनेवाला अग्नि आकाशपृथ्वीके बीच, (माहिने सधस्थे ध्रुवः आ निषत्तः) महिमावाले अपने स्थानपर अचल होकर विराजमान है । (आस्क्रे सपत्नी, अजरे अमृक्ते सबर्दुघे) आपसमें जुडी हुई, एक पतिवाली, जरारहित, अहिंसित और अमृतको उत्पन्न करनेवाली द्यावा-पृथ्वी (उरुगायस्य धेनू) बहुतों द्वारा प्रशंसित अग्निकी गायें हैं ॥ ४ ॥

[७६] हे (अग्ने) अग्ने ! (महतः) सर्वश्रेष्ठ (ते व्रता महानि) तेरे कर्म भी महान् हैं (तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ) तेरे पराक्रमसे ही द्यावा-पृथ्वी विस्तारको प्राप्त हुई है । (त्वं दूतः अभवः) तू देवोंका दूत है । हे (वृषभ) बलवान् अग्ने ! (त्वं जायमानः चर्षणीनां नेता) तू उत्पन्न होनेके साथ ही मनुष्योंका नायक हो जाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जन्म लेते ही यह अग्नि द्युलोक और पृथ्वीलोकको घेर लेता है और अपने सामर्थ्यसे वह इन दोनों लोकोंसे श्रेष्ठ है । अतः उसकी किरणें सर्वत्र पूजी जाती हैं ॥ २ ॥

द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्य देवोंने इस अग्निके घरकी सुरक्षाके लिए स्थापित किया, अतः सारी मानवी प्रजाएं इस अग्निकी आराधना करती हैं और देवत्व प्राप्त करती हैं ॥ ३ ॥

श्रेष्ठ अग्नि द्यु और पृथ्वीके बीचमें अचल होकर स्थित है । आपसमें एकतासे रहनेवाली, अजर अमर ये द्यु और पृथ्वी अग्निका पालन करती हैं ॥ ४ ॥

इस महान् अग्निके कर्म भी महान् हैं, इसीके सामर्थ्यसे द्यावाभूमि विस्तृत हुई और अपने ही सामर्थ्यसे यह अग्नि सब मनुष्योंका नेता बना ॥ ५ ॥

॥ ४-५ ॥

७७ ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान् देव विश्वान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥
७८ दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥
७९ उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८ ॥
८० ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥

अर्थ— [७७] हे (देव) दिव्यगुणयुक्त अग्ने ! (केशिना, योग्याभिः, घृतस्नुवा रोहिता वा) प्रशस्त केशोंवाले, रज्जुओंसे युक्त, तेजसे परिपूर्ण तथा लाल रंगके अपने दोनों घोडोंको (ऋतस्य धुरि धिष्व) यज्ञकी धुरामें जोडा। (अथ विश्वान् देवान् आवह) उसके अनन्तर सम्पूर्ण देवोंको बुला। हे (जातवेदः सु अध्वरा कृणुहि) सर्वज्ञ अग्ने ! तू सबको सुन्दर यज्ञसे युक्त कर ॥ ६ ॥

[७८] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् वनेषु अपः उशधक्) जब तू जंगलोंमें जलोंको सुखा देता है उस समय (ते रोकाः, दिवः चित् आ रुचयन्त) तेरा प्रकाश सूर्यसे भी अधिक सब ओर प्रकाशित होता है । तू (विभातीः पूर्वीः उषः अनु भासि) सुन्दर कान्तियुक्त, बहुतसी उषाओंके पीछे प्रकाशित होता है । (देवाः मन्द्रस्य होतुः पनयन्त) विद्वान् आनन्दसे युक्त तथा देवोंको बुलानेवाले तेरी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[७९] (ये देवाः उरौ अन्तरिक्षे मदन्ति) जो देवगण विस्तृत अन्तरिक्षमें आनन्दसे रहते हैं, (ये दिवः रोचने सन्ति) जो देवता प्रकाशमान आकाशमें वास करते है, और (ये ऊमाः यजत्राः सुहवासः आ येमिरे) जो उत्तम मित्र तथा यजनीय विद्वान् भलीभाँति बुलाये जाते हैं, उन सबोंको हे (अग्ने) अग्ने ! तेरे (रथ्यः अश्वाः) रथके घोडे लानेमें समर्थ हैं ॥ ८ ॥

[८०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (एभिः सरथं वा नानारथं) उन सभी देवताओंके साथ एक रथ अथवा बहुतसे रथों पर बैठ कर (आ याहि) हमारे पास आ । तेरे (अश्वाः विभवः) घोडे समर्थ हैं । (त्रिंशतं त्रीन् च देवान् पत्नीवतः अनुष्वधं) तैंतीस देवोंको इनकी पत्नियों सहित बलदायक सोमपानके लिये (आ वह) यहाँ बुला ला और (मादयस्व) उन्हें आनन्दित कर ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! लम्बे लम्बे बालोंवाले अपने लाल रंगके घोडे इस यज्ञरूपी रथमें जोडकर उनके द्वारा देवोंको यहां बुला ला और सभी मनुष्योंको यज्ञसे युक्त कर ॥ ६ ॥

जब यह अग्नि वृक्षोंके अन्दर स्थित जलको सुखाकर उन्हें जलाना शुरु करता है, तब इसकी ज्वालायें बहुत ऊंची जाती हैं और इसका प्रकाश चारों ओर फैलता है, तब विद्वान् इसकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

विस्तृत अन्तरिक्षमें आनन्दसे रहनेवाले आकाशमें रहनेवाले देव, उत्तम मित्र अन्य पूजनीय विद्वानोंको यह अग्नि बुलाकर लाता है ॥ ८ ॥

यह अग्नि सभी देवताओंको अपने साथ बुलाकर लाता है और उन्हें सोम देकर तृप्त करता है ॥ ९ ॥

८१ स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १० ॥
८२ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

८३ प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासे—रा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।
परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥ १ ॥
८४ दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद् वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ २ ॥

अर्थ—[८१] (उर्वी रोदसी यज्ञं यज्ञं) विशाल आकाश और पृथ्वीके प्रत्येक यज्ञमें (यस्य वृधे अभि गृणीतः, स होता) जिसकी समृद्धिके लिये स्तुतियाँ की जाती हैं, वह देवोंका होता अग्नि है। (सुमेके, ऋतावरी, सत्ये) सुन्दर रूपवाली, जलसम्पन्न, सत्यस्वरूप, द्यावापृथ्वी, (अध्वरा इव ऋतजातस्य, प्राची तस्थतुः) यज्ञके समान, सत्य द्वारा प्रकट इस अग्निके अनुकूल होकर रहती हैं ॥ १० ॥

[८२] हे अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली, अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों । हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ११ ॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां— हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे ।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्— वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ।

[७]

[८३] (शितिपृष्ठस्य धासेः ये प्र आरुः) उज्ज्वल पीठवाले, सबके धारक अग्निकी जो लपटें ऊपरकी तरफ उठती हैं वे (मातरा, सप्तवाणीः आ विविशुः) आकाश-पृथ्वीरूप माता पिता और सात वाणियोंमें सर्वत्र फैल जाती हैं। (परिक्षिता पितरा सं चरेते) चारों ओर वर्तमान आकाश-पृथ्वी इस अग्निके साथ सर्वत्र संचरण करते हैं। और वे दोनों (प्रयक्षे दीर्घमायुः प्र सर्स्राते) उत्तम रूपसे यज्ञ करनेके लिये अग्निको दीर्घजीवन प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

[८४] (वृष्णः दिवक्षसः अश्वाः धेनवः) इस बलशाली अग्निके द्युलोकको व्यापनेवाले घोडे सबको तृप्त करते हैं। और वह (मधुमत्, वहन्तीः देवीः आ तस्थौ) मधुरजलको बहानेवाली दिव्य नदियोंमें निवास करता है। हे अग्ने ! (ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं) सत्यके घरमें रहनेवाले और (वर्तनिं) अपनी ज्वालाओंको फैलानेवाले (त्वा एका गौः परिचरति) तेरी एक गौ वाक् सेवा करती है ॥ २ ॥

१ ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परिचरति— सत्य बोलनेवालेकी वाणी चारों ओर फैलती है।

भावार्थ— यह अग्नि देवोंको बुलानेवाला है, इसलिए प्रत्येक यज्ञमें इसकी स्तुति की जाती है, उत्तम रूपवाली ये द्यावापृथ्वी भी इस अग्निके अनुकूल होकर ही कार्य करती हैं। इसके विरुद्ध कार्य कभी नहीं करतीं ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी और उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ११ ॥

इस तेजस्वी अग्निकी लपटें आकाशमें सर्वत्र फैलती हैं। तब द्युलोक और पृथ्वीलोक इस अग्निकी ज्वालाओंको शक्तिशाली बनाते हैं ॥ १ ॥

८५ आ सींमरोहत् सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद् रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासे—स्ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

८६ महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।
व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥ ४ ॥

८७ जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेव—मुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।
दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥ ५ ॥

अर्थ— [८५] (रयीणां रयिवित् चिकित्वान् पतिः) धनोंके बीचमें श्रेष्ठ धनोंका स्वामी, ज्ञानवान् पालनकर्ता अग्नि, (सीं सुयमाः भवन्तीः) सब तरहसे काबूमें रहनेवाली अपनी घोडियोंपर (आ अरोहत्) चढ जाता है। (नीलपृष्ठः पुरुधप्रतीकः) नीले पृष्ठवाला तथा नाना रूपवाला अग्नि (अतसस्य धासेः) सतत गमन करनेके लिये और पालन पोषणके लिए (ताः प्र अवासयत्) उन घोडियोंको अपने पास रखता है ॥ ३ ॥

१ सुयमाः भवन्तीः पतिः रयीणां रयिवत्— उत्तम प्रकारसे अनुशासित तथा गुणवाली स्त्रीका पति ही श्रेष्ठ धनोंका स्वामी होता है।

[८६] (अर्जयन्तीः वहतः) बलकारिणी और बहनेवाली नदियाँ, (महि, त्वाष्ट्रं, अजुर्यं स्तभूयमानं, वहन्ति) महान्, त्वष्टाके पुत्र, जरारहित, सारे संसारको धारण करनेवाले अग्निको धारण करती हैं। (एकां इव सधस्थे अङ्गेभिः दिद्युतानः) जिस प्रकार युवा पुरुष एक पत्नीके निकट जाता है, उसी प्रकार निकट ही प्रकाशित होनेवाला तथा तेजस्वी अवयवोंवाला अग्नि (रोदसी आ विवेश) आकाश-पृथ्वीमें व्याप्त होता है ॥ ४ ॥

[८७] (वृष्णः अरुषस्य शेवं जानन्ति) कामनाओंके वर्धक और अहिंसक अग्निके सुखको लोग जानते हैं; (उत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति) और श्रेष्ठ अग्निके शासनमें आनन्दसे रहते हैं। (येषां माहिना इळा गीः गण्या) जिन स्तोताओंकी स्तुतियोग्य वाणी महत्वपूर्ण होती है, वे (दिवः रुचः, सु रुचः रोचमानाः) आकाशको प्रकाशित करने-वाले सुशोभित होकर स्वयं भी प्रकाशमान होते हैं ॥ ५ ॥

१ ब्रध्नस्य शासने रणन्ति— उस महान् अग्निके शासनमें मनुष्य सुखी रहते हैं।

२ येषां गीः गण्या, सुरुचः रोचमानाः— जिनकी स्तुति महत्वपूर्ण होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाश-मान होते हैं।

भावार्थ— बलशाली अग्निकी किरणें सबको तृप्त करती हैं। और सत्य बोलनेकी वाणी अमोघ होती है। वह सब जगह जाती है, उसे कोई रोक नहीं सकता ॥ २ ॥

उत्तम धनोंका स्वामी यह अग्नि उत्तम घोडियों अर्थात् किरणोंपर चलकर सब जगह जाता है और उनका अच्छी तरह पालन पोषण भी करता है ॥ ३ ॥

बल प्रदान करनेवाली नदियां इस जरारहित और संसारको धारण करनेवाले अग्निको धारण करती हैं। अग्नि भी तेजस्वी होकर द्यावापृथ्वीमें सर्वत्र फैलता है ॥ ४ ॥

इस अग्निके शासनमें रहनेसे बहुत सुख मिलते हैं, इसीलिए सब आनन्दित होते हैं। जो हृदयसे इस अग्निकी स्तुति करते हैं, वह तेजस्वी होकर सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥ ५ ॥

८८ उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ६ ॥
८९ अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥ ७ ॥
९० दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ८ ॥
९१ वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान् महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥ ९ ॥

अर्थ— [८८] मनुष्योंने (उतो महः महद्भ्यां पितृभ्यां) महान्से भी महान् पितृ–मातृ स्थानीय आकाश–पृथ्वीके (प्रविदा अनु घोषं) ज्ञानसे ऊँचे स्वरसे की गई स्तुतिसे प्राप्त होनेवाले (शूषं) सुखको (अनयन्त) प्राप्त किया। (उक्षा) जल सिंचन करनेमें समर्थ अग्नि (अक्तोः परिधानं स्वं धाम) रात्रीमें प्रकाशित अपने तेजको (जरितुः ह अनुववक्ष) स्तुति करनेवालेके प्रति प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

१ शूषं प्रविदा— सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

[८९] (पञ्चभिः अध्वर्युभिः सप्त विप्राः) पाँच अध्वर्युके साथ सात होता (वेः निहितं प्रियं पदं रक्षन्ते) गमनशील अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। (प्राञ्चः अजुर्याः उक्षणः देवाः मदन्ति) पूर्वकी ओर मुखवाले, परिश्रमसे न हारनेवाले, सोमरसपान करनेवाले स्तोता लोग प्रसन्न होते हैं और (देवानां व्रता हि अनु गुः) देवताओंके नियमोंके अनुकूल चलते हैं ॥ ७ ॥

१ देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति— देवताओंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले ही आनन्दमें रहते हैं।

[९०] (दैव्या होतारा प्रथमा निऋञ्जे) दिव्य होता स्वरूप दो अग्नियोंको मैं मुख्य रूपसे प्रज्वलित करता हूँ। (सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति) सप्त होता सोमपानसे प्रसन्न होते हैं। (व्रतपाः दीध्यानाः ते ऋतं शंसन्तः आहुः) नियमोंका पालन करनेवाले दीप्तिशाली वे होता लोग स्तुति करते हुए कहते हैं कि (व्रतं अनु ऋतं इत्) नियमसे रहनेवाला यह अग्नि ही ऋत है ॥ ८ ॥

१ व्रतपाः दीध्यानाः ऋतं आहुः— नियममें चलनेवाले तेजस्वी पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

[९१] हे (देव, होतः) देदीप्यमान् और देवोंको बुलानेवाले अग्ने! (महे, अत्याय, चित्राय वृष्णे) महान्, सबको अतिक्रमण करनेवाले, नानाविध वर्णोंवाले और बलवान् तुझे (पूर्वीः, सुयामाः रश्मयः वृषायन्ते) बहुतसी अतिशय विस्तृत, सर्वत्र व्याप्त ज्वालायें बलवान् बनाती हैं (मन्द्रतरः चिकित्वान्) हर्षयुक्त एवं ज्ञानवान् तू (महः देवान् रोदसी इह आ वक्षि) पूज्य देवोंको और द्यावापृथ्वीको हमारे पास यहां बुला ला ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन महान् द्यावापृथ्वीके ज्ञानसे मनुष्योंको सुख प्राप्त होता है। वह अग्नि भी ऐसे मनुष्योंकी ओर अपना तेज प्रेरित करता है ॥ ६ ॥

सभी यज्ञ करनेवाले इस अग्निके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं और ये याजक सोमपानसे तथा नियमोंके अनुशासनमें रह कर आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

अग्नियोंको प्रज्वलित करनेके बाद याजक सोमपान करके प्रसन्न होते हैं। तब वे नियममें रहनेके कारण तेजस्वी होकर सत्यभाषी होते हैं ॥ ८ ॥

महान् तथा अनेक रूपोंवाले अग्निको उसकी ज्वालायें बलवान् बनाती हैं। हे अग्ने! तू हमारे पास सब देवोंको बुला ला ॥ ९ ॥

९२ पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १० ॥

९३ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥

[८]

[ऋषिः- ११ गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- यूपः ६-१० यूपाः, ८ विश्वे देवा वा, ११ व्रश्चनः । छन्दः- त्रिष्टुप्; ३, ७ अनुष्टुप्]

९४ अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद् यद् वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥ १ ॥

अर्थ— [९२] हे (द्रविणः) धनसम्पन्न अग्ने ! तेरी प्रेरणासे (पृक्षप्रयजः) बहुतसे अन्नको प्राप्त करनेवाली, (सुवाचः) स्तुति आदि उत्तम वाणियोंसे युक्त (सुकेतवः) उत्तम किरणोंवाली (उषसः) उषायें (रेवत् ऊषुः) हमें धन देती हुई प्रकाशित होती हैं। अतः हे (अग्ने) अग्ने ! तू भी (पृथिव्याः महिना) अपनी विशाल महिमासे (महे कृतं एनः) उपासकके द्वारा किए गए पापको (सं दशस्य) नष्ट कर दे ॥ १० ॥

[९३] हे अग्ने ! तू (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकाल तक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ११ ॥

१ हवमानाय शश्वत्तमं पुरुदंसं गो-सनिं इळां— हे अग्ने ! यज्ञ करनेवालेके लिए चिरकालतक उत्तम अन्न देनेवाली तथा गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे।

२ सा ते सुमतिः अस्मे भूत्— वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो।

[८]

[९४] हे (वनस्पते) वनस्पते ! (देवयन्तः) देव बननेकी इच्छा करनेवाले जन (अध्वरे) यज्ञमें (त्वां) तुझे (दैव्येन मधुना) दिव्य मधुसे (अंजन्ति) सींचते हैं। तू (यत् ऊर्ध्वः तिष्ठा) चाहे ऊपर खडा हो, (यत् वा) अथवा (अस्याः मातुः उपस्थे क्षये) इस पृथ्वी माताकी गोदमें पडा हुआ हो, (इह द्रविणा धत्तात्) इस यज्ञमें धन प्रदान कर ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तेरी ही प्रेरणासे उषायें मनुष्योंको धन देती हैं, अतः, हे अग्ने ! तू भी अपनी महिमासे भक्तोंके पापोंको क्षीण कर ॥ १० ॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ११ ॥

यज्ञ स्थानमें एक यूप गाडा जाता है, यह यूप लकडीका होता है, इस यूपको दिव्य घृत आदिसे सींचा जाता है। यह यूप यज्ञमें अत्यन्त आवश्यक है ॥ १ ॥

९५ समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद् ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥ २ ॥

९६ उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ ३ ॥

९७ युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ ४ ॥

९८ जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [९५] हे यूप ! (समिद्धस्य पुरस्तात् श्रयमाणः) प्रदीप्त हुई अग्निके आगे विद्यमान होकर (अजरं सुवीरं ब्रह्म वन्वानः) अत्यन्त श्रेष्ठ और वीरताके उत्पादक स्तोत्रको सुनते हुए (अस्मत् अमतिं आरे बाधमानः) हमारी दुर्बुद्धिको दूरसे ही नष्ट करते हुए (महते सौभगाय) हमारे महान् सौभाग्यके लिए तू (उत् श्रयस्व) ऊंचा खडा रह ॥२॥

[९६] हे (वनस्पते) वनस्पतिके यूप ! तू (पृथिव्याः अधि) पृथ्वीके ऊपर (वर्ष्मन् उत्-श्रयस्व) उत्तम स्थानमें ऊंचा खडा रह, तू (सुमिती मीयमानः) अपने उत्कृष्ट नापनेके साधनसे यज्ञस्थानको नापता हुआ (यज्ञवाहसे वर्चः धाः) यज्ञ करनेवालेको तेज दे ॥ ३ ॥

[९७] (युवा सुवासाः परिवीतः) तरुण, उत्तम वस्त्रोंसे लिपटा हुआ यह (आगात्) आ गया है । (सः) वह (जायमानः श्रेयान् भवति) उत्पन्न होते हुए बहुत उत्तम दिखलाई देता है । (देवयन्तः धीरासः) देवोंके समान बननेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् तथा (सु आध्यः) उत्तम अध्ययनशील (कवयः) ज्ञानी जन (मनसा तं उन्नयन्ति) मनसे उसे उन्नत करते हैं ॥ ४ ॥

[९८] (जातः) उत्पन्न हुआ यह यूप (समर्ये विदथे वर्धमानः) मनुष्योंसे भरे हुए यज्ञमें बढता हुआ (अन्हां सुदिनत्वे जायते) दिनोंको उत्तम बनाता है, (अपसाः धीराः) यज्ञ कर्म करनेवाले बुद्धिमान् जन (मनीषा पुनन्ति) बुद्धिपूर्वक उसे पवित्र करते हैं, (देवया विप्रः) देवोंकी पूजा करनेवाला ज्ञानी (वाचं उत् इयर्ति) स्तुतियोंका उच्चारण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे यूप ! प्रदीप्त अग्निके सामने विद्यमान होकर उत्तम और उत्साहदायक स्तुतियोंको सुनते हुए और हमारी दुष्ट बुद्धियोंको नष्ट करते हुए हमारा सौभाग्य बढाओ ॥ २ ॥

हे यूप ! तू पृथ्वीके उत्तम स्थानपर ऊंचा खडा रह, और यज्ञस्थानको नापता हुआ यजमानको उत्तम अन्न और तेज दे ॥ ३ ॥

मजबूत और दृढ रस्सियोंसे बंधा हुआ यूप यज्ञस्थानमें लाया जाता है । इस यूपको तब बुद्धिमान् तथा अध्ययनशील ज्ञानी मनःपूर्वक धरतीमें गाडकर ऊंचा करते हैं ॥ ४ ॥

उत्पन्न होनेके बाद यह यूप मनुष्योंसे भरे हुए यज्ञस्थानमें लाया जाता है और वहां ज्ञानियोंके द्वारा जलादिसे पवित्र किया जाता है और उसी समय स्तोतागण इस यूपकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

९९ यान् वो नरो॑ देव॒यन्तो॑ निमि॒म्यु॒र्वन॑स्पते॒ स्वधि॑तिर्वा त॒तक्ष॑ ।
ते दे॒वासः॒ स्वर॑वस्तस्थि॒वांसः॑ प्र॒जाव॑द॒स्मे दि॑धिषन्तु॒ रत्न॑म् ॥ ६ ॥

१०० ये वृ॒क्णासो॒ अधि॒ क्षमि॒ निमि॑तासो य॒तस्रु॑चः ।
ते नो॑ व्यन्तु॒ वार्यं॑ देव॒त्रा क्षे॑त्र॒साध॑सः ॥ ७ ॥

१०१ आ॒दि॒त्या रु॒द्रा वस॑वः सुनी॒था द्यावा॒क्षामा॑ पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षम् ।
स॒जोष॑सो य॒ज्ञम॑वन्तु दे॒वा ऊ॒र्ध्वं कृ॑ण्वन्त्वध्व॒रस्य॑ के॒तुम् ॥ ८ ॥

१०२ हं॒सा इ॑व श्रेणि॒शो यता॑नाः शु॒क्रा वसा॑नाः॒ स्वर॑वो न॒ आगुः॑ ।
उ॒न्नी॒यमा॑नाः क॒विभिः॑ पु॒रस्ता॑द्दे॒वा दे॒वाना॒मपि॑ यन्ति॒ पाथः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [९९] हे (वनस्पते) वनस्पतिसे बने हुए यूपो ! (यान् वः) जिन तुमको (देवयन्तः नरः) देवोंके समान बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंने (निमिम्युः) नापा, (वा) अथवा (स्वधितिः ततक्ष) फरसेने तुम्हें बनाया, (ते देवासः स्वरवः तस्थिवांसः) वे दिव्यगुणयुक्त, सूर्यके समान तेजस्वी तथा ऊंचे खडे हुए यूप (अस्मे) इस यज्ञकर्ताको (प्रजावत् रत्नं दिधिषन्तु) प्रजाओंसे युक्त रत्न प्रदान करें ॥ ६ ॥

[१००] (वृक्णासः ये) फरसेके द्वारा काटे छांटे गए जो यूप (यतस्रुचः) ऋत्विजोंके द्वारा (क्षमि अधि निमितासः) पृथ्वीमें गाडे गए हैं । (ते क्षेत्रसाधसः) वे यज्ञको सिद्ध करनेवाले यूप (देवत्रा) इस यज्ञमें (नः वार्यं व्यन्तु) हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥ ७ ॥

[१०१] (सुनीथाः) उत्तम मार्गसे ले जानेवाले (आदित्याः) आदित्य (रुद्राः वसवः) रुद्र, वसु (पृथिवी द्यावाक्षामा) विस्तीर्ण द्युलोक और पृथ्वी तथा (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष आदि (सजोषसः देवाः) परस्पर प्रीतिसे रहनेवाले देवगण (यज्ञं अवन्तु) यज्ञकी रक्षा करें, और (अध्वरस्य केतुं) यज्ञके प्रज्ञापक इस यूपको (ऊर्ध्वं कृण्वन्तु) ऊंचा करें ॥ ८ ॥

[१०२] (शुक्राः वसानाः) तेजोंको धारण करनेके कारण (स्वरवः) सूर्यके समान चमकनेवाले ये यूप (हंसाः इव श्रेणिशः यतानाः) हंसके समान पंक्तियोंमें गाडे जाकर (नः आगुः) हमें दिखाई देते हैं । (पुरस्तात्) यज्ञके आगे (कविभिः उत् नीयमानाः देवाः) ज्ञानियोंके द्वारा खडे किये जानेपर ये तेजस्वी यूप (देवानां पाथः यन्ति) देवोंके मार्ग अन्तरिक्षमें जाते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे यूपो ! तुम्हें श्रेष्ठ मनुष्योंने नाप कर फरसेसे काटा और इस यज्ञस्थानमें गाडा है । तभी तुम सूर्यके समान तेजस्वी हुए हो । तुम यज्ञकर्ताको उत्तम सन्तानोंसे युक्त रत्न आदि धन दो ॥ ६ ॥

फरसेके द्वारा काटे छांटे गए ये यूप स्तम्भ पृथ्वीमें गाडे गए हैं । वे यज्ञको सिद्ध करनेवाले यूप हमें धन प्रदान करें ॥ ७ ॥

आदित्य, रुद्र, वसु, द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदि सभी देवगण इस यज्ञकी रक्षा करें और यज्ञकी सूचना देनेवाले इस यूपको ऊंचा करें ॥ ८ ॥

तेजोंको धारण करनेके कारण सूर्यके समान चमकनेवाले ये यूप जब पंक्तियोंमें गाडे जाते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हंसकी पंक्तियां आकाशमें उडी जा रही हों, यज्ञके स्थानमें ये यूप इतने ऊंचे गाडे जाते हैं, कि इनकी चोटियां अन्तरिक्षको छूती हैं ॥ ९ ॥

१०३ शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।
वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥ १० ॥

१०४ वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।
यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥ ११ ॥

[९]

[ऋषिः– गाथिनो विश्वामित्रः । देवता– अग्निः । छन्दः– बृहती, ९ त्रिष्टुप् ।]

१०५ सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ १ ॥

१०६ कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभवः ॥ २ ॥

अर्थ– [१०३] (स्वरवः) सूर्यके समान चमकनेवाले तथा (चषालवन्तः) किनारेपर लोहेकी पट्टीसे सुदृढ किए गए ये यूपस्तंभ (पृथिव्यां) पृथिवीमें गाडे जानेपर (शृंगिणां शृंगाणि इव) पशुओंके सींगके समान (सं ददृश्रे) दिखाई देते हैं । (वा) अथवा (विहवे वाघद्भिः श्रोषमाणाः) यज्ञमें स्तोताओंके द्वारा बोले जानेवाली स्तुतियोंको सुनते हुए ये यूप (पृतनाज्येषु अस्मान् अवन्तु) संग्रामोंमें हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

[१०४] (अयं तेजमानः स्वधितिः) इस अत्यन्त तीक्ष्ण फरसेने (महते सौभगाय) महान् सौभाग्यके लिए (यं त्वां प्रणिताय) जिस तुझे बनाया, हे (वनस्पते) वनस्पते ! वह तू (शतवल्शः विरोह) सैंकडों शाखाओंवाला होकर उत्पन्न हो और (वयं) हम भी (सहस्रवल्शाः) हजारों शाखाओंसे युक्त होकर (वि रुहेम) उन्नति करें ॥११॥

[९]

[१०५] हे अग्ने ! (अपां नपातं, सुभगं, सुदीदितिं) जलको न गिरानेवाले, शोभन धन युक्त, दीप्तिमान् होनेवाले (सुप्रतूर्तिं, अनेहसं) सुखपूर्वक दुःखोंसे पार करानेवाले, उपद्रव रहित (त्वा देवं ऊतये ववृमहे) तुझ देवको अपनी रक्षाके लिये हम वरण करते हैं; क्योंकि हम तेरे (सखायः मर्तासः) मित्रभूत मनुष्य हैं ॥ १ ॥

[१०६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं वना कायमानः) तू जंगलोंकी इच्छा करता हुआ (यत् मातॄः अपः अजगन्) जब अपने मातारूप जलोंके पास गया, तो (तत् ते निवर्तनं) वह तेरा निवृत्त हो जाना (न प्रमृषे) हमसे सहा नहीं गया, (यत् दूरे सन् इह अभवः) इस कारणसे दूर रहकर भी यहाँ हमारे पास ही रहता है ॥ २ ॥

भावार्थ– ये यूपस्तम्भ सूर्यके समान चमकते हैं और इनके दोनों किनारे लोहेके गोल चक्र चढाये हुए होते हैं, सब ये यज्ञस्थानमें ऊंचे खडे किये जाते हैं, तब दूरसे ये पशुओंके सींगके समान दिखाई देते हैं ॥ १० ॥

हे वनस्पते ! तू तेजधारवाले फरसेके द्वारा बनाया गया है, ऐसा तू अनेक तरहसे समृद्ध होता हुआ हमें भी अनेकों प्रकारसे समृद्ध कर ॥ ११ ॥

हम सब दुःखोंसे पार करानेवाले तेजस्वी, अहिंसित अग्निकी अपनी रक्षाके लिए स्तुति करते हैं, वह हमारी मित्रवत् रक्षा करे ॥ १ ॥

यह अग्नि जंगलोंको जलानेकी इच्छा करता हुआ जलोंमें जाकर शान्त हो जाता है । पर फिर वही अग्नि अरणियों द्वारा पुनः प्रकट होता है ॥ २ ॥

१०७ अति तृष्टं ववक्षिथाऽथैव सुमना असि ।
प्रप्रान्ये यन्ति पर्यन्य आसते येषां सख्ये असि श्रितः ॥ ३ ॥

१०८ ईयिवांसमति स्रिधः शश्वतीरति सश्चतः ।
अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहोऽप्सु सिंहमिव श्रितम् ॥ ४ ॥

१०९ ससृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥ ५ ॥

११० तं त्वा मर्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान् यद् यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥ ६ ॥

अर्थ— [१०७] हे अग्ने ! तू (तृष्टं अति ववक्षिथ, अथ एव त्वं सुमना असि) बहुत उत्साहसे शब्द करता है इसीलिए तू सदा प्रसन्न रहता है । तू (येषां सख्ये श्रितः असि) तू जिनके साथ मित्रतासे रहता रहता है उनमेंसे (अन्ये प्रयन्ति) कुछ आगे बढ जाते हैं और (अन्ये परि आसते) कुछ उपासना करते हैं ॥ ३ ॥

१ तृष्टं ववक्षति सुमना अस्ति— जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है ।

२ येषां सख्ये श्रितः प्रयन्ति अन्ये आसते— यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है वे आगे बढ जाते हैं, जब कि दूसरे नास्तिक बैठे रह जाते हैं ।

[१०८] (अ-द्रुहः निचिरासः) द्रोह न करनेवाले तथा अमर देवोंने (स्रिधः शश्वतीः सश्चतः अति) शत्रुकी महान् सेनाको परास्त करनेवाले तथा (सिंहं इव अप्सु श्रितं) शेरके समान जलमें छिपे हुए (ईयिवांसं ईं) प्रगति करनेवाले इस अग्निको (अनु विन्दन्) ढूंढ कर प्राप्त किया ॥ ४ ॥

[१०९] (ससृवांसं इव) जिस प्रकार स्वेच्छाचारी पुत्रको पिता बलसे खींच लाता है, (इत्था त्मना तिरोहितं) वैसे ही स्वेच्छासे घुसकर छिपे हुये (एनं अग्निं, मातरिश्वा) इस अग्निको मातरिश्वा नामक वायु (परिमथितं परावतः देवेभ्यः आनयत्) अच्छी प्रकार मथन कर दूर देशसे देवताओंके लिये ले आया ॥ ५ ॥

[११०] हे (मानुष, यविष्ठ्य) मनुष्योंके हितैषी और सदा तरुण रहनेवाले अग्ने ! तू (यत् तव क्रत्वा विश्वान् यज्ञान् अभिपासि) क्योंकि अपनी शक्तिसे संपूर्ण यज्ञोंका पालन करता है । (हव्यवाहन) इस कारण, हे हव्यको वहन करनेवाले अग्ने ! (मर्ताः तं त्वा देवेभ्यः अगृभ्णत्) मनुष्योंने उस तुझे देवताओंके निमित्त स्वीकार किया ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू सदा उत्साह युक्त रहता है, इसीलिए सदा प्रसन्न रहता है । जिनपर तू प्रसन्न होता है, उन्हें उन्नत कर देता है और आगे बढाता है और नास्तिकोंकी सहायता नहीं करता ॥ ३ ॥

अत्यन्त शूर पर गुहामें स्थित सिंहके समान जलमें छिपे हुए उन्नति करनेवाले इस अग्निको देवोंने ढूंढ निकाला ॥ ४ ॥

जिस प्रकार स्वेच्छाचारी पुत्रको पिता उत्तम मार्गपर लाता है, उसी प्रकार स्वयं अपनी इच्छासे अरणियोंमें छिपे हुए अग्निको मातरिश्वाने मथ कर प्रकट किया ॥ ५ ॥

क्योंकि यह अग्नि अपने पराक्रमसे सब यज्ञोंका पालन करता है, अतः मनुष्योंने इसे देवोंको प्रसन्न करनेके लिए स्वीकार किया । इस अग्निमें आहुति देनेसे देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

१११ तद् भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥ ७ ॥
११२ आ जुहोता स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥ ८ ॥
११३ त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ९ ॥

[१०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- उष्णिक् ।]

११४ त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् । देवं मर्तास इन्धते समध्वरे ॥ १ ॥
११५ त्वां यज्ञेष्वृत्विज मग्ने होतारमीळते । गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे ॥ २ ॥

अर्थ— [१११] हे (अग्ने) अग्ने! (तव तत् भद्रं दंसना) तेरा वह कल्याणकारी कर्म (पाकाय चित् छदयति) बालककी तरह अज्ञको भी पूजा करनेके लिए प्रेरित करता है। (यत् शर्वरे त्वं सं इद्धं) जब रात्रीमें तू प्रदीप्त होता है उस समय (पशवः अपि समासते) सारे पशु भी तेरी उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

१ तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति— अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजा की ओर प्रेरित करता है।

२ शर्वरे सं इद्धं पशवः अपि समासते— रात्रीमें अग्निके प्रदीप्त होनेपर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं।

[११२] हे मनुष्यो! (पावकशोचिषं शीरं सुअध्वरं आ जुहोत) पवित्र तेजवाले, सर्वत्र सोये हुये, यज्ञकी शोभा बढानेवाले अग्निको आहुतियाँ प्रदान करो। तथा (आशुं, दूतं, अजिरं, प्रत्नं, ईड्यं, देवं, श्रुष्टी सपर्यत) व्याप्त दूतस्वरूप, शीघ्रगामी, पुरातन, स्तुतियोग्य दीप्तिमान् अग्निका शीघ्र पूजन करो ॥ ८ ॥

[११३] (त्री सहस्राणि, त्रीणि शता, त्रिंशत् च, नव च देवाः) तीन हजार तीनसौ उन्तालीस देवताओंने (अग्निं असपर्यन्) अग्निको पूजा, (घृतैः औक्षन्) घृतसे सींचा और (अस्मै बर्हिः अस्तृणन्) इसके लिये कुशासन बिछाया। (आत् इत् होतारं नि असादयन्त) फिर उन सबोंने अग्निको होता रूपमें वरण कर उस कुशासन पर प्रतिष्ठित किया ॥ ९ ॥

[१०]

[११४] हे (अग्ने) अग्ने! (मनीषिणः मर्तासः) बुद्धिमान् मनुष्य (चर्षणीनां, सम्राजं, त्वां देवं) प्रजाओंके अधिपति तुझ देवको (अध्वरे सं इन्धते) यज्ञमें सम्यक् रूपसे प्रदीप्त करते हैं ॥ १ ॥

[११५] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वां होतारं ऋत्विजं यज्ञेषु ईळते) तुझ होता और ऋत्विज्‌को लोग स्तुति करते हैं। तू (ऋतस्य गोपाः स्वे दमे दीदिहि) यज्ञका रक्षक होकर अपने गृहमें प्रकाशित हो ॥ २ ॥

भावार्थ— अग्नि अज्ञानी बालकको भी उत्तम कर्मकी ओर प्रेरित करता है, यही कारण है कि रात्रीके समय अग्निके जलनेपर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

हे मनुष्यो! पवित्र तेजवाले सर्वत्र व्याप्त, यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले अग्निकी पूजा करो ॥ ८ ॥

तीन हजार तीन सो उन्तालीस देवोंने इस अग्निकी पूजा की और उसे घीसे सींचा, इसके लिए कुशासन बिछाया फिर उसे उस आसनपर होताके रूपमें बिठलाया ॥ ९ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य मनुष्योंके अधिपति इस देवको यज्ञमें अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं ॥ १-२ ॥

११६ स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे । सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति ॥ ३ ॥
११७ स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरा गमत् । अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥ ४ ॥
११८ प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् । विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥ ५ ॥
११९ अग्निं वर्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः । महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥ ६ ॥
१२० अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज । होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥ ७ ॥
१२१ स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्यम् । भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥ ८ ॥
१२२ तं त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [११६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः ते जातवेदसे समिधा ददाशति) जो तुझ जातवेदके लिये समिधायें प्रदान करता है, (स घ सुवीर्यं धत्ते) वह निश्चयसे शोभन सामर्थ्ययुक्त पुत्रको प्राप्त करता है, और (स पुष्यति) वह पशु, पुत्र ऐश्वर्यादि द्वारा समृद्ध होता है ॥ ३ ॥

[११७] (अध्वराणां केतुः स अग्निः) यज्ञोंका प्रज्ञापक वह अग्नि (सप्त होतृभिः अञ्जानः) सात होताओं द्वारा घृतसे सिक्त होकर, (हविष्मते देवेभिः आ गमत्) यजमानोंके पास देवताओंके साथ आया है ॥ ४ ॥

[११८] हे ऋत्विजो ! तुम लोग, (विपां ज्योतींषि बिभ्रते) मेधावी व्यक्तियोंके तेजोंको धारण करनेवाले, (वेधसे होत्रे अग्नये) संसारके विधाता, देवोंको बुलानेवाले अग्निके लिये (बृहत् पूर्व्यं वचः प्र भरत न) महान् और प्राचीन स्तोत्र वाक्योंको कहो ॥ ५ ॥

[११९] (महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः) महान् अन्न और धनके लिये अग्नि दर्शन करने योग्य है । (यतः उक्थ्यः जायते) जिन वाणियोंसे उसकी प्रशंसा होती है (नः गिरः) हमारी वही स्तुतिरूप वाणियाँ (अग्निं वर्धन्तु) अग्निको वर्धित करें ॥ ६ ॥

[१२०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अध्वरे यजिष्ठः) यज्ञकर्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ है । (देवयते देवान् यज) दिव्य और उत्तम कर्म करनेके लिए विद्वानोंको संगठित कर । तू (होता मन्द्रः स्रिधः अति विराजसि) होता, हर्षदाता और शत्रुओंको पराजित कर सुशोभित होता है ॥ ७ ॥

[१२१] (नः पावक) हमारे पापोंके शोधक हे अग्ने ! (सः अस्मे द्युमत् सुवीर्यं दीदिहि) वह हमारे लिये अत्यन्त तेज युक्त पराक्रम युक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । तथा (स्तोतृभ्यः स्वस्तये अन्तमः भव) स्तोताओंके मंगल करनेके लिये उनके अत्यन्त पास जा ॥ ८ ॥

[१२२] (हव्यवाहं, अमर्त्यं सहः वृधं तं त्वा) हविवाहक, मरणरहित, बलसे बढे हुये उस तुझ अग्निको (विप्राः जागृवांसः विपन्यवः सं इन्धते) विद्वान् लोग, प्रबुद्ध रहनेवाले, मेधासम्पन्न स्तोता जन भली प्रकार प्रदीप्त करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— जो इस जातवेद अग्निको प्रतिदिन प्रज्वलित करता है, वह पुत्र प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होता है ॥ ३ ॥

यज्ञको चलानेवाला वह अग्नि घृतसे तेजस्वी होकर उपासकोंके पास देवताओंको लेकर आवे ॥ ४ ॥

जिस प्रकार सब बुद्धिमान् इस तेजस्वी संसारको बनानेवाले अग्निकी स्तुति करते हैं, उसी प्रकार हम भी इस दर्शनीय अग्निकी स्तुति करें ॥ ५–६ ॥

यह अग्नि सभीमें श्रेष्ठ है, उत्तम कर्मके लिए सबको संगठित करनेवाला है। तथा सब शत्रुओंको पराजित कर सुशोभित होता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! विद्वान्, सदा जागृत रहनेवाले बुद्धिमान् स्तोता तुझे प्रदीप्त करते हैं अतः तू उन्हें हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर और उनका कल्याण करनेके लिए उनके पास जा ॥ ८–९ ॥

[११]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

१२३ अग्निर्होता पुरोहितो ऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥ १ ॥

१२४ स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥ २ ॥

१२५ अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥ ३ ॥

१२६ अग्निं सूनुं सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् । वह्निं देवा अकृण्वत ॥ ४ ॥

१२७ अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् । तूर्णी रथः सदा नवः ॥ ५ ॥

१२८ साह्वान् विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः । अग्निस्तुविश्रवस्तमः ॥ ६ ॥

---

[११]

अर्थ— [१२३] (होता, पुरोहितः अध्वरस्य विचर्षणिः) देवोंको बुलानेवाला, सब कार्योंमें आगे रहनेवाला, यज्ञका विशेष द्रष्टा (सः अग्निः) वह अग्नि, (आनुषक् यज्ञं वेद) क्रमसे यज्ञको जानता है ॥ १ ॥

[१२४] (हव्यवाट् अमर्त्यः उशिक् दूतः चनोहितः) हव्यवाहक, मरणधर्मरहित, सबके द्वारा चाहने योग्य देवताओंका दूत और अन्नोंसे सबका हितकारी (सः अग्निः) वह अग्नि (धिया सं ऋण्वति) बुद्धिसे समन्वित है, अर्थात् अत्यन्त मेधावी है ॥ २ ॥

[१२५] (यज्ञस्य केतुः पूर्व्यः स अग्निः) यज्ञका प्रज्ञापक, प्राचीन वह अग्नि (धिया चेतति) अपनी बुद्धिसे सब कुछ जानता है । (अस्य अर्थं हि तरणि) इसके द्वारा दिया हुआ धन दुःखोंसे तारनेवाला है ॥ ३ ॥

१ अस्य अर्थं तरणि— इसके द्वारा दिया हुआ धन उपासकको दुःखोंसे पार करानेवाला होता है ।

[१२६] (सहसः सूनुं, सनश्रुतं, जातवेदसं अग्निं) बलके पुत्र, प्राचीनकालसे प्रसिद्ध, संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्निको (देवाः वह्निं अकृण्वत) देवताओंने अपना हव्यवाहक बनाया ॥ ४ ॥

[१२७] (मानुषीणां विशां पुरएता) मानवी प्रजाओंका अग्रणी नेता, (तूर्णिः) शीघ्रतासे कार्य करनेवाला (रथः सदा नवः अग्निः) प्रगति करनेवाला तथा सदा नवीन अग्नि किसीसे भी (अदाभ्यः) हिंसित नहीं होता ॥ ५ ॥

१ रथः— प्रगति करनेवाला 'रंहतेर्गतिकर्मणः' ।

२ विशां पुरएता रथः सदा नवः अदाभ्यः— प्रजाओंका नेता हमेशा प्रगति करनेवाला होनेके कारण उत्साहसे सदा नया ही रहता है, इसीलिए उसे कोई दबा नहीं सकता ।

[१२८] (अभियुजः विश्वाः साह्वान्) शत्रुकी समस्त सेनाको अपने बलसे पराजित करनेवाला (अमृक्तः, देवानां क्रतुः अग्निः) अहिंसित देवताओंको प्रेरणा देनेवाला अग्नि, (तुविश्रवस्तमः) अन्न राशियोंसे युक्त है ॥ ६ ॥

भावार्थ— अमर, देवताओंका दूत, सबका हितकारी यह अग्नि उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है, अतः संगठनके कार्यको उत्तम रीतिसे करता है ॥ १-२ ॥

प्राचीनकालसे प्रसिद्ध यह अग्नि अपनी बुद्धिसे सब कुछ जानता है, इसलिए इसे देवोंने अपना हव्यवाहक बनाया । इससे प्राप्त किया हुआ धन उपासकको दुःखसे तारनेवाला होता है ॥ ३-४ ॥

प्रजाओंका नेता यह अग्नि सदा ऊपरकी ओर ही चलता है इसलिए हमेशा नया ही रहता है और किसीसे दबता नहीं ॥ ५ ॥

दानी मनुष्य इस अग्निकी कृपासे पुष्टिदायक अन्न और घर प्राप्त करता है ॥ ६-७ ॥

१२९ अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः । क्षयं पावकशोचिषः ॥ ७ ॥
१३० परि विश्वानि सुधिता ऽग्नेरश्याम मन्मभिः । विप्रासो जातवेदसः ॥ ८ ॥
१३१ अग्ने विश्वानि वार्या वाजेषु सनिषामहे । त्वे देवास एरिरे ॥ ९ ॥

[१२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- गायत्री ।]

१३२ इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता ॥ १ ॥
१३३ इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः । अया पातमिमं सुतम् ॥ २ ॥
१३४ इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥ ३ ॥
१३५ तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥ ४ ॥

अर्थ— [१२९] (दाश्वान् मर्त्यः) दान देनेवाला मनुष्य (वाहसा प्रयांसि अभि अश्नोति) हव्यवाहक अग्नि द्वारा समस्त अन्नोंको चारों ओरसे प्राप्त करता है । तथा (पावकशोचिषः क्षयं) पवित्र करनेवाली किरणोंसे युक्त अग्नि घरसे भी प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

[१३०] (जातवेदसः विप्रासः) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, मेधावी हम (अग्नेः मन्मभिः) अग्निके स्तोत्रों द्वारा (विश्वानि, सुधिता, परि अश्याम) सम्पूर्ण उत्तम अमृतको चारों ओरसे प्राप्त करें ॥ ८ ॥

१ सुधिता— अमृत ।

[१३१] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवासः त्वे एरिरे) देवताओंने तुझसे ही प्रेरणा प्राप्त की, अतः हम भी तुझसे प्रेरित होकर (वार्या विश्वानि वाजेषु) वरण करने योग्य सम्पूर्ण धनोंको युद्धोंमें (सनिषा महे) प्राप्त करें ॥ ९ ॥

[१२]

[१३२] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों (गीर्भिः) स्तुतियोंसे आहूत होकर (सुतं वरेण्यं) निचोडे गए और पीने योग्य इस सोमरसके प्रति (नभः आगतं) आकाशसे आओ, और (इषिता) प्रेरित होकर (अस्य धिया पातं) इसे इच्छानुसार पीओ ॥ १ ॥

[१३३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (जरितुः सचा) स्तोताकी सहायता करनेवाला (यज्ञः) पूज्य तथा (चेतनः) उत्साह देनेवाला यह सोम (जिगाति) तुम्हारी ओर जा रहा है । (अया) हमारी इस प्रार्थनासे प्रेरित होकर तुम दोनों (इमं सुतं पातं) इस निचोडे हुए सोमरसको पीओ ॥ २ ॥

[१३४] (यज्ञस्य जूत्या) सोमयज्ञसे प्रेरीत होकर मैं (कविच्छदा इन्द्रं अग्निं वृणे) ज्ञानीको आनन्द देनेवाले इस इन्द्र और अग्निकी मैं प्रार्थना करता हूँ, (ता) वे दोनों (इह) यहां आकर (सोमस्य तृम्पतां) सोम पीकर तृप्त हों ॥ ३ ॥

[१३५] (तोशा) शत्रुओंके विनाशक (वृत्रहणा) वृत्रासुरको मारनेवाले (सजित्वाना) शत्रुओंको जीतनेवाले पर (अपराजिता) स्वयं अपराजित तथा (वाजसातमा) अत्यन्त श्रेष्ठ बलवाले इन (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्निको (हुवे) मैं बुलाता हूँ ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रत्येक पदार्थको जाननेवाले बुद्धिमान् हम स्तोत्रोंके द्वारा अमरताको प्राप्त करें ॥ ८ ॥

देवगण भी इस अग्निसे ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं, अतः हम भी इससे प्रेरित होकर हरतरहका धन युद्धोंमें प्राप्त करें ॥ ९ ॥

हे इन्द्र अग्ने ! स्तोताओंकी सहायता करनेवाले और उत्तम इस सोमरसको हमने तैयार किया है । यह उत्साह देनेवाला है । तुम दोनों हमारी प्रार्थना सुनकर द्युलोकसे आकर इसे इच्छानुसार पीओ ॥ १-२ ॥

इन्द्र वृत्रका और अग्नि अन्धकारका नाश करनेवाला है, दोनों ही बलशाली, शत्रुओंके विजेता और स्वयं अपराजित हैं । मैं उन्हें बुलाता हूँ वे दोनों आकर सोमपान करें ॥ ३-४ ॥

१३६ प्र वा॑मर्चन्त्युक्थिनो॑ नीथाविदो॑ जरितारः॑ । इन्द्रा॑ग्नी इष आ वृ॑णे ॥ ५ ॥
१३७ इन्द्रा॑ग्नी नव॒तिं पुरो॑ दा॒सप॑त्नीरधूनुतम् । सा॒कमेके॑न कर्म॑णा ॥ ६ ॥
१३८ इन्द्रा॑ग्नी अप॑सस्पर्यु॒प प्र य॑न्ति धी॒तय॑ः । ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३ अनु॑ ॥ ७ ॥
१३९ इन्द्रा॑ग्नी तवि॒षाणि॑ वां स॒धस्था॑नि॒ प्रयां॑सि च । यु॒वोर॒प्तूर्यं॑ हि॒तम् ॥ ८ ॥
१४० इन्द्रा॑ग्नी रोच॒ना दि॒वः परि॒ वाजे॑षु भूषथः । तद् वां॑ चेति॒ प्र वी॒र्य॑म् ॥ ९ ॥

[१३]

[ऋषिः- ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

१४१ प्र वो॑ दे॒वाया॒ग्नये॒ बर्हि॑ष्ठमर्चा॒स्मै ।
ग॒मद् दे॒वेभि॒रा स नो॒ यजि॑ष्ठो ब॒र्हिरा स॑दत् ॥ १ ॥

अर्थ— [१३६] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (नीथाविदः जरितारः उक्थिनः) श्रेष्ठ मार्गको जाननेवाले, स्तुति और प्रार्थना करनेवाले (वां प्र अर्चन्ति) तुम दोनोंकी पूजा करते हैं, मैं भी (इषे आ वृणे) अन्न प्राप्तिके लिए तुम्हारी पूजा करता हूँ ॥ ५ ॥

[१३७] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनोंने (साकं) साथ मिलकर (एकेन कर्मणा) एकबारके पराक्रमसे शत्रुओंके (नवतिं पुरः) नब्बे नगरों और (दासपत्नीः) दासकी पत्नियोंको (अधूनुतां) नष्ट कर दिया था ॥ ६ ॥

[१३८] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (अपसः धीतयः) उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानीजन (ऋतस्य पथ्याः अनु) सत्यके मार्गके अनुकूल (उप परि प्र यन्ति) हमेशा चलते हैं ॥ ७ ॥

१ अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति— कर्म करनेवाले ज्ञानीजन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं ।

[१३९] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (वां) तुम दोनोंके (तविषाणि प्रयांसि च) बल और अन्न (सधस्थानि) प्रतिष्ठादायक हैं, (युवोः) तुम दोनोंमें (अप्तूर्यं हितं) वृष्टि करनेका सामर्थ्य निहित है ॥ ८ ॥

[१४०] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्ने ! (दिवः रोचना) द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले तुम दोनों (वाजेषु परि भूषथः) संग्रामोंमें चारों ओरसे अलंकृत होते हो, (तत् वीर्यं) वह तुम्हारा पराक्रम (वां प्रचेति) तुम दोनोंको प्रसिद्ध करता है ॥ ९ ॥

[१३]

[१४१] हे स्तोताओ ! (वः अस्मै देवाय अग्नये) तुम इस दिव्यगुणवाले अग्निको (बर्हिष्ठं प्र अर्च) उत्तम स्तुति करो । जिससे (सः देवेभिः नः आगमत्) वह देवताओंके साथ हमारे पास आवे और (यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्) अत्यन्त श्रेष्ठ वह अग्नि इस यज्ञमें विराजमान होवे ॥ १ ॥

१ यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्— सबसे पूजनीय ही यज्ञमें सबसे मुख्य स्थान पर बैठता है ।

भावार्थ— हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनोंने साथ मिलकर पराक्रमसे शत्रुओंके नब्बे नगर और उन असुरोंकी सहायता करनेवाली सेनाको मार दिया, इसलिए सब मनुष्य तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५-६ ॥

हमेशा उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी और बुद्धिमान् जन हमेशा सत्यमार्गपर चलते हैं, वे कभी असत्यका व्यवहार नहीं करते ॥ ७ ॥

हे इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों द्युलोकको प्रकाशित करनेवाले एवं संग्रामोंको जीतनेवाले हो, तुम्हारा वह बल तुम्हें प्रतिष्ठा प्रदान करता है और तुम्हारा पराक्रम तुम्हें सर्वत्र प्रसिद्ध करता है ॥ ८-९ ॥

हे स्तोताओ ! इस दिव्यगुणसे युक्त अग्निकी आराधना करो, ताकि वह इस यज्ञमें हमारे पास आकर बैठे ॥ १ ॥

×

१४२ ऋतावा यस्य रोदसी दक्षं सचन्त ऊतयः ।
हविष्मन्तस्तमीळते तं सनिष्यन्तोऽवसे ॥ २ ॥
१४३ स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥ ३ ॥
१४४ स नः शर्माणि वीतये ऽग्निर्यच्छतु शंतमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥ ४ ॥
१४५ दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥ ५ ॥

अर्थ—[१४२] (यस्य रोदसी) जिस अग्निके वशमें आकाश-पृथ्वी है (ऊतयः दक्षं सचन्ते) रक्षा करनेवाले देवगण भी जिसकी शक्तिसे समर्थ होते हैं (तं) ऐसे उस अग्निकी (ऋतावा, हविष्मन्तः, ईळते) सत्य संकल्पवाले तथा हवि देनेवाले स्तुति करते हैं । और (सनिष्यन्तः तं अवसे) धनकी इच्छा करनेवाले अपने संरक्षणके लिए उसका ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

१ ऊतयः दक्षं सचन्ते— रक्षण करनेवाले देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ होते हैं ।

[१४३] (विप्रः सः एषां यन्ता) मेधावी वह अग्नि इन मनुष्योंका नियामक है । (अथः सः ही यज्ञानां) और वही निश्चयसे यज्ञोंका भी नियन्ता है । (दाता सः मघं वनिता) दाता वह श्रेष्ठ धनोंका देनेवाला है । अतः हे मनुष्यो ! (वः तं अग्निं दुवस्यत) तुम सब उस अग्निकी सेवा करो ॥ ३ ॥

१ विप्रः एषां यन्ता— ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है ।

[१४४] (सः अग्निः नः शंतमा वीतये यच्छतु) वह अग्नि हमारे लिये अतीव सुखकर गृह उत्तम कर्म करनेके लिये प्रदान करे । और (यत् प्रुष्णवत् दिवि अप्सु) जो पोषणकारक धन द्युलोक और अन्तरिक्षलोकमें है, वह सब (वसु) श्रेष्ठ धन (क्षितिभ्यः आ) मनुष्योंको सब ओरसे प्राप्त हो ॥ ४ ॥

[१४५] (ऋक्वाणः) स्तोतालोग (दीदिवांसं, अपूर्व्यं, होतारं, विशां विश्पतिं अग्निं) तेजस्वी, प्रतिक्षण नवीन, देवोंको बुलानेवाले, प्रजाओंके पालक अग्निको (अस्य वस्वीभिः धीतिभिः इन्धते) इसकी प्रशस्त बुद्धियोंसे प्रदिप्त करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— ये विशाल द्युलोक एवं पृथ्वीलोक भी इसी अग्निके वशमें हैं और सभी देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ हैं । उसी अग्निकी सब सत्यपालक उपासना करते हैं और अपने संरक्षणके लिए उसका ग्रहण करते हैं ॥ २ ॥

वह ज्ञानी अग्नि सब मनुष्यों और यज्ञोंका नियामक है, वही सब श्रेष्ठ धनोंका दाता है, अतः उस श्रेष्ठ अग्निकी सेवा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

वह अग्नि उत्तम कर्म करनेके लिए हमें उत्तम घर देवे, तथा द्यु और अन्तरिक्षलोकमें जो पोषणकारक धन है, उसे सब मनुष्योंके पोषणके लिए देवे ॥ ४ ॥

सब स्तोतागण इस तेजस्वी, अपूर्व तथा प्रजाओंके पालक इस अग्निको अपनी उत्तम बुद्धियोंसे प्रदीप्त करते हैं ॥ ५ ॥

१४६ उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधो ऽग्ने सहस्रसातमः ॥ ६ ॥
१४७ नू नो रास्व सहस्रवत् तोकवत् पुष्टिमद् वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥ ७ ॥

[१४]

[ऋषिः- ऋषभो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१४८ आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात् सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥ १ ॥
१४९ अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।
विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥ २ ॥

अर्थ— [१४६] (उत) और भी हे (अग्ने) अग्ने ! (ब्रह्मन् नः अविषः) स्तुतिके समय हमारी रक्षा कर । (देवहूतमः उक्थेषु) देवोंको बुलानेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ तू यज्ञमें भी हमारी रक्षा कर । (मरुत् वृधः सहस्रसातमः नः शं शोचः) मरुद्गणोंके द्वारा वर्धित तथा सहस्रों धनोंको देनेवाला तू हमारे सुखकी वृद्धि कर ॥ ६ ॥

[१४७] हे अग्ने ! तू (नः) हमको (तोकवत्, पुष्टिमत्, द्युमत् सुवीर्यं) पुत्रपौत्रादि सहित, पुष्टिकारक, दीप्तिमान्, सामर्थ्यशाली, (वर्षिष्ठं, अनुपक्षितं सहस्रवत् वसु नु रास्व) अत्यधिक श्रेष्ठ, क्षीण न होनेवाला, सहस्र संख्यक धन शीघ्र प्रदान कर ॥ ७ ॥

[१४]

[१४८] (होता, मन्द्रः सत्यः कवितमः) देवोंको बुलानेवाला, सुख बढानेवाला, सत्यका पालक अतिशय मेधावी, (यज्वा, वेधाः सः अग्निः विदथानि आ अस्थात्) यज्ञकारी, ज्ञानी वह अग्नि हमारे किये जानेवाले यज्ञोंमें आता है; (विद्युद्रथः, शोचिष्केशः सहसः पुत्रः) प्रकाशमान् रथवाला, ज्वालामय केशोंसे युक्त बलका पुत्र वह अग्नि (पृथिव्यां पाजः अश्रेत्) इस पृथ्वीपर अपना तेज प्रकट करता है ॥ १ ॥

[१४९] हे (ऋतावः) यज्ञयुक्त अग्ने ! मैं (ते नम उक्तिं अयामि) तुझसे नमस्कारपूर्वक भाषण करता हूँ । (सहस्वः, चेतते, तुभ्यं जुषस्व) शक्तिशाली अग्ने ! ज्ञानवान् तेरे लिए किए गए स्तुतिको तू स्वीकार कर । तू (विद्वान्, विदुषः आवक्षि) विद्वान् है अतः विद्वानोंको सब ओरसे अपने साथ ले आ । हे (यजत्र) यजनीय अग्ने ! (ऊतये, बर्हिः मध्ये आनि षत्सि) हमारी रक्षाके लिये बिछे हुये इस कुशासनपर विराजमान् हो ॥ २ ॥

१ नमः उक्तिं अयति— सबसे प्रणामपूर्वक अर्थात् विनम्रतापूर्वक भाषण करना चाहिए ।
२ विद्वान् विदुषः आ वक्षि— विद्वान् ही अपने साथ विद्वानोंको ला सकता है ।

भावार्थ— हे अग्ने ! स्तुतिके समय यज्ञोंमें तू हमारी रक्षा कर, तथा मरुतोंके द्वारा स्वयं भी पुष्ट होकर तू हजारों तरहके धन देकर हमारे सुखोंको बढा ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू हमें पुष्टिकारक, तेजस्वी, सामर्थ्य देनेवाले, अत्यधिक श्रेष्ठ तथा क्षीण न होनेवाला धन हजारोंकी संख्यामें दे ॥ ७ ॥

देवोंको बुलानेवाला सुखकारी, अत्यन्त ज्ञानी वह अग्नि हमारे यज्ञोंमें आता है । तेजस्वी रथपर चढनेवाला, तेजस्वी तथा बलका पुत्र वह अग्नि इस पृथ्वीपर अपना तेज फैलाता है ॥ १ ॥

हे यज्ञके योग्य अग्ने ! मैं विनम्रतापूर्वक तेरी स्तुति करता हूँ । तू विद्वान् है अतः अपने साथ विद्वानोंको हमारे यज्ञमें ला, तथा स्वयं भी इस कुशासन पर बैठ ॥ २ ॥

१५० द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भि-रा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥
१५१ मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वो ऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन् त्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
१५२ वयं ते अद्य ररिमा हि काम-मुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवा-नस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥ ५ ॥
१५३ त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वी-र्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नो ऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥ ६ ॥

अर्थ— [१५०] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजयन्ती, उषसा ते द्रवतां) अन्न देनेवाली उषा और रात्री तुझको लक्ष्य करके जाती हैं। तू (वातस्य पथ्याभिः अच्छ) वायुके मार्गसे आ। (यद् पूर्व्यं हविर्भिः सीं अञ्जन्ति) क्योंकि पुरातन ऋत्विक् लोग हवि द्वारा तुझे भलिभांति सींचते हैं। (वन्धुरा इव, दुरोणे आ तस्थतुः) जुओंकी तरह आपसमें मिली हुई उषा और रात्री हमारे घरमें आ कर रहें ॥ ३ ॥

[१५१] हे (सहस्वः अग्ने) बलवान् अग्ने ! (मित्रः वरुणः च विश्वे मरुतः) मित्र, वरुण और समस्त मरुद्-गण (तुभ्यं सुम्नं अर्चन्) तेरे लिये स्तोत्रका उच्चारण करते हुये पूजा करते हैं; (यत् सहसः पुत्र सूर्यः) क्योंकि हे बलके पुत्र अग्ने ! सबका प्रेरक तू (क्षितीः नॄन् अभि प्रथयन् शोचिषा तिष्ठाः) मनुष्योंके पथप्रदर्शक अपनी किरणोंको सम्मुख फैलाकर अपने तेजसे स्थित हो ॥ ४ ॥

[१५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अद्य उत्तानहस्ताः वयं कामं ते ररिम) आज ऊँचे हाथोंवाले हम शोभन हव्य तुझको प्रदान करते हैं। (विप्रः, नमसा उपसद्य यजिष्ठेन मनसा) मेधावी तू हमारे नमस्कारसे प्रसन्न होकर अपने उत्तम मनसे (अस्रेधता मन्मना देवान् यक्षि) प्रभूत स्तोत्रोंके द्वारा देवोंकी पूजा कर ॥ ५ ॥

[१५३] हे (सहसः पुत्र अग्ने) बलके पुत्र अग्ने ! (त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य वि यन्ति) तुझसे अत्यधिक विघ्नोंको दूर करनेवाली रक्षण शक्तियाँ, दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं; और (वाजाः हि वि) विविध प्रकारके अन्न भी निश्चयसे उन्हें प्राप्त होते हैं। हे अग्ने ! (त्वं) तू (अद्रोघेण वचसा सत्यं) द्रोहसे रहित, पापसे शून्य, भाषणसे प्राप्त होनेवाले अविनाशी (सहस्रिणं रयिं नः देहि) सहस्र संख्यक धनको हमें दे ॥ ६ ॥

१ त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य यन्ति— इस अग्निसे अनेक तरहकी रक्षण शक्तियां दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं।

२ अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं— पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन ही टिकता है।

भावार्थ— अन्नसे युक्तमें उषा और रात्री भी इस अग्निकी सेवा करती हैं। यह अग्नि वायुके द्वारा प्रेरित होता है, इसलिये मानों वह वायुके मार्गसे ही सर्वत्र जाता है। प्राचीन ऋषिमु[illegible]की पूजा करते आए हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि सबका प्रेरक एवं अपने प्रकाशसे सबके मार्गोंको प्रकाशित करता है। वह स्वयं अपने तेजसे स्थित है, अतः सब देवगण उसकी पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हम आज हाथ ऊंचा करके उत्तम हवि तुझे देते हैं, वह हवि तू उत्तम मनसे देवोंको पहुंचा और अनेक स्तोत्रोंसे उनकी पूजा कर ॥ ५ ॥

इस अग्निकी अनेक तरहकी संरक्षणकी शक्तियां दिव्य मनुष्योंकी रक्षा करती हैं और उन्हें हर तरहसे समृद्ध बनाती हैं। हे अग्ने ! तू हमें ऐसा धन दे, जो पापरहित और सत्यमार्गसे कमाया गया हो ॥ ६ ॥

१५४ तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥ ७ ॥

[१५]

[ऋषिः- कात्य उत्कीलः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१५५ वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥ १ ॥
१५६ त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २ ॥
१५७ त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राय उशिजो यविष्ठ ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५४] हे (दक्ष, कविक्रतो देव) समर्थ, सर्वज्ञ, प्रकाशमान् अग्ने ! हम (मर्तासः अध्वरे तुभ्यं यानि इमा अकर्म) मनुष्य लोग यज्ञमें तेरे लिए जो इन हवियोंको देते हैं। हे ! (अमृत अग्ने) मरणरहित अग्ने ! तू (इह तत् सर्वं स्वद) इस यज्ञमें दिये हुये उन सब हव्योंका आस्वादन कर तथा (त्वं सुरथस्य, विश्वस्य बोधि) तू सुन्दर रथ पर बैठे हुये अर्थात् समृद्ध सभी मनुष्योंकी रक्षाके लिये जागृत हो ॥ ७ ॥

[१५]

[१५५] हे अग्ने ! (पृथुना पाजसा शोशुचानः) विस्तीर्ण तेजके द्वारा अतीव प्रकाशमान् तू (द्विषः अमीवाः रक्षसः वि बाधस्व) द्वेष करनेवाले शत्रुओं, तथा सामर्थ्ययुक्त राक्षसोंका विनाश कर। (सुशर्मणः बृहतः सुहवस्य अग्नेः) उत्कृष्ट सुख देनेवाले, महान् और आसानीसे बुलाये जाने योग्य अग्निके (प्रणीतौ शर्मणि अहं स्यां) सुखकारक मैं रहनेवाला होऊँ ॥ १ ॥

१ सुशर्मणः प्रणीतौ शर्मणि अहं स्याम्— उत्तम सुखदायक अग्निके संरक्षणमें मैं होऊं ।

[१५६] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं अस्याः उषसः व्युष्टौ सूरे उदिते) तू इस उषाके प्रकट होनेके पश्चात् और सूर्यके उदय होनेपर (नः गोपाः बोधि) हमारी रक्षाके लिये जाग्रत हो. (तन्वा सुजातः त्वं) स्वयं अपनी ज्वालाओंसे प्रकट होनेवाला तू (मे स्तोमं नित्यं जुषस्व) मेरे स्तोत्रको रोज उसी प्रकार सुन, जिस प्रकार (जन्म तनयं इव) पिता पुत्रकी सुनता है ॥ २ ॥

१ त्वं उषसः सूरे उदिते नः गोपाः— हे अग्ने ! तू उषा और सूर्यके उदय होनेपर हमारी रक्षा कर।

[१५७] हे (वृषभः अग्ने) बलवान् अग्नि ! (नृचक्षाः) मनुष्योंके शुभ और अशुभ कर्मोंको देनेवाला (कृष्णासु अरुषः अनुपूर्वीः वि भाहि) अन्धेरी रातोंमें भी प्रकाशित होनेवाला तू बहुत ज्वालाओंसे चमक । हे (वसो) निवास देनेवाले अग्ने ! हमको (नेषि, च अंहः अति पर्षि) दुःखोंसे पार ले जा और पापोंसे हमें पार करा (च यविष्ठ नः राये उशिजः कृधि) तथा हे तरुण अग्ने ! हमको धनसे सम्पन्न कर ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे समर्थ और सर्वज्ञ अग्ने ! हम यज्ञमें जो हवियां देते है, उनका तू सेवन कर और उत्तम उत्तम मनुष्योंकी रक्षा कर ॥ ७ ॥

वह अग्नि अपने तेजके कारण सर्वत्र प्रकाशित और सभी रोगों एवं शत्रुओंको दूर करनेवाला है। अतः हम इसके सुखदायक संरक्षणमें रहें ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू सबेरे शाम अर्थात् हमेशा हमारी रक्षा कर तथा हमारी प्रार्थनाओंको प्रेमपूर्वक सुन ॥ २ ॥

मनुष्योंके सब कर्मोंपर नजर रखनेवाला यह अग्ने अन्धेरी रात्रीयोंमें भी चमकता है। यह उत्तम अग्नि मनुष्योंको दुःखों और पापोंसे पार कराकर उन्हें धन सम्पन्न बनाता है ॥ ३ ॥

१५८ अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायो— र्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥ ४ ॥
१५९ अच्छिद्रा शर्म जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाज— मग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥ ५ ॥
१६० प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजा— नग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥ ६ ॥
१६१ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ७ ॥

अर्थ— [१५८] हे (अग्ने) अग्ने! (अषाळ्हः) अपराजित तथा (वृषभः विश्वाः पुरः सौभगा संजिगीवान् दिदीहि) बलवान् तू शत्रुओंकी सब नगरी और उत्तम धनोंका जीत करके सर्वत्र अपनी ज्वालासे प्रकाशित हो हे (सुप्रणीते जातवेदः) अच्छे प्रकारसे ले चलनेवाले सर्वज्ञ अग्ने! (बृहतः पायोः प्रथमस्य यज्ञस्य नेता) महान् और शरण देनेवाले मुख्य यज्ञका नेता है ॥ ४ ॥

[१५९] हे (जरितः) स्तोता अग्ने! (सुमेधाः दीद्यानः) शोभान ज्ञानसे युक्त और अपने तेजसे दीप्तिमान् तू (देवान् अच्छ शर्म पुरूणि अच्छिद्रा) देवोंको लक्ष्य करके सुखके साधनभूत अनेक उत्तम कर्मोंको कर। हे (अग्ने त्वं) अग्ने! तू (सस्निः रथः न, नः वाजं वक्षि) यहीं ठहर कर रथकी तरह देवोंके निमित्त हमारे हव्यको ले जा। तथा (रोदसी, सुमेके) द्यावापृथ्वीको अच्छी प्रकार प्रकाशित कर ॥ ५ ॥

[१६०] हे (वृषभ अग्ने) बलवान् अग्ने! (त्वं नः प्र पीपय) तू हमें पूर्ण कर। तथा (वाजान् जिन्व) अनेक प्रकारके अन्नोंको हमें प्रदान कर। (सुरुचा रुचानः देव) शोभन दीप्तिसे तेजस्वी तथा दिव्य गुणोंवाले अग्ने! तू (देवेभिः रोदसी सुदोघे) देवोंके साथ द्यावापृथ्वीको उत्तम फल देनेवाला कर। तथा (मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परि स्थात्) मनुष्योंकी दुर्बुद्धि कभी भी हमारे निकट न आवे ॥ ६ ॥

१ मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परि स्थात्— मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास कभी भी न आवे।

[१६१] हे अग्ने! (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे। (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों। हे (अग्ने) अग्ने! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! तू अपराजित और बलवान् होकर शत्रुओंकी सभी नगरियों और धनोंको जीतकर सर्वत्र प्रकाशित हो तथा हमारे उत्तम यज्ञोंको पूर्ण कर ॥ ४ ॥

हे स्तोता अग्ने! तू उत्तम ज्ञानसे युक्त होकर उत्तम कार्यको कर, एवं हमारी हवियोंको देवोंतक पहुंचा और द्युलोक और पृथ्वीलोकको अपने तेजसे प्रकाशित कर ॥ ५ ॥

हे अग्ने! हमें सब ओरसे पूर्ण तथा समृद्ध कर, तू सब देवों और द्युलोक तथा पृथ्वीको उत्तम फल देनेवाला बना। इससे युक्त होकर हम कभी भी बुरी बुद्धिवाले न हों ॥ ६ ॥

हे अग्ने! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर। उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ७ ॥

[१६]

[ऋषिः- कात्य उत्कीलः। देवता- अग्निः। छन्दः- प्रगाथः (= १, ३, ५ बृहती; २, ४, ६ सतोबृहती।]

१६२ अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ १ ॥

१६३ इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥ २ ॥

१६४ स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्यस्य।
तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

१६५ चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः।
आ देवेषु यतत आ सुवीर्य आ शंस उत नृणाम् ॥ ४ ॥

---

[१६]

अर्थ— [१६२] (अयं अग्निः) यह अग्नि (सुवीर्यस्य महः सौभगस्य ईशे) उत्तम सामर्थ्य और महान् सौभाग्यका स्वामी है। (गोमतः सु अपत्यस्य रायः ईशे) गो आदि पशुओंसे युक्त तथा उत्तम पुत्रसे युक्त धनका स्वामी है और (वृत्रहथानां ईशे) वृत्रका वध करनेवालोंका ईश्वर है ॥ १ ॥

[१६३] (ये पृतनासु) जो संग्रामोंमें (दूढ्यः) अपराजित (शत्रुं विश्वाहा आदभुः) शत्रुओंके सदा ही संहारक हैं, ऐसे हे (मरुतः) मरुद्गण ! (नरः वृधं इमं सश्चत) तुम मनुष्योंके नायकरूपसे सौभाग्यके बढानेवाले इस अग्निको प्रसन्न करो (यस्मिन् शेवृधासः रायः अभि सन्ति) जिस अग्निमें सुखके बढानेवाले धन चारों ओरसे विद्यमान हैं ॥२॥

[१६४] हे (तुविद्युम्न, मीढ्वः अग्ने) बहुधनशाली और उदार अग्ने ! (सः त्वं नः) वह प्रसिद्ध तू हमको (रायः वर्षिष्ठस्य प्रजावतः) धनोंसे, प्रभूत सन्तानोंसे एवं (अनमीवस्य शुष्मिणः सुवीर्यस्य शिशीहि) आरोग्यतादायक, शक्ति और सामर्थ्यसे युक्त अन्नसे समृद्ध बना ॥ ३ ॥

[१६५] (यः चक्रिः, विश्वा भुवना अभि) जो अग्नि संसारका कर्ता है और सम्पूर्ण विश्वमें प्रविष्ट हो रहा है। (चक्रिः, सासहिः दुवः देवेषु आ) वह सबका रचयिता हव्यको ढोनेवाला होकर हमारे दिये हुये अन्नको देवोंके पास पहुंचाता है तथा (देवेषु आ यतते) दिव्य मनुष्योंको प्रेरणा देता है। वह (उत, नृणां शंसे, सुवीर्ये आ) नेताओंके यज्ञमें तथा शोभन युद्धमें जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अग्नि उत्तम सामर्थ्य, महान् सौभाग्य तथा गौ आदि उत्तम पशुओं तथा वृत्रका वध करनेवाले वीरोंका स्वामी है ॥ १ ॥

इस अग्निमें सुखकारक धन चारों ओरसे विद्यमान हैं, अतः यह मनुष्योंके सुखको सदा बढता रहता है इस अग्निकी संग्रामोंमें शत्रुओंको हरानेवाले मरुद्गण भी उपासना करते हैं ॥ २ ॥

हे अतिशय धनवान् और उदार अग्ने ! तू हमें उत्तम धन, उत्तम सन्तान, आरोग्यदायक अन्न एवं सामर्थ्यसे समृद्ध बना ॥ ३ ॥

वह अग्नि सारे संसारको रचकर उनमें व्याप्त हो जाता है। वही देवोंको हव्य पहुंचाता है और यज्ञोंमें और युद्धोंमें प्रेरणा देता है ॥ ४ ॥

१६६ मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।
मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदे ऽप द्वेषांस्या कृधि ॥ ५ ॥

१६७ शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतो ऽग्ने बृहतो अध्वरे ।
सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥ ६ ॥

[१७]

[ऋषिः– कतो वैश्वामित्रः । देवता– अग्निः । छन्दः– त्रिष्टुप् ।]

१६८ समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।
शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥ १ ॥

१६९ यथायजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।
एवानेन हविषा यक्षि देवान् मनुष्वद् यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥ २ ॥

अर्थ— [१६६] हे (सहसस्पुत्र अग्ने) बलके पुत्र अग्ने ! (नः अमतये मा रीरधः) हमें दरिद्रताको मत सौंप । (अवीरतायै मा) पुत्रोंसे रहित न कर । (अगोतायै, निदे मा) गवादि पशुओंसे शून्य और निन्दासे युक्त मत होने तथा हमसे (द्वेषांसि अप आ कृधि) द्वेषकी भावनाको दूर कर ॥ ५ ॥

[१६७] हे (सुभग अग्ने) शोभन ऐश्वर्यसम्पन्न अग्ने ! तू (अध्वरे बृहतः प्रजावतः वाजस्य शग्धि) यज्ञमें सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्योंका स्वामी हो । हे (तुविद्युम्न) महान् धनोंसे युक्त अग्ने ! तू हमें (मयोभुना, यशस्वता भूयसा, रायः सं सृज) सुखकर यशोवर्धक प्रभूत धनोंको प्रदान कर ॥ ६ ॥

[१७]

[१६८] (धर्म अग्निः शोचिष्केशः विश्ववारः) धर्मको धारण करनेवाले अग्नि, ज्वालारूप केशसे संयुक्त, सबके द्वारा स्वीकार करनेयोग्य, (समिध्यमानः घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञः) सम्यक् प्रज्वाल्यमान, घृतसे तेजस्वी, पवित्र करनेवाला और सत्कर्मोंका कर्ता है । वह अग्नि (प्रथमा अनु समिध्यमानः) यज्ञके प्रारम्भमें क्रमशः प्रज्वलित होकर (देवान् यजथाय अक्तुभिः सं अज्यते) देवोंके यज्ञके लिये घृतादियोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे सिद्ध होता है ॥ १ ॥

[१६९] हे (अग्ने) अग्ने ! तूने (यथा पृथिव्याः होत्रं अयजः) जिस प्रकार पृथ्वीको हव्य प्रदान किया था । तथा हे (जातवेदः) सर्वज्ञ, अग्ने ! (चिकित्वान्) विद्वान् तूने (यथा दिवः) जिस प्रकार आकाशको हव्य प्रदान किया था, (एव) उसी प्रकार (अनेन हविषा देवान् यक्षि) हमारे इस हव्यके द्वारा देवताओंका यजन कर । तथा हमारे इस यज्ञको (मनुष्वत् प्रतिर) मनुके यज्ञके समान ही सम्पन्न कर ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमें दरिद्री, पुत्रोंसे रहित, पशुओंसे शून्य, निन्द्य मत बना तथा हमेशा हमसे द्वेषकी भावनाको दूर कर ॥ ५ ॥

सौभाग्यशाली अग्ने ! तू हमें यज्ञोंमें सुसन्तानयुक्त ऐश्वर्यका स्वामी बना तथा अनेक तरहके सुखकारक यशोवर्धक-धनोंको प्रदान कर ॥ ६ ॥

धारक अग्नि ज्वालाओंसे युक्त होकर घृतसे तेजस्वी बनकर मनुष्योंको शुद्ध और पवित्र होता है । वह अग्नि प्रज्वलित होकर घीसे अच्छी तरह सिंचित होता है ॥ १ ॥

हे अग्ने ! जिस प्रकार तूने पृथिवीकी और द्युलोककी पूजा की थी, उस प्रकार तू देवोंकी भी पूजा कर और उनकी सहायतासे हमारे यज्ञको पूर्ण कर ॥ २ ॥

१७० त्रीण्यायूंषि तव॑ जातवेद—स्तिस्र आजानी॑रुषस॑स्ते अग्ने ।
ताभि॑र्दे॒वाना॒मवो॑ यक्षि वि॒द्वा—नथा॑ भव॒ यज॑मानाय॒ शं योः ॥ ३ ॥

१७१ अ॒ग्निं सु॑दी॒तिं सु॒दृशं॑ गृ॒णन्तो॑ नम॒स्याम॒स्त्वेड्यं॑ जातवेदः ।
त्वां दू॒तम॑र॒तिं ह॑व्य॒वाहं॑ दे॒वा अ॑कृण्वन्न॒मृत॑स्य॒ नाभि॑म् ॥ ४ ॥

१७२ यस्त्वद्धोता॒ पूर्वो॑ अग्ने॒ यजी॑यान् द्वि॒ता च॒ सत्ता॑ स्व॒धया॑ च श॒म्भुः ।
तस्या॒नु धर्म॒ प्र य॑जा चिकि॒त्वो ऽथा॑ नो धा अध्व॒रं दे॒ववी॑तौ ॥ ५ ॥

[१८]

[ऋषिः- कतो वैश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७३ भवा॑ नो अग्ने सु॒मना॒ उपे॑तौ॒ सखे॑व॒ सख्ये॑ पि॒तरे॑व सा॒धुः ।
पु॒रु॒द्रुहो॒ हि क्षि॒तयो॒ जना॑नां॒ प्रति॑ प्रती॒चीर्द॑हता॒दरा॑तीः ॥ १ ॥

अर्थ— [१७०] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (तव त्रीणि आयूंषि) तेरे तीन प्रकारके अन्न हैं (तिस्रः, उषसः ते आजानीः) तीन उषाएं तेरी मातायें हैं । तू (ताभिः अवः देवानां यक्षि) उनकी सहायतासे हव्य देवताओंको प्रदान कर । (अथ विद्वान् यजमानाय शं योः भव) उसके अनन्तर सब कुछ जानेवाला तू यजमानके लिये सुख और कल्याणका देनेवाला हो ॥ ३ ॥

१ त्रीणि आयूंषि— घृत, औषधि, सोमरूप तीन तरहके अन्न ।

[१७१] (सुदीतिं, सुदृशं ईड्यं) शोभन दीप्तिसे युक्त, देखनेयोग्य, स्तुति योग्य (अरतिं हव्यवाहं त्वां अग्निं देवाः दूतं अकृण्वन्) देवताओंने गतिमान् ज्वालाओंवाले और हव्यवाहक तुझ अग्निको दौत्य कर्ममें नियुक्त किया। तथा (जातवेदः) पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (अमृतस्य नाभिं त्वां) अमृतकी नाभि तेरी हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[१७२] हे (चिकित्वः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (त्वत् पूर्वः यः यजीयान् होता) तेरे पहले जो यज्ञकर्ता होता (द्विता स्वधया सत्ता शंभुः) मध्यम और उत्तम नामक दो स्थानोंपर, सोमके साथ बैठकर सुखी हुये थे, उनके (अनु धर्म प्र यज) धर्मको लक्ष्य करके विशेषरूपसे यज्ञ कर । (अथ नः अध्वरं देववीतौ धाः) उसके अनन्तर हमारे इस यज्ञको देवोंकी प्रसन्नताके लिये धारण कर ॥ ५ ॥

[१८]

[१७३] हे (अग्ने) अग्ने ! (सखा इव सख्ये, पितरा इव) जैसे मित्र मित्रके प्रति और माता-पिता अपने पुत्रके प्रति हितैषी होते हैं, उसी प्रकार तू (नः उप इतौ सुमनाः साधुः भव) हमारे सम्मुख आनेपर प्रसन्न होकर हितैषी बन । इस संसारमें (जनानां प्रति क्षितयः हि पुरुद्रुहः) मनुष्योंके प्रति मनुष्य अत्यधिक द्रोह करनेवाले हैं, इसलिये तू हमारे (प्रतीचीः अरातीः, प्रति दहतात्) विरुद्धाचारी शत्रुओंको उनके प्रतिकूल होकर भस्म कर दे ॥ १ ॥

१ सखा इव पितरा इव साधुः भव— मित्र अथवा पिता माताके समान हितैषी हो ।

२ जनानां प्रति क्षितयः पुरुद्रुहः— मनुष्यसे दूसरे मनुष्य बहुत द्वेष करते हैं अतः प्रति दहतात् ऐसे विद्वेषी मनुष्योंको जला देना चाहिए ।

भावार्थ— हे अग्ने ! तीन उषाओं द्वारा जन्मा हुआ तू घी, औषधि और सोम इन तीन अन्नसे प्रदीप्त होकर देवोंको हव्य पहुंचा और यजमानका कल्याण करनेवाला हो ॥ ३ ॥

सुन्दर, देखने योग्य, स्तुति योग्य इस अग्निको देवताओंने अपना दूत बनाया । यह अग्नि अमृतका केन्द्र है, इसलिए सब उसकी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

×

१७४ तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान् वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥ २ ॥

१७५ इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ॥ ३ ॥

१७६ उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद् वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं1 भूरि कृत्वः ॥ ४ ॥

१७७ कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत् समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत् सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥ ५ ॥

अर्थ— [१७४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अन्तरान् अमित्रान् सु तप) हमारे समीपवर्ती शत्रुओंको भलीभाँति संताप दे । जो तुझको (अररुषः, परस्य शंसं तप) हव्य प्रदान नहीं करता है ऐसे उन शत्रुओंकी अभिलाषाको व्यर्थ कर । हे (वसो चिकितानः) सबके निवास दाता अग्ने ! सर्वज्ञ तू (अचित्तान् तप) चंचल चित्तवाले मनुष्योंको संतप्त कर (ते अजराः अयासः वि तिष्ठन्तां) तेरी जरारहित किरणें सर्वत्र फैलें ॥ २ ॥

[१७५] हे (अग्ने) अग्ने ! मैं (इच्छमानः तरसे बलाय इध्मेन घृतेन) धनाभिलाषी होकर तेरे वेग और सामर्थ्यके लिये समिधा और घृतके साथ (हव्यं जुहोमि) हव्यको प्रदान करता हूँ । (ब्रह्मणा वन्दमानः, यावत् ईशे) स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हुआ बहुतसे धनोंका मैं स्वामी होऊं । तू तेरी (इमां धियं शतसेयाय देवीं) इस बुद्धिको अपरिमित धनदानके लिये प्रकाशमान बना ॥ ३ ॥

[१७६] हे (सहसः पुत्र अग्ने) बलके पुत्र अग्ने ! तू अपनी (शोचिषा उत्) दीप्तिसे दीप्तमान् हो, तथा (स्तुतः शशमानेषु विश्वामित्रेषु) स्तुत होकरके स्तुति करनेवाले विश्वामित्रके गोत्रमें उत्पन्न उनके वंशधरोंको (रेवत् बृहत वयः धेहि) धनसे युक्त करो और प्रभूत अन्न दे । तथा उनको (शं योः) आरोग्य और निर्भयता प्रदान कर । हे (कृत्वः) कर्मकारक अग्ने ! हम लोग (ते तन्वं भूरि मर्मृज्म) तेरे शरीरको शुद्ध करते हैं ॥ ४ ॥

[१७७] (सुसनितः अग्ने) उदारदाता अग्ने ! (धनानां रत्नं कृधि) धनोंके बीचमें श्रेष्ठ धन हमें प्रदान कर । (यत् समिद्धः स घेत् भवासि) जब तू अच्छी प्रकार दीप्त होता है उसी समय वह तू प्रदान करता है । तू (सुभगस्य स्तोतुः दुरोणे सृप्रा वपूंषि करस्ना रेवत् दधिषे) भाग्यवान् स्तोताके घरपर फैले हुए रूपवान् दोनों हाथोंको धन देनेके लिये हमारी ओर बढा ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुझसे पूर्व जो यज्ञ करनेवाले जिस धर्मपर चलकर सुखी हुए थे, उसी धर्म पर हमें प्रेरित कर, ताकि उस हमारे यज्ञसे देव प्रसन्न हों ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू मित्र अथवा पिताके समान हमारा हितकारी हो तथा जो हमसे द्वेष करनेवाले हों उनको तू जला दे ॥१॥

हे अग्ने ! तू हमारे पासमें रहनेवाले नास्तिक लोगोंकी इच्छाओंको नष्ट करके उन्हें भी नष्ट कर दे, फिर अपनी तेजस्वी ज्वालाओंको सर्वत्र फैला ॥ २ ॥

हे अग्ने ! धनकी इच्छासे तुझे सामर्थ्यवान् बनानेके लिए मैं हवि देता हूँ । इस स्तुतिसे मैं बहुत धन प्राप्त करूं इसलिए इस स्तुतिको तू प्रकाशित कर ॥ ३ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू तेजस्वी होकर विश्वामित्र गोत्रमें उत्पन्न हुए हमको बहुत अन्न और आरोग्य दे । हम भी तेरे शरीरको शुद्ध करें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! धनोंमें उत्तम धन तू हमें दे अथा अपने दोनों सुन्दर हाथ हमें धन देनेके लिए बढा ॥ ५ ॥

[१९]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१७८ अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद् देवताता यजीयान् राये वाजाय वनते मघानि ॥ १ ॥
१७९ प्र ते अग्ने हविष्मतीमिय र्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद् देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥ २ ॥
१८० स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥ ३ ॥
१८१ भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीका ऽग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥ ४ ॥

---

[१९]

अर्थ— [१७८] (गृत्सं, कविं, विश्वविदं, अमूरं होतारं अग्निं) देवोंके स्तोता, मेधावी, सर्वज्ञ, प्रज्ञावान् और होम निष्पादक अग्निको मैं (मियेधे प्र वृणे) इस यज्ञमें विशेष रूपसे वरण करता हूं। (सः यजीयान् नः देवताता यक्षत्) वह पूजनीय अग्नि हमारे लिये देवताओंका यजन करे। तथा (राये वाजाय मघानि वनते) और अन्न देनेके लिये हमारे हव्यको ग्रहण करे ॥ १ ॥

[१७९] हे (अग्ने) अग्ने ! मैं (हविष्मतीं, सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीं) हव्ययुक्त, तेजस्वी, हव्यदाता और घृतसे भरे हुए चमसेको (ते अच्छ इयर्मि) तेरी तरफ प्रेरित करता हूँ। (देवतातिं उराणः) देवताओंका सम्मान करनेवाला वह अग्नि (रातिभिः वसुभिः प्रदक्षिणित् सं अश्रेत्) देने योग्य धनोंसे युक्त होकर कुशलतासे यज्ञमें सम्मिलित हो ॥ २ ॥

[१८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वा ऊतः, स तेजीयसा, मनसा) तुझसे रक्षित जो है, वह अत्यन्त तेजस्वी अन्तःकरणसे युक्त होता है। (उत सु अपत्यस्य शिक्ष) और तू उसे उत्तम अपत्यवाला धन प्रदान कर। हे अग्ने ! (रायः शिक्षोः नृतमस्य ते प्रभूतौ) धन देनेवाले और उत्तम नेता तेरे उत्तम और अत्यधिक वैभवमें हम रहें तथा (सुष्टुतयः वस्वः भूयां) तेरी स्तुति कर हम धनाधिपति होवें ॥ ३ ॥

१ ऊतः तेजीयसा मनसा — इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

२ नृतमस्य प्रभूतौ— हम उत्तम नेताके संरक्षणमें रहें।

[१८१] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवस्य यज्यवः जनासः त्वे भूरीणि अनीका हि दधिरे) देवोंकी पूजा करनेवाले जनोंने तुझमें बहुतसी ज्वालायें उत्पन्न की है। (सः यविष्ठः यत् अद्य) वह अत्यन्त युवा तू चूँकि आज इस वर्तमान यज्ञमें (दिव्यं शर्धः यजासि) स्वर्गीय तेजकी पूजा करता है इसलिये (देवतातिं आ वह) पूजाके योग्य देवताओंको इस यज्ञमें बुला ॥ ४ ॥

भावार्थ— मेधावी, सर्वज्ञ तथा ज्ञानी उस अग्निको मैं वरण करता हूँ। वह हमारे लिए देवोंको प्रसन्न करे तथा धन और अन्न देनेके लिए हमारी हविको ग्रहण करे ॥ १ ॥

मैं प्रतिदिन घी और हविसे भरे हुए चमसको अग्निकी ओर प्रेरित करता हूँ अर्थात् मैं प्रतिदिन यज्ञ करता हूँ। अतः वह अग्नि भी सब धनोंसे युक्त होकर मेरे यज्ञमे प्रसन्नतासे आवे ॥ २ ॥

इस अग्निके संरक्षणमें रहनेवाला मनुष्य उत्तम मनसे युक्त होता है, अतः हम भी उसके संरक्षणमें रहें और उसकी स्तुति करते हुए वैभवके स्वामी हों ॥ ३ ॥

यह अग्नि सदा स्वर्गीय तेजकी पूजा करता है और यज्ञमें देवोंको बुलाकर लाता है, इसलिए उपासक भी इसमें बहुत सी ज्वालायें उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

१८२ यत् त्वा होतारमनजन् मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्य—धि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥ ५ ॥

[२०]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः १, ५ विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१८३ अग्निमुषसमश्विना दधिक्रां व्युष्टिषु हवते वह्निरुक्थैः ।
सुज्योतिषो नः शृण्वन्तु देवाः सजोषसो अध्वरं वावशानाः ॥ १ ॥

१८४ अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववाता—स्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥ २ ॥

१८५ अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८२] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् यजथाय निषादयन्तः देवाः) चूँकि यज्ञके लिये बैठे हुये दीप्तिशाली ऋत्विक् गण (मियेधे होतारं त्वा अनजन्) यज्ञमें होम निष्पादक तुझको सिक्त करते हैं, इसलिये (त्वं इह नः अविता बोधि) तू इस यज्ञमें हमारे संरक्षणके लिये जाग्रत हो । तथा (नः तनूषु श्रवांसि अधि धेहि) हमारे पुत्रोंको अन्न अधिक मात्रामें प्रदान कर ॥ ५ ॥

[२०]

[१८३] (वह्निः) जीवन वाहक देव । (व्युष्टिषु) दिनके प्रारंभमें (अग्निं उषसं अश्विना दधिक्रां) अग्नि, उषा, अश्विनौ और दधिक्रा देवताओंको (उक्थैः हवते) स्तोत्रोंसे बुलाता है । (नः अध्वरं वावशानाः) हमारे यज्ञकी कामना करनेवाले (सुज्योतिषः) उत्तम तेजसे सम्पन्न तथा (सजोषसः देवाः) साथ साथ प्रेमसे रहनेवाले देव (शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १ ॥

[१८४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ते त्री वाजिना) तेरे तीन प्रकारके अन्न हैं और (त्री षधस्था) तीन वास स्थान हैं । हे (ऋतजात) यज्ञसे उत्पन्न अग्ने ! (ते पूर्वीः तिस्रः जिह्वाः) तेरी सनातन तीन जिह्वायें हैं । (ते देववाताः तिस्रः उ तन्वः) तेरे देवों द्वारा अभिलषित तीन प्रकारके शरीर हैं । तू (अप्रयुच्छन् ताभिः नः गिरः पाहि) सावधान होकर अपने उन शरीरोंसे हमारे स्तोत्रोंका रक्षक बन ॥ २ ॥

[१८५] हे (देव जातवेदः स्वधावः अग्ने) द्युतिमान् और सर्वज्ञ-अन्नवान् अग्ने ! (तव अमृतस्य भूरीणि नाम) तुझ मरणरहितकी अनेक प्रकारकी विभूतियां हैं (विश्वमिन्व, पृष्टबन्धो मायिनां पूर्वीः याः मायाः च त्वे संदधुः) संसारके तृप्तिकर्ता तथा स्तोताओंके बन्धु हे अग्ने ! मायावी असुरोंकी प्राचीन जिन मायाओंका तुझमें प्रयोग किया, उन्हें तू जानता है ॥ ३ ॥

१ अमृतस्य भूरीणि नाम— इस अमर अग्निकी अनेक विभूतियां हैं ।

भावार्थ— हे अग्ने ! तेजस्वी ऋत्विक् तुझे घीसे सींचते हैं, इसलिए तू हमारी रक्षा कर और हमारी सन्तानोंको उत्तम और बहुत सारा अन्न दे ॥ ५ ॥

जीवनको चलानेवाले यज्ञमें मनुष्य अग्नि, उषा आदि देवोंको प्रेमपूर्वक बुलाता है । यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाले, उत्तम तेजस्वी तथा एक साथ मिलकर रहनेवाले देव उसकी प्रार्थनाको सुनें ॥ १ ॥

इस अग्निके घी, औषधि और सोम ये तीन तरहके अन्न हैं; पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु ये तीन स्थान हैं, तीन जिह्वायें हैं तीन शरीर हैं । उन शरीरोंसे अग्नि हमारे स्तोत्रोंकी रक्षा करे ॥ २ ॥

हे तेजस्वी और सर्वज्ञ अग्ने ! तेरी विभूतियां अनेक हैं अतः तुझसे जो माया या छलकपट करता है, वह सब तू जानता है ॥ ३ ॥

१८६ अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद् विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥ ४ ॥

१८७ दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून् रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥ ५ ॥

[२१]

[ऋषिः- गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः । छन्दः- १ त्रिष्टुप् । २-३ अनुष्टुप् , ४ विराड्रूपा, ५ सतोबृहती ।]

१८८ इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥ १ ॥

१८९ घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन् देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्यम् ॥ २ ॥

अर्थ— [१८६] (ऋतुपा भगः इव अग्निः) ऋतुओंकी पालना करनेवाले ऐश्वर्यशाली सूर्यकी तरह यह अग्नि (क्षितीनां दैवीनां नेता) मनुष्यों और देवोंका नेता है । वह (ऋतावा, वृत्रहा सनयः विश्ववेदाः देव) सत्यकर्म करनेवाला, वृत्रहन्ता, सनातन, सर्वज्ञ और द्युतिमान् है । (सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अतिपर्षत्) वह अग्नि स्तोताको सम्पूर्ण पापोंसे पार करे ॥ ४ ॥

१ भगः इव अग्निः क्षितीनां दैवीनां नेता— सूर्यकी तरह वह अग्नि मनुष्यों और देवोंका नेता है ।

२ सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अतिपर्षत्— वह अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है ।

[१८७] मैं (दधिक्रां अग्निं देवीं उषसं) दधिक्रा, अग्नि, तेजस्वी उषा, (बृहस्पतिं देवं सवितारं च) बृहस्पति और सविता देव (अश्विना मित्रावरुणा भगं च) अश्विनौ, मित्र, वरुण और भग (वसून् रुद्रान् आदित्यान् इह हुवे) वसुओं, रुद्रों और आदित्योंको इस यज्ञमें बुलाता है ॥ ५ ॥

[२१]

[१८८] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (नः इमं यज्ञं अमृतेषु धेहि) हमारे इस यज्ञको मरणधर्मरहित इन देवोंको समर्पित कर । तथा हमारे (इमा हव्या जुषस्व) इन हव्योंका सेवन कर । हे (होतः अग्ने) होता रूप अग्ने ! तू (निषद्य प्रथमः मेदसः घृतस्य स्तोकानां अशान) यज्ञमें बैठकर सबसे प्रथम हवि और घृतके बिन्दुओंको भलीभाँति खा ॥ १ ॥

[१८९] हे (पावक) पवित्र अग्ने ! (स्वधर्मन्, घृतवन्तः मेदसः स्तोकाः) इस साङ्ग यज्ञसे घृतसे युक्त हविके थोडे थोडे भाग (ते देववीतये श्चोतन्ति) तेरे और देवताओंके भक्षणके लिये गिर रहे हैं । इसलिये (नः वार्यं श्रेष्ठं धेहि) हमको वरणीय और उत्तम धन प्रदान कर ॥ २ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सूर्यकी तरह सभी जगत्का नेता है । सत्कर्म करनेवाला, वीर तथा सर्वज्ञ वह अग्नि अपने उपासकको सभी पापोंसे दूर करता है ॥ ४ ॥

मैं दधिक्रा, उत्तम मार्गमें ले जानेवाले अग्नि, प्रकाशसे युक्त उषा, वाणीके स्वामी बृहस्पति, उत्तम कर्मकी तरफ प्रेरित करनेवाले सविता, अश्विनौ, मित्र, श्रेष्ठ वरुण, ऐश्वर्योंके स्वामी भग, निवास करानेवाले वसु, शत्रुओंको रुलानेवाले रुद्र और रसोंको प्रदान करनेवाले आदित्य आदि देवोंको यज्ञमें बुलाता हूं ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञको देवोंके पास पहुंचा, तथा स्वयं भी हमारी हवियोंका सेवन कर ॥ १ ॥

हे अग्ने ! इस सर्वांग यज्ञमें घृतकी बूंदें चू रही हैं, उनको तू खा और हमें उत्तम उत्तम धन दे ॥ २ ॥

१९० तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो ऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥ ३ ॥

१९१ तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥ ४ ॥

१९२ ओजिष्ठं ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान् देवशो विहि ॥ ५ ॥

[२२]

[ऋषिः-गाथी कौशिकः । देवता- अग्निः; ४ पुरीष्या अग्नयः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४ अनुष्टुप् ।]

१९३ अयं सो अग्निर्यस्मिन् त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान् त्सन् त्स्तूयसे जातवेदः ॥ १ ॥

अर्थ— [१९०] हे (सन्त्य अग्ने) यज्ञकर्ताओंके द्वारा संभजनीय अग्ने ! (घृतश्चुतः स्तोकाः विप्राय तुभ्यं) घृतकी टपकती हुई बूँदें तुझ मेधावीके लिये हैं । तू (ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे) अतीन्द्रियार्थदर्शी, प्रशंसनीय और घृतादिसे सम्यक् प्रज्ज्वलित होता है । तू हमारे (यज्ञस्य प्राविता भव) यज्ञका पालन करनेवाला हो ॥ ३ ॥

[१९१] हे (अध्रिगो शचीवः अग्ने) सतत गमनशील, शक्तिशाली अग्ने ! (तुभ्यं मेदसः घृतस्य स्तोकासः श्चोतन्ति) तेरे लिये हव्य और घृतके सब बिन्दु गिरते हैं, अतः (कविशस्तः) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित तू (बृहता-भानुना आगा) अपने प्रभूत तेजके साथ आ और (मेधिर) हे ज्ञानी अग्ने ! (हव्या जुषस्व) हमारे हव्यका सेवन कर ॥ ४ ॥

[१९२] हे (अग्ने) अग्ने ! (वयं उद्भृतं ओजिष्ठं मेदः मध्यतः ते प्र ददामहे) हम सब अतीव सार युक्त हव्य मध्य भागमें तुझको प्रदान करते हैं । (वसो) निवासदाता अग्ने ! तेरी (ते त्वचि अधि स्तोकाः श्चोतन्ति) ज्वालाके ऊपर घृत मिश्रित बिन्दुओंका समूह गिरता है (तान् देवशः प्रति विहि) उनको तू हरएक देवताकी ओर ले जा ॥ ५ ॥

[२२]

[१९३] (वावशानः इन्द्रः यस्मिन् जठरे) सोमकी कामना करनेवाले इन्द्रने, जिस अग्निरूप उदरमें (सुतं, सोमं दधे) संस्कारसे युक्त निचोडे हुये सोमको धारण किया था, (स अयं अग्निः) वह यह अग्नि ही है । हे (जात-वेदः सहस्रिणं अत्यं सप्तिं न वाजं) सर्वज्ञ अग्ने ! नानारूपोंसे सम्पन्न वेगवान् घोडेकी तरह हव्यरूप अन्नको (सस-वान्) सेवन करनेवाला होता (सन् स्तूयसे) हुआ तू प्रशंसित होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! ये घीकी बूंदें तेरे लिए चू रही हैं, इन्हीं बूंदोंसे तू प्रज्ज्वलित होकर हमारे यज्ञकी रक्षा कर ॥३॥

हे शक्तिमान् अग्ने ! तेरे लिए ये घीकी बूंदें चू रही हैं, अतः ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित तू अपने सम्पूर्ण तेजके साथ यहां आ और हमारे हव्यका सेवन कर ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हम तुझे सारयुक्त उत्तम हवि देते हैं, तेरी ज्वालाओंपर घीकी बूंदें टपक रही हैं, उन्हें तू देवोंकी ओर पहुंचा ॥ ५ ॥

सोमकी कामना करनेवाले इन्द्रने अपनी जाठराग्निमें सोमको धारण किया था । ऐसा यह अग्नि हव्यका सेवन करता हुआ सर्वत्र प्रशंसित होता है ॥ १ ॥

१९४ अग्ने यत् ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
१९५ अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥ ३ ॥
१९६ पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहो अनमीवा इषो महीः ॥ ४ ॥
१९७ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

अर्थ- [१९४] हे (यजत्र अग्ने) यजनीय अग्ने ! (ते यत् वर्चः) तेरा जो तेज (दिवि पृथिव्यां ओषधीषु, यत् अप्सु) आकाश, पृथ्वी, ओषधियों और- जो जलोंमें व्याप्त है । (येन अन्तरिक्षं उरु आ ततन्थ) तथा जिस तेजके द्वारा अन्तरिक्ष भी विस्तृत हुआ है, (सः त्वेषः भानुः नृचक्षाः अर्णवः) वह तेरा तेज सूर्यके समान प्रकाशित मनुष्योंके लिये दर्शनीय और समुद्रके समान गंभीर है ॥ २ ॥

[१९५] हे अग्ने ! तू (दिवः अर्णं अच्छ आ जिगासि) द्युलोकके जलको चारों ओरसे व्याप्त करता है (धिष्ण्याः देवान् अच्छ ऊचिषे) स्तुतिके योग्य देवगणकी स्तुति करता है (सूर्यस्य परस्तात् रोचने अवस्तात् याः च आपः उपतिष्ठन्ते) सूर्यके ऊपर ' रोचन ' नामके लोकमें एवं सूर्यके नीचे जो जल ठहरे हुये हैं उन जलोंको तू ही प्रेरित करता है ॥ ३ ॥

[१९६] (पुरीष्यासः अग्नयः) पालनपोषण करनेवाली अग्नियाँ (सजोषसः प्रावणेभिः यज्ञं जुषन्तां) परस्पर अनुकूल होकर उत्तम मार्गोंसे हमारे यज्ञका सेवन करें । तथा अद्रुहः अनमीवाः महीः इषः) द्रोहरहित, रोगादि शून्य महान् अन्नोंको प्रदान करें ॥ ४ ॥

[१९७] हे अग्ने ! (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमिको दे । (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों । हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे पूजनीय अग्ने ! तेरा जो तेज, पृथ्वी, आकाश, वृक्षों और अन्तरिक्षमें फैला हुआ है, वह तेरा तेज बहुत प्रकाशमान, सर्वद्रष्टा और गंभीर है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू ही इन जलोंको द्युलोककी ओर प्रेरित करता है। फिर द्युलोक और अन्तरिक्ष लोकमें संचित जलोंको पृथ्वी पर बरसाता है ॥ ३ ॥

पालनपोषण करनेवाली अग्नियां परस्पर संगठित होकर हमारे इस यज्ञमें आवें और प्रसन्न होकर हमें रोगरहित अन्न प्रदान करें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हरतरहका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ५ ॥

[२३]

[ऋषिः- देवश्रवा देववातश्च भारतौ । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् , ३ सतोबृहती ।]

१९८ निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।
जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥ १ ॥

१९९ अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥ २ ॥

२०० दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।
अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद् वशी ॥ ३ ॥

२०१ नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् ।
दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥ ४ ॥

---

[२३]

अर्थ— [१९८] (निर्मथितः सधस्थे आ सुधितः) मंथन द्वारा उत्पन्न अपने स्थानपर अच्छी प्रकार स्थित (युवा अध्वरस्य प्रणेता, कविः जातवेदाः) तरुण, यज्ञका नायक, दूरदर्शी सब विषयोंका ज्ञाता (वनेषु जूर्यत्सु, अजरः अग्निः) जंगलोंमें सब काष्ठोंको जलाने पर भी स्वयं जरारहित अग्नि (अत्र अमृतं आ दधे) यहाँ अमृतको पूर्णरूपसे धारण करनेवाला है ॥ १ ॥

१ जूर्यत्सु, अजरः अमृतं आ दधे— विनाशी विश्वमें जो जरारहित होकर रहता है, वही अमृतको प्राप्त करता है ।

[१९९] (भारता देवश्रवाः देववातः) भरतके पुत्र देवश्रवा और देववात इन दोनोंने (सुदक्षं, रेवत् अग्निं अमन्थिष्टां) शोभन सामर्थ्यसे युक्त और धन सम्पन्न अग्निको मंथन द्वारा उत्पन्न किया । हे (अग्ने) अग्ने ! तू (बृहता राया अभि वि पश्य) प्रभूत धनोंके साथ हमारी ओर कृपाकी दृष्टिसे देख और (अनुद्यून् नः इषां नेता भवतात्) प्रतिदिन हमारे लिये अन्न प्राप्त करानेवाला हो ॥ २ ॥

[२००] (दश क्षिपः पूर्व्यं सीं अजीजनन्) दश अङ्गुलियोंने प्राचीन इस अग्निको उत्पन्न किया । हे (देवश्रवः) देवश्रवा! (मातृषु सुजातं, प्रियं, दैववातं, अग्निं स्तुहि) अरणिरूप माताओंके बीचमें अच्छे प्रकारसे उत्पन्न, प्रिय, देववातसे मथित होनेपर प्रकाशित उस अग्निकी स्तुति कर । (यः जनानां वशी असत्) जो अग्नि स्तुति करनेवालोंके ही वशीभूत होता है ॥ ३ ॥

१ जनानां वशी असत्— यह अग्नि उत्तम मनुष्योंके वशमें रहनेवाला है ।

[२०१] हे (अग्ने) अग्ने ! (इळायाः पृथिव्याः वरे पदे अह्नां सुदिनत्वे) अन्नयुक्त पृथ्वीके उत्कृष्ट स्थानमें और उत्तम दिवसके शोभन समयमें (त्वा आ निदधे) तुझको मैं विशेष रूपसे स्थापित करता हूं । तू (दृषद्वत्यां मानुषे आपयायां सरस्वत्यां) पत्थरोंवाली नदीके स्थानमें और मनुष्योंके संचरण योग्य नदीके स्थानमें और सरस्वती स्थानमें (रेवत् दिदीहि) धनयुक्त होकर प्रकाशित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— मंथनसे उत्पन्न यज्ञका सम्पादक, दूरदर्शी सर्वत्र यह अग्नि सब वनोंको जलाकर भी स्वयं जरारहित बनता रहता है और अमृतको धारण करता है ॥ १ ॥

भरतवंशीय देवश्रवा और देववातके द्वारा उत्पन्न अग्ने ! तू उत्तम धनसे युक्त होकर हमपर कृपा कर और प्रतिदिन हमें अन्न दे ॥ २ ॥

हे मनुष्यो ! अरणियों द्वारा उत्पन्न तथा दिव्य मनुष्योंके द्वारा प्रज्ज्वलित इस अग्निकी स्तुति करो । क्योंकि यह अग्नि स्तुतिसे ही वशमें होता है ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तुझे मैं अन्न देनेवाली इस पृथ्वीके ऊंचे स्थानपर प्रतिष्ठित करता हूँ, तू अनेक नदियोंके किनारे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित हो ॥ ४ ॥

२०२ इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावा ऽग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५ ॥

[२४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री; १ अनुष्टुप् ।]

२०३ अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य । दुष्टरस्तरन्नराती र्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥ १ ॥
२०४ अग्न इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः । जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥ २ ॥
२०५ अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ३ ॥
२०६ अग्ने विश्वेभिरग्निभि र्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥ ४ ॥
२०७ अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् । शिशीहि नः सूनुमतः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२०२] हे अग्ने ! (हवमानाय) यज्ञ करनेवालेके लिए (शश्वत्तमं पुरुदंसं) चिरकालतक उत्तम रहनेवाली, अनेक उपयोगोंमें आनेवाली और (गो-सनिं इळां) गायोंको पुष्ट करनेवाली भूमि दे । (नः सूनुः तनयः विजावा) हमारे पुत्र पौत्र वंशवृद्धि करनेवाले हों । हे (अग्ने) अग्ने ! (सा ते सुमतिः अस्मे भूत्) वह तेरी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो ॥ ५ ॥

[२४]

[२०३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (पृतना सहस्व) शत्रुसेनाको हरा और (अभिमातिः अपास्य) विघ्न करनेवालोंको भगा तथा (दुस्तरः) शत्रुओं द्वारा न हटाया जानेवाला तू (अरातीः तरन् यज्ञवाहसे वर्चः धाः) अपने शत्रुओंको जीतकर यज्ञ करनेवालेके लिये वर्च प्रदान कर ॥ १ ॥

[२०४] हे (अग्ने) अग्ने ! (वीतिहोत्रः, अमर्त्यः) यज्ञमें प्रीति रखनेवाला और मरणरहित तू (इळा समीध्यसे) समिधासे प्रज्ज्वलित होता है । ऐसा तू (नः अध्वरं सु जुषस्व) हमारे इस यज्ञका भली प्रकारसे सेवन कर ॥ २ ॥

[२०५] हे (जागृवे सहसः सूनो आहुत अग्ने) सदा जागरूक रहनेवाले, बलके पुत्र तथा आदरसे बुलाये जानेवाले अग्ने ! (द्युम्नेन मम इदं बर्हिः आ सदः) सम्पत्तिके साथ मेरे इस यज्ञमें आकर बैठ ॥ ३ ॥

[२०६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यज्ञेषु ये चायवः) यज्ञोंमें जो पूजक प्रार्थना करते हैं, उनकी (गिरः) स्तुतियोंको (विश्वेभिः देवेभिः अग्निभिः) सभी तेजस्वी ज्वालाओंसे (महय) उत्तम बना ॥ ४ ॥

[२०७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (दाशुषे वीरवन्तं परीणसं रयिं दाः) दाताके लिये वीर पुत्रोंसे युक्त प्रभूत धन प्रदान कर । तथा (सूनुमतः नः शिशीहि) श्रेष्ठ सन्तानोंवाले हमको तेजस्वी बना ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू देवोंके पूजकोंको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान कर । उन्हें अच्छी उपजाऊ भूमि दे और उत्तम सन्तान एवं उत्तम बुद्धि प्रदान कर ॥ ५ ॥

हे शत्रुओंको पराजित करनेवाले पर स्वयं कभी भी पराजित न होनेवाले अग्ने ! तू यज्ञ करनेवालोंको वर्चस्वी बना ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू यज्ञमें प्रीति रखता है, और समिधासे प्रज्ज्वलित होकर सदा जागरूक रहता है । अतः तू मेरे यज्ञमें आकर बैठ और उसका सेवन कर ॥ २-३ ॥

हे अग्ने ! जो मनुष्य तेरी उपासना करते हैं, उन दाताओंकी वाणियोंको तेजस्वी बनाकर उन्हें पुत्र धनैश्वर्यादिसे समृद्ध बना ॥ ४-५ ॥

✖

[२५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः, ४ अग्नीन्द्रौ । छन्द- विराट् ।]

२०८ अग्ने॑ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒ स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त वि॒श्ववे॑दाः ।
ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः ॥ १ ॥

२०९ अ॒ग्निः स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान् त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् ।
स नो॑ दे॒वाँ एह व॑हा पुरुक्षो ॥ २ ॥

२१० अ॒ग्निर्द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वज॑न्ये॒ आ भा॑ति दे॒वी अ॒मृते॒ अमू॑रः ।
क्षय॒न् वाजैः॑ पुरुश्च॒न्द्रो नमो॑भिः ॥ ३ ॥

२११ अग्न॒ इन्द्र॑श्च दा॒शुषो॑ दुरो॒णे सु॒ताव॑तो य॒ज्ञमि॒होप॑ यातम् ।
अम॑र्धन्ता सोम॒पेया॑य देवा ॥ ४ ॥

२१२ अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दुरो॒णे नित्य॑ः सूनो सहसो जातवेदः ।
स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥ ५ ॥

[२५]

अर्थ— [२०८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (विश्ववेदाः प्रचेताः, दिवः सूनुः असि) सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता, प्रकृष्टबुद्धिवाला और द्युलोकका पुत्र है । (उत पृथिव्याः तना) और पृथ्वीका विस्तार करनेवाला है । हे (चिकित्वः) चेतनावान् अग्ने ! तू (इह ऋधक् देवान् यज) इस यज्ञमें पृथक् पृथक् रूपसे देवोंका यजन कर ॥ १ ॥

[२०९] (विद्वान् अग्निः वीर्याणि सनोति) ज्ञानवान् अग्नि उपासकोंको सामर्थ्य प्रदान करता है । वह सबको (भूषन् अमृताय वाजं सनोति) विभूषित करके, मरणधर्मसे रहित देवोंको अन्न प्रदान करता है । हे (पुरुक्षो) बहुविध अन्नवाले ! (सः नः देवान् इह आ वह) वह शक्तिसम्पन्न तू हमारे लिये देवोंको इस यज्ञमें ले आ ॥ २ ॥

[२१०] (अमूरः क्षयन् पुरुः चन्द्रः) ज्ञानी, सब प्राणियोंको बसानेवाला, तेजसे सम्पन्न, (वाजैः नमोभिः, अग्निः) बल और अन्नसे युक्त अग्नि, (विश्वजन्ये, देवी, अमृते, द्यावापृथिवी आ भाति) संसारके उत्पन्न करनेवाले, तेजसे युक्त और मरण-रहित, द्यावा और पृथ्वीको सब ओरसे प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

[२११] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (च इन्द्रः देवा) और इन्द्र दोनों देव (अमर्धन्ता) यज्ञकी रक्षा करते हुये, (सुतावतः दाशुषः इह दुरोणे) सोम तैय्यार करनेवाले तथा हवि देनेवाले मनुष्यके इस घरमें (यज्ञं सोमपेयाय उपयातं) यज्ञकी तरफ सोमपानके लिये आओ ॥ ४ ॥

[२१२] हे (सहसः सूनो) बलके पुत्र (जातवेदः अग्ने) और सर्वज्ञ अग्ने ! (नित्यः) अविनाशी तू (ऊती, सधस्थानि महयमानः) अपनी रक्षण शक्तिद्वारा घरोंको अलंकृत करते हुये, (अपां दुरोणे समिध्यसे) जलके स्थान अन्तरिक्षमें सम्यक् रूपसे दीप्तिमान् होता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता और उत्तम बुद्धिवाला तथा पृथ्वीको विस्तृत करनेवाला है, इसीके कारण सारे देवोंका यजन किया जाता है ॥ १ ॥

यह ज्ञानवान् अग्नि अपने भक्तोंको सामर्थ्य और अन्न प्रदान करता है और यज्ञमें देवोंको बुलाता है । इस अग्निके प्रज्ज्वलित होनेपर ही सब देव यज्ञमें आते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानी, सबका निवासयिता, तेजस्वी बलसम्पन्न अग्नि ही द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू और इन्द्र दोनों यज्ञकी रक्षा करते हुए सोम तैय्यार करनेवालेके घरमें सोम पीनेके लिए आओ ॥ ४ ॥

यह अग्नि अपने सामर्थ्यसे सब घरोंका संरक्षण करता है और अन्तरिक्षमें प्रकाशित होता है ॥ ५ ॥

[२६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः; ७ आत्मा। देवता- १-३ वैश्वानरोऽग्निः, ४-६ मरुतः, ७-८ आत्मा (अग्निर्वा), ९ विश्वामित्रोपाध्यायः । छन्दः- १-६ जगती, ७-९ त्रिष्टुप् ।]

२१३ वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥ १ ॥

२१४ तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥ २ ॥

२१५ अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ३ ॥

२१६ प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥ ४ ॥

[२६]

अर्थ— [२१३] (हविष्मन्तः) हवि प्रदान करनेवाले (वसूयवः कुशिकासः) धन चाहनेवाले हम कुशिकगण (अनु सत्यं स्वर्विदं) सत्यमार्ग पर चलनेवाले, सुखको प्राप्त करानेवाले (सुदानुं रथिरं) उत्तम दान देनेवाले, वगपूर्वक जानेवाले, (रण्वं वैश्वानरं अग्निं) सुन्दर वैश्वानर अग्निको (मनसा निचाय्य) मनसे ज्ञानकर (गीर्भिः हवामहे) स्तुतियोंसे बुलाते हैं ॥ १ ॥

[२१४] हम (मनुषः देवतातये अवसे) मननशील पुरुषके यज्ञकी रक्षाके लिये (तं शुभ्रं मातरिश्वानं) उस शुद्ध, अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले (उक्थ्यं) प्रशंसाके योग्य (बृहस्पतिं) वाणीके स्वामी (विप्रं) ज्ञानी (श्रोतारं) प्रार्थनाओंको सुननेवाले (अतिथिं) अथितिके समान पूज्य (रघुष्यदं) शीघ्र जानेवाले (वैश्वानरं अग्निं) वैश्वानर अग्निको (हवामहे) बुलाते हैं ॥ २ ॥

[२१५] (क्रन्दन् वैश्वानरः) शब्द करता हुआ विश्वानर अग्नि (कुशिकेभिः युगे युगे सं इध्यते) कुशिकोंके द्वारा प्रतिदिन उसी प्रकार उत्पन्न किया जाता है, (जनिभिः अश्वः न) जिस प्रकार घोडियोंके द्वारा घोडे । (अमृतेषु जागृविः) अमर देवोंमें सदा जागृत रहनेवाला (सः अग्निः) वह अग्नि (सु अश्व्यं सुवीर्यं) सुन्दर घोडों और पराक्रमसे युक्त (रत्नं) रत्नादि धन (नः दधातु) हमें प्रदान करे ॥ ३ ॥

१ अमृतेषु जागृविः सः अग्निः युगे युगे सं इध्यते— अमर देवोंमें सदा जागृत रहनेवाला वह अग्नि प्रतिदिन प्रदीप्त किया जाता है ।

[२१६] (संमिश्लाः पृषतिः) साथ साथ मिलकर रहनेवाली घोडियां (शुभे अयुक्षत) उत्तम रथमें जोड दी गई हैं, तब (तविषीभिः) बलसे युक्त (वाजाः) वेगवाली वे घोडियां (अग्नयः प्र यन्तु) यज्ञके प्रति जावें । उस समय (बृहदुक्षः विश्ववेदसः अदाभ्याः मरुतः) जल सींचनेवाले, सब जाननेवाले तथा किसीसे न दबनेवाले मरुत (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतों या मेघोंको कंपाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हवि देनेवाले तथा धनकी इच्छा करनेवाले, कुशाओंका प्रयोग करनेवाले उसी नेताकी प्रशंसा करते हैं कि जो सत्यका अनुकरण करनेवाला, सुख प्राप्त करनेवाला, उत्तम दान देनेवाला और उत्तम रीतिसे गति करनेवाला होता है ॥ १ ॥

हम मननशील सज्जन पुरुषकी रक्षाके लिए शुद्ध, अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले, वाणीके स्वामी, ज्ञानी, अतिथिके समान पूज्य तथा सबको श्रेष्ठमार्गसे ले जानेवाले अग्निको बुलाते हैं ॥ २ ॥

अमर देवोंमें सदा जागृत रहनेवाला वह अग्नि यज्ञ करनेवालोंके द्वारा प्रतिदिन प्रदीप्त किया जाता है । वह अग्नि हमें उत्तम रत्न आदि धन प्रदान करे ॥ ३ ॥

जब यज्ञ प्रज्वलित होते हैं, तब उसमें प्रज्वलित अग्निकी किरणें आकाशमें जाकर मेघका निर्माण करती हैं, तब वायु चलने लगती है और उस वायुके चलनेसे वे मेघ कांपने [illegible] बरसता है ॥ ४ ॥

२१७ अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥ ५ ॥
२१८ व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभि-रग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥ ६ ॥
२१९ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानो ऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ७ ॥
२२० त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभि-रादिद् द्यावापृथिवी पर्यपश्यत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२१७] (ते मरुतः) वे मरुत (अग्नि) अग्निके सहारे रहनेवाले, (विश्वकृष्टयः) सारे संसारको सींचनेवाले (स्वानिनः) शब्द करनेवाले (रुद्रिया) रुद्रके अनुयायी (वर्षनिर्णिजः) वर्षाका रूपवाले (सिंहाः न हेषक्रतवः) सिंहके समान गर्जनेवाले (सुदानवः) उत्तम दान देनेवाले हैं । (वयं) हम उनके (उग्रं त्वेषं) उत्तम तेजको (अव ईमहे) अपनी रक्षाके लिए मांगते हैं ॥ ५ ॥

[२१८] मरुत् (पृषदश्वासः) बलशाली घोडोंवाले (अनवभ्रराधसः) सम्पूर्ण धनवाले (धीराः) बुद्धिमान् और (विदथेषु यज्ञं गन्तारः) युद्धों और यज्ञोंमें जानेवाले हैं । ऐसे (व्रातं व्रातं गणं गणं) हर कर्म तथा हर समूहमें रहनेवाले (मरुतां) मरुतोंके और (अग्नेः भामं ओजः) अग्निके प्रकाशित ओजको हम (सुशस्तिभिः ईमहे) उत्तम मंत्रोंसे चाहते हैं ॥ ६ ॥

[२१९] मैं (जन्मना जातवेदा अग्निः अस्मि) जन्मसे ही सब उत्पन्न हुए पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि हूं (घृतं मे चक्षुः) प्रकाश मेरी आंख है और (अमृतं मे आसन्) अमृत मेरे मुंहमें है । (अर्कः) मैं प्राण हूं (त्रिधातू) मैं तीन प्रकारसे धारक हूँ, मैं (रजसः विमानः) अन्तरिक्षको मापनेवाला हूँ, (अजस्रः घर्मः) सतत प्रकाशित होनेवाला हूँ, (हविः नाम अस्मि) हवि संज्ञावाला हूँ ॥ ७ ॥

[२२०] बुद्धिमान् मनुष्य (हृदा) अपने हृदयमें (मतिं ज्योतिः अनु प्रजानन्) मननीय परमात्मज्योतिको जानकर (पवित्रैः त्रिभिः) पवित्र करनेवाले तीनोंसे (अर्कं अपुपोत् हि) पूजाके योग्य आत्माको पवित्र करता है । तब वह (स्वधाभिः) अपनी शक्तियोंसे (वर्षिष्ठं रत्नं अकृत) अपनी आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर बनाता है (आत् इत्) उसके बाद ही (द्यावापृथिवी परि अपश्यत्) द्यु और पृथ्वीको सब ओरसे देखता है ॥ ८ ॥

१ हृदा मतिं ज्योति प्रजानन्— बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपने हृदयमें परमात्मज्योतिको प्रत्यक्ष करता है ।
२ पवित्रैः त्रिभिः अर्कं अपुपोत्— फिर पवित्र हुए हुए मन, वाणी और कर्म इन तीनसे अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है ।
३ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत— अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है ।
४ आत् इत् द्यावापृथिवी परि अपश्यत्— इसके बाद द्यु और पृथ्वीको देखता है ।

भावार्थ— वे मरुत अग्निके सहारे रहनेवाले सारे संसारको वर्षाके जलसे सींचनेवाले, गर्जनेवाले तथा वर्षाके जलके रूपमें ही सर्वत्र प्रत्यक्ष होनेवाले और सिंहके समान शब्द करनेवाले और उत्तम तेजस्वी हैं ॥ ५ ॥

ये सभी मरुत् हर तरहके धनसे युक्त तथा युद्धोंमें जानेवाले हैं । वे हमेशा समूहमें रहते हैं । ऐसे मरुतोंके ओजको हम मांगते हैं ॥ ६ ॥

परमात्मा जन्मसे ही अर्थात् प्रारंभसे ही सर्वज्ञ है, प्रकाशक सूर्य और चन्द्र ही उसके नेत्र हैं । अमृत सदा उसके मुंहमें बना रहता है, वही सबका प्राण है । वही सूर्य बनकर, वायु बनकर अन्तरिक्षको और अग्नि बनकर पृथ्वीको धारण करता है । वही सब लोकोंको मापता है वही प्रकाशका स्रोत है और वही हवि है ॥ ७ ॥

२२१ शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥ ९ ॥

[२७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः - देवता- अग्निः, १ ऋतवा वा । छन्दः- गायत्री ।]

२२२ प्र वो वाजा अभिद्यवो हविष्मन्तो घृताच्या । देवाञ्जिगाति सुम्नयुः ॥ १ ॥
२२३ ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम् । श्रुष्टीवानं धितावानम् ॥ २ ॥
२२४ अग्ने शकेम ते वयं यमं देवस्य वाजिनः । अति द्वेषांसि तरेम ॥ ३ ॥
२२५ समिध्यमानो अध्वरे३ऽग्निः पावक ईड्यः । शोचिष्केशस्तमीमहे ॥ ४ ॥

अर्थ— [२२१] हे (रोदसी) द्यु और पृथ्वी! (शतधारं उत्सं) सैकडों धाराओंवाले झरनेके समान (अक्षीयमाणं) कभी नष्ट न होनेवाले (वक्त्वानां पितरं) प्राणियोंके पालक (मेळिं) संघटक (पित्रोः उपस्थे मदन्तं) माता पिताके पास आनन्दित होनेवाले (सत्यवाचं तं विपश्चितं) सत्य वाणी बोलनेवाले उस विद्वान्‌को (पिपृतं) सब तरह पूर्ण करो ॥ ९ ॥

[२७]

[२२२] हे मनुष्यो ! (वाजाः अभिद्यवः) बलवान् और तेजस्वी देव (घृताच्या) घीसे भरपूर गौवोंके साथ (हविष्मन्तः वः प्र) हवि देनेवाले तुम्हारी ओर आते हैं। तथा (सुम्नयुः देवान् जिगाति) सुखकी इच्छा करनेवाला देवोंकी ओर जाता है ॥ १ ॥

[२२३] (विपश्चितं, यज्ञस्य साधनं, श्रुष्टीवानं, धितावानं अग्निं) मेधावी, यज्ञके साधन, सुखकारक और धनवान् अग्निकी मैं (गिरा ईळे) उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

[२२४] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजिनः वयं) बलवान् हम उस (देवस्य ते) दिव्यगुण युक्त तुझे (यमं शकेम) अपने पास रखनेमें समर्थ हों और (द्वेषांसि अति तरेम) शत्रुओंसे पार हों ॥ ३ ॥

[२२५] जो (अग्निः अध्वरे सं इध्यमानः) अग्नि यज्ञमें प्रज्वलित होनेवाला, (शोचिष्केशः पावकः ईड्यः) ज्वालायुक्त केशसे सम्पन्न, पवित्रकर्ता और पूजनीय है, (तं ईमहे) उससे हम सुख माँगते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— साधक मनुष्य अपने हृदयमें परमात्माकी ज्योतिका अनुभव करता है। उससे उसका मन, वाणी और कर्म पवित्र हो जाते हैं। मन वाणी और कर्मके पवित्र होनेसे उसकी आत्मा भी पवित्र हो जाती है। आत्माके पवित्र होनेसे उसके अन्दर शक्तियां उत्पन्न होती हैं, ये शक्तियां स्व-धा अर्थात् आत्माको धारण करनेवाली होती हैं, इन स्वधाशक्तियोंके कारण आत्मा अत्यन्त श्रेष्ठ और सुन्दर बन जाती है, तब वह सारे संसारको देखता है। उसके लिए सारे लोक हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष हो जाते हैं ॥ ८ ॥

विद्वान् सैंकडों धाराओंवाले झरनेकी तरह कभी भी क्षीण होनेवाला न हो, प्राणियोंका पालक हो, सब मनुष्योंको संघटित करनेवाला हो, हमेशा सत्य बोलनेवाला हो। ऐसे ही विद्वान्‌को द्यावापृथ्वीको सब तरहसे पूर्ण करते हैं ॥ ९ ॥

बलवान् और तेजस्वी देव हवि देनेवालेकी ओर जाते हैं और हवि देनेवाला सुखकी प्राप्तिके लिये देवोंकी ओर जाता है ॥ १ ॥

हे अग्ने ! हम दिव्य गुणोंसे युक्त तेरी उत्तम स्तुति करें, एवं तुझे हम अपने पास सदा रखें और तेरी सहायतासे शत्रुओंको हटावें ॥ २-३ ॥

यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी, अमर, पूज्य, पवित्र करनेवाला तथा यज्ञकी हविको देवताओंतक पहुंचानेवाला है ऐसे अग्निसे हम सुखकी इच्छा करते हैं ॥ ४-५ ॥

२२६ पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः । अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥ ५ ॥
२२७ तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥ ६ ॥
२२८ होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥ ७ ॥
२२९ वाजी वाजेषु धीयते ऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥ ८ ॥
२३० धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥ ९ ॥
२३१ नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत । अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥ १० ॥
२३२ अग्निं यन्तुरमप्तुर—मृतस्य योगे वनुषः । विप्रा वाजैः समिन्धते ॥ ११ ॥

अर्थ— [२२६] (पृथुपाजाः अमर्त्यः) प्रभूततेजवाला, मरणरहित (घृतनिर्णिक्, स्वाहुतः अग्निः) अत्यन्त तेजस्वी, सम्यक् पूजित अग्नि (यज्ञस्य हव्यवाट्) यज्ञकी हविको वहन करनेवाला है ॥ ५ ॥

[२२७] (सबाधः यज्ञवन्तः) यज्ञ विघ्नविनाशक, यजनीय हवियोंसे युक्त तथा (यतस्रुचः इत्था) आगे बढायी हुई स्रुचावाले ऋत्विजोंने इस प्रकार (धिया तं अग्निं ऊतये आ चक्रुः) स्तुति द्वारा उस अग्निको अपनी रक्षाके लिये अपनी तरफ किया ॥ ६ ॥

[२२८] (होता, अमर्त्यः देवः) यज्ञ-सम्पादक, मरणरहित, दिव्यगुण युक्त अग्नि (विदथानि प्रचोदयन्) सभी उत्तम कर्मोंको प्रेरणा देता हुआ अपने (मायया पुरस्तात् एति) ज्ञानसे युक्त होकर सबसे आगे चलता है ॥ ७ ॥

[२२९] (वाजी वाजेषु धीयते) बलवान् अग्नि युद्धमें सबके आगे स्थापित किया जाता है और (अध्वरेषु प्रणीयते) यज्ञोंमें भी सबसे मुख्य स्थानमें प्रतिष्ठित किया जाता है। वह (विप्रः यज्ञस्य साधनः) प्रज्ञावान् और यज्ञकार्यका सम्पादनकर्ता है ॥ ८ ॥

[२३०] (धिया चक्रे वरेण्यः) ज्ञानपूर्वक कर्मोंको करनेके कारण वरण करने योग्य यह अग्नि (भूतानां गर्भं आ दधे) स्थावर जंगमादि प्राणियोंके गर्भको धारण करता है। उसी (पितरं) सब जगत्के पालक अग्निको (दक्षस्य तना) दक्ष प्रजापतिकी पुत्री 'यज्ञभूमि' धारण करती है ॥ ९ ॥

१ धिया चक्रे वरेण्यः— बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है।

[२३१] हे (सहस्कृत अग्ने) बलसे उत्पन्न अग्ने ! (सुदीतिं, उशिजं, वरेण्यं) उत्कृष्ट दीप्तिसे युक्त, हव्याभिलाषी और वरण करने योग्य (त्वा दक्षस्य इळा निदधे) तुझको बुद्धिमान् मनुष्यकी इलाने धारण किया ॥ १० ॥

[२३२] (वनुषः विप्राः) कर्मसिद्धिकी इच्छासे मेधावी लोग, (यन्तुरं अप्तुरं अग्निं ऋतस्य योगे) संसारके नियामक, जलके प्रेरक अग्निको यज्ञके निमित्त (वाजैः समिन्धते) हविरूप अन्नोंसे भलीभाँति प्रदीप्त करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—यज्ञमें आनेवाले सब विघ्नोंको दूर करनेवाले अग्निको यज्ञ करनेवाले अपनी रक्षाके लिए स्तुति द्वारा बुलाते हैं और वह अमर तथा दिव्य अग्नि सभी उत्तम कर्मोंमें प्रेरणा देता हुआ उनकी तरफ जाता है ॥ ६-७ ॥

यह अग्नि बलवान्, बुद्धिमान् तथा यज्ञको सिद्ध करनेवाला होनेके कारण इसे युद्धों और यज्ञोंमें सबसे आगे स्थापित किया जाता है ॥ ८ ॥

ज्ञानपूर्वक कार्य करनेवाला यह अग्नि सारे प्राणियों और वृक्षवनस्पतियोंको धारण करता है और इसे यज्ञभूमि धारण करती है ॥ ९ ॥

बलसे उत्पन्न इस अग्निको बुद्धिमान्की उत्तम बुद्धिने धारण किया है अर्थात् यह अग्नि ज्ञान और स्तुतिसे प्रज्ज्वलित किया जाता है ॥ १० ॥

धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले मनुष्य सब संसारके नियामक इस अग्निको यज्ञके लिए प्रज्ज्वलित करते हैं और फिर बलको क्षीण न करनेवाले, द्युलोकतक प्रकाशनेवाले दूरदर्शी इस अग्निकी स्तुति की जाती है ॥ ११-१२ ॥

२३३ ऊर्जो नपातमध्वरे दीदिवांसमुप द्यवि । अग्निमीळे कविक्रतुम् ॥ १२ ॥
२३४ ईळेन्यो नमस्य॑स्तिरस्तमांसि दर्शतः । सम॒ग्निरि॑ध्यते वृषा ॥ १३ ॥
२३५ वृषो अग्निः समिध्यते ऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥ १४ ॥
२३६ वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ १५ ॥

[२८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः । छन्दः- १-२, ६ गायत्री, ३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप्, ५ जगती ।]

२३७ अग्ने जुषस्व नो हविः पुरोळाशं जातवेदः । प्रातःसावे धियावसो ॥ १ ॥
२३८ पुरोळा अग्ने पचत॒स्तुभ्यं वा घा परिष्कृतः । तं जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २ ॥
२३९ अग्ने वीहि पुरोळाश॒माहुतं तिरोअह्न्यम् । सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥ ३ ॥

अर्थ—[२३३] (ऊर्जः नपातं, उपद्यवि दीदिवांसं) बलको क्षीण न करनेवाले, द्युलोकतक प्रकाशित होनेवाले (कविक्रतुं अग्निं) मेधावी अग्निकी (अध्वरे ईळे) इस यज्ञमें मैं स्तुति करता हूं ॥ १२ ॥

[२३४] (ईळेन्यः नमस्यः दर्शतः) पूजनीय, नमस्कारके योग्य, दर्शनीय, (वृषा, तमांसि तिरः अग्निः) बलवान् और अन्धकारको स्व प्रकाशसे दूर करता हुआ अग्नि (सम् इध्यते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हो रहा है ॥ १३ ॥

[२३५] (अश्वः न देववाहनः वृषो अग्निः सं इध्यते) घोडेके समान देवोंको लानेवाला यह बलवान् अग्नि प्रज्वलित होता है । (हविष्मन्तः तं ईळते) हविको देनेवाले यजमानगण उस अग्निकी स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

[२३६] हे (वृषन् अग्ने) अभीष्टवर्षी अग्ने ! (वृषणः वयं) बलवान् हम (वृषणं दीद्यतं बृहत् त्वां) बलवान् और महान् तुझको (सं इधीमहि) सम्यक्‌रूपसे प्रदीप्त करते हैं ॥ १५ ॥

[२८]

[२३७] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ और (धियावसो अग्ने) ज्ञानरूपी धनवाले अग्ने ! तू (प्रातःसावे नः पुरोळाशं हविः जुषस्व) प्रातःसवनमें हमारे पुरोडाश और हव्यका सेवन कर ॥ १ ॥

[२३८] हे (यविष्ठ्य अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने ! (तुभ्यं वा घ परिष्कृतः पुरोळा पचतः) तेरे लिये अच्छे प्रकारसे सुसंस्कृत पुरोडाश तैयार किया गया है, तू (तं जुषस्व) उसका सेवन कर ॥ २ ॥

[२३९] हे (अग्ने) अग्ने (तिरः अह्न्यं आहुतं पुरोडाशं वीहि) दिनान्तमें उत्तम रीतिसे दिए गए पुरोडाशका भक्षण कर । तू (सहसः सूनुः अध्वरे हितः असि) बलका पुत्र और यज्ञमें कल्याणप्रद है ॥ ३ ॥

भावार्थ— स्तुतियोग्य, देखनेमें सुन्दर, बलवान् और अपने प्रकाशसे अन्धकारको दूर करनेवाला यह अग्नि सर्वत्र प्रदीप्त किया जाता है ॥ १३ ॥

घोडा जिस प्रकार सामान ढोकर लाता है उसी प्रकार देवोंको बुलाकर लानेवाला यह तेजस्वी अग्नि प्रदीप्त किया जाता है ॥ १४-१५ ॥

ज्ञानवान् अग्ने ! यह पुरोडाश तेरे लिए तैय्यार किया गया है, अतः तू यज्ञमें आकर इसका सेवन कर ॥ १-२ ॥

हे अग्ने ! दिनके अन्तमें तैयार किया गया यह पुरोडाश खा और हमारे लिए कल्याण करनेवाला हो ॥ ३ ॥

२४० माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।
अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥ ४ ॥
२४१ अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।
अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥ ५ ॥
२४२ अग्ने वृधान आहुतिं पुरोळाशं जातवेदः । जुषस्व तिरोअह्न्यम् ॥ ६ ॥

[२९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अग्निः, ५, ऋत्विजो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्; १, ४, १०, १२ अनुष्टुप्; ६, ११, १४, १५ जगती ।]

२४३ अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम् ।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥ १ ॥
२४४ अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥ २ ॥

अर्थ— [२४०] हे (कवे जातवेदः अग्ने) मेधावी संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले अग्ने ! (इह माध्यंदिने सवने पुरोळाशं जुषस्व) यहाँ इस माध्यन्दिन सवनमें पुरोडाशका सेवन कर । (विदथेषु धीराः यह्वस्य तव भागधेयं न प्रमिनन्ति) यज्ञमें कर्म करनेमें कुशल अध्वर्यु महान् तेरे भागको नष्ट नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

[२४१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न अग्ने ! तू (तृतीये सवने पुरोडाशं आहुतं कानिषः) तीसरे सवनमें दिये गये पुरोडाशकी आहुतिकी कामना कर । (अथ अध्वरं रत्नवन्तं जागृविं) फिर यज्ञके अनन्तर अविनाशी, रत्नवान्, जागरणकारी सोमको (विपन्यया अमृतेषु देवेषु हि धाः) स्तुतिके साथ अमर देवोंके पासमें प्रतिष्ठित कर ॥ ५ ॥

[२४२] हे (जातवेदः अग्ने) विज्ञानी अग्ने ! (वृधानः तिरः अह्नयं) बढनेवाला तू दिनके अन्तमें (आहुतिं जुषस्व) पुरोडाशरूप आहुतिका सेवन कर ॥ ६ ॥

[२९]

[२४३] (इदं अधि मन्थनं अस्ति) यह अरणी मंथन करनेका साधन है । और इसने ही (प्रजननं कृतं अस्ति) अग्निको उत्पन्न किया है । (विश्पत्नीं एतां आ भर) संसारका पालन करनेवाली इस अरणीको ले आ, उससे (पूर्वथा अग्निं मन्थाम) पहलेकी तरह हम अग्निको मंथन द्वारा प्रकट करें ॥ १ ॥

[२४४] (जातवेदाः गर्भिणीषु गर्भः इव) सब विषयोंका ज्ञाता अग्नि गर्भिणी स्त्रियोंमें गर्भकी तरह (सुधितः अरण्योः निहितः) अच्छी प्रकारसे दोनों अरणियोंमें निहित है । (हविष्मद्भिः जागृवद्भिः मनुष्येभिः) हविसे युक्त और अपने कर्ममें जागरूक रहनेवाले मनुष्योंके द्वारा (अग्निः दिवे दिवे ईड्यः) यह अग्नि प्रतिदिन स्तुति किए जाने योग्य है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! मध्यान्हके समय दिए हुए इस पुरोडाशको खा । क्योंकि याजक लोग तेरे भागको नष्ट नहीं करते ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! उपासकोंको बढानेवाला तू तीसरे सवनमें और दिनके अन्तमें दिए गए इस पुरोडाशको खा और उत्साह पैदा करनेवाले सोमको देवोंके लिए प्रदान कर ॥ ५-६ ॥

मथनेके साधन अरणिसे अग्निको प्रकट किया जाता है । इस अग्निसे यज्ञ किया जाता है और उस यज्ञसे संसारका पालन होता है । अतः यहां अरणीको संसारका पालक बताया है ॥ १ ॥

यह अग्नि अरणियोंमें उसी तरह गुप्त रीतिसे रहता है जिस प्रकार गर्भिणीमें गर्भ । इन अरणियोंमें रहनेवाले अग्निकी सभी मनुष्य स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

२४५ उत्तानायामव भरा चिकित्वान् त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ ३ ॥
२४६ इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ४ ॥
२४७ मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥
२४८ यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचते ऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२४५] हे मनुष्य ! (चिकित्वान् उत्तानायां अव भर) ज्ञानवान् तू ऊर्ध्वमुखवाली अरणी पर नीचे मुखवाली अरणी रख और (प्रवीता सद्यः वृषणं जजान) गर्भयुक्त वह अरणी तत्काल कामनाओंकी वर्षा करनेवाले अग्निको उत्पन्न करे। (अस्य पाजः रुशत्) इसका तेज चमकीला है। (अरुषस्तूपः इळायाः पुत्रः वयुने अजनिष्ट) उज्ज्वल प्रकाशसे युक्त, इलाका पुत्र अग्नि अरणीसे उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥

[२४६] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (वयं पृथिव्याः अधि) हम पृथ्वीके ऊपर (इळायाः नाभा पदे त्वा) वेदिके नाभि स्थानमें तुझको (हव्याय वोळ्हवे निधीमहि) हविवहन करनेके निमित्त स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

[२४७] हे (नरः) मनुष्यो ! (कविं अद्वयन्तं प्रचेतसं) क्रान्तदर्शी, कुटिलता रहित, श्रेष्ठ ज्ञानी (अमृतं सुप्रतीकं अग्निं मन्थत) अविनाशी ज्वालाओंसे सुन्दर शरीरवाले अग्निको अरणि मंथनसे प्रकट करो। तुम (नरः) मनुष्यका नेतृत्व करनेवाले हो, अतः (यज्ञस्य केतुं प्रथमं सुशेवं पुरस्तात् जनयत) यज्ञसूचक, प्रथमपूज्य, सुख देनेवाले अग्निको सबसे प्रथम उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

[२४८] (यदि बाहुभिः मन्थन्ति) जिस समय मनुष्य अपने हाथोंसे अरणियोंका मंथन करते हैं, उस समय (वनेषु वाजी अश्वः न अरुषः आ विरोचते) जंगलोंमें शीघ्रगामी घोडेके समान यह तेजस्वी अग्नि चारों ओर प्रकाशित होता है। तथा (अश्विनोः यामन् चित्रः न) अश्विनीकुमारोंके शीघ्रगामी रथकी तरह शोभाको धारण करता है और (अनिवृतः अश्मनः तृणा दहन् परि वृणक्ति) जिसके गमनको कोई नहीं रोक सकता ऐसा अग्नि पत्थरों और तृणोंको जलाता हुआ दग्ध किये स्थानको छोडता हुआ आगे बढ जाता है ॥ ६ ॥

१ बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते— अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है।
१ अनिवृतः अश्मनः परि वृणक्ति— ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है।

भावार्थ— नीचेवाली अरणीपर ऊपरकी अरणि रखकर मथनेसे अग्नि प्रकट होता है। उत्पन्न होकर वह अग्नि अन्धकारको दूर करता है। इस मंत्रमें सन्तानोत्पादनकी रीति भी दूसरे शब्दोंमें बताई है ॥ ३ ॥

यज्ञमें दी गई हविको देवोंतक पहुंचानेके लिए ही अग्निको यज्ञकी वेदिमें स्थापित किया जाता है ॥ ४ ॥

हे मनुष्यो ! तुम दूरदर्शी कुटिलतारहित श्रेष्ठज्ञानी अग्निको मंथनसे प्रकट करो। यज्ञके सूचक इस अग्निको सबसे प्रथम उत्पन्न करो ॥ ५ ॥

अपनी भुजाओंसे शत्रुओंको मथनेवाला बलवान् वीर ही चारों ओरसे तेजस्वी होता है। वह हमेशा क्रियाशील रहता है। ऐसा अनिर्बन्ध शक्तिवाला मनुष्य चट्टानों और बडे गहन जंगलोंको भी पार कर जाता है ॥ ६ ॥

×

२४९ जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥ ७ ॥

२५० सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान् त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान् हविषा यजा—स्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ॥ ८ ॥

२५१ कृणोत धूमं वृषणं सखायो ऽस्रेधन्त इतन वाजमच्छ ।
अयमग्निः पृतनाषाट् सुवीरो येन देवासो असहन्त दस्यून् ॥ ९ ॥

२५२ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीदा—था नो वर्धया गिरः ॥ १० ॥

अर्थ— [२४९] (देवासः ईड्यं विश्वविदं) देवताओंने पूजनीय और सर्वज्ञ तथा (अध्वरेषु हव्यवाहं यं अदधुः) हविको वहन करनेवाले जिस अग्निको यज्ञोंमें नियुक्त किया (जातः अग्निः चेकितानः वाजी विप्रः) वह अग्नि उत्पन्न होते ही अपने कर्मोंमें विज्ञ बलवान् और विद्वान् होता है, इसी कारणसे (कविशस्तः सुदानुः रोचते) मेधावी जनोंसे प्रशंसित और उत्तम दान देनेवाला वह अग्नि शोभित होता है ॥ ७ ॥

[२५०] हे (होतः अग्ने) होम निष्पादक अग्ने ! तू (स्वे लोके उ सीद) अपने स्थानपर विराजमान हो । तू (चिकित्वान् यज्ञं सुकृतस्य योनौ सादय) सबको जाननेवाला है, यज्ञके कर्ताको पुण्यलोकमें स्थापित कर । (देवावीः हविषा देवान् यजासि) देवोंका रक्षक तू हवि द्वारा देवोंकी पूजा कर (यजमाने बृहत् वयः धाः) और यजमानको बहुत अन्न प्रदान कर ॥ ८ ॥

[२५१] हे (सखायः) मित्रो ! (धूमं वृषणं कृणोत) धूमयुक्त बलवान्‌को उत्पन्न करो । फिरसे (अस्रेधन्तः वाजं अच्छ इतन) सबल होकरके युद्धके सम्मुख उपस्थित होओ । (अयं अग्निः सुवीरः पृतनाषाट्) यह अग्नि शोभन सामर्थ्यसे युक्त और शत्रु सेनाका विजेता है (येन देवासः दस्यून् असहन्त) जिसकी सहायता प्राप्त करके देवताओंने असुरोंको परास्त किया ॥ ९ ॥

[२५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऋत्वियः अयं ते योनिः) सब ऋतुओंमें पैदा होनेवाली यह अरणि तेरा उत्पत्ति स्थान है । (यतः जातः अरोचथाः) जिससे उत्पन्न हो तू शोभाको प्राप्त करता है । (तं जानन् आसीद) उस अरणिको जानकर उसमें बैठ जा और (अथ नः गिरः वर्धय) उसके अनन्तर हमारी स्तुतिको बढा ॥ १० ॥

भावार्थ— यह अग्रणी उत्पन्न होते ही अपने उत्तरदायित्वोंको जानकर उन्हें सम्हाल लेता है, इसीलिए वह ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित होता है । ऐसे सर्वज्ञ और पूजनीय अग्निको यज्ञोंमें नियुक्त किया जाता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू अपने स्थानपर विराजमान हो और यज्ञ करनेवालोंको पुण्य स्थानपर बिठला । देवोंका रक्षक तू देवोंकी पूजा कर और यजमानको बहुत अन्न दे ॥ ८ ॥

हे मित्रो ! प्रथम तुम धूमयुक्त बलवान् अग्निको उत्पन्न करो, फिर उसके बलसे युक्त होकर युद्ध करो, वह अग्नि बलशाली है, उसीकी सहायतासे देवताओंने असुरोंको परास्त किया ॥ ९ ॥

अग्निकी उत्पत्ति स्थान अरणि सभी ऋतुओंमें अनुकूल होता है, इससे उत्पन्न होकर अग्नि शोभाको प्राप्त करता है ॥ १० ॥

२५३ तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद् विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि ॥ ११ ॥

२५४ सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

२५५ अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो ऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥ १३ ॥

२५६ प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥ १४ ॥

अर्थ—[२५३] (गर्भः तनूनपात् उच्यते) गर्भस्थ अग्निको 'तनूनपात्' कहते हैं (यत् आसुरः विजायते नाराशंसः भवति) जिस समय वह बलशाली होता है तब वह नाराशंस या मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय होता है। (यत् मातरि अमिमीत, मातरिश्वा) जब अन्तरिक्षमें अपने तेजको फैलाता है तब 'मातरिश्वा' होता है। इसके (सरीमणि वातस्य सर्गः अभवत्) इसके शीघ्र चलने पर वायुकी उत्पत्ति होती है ॥ ११ ॥

[२५४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कविः सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः) मेधावी शोभन मथनीके द्वारा मंथनसे उत्पन्न हुआ हुआ लोगों द्वारा सर्वोत्तम स्थानपर स्थापित किया गया है। हमारे (सु अध्वरः कृणु) हिंसारहित श्रेष्ठ यज्ञको उत्तम बना। तथा (देवयते देवान् यज) देवाभिलाषी मनुष्योंके लिये देवोंकी पूजा कर ॥ १२ ॥

[२५५] (मर्त्यासः अमृतं अस्रेमाणं) मनुष्योंने अमर, क्षयरहित (वीळुजम्भं तरणिं अजीजनन्) दृढ दांतोंवाले पापतारक अग्निको उत्पन्न किया। उस समय जिस प्रकार (पुमांसं जातं स्वसारः दश अग्रुवः) मनुष्य अपने पुत्रके उत्पन्न होनेपर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार अग्निके उत्पन्न होनेपर भगिनी स्वरूप दसों अंगुलियाँ (समीचीः अभि सं रभन्ते) परस्पर मिलकर अत्यधिक प्रसन्न होकर शब्द करती हैं ॥ १३ ॥

[२५६] (सनकात् सप्तहोता प्र अरोचत) प्राचीन अग्नि सात होताओंवाला होकर प्रदीप्त होता है। वह (यत् मातुः उपस्थे ऊधनि अशोचत् सुरणः) जब माता पृथ्वीकी गोदमें दुग्ध–स्थानके पास शोभायमान होता है, तब देखनेमें बहुत रमणीय लगता है। वह (दिवे दिवे न नि मिषति) प्रतिदिन अर्थात् कभी भी निद्रा नहीं लेता (यत् असुरस्य जठरात् अजायत) क्योंकि वह बलवान् उदरसे उत्पन्न हुआ है ॥ १४ ॥

भावार्थ— अरणिमें छिपा हुआ अग्नि 'तनूनपात्' कहलाता है, तथा वही बलशाली होकर 'नाराशंस' कहाता है जब वह अन्तरिक्षमें संचार करता है, तब वह 'मातरिश्वा' कहाता है, यही मातरिश्वा अग्नि अपनी गतिसे वायुको उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥

हे अग्ने ! तू ज्ञानी उत्तम मथन द्वारा उत्पन्न हुआ हुआ सर्वश्रेष्ठ स्थानपर स्थापित है। अतः तू हमारे यज्ञोंको पूर्ण कर और देवत्व पानेकी इच्छा करनेवालोंको देवत्व प्रदान कर ॥ १२ ॥

मनुष्योंने अमर, क्षयरहित दृढ ज्वालाओंवाले अग्निको उत्पन्न किया। उस समय दसों अंगुलियां उसी तरह प्रसन्न हुईं, जिस प्रकार पुत्रके उत्पन्न होनेपर पिता प्रसन्न होता है ॥ १३ ॥

यह सनातन अग्नि सात होताओं द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। जब वह पृथ्वीमें प्रज्ज्वलित किया जाता है, उस समय वह बहुत सुन्दर लगता है। वह अग्रणी बलशालीके पेटसे उत्पन्न होता है, इसलिए वह हमेशा जाग्रत रहता है ॥ १४ ॥

२५७ अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद् विदुः ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥ १५ ॥
२५८ यदुद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १६ ॥

[३०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५९ इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।
तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनाना-मिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥ १ ॥
२६० न ते दूरे परमा चिद् रजां-स्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥ २ ॥

अर्थ— [२५७] अग्नि (मरुतां प्रयाः इव अमित्रायुधः) मरुतोंकी सेनाके समान शत्रुओंके साथ युद्ध करनेवाले (ब्रह्मणः प्रथमजाः कुशिकासः विश्वं विदुः इत्) ब्रह्मासे प्रथम उत्पन्न कुशीकगोत्रवाले ऋषिगण विश्वको जानते हैं, वे अपने (द्युम्नवत् ब्रह्म एरिरे) तेजस्वी स्तोत्रोंसे अग्निकी स्तुति करते हैं। तथा (एकएकः दमे अग्निं समीधिरे) अकेले अकेले भी अपने अपने घरोंमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं ॥ १५ ॥

[२५८] हे (होतः चिकित्वः) यज्ञ सम्पन्न करनेवाले सर्वज्ञाता अग्ने ! (अद्य प्रयति अस्मिन् यज्ञे त्वा अवृणीमहि) आज चलनेवाले इस यज्ञमें हम तेरा वरण करते हैं (यत् इह ध्रुवमया ध्रुवं उत अशमिष्ठाः) इस कारणसे तू यहीं स्थिरतासे रह और सर्वत्र शान्ति स्थापित कर। हे (विद्वान्) सब कुछ जाननेवाले अग्ने ! (सोमं प्रजानन् उपयाहि) सोमको सिद्ध हुआ जानकर उसके समीप आ ॥ १६ ॥

[३०]

[२५९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (सोम्यासः सखायः) सोमयज्ञ करनेवाले तेरे मित्र (त्वा इच्छन्ति) तेरी इच्छा करते हैं, तथा तेरे लिए (सोमं सुन्वन्ति) सोम तैय्यार करते हैं, और (प्रयांसि दधति) अन्न धारण करते हैं, (जनानां अभिशस्तिं सहन्ते) शत्रुओंके आक्रमणको सहते हैं; अतः, हे इन्द्र ! (त्वत् प्रकेतः कश्चन) तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है ? ॥ १ ॥

१ त्वत् प्रकेतः कः चन— हे इन्द्र ! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है ?

[२६०] हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! (परमा चित् रजांसि) दूरके लोक भी (ते दूरे न) तेरे लिए दूर नहीं हैं, क्योंकि तू (हरिभ्यां तु प्रयाहि) घोडोंसे सभी जगह जाता है, (स्थिराय वृष्णे) युद्धमें स्थिर रहनेवाले बलवान् ऐसे तेरे लिए (इमा सवना कृता) ये यज्ञ किये गए हैं, जहांपर (अग्नौ समिधाने) अग्निके प्रदीप्त होनेपर (ग्रावाणः युक्ताः) सोम पीसनेके पत्थर तैय्यार रहते हैं ॥ २ ॥

१ परमाचित् रजांसि दूरे न— दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं।

भावार्थ— ब्रह्मासे पहले उत्पन्न हुए हुए तथा शत्रुओंसे युद्ध करनेवाले कुशिक ऋषि अपने अपने घरोंमें अग्निको प्रज्वलित कर उसकी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ १५ ॥

हे सर्वज्ञ अग्ने ! इस यज्ञमें हम तेरा वरण करते हैं, अतः तू यहीं स्थिर होकर शान्ति स्थापित कर और सोमका पान कर ॥ १६ ॥

यह इन्द्र ही सबसे अधिक बुद्धिमान् है, इसलिए सब इसीकी इच्छा करते हैं, और इसीके लिए सोम तैय्यार करते हैं और अन्न देते हैं। तब तेरे द्वारा दी गई शक्तिसे शत्रुओंके आक्रमणका मुकाबला करते हैं ॥ १ ॥

यह इन्द्र हमेशा वेगवान् घोडोंसे सर्वत्र जाता है, इसलिए दूरके लोक भी इसके लिए नजदीक ही हैं। युद्धमें स्थिर रहनेवाले इसके लिए यज्ञ किए जाते हैं। अग्निके प्रदीप्त होनेपर इसके लिए सोमकी आहुति दी जाती है ॥ २ ॥

२६१ इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥ ३ ॥
२६२ त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युता- न्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासो ऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥ ४ ॥
२६३ उताभये पुरुहूत श्रवोभि- रेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते ॥ ५ ॥
२६४ प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ॥ ६ ॥

अर्थ— [२६१] हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सु-शिप्रः) उत्तम शिरस्त्राणवाले (मघवा) धनवान् (तरु-त्रः) शत्रुओंको त्रास देनेवाले (महाव्रातः) महान् व्रतवाले (तुविकूर्मिः) बहुत कर्म करनेवाले (ऋघावान्) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाले (उग्रः) वीर तूने (बाधितः) शत्रुओंद्वारा पीडित होनेपर (मर्त्येषु) शत्रुओंमें (यत् धाः) जो पराक्रम दिखाया था, (ते) तेरे वे (वीर्याणि) पराक्रम (क्व) कहां गए ? ॥ ३ ॥

१ तरु-त्रः— त्वरासे रक्षण करनेवाला, शत्रुओंको त्रास देनेवाला ।

[२६२] हे इन्द्र ! (त्वं अच्युतानि च्यावयन् स्म) तू अपने स्थानसे न हिलनेवाले शत्रुओंको हिला देता है तथा (वृत्रा जिघ्नमानः) वृत्रोंको मारते हुए (एकः चरसि) तू अकेला ही सब जगह विचरता है । (द्यावापृथिवी पर्वतासः) द्युलोक, पृथिवीलोक और पर्वत (तव व्रताय) तेरे व्रतके लिए (निमिताः इव अनु तस्थुः) निश्चलके समान अनुकूल रहते हैं ॥ ४ ॥

१ अच्युतानि च्यावयन् स्म— यह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवालोंको भी हिला देता है ।
२ द्यावापृथिवी पर्वतासः तव व्रताय निमिताः इव तस्थुः— द्यु, पृथ्वी और पर्वत इस इन्द्रके नियममें निश्चल रहते हैं ।

[२६३] हे (पुरुहूत मघवन् इन्द्र) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (श्रवोभिः एकः) बलसे युक्त अकेले ही (वृत्र-हा सन्) वृत्रको मारनेवाले होकर तूने (अभये अवदः) जो अभयकारक बात कही, वह (दृळ्हं) सत्य है । (अपारे चित्) दूर होते हुए भी तूने (यत्) जो (इमे रोदसी संगृभ्ण) इन द्युलोक और पृथ्वीलोक पर अधिकार किया, वह (ते) तेरा पराक्रम (काशिः इत्) प्रसिद्ध ही है ॥ ५ ॥

[२६४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरिभ्यां ते) दो घोडोंसे युक्त तेरा रथ (प्रवता सु प्र एतु) उत्तम मार्गसे आगे चले, तथा (ते वज्रः) तेरा वज्र (शत्रून् प्रमृणन्) शत्रुओंको मारता हुआ (प्र) आगे बढे । (प्रतीचः अनूचः पराचः जहि) तू सामनेसे आनेवाले, पीछेसे आनेवाले और दूरसे आनेवाले शत्रुओंको मार, (विश्वं सत्यं कृणुहि) और सबको सुखी कर, (विष्टं अस्तु) यह सामर्थ्य तुझमें प्रविष्ट हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली, उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला, शत्रुओंको कष्ट देनेवाला महान् कर्म करनेवाला यह इन्द्र शत्रुओंसे पीडित होनेपर पराक्रम दिखाता है । इसका वह पराक्रम कभी भी क्षीण या नष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥

यह इन्द्र इतना वीर है कि यह बलशालीसे बलशाली वीरको भी अपने स्थानसे हिला देता है । वृत्रासुर आदि शत्रुओंको मारते हुए यह सर्वत्र अकेला ही निर्भय होकर विचरता है । सारे लोक इसके नियममें चलते हैं, कोई भी इसके नियमका उल्लंघन नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

यह इन्द्र जिसको अभयदान दे देता है, उसकी हरतरहसे रक्षा करता है, यह जो भी बात कहता है, सत्य ही कहता है । दूर रहते हुए भी यह द्यावापृथ्वीको आधार देता है, उन्हें रोके रहता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! घोडोंसे युक्त तेरा रथ उत्तम मार्गसे आगे चले । आगे, पीछे तथा दूरसे आनेवाले शत्रुओंको पीसता हुआ तेरा वज्र आगे बढे । शत्रुओंको मारकर तू सबको सुखी कर । तू हमेशा सामर्थ्यशाली बना रह ॥ ६ ॥

२६५ यस्मै धायुरदधा मर्त्याया- भक्तं चिद् भजते गेह्यं स: ।
भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥ ७ ॥
२६६ सहदानुं पुरुहूत क्षियन्त- महस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्धमानं पियारु- मपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ८ ॥
२६७ नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्ष- मर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥ ९ ॥

अर्थ— [२६५] हे (पुरुहूत इन्द्रः) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! (धायुः) ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू (यस्मै मर्त्याय अदधाः) जिस मनुष्यके लिए यह ऐश्वर्य देता है (सः अभक्तं चित् गेह्यं भजते) वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है। हे (घृताची इन्द्र) घवियोंको खानेवाले इन्द्र ! (ते सुमतिः भद्रा) तेरी बुद्धि कल्याण देनेवाली है, तथा (रातिः सहस्र-दाना) तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है ॥ ७ ॥

१ गेह्यं— घरमें रहनेवाले धनके समान ।
२ धायुः यस्मै मर्त्याय अदधाः स अभक्तं चित् गेह्यं भजते— ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू जिस मनुष्यको ऐश्वर्य देता है, वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है ।
३ ते सुमतिः भद्रा— तेरी उत्तम बुद्धि कल्याण करनेवाली है ।
४ रातिः सहस्र-दाना तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है ।

[२६६] (पुरुहूत इन्द्र) हे बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जाने योग्य इन्द्र ! तू (सह-दानुं क्षियन्तं) दानवोंके साथ रहनेवाले (कुणारुं) गर्जना करनेवाले असुरको (अ-हस्तं सं पिणक्) विना हाथवाला बनाकर पीस डाला, मार डाला । हे इन्द्र ! तूने ही (वर्धमानं पियारुं वृत्रं) बढनेवाले और हिंसा करनेवाले वृत्रको (अ-पादं) पैरोंसे रहित करके (तवसा अभि जघन्थ) बलपूर्वक मारा था ॥ ८ ॥

१ कुणारुः— शब्द करनेवाला, गर्जना करनेवाला " कुण शब्दने "।
२ पिणक्— पीसना " पिष्लृ संचूर्णने "

[२६७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (महीं अपारां) बडी, विस्तृत (सामनां इषिरां) समानतावाली तथा, अन्न देनेवाली (भूमिं) पृथ्वीको तूने ही (सदने नि ससत्थ) अपने स्थान पर स्थिर किया । (वृषभः) उस बलवान् इन्द्रने (अन्तरिक्षं द्यां अस्तभ्नात्) अन्तरिक्ष और द्युलोकको स्थिर किया, हे इन्द्र ! (त्वया प्रसूताः आपः) तेरे द्वारा उत्पन्न किए गए जलप्रवाह (इह अर्षन्तु) यहां बहें ॥ ९ ॥

१ सामना— समान, जो ऊबड खाबड नहीं ।
२ इषिरा— चलनेवाली, " इष गतौ ", अन्नवाली ।
३ महीं अपारां सामनां इषिरां भूमिं सदने नि ससत्थ— बडी, विस्तृत और समान तथा अन्न देनेवाली भूमिको इसी इन्द्रने स्थिर किया ।

भावार्थ— यह उत्तमसे उत्तम ऐश्वर्य धारण करता है, अतः जिस पर इसकी कृपा होती है, वह अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है। वह इसकी उत्तम बुद्धिके अनुसार चलकर कल्याण प्राप्त करता है। इसका दान अनेक तरहके ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! दानवोंके साथ रहनेवाले और गर्जना करनेवाले असुरको भी हाथसे रहित करके मार डाला, तूने ही हिंसा करनेवाले वृत्रको हाथ पैरसे रहित करके नष्ट कर दिया ॥ ८ ॥

यह विस्तृत, समान और अन्नवाली पृथ्वी पहले चलायमान थी। तब इन्द्रने ही उसे निश्चल किया और उसीने द्यु और अन्तरिक्षको स्थिर किया और इसीने जलप्रवाह बहाये ॥ ९ ॥

२६८ अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥ १० ॥
२६९ एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥ ११ ॥
२७० दिशः सूर्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वै- र्विमोचनं कृणुते तत् त्वस्य ॥ १२ ॥
२७१ दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तो- र्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागा- दिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥ १३ ॥

अर्थ— [२६८] हे इन्द्र ! (गोः व्रजः) गायोंके बाडों पर अधिकार करनेवाला (अलातृणः वलः) कंजूस वलासुर (पुराहन्तोः भयमानः वि आर) पहले तेरे वज्रसे डरकर ही मर गया, बादमें (गाः निरजे) जलोंके बहनेके लिए (पथः सुगान् अकृणोत्) रास्तोंको सुगम बनाया । तब (वाणीः) स्तुतिके योग्य जलप्रवाह (धमन्तीः) शब्द करते हुए (पुरुहूतं प्र आवन्) बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले इस इन्द्रकी ओर बहने लगे ॥ १० ॥

[२६९] (इन्द्रः) यह इन्द्र (एकः) अकेला ही (समीची, वसुमती) परस्पर अनुकूल रहनेवालीं, धनवालीं, (पृथिवीं उत द्यां द्वे) पृथिवी और द्युलोक दोनोंको (आ पप्रौ) अपने तेजसे भर देता है, हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (रथीः) उत्तम रथवाला तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे (इषः सयुजः वाजान्) वेगसे दौडनेवाले, साथ साथ अनुकूलतासे रहनेवाले घोडोंको (नः समीके अभि) हमारी तरफ प्रेरित कर ॥ ११ ॥

१ इन्द्रः एकः वसुमतीं पृथिवीं आ पप्रौ— इन्द्र अकेला ही धनसे भरी हुई पृथ्वीको अपने तेजसे भर देता है ।

[२७०] (सूर्यः) सूर्य (हर्यश्वप्रसूताः) इन्द्रके द्वारा उत्पन्न की गई (प्रदिष्टाः) तथा निश्चित की गई (दिशः) दिशाओंका (न मिनाति) उल्लंघन नहीं करता, अपितु (दिवेदिवे) प्रतिदिन उन्हींसे जाता है । वह (यत्) जब (अश्वैः अध्वनः आनट्) घोडोंसे मार्ग पर जाता है, (आत् इत्) तभी (विमोचनं कृणुते) अपने घोडोंको खोल देता है, (अस्य तत् तु) इसका वह काम प्रसिद्ध ही है ॥ १२ ॥

१ सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशः न मिनाति— यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है ।

[२७१] (विश्वे) सभी मनुष्य (अक्तोः विवस्वत्याः उषसः) रात्रीको समाप्त करनेवाली उषाके (यामन्) उदय होनेपर उस (महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः) महान् और अद्भुत [सूर्यके] तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं । (यत् आगात्) जब उषा आ जाती है, तब मनुष्य (इन्द्रस्य सुकृता महिना पुरूणि कर्म) इन्द्रके कल्याणकारी, बडे बडे बहुतसे कर्मोंको (जानन्ति) जानते हैं ॥ १३ ॥

१ उषसः यामन् महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः— उषाके उदय होनेपर लोग महान् और अद्भुत सूर्यके तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं ।

भावार्थ— यह इन्द्र इतना भयंकर है कि असुरगण इसके वज्रसे डरकर पहले ही मर जाते हैं, अर्थात् उन्हें मारनेकी भी जरूरत नहीं रहती । इन असुरोंको मारकर इन्द्र जलोंको बहनेके लिए मार्ग बनाता है । तब जलप्रवाह बहने लगते हैं ॥ १० ॥

यह इन्द्र अकेला ही धनसे भरपूर द्यु और पृथ्वीको अपने तेजसे भर देता है । हे इन्द्र ! तू अपने घोडोंको हमारी तरफ प्रेरित कर ॥ ११ ॥

यह सूर्य इन्द्रके द्वारा उत्पन्न एवं निर्दिष्ट किए गए मार्ग पर ही सदा चलता है, कभी भी उन मार्गोंका उल्लंघन नहीं करता । जब सूर्य इन्द्रके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलना शुरु करता है, तब वह अपने घोडोंको खोल देता है अर्थात् अपनी किरणोंको चारों ओर फैलाना शुरु करता है ॥ १२ ॥

२७२ महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म संभृतमुस्रियायां यत् सीमिन्द्रो अदधाद् भोजनाय ॥ १४ ॥
२७३ इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन् यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥
२७४ सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद् वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन् रन्धयस्व ॥ १६ ॥

अर्थ— [२७२] (इन्द्रः) इन्द्रने (वक्षणासु) गायोंमें (महि ज्योतिः निहितं) महान् तेजको रखा, (आमा गौः पक्वं बिभ्रती चरति) सद्यःप्रसूता गाय पके हुए दूधको धारण करती हुई विचरती है, (उस्रियायां यत् स्वाद्म संभृतं) गायोंमें जो कुछ स्वादिष्ट दूध आदि है, (सीं विश्वं भोजनाय अदधात्) वह सब इन्द्रने भोजनके लिए रखा है ॥ १४ ॥

१ आमा गौ पक्वं बिभ्रती चरति— प्रसूत गौ पके दूधको धारण करके विचरती है ।

२ उस्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्— गौमें जो मीठा दूध है वह सब भोजनके लिये है ।

[२७३] हे (इन्द्र दृह्य) इन्द्र ! तू दृढ हो, क्योंकि (यामशोकाः अभूवन्) राक्षस उत्पन्न हो गए हैं । तू (यज्ञाय गृणते सखिभ्यः शिक्ष) यज्ञ करनेवाले और स्तुति करनेवाले मित्रोंको भरपूर धन दे । (दुःमायवः दुरेवाः) शस्त्रोंको हमपर फेंकनेवाले, बुरे मार्गसे जानेवाले, (निषंगिणः रिपवः मर्त्यासः हन्त्वासः) बाण आदि शस्त्र अपने पास रखनेवाले शत्रु मनुष्य तेरे द्वारा मारने योग्य हैं ॥ १५ ॥

१ दुर्मायवः दुरेवाः निषंगिणः रिपवः हन्त्वासः— दुष्ट कपटी दुर्जन बाण धारण करके जो शत्रु आते हैं वे मारने योग्य हैं ।

[२७४] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (अवमैः अमित्रैः) समीप स्थित शत्रुओं द्वारा छोडे गए शस्त्रका (घोषः सं शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, उस (तपिष्ठां अशनिं) तपानेवाले वज्रको (एषु जहि) उन्हीं शत्रुओंपर मार, (ईं अधस्तात् वृश्च) इन शत्रुओंको जडसे ही काट डाल, (वि रुज) दुःखी कर (सहस्व) इन्हें जीत (रक्षः जहि) राक्षसोंको मार (रन्धयस्व) उनकी हिंसा कर ॥ १६ ॥

भावार्थ— रात्रीके समाप्त होनेपर जब उषा उदय होती है, तब सभी उस महान् और अद्भुत सूर्यके तेजको देखना चाहते हैं । जब उषाका उदय हो जाता है, तब यह इन्द्र अद्‌भुत कर्म करता है और तब इसके अद्‌भुत कर्मोंको लोग आश्चर्यसे देखते हैं ॥ १३ ॥

इन्द्रने गायमें उत्तम तेज स्थापित किया, गायके दूधमें उत्तम तेज होता है । यह एक पक्व अन्न ही है । गायका दूध एक उत्तम पौष्टिक अन्न है । इसमें वे सभी गुण और पौष्टिकता मौजूद है, जो अन्न या भोजनमें होते हैं, इसलिए इन्द्रने इस दूधमें सब तरहका भोजन स्थापित किया है ॥ १४ ॥

सज्जनोंपर शस्त्र फेंकनेवाले, बुरे मार्गसे जानेवाले दुष्ट, शस्त्र अपने पास रखनेवाले हिंसक, शत्रु मनुष्य मारने योग्य हैं। जब ऐसे शत्रु उत्पन्न हो जायें, तब सज्जनोंको हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! पासमें ही शत्रुओंकी गर्जना सुनाई देती है, अतः तू उन्हें मार, पीस और उनका विनाश कर ॥ १६ ॥

२७५ उद् वृ॑ह रक्षः॑ स॒हमू॑लमिन्द्र वृ॒श्चा मध्यं॒ प्रत्यग्रं॑ शृणीहि ।
आ कीव॑तः सल॒लूकं॑ चकर्थ ब्रह्म॒द्विषे॒ तपु॑षिं हे॒तिम॑स्य ॥ १७ ॥

२७६ स्व॒स्तये॑ वा॒जिभि॑श्च प्रणेतः॒ सं यन्म॒हीरिष॑ आ॒सत्सि॒ पूर्वीः॑ ।
रा॒यो व॒न्तारो॑ बृह॒तः स्या॑मा॒ऽस्मे अ॑स्तु॒ भग॑ इन्द्र प्र॒जावा॑न् ॥ १८ ॥

२७७ आ नो॑ भर॒ भग॑मिन्द्र द्यु॒मन्तं॒ नि ते॑ दे॒ष्णस्य॑ धीमहि प्ररे॒के ।
ऊ॒र्व इ॑व पप्रथे॒ कामो॑ अ॒स्मे तमा पृ॑ण वसुपते॒ वसू॑नाम् ॥ १९ ॥

२७८ इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च ।
स्व॒र्यवो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाहः॑ कुशि॒कासो॑ अक्रन् ॥ २० ॥

अर्थ— [२७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (रक्षः सहमूलं उद् वृह) राक्षसोंको जडसहित उखाड डाल, (मध्यं वृश्च) उनके मध्यभागको काट डाल, (अग्रं प्रति शृणीहि) उनके आगेके भागको भी काट डाल, (सललूकं कीवतः आ चकर्थ) लोभी मनुष्यको दूर कर, (ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य) ज्ञानसे द्वेष करनेवाले पर इस दुःख देनेवाले शस्त्रको फेंक ॥ १७ ॥

१ सललूकं— लोभी ' सललूकं संल्लुब्धं भवति पापकमिति नैरुक्ताः (नि. ६।३)
२ रक्षः सहमूलं उत् वृह— राक्षसोंको जडके साथ नष्ट कर ।
३ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिं अस्य— ज्ञानके द्वेषी पर दुःख देनेवाले शस्त्र फेंक ।

[२७६] हे (प्रणेतः इन्द्र) उत्तम नेता इन्द्र ! (स्वस्तये) कल्याणके लिए हमें (वाजिभिः सं) घोडोंसे युक्त कर, (यत् आसत्सि) जब तू हमारे पास बैठता है, तब (महीः इषः) हम बहुत अन्नोंके तथा (बृहतः रायः) बहुतसे धनोंके (वन्तारः स्याम) स्वामी होते हैं, (अस्मे प्रजावान् भगः अस्तु) हमारे लिए प्रजाओंसे युक्त ऐश्वर्य हो ॥१८॥

[२७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (द्युमन्तं भगं नः आ भर) तेजस्वी ऐश्वर्यको हमें भरपूर दे. (देष्णस्य ते) दान देनेवाले तेरे (प्ररेके धीमहि) अत्यधिक दानको हम धारण करें । (अस्मे कामः) हमारी अभिलाषा (ऊर्वः इव पप्रथे) वडवानलके समान बहुत बढ गई है, हे (वसूनां वसुपते) धनपतियोंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्र ! (तं आ पृण) उस हमारी अभिलाषाका पूर्ण कर ॥ १९ ॥

[२७८] हे इन्द्र ! (इमं कामं मन्दय) हमारी इस अभिलाषाको पूर्ण कर तथा हमें (गोभिः अश्वैः चन्द्रवता राधसा च पप्रथः) गाय, घोडे और आनन्ददायक ऐश्वर्यसे बढा । (स्वः यवः विप्राः कुशिकासः) सुखको चाहनेवाले और बुद्धिमान् कुशिक ऋषि (तुभ्यं इन्द्राय) तुझ इन्द्रके लिए (मतिभिः) बुद्धिपूर्वक (वाहः अक्रन्) स्तोत्र बनाते हैं ॥ २० ॥

चन्द्र— आनन्ददायक "चदि आह्लादने"

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो राक्षस हों उन्हें जड सहित विनष्ट कर दे, जो लोभी हों, उन्हें दूर कर और ज्ञानसे द्वेष करनेवालेको शस्त्रसे नष्ट भ्रष्ट कर ॥ १७ ॥

हे उत्तम रीतिसे आगे ले जानेवाले इन्द्र ! हमारा कल्याण करनेके लिए हमें घोडोंसे युक्त कर, और हम बहुत अन्न एवं धनके स्वामी हों ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! हमें तेजस्वी ऐश्वर्य भरपूर दे। तेरे धनको हम प्रसन्नतासे धारण करें । हमारी जो बढती हुई कामनायें हैं, उन्हें तू पूरा कर ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! हमारी इस कामनाको पूरा कर और हमें आनन्ददायक ऐश्वर्यसे बढा । सुखको चाहनेवाले बुद्धिमान् जन तेरे लिए बुद्धिपूर्वक स्तोत्रोंकी रचना करते हैं ॥ २० ॥

२७९ आ नो गोत्रा दर्दृहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मो ऽस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ २१ ॥

२८० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

[३१]

[ऋषिः- कुशिक ऐषीरथिः, गाथिनो विश्वामित्रो वा । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८१ शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन् त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥ १ ॥

अर्थ— [२७९] हे (गो - पते) गायोंके पालनेवाले इन्द्र ! (गो-त्रा) गौओंका रक्षक होकर तू (नः गाः दर्दृहि) हमें गायें दे, (सनयः वाजाः अस्मभ्यं यन्तु) खाने योग्य अन्न हमें प्राप्त हों, (वृषभ) हे बलवान् इन्द्र ! तू (दिवक्षा सत्यशुष्मः असि) द्युलोकको व्यापनेवाला और यथार्थ बलवाला है, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गो-दाः) ज्ञानका देनेवाला तू (अस्मभ्यं सु बोधि) हमें उत्तम ज्ञान दे ॥ २१ ॥

[२८०] (अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस संग्रामके शुरु होनेपर हम (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (शुनं) सुखदायक, (नृतमं मघवानं) सर्वोत्तम नेता, ऐश्वर्यवान् (शृण्वन्तं) प्रार्थनाओंको सुननेवाले, (उग्रं) वीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले और (धनानां संजितं इन्द्रं हुवेम) धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको बुलाते हैं ॥ २१ ॥

[३१]

[२८१] (शासद् विद्वान् वन्हिः) शास्त्रोंको जाननेवाला विद्वान् पिता (ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्) वीर्यको धारण करनेवाले जामाताका सत्कार करता हुआ (दुहितुः नप्त्यं गात्) अपनी लडकीके लडकेको स्वीकार करता है, (यत्र) जब (पिता दुहितुः सेकं ऋञ्जन्) पिता पुत्रीको वीर्य धारण करनेके लिए समर्थ बना देता है अर्थात् विवाह कर देता है, तब (शग्म्येन मनसा सं दधन्वे) सुखकारी मनसे शान्तिको धारण करता है ॥ १ ॥

१ वन्हिः— पुत्रहीन पिता जब पुत्रीको दूसरेके कुलमें भेजता है, तब वह " वन्हि " कहाता है ।

२ यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋञ्जन्, शग्म्येन मनसा सं दधन्वे— जब पिता पुत्रीको वीर्य धारण करनेके लिए समर्थ बना देता है अर्थात् उसे बडी बनाकर उसका विवाह कर देता है, तब वह अपने मनमें शान्ति धारण करता है ।

भावार्थ— हे गायोंके पालक इन्द्र ! गौओंका रक्षक होकर तू हमें गायें दे । खाने योग्य अन्न हमें मिलें । तू द्युलोकको व्यापनेवाला और यथार्थ बलवाला है । ज्ञानको देनेवाला तू हमें उत्तम ज्ञान दे ॥ २१ ॥

युद्धके शुरु होने पर अपने संरक्षणके लिए हम सुखदायक, सर्वोत्तम नेता, ऐश्वर्यवान्, वीर और युद्धोंमें शत्रुओंको मार कर शत्रुओंको जीतनेवाले इन्द्रको बुलाते हैं ॥ २२ ॥

शास्त्रोंको जाननेवाला विद्वान् पिता अपने वीर्यशाली दामादका सत्कार करके अपनी लडकीके पुत्रको अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करता है । जो अपनी पुत्रीके पुत्रको अपने पुत्रके रूपमें स्वीकार करता है उसे 'वह्नि' कहते हैं । जब ऐसा विद्वान् पिता अपनी पुत्रीको पाल पोसकर वीर्य धारण करनेके योग्य अर्थात् उसका विवाह कर देता था, तब उस पिताके मनको शान्ति होती थी ॥ १ ॥

२८२ न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्नि- मन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥ २ ॥
२८३ अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुषस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥ ३ ॥
२८४ अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन् ।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः ॥ ४ ॥

अर्थ—[२८२] (तान्वः) पुत्र (जामये) अपनी बहिनको (रिक्थं न आरैक्) पिताके धनका भाग नहीं देता, इसे (सनितुः गर्भं निधानं चकार) इसका उपभोग करनेवाले पतिके गर्भको धारण करने योग्य बना देता है, (यदी) यद्यपि (मातरः) मातापिता (वह्निं जनयन्त) पुत्र और पुत्रीको उत्पन्न करते हैं, पर उनमेंसे (अन्यः) एक पुत्र (सुकृतोः कर्ता) उत्तम कर्मोंका करनेवाला होता है, (अन्यः ऋन्धन्) और दूसरी पुत्री अलंकारको धारण करनेवाली होती है ॥ २ ॥

१ तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्— पुत्र अपनी बहिनको पिताके धनका भाग नहीं देता ।
२ अन्यः सुकृतोः कर्ता— पुत्र कर्म करता है ।
३ अन्यः ऋन्धन्— दूसरी लडकी अलंकारोंसे सजती है ।

[२८३] हे इन्द्र ! (अरुषस्य) तेजस्वी तेरे (प्रयक्षे) यज्ञके लिए (जुह्वा रेजमानः अग्निः) ज्वालाओंसे कांपती हुई अग्निने (महः पुत्रान् जज्ञे) बहुतसे पुत्रों- किरणोंको उत्पन्न किया, (एषां गर्भः महान्) इन अग्निकी किरणोंका गर्भ महान् है, (जातं मही) इनकी उत्पत्ति भी महान् है, (हर्यश्वस्य यज्ञैः प्रवृत् मही) इन्द्रके यज्ञके कारण इनकी प्रवृत्ति भी बडी है ॥ ३ ॥

[२८४] (जैत्रीः) जय प्राप्त करनेवाले मरुत (स्पृधानं अभि असचन्त) युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आकर मिल गए, और उन्होंने (तमसः) अन्धकारसे (महि ज्योतिः निरजानन्) महान् ज्योतिको प्रकट किया, (तं जानतीः उषासः उदायन्) उसको जानती हुई उषायें भी उदयको प्राप्त हुईं, उन सभी (गवां) किरणोंका (इन्द्रः एकः पतिः अभवत्) इन्द्र अकेला ही स्वामी हुआ ॥ ४ ॥

भावार्थ— पुत्र अपनी बहिनको पैतृकधनका भाग नहीं देता, अपितु वह अपनी बहिनको पालपोसकर बडा बना देता और उसका विवाह कर देता है । माता पिता यद्यपि पुत्र और पुत्रीको पैदा करते हैं, पर उनमें पुत्र ही सब पैतृक कर्म करनेका अधिकारी होता है और दूसरी अर्थात् पुत्री केवल अलंकारको धारण करनेवाली होती है, अर्थात् उसका अधिकार केवल इतना ही है कि पिताके घरमें सज सजाकर पुष्ट होती रहे, वह कोई भी पैतृक काम नहीं कर सकती ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! अत्यधिक तेजस्वी तेरे लिए यज्ञ करनेके समय ज्वालाओंसे कांपती हुई अग्नि बहुतसी किरणोंको उत्पन्न करती है । इन किरणोंके कारण अग्निका स्वरूप बहुत विशाल होता है, इन किरणोंकी उत्पत्ति भी महान् है । इस यज्ञके कारण इन किरणोंकी प्रवृत्ति भी बडी है ॥ ३ ॥

विजयशील मरुद्गण युद्ध करनेवाले इन्द्रके साथ आकर मिल जाते हैं और अन्धकारमें सूर्यरूपी महान् ज्योतिको प्रकट करते हैं । जब यह ज्योति प्रकट होती है, तब उससे पूर्व उषायें प्रकट होती हैं । उस समय जितनी किरणें प्रकट होती हैं, उन सबका स्वामी इन्द्र है ॥ ४ ॥

२८५ वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन् प्राचाहिन्वन् मनसा सप्त विप्राः ।
विश्वामविन्दन् पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश ॥ ५ ॥
२८६ विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥
२८७ अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः ।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन् ॥ ७ ॥
२८८ सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।
प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन् त्सखा सखीरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२८५] (धीराः विप्राः सप्त) धैर्यशाली, और बुद्धिमान् सात ऋषियोंने (वीळौ सतीः अभि अतृन्दन्) पर्वतोंमें रखी गई गायोंको देख लिया, तथा (प्राचा मनसा अहिन्वन्) और आगे ले जानेवाली बुद्धिके द्वारा उन्हें बाहर निकाला, और इस प्रकार (ऋतस्य पथ्यां विश्वां अविन्दन्) यज्ञके साधनभूत सारी गायोंको उन्होंने प्राप्त कर लिया, (ताः प्रजानन्) ऋषियोंके उन कर्मोंको जानता हुआ इन्द्र (नमसा विवेश) स्तोत्रके द्वारा सब जगह यज्ञमें प्रविष्ट हुआ ॥ ५ ॥

[२८६] (यदी) जब (सरमा) सरमाने (अद्रेः रुग्णं विदद्) पर्वतके टूटे हुए भागको जान लिया, तब इन्द्रने (पूर्व्यं) सबसे पहले (सध्र्यक् महि पाथः कः) एक सीधा और बडा रास्ता बनाया, तब (सुपदी) उत्तम पैरोंवाली सरमा इन्द्रको (अग्रं नयत्) आगे ले गई, और (अक्षराणां रवं प्रथमा जानती) न नष्ट होनेवाली गायोंके शब्दको प्रथम सुनकर फिर उन गायोंको (गात्) प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[२८७] (विप्रतमः सखीयन् अगच्छत्) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र मित्रताकी इच्छा करते हुए [पर्वतके पास] गया, तब (अद्रिः सुकृते गर्भं असूदयत्) पर्वतने उत्तम कर्म करनेवाले इस इन्द्रके लिए अपने गर्भमें छिपी हुई गायों-को प्रकट किया, (युवभिः मखस्यन्) मरुतोंकी सहायतासे युद्ध करनेकी इच्छा करनेवाले तथा (मर्यः) शत्रुओंको मारनेवाले इन्द्रने (ससान) गायोंको प्राप्त किया । (अथ) इसके बाद (अंगिराः सद्यः अर्चन् अभवत्) अंगिराने शीघ्रही इन्द्रकी पूजा की ॥ ७ ॥

[२८८] जो (सतः सतः प्रतिमानं) प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रतिनिधि है, (पुरोभूः) आगे रहनेवाला नेता होकर जो (विश्वा जनिमा वेद) सब उत्पन्न हुए पदार्थोंको जानता है, तथा जो (शुष्णं हन्ति) शुष्णासुरको मारता है, ऐसा (पद-वीः गव्युः) पदों-मार्गोंको जाननेवाला, गायोंकी इच्छा करनेवाला (अर्चन्) पूजा जाता हुआ (सखा) मित्र (दिवः) द्युलोकसे आकर (नः सखीन्) हम मित्रोंको (अवद्यात् निः अमुंचत्) पापसे छुडावे ॥ ८ ॥

भावार्थ— धैर्य धारण करनेवाले आंख, कान, नाक और मुंह ये सात ऋषि हृदयगुहाके अन्दर अवस्थित आत्मोंको देखते हैं, और बुद्धिके द्वारा आत्माका दर्शन होता है । इस प्रकार एक महान् यज्ञ शुरु होता है, ऋषियोंके इन कर्मोंको जानता हुआ इन्द्र या परमेश्वर इस यज्ञमें प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥

जब सरमाने पर्वतके टूटे हुए भागको जान लिया और वहां जाकर गायोंको देखा, तब उसने इन गायोंका पता इन्द्र-को बताया तब इन्द्र सरमाके पीछे पीछे गया, और उसने गायोंके शब्दोंको पहचानकर उन गायोंको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

अत्यन्त श्रेष्ठ और ज्ञानी इन्द्रने मित्रताकी इच्छा करते हुए पर्वतकी उपासना की, तब पर्वतने प्रसन्न होकर उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रके लिए गुहाके अन्दर बन्द गायोंका पता बता दिया । तब मरुतोंकी सहायतासे इन्द्रने गायोंको प्राप्त किया और तब ऋषियोंने इन्द्रकी पूजा की ॥ ७ ॥

जो प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थोंका प्रतिनिधि है, जो सबसे आगे रहनेवाला है, जो उत्पन्न हुए सब पदार्थोंको जानता है, जो असुरोंको मारनेवाला है, वह सबके द्वारा पूजा जाता है, ऐसा वह इन्द्र हमें पापोंसे छुडाये ॥ ८ ॥

२८९ नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥ ९ ॥

२९० संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।
वि रोदसी अतपद् घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥ १० ॥

२९१ स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद् भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥ ११ ॥

२९२ पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत् सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥ १२ ॥

अर्थ— [२८९] अंगिराऋषि (गव्यता मनसा) ज्ञानको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली बुद्धिसे और (अर्कैः) स्तोत्रोंसे (अमृतत्वाय गातुं कृण्वानासः) अमरताके लिये मार्ग बनाते हुए (नि सेदुः) यज्ञमें बैठे, (इदं) यह यज्ञ (एषां) इन अंगिराओंका (भूरि सदनं) बहुत बडा बैठनेका स्थान है, (येन ऋतेन) जिस यज्ञके द्वारा इन्होंने (मासान् असिषासन्) महीनोंको पानेकी इच्छा की ॥ ९ ॥

ऋतेन मासान् असिषासन्— यज्ञके साधनसे उन ऋषियोंने महिनोंको जाना । यज्ञ करते हुए उन्होंने जाना कि इतने महिने हुए ।

[२९०] (स्वं अभि संपश्यमानाः) अपनी गायोंको सामने देखकर तथा (प्रत्नस्य रेतसः पयः दुघानाः) प्राचीन कालसे वीर्य बढानेवाला दूध दुहते हुए अंगिरा ऋषि (अमदन्) बहुत प्रसन्न हुए, (एषां घोषः) इनकी हर्ष-युक्त गर्जना (रोदसी) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें (अतपत्) व्याप्त हो गई, इन्होंने (जाते) सबको उत्पन्न करनेवाले इन्द्रमें (निष्ठां अदधुः) श्रद्धा रखी और (गोषु वीरान्) गायोंकी रक्षा पर वीरोंको रखा ॥ १० ॥

गोषु वीरान्— गायोंकी सुरक्षाके कार्यमें वीरोंको रखा । वीर गो रक्षाका कार्य करें ।

[२९१] (सः जातेभिः वृत्रहा) वह इन्द्र मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारता है, (सः इत् उ) उसने ही (अर्कैः हव्यैः) पूज्य हविके लिए (उस्रियाः असृजत्) गायोंको उत्पन्न किया, (घृतवत् भरन्ती) घी देनेवाले दूध-को धारण करनेवाली (उरूची) अत्यन्त पूजनीय तथा (जेन्या) प्रशंसनीय (गौः) गायने (अस्मै मधु स्वाद्म दुदुहे) इसके लिए मधुर और स्वादिष्ट दूधको दुहा ॥ ११ ॥

१ स अर्कैः हव्यैः उस्रियाः असृजत्— उस इन्द्रने पूज्य हविर्द्रव्योंसे युक्त गौओंको उत्पन्न किया । गौमें दूध घी होता है वही हवन करने योग्य है ।

[२९२] (सुकृतः) उत्तम कर्म करनेवाले अंगिरसोंने (पित्रे अस्मै) पालन करनेवाले इस इन्द्रके लिए (महि त्विषीमत् सदनं चित्) विस्तृत और प्रकाश युक्त स्थान (चक्रुः) बनाया, तथा वहां (वि ख्यन्) वे प्रार्थना करने लगे, (आसीनाः) उस यज्ञमें बैठे हुए अंगिरसोंने (जनित्री) सबको उत्पन्न करनेवाली द्यावापृथिवीको (स्कंभनेन विष्कभ्नन्तः) आधार देकर थामते हुए (रभसं) वेगवान् इस इन्द्रको (ऊर्ध्वं वि मिन्विन्) द्युलोकमें स्थापित किया ॥ १२ ॥

भावार्थ— यज्ञ ज्ञान प्राप्त करने और अमरता प्राप्त करनेके लिए एक उत्तम मार्ग है । यज्ञमें अनेक ऋषि आकर बैठते हैं । इसी यज्ञके द्वारा ऋषियोंने महीनोंको जाना ॥ ९ ॥

गायका दूध वीर्य बढानेवाला है । ऐसे वीर्य बढानेवाले दूधसे युक्त गायोंको देखकर ऋषि बहुत प्रसन्न होकर उसका दूध दुहने लगे । दूध दुहते समय इन ऋषियोंका गर्जन दोनों लोकोंमें सुनाई देता है ॥ १० ॥

वह इन्द्र मरुतोंकी सहायतासे वृत्रको मारता है । उसीने हवनके लिए घी और दूध देनेवाली गायोंको उत्पन्न किया । तब गायें इस इन्द्रके लिए मधुर और स्वादिष्ट दूध उत्पन्न करती हैं ॥ ११ ॥

ऋषियोंने इस पालन करनेवाले इन्द्रके लिए विस्तृत और प्रकाशयुक्त स्थानको निर्मित किया । तब उस उत्तम स्थानमें बैठकर ऋषियोंने यज्ञ किया और उस यज्ञके द्वारा इन्द्रको द्युलोकमें स्थापित किया ॥ १२ ॥

२९३ मही यदि धिषणा शिश्नथे धात् सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥ १३ ॥
२९४ मह्या ते सख्यं वश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन् बोधि गोपाः ॥ १४ ॥
२९५ महि क्षेत्रं पुरु श्चन्द्रं विविद्वानादित् सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनद् दीद्यानः साकं सूर्यमुषसं गातुमग्निम् ॥ १५ ॥
२९६ अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥ १६ ॥

अर्थ— [२९३] (रोदस्योः शिश्नथे) द्यावापृथिवीको पृथक् पृथक् करनेके लिये (यदि) जब (मही धिषणा) विशाल स्तुति (सद्योवृधं विभ्वं) सदा वृद्धिको प्राप्त होनेवाले, सबको धारण करनेवाले इन्द्रको (धात्) प्राप्त हुई, तथा (यस्मिन्) जिस इन्द्रमें जब (अनवद्याः गिरः) प्रशंसनीय स्तुतियां (समीचीः) प्राप्त हुई, तब (विश्वाः तविषी) सारे बल (इन्द्राय अनुत्ताः) इन्द्रके वशमें हो गए ॥ १३ ॥

[२९४] हे इन्द्र ! (ते सख्यं महि शक्तीः आ वश्मि) तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूँ, (वृत्रघ्ने) वृत्रको मारनेवाले तुझे (पूर्वीः नियुतः) बहुतसी घोडियां (आ यन्ति) प्राप्त होती हैं, (सूरेः) विद्वान् तेरे (स्तोत्रं) स्तोत्रको हम तेरे पास (अव आगन्म) पहुंचाते हैं, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (गो-पाः) विद्याका रक्षक होकर (अस्माकं बोधि) हमें ज्ञान दे ॥ १४ ॥

गोपाः— गायोंका रक्षक, मातृभूमिका रक्षक, वाणीका रक्षक, विद्याका रक्षक

ते सख्यं महि शक्तीः आ वश्मि— हे इन्द्र ! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूँ।

[२९५] जिस (विविद्वान्) उत्तम विद्वान् इन्द्रने (सखिभ्यः) अपने मित्रोंके लिए (महि क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं) विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धनको दिया, (आत् इत्) उसके बाद (चरथं सं ऐरत्) चलनेवाली गायोंको दिया, उस (दीद्यानः इन्द्रः) तेजस्वी इन्द्रने (नृभिः साकं) मरुतोंकी सहायतासे (सूर्यं, उषसं, अग्निं) सूर्य, उषा अग्निको तथा (गातुं) उनके जानेके लिए मार्गको (अजनत्) बनाया ॥ १५ ॥

विविद्वान् सखिभ्यः महि क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं— उत्तम विद्वान् अपने मित्रोंके लिए विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धन देता है।

[२९६] (दमूनाः एषः) शत्रुओंका दमन करनेवाले इन्द्रने (विभ्वः सध्रीचीः विश्वश्चन्द्राः) व्याप्त, इकट्ठे होकर रहनेवाले, और सबको आनन्द देनेवाले (अपः असृजत्) जलोंको उत्पन्न किया। वे (धनुत्रीः) अन्न उत्पन्न करनेवाले जलप्रवाह (कविभिः पवित्रैः पुनानाः मध्वः) ज्ञानियों द्वारा पवित्र [चलनी] से शुद्ध किए गए मीठे सोमरसोंको (द्युभिः अक्तुभिः) दिन रात (हिन्वन्ति) प्रेरित करते हैं ॥ १६ ॥

धनुत्रीः— अन्न उत्पन्न करनेवाले जल प्रवाह " धन धान्ये "

हिन्वन्ति— प्रेरित करते हैं, " हि गतौ "

भावार्थ— ऋषियोंने जब इन्द्रके लिए उत्तम उत्तम स्तुतियां कीं, तब वे स्तुतियां इन्द्रसे जाकर संयुक्त हुई और सब सारे बल इन्द्रके वशमें हो गए ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको मैं प्राप्त करना चाहता हूं। तेरी सब ऋषि स्तुति करते हैं। तू विद्याका रक्षक होकर हमें ज्ञान दे ॥ १४ ॥

विद्वान् इन्द्र अपने मित्रके लिए विस्तृत भूमि और तेजस्वी धन देता है, साथ ही वह गायोंको भी देता है। वह मरुतोंकी सहायतासे सूर्य, उषा, अग्नि आदि देवोंके लिए जानेका मार्ग बनाता है ॥ १५ ॥

शत्रुओंके नाशक इन्द्रने इकट्ठे होकर बहनेवाले और सबको आनन्द देनेवाले जलोंको उत्पन्न किया। वे जलप्रवाह पवित्र किए जाकर सोमरसोंमें मिलाए जाते हैं। तब सोमरस पीनेके लायक होते हैं ॥ १६ ॥

२९७ अनु॑ कृ॒ष्णे वसु॑धिती जिहाते उ॒भे सूर्य॑स्य मं॒हना॒ यज॑त्रे ।
परि॒ यत् ते॑ महि॒मानं॑ वृ॒जध्यै॒ सखा॑य इन्द्र॒ काम्या॑ ऋजि॒प्याः ॥ १७ ॥
२९८ पति॑र्भव वृत्रहन् त्सू॒नृता॑नां गि॒रां वि॒श्वायु॑र्वृ॒षभो॑ वयो॒धाः ।
आ नो॑ गहि स॒ख्येभि॑ः शि॒वेभि॑र्म॒हान् म॒हीभि॑रू॒तिभि॑ः सर॒ण्यन् ॥ १८ ॥
२९९ तम॑ङ्गि॒रस्वन्नम॑सा स॒पर्य॒न् नव्यं॑ कृणोमि॒ सन्य॑से पु॒राजाम् ।
द्रुहो॒ वि या॑हि बहु॒ला अदे॑वीः॒ स्व॑श्च नो मघवन् त्सा॒तये॑ धाः ॥ १९ ॥

अर्थ— [२९७] हे इन्द्र! (यत् ते महिमानं) जिस तेरे बलको (ऋजिप्याः काम्याः सखायः) सरल मार्गसे आगे बढनेवाले, सुन्दर, मित्र मरुत (वृजध्यै परि) शत्रुओंको मारनेके लिए प्राप्त करते हैं, उस (सूर्यस्य) सबको प्रेरणा देनेवाले तेरी (मंहना) महिमाके कारण ही (वसुधिती यजत्रे उभे कृष्णे) धन धारण करनेवाले, पूजनीय दोनों दिन रात (अनु जिहाते) एक दूसरेके पीछे चलते हैं ॥ १७ ॥

१ ऋजि+प्या— सरल मार्गसे आगे बढनेवाले " ओप्यायी वृद्धौ "
२ जिहाते— जाना, " ओहाङ्गतौ "
३ ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजध्यै परि— इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

[२९८] हे इन्द्र! (विश्वायुः वृषभः वयोधाः) अविनाशी, बलवान्, अन्नको धारण करनेवाला तू हमारी (सूनृतानां गिरां पतिः भव) सत्य अथवा आनन्ददायक वाणियोंका स्वामी हो। (महान्) महान् तू (सरण्यन्) यज्ञकी ओर जाते हुए (महीभिः शिवेभिः ऊतिभिः) महान् और कल्याणकारी संरक्षणोंसे तथा (सख्येभिः) मित्रताके भावोंसे युक्त होकर (नः आ गहि) हमारी ओर आ ॥ १८ ॥

१ विश्वायुः वृषभः वयोधाः सूनृतानां गिरां पतिः भव— तू पूर्णायु बलवान् और अन्नका धारण करनेवाला हो और सच्चा भाषण करनेवाला हो ।
२ सरण्यन् विश्वेभिः ऊतिभिः नः आ गहि— आगे बढता हुआ संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आ। हमारा पूर्ण रक्षण कर।

[२९९] हे इन्द्र! मैं (अंगिरस्-वत्) अंगिराके समान (तं नमसा सपर्यन्) उस तेरी नमनसे पूजा करता हूँ, (पुराजां सन्यसे) अत्यन्त प्राचीन तुझे प्राप्त करनेके लिए (नव्यं कृणोमि) नये नये स्तोत्र बनाता हूं, तू (अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि) दिव्य गुणोंसे रहित बहुतसे शत्रुओंको हमसे दूर कर, तथा हे (मघवन्) इन्द्र! अपने (स्वः) धनको (नः सातये धाः) हमारे उपभोगके लिए दे ॥ १९ ॥

१ अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि— दिव्य गुणोंसे रहित बहुत शत्रुओंको दूर कर ।
२ स्वः नः सातये धाः— धन हमारे उपभोगके लिये दे ।

भावार्थ— सरल मार्गसे जानेवाले तथा सुन्दर और मित्रके समान व्यवहार करनेवाले ही इन्द्रसे बल प्राप्त करते हैं और उसका उपयोग शत्रुनाशके लिए करते हैं ॥ १७ ॥

मनुष्य ऐसी ही वाणियोंका उपयोग करे कि जो अविनाशी, बलवान्, अन्न देनेवाली, सत्य और आनन्ददायक हो। सब मनुष्य परस्पर महान् और कल्याणकारी संरक्षणोंसे तथा मित्रताके भावोंसे युक्त होकर ही व्यवहार करें ॥ १८ ॥

हे इन्द्र! हम अत्यन्त सनातन तुझे प्राप्त करनेके लिए तेरी हर प्रकारसे स्तुति करते हैं। तू भी हम पर कृपा करके उत्तम गुणोंसे रहित लोगोंको हमसे दूर कर और धनको हमारे उपभोगके लिए दे ॥ १९ ॥

३०० मिहः पावकाः प्रतता अभूवन् स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥ २० ॥
३०१ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥ २१ ॥
३०२ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [३००] हे इन्द्र ! (पावकाः मिहः प्रतताः अभूवन्) पवित्र करनेवाले तथा सींचनेके साधन जल सब जगह फैल गए हैं, (नः) हमें (आसां पारं स्वस्ति) इनके पार कल्याण पूर्वक पहुंचा और (पिपृहि) हमारा पालन कर। (रथिरः त्वं) रथवाला तू (रिषः नः पाहि) हिंसकोंसे हमारी रक्षा कर, तथा (नः) हमें (मक्षूमक्षू) बहुत शीघ्र ही (गोजितः कृणुहि) गायोंको जीतनेवाला बना ॥ २० ॥

१ रिषः नः पाहि — शत्रुओंसे हमारा रक्षण कर ।
२ नः गोजितः कृणुहि— हमें गायोंको जीत कर प्राप्त करनेवाला कर ।

[३०१] (वृत्रहा गोपतिः) वृत्रको मारनेवाला तथा गो- इन्द्रियोंका स्वामी इन्द्र (गाः अदेदिष्ट) हमें भी इन्द्रियोंकी शक्ति देवे, तथा (अन्तः) अन्दर रहनेवाले सारे (कृष्णान्) शत्रुओंको अपने (अरुषैः धामभिः गात्) चमकनेवाले तेजोंसे नष्ट कर दे, तथा (ऋतेन सूनृता दिशमानः) ऋतसे हमारी वाणियोंको प्रेरित करता हुआ (स्वाः विश्वाः दुरः अप अवृणोत्) हमारे सारे दुर्गुणोंको दूर करे ॥ २१ ॥

१ गो — गौ, वाणी, भूमि ।
२ अन्तः कृष्णान् अरुषैः धामभिः गात्— आन्तरिक शत्रुओंको तेजस्वी स्थानोंसे दूर कर ।
३ ऋतेन दिशमानः स्वाः विश्वाः दुरः अप अवृणोत्— सत्यसे प्रेरित होकर अपने सब दोष दूर कर ।

[३०२] हम (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस भरे हुए युद्धमें (शुनं नृतमं शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले, (उग्रं) वीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले तथा (धनानां सं जितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ २२ ॥

१ अस्मिन् भरे नृतमं उग्रं इन्द्रं ऊतये हुवेम— इस युद्धमें उत्तम नेता उग्रवीर इन्द्रको अपने संरक्षणके लिये बुलाते हैं ।

भावार्थ— पवित्र करनेवाले तथा सींचनेके साधन जलप्रवाहोंकी व्यवस्था सर्वत्र हो । इन जल प्रवाहोंके द्वारा हम दुःखोंसे पार उतर जाएं । हमारा उत्तम रीतिसे पालन हो । हे उत्तम रथवाले इन्द्र ! तू हिंसकोंसे हमारी रक्षा कर और हम शीघ्र ही गायोंके विजेता बनें ॥ २० ॥

इन्द्रियों पर अधिकार करके अपनी शक्ति बढानेवाला इन्द्र हमारी इन्द्रियोंको बलसे युक्त करे । हमारे शत्रुओंको अपने चमकनेवाले तेजोंसे नष्ट कर दे । और ऋतसे हमारी वाणियोंको प्रेरित करता हुआ हमारे सब दोषोंको दूर करे ॥ २१ ॥

हम इस जीवन संग्राममें युद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, हमारी प्रार्थनाओंको सुननेवाले, वीर और युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले तथा धनोंको जीतनेवाले इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ २२ ॥

[३२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३०३ इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंदिनं सवनं चारु यत् ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन् विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥ १ ॥

३०४ गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥ २ ॥

३०५ ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यंदिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥ ३ ॥

---

[३२]

अर्थ— [३०३] हे सोमपते इन्द्र) सोमके स्वामिन् इन्द्र ! (इमं सोमं पिब) इस सोमको पी, (यत्) क्योंकि यह (चारु माध्यन्दिनं सवनं ते) यह सुन्दर मध्याह्नकालीन यज्ञ तेरे लिए ही किया जा रहा है, हे (मघवन् ऋजीषिन्) ऐश्वर्यवान् और सोम प्रिय इन्द्र ! अपने (हरी इह विमुच्य) दोनों घोडोंको यहां छोडकर तथा उनके (शिप्रे प्रप्रुथ्य) मुखपरके थैलेको घाससे पूर्ण करके उन्हें (मादयस्व) हर्षयुक्त कर ॥ १ ॥

१ प्रप्रुथ्य— पूर्ण करना " प्रोथृ पर्याप्तौ "

२ शिप्रे— घोडोंके मुखपर दानोंसे भरा थैला रखते हैं ।

३ ऋजीषी— सोमवल्लीका रस निकालने पर जो शेष रहता है वह जिसको दिया जाता है ।

[३०४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मन्थिनं गवाशिरं शुक्रं सोमं पिब) अच्छी तरह कूटकर निकाले गए, गायके दूधमें मिलाये गए, चमकनेवाले सोम रसको पी, हम (ते मदाय ररिम) तेरे आनन्दके लिए सोम देते हैं, तू (ब्रह्मकृता मारुतेन गणेन) तेरी स्तुति करनेवाले मरुतोंके गणके साथ और (रुद्रैः) रुद्रोंके साथ (सजोषा) संयुक्त होकर (तृपत्) सोमसे तृप्त होता हुआ (आ वृषस्व) कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हो ॥ २ ॥

[३०५] (ये मरुतः ते शुष्मः) जिन मरुतोंने तेरे बलको (ये तविषीं) जिन मरुतोंने तेरी सेनाको तथा (ते ओजः) तेरे ओजको तेरी (अर्चन्तः अवर्धन्) स्तुति करते हुए बढाया, हे (वज्रहस्त) वज्रके समान मजबूत हाथोंवाले तथा (सु-शिप्र इन्द्र) सुन्दर ठोडीवाले इन्द्र ! उन (रुद्रेभिः सगणः) शत्रुओंको रुलानेवाले मरुतोंके साथ (माध्यन्दिने सवने पिब) इस मध्याह्नकालीन यज्ञमें सोम पी ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! यह यज्ञ तेरे लिए ही किया जा रहा है, अतः अपने घोडोंको हमारी ओर कर और हमारे पास आकर इन घोडोंको खोल दे और हमारे यज्ञमें बैठकर सोमपान कर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! यह सोमरस अच्छी तरह कूटकर निकाला गया और गायके दूधमें मिलाया गया है। इस कारण ये सोमरस तेजस्वी हो गए हैं । ये रस तुझे आनन्द देनेवाले हैं । अतः तू मरुतों और रुद्रोंके साथ यहां आकर सोमसे तृप्त हो और हमारी कामनाओंको तृप्त कर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिन मरुतोंने तेरे बलको बढाया तेरी सेनाको बढाया और स्तुतिके द्वारा तेरे तेजको बढाया, उन मरुतोंके साथ तू हमारे यज्ञमें आकर सोमपान कर ॥ ३ ॥

३०६ त इन्न्वस्य मधुमद् विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥ ४ ॥

३०७ मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥ ५ ॥

३०८ त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँ इव प्रासृजः सर्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥ ६ ॥

३०९ यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥ ७ ॥

अर्थ— [३०६] ये (मरुतः इन्द्रस्य शर्धः आसन्) जो मरुत इन्द्रके सैनिक थे, (ते इत्) उन्होंने ही (अस्य मधुमद् विविप्र) इस इन्द्रको मीठे शब्दोंमें प्रेरित किया, (येभिः इषितः) जिनसे प्रेरित होकर इन्द्रने (अमर्मणः) जिसके मर्मको कोई नहीं जान सकता था ऐसे और (मन्यमानस्य) अपनेको बहुत बडा माननेवाले (वृत्रस्य मर्म विवेद) वृत्रके मर्मको जान लिया ॥ ४ ॥

[३०७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (मनुः-वत्) मनुके यज्ञके समान मेरे (सवनं जुषाणः) यज्ञका सेवन करते हुए (शश्वते वीर्याय) अविनाशी बलको पानेके लिए (सोमं पिब) सोमको पी । हे (हरि-अश्व) हरि नामक घोडोंके स्वामी इन्द्र ! (यज्ञैः सरण्युभिः) पूजनीय और गति करनेवाले मरुतोंके साथ (सः) वह तू यज्ञमें (आ ववृत्स्व) आ तथा (अपः अर्णा सिसर्षि) जलोंके प्रवाहको छोडे ॥ ५ ॥

[३०८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं यत्) तूने जब (देवीः अपः वव्रिवांसं) तेजस्वी जलोंको रोक कर बैठे हुए (अ देवं) उत्तम गुणोंसे रहित (शयानं) सोते हुए (वृत्रं) वृत्रको (चरता वधेन जघन्वान्) वेगसे चलनेवाले वज्रसे मारा, तब (आजौ) युद्धमें जलोंको (सर्तवे) बहनेके लिए (अत्यान् इव) घोडोंके समान (प्र असृजः) मुक्त कर दिया ॥ ६ ॥

[३०९] (यज्ञियस्य यस्य) पूजाके योग्य जिस इन्द्रकी (महिमानं) महिमाको (प्रिये रोदसी) प्रिय द्युलोक व पृथ्वीलोक (न ममतुः) नहीं माप सके और (ममाते) ना ही कभी माप सकते हैं, ऐसे (बृहन्तं, ऋष्वं, अजरं) महान्, श्रेष्ठ, कभी बूढे न होनेवाले, (युवानं, वृद्धं इन्द्रं) सदा तरुण रहनेवाले तथा गुणोंमें सबसे बडे इन्द्रका हम (नमसा इत् यजामः) नमस्कारसे पूजन करते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— मरुत इन्द्रके सैनिक हैं, वे इन्द्रको मीठे पर ओजस्वी शब्दोंमें प्रेरित करते हैं । इससे प्रेरित होकर इन्द्र ऐसे वृत्रके मर्मको भी जान लेता है कि जिसका मर्म जानना बडा कठिन काम है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू मनुके यज्ञके समान ही मेरे यज्ञका भी सेवन कर और अविनाशी बलको प्राप्त करनेके लिए सोम पी । तू मरुतोंके साथ यज्ञमें आकर जलप्रवाहोंको मुक्त कर ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तूने तेजस्वी जलोंको रोक कर बैठे हुए और उत्तम गुणोंसे रहित वृत्रको वेगवान् वज्रसे मारा, और युद्धमें वृत्रको मारकर रोके हुए जल प्रवाहोंको बहनेके लिए घोडोंके समान मुक्त कर दिया ॥ ६ ॥

पूजाके योग्य इस इन्द्रकी महिमाको प्रिय द्युलोक और पृथ्वीलोक नहीं माप सके और न कभी माप ही सकेंगे । ऐसे महान् और सदा युवान रहनेवाले इन्द्रको हम प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

३१० इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥ ८ ॥
३११ अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥ ९ ॥
३१२ त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥ १० ॥
३१३ अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या क्षामवस्थाः ॥ ११ ॥

अर्थ—[३१०] (सु-दंसाः यः) उत्तम कर्म करनेवाले जिस इन्द्रने (इमां पृथिवीं उत द्यां) इस पृथिवीको तथा द्युलोकको (दाधार) धारण किया, तथा जिसने (सूर्यं उषसं जजान) सूर्यको और उषाको उत्पन्न किया, ऐसे (इन्द्रस्य) इन्द्रके (कर्म, सुकृता, पुरूणि व्रतानि) कर्म, उत्तम कर्म और बहुतसे व्रतोंको (विश्वे देवाः न मिनन्ति) सब देव भी नष्ट नहीं कर सकते ॥ ८ ॥

[३११] हे (अ-द्रोघ) द्रोह न करनेवाले इन्द्र ! तूने (जातः सद्यः) उत्पन्न होते ही (यत् सोमं अपिबः) जो सोम पिया, तथा (तवसः ते ओजः) तेरे बलवान् ओजको जो (द्याव न वरन्तः) द्यु आदि लोक हटा नहीं सकते (न अहा) दिन नहीं रोक सकते (मासाः न) महीने नहीं रोक सकते, तथा (शरदः न) शरद आदि ऋतुयें नहीं रोक सकती, (तत् तव महित्वं) वह तेरी महत्ता (सत्यं) यथार्थ ही है ॥ ९ ॥

[३१२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जातः सद्यः) उत्पन्न होते ही (परमे व्योमन्) परम आकाशमें रहकर (त्वं मदाय सोमं अपिबः) तूने आनन्दके लिये सोम पिया, (यत्) जिससे तू (द्यावापृथिवी आ विवेशीः) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें प्रविष्ट हुआ, और (अथ) बादमें (पूर्व्यः) प्राचीन तू (कारुधायाः अभवः) स्तोताओंका सहायक हुआ ॥ १० ॥

१ कारु-धायाः—स्तोताओंका सहायक

[३१३] हे (तुविजात) अनेक पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र ! (तव्यान्) बलशाली तूने (अर्णः परिशयानं) पानीको चारों ओरसे घेरकर सोनेवाले तथा (ओजायमानं) बलशाली (अहिं अहन्) अहि असुरको मारा । (यत्) जब तूने (अन्यया स्फिग्या क्षां अवस्थाः) अपने एक बाजूसे पृथिवीको थामा, (अध) तब (ते महित्वं) तेरे इस महत्वको (द्यौः न अनुभूद्) द्युलोकने अनुभव नहीं किया ॥ ११ ॥

भावार्थ— उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने इस पृथ्वी और द्युलोकको धारण किया और उसीने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया, ऐसे इन्द्रके उत्तम कर्मों और व्रतोंका उल्लंघन कोई भी देव नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही सोम पिया, और उससे जो इन्द्रका ओज बढा, उस ओजको, द्यु आदि लोक, दिन, मास, और ऋतुएं भी नष्ट नहीं कर सकीं, क्योंकि उस इन्द्रकी महिमा यथार्थ ही है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! उत्पन्न होते ही तूने परम आकाशमें रहकर सोम पिया, और उससे आनन्दित हुआ। इससे वह अपने सामर्थ्यसे द्युलोक और पृथिवीलोकमें प्रविष्ट हुआ। यहां इन्द्र बिजली है, जो अन्तरिक्षमें रहकर मेघस्थ जल रूपी सोमको पीती रहती है, और फिर उस बिजलीका तेज वर्षाजलके द्वारा इस पृथ्वी पर आता है । वही जल पृथ्वीमें प्रविष्ट होता है ॥ १० ॥

इस इन्द्रने पानीको घेरकर सोये हुए मेघरूपी बलशाली इन्द्रको मारा । उससे जलकी वर्षा हुई और वह पृथ्वी पर आकर गिरा, उससे पृथ्वीका स्तम्भन हुआ, पर वह वर्षाका जल द्युलोकमें नहीं जाता, इसलिये द्युलोक इन्द्रकी महिमाको नहीं जान पाता ॥ ११ ॥

३१४ यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भू–दुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन् यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥ १२ ॥

३१५ यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वा–गैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभि–र्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥ १३ ॥

३१६ विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद् यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥ १४ ॥

३१७ आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन् मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [३१४] हे (इन्द्र) इन्द्र! (यज्ञः ते वर्धनः भूत्) यज्ञ तुझे बढानेवाला हुआ, (उत) और (मियेधः) हवनके योग्य (सुतसोमः) तैय्यार किया गया सोम (प्रियः) तुझे प्रिय हो गया है। तू (यज्ञियः सन्) पूज्य होता हुआ (यज्ञेन यज्ञं अव) संगठनके द्वारा इस यज्ञकी रक्षा कर, और यह (यज्ञः) यज्ञ (अहिहत्ये) अहिको मारनेवाले युद्धमें (ते वज्रं आवत्) तेरे वज्रकी रक्षा करे ॥ १२ ॥

[३१५] (यः पूर्व्येभिः स्तोमेभिः वावृधे) जो प्राचीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, (यः मध्यमेभिः) जो मध्यकालीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, तथा जो (नूतनेभिः) नये ऋषियोंके स्तोत्रोंसे बढा, ऐसे (इन्द्रं) इन्द्रको (अवसा यज्ञेन) संरक्षण करनेवाले यज्ञसे स्तोता (अर्वाक् चक्रे) अपने समीप ले आया, मैं भी (नव्यसे सुम्नाय) नवीन सुखके लिए (ववृत्याम्) इन्द्रको अपने पास लाता हूं ॥ १३ ॥

[३१६] (यत् मा धिषणा जजान विवेष) जब मेरे अन्दर इच्छा उत्पन्न होती है और मेरे अन्दर व्याप्त हो जाती है, तब मैं (पार्यात् अह्नः पुरा स्तवै) युद्धके दिनके पहले इन्द्रकी स्तुति करता हूं (यथा) जिससे वह (नः) हमें (अंहसः पीपरत्) पापोंसे पार कर देता है। (नावा यान्तं इव) जिस प्रकार नावसे जानेवालेको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इस इन्द्रको (उभये हवन्ते) सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य बुलाते हैं ॥ १४ ॥

१ नः अंहसः पीपरत्— हमें पापसे पार कर देता है।

२ नावा यान्तं इव उभये हवन्ते— जिस प्रकार नावसे जानेवालेको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों मनुष्य बुलाते हैं।

[३१७] (आपूर्णः कलशः अस्य पिबध्यै) सोमसे भरा हुआ यह कलश इस इन्द्रके पीनेके लिए है, इससे मैं (सेक्ता कोशं इव) जैसे सींचनेवाला खेतको सींचता है, उसी प्रकार इन्द्रको (सु+आहा सिसिचे) समर्पण पूर्वक सींचता हूं। (प्रियाः सोमासः) प्रिय सोम (मदाय) आनन्दके लिए (इन्द्रं प्रदक्षिणित् अभि आववृत्रन्) इन्द्रके पास अच्छी तरह पहुंचें ॥ १५ ॥

भावार्थ— प्राचीन, मध्यकालीन और नवीन ऋषियोंके स्तोत्रोंसे यह इन्द्र वृद्धिको प्राप्त हुआ, यज्ञ करनेवाले स्तोता गण इसे अपने समीप बुलाते हैं, इसलिए सुखको चाहनेवाला मैं भी अपनी रक्षाके लिए इन्द्रको अपने पास बुलाता हूं ॥ १२ ॥

जब उपासक इन्द्र पर श्रद्धा रखता है और श्रद्धापूर्वक वह इन्द्रकी स्तुति करता है, तब इन्द्र उपासकको पापोंसे पार कर देता है। जिस प्रकार नदीको पार करनेको इच्छा करनेवाले मनुष्य दोनों किनारोंसे मल्लाहको आवाज देते हैं, उसी प्रकार सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य इस इन्द्रको बुलाते हैं ॥ १३ ॥

जब मनुष्य आनन्दमें होता है और इन्द्रकी स्तुति करता है, तब वह इन्द्र आकर उसकी रक्षा करता है। वह सभी तरहके मनुष्योंका रक्षक है, सुखी और दुःखी सभी प्रकारके जन उससे अपनी रक्षाकी प्रार्थना करते हैं ॥ १४ ॥

मैं यह सोमसे भरे हुए पात्र इन्द्रके लिए आनन्दसे समर्पित करता हूं, इस सोमको उत्तम रीतिसे पिए ॥ १५ ॥

३१८ न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धु—र्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा—ऽऽदृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥ १६ ॥

३१९ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र—मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १७ ॥

[३३]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः; ४, ६, ८, १० नद्यः ऋषिकाः । देवता- नद्यः; ४, ८, १० विश्वामित्रः; ६, ७ इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १३ अनुष्टुप् ।]

३२० प्र पर्वतानामुशती उपस्था—दश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

अर्थ—[३१८] हे इन्द्र ! (इत्था) इस प्रकार (यत्) जब तूने (सखिभ्यः इषितः) मित्रोंसे प्रेरित होकर (दृळ्हं चित् गव्यं ऊर्वं) बहुत शक्तिशाली तथा किरणोंको छिपानेवाले मेघको (आ अरुजः) फोडा, तब (त्वा) तुझे (गभीरः सिन्धुः) गंभीर समुद्र—अन्तरिक्ष भी (न) नहीं रोक सका तथा (परि सन्तः अद्रयः न वरन्त) चारों ओर स्थित पर्वत भी नहीं रोक सके ॥ १६ ॥

ऊर्वः—मेघ, बडवानल,

[३१९] हम (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस बडे संग्राममें (शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, अत्यन्त कुशल नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं) वीर (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाले (संजितं धनानां) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ १७ ॥

[३३]

[३२०] (विषिते हासमाने अश्वे इव) बन्धनसे मुक्त होनेके कारण प्रसन्नतासे हिनहिनाती हुई दो घोडियोंकी तरह अथवा (रिहाणे शुभ्रे मातरा गावा इव) अपने बछडोंको चाटनेवाली दो सफेद वर्णवाली माता गायोंके समान (विपाट् शुतुद्री) विपाट् और शुतुद्री ये दोनों नदियां (पर्वतानां) पहाडके (उपस्थात्) पाससे निकलकर (उशती) समुद्रसे मिलनेकी इच्छा करती हुईं (पयसा जवेते) पानीसे भरपूर होकर वेगसे बही जाती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—हे इन्द्र ! जब तूने मित्रोंसे प्रेरित होकर अत्यन्त शक्तिशाली और किरणोंको अदृश्य करनेवाले मेघको तोडा, तब तेरी शक्तिका मुकाबला न अन्तरिक्ष ही कर सका और न पर्वत ही ॥ १६ ॥

हम इस बडे जीवन संग्राममें वीर, श्रेष्ठ नेता और प्रार्थनाको सुननेवाले, शत्रुको मारनेवाले धन विजेता इन्द्रको अपने संरक्षणके लिए बुलाते हैं ॥ १७ ॥

यह सूक्त संवादात्मक है। कुशिक पुत्र विश्वामित्र घूमते घामते विपाट् और शुतुद्री नदियोंके किनारे पहुंचे। उन नदियोंमें अगाध जल था। अतः नदियोंको पार करनेकी इच्छा करनेवाले विश्वामित्रने नदियोंसे प्रार्थना की। प्रथमके तीन मंत्रों द्वारा विश्वामित्र नदियोंकी स्तुति करते हैं। विपाट् (आधुनिक व्यास) और शुतुद्री (आधुनिक सतलज) ये दोनों नदियां पहाडसे निकलकर पानीसे भरपूर होकर वेगसे समुद्रकी तरफ उसी प्रकार दौडी जा रही हैं, जिस प्रकार दो घोडियां बन्धनसे मुक्त होने पर प्रसन्नताके कारण हिनहिनाती हुईं इधर उधर वेगसे भागती हैं; अथवा दो गायें अपने बछडोंकी तरफ वेगसे दौडती हैं ॥ १ ॥

३२१ इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥
३२२ अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥
३२३ एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥
३२४ रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ऽवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥ ५ ॥

अर्थ— [३२१] हे नदियो ! (इन्द्रेषिते) इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर (सं आराणे) एक दूसरेके अनुकूल चलती हुई तथा (ऊर्मिभिः पिन्वमाने) अपनी लहरोंसे आसपासके प्रदेशोंको तृप्त करती हुई तथा (प्रसवं भिक्षमाणे) इन उपजाऊ प्रदेशोंमें धान्यकी उत्पत्तिको उत्तम बनाती हुई (शुभ्रे) तेजस्वी तुम दोनों (रथ्या इव) रथसे जानेवाले रथियोंके समान (समुद्रं अच्छा याथः) समुद्रकी तरफ सीधी जाती हो । (वां) तुममेंसे (अन्या) एक (अन्यां अपि एति) दूसरीसे मिलती है ॥ २ ॥

[३२२] जिस प्रकार (मातरा वत्सं रिहाणे इव) दो गायें बछडेको चाटती हैं, उसी प्रकार ये दोनों नदियां (समानं योनिं अनु संचरन्ती) एक ही उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ दौडती जाती हैं । इनमें मैं (मातृतमां सिन्धुं अच्छ अयासं) अत्यन्त प्यारसे युक्त तथा समुद्रकी तरफ बहनेवाली शुतुद्रीके पास गया और (उर्वीं सुभगां) अति विशाल और उत्तम ऐश्वर्यवाली (विपाशं अगन्म) विपाशाके पास भी गया ॥ ३ ॥

[३२३] (वयं) हम नदियां (एना पयसा) इस पानीसे (पिन्वमानाः) प्रदेशोंको तृप्त करती हुई (देवकृतं) देवके बनाये गए (योनिं अनु चरन्तीः) स्थानकी तरफ चली जा रही हैं । (सर्गतक्तः प्रसवः न वर्तवे) बहनेके काममें रत रहनेवाली हम अपने उद्योगसे कभी विराम नहीं लेती फिर. (विप्रः) यह ब्राह्मण (नद्यः) हम नदियोंकी (किं युः जोहवीति) क्यों स्तुति कर रहा है ? ॥ ४ ॥

[३२४] (अवस्युः) अपनी रक्षाकी इच्छा करनेवाला (कुशिकस्य सूनुः) कुशिकका पुत्र मैं (बृहती मनीषा) उत्तम स्तुतिसे (सिन्धुं अच्छ अह्वे) नदियोंकी प्रार्थना करता हूं । हे (ऋतावरीः) जलसे भरपूर नदियो ! (मे सोम्याय वचसे) मेरी नम्र प्रार्थनाको मानकर (एवैः) अपनी गतिको (मुहूर्तं उप रमध्वं) थोडेसे क्षणके लिए रोक दो ॥ ५ ॥

भावार्थ— इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर ये दोनों नदियां आपसमें मिलकर बहती हैं और अपने जलसे आसपासके प्रदेशोंको उपजाऊ बनाती हुई चलती हैं, और इन नदियोंके कारण उन प्रदेशोंमें धान्यकी उत्पत्ति बहुत होती है । इस प्रकार प्रदेशोंको उर्वरा बनाती हुई ये नदियां समुद्रकी तरफ दौडती चली जाती हैं ॥ २ ॥

जिस प्रकार दो गायें अपने बछडेको प्रेमसे चाटनेके लिए उसकी तरफ भागती हैं, उसी तरह ये दोनों नदियां अपने एक ही उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ भागती हैं । ये दोनों ही माताके समान लोगोंका पालन करती हैं, विशाल और ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं ॥ ३ ॥

ये नदियां अपने जलसे आसपासके प्रदेशको उर्वरा बनाती हुई परमात्माके द्वारा उद्दिष्ट स्थान समुद्रकी तरफ बहती चली जाती हैं, ये हमेशा बहती रहती हैं, इनका बहना कभी बन्द नहीं होता । ये कभी विश्राम नहीं लेती ॥ ४ ॥

इस मंत्रमें विश्वामित्र नदियोंसे अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए प्रार्थना करते हैं– हे नदियो ! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं । मैं पार उतरना चाहता हूं, अतः तुम मेरी नम्र प्रार्थनाको सुनो और थोडी देरके लिए बहना बन्द कर दो ताकि मैं पार उतर जाऊं ॥ ५ ॥

३२५ इन्द्रो॑ अ॒स्माँ अ॑रद॒द् वज्र॑बाहु॒रपा॑हन् वृ॒त्रं प॑रि॒धिं न॒दीना॑म् ।
दे॒वो॑ऽनयत् सवि॒ता सु॑पा॒णिस्तस्य॑ व॒यं प्र॑स॒वे या॑म उ॒र्वीः ॥ ६ ॥
३२६ प्र॒वाच्यं॑ शश्व॒धा वी॒र्यं१॒॑ तदिन्द्र॑स्य॒ कर्म॒ यदहिं॑ वि॒वृश्च॑त् ।
वि वज्रे॑ण परि॒षदो॑ जघा॒नाऽऽय॒न्नापोऽय॑नमि॒च्छमा॑नाः ॥ ७ ॥
३२७ ए॒तद् वचो॑ जरित॒र्मापि॑ मृष्ठा॒ आ यत् ते॒ घोषा॒नुत्त॑रा यु॒गानि॑ ।
उ॒क्थेषु॑ कारो॒ प्रति॑ नो जुषस्व॒ मा नो॒ नि कः॑ पुरुष॒त्रा नम॑स्ते ॥ ८ ॥
३२८ ओ षु स्व॑सारः का॒रवे॑ शृणोत य॒यौ वो॑ दू॒रादन॑सा॒ रथे॑न ।
नि षू न॑मध्वं॒ भव॑ता सुपा॒रा अ॑धोअ॒क्षाः सि॑न्धवः स्रो॒त्याभिः॑ ॥ ९ ॥

अर्थ— [३२५] (नदियोंने कहा) हे विश्वामित्र ! (वज्रबाहुः इन्द्रः अस्मान् अरदत्) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्रने हमें खोदा, तथा (नदीनां परिधिं) नदियोंको सीमित करनेवाले (वृत्रं) वृत्रको (अपाहन्) मारा। (सविता सु-पाणिः देवः) सबको उत्पन्न करनेवाला, उत्तम हाथवाला, तेजस्वी इन्द्र हमें (अनयत्) आगे ले गया, अतः (वयं) हम (तस्य प्रसवे) उसकी आज्ञामें (उर्वीः) पानीसे परिपूर्ण होकर (याम) जाती हैं ॥ ६ ॥

अरदत्— खोदा, " रदतिः खनतिकर्माः "

[३२६] (यत् अहिं विवृश्चत्) इन्द्रने जो अहि राक्षसको मारा, (इन्द्रस्य तत् कर्म वीर्यं) इन्द्रका वह कर्म और बल (शश्वधा प्रवाच्यं) अनेक तरहसे वर्णन करने योग्य है। जब इन्द्रने (वज्रेण) अपने वज्रसे (परि-सदः) चारों ओर स्थित असुरोंको (विजघान) मारा, तब (आपः) जल प्रवाह (अयनं इच्छमानाः) अपने स्थान समुद्रकी इच्छा करते हुए (आयन्) बहने लगे ॥ ७ ॥

[३२७] हे (जरितः) स्तोता ! (ते एतत् वचः) अपनी यह स्तुति (मा अपि मृष्ठाः) कभी भूलना मत। (यत्) क्योंकि (उत्तरा युगानि) आगे आनेवाले समयमें (घोषान्) यह स्तुति प्रसिद्ध होगी। हे (कारो) स्तुति करनेवाले ! (उक्थेषु नः प्रति जुषस्व) यज्ञोंमें हमारी प्रशंसा कर, (पुरुषत्रा) पुरुषोंके द्वारा प्रवर्तित कर्मोंमें (नः मा नि कः) हमारा अनादर मत कर। (ते नमः) तुझे नमस्कार है ॥ ८ ॥

[३२८] हे (स्वसारः सिन्धवः) भगिनी रूप नदियो ! तुम (सु शृणोत) मेरी बात अच्छी तरह सुनो, मैं (वः) तुम्हारे पास (दूरात् अनसा रथेन ययौ) बहुत दूरसे गाडी और रथसे आया हूं, अतः तुम (कारवे) स्तुति करनेवाले मेरे लिये (स्रोत्याभिः नि सु नमध्वं) अपने प्रवाहोंके साथ अच्छी तरह झुक जाओ, (सुपाराः) आसानीसे पार होने योग्य हो जाओ, (अधो अक्षाः) रथकी धुरासे भी नीचे हो जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— विश्वामित्रकी प्रार्थना सुनकर नदियां कहती हैं- हे विश्वामित्र ! हमें तो इन्द्रने खोदकर बहाया है उसीने हमारा मार्ग निश्चित किया है। वृत्रने हमें सीमित करनेका प्रयत्न किया था, पर इन्द्रने उसे मारकर फिर हमें प्रवाहयुक्त बनाया। हम उसीकी आज्ञामें बह रही हैं, अतः हमारी गति कैसे रुक सकती है ? ॥ ६ ॥

जब असुरोंने नदियोंको सीमित कर दिया, तब नदियोंका प्रवाह रुक गया, तो इन्द्रने नदियोंको सीमित करनेवाले असुरोंको मारा और जलप्रवाहोंको समुद्रकी तरफ बहनेके लिए छोड दिया, यह उसका कर्म प्रशंसनीय है। अतः जब इन्द्र हमारे रुकनेके विरुद्ध है, तो उसकी आज्ञामें रहनेवाली हम तुम्हारे लिए किस तरह अपनी गति रोक सकती हैं ? ॥ ७ ॥

नदियां कहती हैं- हे विश्वामित्र ! हमारे इस संवादको भूलना मत, क्योंकि आगे आनेवाले समयमें यह संवाद प्रसिद्ध होगा, यज्ञमें हमारी स्तुति करना, कभी अनादर मत करना। नदियोंका अनादर नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥

विश्वामित्र कहते हैं- हे नदियो ! मैं बहुत दूरसे गाडी और रथपर बैठकर तुम्हारे पास आया हूँ, अतः तुम नीची हो जाओ, इतनी झुक जाओ कि तुम्हारे प्रवाह मेरे रथकी नाभिसे भी नीचे हो जाए, ताकि मैं आसानीसे तुम्हें पार कर जाऊं ॥९॥

३२९ आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥
३३० यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयु र्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादहः प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् । ॥ ११ ॥
३३१ अतारिषुर्भरता गव्यवः स मभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥
३३२ उद् व ऊर्मिः शम्या ह न्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसा ऽघ्न्यौ शूनमारताम् । ॥ १३ ॥

अर्थ— [३२९] हे (कारो) स्तोता ! (ते वचांसि शृणवाम) हम तेरी प्रार्थनाओंको सुनती हैं, कि तुम (दूरात्-अनसा रथेन आ ययाथ) दूरसे गाडी और रथसे आए हो। इसलिये जिस प्रकार (पीप्याना योषा इव) बच्चेको दूध पिलानेवाली माता नम्र हो जाती है, अथवा (कन्या मर्याय शश्वचै) कोई कन्या पुरुषको आलिंगन देनेके लिये नम्र हो जाती है, उसी प्रकार हम (ते नि नंसै) तेरे लिए झुक जाती हैं ॥ १० ॥

[३३०] हे (अंग) प्रिय नदियों ! (यत्) जब (भरतः) भरणपोषण करनेवाले मनुष्य (त्वा सन्तरेयुः) तुम्हें पार करना चाहें, तब (गव्यन् इषितः) तुम्हें पार करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर अथवा (इन्द्रजूतः) इन्द्रसे प्रेरित होकर (ग्रामः) उन मनुष्योंका समूह (अहः) प्रतिदिन (सर्गतक्तः प्रसवः) बहनेवाले प्रवाहको (अर्षात्) पार कर जाए । मैं (यज्ञियानां वः सुमतिं आ वृणे) पूजाके योग्य तुम्हारी उत्तम बुद्धिको मांगता हूँ ॥ ११ ॥

[३३१] (गव्यवः भरताः अतारिषुः) पार जानेकी इच्छावाले तथा भरणपोषण करनेवाले मनुष्य नदियोंके पार उतर गए, (विप्रः नदीनां सुमतिं स अभक्त) ज्ञानी विश्वामित्रने नदियोंकी उत्तम बुद्धिको भी प्राप्त कर लिया । अब, हे नदियो ! (इषयन्तीः सु राधाः) उत्तम अन्नोंको पैदा करके उत्तम ऐश्वर्य बढानेवाली तुम (वक्षणाः आ पिन्वध्वं) नहरोंको पानीसे भरपूर भर दो, (आ पृणध्वं) अच्छी तरह पूर्ण कर दो, और (शीभं यात) वेगसे बहो ॥ १२ ॥

[३३२] हे नदियों ! (वः ऊर्मिः शम्याः हन्तु) तुम्हारी लहरें यज्ञस्तम्भसे टकराती रहें, (आपः योक्त्राणि- मुंचत) तुम्हारे जल बैलेके जुओंको मुक्त करते रहें और इस प्रकार हे (अदुष्कृतौ वि एनसा अघ्न्यौ) कभी दुष्टकर्म न करनेवाली, पाप रहित और हिंसाके अयोग्य नदियो ! तुमसे (शूनं अरतां) समृद्धि दूर न जाये ॥ १३ ॥

भावार्थ— नदियां कहती हैं- हे स्तोता ! हमने तेरी प्रार्थनाओंको सुन लिया है, हम यह भी जानती हैं कि तुम दूरसे गाडी और रथसे आए हो, इसीलिए जिस प्रकार बच्चेको दूध पिलानेवाली माता नम्र हो जाती है, अथवा जैसे कोई कन्या पुरुषको आलिंगन देनेके लिए नम्र होती है, उसी प्रकार हम तेरे लिए झुक जाती हैं ॥ १० ॥

विश्वामित्र कहते हैं- हे नदियो ! जब भरणपोषण करनेवाले मनुष्य तुम्हें पार करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर और इन्द्रसे प्रेरित होकर तुम्हें पार करना चाहें, तब वे तुम्हारे प्रवाहोंको पार कर लें । तुम सभी पूजाके योग्य हो, अतः मैं तुमसे तुम्हारी उत्तम बुद्धियोंको मांगता हूँ ॥ ११ ॥

पार जानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्य पार हो गए हैं और ज्ञानी विश्वामित्र भी तुम्हारी उत्तम बुद्धियोंको प्राप्त कर चुके हैं। अतः, हे नदियो ! अब तुम उत्तम अन्नोंको उत्पन्न करके लोगोंके ऐश्वर्योंको बढाती हुई बहो और नहरोंको पानीसे अच्छी तरह भरकर उन्हें पूर्ण कर दो और वेगसे बहती रहो ॥ १२ ॥

हे नदियो ! तुम्हारी लहरें यज्ञस्तंभसे टकराती रहें, अर्थात् तुम्हारे किनारों पर सदा यज्ञ चलते रहें, तुम्हारे जल बैलके जुओंको मुक्त करते रहें, अर्थात् तुम्हारे किनारे पर कृषक खेती करते रहें, तुम निष्पाप होकर हमेशा समृद्धिको प्राप्त होओ। नदियोंकी हिंसा नहीं होनी चाहिए, उनके पानीका दुरुपयोग करना ही उनकी हिंसा है ॥ १३ ॥

[३४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३३३ इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कै—र्विदद् वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद् रोदसी उभे ॥ १ ॥

३३४ मखस्य ते तविषस्य प्र जूति—मियर्मि वाचममृताय भूषन् ।
इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा ॥ २ ॥

३३५ इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद् वर्पणीतिः ।
अहन् व्यंसमुशधग्वने—ष्वाविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम् ॥ ३ ॥

---

[३४]

अर्थ—[३३३] (पूः भित्) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले तथा (विदद् वसुः) शत्रुके धनोंको प्राप्त करनेवाले (इन्द्रः) इन्द्रने (शत्रून् वि दयमानः) शत्रुओंको मारते हुए (दासं) दास नामक असुरको भी (अर्कैः) अपने तेजोंसे (आतिरद्) मार डाला। तब (ब्रह्मजूतः तन्वा वावृधानः) स्तुतियोंसे प्रेरित होकर, शरीरसे बढते हुए (भूरिदात्रः) बहुतसे धनोंको धारण करनेवाले इन्द्रने (उभे रोदसी आपृणद्) दोनों द्युलोक व पृथ्वीलोकको पूर्ण किया ॥ १ ॥

[३३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! मैं तुझे (भूषन्) अलंकृत करता हुआ, (मखस्य ते विषस्य ते) पूजनीय और बलशाली तुझे (जूतिं वाचं) प्रेरणा देनेवाली स्तुतिको (अमृताय इयर्मि) अमृतकी प्राप्तिके लिए बोलता हूं। तू (मानुषीनां क्षितीनां) मानवी प्रजाओंके (उत) और (दैवीनां विशां) दैवी प्रजाओंके (पूर्वयावा असि) आगे चलनेवाला है ॥ २ ॥

[३३५] (शर्धनीतिः इन्द्रः) उत्साहको बढानेवाली नीतिसे युक्त इन्द्रने (वृत्रं अवृणोत्) वृत्रको रोका, (वर्पणीतिः) कुशलतासे कार्य करनेवाले इन्द्रने (मायिनां अमिनात्) माया करनेवाले असुरोंको भी मारा, (उशधक्) शत्रुको मारनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रने (वनेषु) पर्वतोंमें छिपे हुए असुरोंके (वि-अंसं) अंगको काटकर उन्हें (अहन्) मारा तथा (राम्याणां धेनाः) अन्धकारमें छिपाई गई गायोंको (आविः अकृणोद्) प्रकट किया ॥ ३ ॥

रम्यां— रात्री ।
शर्ध— उत्साह ।

भावार्थ— शत्रुओंके नगरोंको तोडनेवाले तथा उनके धनोंको प्राप्त करनेवाले इन्द्रने शत्रुओंका मारते हुए दास नामक असुरको भी अपने तेजसे नष्ट कर डाला ॥ १ ॥

यह इन्द्र एक उत्तम नेता होनेके कारण सब मानवी प्रजाओं और दैवी प्रजाओंके आगे चलता हुआ उनकी हर तरहसे रक्षा करता है। इसलिए वह पूजनीय और बलशाली होनेके कारण स्तुतिका अधिकारी है। उसकी स्तुति अमृतको प्रदान करनेवाली है ॥ २ ॥

इन्द्रकी नीति और व्यवहार उत्साहको बढानेवाला है, इस उत्साहसे युक्त होकर वह वृत्रासुरको मारता है। वह माया करनेवाले असुरोंको भी मारता है। वह शत्रुओंको समूल नष्ट करता है ॥ ३ ॥

×

३३६ इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्ना मविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

३३७ इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद् धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

३३८ महो महानि पनयन्त्यस्ये न्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान् त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३३६] (स्वर्षाः इन्द्रः) सुखको देनेवाले इन्द्रने (अहानि जनयन्) दिनोंको उत्पन्न करते हुए (उशिग्भिः) युद्धकी इच्छा करनेवाले मरुतोंके साथ (पृतनाः) शत्रुकी सेनाको (अभिष्टिः) घेरकर (जिगाय) उन्हें जीता। बादमें (मनवे) मनुके लिए (अन्हां केतुं) दिनोंको बतानेवाले सूर्यको (प्र आ रोचयत्) प्रकाशित किया, तथा (बृहते रणाय) महान् संग्रामके लिए (ज्योतिः अविन्दत्) तेज प्राप्त किया ॥ ४ ॥

[३३७] (इन्द्रः) इन्द्र (पुरूणि नर्या दधानः) बहुतसे पराक्रमोंको धारण करते हुए (नृवत्) नेताके समान (बर्हणाः तुजः) बहुत बढे हुए हिंसकोंकी सेनामें (आ विवेश) घुस गया, तथा उसने (जरित्रे) स्तुति करनेवालेके लिए (इमाः धियः) इन बुद्धियोंको (अचेतयत्) सचेत किया और (आसां) इन बुद्धियोंके (इमं शुक्रं वर्णं) इस तेजस्वी वर्णको (अतिरत्) और बढाया ॥ ५ ॥

१ इन्द्रः पुरूणि नर्या दधानः नृवत् बर्हणा तुजः आविवेश— इन्द्र बहुत पराक्रम करके, नेताके समान, बडी शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट हुआ।
२ इमाः धियः अचेतयत्— बुद्धियोंको सचेत किया।
३ शुक्रं वर्णं अतीतरत्— शुद्ध तेजको बढाया।

[३३८] (अस्य महः इन्द्रस्य) इस महान् इन्द्रके (पुरूणि महानि सुकृता कर्म) बहुतसे बडे बडे कर्म (पनयन्ति) प्रशंसित होते हैं, (अभिभूति-ओजाः) शत्रुको हरानेमें समर्थ इस इन्द्रने (वृजनेन) अपने बलसे (मायाभिः) कुशलतापूर्वक (वृजिनान् दस्यून् सं पिपेष) दूर रखे जाने योग्य दस्युओंको अच्छी तरह पीस दिया ॥ ६ ॥

१ महः इन्द्रस्य महानि सुकृता कर्म— बडे इन्द्रके बडे उत्तम कर्म प्रसिद्ध हैं।
२ अभिभूति-ओजाः वृजनेन मायाभिः वृजिनान् दस्यून् सं पिपेष— सामर्थ्यवान् नेताने अपने बलसे और कुशलतासे दुष्ट शत्रुओंको मारा।

भावार्थ— इन्द्र सुखका देनेवाला, दिनोंको उत्तम बनानेवाला और मरुतोंकी सहायतासे शत्रुसेनाको मारनेवाला है। वही इन्द्र मनुष्यके कल्याणके लिए सूर्यको उत्पन्न करता है और तेजस्वी होता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र अत्यन्त पराक्रमी होनेके कारण उत्तम नेताके समान शत्रुओंकी सेनामें घुसकर उन्हें नष्टभ्रष्ट करता है। वह मानवी बुद्धियोंको ज्ञानसे युक्त करता है। और उन्हें तेजसे युक्त करता है ॥ ५ ॥

इस इन्द्रके सभी कर्म महान् होनेके कारण प्रशंसनीय होते हैं। यह अभिभवन शील है, वीरसे वीर शत्रु पर भी आक्रमण करके उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

३३९ युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥
३४० सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमा-मिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥
३४१ ससानात्यॉं उत सूर्यं ससाने-न्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
३४२ इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचो ऽथाभवद् दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [३३९] (चर्षणि प्राः, सत् पतिः इन्द्रः) मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, सज्जनोंके पालक इन्द्रने (मह्ना) अपने बलसे (युधा) युद्धके द्वारा (वरिवः) शत्रुओंके धनको (देवेभ्यः चकार) देवोंका मिले ऐसा किया (विप्राः कवयः) बुद्धिमान् स्तोता (विवस्वतः सदने) यजमानके घरमें (अस्य तानि) इस इन्द्रके उन कर्मोंकी (उक्थेभिः) स्तोत्रों द्वारा (गृणन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥ ७ ॥

१ इन्द्रः चर्षणिप्राः सत्पतिः— इन्द्र मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और सज्जनोंका पालक है ।

[३४०] (यः) जिस इन्द्रने (इमां द्यां उत पृथिवीं) इस द्युलोक व पृथ्वीलोकको (ससान) दान दिया, उस (सत्रासाहं) शत्रुओंको जीतनेवाले, (वरेण्यं) वरण करने योग्य, (सहो दां) बलदेनेवाले, (देवीः अपः) उत्तम कर्मोंको करके (स्वः ससवांसं) सुख प्राप्त करनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रको (धी-रणासः) बुद्धिके साथ रमण करनेवाले विद्वान् (अनुमदन्ति) आनन्दित करते हैं ॥ ८ ॥

[३४१] (इन्द्रः) इन्द्रने (अत्यान् ससान) घोडे दानमें दिये (सूर्यं ससान) सूर्यको दिया, (पुरुभोजसं गां ससान) बहुत अन्न देनेवाला गाय प्रदान की, (हिरण्ययं उत भोगं ससान) अनेक प्रकार सोनेके अलंकार और भोग प्रदान किए, तथा (दस्यून् हत्वी) दस्युओंको मारकर (आर्यं वर्णं प्र आवत्) श्रेष्ठ वर्णोंकी रक्षा की ॥ ९ ॥

१ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्— दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की । दस्यु और आर्य ये दो प्रकारके लोग थे, इनमेंसे दस्युओंका मारा और आर्योंकी सुरक्षाकी ।

[३४२] (इन्द्रः) इन्द्रने (ओषधीः असनोत्) ओषधियां प्रदान की, (अहानि) दिन प्रदान किए (वनस्पतीः असनोत्) वनस्पतियां प्रदान कीं और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्षको प्रदान किया । बादमें (वलं विभेद) वलासुरको मारा, (वि वाचः नुनुदे) बहुत ज्यादा बकबक करनेवालोंको दूर किया, (अथ) और वह (अभिक्रतूनां) घमण्ड करनेवालोंका (दमिता) दमन करनेवाला हुआ ॥ १० ॥

१ विवाचः नुनुदे— निरर्थक बकवास करनेवालोंको दूर किया ।

२ अभिक्रतूनां दमिता— घमण्डी लोगोंका दमन किया ।

भावार्थ— इन्द्र मनुष्योंकी कामनाओंको पूर्ण, करनेवाला और सज्जनोंका पालक है । यह अपने बलसे युद्धमें शत्रुओंको मारकर उनके धनको विद्वानों देवोंको देता है । उसके इस कर्मकी प्रशंसा हर बुद्धिमान् जन करता है ॥ ७ ॥

ऐश्वर्यवान् देवने मनुष्योंके हितके लिए उन्हें यह द्युलोक और पृथ्वीलोक प्रदान किए । इन दोनोंसे प्राणियोंका भरण पोषण होता है । बुद्धिमान् जन उसके इस माहात्म्यको देखकर कृतज्ञतापूर्वक उसकी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

इन्द्रने दुष्टोंका मारकर आर्योंकी रक्षा की । राष्ट्रमें दुर्जनोंका नाश और श्रेष्ठोंकी रक्षा अवश्य होनी चाहिए । इन्द्रने दुष्टोंको मारकर आर्योंको गाय, स्वर्ण और अन्य अनेक प्रकारके भोग प्रदान किए । इस प्रकार श्रेष्ठ वर्णोंकी रक्षा की ॥ ९ ॥

इन्द्रने प्राणियोंके हितके लिए ओषधियां प्रदान कीं, दिन प्रदान किए, वनस्पतियां प्रदान कीं, अन्तरिक्ष बनाया, बलासुरको मारा, बकवास करनेवालोंको नष्ट किया, और घमण्डियोंका दमन किया ॥ १० ॥

३४३ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

[३५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३४४ तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥ १ ॥
३४५ उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद् यथा संभृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥ २ ॥
३४६ उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥ ३ ॥

---

[३४३] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस बडे संग्राममें हम (शुनं नृतमं, शृण्वन्तं) युद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

[३५]

[३४४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (हरी युज्यमाना) दो घोडे जिसमें जुते हुए हैं ऐसे (रथे) रथमें (नियुतः वायुः न) नियुत नामक घोडोंवाले वायुके समान (आ तिष्ठ) बैठ, और (नः अच्छ आयाहि) हमारे पास सीधा आ, (अस्मे अभिसृष्टः) हमारे द्वारा दिए गए (अन्धः पिबासि) सोमरूपी अन्नको पी, हम इस सोमको (ते मदाय) तेरे आनन्दके लिए (स्वाहा ररिम) समर्पणपूर्वक देते हैं ॥ १ ॥

[३४५] (पुरुहूताय) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रके लिए उसके (रथस्य) रथकी (धूर्षु) धुरामें (अजिरा, सप्ती हरी) वेगसे दौडनेवाले, वेगवाले दो घोडोंको उस प्रकार (उप युनज्मि) जोडता हूँ, (यथा) जिससे वह रथ (द्रवत्) भागे । वे घोडे (इन्द्रं) इन्द्रको (विश्वतः चित्) चारों ओरसे (इमं संभृतं यज्ञं) इस अच्छी तरह सामग्रीसे भरे यज्ञकी ओर (आ वहात) ले आवें ॥ २ ॥

[३४६] हे (वृषभ, स्वधावः) बलवान् और अन्नवान् इन्द्र ! तू (वृषणा तपुः-पा) बलवान् और शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले घोडोंको (उप नयस्व) पास ले आ, (उत) और (ईं अव) इस यजमानकी रक्षा कर । अपने (शोणा अश्वा) लाल रंगके घोडोंको (इह वि मुंच) यहां इस यज्ञ स्थानमें खोल दे और वे (ग्रसेतां) घास खावें, और तू भी (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः धानाः अद्धि) उत्तम भोजन खा ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ यज्ञमें युद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! हम इस उत्साहप्रद सोमरसको तेरे लिए निचोडते हैं, इसलिए तू अपने रथपर बैठकर हमारे पास वेगपूर्वक आ और हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसको पी ॥ १ ॥

मैं बहुतोंके द्वारा स्तुत्य इन्द्रके रथमें वेगसे दौडनेवाले घोडोंको जोडता हूँ, ताकि वह रथ शीघ्रतासे भाग सके । वे घोडे इन्द्रको उत्तम सामग्रीसे भरपूर हमारे यज्ञकी तरफ ले आवें ॥ २ ॥

इन्द्र स्वयं भी बलवान् और अन्नवान् है और उसके घोडे भी बलशाली और पुष्ट हैं, उन घोडोंसे युक्त रथपर बैठकर वह यजमानके पास जाकर उनकी रक्षा करे ॥ ३ ॥

३४७ ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ ४ ॥

३४८ मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन् यजमानासो अन्ये ।
अत्यायाहि शश्वतो वयं तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥ ५ ॥

३४९ तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि ।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ ६ ॥

३५० स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥ ७ ॥

अर्थ— [३४७] हे इन्द्र! (ब्रह्मयुजा) मंत्रसे जुड जानेवाले (सधमादे आशू) यज्ञकी तरफ तेजीसे जानेवाले (सखाया) आपसमें मित्रभावसे रहनेवाले (हरी) दो घोडोंसे (ते) तेरे रथमें (ब्रह्मणा युनज्मि) मंत्रसे जोडता हूँ, हे (इन्द्र) इन्द्र ! (स्थिरं सुखं रथं अधितिष्ठन्) सुदृढ और सुखदायी रथमें बैठकर (प्रजानन् विद्वान्) सब कुछ जानता हुआ विद्वान् तू (सोमं उपयाहि) सोमके पास आ ॥ ४ ॥

[३४८] हे इन्द्र! (ते) तेरे (वृषणा वीतपृष्ठा हरी) बलवान् और सुन्दर पीठवाले घोडे (अन्ये यजमानासः) दूसरे यजमानोंको (मा रीरमन्) आनन्दित न करें, क्योंकि (वयं) हम (सुतेभिः सोमैः) तैय्यार किए गए सोम रसोंके द्वारा (ते अरं कृणवाम) तुझे समर्थ करते हैं, अतः तू (शश्वतः अति आयाहि) बहुतसे यजमानोंको छोडकर यहां आ ॥ ५ ॥

[३४९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अयं सोमः तव) यह सोम तेरे लिये है, (त्वं अर्वाङ् एहि) तू हमारी तरफ आ, और (सुमनाः) उत्तम मनवाला होकर (अस्य शश्वत्तमं पाहि) इसे अत्यधिक पी । (यज्ञे) यज्ञमें (अस्मिन् बर्हिषि निषद्य) इस आसन पर बैठकर (इमं इन्दुं जठरे दधिष्व) इस सोमको पेटमें धारण कर ॥ ६ ॥

[३५०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ते बर्हिः स्तीर्णं) तेरे लिये आसन बिछाया है, और (सोमः सुतः) सोम निचोडकर तैय्यार किया है, तथा (ते हरिभ्यां अत्तवे) तेरे घोडोंके खानेके लिए (धानाः कृताः) धान्य तैय्यार किया हुआ है, (तत् ओकसे) यज्ञशाला ही जिसका घर है ऐसे (पुरुशाकाय) बहुत सामर्थ्यवान् (वृष्णे) कामनाओंको पूर्ण करनेवाले (मरुत्वते) मरुतोंके साथ रहनेवाले (तुभ्यं) तेरे लिए (हवींषि राता) हवियां दी गईं हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— इन्द्रके घोडे इतने सुशिक्षित हैं कि वे केवल कहने मात्रसे रथकी धुरामें जुड जाते हैं। वे परस्पर मित्रभावसे रहते हैं। इन्द्र स्वयं भी विद्वान् और ज्ञानवान् है और उसका रथ भी सुदृढ और सुखदायी है। उस रथपर बैठकर वह सर्वत्र जाता और सबका संरक्षण करता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र केवल उन्हीं यज्ञ करनेवालोंको आनन्दित करता है, जो श्रद्धा और भक्तिसे इसकी पूजा अर्चा करते हैं ॥५॥

हे इन्द्र ! यह सोम तेरे लिये है, तू हमारी तरफ आ और आनन्द युक्त मनवाला होकर यज्ञमें इस रसको पी ॥६॥

हे इन्द्र । यह आसन तेरे लिये बिछा हुआ है, रस भी तैय्यार है । तू यज्ञमें आनेवाला, सामर्थ्यशाली, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, इसलिए हम तुझे यह रस श्रद्धापूर्वक देते हैं ॥ ७ ॥

३५१ इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ॥ ८ ॥

३५२ याँ आभजो मरुत इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्ते ।
तेभिरेतं सजोषा वावशानो३ ऽग्नेः पिब जिह्वया सोममिन्द्र ॥ ९ ॥

३५३ इन्द्र पिब स्वधया चित् सुतस्या- ऽग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र ।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ता- द्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥ १० ॥

३५४ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र- मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [३५१] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नरः, पर्वताः आपः सं) ऋत्विज, पत्थर और जल इन सबने मिलकर (तुभ्यं) तेरे लिए (इमं) इस सोमको (गोभिः) गायके दूधके साथ मिलाकर (मधुमन्तं अक्रन्) मधुर बनाया है, हे (ऋष्व) महान् इन्द्र ! (पथ्याः प्रजानन्) पथ्यको जानते हुए तथा (स्वाः विद्वान्) अपने सुखको जानते हुए (आगत्य) यहां आकर तू (सुमना अस्य पिब) उत्तम मनसे इसे पी ॥ ८ ॥

[३५२] हे इन्द्र ! (यान् मरुतः) जिन मरुतोंको तू (सोमे आभजः) सोम यज्ञमें लाया (ये त्वां अवर्धन्) जिन्होंने तुझे बढाया, तथा जो (ते गणः अभवन्) तेरे सहायक हुए, (तेभिः सजोषाः) उनसे युक्त होकर (वावशानः) पीनेकी इच्छा करता हुआ तू (अग्नेः जिह्वया) अग्निकी जीभसे (एतं सोमं पिब) इस सोमको पी ॥ ९ ॥

[३५३] हे इन्द्र ! (स्वधया चित् सुतस्य पिब) अपने बलसे सोमको पी (वा) अथवा हे (यजत्र) पूजनीय इन्द्र ! (अग्नेः जिह्वया पाहि) अग्निके जीभके द्वारा सोम पी, (वा) अथवा (अध्वर्योः हस्तात्) अध्वर्युके हाथसे इस (प्रयतं) पवित्र रसको पी, (वा) अथवा (होतुः हविषः यज्ञं जुषस्व) होताके हविसे युक्त यज्ञका सेवन कर ॥ १० ॥

[३५४] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस महासंग्राममें हम (शुनं नृतमं शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थना सुननेवाले (उग्रं समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— ऋत्विग्गण प्रथम सोमवल्लीको सिलबट्टे पर पीसकर उसका रस निकालते हैं, फिर उसे छानकर उसमें मधुरता लानेके लिये गौका दूध मिलाते हैं। इस रसको इन्द्र पीकर बहुत आनन्दित होता है और सुख प्राप्त करता है ॥ ८ ॥

यज्ञमें प्रदीप्त अग्नि देवोंकी जिह्वा मानी गई है। इस अग्निमें सोमरसकी आहुति दी जाती है, और उसे देवतागण ग्रहण करते हैं। इस अग्निमें इन्द्रके लिए विशेष आहुतियां दी जाती हैं जिन्हें यह अपने सहायक मरुतोंके साथ आकर पीता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तू भले ही अपने सामर्थ्यसे इस सोमरसको पी, अथवा अग्निमें दी गई आहुतिको पी, अथवा अध्वर्युके द्वारा दी गई आहुतिको ले, पर इस सोमकी आहुति लेकर आनन्दित होकर हमें समृद्ध कर ॥ १० ॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करने वाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूँ ॥ ११ ॥

[३६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः, १० घोर आङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३५५ इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभि- र्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥ १ ॥

३५६ इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान् प्रति षू गृभाये- न्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥ २ ॥

३५७ पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥ ३ ॥

३५८ महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्यु- ग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥ ४ ॥

---

[३६]

अर्थ— [३५५] हे इन्द्र ! (ऊतिभिः शश्वत् शश्वत् यादमानः) संरक्षणके साधनोंसे हमेशा युक्त रहनेवाला तू (इमां सु प्रभृतिं) इस उत्तम स्तुतिको (सातये धाः) हमें अन्नादि देनेके लिये धारण कर। (यः) जो इन्द्र (महद्भिः कर्मभिः) महान् कर्मोंसे (सुश्रुतः भूत्) प्रसिद्ध हुआ, वह (सुते सुते) प्रत्येक यज्ञमें (वर्धनेभिः वावृधे) बढाने वाले पदार्थोंके द्वारा बढता है ॥ १ ॥

१ महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः— मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है ।

[३५६] (इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये हम (दिवः) द्युलोकसे (सोमाः प्र विदानाः) सोम प्राप्त करते हैं, (येभिः) जिनसे वह (वृषपर्वा विहायाः) बलवान् संधियोंवाला तथा महान् इन्द्र (ऋभुः) तेजस्वी होता है। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू इस (वृषधूतस्य) बलवान् शत्रुको भी कंपा देनेवाले तथा (वृष्णः) बल देनेवाले सोमको (पिब) पी, तथा (प्रयम्यमानान्) नियमन करने योग्य शत्रुओंको (प्रति सु गृभाय) अच्छी तरह पकड अर्थात् उन पर अधिकार कर ॥ २ ॥

पर्व- परत, संधि, त्योहार,

[३५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू सोम (पिब) पी और (वर्धस्व) बढ। (तव) तेरे लिये (घ) ही ये (प्रथमाः उत इमे) पुराने और नये सोम (सुतासः) निचोड कर रखे गए हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र! तूने (पूर्व्यान् सोमान् यथा अपिबः) पूर्वसमयमें सोमरसोंका जिस प्रकार पिया, (एव) उसी प्रकार (अद्य) आज (पन्यः नवीयान् पाहि) प्रशंसनीय इन नये सोमरसोंको पी ॥ ३ ॥

[३५८] यह (महान् वृजने अमत्रः) महान्, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला, (विरप्शी) शक्तिशाली इन्द्र अपने (उग्रं शवः) तेजस्वी बलको तथा (धृष्णुः ओजः) शत्रओंका घर्षण करनेवाले ओजको (पत्यते) सर्वत्र फैलाता है। (यत्) जब (सोमासः) सोम इस (हर्यश्वं अमन्दन्) इन्द्रको आनन्दित करते हैं तब (एनं पृथिवी न अह विव्याच) इसे पृथ्वी धारण नहीं कर सकी ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरे पास रक्षा करनेके उत्तमसे उत्तम साधन हैं इनसे युक्त होकर तथा हमारी स्तुतिसे प्रेरित होकर तू हमारी रक्षा करनेके लिये आ । यह इन्द्र अपने महान् कर्मोंके कारण ही प्रसिद्ध होता है और महान् होकर समृद्ध होता है ॥ १ ॥

सोम द्युलोकमें उत्पन्न होता है और इस सोमको पीकर वह इन्द्र तेजस्वी होता है तथा उत्साहित होकर जब संग्राम करता है, तब बलवान्से बलवान् शत्रु भी कांप जाता है ॥ २ ॥

इन्द्र ! तू सोम पीकर उत्साहित होकर बढ। ये सोम प्रशंसनीय और स्तुत्य हैं ॥ ३ ॥

३५९ महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥ ५ ॥
३६० प्र यत् सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान् यदीं सोमः पृणाति दुग्धो अंशुः ॥ ६ ॥
३६१ समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥ ७ ॥
३६२ हृदा इव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि ।
अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [३५९] यह (महान् उग्रः) महान् और वीर इन्द्र (वीर्याय वावृधे) पराक्रमके कार्योंके करनेके लिए बढता है । वह (वृषभः भगः इन्द्रः) बलवान् और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (काव्येन समाचक्रे) स्तुतिसे प्रशंसित होता है । (अस्य गावः वाजदाः प्रजायन्ते) इसकी गायें अन्नको देनेवाली होती हैं । (अस्य दक्षिणाः पूर्वीः) इसके दान भी पूर्व कालसे प्रसिद्ध हैं ॥ ५ ॥

महान् उग्रः वीर्याय वावृधे— यह महान् और वीर इन्द्र पराक्रमके कार्य करनेके लिए ही बढता है ।

[३६०] (यथा) जिस प्रकार (सिन्धवः) नदियां (प्रसवं आयन्) अपने उत्पत्तिस्थान समुद्रमें जाकर मिलती हैं, अथवा जैसे (आपः) जल भी (समुद्रं रथ्या इव जग्मुः) समुद्रको रथके समान जाते हैं, उसी प्रकार (दुग्धः अंशुः सोमः) दूधसे मिश्रित सोम (ईं पृणाति) इस इन्द्रको पूर्ण करता है, (अतः चित्) इसीलिए (इन्द्रः) यह इन्द्र (सदसः वरीयान्) द्यु लोकसे भी श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

[३६१] (समुद्रेण यादमानाः सिन्धवः) समुद्रके साथ संयुक्त होनेवाली नदियां जिस प्रकार समुद्रको भर देती हैं, उसी प्रकार (हस्तिनः) हाथोंवाले अध्वर्यु (इन्द्राय सु-सुतं सोमं भरन्तः) इन्द्रके लिये तैय्यार किया गया सोम भरपूर देनेके लिये (अंशुं दुहन्ति) सोमसे रस निकालते हैं, तथा (भरित्रैः) अपनी भुजाओंसे (पवित्रैः) और छलनीके द्वारा (धारया) एक धारासे (मध्वः पुनन्ति) मधुर सोमरसको छानते हैं ॥ ७ ॥

[३६२] इस इन्द्रके (सोमधानाः कुक्षयः हृदाः इव) सोमको धारण करनेवाले कोख तालाबके समान हैं । (ईं पुरूणि सवना) इस इन्द्रको बहुतसे सोमरस (विव्याच) भरते हैं । (इन्द्रः) इन्द्रने (यत् प्रथमा अन्ना वि आश) जब प्रथम सोमरूपी अन्नोंको खाया, तब (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्रने (सोमं अवृणीत) सोमको स्वीकार किया ॥ ८ ॥

भावार्थ— महान और शत्रुनाशी इन्द्र अपने बल, तेज और ओजको सर्वत्र फैलाता है । जब यह इन्द्र सोम पीकर आनन्दसे युक्त होता है, तब इसकी महानताको पृथ्वी भी धारण नहीं कर सकती । तब यह पृथ्वीसे भी महान् हो जाता है ॥४॥

यह महान् इन्द्र अपने बलका उपयोग उत्तम और महान् कार्योंको करनेमें ही करता है । इस कारण वह ऐश्वर्यवान्, बलवान् और प्रशंसनीय होता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार सभी नदियां और जल समुद्रकी ओर ही जाती हैं और उसे भरती हैं उसी प्रकार सभी सोमकी आहुतियां इन्द्रकी तरफ जाती हैं और उसके उत्साहको बढाती हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार नदियां समुद्रको भरती हैं, उसी प्रकार अध्वर्युगण सोमको कूट छानकर उसके रससे इन्द्रको आनन्दसे भरते हैं ॥ ७ ॥

सोम इन्द्रका प्रथम और मुख्य अन्न है । यह उत्साहप्रद है । जब भी इन्द्र वृत्रको मारना चाहता है, तब तब सोम पीकर वह उत्साहसे युक्त होता है ॥ ८ ॥

३६३ आ तू भर माकिरेतत् परि ष्ठाद् विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।
इन्द्र यत् ते माहिनं दत्रम-स्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥ ९ ॥

३६४ अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषि-न्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥ १० ॥

३६५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र-मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥

[३७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, ११ अनुष्टुप् ।]

३६६ वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥

३६७ अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥

अर्थ— [३६३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (तु) शीघ्र ही हमें (भर) भरपूर धन दे, (एतत् मा किः परिष्ठात्) इस धन पर दूसरा कोई अधिकार न करे, (त्वा) तुझे हम (वसूनां वसुपतिं विद्म) उत्तम धनोंके स्वामीके रूपमें जानते हैं। (ते) तेरा (यत् माहिनं दत्रं अस्ति) जो प्रशंसनीय धन है, हे (हर्यश्व) घोडोंवाले इन्द्र ! (तत् अस्मभ्यं प्र यन्धि) वह धन तू हमें दे ॥ ९ ॥

[३६४] हे (मघवन्, ऋजीषिन्, शिप्रिन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, सरलमार्गसे जानेवाले तथा सुन्दर ठोडीवाले इन्द्र ! (विश्ववारस्य भूरे रायः) सभीके द्वारा चाहने योग्य ऐसे बहुतसे धनोंको (अस्मे प्र यन्धि) हमें दे, तथा (जीवसे अस्मे शतं शरदः धाः) जीनेके लिए हमें सौ वर्ष दे, और (अस्मे शश्वत् वीरान्) हमें बहुतसे पुत्र दे ॥ १० ॥

[३६५] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस बडे संग्राममें हम (शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं) शुद्ध, उत्तमनेता प्रार्थनाको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले और (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) रक्षाके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ११ ॥

[२]

[३६६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! हम (त्वा) तुझे (वार्त्रहत्याय, शवसे, पृतनाषाह्याय च) वृत्रको मारनेके लिए, बलके लिए तथा शत्रुओंको हरानेके लिये (वर्तयामसि) प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

[३६७] हे (शतक्रतो) सैंकडों प्रकारके कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाघतः) स्तोतागण (ते सु मनः उत चक्षुः) तेरे उत्तम मन और आंखको (अर्वाचीनं कृण्वन्तु) हमारी तरफ करें ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! हमें यह मालूम है कि तू श्रेष्ठ धनोंका स्वामी है, इसलिए हम प्रार्थना करते हैं कि तू हमें भरपूर धन दे और इस श्रेष्ठ धनपर किसी दुष्टका अधिकार न हो । यह तेरा धन प्रशंसाके योग्य है ॥ ९ ॥

हे सरलमार्गसे जानेवाले इन्द्र ! तू हमें उत्तम और सभीके द्वारा चाहने योग्य धन दे, हमें लम्बी आयु दे और हमारा घर भी सन्तानोंसे भरापूरा हो ॥ १० ॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ११ ॥

हे शतक्रतु इन्द्र ! स्तोतागण तेरे मनको हमारी तरफसे उत्तम बनायें और हम भी तुझे वृत्रको तथा अन्य शत्रुओंको मारनेके लिए बलसे युक्त करके प्रेरित करते हैं ॥ १-२ ॥

×

३६८ नामा॑नि ते शतक्रतो॒ विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे । इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥ ३ ॥
३६९ पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि । इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥ ४ ॥
३७० इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे । भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥
३७१ वाजे॑षु सास॒हिर्भ॑व॒ त्वामी॑महे शतक्रतो । इन्द्र॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ॥ ६ ॥
३७२ द्यु॒म्नेषु॑ पृत॒नाज्ये॑ पृत्सु॒तूर्षु॒ श्रवः॑सु च । इन्द्र॒ साक्ष्वा॒भिमा॑तिषु ॥ ७ ॥
३७३ शु॒ष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पाहि॒ जागृ॑विम् । इन्द्र॒ सोमं॑ शतक्रतो ॥ ८ ॥
३७४ इ॒न्द्रि॒याणि॑ शतक्रतो॒ या ते॒ जने॑षु प॒ञ्चसु॑ । इन्द्र॒ तानि॑ त॒ आ वृ॑णे ॥ ९ ॥

अर्थ— [३६८] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों तरहके कर्म करनेवाले इन्द्र ! (अभिमातिषाह्ये) युद्धमें (ते नामानि) तेरे बलोंको हम (विश्वाभिः गीर्भिः ईमहे) सम्पूर्ण प्रार्थनाओंके सूक्तों द्वारा मांगते हैं ॥ ३ ॥

[३६९] (पुरुष्टुतस्य) बहुतोंके द्वारा प्रशंसनीय (शतेन धामभिः) सैंकडों तेजोंसे युक्त (चर्षणीधृतः) मनुष्योंको धारण करनेवाले (इन्द्रस्य) इन्द्रकी हम (महयामसि) स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

[३७०] (पुरुहूतं इन्द्रं) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्रको (भरेषु वाजसातये) युद्धोंमें अन्नकी प्राप्तिके लिए तथा (वृत्राय हन्तवे) वृत्रको मारनेके लिए मैं (उपब्रुवे) बुलाता हूँ ॥ ५ ॥

[३७१] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! तू (वाजेषु सासहिः भव) युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाला हो, (वृत्राय हन्तवे त्वां ईमहे) हम वृत्रको मारनेके लिए तुझे चाहते हैं ॥ ६ ॥

[३७२] हे इन्द्र ! (अभिमातिषु पृतनाज्ये) शत्रुओंको हरानेवाले युद्धमें (द्युम्नेषु श्रवःसु च) तेजस्वी अन्न जिनमें प्राप्त होते हैं ऐसे युद्धोंमें तथा (पृत्सुतूर्षु) अन्य युद्धोंमें तू शत्रुओंको (साक्ष्व) मार ॥ ७ ॥

[३७३] (शुष्मिन्तमं द्युम्निनं जागृविं) बल युक्त, तेजस्वी और चेतना देनेवाले (सोमं) सोमको हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (नः ऊतये) हमारे संरक्षणके लिए (पाहि) पी ॥ ८ ॥

[३७४] हे (शतक्रतो) सैंकडों यज्ञ करनेवाले इन्द्र ! (पंचसु जनेषु) पांच जनोंमें (या ते इन्द्रियाणि) जो तेरी शक्ति है, (ते तानि आ वृणे) तेरी उन शक्तियोंको मैं स्वीकार करता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अनेकोंके द्वारा स्तुत, तेजोंसे युक्त और मनुष्योंको धारण करनेवाला है, ऐसे इन्द्रसे हम युद्धमें अपनी रक्षाके लिए उसकी स्तुति करके बल मांगते हैं ॥ ३-४ ॥

हे इन्द्र ! तू युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाला है, अतः वृत्रको मारकर उसका धन प्राप्त करनेके लिए हम तुझसे सहायताकी प्रार्थना करते हैं ॥ ५-६ ॥

हे इन्द्र ! तू कठिनसे कठिन युद्धमें भी शत्रुओंका संहार करता है, इसलिए बलशाली, तेजस्वी और चेतनाप्रद सोमरस तुझे देकर तुझसे हम संरक्षण चाहते हैं ॥ ७-८ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांच जनोंमें क्रमशः ज्ञान, शौर्य, धन, सेवा और निर्भयताकी शक्ति रहती है, इन सबमें इन्द्रकी शक्ति ही विविध रूपसे प्रकट होती है। ये सभी शक्तियां समाज एवं राष्ट्रके समुत्थानके लिए आवश्यक हैं ॥ ९ ॥

३७५ अग॑न्निन्द्र॒ श्रवो॑ बृ॒हद्द्यु॒म्नं द॑धिष्व दु॒ष्टर॑म् । उत् ते॒ शुष्मं॑ तिरामसि ॥ १० ॥
३७६ अ॒र्वा॒वतो॑ न॒ आ ग॒ह्यथो॑ शक्र परा॒वतः॑ ।
उ॒ लो॒को यस्ते॑ अद्रिव॒ इन्द्रे॒ह तत॒ आ ग॑हि ॥ ११ ॥

[३८]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा, तावुभावपि वा गाथिनो विश्वामित्रो वा ।
देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३७७ अ॒भि तष्टे॑व दीधया मनी॒षामत्यो॒ न वा॒जी सु॒धुरो॒ जिहा॑नः ।
अ॒भि प्रि॒याणि॒ मर्मृ॑श॒त् परा॑णि क॒वीँरि॑च्छामि सं॒दृशे॑ सुमे॒धाः ॥ १ ॥
३७८ इ॒नोत पृ॑च्छ॒ जनि॑मा कवी॒नां म॑नो॒धृतः॑ सु॒कृत॑स्तक्षत॒ द्याम् ।
इ॒मा उ॑ ते प्र॒ण्यो॒३॒॑ वर्ध॑माना॒ मनो॑वाता॒ अध॒ नु धर्म॑णि ग्मन् ॥ २ ॥

अर्थ— [३७५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहत् श्रवः) यह महान् अन्न तेरे पास (अगन्) जाए, तथा तू (दु-स्तरं द्युम्नं दधिष्व) शत्रुओं द्वारा कठिनतासे पार करने योग्य और तेजस्वी इस सोमको धारण कर, हम (ते शुष्मं तिरामसि) तेरा बल बढाते हैं ॥ १० ॥

[३७६] हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रको धारण करनेवाले इन्द्र ! तू (अर्वावतः नः आगहि) पासके देशसे हमारे पास आ, (अथ) तथा (परावतः) दूर देशसे भी आ, तथा (ते यः लोकः) तेरा जो लोक है, (ततः इह आगहि) उस लोकसे यहां आ ॥ ११ ॥

[३८]

[३७७] हे मनुष्य ! (तष्टा इव) जैसे बढई लकडीको उत्तम बनाता है उसी प्रकार (मनीषां अभि दीधय) तू उत्तम स्तोत्र बना । जिस प्रकार (सु-धुरः वाजी अत्यः न) उत्तम धुरामें जुडा हुआ वेगवान् घोडा भागता जाता है, उसी प्रकार (जिहानः) उत्तम कर्म करता हुआ तथा (पराणि प्रियाणि मर्मृशत्) उत्तम और इन्द्रको प्रिय-लगनेवाली स्तुति करता हुआ (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिवाला मैं (कवीन् संदृशे इच्छामि) कवियोंको देखनेकी इच्छा करता हूँ ॥ १ ॥

जिहानः कवीन् संदृशे इच्छामि— उत्तम कर्म करता हुआ ही मैं ज्ञानियोंकी संगतिकी इच्छा करूं ।

[३७८] हे इन्द्र ! जिन (मनोधृतः सुकृतः) मनःशक्तिको धारण करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले विद्वानोंने (द्यां तक्षत) द्युलोकको बनाया द्युलोकका वर्णन किया, ऐसे (कवीनां जनिमा) कवियोंके जन्मोंके विषयमें तू (इना पृच्छ) इन श्रेष्ठोंसे पूछ । (अध) बादमें (धर्मणि) इस यज्ञमें (ते प्रण्यः वर्धमानाः मनोवाताः इमाः) तुझे प्रसन्न करनेवाली तथा बढानेवाली मनके समान वेगवाली ये स्तुतियां (नु ग्मन्) शीघ्रही तेरे पास जायें ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू पास और दूरके देशसे हमारे पास आ, तथा अन्य लोकोंसे भी हमारे पास आ, ताकि हम तुझे उत्तम और प्रशंसनीय अन्न-सोमरस देकर तेरा आनन्द और बल बढा सकें ॥ १०-११ ॥

मनुष्य उत्तम कर्म करता हुआ सन्मार्ग पर चले । उत्तम कर्म एवं सन्मार्गको जाननेके लिए वह उत्तम एवं सज्जन पुरुषोंकी संगति करे । यही इन्द्रको प्रिय है । इसीसे वह प्रसन्न रहता है ॥ १ ॥

यह द्युलोक इतना विस्तृत एवं विशाल है कि मनःशक्तिको धारण करनेवाले तथा उत्तम कर्म करनेवाले विद्वान् ही इस विशाल द्युलोकका वर्णन कर सकते हैं । विद्वान् योगी ही इस द्युलोकको पार करके सूर्यलोकको जाते हैं । ऐसे योगी विद्वानोंके विषयमें विद्वान् जन ही जान सकते हैं । अतः उन्हींके पास जाकर ऐसे विद्वानोंके बारेमें जिज्ञासा करनी चाहिए ॥ २ ॥

३७९ नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन् ।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥ ३ ॥
३८० आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूष ञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत् तद् वृष्णो असुरस्य नामाऽऽ विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ ४ ॥
३८१ असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥ ५ ॥
३८२ त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३७९] विद्वानोंने (अत्र सीं इत्) यहां चारों ओरसे (गुह्या दधानाः) गूढ कर्मोंको करते हुए (क्षत्राय) बलके लिए (रोदसी समंजन्) द्यावापृथिवीको परस्पर मिलाया तथा (मात्राभिः सं ममिरे) उन्हें मापनेके साधनोंसे मापा, (समृते उर्वी मही येमुः) आपसमें मिले हुए विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको नियंत्रित किया, तथा उन दोनोंके (अन्तः) बीचमें (धायसे) उन्हें धारण करनेके लिए अन्तरिक्षको (धुः) बनाया ॥ ३ ॥

[३८०] (विश्वे) सब विद्वान् (आ तिष्ठन्तं) रथमें बैठे हुए इन्द्रको (परि अभूषन्) विभूषित करते हैं। वह इन्द्र (स्व-रोचिः) अपने तेजसे तेजस्वी होकर (श्रियः वसानः) कान्तिको धारण करता हुआ (चरति) सब जगह विचरता है। (वृष्णः असुरस्य नाम महत्) बलशाली तथा प्राणोंके दाता इन्द्रका यश महान् है, वह (विश्वरूपः) सब रूपोंवाला होकर (अमृतानि तस्थौ) जलों पर अधिकार करता है ॥ ४ ॥

[३८१] (वृषभः पूर्वः ज्यायान्) बलवान्, प्राचीन और श्रेष्ठ इन्द्रने (असूत) पानियोंको उत्पन्न किया। (अस्य पूर्वीः इमाः) इसके द्वारा उत्पन्न बहुतसे जल (शुरुधः सन्ति) तृषाको दूर करनेवाले हैं। (दिवः नपाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (राजाना) तेजस्वी इन्द्र और वरुण (प्रदिवः विदथस्य) विशेष तेजयुक्त वीरकी (धीभिः क्षत्रं दधाथे) बुद्धियोंके द्वारा धन धारण करते हैं ॥ ५ ॥

[३८२] हे (राजाना) इन्द्रावरुणो ! तुम (विदथे) यज्ञमें (त्रीणि) तीन अथवा (पुरूणि विश्वानि सदांसि) बहुतसे स्थानोंको (परिभूषथः) अलंकृत करो। हे इन्द्र ! तू (जगन्वान्) यज्ञमें आ गया है क्योंकि (अत्र व्रते) इस यज्ञमें (वायुकेशान् गन्धर्वान्) वायुसे हिलनेवाले अयालसे युक्त घोडोंको मैंने (मनसा अपश्यम्) मनसे देख लिया है ॥ ६ ॥

भावार्थ— विद्वान् देवोंके कर्म बडे ही गुप्त और रहस्यमय होते हैं, आदिमें इन देवोंने द्यावापृथ्वीको संयुक्तरूपमें बनाया, फिर उन्हें नापा, तत्पश्चात् इन दोनोंको विस्तृत करनेके लिए इन्हें अलग अलग किया। सृष्टिके आदिमें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें कोई अन्तर नहीं था, पृथक् पृथक् लोक नहीं थे, बादमें देवोंने इन दोनों लोकोंको नाप कर पृथक् पृथक् किया और बीचमें अन्तरिक्षलोक बनाया। इस प्रकार दोनों लोकोंको विस्तीर्ण बनाया ॥ ३ ॥

सब विद्वान् रथमें बैठे हुए इन्द्रको विभूषित करते हैं। वह अपने तेजसे तेजस्वी होता हुआ कान्तिको धारण करके सर्वत्र विचरता है। बलशाली तथा प्राणोंके दाता इन्द्रका यश महान् है। वह अनेक रूपोंवाला होकर अमर होता है ॥ ४ ॥

बलवान् और श्रेष्ठ इन्द्रने पानियोंको उत्पन्न किया, ये जल प्राणियोंकी तृषा बुझानेवाले हुए। द्युलोकको आधार देनेवाले तेजस्वी इन्द्र और वरुण उत्तम बुद्धियोंके द्वारा धनको धारण करते हैं ॥ ५ ॥

ये इन्द्र और वरुण देव सभी स्थानोंको अलंकृत करते हैं। इन्द्रके आगमनकी सूचना उसके सुन्दर आयालवाले घोडोंसे मिलती है ॥ ६ ॥

३८३ तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥ ७ ॥

३८४ तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥ ८ ॥

३८५ युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद् दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥ ९ ॥

३८६ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ १० ॥

अर्थ— [३८३] (अस्य वृषभस्य) इस बलवान् इन्द्रके लिए (नामभिः) यशोंसे (गोः धेनोः) गायके (सक्म्यं ममिरे) दूधको विद्वानोंने दुहा, (मायिनः) बुद्धिमानोंने (अन्यत् अन्यत् असुर्यं वसानाः) नये नये बलको धारण करते हुए (अस्मिन् रूपं ममिरे) इस इन्द्रमें रूपको पाया ॥ ७ ॥

[३८४] (सवितुः अस्य मे) सबको उत्पन्न करनेवाले इस मेरे (तत् हिरण्ययीं अमतिं) उस सोनेके समान चमकनेवाले तेजको (न किः) कोई नष्ट नहीं कर सकता, (यां अशिश्रेत्) जिस मेरी दीप्तिको जो स्वीकार करता है, वह (सु-स्तुतिं) अच्छीतरह प्रशंसित होकर (विश्वमिन्वे रोदसी) सबको तृप्त करनेवाली द्यावापृथिवीको (योषा जनिमानि इव) जैसे स्त्री अपने पुत्रोंको स्वीकार करती है, उसी प्रकार (वव्रे) वरण करता है ॥ ८ ॥

[३८५] हे इन्द्र और वरुण ! (युवं) तुम दोनों (प्रत्नस्य) स्तोताके लिए (यत् महः दैवी स्वस्तिः) जो महान् और दैवी कल्याण (साधथः) करते हो, तुम दोनों (नः परि स्यातं) हमारे चारों तरफ रहो। (विश्वे मायिनः) सब बुद्धिमान् लोग (गोपाजिह्वस्य) रक्षण करनेवाली वाणीसे युक्त तथा (तस्थुषः) स्थिर रहनेवाले इस इन्द्रके (विरूपा कृतानि) अनेक तरहके काम (पश्यन्ति) देखते हैं ॥ ९ ॥

[३८६] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस भरपूर संग्राममें हम (शुनं नृतमं शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता तथा प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले तथा (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये हुवेम) अपनी सुरक्षाके लिए बुलाते हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— विद्वान् गण इस इन्द्रको बलशाली बनानेके लिए यशस्वी गायको दुहते हैं। इन्द्र भी अनेक रूपोंको धारण करके प्रकाशित होता है। संसारके इन विविध रूपोंमें इन्द्रकाही रूप प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

इन्द्रका सोनेके समान चमकनेवाला तेज समस्त संसारको उत्पन्न करनेवाला है, उसके इस तेजको कोई नष्ट नहीं कर सकता। इस इन्द्रके तेजको जो प्राप्त कर लेता है, वह द्युलोक और पृथ्वीलोकमें प्रसिद्ध हो जाता है ॥ ८ ॥

इन्द्र और वरुण दोनों स्तोताका महान् कल्याण करते हैं। ये दोनों चारों ओर व्याप्त हैं। सब बुद्धिमान् गण स्थिर रहनेवाले इस इन्द्रके अनेक तरहके काम देखते हैं ॥ ९ ॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ १० ॥

[३९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३८७ इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना ऽच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमाने॒न्द्र यत् ते जायते विद्धि तस्य ॥ १ ॥

३८८ दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना ।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे संनजा पित्र्या धीः ॥ २ ॥

३८९ यमा चिदत्र यमसूरसूत जिह्वाया अग्रं पतदा ह्यस्थात् ।
वपूंषि जाता मिथुना सचेते तमोहना तपुषो बुध्न एता ॥ ३ ॥

३९० नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावा॒नुद् गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥ ४ ॥

---

[३९]

अर्थ— [३८७] (स्तोमतष्टा) स्तोताओं द्वारा (हृदः वच्यमाना) हृदयसे की गई (मतिः) स्तुति (पतिं इन्द्रं) पालन करनेवाले इन्द्रके पास (अच्छ जिगाति) सीधी पहुंचती है (या जागृविः) जो तुझे जगानेवाली मेरी स्तुति (विदथे शस्यमाना) यज्ञमें प्रशंसित होती है, तथा (यत् ते जायते) जो स्तोत्र तेरे लिए किया जाता है, (तस्य विद्धि) इन्हें तू जान ॥ १ ॥

[३८८] (दिवः चित् पूर्व्या) दिनसे पहले ही (जायमाना) उत्पन्न हुई (जागृविः) सबको जगानेवाली (विदथे शस्यमाना) यज्ञमें प्रशंसित होनेवाली (भद्रा अर्जुना वस्त्राणि) कल्याणकारी, तथा शुभ्र तेजोंको (वसाना) धारण करनेवाली (सा इयं धीः) वह यह हमारी स्तुति (पित्र्या सनजा) हमारे पिताकी अपेक्षा भी पुरानी है ॥ २ ॥

[३८९] (यमसूः) यम [अश्विनौ] को उत्पन्न करनेवाली उषाने (अत्र) इस समय (यमा असूत) यम [अश्विनौ] उत्पन्न कर दिए हैं, अब (जिह्वायाः अग्रं पतत् आ अस्थाद्) जीभका अगला भाग चंचल होने लगा है। (तपुषः बुध्ने) दिनके पहले (जाता) उत्पन्न हुए (तमोहना) अन्धकारका नाश करनेवाले (एता मिथुना) ये जोडे अश्विनौ (वपूंषि सचेते) स्तोत्रोंके साथ युक्त होते हैं॥ ३ ॥

[३९०] (ये गोषु योधाः) जो युद्धोंमें अच्छे योद्धा (अस्माकं पितरः) हमारे पितर हैं (एषां) इनकी (मर्त्येषु) इम मनुष्योंमें (निन्दिता नकिः) निन्दा करनेवाला कोई नहीं है । (महिनावान् उत् दंसनावान् इन्द्रः) महिमासे युक्त तथा उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र (एषां दृंहिता) इन्हें दृढ करता है, उसने इनके लिए (गोत्राणि ससृजे) गायोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

भावार्थ— स्तोताओं द्वारा हृदयसे की गई स्तुति पालनपोषण करनेवाले इन्द्रके पास सीधी जाती है। वह स्तुति यज्ञमें प्रशंसित होती है । इन्द्र इन स्तुतियोंको अच्छी तरह जानता है ॥ १ ॥

मनुष्योंकी स्तुति दिनसे पहले ही अर्थात् सूर्योदयसे पूर्व ही उत्पन्न हुई हो, सबको जगानेवाली हो, यज्ञमें प्रशंसा प्राप्त करे । कल्याणकारी तथा शुभ्र तेजोंको धारण करनेवाली हो ॥ २ ॥

उषा जुडवें अश्विनौको उत्पन्न करनेवाली है । वह प्रातःकाल आकर अश्विनौको उत्पन्न करती है, उनके उत्पन्न होते ही जिह्वाका अग्रभाग हिलने लगता है, अर्थात् स्तुतियां शुरु हो जाती हैं। ये दोनों अश्विनौ अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, इसलिए इनकी स्तुति होती है ॥ ३ ॥

हमारे पूर्वज युद्धोंमें अच्छे योद्धा थे, इसलिए मनुष्योंमें इनकी निन्दा करनेवाला कोई नहीं है। महिमाशाली तथा उत्तम कर्म करनेवाला इन्द्र इन योद्धाओंको बल प्रदान करके और दृढ करता है। वही इन वीरोंके लिए गायें उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

३९१ सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वै-रभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥ ५ ॥
३९२ इन्द्रो मधु संभृतमुस्रियायां पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥ ६ ॥
३९३ ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥ ७ ॥
३९४ ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्या-दारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [३९१] (यत्र) जब (सखा) मित्र इन्द्र (गाः अभिज्ञ्वा) गायोंको जानकर (नवग्वैः सत्वभिः सखिभिः) नौ घोडोंसे जानेवाले बलवान् मित्रोंके साथ (अनुग्मन्) पीछे चला, (तत्) तब (दशग्वैः दशभिः) दश घोडोंसे जानेवाले दस मित्रोंके साथ (इन्द्रः) इन्द्रने (तमसि क्षियन्तं सत्यं) अन्धकारमें निवास करनेवाले (सूर्यं विवेद) सूर्यको जाना ॥ ५ ॥

[३९२] (इन्द्रः) इन्द्रने (उस्रियायां संभृतं मधु) गायोंमें रखे हुए मधुर दूधको (विवेद) प्राप्त किया, तो (पद्वत् शफवत् गोः) पंखोंवाले पक्षी तथा खुरोंवाले भी जानवरोंको प्राप्त किया तथा (नमे) शत्रुको नम्र किया। (दक्षिणावान्) दान देनेवाले इन्द्रने (गुहाहितं गुह्यं अप्सु गूळ्हं) गुहामें रखे हुए तथा जलोंमें छिपाये गए गुप्त धनको (दक्षिणे हस्ते दधे) दाहिने हाथमें धारण किया ॥ ६ ॥

[३९३] इन्द्रने (विजानन्) जानते हुए (तमसः ज्योतिः वृणीत) अन्धकारसे ज्योतिको प्राप्त किया। हम (दुरितात् आरे) पापसे दूर होकर (अभीके स्याम) भयरहित स्थानमें रहें। (सोमपाः सोमवृद्ध इन्द्र) हे सोमको पीनेवाले तथा सोमसे बढनेवाले इन्द्र! (पुरुतमस्य कारोः) अत्यंत श्रेष्ठ ऐसे इस स्तोताकी (इमाः गिरः जुषस्व) इन स्तुतियोंको सुन ॥ ७ ॥

१ विजानन् तमसः ज्योतिः वृणीत— ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है।

२ दुरितात् आरे अभीके स्याम— पापसे दूर होकर हम भयरहित स्थानमें रहें।

[३९४] (ज्योतिः) सूर्य (यज्ञाय) यज्ञके लिए (रोदसी अनुष्यात्) द्यावापृथिवीके पीछेसे आता है, हम (भूरेः दुरितस्य आरे स्याम) बडे पापोंसे दूर रहें। हे (सु-पारासः वसवः) दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले वसुओ! तुम (तुजतः मर्त्यस्य) भक्ति करनेवाले मनुष्यको (भूरि वर्हणावत्) बहुत धन देते हो ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब मित्रके समान हित करनेवाले इन्द्रने असुरोंके द्वारा छिपाई गई गायोंके पदचिह्नोंको जानकर अपने मित्रोंके साथ उन गायोंका पीछा किया, तब उसने अन्धकारमें छिपे हुए सूर्यको प्रकट किया ॥ ५ ॥

गायोंको प्राप्त करनेके बाद इन्द्रने उनके मधुर दुग्धको प्राप्त किया। इसके साथ ही पंखोंवाले और खुरोंवाले हर तरहके जानवरोंको प्राप्त किया। दान देनेवाले इन्द्रने बहुत छिपाकर रखे हुए धनको भी जान लिया ॥ ६ ॥

इन्द्रने ज्ञानके द्वारा ही अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त किया। अन्धकारको पार करने और ज्योतिको प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय ज्ञान ही है। इस ज्योतिको प्राप्त करके मनुष्य पापसे दूर होकर भयरहित स्थानमें रहता है ॥ ७ ॥

यज्ञकी सम्पन्नताके लिए सूर्य द्यावापृथ्वीके पीछेसे उदय होता है। दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले तथा निवास करानेवाले वसुगण भक्ति करनेवाले मनुष्यको बहुतसा धन देते हैं ॥ ८ ॥

३९५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र॑मस्मिन् भरे नृत॑मं वाज॑सातौ ।
शृण्वन्त॑मुग्रमूतये॑ समत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृत्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥ ९ ॥

[४०]

[ऋषि— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छन्द— गायत्री ।]

३९६ इन्द्रं॑ त्वा वृष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे । स पा॑हि मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥ १ ॥
३९७ इन्द्र॑ क्रतु॒विदं॑ सु॒तं सोमं॑ हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृ॑षस्व॒ तातृ॑पिम् ॥ २ ॥
३९८ इन्द्र॒ प्र णो॑ धि॒तावा॑नं य॒ज्ञं विश्वे॑भिर्दे॒वेभिः॑ । ति॒र स्त॑वान विश्पते ॥ ३ ॥
३९९ इन्द्र॒ सोमाः॑ सु॒ता इ॒मे तव॒ प्र य॑न्ति सत्पते । क्षयं॑ च॒न्द्रास॒ इन्द॑वः ॥ ४ ॥
४०० द॒धि॒ष्वा ज॒ठरे॑ सु॒तं सोम॑मिन्द्र॒ वरे॑ण्यम् । तव॑ द्यु॒क्षास॒ इन्द॑वः ॥ ५ ॥
४०१ गिर्व॑णः पा॒हि नः॑ सु॒तं मधो॒र्धारा॑भिरज्यसे । इन्द्र॒ त्वादा॑त॒मिद् यशः॑ ॥ ६ ॥

अर्थ— [३९५] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस महा संग्राममें हम (शुनं, नृतमं शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये हुवेम) अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[४०]

[३९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वयं) हम (वृषभं त्वा) बलवान् तुझे (सोमे सुते) सोमको तैय्यार करके (हवामहे) बुलाते हैं। (सः) वह तू (मध्वः अन्धसः) मीठे अन्नरूपी सोमकी (पाहि) रक्षा कर ॥ १ ॥

[३९७] हे (हर्य पुरुष्टुत इन्द्र) घोडोंवाले तथा बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! तू (वृषस्व) बलवान् हो और (तातृपिं) तुझ बलवान्को तृप्त करनेवाले (क्रतु-विदं सुतं सोमं) यज्ञको जाननेवाले और निचोडे गए सोमको (पिब) पी ॥ २ ॥

[३९८] हे (स्तवान विश्पते इन्द्र) प्रशंसित होनेवाले तथा प्रजाओंके पालक इन्द्र ! तू (विश्वेभिः देवेभिः) सब देवोंसे युक्त होकर (नः धितावानं यज्ञं) हमारे इस धनोंसे भरपूर यज्ञको (तिर) बढा ॥ ३ ॥

[३९९] हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (इमे इन्दवः चन्द्रासः) ये चमकनेवाले तथा आनन्द दायक (सुताः सोमाः) निचोडे गए सोम (तव क्षयं प्रयन्ति) तेरे स्थानकी तरफ जाते हैं ॥ ४ ॥

[४००] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (तव) तेरे ये सोम (द्यु-क्षासः इन्दवः) द्युलोकमें रहनेवाले तथा तेजस्वी हैं। ऐसे (वरेण्यं सुतं सोमं) ग्रहण करने योग्य निचोड गए सोमको (जठरे दधिष्व) अपने पेटमें धारण कर ॥ ५ ॥

[४०१] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे सोमको पी, तू (मधोः धाराभिः अज्यसे) सोमकी धारासे सींचा जाता है। (त्वा आदातं यशः इत्) तेरे द्वारा शुद्ध किया गया अन्न हमें मिले ॥ ६ ॥

आ दातं— चारों ओरसे शुद्ध किया गया। "दैप् शोधने"

भावार्थ— इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ९ ॥

हे बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! हम सोमरसको तैय्यार करके तुझे बुलाते हैं, तू इन्हें आकर पी, क्योंकि ये तुझे तृप्त करनेवाले और यज्ञको जाननेवाले हैं ॥ १-२ ॥

हे सज्जनों तथा प्रजाओंके पालक इन्द्र ! हमारे द्वारा तैय्यार किए गए आनन्ददायक सोम तेरी तरफ बहे जा रहे हैं, इसलिए तू सब देवोंके साथ हमारे यज्ञमें आकर इसको बढा ॥ ३-४ ॥

हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तू इस सोमरसको पी, ये सोमरस द्युलोकमें रहनेवाले तथा तेजस्वी हैं ॥ ५-६ ॥

४०२ अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
४०३ अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
४०४ यदन्तरा परावत मर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥

[४१]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— गायत्री ।]

४०५ आ तू न इन्द्र मद्र्य ग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
४०६ सत्तो होता न ऋत्विय स्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
४०७ इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
४०८ रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥

अर्थ— [४०२] (वनिनः) प्रशंसनीय यजमानकी (अक्षिता द्युम्नानि) नष्ट न होनेवाली, तेजस्वी हवियां (इन्द्रं सचन्ते) इन्द्रसे मिलती हैं। वह (सोमस्य पीत्वी वावृधे) सोमको पीकर बढता है ॥ ७ ॥

[४०३] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (अर्वावतः नः आगहि) पासके स्थानसे हमारे पास आ (च) और (परावतः) दूरके स्थानसे भी हमारे पास आ, तथा (नः इमाः गिरः जुषस्व) हमारी इन स्तुतियोंको सुन ॥ ८ ॥

[४०४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जो तू (परावतं अर्वावतं अन्तरा च) दूर देशसे, पासके देशसे तथा बीचके देशसे (हूयसे) बुलाया जाता है, अतः (ततः) उस स्थानसे तू (इह आगहि) यहां यज्ञमें आ ॥ ९ ॥

[४१]

[४०५] हे (अद्रि-वः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (हुवानः) बुलाया जाता हुआ तू (मद्र्यक्) हमारी तरफ (सोमपीतये) सोम पीनेके लिये (हरिभ्यां आयाहि) घोडोंसे आ ॥ १ ॥

[४०६] हे इन्द्र ! (नः) हमारे यज्ञमें (ऋत्वियः होता) ऋतुके अनुसार यज्ञ करनेवाला होता (सत्तः) बैठ गया है, तथा उसने (आनुषक्) एक साथ (बर्हिः तितिरे) आसन बिछा दिए हैं, तथा (प्रातः) सबेरे सबेरे उसने (अद्रयः अयुज्रन्) पत्थर आपसमें मिलाये हैं ॥ २ ॥

[४०७] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (ब्रह्मवाहः इमा ब्रह्म क्रियन्ते) स्तोता इन स्तुतियोंको करते हैं, इसलिए तू (बर्हिः आसीद) इस आसन पर बैठ, तथा (पुरोळाशं वीहि) पुरोडाशको खा ॥ ३ ॥

[४०८] हे (गिर्वणः वृत्रहन् इन्द्र) स्तुतियोंसे प्रशंसनीय तथा वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (नः) हमारे (एषु सवनेषु) इन यज्ञोंमें (स्तोमेषु) स्तोत्रोंमें तथा (उक्थेषु) मंत्रोंमें (रारन्धि) रमण कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू दूरके और पासके देशोंसे हमारे द्वारा बुलाया जाता है, इसलिए तू सब जगहसे आकर हमारी प्रार्थनाको सुन और सोमको पीकर बढ ॥ ७-९ ॥

हे इन्द्र ! सूर्योदयके बाद तेरे लिए यज्ञ किए जाते हैं, ये सभी यज्ञ ऋतुओंके अनुसार होते हैं। इन यज्ञोंमें तेरे लिए सोम रस तैय्यार किया जाता है, इसलिए तू हमारी तरफ आ ॥ १-२ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारे इन यज्ञोंमें आकर आनन्दित हो और हमारे द्वारा दी गई आहुतियोंको खाता हुआ हमारी स्तुतियां सुन ॥ ३-४ ॥

x

४०९ मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥
४१० स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
४११ वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
४१२ मारे अस्मद् वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
४१३ अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥

[४२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री ।]

४१४ उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
४१५ तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिःष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥

अर्थ— [४०९] (मतयः) ये हमारी स्तुतियां (सोमपां उरुं) सोमको पीनेवाले, महान् तथा (शवसः पतिं इन्द्रं) बलोंके स्वामी इन्द्रको (मातरः वत्सं न) जैसे गायें अपने बछडोंको चाटती हैं, उसी प्रकार (रिहन्ति) प्रेम करती हैं ॥ ५ ॥

[४१०] हे इन्द्र ! (सः) वह तू (महे राधसे) बहुत धन देनेके लिए (अन्धसः) सोमरूपी अन्नसे तथा (तन्वा) पुष्ट शरीरसे (मन्दस्व) आनन्दित कर । तथा (स्तोतारं न निदे करः) स्तोताको निन्दाका पात्र न बना ॥ ६ ॥

[४११] हे (वसो इन्द्र) सबको बसानेवाले इन्द्र ! (हविष्मन्तः त्वायवः वयं) हविसे युक्त तथा तेरी इच्छा करनेवाले हम (जरामहे) तेरी स्तुति करते हैं, (उत) और (त्वं अस्मयुः) तू हमारे ऊपर कृपा करनेवाला हो ॥ ७ ॥

[४१२] हे (स्वधा-वः हरिप्रिय इन्द्र) अन्नोंको धारण करनेवाले तथा घोडोंको प्रिय लगनेवाले इन्द्र ! (अर्वाङ् आयाहि) तू हमारे पास आ और (अस्मत् आरे मा वि मुमुचः) अपने घोडोंको हमसे दूर जाकर न खोल, अपितु तू (इह मत्स्व) यहां हमारे पास ही आनन्दित हो ॥ ८ ॥

[४१३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (घृतस्नू केशिना) पसीनेसे युक्त तथा उत्तम अयालवाले घोडे (त्वा) तुझे (अर्वाचं) हमारी तरफ (बर्हिः आसदे) आसन पर बैठनेके लिए (सुखे रथे आ वहताम्) सुखदायक रथमें ले आवें ॥९ ॥

[४२]

[४१४] हे इन्द्र ! (अस्मयुः) हमें चाहनेवाला तथा (हरिभ्यां) दो घोडोंसे युक्त (यः ते) जो तेरा रथ है उससे (नः सुतं) हमारे द्वारा निचोडे गये (गवाशिरं सोमं) गौ दुग्धसे मिश्रित सोमके (उप) पास (आ गहि) आ ॥ १ ॥

[४१५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (ग्रावभिः सुतं) पत्थरोंसे पीसे गए (बर्हिःष्ठां) यज्ञमें स्थापित (मदं आ गहि) इस आनन्द दायक सोमकी तरफ आ, तथा (कुवित् अस्य) बहुत बार इसे पीकर (तृष्णवः) तृप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! ये हमारी स्तुतियां, जिस प्रकार बछडेको उसकी मां चाटती है और प्रेम करती है, उसी तरह, तुझसे प्रेम करती हैं, इसलिए तू पुष्ट शरीरसे बहुत धन देनेके लिए हमारे पास आ और हम स्तोताओंको निन्दाका पात्र मत बना ॥ ५-६ ॥

हे उत्तम घोडोंको पालन करनेवाले इन्द्र ! तू हमारे पास आ, हमसे दूर मत जा, हम तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू हम पर कृपा कर । तेरे उत्तम बालोंवाले घोडे भी तुझे हमारे पास ले आवें ॥ ७-९ ॥

हे इन्द्र ! हमसे प्रेम करनेवाला तू घोडोंसे युक्त होकर हमारे पास आ, तथा हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमको अनेकवार पीकर आनन्दित हो ॥ १-२ ॥

४१६ इन्द्रमित्था गिरो ममा- च्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
४१७ इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
४१८ इन्द्र सोमाः सुता इमे तान् दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
४१९ विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
४२० इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
४२१ तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
४२२ त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥

[४३]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२३ आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठा- स्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हि- स्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥ १ ॥

अर्थ— [४१६] हे इन्द्र ! (इषिताः मम गिरः) प्रेरित की हुई मेरी स्तुतियां (इत्था) इस प्रकार तुझे (सोमपीतये आवृते) सोमपानार्थ लौटा लानेके लिए (इतः) यहांसे तेरे पास (अच्छ अगुः) सीधी जाएं ॥ ३ ॥

[४१७] हम (सोमस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए (इन्द्रं) इन्द्रको (इह) यहां इस यज्ञमें (स्तोमैः हवामहे) स्तोत्रोंसे बुलाते हैं, क्योंकि वह (उक्थेभिः) स्तोत्रोंके द्वारा पहले भी (कुवित् आगमत्) बहुत बार आया है ॥ ४ ॥

[४१८] हे (वाजिनीवसो, शतक्रतो इन्द्र) बलशाली धनसे युक्त, अनेक शुभ कर्म करने हारे इन्द्र ! तेरे लिए (इमे सोमाः सुताः) ये सोम तैय्यार करके रखे गए हैं, (तान् जठरे दधिष्व) उन्हें पेटमें धारण कर ॥ ५ ॥

[४१९] हे (कवे) दूरदर्शी इन्द्र ! हम (त्वा) तुझे (वाजेषु) युद्धोंमें (दधृषं धनंजयं) शत्रुओंको हराने वाले तथा धनोंको जीतनेवालेके रूपमें (हि विद्म) अच्छी तरह जानते हैं, (अध) इसलिए हम (ते) तुझसे (सुम्नं ईमहे) धन मांगते हैं ॥ ६ ॥

[४२०] हे इन्द्र ! तू (वृषभिः आगत्य) बलवान् घोडोंके द्वारा आकर (नः सुतं) हमारे द्वारा निचोडे गए (इमं) इस (गवाशिरं यवाशिरं च पिब) गौ के दूधसे मिले हुए तथा जौ के आटेसे मिश्रित सोमको पी ॥ ७ ॥

[४२१] हे इन्द्र ! (तुभ्यं पीतये) तेरे पीनेके लिए मैं (स्वे ओक्ये) अपने यज्ञस्थानमें (सोमं चोदामि) सोमको प्रेरित करता हूँ । (एषः ते हृदि रारन्तु) यह सोम तेरे हृदयमें रमण करे ॥ ८ ॥

[४२२] हे इन्द्र ! (अवस्यवः कुशिकासः) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले हम कुशिक ऋषिके पुत्र (सुतस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए (प्रत्नं त्वां हवामहे) अत्यन्त प्राचीन तुझे बुलाते हैं ॥ ९ ॥

[४३]

[४२३] हे इन्द्र ! (वन्धुरे-स्थाः) रथमें बैठनेवाला तू (अर्वाङ् उप याहि) हमारे पास आ, तथा (प्रदिवः सोमपेयं) द्युलोकसे लाये गए सोमको पीनेके लिए (तव) अपने (प्रिया सखाया) प्रिय मित्र घोडोंको (बर्हिः उप) यज्ञके पास (वि मुच) खोल, क्योंकि (इमे हव्यवाहः) ये स्तोतागण (त्वां हवन्ते) तुझे बुलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हम सोम पीनेके लिए इन्द्रको इस यज्ञमें बुलाते हैं । वे हमारी स्तुतियां सोमपानके लिए इन्द्रको लौटा लावें ॥ ३-४ ॥

हे ज्ञानवान् इन्द्र ! तुझे हम युद्धोंमें शत्रुओंको हरानेवाले तथा उनके धनोंको जीतनेवालेके रूपमें ही जानते हैं, इसी-लिए तुमसे हम संरक्षण और धन मांगते हैं । तुझे हम सोमरस समर्पित करते हैं । उन्हें तू पी ॥ ५-६ ॥

हे इन्द्र ! सब ज्ञानीजन अपनी संरक्षणकी इच्छासे तुझे सोम पीनेके लिए बुलाते हैं । मैं भी अपने यज्ञमें तुझे सोम समर्पित करता हूँ । इस सोममें तरह तरहके अन्न मिले हुए हैं, तू इन्हें पी और आनन्दित हो ॥ ७-९ ॥

४२४ आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥ २ ॥
४२५ आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥ ३ ॥
४२६ आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद् वन्दनानि ॥ ४ ॥
४२७ कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद् राजानं मघवन्नृजीषिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [४२४] हे इन्द्र ! तू (पूर्वीः चर्षणीन्) बहुतसी प्रजाओंको (अति आ याहि) पार करके तू यहां आ, (नः आशिषः) हमारी यह प्रार्थना है कि (अर्यः हरिभ्यां उप) सबका स्वामी तू घोडोंसे हमारे पास आ। (सख्यं जुषाणाः) तेरी मित्रताकी इच्छा करनेवाली (स्तोमतष्टाः) स्तोताओंके द्वारा की गई (इमाः स्तुतयः) ये स्तुतियां (त्वा हवन्ते) तुझे बुलाती हैं ॥ २ ॥

[४२५] हे (देव इन्द्र) तेजस्वी इन्द्र ! तू (सजोषाः) प्रीतियुक्त होकर (नः नमोवृधं यज्ञं) हमारे अन्नको बढानेवाले यज्ञके पास (हरिभिः तूयं आ याहि) घोडोंसे शीघ्र ही आ। (मधूनां सधमादे) सोमोंके यज्ञमें (घृत-प्रयाः अहं) घी की हविसे युक्त मैं (मतिभिः त्वा जोहवीमि) स्तुतियोंके द्वारा तुझे बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[४२६] हे इन्द्र ! (त्वां) तुझे (वृषणा सुधुरा सु अंगा) बलवान्, अच्छी धुरामें जुटे हुए, मजबूत अंगोंवाले (सखाया एता हरी) तेरे मित्र ये घोडे (आ वहातः) हमारे पास ले आवें। (सखा इन्द्रः) मित्र इन्द्र (धानावत् सवनं जुषाणः) अन्नसे युक्त यज्ञका सेवन करते हुए अपने (सख्युः वन्दनानि शृणवत्) मित्र स्तोता की प्रार्थनाओंको सुने ॥ ४ ॥

[४२७] हे (ऋजीषिन् मघवन्) सरल मार्गसे जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (मा) मुझे (कुवित्) बहुत बार (गोपां करसे) गायोंका पालनेवाला बना, (कुवित्) बहुत बार (जनस्य राजानं) मनुष्योंका राजा बना, तथा (मा) मुझे (कुवित्) बहुत बार (सुतस्य पपिवांसं ऋषिं) सोमको पीनेवाला ऋषि बना तथा (कुवित्) बहुत बार (मे अमृतस्य वस्वः शिक्ष) मुझे क्षय रहित धन दे ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! रथमें बैठनेवाला तू हमारे पास आ, तथा द्युलोकसे लाये गए सोमको पी। अपने घोडोंको यज्ञके पास खोल, क्योंकि ये स्तोतागण तुझे बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! बहुतसी प्रजाओंको छोडकर तू हमारे पास आ और हमें आशिर्वाद दे। हम तेरी मित्रता प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए हम तुझे बुलाते हैं ॥ २ ॥

हे तेजस्वी इन्द्र ! तू हम पर प्रेम करता हुआ हमारे यज्ञके पास आ। सोम यज्ञमें घी की आहुति देनेवाला मैं तुझे बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तुझे अच्छे और बलवान् घोडे हमारे पास लावें। तू अन्नसे युक्त यज्ञोंका सेवन करता हुआ अपने मित्रकी प्रार्थना सुन ॥ ४ ॥

हे सरल मार्गसे जानेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू मुझे अनेक बार गायोंका स्वामी बना, अनेक बार मनुष्योंका राजा बना, अनेक बार सोम पीने वाला ऋषि बना और मुझे क्षय रहित धन दे ॥ ५ ॥

४२८ आ त्वा॑ बृ॒हन्तो॒ हर॑यो युजा॒ना अ॒र्वागि॑न्द्र सध॒मादो॑ वहन्तु ।
प्र ये द्वि॒ता दि॒व ऋ॒ञ्जन्त्याताः॒ सुसं॑मृष्टासो वृष॒भस्य॑ मू॒राः ॥ ६ ॥

४२९ इन्द्र॒ पिब॒ वृष॑धूतस्य॒ वृष्ण॒ आ यं ते॑ श्ये॒न उ॑श॒ते ज॒भार॑ ।
यस्य॒ मदे॑ च्या॒वय॑सि॒ प्र कृ॒ष्टी-र्यस्य॒ मदे॒ अप॑ गो॒त्रा व॒वर्थ॑ ॥ ७ ॥

४३० शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑-म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥ ८ ॥

[४४]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती ।]

४३१ अ॒यं ते॑ अस्तु हर्य॒तः सोम॒ आ हरि॑भिः सु॒तः ।
जु॒षा॒ण इ॑न्द्र॒ हरि॑भिर्न॒ आ ग॒-ह्या ति॑ष्ठ॒ हरि॑तं॒ रथ॑म् ॥ १ ॥

अर्थ— [४२८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (बृहन्तः युजानाः सधमादः) बडे, रथमें जुडे हुए, साथ साथ आनन्दित होनेवाले (हरयः) घोडे (त्वा अर्वाक् आ वहन्तु) तुझे हमारी तरफ ले आवें । (वृषभस्य मूराः) बलवान् इन्द्रके शत्रुओंको मारनेवाले, (सु संमृष्टासः) अच्छी तरह थपथपाये गए ये घोडे (दिवः आताः) द्युलोककी दिशाओंमें (द्विधा) दो प्रकारसे (ऋंजन्तिः) जाते हैं ॥ ६ ॥

[४२९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (उशते ते) सोमकी कामना करनेवाले तेरे लिए (यं) जिस सोमको (श्येनः आ जभार) श्येन ले आया, उस (वृषधूतस्य वृष्णः पिब) पत्थरोंसे पीसे गए बलवर्धक सोमको तू पी । (यस्य मदे प्रकृष्टीः च्यावयसि) जिसके उत्साहमें तू शत्रुके वीरोंको उखाडता है ॥ ७ ॥

[४३०] (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस भरपूर संग्राममें हम (शुनं, नृतमं, शृण्वन्तं) शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले (उग्रं, समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) वीर, युद्धोंमें वृत्रोंको मारनेवाले, (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (मघवानं इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् इन्द्रको (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (हुवेम) बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[४४]

[४३१] (हरिभिः सुतः) ऋत्विजों द्वारा निचोडा गया (हर्यतः) सुन्दर तथा (जुषाणः) सेवन करने योग्य (अयं सोमः) यह सोम (ते अस्तु) तेरे लिए हो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हरिभिः हरितं रथं तिष्ठ) घोडोंसे युक्त हरे रंगके रथपर बैठ और (नः आगहि) हमारी तरफ आ ॥ १ ॥

भावार्थ— बडे बडे रथमें जुडे हुए घोडे तुझे हमारी तरफ ले आवें । इन्द्रके ये शत्रुविनाशी घोडे द्युलोककी सभी दिशाओंमें जाते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! सोमकी कामना करनेवाले तेरे लिए बलवर्धक सोमको देते हैं । इस सोमके उत्साहमें तू शत्रुओंको नष्ट कर ॥ ७ ॥

इन गुणोंके कारण मैं इस श्रेष्ठ, यज्ञमें शुद्ध करनेवाले, उत्तम नेता, प्रार्थनाओंको सुननेवाले, युद्धोंमें वृत्रोंका संहार करनेवाले ऐश्वर्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं ॥ ८ ॥

ऋत्विजों द्वारा निचोडा गया तथा सेवन करने योग्य यह सोम तेरे लिए हो । तू सोम पीनेके लिए उत्तम घोडोंवाले रथपर बैठकर आ ॥ १ ॥

४३२ हर्यन्नुषसमर्चयः सूर्यं हर्यन्नरोचयः ।
विद्वांश्चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ २ ॥

४३३ द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम् ।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥ ३ ॥

४३४ जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुध मा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥ ४ ॥

४३५ इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुत मुद् गा हरिभिराजत ॥ ५ ॥

अर्थ— [४३२] हे (हर्यश्व इन्द्र) घोडोंवाले इन्द्र ! तूने (हर्यन्) पूजे जाते हुए (उषसं अर्चयः) उषाको चमकाया तथा (हर्यन्) पूजे जाते हुए तूने (सूर्यं अरोचयः) सूर्यको प्रकाशित किया; (विद्वान् चिकित्वान्) विद्वान् और सब कुछ जाननेवाला तू हमारी (विश्वाः श्रियः अभिवर्धसे) सभी सम्पत्तिको बढाता है ॥ २ ॥

[४३३] (ययोः हरितोः) जिन तेजस्वी द्यावापृथिवीके बीचमें (भूरि भोजनं) बहुतसा भोजन प्राप्त होता है, तथा (ययोः अन्तः हरिः चरत्) जिन दोनोंके मध्यमें सूर्य विचरता है, ऐसे (हरिधायसं द्यां) किरणोंको धारण करनेवाले द्युलोकको तथा (हरिवर्पसं पृथिवीं) हरी औषधियोंसे युक्त पृथिवीको उस (इन्द्रः अधारयत्) इन्द्रने धारण किया ॥ ३ ॥

[४३४] (वृषा हरितः हर्यश्वः) बलवान्, तेजस्वी तथा हरिनामक घोडोंवाला इन्द्र (जज्ञानः) उत्पन्न होकर (विश्वं रोचनं आभाति) सब लोकोंको प्रकाशित करता है, (हरितं आयुधं धत्ते) चमकीले रंगके शस्त्रको धारण करता है,तथा (बाह्वोः हरिं वज्रं आ) भुजाओंमें चमकीले रंगके वज्रको धारण करता है ॥ ४ ॥

१ बाह्वोः हरितं आयुधं वज्रं धत्ते— इन्द्र अपने हाथोंमें चमकीले रंगके शस्त्र और वज्र धारण करता है । उसके शस्त्रोंपर सोनेका काम हुआ होता है, इसलिए वे चमकीले दीखते हैं ।

[४३५] (इन्द्रः) इन्द्रने (हर्यन्तं अर्जुनं) सुन्दर, शुभ्र, (शुक्रैः अभीवृतं) तेजसे चारों ओरसे युक्त (वज्रं) वज्रको (अपावृणोत्) खोल दिया, तब (हरिभिः) घोडोंकी सहायतासे (हरिभिः अद्रिभिः सुतं) चमकीले पत्थरोंसे पीसे गए सोमको (उत्) और (गाः आजत) गायोंको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे पूजाके योग्य इन्द्र ! तूने उषाओंको प्रकाशित किया, सूर्यको चमकाया । तू बुद्धिमान् और ज्ञानवान् है, तू ही हमारे ऐश्वर्यको बढाता है ॥ २ ॥

द्युलोकमें सूर्य घूमता है और पृथ्वीपर हरी ओषधियां उत्पन्न होती हैं । ऐसे तेजस्वी द्युलोक और पृथ्वीको इन्द्र धारण करता है ॥ ३ ॥

यह तेजस्वी और बलवान् इन्द्र उत्पन्न होकर सब लोकोंको प्रकाशित करता है । चमकीले शस्त्रको धारण करनेवाला यह इन्द्र अपने हाथोंमें तेजस्वी वज्रको धारण करता है ॥ ४ ॥

जब इन्द्रने सफेद और तेजस्वी वज्रको खोला तब उसने गायोंको प्राप्त किया । जब असुरोंने गायोंका अपहरण करके उन्हें छिपा दिया, तब इन्द्रने अपने वज्रको उठाकर असुरोंका नाश किया और वे गायें प्राप्त कीं ॥ ५ ॥

[४५]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- बृहती ।]

४३६ आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभि र्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ॥ १ ॥

४३७ वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृळ्हा चिदारुजः ॥ २ ॥

४३८ गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्याइवाशत ॥ ३ ॥

४३९ आ नस्तुजं रयिं भरां शं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुही न्द्र संपारणं वसु ॥ ४ ॥

[४५]

अर्थ— [४३६] हे इन्द्र ! तू (मन्द्रैः) आनन्द देनेवाले तथा (मयूररोमभिः) मोरके रंगके समान बालवाले (हरिभिः आ याहि) घोडोंसे आ। (पाशिनः विं) जिस प्रकार जाल लिए हुए शिकारी पक्षियोंको पकडते हैं उस प्रकार (त्वा केचिन् मा नियमन्) तुझे कोई न पकडे तथा (धन्वा इव) जिस प्रकार यात्री मरुस्थलको पार करता है उसी प्रकार (तान् इहि) उन्हें पार करके तू यहां आ ॥ १ ॥

[४३७] यह (इन्द्रः) इन्द्र (वृत्रखादः वलंरुजः) वृत्रको खा जानेवाला, वलासुरको मारनेवाला (पुरां दर्मः अपामजः) शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला, पानियोंको प्रेरित करनेवाला, (हर्योः अभिस्वरे) घोडोंको हांकनेके समय (रथस्य स्थाता) रथपर बैठनेवाला (दृळ्हा चित् आरुजः) दृढसे दृढ शत्रुओंको भी नष्ट करनेवाला है ॥ २ ॥

[४३८] हे इन्द्र ! (गंभीरान् उदधीः इव) गहरे समुद्रके समान तथा (सु-गोपा गाः इव) जैसे उत्तम गोपाल गायोंको पुष्ट करता है, उसी तरह तू (क्रतुं पुष्यसि) यज्ञको पुष्ट करता है। (धेनवः यवसं यथा) जैसे गायें जौ खाती हैं, उसी तरह तू सोम पीता है, वे सोम (कुल्याः ह्रदं इव) जिसप्रकार छोटी छोटी नदियां बडे जलाशयमें जाती हैं, उसी प्रकार ये सोम तुझे (आशत) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

[४३९] हे इन्द्र ! (प्रतिजानते अंशं न) जिस प्रकार पिता अपने ज्ञानवान् पुत्रको अपने धनका भाग देता है, उसी प्रकार तू (नः तुजं रयिं आ भर) हमें शत्रुओंको प्रतिबन्ध करनेवाले धन दे। जिसप्रकार मनुष्य (पक्वं फलं वृक्षं) पके हुए फलवाले वृक्षको (अंकी इव) हंसिया लेकर हिलाता है, उसी तरह तू हमें (संपारणं वसु) हमारी इच्छा पूर्ण करनेवाले धन (धूनुहि) दे ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू मोरके समान सुन्दर रंगके अयालोंसे युक्त अपने घोडोंसे. जिस प्रकार यात्री रेगिस्तानको छोडकर हरे भरे प्रदेशमें आते हैं, उसी प्रकार अन्य मनुष्योंको छोडकर हमारे पास आ। जिस प्रकार चिडीमार चिडियोंको पकडते हैं, उस प्रकार तुझे कोई न पकडे ॥ १ ॥

यह इन्द्र वृत्रको खानेवाला, वलासुरको मारनेवाला, शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला, असुरों द्वारा रोके गए पानीको बहनेके लिए प्रेरित करनेवाला, उत्तम रथी और बलवान्से बलवान् शत्रुओंको भी नष्ट करनेवाला है ॥ २ ॥

यह इन्द्र समुद्रके समान विशाल और गंभीर है। जिसप्रकार एक ग्वाला गायोंको पुष्ट करता है उसी तरह यह यज्ञको पुष्ट करता है। जिसप्रकार छोटी छोटी नदियां समुद्रकी तरफ बहती हैं, उसीप्रकार सोम इन्द्रकी तरफ प्रवाहित होते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! तू हमारा पिता है, पालक है, अतः जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रको अपनी सम्पत्तिका भाग देता है, उसी तरह तू भी हमें उत्तम धन दे। अथवा जिस प्रकार हिलाये जानेपर वृक्षसे पके पके फल गिरते हैं और उन्हें खाकर मनुष्य पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार तू हमें उत्तम पदार्थ देकर पुष्ट कर ॥ ४ ॥

४४० स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः ।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ५ ॥

[४६]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४१ युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः ।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणी३न्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥ १ ॥
४४२ महाँ असि महिष वृष्ण्येभि- र्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥ २ ॥
४४३ प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥ ३ ॥

अर्थ— [४४०] हे इन्द्र ! (तू स्वयुः) धनवान् है, (स्व-राट्) अपने तेजसे तू तेजस्वी है, (स्मद्दिष्टिः) अनुशासित तथा (स्व-यशस्तरः असि) बहुत बडी कीर्त्तिवाला है । हे (पुरुष्टुत) बहुतोंसे प्रशंसित इन्द्र ! (सः) वह तू (ओजसा वावृधानः) ओजसे बढता हुआ (नः सु श्रवस्तमः भव) हमारे लिए उत्तम यशसे युक्त हो ॥ ५ ॥

१ स्व-राट् यशस्तरः— जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है, वही अत्यधिक यशवाला होता है ।

[४६]

[४४१] हे इन्द्र ! (युध्मस्य, वृषभस्य) उत्तम योद्धा, बलवान्, (स्वराजः उग्रस्य) धनके स्वामी, वीर, (यूनः स्थविरस्य) तरुण, सबसे बडे, (घृष्वेः) शत्रुओंको मारनेवाले (अजूर्यतः) वृद्ध न होनेवाले (वज्रिणः) वज्र धारण करनेवाले (श्रुतस्य) प्रसिद्ध (महतः) महान् (ते) तेरे (वीर्याणि महानि) पराक्रम भी महान् हैं ॥ १ ॥

[४४२] हे (महिष उग्र) बलवान् और वीर इन्द्र ! तू (महान् असि) महान् है, (धनस्पृत्) धनोंसे तृप्त करनेवाला तू (वृष्ण्येभिः अन्यान् सहमानः) अपने पराक्रमोंसे शत्रुओंको हराता है, (विश्वस्य भुवनस्य एकः राजा) सम्पूर्ण लोकोंका अकेलाही राजा (सः) वह तू (योधय) युद्ध कर (च) और (जनान् क्षयय) शत्रुजनोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

[४४३] (रोचमानः विश्वतः अ-प्रति-इतः ऋजीषी) तेजस्वी, किसीसे भी न हारनेवाला, सरल मार्गसे जानेवाला इन्द्र (मात्राभिः प्र रिरिचे) मापनेवाले साधनोंसे भी बडा है, (देवेभिः मज्मना प्र) देवोंके बलसे भी वह बडा है, (दिवः पृथिव्याः प्र) द्यु और पृथिवीसे भी वह बडा है तथा (उरोः महो अन्तरिक्षात्) विस्तृत और महान् अन्तरिक्षसे भी वह बडा है ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने ही तेजसे तेजस्वी है, अपने ही बलसे धनवान् है, इसीलिए वह उत्तम यशवाला है । वह स्वयं अनुशासनमें रहकर दूसरोंको भी अनुशासनमें रखता है । वह स्वयं भी तेजसे बढता हुआ मनुष्योंको भी बढाता है ॥ ५ ॥

उत्तम योद्धा, बलवान्, धनके स्वामी, वीर, तरुण, सबसे बडे, शत्रुओंको मारनेवाले, वृद्ध न होनेवाले, वज्र धारण करनेवाले और प्रसिद्ध इस इन्द्रके पराक्रम भी महान् हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू बलवान् और वीर होनेके कारण महान् है । धनोंसे तृप्त करनेवाला तू अपने पराक्रमसे शत्रुओंको हराता है । तू सम्पूर्ण भुवनोंका एक ही राजा है । तू भुवनोंकी रक्षा करनेके लिए शत्रुओंको मार ॥ २ ॥

तेजस्वी, किसीसे भी न हारनेवाला तथा सरल मार्गसे जानेवाला इन्द्र बहुत महान् है, इसलिए उसे मापा नहीं जा सकता । देवोंके बलसे भी उसका बडा बल है अर्थात् उसे देव भी नहीं पा सकते, द्यु और पृथ्वीसे भी वह बडा है और विस्तृत और महान् अन्तरिक्षसे भी वह बडा है ॥ ३ ॥

४४४ उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥ ४ ॥
४४५ यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता बिभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥ ५ ॥

[४७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४६ मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥ १ ॥
४४७ सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाऽथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥ २ ॥

अर्थ—[४४४] (उरुं गभीरं) महान्, गंभीर (जनुषा उग्रं) जन्मसे वीर (विश्वव्यचसं) विश्वको व्यापनेवाले (मतीनां अवतं) बुद्धियोंके भण्डार (इन्द्रं) इन्द्रको (प्रदिवि सुतासः सोमासः) द्युलोकमें निचोडे गए सोम (स्रवतः समुद्रं न) नदियां जिसतरह समुद्रको प्राप्त होती हैं, उसी तरह (आ विशन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

[४४५] हे इन्द्र ! (त्वाया) तेरी कामनासे (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी (यं सोमं) जिस सोमको (माता गर्भं न) जिस तरह माता गर्भको धारण करती है, उसी प्रकार (बिभृतः) धारण करते हैं, हे (वृषभ) बलवान् इन्द्र ! (तं) उस सोमको (ते पातवै) तेरे पीनेके लिए (अध्वर्यवः) अध्वर्यु (हिन्वन्ति) कूटते हैं और (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

[४७]

[४४६] हे इन्द्र ! (मरुत्वान् वृषभः) मरुतोंसे युक्त तथा बलवान् तू (रणाय, मदाय) रणके लिए और आनन्दके लिए (सोमं अनुष्वधं पिब) सोमको इच्छानुसार पी। (मध्वः ऊर्मिं जठरे आ सिंचस्व) सोमकी लहरको पेटमें डाल। (त्वं) तू (दिवः सुतानां) द्युलोकके सोमोंका (राजा असि) राजा है ॥ १ ॥

[४४७] हे (वृत्रहा, शूर, विद्वान् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले, शूर तथा विद्वान् इन्द्र ! (सगणः मरुद्भिः सजोषाः) गणोंके साथ तथा मरुतोंसे युक्त होकर तू (सोमं पिब) सोम पी। (शत्रून् जहि) शत्रुओंको मार, (मृधः अपनुदस्व) शत्रुओंको दूर कर तथा (नः) हमें (विश्वतः अभयं कृणुहि) सब ओरसे भयरहित कर ॥ २ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र महान्, गंभीर, जन्मसे ही वीर, सर्वव्यापक, बुद्धियोंका भण्डार है ॥ ४ ॥

इन्द्रके द्वारा अभिलषित सोमको द्युलोक और पृथ्वीलोक उसी प्रकार धारण करते हैं, जिस प्रकार माता गर्भको धारण करती है। सोमको अध्वर्युगण कूट पीस कर शुद्ध करके उसका रस तैय्यार करते हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला तू युद्ध करनेके लिए और आनन्दके लिए सोम पी। यह सोम द्युलोकका राजा है ॥ १ ॥

हे वृत्रको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! तू मरुतोंके साथ सोम पी, उत्साहित होकर शत्रुओंको मार, शत्रुओंको दूर कर और हमें सब ओरसे भयरहित कर ॥ २ ॥

×

४४८ उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोम—मिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वा—ऽन्वहन् वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥ ३ ॥
४४९ ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन् ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥ ४ ॥
४५० मरुत्वन्तं वृषभं वावृधान—मकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायो—ग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ५ ॥

[४८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५१ सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥ १ ॥

अर्थ— [४४८] हे (ऋतुपाः इन्द्र) ऋतुओंके पालन करनेहारे इन्द्र ! तू (सखिभिः देवेभिः) अपने मित्र देवोंके साथ तथा (ऋतुभिः) मरुतोंके साथ (नः सुतं पिब) हमारे सोमको पी । (यान् मरुतः आभजः) जिन मरुतोंकी सहायता तूने प्राप्त की, (ये त्वा अनु) जिन्होंने तेरी सहायता की, तथा (वृत्रं अहन्) वृत्रको तूने मारा, ऐसे मरुतोंने (तुभ्यं ओजः अदधुः) तुझमें ओज स्थापित किया ॥ ३ ॥

[४४९] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (ये) जिन्होंने (त्वा) तुझे (अहिहत्ये) अहिको मारनेवाले युद्धमें (अवर्धन्) बढाया, हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र ! (शाम्बरे) शम्बरके साथ होनेवाले युद्धमें तुझे बढाया तथा (ये विप्राः) जो बुद्धिमान् मरुत (त्वा) तुझे (गविष्टौ) गाय सम्बन्धी होनेवाले युद्धमें (अनुमदन्ति) उत्साहित करते हैं, उन (सगणः मरुद्भिः) गणोंके साथ तथा मरुतोंके साथ तू (सोमं पिब) सोम पी ॥ ४ ॥

[४५०] (मरुत्वन्तं वृषभं) मरुतोंसे युक्त, बलवान्, (वावृधानं अकवारिं) बढनेवाले, अवर्णनीय, (दिव्यं शासं) दिव्यशासक (विश्वासाहं) सब शत्रुओंको हरानेवाले, (उग्रं सहोदां) वीर तथा बलको देनेवाले (इन्द्रं) उस इन्द्रको हम (नूतनाय अवसे) नये रक्षणके लिए (इह हुवेम) यहां बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[४८]

[४५१] (सद्यः जातः वृषभः कनीनः ह) उत्पन्न होते ही यह तत्कालही महाबलवान् और सुन्दर और उत्साही तरुण जैसा हुआ । (सुतस्य अन्धसः प्रभर्तुं आवत्) सोमरसरूपी अन्नको दान करनेवालेका उसने तत्काल रक्षण किया हे इन्द्र ! (प्रतिकामं) इच्छा होते ही (यथा ते) जैसी तेरी इच्छा होगी उस प्रकार (सोम्यस्य साधोः रसाशिरः) सोमरसके अन्दर मिलाये गौके दुग्धके उत्तम मिश्रणका (प्रथमं पिब) सबसे प्रथम पान कर ॥ १ ॥

१ सद्यः जातः वृषभः कनीनः— प्रकट होते ही बलवान् और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बनो । निरुत्साही, मंद अथवा हताश बनना योग्य नहीं है ।

भावार्थ— हे ऋतुओंका पालन करनेवाले इन्द्र ! तू अपने मित्र देवों और मरुतोंके साथ सोम पी । मरुतोंने ही तुझमें तेज स्थापित किया है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! जिन मरुतोंने अहिके साथ होनेवाले संग्राममें तेरी शक्ति बढाई, शम्बरासुरके साथ होनेवाले संग्राममें तुझे बढाया, गायोंको प्राप्त करनेवाले युद्धमें तुझे बढाया, उन मरुतोंके साथ तू सोम पी ॥ ४ ॥

मरुतोंकी सहायताको प्राप्त करनेवाले, बलवान्, बढनेवाले, अवर्णनीय, दिव्यशासक, शत्रुओंको हरानेवाले, बल देनेवाले इन्द्रको हम अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं ॥ ५ ॥

इन्द्र प्रकट होतेही बलवान् और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बना और वह सोमरस देनेवालोका संरक्षण करने लगा । हे इन्द्र ! यह सोमरस गौका दूध मिलाकर तैयार किया है । जिस समय इच्छा हो उस समय अपनी इच्छानुसार इसका पान कर ॥ १ ॥

४५२ यज्जायथास्तदहरस्य कामें ऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रें ॥ २ ॥

४५३ उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद् गृत्सो अन्यान् महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥ ३ ॥

४५४ उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूया ऽऽमुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥ ४ ॥

अर्थ—[४५२] हे इन्द्र ! (यत् जायथाः) जब तू प्रकट हुआ (तत् अहः) उसी दिन (कामे) पीनेकी इच्छा होनेपर (अस्य अंशोः गिरिष्ठां पीयूषं अपिबः) इस सोमका पर्वतपर रहनेवाला यह अमृत तूने पिया था। (ते जनित्री योषा माता) तेरी जननी स्त्री माता (महः पितुः दमे) तेरे बडे पिताके घरमें, प्रसूति गृहमें (अग्रे परि आसिचत्) सबसे प्रथम तेरे मुखमें इस सोमरसको थोडा थोडा डालती थी ॥ २ ॥

[४५३] वह इन्द्र (मातरं उपस्थाय) माताके पास जाकर (अन्नं ऐट्ट) अन्न मांगने लगा । तब उसने (ऊधः तिग्मं सोमं अपश्यत्) अपनी माताके स्तनोंमें तीक्ष्ण सोमको ही देखा । यह (गृत्सः) इन्द्र आगे (अन्यान् प्रच्यावयत् अचरत्) अन्य शत्रुओंको स्वस्थानसे उखाडने लगा और स्वयं आगे बढने लगा । पश्चात् (पुरुधप्रतीकः) अनेक रूपोंको धारण करनेवाले उसी इन्द्रने (महानि चक्रे) बडे बडे महत्त्वके पराक्रमके कर्म किये ॥ ३ ॥

[४५४] (एषः उग्रः) यह इन्द्र उग्रवीर है, (तुरा-षाट् अभिभूति-ओजाः) शीघ्रतासे शत्रुका पराभव करनेवाले और शत्रुका नाश करनेके अद्भुत सामर्थ्यसे युक्त है । वह (यथावशं तन्वं चक्रे) इच्छाके अनुसार शरीरके रूप धारण करता है । इस इन्द्रने अपने (जनुषा) जन्मके सामर्थ्यसे ही (त्वष्टारं अभिभूय) त्वष्टाका पराभव किया और (चमूषु सोमं आ-मुष्य) पात्रोंमें रखा सोम अपने पास चुपकेसे लेकर (अपिबत्) पीया ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस मंत्रमें इन्द्रके बालपन तथा जन्म दिवसका वर्णन है । जिस दिन (कश्यपके घरमें) इन्द्रका जन्म हुआ, उसी (तत् अहः) प्रथम दिन स्तनपान करनेके पूर्व इन्द्रकी माताने (अदितिने) इस बालकके मुखमें पर्वतपर उत्पन्न हुए इस सोमरसरूपी अमृतको थोडा थोडा डाल दिया था । इस तरह जन्मने पर पहिले ही दिन दूसरा कुछ पान करनेके पूर्वही इन्द्रने प्रथम सोमरसका पान किया था । अर्थात् वैदिक समयमें बालकके मुखमें सबसे प्रथम सोमरस थोडा थोडा डाला जाता था ॥ २ ॥

इन्द्र बडा हुआ । उसको भूख लगी । वह अन्न मांगने लगा । उसने माताके स्तनोंमें सोमकोही दूधके रूपमें देखा । इन्द्रने उस दूधका पान किया । इससे उसकी शक्ति बढ गई । उस इन्द्रने अन्य शत्रुओंका भगाया, स्वस्थानसे उखाडकर फेंक दिया और स्वयं प्रगति करने लगा । और आगे जाकर इसने बडे बडे पराक्रम किये ॥ ३ ॥

यह इन्द्र दीखनेमें बडा उग्र भयंकर वीरसा दीखता है । यह त्वरासे शत्रुका पराभव करता है, शत्रुपर आक्रमण करनेका सामर्थ्य इसका बडा भारी है । अपनी इच्छाके अनुसार यह अपने शरीरको बनाता है, अनेकरूप धारण करके यह अनेक कार्य करता है । जन्मते ही इसने त्वष्टाका पराभव किया और वहां यज्ञमें अनेक पात्रोंमें भरा हुआ सोम चुपकेसे अपने ताबेमें लेकर उस सोमरसको उसने तत्काल ही पिया ॥ ४ ॥

४५५ शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

[४९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५६ शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥ १ ॥

४५७ यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥ २ ॥

अर्थ— [४५५] (अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (शुनं) सुखकारी, उत्साही (मघवानं नृतमं इन्द्रं) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको (ऊतये) हम अपनी सहायताके लिये (हुवेम) बुलाते हैं। वह (शृण्वन्तं उग्रं) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है। वह (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंको, असुरोंका वध करता है, और (धनानां संजितं) धनोंको जीतता है ॥ ५ ॥

[४९]

[४५६] (यस्मिन्) जिस इन्द्रके पास (विश्वाः सोम-पाः कृष्टयः) सब सोम पीनेवाली प्रजायें (कामं अव्यन्) अभिलाषाकी पूर्तिके लिए जाती हैं, तथा (धिषणे देवाः) धारण करनेवाली द्यावापृथिवी तथा सब देव (यं सुक्रतुं, विभ्वतष्टं) जिस उत्तम कर्म करनेवाले, अत्यन्त रूपवान् तथा (वृत्राणां घनं) वृत्रोंको मारनेवाले इन्द्रको (जनयन्त) प्रसन्न करते हैं उस (महां इन्द्रं शंस) महान् इन्द्रकी स्तुति करो ॥ १ ॥

१ विश्वाः कृष्टयः कामं अव्यन्— सारी प्रजायें अपने मनोरथकी पूर्तिके लिए इसी इन्द्रके पास आती हैं।

[४५७] (पृतनासु) युद्धोंमें (यं स्वराजं) जिस तेजस्वी, (नृतमं हरिष्ठां) उत्तम नेता तथा घोडोंके रथमें बैठनेवाले इन्द्रसे कोई भी (द्विता नकिः तरति) अपने दुहरे व्यवहारके द्वारा पार नहीं पा सकता, (इनतमः पृथुज्रयाः यः) उत्तम स्वामी और संग्रामकी तरफ वेगसे जानेवाला जो इन्द्र अपने (सत्वभिः शूषैः) सत्वगुणवाले बलोंसे (दस्योः आयुः अमिनात्) दस्युकी आयुको कम करता है ॥ २ ॥

१ इनतमः पृथुज्रयाः सत्वभिः शूषैः दस्योः आयुः अमिनात्— श्रेष्ठ स्वामी, संग्राममें जानेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे दुष्टकी आयु नष्ट करता है। दुष्टोंको मारता है।

भावार्थ— इस मंत्रमें (शुनं)सुखदायी, (मघवा) धनवान्, (नृतमः) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (उग्रः) उग्रवीर, (वृत्राणि घ्नन्) असुरोंका वधकर्ता, (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं। ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

यह इन्द्र सोमपान करनेवाली अर्थात् यज्ञमें सोमकी आहुति देनेवाली प्रजाओंकी हर अभिलाषाको पूर्ण करता है। यह इन्द्र उत्तम कर्म करनेवाले, रूपवान् और शत्रुओंका संहार करनेवाला है इसलिए सभी लोक और देव इस इन्द्रको प्रसन्न करते हैं ॥ १ ॥

युद्धोंमें अपने तेजको प्रकट करनेवाले श्रेष्ठ नेता इस इन्द्रसे अन्दरसे कुछ और बाहरसे कुछ और इस प्रकार दो तरहका व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना बचाव नहीं कर सकता। क्योंकि अपने श्रेष्ठ बलोंसे युक्त यह इन्द्र ऐसे दुष्टोंकी आयु कम कर देता है अर्थात् उन्हें मृत्युकी तरफ भेज देता है ॥ २ ॥

४५८ सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥ ३ ॥
४५९ धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान् ।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥ ४ ॥
४६० शुनं हुवेम मघवानमिन्द्र- मस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ५ ॥

[५०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४६१ इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोम आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नै- रास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥ १ ॥

अर्थ— [४५८] वह इन्द्र (सहावा) बलवान् (पृत्सु अर्वा तरणिः) संग्रामोंमें घोडेके समान शत्रुओंको पार कर जानेवाला, (रोदसी व्यानशिः) द्यावापृथिवीको व्यापनेवाला, (मेहनावान्) अत्यन्त धनवान् (कारे भगः न हव्यः) यज्ञमें भग देवताके समान बुलाने योग्य, (मतीनां पिता इव) बुद्धियोंका पिताके समान पालन करनेवाला; (सु-हवः वयो-धाः) उत्तम प्रकारसे सहाय्यार्थ बुलाया जानेवाला तथा अन्नको धारण करनेवाला है ॥ ३ ॥

१ सहा-वा— शत्रुका पराभव करनेवाले बलसे युक्त ।
२ पृत्सु तरणिः— युद्धोंमें शत्रुओंको पार करके जानेवाला ।
३ मतीनां पिता— बुद्धियोंका रक्षक ।

[४५९] वह इन्द्र (दिवः रजसः धर्ता) द्युलोक और अन्तरिक्षको धारण करनेवाला, (पृष्ट) व्यापक, (रथः न ऊर्ध्वः वायुः) रथके समान ऊपरकी तरफ गति करनेवाला, (वसुभिः) धनोंसे युक्त, (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त (क्षपां वस्ता) रात्रीको वसानेवाला (सूर्यस्य जनिता) सूर्यको उत्पन्न करनेवाला, तथा (वाजं भागं धिषणा इव विभक्ता) अन्नके भागको बुद्धिपूर्वक बांटनेवाला है ॥ ४ ॥

[४६०] (अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (शुनं) सुखकारी, उत्साही (मघवानं नृतम इन्द्रं) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको हम अपनी (ऊतये) सहायताके लिये (हुवेम) बुलाते हैं। वह (शृण्वन्तं उग्रं) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है; वह (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंका, असुरोंकी वध करता है और (धनानां संजितं) धनोंको जीतता है ॥ ५ ॥

[५०]

[४६१] (यस्य सोमः) जिसका यह सोम है ऐसा वह (इन्द्रः) इन्द्र (स्वाहा पिबतु) समर्पणपूर्वक दिए गए सोमको पीवे । (तुम्रः वृषभः मरुत्वान्) शत्रुओंका हिंसक, बलवान्, मरुतोंसे युक्त (उरुव्यचाः) और महान् यशवाला वह इन्द्र (आगत्य) हमारे पास आकर (एभिः अन्नैः आ पृणतां) इन अन्नोंसे तृप्त हो और (हविः) हमारी हवि भी (अस्य तन्वः) इसके शरीरको (कामं ऋध्याः) यथेच्छ बढावे ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र बलवान्, शत्रुओंका संहारक, सर्वत्र व्याप्त, धनवान् और बुद्धियोंका पालक तथा उत्तम अन्नोंको धारण करनेवाला है । इन्द्रकी स्तुति करनेसे बुद्धि उत्तम और तीक्ष्ण होती है ॥ ३ ॥

यह इन्द्र द्यु तथा अन्य लोकोंको धारण करनेवाला, सदा उन्नतिकी तरफ गति करनेवाला, रात्रिका उत्पादक साथ ही सूर्यको उत्पन्न करनेवाला है ॥ ४ ॥

इस मंत्रमें (शुनं) सुखकारी, (मघवा) धनवान्, (नृतमः) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (उग्रः) उग्रवीर, (वृत्राणि घ्नन्) असुरोंका वधकर्ता, (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं । ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

४६२ आ ते॑ सप॒र्यू ज॒वसे॑ युनज्मि॒ य॒योरनु॑ प्र॒दिव॑: श्रु॒ष्टिमाव॑: ।
इ॒ह त्वा॑ धेयु॒र्हर॑यः सुशिप्र॒ पिबा॒ त्व१॒॑स्य सुषु॑तस्य॒ चारो॑: ॥ २ ॥

४६३ गोभि॑र्मिमि॒क्षुं द॑धिरे सुपा॒र॒मिन्द्रं॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ धाय॑से गृणा॒नाः ।
म॒न्दा॒नः सोमं॑ पपि॒वाँ ऋ॑जीषि॒न्त्सम॒स्मभ्यं॑ पुरु॒धा गा इ॑षण्य ॥ ३ ॥

४६४ इ॒मं कामं॑ मन्दया॒ गोभि॒रश्वै॑श्च॒न्द्रव॑ता॒ राध॑सा प॒प्रथ॑श्च ।
स्व॒र्यवो॑ म॒तिभि॒स्तुभ्यं॒ विप्रा॒ इन्द्रा॑य॒ वाह॑: कुशि॒कासो॑ अक्रन् ॥ ४ ॥

४६५ शु॒नं हु॑वेम म॒घवा॑न॒मिन्द्र॑म॒स्मिन्भरे॒ नृत॑मं॒ वाज॑सातौ ।
शृ॒ण्वन्त॑मु॒ग्रमू॒तये॑ स॒मत्सु॒ घ्नन्तं॑ वृ॒त्राणि॑ सं॒जितं॒ धना॑नाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४६२] हे इन्द्र ! (ते जवसे) तेरे शीघ्रतासे जानेके लिए (सपर्यू) तेरी उत्तम सेवा करनेवाले घोडोंको [तेरे रथमें] मैं (आ युनज्मि) जोडता हूँ, (ययोः) जिनसे तू (श्रुष्टिं आवः) हमारी सहायताके लिए आ, (हरयः) घोडे भी (त्वा इह धेयुः) तुझे यहां ले आवें, हे (सु-शिप्र) उत्तम ठोढीवाले इन्द्र ! (सु-सुतस्य चारोः अस्य पिब) अच्छी तरह निचोडे गए और उत्तम इस सोमरसको पी ॥ २ ॥

[४६३] (गृणानाः) स्तुति करनेवाले हम (मिमिक्षुं सु-पारं) पानी बरसानेवाले तथा दुःखोंसे अच्छी तरह पार करानेवाले इन्द्रको (ज्यैष्ठ्याय धायसे) श्रेष्ठताके लिए तथा पोषण प्राप्त करनेके लिए (गोभिः दधिरे) गौओंसे धारण करते हैं। हे (ऋजीषिन्) सरल मार्गमें प्रेरित करनेवाले इन्द्र ! (मन्दानः सोमं पपिवान्) आनन्दसे सोमको पीता हुआ तू (अस्मभ्यं पुरुधा गाः सं इषण्यः) हमारी ओर अनेक प्रकारकी गायोंको प्रेरित कर ॥ ३ ॥

[४६४] हे इन्द्र ! (गोभिः अश्वैः चन्द्रवता राधसा) गाय, घोडे और चमकनेवाले धनसे (इमं कामं मन्दय) हमारी इस अभिलाषाको पूर्ण कर। (स्वर्यवः विप्राः कुशिकासः) स्वर्ग जानेकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् कुशिक ऋषिके पुत्र (तुभ्यं इन्द्राय) तुझ इन्द्रके लिए (मतिभिः) अपनी बुद्धियोंके द्वारा (वाहः अक्रन्) स्तोत्र बनाते हैं ॥ ४ ॥

[४६५] (अस्मिन् वाजसातौ भरे) इस अन्नकी प्राप्तिके लिये किये जानेवाले संग्राममें (शुनं) सुखकारी, उत्साही (मघवानं नृतमं इन्द्रं) धनवान् उत्तम नेता इन्द्रको हम अपनी (ऊतये) सहायताके लिए (हुवेम) बुलाते हैं। वह (शृण्वन्तं उग्रं) सबकी बातें सुननेवाला उग्रवीर है; वह (समत्सु वृत्राणि घ्नन्तं) युद्धोंमें वृत्रोंको, असुरोंका वध करता है, और (धनानां संजितं) धनोंको जीतता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— शत्रुओंका विनाश करनेवाला, बलवान् तथा मरुतोंकी सहायता लेनेवाला यह इन्द्र उन्हीं लोगोंके सोमरसको स्वीकार करता है, जो उसे प्रीतिसे समर्पित करते हैं। वह स्वयं सोमरससे तृप्त होकर सोमरसको प्रदान करनेवालेको भी हरतरहसे बढाता है ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! शीघ्रतासे तू जा सके इसलिए मैं तेरे रथमें उत्तम घोडे जोडता हूँ। तू हमारे पास आकर पवित्रतापूर्वक निचोडे गए सोमरसको पी ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू पानी बरसानेवाला तथा दुःखोंसे पार करनेवाला है। उससे श्रेष्ठता और पोषण करनेके लिए हम गायोंको धारण करते हैं। गायोंको पालने और उनके दूधको पीनेसे पुष्टि प्राप्त होती है। इसीलिए, हे इन्द्र ! तू हमारी तरफ गायोंको प्रेरित कर ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! गाय, घोडे और धन देकर हमारे मनोरथोंको पूर्ण कर। अपनी अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिए कुशिक ऋषिके पुत्र तेरी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥

इस मंत्रमें (शुनं) सुखदायी, (मघवा) धनवान्, (नृतमः) मानवोंमें श्रेष्ठ नेता (उग्रः) उग्रवीर, (वृत्राणि घ्नन्) असुरोंका वधकर्ता, (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला ये इन्द्रके विशेषण राजाके भी गुण हैं। ये गुण मानवोंको भी अपने अन्दर धारण करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

[५१]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप्, १-३ जगती, १०-१२ गायत्री ।]

४६६ चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥ १ ॥

४६७ शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥ २ ॥

४६८ आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥ ३ ॥

---

[५१]

अर्थ— [४६६] (चर्षणीधृतं उक्थ्यं, वावृधानं) प्रजाओंको धारण करनेवाले, प्रशंसनीय, बढानेवाले, (पुरुहूतं अमर्त्यं) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले, अमर (जरमाणं इन्द्रं) स्तुतिके योग्य इन्द्रकी हमारी (बृहती गिरः) बडी वाणियां (सुवृक्तिभिः अभि अनूषत) उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करती हैं ॥ १ ॥

[४६७] (शतक्रतुं अर्णवं) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले, जलसे युक्त (शाकिनं, नरं) सामर्थ्यशाली, नेता (वाजसनिं पूर्भिदं) अन्न प्राप्त करानेवाले, शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले (तूर्णिं अप्-तुरं) शीघ्रतासे जानेवाले, जलोंको प्रेरित करनेवाले, (धाम-साचं अभि-षाचं) तेजसे युक्त, शत्रुओंको हरानेवाले (स्वः-विदं इन्द्रं) सुखको जाननेवाले इन्द्रको (मे गिरः विश्वतः उपयन्ति) मेरी स्तुतियां सब ओरसे प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥

[४६८] (जरिता) शत्रुओंको क्षीण करनेवाला इन्द्र (वसोः आकरे) धन प्राप्त होनेवाले युद्धमें (पनस्यते) प्रशंसित होता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र (अनेहसः स्तुभः दुवस्यति) निष्पाप स्तुतियोंको अपनाता है । वह (विवस्वतः सदने आ हि पिप्रिये) विवस्वान्‌के घर आकर प्रसन्न होता है । हे मनुष्य ! तू (सत्रासाहं) एकत्रित हुए शत्रुओंको भी हरानेवाले तथा (अभिमातिहनं) अभिमानियोंका नाश करनेवाले इन्द्रकी (स्तुहि) स्तुति कर ॥ ३ ॥

१ इन्द्रः अनेहसः स्तुभः दुवस्यति— इन्द्र निष्पाप स्तुतियोंको ही अपनाता है ।

२. अभिमातिहनः— यह इन्द्र घमण्डियोंका नाश करनेवाला है ।

भावार्थ— यह इन्द्र मनुष्योंका भरण पोषण करके उनको धारण करनेवाला, प्रशंसाके योग्य और अमर है । उसे सब अपनी स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं ॥ १ ॥

यह इन्द्र सैकडों तरहके शुभ कर्म करनेवाला, वर्षा करनेवाला, सामर्थ्यशाली, सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाला, शत्रुसंहारक, तेजसे युक्त और सुखको जाननेवाला है ॥ २ ॥

यह इन्द्र शत्रुओंको क्षीण करनेवाला है और धन प्राप्त होनेवाले महायुद्धोंमें इसके पराक्रमकी प्रशंसा होती है । यह इन्द्र उन्हीं स्तुतियोंको सुनता है कि जो पापसे रहित और शुद्ध अन्तःकरणसे किए गए होते हैं ॥ ३ ॥

४६९ नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥ ४ ॥
४७० पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥ ५ ॥
४७१ तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्यापिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४६९] (सबाधः) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाले वीर मनुष्य (नृणां नृतमं) मनुष्योंमें उत्तम नेता तथा (वीरं त्वा) वीर तुझ इन्द्रकी (गीर्भिः उक्थैः अभि अर्चत) स्तुति स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं। (पुरुमायः) अनेक गुणोंवाला वह इन्द्र (सहसे सं जिहीते) बलके लिए युद्धके प्रति जाता है, वह (प्रदिवः अस्य नमः) द्युलोकके इस अन्नरूप सोमका (एकः ईशे) अकेलाही स्वामी है ॥ ४ ॥

१ सबाधः नृणां नृतमं वीरं त्वा उक्थैः अभि अर्चत— शत्रुओंका पराजय करनेवाले श्रेष्ठ वीर इन्द्रका स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं।

२ पुरुमायः सहसे सं जिहीते— बहुत कुशलतावाला इन्द्र शत्रुके पराजय करनेके लिये मिलकर यत्न करता है।

३ एकः ईशे— यह एकही सबका स्वामी हैं।

[४७०] (मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः) मनुष्योंमें इसके दान बहुत सारे हैं। इसके कारण (पृथिवी पुरु वसूनि बिभर्ति) पृथिवी बहुतसे धनोंको धारण करती है। इस (इन्द्राय) इन्द्रके कारण ही (द्यावः ओषधीः आपः) द्युलोक, ओषधी, जल (जीरयः उतवनानि रयिं रक्षन्ति) मनुष्य और वन धनकी रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

१ पृथिवी द्यावः ओषधीः आपः जीरयः वनानि रयिं रक्षन्ति— पृथिवी, द्युलोक, औषधि, जल, मानव वन तथा धनका रक्षण करते हैं।

२ मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः— मनुष्योंमें इस इन्द्रके दिए हुए धन बहुतसे हैं।

३ पृथिवी पुरुवसूनि बिभर्ति— इसी इन्द्रके कारण यह पृथिवी अनेक तरहके धन धारण करती है।

[४७१] हे (हरिवः) घोडोंवाले इन्द्र! (तुभ्यं ब्रह्माणि, तुभ्यं गिरः) तेरे लिए स्तोत्र, तेरे लिए स्तुतियां (सत्रा) सब मनुष्य (दधिरे) धारण करते हैं। हे (सखे वसो) मित्र तथा सबको बसानेवाले इन्द्र! (आपिः) सबका भाई तू (नूतनस्य अवसः बोधि) नये नये संरक्षणके साधनको जानता है, तू (जरितृभ्यः वयः धाः) स्तोताओंको अन्न दे ॥ ६ ॥

१ नूतनस्य अवसः बोधि— नये नये रक्षणके साधन जानने चाहिये और अपने पास रखने चाहिये।

भावार्थ— शत्रुओंको नष्ट करनेवाले वीर मनुष्योंमें उत्तम नेता इन्द्रकी प्रार्थना करते हैं। वह अनेक गुणोंसे युक्त है और अपना बल प्रकट करनेके लिए वह युद्धके प्रति जाता है ॥ ४ ॥

मनुष्यके अन्दर जो अनेक प्रकारकी शक्तियां हैं, वे ही धन हैं। ये अमूल्य धन हैं, पर ये शक्तियां शरीरकी न होकर इन्द्र अर्थात् जीवात्माकी हैं। जब तक इस शरीरमें जीवात्मा है, तभी तक इस शरीरमें शक्तियां भी अपना कार्य करती हैं, इसलिए ये शक्तिरूपी धन इन्द्रके ही है, जो मनुष्यमें रहते हैं। पृथिवीमें भी अग्निके रूपमें यह इन्द्रही धनोंको स्थापित करता है। पृथिवीमें यदि इन्द्र अर्थात् उष्णता न हो तो रत्न, सोना, चांदी, तांबा आदि कुछ भी न हो। इसलिए पृथ्वीमें जो कुछ धन है, वह इन्द्रके ही कारण है। उस ऐश्वर्यशाली परमात्माके कारणही द्यु, औषधी, जल आदि धनकी रक्षा करते हैं अर्थात् इनमें जो शक्तियां हैं, वे इनकी अपनी न होकर इन्द्रकी ही हैं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तू सबसे मित्रके समान स्नेह करता और उनका मित्रके समान हित करता है, इसके पास नवीन सुरक्षाके साधन हैं। उनसे वह सबकी रक्षा करता है ॥ ६ ॥

४७२ इन्द्रं मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥ ७ ॥

४७३ स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत् त्वा परि देवा अभूषन् महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥ ८ ॥

४७४ अप्तूर्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥ ९ ॥

अर्थ— [४७२] हे (मरुत्व इन्द्र) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्र ! (यथा शार्यातेः सुतस्य अपिबः) जैसे तूने शर्यातिके पुत्रके यज्ञमें सोम पिया था, वैसे ही तू (इह सोमं पाहि) यहां सोम पी। हे (शूर) शूरवीर ! (तव प्रणीती तव शर्मन्) तेरे अनुशासन तथा तेरे आश्रयमें (सु-यज्ञाः कवयः) उत्तम यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान् (आ विवासन्ति) सुखपूर्वक रहते हैं ॥ ७ ॥

१ तव प्रणीती, तव शर्मन् सुयज्ञाः कवयः आ विवासन्ति— तेरी नीतिमें तथा तेरे आश्रयमें उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी रहते हैं । नीति ऐसी बर्तनी चाहिये कि जिसमें ज्ञानी लोग आकर आनंदसे रहे ।

[४७३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् त्वा) जिस तुझे (जातं) उत्पन्न होते ही (विश्वे देवाः) सब देवोंने (महे भराय) महान् संग्रामके लिए (परि अभूषन्) तैयार किया, हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (वावशानः सः) इच्छा करता हुआ तू (सखिभिः मरुद्भिः) मित्र मरुतोंके साथ (नः सुतं सोमं) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमको (इह पाहि) यहां पी ॥ ८ ॥

१ त्वा जातं विश्वे देवाः महे भराय परि अभूषन्— उत्पन्न होते ही तुझे सब ज्ञानियोंने बडे युद्धके लिये तैय्यार किया-सजाया । युद्धके लिये आवश्यक साधन पास रखे ।

[४७४] (एषः आपिः) यह इन्द्र हमारा भाई है, ऐसे (इन्द्रं) इन्द्रको (दातिवाराः मरुतः) धन देनेकी इच्छा करनेवाले मरुत् (अप्-तूर्ये) संग्राममें (अनु अमन्दन्) हर्षित करते हैं, (वृत्रखादः) वृत्रको खा जानेवाला वह इन्द्र (तेभिः साकं) उन मरुतोंके साथ (दाशुषः स्वे सधस्थे) दान देनेवालेके घरमें (सुतं सोमं पिबतु) निचोडे हुए सोमको पीवे ॥ ९ ॥

१ एष आपिः दातिवाराः अप्तूर्ये अनु अमन्दन्— इस भाईको दानी वीर युद्धमें अनुकूल रहकर आनंदित करते हैं ।

भावार्थ— इस इन्द्रकी नीति और आश्रयमें आकर ज्ञानीजन सुखपूर्वक रहते हैं । यह ज्ञानियोंको संरक्षण देता है । इसीप्रकार राष्ट्रमें भी ज्ञानियोंको भरपूर संरक्षण मिलना चाहिए, ताकि दुष्ट उन्हें दुःख न दे सकें और वे उस राष्ट्रमें सुखसे रह सकें ॥ ७ ॥

इन्द्रके उत्पन्न होतेही देवोंने उसे शत्रुओंसे लडनेके लिए तैय्यारी और सक्षम बनाया । राष्ट्रमें भी इसी तरह कुमारों और तरुणोंको युद्धविद्याकी शिक्षा देकर शत्रुओंसे लडनेके लिए तैय्यार करना चाहिए । जिस राष्ट्रमें तरुण युद्धशील एवं पराक्रमी होते हैं, वह राष्ट्र हमेशा सुरक्षित रहता है ॥ ८ ॥

यह इन्द्र सबका भाई अर्थात् भरणपोषण करनेवाला है, इसीलिए सब मित्र इससे प्रेम करते हैं और युद्धादि आपत्तिके समय इसकी हर तरहसे सहायता करते हैं । इसके सहायक भी मरुत् (मर-उत्) अर्थात् मरनेतक उठकर लडनेवाले हैं । इसी तरह राष्ट्रमें भी राजा सभी प्रजाओंका भरणपोषण करेगा तो प्रजायें भी उससे प्रेम करेंगी और आपत्तिके समय इसके सहायक मित्र उसके लिए प्राण भी अर्पित कर देंगे ॥ ९ ॥

×

४७५ इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥ १० ॥
४७६ यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् । स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥ ११ ॥
४७७ प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः । प्र बाहू शूर राधसे ॥ १२ ॥

[५२]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १-४ गायत्री, ६ जगती ।]

४७८ धानावन्तं करम्भिण—मपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ १ ॥
४७९ पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥ २ ॥

अर्थ- [४७५] हे (राधानां पते गिर्वणः) धनोंके स्वामी तथा वाणीसे स्तुत्य इन्द्र ! (इदं ओजसा सुतं) यह सोम बलपूर्वक निचोडा गया है (तु अस्य पिब) तू इसे पी ॥ १० ॥

[४७६] (यः ते स्वधां असत्) जो सोम तेरे लिए अन्नरूप है, उस (सुते तन्वं नियच्छ) सोमरसमें अपने मुंहको डाल, (सः) वह (सोम्यं त्वा ममत्तु) सोमकी इच्छा करनेवाले तुझे आनंदित करे ॥ ११ ॥

[४७७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! यह सोम (ते कुक्ष्योः प्र अश्नोतु) तेरे दोनों कोखोंको व्याप्त करे, (ब्रह्मणा शिरः) ज्ञानसे मस्तिष्क भरा रहे, हे शूर ! (राधसे बाहू) धनकी प्राप्तिके लिए भुजायें बलवान् हों ॥ १२ ॥

१ ब्रह्मणा शिरः— ज्ञानसे सिर पवित्र हो ।
२ राधसे बाहू— धनके लानेके लिये बाहू तैयार हों ।

[५२]

[४७८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमारे (धानावन्तं, करम्भिणं अपूपवन्तं) लाजा-खीलोंसे युक्त, दहीसे मिले हुए, पुओंसे युक्त (उक्थिनं) प्रशंसनीय इस सोमको (प्रातः जुषस्व) सबेरे पी ॥ १ ॥

१ धानावन्तं करम्भिणं अपूपवन्तं उक्थिनं प्रातः जुषस्व— खीलोंसे मिला, दहीसे युक्त, पुओंके साथ प्रशंसनीय प्रातराश खाओ ।

[४७९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पचत्यं पुरोळाशं) अच्छी तरह पकाये गए इस पुरोडाशको (जुषस्व) खा (च) और (गुरस्व) बलशाली हो, (हव्यानि) ये हव्य (तुभ्यं सिस्रते) तुझे दिये जाते हैं ॥ २ ॥

१ पचत्यं पुरोळाशं जुषस्व गुरस्व च— परिपक्व प्रातराशको खाओ और बलवान् बनो ।

भावार्थ— यह इन्द्र हर तरहके धनका स्वामी है । इसके धन समृद्धि करनेवाले हैं । उत्तम मार्गसे कमाया गया धन ही मनुष्यकी समृद्धिका कारण बनता है । इसलिए मनुष्य सदा उत्तम रीतिसे ही धनार्जन करनेका प्रयत्न करे ॥ १० ॥

सोमरसमें अनेक शक्तियां रहती हैं । इसे नित्य प्रति पीनेसे मस्तिष्कमें ज्ञान भरा रहता है और भुजायें बलसे युक्त होती हैं । वीर जब इस रसको पीते हैं तब वे पराक्रमसे युक्त होते हैं ॥ ११-१२ ॥

मनुष्य धान, दूध दही, तथा अन्य पौष्टिक अन्नोंको खाये और बलवान् बने ॥ १-२ ॥

४८० पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ३ ॥

४८१ पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः । इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥ ४ ॥

४८२ माध्यंदिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम् ।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥ ५ ॥

४८३ तृतीये धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४८०] हे इन्द्र ! (नः पुरोळाशं घसः) हमारे पुरोडाशको खाओ, तथा (वधूयुः योषणां इव) जैसे स्त्रीकी कामना करनेवाला स्त्रीका उपभोग करता है, उसी प्रकार (नः गिरः जोषयासे) हमारी स्तुतियोंका सेवन कर ॥ ३ ॥

[४८१] हे इन्द्र ! (प्रातः सावे) प्रातःकालके यज्ञमें तू (नः) हमारे (सनश्रुतं) प्राचीनकालसे प्रसिद्ध (पुरोडाशं जुषस्व) पुरोडाशको खा, (हि) क्योंकि (ते क्रतुः बृहन्) तेरे कर्म महान् हैं ॥ ४ ॥

१ ते क्रतुः बृहत्— तेरा कार्य महान् है ।

[४८२] हे इन्द्र ! (यत्) क्योंकि (तूर्णि-अर्थः) यज्ञको प्रेरणा देनेवाला (वृषायमाणः) बलवान् तथा (जरिता) तेरी स्तुति करनेवाला (स्तोता) स्तोता (गीर्भिः ईट्टे) अपनी वाणीसे तेरी स्तुति करता है, इसलिए तू (इह) उसके यज्ञमें (माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः) माध्यन्दिन यज्ञकी खीलोंको तथा (चारुं पुरोडाशं) उत्तम पुरोडाश-को (कृष्व) खा ॥ ५ ॥

[४८३] हे (कवे) दूरदर्शी इन्द्र ! तू (तृतीये सवने) तीसरे सवनमें (नः धानाः आहुतं पुरोळाशं) हमारी खीलोंको तथा हवनके योग्य पुरोडाशको (मामहस्व) महत्त्वका अन्न समझकर खा । (प्रयस्वन्तः) अन्न तैयार करनेकी इच्छा करनेवाले हम (ऋभुमन्तं, वाजवन्तं त्वा) ऋभुओंवाले तथा अन्नवाले तेरी (धीतिभिः) स्तोत्रोंसे (उपशिक्षेम) प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

१ नः धानाः आहुतं पुरोळाशं मामहस्व— हमारे खीलोंको तथा स्वीकरणीय पदार्थोंको महत्त्वका अन्न समझकर खा ।

भावार्थ— इन्द्रके सभी कार्य महान् हैं । इसीलिए सभी मनुष्योंकी वाणियां इस इन्द्रकी स्तुति करती हैं और सभी मनुष्य इसे सोमरस प्रदान करते हैं ॥ ३-४ ॥

यह इन्द्र यज्ञको प्रेरणा देनेवाला है । इन्द्र सोमको पीता है और सोमकी आहुति यज्ञमें भी डाली जाती है । लोग इन्द्रको अपने पास बुलानेके लिए यज्ञ करते हैं । इसलिए इन्द्रको यज्ञका प्रेरक कहा गया है । इसी तरह राष्ट्रमें सर्वत्र यज्ञ किये जायें ताकि वहांका राजा हर तरहसे समृद्ध हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारे द्वारा दिए गए अन्नको खा और इसे महत्वका अन्न समझ । हर अन्न महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वह शक्ति प्रदान करता है । इसीलिए अन्नकी सदा प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ६ ॥

४८४ पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ७ ॥

४८५ प्रति धाना भरत तूयमस्मै पुरोळाशं वीरतमाय नृणाम् ।
दिवेदिवे सदृशीरिन्द्र तुभ्यं वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो ॥ ८ ॥

[५३]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- इन्द्रः; १ इन्द्रापर्वतौ; १५,१६ वाक्, (ससर्परी); १७-२० रथाङ्गानि; २१-२४ अभिशापः । छन्दः- त्रिष्टुप्; १०, १६ जगती; १३ गायत्री; १२, २०, २२ अनुष्टुप्; १८ बृहती ।]

४८६ इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ॥ १ ॥

अर्थ— [४८४] हे इन्द्र ! (पूषण्वते, हरिवते, हर्यश्वाय ते) पोषण करनेवाले, कष्टोंको हरनेवाले, तथा हरिनामक घोडोंवाले तेरे लिये हमने (करम्भंः धानाः) दहीमिश्रित सोमको तथा खीलोंको (चकृम) तैय्यार किया है। हे (वृत्रहा, शूर विद्वान्) वृत्रको मारनेवाले, शूरवीर और विद्वान् इन्द्र ! तू (सगणः मरुद्भिः) मरुतोंके साथ (अपूपं अद्धि) पुओंको खा और (सोमं पिब) सोम पी ॥ ७ ॥

[४८५] (अस्मै नृणां वीरतमाय) इस वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ वीरके लिये (धानाः पुरोडाशं तूयं प्रति भरत) खील तथा पुरोडाशको शीघ्र भरपूर दो। हे (धृष्णो इन्द्र) शत्रुओंका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! हम (तुभ्यं) तेरे लिए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) एकत्र साथ बैठकर स्तुति करते हैं, वे स्तुतियां (त्वा सोमपेयाय वर्धन्तु) तुझे सोम पीनेके लिए उत्साहित करें ॥ ८ ॥

१ दिवे दिवे सदृ-शी— प्रतिदिन साथ साथ बैठकर स्तुति करते हैं। साथ बैठकर स्तुति करनेसे समाजकी एकता होती है।

[५३]

[४८६] हे (इन्द्रापर्वता) इन्द्र और पर्वत देवो ! तुम दोनों (बृहता रथेन) विशाल रथसे (सुवीराः) उत्तम सन्तानोंसे युक्त तथा (वामीः इषः) चाहने योग्य धन (आ वहतं) ले आओ, हे (देवा) देवो ! तुम (अध्वरेषु) यज्ञोंमें हमारे द्वारा दी गई (हव्यानि वीतं) आहुतियोंको स्वीकार करो और (गीर्भिः वर्धेथां) हमारी स्तुतियोंसे बढो तथा (इळया मदन्ती) हमारे द्वारा दिए गए अन्नसे आनन्दित होओ ॥ १ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र सबकी पुष्टि करनेवाला और कष्टोंको हरनेवाला है। यही वृत्र अर्थात् शत्रुओंको मारनेवाला शूरवीर तथा विद्वान् है ॥ ७ ॥

यह इन्द्र वीरोंमें सर्वश्रेष्ठ वीर है। यह शत्रुओंका संहार करनेवाला है। इसके लिए सभी एकत्र बैठकर स्तुति करते हैं। एकत्र बैठकर स्तुति करनेसे एकता स्थापित होती है, इसीलिए समाजमें एक जगह बैठकर प्रार्थना करनी चाहिए ॥ ८ ॥

हे इन्द्र और पर्वत देवो ! तुम हमें उत्तम सन्तानसे युक्त धन दो। हमारे पास धन तो हो, पर साथही उसका उपभोग करनेवाले उत्तम पुत्र हों। पुत्र उत्तम हों, कुपुत्र न हों, कुपुत्र धनका नाश कर देते हैं। इसीलिए धनके साथ उत्तम पुत्रकी भी प्राप्ति हो। हम धनवान् होकर प्रतिदिन देवोंकी उपासना भी किया करें और अपनी वाणियोंसे देवोंकी महिमाका गान करें ॥ १ ॥

४८७ तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ॥ २ ॥
४८८ शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीही–न्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।
एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदा–ऽथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥ ३ ॥
४८९ जायेदस्तं मघवन् त्सेदु योनि–स्तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोम–मग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥ ४ ॥
४९० परा याहि मघवन्ना च याही–न्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥ ५ ॥

अर्थ– [४८७] हे (मघवन्) हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू मेरे पास (कं सु तिष्ठ) सुखपूर्वक बैठ, (परा मा गाः) मुझसे दूर मत जा, (नु) क्योंकि मैं (त्वा) तेरे लिए (सु–सुतस्य सोमस्य) अच्छी तरह निचोडे गए सोमका (यक्षि) यज्ञ करता हूँ । हे (शचीवः इन्द्र) शक्तिमान् इन्द्र ! (पुत्रः पितुः न) पुत्र जिसप्रकार पिताका सहारा लेता है उसी प्रकार मैं (स्वादिष्ठया गिरा) तेरी मधुर प्रार्थना करता हुआ (ते सिचं आरभे) तेरा आश्रय लेता हूँ ॥ २ ॥

१ सिचः— आंचल, सहारा ।

१ कं सुतिष्ठ, परा मा गाः— आनंदसे यहां बैठ, दूर न जा ।

[४८८] हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! (मे प्रतिगृणीहि) तू मुझे उत्साहित कर, फिर हम दोनों (शंसाव) इन्द्रकी प्रशंसा करें, तथा (इन्द्राय जुष्टं वाहः कृणवाव) इन्द्रके लिए प्रीतियुक्त स्तोत्रोंको करें । (यजमानस्य इदं बर्हिः आ सीद) यजमानके इस आसन पर बैठ, (अथ) इसके बाद (इन्द्राय शस्तं उक्थं भूत्) इंद्रके लिए प्रशंसनीय स्तोत्र गाया जावे ॥ ३ ॥

[४८९] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (जाया इत् अस्तं) स्त्री ही घर है, (सा इत् योनिः) वहीं घरमें आश्रय स्थान है । (तत् इत्) वहीं पर (त्वा) तुझे (युक्ताः हरयः वहन्तु) रथमें जुडे हुए घोडे ले जावें, हम (यदा कदा च सोमं सुनवाम) जब कभी सोमरस तैय्यार करते हैं, (दूतः अग्निः) दूत अग्नि (त्वा अच्छ धन्वाति) तेरे पास सीधे जाए ॥ ४ ॥

१ जाया इत् अस्तम्— स्त्री ही घर है ।

२ जाया इत् योनिः— स्त्री ही आश्रय है । इतनी स्त्रीकी योग्यता है ।

[४९०] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (परा याहि) दूर जा तथा (आ याहि) पास आ, हे (भ्रातः इन्द्र) भाई इन्द्र ! (उभयत्रा ते अर्थं) दोनों जगह तेरा प्रयोजन है । (यत्र बृहतः रथस्य निधानं) जहां तू अपने महान् रथको रोकता है, वहांपर (रासभस्य वाजिनः विमोचनं) हिनहिनानेवाले अपने घोडोंको खोल ॥ ५ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तू मेरे पास आकर सुखपूर्वक बैठ, मुझसे दूर मत जा और जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रका प्रेमसे पालन करता है, उसी प्रकार तू मेरा पालन कर ॥ २ ॥

इन्द्रकी उपासना उत्साहसे ही की जाए, उससे प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए और उसका हर तरहसे सत्कार किया जाए ॥ ३ ॥

पत्नी ही घर होती है । वही घरमें सब लोगोंका आश्रय स्थान है । स्त्रीके कारण ही परिवारका संगठन होता है । इतनी स्त्रीकी महत्ता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू भले ही दूर चला जा, पर जाकर फिर हमारे पास ही आ । तू हमारा भाई है, इसलिए हमारा भाईके समान प्रेमसे भरणपोषण कर ॥ ५ ॥

४९१ अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥ ६ ॥
४९२ इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥ ७ ॥
४९३ रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् ।
त्रिर्यद् दिवः परि मुहूर्तमागात् स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥ ८ ॥
४९४ महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतो ऽस्तभ्नात् सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदास मप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४९१] हे इन्द्र तू (सोमं अपाः) सोम पी तथा (अस्तं प्रयाहि) घर जा, क्योंकि (ते गृहे कल्याणीः जाया) तेरे घरमें कल्याण करनेवाली स्त्री तेरी प्रतीक्षा कर रही है तथा वहां (सुरणं) सुख भी है। (यत्र बृहत रथस्य निधानं) जहां तू महान् रथको रोकता है, वहीं पर (वाजिनः विमोचनं) घोडोंको खोलकर (दक्षिणावत्) दक्षिणा देनेके लिए उद्यत है ॥ ६ ॥

१ अस्तं प्रयाहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं— तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देनेके लिये तैयार है ।

[४९२] (इमे भोजाः, अंगिरसः विरूपाः) ये भोजन देनेवाले, अंगोंके रसकी विद्या जाननेवाले, अनेक रूपोंवाले (दिवः वीराः असुरस्य पुत्रासः) तेजस्वी तथा वीर रुद्रके पुत्रों मरुतोंने (विश्वामित्राय) विश्वामित्रको (सहस्रसावे मघानि ददतः) यज्ञ करनेके लिए हजारों प्रकारके ऐश्वर्य दिए और (आयुः प्रतिरन्तः) उसकी आयु बढाई ॥ ७ ॥

[४९३] (यत्) जब (अन्-ऋतु-पाः) हमेशा सोमको पीनेवाला (ऋतावा) ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाला इन्द्र (स्वैः मंत्रैः) अपने मंत्रोंसे बुलाया जाकर (दिवः) द्युलोकसे (मुहूर्त) एक ही क्षणमें (त्रिः परि आगात्) तीनों सवनोंमें जाता है, तब (मघवा) ऐश्वर्यवान् वह इन्द्र (मायाः कृण्वानः) कौशल्य करता हुआ (स्वां तन्वं) अपने शरीरको रूपं रूपं परि बोभवीति) अनेक रूपोंवाला बनाता है ॥ ८ ॥

१ मायाः कृण्वानः स्वां तन्वं रूपं रूपं परि बोभवीति— कौशल्यके कार्य करनेवाले इन्द्रने अपने शरीरको अनेक रूपोंवाला बना दिया है ।

[४९४] (महान् देवजाः) महान् देवोंसे उत्पन्न, (देवजूतः, नृचक्षाः) देवोंसे प्रेरित, विद्वान् (विश्वामित्रः ऋषिः) विश्वामित्र ऋषिने (अर्णवं सिन्धुं अस्तभ्नात्) जलसे भरी नदीको रोक दिया, तथा (यत्) जब वह (सुदासं अवहत) सुदासके यज्ञमें गया, तब (कुशिकेभिः इन्द्रः अप्रियायत) कुशिकोंने इन्द्रको अपना प्रेमका स्थान बनाया ॥ ९ ॥

१ विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः— विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान्, देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् हो ।

भावार्थ— कल्याण करनेवाली स्त्री जिस घरमें होती, है, वही घर सुखकारी होता है । जिस घरमें स्त्री प्रिय और मीठी वाणीमें बोलनेवाली होती है, वही घर सुखका घर होता है, उस घरके सब सदस्य सुखसे रहकर स्वस्थ और दीर्घायु होते हैं ॥ ६ ॥

मरुत् वीर हैं और रुद्र अर्थात् शत्रुओंको रुलानेवाले इन्द्रके सहायक हैं । ये सबको अन्न देकर सबका भरणपोषण करते हैं तथा विश्वका मित्रके समान हित करनेवाले तथा मनुष्यों पर मित्रके समान स्नेह करनेवाले महान् पुरुषको हर तरहका ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ७ ॥

ऋतुके अनुसार काम करनेवाला यह इन्द्र अपनी मायाशक्तिके कारण अपने शरीरको अनेक रूपोंमें प्रकट करता है और एक ही क्षणमें तीनों लोकोंमें व्याप्त हो जाता है ॥ ८ ॥

विश्वका हित करनेवाला पुरुष महान् देवोंके उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण मानों उन्हींका पुत्र, सब मनुष्योंके कर्मोंको देखनेवाला हो । ऐसा ही मनुष्य दासका उद्धार करता है ॥ ९ ॥

४९५ हंसाइव कृणुथ श्लोकमद्रिभि — र्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा ।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो　वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु　॥ १० ॥

४९६ उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्व — मश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः ।
राजा वृत्रं जङ्घनत् प्रागपागुद — गथा यजाते वर आ पृथिव्याः　॥ ११ ॥

४९७ य इमे रोदसी उभे　अहमिन्द्रमतुष्टवम् ।
विश्वामित्रस्य रक्षति　ब्रह्मेदं भारतं जनम्　॥ १२ ॥

४९८ विश्वामित्रा अरासत　ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे । करदिन्नः सुराधसः　॥ १३ ॥

अर्थ— [४९५] हे (विप्राः ऋषयः नृचक्षसः कुशिकाः) बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा मनुष्योंका हित करनेवाले कुशिक ऋषिके पुत्रो ! (अध्वरे अद्रिभिः सुते) यज्ञमें पत्थरोंसे सोमको निचोडने पर (सचा) एक साथ बैठकर (हंसाः इव) हंसोंके समान (गीर्भिः श्लोकं कृणुथ) एक स्वरसे स्तोत्र बोलो और (सोम्यं मधु पिबध्वं) उत्तम तथा मीठे सोमरसको पीओ ॥ १० ॥

१ हे विप्राः ! सचा श्लोकं कृणुथ— हे ज्ञानी लोगो ! साथ बैठकर स्तोत्र पाठ करो ।

[४९६] हे (कुशिकाः) कुशिक ऋषिके पुत्रो ! (उप प्र इत) पास आओ (चेतयध्वं) उत्साहित होओ, तथा (सुदासः अश्वं राये प्र मुंचत) सुदासके घोडेको ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिए खोल दो । (राजा) तेजस्वी इन्द्रने (प्राग् अपाग्, उदग्) सामनेसे, पीछेसे तथा ऊपरसे (वृत्रं जंघनत्) शत्रुको मारा, (अथ) बादमें (पृथिव्याः वरे) पृथ्वीके उत्तम स्थानमें वह (यजाते) यज्ञ करता है ॥ ११ ॥

१ उप प्र इत, चेतयध्वम्— पास आकर बैठो और उत्साहित हो जाओ ।

२ राजा प्राग्, अपाग्, उदग् वृत्रं जंघनत्— राजाने सामनेसे, पीछेसे तथा ऊपरसे शत्रुको मारा है ।

[४९७] (यः अहं) जिस मैंने (इमे उभे रोदसी इन्द्रं अतुष्टवम्) इन दोनों द्यावापृथिवीकी तथा इन्द्रकी स्तुति की, मुझ (विश्वामित्रस्य) विश्वामित्रका (इदं ब्रह्म) यह स्तोत्र (भारतं जनं रक्षति) भरत कुलमें उत्पन्न जनोंकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

१ इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति— यह ज्ञान भारतीय जनोंका रक्षण करता है ।

[४९८] (विश्वामित्राः) विश्वामित्रोंने (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिए (ब्रह्म अरासत) स्तोत्र बनाया । वह इन्द्र (नः सुराधसः करत् इत्) हमें उत्तम धनवान् करता ही है ॥ १३ ॥

भावार्थ— ऋषियोंके पुत्र बुद्धिमान्, दूरदर्शी तथा मनुष्योंका हित करते थे और ये सब समाजमें संगठन करके देशकी उन्नति करते थे ॥ १० ॥

जब इन्द्रने चारों ओरके शत्रुओंको मारा; तभी वह यज्ञ कर सका । इसी प्रकार जो राजा अपने चारों ओरके शत्रुओं को नष्ट करता है, तभी वह पृथ्वीके ऊंचे स्थानमें बैठ सकता है अर्थात् अपनी तथा अपने राष्ट्रकी उन्नति कर सकता है ॥ ११ ॥

विश्वसे प्रेम करनेवाला मनुष्य भरणपोषण करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करता है । तथा वीर पराक्रमी इन्द्रकी स्तुति करता है, और उसके गुणोंको अपनेमें धारण करता है ॥ १२-१३ ॥

४९९ किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥ १४ ॥

५०० ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥ १५ ॥

५०१ ससर्परीरभरत् तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥ १६ ॥

अर्थ— [४९९] हे (मघवन्) इन्द्र ! (कीकटेषु गावः ते किं कृण्वन्ति) अनार्य देशोंमें रहनेवाली गायें तेरा क्या लाभ करती हैं ? तेरे लिए (न आशिरं दुह्रे) न दूध दुहती हैं, (न घर्मं तपन्ति) और न यज्ञकी अग्निको प्रदीप्त करती हैं । तू (प्रमगन्दस्य वेदः नः आ भर) सूदखोरके धनको हमारे लिए ले आ । तथा (नः) हमारे लिए तू (नैचाशाखं रन्धय) नीच जातियोंके मनुष्यको वशमें कर ॥ १४ ॥

१ कीकटः— अनार्योंका देश " कीकटा नाम देशोऽनार्यनिवासः " (नि. ६।३२)
२ प्रमगन्दः— सूदखोर, " मगन्दः कुसीदी " (नि. ६।३२)
३ प्रमगन्दस्य वेदः नः आभर— सूदखोरके धनको हमारे पास ले आ ।
४ नः नैचाशाखं रन्धय— हमारे लिये नीच मनुष्का नाश कर ।

[५००] (जमदग्निदत्ता) जमदग्निके द्वारा दी गई तथा (अमतिं बाधमाना) अज्ञानताको नष्ट करनेवाली (ससर्परी) वाणी, विद्या (बृहत् मिमाय) बहुत जोरसे आवाज करती है । (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी पुत्री उषा (देवेषु) देवोंको (अमृतं अजुर्यं श्रवः) अमरता देनेवाली तथा क्षीणतासे रहित अन्नको (आ ततान) प्रदान करती है ॥ १५ ॥

१ जमदग्निः— आंख— " चक्षुर्वै जमदग्निः ऋषिः जगत्पश्यत्यनेन । "

[५०१] (यां) जिसे (मे) मुझे (पलस्तिजमदग्नयः ददुः) पलस्ति जमदग्नियोंने दिया, (सा) वह वाणी-विद्या (पक्ष्या) उत्तम पक्षवाली तथा (नव्यं आयुः दधाना) नवीन आयुको धारण करनेवाली है । (पांचजन्यासु कृष्टिषु श्रवः) पंचजनोंसे युक्त मनुष्योंमें जो धन है, उसे (ससर्परी) विद्या (एभ्यः) इन पंचजनोंसे (तूयं अधि अभरत्) शीघ्र ही ले आई ॥ १६ ॥

भावार्थ— जिस अनार्य देशोंमें इन्द्रादि देवोंके लिए न दूध दिया जाता है और न यज्ञ ही किया जाता है, जहांके मनुष्य ही सारा दूध घी खा जाते हैं, वहां गायोंका कुछ भी फायदा नहीं होता । गायोंका संरक्षण आर्यदेशोंमें इसीलिए होता था कि उसके दुग्ध और घृतसे वे देवोंको हवि प्रदान करते थे और इसीमें गायोंकी सार्थकता थी । इन्द्र सूदखोरोंका शत्रु है, राष्ट्रके सूदखोर विनाशक हैं इसीलिए इन्द्र इनका नाश करता है । इसी प्रकार वह नीच जातियोंके लोगोंको भी नष्ट करता है ॥ १४ ॥

आंख आदि इन्द्रियोंसे प्राप्त की गई विद्यासे अज्ञानताका नाश होता है और जिस समय संसारका चक्षु सूर्य उदय होता है, तब सारा अन्धकार दूर होकर सर्वत्र प्रकाश हो जाता है, इस प्रकार सूर्य भी विद्याका प्रदाता है । इस सूर्यकी पुत्री उषाके उदय होनेपर सभी यज्ञ प्रारंभ हो जाते हैं और उन यज्ञोंमें देवोंको हवि दी जाती है, यह हवि अमरता प्रदान करनेवाली तथा क्षीणतासे रहित होती है ॥ १५ ॥

विद्या सदा ही नवीन और आयु दीर्घ करनेवाली होती है । इसी विद्यासे हर तरहके धनकी एवं अन्नकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

५०२ स्थिरौ गावौं भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।
इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतो-रिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥ १७ ॥
५०३ बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ १८ ॥
५०४ अभि व्ययस्व खदिरस्य सार-मोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।
अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥ १९ ॥
५०५ अयमस्मान् वनस्पति-र्मा च हा मा च रीरिषत् ।
स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ॥ २० ॥

अर्थ— [५०२] (गावौ स्थिरौ भवतां) रथमें जुते हुए बैल स्थिर हों, (अक्षः वीळु) रथकी धुरा दृढ हो (ईषा मा वि वर्हि) रथका दण्ड न टुटे, (युगं मा विशारि) जुआ न टूटे (पातल्ये शरीतः) रथका अक्ष टूटनेसे पहले ही (इन्द्रः ददतां) इन्द्र उस रथको ठीक कर दे, हे (अरिष्टनेमे) न टूटे हुए अक्षवाले रथ! (नः अभि सचस्व) हमें तू प्राप्त हो ॥ १७ ॥

[५०३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः तनूषु बलं धेहि) हमारे शरीरोंमें बल स्थापित कर, (नः अनुळुत्सु बलं) हमारे बैल आदि पशुओंमें बल दे तथा (जीवसे) दीर्घकालतक जीनेके लिए (तोकाय तनयाय बलं) हमारे पुत्र और पौत्रोंमें बल दे, (हि) क्योंकि (त्वं बलदा असि) तू बलका प्रदाता है ॥ १८ ॥

[५०४] हे इन्द्र ! (खदिरस्य सारं) खैरकी लकडीसे बनाये गए इस रथके दण्डेको (अभिव्ययस्व) दृढ कर, तथा (स्पंदने) इस रथके चलते समय (शिंशपायां) शिशपाकी लकडीसे बनाये गए इस रथकी धुरामें (ओजः धेहि) बल स्थापित कर । हे (वीळो वीळित अक्ष) स्वयं दृढ तथा हमारे द्वारा भी दृढ किए गए अक्ष ! (वीळयस्व) तू और ज्यादा दृढ हो, और (यामात्) चलते हुए (अस्मात्) इस रथसे (नः मा अव जीहिपः) हमें नीचे मत गिरा ॥ १९ ॥

[५०५] (अयं वनस्पतिः) वनस्पति अर्थात् लकडीसे बना हुआ यह रथ (अस्मान् मा हा) हमें नीचे न गिराये, (मा च रीरिषत्) न दुःख दे । (आ गृहेभ्यः) हमारे घर पहुंचने तक यह (स्वस्ति) हमारा कल्याण करे तथा (आ विमोचनात्) घोडोंको खोलने तक यह (अवसै आ) हमारी रक्षा करे ॥ २० ॥

भावार्थ— रथमें जोते जानेवाले बैल, अक्ष, दण्ड, जुआ आदि सभी अंग दृढ हों और इन्द्र भी उस रथको दृढ बनाये रहे, ऐसा दृढ रथ हमें प्राप्त हो । यह शरीर भी एक रथ है, जिसमें इन्द्रियां ही घोडे या बैल हैं, जो इस रथमें जुते हुए हैं । नाभि, इस रथकी अक्ष या धुरा है । पृष्ठवंश इस रथका दण्ड है, दोनों स्कंधभाग इस रथके जुए हैं इन्द्र जीवात्मा है । यह जीवात्मा इस शरीररूपी रथके सब अंगोंको सुदृढ बनाये ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! तू हर तरहके बलोंको देनेवाला है, इसलिए तू हमारे पशु, हमारे शरीरों और हमारे पुत्र पौत्रोंको बल प्रदान कर, ताकि वे सब दीर्घकालतक आनंदसे जी सकें ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तू इस रथको हर तरहसे दृढ कर । इस रथके अक्ष दृढ हों ताकि भागते समय इस रथपरसे मनुष्य गिर न जाए । इसी प्रकार इस शरीररूपी रथके भी सब अंग दृढ हों, ताकि यह मनुष्य शीघ्र न मरे ॥ १९ ॥

लकडियोंसे बना हुआ यह रथ न तो हमें नीचे ही गिराये और न दुःख दे अर्थात् यह रथ इतनी दृढतासे बनाया गया हो कि वह रास्तेमें ही टूट न जाए । घर पहुंचकर वहां घोडोंका खोलनेतक यह मनुष्यकी रक्षा एवं उसका कल्याण करता रहे ॥ २० ॥

×

५०६ इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ २१ ॥

५०७ परशुं चिद् वि तपति शिम्बलं चिद् वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥ २२ ॥

५०८ न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥ २३ ॥

५०९ इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥ २४ ॥

अर्थ— [५०६] हे (शूर, मघवन् इन्द्र) शूर तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तू (अद्य) आज (बहुलाभिः श्रेष्ठाभिः ऊतिभिः) अनेक तरहके श्रेष्ठ संरक्षणके साधनोंसे (यात्) शत्रुओंको मार और (नः जिन्व) हमें आनन्दित कर । (यः) जो (नः द्वेष्टि) हमसे द्वेष करता है उसे (अधरः सस्पदीष्ट) नीचे गिरा दे, तथा (यं उ द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं, (तं उ प्राणो जहातु) उसे प्राण छोड दें अर्थात् वह मर जाये ॥ २१ ॥

[५०७] वह इन्द्र (परशुं वि तपति) फरसेको तीक्ष्ण करता है, और उससे (शिम्बलं चित् वि वृश्चति) अपने बलका दुरुपयोग करनेवाले दुष्टको काटता है । तथा (येषन्ती उखा चित्) चूनेवाली थालीके समान (प्रयस्ता) हिंसकशत्रु (फेनं अस्यति) अपने मुंहसे फेन गिराता है ॥ २२ ॥

[५०८] (जनासः) वीर मनुष्य (सायकस्य न चिकिते) बाण या शस्त्रास्त्रोंके दुःखको कुछ भी नहीं समझते, वे (लोधं) लोभी शत्रुको (पशु मन्यमानाः) पशु मानकर (नयन्ति) जहां चाहे वहां ले जाते हैं । वे (वाजिना) बलवान्‌के द्वारा (अवाजिनं) निर्बलकी (न हासयन्ति) हंसी नहीं उडवाते, तथा (गर्दभं पुरः अश्वान् न नयन्ति) गधेके आगे घोडे नहीं ले जाते ॥ २३ ॥

१ जनासः सायकस्य न चिकिते— वीर जन शस्त्रास्त्रके दुःखको कुछ नहीं समझते ।
२ लोधं पशु मन्यमानाः नयन्ति— लोभी शत्रुको पशु मानकर जहां चाहे वहां ले जाते हैं ।
३ वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति— बलवान्‌के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते ।

(५०९) हे (इन्द्र) इन्द्र ! (इमे भरतस्य पुत्राः) ये भरतके पुत्र (अपपित्वं चिकितुः) शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं (न प्रपित्वं) उसे समृद्ध करना नहीं । ये वीर (नित्यं) सदा ही (आजौ) युद्धमें (अश्वं) अपने घोडेको (अरणं न) युद्धका क्षेत्र न होने समान (हिन्वन्ति) दौडाते हैं और (ज्यावाजं परि नयन्ति) अपने धनुषकी डोरीके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं ॥ २४ ॥

१ भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः न प्रपित्वं— ये भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करनाही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं ।
२ आजौ अश्वं हिन्वन्ति— वे युद्धमें अपने घोडेको प्रेरित करते हैं ।
३ ज्यावाजं परि नयन्ति— अपने धनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं ।

भावार्थ— हे शूरवीर इन्द्र ! तू आज अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे हमारे शत्रुओंको मारकर हमारी रक्षा कर और हमें आनन्दित कर । जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते हैं, वह नष्ट हो जाए ॥ २१ ॥

यह इन्द्र अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करके उससे अपने बलका दुरुपयोग करनेवाले दुष्टको काटता है, तब वह दुष्ट अपने मुंहसे फेन गिराता हुआ मर जाता है ॥ २२ ॥

वीर जब शत्रुओंसे युद्ध करते हैं, तब शस्त्रास्त्रोंके लगनेके कारण होनेवाले दुःखोंकी जरा भी परवाह नहीं करते, अपितु वीरतासे लडकर जो लोभी शत्रु होते हैं, उन्हें पशुकी तरह बांधकर ले जाते हैं, पर जो निर्बल होकर उनके पास आता है, उस पर अपने बलका प्रयोग नहीं करते, तथा जो गर्दभ आदि निकृष्ट वाहनोंपर बैठकर लडने आता है, उससे ये वीर अश्व आदि उत्कृष्ट वाहनोंपर बैठकर लडने नहीं जाते ॥ २३ ॥

[५४]

[ऋषि- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५१० इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत् कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥ १ ॥

५११ महि महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामो म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमे विदथेषु देवाः सपर्यवो मादयन्ते सचायोः ॥ २ ॥

५१२ युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ३ ॥

---

[५४]

अर्थ— [५१०] (महे) महान् (विदथ्याय) यज्ञके साधक तथा (ईड्याय) स्तुतिके योग्य अग्निके लिए स्तोता गण (इमं शूषं) इस स्तोत्रको (शश्वत् कृत्व) वार वार (प्र जभ्रुः) करते हैं, वह अग्नि (दम्येभिः अनीकैः) शत्रुओंके विनाशक किरणोंसे युक्त होकर (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाओंको सुने तथा (दिव्यैः अजस्रः अग्निः) अपने दिव्य तेजोंसे निरन्तर प्रकाशित होनेवाला अग्नि (शृणोतु) हमारी स्तुति सुने ॥ १ ॥

[५११] (विदथेषु) यज्ञोंमें (ययोः स्तोमे) जिन द्यावापृथिवीके स्तोत्रमें (सपर्यवः देवाः) पूजाके योग्य देव (सचायः मादयन्ते) इकट्ठे होकर आनन्दित होते हैं, उन (महि दिवे पृथिव्यै) महान् द्युलोक और पृथ्वीलोकके लिए (महि अर्च) महान् स्तोत्र बनाओ, क्योंकि (मे कामः) मेरी कामना (प्रजाजन् इच्छन्) सबको जानता हुआ और सब भोगोंकी इच्छा करता हुआ (चरति) सर्वत्र विचरता है ॥ २ ॥

[५१२] हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (युवोः ऋतं) तुम दोनोंके नियम (सत्यं अस्तु) सत्य होते हैं, तुम दोनों (नः महे सुविताय) हमारी श्रेष्ठ उन्नतिके लिए हमें (प्रभूतं) समर्थ बनाओ । (अग्ने दिवे पृथिव्यै) अग्नि, द्युलोक और पृथिवीलोकके लिए (इदं नमः) यह नमस्कार हो, मैं इन सभी देवोंकी (प्रयसा सपर्यामि) अन्न या हविसे पूजा करता हूँ और (रत्नं यामि) रत्न मांगता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ— भरत अर्थात् भारतके वीर पुत्र इतने वीर होते हैं कि उनके कारण उनके शत्रु सदा क्षीण ही होते हैं । ये वीर कभी निर्बल हों और उनके शत्रु समृद्ध हों, ऐसा अवसर ही कभी नहीं आता । ये वीर अपने घोडोंको युद्धभूमिमें भी ऐसा दौडाते हैं कि मानों वे युद्धभूमिमें न होकर किसी खाली मैदानमें हों अर्थात् वे जिधर जाते हैं उधर ही शत्रुओंका सफाया हो जाता है और इस प्रकार वे युद्धमें अपने धनुषका बल प्रकट करते हैं ॥ २४ ॥

इसी अग्निसे यज्ञका काम सिद्ध होता है, इसीलिए सब ऋत्विग्गण इस अग्निकी स्तुति करते हैं। इसकी किरणें शत्रुओंका दमन करनेवाली अथवा गृहको प्रकाशित करनेवाली हैं । इसका तेज भी दिव्य है ॥ १ ॥

यज्ञोंमें किये जानेवाले स्तोत्रोंसे सभी देव आनन्दित होते हैं । ऋत्विग्गण द्यु और पृथिवीकी भी स्तुति करते हैं । ये दोनों ही महान् और तेजस्वी हैं । इनकी स्तुति करके मेरा मन सब भोगोंको प्राप्त करना चाहता है ॥ २ ॥

द्यावापृथिवीके नियम कभी भी असत्य नहीं होते, ये हमेशा अपने नियममें चलते रहते हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी नियमोंमें चलता हुआ सामर्थ्यशाली और उन्नतिशील होता है और इन देवोंकी कृपासे वह रत्न भी प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

५१३ उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद् वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥ ४ ॥
५१४ को अद्धा वेद क इह प्र वोचद् देवाँ अच्छा पथ्याइका समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥ ५ ॥
५१५ कविर्नृचक्षा अभि षीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥ ६ ॥
५१६ समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥ ७ ॥

अर्थ—[५१३] हे (ऋतावरी) सत्य नियमोंके अनुसार चलनेवाली (रोदसी) द्यावापृथिवी! (वां) तुम दोनोंको (पूर्व्याः सत्यवाचः) पूर्व ऋषियोंकी सत्य वाणियां या सत्यज्ञान (आविविद्रे) जानता था और हे (पृथिवि) पृथिवी! (शूरसातौ समिथे) शूरवीरोंके एकत्रित होकर लडनेवाले युद्धमें (नरः चित्) वे वीर पुरुष भी (वां वेविदानाः) तुम दोनोंको जानते हुए (ववन्दिरे) तुम्हारी वन्दना करते हैं ॥ ४ ॥

[५१४] (का पथ्या देवान् अच्छा समेति) कौनसा मार्ग देवोंकी तरफ सीधा जाता है, (कः अद्धा वेद) इसे निश्चयपूर्वक कौन जानता है (कः इह प्रवोचत्) उसका वर्णन यहां कौन कर सकता है? क्योंकि (एषां) इन देवोंका (परेषु गुह्येषु व्रतेषु) उत्कृष्ट तथा छिपे हुए जो स्थान हैं, उनमेंसे (या अवमा सदांसि) जो नीचेके स्थान हैं, वे ही (ददृश्रे) दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

[५१५] (कविः नृचक्षाः) दूरदर्शी ज्ञानी तथा सबको देखनेवाला सूर्य (अभि सीं अचष्टे) इन दोनों लोकोंको चारों ओरसे देखता है। (विघृते) रसोंको धारण करनेवाली, (मदन्ती) आनन्द प्रदान करनेवाली, (समानेन क्रतुना संविदाने) समान कर्मसे सबको जाननेवाली ये दोनों (ऋतस्य योना) ऋतके स्थानमें, (यथा वेः) जैसे पक्षियोंके कई घोंसले होते हैं, उसी प्रकार (नाना सदनं चक्राते) अनेक प्रकारके स्थान बनाते हैं ॥ ६ ॥

[५१६] (समान्या) समान रहनेपर भी (वियुते) एक दूसरेसे अलग (दूरे अन्ते) जिनका अन्तभाग एक दूसरेसे बहुत दूर है, ऐसी (जागरूके) सदा जाग्रत रहनेवाली ये दोनों द्यावापृथिवी (ध्रुवे पदे तस्थतुः) अविनाशी स्थानमें रहती हैं, (युवती) सदा तरुण रहनेवाली (स्वसारा) ये दोनों बहनें (भवन्ती) जब पैदा होती हैं, (आत्) तभीसे इनके लिए (मिथुनानि नाम) जुडवें नाम (ब्रुवाते) बोले जाने लगते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— सत्य नियमोंके अनुसार चलनेवाली इन द्यु और पृथिवीको सत्यवाणी बोलनेवाले ऋषि जानते थे और आज भी युद्धमें लडनेवाले वीर इन दोनों देवियोंको बुलाते हैं ॥ ४ ॥

देवोंके जो उत्कृष्ट और छिपे हुए स्थान हैं, उन्हें कोई नहीं जानता, पर जो स्थूल स्थूल स्थान हैं उन्हींको मनुष्य देखते हैं, इसलिए उन देवोंतक पहुचनेवाला जो सीधा मार्ग है, उसे कौन जानता है और उसका वर्णन कौन कर सकता है? ॥५॥

दूरदर्शी ज्ञानी तथा सबको देखनेवाला सूर्य इन द्यु और पृथिवीको चारों ओरसे देखता है। ये दोनों लोक रसोंको धारण करते हैं और अपने रसोंसे सबको आनंदित करते हैं तथा ऋतके स्थानमें अनेक जगह बनाते हैं ॥ ६ ॥

ये दोनों द्यावापृथिवी संसारके पालनपोषणरूप कर्मको एक समान करनेपर भी एक दूसरेसे अलग हैं, इनके छोर भी एक दूसरेसे बहुत दूर हैं। ये दोनों बहिनें जब अस्तित्वमें आती हैं, तभीसे रोदसी, द्यावापृथिवी, आदि जुडवें नामोंसे इन्हें सम्बोधित किया जाने लगता है ॥ ७ ॥

५१७ विश्वेदे॒ते जनि॑मा॒ सं वि॑वि॒क्तो म॒हो दे॒वान् बिभ्र॑ती॒ न व्य॑थेते ।
एज॑द् ध्रु॒वं प॑त्यते॒ विश्व॒मेकं॒ चर॑त् पत॒त्रि विषु॑णं॒ वि जा॒तम् ॥ ८ ॥
५१८ सना॑ पुरा॒णमध्ये॑म्या॒रा॒न्म॒हः पि॒तुर्ज॑नि॒तुर्जा॒मि तन्नः॑ ।
दे॒वासो॒ यत्र॑ पनि॒तार॒ एवै॑रु॒रौ प॒थि व्यु॑ते त॒स्थुर॒न्तः ॥ ९ ॥
५१९ इ॒मं स्तोमं॑ रोदसी॒ प्र ब्र॑वीम्यृदू॒दराः॑ शृणवन्न॒ग्निजि॒ह्वाः ।
मि॒त्रः स॒म्राजो॒ वरु॑णो॒ युवा॑न आदि॒त्यासः॑ क॒वयः॑ पप्रथा॒नाः ॥ १० ॥
५२० हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता सु॒जि॒ह्वस्त्रिरा दि॒वो वि॒दथे॒ पत्य॑मानः ।
दे॒वेषु॑ च सवितः॒ श्लोक॒मश्रे॑राद॒स्मभ्य॒मा सु॑व स॒र्वता॑तिम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [५१७] (एते) ये दोनों द्यावापृथिवी (विश्वा इत् जनिमा सं विविक्तः) सभी प्राणियोंको स्थान प्रदान करती हैं। ये दोनों (महः देवान् बिभ्रती) बडे बडे देवोंको धारण करती हैं, फिर भी (न व्यथेते) कभी दुःखी नहीं होती। (एजत्) चलनेवाला तथा (ध्रुवं) स्थिर (विश्वं) विश्व (एकं पत्यते) एकके आश्रयमें रहता है और दूसरेमें (पतत्रि) पक्षीगण (चरत्) उडते हुए (विषुणं वि जातं) चारोंसे प्रकट होते हैं ॥ ८ ॥

[५१८] हे द्युलोक ! (महः) महान् (पितुः) सबका पालन करनेवाली (जनितुः) सबको उत्पन्न करनेवाली तेरा तथा (नः) हमारा (तत् सना पुराणं जामिः) वह सनातन और पुराना सम्बन्ध मैं (आरात् अध्येमि) अब याद करता हूँ। (यत्र अन्तः) जिसके मध्यमें (उरौ व्युते पथि) विस्तीर्ण और प्रकाशित मार्गमें (पनितारः देवासः) स्तुति करनेवाले देव (एवैः तस्थुः) अपने साधनोंसे युक्त होकर रहते हैं ॥ ९ ॥

[५१९] हे (रोदसी) द्यावापृथिवी ! (इमं स्तोमं प्र ब्रवीमि) मैं इस स्तोत्रको कहता हूँ इसे (ऋदूदराः) सरल मनवाले (अग्निजिह्वाः) अग्निको अपना मुख बनानेवाले, (सम्राजः) अत्यन्त तेजस्वी (युवानः) तरुण (कवयः) ज्ञानी और (पप्रथानाः) अत्यन्त प्रसिद्ध यशवाले (मित्रः वरुणः आदित्यासः) मित्र, वरुण और आदित्य (शृणवत्) सुनें ॥ १० ॥

[५२०] (हिरण्यपाणिः सुजिह्वः सविताः) सुनहरी किरणोंवाला, उत्तम रूपवाला सूर्य (दिवः) द्युलोकसे विदथे आ पत्यमानः) यज्ञमें आकर (त्रिः) तीनों सवनोंको पूर्ण करता है। हे (सवितः) सूर्यदेव ! (देवेषु श्लोकं अश्रेः) विद्वानोंमें बैठकर स्तुतिको सुन और (अस्मभ्यं सर्वतातिं आ सुव) हमें सब प्रकारका धन दे ॥ ११ ॥

भावार्थ— ये दोनों द्यावापृथिवी पशु, पक्षी आदि प्राणियों और सूर्य, चन्द्र, तारक आदि बडे बडे देवोंको भी धारण करती हैं पर वे कभी श्रान्त नहीं होती। इनमेंसे एक पृथ्वी पर चलनेवाले पशु मनुष्य आदि तथा स्थिर रहनेवाले पत्थर, वृक्ष आदि रहते हैं और द्युमें उडनेवाले पक्षी आदि रहते हैं ॥ ८ ॥

इस द्युलोकमें रहनेवाले सूर्य, चन्द्र, विद्युत् आदि देव अपने संरक्षणके सभी साधनोंसे युक्त होकर रहते हैं। उन देवों और मनुष्योंका सम्बन्ध बहुत पुराना और हमेशा रहनेवाला है। इन देवोंसे मनुष्यका सम्बन्ध यदि टूट जाए तो मनुष्यकी मृत्यु निश्चित है ॥ ९ ॥

मित्र, वरुण और आदित्य ये देवगण सरल मनवाले, अत्यन्त तेजस्वी, दूरदर्शी, तरुण, ज्ञानी और अत्यन्त यशस्वी हैं ॥ १० ॥

उत्तम किरणोंवाले और उत्तम रूपवाले इस सूर्यकी किरणें जब यज्ञशालामें आकाशसे उतरती हैं, तब यज्ञ शुरू होकर सूर्यके अस्त होने तक वह यज्ञ चलता रहता है, और इन्हीं सूर्यदेवके कारण प्रातःसवन, माध्यन्दिन सवन और सायंसवन ये तीनों सवन चलते हैं ॥ ११ ॥

५२१ सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

५२२ विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥ १३ ॥

५२३ विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥ १४ ॥

५२४ इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरंदरो वृत्रहा धृष्णुषेणः संगृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥ १५ ॥

अर्थ— [५२१] (सुकृत् सुपाणिः) उत्तम कर्म करनेवाला और उत्तम हाथोंवाला (स्ववान्) धनसम्पन्न और (ऋतावा) नियमोंका पालन करनेवाला (देवः त्वष्टा) त्वष्टा देव (नः तानि धात्) हमें उन धनोंका प्रदान करे। हे (ऋभवः) ऋभु देवो ! (ऊर्ध्वग्रावाणः) सोम पीसनेके लिए पत्थरको उठाये हुए ऋत्विगोंने (अध्वरं अतष्ट) यज्ञको उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है। इसलिए हे (पूषण्वन्तः) पोषण करनेवाले ऋभुओ ! तुम उस सोमसे (मादयध्वं) आनन्दित हो ॥ १२ ॥

[५२२] (विद्युद्रथाः) बिजलीके रथवाले (ऋष्टिमन्तः) शस्त्र धारण करनेवाले, (दिवः) तेजस्वी, (मर्याः) शत्रुओंको मारनेवाले, (ऋतजाताः) नियमोंपर चलनेवाले (अयासः) वेगवान् (यज्ञियासः मरुतः) पूजाके योग्य मरुद्गण और (सरस्वती) सरस्वती (शृणवन्) हमारी प्रार्थनाओंको सुने। हे (तुरासः) फुर्तीले मरुतो ! हमें (सहवीरं रयिं धात) सन्तानसे युक्त धनको प्रदान करो ॥ १३ ॥

[५२३] (पूर्वीः युवतयः) बहुतसी सदा तरुणी रहनेवाली (जनित्रीः) सबको उत्पन्न करनेवाली (ककुहः) दिशायें (यस्य न मर्धन्ति) जिसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती, वह विष्णु (उरुक्रमः) महान् पराक्रमवाला है। उसी (पुरुदस्मं विष्णुं) अत्यन्त रूपवान् विष्णुके पास (अर्काः स्तोमासः) पूजाके योग्य स्तोत्र (यामनि ग्मन्) यज्ञमें उसी प्रकार जाते हैं, (कारिणः भगस्य इव) जिस प्रकार उत्तम कर्म करनेवाले धनवान्के पास जाते हैं ॥ १४ ॥

[५२४] (इन्द्रः) इन्द्र (विश्वैः वीर्यैः पत्यमानः) सभी तरहके बलसे सम्पन्न होकर जाता हुआ (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक और पृथ्वीलोकको (महित्वा आ पप्रौ) अपनी महिमासे भर देता है। (पुरंदरः) शत्रुओंकी नगरियोंको तोडनेवाला, (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला (धृष्णुषेणः) विजयी सेनावाला वह तू, हे इन्द्र ! (भूरि पश्वः संगृभ्य) बहुतसे पशुओंको इकट्ठा करके (नः आभर) हमें भरपूर दे ॥ १५ ॥

भावार्थ— त्वष्टादेव उत्तम कर्म करनेवाला, उत्तम हाथोंवाला, नियमोंका पालन करनेवाला है, वह हमें हर तरहके धन प्रदान करे। हे ऋभुओ ! तुम यज्ञमें सोम पीकर आनन्दित होओ ॥ १२ ॥

ये मरुद्गण बिजली जैसे तेजस्वी रथवाले, शस्त्रधारी, शत्रुओंको मारनेवाले और नियमोंपर चलनेवाले और इसीलिए पूज्य हैं। ये और सरस्वती देवी हमें धन प्रदान करें ॥ १३ ॥

सबको उत्पन्न करनेवाली दिशायें भी इस विष्णुकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकतीं, क्योंकि वह विष्णु महापराक्रमी है। जिस प्रकार समाजका हित करनेवाले किसी धनवान्की प्रशंसा सभी करते हैं, उसी तरह इस इन्द्रकी सभी प्रशंसा करते हैं ॥ १४ ॥

इन्द्र अपने सभी तरहके बलसे सम्पन्न होकर अपनी महिमासे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है। यह इन्द्र शत्रुओंकी नगरियोंका विनाशक है और शत्रुओंका भी संहारक है। इसकी सेना हमेशा विजय प्राप्त करती है ॥ १५ ॥

५२५ नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥ १६ ॥
५२६ महत् तद् वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सख ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभि-रिमां धियं सातये तक्षता नः ॥ १७ ॥
५२७ अर्यमा णो अदितिर्यज्ञियासो-ऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान् नः पशुमाँ अस्तु गातुः । ॥ १८ ॥

अर्थ— [५२५] हे (नासत्या) अविनाशी अश्विनौ देवो ! (बन्धुपृच्छा) भाईकी तरह प्रेम करनेवाले अपने उपासकोंकी परवाह करनेवाले तुम दोनों (मे पितरा) मेरे पालन करनेवाले हो । (अश्विनोः) इन अश्विनौ देवोंका (सजात्यं नाम) जन्मसे ही फैलनेवाला यश (चारु) सुन्दर है । हे अश्विनौ ! (युवं हि रयिदौ स्थः) तुम दोनों धनके प्रदाता हो, इसलिए (नः रयीणां) हमें धन प्रदान करो । (अदब्धा) आलस्यसे रहित तुम दोनों (अकवैः दात्रं रक्षेथे) बुरे कर्मोंसे दाताकी रक्षा करते हो ॥ १६ ॥

१ अश्विनोः सजात्यं नाम चारु— अश्विनौ देवोंका जन्मसे ही उत्पन्न हुआ यश उत्तम है ।

२ अदब्धा अकवैः दात्रं रक्षेथे— आलस्यसे रहित ये दोनों अश्विनौ देव दुष्ट कर्मोंसे दाताकी रक्षा करते हैं ।

[५२६] हे (कवयः) ज्ञानी देवो ! (वः तत् नाम) तुम्हारा वह यश (महत् चारु) महान् और उत्तम है, (यत्) जिसके कारण (विश्वे) तुम सब (इन्द्रे) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर (देवाः भवथ) देव होते हो । हे (पुरुहूत) बहुतोंके द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (प्रियेभिः ऋभुभिः) अपने प्रिय ऋभुओंके साथ तू (सखा) हमारा मित्र हो, तथा (सातये) ज्ञान और धनकी प्राप्तिके लिए (नः इमां धियं) हमारी इस बुद्धिको (तक्षत) तीक्ष्ण कर ॥ १७ ॥

१ इन्द्रे देवाः भवथ— इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है ।

२ सातये इमां धियं तक्षत— ज्ञानकी प्राप्तिके लिए हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो ।

३ कवयः नाम महत् चारु— दूरके परिणामोंका विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है ।

[५२७] (अर्यमा अदितिः यज्ञियासः) अर्यमा, अदिति और पूजाके योग्य देव (नः) हमारी रक्षा करें, (वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं । (नः गन्तोः) हमारे मार्गसे (अनपत्यानि) सन्तानको न देनेवाले कर्मोंको (युयोत) दूर करो, ताकि (नः गातुः) हमारा मार्ग (प्रजावान् पशुमान् अस्तु) सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो ॥ १८ ॥

१ वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि— वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं

२ नः गन्तोः अनपत्यानि युयोत— हमारे मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हो ।

३ नः गातुः प्रजावान् पशुमान् अस्तु— हमारा घर सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो ।

भावार्थ— इन अश्विनौसे जो भाईकी तरह प्रेम करता है उसकी ये हर तरहसे परवाह करते हैं और उसका पालन करते हैं । ये दोनों जब जन्मे थे, तभीसे इन्होंने उत्तम कर्म करने शुरु कर दिए और तभीसे इनका उत्तम यश चारों ओरसे फैलने लगा । ये दाताको धन प्रदान करते हैं और दुष्ट कर्मोंसे उसकी सदा रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥

ज्ञानी और दूरके परिणामोंको भी सोचकर काम करनेवाले देवोंका यश महान् और उत्तम होता है । जो भी इन्द्रके अनुशासनमें रहकर काम करता है, वह देव बन जाता है । अतः मनुष्यको चाहिए कि वह इन्द्र और अन्य देवोंका मित्र बने तथा ज्ञानकी प्राप्तिके लिए अपनी बुद्धिको तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म विचारोंका दर्शन करनेवाली बनाये ॥ १७ ॥

हम वरुणके नियमोंके अनुसार चलें, ताकि सभी देव हमारी रक्षा करें । हम कोई भी ऐसा काम न करें कि जिससे हम सन्तानहीन हों, इसके विपरीत हम ऐसे मार्गसे चलें कि जिससे हमारे घर पुत्र पौत्रों और पशुओंसे भरा रहे ॥ १८ ॥

५२८ देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान् नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम् ॥ १९ ॥
५२९ शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥ २० ॥
५३० सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद् रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ॥ २१ ॥
५३१ स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ॥ २२ ॥

अर्थ— [५२८] (पुरुध प्रसूतः) अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाला (देवानां दूतः) देवोंका दूत अग्नि (अनागान् नः) पापसे रहित हम लोगोंको (सर्वताता वोचतु) हरतरहसे उपदेश दे। (पृथिवी द्यौः उत आपः) पृथिवी, द्युलोक और जल (सूर्यः नक्षत्रैः उरु अन्तरिक्षं) सूर्य और नक्षत्रोंसे विस्तृत अन्तरिक्ष (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥१९॥

१ देवानां दूतः अनागान् नः वोचतु— देवोंका दूत ज्ञानी पापसे रहित हमें उपदेश करे।

[५२९] (वृषणः) जल बरसा कर (ध्रुवक्षेमासः) निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले तथा (इळया मदन्तः) वनस्पति आदिसे मनुष्योंको आनन्दित करनेवाले (पर्वतासः) पर्वत (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें तथा (अदितिः) अदिति देवी भी (आदित्यैः) आदित्योंके साथ (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने तथा (मरुतः) मरुत् देव (नः भद्रं शर्म यच्छन्तु) हमें कल्याणकारी सुख और स्थान प्रदान करें ॥ २० ॥

१ वृषणः पर्वतासः ध्रुवक्षेमासः— जल बरसानेवाले पर्वत निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले हैं।

[५३०] हमारे (पन्थाः) मार्ग (सदा सुगः पितुमान् अस्तु) सदा ही सरलतासे जाने योग्य और अन्नसे युक्त हों, हे (देवाः) देवो! (ओषधीः) अन्न तथा अन्य वनस्पति आदियोंको (मध्वा सं पिपृक्त) मधुरतासे युक्त करो। हे (अग्ने) अग्ने! (सख्ये) तेरी मित्रतामें रहनेवाले (मे भगः) मेरा ऐश्वर्य (न मृध्याः) नष्ट न हो, (उत्) इसके विपरीत (रायः) धन और (पुरुक्षोः सदनं) बहुत अन्नसे भरपूर घरको (अश्याम्) प्राप्त करूं ॥ २१ ॥

१ पन्थाः सदा सुगः पितुमान् अस्तु— हमारे मार्ग सदा ही सरलतासे जाने योग्य तथा अन्नसे भरपूर हों।

२ ओषधीः मध्वा सं पिपृक्त— अन्न वनस्पतियां मधुरतासे युक्त हों।

[५३१] हे (अग्ने) अग्ने! (हव्या स्वदस्व) हविके योग्य पदार्थोंका भक्षण कर, और (इषः सं दिदीहि) अन्नको प्रदान कर, (श्रवांसि) अन्नोंको (अस्मद्र्यक्) हमारी ओर (सं मिमीहि) प्रेरित कर। (पृत्सु) युद्धोंमें (तान् विश्वान् शत्रून्) उन सब शत्रुओंको (जेषि) जीत, तथा (सुमनाः) उत्तम मनवाला होकर तू (विश्वा अहा) सभी दिन (नः दिदीहि) हमारे लिए प्रकाशसे युक्त कर ॥ २२ ॥

१ विश्वा अहा नः दिदीहि— सब दिन हमारे लिए प्रकाशसे युक्त और सुखकर हों।

भावार्थ— अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाला तथा देवोंका दूत होकर आनेवाला ज्ञानी पापसे रहित हम लोगोंको उत्तम उपदेश करे। ज्ञानी मनुष्य प्रथम मातासे उत्पन्न होता है फिर सरस्वती देवीके गर्भसे उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् समाजके गर्भसे बाहर आकर सभी श्रेष्ठ पुरुषोंको अपना ज्ञान प्रदान करता है। समाजके लोगोंको उत्तम कर्मका उपदेश देता है ॥१९॥

पर्वतोंके ऊपर वृक्ष होते हैं उन वृक्षोंसे बादल टकरा कर बरसते हैं और बरसातके जलसे अन्नकी उत्पत्ति होकर उससे मनुष्य पुष्ट होकर आनन्द प्राप्त करते हैं। इस प्रकार पर्वत निःसन्देह मनुष्यका कल्याण करते हैं। वे पर्वत, अदिति, आदित्य और मरुत् आदि देव हमारी प्रार्थनाको सुनकर हमें कल्याणकारी सुख और स्थान प्रदान करें ॥ २० ॥

हम जिस मार्गसे भी जायें, वह मार्ग सरलतासे जाने योग्य और कांटों तथा विघ्नोंसे रहित हो, हम जहां भी और जिस मार्गसे भी जायें, वहां हमें भरपूर अन्न मिले तथा हम जिस अन्नको खायें वह मधुरतासे भरा हुआ हो। हम अग्निकी मित्रताको प्राप्त करें, ताकि हम धन और उत्तम स्थानको प्राप्त कर सकें ॥ २१ ॥

[५५]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा । देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५३२ उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषुर्महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥

५३३ मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥

५३४ वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद् वदेम महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ३ ॥

---

[५५]

अर्थ— [५३२] (यत्) जब (पूर्वाः उषसः) बहुतसी उषायें (वि ऊषुः) प्रकाशित हो गईं, (अध) उसके बाद (अक्षरं महत्) यह अविनाशी महान् ज्योति (गोः पदे) जलके स्थानमें (वि जज्ञे) प्रकट हुआ । तब यज्ञकर्ता (प्रभूषन्) अपनेको अच्छी तरह अलंकृत करके (देवानां व्रता उप) देवोंके कर्मोंको करने लगा । (देवानां) देवोंका यह (एकं महत् असुरत्वं) एक महान् पराक्रम है ॥ १ ॥

[५३३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अत्र) यहां (देवाः) देवगण (नः मा जुहुरन्त) हमारी हिंसा न करें । (पदज्ञाः पूर्वे पितरः मा) हमारे उत्तम मार्गको जाननेवाले प्राचीन पितर भी हमारा अनिष्ट न करें । (पुराण्यः सद्मनोः अन्तः) प्राचीन स्थानोंके बीचमें (महत् केतुः) महान् प्रकाश उत्पन्न होता है, (देवानां एकं महत् असुरत्वं) यह देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥ २ ॥

[५३४] (मे कामाः पुरुत्रा पतयन्ति) मेरे मनोरथ अनेक तरहसे दौडते हैं, इसीलिए मैं (शमि) यज्ञमें (अग्नौ समिद्धे) अग्निके प्रज्वलित होनेपर (पूर्व्याणि अच्छ दीद्ये) उत्तम कर्मोंको अच्छी तरह करता हूँ (ऋतं वदेम) हम सत्य ही कहते हैं कि यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू उत्तम पदार्थोंका भक्षण कर और उत्तम अन्न हमें भी दे, हमारे सभी शत्रु नष्ट हों तथा हमारे लिए सभी दिन सुखकर और प्रकाशसे युक्त हों ॥ २२ ॥

जब पहले अनेक उषायें आकर चली गई तब महान् ज्योतिरूप सूर्य जलोंके स्थान आकाशमें प्रकट हुआ, सूर्योदयके बाद ही यज्ञकर्ता पवित्र और भूषित होकर यज्ञादि दिव्यकर्म करने लगा । इन कर्मोंमें देवोंका असुरत्व अर्थात् प्राण छिपा हुआ है । यज्ञादि करनेसे दिव्य प्राण प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

हे अग्ने ! इस संसारमें उत्तम तेजस्वी पुरुष हमारा अनिष्ट न करें, तथा उत्तम मार्गोंको जाननेवाले ज्ञानी भी हमारा अनिष्ट न करें । यह देवोंका ही पराक्रम है कि अनन्तकालसे चली आनेवाली द्यावापृथ्वीके मध्यमें महान् ज्योतिरूप सूर्य प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

मनुष्यके मनोरथ अनेक तरहके होते हैं, उन मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए उसे चाहिए कि वह उत्तम कर्म करे और देवोंके पराक्रमको सदा ध्यानमें रखे ॥ ३ ॥

×

५३५ समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ४ ॥

५३६ आक्षित् पूर्वास्वपरा अनूरुत् सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ५ ॥

५३७ शयुः परस्तादध नु द्विमाताऽबन्धनश्चरति वत्स एकः ।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥

५३८ द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः ।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [५३५] (समानो राजा) एक ही राजा (पुरुत्रा विभृतः) अनेक तरहसे धारण किया जाता है। वह (शयासु शयः) यज्ञोंमें सोता है तथा (वनानु प्रयुतः) वनोंमें अलग अलग पडा रहता है। (अन्या वत्सं भरति) एक अपने बच्चेका पालन करती है तो (माता) दूसरी माता (क्षेति) उसे केवल धारण करती है, यह सब (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कृत्य है ॥ ४ ॥

[५३६] यह अग्नि (पूर्वासु) अत्यंत प्राचीन वनस्पतियोंमें रहता है और (अपरा अनूरुत्) नवीन वनस्पतियोंमें भी प्रकाशित होता है, तथा वह (सद्यः जातासु तरुणीषु अन्तः) नवीन उत्पन्न हुई तरुणियोंमें भी रहता है, (अप्रवीताः अन्तर्वतीः सुवते) किसीके द्वारा वीर्यसिंचन न होनेपर भी गर्भवती होकर उत्पन्न करती हैं, यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् आश्चर्यजनक कर्म है ॥ ५ ॥

[५३७] (परस्तात् शयुः) पश्चिममें सोनेवाला (अध नु) और (द्विमाता) दो माताओंवाला (एकः वत्सः) एक बच्चा (अबन्धनः चरति) बिना किसी बन्धन या विघ्नके विचरता है। (ता व्रतानि) वे सब काम (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुणके हैं। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ ६ ॥

[५३८] (द्विमाता) दो माताओंवाला (होता) होता (विदथेषु सम्राट्) यज्ञोंका सम्राट् (अनु अग्रं चरति) सबसे आगे चलता है और (बुध्नः क्षेति) सबसे श्रेष्ठ होकर रहता है। इसके लिए (रण्यवाचः) सुन्दर वाणियां (रण्यानि प्र भरन्ते) सुन्दर और रमणीय स्तुतियोंको करती हैं। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्भुत कार्य है ॥ ७ ॥

भावार्थ— एक ही तेजस्वी अग्नि अनेक तरहसे प्रकाशित होता है, वह यज्ञमें तो एक यज्ञाग्निके रूपमें रहता है, और अलग अलग लकडियोंमें अलग अलग रूपसे रहता है। एक माता अरणी तो उसे केवल धारण करती है और दूसरी माता यज्ञवेदि उसे हवि आदि देकर पुष्ट करती है। इसी तरह राष्ट्रमें एक ही राजा अनेक रूपोंको धारण करता है। वह कभी शय्यापर सोता है अर्थात् सुखोंका उपभोग करता है तो कभी वनमें अर्थात् युद्धके मैदानमें जाता है। उसकी अपनी माता तो उसे गर्भमें धारण करती है, पर उसकी दूसरी माता प्रजा उस राजाका पालनपोषण करती है ॥ ४ ॥

यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन और जीर्णशीर्ण वृक्षोंमें रहता है, तथा जो हरेभरे वृक्ष हैं, उनमें भी रहता है, और जो पौधे नये ही उगे हैं, उनमें भी रहता है। इन वनस्पतियोंमें कोई भी वीर्यका सेवन नहीं करता, फिर भी ये गर्भवती होकर फलों और फूलोंको उत्पन्न करती हैं ॥ ५ ॥

पश्चिममें अस्त होनेवाले सूर्यकी द्यु और पृथिवी ये दो मातायें है और उनका यह बच्चा बिना किसी विघ्न या बाधाके आकाशमें विचरता है। यह सब महिमा मित्र और वरुण आदि देवोंकी है ॥ ६ ॥

यह अग्नि दो अरणियोंमेंसे उत्पन्न होनेके कारण दो माताओंवाला है, वह अग्नि या अग्रणी होनेके कारण सबसे आगे चलता है इसीलिए वह सबसे श्रेष्ठ है। जो सबसे आगे रहकर काम करता है, वह श्रेष्ठ होता है और सब उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ ७ ॥

५३९ शूरस्येव युध्यतो अन्तमस्य प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत् ।
अन्तर्मतिश्चरति निष्षिधं गोर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ८ ॥

५४० नि वेवेति पलितो दूत आस्वन्तर्महांश्चरति रोचनेन ।
वपूंषि बिभ्रदभि नो वि चष्टे महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ९ ॥

५४१ विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः ।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १० ॥

५४२ नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद् रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ११ ॥

अर्थ— [५३९] (अन्तमस्य) पासमें रहनेवाले तथा (युध्यतः शूरस्य इव) युद्ध करनेवाले शूरवीरके समान तेजस्वी अग्निके सामने (आयत् विश्वं) आनेवाले सारे प्राणी (प्रतीचीनं ददृशे) पराङ्मुख हुए हुए दिखाई देते हैं। (मतिः) बुद्धिमान् यह अग्नि (गोः निष्षिधं) जलोंको धारण करनेवाले आकाशके (अन्तः) अन्दर (चरति) विचरता है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥ ८ ॥

[५४०] (पलितः दूतः) अत्यन्त प्राचीन तथा दूत यह अग्नि (आसु वेवेति) इन वनस्पतियोंमें व्याप्त है, तथा (रोचनेन) अपने तेजसे (महान्) यह महान् अग्नि (अन्तः चरति) इन वनस्पतियोंके अन्दर घूमता है और जब (वपूंषि बिभ्रत्) शरीरको धारण करता है, तभी (नः अभि वि चष्टे) हमें वह दिखाई देता है। (देवानां एकं महत् असुरत्वं) यह देवोंका एक महान् पराक्रम है ॥ ९ ॥

[५४१] (अमृता प्रिया धामानि दधानः) अविनाशी और प्रिय लोकोंको धारण करनेवाला (गोपाः विष्णुः) पालन करनेवाला विष्णु (पाथः परमं पाति) अपने मार्गसे कल्याणकी रक्षा करता है। (अग्निः) अग्नि (ता विश्वा भुवनानि वेद) उन सम्पूर्ण भुवनोंको जानता है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ १० ॥

[५४२] (यम्या) जुडवीं दो स्त्रियां (नाना वपूंषि चक्राते) अनेक तरहके रूपोंको प्रकट करती हैं। (तयोः) इनमें (अन्यत् रोचते) एक तेजस्विनी है और (अन्यत्) दूसरी (कृष्णं) काली है। (यत् श्यावी अरुषी च) जो काली और गोरी अथवा तेजस्विनी स्त्रियां हैं, वे (स्वसारौ) दोनों आपसमें बहिने हैं। यह (देवानां एक महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ ११ ॥

भावार्थ— जब यह अग्नि धधकने लगती है, तब इसकी ओर आनेवाले सभी प्राणी इससे दूर भागने लगते हैं। यह अग्नि विद्युत्के रूपमें आकाशमें रहता है ॥ ८ ॥

वह अग्नि सभी वृक्ष आदि वनस्पतियोंमें व्याप्त है और सभी वृक्षोंमें उसका तेज घूम रहा है, पर वह मनुष्योंको दिखाई तभी देता है कि जब वह अरणीसे घिसे जानेपर ज्वालारूप शरीर धारण कर लेता है ॥ ९ ॥

सबका पालन करनेवाला व्यापक विष्णु सब अविनाशी लोकोंको धारण करता है और सदा कल्याणमय कर्मों और मार्गोंकी रक्षा करता है। अग्नि सभी भुवनोंका ज्ञाता है ॥ १० ॥

दिन और रातरूपी दो जुडवीं बहने हैं, उनमें रात काली और दिन गोरी और प्रकाशयुक्त है। काली और गोरी होनेपर भी ये परस्पर प्रेमसे व्यवहार करती हैं ॥ ११ ॥

५४३ माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदस्यीळे अन्तर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १२ ॥
५४४ अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १३ ॥
५४५ पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान् महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १४ ॥
५४६ पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद् गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १५ ॥

अर्थ— [५४३] (यत्र) जहां (माता च दुहिता च) माता और पुत्री दोनों (धेनू) तृप्त करनेवाली (सबर्दुघे) अमृतको दुहनेवाली हैं, वे दोनों (समीची) एक साथ मिलकर (धापयेते) अपना दूध पिलाती हैं। (ते) वे दोनों (ऋतस्य सदसि अन्तः) ऋतके स्थानमें रहती हैं, मैं उनकी (ईळे) स्तुति करता हूँ। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कार्य है ॥ १२ ॥

[५४४] (अन्यस्याः वत्सं) दूसरेके बच्चेको (रिहती मिमाय) चाटती हुई प्रसन्नतासे शब्द करती है। यह (धेनुः) गाय (कया भुवा) किस स्थानसे (ऊधः नि दधे) अपने स्तनोंको दूधसे भरती है? (सा इळा) वह पृथ्वी (ऋतस्य पयसा पिन्वते) ऋतके दूधसे पुष्ट होती है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ १३ ॥

[५४५] (पद्या) पैरसे उत्पन्न होनेवाली पृथ्वी (पुरुरूपा वपूंषि) अनेक रूपवाले शरीरोंको (वस्ते) धारण करती है और (त्र्यविं रेरिहाणा) तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले सूर्यको चाटती हुई (ऊर्ध्वा तस्थौ) सबसे ऊंचे स्थान पर खडी रहती है, (विद्वान्) विद्वान् मैं (ऋतस्य सद्म वि चरामि) ऋतके स्थानमें संचार करता हूँ। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ १४ ॥

१ पद्या— विराट् पुरुषके पैरसे उत्पन्न हुई पृथ्वी- "पद्भ्यां भूमिः"

[५४६] (दस्मे) सुन्दर रूपवाली दोनों (अन्तः) अन्तरिक्षमें (पदे निहिते) पैर रखती हैं, (तयोः) उनमें (अन्यत्) एक (गुह्यं) छिपी हुई है (अन्यत् आविः) दूसरी प्रकट है। उन दोनोंका (सा पथ्या) वह मार्ग (सध्रीचीना) एक होते हुए भी (विषूची) अलग अलग विभक्त है। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्‌भुत कर्म है ॥ १५ ॥

भावार्थ— सबको उत्पन्न करनेवाली माता यह पृथ्वी और दूर दूर रहनेवाली दुहिता द्यु दोनों ही सारे विश्वको तृप्त करनेवालीं, अमृतमय पदार्थोंको देनेवालीं तथा सारे संसारको अपना रस प्रदान करनेवालीं हैं, ये दोनों नियममें रहती हैं ॥ १२ ॥

इन दोनों माताओंमें एक माता पृथ्वी दूसरे द्युलोकके बच्चे अर्थात् सूर्यकी किरणोंको चाटती हुई प्रसन्न होती है। यह पृथ्वी अपने स्तनोंको सूर्यकी किरणोंके द्वारा बरसाये गए जलसे पूर्ण करती है फिर उस दूधसे मनुष्योंको पुष्ट करती है ॥ १३ ॥

विराट् पुरुषके पैरोंसे उत्पन्न हुई यह पृथ्वी लाल, हरा, नीला आदि अनेक रूपोंको धारण करती हुई द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यकी किरणोंको चाटती है, इसीलिए सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। विद्वान् ज्ञानी मनुष्य इस सूर्यके लोकमें विचरता है ॥ १४ ॥

सुन्दर रूपवाली दोनों दिन और रात अन्तरिक्षमें संचार करती हैं, उनमें एक रात्री काली होनेके कारण छिपी हुई रहती है और दूसरी स्त्री दिन प्रकाशयुक्त होनेके कारण सबको दिखाई देती है। इन दोनों दिन और रातका मार्ग यद्यपि अन्तरिक्ष ही है, पर दिनमें पुण्यशाली मनुष्य विचरते हैं, तो रातमें चोर, डाकू आदि पापी विचरते हैं ॥ १५ ॥

५४७ आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६ ॥

५४८ यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन् यूथे नि दधाति रेतः ।
स हि क्षपावान् त्स भगः स राजा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १७ ॥

५४९ वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।
षोळ्हा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १८ ॥

५५० देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १९ ॥

अर्थ— [५४७] (अशिश्वीः) बच्चोंसे रहित, (सबर्दुघाः) अमृतको दुहनेवाली, (शशया) तेजयुक्त (अप्रदुग्धा) न दुहीं गईं (युवतयः धेनवः) तरुणी गायें (नव्यानव्या भवन्तीः) प्रतिदिन नवीन नवीन होती हुई (धुनयन्तां) दोहन करें । यह (देवानां एक महत् असुरत्वं) देवोंका एक अद्‌भुत काम है ॥ १६ ॥

[५४८] (यत् वृषभः) जो वीर (अन्यासु रोरवीति) दूसरी दिशाओंमें रहकर गरजता है, (सः) वह (अन्यस्मिन् यूथे) किसी दूसरे ही झुण्डमें जाकर (रेतः नि दधाति) अपने वीर्यको स्थापित करता है । (सः हि) वह गरजनेवाला (क्षपावान्) पालन करनेवाला (सः भगः) वह ऐश्वर्यवान् तथा (सः राजा) वह सबका राजा और तेजस्वी है । यह (देवानां एकं महद् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्‌भुत काम है ॥ १७ ॥

[५४९] हे (जनासः) मनुष्यो ! (वीरस्य सु अश्व्यं) इस वीरके उत्तम पराक्रमकी (नु प्रवोचाम) हम प्रशंसा करें, (अस्य) इसके इस पराक्रमको (देवाः विदुः) देव भी जानते है, (षोळहा युक्ता) छै छै घोडोंसे युक्त होनेपर भी (पंचपंचा वहन्ति) पांचपांच घोडे ही इसे ढोते हैं । (देवानां एकं महत् असुरत्वं) यह देवोंका एक महान् अद्‌भुत काम है ॥ १८ ॥

[५५०] (सविता) सबको उत्पन्न करनेवाला (विश्वरूपः) अनेक रूपोंवाला (त्वष्टा देवः) त्वष्टा देव (पुरुधा प्रजाः जजान) अनेक तरहकी प्रजाओंको उत्पन्न करता है और (पुपोष) इनको पुष्ट भी करता है (इमा विश्वा भुवनानि अस्य) ये सारे भुवन इसी त्वष्टा देवके हैं, यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्‌भुत काम है ॥ १९ ॥

भावार्थ— शिशुओंसे रहित होती हुई भी अमृतको दुहनेवाली, तेजयुक्त, न दुही गई सूर्यकिरण रूपी गायें प्रतिदिन नवीन होकर अमृत प्रदान करें ॥ १६ ॥

मेघरूपी वीर गरजता तो दूसरी जगह अर्थात् आकाशमें है, पर वर्षाजलरूपी अपने वीर्यका सिंचन करता है दूसरी जगह अर्थात् पृथ्वीमें है । इस प्रकार जल बरसाकर वह पृथ्वीका पालन करता है और ऐश्वर्य प्रदान करता है ॥ १७ ॥

इस मंत्रमें अध्यात्मका वर्णन है । इस आत्मारूपी इन्द्रका पराक्रम बहुत ही महान् है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं और अन्य देवगण भी इसके पराक्रमको अच्छी तरह जानते हैं यद्यपि इस आत्माके रथ इस शरीरमें पांच ज्ञानेन्द्रियां तथा मन और पांच कर्मेन्द्रियां और मन इस प्रकार छै छै घोडे जुते हुए हैं, पर इस आत्माको पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां रूपी ५–५ घोडे ही ढोते हैं ॥ १८ ॥

सबको उत्पन्न करनेवाला अनेक रूपोंवाला त्वष्टा देव अनेक तरहकी प्रजाओंको उत्पन्न करता है और उनका पालन पोषण भी करता है । ये सभी लोक इसी त्वष्टाने बनाये हैं ॥ १९ ॥

५५१ मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २० ॥

५५२ इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २१ ॥

५५३ निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद् देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ— [५५१] इन्द्र (मही) महान् तथा (समीची) परस्पर मिलजुलकर चलनेवाली (चम्वा) इन द्युलोक और पृथ्वीलोकको (सं ऐरत्) अच्छी तरह प्रेरित करता है। (ते उभे) वे दोनों (अस्य वसुना नि ऋष्टे) इस इन्द्रके तेजसे व्याप्त हैं। मैंने (वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे) वीरको ही धनोंको प्राप्त करते सुना है। यह (देवानां एकं महद् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्‌भुत काम है ॥ २० ॥

१ वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे— मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते सुना है।

[५५२] (हित मित्रः राजा न) जिस प्रकार अपनी प्रजाओंका मित्रके समान हित करनेवाला एक राजा सदा ही अपनी प्रजाके पास रहता है, उसी प्रकार इन्द्र भी (नः इमां पृथिवीं क्षेति) हमारी इस पृथ्वीके पास रहता है और हम भी (विश्वधायाः उप) इस विश्वका पालन करनेवाली भूमिके पास रहें। (वीराः पुरःसदः शर्मसदः) इस इन्द्रके सहायक वीर मरुत् हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं। यह (देवानां एकं महत् असुरत्वं) देवोंका एक महान् अद्‌भुत काम है ॥ २१ ॥

१ वीराः पुरःसदः शर्मसदः— वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हों।

[५५३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (ओषधीः उत आपः) औषधियां और जल (ते) तेरेही कारण (निष्षिध्वरी) ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं। (पृथिवीः) पृथिवी भी (ते रयिं विभर्ति) तेरे ही ऐश्वर्यको धारण करती है, अतः, हे इन्द्र ! (ते सखायः) तेरे मित्र हम (वामभाजः स्याम) उत्तम धनके भागी हों, यह (देवानां एकं महद् असुरत्वं) देवोंका एक महान् कर्म है ॥ २२ ॥

भावार्थ— मिलजुलकर चलनेवाले द्युलोक और पृथ्वीलोक इन्द्रके द्वारा प्रेरित होकर चलते हैं, वे दोनों ही लोक इन्द्रके तेजसे व्याप्त हैं। ऐसा इन्द्र स्वयं वीर होकर ही धनोंको प्राप्त करता है। इसलिए मनुष्य भी वीरता पूर्ण पराक्रम प्रदर्शित करकेही धन पानेकी इच्छा करे। लक्ष्मी वीर पुरुषको ही वरण करती है निर्बलको नहीं ॥ २० ॥

अपनी प्रजाओंका हित करनेवाला एक राजा जिस प्रकार हमेशा अपनी प्रजाके पासही रहता है, उसी प्रकार यह इन्द्र भी हमेशा इस पृथ्वीके पास रहता है। इस इन्द्रके सहायक वीर मरुत् हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं। वीर भी हमेशा आगे बढनेवाले और प्रजाका कल्याण करनेवाले हों। वे कायर और अत्याचारी न हों ॥ २१ ॥

औषधियां और जल इसी इन्द्रके ऐश्वर्यके कारण समृद्धिशाली हैं। पृथ्वीमें भी जो कुछ ऐश्वर्य है, वह भी इसी इन्द्रके कारण है। अतः ऐसे धनवान् इन्द्रके मित्र हम भी उत्तम धनके स्वामी हों ॥ २२ ॥

[५६]

[ऋषिः- प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा। देवता- विश्वे देवाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

५५४ न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभि-र्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः ॥ १ ॥

५५५ षड्भाराँ एको अचरन् बिभ-र्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका ॥ २ ॥

५५६ त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्-त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥ ३ ॥

---

[५६]

अर्थ— [५५४] (देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं, अतः (ता न मायिनः मिनन्ति) उसका उल्लंघन न मायावी शत्रु कर सकते हैं, (न धीराः) और न बुद्धिमान् ही कर सकते हैं। (वेद्याभिः) सब तरहके ज्ञानसे सम्पन्न (अद्रुहा) द्रोह न करनेवाली (रोदसी) द्यु और पृथ्वी (न) उन नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकती, (तस्थिवांसः पर्वताः न निनमे) स्थिर रहनेवाले पर्वत भी कभी नहीं झुकते ॥ १ ॥

१ देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि— देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं।

[५५५] (अचरन् एकः) न चलनेवाला एक सूर्य (षट् भारान् बिभर्ति) छै भारोंको धारण करता है। (ऋतं वर्षिष्ठं) उस नियम पर चलनेवाले तथा अत्यन्त श्रेष्ठ सूर्यको (गावः उप आगुः) किरणें आकर घेर लेती हैं, (अत्याः महीः तिस्रः) सतत गमन करनेवाले विशाल तीन लोक (उपराः तस्थुः) सब लोकोंसे श्रेष्ठ होकर रहते हैं, उनमें (द्वे गुहा निहिते) दो लोक गुहामें छिपे हुए हैं, और (एका दर्शि) एक दिखाई देती है ॥ २ ॥

[५५६] (त्रिपाजस्यः वृषभः विश्वरूपः) तीन तरहके बलोंवाला, वीर, अनेक रूपोंवाला, (उत) और (त्रि उधा पुरुध प्रजावान्) तीन स्तनोंवाला, अनेक रूप रंगोंवाली, प्रजाओंसे युक्त (त्रि अनीकः) तीन सेनाओंवाला (महिनावान्) महिमाशाली वह सूर्य (पत्यते) उदय होता है। (स वृषभः) वह वीर्यशाली (शश्वतीनां) अनेकों वनस्पतियोंमें (रेतोधाः) अपने वीर्यको स्थापित करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— देवोंके नियम हमेशा एकसे रहते हैं, इसीलिए वे श्रेष्ठ हैं। उन नियमोंका उल्लंघन न दुष्ट कर सकते हैं और न बुद्धिमान् सज्जन ही। द्यु और पृथ्वी आदि लोक भी उन नियमोंका उल्लंघन नहीं कर सकते। इसीलिए जब एक बार पर्वतोंको स्थिर कर दिया तो आजतक वे स्थिर हैं, कभी नहीं झुकते ॥ १ ॥

न चलनेवाला सूर्य छै ऋतुओंको धारण करता है। उस सूर्यको किरणें व्याप्त करती हैं। उसीके कारण द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी स्थिर हैं, उनमें द्यु और अन्तरिक्ष न दिखाई देनेके कारण गुहामें गुप्त हैं और एक लोक पृथ्वी दिखाई देता है ॥ २ ॥

इस सूर्यका बल प्रातः, मध्यान्ह और सायं इन तीन कालोंमें प्रकट होनेके कारण तीन तरहका है, द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवी ये तीन स्तन सूर्यके हैं। इन तीनों लोकोंमें रहनेवाली शक्तियां उसकी तीन तरहकी सेनायें हैं। वह सूर्य वीर्यशाली है, इसीलिए वह महिमाशाली भी है। वह अपनी किरणोंके द्वारा समस्त ओषधियोंमें रसका आधान करता है। यह रस ही सूर्यका वीर्य है ॥ ३ ॥

५५७ अभीकं आसां पदवीरंबो॒ध्यादित्यानांमह्वे चारु नाम॑ ।
आपंश्चिदस्मा अरमन्त दे॒वीः पृथ॒ग् व्रज॑न्तीः परिं षीमवृञ्जन् ॥ ४ ॥

५५८ त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीना॒मुत त्रि॒माता वि॒दथेषु स॒म्राट् ।
ऋतावरी॒र्योष॑णास्ति॒स्रो अप्या॒स्त्रिरा दि॒वो वि॒दथे॒ पत्य॑मानाः ॥ ५ ॥

५५९ त्रिरा दि॒वः सवितर्वार्याणि दि॒वेदि॑व आ सु॑व त्रिर्नो॒ अह्नः ।
त्रि॒धातु॒ राय आ सु॑वा वसू॑नि भग॑ त्रातर्धिषणे सा॒तये॑ धाः ॥ ६ ॥

५६० त्रिरा दि॒वः सवि॒ता सोषवीति राजा॑ना मि॒त्रावरुणा सुपाणी ।
आप॑श्चिदस्य॒ रोद॑सी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवि॒तुः सवाय॑ ॥ ७ ॥

अर्थ— [५५७] (आसां) इन वनस्पतियोंके (अभीके) पासमें (पदवीः अबोधि) इस सूर्यके चिन्ह जाने जाते हैं, मैं (आदित्यानां चारु नाम अह्वे) आदित्योंके सुन्दर नामोंका वर्णन करता हूँ । (देवीः आपः चित्) दिव्य जल भी (अस्मै अरमन्त) इस सूर्यके साथ रमण करते है, पर जब (पृथक् व्रजन्तीः) वे जल अलग अलग होकर चलने लगते हैं, तब (सीं) इस सूर्यको (परि अवृंजन्) त्याग देते हैं ॥ ४ ॥

[५५८] हे (सिन्धवः) नदियो ! तुम (त्रिषधस्था) तीन स्थानोंपर रहती हो, तथा (त्रिः कवीनां) तीन तरहके देव इन स्थानोंमें रहते हैं (उत) और (त्रिमाता) इन तीनों लोकोंका निर्माता सूर्य (विदथेषु सम्राट्) यज्ञोंमें सम्राट् होता है । (ऋतावरीः) जलोंसे युक्त (तिस्रः अप्याः योषणाः) तीन आकाशीय स्त्रियां (दिवः) द्युलोकसे (त्रि विदथे) तीन सवनोंवाले यज्ञमें (आ पत्यमानाः) आती हैं ॥ ५ ॥

[५५९] हे (सवितः) सबके प्रेरक सूर्य ! तू (दिवः) द्युलोकसे आकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वार्याणि) चाहने योग्य धन (त्रिः आ सुव) तीनवार दे तथा (अह्नः नः त्रिः) दिनमें भी हमें तीनबार धन दे । हे (भग त्रातः) ऐश्वर्यवान् रक्षक ! तू (त्रिधातु रायः वसूनि) तीन तरहके ऐश्वर्य और धन (आ सुव) प्रदान कर । हे (धिषणे) सरस्वती ! हमें (सातये धाः) धनप्राप्तिके योग्य बना ॥ ६ ॥

[५६०] (सविता) सबका प्रेरक सूर्य (दिवः) द्युलोकसे (त्रिः सोषवीति) तीन प्रकारके धन प्रदान करे । (राजाना सुपाणी मित्रावरुणा) तेजस्वी और कल्याणकारी हाथोंवाले मित्र और वरुण, (आपः चित्) जल तथा (उर्वी रोदसी चित्) विशाल द्यावापृथिवी भी (सवाय) धनकी प्राप्तिके लिए (सवितुः रत्नं भिक्षन्त) सूर्यसे रत्न मांगते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— वनस्पतियोंके अन्दर सूर्यके द्वारा स्थापित रसको देखा जा सकता है । द्युलोकमें उत्पन्न होनेवाले जल वर्षाकालमें इस सूर्यके साथ रहते हैं, पर जब वर्षाकालके बाद वे जल सूर्यसे अलग होने लगते हैं, तब वे जल सूर्यसे दूर चले जाते हैं, फिर वे जल सूर्यको नहीं घेरते ॥ ४ ॥

द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंमें द्यु स्थानीय, अन्तरिक्ष स्थानीय और पृथ्वी स्थानीय देवगण रहते हैं । इन तीनों लोकोंका निर्माता सूर्य यज्ञके तीनों सवनोंमें प्रकाशित होता है । और सरस्वती, इळा और भारती ये तीन देवियां इन यज्ञोंमें उपस्थित होती हैं ॥ ५ ॥

हे सूर्य ! तू प्रतिदिन हमारे पास आकर हमें तीनवार धनका दान दे, तू हमें सब तरहका ऐश्वर्य और धन प्रदान कर ॥ ६ ॥

सबको प्रेरणा देनेवाला सूर्य द्युलोकसे हमें तीन तरहके धन दे । तेजस्वी, कल्याणकारी हाथोंवाले मित्र, वरुण, जल और विशाल द्यावापृथ्वी भी इसी सूर्यसे धन आदि मांगते हैं ॥ ७ ॥

५६१ त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभास-स्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥ ८ ॥

[५७]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५६२ प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासे-रिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ १ ॥

५६३ इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥ २ ॥

अर्थ—[५६१] (दूणशा उत्तमा) नष्ट न होनेवाले, उत्तम (रोचनानि त्रिः) प्रकाशस्थान तीन हैं, उनके कारण (असु-रस्य वीराः) जीवन देनेवाले परमेश्वरके वीर (ऋतावानः इषिराः दूळभासः) सत्यनिष्ठ, उत्साहपूर्वक कार्य करनेमें तत्पर और कभी भी न दबनेवाले होकर (त्रिः राजन्ति) तीन प्रकारसे प्रकाशित होते हैं। ये (दिवः वीराः) दिव्यवीर (विदथे) युद्धमें हमारे सहायक हों ॥ ८ ॥

[५७]

[५६२] (चरन्तीं) उत्तममार्गमें जानेवाली, (प्रयुतां) उत्तम ज्ञानसे युक्त (अगोपां) रक्षकसे रहित (धेनुं मे मनीषां) धारण करनेवाली, मेरी बुद्धिको (विविक्वान्) विवेकसे युक्त इन्द्रने (अविदत्) जान लिया है। (या) जो धेनु (सद्यः चित्) शीघ्र ही (भूरि धासे दुदुहे) बहुतसे अन्नको दुहती है, (अस्याः) उस धेनुके (तत्) उस महत्वकी (इन्द्रः अग्निः) इन्द्र और अग्नि (पनितारः) प्रशंसा करनेवाले हैं ॥ १ ॥

[५६३] (वृषणा सुहस्ता) बलवान् तथा उत्तम हाथोंवाले (इन्द्रः पूषा) इन्द्र और पूषा तथा अन्य देव (प्रीताः) प्रसन्न होकर (दिवः शशयं दुदुह्रे) द्युलोकसे मेघको दुहते हैं (यत्) क्योंकि (विश्वे देवाः) सभी देव (अस्यां रणयन्तः) मेरी इस स्तुतिमें आनन्द प्राप्त करते हैं, इसलिए हे (वसवः) वसुदेवो ! (वः) आपकी कृपासे मैं (अत्र) इस संसारमें (सुम्नं अश्याम) सुखको प्राप्त करूँ ॥ २ ॥

भावार्थ— इस मानवी कार्यक्षेत्रमें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक ऐसे तीन प्रकाश केन्द्र हैं। सबको जीवन देनेवाले ईश्वरपर निष्ठा रखकर कार्य करनेवाले वीर इन तीन दिव्य तेजोंसे युक्त होकर सत्यनिष्ठ, बनते हैं। ऐसे वीर अपने कार्यको यथाशीघ्र समाप्त करते हैं और कोई भी उन्हें नहीं दबा सकता। इसलिए ये वीर तीनों क्षेत्रोंमें तेजस्वी और यशस्वी होते हैं। हमारे इस धर्मयुद्धमें ऐसे वीर हमारी सहायता करें ॥ ८ ॥

उत्तम मार्गमें जानेवाली उत्तम ज्ञानसे युक्त बुद्धि धारण करनेवाली होती है, ऐसी बुद्धि अनेक तरहके धनोंको प्रदान करती है। इसीलिए ऐसी बुद्धिकी इन्द्र और अग्निकी प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

जब इन्द्र और पूषा आदि देव प्रसन्न होते हैं, तब वे द्युलोकसे मेघोंको दुहकर पानी बरसाते हैं। वे सभी देव मेरी स्तुतिको सुनकर आनन्दित होते हैं, अतः उनकी दयासे मैं इस संसारमें हर तरहका सुख प्राप्त करूं ताकि यहां मेरा निवास उत्तम हो ॥ २ ॥

×

५६४ या जामयो वृष्णं इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ३ ॥
५६५ अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥ ४ ॥
५६६ या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्राना सादय पायया चा मधूनि ॥ ५ ॥
५६७ या ते अग्ने पर्वतस्येव धारासश्चन्ती पीपयद् देव चित्रा ।
तामस्मभ्यं प्रमतिं जातवेदो वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[५६४] (याः जामयः) जो स्त्रियां (वृष्णे) बलवान्के पास जाकर (शक्तिं इच्छन्ति) शक्तिकी इच्छा करती हैं और (नमस्यन्तीः) नम्र होकर जाती हैं, तब वे (अस्मिन् गर्भं) इस पुरुषमें गर्भ स्थापित करनेकी शक्ति है, ऐसा (जानते) जान लेती हैं। (वावशानाः धेनवः) कामवश हुई धेनुएं (महः वपूंषि बिभ्रतं) बडे शरीरको धारण करनेवाले अपने (पुत्रं अच्छा चरन्ति) पुत्रके पास सीधे जाती हैं ॥ ३ ॥

[५६५] (अध्वरे ग्राव्णः युजानः) यज्ञमें सोम कूटनेके पत्थरोंका उपयोग करता हुआ मैं (मनीषा) अपनी मननशील बुद्धिसे (सुमेके रोदसी) सुन्दर रूपवाली द्यु और पृथ्वीलोककी (अच्छ विवक्मि) सुन्दर स्तुति करता हूँ। हे अग्ने! (भूरिवाराः) बहुतोंके द्वारा वरणीय, (दर्शताः) देखने योग्य, (यजत्राः) पूजाके योग्य (ते इमाः) तेरी ये ज्वालायें (मनवे) मनुष्यके कल्याणके लिये (ऊर्ध्वाः भवन्ति) ऊपरकी ओर चलें ॥ ४ ॥

[५६६] हे (अग्ने) अग्ने! (ते) तेरी (या) जो (मधुमती) मधुरतासे युक्त, (सुमेधा) उत्तम बुद्धिवाली, (उरूची) सर्वत्र व्याप्त (जिव्हा) ज्वाला (देवेषु उच्यते) देवोंमें प्रशंसित होती है, (तया) उस ज्वालाको (विश्वान् यजमान् अवसे) सम्पूर्ण पूजनीय देवोंकी रक्षाके लिए (इह सादय) यहां इस यज्ञमें स्थापित कर और उन्हें (मधूनि) मीठे सोमरस (पायय) पिला ॥ ५ ॥

[५६७] हे (देव अग्ने) दिव्य अग्ने! (ते या) तेरी जो (चित्रा) उत्तम (असश्चन्ती) बुरे मार्गोंमें न जानेवाली बुद्धि (पर्वतस्य धारा इव) मेघसे निकलनेवाली वृष्टिकी धाराके समान (पीपयद्) सबको तृप्त करती है, हे (वसो जातवेदः) सबको बसानेवाले जातवेद अग्ने! (तां प्रमतिं) उस उत्तम बुद्धिको (अस्मभ्यं रास्व) हमें दे, तथा (विश्वजन्यां प्रमतिं) सारे संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको प्रदान कर ॥ ६ ॥

१ अग्ने! विश्वजन्यां सुमतिं रास्व— हे अग्निदेव! संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको तू हमें प्रदान कर।

भावार्थ— जलरूपी स्त्रियां जब शक्तिशाली सूर्यके पास जाती हैं, तब उन्हें सूर्यकी शक्तिका ज्ञान हो जाता है और वह पृथ्वीरूपी धेनुमें वृष्टि जलरूपी अपने वीर्यका आधान करता है, तब वह पृथ्वी अनेकरूप धारण करनेवाले वृक्ष वनस्पतियोंको उत्पन्न करती है, वे वृक्ष वनस्पति ही पृथ्वीके पुत्र हैं ॥ ३ ॥

मैं इस यज्ञमें अपनी मीठी और सुन्दर वाणीसे द्युलोक और पृथ्वीलोककी स्तुति करता हूँ। हे अग्ने! देखने योग्य तथा पूजाके योग्य तेरी ये ज्वालायें मनुष्यके कल्याणके लिए हमेशा ऊपरकी तरफ जलती रहें ॥ ४ ॥

इस अग्निकी ज्वाला मधुरतासे युक्त, उत्तम बुद्धिको प्रदान करनेवाली होनेके कारण सभी विद्वानोंमें प्रशंसित होती है। इसी ज्वालाके द्वारा सब देवों तक हवि पहुंचती है, इसीलिए वह अग्नि सब देवोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ ५ ॥

हे अग्ने! तेरी बुद्धि सदाही उत्तम मार्गोंसे जानेवाली है और वह सबको तृप्त करती है, उसी बुद्धिको तू हमें प्रदान कर ताकि हम संसारका हित कर सकें ॥ ६ ॥

[५८]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५६८ धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना ऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामो षसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥ १ ॥

५६९ सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेनो र्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।
जरेथामस्मद् वि पणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥ २ ॥

५७० सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठा ऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥

५७१ आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवै र्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ४ ॥

---

[५८]

अर्थ— [५६८] (प्रत्नस्य काम्यं) पुरातन इच्छाके अनुकूल (दुहाना धेनुः) दुही जाती हुई गौ और (दक्षिणायाः पुत्रः) दक्षिणामें दी गौका बछडा यज्ञस्थलके (अन्तः चरति) भीतर घूमता है (शुभ्रयामा) शुभ्र गतिवाला वीर (द्योतनिं आ वहति) ज्योतिको धारण करता है, (अश्विनौ) अश्विनौकी प्रशंसा करनेके लिए (स्तोमः) स्तोत्र (उषसः अजीगः) उषाके कारण जागृत हुआ है, उषःकालमें पढा जाता है ॥ १ ॥

[५६९] (वां प्रति) तुम्हें (ऋतेन सुयुक् वहन्ति) सरल मार्गसे तुम्हारे रथके घोडे यहां ले आते हैं । यहां (मेधाः) सब यज्ञ (पितरा इव) रक्षकोंके समान सबको (ऊर्ध्वाः भवन्ति) ऊँचा उठाते हैं, (पणेः मनीषां) व्यापारीकी [बहुत लाभ उठानेकी] इच्छाको (अस्मत् वि जरेथां) हमसे दूरकर क्षीण करो, हम (युवोः अव चकृम) तुम दोनोंका अन्न तैयार कर चुके इसलिए (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आ जाओ । [और उसका सेवन करो] ॥ २ ॥

[५७०] हे (दस्रौ !) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (अद्रेः इमं श्लोकं) पर्वत (पर उगनेवाले इस सोम) के इस काव्यको (सुवृता रथेन) सुन्दर गतिवाले रथपरसे, (सुयुग्भिः अश्वैः) उत्तम शिक्षित घोडोंको जोतकर, आकर (शृणुतं) सुनते हैं (किं पुराजाः विप्रासः) कि, पूर्वकालमें उत्पन्न ज्ञानी लोग (वां) तुम्हें (अवर्तिं प्रति गमिष्ठा) दरिद्रताको हटानेके लिए जाते हैं ऐसा (आहुः अंग) बतलाते हैं ॥ ३ ॥

[५७१] (हे अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (आ मन्येथां) तुम (हमारे इस कर्मका) अनुमोदन करो (एवैः आगतं कच्चित्) घोडोसे अवश्य आओ, क्योंकि (विश्वे जनासः हवन्ते) सभी लोग तुम्हें बुलाते हैं; (उस्रः अग्रे) सूर्योदयके पहले ही (इमा गोऋजीका मधूनि) इन गोरसमिश्रित मीठे सोमरसोंको (वां हि) तुम्हें ही (मित्रासः न प्र ददुः) मित्रोंके सामने ये याजक देते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— प्रातःकालमें गौका दोहन हो, यह इच्छा सदा मनमें रहे । इस कार्यके लिये गौ और बछडा यज्ञशालाके चारों ओर घूमता रहे । यशस्वी वीर तेजस्वी बनकर अपना कर्तव्य करे । प्रातःकालमें उषाके साथ अश्विदेवोंके स्तोत्रपाठ चलें ॥ १ ॥

तुम्हारे रथको घोडे जोते हैं, वे तुम दोनोंको सरल मार्गसे इस यज्ञस्थलमें ले आते हैं । जिस तरह मातापिता पुत्रकी सुरक्षा करते हैं, वैसे यज्ञ जनताकी सुरक्षा करके उनकी उन्नति करते हैं। व्यापार करनेवालोंकी बुद्धि अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी रहती है, वैसी बुद्धि हमारे पास न रहे, हममें उदारता रहे। हमारे द्वारा तैयार किया अन्न तुम यहां आकर सेवन करो ॥२॥

अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं, सुन्दर रथको उत्तम घोडे जोतकर यज्ञमें आते हैं, और वेदके काव्यको सुनते हैं, उस काव्यका भाव यह होता है कि अश्विदेव जनताकी 'दरिद्रताको दूर करनेके लिये जनताके समीप जाते हैं' ॥ ३ ॥

अश्विदेवोंको सब लोग बुलाते हैं; वहां वे घोडोंपर सवार होकर प्रातःकालमें जायें और मित्र जैसे याजकोंसे दिये गोरसमिश्रित सोमरस पीयें ॥ ४ ॥

५७२ तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ५ ॥

५७३ पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।
पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥ ६ ॥

५७४ अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥ ७ ॥

५७५ अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥ ८ ॥

अर्थ— [५७२] हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न अश्विदेवो ! (पुरू रजांसि चित् तिरः) बहुतसे रजोगुणोंको भी पार करके (वां आंगूषः) तुम्हारी स्तुति (जनेषु) जनतामें हो जावे; हे (दस्रौ) शत्रुविनाशक वीरो ! (देवयानैः पथिभिः) देवता गण जिनपरसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आ यातं) इधर पधारो, क्योंकि (इमे मधूनां निधयः वां) ये मधुरसोंके भण्डार तुम्हारे लिए रखे हैं ॥ ५ ॥

[५७३] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां पुराणं ओकः) तुम्हारा पुराना यज्ञस्थान तथा तुम्हारी (सख्यं शिवं) मित्रता कल्याणकारक है, (युवोः द्रविणं जह्नाव्यां) तुम्हारा धन नदीके पास रखा है; (पुनः) फिरसे (शिवानि सख्या) हितकारक मित्रता (कृण्वानाः) करते हुए (समानाः) समभावसे (सह नु) सब मिलकरही (मध्वा मदेम) मीठे रसपानसे हर्षित हों ॥ ६ ॥

[५७४] हे (सुदानू) अच्छे दानी अश्विदेवो ! तुम (नासत्या) सत्य पूर्ण (सुदक्षा) अच्छी शक्तिसे युक्त (अस्रिधा) बिना किसी क्षतिके (युवाना युवं) नित्य युवक तुम दोनों (वायुना नियुद्भिः च) वायु और घोडोंके साथ (सजोषसा) प्रीतिपूर्वक (तिरो अह्न्यं सोमं) कल निचोडकर रखे सोमको (जुषाणा पिबतं) आदरपूर्वक पान करो ॥ ७ ॥

[५७५] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (पुरूचीः इषः) बहुतसी अन्नसामग्रियाँ (वां परि ईयुः) तुम्हें चारों ओरसे प्राप्त होती हैं, (यतमानाः) प्रयत्नशील लोग (अमृध्राः) किसी प्रकारकी क्षति या रुकावट न पाते हुए (गीर्भिः) अपने भाषणोंमें तुम्हारी स्तुति करते हैं; (वां ऋतजाः) तुम दोनोंका सत्यके लिये उत्पन्न (अद्रिजूतः रथः ह) पर्वतकी लकडियोंसे बनाया रथ सचमुच (सद्यः द्यावापृथिवी) तुरन्त भूलोक तथा द्युलोकके (परि याति) चारों ओर प्रयाण करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— अश्विदेव, धूलीके मलिन स्थानोंसे पार होकर जनतामें स्तुतिको प्राप्त करें। शत्रुका नाश करें, देवोंके मार्गोंसे पधारें और मीठा अन्न सेवन करें ॥ ५ ॥

नेताओंका घर और उनका मित्रभाव कल्याणकारी हो, उनका धन सबका कल्याण करे । सब लोग समभावसे मीठे अन्नका सेवन करते रहें ॥ ६ ॥

अच्छे दानी बनो, सत्यका पालन करो, कार्यमें क्षति न रखो, तरुण जैसे उत्साही वीर बनो, घोडोंपर सवार होकर वायुवेगसे जाओ और कल तैयार किये सोमरसका पान करो ॥ ७ ॥

इन अश्विदेवोंका रथ चारों ओर जानेवाला है, उनके रथके लिए कहीं भी मार्गमें रुकावट नहीं होती । इसीलिए इन्हें चारों ओरसे अन्नसामग्रियां मिलती रहती हैं ॥ ८ ॥

५७६ अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।
रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत् सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥ ९ ॥

[५९]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- मित्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ६-९ गायत्री ।]

५७७ मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥ १ ॥

५७८ प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥ २ ॥

अर्थ— [५७६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवाकुः सोमः) तुम्हारी कामना पूर्ण करता हुआ सोम (मधुषुत्तमः) मीठेपनको खूब बढ़ाता है, इसलिए (दुरोणे आगतं) घरपर पधारकर (तं पातं) उसका पान करो। (वां रथः ह) तुम्हारा रथ अवश्य ही (भूरि वर्पः करिक्रत्) बहुत स्वीकरणीय तेज उत्पन्न करता हुआ (सुतावतः) निचोडनेवालेके (निष्कृतं आ गमिष्ठः) घर अत्यधिक रूपमें आ जाता है ॥ ९ ॥

[५९]

[५७७] (मित्रः) मित्र देव (ब्रुवाणः) आज्ञा देता हुआ (जनान् यातयति) मनुष्योंको अपने काममें नियुक्त करता है, (मित्रः पृथिवीं उत द्यां दाधार) मित्र ही पृथ्वी और द्युलोकको धारण करता है, (मित्रः) मित्र (अनिमिषाभिः) पलक न मारनेवाली आंखोंसे (कृष्टी अभि चष्टे) मनुष्योंके कामोंको देखता है, अतः हे मनुष्यो ! (मित्राय) मित्रके लिए (घृतवत् हव्यं जुहोत) घी युक्तसे हवि प्रदान करो ॥ १ ॥

१ मित्रः अनिमिषाभिः कृष्टीः अभि चष्टे— मित्र देव कभी भी पलक न मारते हुए मनुष्योंके कामोंको देखता रहता है ।

[५७८] हे (आदित्य मित्र) अदितिपुत्र मित्र ! (यः ते व्रतेन शिक्षति) जो तेरे नियमके अनुसार आचरण करता है, (सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु) वह मनुष्य धनवान् हो, (त्वा ऊतः) तुझसे रक्षित हुआ मनुष्य (न हन्यते न जीयते) न मारा ही जाता है और न जीता ही जाता है, (एनं) इसे (अंहः) पाप (न अन्तिकः अश्नोति) न पाससे व्यापता है, (न दूरात्) न दूरसे ॥ २ ॥

१ मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु— हे मित्र ! जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है ।

२ त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते— तुझसे सुरक्षित हुआ मनुष्य न मारा ही जाता है, और न जीता ही जाता है ।

३ एनं अंहः न अश्नोति— इसे पाप नहीं छू सकता ।

भावार्थ— अश्विनीदेवोंका रथ चारों ओर तेजको फैलाता हुआ दौडता है । ऐसे रथके द्वारा अश्विनौ जहां भी जाते हैं, वहीं चारों ओर आनन्दका वातावरण उत्पन्न होकर मानों सर्वत्र मीठे रसकी धारा बहने लगती है । मनुष्य भी इसी प्रकार सदा आनन्दमय होकर अपने चारों ओर मधुरता उत्पन्न करे ॥ ९ ॥

यह मित्र आज्ञा देते हुए मनुष्योंको अपने काममें नियुक्त करता है । यही सब लोकोंको धारण करता है तथा यह सदा ही मनुष्योंके कामोंको देखता रहता है, इससे कोई भी काम छुपा नहीं रहता ॥ १ ॥

जो मनुष्य मित्रके समान हित करनेवाले परमेश्वरके नियमोंके अनुसार चलता है, वह ऐश्वर्यवान् होता है । उसे कोई भी शत्रु न जीत ही सकता है और न मार ही सकता है । और कोई पाप कर्म भी नहीं करता ॥ २ ॥

५७९ अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥
५८० अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या- ऽपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ४ ॥
५८१ महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्ट- मग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥ ५ ॥
५८२ मित्रस्य चर्षणीधृतो- ऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६ ॥
५८३ अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः । अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥ ७ ॥

अर्थ — [५७९] (अनमीवासः) रोग रहित (इळया मदन्तः) अन्नसे आनन्दित होनेवाले, (पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः) इस पृथ्वीके विस्तीर्ण क्षेत्रोंमें नम्र होकर चलनेवाले तथा (आदित्यस्य व्रतं उपक्षियन्तः) आदित्यके नियमके अनुसार आचरण करनेवाले (वयं) हम (मित्रस्य सुमतौ स्याम) मित्र देवकी उत्तम बुद्धिमें रहें ॥ ३ ॥

१ पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ— पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मनुष्य मित्रकी उत्तम बुद्धिमें रहते हैं ।

[५८०] (नमस्यः) नमन करने योग्य (सुशेवः) सेवाके योग्य (राजा) तेजस्वी (सुक्षत्रः) उत्तम बलवाला (वेधाः) अत्यन्त बुद्धिमान् (अयं मित्रः) सबका मित्र रूप यह सूर्य (अजनिष्ट) उदय हो गया है। (वयं) हम (तस्य यज्ञियस्य) उस पूजनीय सूर्यके (सुमतौ) उत्तम बुद्धिके और (भद्रे सौमनसे अपि) कल्याणकारी उत्तम मनके अनुकूल रहें ॥ ४ ॥

[५८१] यह (महान् आदित्यः) महान् आदित्य (नमसा उपसद्यः) विनम्र होकर ही पासमें जाने योग्य है। (यातयज्जनः) मनुष्योंको अपने अपने काममें प्रेरित करनेवाला यह सूर्य (गृणते सुशेवः) स्तोताके लिए उत्तम सुख-का देनेवाला है। (तस्मा पन्यतमाय मित्राय) उस अत्यन्त स्तुत्य मित्रके लिए (एतत् जुष्टं हविः) इस अत्यन्त प्रिय हविको (अग्नौ आ जुहोत) अग्निमें आहुति दो ॥ ५ ॥

[५८२] (चर्षणीधृतः देवस्य मित्रस्य) मनुष्योंको धारण करनेवाले इस दिव्य सूर्यकी (अवः) रक्षात्मक कृपा (सानसि) सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य (द्युम्नं) धनदायक और (चित्रश्रवस्तमं) अनेक तरहके अन्नको प्रदान करनेवाली है ॥ ६ ॥

[५८३] (यः मित्रः) जिस सूर्यने (महिना) अपनी महिमासे (दिवं अभि बभूव) द्युलोकको व्याप लिया, वही (सप्रथाः) प्रसिद्ध यशवाला सूर्य (श्रवोभिः) अन्नादिके द्वारा (पृथिवीं अभि) पृथिवीको व्याप लेता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— रोगसे रहित होकर अन्नसे आनन्दित होनेवाले तथा विनम्रतापूर्वक व्यवहार करनेवाले एवं आदित्य सूर्यके समीप रहनेवाले हम मित्रकी उत्तम बुद्धिमें हम रहें ॥ ३ ॥

उदय होता हुआ सूर्य नमन करने योग्य, सेवा किए जाने योग्य, उत्तम बलवाला तथा उत्तम बुद्धिवाला है, जो इसके अनुकूल आचरण करता है, वह हर तरहका कल्याण प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

यह आदित्य देव महान् है, इसलिए इसके पास लोग नम्र होकर ही जाते हैं। यह सूर्य उदय होकर सबको अपने अपने काममें प्रेरित करता है। यह सूर्य स्तोताके लिए उत्तम सुखको देनेवाला है, ऐसे उस अत्यन्त स्तुत्य देवके लिए अग्निमें उत्तम आहुति देनी चाहिए ॥ ५ ॥

जिस प्रकार इस देवकी कृपा हो जाती है, वह हर तरहके धन तथा अन्न एवं यश प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

द्युलोकमें रहकर यह सूर्य अपने प्रकाशसे द्युलोकको व्याप लेता है और जब वह अपनी किरणोंसे जल बरसाकर अन्नको उत्पन्न करता है, तो वह पृथ्वीको भी अपनी महिमासे व्याप्त कर लेता है ॥ ७ ॥

५८४ मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान् विश्वान् बिभर्ति ॥ ८ ॥
५८५ मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इष इष्टव्रता अकः ॥ ९ ॥

[६०]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- ऋभवः, ५-७ इन्द्र ऋभवश्च । छन्दः- जगती ।]

५८६ इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
यामिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥ १ ॥
५८७ याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ २ ॥

अर्थ— [५८४] (अभिष्टिशवसे मित्राय) शत्रुओं पर आक्रमण करनेके कार्यमें बलशाली मित्रके लिए (पंच जनाः) पांच मनुष्य (येमिरे) आहुति देते हैं। (सः विश्वान् देवान् बिभर्ति) वह सब देवोंको धारण करता है ॥८॥

[५८५] (मित्रः) मित्र (देवेषु आयुषु) देवोंमें और मनुष्योंमें (वृक्तबर्हिषे जनाय) आसन बिछानेवाले मनुष्यके लिए (इष्टव्रताः इषः अकः) व्रतों एवं नियमोंका पालन करनेवालोंके द्वारा चाहे जाने योग्य अन्नको प्रदान करता है ॥ ९ ॥

[६०]

[५८६] हे (प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वनाः) शत्रुओंपर आक्रमण करके अपना तेज प्रकट करनेवाले तथा उत्तम धनुषवाले वीर ऋभुओ ! (याभिः मायाभिः) जिन कुशलतापूर्वक किए जानेवाले कामोंके कारण तुम (यज्ञियं भागं आनश) यज्ञीय भागको प्राप्त करते हो, (तानि) उन कर्मोंको (नरः) जो मनुष्य (वेदसा अभि जग्मुः) ज्ञानपूर्वक करते हैं, उनके साथ (वः मनसा बन्धुता इह इह) तुम्हारा मनसे भाईचारा यहीं रहता है ॥ १ ॥

[५८७] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुमने (चमसां अपिंशत) चमचोंको सुन्दर रूप दिया, (यया धिया) जिस बुद्धिसे तुमने (चर्मणः गां अरिणीत) चर्मसे भी गाय तैय्यार की, (येन मनसा) जिस मनसे (हरी निरतक्षत) घोडोंको बलवान् बनाया, (तेन देवत्वं समानश) उसीके कारण तुमने देवत्व प्राप्त किया ॥ २ ॥

भावार्थ— यह मित्र सूर्य अत्यन्त बलशाली है, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचों जन इसे आहुति प्रदान करते हैं। वह मित्र सब देवोंको धारण करता है ॥ ८ ॥

यह सूर्य देवों और मनुष्योंमें जो इस सूर्यका सत्कार आदि करते हैं उन्हींको यह अन्न प्रदान करता है, जिसे नियमका पालन करनेवाले ही प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

शत्रुओंपर आक्रमण करके अपना तेज प्रकट करनेवाले तथा उत्तम धनुष धारण करनेवाले ये ऋभु जिन कर्मोंको करके पूजाके योग्य बनते हैं, उन्हीं कर्मोंको जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक करते हैं, उनके साथ ये ऋभु मनसे भाईचारेका व्यवहार करते हैं ॥ १ ॥

ऋभुओंने अपनी शक्तिसे उत्तम उत्तम साधन बनाये, उन्होंने अपनी बुद्धिसे हड्डी और चमडेवाली गायको मांससे भरपूर करके हृष्टपुष्ट किया। इसी बुद्धिसे उन्होंने घोडोंको भी हृष्टपुष्ट किया, अपने इन्हीं कामोंके कारण उन्हें देवत्व प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

५८८ इन्द्र॑स्य स॒ख्यमृ॒भव॒: समा॑नशु॒र्मनो॒र्नपा॑तो अ॒पसो॑ दधन्विरे ।
सौ॒ध॒न्व॒नासो॑ अमृत॒त्वमेरि॑रे वि॒ष्ट्वी शमी॑भिः सु॒कृत॑: सुकृ॒त्यया॑ ॥ ३ ॥
५८९ इन्द्रे॑ण याथ स॒रथं॑ सु॒ते सचाँ॒ अथो॒ वशा॑नां भवथा स॒ह श्रि॒या ।
न व॑: प्रति॒मै सु॑कृ॒तानि॑ वाघत॒: सौध॑न्वना ऋभवो वी॒र्या॑णि च ॥ ४ ॥
५९० इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॒र्वाज॑वद्भिः॒ समु॑क्षितं सु॒तं सोम॒मा वृ॑षस्वा॒ गभ॑स्त्योः ।
धि॒येषि॒तो म॑घवन् दा॒शुषो॑ गृ॒हे सौ॑धन्व॒नेभि॑: स॒ह म॑त्स्वा॒ नृभि॑: ॥ ५ ॥
५९१ इन्द्र॑ ऋ॒भुमा॑न् वाज॑वान् मत्स्वे॒ह नो॒ऽस्मिन्त्सव॑ने॒ शच्या॑ पुरुष्टुत ।
इ॒मानि॒ तुभ्यं॒ स्वस॑राणि येमिरे व्र॒ता दे॒वानां॒ मनु॑षश्च॒ धर्म॑भिः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५८८] (मनोर्नपातः अपसः ऋभवः) मनुष्योंको न गिरानेवाले, उत्तम कर्म करनेवाले ऋभुओंने (इन्द्रस्य सख्यं आनशुः) इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त किया, और उसे (दधन्विरे) धारण भी किया, (सुकृतः सौधन्वनासः) उत्तम कर्म करनेवाले तथा उत्तम धनुष धारण करनेवाले ऋभुगण (शमीभिः सुकृत्यया विष्ट्वी) अपनी शक्तियों और उत्तम कर्मोंके कारण सर्वत्र व्याप्त होकर (अमृतत्वं एरिरे) अमृतत्वको प्राप्त किया ॥ ३ ॥

१ अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः— उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं ।

२ सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे— उत्तम कर्मसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं ।

[५८९] हे (वाघतः सौधन्वनाः ऋभवः) बुद्धिमान् और उत्तम धनुषवाले ऋभुओ ! तुम (सुते) सोमके यज्ञमें (इन्द्रेण सचा) इन्द्रके साथ (सरथं याथ) एक ही रथपर बैठकर जाते हो, (अथ) और (वशानां) जो तुम्हारी कामना करता है, उसके पास (श्रिया सह भवथ) धन और ऐश्वर्यके साथ जाते हो, (वः सुकृतानि वीर्याणि च) तुम्हारे उत्तम कर्म और पराक्रमकी (न प्रतिमै) कोई उपमा नहीं है ॥ ४ ॥

१ वः सुकृतानि वीर्याणि च न प्रतिमै— इन ऋभुओंके उत्तम कर्म और पराक्रमकी कोई उपमा नहीं है ।

[५९०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (वाजवद्भिः ऋभुभिः) बलसे युक्त ऋभुओंके साथ तू (समुक्षितं सुतं सोमं) अच्छी तरह पवित्र करके निचोडे गए सोमको (गभस्त्योः आवृषस्व) हाथोंमें धारण कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (धिया इषितः) अपनी उत्तम बुद्धिसे प्रेरित होकर तू (सौधन्वनेभिः नृभिः) उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले मनुष्योंके साथ (दाशुषः गृहे मत्स्व) दानशीलके घरके जाकर आनन्दित हो ॥ ५ ॥

[५९१] हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतोंके द्वारा स्तुत इन्द्र ! (ऋभुमान्) ऋभुओंसे युक्त (वाजवान्) बलशाली तथा (शच्या) शक्तिसे युक्त होकर (इह) यहां (नः अस्मिन् सवने) हमारे इस यज्ञमें (मत्स्व) आनन्दित हो । (इमानि स्वसराणि) ये दिन और (मनुषः धर्मभिः) मनुष्यके कर्मोंके साथ (देवानां व्रता) देवोंके नियम भी (तुभ्यं येमिरे) तेरे कारण ही चलते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये ऋभु मनुष्यको कभी भी अवनतिके मार्गमें प्रेरित नहीं करके, उसको गिराते या अवनत करते नहीं । अपितु हमेशा उसे उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करके उसे उन्नत ही करते हैं । वे उत्तम कर्मोंके द्वारा इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त करके उसे हमेशा टिकाये भी रहते हैं । वे अपने इन उत्तम कर्मोंके द्वारा ही अमृतत्वकी प्राप्ति करते हैं ॥ ३ ॥

यह ऋभु अपने पराक्रमके कारण इतने उन्नत हैं कि वे इन्द्रके साथ उसीके रथपर बैठकर यज्ञोंमें जाते हैं । जो उनके साथ मित्रता करते हैं, उनके पास ये ऋभु धन और ऐश्वर्य लेकर जाते हैं । इनके उत्तम कर्म और पराक्रम इतने महान् हैं कि उनकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू ऋभुओंके साथ यज्ञमें आकर इस निचोडे गए सोमको हाथोंसे धारण कर और उन उत्तम धनुर्धारी मनुष्य-ऋभुओंके साथ दानशीलके घरमें जाकर आनन्दित हो ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! तू ऋभुओंके साथ अपने बल और शक्तियोंसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें आकर आनन्दित हो । हे इन्द्र ! मनुष्योंके और देवोंके कर्म भी तेरे ही कारण नियममें चलते हैं ॥ ६ ॥

५९२ इन्द्रं ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुप याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥ ७ ॥

[६१]

[ऋषिः- गाथिनो विश्वामित्रः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५९३ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधि- रनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

५९४ उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥

५९५ उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो- र्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥

अर्थ— [५९२] हे (इन्द्र) इन्द्र! तू (वाजिभिः ऋभुभिः) बलवान् ऋभुओंके साथ (वाजयन्) सबको बलशाली बनाता हुआ (जरितुः) स्तोताके (इह यज्ञियं स्तोमं उप याहि) इस पूजनीय यज्ञमें आ हे (सहस्रणीथो) हजारों उत्तम मार्गोंको जाननेवाले इन्द्र ! (शतं इषिरेभिः केतेभिः) सौ वेगवान घोडोंसे युक्त होकर (आयवे) मनुष्यको आयु प्रदान करनेके लिए (अध्वरस्य होमनि) हिंसारहित यज्ञमें आ ॥ ७ ॥

[६१]

[५९३] (वाजेन वाजिनि) अन्नसे अन्नवाली (मघोनि उषः) धनवाली उषा ! (प्रचेताः) ध्यान देती हुई (गृणतः स्तोमं जुषस्व) स्तोताओंके स्तोत्र श्रवण कर । हे (विश्ववारे देवि) सबके द्वारा स्वीकारके योग्य उषादेवी तू (पुराणी युवतिः) पुरातन होनेपर भी तरुणी तथा (पुरंधिः) बडी बुद्धिमती (व्रतं अनुचरसि) व्रतका अनुष्ठान करती है ॥ १ ॥

[५९४] (देवी उषः) उषादेवी ! (चन्द्ररथा) चन्द्रके समान सुंदर रथमें बैठनेवाली (सूनृता ईरयन्ती) मधुरवाणीको प्रेरित करनेवाली, (अमर्त्या विभाहि) अमर स्वरूपिणी तू प्रकाशित हो। (ये पृथुपाजसः हिरण्यवर्णाः) जो विशेष बलवान् तथा सुवर्णके समान रंगवाले और (सुयमासः अश्वाः) स्वाधीन रहनेवाले घोडे हैं वे (त्वा आ वहन्तु) तुझे यहां ले आवें ॥ २ ॥

[५९५] हे (उषः) उषा ! (विश्वा भुवनानि प्रतीची) सब भुवनोंके सन्मुख (अमृतस्य केतुः) अमृतके ध्वजके समान (ऊर्ध्वा तिष्ठसि) तू उच्च स्थानमें खडी रहती है । हे (नव्यसि) नित्य नवीन बननेवाली उषा ! (चक्रं इव) चक्रके समान (समानं अर्थं चरणीयमाना) एक ही अर्थ प्राप्तिके लिए चलनेवाली तू (आ ववृत्स्व) पुनः पुनः फिरती रह ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू बलवान् ऋभुओंके साथ सबको बलशाली बनाता हुआ स्तोताके इस पूजनीय यज्ञमें आ और मनुष्योंकी आयु बढा ॥ ७ ॥

यह उषा अन्नके साथ रहनेवाली, उत्तम अन्न तैय्यार करनेवाली, ऐश्वर्यवती, उत्तम अन्तःकरणवाली, सबसे श्रेष्ठ, तेजस्विनी, विशेष बुद्धिमती और तरुणी है, यह अपने नियमोंका पालन करती है ॥ १ ॥

यह उषा चन्द्रके समान सुन्दर और आल्हाददायक रथमें बैठती है, मधुर और शुभ भाषणकी प्रेरणा देती है और अमर है ॥ २ ॥

यह उषा अमरत्व प्राप्तिका ज्ञान देती है अर्थात् अमृतत्व प्राप्तिका ज्ञान प्राप्त कराती है, सब भुवनोंका निरीक्षण करती है । यह नई कन्याके समान सुन्दर दीखती है तथा एक ही ध्येयकी प्राप्तिके लिए हमेशा चक्रके समान घूमती रहती है । सिद्धिके प्राप्त होनेतक यह अपने प्रयत्नको नहीं छोडती ॥ ३ ॥

×

५९६ अव॒ स्यूमे॑व चिन्व॒ती म॒घो॒न्यु॒षा या॑ति॒ स्वस॑रस्य॒ पत्नी॑ ।
स्व१॒र्जन॑न्ती सु॒भगा॑ सु॒दंसा॒ आन्ता॑द् दि॒वः प॑प्रथ॒ आ पृ॑थि॒व्याः ॥ ४ ॥
५९७ अच्छा॑ वो दे॒वीमु॒षसं॑ विभा॒तीं प्र वो॑ भरध्वं॒ नम॑सा सुवृ॒क्तिम् ।
ऊ॒र्ध्वं म॑धु॒धा दि॒वि पाजो॑ अश्रे॒त् प्र रो॑च॒ना रु॑रुचे र॒ण्वसं॑दृक् ॥ ५ ॥
५९८ ऋ॒ताव॑री दि॒वो अ॒र्कैर॑बो॒ध्या रे॒वती॒ रोद॑सी चि॒त्रम॑स्थात् ।
आ॒य॒तीम॑ग्न उ॒षसं॑ विभा॒तीं वा॒मम॑षि॒ द्रवि॑णं॒ भिक्ष॑माणः ॥ ६ ॥
५९९ ऋ॒तस्य॑ बु॒ध्न उ॒षसा॑मिष॒ण्यन् वृषा॑ म॒ही रोद॑सी॒ आ वि॑वेश ।
म॒ही मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्य मा॒या च॒न्द्रेव॑ भा॒नुं वि द॑धे पु॒रुत्रा ॥ ७ ॥

अर्थ— [५९६] (स्यूम इव अवचिन्वती) प्रकाश किरणके समान अन्धकारको दूर करनेवाली (मघोनी उषा) धनवाले (स्वसरस्य पत्नी) दिनकी पत्नी उषा (याति) चलती है। (स्वः जनन्ती) प्रकाशको प्रकट करनेवाली (सुभगा सुदंसा) भाग्यवाली सुंदरी (दिवः पृथिव्याः आन्तात्) द्युलोक और पृथिवीके अन्तिम भाग तक (आ पप्रथे) प्रकाशित होती है ॥ ४ ॥

[५९७] हे स्तोता लोगो ! (वः अच्छ) आप सबके सन्मुख (विभातीं देवीं उषसं) प्रकाशनेवाली उषादेवीको (नमसा वः सुवृक्तिं प्रभरध्वं) नमस्कारपूर्वक तुम सब स्तुति करो। (मधुधा) मधुरताका धारण करनेवाली उषा (दिवि ऊर्ध्वं पाजः अश्रेत्) द्युलोकमें उच्च भागपर अपना तेज रखती है। (रण्वसंदृक् रोचना) रमणीय दर्शनवाली तेजस्विनी उषा (प्र रुरुचे) प्रकाशित हो रही है ॥ ५ ॥

[५९८] (ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि) सत्यपालन करनेवाली यह उषा द्युलोकपर आनेवाले किरणोंसे जानी गई है। यह (रेवती) धनसंपन्न उषा (रोदसी चित्रं अस्थात्) द्यावापृथिवीपर विविध रंगवाली शोभाको स्थापित कर रही है। हे (अग्ने) अग्नि ! (आयतीं विभातीं उषसं) आनेवाली इस प्रकाशित उषाके प्रति (वामं द्रविणं भिक्षमाणा एषि) स्वीकरणीय धनकी अपेक्षा करता हुआ तू जाता है ॥ ६ ॥

[५९९] (वृषा ऋतस्य बुध्ने) बलवान् सूर्य दिनके प्रारंभमें (उषसां इषण्यन्) उषाओंको प्रेरित करता हुआ (मही रोदसी आ विवेश) विशाल द्यावापृथिवीमें प्रविष्ट हुआ है। (मित्रस्य वरुणस्य मही माया) मित्र और वरुणकी यह महती शक्ति (चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे) सुवर्णके सदृश रमणीय उषाके समान प्रकाश चारों ओर धारण करती है ॥ ७ ॥

भावार्थ— प्रकाशकी किरणोंके समान यह अन्धेरेको दूर करके सर्वत्र प्रकाश करती है, यह उषा अपने बलसे आगे बढनेवाले सूर्यकी पत्नी होकर सदा प्रगति करती है। यह उत्तम प्रकाशको प्रकट करती हुई उत्कृष्ट धन और ऐश्वर्यसे युक्त तथा उत्तम सुन्दरी है ॥ ४ ॥

यह प्रकाशनेवाली उषा मधुरताको धारण करनेवाली, सुन्दरी और तेजस्विनी है। ऐसी उषाकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥ ५ ॥

उषा सत्यका पालन करनेवाली तथा द्युलोकमें अपनी किरणोंको फैलानेवाली है। शोभावाली यह उषा आकाशमें विविध रंगोंवाले चित्रोंको चितारती है। तब अग्नि भी पृथ्वी पर प्रज्वलित होती है। तब प्रतीत ऐसा होता है कि मानों अग्नि भी अपने तेजको प्राप्त करनेके लिए उषाके पास जा रहा हो ॥ ६ ॥

बलवान् पिता सूर्य, उत्तम कर्म जब प्रारंभ होते हैं, तब दिनके प्रारंभमें उषाओंको प्रेरित करता है और द्यु और पृथ्वीके मध्यमें अपने प्रकाश किरणोंको विस्तृत करता है। सूर्य प्रथम उषाको भेजता है और तब स्वयं प्रकट होता है। उषःकालमें जो रमणीय प्रकाश फैलता है, वह सब मित्र और वरुणकी महिमा है ॥ ७ ॥

[६२]

[ऋषिः— गाथिनो विश्वामित्रः, १६-१८ जमदग्निर्वा । देवता— १-३ इन्द्रावरुणौ, ४-६ बृहस्पतिः, ७-९ पूषा, १०-१२ सविता, १३-१५ सोमः, १६-१८ मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री, १-३ त्रिष्टुप् ।]

६०० इमा उ वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन् ।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥ १ ॥

६०१ अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति ।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥ २ ॥

६०२ अस्मे तदिन्द्रावरुणा वसु ष्यादस्मे रयिर्मरुतः सर्ववीरः ।
अस्मान् वरूत्रीः शरणैरवन्त्वस्मान् होत्रा भारती दक्षिणाभिः ॥ ३ ॥

६०३ बृहस्पते जुषस्व नो हव्यानि विश्वदेव्य । रास्व रत्नानि दाशुषे ॥ ४ ॥

---

[६२]

अर्थ— [६००] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (वां) तुम दोनोंके (मन्यमानाः भृमयः इमाः) शत्रुओंको संहार करनेवाले तथा घूमनेवाले शस्त्र (युवावते) तरुण मनुष्योंकी (तुज्याः न अभूवन्) हिंसा करनेवाले न हों । तुम (येन) जिससे (सखिभ्यः) अपने मित्रोंको (सिनं भरथः स्म) अन्न प्रदान करते थे, (त्यत्) वह (वां यशः) तुम दोनोंका यश (क्व) कहां है ? ॥ १ ॥

[६०१] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (रयीयन्) धनैश्वर्यकी इच्छा करता हुआ (अयं पुरुतमः) यह अत्यन्त श्रेष्ठ होता (अवसे) अपनी रक्षाके लिए (वां जोहवीति) तुम्हें बार बार बुलाता है । तुम दोनों (मरुद्भिः दिवा पृथिव्या सजोषौ) मरुत्, द्यु और पृथ्वीके साथ मिलकर (मे हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थनाको सुनो ॥ २ ॥

[६०२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण देवो ! (अस्मे तत् वसु स्यात्) हमें वह धन प्राप्त हो, हे (मरुतः) मरुद्गण ! (अस्मे सर्ववीरः रयिः) हमें सब पुत्रपौत्रोंसे युक्त धनैश्वर्य प्रदान करो, (वरूत्रीः) सबके द्वारा वरण किए जाने योग्य देवशक्तियां (शरणैः) शरण देकर (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें तथा (होत्रा भारती) होत्रा और भारती (अस्मान्) हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

[६०३] हे (विश्व देव्य बृहस्पते) सम्पूर्ण दिव्यतासे युक्त बृहस्पते ! (नः हव्यानि जुषस्व) हमारी प्रार्थनाओंको सुनो और (दाशुषे रत्नानि रास्व) दानशीलको रत्न प्रदान करो ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्रावरुण ! तुम्हारे शक्तिशाली और सर्वत्र घूमनेवाले शस्त्रास्त्र तरुण मनुष्योंकी हिंसा न करें । तुम जिससे अपने मित्रोंको अन्न प्रदान करते हो वह तुम्हारा यश अथवा बल प्रकट करो ॥ १ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! धन और ऐश्वर्यको पानेकी इच्छा करनेवाला यह श्रेष्ठ स्तोता अपनी रक्षाके लिए तुम्हें बुलाता है, तुम मरुत्, द्यु और पृथ्वी आदि देवोंके साथ आकर मेरी प्रार्थना सुनो ॥ २ ॥

इन्द्र, वरुण, मरुत्, वरूत्री, होत्रा, भारती आदि देव हमें धन, सुख और पुत्रपौत्र आदि देकर हमारी रक्षा करें ॥३॥

यह बृहस्पति मनुष्योंकी सब अभिलाषाओंको पूरी करनेवाला अनेक रूपोंवाला तथा वीर है । उसका ओज किसीके सामने नहीं झुकता, ऐसा वह बृहस्पति हमारी प्रार्थनाओंको सुनकर हमें धन प्रदान करे ॥ ४-६ ॥

६०४ शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥ ५ ॥
६०५ वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥ ६ ॥
६०६ इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥ ७ ॥
६०७ तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् । वधूयुरिव योषणाम् ॥ ८ ॥
६०८ यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति । स नः पूषाविता भुवत् ॥ ९ ॥
६०९ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १० ॥
६१० देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंध्या । भगस्य रातिमीमहे ॥ ११ ॥
६११ देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः । नमस्यन्ति धियेषिताः ॥ १२ ॥

अर्थ — [६०४] हे मनुष्यो ! (अध्वरेषु) यज्ञोंमें (शुचिं बृहस्पतिं) पवित्र बृहस्पतिको (अर्कैः नमस्यत) स्तोत्रोंसे प्रणाम करो। मैं उससे (अनामि ओजः आ चके) शत्रुओंके सामने न झुकनेवाले ओजको मांगता हूँ ॥ ५ ॥

[६०५] मैं (चर्षणीनां वृषभं) मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले (विश्वरूपं) अनेक रूपोंवाले (अदाभ्यं) किसीसे न दबनेवाले (वरेण्यं बृहस्पतिं) ग्रहण करने योग्य बृहस्पतिकी पूजा करता हूँ ॥ ६ ॥

[६०६] हे (आघृणे पूषन् देव) दीप्तिमान् पोषण देव ! (इयं नव्यसी सुस्तुतिः) यह नवीन और उत्तम स्तुति (ते) तेरे लिए है, इसलिए (अस्माभिः) हमारे द्वारा (तुभ्यं शस्यते) तेरे लिए ही की जाती है ॥ ७ ॥

[६०७] हे पोषक देव ! (मम तां गिरं) मेरी उस उत्तम वाणीको (जुषस्व) सुनो और (वाजयन्तीं धियं अव) बल प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली इस बुद्धिकी उसी प्रकार रक्षा करो जिस प्रकार एक (वधूयुः योषणां इव) वधूकी कामना करनेवाला अपनी वधूकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

[६०८] (यः) जो पूषा (विश्वा भुवना) सारे भुवनोंको (अभि पश्यति) चारों ओरसे देखता है (च) और (सं पश्यति) अच्छी तरह देखता है, (सः पूषा) वह पोषक देव (नः अविता भुवत्) हमारी रक्षा करनेवाला हो ॥ ९ ॥

[६०९] हम (सवितुः देवस्य) सविता देवके (तत् वरेण्यं भर्गः) उस श्रेष्ठ, वरण करने योग्य तेजका (धीमहि) ध्यान करते हैं (यः) जो सविता (नः धियः) हमारी बुद्धियोंको (प्रचोदयात्) उत्तम मार्गमें प्रेरित करे ॥ १० ॥

[६१०] (वाजयन्तः) धनकी अभिलाषा करनेवाले हम (पुरंध्या) अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे (सवितुः देवस्य) सविता देवसे (भगस्य रातिं ईमहे) ऐश्वर्यके दानको मांगते हैं ॥ ११ ॥

[६११] (धिया इषिताः विप्राः नरः) अपनी श्रेष्ठ बुद्धिसे प्रेरित होकर सत्कर्म करनेवाले ज्ञानी मनुष्य (सुवृक्तिभिः यज्ञैः) उत्तम रीतिसे किए गए स्तोत्रोंसे (देवं सवितारं नमस्यन्ति) तेजस्वी सविता देवकी अर्चना करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थ— यह पोषक देव तेजस्वी है, अतः अपनी तेजस्वितासे हमारी बुद्धियोंकी रक्षा करे। वह सारे भुवनोंको सब ओरसे और सम्यक् रीतिसे देखनेवाला है, सर्व द्रष्टा है। अतः वह हमारी प्रार्थनाओंसे प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करे ॥७-९॥

वह तेजस्वी परमात्मा सबका उत्पादक है और सबको उत्तम प्रेरणा देनेवाला है। वह बड़ा तेजस्वी है, जो मनुष्य उसके तेजका सतत ध्यान करके उसे धारण करता है, उसकी बुद्धि सदा उत्तम मार्गमें ही प्रेरित होती है ॥ १० ॥

सविता देव ज्ञानियोंकी बुद्धियोंको उत्तम बनाकर उन्हें सदा सन्मार्गमें ही प्रेरित करता है। जब ज्ञानी जन अपनी मेधासे उस सविता देवकी स्तुति करते हैं, तब वह उन्हें धनैश्वर्य प्रदान करके सम्पन्न बनाता है ॥ ११-१२ ॥

६१२ सोमो जिगाति गातुविद् देवानामेति निष्कृतम् । ऋतस्य योनिमासदम् ॥ १३ ॥
६१३ सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥ १४ ॥
६१४ अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः । सोमः सधस्थमासदत् ॥ १५ ॥
६१५ आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ १६ ॥
६१६ उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः । द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥ १७ ॥
६१७ गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् । पातं सोममृतावृधा ॥ १८ ॥

अर्थ— [६१२] (गातुवित् सोमः) श्रेष्ठ मार्गोंको जाननेवाला सोम (जिगाति) सर्वत्र जाता है और (देवानां निष्कृतं आसदं) देवोंके योग्य उत्तम आसनरूप (ऋतस्य योनिं) यज्ञके स्थानपर (एति) जाता है ॥ १३ ॥

[६१३] (सोमः) सोम (अस्मभ्यं) हमारे लिए (द्विपदे चतुष्पदे च पशवे) दोपाये और चौपाये पशुओंके लिए (अनमीवा इषः करत्) रोगरहित अन्न प्रदान करे ॥ १४ ॥

[६१४] (सोमः) सोम (अस्माकं आयुः वर्धयन्) हमारी आयुको बढाता हुआ और (अभिमातीः सहमानः) अभिमानियोंका पराभव करता हुआ (सधस्थं आसदत्) हमारे घरमें आकर रहे ॥ १५ ॥

१ सोमः अभिमातीः सहमानः— सोम अभिमानियोंको पराभूत करता है ।

[६१५] (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण (सुक्रतू) उत्तम कर्म करनेवाले हैं, वे दोनों (नः गव्यूतिं) हमारी गायोंके समूहको (घृतैः उक्षतं) घीसे सींचें और (रजांसि) हमारे घरोंको (मध्वा) मधुरता युक्त पदार्थोंसे सींचें ॥ १६ ॥

[६१६] हे (शुचिव्रता) उत्तम और पवित्र कर्म करनेवाले मित्र और वरुण ! (उरुशंसा) महान् स्तुतिवाले (नमोवृधा) स्तुतियोंसे बढनेवाले, (द्राघिष्ठाभिः) विस्तृत वाणियोंसे युक्त तुम दोनों (दक्षस्य मह्ना राजथः) अपने बलकी महिमाके कारण शोभित होते हो ॥ १७ ॥

१ दक्षस्य मह्ना राजथः— ये देव अपने बलके महत्वसेही तेजस्वी हैं । तेजस्वी वे ही होते हैं, जो अपनेही बल पर निर्भर रहते हैं ।

[६१७] हे मित्र और वरुण ! (जमदग्निना गृणाना) जमदग्नि ऋषिके द्वारा प्रशंसित होते हुए तुम (ऋतस्य योनौ सीदतं) यज्ञके स्थानमें आकर बैठो और (ऋतावृधा) ऋतके कारण बढनेवाले तुम दोनों (सोमं पातं) सोमका पान करो ॥ १८ ॥

भावार्थ— सोम सभी मार्गोंको जाननेवाला होनेके कारण यज्ञमें देवोंके समान ही सम्मान पाता है। वह अपने भक्तोंको और उनके पशुओंके लिए रोगरहित अन्न प्रदान करके जो अभिमानी शत्रु होते हैं, उन्हें हराकर उन्हें नीचा दिखाता है ॥ १३-१५ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम कर्म करनेवाले हैं । वे हमारी गायोंको घी से और हमारे घरोंको मधुरता युक्त पदार्थोंसे भरपूर करें । वे दोनोंही पवित्र कर्म करनेवाले होनेके कारण महा बलशाली हैं, तथा अपने बलकी महिमाके कारण ही वे तेजस्वी हैं । इन तेजस्वी देवोंकी अग्निकी सदा पूजा करनेवाले ऋषि भी स्तुति करते है । वे अपने ऋत अर्थात् नियमोंका पालन करनेके कारणही वृद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १६-१८ ॥

॥ इति तृतीयं मण्डलं समाप्तम् ॥

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

तृतीय मण्डल

सुभाषित

१ यज्ञं चकृम, गीः वर्धतां— (१) हमने यज्ञ किया है, अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो।

२ मेधिरः पूतदक्षः जनुषा सुबन्धुः— (३) यह अग्नि मेधावान्, पवित्र बलशाली तथा जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है।

३ अग्निः समिथे अकः महीनां वभ्रिः उस्रियाः जजान— (११) यह अग्नि संग्राममें अपराजित बडी बडी सेनाओंका भरणपोषण करनेवाला और प्रकाशको पैदा करनेवाला है।

४ सुमतिं निकामः सखित्वं— (१५) उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है।

५ देवानां केतुः मन्द्रः— (१७) यह अग्नि देवोंका प्रज्ञापक और रमणीय है।

६ वयं यज्ञियस्य भद्रे सौमनसे स्याम— (२१) हम उस पूजनीय अग्निकी कल्याणकारी बुद्धिमें रहें।

७ तरुषः दक्षस्य विधर्मणि देवासः क्रत्वा चित्तिभिः अग्निं जनयन्त— (२६) पराक्रमी और कुशल मनुष्यके यज्ञमें ही देवगण अपने पराक्रम और ज्ञानोंसे अग्निको उत्पन्न करते हैं।

८ अद्वयं वाजं ऋग्मियं— (२७) कज्जासे रहित कमाया गया अन्न ही प्रशंसाके योग्य होता है।

९ सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां अपसां अग्निं इह पुरः दधिरे— (२८) उत्तम तेजस्वी, सभी विद्वानोंके हित करनेवाले, शत्रुओंको रुलानेवाले, श्रेष्ठतम कर्मको करनेवाले अग्निको यज्ञमें आगे स्थापित करते हैं।

१० रथी बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्— (३१) उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है।

११ विपः गातवे पृथुपाजसे वैश्वानराय विधन्त— (३९) ज्ञानी जन उत्तम मार्ग पर जानेके लिए विशाल बलवाले वैश्वानरकी सेवा करते हैं।

१२ अमृतः अग्निः देवान् दुवस्यति— (३९) मरणधर्मसे रहित अग्नि भी अन्य देवोंकी सेवा करता है।

१३ अथ सनता धर्माणि न दुदूषति— (३९) इसलिए प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते।

१४ मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्तं क्षयं परिभूषति— (४०) मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित करे।

१५ यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि— (४१) जहां पर कर्म हैं, वहीं पर सुख है।

१६ यज्ञानां पिता विपश्चितां असु-रः वाघतां वयुनं विमानं— (४२) वह अग्नि यज्ञोंका पालक, ज्ञानियोंके लिए प्राणदाता या बल देनेवाला और स्तोताओंको उत्तम मार्ग दिखानेवाला है।

१७ आयुनि सु अपत्ये जरस्व— (४५) दीर्घायुवाली उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए।

१८ विचक्षण! येभिः स्वर्विद् अभवः, तव धामानि आचके— (४८) हे बुद्धिमान् अग्ने! जिनसे तूने स्वर्ग प्राप्त किया, उन तेरे तेजोंको हम चाहते हैं।

१९ वैश्वानरस्य दंसनाभ्यः बृहत्— (४९) वैश्वानर अग्निकी तरह कर्म करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।

२० कविः सु-अपस्यया अरिणात्— (४९) ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे उस धनका दान कर देता है।

२१ वस्वः सुमतिं रासि— (५०) धनके बारेमें हमें उत्तम बुद्धि दे।

२२ नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि— (५१) हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर।

२३ अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि— (५३) हिंसारहित यज्ञमें उन्नतिशील मार्गको ही हमने पकडा है।

२४ ऋतं अनु व्रतं इति आहुः— (५६) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है, ऐसा कहते हैं।

२५ भारती भारतीभिः सजोषाः— (५७) एककी वाणी दूसरोंकी वाणियोंके अनुकूल हो अर्थात् राष्ट्रकी प्रजाओंकी वाणियां परस्पर अनुकूल हों।

२६ सरस्वती सारस्वतेभिः— (५७) एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञानके अनुकूल हो।

२७ वीरः, कर्मण्यः, सुदक्षः, देवकामः जायते— (५८) वीर, उत्तम कर्म करनेवाला, चतुर और देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो।

२८ उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि- (६१) उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला ही ज्ञानवान् होता है।

२९ अग्निः घृतवन्तं पृथुप्रगाणं योनिं आ अस्थात्- (६७) तेजस्वी मनुष्य सदा तेजयुक्त और प्रशंसित स्थान पर ही बैठता है।

३० ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परिचरति— (८४) सत्य बोलनेवालेकी वाणी चारों ओर फैलती है।

३१ ब्रध्नस्य शासने रणन्ति— (८७) उस महान् अग्निके शासनमें मनुष्य सुखी रहते हैं।

३२ येषां गीः गण्या, सुरुचः रोचमानाः— (८७) जिनकी वाणी प्रभावशाली होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान होते हैं।

३३ शूषं प्रविदा— (८८) सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

३४ देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति— (८९) देवोंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले ही आनन्दमें रहते हैं।

३५ व्रतं दीध्यानाः ऋतं आहुः— (९०) नियममें चलनेवाले पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

३६ तृष्टं ववक्षति सुमना अस्ति— (१०७) जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है।

३७ येषां सख्ये श्रितः प्रयन्ति अन्ये आसते— (१०७) यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है, वे आगे बढ जाते हैं, जब कि दूसरे नास्तिक रह जाते हैं।

३८ तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति— (१११) अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजाकी ओर प्रेरित करता है।

३९ शर्वरे सं इद्धं पशवः अपि समासते— (१११) रात्रीमें अग्निके प्रदीप्त होने पर पशु भी इस अग्निकी उपासना करते हैं।

४० अस्य अर्थं हि तरणि— (१२५) इस अग्निके द्वारा दिए जानेवाला धन दुःखोंसे पार करानेवाला होता है।

४१ विशां पुर एता रथः सदा नवः अदाभ्यः— (१२७) प्रजाओंका नेता हमेशा प्रगति करनेवाला होनेके कारण उत्साहसे सदा नया ही रहता है, इसीलिए उसे कोई दबा नहीं सकता।

४२ अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति— (१३८) कर्म करनेवाले ज्ञानी जन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं।

४३ यजिष्ठः बर्हिः आ सदत्— (१४१) सबसे पूजनीय ही यज्ञमें सबसे मुख्य स्थान पर बैठता है।

४४ ऊतयः दक्षं सचन्ते— (१४२) रक्षण करनेवाले देव भी इसी अग्निके सामर्थ्यसे समर्थ होते हैं।

४५ विप्रः एषां यन्ता— (१४३) ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है।

४६ नमः उक्तिं अयाति— (१४९) सबसे प्रणामपूर्वक अर्थात् विनम्रतापूर्वक भाषण करना चाहिए।

४७ विद्वान् विदुषः आ वक्षि— (१४९) विद्वान् ही अपने साथ विद्वानोंको ला सकता है।

४८ त्वत् पूर्वीः ऊतयः देवस्य यन्ति— (१५३) इस अग्निसे अनेक तरह की रक्षणशक्तियां दिव्य मनुष्योंके पास जाती हैं।

४९ अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं— (१५३) पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन ही टिकता है।

५० मर्तस्य दुर्मतिः नः मा परि स्थात्— (१६०) मनुष्योंकी दुर्बुद्धि हमारे पास कभी न आवे।

५१ सखा इव पितरा इव साधुः भव— (१७३) अग्रणी नेता अपनी प्रजाका मित्र अथवा पितामाताके समान हितैषी हो।

५२ जनानां प्रतिक्षितयः पुरुद्रुहः प्रति दहतात्— (१७३) जो मनुष्य उत्तम मनुष्योंसे द्वेष करते हैं, ऐसे विद्वेषी मनुष्योंको जला देना चाहिए।

५३ ऊतः तेजीयसा मनसा— (१८०) इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

५४ नृतमस्य प्रभूतौ (१८०) हम उत्तम नेताके संरक्षणमें रहें।

५५ अमृतस्य भूरीणि नाम— (१८५) इस अमर अग्निकी अनेक विभूतियां हैं।

५६ भगः इव अग्निः क्षितीनां दैवीनां नेता— (१८६) सूर्यकी तरह वह अग्नि मनुष्यों और देवोंका नेता है।

५७ सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अति पर्षत्— (१८६) वह अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है।

५८ जूर्यत्सु अजरः अमृतं आ दधे— (१९८) विनाशी विश्वमें जो जरारहित होकर रहता है, वही अमृतको प्राप्त होता है।

५९ अमृतेषु जागृविः सः अग्निः युगे युगे सं इध्यते— (२१५) अमरदेवोंमें सदा जागृत रहनेवाला वह अग्नि प्रतिदिन प्रदीप्त किया जा सकता है।

६० हृदा मतिं ज्योतिः प्रजानन्— (२२०) बुद्धिमान् मनुष्य प्रथम अपने हृदयमें परमात्मज्योतिको प्रत्यक्ष करता है।

६१ पवित्रैः त्रिभिः अर्कं अपुपोत्— (२२०) फिर पवित्र हुए मन, वाणी और कर्म इन तीनसे अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है।

६२ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत— (२२०) अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है।

६३ आत् इत् द्यावापृथिवी परि अपश्यत्— (२२०) इसके बाद द्यु और पृथ्वीको देखता है।

६४ धिया चक्रे वरेण्यः— (२३०) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है।

६५ बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते— (२४८) अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है।

६६ अनिवृतः अश्मनः परि वृणक्ति— (२४८) ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है।

६७ त्वत् प्रकेतः कः चन—(२५९) हे इन्द्र ! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है?

६८ परमा चित् रजांसि दूरे न—(२६०) दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं।

६९ अच्युतानि च्यावयन् स्म— (२६२) वह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवालोंको भी हिला देता है।

७० धायुः यस्मै मर्त्याय अद्याः स अभक्तं चित् गेहं भजते— (२६५) ऐश्वर्यको धारण करनेवाला तू जिस मनुष्यको ऐश्वर्य देता है, वह पहलेसे अप्राप्य ऐश्वर्यको भी प्राप्त करता है।

७१ ते सुमतिः भद्रा— (२६५) तेरी उत्तम बुद्धि कल्याण करनेवाली है।

७२ रातिः सहस्र-दाना— (२६५) तेरा दान बहुत ऐश्वर्य देनेवाला है।

७३ महीं अपारां सामनां इषिरां भूमिं सदने नि ससत्थ— (२६७) बडी, विस्तृत और समान तथा अन्न देनेवाली भूमिको इसी इन्द्रने स्थिर किया।

७४ इन्द्रः एकः वसुमतीं पृथिवीं आ पप्रौ— (२६९) इन्द्र अकेला ही धनसे भरी हुई पृथ्वीको अपने तेजसे भर देता है।

×

७५ सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशाः न मिनाति (२७०) यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है।

७६ उषसः यामन् महि चित्रं अनीकं दिदृक्षन्तः- (२७१) उषाके उदय होने पर लोग महान् और अद्भुत सूर्यके तेजको देखनेकी इच्छा करते हैं।

७७ आमा गौ पक्वं बिभृती चरति— (२७२) प्रसूत गौ पके दूधको धारण करके विचरती है।

७८ उस्रियायां यत् स्वाद्मं संभृतं सीं विश्वं भोजनाय अदधात्— (२७२) गौ में जो मीठा दूध है, वह सब भोजनके लिए है।

७९ दुर्मायवः दुरेवाः निषंगिणः रिपवः हन्त्वासः- (२७३) दुष्ट कपटी दुर्जन बाण धारण करके जो शत्रु आते हैं, वे मारने योग्य हैं।

८० रक्षः समूलं उत् वृह— (२७५) राक्षसोंको जडसहित नष्ट कर।

८१ ब्रह्मद्विषे तपुर्षिं हेतिं अस्य— (२७५) ज्ञानके द्वेषी पर दुःख देनेवाले शस्त्र फेंक।

८२ यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋञ्जन्, शग्म्येन मनसा सं दधन्वे— (२८१) जब पिता अपनी पुत्रीको वीर्य धारण करने योग्य बना देता है अर्थात् उसे बडी बनाकर उसका विवाह कर देता है, तब वह अपने मनमें शान्ति धारण करता है।

८३ तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्— (२८२) पुत्र अपनी बहिनको पिताके धनका भाग नहीं देता।

८४ अन्यः सुकृतोः कर्ता— (२८२) पुत्र उत्तम कर्मोंका कर्ता है।

८५ अन्यः ऋन्धन्— (२८३) दूसरी-पुत्री अलंकारोंसे स्वयंको सजाती है।

८६ ऋतेन गासान् असिषासन्— (२८९) यज्ञके साधनसे ऋषियोंने महीनोंको जाना।

८७ ते सख्यं महि शक्तीः आ वाशिम— (२९४) हे इन्द्र! तेरी मित्रता और विशाल शक्तिको पानेकी मैं इच्छा करता हूं

८८ विविद्वान् सखिभ्यः महिः क्षेत्रं पुरुः चन्द्रं— (२९५) उत्तम विद्वान् अपने मित्रोंके लिए विस्तृत भूमि और चमकनेवाले धन देता है।

८९ ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजध्यै परि— (२९७) इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

९० विश्वायुः वृषभः वयोधाः सूनृतानां गिरां पतिः भव— (२९८) हे इन्द्र! तू पूर्णायु बलवान् और अन्नको धारण करनेवाला तथा सत्यभाषण करनेवाला है।

९१ सरण्यन् विश्वेभिः ऊतिभिः नः आ गहि— (२९८) हे इन्द्र! आगे बढता हुआ तू संपूर्ण संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आ।

९२ अदेवीः बहुलाः द्रुहः वि याहि— (२९९) दिव्य गुणोंसे रहित बहुत शत्रुओंको दूर कर।

९३ स्वः नः सातये धाः— (२९९) धन हमारे उपभोगके लिए दे।

९४ रिपः नः पाहि— (३००) शत्रुओंसे हमारी रक्षा कर।

९५ नः गोजितः कृणुहि— (३००) हमें गायोंको जीतकर प्राप्त करनेवाला कर।

९६ अन्तः कृष्णान् अरुषैः धामभिः गात्— (३०१) आन्तरिक शत्रुओंको तेजस्वी स्थानोंसे दूर कर।

९७ ऋतेन दिशमानः स्वाः विश्वाः दुरः अप अवृणोत्— (३०१) सत्यसे प्रेरित होकर अपने सब दोष दूर कर।

९८ नः अंहसः पीपरत्— (३११) इन्द्र हमें पापसे पार कराता है।

९९ नावा यान्तं इव उभये हवन्ते— (३११) जिस प्रकार नावसे जानेवाले मल्लाहको दोनों किनारोंके मनुष्य बुलाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों मनुष्य बुलाते हैं।

१०० इन्द्रः पुरूणि नर्या दधानः नृवत् बर्हणा तुजः आ विवेश— (३३७) इन्द्र बहुत पराक्रम करके नेताके समान बढी हुई शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुआ।

१०१ इमाः धियः अचेतयत्— (३३७) इन्द्रने बुद्धियोंको सचेत किया।

१०२ शुक्रं वर्णं अतीतरत्— (३३७) शुद्ध तेजको बढाया।

१०३ महः इन्द्रस्य महानि सुकृता कर्म— (३३८) बडे इन्द्रके बडे उत्तम कर्म प्रसिद्ध हैं।

१०४ अभिभूति-ओजाः वृजनेन मायाभिः वृजिनान् दस्यून् सं पिपेष— (३३८) सामर्थ्यवान् नेताने अपने बलसे और कुशलतासे दुष्ट शत्रुओंको मारा।

१०५ इन्द्रः चर्षणिप्राः सत्पतिः— (३३९) इन्द्र मनुष्योंकी कामना पूर्ण करनेवाला और सज्जनोंका पालक है।

१०६ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्— (३४१) दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की।

१०७ विवाचः नुनुदे— (३४२) निरर्थक बकवास करनेवालोंको दूर किया।

१०८ अभिक्रतूनां दमिता— (३४२) घमण्डी लोगोंका दमन किया।

१०९ महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः— (३५५) मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है।

११० महान् उग्रः वीर्याय वावृधे— (३५९) यह महान् और वीर इन्द्र पराक्रमके कार्य करनेके लिए ही बढता है।

१११ जिहानः कवीन् संदृशे इच्छामि— (३७७) उत्तम कर्म करता हुआ ही मैं ज्ञानियोंकी संगतिकी इच्छा करूं।

११२ विजानन् तमसः ज्योतिः वृणीत—(३९३) ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है।

११३ दुरितात् आरे अभीके स्याम— (३९३) पापसे दूर होकर हम भयरहित स्थानमें रहें।

११४ स्वराट् यशस्तरः— (४४०) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है, वही अत्यधिक यशवाला होता है।

११५ सद्यः जातः वृषभः कनीनः— (४५१) प्रकट होते ही और उत्साही तरुण जैसा पुरुषार्थी बनो।

११६ इनतमः पृथुज्रयाः सत्वभिः शूपैः दस्योः आयुः अमिनात्— (४५७) श्रेष्ठ स्वामी, संग्राममें जानेवाला इन्द्र अपने सामर्थ्यसे दुष्टकी आयु नष्ट करता है।

११७ इन्द्रः अनेहसः स्तुभः उवस्यति— (४६८) इन्द्र निष्पाप स्तुतियोंको ही अपनाता है।

११८ अभिमातिहनः— (४६८) इन्द्र घमण्डियोंका नाश करनेवाला है।

११९ सबाधः नृणां नृतमं वीरं त्वा उक्थैः अभि अर्चत— (४६९) शत्रुओंका पराजय करनेवाले श्रेष्ठ वीर इन्द्रकी स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं।

१२० पुरुमायः सहसे सं जिहीते— (४६९) बहुत कुशलतावाला इन्द्र शत्रुका पराजय करनेके लिए मिलकर यत्न करता है।

१२१ मर्त्येषु अस्य निष्षिधः पूर्वीः— (४७०) मनुष्योंमें इस इन्द्रके दिए हुए धन बहुतसे हैं।

१२२ पृथिवी पुरुवसूनि बिभर्ति— (४७०) इसी इन्द्रके कारण यह पृथिवी अनेक तरहके धन धारण करती है।

१२३ नूतनस्य अवसः बोधि— (४७१) नये नये रक्षणके साधन जानने चाहिए।

१२४ तव प्रणीती तव शर्मन् सुयज्ञाः कवयः आ विवासन्ति— (४७२) तेरी नीति तथा तेरे आश्रयमें उत्तम कर्म करनेवाले रहते हैं।

१२५ ब्रह्मणा शिरः— (४७७) ज्ञानसे सिर पवित्र हो।

१२६ राधसे बाहू— (४७७) धनको लानेके लिए बाहू तैय्यार हों।

१२७ जाया इत् अस्तं— (४८९) स्त्री ही घर है।

१२८ जाया इत् योनिः— (४८९) स्त्री ही आश्रय है।

१२९ अस्तं प्रयाहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं (४९१) हे मनुष्य! तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देनेके लिए तैय्यार है।

१३० मायाः कृण्वानाः स्वां तन्वं रूपं रूपं परिबोभवीति— (४९३) कौशल्यके कार्य करनेवाले इन्द्रने अपने शरीरको अनेक रूपोंवाला बना दिया है।

१३१ विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः- (४९४) विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान्, देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् हो।

१३२ इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति— (४९७) यह वेदज्ञान भारतीय जनोंकी रक्षा करता है।

१३३ प्रमगन्दस्य वेदः नः आ भर— (४९९) सूदखोरके धनको हमारे पास ले आ।

१३४ जनासः सायकस्य न चिकिते— (५०८) वीर मनुष्य शस्त्रास्त्रके दुःखको कुछ नहीं समझते।

१३५ लोधं पशुं मन्यमानाः नयन्ति— (५०८) लोभी शत्रुको पशु मानकर उसे जहां चाहे वहां ले जाते हैं।

१३६ वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति— (५०८) बलवान्के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते।

१३७ भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः न प्रपित्वं— (५०९) ये भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं।

१३८ ज्यावाजं परि नयन्ति— (५०९) अपने मनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं।

१३९ अश्विनोः सजात्यं नाम चारु— (५२५) अश्विनौ देवोंका जन्मसे ही उत्पन्न हुआ यश उत्तम है।

१४० इन्द्रे देवाः भवथ— (५२६) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है।

१४१ सातये इमां धियं तक्षत— (५२६) ज्ञानकी प्राप्तिके लिए हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो।

१४२ कवयः नाम महत् चारु— (५२६) दूरके परिणामोंका विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है।

१४३ वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि— (५२७) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं।

१४४ नः गन्तोः अर्नपत्यानि युयोत— (५२७) हमारे मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हों।

१४५ नः गातुः प्रजावान् पशुमान् अस्तु— (५२७) हमारा घर सन्तानों और पशुओंसे युक्त हो।

१४६ देवानां दूतः अनागान् नः वोचतु— (५२८) देवोंका दूत ज्ञानी पापसे रहित होकर हमें उपदेश करे।

१४७ वृषणः पर्वतासः ध्रुवक्षेमासः— (५२९) जल-बरसानेवाले पर्वत निश्चयसे मनुष्योंका कल्याण करनेवाले हैं।

१४८ पन्थाः सदा सुगः पितुमान् अस्तु— (५३०) हमारे मार्ग सदा ही सरलतासे जाने योग्य तथा अन्नसे भरपूर हों।

१४९ ओषधीः मध्वा सं पिपृक्त— (५३०) अन्न वनस्पतियां मधुरतासे युक्त हों।

१५० विश्वा अह्ना नः दिदीहि— (५३१) सब दिन हमारे लिए प्रकाशसे युक्त और सुखकर हों।

१५१ वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे— (५५१) मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते हुए सुना है।

१५२ वीराः पुरःसदः शर्मसदः— (५५२) वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हों।

१५३ देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि— (५५४) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं।

१५४ अग्ने! विश्वजन्यां सुमतिं रास्व— (५६७) हे अग्ने! संसारका हित करनेवाली उत्तम बुद्धिको तू हमें प्रदान कर।

१५५ मित्रः अनिमिषाभिः कृष्टीः अभि चष्टे— (५७७) मित्रदेव कभी भी पलक न मारते हुए मनुष्योंके कामोंको देखता रहता है।

१५६ मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति सः मर्तः प्रयस्वान् अस्तु— (५७८) हे मित्र, जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है।

१५७ त्वा ऊतः न हन्यते न जीयते— (५७८) मित्रके द्वारा रक्षित हुआ मनुष्य न मारा ही जाता है और न जीता ही जाता है।

१५८ एनं अंहः न अश्नोति— (५७८) मित्रके द्वारा रक्षित मनुष्यको पाप नहीं छू सकता।

१५९ पृथिव्याः वरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ (५७९) पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मनुष्य मित्रकी उत्तम बुद्धिसे रहते हैं।

१६० अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः— (५८६) उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

१६१ सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे— (५८८) मनुष्य उत्तम कर्मसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं।

१६२ वः सुकृतानि वीर्याणि च न प्रतिमे— (५८९) इन ऋभुओंके उत्तम कर्म और पराक्रमकी कोई उपमा नहीं है।

१६३ सोमः अभिमातीः सहमानः— (६१४) सोम अभिमानियोंको पराभूत करता है।

१६४ दक्षस्य मह्ना राजथः— (६१६) मित्र और वरुण ये दोनों देव अपने बलके महत्त्वसे ही तेजस्वी हैं। तेजस्वी वे ही होते हैं, जो अपने ही बल पर निर्भर होते हैं।

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

तृतीय मण्डल

तृतीय मण्डलमें ऋषि, देवता, सूक्त और मंत्रोंकी संख्या इस तरह है—

ऋषिवार सूक्तसंख्या

ऋषि	सूक्तसंख्या
गाथिनो विश्वामित्रः	४६
गाथी कौशिकः	४
प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा	४
ऋषभो वैश्वामित्रः	२
कात्य उत्कीलः	२
कतो वैश्वामित्रः	२
देवश्रवा देवव्रातश्च भारतौ	१
कुशिक ऐषीरथिः गाथिनो विश्वामित्रो वा	१
	६२

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
गाथिनो विश्वामित्रः	४६६
प्रजापतिर्वैश्वामित्रः प्रजापतिर्वाच्यो वा	६२
कुशिक ऐषीरथिः	२२
गाथी कौशिकः	२०
ऋषभो वैश्वामित्रः	१४
कात्य उत्कीलः	१३
कतो वैश्वामित्रः	१०
देवश्रवा देवव्रातश्च भारतौ	५
नद्यः	४
घोर आंगिरसः	१
	६१७

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्रसंख्या
१ इन्द्रः	२१९
२ अग्निः	१८६
३ विश्वे देवाः	५१
४ वैश्वानरोऽग्निः	२९
५ आप्री सूक्तं	११
६ अश्विनौ	९
७ इन्द्राग्नी	९
८ मित्रः	९
९ यूपः	९
१० नद्यः	८
११ उषाः	७
१२ अभिशापः	४
१३ ऋभवः	४
१४ रथांगानि	४
१५ इन्द्र ऋभवः	३
१६ इन्द्रावरुणौ	३
१७ पूषा	३
१८ बृहस्पतिः	३
१९ मरुतः	३
२० मित्रावरुणौ	३
२१ विश्वामित्रः	३
२२ सविता	३
२३ सोमः	३

२४	आत्मा	२
२५	वाक्	२
२६	अग्नीन्द्रौ	१
२७	इन्द्रापर्वतौ	१
२८	ऋतवः	१
२९	ऋत्विजः	१
३०	पुरीष्या अग्नयः	१
३१	विश्वामित्रोपाध्यायः	१
३२	अश्वनः	१
		६१७

इन मंत्रोंमें मनुष्यके व्यवहारके लिए उपयोगी अनेक उपदेश दिए गए हैं। जिन्हें अब हम देखेंगे—

भारतोंका तेज व वेदज्ञान

१ भरतस्य पुत्राः अपपित्वं चिकितुः, न प्रपित्वं– (५०९) भरतके पुत्र शत्रुको क्षीण करना ही जानते हैं, उन्हें समृद्ध बनाना नहीं।

२ ज्यावाजं परि नयन्ति— (५०९) वे अपने धनुषके बलको सर्वत्र प्रकट करते हैं।

इन दोनों मंत्रभागोंमें भारतोंके बलकी महिमा है भारतका अर्थ है– भा–रत, (भा इति तेजः तस्मिन् रताः ये इति) अर्थात् भा कहते हैं तेजको, उसमें जो सदैव रत रहते हैं, अर्थात् अपने सभी कर्म या आचरण तेजको प्राप्त करनेके लिए ही करते हैं, वे भारत कहलाते हैं। प्राचीन आर्यावर्तके निवासी बहुत ही तेजस्वी होते थे। वे हमेशा ऐसा ही आचरण करते थे कि जिससे उनका तेज बढता था, वे बहुत तेजस्वी होते थे, इसीलिए वे आर्य अर्थात् श्रेष्ठ कहलाते थे। उन तेजस्वी लोगोंके रहनेके कारण ही यह आर्यावर्त बादमें जाकर भारत कहलाया। उस भारत देशमें रहनेवाले लोग विजिगीषु होते थे, इसलिए वे सभी देशोंको जीतकर वहां वहां अपनी पताका गाडते चलते थे। उनके सामने उनके शत्रु क्षीण ही होते थे। उनके रहते हुए शत्रुओंका समृद्ध होना असंभव था। इसका कारण था कि उनके धनुषोंमें सामर्थ्य था। उनके शस्त्रास्त्रोंका सामर्थ्य सर्वत्र फैला हुआ था। इसीलिए उनके शत्रु सदा क्षीण रहते थे।

उन भारतोंका आचरण सर्वदा शुद्ध रहता था। क्योंकि उन्हें एक अद्वितीय मार्गदर्शक मिल गया था। वह मार्गदर्शक था " वेदज्ञान "। वेदज्ञानसे सुरक्षित होकर वे सब काम करते थे। इस महत्त्वपूर्ण कथनका ज्ञापक निम्न मंत्रभाग है—

३ इदं ब्रह्म भारतं जनं रक्षति— (४९७) यह वेदज्ञान भारतोंकी रक्षा करता है। वेद आर्योंकी अमूल्य निधि है, इससे रक्षित होकर उन्होंने सर्वत्र अपना यश फैलाया। यह वेदज्ञान " ब्रह्म " अर्थात् महान् है, यह व्यापक है। इसकी जैसी व्यापकता अन्य किसीकी नहीं है। यह शाश्वतकालसे चला आ रहा है और शाश्वतकालतक चलता चला जाएगा। यह वेदज्ञान भारतोंको उत्तम मार्ग दिखाकर उनकी रक्षा करता रहा है। आज भी जो जन तेजसे युक्त होना चाहते हैं, उन्हें यह वेद उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करके उनकी रक्षा करता है। भारतीय विचारधाराकी पुरानी मान्यताके अनुसार ये वेद परमात्माके द्वारा प्रकट किए गए हैं। इसलिए इन वेदोंमें परमात्माकी ज्योति निहित है।

परमात्म –ज्योति

परमात्माकी ज्योति सर्वत्र फैली हुई है। अणु अणुमें परमात्माका महत्त्व है। पर कुछ ही लोग उसका साक्षात्कार कर पाते हैं। कुछ ऐसे होते हैं कि जो बाहरके संसारमें परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। प्रकृतिके रमणीय दृश्यों, नदियोंकी कलकल ध्वनि, पर्वतोंकी हिमाच्छादित शृंगोंमें वे परमात्माका ही सौन्दर्य देखते हैं, पर कुछ जो अन्तर्मुखी वृत्तिके हैं, अपने हृदयके अन्दर ही परमात्माका साक्षात्कार करते हैं—

१ हृदा मतिं ज्योतिः प्रजानन्— (२२०) बुद्धिमान् मनुष्य अपने हृदयमें परमात्म–ज्योतिको प्रत्यक्ष करता है। बुद्धिशाली पुरुष हृदयमें झांककर देखता है और वहां उसे परमात्माके दर्शन होते हैं। परमात्माका चिन्तन जीवनको पवित्र करनेवाला है। परमात्माके चिन्तनसे मन पवित्र होता है। मनसे वाणी पवित्र होती है, वाणीसे कर्म पवित्र होता है। इन तीनोंके पवित्र होनेसे आत्मा पवित्र होती है, आत्माके पवित्र होनेसे जीवन पवित्र होता है।

२ पवित्रैः त्रिभिः अर्कं अपुपोत्– (२२०) मनुष्य अपने हृदयमें आत्माका साक्षात्कार करके अपने मन, वाणी और कर्मको पवित्र करके अपनी अर्चनीय आत्माको पवित्र करता है। मनुष्यकी आत्मा अर्चनीय है, यह अनेक शक्तियोंसे

सम्पन्न हैं। जो अपनी आत्माको अनेक शक्तियोंसे सम्पन्न समझता है, वह अपनी आत्माको पूजाके योग्य समझता है, पर जो अपनी आत्माको क्षुद्र समझता है, वह उसकी महिमाको बिल्कुल ही नहीं समझ सकता। इस अर्चनीय आत्माको हमेशा पवित्र ही रखना चाहिए—

३ स्वधाभिः वर्षिष्ठं अकृत— (२१०) अपनी शक्तियोंसे आत्माको अत्यन्त श्रेष्ठ बनाता है। वह आत्मा स्व-धा से सम्पन्न है। स्व-धा का अर्थ है, स्वयंको धारण करनेकी शक्ति। मनुष्यकी आत्मा जब पवित्र हो जाती है, तब उसके अन्दर अनेक शक्तियां प्रकट होने लगती हैं, ये शक्तियां ही स्वधा हैं। इन्हीं शक्तियोंके कारण आत्माका धारण होता है। जब आत्माकी स्वधाशक्ति बढ जाती है, तब वह श्रेष्ठ बनती है। इसी प्रकार जिस मनुष्यके अन्दर स्वयंको धारण करनेकी शक्ति होती है, वह श्रेष्ठ होता है, इस प्रकारके उत्तम उपदेशोंसे भरा हुआ हमारा प्राचीन धर्म है। इसीलिए प्राचीन धर्म दोषरहित माना जाता है—

प्राचीन धर्मका अदोषत्व

१ सनता धर्माणि न दुदूषति— (३९) प्राचीन धर्म दूषित नहीं होते। प्राचीन धर्मोंमें जो भी सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं, वे दोषोंसे रहित हैं। प्राचीन धर्म देवोंके द्वारा निर्मित हैं और उन्हींके नियमों पर चलते हैं, इसलिए प्राचीन भारतीयधर्म देवोंका धर्म ही है और देवोंका धर्म होनेसे यह अपरिवर्तनीय और अटल है—

२ देवानां व्रता प्रथमा ध्रुवाणि— (५५४) देवोंके नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं। देव स्वयं अटल और शाश्वत हैं। वे हर काल और हर जगह एक जैसा ही रहते हैं। इसलिए उनके द्वारा निश्चित किये गए नियम भी श्रेष्ठ और शाश्वत हैं। इन देवोंके नियममें चलनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। वेदोंके मंत्रोंमें ज्ञानप्राप्तिके उपाय भी बताये गए हैं। जो इसप्रकार हैं—

ज्ञान-प्राप्तिके उपाय

१ उषसः चेकितानः कवीनां पदवीः अबोधि— (९१) उषःकालमें उठनेवाला तथा बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलनेवाला ही ज्ञानवान् होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठना हर दृष्टिसे लाभदायक है। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेवालेकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र होती है और वह स्वयं भी तेजस्वी होता है। ब्राह्ममुहूर्तमें जागरणके बारेमें मनुजीका कथन है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानु चिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च।

" अर्थात् मनुष्य ब्राह्ममुहूर्तमें उठे, धर्म और अर्थके विषयमें चिन्तन करे, शरीर तथा उसके कारण उत्पन्न होनेवाले क्लेशोंके कारणोंकी खोज करके वेदतत्वोंके अर्थका चिन्तन करे।" इन सब बातोंके चिन्तनके लिए ब्राह्ममुहूर्तका समय सबसे उत्तम है। अतः ज्ञानप्राप्तिका प्रथम उपाय ब्राह्ममुहूर्तमें जागरण है।

दूसरा उपाय है— बुद्धिमानोंके मार्ग पर चलना। बुद्धिमान् मनुष्य जिस मार्ग पर पहले चल चुके हैं, उसी पर चलना मनुष्यके लिए श्रेयस्कर है। उस मार्ग पर चलकर मनुष्य उन्नति कर सकता है। अपनेसे पूर्वके बुद्धिमानोंका आदर्श मनुष्योंके सामने रहे और उसी आदर्श पर चलकर मनुष्य ज्ञानकी प्राप्ति करे।

ज्ञानका महत्त्व

१ शूषं प्रविद्— (८८) सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है। सच्चा सुख ज्ञानसे प्राप्त होता है।

२ विप्रः एषां यन्ता— (१४३) ज्ञानी ही इन मनुष्योंका शासक हो सकता है। मनुष्यों पर शासन ज्ञानी ही कर सकता है। ज्ञानी मनुष्य हर तरहके गुणोंसे युक्त होता है। उसमें हर तरहके कार्य करनेकी शक्ति होती है। एक वेदवेत्ता उत्तम राजा, उत्तम सेनापति, उत्तम आमात्य और उत्तम पुरोहित हो सकता है मनुजीका कथन है—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

" वेदशास्त्रोंको जाननेवाला मनुष्य सेनापतिका कार्य, राज्य संचालनका कार्य, दण्ड देनेका कार्य और सब मनुष्यों पर शासन करनेका कार्य कर सकता है"। वेदज्ञानी जिस राष्ट्रका संचालक हो, वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है। इसलिए राष्ट्रका नेता उत्तम वेदज्ञ ही हो।

३ वि जानन् तमसः ज्योतिः वृणीत— (३९३) ज्ञानसे युक्त होकर ही मनुष्य अन्धकारको पार करके ज्योतिको प्राप्त करता है। अज्ञान एक घोर अन्धकार है। इस अन्धकारको पार करना चाहिए। जिस राष्ट्रमें अज्ञानका साम्राज्य हो, वह राष्ट्र कभी भी उन्नति नहीं कर सकता।

इसलिए सर्वप्रथम राष्ट्रमेंसे अज्ञानान्धकारको दूर करना चाहिए, और ज्ञानकी ज्योति सर्वत्र फैलानी चाहिए। राष्ट्रका प्रत्येक मनुष्य ज्ञानसे सम्पन्न हो।

४ ब्रह्मणा शिरः— (४७७) ज्ञानके द्वारा सभी मनुष्योंका मस्तिष्क प्रकाशयुक्त हो। "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति" इस कथनके अनुसार बुद्धि ज्ञानके द्वारा ही शुद्ध होती है। उत्तम ज्ञान प्राप्त करनेसे मनुष्यका मस्तिष्क भी उत्तम होता है।

यज्ञसे लाभ

वेदोंमें जगह जगह पर यज्ञकी महिमा गाई गई है। यज्ञ शब्द बहुत व्यापक है। अग्नि प्रज्वलित करके उसमें सामग्री आदि डालना तो यज्ञका स्थूल या बाह्य रूप है, पर उसका सूक्ष्म अर्थ है- देवोंके मार्गका अनुसरण करके स्वयंको श्रेष्ठ बनाना, संगठनके द्वारा राष्ट्रका उत्थान करना और दान देकर राष्ट्रकी प्रजाओंको सुखी बनाना। देवोंका कार्य, उनके आदर्श मनुष्योंके लिए अनुकरणीय हैं। देवोंके द्वारा बताये गए मार्ग पर चलकर मनुष्य देवोंके समान बन सकता है, इसलिए राष्ट्रमें देवपूजारूपयज्ञका करना आवश्यक है।

संगतिकरण— राष्ट्रका आधार संगठन है। देशकी बाहरी सीमायें शत्रुओंसे सुरक्षित रहें, देशकी आन्तरिक स्थिति भी सुदृढ हो, इसलिए आवश्यक है कि देशकी प्रजायें संगठित हों। उनमें एक सूत्रता हो। राष्ट्रके सभी नागरिकों के आचार विचार एक जैसे हों, एक दूसरेके प्रतिकूल न हों।

दान— निस्स्वार्थ भावसे किसीको कुछ देना दान कहलाता है। राष्ट्रमें निर्बलको बलका दान देकर, अज्ञानियोंको ज्ञानका दान देकर, निर्धनोंको धनका दान देकर सशक्त बनाना चाहिए। इस प्रकार राष्ट्रकी उन्नतिके लिए दान भी एक आवश्यक तत्त्व है। इस प्रकार इन तीनों तत्त्वोंके सम्मिलित रूपका नाम यज्ञ है। इस यज्ञको करनेसे मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति होती है—

१ यज्ञं चकृम, गीः वर्धतां— (१) हमने यज्ञ किया है, अतः हमारी वाणी वृद्धिको प्राप्त हो।

२ नः इमं यज्ञं मधुमन्तं कृधि— (५१) हमारे इस यज्ञको मधुरतासे पूर्ण कर।

३ अध्वरे ऊर्ध्वः गातुः अकारि— (५१) हिंसारहित यज्ञमें उन्नतिशील मार्ग ही हो।

यज्ञ करनेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र होती है। देवोंकी पूजा करनेसे तथा देवोंकी स्तुति गानेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र होती है। उसका जीवन मधुर होता है और उसका मार्ग उन्नतिशील होता है।

यज्ञको श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। इस कर्मको मनुष्य सदा करता रहे। कर्मसे मनुष्य सुख और अमरत्व प्राप्त करता है—

कर्मसे लाभ

१ यस्मिन् अपांसि, तस्मिन् सुम्नानि— (४१) जहां पर कर्म हैं, वहीं पर सुख है।

२ दंसनाभ्यः बृहत्— (४९) कर्मोंको करनेसे बहुत धन प्राप्त होता है।

३ कविः सु-अपस्यया अरिणात्— (४९) ज्ञानी उत्तम कर्म करनेकी इच्छासे धनका दान करता है।

४ अपसः धीतयः ऋतस्य पथ्याः अनु यन्ति— (१३८) कर्म करनेवाले ज्ञानी जन सत्यमार्गके अनुकूल चलते हैं।

५ महद्भिः कर्मभिः सुश्रुतः— (१५५) मनुष्य अपने श्रेष्ठ और महान् कर्मोंसे ही प्रसिद्ध होता है।

६ सुयज्ञाः कवयः तव प्रणीती तव शर्मन्— (४७२) उत्तम कर्म करनेवाले लोग ही इस इन्द्रके आश्रयमें रहते हैं।

कर्म करना सुख और समाधानकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है। सत्यमार्ग पर चलते हुए जो कर्म किए जाते हैं, वे ही उत्तम और श्रेष्ठ कर्म होते हैं। ऐसे श्रेष्ठ कर्मोंको करनेके कारण ही मनुष्य सर्वत्र प्रसिद्ध होता है। इसलिए मनुष्य सदा उत्तम कर्म करता रहे। उत्तम कर्मोंको करनेसे ही मनुष्य देवोंके नजदीक आकर उनसे मित्रताका सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। तब देवोंकी मित्रताके कारण मनुष्य अमृतत्वको प्राप्त कर सकता है।

५ अपसः इन्द्रस्य सख्यं आनशुः— (५८८) उत्तम कर्म करनेवाले ही इन्द्रकी मित्रताको प्राप्त कर सकते हैं।

८ सुकृत्यया अमृतत्वं एरिरे— (५८८) मनुष्य उत्तम कर्मोंसे ही अमृतको प्राप्त करते हैं।

कर्मका करना नियम या व्रतकी तरफ संकेत करता है। उत्तम कर्म नियममें रहकर ही हो सकते हैं। इसलिए इन नियमोंके बारेमें वेदमंत्रोंमें जो कुछ कहा है, उसे अब देखते हैं—

नियमका महत्त्व

१ ऋतं दीध्यानाः ऋतं आहुः— (९०) नियममें चलनेवाले पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

२ ऋतं अनु व्रतं इति आहुः— (५६) सत्यके अनुसार चलना ही व्रत है, ऐसा कहते हैं।

३ देवानां व्रता अनु गुः मदन्ति— (८९) देवोंके नियमोंके अनुसार चलनेवाले पुरुष ही सत्यभाषण करते हैं।

४ तृष्टं ववक्षति, सुमनाः अस्ति— (१०७) जो हमेशा उत्साहसे भरा रहता है, वही सदा प्रसन्न रहता है।

५ सूर्यः हर्यश्वप्रसूताः प्रदिष्टाः दिशः न मिनाति (२७०) यह सूर्य भी इन्द्रके द्वारा उत्पन्न व निर्दिष्ट की गई दिशाओंका उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् सदा उन्हीं पर चलता है।

६ इन्द्रे देवाः भवथ— (५२६) इन्द्रके अनुशासनमें रहकर देव बना जा सकता है।

७ वरुणस्य व्रतानि अदब्धानि— (५२७) वरुणके नियम अनुल्लंघनीय हैं।

८ मित्र, यः ते व्रतेन शिक्षति, सः मर्तः प्रयस्वान् भवति— (५७८) हे मित्र, जो तेरे नियमका पालन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है।

सत्यभाषण करना, सत्यमार्गका अनुसरण करना, सत्यमय जीवन बनाना मनुष्यके लिए बडा कठिन है। मनुष्यके जीवनमें पदे पदे ऐसे प्रलोभन आते हैं कि जो मनुष्यको अपने पथसे विचलित कर देते हैं। इसीलिए यजुर्वेदके ४० वें अध्यायमें कहा है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

" सोनेके ढक्कनसे सत्यका मुंह ढका हुआ है। " इस ढक्कनको उतार देनेसे सत्यके दर्शन हो जाते हैं, पर जो सोनेकी चमकमें फंस कर रह जाता है, वह सत्यका दर्शन नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्यके जीवनमें सत्यका पालन बडा कठिन है। पर यह असाध्य नहीं है। सत्यका पालन करना सर्वथा असंभव हो ऐसी बात नहीं है। पर इस सत्यका दर्शन वे ही लोग कर सकते हैं कि जो देवोंके नियमोंके अनुसार चलते हैं (८९) विद्वानोंने या ज्ञानियोंने जो नियम निर्धारित कर दिए हैं, उन नियमोंके अनुसार चलनेवाला मनुष्य सत्यका साक्षात्कार कर सकता है। अनुशासनकी अनिवार्यता देवोंमें भी है। देखिए– प्रभुने सृष्टिके प्रारंभमें ही सूर्यका मार्ग निर्दिष्ट कर दिया था, और वह सूर्य आज भी उसी निर्दिष्ट मार्गसे अपनी यात्रा करता है। रोज समयानुसार उदय होता है और अपने ठीक समय पर अस्त हो जाता है। उसके उदय-अस्तके समयमें एक क्षणका भी फरक नहीं पडता। इस प्रकार सूर्य भी अपने नियममें रहता है (२७०)। इस परम प्रभुके नियम अनुल्लंघनीय हैं। प्रभुके नियमोंका उल्लंघन करना असंभव है। इसीलिए वेद कहता है कि इस वरणीय प्रभुके नियम अटल हैं (५२७)। जो मनुष्य प्रभुके इन अटल नियमोंके अनुसार चलता है, वही इस प्रभुका मित्र या उपासक हो सकता है (५२६) और वही ऐश्वर्यवान् हो सकता है (५७८), वही एक उत्तम नेता बन सकता है।

श्रेष्ठ नेताके गुण

देशके नेतामें कौन कौनसे गुण होने चाहिए, वह अब देखिए–

१ सखा इव पितरा इव साधुः भव— (१७१) अग्रणी नेता अपनी प्रजाका मित्र अथवा पिता माताके समान हितैषी हो।

२ धिया चक्रे वरेण्यः— (२३०) बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाला ही लोगोंके द्वारा वरण करने योग्य होता है।

३ बाहुभिः वाजी अरुषः रोचते— (२४८) अपनी भुजाओंसे बलवान् होनेवाला ही तेजस्वी होता है।

४ अनिवृत्तः अश्मनः परि वृणक्ति— (२४८) ऐसा आदमी अनिर्बन्ध शक्तिवाला होकर चट्टानोंको भी पार कर जाता है।

५ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्र आवत्— (३४१) दुष्टोंको मारकर आर्योंकी उत्तम रक्षा की।

६ अभिक्रतूनां दमिता— (३४२) घमण्डी लोगोंका दमन करता है।

७ स्वराट् स्वयशस्तरः— (४४०) जो अपने तेजसे तेजस्वी होता है वही अत्यधिक यशवाला होता है :

८ विश्वामित्रः महान् देवजाः नृचक्षाः— (४९४) विश्वका हित करनेवाला मनुष्य महान् देवोंके गुणोंसे युक्त और विद्वान् है।

९ जनासः सायकस्य न चिकिते— (५०८) वीर मनुष्य शस्त्रास्त्रके दुःखको कुछ नहीं समझते।

१० लोधं पशुं मन्यमानाः नयन्ति— (५०८) लोभीको पशु मानकर उसे जहां चाहे, वहां ले जाते हैं।

११ वाजिना अवाजिनं न हासयन्ति— (५०८) बलवान्के द्वारा निर्बलको कष्ट नहीं देते।

१२ कवयः नाम महत् चारु— (५२६) दूरके परिणामोंका विचार करके काम करनेवालोंका यश महान् और उत्तम होता है।

१३ वीराः पुरःसदः शर्मसदः— (५५२) वीर हमेशा आगे बढनेवाले तथा कल्याण करनेवाले हैं।

इस प्रकार नेताके गुणोंका वर्णन किया है। नेता अपनी प्रजाओंसे मित्रके समान स्नेहपूर्ण तथा मातापिताके समान प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाला हो। उनकी उन्नतिके लिए उत्तमसे उत्तम कर्म करनेवाला हो। बलशाली और तेजस्वी हो। ऐसा तेजस्वी नेता आगे आनेवाले संकटोंको भी आसानीसे पार कर जाता है। सामने बडे बडे पहाड भी हों तो भी वह उन्हें पार कर जाता है। उसके अन्दर सदा उत्साह और चेहरे पर प्रसन्नता विराजमान रहती है। वह अपने तेजके कारण सर्वत्र यशस्वी होता है। यह विद्वान् होनेके कारण सभी दिव्यगुणोंसे युक्त होकर सारे संसारका हित करनेवाला होता है। यह नेता ऐसा वीर होता है कि वह संग्राममें तीक्ष्णसे तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंको भी कुछ नहीं समझता। ऐसा वीर और तेजस्वी नेता जब किसी देशका संचालक होता है, तब उस देशमें कोई लोभी नहीं होता। यदि कोई होता भी है, तो उसे पशु समझकर उसके साथ यथायोग्य व्यवहार किया जाता है। उसके शासनमें कोई भी बलवान् निर्बलोंको निष्कारण नहीं सता सकता। यह सदा दूरके परिणामों पर विचार करके अपने कदम उठाता है, इसीलिए उसके सभी काम सफल होते हैं और वह यशस्वी और श्रेष्ठ होता है। ऐसा नेता देशमें होना चाहिए। इस नेताका वर्णन ऋग्वेदके तीसरे मण्डलमें इन्द्रके रूपमें भी किया गया है।

इन्द्रकी महिमा

१ त्वत् प्रकेतः कः चन— (२५९) हे इन्द्र ! तुझसे अधिक बुद्धिमान् और कौन है ?

२ परमा चित् रजांसि दूरे न— (२६०) दूरके लोक भी इस इन्द्रके लिए दूर नहीं हैं।

३ अच्युतानि च्यावयन् (२६१) यह इन्द्र अपने स्थानसे न हिलनेवाले दृढसे दृढ शत्रुओंको भी हिला देता है।

४ ते महिमानं ऋजिप्याः सखायः वृजध्यै परि— (२९७) इस इन्द्रके बलको सरल मार्गसे जानेवाले मित्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

५ उभये हवन्ते— (३११) इस इन्द्रको सुखी और दुःखी दोनों तरहके मनुष्य बुलाते हैं।

इस इन्द्रसे अधिक बुद्धिमान् और कोई नहीं है। इसीलिए इसकी सर्वत्र गति है। दूरके लोक भी इसके लिए दूर नहीं हैं। यह इतना बलशाली है कि वह अपने दृढसे दृढ शत्रुको भी अपने स्थानसे विचलित कर देता है। सेनापति ऐसा ही शूरवीर हो कि बलवान्से बलवान् शत्रु भी उसके सामने टिक नहीं पावे। जिस देशका ऐसा सेनापति होगा, वह देश सुरक्षित होगा ही, इसमें सन्देह क्या ?

इन्द्र क्षत्रिय वर्गका प्रतिनिधि है और अग्नि ब्राह्मणवर्गका। "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते" इस नीति वचनके अनुसार प्रथम राष्ट्रकी बाहिरी सीमाओंकी सुरक्षा आवश्यक है, जो क्षत्रियवर्गका कर्तव्य है, राष्ट्रकी सीमाओंके सुरक्षित होनेके बाद ज्ञानका प्रसार संभव हो सकता है। ज्ञानके प्रसारका काम ब्राह्मणवर्ग पर निर्भर है। इस वर्गका प्रतिनिधि अग्नि है, अतः अब उसके गुणों पर विचार करेंगे।

अग्निके गुण

१ मेधिरः पूतदक्षः जनुषाः सुबन्धुः— (३) यह अग्नि मेधावान्, पवित्र ज्ञानवाला और जन्मसे ही उत्कृष्ट बन्धु है।

२ सुमतिं निकामः सखित्वं— (१५) उत्तम बुद्धिको चाहनेवाला ही इस अग्निकी मित्रता कर सकता है।

३ येषां सख्ये श्रितः प्र यन्ति, अन्ये आसते— (१०७) यह अग्नि जिनसे मित्रता करता है, वे आगे बढ जाते हैं, जब कि दूसरे नास्तिक होनेकी वजहसे पीछे रह जाते हैं।

४ तत् भद्रं पाकाय चित् छदयति— (१११) अग्निका वह उत्तम पराक्रम अज्ञानीको भी पूजा की ओर प्रेरित करता है।

५ उग्नः तेजीयसा मनसा— (१८०) इस अग्निसे रक्षित हुआ मनुष्य तेजोयुक्त अन्तःकरणवाला होता है।

६ सः गृणन्तं विश्वा दुरिता अति पर्षत्—(१८६) अग्नि अपने उपासकको सभी पापोंसे पार करता है।

अग्नि अर्थात् ब्राह्मण मेधाबुद्धिसे युक्त, पवित्र और उत्तम ज्ञानवाला और सबका भाई है। यह स्वयं ज्ञानवान् है, इसलिए इसके साथ वही लोग मित्रता कर सकते हैं कि जो स्वयं ज्ञानवान् हैं अथवा यह अग्नि उन्हीं लोगोंके साथ मित्रता करता है कि जो मेधावी हैं। ब्राह्मण भी ऐसोंके साथ ही मित्रता करे जो ज्ञानी और मेधावी हो। जो ज्ञानी इस अग्निके साथ मित्रता करता है, वह तो आगे बढ जाता है, पर जो अग्निका तिरस्कार करते हैं, वे पीछे रह जाते हैं, आगे नहीं बढ पाते। ब्राह्मण ज्ञानीके साथ जो मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करता है, वह उन्नति करता जाता है, पर जो ज्ञानीका तिरस्कार करता है, वह अवनत ही रह जाता है। ज्ञान देशका आधार है, अतः जिस देशमें ज्ञानका आधार सुदृढ होता है, वह देश उन्नत होता जाता है, पर जिस देशमें ज्ञान या सुशिक्षाकी समुचित व्यवस्था नहीं होती, वह देश अवनत दशामें ही रह जाता है। इसलिए देशकी प्रजाओंमें शिक्षाके प्रति रुचि उत्पन्न करनी चाहिए। कायदे कानूनके द्वारा शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए। अनिवार्य करनेसे अज्ञानी भी ज्ञानप्राप्तिकी तरफ अग्रसर होंगे। तब ज्ञानसे सभी मनुष्योंके अन्तःकरणका कोना कोना प्रकाशित होता है। उसका अन्तःकरण तेजसे युक्त होता है। जिसका अन्तःकरण तेजस्वी होता है, वह सभी पापोंसे पार हो जाता है। उससे कोई भी पापकर्म नहीं होता और वह पवित्र हो जाता है यह अग्नि ज्ञानका देव है और देवोंका पुरोहित है। पुरोहित कैसा हो, इसका वर्णन करनेवाले मंत्रभाग अब देखिए—

पुरोहित कैसा हो ?

१ रथीः बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः देवानां पुरोहितः अभवत्— (३१) उत्तम गति करनेवाला तथा बडे बडे यज्ञोंको देखनेवाला ही देवोंका पुरोहित हो सकता है।

२ मनुषः पुरोहितः निषत्तः द्युभिः बृहन्तं क्षयं परिभूषति— (४०) मनुष्योंका पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि वह अपने तेजोंसे यज्ञगृहको प्रकाशित कर दे।

इन दो मंत्रभागोंमें पुरोहितके अनेक गुणोंका वर्णन किया है—

१ रथी— वह शब्द गति करनेवालेका वाचक है। रथ शब्दका निर्वचन करते हुए यास्क कहते हैं– “ रथः कस्मात् ? रंहतेर्गतिकर्मणः ” रथ क्यों कहा जाता है ? क्योंकि वह गति करता है। ” “ रंह् गतौ ” इस धातुसे रथ शब्द सिद्ध होता है, उस गति करनेवाले रथपर बैठनेवाला रथी होता है। इस प्रकार रथी शब्दका अर्थ हुआ– जो उत्तम गति करता हो अथवा गति करनेके लिए जो प्रेरणा देता हो। राष्ट्र भी एक रथ है, जो सतत गति करता रहता है, उस राष्ट्रको उत्तम प्रेरणा देनेका काम पुरोहितका होता है। इसप्रकार पुरोहितका प्रथम कर्तव्य है राष्ट्रको उत्तम प्रेरणा देना।

२ बृहतः ऋतस्य विचर्षणिः— महान् यज्ञका निरीक्षक। पुरोहितका काम है कि वह राष्ट्रमें यज्ञका काम चल रहा है या नहीं, यह देखे। यज्ञका अर्थ है संगठन। पुरोहित राष्ट्रमें प्रजाओंको संगठित करे। राष्ट्रमें जो विभिन्न जाति तथा धर्मके लोग हों, उन्हें एकताके सूत्रमें बांधे। यह संगठनका काम राष्ट्रमें सतत चालू रहे, यह देखना पुरोहितका काम है। संगठनका काम भी एक महायज्ञ है, उस महायज्ञ पर पुरोहित अपनी नजर रखे और जहां जहां कुछ कमी देखे, उसे दूर करे।

३ देवानां पुरोहितः— दिव्य गुणवाले ज्ञानी विद्वानोंका वह स्वयं आगे आकर हित करनेवाला हो। ज्ञानियोंकी समुचित सुरक्षाका प्रबन्ध है या नहीं, यह पुरोहित देखे और यदि कहीं कमी देखे, तो वह स्वयं आगे बढकर उस कमीको दूर करे। इसीलिए वह पुरोहित (पुरः आगे बढकर हितः– हित करनेवाला) कहा गया है। पुरोहित इस बातकी प्रतीक्षा करता हुआ न बैठा रहे कि कोई मुझे बुलाये, तभी मैं जाऊं, अपितु उसे जहां कहीं भी कुछ कमी दिखाई दे, वहां स्वयं पहुंचकर उस कमीको दूर करे। सज्जनोंका परित्राण पुरोहित करे।

४ पुरोहित इतना तेजस्वी हो कि उसके सभागृहमें पधारते ही सर्वत्र तेज छा जाए। सभी उससे अभिभूत हो

जाएं। ऐसा तेजस्वी पुरोहित ही राष्ट्रका कल्याण कर सकता है। देवोंका पुरोहित अग्नि जिसप्रकार तेजस्वी है, उसी प्रकार मनुष्योंका पुरोहित भी तेजस्वी हो, ऐसा पुरोहित राष्ट्रकी सभी प्रजाओंको संगठित करके राष्ट्रका संगठन उत्तम बना सकता है।

एकताके सूत्र

१ भारती भारतीभिः सजोषाः— (५७) एककी वाणी दूसरोंकी वाणियोंके अनुकूल हो। राष्ट्रकी प्रजाओंकी वाणियां परस्पर अनुकूल हों।

२ सरस्वती सारस्वतेभिः— (५७) एकका ज्ञान अन्योंके ज्ञानके अनुकूल हो।

राष्ट्रकी प्रजाओंकी बातें एक दूसरेका विरोध करनेवाली न हों। नेताओंके भाषण परस्पर विरोधी न हों, सब यही सोचें कि राष्ट्रकी उन्नति किस प्रकार हो और उसी लक्ष्यको सामने रखकर भाषण करें। स्वार्थकी भावना उनमें न हो। स्वार्थकी भावना जहां होगी, वहां परस्परके भाषण कभी अनुकूल नहीं हो सकते। अतः स्वार्थकी भावनाको त्यागकर परमार्थकी भावना प्रजाओंमें हो, तभी उनमें एकता हो सकती है। और तब—

३ पुरुमायः सहसे सं जिहीते— (४६९) बहुत कुशलतावाले मनुष्य शत्रुओंको हरानेके लिए मिलकर यत्न करते हैं।

एकता हो जाने पर सभी प्रजायें संगठित होकर शत्रुओंको हरानेके लिए प्रयत्न करती हैं और तब सारा राष्ट्र सुरक्षित होकर समृद्ध होता है।

वाणीकी शक्ति इतनी महान् होती है कि इससे महान्से महान् रचना भी की जा सकती और महान् विध्वंस भी, इसलिए वाणीका उपयोग बहुत संभाल कर करना चाहिए। वाणी सदा उत्तम रहे—

उत्तम वाणी

१ ऋतस्य सदसि क्षेमयन्तं गौः परि चरति— (८४) सत्य बोलनेवालेकी वाणी चारों ओर फैलती है।

२ येषां गीः गण्या सुरुचः रोचमानाः— (८७) जिनकी वाणी प्रभावशाली होती है, वे तेजस्वी होकर होकर प्रकाशमान् होते हैं।

३ नमः उक्तिं अयति— (१४९) सबसे नम्रतापूर्वक बात करनी चाहिए।

४ पृथिव्याः नरिमन् मितज्ञवः मित्रस्य सुमतौ— (५७९) पृथ्वी पर विनम्र होकर चलनेवाले मित्रकी उत्तम बुद्धिमें हम रहते हैं।

सत्य बोलनेवालेकी वाणी बहुत प्रभावशाली होती है, इसलिए वह जो भी बोलता है, वह राष्ट्रमें चारों ओर फैलता है, उसके अनुसार प्रजायें चलती हैं। इसलिए सत्यभाषण द्वारा अपनी वाणीको प्रभावयुक्त बनाना चाहिए। क्योंकि जिनकी वाणी प्रभावसे युक्त होती है, वे तेजस्वी होकर प्रकाशमान् होते हैं।

मनुष्य नम्र बने और सबके साथ विनम्रतापूर्वक व्यवहार करे। मनुष्य जितना अधिक नम्रतासे व्यवहार करेगा, उतनी ही अधिक उसकी आत्मा उन्नत होगी। नम्रताका व्यवहार ऐश्वर्य प्राप्त करनेका एक सर्वोत्तम उपाय है और उद्धतता प्राप्त हुए ऐश्वर्यको खोनेका मार्ग है। नम्रतापूर्ण व्यवहारसे मनुष्य परमात्माके समीपसे समीपतर होता जाता है और उद्धततासे वह परमात्मासे दूरसे दूरतर होता जाता है। इसलिए मनुष्यका व्यवहार नम्रतासे युक्त हो। जो विनम्र होकर रहते हैं, उनकी बुद्धि बडी ही उत्तम होती है और वे सभीसे मित्रवत् स्नेह करते हैं। उत्तम वाणी गृह, समाज और राष्ट्रको सुखमय बना देती है, अन्यथा सर्वत्र कलह होता है। विशेष कर गृहमें यदि सभी नम्रतापूर्वक परस्पर व्यवहार करें, गृहिणी उत्तम और सुभाषिणी हो तो घर स्वर्गका सुख देने लगता है, और कुभाषिणी गृहिणी घरको नरक बना देती है, इसीलिए वेदके निम्न मंत्रभाग सुगृहिणीके महत्त्वके प्रतिपादक हैं—

सुगृहिणीका महत्त्व

१ जाया इत् अस्तं— (४८७) स्त्री ही घर है।

२ जाया इत् योनिः— (४८९) स्त्री ही आश्रय है।

३ अस्तं प्र याहि, ते गृहे कल्याणी जाया सुरणं— (४९१) हे मनुष्य ! तू अपने घर जा, वहां तेरे घरमें कल्याण करनेवाली तेरी स्त्री उत्तम सुख देनेके लिए तैय्यार है।

स्त्री ही घर है, " बिन घरनी घर भूतका डेरा " इस हिन्दी कहावतके अनुसार या " गृहिणी गृहमित्याहुः " इस सुभाषितके अनुसार गृहिणी ही घरकी शोभा है। पर वह गृहिणी सुगृहिणी हो, अपने परिवारके सदस्योंसे तथा अन्य अभ्यागतोंसे वह प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाली हो। स्वभावसे मधुर हो। ऐसी स्त्री जिस घरमें हो, वही उत्तम आश्रय हो

सकता है। वहीं पर सच्चा सुख रहता है। ऐसे घरमें जानेके लिए मनुष्य भी उत्सुक रहता है। वह दिनभरका थका मांदा जब अपने घरमें जाता है, तब गृहिणीके मधुर व्यवहारसे उसकी सारी थकान उतर जाती है और उसका मन फिर प्रफुल्लित हो जाता है। ऐसा घर वास्तवमें कल्याण करनेवाला है और ऐसी सुस्वभावी स्त्री ही सच्चा सुख देती है। ऐसी स्त्रीसे उत्तम सन्तानें उत्पन्न होती हैं—

उत्तम सन्तान-प्राप्तिका उपाय

१ आयुनि सु-अपत्ये जरस्व—(४५) दीर्घायुवाली उत्तम सन्तानके लिए अग्निकी स्तुति करनी चाहिए।

२ वीरः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः जायते—(५८) वीर, उत्तम कर्म करनेवाला, चतुर और देवत्वकी इच्छा करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो।

३ नः गन्तोः अनपत्यानि युयोत— (५२७) हमारे मार्ग सन्तानको न देनेवाले कर्मोंसे रहित हों।

हम ऐसे मार्गको न अपनायें कि जिसपर चलकर हम सन्तानके सुखसे वंचित रह जायें। सन्तानका सुख एक महानतम सुखोंमेंसे है। प्रत्येक गृहस्थ इस सुखका भोग करे। पर यह सुख तभी मनुष्यको मिल सकता है कि जब सन्तान श्रेष्ठ हों। सन्तानको श्रेष्ठ बनानेकी जिम्मेदारी माता पिता पर है। माता पिता अपनी सन्तानको इसप्रकार का बनायें कि वह वीर, कर्म करनेवाला, सावधान, देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला हो। सभी दिव्यगुणोंसे युक्त हो। ऐसी सन्तान ही उत्तम होती है और ऐसी सन्तानसे ही गृहस्थीका सुख बढ़ता है।

गृहस्थका दूसरा सुख है- धनलाभ। धनार्जनके अनेक साधन हैं। सदोष और अदोष दोनों ही मार्गोंसे धन कमाया जा सकता है, पर सदोष मार्गसे कमाया गया धन टिकता नहीं, वह स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही स्वामीको भी नष्ट कर डालता है, पर अदोष मार्गके द्वारा कमाया गया धन स्वामीकी उन्नतिका कारण बनता है। वह अनन्तकाल तक टिकता है और स्वामीको सच्चे अर्थोंमें ऐश्वर्यवान् और समृद्ध बनाता है। यही उत्तम धन है। इसके बारेमें वेदका उपदेश देखिए।

उत्तम धन

१ अद्रोघेण वचसा रयिः सत्यं— (१५१) पापरहित कथनसे प्राप्त होनेवाला धन टिकता है। पापके द्वारा कमाये गए धनके बारेमें मनुजीका कथन द्रष्टव्य है-

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

"मनुष्य प्रथम अधर्मका आचरण करके खूब धन कमाता है, खूब समृद्ध होता है, इसके बाद भद्र अर्थात् सुखमय जीवन भोगता है, इसके बाद शत्रुओंको जीतता है, उसके बाद वह मनुष्य जड़सहित विनष्ट हो जाता है।" अधर्मसे पैसा कमानेवालेकी यही दशा होती है। अतः मनुष्य धर्ममार्गसे ही धनार्जन करनेका प्रयत्न करे।

संसारमें ऐश्वर्य अपार है, पर वह सबको नहीं मिल पाता। "साहसे प्रतिवसति श्रीः" इस युक्तिके अनुसार साहस करनेवाले मनुष्यको ही ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें वेदका निम्न मंत्रभाग विवेचनीय है-

वीरः वसूनि विन्दमानः शृण्वे— (५५१) मैंने वीरको ही धन प्राप्त करते हुए सुना है। "वीरभोग्या वसुंधरा" है, वीरोंके द्वारा उपभोग्या होनेके कारण यह पृथ्वी वीरपत्नी है। वीरोंके द्वारा पालनीया है। अतः वीरता दिखाकर ऐश्वर्य प्राप्त करनेवालेके पास ही यह लक्ष्मी टिकती है।

ऐसे उत्तम धनसे प्राप्त किया गया अन्न ही उत्तम अन्न होता है। उत्तम अन्न किसे कहते हैं, इस विषयमें ऋग्वेदका ऋषि कहता है।

उत्तम अन्न

१ अह्रयं वाजं ऋग्मियं— (२७) लज्जासे रहित कमाया गया अन्न ही प्रशंसाके योग्य होता है। अन्न ऐसे मार्गसे कमाया जाए कि मनुष्यको उस मार्ग पर चलते हुए लज्जा न लगे। कालाबाजार, चोरबाजार यह सब ऐसे मार्ग हैं कि मनुष्य इन पर चलते हुए डरता है, लजाता है और संकोच करता है, पर धनप्राप्तिकी मृगतृष्णासे प्रेरित होकर वह डर, लज्जा, संकोच सबको उठाकर ताक पर धर देता है और अस्तव्यस्त होकर भागता फिरता है। ऐसा अन्न मनुष्यके लिए कल्याणकारी नहीं होता। अतः मनुष्य ऐसे

ही अन्नका उपभोग करे कि जो सत्यमार्गसे प्राप्त किया गया हो, उसी अन्नको खाकर वह हृष्टपुष्ट होगा और पवित्र जीवनवाला होगा और फिर गृहस्थाश्रम सुखमय होगा। ऐसे अन्नको खाकर पुत्र आदि अपत्य भी प्रसन्न रहेंगे।

दायादभाग

दायादका धन वह है कि जिसे कोई गृहस्थ अपनी मृत्युके बाद छोड जाता है। प्राचीनपद्धतिके अनुसार ऐसे धनका अधिकारी उस मनुष्यका पुत्र ही हो सकता है, पुत्री नहीं। इस बातको निरुक्तमें अच्छी तरह विशद किया है। जब तक मनुष्य जीवित है, उसका कर्तव्य है कि वह अपनी पुत्रीका पोषण करे और उसे वीर्यधारणमें समर्थ बनाये। इसके बारेमें वेद कहता है—

१ यत्र पिता दुहितुः सेकं ऋंजन् शग्म्येन मनसा सं दधन्वे— (२८१) जब पिता अपनी पुत्रीको वीर्य धारण करने बना देता है, तब जाकर उसे शान्ति मिलती है। पिताके लिए पुत्रीकी समस्या बडी भारी होती है। पुत्रीकी शरीर-वृद्धिके साथ पिताकी चिन्तामें भी वृद्धि होती जाती है। जब पुत्री इस योग्य हो जाती है कि वह वीर्यको धारण कर सके तो उसकी चिन्ता पराकाष्ठा पर पहुंच जाती है, अन्तमें जब पिता उस पुत्रीका विवाह कर देता है, तब जाकर उसे मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। विवाहके अवसर पर पिता जो कुछ उसे देता है, उतने ही धन पर लडकीका अधिकार होता है। बाकीकी जायदाद पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। सारी जायदादका वारिस लडका ही होता है।

२ तान्वः जामये रिक्थं न आरैक्— (२८२) पुत्र अपनी बहिनको पिताके धनका भाग नहीं देता। पर यदि लडकीके विवाहके पूर्व ही पिताकी मृत्यु हो जाए, तो भाईका यह कर्तव्य होता है कि वह अपनी बहिनका पोषण करके उत्तम स्थल ढूंढकर उसका विवाह कर दे। पिताके अभावमें भाई ही अपनी बहिनका पिता बनता है। अतः उसीकी यह जिम्मेदारी है कि वह अपनी बहिनके लिए यथाशक्ति धन आदि प्रदान करे। पर बहिन नियमानुसारतः पिताके धनकी अधिकारिणी नहीं बन सकती, क्योंकि पिताके वंशको आगे बढानेवाला तो पुत्र ही होता है, पुत्री तो दूसरे व्यक्ति अर्थात् अपने पतिका वंश बढानेवाली होती है, अतः वेदमें भी पुत्रीकी अपेक्षा पुत्रकी श्रेष्ठता ज्यादा मानी गई है। समस्त उत्तम कर्मोंको करनेका अधिकार पुत्रको ही है—

३ अन्यः सुकृतोः कर्ता— (२८२) पुत्र-पुत्रीमेंसे एक अर्थात् पुत्र उत्तम कर्मका करनेवाला है।

४ अन्यः ऋन्धन्— (२८२) दूसरी-पुत्री अलंकारोंसे स्वयंको सजाती है।

पुत्र ही सब उत्तम कर्मोंको कर सकता है, पुत्रीका तो काम यही है कि वह घरको सजाने तथा स्वयंको सजानेके काममें लगी रहे।

इस प्रकार इस तृतीय मंडलमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है, जो पठनीय और मननीय हैं।

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

तृतीय मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अक्तो न बभ्रिः समिथे	१२
अगच्छदु विप्रतमः	२८७
अग्न इन्द्रश्च दाशुषो	२१८
अग्न इळा समिध्यसे	२०४
अग्निमुपसमश्विना	१८३
अग्निरस्मि जन्मना	२१९
अग्निर्जज्ञे जुहू	२८३
अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च	४३
अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये	२१०
अग्निर्धिया स चेतति	१९५
अग्निर्नेता भग इव	१८६
अग्निर्होता पुरोहितो	१२३
अग्निश्रियो मरुतो	२१७
अग्ने अपां समिध्यसे	२१२
अग्ने जरस्व स्वपत्य	४५
अग्ने जुषस्व नो हविः	२३७
अग्ने तृतीये सवने	२४१
अग्ने त्री ते वाजिना	१८४
अग्ने दा दाशुषे रयिं	२०७
अग्ने दिवः सूनुरसि	२०८
अग्ने दिवो अर्णमच्छा	१९५
अग्ने द्युम्नेन जागृवे	२०५
अग्ने भूरीणि तव	१८५
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे	१२०
अग्ने यत् ते दिवि	१९४
अग्ने विश्वानि वार्या	१३१
अग्ने विश्वेभिरग्निभिः	२०६
अग्ने वीहि पुरोळाश	२३९
अग्ने वृधान आहुतिं	२४२
अग्ने शकेम ते वयं	२२४
अग्ने सहस्व पृतना	२०३
अग्निं यन्तुरमप्तुरम्	२३२
अग्निं वर्धन्तु नो गिरो	११९
अग्निं सुदीतिं सुदृशं	१७१
अग्निं सुम्नाय दधिरे	२८
अग्निं सूनुं सनश्रुतं	१२६
अग्निं होतारं प्र वृणे	१७८
अग्निः सनोति वीर्याणि	२०९
अच्छा विवक्मि रोदसी	५६५
अच्छा वो देवीमुषसं	५९७
अच्छा सिन्धुं मातृतमां	३२२
अच्छिद्रा शर्म जरितः	१५२
अजीजनन्नमृतं मर्त्यासो	२५५
अञ्जन्ति त्वामध्वरे	९४
अतारिषुर्भरता गव्यवः	३३१
अति तृष्टं ववक्षिथा	१०७
अदाभ्यः पुरएता	१२७
अदेदिष्ट वृत्रहा	३०१
अद्रोघ सत्यं तव तत्	३११
अधाय्यग्निर्मानुषीषु विक्षु	६३
अध्वर्युभिः पञ्चभिः	८९
अनमीवास इळया	५७१
अनु कृष्णे वसुधिती	२९७
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म	४०
अन्यस्या वत्सं रिहती	५४४
अपश्चिदेष विभ्वो	२९६
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां	१३
अपाः सोममस्तमिन्द्र	४९१
अप्तूर्ये मरुत आपिः	४७४
अभि जैत्रीरसचन्त	२८४
अभि तष्टेव दीधया	३७७
अभि द्युम्नानि वनिन	४०२
अभि प्रयांसि वाहसा	१२९
अभि यो महिना दिवं	५८३
अभिव्ययस्व खदिरस्य	५०४
अमीक आसां पदवेः	५५७
अमन्थिष्टां भारता	१९९
अमन्निन्द्र श्रवो बृहद्	३७५
अमित्रायुधो मरुतामिव	२५७
अयमग्निः सुवीर्यस्य	१६२
अयमस्मान् वनस्पति	५०५
अयमु वां पुरुतमो	६०१

अयामि ते नमउक्तिं १४९
अयं ते अस्तु हर्यतः ४३१
अयं ते योनिर्ऋत्वियो २५२
अयं मित्रो नमस्यः ५८०
अयं सो अग्निर्यस्मिन् १९३
अरण्योर्निहितो जातवेदा २४४
अर्यमा णो अदितिः ५२७
अर्वाचीनं सु ते मन ३६७
अर्वाञ्च त्वा सुखे रथे ४१३
अर्वावतो न आ गहि ३६६, ४०३
अलातृणो वल इन्द्र २६८
अवर्धयन् त्सुभगं सप्त ४
अव स्यूमेव चिन्वती ५९६
अश्विना परि वामिषः ५७५
अश्विना मधुषुत्तमो ५७६
अश्विना वायुना युवं ५७४
अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः २१५
असूत पूर्वो वृषभो ३८१
अस्माकमायुर्वर्धयन् ६१४
अस्तीदमधिमन्थनम् २४३
अस्मे तदिन्द्रावरुणा ६०२
अस्मे प्र यन्धि मघवन् ३६४
अहन्नहिं परिशयानं ३१३
अषाळ्हो अग्ने वृषभो १५८
आकरे वसोर्जरिता ४६८
आक्षित् पूर्वास्वपरा ५३६
आ च त्वामेता वृषणा ४२६
आ जुहोत स्वध्वरं ११२
आतिष्ठन्तं परि विश्वे ३८०
आ तू न इन्द्र मद्र्यक् ४०५
आ तू भर माकिरेतत् ३६३
आ ते कारो शृणवामा ३२९
आ ते सपर्यू जवसे ४६२
आ त्वा बृहन्तो हरयो ४२८
आदित्या रुद्रा वसवः १०१
आ देवानामभवः १७
आ धेनवो धुनयन्तां ५५७
आ नस्तुजं रयिं ४३९
आ नो गहि सख्येभिः १९
आ नो गोत्रा दर्दृहि २७५
आ नो भर भगमिन्द्र २७७
आ नो मित्रावरुणा ६१५
आ नो यज्ञं नमोवृधं ४२५
आपूर्णो अस्य कलशः ३१७
आ भन्दमाने उपसा ५५
आ भारती भारतीभिः ५७
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो २७
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिः ४३६
आ मन्येथामा गतं ५७१
आ याहि पूर्वीरति ४२४
आ याह्यग्ने समिधानो ६०
आ याह्यर्वाङुप वन्धुरे० ४२१
आ योनिमग्निर्घृतवन्तम् ६७
आ रोदसी अपृणदा ३०
आ रोदसी अपृणा ७३
आ सोमरोहत् सुयमा ८५
आ होता मन्द्रो विदथानि १८४
इच्छन्ति त्वा सोम्यासः २५९
इदं ह्यन्वोजसा ४७१
इध्मेनाग्न इच्छमानो १७५
इनोत पृच्छ जनिमा ३७८
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि २४२
इन्द्र ऋभुभिर्वाजवद्भिः ५९०
इन्द्र ऋभिर्वाजिभिः ५९२
इन्द्र ऋभुमान् वाजवान् ५९१
इन्द्र क्रतुविदं सुतं ३९७
इन्द्रक वृषभ ३९६
इन्द्र दृह्य यामकोशा २७३
इन्द्र पिब वृषधूतस्य ४२९
इन्द्र पिब स्वधया चित् ३५३
इन्द्र प्र णो धितावानं ३९८
इन्द्रमग्निं कविच्छदा १३४
इन्द्र मरुत्व इह ४७२
इन्द्रमित्था गिरो ४१६
इन्द्र सोमं सोमपते ३०३
इन्द्र सोमाः सुता इमे ३११
इन्द्र सोमाः सुता ४१८
इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ ३३७
इन्द्रस्य कर्म सुकृता ३१०
इन्द्रस्य सख्यमृभवः ५८८
इन्द्राग्नी अपसस्परि १३८
इन्द्राग्नी आ गतं सुतं १३२
इन्द्राग्नी जरितुः सचा १३३
इन्द्राग्नी तविषाणि १३९
इन्द्राग्नी नवतिं पुरो १३७
इन्द्राग्नी रोचना दिवः १४०
इन्द्राय सोमाः प्रदिवो ३५६
इन्द्र मतिर्हृद आ ३८७
इन्द्र वृत्राय हन्तवे ३७०
इन्द्रः सुशिप्रो मघवा २६१
इन्द्रं सोमस्य पीतये ४१७
इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासं ३३३
इन्द्रः सु पूषा वृषणा ५६३
इन्द्रः स्वर्षा जनयन् ३३९
इन्द्रः स्वाहा पिबतु ४११
इन्द्रा पर्वता बृहता रथेन ४८६
इन्द्रियाणि शतक्रतो ३७४
इन्द्रेण याथ सरथं ५८९
इन्द्रेषिते प्रसवं भिक्षमाणे ३२१
इन्द्रो अस्माँ अरदद् ३९५
इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो ५०६
इन्द्रो मधु संभृतम् ३९२
इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः पत्यमान ५९४
इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः ३३५
इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं ४३५
इम इन्द्र भरतस्य ५०९
इममिन्द्र गवाशिरं ४२०
इमं कामं मन्दया २७८, ४६४
इमं नरः पर्वतास्तुभ्यं ३५१
इमं नरो मरुतः १६३
इमं नो यज्ञममृतेषु १८८

इमं महे विदथ्याय ५१०
इमं स्तोमं रोदसी प्र ५१९
इमा उ वां भृमयो ६००
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः ४०७
इमामू षु प्रभृतिं ३५५
इमां च नः पृथिवीं ५७२
इमे भोजा अङ्गिरसो ४९२
इयं ते पूषन्नाघृणे ६०६
इहेह वो मनसा ५२६
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं २३,
७१, ८२, ९३, १६१, १९७, २०२
इळायास्त्वा पदे वयं २४६
ईयिवांसमति स्रिधः १०८
ईळन्यो नमस्यस्तिरः २३४
ईळे अग्निं विपश्चितं २२३
ईळे च त्वा यजमानो १५
उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा ४५४
उच्छ्रयस्व वनस्पते ९६
उच्छोचिषा सहसस्पुत्र १७६
उत ऋतुभिर्ऋतुपाः ४४८
उत नो ब्रह्मन्नविष १४६
उताभये पुरुहूत २६३
उतो पितृभ्यां प्रविदानु ८८
उतो हि वां पूर्व्या ५१३
तत्तानायामव भरा २४५
उदस्तम्भीत् समिधा ७०
उदु ष्टुतः समिधा ६१
उद् व ऊर्मिः शम्या हन्तु ३३२
उद् वह रक्षः सहमूलम् २७५
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीते १६
उप नः सुतमा गहि ४१५
उप प्रेत कुशिकाः ४९६
उपस्थाय मातरम् ४५३
उपाजिरा पुरुहूताय ३४५
उपो नयस्व वृषणा ३४६
उरुशंसा नमोवृधा ६१६
उरुं गभीरं जनुषा ४४४
उरौ महां अनिबाधे ११
उरौ वा ये अन्तरिक्षे ७९
उषः प्रतीची भुवनानि ५९५
उषसः पूर्वा अध यद् ५३२
उषो देव्यमर्त्या वि ५९४
उषो वाजेन वाजिनि ५९३
ऊर्जो नपातमध्वरे २३३
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे ५३
ऋतस्य बुध्न उषसां ५९९
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिः ७७
ऋतावरी दिवो अर्कैः ५९८
ऋतावा यस्य रोदसी १४२
ऋतावानं यज्ञियं ३६
ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु ६६
एको द्वे वसुमती २६९
एतद् वचो जरितः ३२७
एता ते अग्ने जनिमा २०
एना वयं पयसा ३२३
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् ८०
ओजिष्ठं ते मध्यतो १९२
ओ षु स्वसारः कारवे ३२८
कविर्नृचक्षा अभि षी ५१५
कायमानो वना त्वं १०६
किं ते कृण्वन्ति ४९९
कुविन्मा गोपां करसे ४२७
कृणोत धूमं वृषणं २५१
कृधि रत्नं सुसनितः १७७
केतुं यज्ञानां विदथस्य ४१
को अद्धा वेद क ५१४
क्रत्वा दक्षस्य तरुषो २६
गम्भीरां उदधींरिव ४३८
गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र ३०४
गिर्वणः पाहि नः सुतं ४०१
गृणाना जमदग्निना ६१७
गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे ४६३
घृतवन्तः पावक ते १८९
चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि १६५
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं ४३
चर्षणीधृतं मघवानम् ४६६
जज्ञानो हरितो वृषा ४३४
जन्मञ्जन्मन् निहितो २१
जातो अग्नी रोचते २४९
जातो जायते सुदिनत्वे ९८
जानन्ति वृष्णो अरुषस्य ८७
जायेदस्तं मघवन् ४८९
ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी ३९४
ज्योतिर्वृणीत तमसो ३९३
त इन्न्वस्य मधुमद् ३०६
तत् सवितुर्वरेण्यं ६०९
तद् भद्रं तव दंसना १११
तदिन्न्वस्य वृषभस्य ३८३
तदिन्न्वस्य सवितुः ३८४
तनूनपादुच्यते गर्भ २५३
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु ५८
तवो ष्वग्ने अन्तरां १७४
तमङ्गिरस्वन्नमसा २९९
तमिन्द्र मदमा गहि ४१५
तवायं सोमस्त्वमेहि ३४९
तं त्वा मर्ता अगृभ्णत ११०
तं त्वा विप्रा विपन्यवो १२२
तं सबाधो यतस्रुच २२७
तं शुभ्रमग्निमवसे २१४
तां जुषस्व गिरं मम ६०७
तिरः पुरू चिदश्विना ५०२
तिष्ठा सु कं मघवन् ४८७
तिष्ठा हरी रथ आ ३४४
तिस्रो यह्वस्य समिधः ३२
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये ४२१
तुभ्यं दक्ष कविक्रतो १५४
तुभ्यं ब्रह्माणि गिर ४७१
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो- १९१
तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतो १९०
तृतीये धानाः सवने ४८३
तोशा वृत्रहणा हुवे १३५
त्रिपाजस्यो वृषभो ५५६

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्	२२०
त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि	५५२
त्रिरा दिवः सविता	५६०
त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि	५६१
त्रीणि राजाना विदथे	३८२
त्रीणि शता त्री सहस्राणि	११३
त्रीण्यायूंषि तव	१७०
त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः	५५८
त्वद्धि पुत्र सहसो	१९३
त्वं नृचक्षा वृषभानु	१५७
त्व नो अस्या उषसो	१५६
त्वमपो यद्ध वृत्रं	३०८
त्वं सद्यो अपिबो जात	३१२
त्वं हि ष्मा च्यावयन्	२६२
त्वामग्ने मनीषिणः	११४
त्वां यज्ञेष्वृत्विजम्	११५
त्वां सुतस्य पीतये	४२२
दधिक्रामग्निमुषसं च	१८७
दधिष्वा जठरे सुतं	४००
दश क्षिपः पूर्व्यं	२००
दिदृक्षन्त उषसो	२७१
दिवक्षसो धेनवो	८४
दिवश्चिदा ते रुचयन्त	७८
दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना	३८८
दिशः सूर्यो न मिनाति	२७०
दीदिवांसमपूर्व्यं	१४९
देवं नरः सवितारं	६११
देवस्त्वष्टा सविता	५५०
देवस्य सवितुर्वयं	६१०
देवानां दूतः पुरुध	५२८
दैव्या होतारा प्रथमा	५६, ९०
द्यामिन्द्रो हरिधायसं	४२३
द्युम्नेषु पृतनाज्ये	३७२
द्यौश्च त्वा पृथिवी	७४
द्रवतां त उषसा	१५०
द्विमाता होता विदथेषु	५३८
धर्ता दिवो रजसः	४५९
धानावन्तं करम्भिणं	४७८
धिया चक्रे वरेण्यो	२३०
धेनुः प्रत्नस्य काम्यं	५६८
नकिरेषां निन्दिता	२९०
न जामये तान्वो	२८२
न ता मिनन्ति मायिनो	५५४
न ते दूरे परमा चिद्	२६०
न त्वा गभीरः पुरुहूत	३१८
नमस्यत हव्यदातिं	३१
न सायकस्य चिकिते	५०८
नानाचक्राते यम्या	५४२
नामानि ते शतक्रतो	३६८
नासत्या मे पितरा	५२५
नि गव्यता मनसा	२८९
नि त्वा दधे वर	२०१
नि त्वा दधे वरेण्यं	२३१
नि दुरोणे अमृतो	१८
निर्मथितः सुधित आ	१९८
नि वेवेति पलितो	५४०
निष्षिध्वरीस्त ओषधीः	५५३
नि षीमिदत्र गुह्या	३७९
वि सामनामिषिरामिन्द्र	२६७
नू नो रास्व सहस्रवत्	१४७
नृणामु त्वा नृतमं	४६९
पतिर्भव वृत्रहन् सूनृतानां	२९८
पदेव निहिते दस्मे	५४६
पद्या वस्ते पुरुरूपा	५४५
परशुं चिद् वि तपति	५०७
परा याहि मघवन्	४९०
परि विश्वानि सुधिता	१३०
पाति प्रियं रिपो अग्रं	६५
पावकशोचे तव हि	२९
पिता यज्ञानामसुरो	४२
पितुश्च गर्भं जनितुश्च	१०
पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद	९
पित्रे चिच्चक्रुः सदनं	२९२
पिबा वर्धस्व तव घा	३५७
पुराणमोकः सख्यं शिवं	५७३
पुरीष्यासो अग्नयः	१९६
पुरुष्टुतस्य धामभिः	३६१
पुरोळा अग्ने पचतः	२३८
पुरोळाशं च नो घसो	४८०
पुरोळाशं पचत्यं	४७९
पुरोळाशं सनश्रुत	४८१
पूर्वीरस्य निष्षिधो	४७०
पूषण्वते ते चकृमा	४८४
पृक्षप्रयजो द्रविणः	९२
पृथुपाजा अमर्त्यो	२२६
प्र करवो मनना	७२
प्रति धाना भरत	४८५
प्र ते अग्ने हविष्मतीम्	१७९
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः	४७७
प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानो	६१
प्र दीधितिर्विश्ववारा	५२
प्र पर्वतानामुशतो	३२०
प्र पीपय वृषभं	१६०
प्र मात्राभी रिरिचे	४४३
प्र मे विविक्वां अविदन्	५६२
प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य	८३
प्र यत् सिन्धवः प्रसवं	३६०
प्र यन्तु वाजास्तविषीभिः	२१६
प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं	३२६
प्र वामर्चन्त्युक्थिनो	१३६
प्र वो देवायाग्नये	१४१
प्र वो वाजा अभि द्यवो	२२२
प्र सप्तहोता सनकात्	२५६
प्र स मित्र मर्तो अस्तु	५७८
प्र सू त इन्द्र प्रवता	२६४
प्र होत्रे पूर्व्यं वचो	११८
प्राञ्च यज्ञं चकृम	२
प्रद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिः	६२
बभ्राणः सूनो सहसो	८
बलं धेहि तनूषु नो	५०३
बृहन्त इद् भानवो	१४

बृहस्पते जुषस्व नो ६०३
ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा ३४७
भवा नो अग्ने सुमना १७३
भूरीणि हि त्वे दधिरे १८१
मखस्य ते तविषस्य ३३४
मतय: सोमपामुरुं ४०९
मनुष्वदिन्द्र सवनं ३०७
मन्थता नर: कविं २४७
मन्द्रं होतारं शुचि ३८
मयो दधे मेधिर: ३
मरुत्वन्तं वृषभं ४५०
मरुत्वां इन्द्र वृषभो ४४६
महत् तद् व: कवय: ५२८
महां अमत्रो वृजने ३५८
महां असि महिष ४४२
महां आदित्यो नमसा ५८१
महां उग्रो वावृधे ३५९
महां ऋषिर्देवजा ४९४
महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं २९५
महि ज्योतिर्निहितं २७२
महि त्वाष्ट्रमूर्जयन्ती. ८६
महान् त्सधस्थे ध्रुव ७५
महि महे दिवे अर्चा ५११
मही यदि धिषणा २८२
मही समैरच्चम्वा समीची ५५१
महो महानि पनयन्ति ३३८
मह्या ते सख्यं वश्मि २९४
माता च यत्र दुहिता ५४३
मा ते हरी वृषणा ३४८
माध्यंदिनस्य सवनस्य ४८२
माध्यंदिने सवने २४०
मा नो अग्नेऽमतये १६६
मारे अस्मद् वि मुमुचो ४१२
मित्रश्च तुभ्यं वरुणः १५१
मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो ५८२
मित्राय पञ्च येमिरे ५८४
मित्रो अग्निर्भवति यत् ६४
मित्रो जनान् यातयति ५७७

मिश्रो देवेष्वायुषु ५८५
मिह्: पावकाः प्रतता ३००
मो षू णो अत्रजुहुरन्त ५३३
य इमे रोदसी उभे ४९७
यजाम इन्नमसा वृद्धम् ३०९
यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे ३१५
यज्ञो हि त इन्द्र ३१४
यज्ञ सहसावन् २२
यज्जायथास्तदहरस्य ४५२
यत् त्वा होतारमनजन् १८२
यथायजो होत्रमग्ने १६९
यदङ्ग त्वां भरता· ३३०
यदद्य त्वा प्रयति २५८
यदन्तरा परावतम् ४०४
यदन्यास वृषभो रोरवीति ५०८
यदी मन्थन्ति बाहुभि. २४८
यमा चिदत्र यमसूरसूत ३८९
यस्ते अनु स्वधामसत् ४७६
यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने १७२
यस्मै धायुरदधा मर्त्याय २६५
या जामयो वृष्ण इच्छन्ति ५६४
या ते अग्ने पर्वतस्येव ५६७
या ते जिह्वा मधुमती ५६६
याँ आभजो मरुत इन्द्र ३५२
यान् वो नरा देवयन्तो ९९
याभि: शचीभिश्चमसाँ ५८७
युधेन्द्रो मह्नावरिव: ३३९
युष्मस्य ते वृषभस्य ४४१
युवा सुवासाः परिवीत ९७
युवोर्ऋतं रोदसी सत्यम् ५१२
युवं प्रत्नस्य साधथो ३८५
ये ते शुष्मं ते तविषीम् ३०५
ये त्वाहिहत्ये मघवन् ४४९
ये वृकणासो अधि क्षमि १००
यो विश्वाभि विपश्यति ६०८
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते ५१
यं नु नकि: पृतनासु ४५७
य सोममिन्द्र पृथिवी ४४५
रमध्व मे वचसे ३२४

रारन्धि सवनेषु ण ४०८
रूपं रूपं मघवा ४९३
वनस्पतेऽव सृजोप देवान् ५९
वनस्पते शतवल्शो वि १०४
वयमिन्द्र त्वायवो ४११
वयं ते अद्य ररिमा १५२
वव्राजा सीमनदतीरदब्धा ६
वाजी वाजेषु धीयते २२९
वाजेषु सासहिर्भव ३७१
वार्त्रहत्याय शवसे ३६६
विदद् यदी सरमा २८६
विद्मा हि त्वा धनंजयं ४१९
विद्युद्रथा मरुत ५२२
वि पाजसा पृथुना १५५
विभावा देव: सुरण: ४७
वि मे पुरुत्रा पतयन्ति ५३४
विवेप यन्मा धिषणा ३१६
विशां कविं विश्पतिं ३३
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः ४६
विश्वामित्रा अरासत ४९८
विश्वेदेते जनिमा सं ५१७
वष्णु स्तोमास: पुरुदस्मं ५२३
विष्णुर्गोपा: परमं पाति ५४१
वीरस्य नु स्वश्व्यं ५४९
वीळौ सतीरभि धीरा २८५
वृत्रखादो वलरुज: ४३७
वृषणं त्वा वयं वृषन् २३६
वृषभं चर्षणीनां ६०५
वृषायन्ते महे अत्याय ९१
वृषो अग्नि: समिध्यसे २३५
वैश्वानर तव धामान्या ४८
वैश्वानर: प्रत्नथा ३५
वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो ४९
वैश्वानरं मनसाग्नि २१३
वैश्वानराय धिषणां २४
वैश्वानराय पृथुपाजसे ३९
व्रता ते अग्ने महतो ७६
व्रातं व्रातं गणं गणं २१८
शग्धि वाजस्य सुभग १६७

×

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं ४६७
शतधारमुत्समक्षीयमाणं २२१
शयुः परस्तादध नु ५३७
शासद् वह्निर्दुहितुः २८१
शुक्रेभिरङ्गै रज ५
शुचिं न यामन्निषिरं ३७
शुचिमर्कैर्बृहस्पतिम् ६०४
शुनं हुवेम मघवानम् २८०, ३०२, ३१९, ३४३, ३५४, ३६५, ३८६, ३९५, ४३०, ४५४, ४६०, ४६५
शुष्मिन्तमं न ऊतये ३७३
शूरस्येव युध्यतो ५३९
शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं १०३
शृण्वन्तु नो वृषणः ५२९
शंसा महामिन्द्रं ४५६
शंसावाध्वर्यो प्रति मे ४८८
षड्भारां एको अचरन् ५५५
स केतुरध्वराणाम् ११७
सखा ह यत्र सखिभिः ३९१
सखायस्त्वा ववृमहे १०५
स घा यस्ते ददाशति ११६
स जातेभिर्वृत्रहा सेदु २९१
स जिन्वते जठरेषु ४३
सजोषा इन्द्र सगणो ४४७
सतःसतः प्रतिमानं २८८
स तेजीयसा मनसा १८०
सत्ते होता न ऋत्वियः ४०६
सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ३५०
स त्वं नो रायः १६४
सदा सुगः पितुमाँ ५३०
सद्यो जात ओषधीभिः ६८
सद्यो ह जातो वृषभः ४५१
स नः पावक दीदिहि १२१
स नः शर्माणि वीतये १४४
सना पुराणमध्येम्यारात् ५१८
सप्त होत्राणि मनसा ५४
स मनस्वा ह्यन्धसो ५१०
समित्समित् सुमना ५०
समिद्धस्य श्रयमाणः ९५
समिध्यमानः प्रथमानु १६८
समिध्यमानो अध्वरे २२५
समुद्रेण सिन्धवो ३६१
समानो राजा विभृतः ५३५
समान्या वियुते दूरे ५१६
स यन्ता विप्र एषां १४३
स रोचयज्जनुषा २५
स वावशान इह ४७३
ससर्परीरभरन् तूयं ५०१
ससर्परीरमतिं बाधमाना ५००
ससानात्यां उत सूर्यं ३४१
ससृवांसमिव त्मना १०९
सहृदानुं पुरुहूत क्षियन्तं २६६
स हव्यवाळमर्त्य १२४
सहावां पृत्सु तरणिः ४५८
स होता यस्य रोदसी ८१
साह्वान् विश्वा अभियुजः १२८
सीद होतः स्व उ लोके २५०
सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ५२१
सुनिर्मथा निर्मथितः २५४
सुयुग्भिरश्वैः सुवृता ५७०
सुयुग् वहन्ति प्रति वां २६९
सोमस्य मा तवसं १
सोमा'जिगाति ६१२
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे ६१३
स्तीर्णं ते बर्हिः सुत ३५०
स्तीर्णा अस्य संहतो ७
स्थिरौ गावौ भवतां ५०२
स्वदस्व हव्या समिषो ५३१
स्वयुरिन्द्र स्वराळसि ४४०
स्वस्तये वाजिभिश्च २७६
सं घोषः शृण्वेऽवमैः २७४
संपश्यमाना अमदन् २९०
हर्यन्नुषसमर्चयः ४३२
हिरण्यपाणिः सविता ५१०
हंसाइव कृणुथ ४९५
हंसा इव श्रेणिशो १०२
होता देवो अमर्त्यः २२८
ह्रदा इव कुक्षयः ३६२

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

[१]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— अग्निः, २-५ अग्नीवरुणौ वा । छन्दः— त्रिष्टुप्, १ अष्टिः
२ अतिजगती; ३ धृतिः]

१ त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवो देवासो देवमरतिं न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।
अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥ १ ॥

२ स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम् ।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम् ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ— [१] हे (अग्ने) अग्ने! (समन्यवः देवासः) उत्साहशील देवगण (अरतिं देवं त्वां सदमित् हि न्येरिरे) नष्ट न होनेवाले और तेजस्वी तुझको सदैव प्रेरित करते हैं। तथा (क्रत्वा न्येरिरे) अपने पुरुषार्थसे तुझे प्रेरित करते हैं। हे (यजत) यजनीय अग्ने (अमर्त्यं आदेवं प्रचेतसं) अमर, सर्वत्र द्युतिमान् और अत्यन्त ज्ञानी तुझे (मर्त्येषु आदेवं जनत) मनुष्योंके मध्यमें अच्छी तरह तेजस्वी होनेतक प्रज्वलित करते हैं निश्चयसे (विश्वं प्रचेतसं आदेवं जनत) सब कर्मोंके जाननेवाले तुझे अत्यन्त तेजस्वी होनेतक प्रज्वलित करते हैं ॥ १ ॥

[२] हे (अग्ने) अग्नि देव! (सः) वह तू (यज्ञवनसं) यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाले तथा (यज्ञवनसं) यज्ञके द्वारा सत्कृत होनेवाले (ऋतावानं) सत्यशील (आदित्यं) जलोंको ग्रहण करनेवाले (चर्षणीधृतं) प्राणियोंके आधार तथा (चर्षणीधृतं) प्राणियोंके संरक्षक (राजानं) तेजस्वी (ज्येष्ठं भ्रातरं) अपने श्रेष्ठ भाई (वरुणं) वरुणको (सुमती) उत्तम बुद्धिसे (देवान् अच्छ आ ववृत्स्व) देवोंकी तरफ प्रेरित कर ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! सब उत्साहशील देवगण तुझे मनुष्योंके बीचमें अपने पुरुषार्थसे अच्छी तरह प्रकाशित होनेतक प्रज्वलित करते हैं और तुझे प्रेरित करते हैं ॥ १ ॥

हे अग्निदेव! यज्ञमें सत्कृत होनेके कारण यज्ञमें आनेकी इच्छा करनेवाले सत्यशील, जलोंको ग्रहण करनेवाले प्राणियोंके आधार एवं संरक्षक तेजस्वी वरुणको विद्वानों और ज्ञानियोंकी तरफ प्रेरित कर ॥ २ ॥

३ सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या ।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु ।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि ॥ ३ ॥
४ त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ४ ॥
५ स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि ॥ ५ ॥

अर्थ— [३] हे (दस्म सखे) सुन्दर मित्र अग्ने ! (रंह्या रथ्या आशुं चक्रं इव) वेगवान् घोडे जिस प्रकार शीघ्रगामी रथको प्रेरित करते हैं अथवा (रंह्या न) वेगवान् घोडे जिस प्रकार वीरके द्वारा प्रेरित होते हैं, उसी प्रकार अपने (सखायं) मित्र वरुणको (अभि आ ववृत्स्व) हमारी ओर प्रेरित कर ! हे (अग्ने) अग्ने ! तू (वरुणे विश्वभानुषु मरुत्सु सचा) वरुण और सर्वत्र प्रकाशित होनेवाले मरुतोंके साथ (मृळीकं विदः) सुखकारी सोमको प्राप्त कर । हे (शुशुचान) तेजस्वी अग्ने ! तू (तोकाय तुजे) पुत्र और पौत्रोंके लिए (शं कृधि) कल्याण और सुख प्रदान कर तथा हे (दस्म) सुन्दर दर्शनीय अग्ने ! (अस्मभ्यं शं कृधि) हमारे लिए सुख प्रदान कर ॥ ३ ॥

[४] हे (अग्ने) प्रकाशक देव ! (विद्वान् त्वं) ज्ञानवान् तू (नः) हमारे ऊपर (वरुणस्य देवस्य) वरुणदेवका जो (हेळः) क्रोध है, उसे (अव यासिसीष्ठाः) हमारे ऊपरसे दूर कर । (यजिष्ठः) अत्यन्त पूज्य (वह्नितमः) हवियोंको ले जानेमें अत्यन्त कुशल तथा (शोशुचानः) अत्यन्त तेजस्वी तू (अस्मत्) हमसे (विश्वा द्वेषांसि) सम्पूर्ण द्वेष भावनाओंको (प्र मुमुग्धि) दूर कर ॥ ४ ॥

[५] हे (अग्ने) अग्ने ! (सः त्वं) वह तू (ऊती) अपनी रक्षाके साधनोंसे (नः अवमः) हमारी उत्तमतासे रक्षा करनेवाला होकर (अस्या उषसः व्युष्टौ) इस उषाके प्रकाशित होनेपर (नेदिष्ठः भव) हमारे अत्यन्त समीप आवो । (रराणः) आनन्दित होकर (नः वरुणं अव यक्ष्व) हमारे ऊपर वरुणके क्रोधको नष्ट कर, (मृळीकं वीहि) सुखकारी सोमकी अभिलाषा कर तथा (सुहवः) उत्तम रीतिसे बुलाया जाकर (नः एधि) हमें बढा–समृद्ध कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! जिस प्रकार वेगवान् घोडे शीघ्रगामी रथको प्रेरित करते हैं और वे घोडे स्वयं भी प्रेरित होते हैं, उसी प्रकार तू वरुणको हमारी ओर प्रेरित कर, तथा वरुण और अत्यन्त तेजस्वी मरुतोंके साथ आकर सुखकारी सोमको प्राप्त कर तथा हमारे द्वारा सुख प्राप्त करके हमारे पुत्र पौत्र तथा हमारे लिए भी सुख प्रदान कर ॥ ३ ॥

हे ज्ञानवान् अग्ने ! हमारे किसी अपराधके कारण यदि वरुण देवका क्रोध हम पर हो तो उस क्रोधको तू दूर कर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ तू हमारे अन्दरसे सब द्वेष भावनाओंको दूर कर ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! अपनी रक्षाके साधनोंसे हमारी अच्छी तरह रक्षा कर और प्रतिदिन प्रातःकाल हमारे समीप प्रज्वलित हो अर्थात् हम प्रतिदिन यज्ञ करें । हमारे यज्ञोंमें तू सुखकारी हवियोंको प्राप्त कर तथा हमारे ऊपर वरुण देवका जो क्रोध हो उसे दूर करके हमें समृद्ध कर और बढा ॥ ५ ॥

६ अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग् देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥ ६ ॥
७ त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्यो रोरुचानः ॥ ७ ॥
८ स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥ ८ ॥
९ स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन् देवो मर्तस्य सधनित्वमाप ॥ ९ ॥

अर्थ— [६] (इव) जैसे (देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं) उत्तम गौपालक पुरुषकी गौका दूध और घी शुद्ध और तेजस्वी होता है तथा (धेनोः मंहना) गायका दान श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार (सुभगस्य देवस्य श्रेष्ठा संदृक्) उत्तम ऐश्वर्यवाले अग्निका प्रशंसनीय तेज (मर्त्येषु चित्रतमा स्पार्हा) मनुष्योंमें अत्यन्त पूजनीय और स्पृहणीय होता है ॥ ६ ॥

१ देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं— उत्तम गौपालककी गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है । अतः गायका उत्तम रीतिसे पालन करना चाहिए ।

२ धेनोः मंहना— गायका दान भी श्रेष्ठ होता है ।

[७] (अस्य देवस्य अग्नेः) इस दिव्य गुणवाले अग्निके (ता त्रिः परमा) तीन उत्तम (सत्या, जनिमानि, स्पार्हा सन्ति) यथार्थभूत जन्म स्पृहणीय हैं (अनन्ते अन्त परिवीतः) अनन्त आकाशके मध्यमें व्याप्त (शुचिः शुक्रः रोरुचानः अर्यः आगात्) सबका शोधक दीप्तियुक्त अत्यधिक प्रकाशमान् स्वामी अग्नि हमारे पास आवे ॥ ७ ॥

१ ता त्रिः जनिमानि— वे तीन जन्म पृथ्वी पर अग्निके रूपमें, अन्तरिक्षमें विद्युत्के रूपमें और द्युलोकमें सूर्यके रूपमें अग्निके तीन जन्म ।

[८] (दूतः होता हिरण्यरथः रंसुजिह्वः सः) दूत, देवोंका बुलानेवाला, सुवर्ण रथवाला, सुन्दर ज्वालावाला वह अग्नि (विश्वेत् सद्म अभि वष्टि) सभी उत्तम घरोंमें जानेकी इच्छा करता है । तथा (रोहित् अश्वः, वपुष्यः विभावा, पितुमती संसत् इव सदा रण्वः) रोहित वर्णके अश्वोंवाला, रूपवान्, कान्तियुक्त वह अन्नसे सम्पन्न घरके समान सदा सुखकर है ॥ ८ ॥

[९] (यज्ञबन्धुः सः) यज्ञमें सबका भाई वह अग्नि (मनुष्यः चेतयत्) मनुष्योंको ज्ञानयुक्त करता है अध्वर्युगण (मह्या रशनया तं प्र नयन्ति) बडी रज्जु द्वारा उसको उत्पन्न करते हैं । (सः अस्य मर्तस्य दुर्यासु साधन् क्षेति) वह इस यजमानके घरोंमें इसके कार्योंको करता हुआ निवास करता है । तथा (देवः सधनित्वं आप) द्योतमान् अग्नि अपने भक्तके पास प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

१ यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्— यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है ।

भावार्थ— जिस प्रकार उत्तम रीतिसे पाली हुई गायका दूध और घी उत्तम तेजका देनेवाला होता है और ऐसी गायका दान भी मनुष्योंमें प्रशंसनीय होता है, उसी प्रकार यह अग्नि भी तेजका देनेवाला होनेसे मनुष्योंमें बहुत प्रशंसनीय है ॥ ६ ॥

इस अग्निके तीनों जन्म बहुत उत्तम हैं । इस तीन जन्मोंवाला अनन्त आकाशमें व्याप्त यह अग्नि तेजस्वी शुद्ध होकर हमारे पास आवे ॥ ७ ॥

देवोंका दूत, देवोंको बुलानेवाला उत्तम तेजस्वी ज्वालाओंवाला वह, अग्नि उत्तम घरोंमें जानेकी इच्छा करता है और वह अन्न सम्पन्न घरकी तरह सबके लिए सुखकर है ॥ ८ ॥

×

१० स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन् द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥ १० ॥

११ स जायत प्रथमः पस्त्यासु महो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ।
अपादशीर्षा गुहमानो अन्ता ऽऽयोयुवानो वृषभस्य नीळे ॥ ११ ॥

१२ प्र शर्ध आर्त प्रथमं विपन्यॉं ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे ।
स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे ॥ १२ ॥

अर्थ— [१०] (देवभक्तं यत् रत्नं अस्य) देवोंके द्वारा भजनीय जो उत्कृष्ट ऐश्वर्य इस अग्निका है उस श्रेष्ठ ऐश्वर्यको प्रजानन् स अग्निः ! अच्छी प्रकारसे जानता हुआ वह अग्नि (नः अच्छ तु नयतु) हमें शीघ्र प्राप्त करावे । (अमृताः विश्वे धिया यत् अकृण्वन्) मरण रहित सब देवताओंने अपनी बुद्धिसे जिस अग्निको उत्पन्न किया उस (सत्यं) अविनाशी अग्निको पिता जनिता द्यौः) सबको उत्पन्न करनेवाले द्युलोक (उक्षन्) घृतादि आहुतियोंसे सींचते हैं ॥ १० ॥

[११] (सः प्रथमः) वह अग्नि सबसे प्रथम (पस्त्यासु) मनुष्योंके घरोंमें उत्पन्न हुआ, (अस्य महः रजसः बुध्ने) फिर इस महान् अन्तरिक्षमें तत्पश्चात् अपने मूल स्थान (योनौ जायत) पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । यह अग्नि (अपात् अशीर्षा) पादरहित मस्तकरहित है । यह (अन्ता गुहमानः वृषभस्य नीळे आयोयुवानः) अन्दर गुप्त होकर जलवर्षी मेघमें अपनेको एक कर देता है ॥ ११ ॥

[१२] (ऋतस्य योना वृषभस्य नीळे) जलके मूल स्थान अन्तरिक्षमें जल सिंचन करनेवाले मेघके स्थानमें स्थित अग्निने (विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त) स्तुतिके द्वारा सबसे श्रेष्ठ बलको प्राप्त किया ! (वृष्णे) अपनी कामनाओंकी तृप्तिके लिए (प्रियासः सप्त) प्रेम करनेवाले सात होताने (स्पार्हः, युवा, वपुष्यः, विभावा) स्पृहणीय, तरुण, उत्तम शरीरवाले तथा तेजस्वी अग्निको (अजनयन्त) उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

१ वृषभस्य विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त— उस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है और—

२ ऋतस्य योना— सत्यके स्थानमें जाकर विराजता है ।

भावार्थ— यज्ञसे प्रेम करनेवाला यह अग्नि मनुष्योंको ज्ञानसे युक्त करता है और वे मनुष्य इसे रस्सीसे मथकर उत्पन्न करते हैं । उत्पन्न होकर वह मनुष्योंके घरोंमें रहता है और उनके साथ मैत्री करता है ॥ ९ ॥

अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्यको अग्नि जानता हुआ हमें प्रदान करे । अमर देवों द्वारा उत्पन्न किया गया वह अग्नि द्युलोक द्वारा घृतादिसे सिंचित होता है ॥ १० ॥

यह अग्नि सर्व प्रथम मनुष्योंके घरमें उत्पन्न हुआ, फिर अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें उत्पन्न हुआ । इसके न सिर है न पैर अतः यह हमेशा छिपा हुआ रहता है । यह अन्तरिक्षमें जाकर मेघोंसे बिल्कुल मिल जाता है ॥ ११ ॥

अन्तरिक्षमें मेघोंमें स्थित अग्नि स्तुतियोंके द्वारा बल प्राप्त करता है । सदा तरुण तथा उत्तम शरीरवाले इस अग्निको सात होताओंने उत्पन्न किया ॥ १२ ॥

१३ अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥ १३ ॥
१४ ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन् विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥ १४ ॥
१५ ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ १५ ॥
१६ ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥ १६ ॥

अर्थ— [१३] (अत्र अस्माकं पितरः मनुष्याः ऋतं आशुषाणाः) यहाँ इस लोकमें हमारे पितर मनुष्य गणोंने यज्ञ करते हुए अग्निको (अभि प्रसेदुः) प्राप्त किया था। उन्होंने (उषसः हुवानः) उषाकी स्तुति करते हुए (अश्मव्रजाः वव्रे अन्तः) पर्वतोंसे घिरे हुये, गुहाके अन्धकारमें स्थित (सुदुघाः उस्राः उत् आजन्) दुधारु गौवोंको उस अन्धकारपूर्ण गुहासे बाहर निकाला ॥ १३ ॥

[१४] (ते अद्रिं ददृवांसः मर्मृजत) उन पितर लोगोंने पर्वतको विदीर्ण कर अग्निको शुद्ध किया (एषां तत् अन्ये अभित वि वोचन्) उनके इस प्रकारके कर्मोंका दूसरे लोगोंने सर्वत्र बखान किया। (पश्वयन्त्रासः, कारं अभि अर्चन् ज्योतिः विदन्त) पशुओंकी रक्षाका उपाय जाननेवाले उन्होंने अभीष्ट फल देनेवाले अग्निकी स्तुति की और ज्योति प्राप्त की तथा अपनी (धीभिः चकृपन्त) बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्य युक्त बनाया ॥ १४ ॥

१ धीभिः चकृपन्त ज्योतिः विदन्त— जो बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्य युक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

२ एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्— इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं।

[१५] (ते नरः) उन सब नेताओंने (उशिजः मनसा गव्यता) अग्निकी कामना करनेवाले मनसे गोलाभकी इच्छा करके (दृध्रं उब्धं, दृळ्हं गाः येमानं परिसन्तं गोमन्तं, वज्रं अद्रिं) द्वारको रोकनेवाले, अच्छी तरह बन्द, सुदृढ, गौवोंके अवरोधक, सर्वत्र व्याप्त, गौवोंसे पूर्ण गोष्ठरूप पर्वतको (दैव्येन वचसा विवव्रुः) दिव्यवाणीसे खोल दिया ॥ १५ ॥

[१६] (ते प्रथमं मातुः धेनोः नाम मन्वत) उन ऋषियोंने सर्वप्रथम मातारूप वाणीका ज्ञान प्राप्त किया। फिर इसके पश्चात् (त्रिः सप्त परमाणि विन्दन्) इक्कीस उत्तम छन्दोंको जाना। तदनन्तर (तत् जानतीः व्राः अभ्यनूषत) उनको जाननेवाली उषाका स्तवन किया, तब (गोः यशसा अरुणीः आविः भुवत्) सूर्यके तेजके साथ अरुण वर्णवाली उषा प्रादुर्भूत हुई ॥ १६ ॥

भावार्थ— इस मर्त्यलोकके सर्व प्रथम प्राचीन मनुष्योंने यज्ञकी इच्छासे अग्निको प्राप्त किया, फिर उन्होंने उषाकी स्तुति करते हुए पर्वतोंकी गुहाओंमें बन्द कर दिए गए दुधारु गायोंको बाहर निकाला ॥ १३ ॥

पर्वतोंको भी विदीर्ण करनेवाले प्राचीन मनुष्योंने अग्निको शुद्ध किया और उनकी शूरताका यश चारों ओर फैला। उन्होंने पशुओंकी रक्षा करके ज्योति प्राप्त की और अपनी बुद्धियोंसे स्वयंको सामर्थ्यवान् बनाया ॥ १४ ॥

नेताओंने गायोंकी इच्छा करते हुए गौवोंसे परिपूर्ण पर्वतकी गुहाको अपनी दिव्य वाणियोंसे ही खोल दिया ॥ १५ ॥

ऋषियोंने सर्व प्रथम वाणीका ज्ञान प्राप्त किया, फिर उस वाणीसे २१ छन्दोंका ज्ञान प्राप्त करके उषाकी स्तुति की, तब सूर्यके तेजके साथ उषा प्रकट हुई ॥ १६ ॥

१७ नेशत् तमो दुधितं रोचत द्यौ-रुद् देव्या उषसो भानुरर्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्रॉ ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ १७ ॥
१८ आदित् पश्चा बुबुधाना व्यख्य-न्नादिद् रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥ १८ ॥
१९ अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवा-मन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥ १९ ॥
२० विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥ २० ॥

अर्थ— [१७] (तमः दुधितं नेशत्) रात्रीके द्वारा उत्पन्न अंधकार उषाकी प्रेरणासे नष्ट हुआ। (द्यौः रोचत) फिर अन्तरिक्ष प्रकाशमान् हुआ। (उषसः देव्याः भानुः उत अर्त) उषादेवीकी आभा प्रकट हुई और उसके अनन्तर (मर्तेषु ऋजु च वृजिना पश्यन् सूर्यः) मनुष्योंमें सत् और असत् कर्मोंका अवलोकन करता हुआ सूर्य (बृहतः वज्रान् आ तिष्ठत्) विशाल मैदानोंके ऊपर आरूढ हुआ ॥ १७ ॥

[१८] (आदित् बुबुधानाः पश्चा व्यख्यन्) सूर्योदयके अनन्तर ऋषियोंने पृथ्वीकी पीठ पर अग्निको प्रकाशित किया। और (आदित् द्युभक्तं रत्नं) उसके अनन्तर तेजस्वी रत्नोंको धारण किया। तब (विश्वासु दुर्यासु विश्वेदेवाः) समस्त गृहोंमें सर्व यजनीय देवगण आये। (वरुण, मित्र, धिये सत्यं अस्तु) उपद्रवोंके निवारक और मित्र भूत हे अग्ने! बुद्धिमान् मनुष्यके लिए उसकी सभी कामनाएं सत्य हों ॥ १८ ॥

[१९] (शुशुचानं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठं अग्निं) अत्यन्त दीप्तिमान् देवोंको आह्वान करनेवाले विश्वपोषक और पूजनीयोंमें सर्वश्रेष्ठ अग्निकी (अच्छ वोचेम) हम स्तुति करें। यद्यपि यजमानने (गवां ऊधः शुचिः न अतृणत्) गौवोंके थनोंसे शुद्ध दूध नहीं दुहा है और (अंशोः अन्धः पूतं न परि षिक्तं) सोमको पवित्रतासे नहीं निचोडा है, तो भी तू इस स्तुतिको स्वीकार कर ॥ १९ ॥

[२०] (अग्निः विश्वेषां यज्ञियानां अदितिः) अग्नि समस्त यज्ञीय देवोंको अदितिके समान उत्पन्न करनेवाला और (विश्वेषां मानुषाणां अतिथिः) सम्पूर्ण मनुष्योंके लिए पूजाके योग्य अतिथि है (देवानां अवः आवृणानः जातवेदाः) उत्तम मनुष्योंकी स्तुतियोंको स्वीकार करनेवाला अग्नि स्तुति करनेवालोंके लिये (सुमृळीकः भवतु) सुखकर हो ॥ २०

भावार्थ— उषाकी प्रेरणासे रात्रीका अन्धकार दूर हुआ, अन्तरिक्ष चमका, उषाकी आभा प्रकट हुई और तब मनुष्योंके सभी तरहके कर्मोंका निरीक्षण करता हुआ सूर्य मैदानोंमें चमकने लग गया। प्रभातकालका बहुत सुन्दर और सजीव चित्रण है ॥ १७ ॥

सूर्योदयके बाद पृथ्वीपर ऋषियोंने यज्ञ शुरु किए और सम्पत्ति युक्त हुए, तब सभी देवता उस यज्ञमें आए। हे मित्र, भूत, अग्ने! इस यज्ञसे बुद्धिमान्की सभी इच्छाएं पूर्ण हों ॥ १८ ॥

हे अग्ने! यह यजमान इतना निर्धन है कि वह गायोंको दुह कर अथवा सोमका रस निकाल कर तुझे प्रदान नहीं कर सकता, तो भी तू उसकी स्तुतिको स्वीकार कर ॥ १९ ॥

अग्नि सभी पूजनीय देवोंको उत्पन्न करनेवाला और समस्त मनुष्योंके लिए पूजनीय अतिथिके समान है। ऐसा उत्तम मनुष्योंकी स्तुतियोंको स्वीकार करनेवाला सर्वज्ञ अग्नि सभीके लिए सुखकर हो ॥ २० ॥

[२]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२१ यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि ।
होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै ॥ १ ॥

२२ इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने ।
दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान् वृषणः शुक्रांश्च ॥ २ ॥

२३ अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्ठा ।
अन्तरीयसे अरुषा युजानो युष्मांश्च देवान् विश आ च मर्तान् ॥ ३ ॥

२४ अर्यमणं वरुणं मित्रमेषा- मिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।
स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदु वह सुहविषे जनाय ॥ ४ ॥

---

[२]

अर्थ— [२१] (अमृतः यः अग्निः मर्त्येषु ऋतावा निधायि) मरणरहित जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें सत्यस्वरूपसे रहता है । (देवेषु अरतिः होता यजिष्ठः देवः) देवोंके बीचमें शत्रुओंका पराभवकर्ता, देवोंको बुलानेवाला तथा सबसे अधिक पूजनीय तेजस्वी अग्नि अपने (मह्ना हव्यैः शुचध्यै मनुषः इरयध्यै) महान् तेजसे हव्योंके द्वारा प्रज्ज्वलित करनेके लिए मनुष्योंको प्रेरित करता है ॥ १ ॥

[२२] हे (सहसः सूनो ऋष्व अग्ने) हे बलके पुत्र तथा दर्शनीय अग्ने ! (अद्य नः इह त्वं जातः) आजके दिन हमारे इस कार्यमें उत्पन्न होकर तू अपने (ऋजुमुष्कान् वृषणः च शुक्रान् युयुजानः) कोमल, मांसलयुक्त, बलवान् और दीप्तिमान् अश्वोंको रथमें जोड करके (जातान् उभयान् अन्तः दूतः ईयसे) उत्पन्न हुए हुए देव और मनुष्योंके मध्यमें दूत बन कर जाता है ॥ २ ॥

[२३] हे अग्ने ! मैं (ऋतस्य) सत्यस्वरूप तेरे (रोहिता) लाल वर्णवाले (मनसा जविष्ठा, वृधस्नू घृतस्नू) मनकी अपेक्षा भी अधिक वेगवाले अन्नको बढानेवाले और जलकी वर्षा करनेवाले (अत्या मन्ये) घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ तू (युष्मान् अरुषा युजानः) अपने दीप्तिमान् घोडोंको रथमें जोड करके (देवान् विशः मर्तान् अन्तः आ ईयसे) देवों और सेवा करनेवाले मनुष्योंके बीचमें घूमता रहता है ॥ ३ ॥

[२४] हे (अग्ने) अग्ने ! (सु अश्वः सुरथः सु राधाः) उत्तम घोडोंवाला, उत्तम रथवाला और उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर तू (एषां, सु हविषे जनाय) इन मनुष्योंके बीचमें शोभन हविवाले यजमानके लिये (अर्यमणं, वरुणं, मित्रं, इन्द्राविष्णू, मरुतः, अश्विना) अर्यमा, वरुण, मित्र, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको (आ वह इत ऊं) इस स्थान पर बुला ला ॥ ४ ॥

भावार्थ— मर्त्योंमें अमर वह अग्नि सत्यको स्थापित करता है । ऐसा शत्रुओंका पराभव करनेवाला देवोंको बुलानेवाला अग्नि अपने तेजसे मनुष्योंको हवि प्रदान करनेके लिए प्रेरित करे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू अपने शक्तिशाली पुट्ठोंवाले घोडोंको रथमें जोडकर देव और मनुष्योंके बीचमें उनके कर्मोंका निरीक्षण करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

अग्निके घोडे लाल रंगके मनसे भी वेगवान् वृद्धि करनेवाले तथा घृतादि पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले हैं, ऐसे तेजस्वी घोडोंको अपने रथमें जोडकर मनुष्यों और देवोंके बीच जा कर उनके कार्मोंका निरीक्षण करता है ॥ ३ ॥

उत्तम घोडों, रथों और ऐश्वर्यसे सम्पन्न यह अग्नि उत्तम हविवाले मनुष्यके लिए सब देवोंको बुलाकर लाता है ॥ ४ ॥

२५ गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।
इळावाँ एषो असुर प्रजावान् दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ॥ ५ ॥
२६ यस्त इध्मं जभरत् सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।
भुवस्तस्य स्वतवाँः पायुरग्ने विश्वस्मात् सीमघायत उरुष्य ॥ ६ ॥
२७ यस्ते भरादन्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिथिमुदीरत् ।
आ देवयुरिनधते दुरोणे तस्मिन् रयिर्ध्रुवो अस्तु दास्वान् ॥ ७ ॥
२८ यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात् प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान् तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२५] हे (असुर अग्ने) बलवान् अग्ने ! मेरा (एषः यज्ञः गोमान् अविमान् अश्वी) यह यज्ञ गौ, भेड और अश्वको प्राप्त करानेवाला (नृवत्सखा, सदं इत् अप्रमृष्यः, इळावान्) उत्तम मनुष्योंसे भरपूर, सदैव ही विघ्नरहित, अन्नसे सम्पन्न, (प्रजावान् दीर्घः रयिः, पृथुबुध्नः सभावान्) सन्तानोंसे युक्त चिरकालतक रहनेवाले धनसे सम्पन्न दृढ नींववाला और उपदेश करनेवाले ज्ञानियोंसे पूर्ण हो ॥ ५ ॥

[२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः ते सिष्विदानः इध्मं जभरत्) जो पुरुष तेरे लिये पसीनेसे युक्त होकर समिधाओंके भारको ढोता है, और (वा त्वया मुर्धानं ततपते) जो तेरी कामनासे अपने मस्तकको काष्टके बोझसे दुःखी करता है, (तस्य स्वतवान् भुवः पायुः) उस व्यक्तिको तू धनवान् बना एवं उसका पालन कर। तू (सीं, विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य) उसकी सब प्रकारके पापियोंसे भी रक्षा कर ॥ ६ ॥

१ यः ते सिष्विदानः इध्मं आभरत् मूर्धानं ततपते, तस्य स्वतवान् भुवः पायुः विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य— जो इस अग्निके लिए बहुत परिश्रम करके पसीनेसे लथपथ हो, अपने सिर पर समिधायें ढोकर लाता है, उसे यह अग्नि धनवान् बनाता है और पापियोंसे चारों ओरसे रक्षा करता है ।

[२७] हे अग्ने ! (अन्नियते यः ते अन्नं भरात्) अन्नकी कामनासे जो तुझे अन्न देता है, और (चित् मन्द्रं निशिषत्) हर्ष पैदा करनेवाले सोमको तुझे प्रदान करता है, जो (अतिथिं उदीरत्) अतिथिके समान तेरा आदर करता है, और (आ देवयुः दुरोणे इनधते) देवत्वकी इच्छा करके अपने घरमें प्रज्ज्वलित करता है, (तस्मिन् दास्वान् रयिः ध्रुवः अस्तु) उसके घरमें उदारता तथा अचल और बहुत प्रमाणमें सम्पत्ति हो ॥ ७ ॥

[२८] हे अग्ने ! (यः दोषा, यः उषसि त्वा प्रशंसात्) जो मनुष्य रात्रीकालमें और जो उषःकालमें तेरी स्तुति करता है, तथा (वा हविष्मान् त्वा प्रियं कृणवते) जो द्रव्यसे युक्त हो करके तुझको प्रसन्न करता है, तो तू (स्वे दमे) उसके अपने घरमें (हेम्यावान् अश्वः यः न दाश्वांसं तं अंहसः पीपरः) सुवर्णसे बने हुये जीनवाले अश्वकी तरह श्रद्धासे हवि देनेवाले उस मनुष्यको पापरूप दरिद्रतासे पार कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे प्राणदाता अग्ने ! मेरा यह यज्ञ गौ, बकरी, घोडे, मनुष्योंसे युक्त सदा विघ्नरहित सन्तान देनेवाला अविनश्वर संपत्ति देनेवाला तथा उपदेशक ज्ञानियोंसे युक्त हो ॥ ५ ॥

जो बहुत परिश्रम करके इस अग्निकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके धनोंसे समृद्ध होकर पुण्यशाली होता है ॥ ६ ॥

इस अग्निको जो हवि देता है, और सोम देता है और अतिथिके समान उसका सम्मान करता है, देवत्वप्राप्तिकी इच्छा करनेवाले उस मनुष्यके घरमें सम्पत्ति हमेशा रहती है ॥ ७ ॥

जो मनुष्य इस अग्निकी रात्री और उषःकालमें स्तुति करता है और हविके द्वारा इसको प्रसन्न करता है, वह दरिद्रतासे उसी तरह पार हो जाता है, जिस तरह कोई यात्री तैयार घोडेके द्वारा यात्रा पार कर जाता है ॥ ८ ॥

२९ यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद् दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योष्न्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥ ९ ॥

३० यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्तस्य सुधितं रराणः ।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठाऽसाम यस्य विधतो वृधासः ॥ १० ॥

३१ चित्तिमचित्तिं चिनवद् वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्तान् ।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य ॥ ११ ॥

अर्थ— [२९] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः अमृताय तुभ्यं दाशत्) जो मरणरहित तेरे लिये हव्य प्रदान करता है, (यतस्रुक) जो स्रुवाको हाथमें उठाकर (त्वे दुवः कृणवते) तेरी सेवा करता है, (सः शशमानः राया न वि योषत्) वह स्तोत्र करनेवाला कभी धनधान्यसे रहित नहीं होता तथा (अघायोः अंहः एनं न परि वरत्) पापकी इच्छा करनेवाले हिंसकके पाप इसको कभी भी स्पर्श नहीं करते ॥ ९ ॥

१ यः अमृताय दाशत्, दुवः कृणवते राया न वि योषत्, अघायोः अंहः न परिवरत्— जो इस अमर अग्निको हवि देता और इसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

[३०] हे (रराणः देवः यविष्ठ अग्ने) आनन्दयुक्त, प्रकाशमान्, तरुण अग्ने ! (त्वं यस्य मर्तस्य) तू जिस मनुष्यका (सुधितं, अध्वरं जुजोषः) सुसम्पादित, हिंसारहित यज्ञका सेवन करता है, (यस्य सा होत्रा प्रीता इत् असत्) जिसके यज्ञमें वह होता निश्चय ही आनन्दमें रहता है। (विधतः, वृधासः असाम) उस शुभ यज्ञ सेवन करनेवाले अग्निको हम बढानेवाले हों ॥ १० ॥

१ त्वं यस्य मर्तस्य अध्वरं जुजोष, स प्रीता इत् असत्— यह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

[३१] (वीता वृजिना पृष्ठा इव) जैसे अश्वको पालनेवाला उत्तम और खराब पीठवाले घोडोंको अलग अलग कर देता है, उसी प्रकार (विद्वान्) ज्ञानवान् अग्नि (मर्तान् चित्तिं च अचित्तिं चिनवत्) मनुष्योंके पुण्य और पापको पृथक् पृथक् करे। हे (देव) दिव्यगुण सम्पन्न अग्ने ! तू (सु-अपत्याय च नः राये) सुन्दर पुत्रकी प्राप्तिके लिये तू हमें श्रेष्ठ धनमें स्थापित कर। तू हमें (दितिं रास्व च अदितिं उरुष्य) दानशीलता दे और कंजुससे हमारी रक्षा कर ॥ ११ ॥

१ मर्तान् चित्तिं अचित्तिं चिनवत्— यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्योंको पृथक् पृथक् करता है।
२ दितिं रास्व अदितिं उरुष्य— हमें दानशीलता दे और कजूंसीसे हमारी रक्षा कर।

भावार्थ— जो इस अमर अग्निको आहुति देता और स्रुवा द्वारा इसकी सेवा करता है, वह कभी भी धनसे रहित और पापी नहीं होता ॥ ९ ॥

यह अग्नि जिसके यज्ञमें जाता है, वह हमेशा आनन्दमें रहता है। हम भी इस अग्निको बढानेवाले हों ॥ १० ॥

यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्यकर्मोंको पृथक् पृथक् कर पुण्यशालियोंको उत्तम पुत्र, उत्तम धन और दानशीलता देकर कंजूसीसे उनकी रक्षा करता है ॥ ११ ॥

३२ कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः ॥ १२ ॥

३३ त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥ १३ ॥

३४ अधा ह यद् वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥ १४ ॥

३५ अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन् ।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाऽद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥ १५ ॥

अर्थ— [३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (आयोः दुर्यासु निधारयन्तः) मनुष्यके घरोंमें निवास करनेवाले तथा (अदब्धाः कवयः) कभी भी पराजित न होनेवाले, दूरदर्शी देवताओंने, (कविं) मेधावी तेरी (शशासुः) प्रशंसा की है। (अतः अर्यः त्वं) इस कारणसे श्रेष्ठ तू (दृश्यान् अद्भुतान् एतान् एवैः पड्भिः पश्येः) दर्शनीय और अद्भुत इन देवोंको गमनशील अपने तेजोंसे देख ॥ १२ ॥

[३३] हे (घृष्वे, यविष्ठ अग्ने) तेजस्वी तथा अत्यन्त युवक अग्ने ! (चर्षणिप्राः, सुप्रणीतिः त्वं) मनुष्योंकी अभिलाषाका पूरक और उत्तम नेता तू (सुत सोमाय, विधते वाघते) सोमको निचोडनेवाले, तेरी सेवा करनेवाले तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यके लिए (पृथु, चन्द्रं, रत्नं अवसे भर) प्रभूत प्रसन्नताप्रद श्रेष्ठ धन रक्षणके लिए भरपूर दे ॥ १३ ॥

[३४] हे (अग्ने) अग्ने ! (अधा ह वयं त्वाया) और भी हम तेरी अभिलाषा करते हुये (पड्भिः, हस्तेभिः तनूभिः यत् चकृम) पैरोंसे, हाथोंसे तथा शरीरके अन्य अवयवोंसे जो कार्य करते हैं, उसी (भुरिजोः अपसा) दोनों बाहुओंके द्वारा किए जानेवाले कर्मसे (आशुषाणाः सुध्यः) यज्ञ कार्यमें लगे हुये बुद्धिमान् जन (ऋतं येमुः) सत्यस्वरूप तुझको उसी प्रकार तैय्यार करते हैं (क्रन्तः रथं न) जिस प्रकार शिल्पी रथको ॥ १४ ॥

[३५] (सप्त दिवस्पुत्राः अंगिरसः) हम सात आदित्यके पुत्र अंगिरस (विप्राः भवेम) ज्ञानी बनें (अध) इसके बाद (मातुः उषसः) सबका निर्माण करनेवाली उषासे (प्रथमः वेधसः नॄन्) श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ज्ञानी मनुष्योंको (जायेमहि) उत्पन्न करें, तथा (शुचन्तः धनिनं अद्रिं रुजेम) तेजस्वी होकर हम धनसे युक्त पर्वतको फोडें ॥ १५ ॥

भावार्थ— कभी भी पराजित न होनेवाले दूरदर्शी देव भी इस मेधावी अग्निकी प्रशंसा करते हैं, इसलिए यह अग्नि भी अपने तेजसे उन देवोंकी रक्षा करता है ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! मनुष्योंकी कामनाओंको पूरा करनेवाला, उत्तम नेता तू सोमयज्ञमें तेरी स्तुति द्वारा उत्तम सेवा करनेवालेको भरपूर धन दे ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! हम जिन हाथ, पैर आदि अवयवोंसे जो कर्म करते हैं, उन्हीं कर्मोंसे दूसरे बुद्धिमान् भी तुझको सिद्ध करते हैं ॥ १४ ॥

मनुष्य प्रथम स्वयं ज्ञानी बनकर दूसरोंको भी ज्ञानी बनाएं और इस प्रकार तेजस्वी होकर अनेक तरहके ऐश्वर्योंको प्राप्त करें ॥ १५ ॥

३६ अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥ १६ ॥
३७ सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः ।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥ १७ ॥
३८ आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।
मर्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन् वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥ १८ ॥
३९ अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥ १९ ॥

अर्थ— [३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (अधः) फिर (परासः प्रत्नासः ऋतं यथा आशुषाणाः) श्रेष्ठ, पुरातन, सत्यभूत यज्ञकर्मोंका यथावद् रूपसे अनुष्ठान करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (शुचि, दीधिति अयन्) उत्तम स्थान और तेजको प्राप्त किया । तथा उन सबोंने (उक्थशासः क्षाम भिन्दन्तः) वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके अन्धकार विनष्ट किया, और (अरुणीः अपव्रन्) अरुण वर्णवाली उषाको प्रकट किया ॥ १६ ॥

[३७] (सुकर्माणः सुरुचः देवयन्तः देवाः) सुन्दर कार्य करनेवाले, शोभन दीप्तियुक्त, देवाभिलाषी दिव्यगुणोंसे सम्पन्न लोग (जनिम) अपने जन्मको उसी प्रकार निर्मल करते हैं, जिस प्रकार (अयः धमन्तः न) लोहार लोहेको धोंकनीके द्वारा निर्मल करते हैं ।तथा (अग्निं शुचन्तः इन्द्रं ववृधन्तः) अग्निको प्रदीप्त करते हुये और इन्द्रको उत्साहित करते हुए उन्होंने ही (परिषदन्तः ऊर्वं गव्यं आ अग्मन्) चारों ओरसे घेर करके गौओंके महान् समूहको प्राप्त किया ॥ १७ ॥

[३८] हे (उग्र) तेजस्विन् अग्ने ! (इव क्षुमति पश्वः यथा) जिस प्रकार धनी मनुष्यके गृहमें पशुओंके समूहकी प्रशंसा होती है, उसी प्रकार (यत् देवानां अन्ति जनिम आ अख्यत्) जो देवोंके समीप उनके जन्मोंकी प्रशंसा करता है, उन (मर्तानां चित् उर्वशीः अकृप्रन्) मनुष्योंकी प्रजा समर्थ होती है और (अर्यः उपरस्य आयोः वृधे चित्) स्वामी भी अपने पुत्र और नौकरादि मनुष्योंके संवर्धनमें समर्थ होता है ॥ १८ ॥

१ यत् देवानां जनिम आ अख्यत्, अर्यः उपरस्य आयोः वृधे— जो देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है, वह स्वामी अपने पुत्र और अन्य मनुष्योंके पालन पोषणमें समर्थ होता है ।

[३९] हे अग्ने ! हम (ते अकर्म) तेरी सेवा करते हैं। उसीसे हम (सु-अपसः अभूम) श्रेष्ठ कर्मवाले होते हैं। (विभातीः उषसः ऋतं अवस्रन्) प्रकाशित उषाएं तेरे कारण ही तेजको धारण करती हैं। (देवस्य चारु चक्षुः मर्मृजतः) तेजस्वी तेरे रमणीय तेजको शुद्ध करते हुए हम (अनूनं, पुरुधा सुश्चन्द्रं अग्निं) न्यूनतासे रहित, अनेक प्रकारसे आह्लादकारक अग्निको धारण करते हैं ॥ १९ ॥

१ ते अकर्म सु अपसः अभूम— इस अग्निकी सेवा करनेवाले सदा उत्तम कर्म करते हैं ।

भावार्थ— प्राचीन ऋषियोंने यज्ञके द्वारा उत्तम तेजको प्राप्त किया फिर अपने स्तोत्रोंसे अन्धकारका नाश करके उषाको प्रकट किया ॥ १६ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम तेजस्वी तथा दिव्य मनुष्य ही अपने जन्मको निर्मल करते हैं, तथा वे अग्नि और इन्द्रकी उपासनासे अनेक तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥

जिस प्रकार पुष्ट पशुओंके समूहकी प्रशंसा होती है, उसी प्रकार जो देवोंकी प्रशंसा करता है, उनकी उपासना करता है, उसके पुत्र पौत्रादि हृष्टपुष्ट होते हैं और उनका स्वामी भी उनके पालनपोषणमें समर्थ होता है ॥१८ ॥

इस अग्निकी सेवा करनेवाले सदा उत्तम कर्म करते हैं। इसीके कारण उषायें तेजको धारण करती हैं। अतः हम भी इस आह्लादकारक तेजको धारण करें ॥ १९ ॥

४० एता ते अग्न उचथानि वेधो ऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥ २० ॥

[३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, १ रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४१ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ता- द्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥

४२ अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीद- मा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥ २ ॥

अर्थ— [४०] हे (वेधः अग्ने) विधाता अग्ने ! (कवये ते एता उचथानि अवोचाम) तुझ ज्ञानीके लिये इन सम्पूर्ण स्तोत्रोंका हम उच्चारण करते हैं । तू (ता जुषस्व) उनको ग्रहण कर और (उत् शोचस्व) पूर्ण रूपसे उद्दीप्त हो और (नः वस्यसः कृणुहि) हमको अतिशय धनसेयुक्त कर । हे (पुरुवार) बहुतोंसे वरणीय अग्ने ! हमें (महः रायः प्रयन्धि) महान् ऐश्वर्य भी प्रदान कर ॥ २० ॥

[३]

[४१] हे मनुष्यो ! (अचित्तात् स्तनयित्नोः पुरा) चंचल विद्युत्की उत्पत्तिसे पूर्व ही (अध्वरस्य राजानं) यज्ञके अधिपति (होतारं) देवोंको बुलानेवाले (रुद्रं) शत्रुओंको रुलानेवाले (रोदस्योः सत्ययजं) द्यावापृथ्वीके बीचमें सत्य यज्ञ करनेवाले (हिरण्यरूपं अग्निं) सोनेके समान तेजस्वी इस अग्निको (अवसे कृणुध्वं) अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करो ॥ १ ॥

१ अचित्तात् स्तनयित्नोः पुरा अग्निं कृणुध्वं— कभी दीखनेवाली, कभी न दीखनेवाली चंचल बिजलीके पहले ही अग्निको उत्पन्न करना चाहिए । अर्थात् चातुर्मास्यके पहले ही यज्ञ समाप्त हो जाने चाहिए ऐसा विधान है ।

[४२] (पत्ये उशती सुवासाः जाया इव, वयं ते यं चकृम) पतिकी कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित स्त्री जिस प्रकारसे अपने समीप पतिके लिये स्थान प्रस्तुत करती है, उसी प्रकारसे हे अग्ने ! हम लोग तेरे लिए जिस स्थानको तैय्यार करते हैं, (अयं योनिः) यही तेरा स्थान हैं ! हे (स्वपाक) श्रेष्ठ कर्मोंके करनेवाले (परिवीतः) अपने तेज द्वारा चारों ओर व्याप्त तू (अर्वाचीनः नि षीद) हम लोगोंके सामने विराजमान हे । (इमाः ते प्रतीची उ) ये स्तुतियाँ तेरी ओर प्रेरित हो रही हे ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तुझ ज्ञानीके लिए हमारे द्वारा की गई इन स्तुतियोंको तू स्वीकार कर और हमें उत्तम धनोंमें युक्त कर ॥ २० ॥

हे मनुष्यो ! चंचल बिजलीसे युक्त बरसातसे पूर्व ही इस यज्ञके अधिपति, तेजस्वी अग्निको अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करो ॥ १ ॥

जिस प्रकार पतिसे प्रेम करनेवाली पत्नी अच्छे अच्छे वस्त्रोंसे सुशोभित होकर अपने पतिको उत्तम स्थान देती है, उसी प्रकार हम भी अग्निको उत्तम स्थान देते हैं, वह अग्नि हमारे पास आकर बैठे और हमारी स्तुतियोंको सुने ॥ २ ॥

४३ आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीळे ॥ ३ ॥
४४ त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित् स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥ ४ ॥
४५ कथा ह तद् वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद् भगाय ॥ ५ ॥
४६ कद् धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद् वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥ ६ ॥
४७ कथा महे पुष्टिंभराय पूष्णे कद् रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद् विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥ ७ ॥

अर्थ— [४३] हे (वेधः) ज्ञानी ! (ग्रावा इव मधुषुत्, सोता यं ईळे) पत्थरकी तरह सोम निचोडनेवाला जिस अग्निकी स्तुति करता है, तू भी उस (आशृण्वते अदृपिताय नृचक्षसे सुमृळीकाय) स्तोत्रोंके सुननेवाले, अभिमान रहित, मनुष्योंके द्रष्टा, सुखदाता एवं (अमृताय देवाय मन्म, शस्तिं शंस) अमर, दिव्यगुणयुक्त अग्निके लिये स्तोत्र और स्तुतिवचनोंका पाठ कर ॥ ३ ॥

[४४] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऋतचित् सु आधीः) ज्ञानी और उत्तम कर्म करनेहारा (त्वं चित् नः) तू ही हम लोगोंके (ऋतस्य अस्याः शम्या बोधि) यज्ञके इस कर्मको जान। (ते उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति) तेरे स्तोत्र हमारे लिए आनन्ददायक कब होंगे ? तथा हमारे (गृहे ते सख्या कदा भवन्ति) घरमें तेरी मित्रता कब होगी ? ॥ ४ ॥

[४५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं तत् वरुणाय कथा गर्हसे) तू हमारे उस कर्मकी वरुणसे क्यों निन्दा करता है ? (ह दिवे कथा) निश्चयसे हमारे कर्मकी निन्दा सूर्यसे क्यों करता है ? (नः आगः कत्) हम लोगोंका क्या अपराध है ? (मीळ्हुषे मित्राय पृथिव्यै कथा ब्रवः) सुख देनेवाले मित्र और पृथ्वीसे निन्दा क्यों की ? तथा (अर्यम्णे भगाय कत्) अर्यमा और भग नामक देवोंसे भी क्यों हमारी निन्दाकी बात कही ? ॥ ५ ॥

[४६] हे (अग्ने) अग्ने ! जब तू (धिष्ण्यासु वृधसानः कत्) यज्ञमें घृतादि आहुतियोंसे बढता है तब उन बातोंको क्यों कहता है ? (प्रतवसे शुभंये परिज्मने नासत्याय वाताय क्षे कत्) महान् बली, शुभकारी, सर्वत्र गतिमान्, सत्यमें अग्रणी वायुके लिये और पृथ्वीके लिये यह कथा क्यों कहता है ? तथा हे (अग्ने) अग्ने ! (नृघ्ने, रुद्राय कत् ब्रवः) पापी मनुष्योंके मारनेवाले रुद्रके लिये भी यह कथा क्यों सुनाता है ? ॥ ६ ॥

[४७] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (महे पुष्टिंभराय पूष्णे कथा) महान्, पुष्टिप्रद पूषाके लिये यह पाप क्यों कहता है ? (सुमखाय हविर्दे, रुद्राय कत्) उत्तम यज्ञवाले हविप्रद रुद्रके लिये यह बात किसलिये कहता है ? तथा (उरुगायाय विष्णवे रेतः कत्) बहुतों द्वारा प्रसंसाके योग्य विष्णुके लिये क्षयहेतु पाप क्यों कहता है ? एवं (बृहत्यै शरवे कत् ब्रवः) महान् संवत्सरसे यह अधर्म युक्त बात क्यों बोलता है ? ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे मनुष्य ! पत्थरके समान सोम निचोडनेवाला मनुष्य जिस तरह इस अग्निकी स्तुति करता है, उसी तरह तू भी इस अमृत देवकी स्तुति कर ॥ ३ ॥

उत्तम कर्म करनेहारा तथा ज्ञानी यज्ञाग्नि सभी यज्ञ कर्मोंका देवता होनेसे उन्हें अच्छी तरह जानता है। इसके प्रसन्न होनेपर इसके स्तोत्र हमारे लिए आनन्ददायक होते हैं और हमारे घरोंसे यह मित्रता स्थापित करता है ॥ ४ ॥

४८ कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥ ८ ॥
४९ ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत् पक्कमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥ ९ ॥
५० ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥ १० ॥
५१ ऋतेनाद्रिं व्यसन् भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥ ११ ॥

अर्थ— [४८] हे अग्ने ! तू (ऋताय मरुतां शर्धाय कथा) सत्यके कारणरूप मरुतोंके समूहोंसे यह बात क्यों कहता है ? (पृच्छ्यमानः बृहते सूरे कथा) पूछे जानेपर महान् सूर्यके लिये यह कथा क्यों कहता है ? तथा (अदितये तुराय प्रति ब्रवः) अदितिके लिये और द्रुतगामी वायुके लिये मेरे अपराध सम्बन्धी बात क्यों बोलता है ? हे (जातवेदः) सबको जाननेवाले सर्वज्ञ ! तू (चिकित्वान् दिवः साध) सब कुछ जान कर तेजको सिद्ध कर ॥ ८ ॥

[४९] हे (अग्ने) अग्ने ! हम (ऋतेन नियतं ऋतं गोः आ ईळे) जल और गायके दूधकी याचना करते हैं । (आमा, मधुमत् पक्वं सचा) वह गौ कच्ची अवस्थामें भी मधुर और पक्व दूधको धारण करती हैं । (कृष्णा सती एषा) कृष्णवर्णवाली होकर भी यह गौ (रुशता धासिना जामर्येण पयसा पीपाय) तेजोयुक्त एवं पुष्टिकारक दूधसे प्रजाकी पालना करती है ॥ ९ ॥

[५०] (वृषभः पुमान् अग्निः) बलवान् पराक्रमी अग्नि (ऋतेन पृष्ठ्येन पयसा अक्तः) उत्तम पोषक दूध द्वारा सिंचित होता है । (वयोधाः हि ष्म चित् अस्पन्दमानः अचरत्) अन्नदाता अग्नि एक जगह रहता हुआ भी तेजसे सर्वत्र विचरता है । तथा (वृषा पृश्निः शुक्रं ऊधः दुदुहे) जलवर्षक सूर्य शुद्ध जलका दोहन करता है ॥ १० ॥

[५१] (अंगिरसः ऋतेन अद्रिं भिदन्तः) अङ्गिरसोंने अपनी सत्यशक्तिसे पर्वतको विदीर्ण करके शत्रुओंको दूर (व्यसन् गोभिः सं नवन्त) फेंकनेके पश्चात् गौवोंको प्राप्त किया । (नरः शुनं उषसं परिसदन्) लोगोंने सुखपूर्वक उषाको प्राप्त किया । तदनन्तर (अग्नौ जाते) अग्निके उत्पन्न होनेपर (स्वः आविः अभवत्) सूर्य प्रकट हुआ ॥ ११ ॥

भावार्थ— अपने भक्तसे कोई पाप भी हो जाए, तो भी यह ज्ञानवान् अग्नि अपने उस भक्तकी निन्दा नहीं करता या उसके पापकी बात सबसे नहीं करता, अपितु उसे सुधारकर उसे तेज ही प्रदान करता है ॥ ५—८ ॥

गायें स्वयं कम अवस्थावाली होती हुई भी पक्के तथा मधुर दूधको धारण करती हैं, इसी प्रकार स्वयं किसी भी वर्णकी हों, पर उन सबका दूध पुष्टिकारक ही होता है । इसी प्रकार समाजमें मनुष्य किसी जाति, धर्म या सम्प्रदायके हों, पर उन सबके काम समाज उन्नत करनेवाले ही होने चाहिये ॥ ९ ॥

यह बलवान् और पराक्रमी अग्नि उत्तम दूधसे सिंचित होकर अपने तेजसे सर्वत्र जाता है और वही सूर्य बनकर अन्तरिक्षसे शुद्ध जलको बरसाता है ॥ १० ॥

अङ्गिरा ऋषियोंने अपनी अविनश्वर शक्तिसे अन्धकाररूपी पर्वतोंको फोडकर गाय अर्थात् किरणें प्राप्त की, उन्हीं किरणोंसे उन्होंने उषाको भी प्राप्त किया । उषाके उदय होनेपर अग्नि प्रज्ज्वलित हुई और तब सूर्यका उदय हुआ ॥ ११ ॥

५२ ऋतेन देवीरमृता अमृक्ता अर्णोभिरापो मधुमद्भिरग्ने ।
वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः ॥ १२ ॥

५३ मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वे — र्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥ १३ ॥

५४ रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति ष्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद् वावृधानम् ॥ १४ ॥

५५ एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कै — रिमान् त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥ १५ ॥

अर्थ— [५२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अमृताः अमृक्ताः मधुमद्भिः अर्णोभिः देवीः आपः) अविनाशिनी, अखण्डरूपसे बहनेवाली मधुरजलोंवाली दिव्य नदियाँ (सर्गेषु प्रस्तुभानः वाजी न, ऋतेन) युद्धोंमें जानेके लिये प्रोत्साहित अश्वकी तरह, सत्यसे प्रेरित होकर (सदमित् स्रवितवे प्र दधन्युः) सदैव बहनेके लिये जाती हैं ॥ १२ ॥

[५३] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (कस्य ह्रुरः क्षयं मा गाः) किसी भी हिंसक मनुष्यके यज्ञमें मत जा (प्रमिनतः वेशस्य मा) दुष्ट बुद्धिवाले पडोसीके यज्ञमें मत जा । (आपेः मा) मेरे किसी दुष्ट बन्धु बांधवके यज्ञमें मत जा, तथा (अनृजोः भ्रातुः ऋणं मा वेः) कुटिल चित्तवाले बन्धुके हविकी कामना मत कर । हम लोग भी (सख्युः रिपोः दक्षं मा भुजेम) मित्र अथवा शत्रुकी शक्तिके आश्रित न रहें ॥ १३ ॥

[५४] हे (सुमख अग्ने) उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले अग्ने ! तू हम लोगोंका (रारक्षाणः) विशेष रक्षक होकर तथा हमसे (प्रीणानः) प्रसन्न होकर (तव रक्षणेभिः) अपने रक्षणके सामर्थ्यसे (नः रक्ष) हमारी रक्षा कर तथा (प्रति स्फुर) हमारे लिए प्रज्ज्वलित हो । हमारे (विळु अंहः विरुज) घोरसे घोर पापका भी विनाश कर । एवं जो (महि चित् वावृधानं रक्षः जहि) महान् होकर भी बढे हुए राक्षसको विनष्ट कर दे ॥ १४ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्ने ! हमारे (एभिः अर्कैः सुमनाः भव) इन स्तोत्रोंके द्वारा तू प्रसन्न मनवाला हो । हे (शूर) पराक्रमी ! हमारे (इमान् वाजान्, मन्मभिः स्पृश) इन अन्नोंको स्तोत्रोंके साथ ग्रहण कर । (उत अङ्गिरः ब्रह्माणि जुषस्व) और भी हे अंगरसके ज्ञाता अग्ने ! तू हमारे स्तोत्रोंका ग्रहण कर ! तथा (देववाता शस्तिः ते सं जरेत) देवोंको प्रसन्न करनेवाली स्तुति तुझको भी संवर्धित करे ॥ १५ ॥

भावार्थ— इसी सत्यशक्तिके कारण मधुरजलोंवाली नदियां भी हमेशा अखण्डरूपसे बहती रहती हैं ॥ १२ ॥

हे अग्ने ! तू किसी भी हिंसक, मेरा अहित चाहनेवाले मेरे पडौसी, कुटिलचित्तवाले भाईके यज्ञमें मत जा, हम भी तेरी शक्तिको छोडकर और किसी भी शत्रु या मित्रकी शक्तिके आश्रित न रहें ॥ १३ ॥

हे अग्ने ! हमारा रक्षक तू हमसे प्रसन्न होकर अपनी शक्तिसे हमारी रक्षा कर, तथा हमारे भयंकर पापका तथा भयंकर राक्षसोंको भी विनष्ट कर ॥ १४ ॥

हे अंगोंमें बहनेवाले रसोंके ज्ञाता अग्ने ! तू हमारी स्तुतियोंसे प्रसन्न हो और हमारे द्वारा दी गई हवियोंसे और अधिक प्रज्ज्वलित हो ॥ १५ ॥

५६ एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्या न्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥ १६ ॥

[४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- रक्षोहाऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५७ कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ १ ॥

५८ तव भ्रमास आशुया पत न्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गा नसंदितो वि सृज विष्वगुल्काः ॥ २ ॥

अर्थ— [५६] हे (वेधः अग्ने) ज्ञानी अग्ने! (विदुषे कवये तुभ्यं) विद्वान् और दूरदर्शी तेरे लिये (नीथानि निण्या, निवचना काव्यानि) फलदायक, अत्यन्त गूढ, अधिक व्याख्यायके, योग्य काव्योंका और (एता विश्वा वचांसि) इन समस्त स्तुतियोंका (मतिभिः उक्थैः) स्तोत्रों और मंत्रोंके साथ (विप्रः) मैं बुद्धिमान् (अशंसिषं) उच्चारण करता हूँ ॥ १६ ॥

[४]

[५७] हे अग्ने ! (पृथ्वीं प्रसितिं न) जिस प्रकार कोई व्याध अपने विस्तीर्ण जालको फैलाता है, उसी प्रकार (पाजः कृणुष्व) अपने बलको विस्तृत कर ! (अमवान् राजा इभेन इव) बलवान् राजा जिस प्रकार हाथीपर चढकर जाता है, उसी प्रकार (याहि) तू भी जा । (प्रसितिं तृष्वीं अनु द्रूणानः) शत्रुकी सेनाका शीघ्रतापूर्वक पीछा करता हुआ (अस्ता असि) उस सेनाको तू नष्ट करके, (तपिष्ठैः रक्षसः विध्य) अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे राक्षसोंको बींध ॥ १ ॥

[५८] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव भ्रमासः आशुया पतन्ति) तेरी घूमनेवाली किरणें शीघ्रतासे जाती हैं । (शोशुचानः) अत्यन्त तेजस्वी तू (धृषता) अपने शत्रुनाशक सामर्थ्यसे (अनु स्पृश) शत्रुओंको छू अर्थात जला डाल । (असंदित) किसीसे भी न रोके जानेवाला तू (जुह्वा) अपनी ज्वालासे (तपूंषि) तेज (पतंगान्) चिनगारियां और (उल्का) उल्काओंको (विष्वक् सृज) चारों ओर उत्पन्न कर ॥ २ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी अग्ने ! मैं विद्वान् और दूरदर्शी तेरे लिए अत्यन्त गूढार्थवाले होनेसे व्याख्याकी आवश्यकतावाले मंत्रों और स्तुतियोंका उच्चारण करता हूँ ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! जिसप्रकारको व्याध चिडियोंको पकडनेके लिए अपने जालको फैलाता है उसी प्रकार तू अपने बलको फैला और जिसप्रकार एक वीर राजा हाथी पर बैठकर शत्रु सेनापर चढता चला जाता है, उसीप्रकार तू शत्रुओंपर आक्रमण कर । उन शत्रुसेनाका पीछा करके तू उनका संहार कर और अपने तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे जो राक्षस हों उन्हें बींध डाल ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तेरी घूमनेवाली किरणें सर्वत्र जाती हैं, अतः तू अपनी इन सामर्थ्यशाली किरणोंसे शत्रुओंको जला डाल, तथा अपनी ज्वालाओंसे तू तेज, चिनगारी और उल्काओंको उत्पन्न कर । अग्निकी किरणें क्षणमें ही सर्वत्र फैल जाती हैं । इन किरणोंके तेजके कारण जितने भी राक्षस अर्थात् मनुष्यको खानेवाले रोगजन्तु हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

५९ प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् ॥ ३ ॥
६० उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात् तिग्महेते ।
यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥ ४ ॥
६१ ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५९] हे (अग्ने) अग्ने ! (तूर्णितमः) अत्यन्त वेगवान् तू (स्पशः) अपने चरोंको (प्रति वि सृज) चारों ओर प्रेरित कर । (अदब्धः) किसीसे भी न दबनेवाला तू (अस्याः विशः) इन प्रजाओंका (पायुः भव) पालक हो । (यः अघशंसः नः दूरे) जो पापी हमसे दूर है और (यः नः अन्ति) जो हमारे पास है, उनमेंसे कोई भी (व्यथिः) दुःखदेनेवाला शत्रु (ते माकिः आ दधर्षीत्) तेरे भक्तोंको पीडित न करे ॥ ३ ॥

१ तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृजः— हे अग्ने ! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों ओर प्रेरित कर । राजा अपने राज्यमें चारों ओर गुप्तचारोंका जाल बिछाये ।

२ अदब्धः विशः पायुः— किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो ।

३ यः अघशंसः दूरे अन्ति, माकिः आ दधर्षीत्— जो पापवचनों या दुष्टवचनोंके बोलनेवाला हो, चाहे वह पास हो या दूर इन प्रजाओंको न सताये ।

[६०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (उत् तिष्ठ) उठकर खडा हो, (प्रति आ तनुष्व) अपनी किरणोंको फैला, हे (तिग्महेते) तीक्ष्णशस्त्रोंवाले अग्ने ! तू (अमित्रान् नि ओषतात्) शत्रुओंको जला डाल, हे (सं इधान) सम्यक् रीतिसे प्रज्वलित अग्ने ! (यः नः अरातिं चक्रे) जो हमसे शत्रुता करता है, (तं नीचा धक्षि) उस नीचको उसी प्रकार जला डाल, (शुष्कं अतसं न) जिस प्रकार सूखे ईंधनको जलाता है ॥ ४ ॥

[६१] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (ऊर्ध्वः भव) ऊपरकी तरफ जल, तथा (अस्मत् अधि) हमसे अधिक बलशाली शत्रुओंको (प्रतिविध्य) बींध और इस प्रकार (दैव्यानि आविः कृणुष्व) अपने दिव्य तेजोंको प्रकट कर । (यातुजूनां) राक्षसोंके (स्थिरा अव तनुहि) दृढ शस्त्रास्त्रोंको शिथिल कर, तथा (जामि अजामिं शत्रून्) बन्धु और बन्धुत्वसे हीन शत्रुओंको (मृणीहि) मार ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्निकी किरणें ही उसके चर हैं, जो सर्वत्र घूमते रहते हैं, वह अपने तेजसे सब मनुष्योंका पालन करता है और उसके भक्तको कोई भी पापी पीडित नहीं कर सकता । राजा भी अपने राज्यमें सर्वत्र गुप्तचरोंकी नियुक्ति करे और अपनी प्रजाका उत्तम रीतिसे पालन करे । कोई भी पापी उसके राज्यमें रहकर प्रजाको न सता सके, इस प्रकार वह राजा दुष्टों पर नियंत्रण करता हुआ शासन करे ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! तू प्रदीप्त होकर अपनी किरणोंको चारों ओर फैला और अपने तेजसे शत्रुओंको जला डाल । जो हमसे शत्रुता करता है, उस नीच शत्रुको सूखी लकडीके समान जला दे । राजा भी सदा तैय्यार रहकर अपने प्रतापको सर्वत्र फैलाकर अपने शत्रुओंका संहार करे । जो राज्यकी प्रजाओंसे द्वेष करता है या राज्यकी प्रजाओंमें जो अदानशील हो, कंजूस उसे राजा अपने तेजसे उसी प्रकार जला दे, जिस प्रकार अग्नि सूखे काष्ठको जलाती है ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! तू प्रज्वलित होकर हमसे अधिक बलशाली शत्रुओंको भी नष्ट कर और इस प्रकार अपने दिव्य तेजोंको प्रकट कर । शत्रुओंके शस्त्रास्त्रोंको शिथिल कर तथा जो हमारे सम्बन्धी होकर भी शत्रुताका व्यवहार करते हैं और सम्बन्धी न होकर भी शत्रुताका व्यवहार करते हैं, उन्हें तू मार । इसीप्रकार राजा भी शत्रुओंको मारकर अपने प्रतापको प्रकट करे ! शत्रुको, चाहे वह हमारा सम्बन्धी हो या पराया, मार ही देना चाहिए । प्रकट शत्रुकी अपेक्षा प्रच्छन्न शत्रु ज्यादा खतरनाक होता है ॥ ५ ॥

६२ स तें जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥ ६ ॥
६३ सदंग्ने अस्तु सुभगः सुदानु-र्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥ ७ ॥
६४ अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक् सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमा-ऽस्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥ ८ ॥

अर्थ— [६२] हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण अग्ने ! (यः) जो मनुष्य (ईवते ब्रह्मणे) उत्तम मार्गोंमें प्रेरित करनेवाले महान् अग्निकी और (गातुं ऐरत्) स्तोत्रोंको प्रेरित करता है, (सः) वही पुरुष (ते सुमतिं जानाति) तेरी उत्तम कृपाको जानता या प्राप्त करता है। वह (अस्मै) इस पुरुषके (विश्वानि सु दिनानि) सभी दिन उत्तम करता है और उसे (द्युम्नानि रायः) चमकनेवाले धन प्रदान करता है, तब (अर्यः) उस श्रेष्ठ पुरुषका (दुरः) घर (अभि वि द्यौत्) अच्छी तरह चमकने लगता है ॥ ६ ॥

१ यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति— जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है ।

२ विश्वानि दिनानि सु— उसके सभी दिन उत्तम होते हैं ।

३ अर्यः दुरः वि द्यौत्— उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है ।

[६३] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः नित्येन हविषा) जो प्रतिदिन हविके द्वारा तथा (यः उक्थैः) जो स्तोत्रोंके द्वारा (त्वा) तुझे (पिप्रीषति) तृप्त करना चाहता है, (सः इत्) वह ही (सुभगः सुदानुः अस्तु) उत्तम भाग्यशाली और उत्तम दानशील हो, (अस्मै) इसके घर तथा जीवनके (विश्वा इत् सु दिना) सभी दिन उत्तम हों, तथा (सा इष्टिः असत्) वह यज्ञ भी इसके लिए सुफलदायक हो ॥ ७ ॥

१ यः हविषा नित्येन पिप्रीषति, सः इत् सुभगः सुदानुः— जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता है, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील अर्थात् उदार हृदयवाला होता है ।

२ अस्मै स्वे आयुषि विश्वा इत् सुदिना— इस मनुष्यके जीवनके सभी दिन उत्तम होते हैं ।

[६४] हे अग्ने ! मैं (ते सुमतिं अर्चामि) तेरी उत्तम बुद्धिकी सेवा करता हूँ । (वावाता इयं गीः) बार बार तेरी तरफ जानेवाली यह वाणी (ते अर्वाक् घोषि) तेरी तरफ जाकर तेरे गुणोंका बखान करे तथा (जरताम्) तेरी प्रशंसा करे । (सु अश्वाः सु रथाः) उत्तम घोडों और उत्तम रथोंसे युक्त होकर हम (त्वा मर्जयेम) तुझे शुद्ध करें तथा तू भी (अनु द्यून्) प्रतिदिन (अस्मे क्षत्राणि धारयेः) हमारे अन्दर सब तरहके बलोंको स्थापित कर ॥ ८ ॥

भावार्थ— जो इस युवक अग्निके लिए उत्तम स्तुति करता है, वही पुरुष इस अग्निकी कृपाको प्राप्त करता है, उसके सभी दिन उत्तम रीतिसे कटते हैं । वह सदा धनैश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण उसका घर धनसे भरे रहनेके कारण सदा चमकता रहता है ॥ ६ ॥

जो प्रतिदिन हवि द्वारा और स्तुति अर्थात् यज्ञके द्वारा इस अग्निको उत्तम रीति से तृप्त करता है, उसे यह अग्नि हर तरहके ऐश्वर्य प्रदान करके सौभाग्यशाली बनता है और वह भी धनवान् तथा सौभाग्यशाली बनकर उदार बनता है । अर्थात् कंजूस नहीं होता । ऐसे सौभाग्यशालीके जीवनके सभी दिन आनन्द और सुखसे कटते हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! मैं तेरे उत्तम बुद्धिकी मैं पूजा करता हूँ, मेरे द्वारा उच्चारी गई वाणी तेरे पास जाकर तेरी प्रशंसा करे, अर्थात् मैं सदा अपनी वाणीसे तेरी ही प्रशंसा करूं और उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त होकर तुझे अच्छी तरह प्रदीप्त करूं ताकि मैं सब तरहके बलोंका स्वामी होऊं ॥ ८ ॥

६५ इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन् दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून् ।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमा ऽभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥ ९ ॥
६६ यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन ।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग् जुजोषत् ॥ १० ॥
६७ महो रुजामि बन्धुता वचोभि स्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥ ११ ॥
६८ अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्या ऽग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥ १२ ॥

अर्थ— [६५] हे अग्ने ! मनुष्य (इह) यहां इस जगत्में (दोषावस्तः) रात और दिन अर्थात् (अनु द्यून्) प्रतिदिन (दीदिवांसं त्वा) अत्यन्त तेजस्वी तेरी (त्मन्) स्वयं ही (भूरी उप आ चरेत्) अच्छी तरह सेवा करे। हम भी (जनानां द्युम्ना अभि तस्थिवांसः) शत्रु मनुष्योंके धनों पर अधिकार करते हुए तथा (क्रीळन्तः) खेलते हुए (सुमनसः त्वा अभि सपेम) उत्तम मनवाले होकर तेरी पूजा करें ॥ ९ ॥

[६६] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः सु-अश्वः सु हिरण्यः) जो उत्तम घोडोंवाला तथा उत्तम सोनेवाला पुरुष (वसुमता रथेन) धन युक्त रथसे (त्वा उपयाति) तेरे पास जाता है, और (यः) जो मनुष्य (ते आतिथ्यं) तेरे आतिथ्यको (आनुषक् जुजोषत्) हमेशा करना चाहता है, तू (तस्य त्राता भवसि) उस मनुष्यका रक्षक होता है और (तस्य सखा)उसका मित्र होता है ॥ १० ॥

१ यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत् तस्य त्राता सखा भवसि— हे अग्ने ! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है।

[६७] हे (होतः यविष्ठ सुक्रतो) देवोंको बुलानेवाले अत्यन्त तरुण तथा उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने ! मैं (वचोभिः बन्धुता) अपने स्तोत्रोंके कारण जो भ्रातृत्व प्राप्त किया है, उससे मैं (महः) बडे बडे राक्षसोंको भी (रुजामि) नष्ट करता हूँ । (तत्) वह स्तोत्र (मा) मुझे (पितुः गोतमात्) अपने पिता गोतमसे (अनु इयाय) प्राप्त हुआ था । हे (दमूनाः) शत्रुओंको दबानेवाले अग्ने ! (त्वं) तू (नः) हमारे (अस्य वचसः) इस स्तुतिको (चिकिद्धि) जान ॥ ११ ॥

[६८] हे (अमूर अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (तव) तेरी (अस्वप्नजः) सदा जागती रहनेवाली (तरणयः) शीघ्रतासे जानेवाली, (सुशेवाः) सुख देनेवाली, (अतन्द्रासः) आलस्यसे रहित (अवृकाः) अहिंसक (अश्रमिष्ठाः) न थकने वाली (सध्र्यञ्चः) एक साथ मिलकर चलनेवालीं (पायवः) रक्षा करनेवालीं (ते) वे किरणें (निषद्य) हमारे पास आकर (नः पान्तु) हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हर मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त तेजस्वी तेरी सेवा स्वयं आत्मस्फूर्तिसे प्रेरित होकर करे, जबर्दस्ती नहीं । हम भी शत्रुओंके धनों पर अधिकार करते हुए, अपने घरोंमें अपनी सन्तानोंके साथ क्रीडा करते हुए तथा उत्तम मनसे युक्त होकर तेरी पूजा किया करें ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! जो उत्तम घोडोंवाला होकर धनसे भरे रथ पर बैठकर तेरे पास तेरा अतिथिके समान सत्कार करनेके लिए आता है, उसकी तू रक्षा करता है और मित्र बनकर उसका हित करता है ॥ १० ॥

हे अग्ने ! स्तुति करके मैंने जो तेरा भ्रातृत्व प्राप्ति किया है, उस भ्रातृत्वकी महिमासे मैं बडेसे बडे राक्षसोंको भी नष्ट करूं । तू मेरी इस प्रार्थनाको सुन ॥ ११ ॥

हे सर्वज्ञ अग्ने ! तेरी किरणें कभी न सोनेवालीं, शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवालीं, सुख देनेवालीं, आलस्यसे रहित अहिंसक तथा न थकनेवाली है । वे रक्षक किरणें हमारी रक्षा करें ॥ १२ ॥

६९ ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
रक्ष तान् त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः ॥ १३ ॥
७० त्वया वयं सधन्य१स्त्वोता स्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते ऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥ १४ ॥
७१ अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥ १५ ॥

[५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- वैश्वानरोऽग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

७२ वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः ।
अनूनेन बृहता वक्षथेनो प स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥ १ ॥

अर्थ—[६९] हे (अग्ने) अग्ने ! (ये ते पायवः) जो तेरी रक्षा करनेवाली किरणें हैं, उन्होंने (पश्यन्तः) देखकर (अन्धं मामतेयं) अन्धे ममतापुत्रको (दुरितात् अरक्षन्) दुरितसे बचाया । (विश्ववेदाः) सब कुछ जाननेवाला अग्निने (तान् सुकृतः) उसके समस्त पुण्योंकी (ररक्ष) रक्षा की तब (दिप्सन्तः इत् रिपवः) हरानेकी इच्छा करनेवाले शत्रु भी (नाह देभुः) इसे नहीं दबा सके ॥ १३ ॥

[७०] हे (अह्रयाण) न जाने जानेवाली गतिवाले अग्ने ! (त्वया वयं सधन्यः) तेरे कारण हम धन्य हैं। (त्वा ऊताः) तेरे द्वारा रक्षित होकर हम (तव प्रणीती) तेरे बताये मार्गपर चलकर (वाजान् अश्याम) अन्नोंको प्राप्त करें । (सत्यताते) सत्यका प्रसार करनेवाले अग्ने ! तू (उभा शंसा सूदय) दूर और पास दोनों शत्रुओंको नष्ट कर, (अनुष्ठुया कृणुहि) यह काम तू सदा कर ॥ १४ ॥

१ त्वया वयं सधन्यः— तेरे कारण हम धन्य हैं ।

२ तव प्रणीती वाजान् अश्याम— तेरे बताये मार्गपर चलकर हम अन्नोंको प्राप्त करें ।

[७१] हे (अग्ने) अग्ने ! (अया समिधा) इस समिधासे (ते विधेम) तुझे प्रदीप्त करते हैं, तू (शस्यमानं स्तोत्रं) हमारे द्वारा बोले जाते हुए स्तोत्रको (प्रति गृभाय) स्वीकार कर, (अशसः रक्षसः) तेरी स्तुति न करनेवाले राक्षसोंको तू (दह) जला डाल, तथा हे (मित्रमहः) मित्रके समान पूज्य अग्ने ! तू (अस्मान्) हमारी (द्रुहः निदः अवद्यात् पाहि) द्रोह, निन्दा और दुष्टतासे रक्षा कर ॥ १५ ॥

[५]

[७२] (सजोषाः) समान प्रीतिवाले हम (मीळ्हुषे) सुखकारी (बृहद्भाः) अत्यन्त तेजस्वी (वैश्वानराय अग्नये) वैश्वानर अग्निके लिए (कथा दाशेम) किस प्रकार हवि दें ? वह अग्नि (अनूनेन बृहता वक्षथेन) कहींसे भी न्यूनतासे रहित, विशाल शरीरसे (उप स्तभायत्) सम्पूर्ण विश्वको उसी प्रकार थामे हुए है, (उपमित् रोधः न) जिस प्रकार खम्बा भवनको आधार देता है ॥ १ ॥

भावार्थ— अग्नि अर्थात् ज्ञानीका तेज अन्धे ममताके पुत्रकी रक्षा करता है। ममताके कारण मनुष्य अन्धा हो जाता है और वह मनमाना व्यवहार करने लगता है, तब ज्ञानीका तेज उसे आंखें अर्थात् विवेक प्रदान करके उसे सन्मार्गपर लाकर उसके पुण्योंकी रक्षा करता है। तब काम क्रोधादि शत्रु उसे फिरसे दबानेकी कोशिश करते हैं, पर नहीं दबा पाते ॥१३॥

इस अग्निकी सहायता जिसे मिल जाती है, वह धन्य हो जाता है, जो इसके बताये मार्गपर चलता है, वह हर तरहके अन्नोंको प्राप्त करता है और उसके सभी शत्रु नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! हम समिधाओंसे तुझे प्रदीप्त कर तेरी स्तुति करते हैं, अतः तू हमारी स्तुतियोंको स्वीकार कर, पर जो तेरी स्तुति नहीं करते, उन राक्षसोंको जला डाल । पर हमारी तू हर तरहके दुष्ट कर्मोंसे रक्षा कर ॥ १५ ॥

७३ मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ २ ॥
७४ साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वा- नग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥ ३ ॥
७५ प्र ताँ अग्निर्बभसत् तिग्मजम्भ- स्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥ ४ ॥
७६ अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [७३] (यः स्वधावान्) जिस अन्नसे भरपूर (गृत्सः अमृतः विचेताः) मेधावी, अमर, विशेष बुद्धिमान् (नृतमः यह्वः वैश्वानरः अग्निः देवः) अत्यन्त श्रेष्ठ नेता, महान् वैश्वानर अग्नि देवने (पाकाय मर्त्याय मह्यं) ज्ञानी और मरणशील मुझे (इमां रातिं ददौ) इस धनके दानको दिया था, उसकी (मा निन्दत) निन्दा मत करो ॥२॥

[७४] (द्विबर्हा) दोनों लोकोंमें अपनी ज्वालाओंको फैलानेवाला (तिग्मभृष्टिः) तीक्ष्ण तेजवाला (सहस्ररेताः वृषभः तुविष्मान्) हजारों तरहके बलवाला, पराक्रमी, साहसी (अग्निः) अग्नि (गोः पदं न अपगूळ्हं) गायके पदके समान छिपे हुए (मनीषां) ज्ञानियोंके (महि साम विविद्वान्) महान् ज्ञानको जानता हुआ (मह्यं प्र इत् वोचत्) मेरे लिए उसका उपदेश करे ॥ ३ ॥

१ मनीषां महि साम प्र वोचत्— ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे ।

[७५] (ये) जो मनुष्य (चेततः वरुणस्य मित्रस्य) ज्ञानवान् वरुण और मित्रके (प्रिया ध्रुवाणि धाम) प्रिय और ध्रुव तेजोंको (प्र मिनन्ति) नष्ट करते हैं (तान्) उन्हें, (यः सुराधाः तिग्मजम्भः अग्निः) जो उत्तम ऐश्वर्यवाला, तीक्ष्ण दाढोंवाला अग्नि है, वह (तपिष्ठेन शोचिषा) अपने अत्यन्त तापदायक तेजसे (बभसत्) जला डाले ॥ ४ ॥

[७६] (अभ्रातरः योषणः न) बन्धुबान्धवोंसे रहित स्त्री जिस प्रकार कुमार्ग पर चलती है उसी प्रकार (व्यन्तः) कुमार्ग पर चलनेवाले अथवा (पतिरिपः जनयः न) पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्रियां जिस प्रकार दुराचारिणी हो जाती हैं, उसी प्रकार (दुरेवाः) दुराचारी (अनृताः असत्याः) ऋत अर्थात् नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले, असत्य बोलनेवाले (पापासः) पापियोंने (इदं गभीरं पदं) इस अगाध नरकस्थानको (अजनत) उत्पन्न किया है ॥ ५ ॥

१ व्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत— कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्य शील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है ।

भावार्थ— जिसप्रकार खम्भे भवनको आधार देकर उसे स्थिर रखते हैं, उसीप्रकार यह अग्नि अपने विशाल शरीरसे सारे संसारको थामे हुए है, इसी लिए इस अग्निका नाम वैश्वानर अर्थात् विश्वका रक्षक है ॥ १ ॥

जिस अन्नके स्वामी बुद्धिमान अमर, महान् वैश्वानर देवने मुझे बुद्धिमान् और मरणशील मनुष्यको धन प्रदान किया, उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए । जो दान देनेवाला मनुष्य हो, उसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए ॥ २ ॥

पृथ्वी और द्यु इन दोनों लोकोंमें अपनी ज्वालाओं फैलानेवाला, तीक्ष्ण तेजवाला, हजारों तरहके बलसे युक्त अग्नि ज्ञानियोंके महान् ज्ञानको सर्वत्र फैलाये । यह ज्ञान वाणी के पदोंके समान छिपा रहता है । उसका राष्ट्रमें प्रचार करना चाहिए ॥ ३ ॥

जो अज्ञानी ज्ञानसे युक्त मित्र और वरुणके व्रतोंका उल्लंघन करते हैं या उनके तेजोंका नाश करना चाहते हैं, उन नास्तिक और दुष्टोंको यह तीक्ष्ण दाढों अर्थात् तीक्ष्ण ज्वालाओंवाला अग्नि जला डाले । राष्ट्रमें भी जो ऐसे लोग हों कि जो राष्ट्रीय अनुशासनका उल्लंघन करते हैं, उन्हें ज्ञानीजन या नेता नष्ट करें ॥ ४ ॥

७७ इदं मे अग्ने कियते पावका-ऽमिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद् दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥ ६ ॥
७८ तमिन्न्वे३व समना समान-मभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः ।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्ने-रग्रे रुप आरुपितं जबारु ॥ ७ ॥
७९ प्रवाच्यं वचसः किं मे अस्य गुहा हितमुप निणिग् वदन्ति ।
यदुस्रियाणामप वारिव व्रन् पाति प्रियं रुपो अग्रं पदं वेः ॥ ८ ॥

अर्थ— [७७] हे (पावक अग्ने) पवित्र करनेवाले अग्ने ! (कियते, गुरुं भारं न) जिस प्रकार कोई उदार मनुष्य थोडा मांगनेवालेके लिए भी बहुत ज्यादा दे देता है, उसी प्रकार (अमिनते) किसीकी हिंसा न करनेवाले (मे) मुझे तू (धृषता प्रयसा) शत्रुओंको हराने योग्य शक्तिसे युक्त (गभीरं यह्वं) अगाध, महान् (पृष्ठं) आधार देनेवाले (सप्तधातु) सात धातुओंसे युक्त (बृहत् मन्म) विशाल धन (दधाथ) प्रदान कर ॥ ६ ॥

[७८] (अग्रे) सबसे पहले जिस (जबारु चारु) वेगसे जानेवाले सुन्दर वैश्वानर मण्डलको (ससस्य पृश्नेः रुपः अधि) पदार्थ को उत्पन्न करनेवाली, विविधवर्णोंवाली पृथ्वीके ऊपर (चर्मन् आरुपितं) विचरनेके लिए स्थापित किया था, (तं इत् नु समानं) उसी समदृष्टिवाले वैश्वानरको हमारी (समना) मनपूर्वक की गई (पुनती धीतिः) पवित्र करनेवाली स्तुति (क्रत्वा अभि अश्याः) कर्मके द्वारा प्राप्त हो ॥ ७ ॥

[७९] (मे अस्य वचसः किं प्रवाच्यं) मेरी इस वाणीमें निन्द्य ऐसी कौनसी बात है ? (वदन्ति) ज्ञानी भी कहते हैं कि (उस्रियाणां यत्) गायोंके जिस दूधको दुहनेवाले (वारि इव अप व्रन्) जलके समान दुहते हैं, उसी दूधको अग्निने (निणिक् गुहा हितम्) अच्छी तरह गुहामें छिपाया है, वही अग्नि (वेः रुपः) विशाल पृथ्वीके (प्रियं अग्रं पदं पाति) प्रिय और मुख्य स्थानकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

भावार्थ— स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर है । बन्धुबान्धवोंसे रहित तथा पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्री जिस प्रकार दुराचारिणी होकर कुमार्ग पर चलती है, उसी प्रकार कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले, असत्य बोलनेवाले पापियोंने ही इस पृथ्वी पर अगाध नरक स्थानका निर्माण किया है । ऐसे ही दुष्ट मनुष्य देशको नरक बना देते हैं, अतः उनका नाश करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ५ ॥

हे पवित्र करनेवाले अग्ने ! जिसप्रकार कोई उदार मनुष्य थोडा मांगने पर भी ज्यादा देता है, उसी प्रकार तू किसीकी हिंसा न करनेवाले मुझे सात तरहके विशाल धन प्रदान कर ॥ ६ ॥

पहले प्रजापतिने आदित्यमण्डलका निर्माण किया और उसे पदार्थको उत्पन्न करनेवाली विविध रंगोंवाली पृथ्वीके ऊपर स्थापित किया । तबसे आदित्यमण्डल विचरण कर रहा है ॥ ७ ॥

ऋषि इस वैश्वानरअग्निकी जो प्रशंसा करता है, उसमें असत्यता जरा भी नहीं है । वैश्वानर अग्नि वस्तुतः महान् है, यह उसीकी महिमा है कि जिस दूधको दुहनेवाले जलकी तरह दुहते हैं, उसे उसने गायके थन रूपी गुहामें छिपा दिया है । वैश्वानर अर्थात् प्राणियोंको जीवित रखनेवाला शरीरस्थ अग्नि ही गायके स्तनोंमें दूधको प्रेरित करता है और वही इस पृथ्वीके मुख्य स्थान यज्ञकी रक्षा करता है ॥ ८ ॥

८० इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद ॥ ९ ॥
८१ अध द्युतानः पित्रोः सचासा ऽमनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद् गो — र्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥ १० ॥
८२ ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमान — स्तवाशसा जातवेदो यदीदम् ।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत् पृथिव्याम् ॥ ११ ॥
८३ किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान् ।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥ १२ ॥

अर्थ— [८०] (इदं) यह (त्यत् महां महि पूर्व्यं अनीकं) उस महान् आदित्यकी महान् और श्रेष्ठ सेना है (यत्) जिसके कारण (उस्रिया गौः सचते) दुधारु गाय संयुक्त होती है। (ऋतस्य पदे) ऋतके स्थानमें (दीद्यानं) चमकनेवाले तथा (रघुष्यत्) वेगसे जानेवाले सूर्यको (विवेद) मैंने जान लिया है, वह (गुहां रघुयत्) गुहामें शीघ्रतासे जाता है ॥ ९ ॥

[८१] (पित्रोः सचा द्युतानः) द्यावापृथ्वीके बीचमें चमकनेवाला सूर्य (पृश्नेः चारु गुह्यं) गायके उत्तम दूधको (आसा अमनुत) मुंहसे पीता है। (गोः मातुः परमे पदे) गाय माताके उत्कृष्ट स्थानमें (अन्ति सत्) निहित दूधको (वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य) बलवान् तेजस्वी और प्रयत्न करनेवाले देवकी (जिह्वा) जिह्वा पीती है ॥ १० ॥

[८२] (पृच्छ्यमानः) पूछे जानेपर मैं (नमसा) विनम्रता पूर्वक (ऋतं वोचे) यह सत्य बात ही कहता हूँ कि हे (जातवेदः) जातवेद अग्ने ! (तव आशसा) तेरे आशिर्वादसे (यत् इदं) जो कुछ यह है, (अस्य त्वं क्षयसि) उसका तू ही घर है। (दिवि यत् उ द्रविणं) द्युलोकमें जो कुछ धन है (यत् पृथिव्यां) जो कुछ पृथिवीमें है, अथवा (यत् ह विश्वं) जो सम्पूर्ण धन है, उसका भी तू स्वामी है। ॥ ११ ॥

१ दिवि पृथिव्यां यत् द्रविणं अस्य त्वं क्षयसि— द्युलोक और पृथ्वीलोकमें जो कुछ धन है, उसका तू ही स्वामी है।

[८३] हे (जातवेद) सम्पूर्ण उत्पन्न विश्वको जाननेवाले अग्ने ! (अस्य) इस ऐश्वर्यमेंसे (किं द्रविणं नः) कौनसा धन हमारे लिए योग्य है, तथा (कत् ह रत्न) कौनसा रत्न हमारे लिए योग्य है, उसे (चिकित्वान्) सब कुछ जाननेवाला तू (नः वोचः) हमें बता। (अध्वनः) उत्तम मार्गसे जानेवाले (नः) हमारे लिए योग्य (यत् परमं) जो उत्तम ऐश्वर्य (गुहा) गुहामें निहित है, उसे (नः) हमें बता, हम (निदानाः) निन्दित होकर (रेकु पदं न अगन्म) खाली घरोंमें न जायें ॥ १२ ॥

१ अध्वनः नः परमं— उत्तम मार्गसे जानेवाले हमें उत्तम ऐश्वर्य मिले। जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है।

२ निदानाः रेकु पदं न अगन्म— हम निन्दित होकर खाली अर्थात् निर्धनके घर न जाएं।

भावार्थ— यह उस वैश्वानर अग्नि अर्थात् सूर्यकी महान् किरणोंकी सेना ही है, जिसके कारण दूध देनेवाली गायें अर्थात् जल बरसानेवाले मेघ आपसमें संयुक्त होते हैं। सूर्यकी किरणोंके कारण ही मेघोंकी उत्पत्ति होती है। द्युमें चमकनेवाले सूर्यकी किरणें ही विजलीके रूपमें गुहामें अर्थात् बादलोंमें रहकर वेगसे सर्वत्र जाती है ॥ ९ ॥

द्यावापृथ्वीके बीचमें चमकनेवाला सूर्य मेघोंमें छिपे हुए पानीको पीता है ॥ १० ॥

इस विश्वमें जो कुछ धन और ऐश्वर्य है, वह सब इस अग्निका ही है, वही इन सब धनोंका स्वामी है, यह एक सत्य है, जिसे सबको नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये। मनुष्य ' सब धन अग्निका है ' यह सोचकर घमण्ड न करे धनवान् होकर भी नम्र बना रहे ॥ ११ ॥

८४ का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ॥ १२ ॥
८५ अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥ १४ ॥
८६ अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद् वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥ १५ ॥

अर्थ— [८४] (का वयुना मर्यादा) ऐश्वर्य प्राप्तिकी मर्यादा क्या, (कत् ह वामं) तथा रमणीय धन क्या, हम सभी ऐश्वर्योंकी तरफ उसी तरह (गमेम) जाएं, जिस प्रकार (रघवः वाजं न) वेगवान् घोडे युद्धकी तरफ जाते हैं। (अमृतस्य सूरः) अमरणशील सूर्यकी (देवी पत्नीः उषासः) तेजसे युक्त पत्नी उषायें (वर्णेन) अपने प्रकाशसे (नः कदा ततनन्) हमारी उन्नति कब करेंगी ? ॥ १३ ॥

[८५] (अनिरेण) नीरस (फल्ग्वेन) निष्फल, (प्रतीत्येन) कठिन और (कृधुना) बहुत छोटी (वचसा) वाणीसे (अतृपासः) मनुष्य अतृप्त ही रहते हैं। (अध) तब हे (अग्ने) अग्ने ! (इह) यहां इस यज्ञमें वे लोग (ते किं वदन्ति) तेरी स्तुति क्या करेंगे ? (अन्- आयुधासः असता सचन्तां) शस्त्रसे रहित अर्थात् पराक्रमहीन लोग दुःखसे युक्त हों ॥ १४ ॥

१ अनिरेण फल्ग्वेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति— नीरस और निष्फल वाणीके कारण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे ?

२ अन्- आयुधासः असता सचन्तां— शस्त्र धारण न करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं।

[८६] (समिधानस्य) प्रदीप्त होनेवाले (वृष्णः) बलशाली (वसोः) सबको बसानेवाले (अस्य) इस अग्निका (अनीकं) तेज (श्रिये) मनुष्यके कल्याणके लिए (दमे आ रुरोच) घरमें सदा प्रकाशित होता रहता है। (रुशत् वसानः) तेजको धारण किए हुए होनेके कारण (सुदृशीकरूपः) सुन्दर, देखने योग्य रूपवाला तथा (पुरुवारः) बहुतोंके द्वारा वरणीय यह अग्नि उसी तरह (अद्यौत्) प्रकाशित होता है, जिस प्रकार (क्षितिः राया न) कोई मनुष्य ऐश्वर्यके कारण चमकता है ॥ १५ ॥

१ अस्य अनीकं श्रिये दमे आ रुरोच - इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याणके लिए ही घरमें प्रकाशित होता है।

भावार्थ— हे अग्ने ! इस विश्वमें जितना कुछ ऐश्वर्य भरा पडा है, उसमेंसे कौनसा धन और रत्न हमारे लिए योग्य है, उसे बता हम सदा उत्तम मार्गसे जाननेवाले हैं, अतः हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर ताकि हमारी स्थिति ऐसी न हो कि हमें किसी निर्धनके घर जाकर भीख मांगनी पडे और निन्दाके पात्र बनें ॥ १२ ॥

हम धन क्या, ऐश्वर्यका अर्थात् सभी कुछ प्राप्त करें और प्रतीदिन आनेवाली सूर्यकी पत्नी उषा अपने प्रकाशसे हमारी उन्नति करती रहे ॥ १३ ॥

जिनकी वाणी हमेशा रूखी रहती है, जो कभी भी मधुरतासे नहीं बोलते, जिनका बोलना निष्फल ही रहता है, अर्थात् जो सदा बकवास करते रहते हैं तथा जिनकी वाणी बहुत ही नीच होती है, वे स्वयं अतृप्त अर्थात् असन्तोषी रहते हैं। वे भला अग्नि जैसे श्रेष्ठ देवकी स्तुति क्या करेंगे ? ऐसे मनुष्य कभी पराक्रमी भी नहीं हो सकते इसलिए वे हमेशा दूसरोंके दास बने रहकर दुःख ही पाते हैं ॥ १४ ॥

प्रदीप्त होनेवाले बलशाली इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याणके लिए सर्वत्र प्रकाशित होता है। यह हमेशा तेजको धारण करनेके कारण सुन्दर रूपवाला होकर उसी तरह चमकता है, जिस प्रकार ऐश्वर्य की प्राप्ति होने पर मनुष्य ॥ १५ ॥

[६]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— अग्निः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।]

८७ ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होत॒रग्ने॒ तिष्ठ॑ दे॒वता॑ता॒ यजी॑यान् ।
त्वं हि विश्व॑म॒भ्यसि॒ मन्म॒ प्र वे॒धस॑श्चित् तिरसि मनी॒षाम् ॥ १ ॥
८८ अमू॑रो॒ होता॒ न्य॑सादि वि॒क्ष्व१॒॑ग्निर्म॒न्द्रो वि॒दथे॑षु॒ प्रचे॑ताः ।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒तेवा॑श्रे॒न्मेते॑व धू॒मं स्त॑भाय॒दुप॒ द्याम् ॥ २ ॥
८९ य॒ता सु॑जू॒र्णी रा॒तिनी॑ घृ॒ताची॑ प्रदक्षि॒णिद् दे॒वता॑तिमुरा॒णः ।
उदु॒ स्वरु॑र्नव॒जा नाक्रः॑ प॒श्वो अ॑नक्ति॒ सुधि॑तः सु॒मेकः॑ ॥ ३ ॥
९० स्ती॒र्णे ब॒र्हिषि॑ समिधा॒ने अ॒ग्ना ऊ॒र्ध्वो अ॑ध्व॒र्युर्जु॑जुषा॒णो अ॑स्थात् ।
पर्य॒ग्निः प॑शु॒पा न होता॑ त्रिवि॒ष्ट्ये॑ति प्र॒दिव॑ उरा॒णः ॥ ४ ॥

---

[६]

अर्थ— [८७] हे (अध्वरस्य होतः अग्ने) यज्ञके होता अग्ने ! (यजीयान्) याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ तू (देवताता न ऊर्ध्वः ऊ षु तिष्ठ) यज्ञमें हम लोगोंकी अपेक्षा ऊंचे स्थानपर बैठ । (त्वं हि विश्वं मन्म अभ्यसि) तू ही हमारी सम्पूर्ण प्रार्थनाओंको जाननेवाला है और (वेधसः चित् मनीषां प्र तिरसि) ज्ञानियोंकी बुद्धिको बढानेवाला है ॥ १ ॥

१ यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति— यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है ।

२ वेधसां मनीषा प्र तिरसि (ति)— यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है ।

[८८] (अमूरः होता मन्द्रः प्रचेताः अग्निः) बुद्धिशाली, यज्ञ करनेवाला, प्रसन्नताको देनेवाला और उत्तम ज्ञानी अग्नि (विदथेषु विक्षु नि असादि) यज्ञमें प्रजाओंके मध्यमें बैठता है । वह (सविता इव भानुं ऊर्ध्वं अश्रेत्) सूर्यकी तरह अपनी किरणोंको ऊपरकी ओर फेंकता है और (मेता इव द्यां उप धूमं स्तभायत्) खम्भेकी तरह द्युलोकके ऊपर धूमको धारण करता है ॥ २ ॥

[८९] (यता सुजूर्णिः घृताची रातिनी) उठाई गई, पुरातन, घृतको धारण करनेवाली सुवा घृतसे पूर्ण है । (देवतातिं उराणः प्रदक्षिणित्) यज्ञकी वृद्धि करनेवाला अध्वर्यु यज्ञके चारों ओर घूमता है । (नवजाः स्वरुः न उदु) नया बनाया गया यूप सीधा खडा हुआ है । और (अक्रः सुमेकः सुधितः पश्वः अनक्ति) आक्रमण करनेवाला, तेजस्वी, अच्छी प्रतिभा सम्पन्न, सबको देखनेवाला अग्नि पूर्ण रूपसे प्रज्वलित हो रहा है ॥ ३ ॥

[९०] (बर्हिषि स्तीर्णे अग्नौ समिधाने) कुशके बिछाये जाने तथा अग्निके समृद्ध होनेपर (अध्वर्युः जुजुषाणः ऊर्ध्वः अस्थात्) अध्वर्यु देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये तैय्यार होता है । (प्रदिवः अग्निः होता) दिव्य गुणयुक्त तेजस्वी होता (उराणः) हव्यको विस्तृत करता हुआ (पशुपा न त्रिविष्टि परि एति) पशुपालककी तरह तीन बार प्रदक्षिणा करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यज्ञमें इस अग्निका सर्वोच्च स्थान रहता है । इसलिए यह सभी भक्तोंकी प्रार्थनाको सुनता है और उनकी मननशीलताको बढाता है ॥ १ ॥

यह सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी अग्नि यज्ञोंमें प्रजाओंमें जाकर बैठता है और अपनी किरणों और धुंएको द्युलोकमें फेंकता है । अग्निका ऊर्ध्वज्वलन प्रसिद्ध ही है । इसी तरह अग्रणी नायकको सदा उन्नतिकी तरफ ही बढना चाहिए ॥ २ ॥

घीसे भरी हुई सुवायें आहुतिके लिए उठायी जा रही है । ऋत्विग्गण यज्ञाग्निकी प्रदक्षिणा कर रहे हैं । पासमें ही नवीन और उत्तम लकडीसे बना हुआ यूप स्तंभ खडा हुआ और कुण्डमें ज्ञानी और तेजस्वी अग्नि प्रज्वलित हो रहा है ॥ ३ ॥

कुशके बिछाये जाने तथा अग्निके प्रज्ज्वलित होनेपर अध्वर्यु देवोंको प्रसन्न करनेके लिए तैय्यार होता है और उस यज्ञाग्निकी तीन बार परिक्रमा करता है ॥ ४ ॥

९१ परि त्मना मितद्रुरेति होता ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥ ५ ॥
९२ भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग् घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत् ते शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥ ६ ॥
९३ न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽ३ ऽग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥
९४ द्विर्यं पञ्च जीजनन् त्संवसानाः स्वसारो अग्निं मानुषीषु विक्षु ।
उषर्बुधमथर्यो३ न दन्तं शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [९१] (मन्द्रः, होता, मधुवचाः ऋतावाः अग्निः) प्रसन्नता प्रदान करनेवाला होमनिष्पादक, मधुर शब्द करनेवाला, यज्ञवान् अग्नि (मितद्रुः त्मना परि एति) धीमे गतिवाला होकर स्वयं चारों ओर परिक्रमा करता है। (अस्य शोकाः वाजिनः न द्रवन्ति) इसकी किरणें घोडेके समान सब ओर दौडती हैं। (यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते) जब यह प्रदीप्त होता है उस समय सारे लोक इससे डर जाते हैं ॥ ५ ॥

१ मन्द्रः, मधुवाचाः अग्निः परि एति— आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

२ यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते— जब यह अग्नि प्रज्ज्वलित होता है, तब सभी लोक इससे डरते हैं।

[९२] हे (सु अनीक अग्ने) सुन्दर ज्वालावाले अग्ने ! (घोरस्य सतः विषुणस्य) भयके देनेवाले होते हुए भी सर्वत्र व्याप्त (ते चारुः भद्रा संदृक्) तेरी सुन्दर और कल्याणकारी कांति अच्छी प्रकार दृष्टिगोचर होती है। (यत् ते शोचिः तमसा न वरन्त) क्योंकि तेरा प्रकाश अंधकारसे ढका नहीं जा सकता और (ध्वस्मानः तन्वि रेपः न आ धुः) राक्षसादि तेरे शरीरमें पाप स्थापित नहीं कर सकते हैं ॥ ६ ॥

[९३] (जनितोः यस्य सातुः न अवारि) सबको उत्पन्न करनेवाले जिस अग्निके दानका निवारण कोई भी नहीं कर सकता (मातरापितरा दृष्टौ नू चित् न) द्यावा-पृथ्वी भी जिसकी इच्छापूर्ति करनेमें शीघ्र समर्थ नहीं होते, (अध सुधितः पावकः अग्निः) बुद्धिशाली, पवित्र करनेवाला अग्नि (मानुषीषु विक्षु मित्रः न दीदाय) मनुसे सम्बन्धित प्रजाओं-मनुष्योंके बीचमें मित्रकी तरह दीप्तिमान् होता है ॥ ७ ॥

[९४] (उषर्बुधं, दन्तं, शुक्रं) उषःकालमें जागनेवाले, हविभक्षक, तेजस्वी (सु आसं यं अग्निं) उत्तम रूपसे प्रतिष्ठित जिस अग्निको (तिग्मं परशुं न) तीक्ष्ण फरसेके समान (मानुषीषु विक्षु संवसानाः) मनावी प्रजाओंमें रहनेवाली (द्विपंच स्वसारः अथर्यः) दस बहिनरूपी अंगुलियां (जीजनन्) उत्पन्न करती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— आनन्ददायक, मधुर शब्द करनेवाला यह अग्नि अपनी गतिसे चारों ओर व्याप्त होता है। इसकी किरणें चारों ओर फैलती हैं और जब यह प्रज्ज्वलित होता है, तब सारे लोक इससे डरते हैं ॥ ५ ॥

यह तेजस्वी अग्नि अपने शत्रुओंके लिए भयजनक होता हुआ भी अपने मित्रोंके लिए सुन्दर और कल्याणकारी है। इसका तेज अन्धकारसे ढका नहीं जा सकता, तथा दुष्ट मनुष्य इसका संहार भी नहीं कर सकते ॥ ६ ॥

सबको उत्पन्न करनेवाले इस अग्निके द्वारा दिए जाते हुए दानको कोई रोक नहीं सकता। द्यावापृथ्वी भी इसकी इच्छा पूरी करनेमें समर्थ नहीं होते। ऐसा महिमाशाली यह अग्नि मानवी प्रजाओंके बीचमें मित्रकी तरह प्रकाशित होता है ॥ ७ ॥

उषःकालमें जगनेवाले, तेजस्वी तथा तीक्ष्ण फरसेके समान शत्रुके विनाशक इस अग्निको मानवी प्रजाओंकी दस बहिन रूपी अंगलियां मथकर प्रकट करती हैं ॥ ८ ॥

९५ तव॒ त्ये अ॑ग्ने ह॒रितो॑ घृत॒स्ना रोहि॑तास ऋ॒ज्वञ्च॒: स्वञ्च॑: ।
अ॒रु॒षासो॒ वृष॑ण ऋजुमु॒ष्का आ दे॒वता॑तिमह्वन्त द॒स्मा: ॥ ९ ॥

९६ ये ह॒ त्ये ते॒ सह॑माना अ॒यास॑स्त्वे॒षासो॑ अग्ने अ॒र्चय॒श्चर॑न्ति ।
श्ये॒नासो॒ न दु॑वस॒नासो॒ अर्थं॑ तुविष्व॒णसो॒ मारु॑तं॒ न शर्ध॑: ॥ १० ॥

९७ अका॑रि॒ ब्रह्म॑ समिधान॒ तुभ्यं॒ शंसा॑त्यु॒क्थं यज॑ते॒ व्यू॑ धा: ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दुर्नम॒स्यन्त॑ उ॒शिज॒: शंस॑मा॒यो: ॥ ११ ॥

[७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ जगती, २-६ अनुष्टुप् ।]

९८ अ॒यमि॒ह प्र॑थ॒मो धा॑यि धा॒तृभि॒र्होता॒ यजि॑ष्ठो अध्व॒रेष्वीड्य॑: ।
यमप्न॑वानो॒ भृग॑वो विरुरु॒चुर्वने॑षु चि॒त्रं वि॒भ्वं॑ वि॒शेवि॑शे ॥ १ ॥

अर्थ— [९५] हे (अग्ने) अग्ने! (तव त्ये) तेरे वे (घृतस्नाः रोहितासः) घृत बढानेवाले, लाल रंगके (ऋज्वंचः स्वंचः) सरल गतिसे उत्तम प्रकारसे जानेवाले (अरुषासः वृषणः) तेजस्वी और युवा (ऋजुमुष्काः दस्माः) सुगठित अवयवोंवाले और सुन्दर (हरितः) घोडे (देवतातिं अह्वन्त) यज्ञमें बुलाये जाते हैं ॥ ९ ॥

[९६] हे (अग्ने) अग्ने! (ह ये त्ये सहमानाः) जो शत्रुओंको हरानेवाली (अयासः दुवसनासः ते अर्चयः) गमनशील, दमकती हुईं, पूजाके योग्य तेरी रश्मियाँ (श्येनासः न अर्थं चरन्ति) अश्वोंकी तरह गन्तव्य स्थानपर जाती हैं। वे तेरी रश्मियां (मारुतं शर्धः न तुविष्वणसः) मरुत्गणोंकी तरह अत्यन्त ध्वनि करती हैं ॥ १० ॥

[९७] हे (समिधान) देदीप्यमान् अग्ने! (तुभ्यं ब्रह्म अकारि) तेरे लिये लोगोंने यह स्तोत्र बनाया है। होता (उक्थं शंसाति) वेदमंत्रोंका उच्चारण करता है और (यजते) यजन किया जाता है। अतः तू उन्हें (वि, धाः उ) धारण कर। (आयोः शंसं होतारं अग्निं नमस्यन्तः) मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय, देवोंको बुलानेवाले अग्निको नमस्कार करते हुये (मनुषः उशिजः नि षेदुः) मनुष्य उत्तम धनादिकी कामनासे इस यज्ञमें आकर बैठते हैं ॥ ११ ॥

[७]

[९८] (अप्नवानः भृगवः) अप्नवान और भृगुवंशियोंने (वनेषु यं चित्रं विशेविशे विभ्वं विरुरुचुः) जंगलोंमें जिस अद्भुत और सब प्रजाओंके ईश्वर अग्निको प्रदीप्त किया, वही (होता, यजिष्ठः अध्वरेषु ईड्यः प्रथमः) होता, याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ कर्मवाला, यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य और सब देवोंमें मुख्य (अयं धातृभिः इह धायि) यह अग्नि यज्ञ करनेवाले विद्वानों द्वारा इस यज्ञमें स्थापित हुआ है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस अग्निके तेजस्वी, सुन्दर अवयवोंवाले, बलिष्ठ घोडे यज्ञमें बुलाये जाते हैं। ये घोडे अग्निकी किरणें ही हैं, जो प्रत्येक यज्ञमें प्रकट की जाती हैं ॥ ९ ॥

इस अग्निकी ज्वालाएं तेजसे युक्त तथा पूज्य होकर घोडेकी तरह अपने स्थानपर पहुंचती हैं और मरुतोंके संघकी तरह शब्द करती हैं ॥ १० ॥

जिस प्रशंसनीय अग्निकी उपासना करते हुए मनुष्य धनादिकी इच्छासे यज्ञमें आकर बैठते हैं, उसी अग्निके लिए सब स्तुतियां, सब मंत्र और सब हवन किए जाते हैं ॥ ११ ॥

जंगलमें उत्पन्न हुए हुए तथा सभीके ईश्वर इस अग्निको मनुष्योंने यज्ञमें स्थापित किया ॥ १ ॥

९९ अग्ने कदा त आनुषग् भुवद् देवस्य चेतनम् ।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम् ॥ २ ॥

१०० ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे ॥ ३ ॥

१०१ आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

१०२ तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥ ५ ॥

१०३ तं शश्वतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [९९] हे (अग्ने) अग्ने ! (हि विक्षु मर्तासः ईड्यं त्वा जगृभ्रिरे) क्योंकि प्रजाओंमें मनुष्यलोग स्तुतिके योग्य तुझको ग्रहण करते हैं। (अध देवस्य ते चेतनं कदा आनुषक् भुवत्) इस कारणसे प्रकाशमान् तेरा तेज चारों ओर कब फैलेगा ? ॥ २ ॥

[१००] (ऋतावानं, विचेतसं) मायारहित, ज्ञानसम्पन्न (विश्वेषां, अध्वराणां हस्कर्तारं) सम्पूर्ण यज्ञोंको प्रकाशित करनेवाले अग्निको, (पश्यन्तः दमे दमे) देखते हुये मनुष्य प्रत्येक यज्ञगृहमें उसी प्रकार अलंकृत करते हैं। (स्तृभिः द्यां इव) जिस प्रकार नक्षत्रोंसे द्युलोक अलंकृत होता है ॥ ३ ॥

[१०१] (यः विश्वाः चर्षणीः अभि) जो अग्नि सम्पूर्ण प्रजाओंको अपनी श्रेष्ठतासे अभिभूत करता है। उसी (आशुं, विवस्वतः दूतं, केतुं, भृगवाणं) शीघ्रगामी, उपासकके दूत, पताका स्वरूप, तेजस्वी अग्निको (आयवः विशेविशे, आ जभ्रुः) सभी मनुष्य अपने अपने घरोंमें स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

[१०२] मनुष्योंने (होतारं, चिकित्वांसं) देवोंको बुलानेवाले, विद्वान्, (रण्वं, पावकशोचिषं, यजिष्ठं सप्त धामभिः) रमणीय, पवित्र तेजवाले याज्ञिकोंमें श्रेष्ठ और सात प्रकारके तेजोंसे युक्त (तं ईं) इस अग्निको (आनुषक् नि षेदिरे) यथास्थान प्रतिष्ठित किया है ॥ ५ ॥

[१०३] (शश्वतीषु मातृषु वने आ सन्तं) अनेक प्रकारके जलोंमें तथा वृक्षोंमें विद्यमान (वीतं अश्रितं चित्रं गुहाहितं) सुन्दर होते हुए भी पासमें रखनेके अयोग्य, विचित्र, गुहामें अवस्थित, (सुवेदं कूचिदर्थिनं तं) सुविज्ञ सर्वत्र, हव्य ग्रहण करनेवाले उस अग्निको मनुष्योंने स्थापित किया है ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! सभी मनुष्य तेरा प्रकाश पाना चाहते हैं, इसलिए तू कब अपना प्रकाश फैलाएगा ॥ २ ॥

सभी यज्ञोंमें प्रकाशित होनेवाले, सत्यशाली, अग्निको मनुष्य अपने घरोंमें उसी प्रकार सुशोभित करते हैं, जिस प्रकार द्युलोक नक्षत्रोंसे सुशोभित होता है ॥ ३ ॥

अपनी श्रेष्ठतासे सभी मनुष्योंको परास्त करनेवाले, शीघ्रगामी, दूतकर्म करनेवाले तथा तेजस्वी अग्निको सभी मनुष्य अपने अपने घरोंमें प्रज्ज्वलित करते हैं ॥ ४ ॥

सभी मनुष्योंने इस ज्ञानी और सात प्रकारके तेजोंसे युक्त अग्निको उत्तम स्थानपर स्थापित किया है ॥ ५ ॥

वह अग्नि जल और काष्ठसे उत्पन्न सुन्दर होते हुए, भी जलानेके भयसे पासमें रखनेके अयोग्य उत्तम ज्ञानी और सर्वत्र प्रतिष्ठित है ॥ ६ ॥

१०४ ससस्य यद् वियुता सस्मिन्नूध-न्नृतस्य धामन् रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥ ७ ॥

१०५ वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वा-नुभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥ ८ ॥

१०६ कृष्णं त एम रुशतः पुरो भा-श्चरिष्ण्व१र्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥ ९ ॥

१०७ सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥ १० ॥

अर्थ— [१०४] (देवाः ससस्य वियुता) स्तोतालोग निद्रासे विमुक्त होकर उषःकालमें, (ऋतस्य धामन् सस्मिन्, ऊधन् रणयन्त) उदकके स्थान स्वरूप सम्पूर्ण यज्ञोंमें अग्निको प्रसन्न करते हैं। (यत् महान् ऋतावा) क्योंकि वह महान् सत्यवान् (रातहव्यः अग्निः नमसा सदमित् अध्वराय वेः) दिए गए हव्यको ग्रहण करनेवाला वह अग्नि नमस्कारपूर्वक सदा उपासकके किये हुये यज्ञको जानता है ॥ ७ ॥

[१०५] हे अग्ने ! (विद्वान्) ज्ञानवान् तू (अध्वरस्य दूत्यानि वेः) यज्ञके दूतके कर्मोंको अच्छी तरह जानता है। तू (उभे रोदसी अन्तः संचिकित्वान्) आकाश-पृथ्वीके अन्दर व्यापक होकर उन्हें भलीप्रकार जानता है। (प्रदिवः उराणः विदुष्टरः दूतः) पुरातन, सबकी वृद्धि करनेवाला, शत्रुओंसे पराभूत न होनेवाला देवोंका दूत तू (दिवः आरोधनानि ईयसे) द्युलोकके उच्च स्थानको भी प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

[१०६] हे अग्ने ! (रुशतः) तेजस्वी (ते एम कृष्णं) तेरा मार्ग कृष्णवर्ण है । तेरी (भा पुरः) कान्ति उत्कृष्ट है, तेरा (चरिष्णु अर्चिः वपुषां एकं इत्) संचरणशील तेज, सम्पूर्ण तेजयुक्त पदार्थोंमें सर्वश्रेष्ठ है। (यत् अप्रवीता गर्भं ह दधते) जब गर्भरहित अरणि तुझे अपने गर्भमें धारण करती है तब तू (सद्यः चित् जात दूतः, भवसि) तुरन्त उत्पन्न होकरके दूत बन जाता है ॥ ९ ॥

[१०७] (सद्यः जातस्य, ओजः ददृशानं) उत्पन्न होते ही इस अग्निका तेज दीखने लगता है। (यत् अस्य शोचिः, अनु वातः वाति) जब इस अग्निका ज्वालाको लक्ष्य करके पवन चलता है, तब वह अग्नि (अतसेषु तिग्मां जिह्वां वृणक्ति) वृक्ष समुहोंमें अपनी तीक्ष्ण ज्वालाको व्याप्त कर देता है और (स्थिरा चित् अन्ना जम्भैः विदयते) कठिनसे कठिन अन्न काष्ठादिको भी अपनी दाढोंसे चबा जाता है ॥ १० ॥

भावार्थ— वह अग्नि अपने उपासकों द्वारा किए जानेवाले यज्ञोंका जानता हुआ उनके द्वारा दी गई हवियोंको प्रेमसे स्वीकार करता है, इसलिए उसे सभी मनुष्य अपने अपने यज्ञोंमें बुलाकर प्रसन्न करते हैं ॥ ७ ॥

यह अग्नि दूतके कर्मोंको अच्छी तरह जानता है और उन द्यावापृथ्वीके अन्दर व्यापक होकर उन्हें भी अच्छी तरहसे जानता है। सबको समृद्ध करनेवाला, शत्रुओंसे कभी न हारनेवाला वह अग्नि द्युलोकसे भी ऊंचे स्थानपर जा पहुंचता है ॥८॥

इस तेजस्वी अग्निके जानेका मार्ग धुंवेका होनेसे काला है, पर इसकी ज्वालायें सभी तेजस्वी पदार्थोंसे सर्वश्रेष्ठ हैं ! जब अरणियोंके मध्यभागमें इसकी उत्पत्ति होती है, तो उत्पन्न होते ही यह देवोंको हवि पहुंचाने लगता है ॥ ९ ॥

उत्पन्न होते ही इस अग्निका तेज सर्वत्र फैलने लगता है और हवाकी गति भी तीव्र हो जाती है। तब यह अग्नि वृक्षोंको अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओंसे जला डालता है ॥ १० ॥

१०८ तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥ ११ ॥

[८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्द- गायत्री ।]

१०९ दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥ १ ॥
११० स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
१११ स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे । दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥ ३ ॥
११२ स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते । विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥ ४ ॥

अर्थ— [१०८] (यत् तृषुणा अन्ना तृषु ववक्ष) जो अग्नि बहुत तीव्र इच्छा होनेके कारण अन्नरूप काष्ठादिको शीघ्र ही जला देता है तब (यह्वः अग्निः तृषुं दूतं कृणुते) महान् अग्नि स्वयंको शीघ्र ही दूत बना लेता है वह (निजूर्वन् वातस्य मेळिं सचते) काष्ठसमूहको दग्ध करके वायुके बलके साथ मिल जाता है और (आशुं न अर्वा वाजयते हिन्वे) अश्वारोही जिस प्रकार घोडेको पुष्ट करता है, उसी प्रकार गमनशील अग्नि अपनी ज्वालाको पुष्ट करता है और प्रेरणा देता है ॥ ११ ॥

[८]

[१०९] हे अग्ने ! (विश्ववेदसं हव्यवाहं) समस्त धनोंके स्वामी ! देवताओंको हव्य पहुँचानेवाले (अमर्त्यं, यजिष्ठं दूतं वः) अविनाशी, अतिशय पूजनीय एवं देवताओंके दूत तुझे मैं (गिरा ऋञ्जसे) स्तुतियों द्वारा बढाता हूँ ॥ १ ॥

[११०] (स हि वसुधितिं वेद) वह अग्नि निश्चयपूर्वक, धनके धारण करनेवालोंको जानता है। तथा वह (महान्, दिवः आरोधनं) सर्वश्रेष्ठ अग्नि देवलोकके आरोहण स्थानको भी जानता है । अतः (सः इह देवान् आ वक्षति) वह यहाँ इस हमारे यज्ञमें इन्द्रादि देवोंको सब ओरसे बुलावे ॥ २ ॥

[१११] (सः देवः) वह प्रकाशमान् अग्नि (देवान् आनमं वेद) देवोंको भी झुकाना जानता है। वह (दमे ऋतायते प्रियाणि चित् वसु दाति) यज्ञ गृहमें यज्ञाभिलाषीके लिये प्रियसे प्रिय धनको भी देता है ॥ ३ ॥

देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु— जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है।

[११२] (सः होता स इत् उ दूत्यं चिकित्वान्) वह अग्नि होता है, वही दौत्य कर्मको जानता है। वह (दिवः आरोधनं विद्वान् अन्तः ईयते) द्युलोकके योग्य स्थानको भी जाननेवाला वह सर्वत्र व्याप्त है ॥ ४ ॥

भावार्थ— अग्नि सब वृक्षादियोंको जलाकर देवोंको हवि पहुंचानेका काम करता है। वृक्षोंको जलाते समय वायु भी अग्निकी सहायता करता है, इस प्रकार वायुकी सहायतासे अग्नि अपनी ज्वालाओंको पुष्ट करता हुआ उन्हें विस्तृत करता है ॥ ११ ॥

यह अग्नि समस्त धनोंका स्वामी, देवोंको हवि पहुंचानेवाला, अविनाशी, अत्यन्त पूज्य और स्तुतियों द्वारा बढाने योग्य है ॥ १ ॥

किसके पास कितना धन है, यह सब अग्नि जानता है, साथ ही वह देवोंके स्थानोंको जानता है, इसलिये यज्ञमें देवोंको बुलाकर लानेमें वही समर्थ है ॥ २ ॥

वह तेजस्वी अग्नि इतना वीर है कि सभी देव भी उसके आगे झुकते हैं, वही वीर अग्नि यज्ञीय पुरुषको उत्तमोत्तम धन प्रदान करता है ॥ ३ ॥

वह अग्नि होता है, इसलिए वह हवि पहुंचाने रूप दूतके कर्मको जानता है। इसी कारणसे वह सर्वत्र आता जाता रहता है। अग्रणी नेताका आना जाना सभी प्रजाओंमें होता रहे। वह एक जगह कभी न बैठे ॥ ४ ॥

११३ ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः । य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥ ५ ॥
११४ ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे । ये अग्ना दधिरे दुवः ॥ ६ ॥
११५ अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः । अस्मे वाजास ईरताम् ॥ ७ ॥
११६ स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् । अति क्षिप्रेव विध्यति ॥ ८ ॥

[९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११७ अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम् । इयेथ बर्हिरासदम् ॥ १ ॥
११८ स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः । दूतो विश्वेषां भुवत् ॥ २ ॥

अर्थ— [११३] (ये हव्यदातिभिः अग्नये ददाशुः) जो लोग हवि देकर अग्निकी सेवा करते हैं और (ईं पुष्यन्तः) उसे पुष्ट करते हुए (य इन्धन्ते) जो समिधाओं द्वारा प्रदीप्त करते हैं, उन्हींकी तरह हम भी (ते स्याम) तेरे प्रिय हों ॥ ५ ॥

[११४] (ये अग्नाः दुवः दधिरे) जो अग्निमें आहुति डालते हैं (ससवांसः ते राया वि शृण्विरे) अग्निकी सेवा करनेवाले वे धनसे युक्त होते हुये प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं और (ते सुवीर्यैः) वे बलशाली सन्तानोंसे भी युक्त होते हैं ॥ ६ ॥

[११५] (पुरुस्पृहः रायः दिवेदिवे) बहुतोंद्वारा चाहने योग्य सम्पत्तियाँ प्रतिदिन (अस्मे सचरन्तु) हमारे पास आवें और (वाजासः अस्मे ईरतां) अनेक प्रकारके अन्न भी हम लोगोंको यज्ञ कार्यमें प्रेरित करें ॥ ७ ॥

[११६] (सः विप्रः) वह मेधावी अग्नि अपने (शवसा) बल द्वारा (मानुषाणां चर्षणीनां) गमनशील मनुष्योंके कष्टोंको (क्षिप्रा इव अति विध्यति) बाणोंके समान बिलकुल नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

[९]

[११७] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः ईं देवयुं जनं) जो तू इन देवोंकी भक्ति करनेवाले जनको सुखी करनेके लिये उसके (बर्हिः आसदं आ इयेथ) कुशासनपर बैठनेके लिये आता है, वह तू (महान् असि, मृळ) महान् है, अतः हमें सुखी कर ॥ १ ॥

[११८] (दूळभः मानुषीषु विक्षु प्रावीः) राक्षसादि द्वारा अहिंसनीय तथा मानवी प्रजाओंमें स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेवाला (सः अमर्त्यः विश्वेषां दूतः भुवत्) वह अविनाशी अग्नि समस्त देवोंका दूत हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो अग्निको हवि देकर उसकी सेवा करके तथा उसको प्रदीप्त करके उसे पुष्ट बनाते हैं, वे ही अग्निको प्रिय होते हैं। अतः हम भी वैसे ही बने ॥ ५ ॥

जो अग्निमें आहुतियां प्रदान करते हैं, वे धन और बलशाली सन्तानोंसे युक्त होकर यश प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

अग्नि देवकी कृपासे अत्यन्त उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों और हम भी अन्नादिसे सम्पन्न होकर यज्ञ करते रहें। धनके घमण्डमें आकर हम अग्निको भूल न जाएं ॥ ७ ॥

वह ज्ञानी अग्नि मननशील मनुष्योंके सारे कष्टोंको उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार बाणोंसे शत्रुओंको नष्ट किया जाता है ॥ ८ ॥

यह अग्नि महान् होता हुआ भी देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्यको सुखी करनेके लिए उसके पास आकर बैठता और उसे सुखी करता है, इसी प्रकार अग्रणी नेता भी निरहंकारभावसे सबके पास जाकर उनके सुखदुःखका ख्याल करें ॥ १ ॥

अहिंसनीय तथा जिसकी गतिपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, ऐसा वह अग्नि देवोंका दूत है। इसी प्रकार राष्ट्रका दूत अवध्य और सर्वत्र संचार करनेवाला होना चाहिए ॥ २ ॥

११९ स सद्म परि णीयते होता मन्द्रो दिविष्टिषु । उत पोता नि षीदति ॥ ३ ॥

१२० उत ग्ना अग्निरध्वर उतो गृहपतिर्दमे । उत ब्रह्मा नि षीदति ॥ ४ ॥

१२१ वेषि ह्यध्वरीयता मुपवक्ता जनानाम् । हव्या च मानुषाणाम् ॥ ५ ॥

१२२ वेषीद्वस्य दूत्यं यस्य जुजोषो अध्वरम् । हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥ ६ ॥

१२३ अस्माकं जोष्यध्वर मस्माकं यज्ञमङ्गिरः । अस्माकं शृणुधी हवम् ॥ ७ ॥

१२४ परि ते दूळभो रथो ऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः । येन रक्षसि दाशुषः ॥ ८ ॥

अर्थ— [११९] (सः सद्म परिणीयते) वह अग्नि यज्ञगृहके चारों ओर ले जाया जाता है तथा (दिविष्टिषु) यागोंमें (मन्द्रः होता उत पोता निसीदति) स्तुति योग्य वह अग्नि होता और पवित्र करनेवाला होकर बैठता है ॥ ३ ॥

[१२०] (उत अग्निः अध्वरे ग्नाः) वह अग्नि स्तुतिके योग्य होता है। (उतो दमे गृहपतिः) और गृहमें गृहपति रूपसे प्रतिष्ठित होता है। (उत ब्रह्मा निषीदति) और यज्ञमें ब्रह्मारूपसे विराजमान होता है ॥ ४ ॥

[१२१] हे अग्ने ! तू (अध्वरीयतां, मानुषाणां जनानां हव्या हि वेषि) यज्ञ करनेवाले मननशील उपासकोंके हव्याहुतियोंकी अभिलाषा करता है। (च उपवक्ता) यज्ञमें उपस्थित लोगोंको उपदेश देता है ॥ ५ ॥

[१२२] हे अग्ने ! तू (हव्यं वोळ्हवे) हव्य वहन करनेके लिये (यस्त मर्तस्य अध्वरं जुजोषः) जिस मनुष्यके यज्ञका प्रीतिसे सेवन करता है, (अस्य दूत्यं वेषीत्) उसी मनुष्यका दौत्य कार्य भी तू करता है ॥ ६ ॥

[१२३] हे (अङ्गिरः) अंगमें रस रूपसे रहनेवाले अग्ने ! तू (अस्माकं अध्वरं जोषि) हमारे यज्ञका सेवन कर। (अस्माकं यज्ञं) हमारे हव्यको ग्रहण कर। और (अस्माकं हवं शृणुधि) हमारी प्रार्थना सुन ॥ ७ ॥

[१२४] हे अग्ने ! तू (येन दाशुषः विश्वतः रक्षसि) जिस रथकी सहायतासे दाता मनुष्यकी चारों ओरसे रक्षा करता है (ते दूळभः रथः अस्मान् परि अश्नोतु) तेरा वह अहिंसनीय रथ हमें चारों ओरसे व्याप्त करनेवाला हो ॥ ८ ॥

भावार्थ— वह अग्नि यज्ञगृहमें चारों ओर घुमाया जाता है, फिर होता और पवित्र करनेवालेके रूपमें एक जगह स्थापित किया जाता है। यह अग्नि अपने तेजसे चारों ओरका वातावरण शुद्ध करता है ॥ ३ ॥

वह अग्नि गृहमें गृहपति और यज्ञमें ब्रह्मा होकर सर्वत्र स्तुतिके योग्य होता है ॥ ४ ॥

वही अग्नि मननशील तथा यज्ञ करनेवाले मनुष्योंके यज्ञोंमें ही जाता है और वह उपस्थित जनसमूहको उत्तम उपदेश देता है। ये उत्तम उपदेशकके गुण हैं ॥ ५ ॥

यह अग्नि जिसके यज्ञमें प्रीतिपूर्वक जाता है, उसका दूत भी बनकर उसे सुखी बनाता है ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! तू हमारे हिंसारहित यज्ञमें आकर हमारी हवियोंका सेवन कर और हमारी प्रार्थना सुन ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू जिस रथके द्वारा दानी मनुष्यकी चारों ओरसे रक्षा करता है, वही रथ हमारी भी चारों ओरसे रक्षा करे ॥ ८ ॥

[१०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- पदपंक्तिः; ४, ६, ७, उष्णिग्वा; ५ महापदपंक्तिः, ८ उष्णिक् ।]

१२५ अग्ने तमद्याऽश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ओहैः ॥ १ ॥

१२६ अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ २ ॥

१२७ एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥ ३ ॥

१२८ आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥ ४ ॥

१२९ तव स्वादिष्ठाऽग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।
श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥ ५ ॥

---

[१०]

अर्थ— [१२५] (अग्ने) हे अग्ने! (अद्य) आज हम (ओहैः स्तोमैः) प्रशंसनीय स्तोत्रोंके द्वारा (अश्वं न) घोडेके समान वेगवान् और (क्रतुं न भद्रं) यज्ञके समान कल्याणकारी तथा (हृदिस्पृशं) अन्तस्तलमें निवास करनेवाले (तं ते ऋध्यामः) उस तुझको बढाते हैं ॥ १ ॥

[१२६] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अधा हि, भद्रस्य, दक्षस्य साधोः) इस समय हमारे कल्याणकारक बलको सिद्ध करनेवाले (ऋतस्य, बृहतः क्रतोः रथीः बभूथ) सत्यके आधाररूप, महान् यज्ञको प्रेरणा देनेवाला है ॥ २ ॥

१ रथीः— प्रेरक, प्रेरणा देनेवाला ' रंहतेर्गतिकर्मणः

२ बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्यः साधुः— महान् यज्ञ या कर्मसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है ।

[१२७] हे (अग्ने) अग्ने ! (स्वः न ज्योतिः विश्वेभिः अनीकैः सुमनाः) सूर्यके समान प्रकाशसे युक्त सम्पूर्ण एवं श्रेष्ठ अन्तःकरणवाला तू (नः एभिः अर्कैः) हम लोगोंके इन अर्चनीय स्तोत्रों द्वारा (नः अर्वाङ् भव) हम लोगोंकी ओर आ ॥ ३ ॥

[१२८] हे (अग्ने) अग्ने ! (अद्य आभिः गीर्भिः गृणन्तः ते दाशेम) आज इन स्तुति वचनोंके द्वारा तेरी स्तुति करते हुए तुझको हव्य प्रदान करें । (ते दिवः शुष्माः प्र स्तनयन्ति) तेरी तेजस्वी ज्वालायें शब्द करती हैं ॥४॥

[१२९] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव स्वादिष्ठा संदृष्टिः) तेरी परमप्रिय कान्ति (अह्नः इदा चित् अक्तोः इदा चित्) चाहें दिन हो अथवा रात्री हो, दोनों समयोंमें (रुक्मः न श्रिये उपाके रोचते) अलंकारके समान प्रकाश करनेके लिए समीप ही सुशोभित होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह अग्नि घोडेके समान वेगवान् और यज्ञके समान कल्याण करनेवाला है, अतः इसे सदा हवि आदियों द्वारा बढाना चाहिऐ ॥ १ ॥

कल्याणकारक बलका देनेवाले तथा सत्यके आधाररूप यज्ञको यह अग्नि अपनी प्रेरणासे बढाता है, इसीलिए यह यज्ञका नेता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! सूर्यके समान तेजस्वी, तथा श्रेष्ठ अन्तःकरणवाला तू हमारे इन स्तोत्रोंको सुनकर हमारी तरफ आ ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! हम तुझे श्रद्धापूर्वक हवि प्रदान करें, ताकि प्रदीप्त होकर तेरी तेजस्वी ज्वालाएं उत्तम शब्द करें ॥ ४ ॥

जिस प्रकार अलंकारोंसे स्त्रियां सुशोभित और कान्तियुक्त दीखती हैं, उसी प्रकार यह अग्नि भी कान्तिसे दिन रात सुशोभित होता है ॥ ५ ॥

१३० घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।
तत् ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥ ६ ॥

१३१ कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषो ऽग्ने इनोषि मर्तात् ।
इत्था यजमानादृतावः ॥ ७ ॥

१३२ शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्रा ऽग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥ ८ ॥

[११]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१३३ भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीक-मुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद् दृशे ददृशे नक्तया चि-दरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥ १ ॥

अर्थ— [१३०] हे (स्वधावः) अन्नवान् अग्ने ! तेरा (तनूः पूतं घृतं अरेपाः) स्वरूप शुद्ध घृतके समान् पापसे शून्य है और (ते शुचिः हिरण्यं, तत् रुक्मः न रोचत) तेरा शुद्ध और रमणीय वह तेज भूषणके समान प्रकाशमान् है ॥ ६ ॥

[१३१] हे (ऋतावः अग्ने) सत्यसे युक्त अग्ने ! तू (सनेमि हि कृतं चित्) बहुत पहले किए हुए (द्वेषः) पापको भी (यजमानात् मर्तात् इत्था इनोषि स्म) यज्ञशील मनुष्योंसे इस प्रकार दूर करता है ॥ ७ ॥

[१३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (देवेषु युष्मे नः सख्या भ्रात्रा शिवा सन्तु) देवोंके साथ तथा तेरे साथ हम लोगोंकी मैत्री और भ्रातृभाव मंगल जनक हो । (सा सदने सस्मिन् ऊधन् नः नाभिः) वह मैत्रीभाव एवं भ्रातृभाव देवोंके स्थानमें और सभी यज्ञोंमें हमारे लिए केन्द्र रूप हो ॥ ८ ॥

[११]

[१३३] हे (सहसिन्) बलवान् अग्ने ! (ते भद्रं अनीकं सूर्यस्य उपाके आरोचते) तेरा कल्याणकारी तेज सूर्यके रहते हुए अर्थात् दिवसमें भी चारों ओर प्रकाशमान् होता है । तथा (रुशत् दृशे नक्तया चित् ददृशे) प्रकाशयुक्त और दर्शनीय तेज रात्रीमें भी दिखाई देता है । (रूपे आ अरूक्षितं दृशे अन्नं) रूपवान् तुझमें चिकना और दर्शनीय अन्न डाला जाता है ॥ १ ॥

१ अरूक्षितं अन्नं रूपः— घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है ।

भावार्थ— हे अन्नसे समृद्ध अग्ने ! तेरा स्वरूप शुद्ध घृतके समान पापरहित है और तेरा वह रमणीय तेज अलंकारके समान चमकता है ॥ ६ ॥

यह अग्नि पुरानेसे भी पुराने पापको नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तेरे साथ तथा अन्य देवोंके साथ हुई हुई हमारी मित्रता और भाईपन हमें कल्याण देनेवाला हो तथा सभी यज्ञोंमें हम तेरी मित्रताको ध्यानमें रखें ॥ ८ ॥

इस बलवान् अग्निका तेज दिन और रात प्रकाशित होता है । सूर्यके प्रकाशमें भी इस अग्निका प्रदीप्त तेज दीखाई देता है, अतः इस रूपवान् अग्निमें सभी उत्तम आहुतियां डाली जाती हैं ॥ १ ॥

१३४ वि षाह्यग्ने गृणते मनीषां खं वेपसा तुविजात स्तवानः ।
विश्वेभिर्यद् वावनः शुक्र देवै स्तन्नो रास्व सुमहो भूरि मन्म ॥ २ ॥
१३५ त्वदग्ने काव्या त्वन्मनीषा स्त्वदुक्था जायन्ते राध्यानि ।
त्वदेति द्रविणं वीरपेशा इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय ॥ ३ ॥
१३६ त्वद् वाजी वाजंभरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।
त्वद् रयिर्देवजूतो मयोभु स्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥ ४ ॥
१३७ त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।
द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभि र्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [१३४] हे (तुविजात अग्ने) अनेक प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (स्तवानः) प्रशंसित हुआ हुआ तू (वेपसा मनीषां गृणते खं वि षाहि) उत्तम कर्मोंसे स्तुति करनेवालेके लिये स्वर्ग खोल दे । तथा हे (शुक्र) सुन्दर तेजसे युक्त और (सुमहः) सु महान् अग्नि ! तू (विश्वेभिः देवैः यत् वावनः) सब देवोंके साथ जो उत्तम धन अन्योंको देता है (तत् मन्म भूरि नः रास्व) वह अभिलषित धन प्रभूत मात्रामें हमें भी दे ॥ २ ॥

१ वेपसा गृणते खं— अपने उत्तम कर्मोंसे उस परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है।

[१३५] हे (अग्ने) अग्ने ! (काव्या त्वत् जायन्ते) काव्य तुझसे उत्पन्न होते हैं, (मनीषाः त्वत् राध्यानि उक्था त्वत्) उत्तम बुद्धि और आराधनाके योग्य मन्त्र तुझसे प्रकट हुये हैं, तथा (इत्थाधिये दाशुषे मर्त्याय) सत्यकर्मवाले तथा दाता मनुष्यके लिये (वीरपेशाः द्रविणं त्वत् एति) पुष्टिदायक धन भी तुझसे ही उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

१ काव्या मनीषाः राध्यानि उक्था त्वत् जायन्ते— काव्य, उत्तम बुद्धि तथा आराधनाके योग्य स्तोत्र सब इस अग्निसे ही उत्पन्न होते हैं।

२ इत्था–सत्य, ' इत्थेति सत्यनामसु पाठात् । '

३ धी–कर्म ' धीरिति कर्मनाम । '

[१३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (वाजी, वाजंभरः विहायाः अभिष्टिकृत् सत्यशुष्मः) शक्तिशाली, अन्नसे समृद्ध, महान्, यज्ञ कर्मोंका साधक सत्य बलसे युक्त पुत्र (त्वत् जायते) तेरे द्वारा ही उत्पन्न होता है। और (देवजूतः मयोभुः रयिः त्वत्) देवों द्वारा प्रेरित, सुखप्रद धन भी, तेरे द्वारा प्रकट होता है, तथा (आसुः जूजुवान् अर्वा त्वत्) शीघ्रगामी, वेगवान् अश्व भी तेरे द्वारा ही प्रादुर्भूत होता है ॥ ४ ॥

[१३७] हे (अमृत अग्ने) अविनाशी अग्ने ! (देवयन्तः, मर्ताः) देवताओंकी कामना करनेवाले मनुष्य लोग, (प्रथमं, देवं, मन्द्रजिह्वं, द्वेषोयुतं) सबमें अग्रणी, दिव्यगुण सम्पन्न, आनन्ददायक, जिह्वावाले, पापियोंका नाश करनेवाले, (दमूनसं, गृहपतिं, अमूरं त्वां) राक्षसोंका दमन करनेवाले घरके स्वामी एवं ज्ञानी ऐसे गुणोंसे युक्त तेरी (धीभिः आ विवासन्ति) बुद्धि द्वारा सब ओरसे सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अपने उत्तम कर्मोंके द्वारा परमात्माकी भक्ति करनेवालेको सुख मिलता है, उसे देवगण चाहते हैं और वह भरपूर धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥

उत्तम स्तुति रूप काव्य तथा बुद्धि इसी प्रकाशस्वरूप परमात्मामें उत्पन्न होते हैं। सत्कर्म करनेवाले दानशील मनुष्यको पुष्ट करनेवाले धन भी इसी अग्निसे उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

इसी अग्निकी कृपासे शक्तिशाली, अन्नसे सम्पन्न महान्, यज्ञशील और सत्य बलसे युक्त पुत्र होता है और सुखप्रद धन तथा वेगवान् घोडे भी इसकी प्रसन्नतासे मिलते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! देवोंकी भक्ति करनेवाले मनुष्य सर्वश्रेष्ठ, पापी और राक्षसोंके विनाशक, गृहपति तेरी अपनी बुद्धियोंसे सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

×

१३८ आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित् सचसे स्वस्ति ॥ ६ ॥

[१२]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१३९ यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक् त्रिस्ते अन्नं कृणवत् सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत् तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥ १ ॥

१४० इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणो महो अग्ने अनीकमा सपर्यन् ।
स इधानः प्रति दोषामुषासं पुष्यन् रयिं सचते घ्नन्नमित्रान् ॥ २ ॥

अर्थ— [१३८] हे (सहसः सुनो अग्ने) बलसे पुत्र अग्ने ! तू (दोषा शिवः देवः स्वस्ति यं आ चित् सचसे) रात्रीमें मंगलजनक एवं तेजस्वी होकर जिसका कल्याण करता है और (यत् निपासि) जिसकी रक्षा करता है, उन (अस्मत् अमतिं आरे) हम लोगोंसे मतिहीनताको दूर कर। हमारे पाससे (अंहः आरे) पाप दूर कर और (विश्वां दुर्मतिं आरे) सम्पूर्ण दुर्बुद्धिको परे कर ॥ ६ ॥

१ शिवः देवः यं स्वस्ति अमतिं, अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे— कल्याणकारी देव अग्नि जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता, पाप और दुष्ट बुद्धिको दूर करता है।

(१२)

[१३९] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (यः यतस्रुक् त्वां इनधते) जो स्रुक्को घीसे भर कर तैयार करके तुझको प्रदीप्त करता है और (सस्मिन् अहन् ते त्रिः अन्नं कृणवत्) प्रत्येक दिन तेरे लिये तीन वार हविरूप दान करता है, (सः तव क्रत्वा प्रसक्षत् चिकित्वान्) वह तेरे सामर्थ्यसे तेजका ज्ञान प्राप्त करके (द्युम्नैः सु अभि अस्तु) तेजोंके द्वारा सबको हरा दे ॥ १ ॥

१ सस्मिन् अहन् त्रिः अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभि अस्तु— जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन वार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है।

[१४०] हे (महः अग्ने) महान् अग्ने ! (यः शश्रमाणः ते इध्मं जभरत्) जो बहुत परिश्रम करके तेरे लिये समिधा लाता है, तथा (आ अनीकं सपर्यन्) तेरे सर्वत्र फैले हुये तेजकी पूजा करता है, एवं (दोषां प्रति, उषसं इधानः) रात्रीकाल और उषःकालमें जो तुझको प्रदीप्त करता है (सः पुष्यन् अमित्रान् घ्नन् रयिं सचते) वह पुष्ट होकर, शत्रुओंका नाश करता और धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥

१ यः शश्रमाणः अनीकं सपर्यते सः पुष्यन् अमीत्रान् घ्नन् रयिं सचते— जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता और धन प्राप्त करता है।

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हम भक्तोंका कल्याण कर और हमारी रक्षा कर, ताकि हम मूर्खता, दरिद्रता, पाप और दुष्ट बुद्धियोंसे दूर रहें ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! जो तुझे घीसे भरा हुआ स्रुक् और दिनमें तीन वार हवि देता है, वह तेरे सामर्थ्यसे तथा तेजोंसे युक्त होकर सबको परास्त कर दे। इसमें प्रातः माध्यन्दिन और सायं इन तीन सवनोंका स्पष्ट उल्लेख है ॥ १ ॥

जो परिश्रम करके इस अग्निके लिए उत्तम समिधा लाता है, तथा सबेरे शाम इस अग्निको प्रदीप्त कर उसके तेजकी पूजा करता है, वह अपने शत्रुओंको नष्ट करके धन प्राप्त करता है ॥ २ ॥

१४१ अग्निरीशे बृहतः क्षत्रियस्या ऽग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
दधाति रत्नं विधते यविष्ठो व्यानुषङ्मर्त्याय स्वधावान् ॥ ३ ॥

१४२ यच्चिद्धि ते पुरुषत्रा यविष्ठा ऽचित्तिभिश्चकृमा कच्चिदागः ।
कृधी ष्व१स्माँ अदितेरनागान् व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने ॥ ४ ॥

१४३ महश्चिदग्न एनसो अभीक ऊर्वाद् देवानामुत मर्त्यानाम् ।
मा ते सखायः सदमिद् रिषाम यच्छा तोकाय तनयाय शं योः ॥ ५ ॥

१४४ यथा ह त्यद् वसवो गौर्यं चित् पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥ ६ ॥

अर्थ— [१४१] (अग्निः बृहतः क्षत्रियस्य ईशे) अग्नि महान् क्षात्रबलका स्वामी है तथा (परमस्य वाजस्य रायः) परम उत्कृष्ट अन्नका एवं धनका अधिपति है। (यविष्ठः स्वधावान् अग्निः) अत्यन्त बलवान् और अन्नवान् अग्नि (विधते मर्त्याय रत्नं आनुषक् वि दधाति) स्तुति करनेवालेके लिये रमणीय धन क्रमसे प्रदान करता है ॥ ३ ॥

[१४२] हे (यविष्ठ अग्ने) अत्यन्त युवा अग्ने ! (यत् चित् हि ते पुरुषत्रा) यदि हमने तेरे भक्तोंके विषयमें (अचित्तिभिः कत् चित् आगः चकृमः) अज्ञानता वश कोई पाप किया हो, तो तू (अदितेः अस्मान् सु अनागान् कृधि) मातृभूमिके सेवक हमको सम्पूर्ण पापोंसे रहित कर । और हे (विष्वक्) सर्वत्र विद्यमान अग्ने ! हमारे (एनांसि वि शिश्रथः) दुष्कर्मोंको शिथिल कर ॥ ४ ॥

[१४३] हे (अग्ने) अग्ने ! हम (ते सखायः) तेरे मित्र हैं, अतः हम (देवानां, उत, मर्त्यानां अभीके) इन्द्रादि देवोंके निकट अथवा मनुष्योंके निकट किए गए (महः चित् ऊर्वात् एनसः) किसी भी बडे और विस्तृत पापसे (सदं इत् मा रिषाम) कभी भी हिंसीत न हों । हे अग्ने ! (तोकाय, तनयाय शं योः यच्छ) पुत्र और पौत्रके लिये सुख और नीरोगता प्रदान कर ॥ ५ ॥

[१४४] हे (यजत्रा वसवः) पूजाके योग्य और निवास देनेवाले अग्नियो ! तुमने (यथा ह पदि सितां त्यत् गौर्यं चित्) जिस प्रकारसे पैर बंधे हुए उस गायको विमुक्त किया था, (एवो, अस्मत्, अंहः सु विमुञ्चत्) उसी प्रकार हमसे पाप पूर्णरूपसे छुडाओ । हे (अग्ने) अग्ने ! (नः प्रतरं आयुः प्र तारि) हमारी बडी हुई आयुको और भी बढा ॥ ६ ॥

भावार्थ— वह अग्नि महान् संरक्षणशक्ति, उत्तम अन्न और धनका स्वामी है, वह अत्यन्त बलवान् और अन्नवान् अग्नि अपनी स्तुति करनेवालेको रमणीय धन प्रदान करता है ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! यदि हमने तेरे भक्तोंकी निन्दा की या उनके बारेमें कोई पाप किया हो, तो हमें पापोंसे रहित कर तथा हमारे दुष्कर्मोंको शिथिल कर ॥ ४ ॥

हे अग्रणी ! हम तेरे मित्र हैं, अतः यदि हमने अज्ञानसे देवों और मनुष्योंके बारेमें कोई पाप किया हो, तो उस पापसे हम कभी हिंसित न हों । तू हमारे पुत्र पौत्रोंको सुख और स्वास्थ्य प्रदान कर ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तूने जिस प्रकार बंधे हुए पैरवाली गायको छुडाया था, उसी प्रकार हमें पापसे छुडा, तथा हमारी आयु दीर्घ कर ॥ ६ ॥

[१३]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

१४५ प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद् विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोण- मुत् सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥ १ ॥

१४६ ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद् गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ २ ॥

१४७ यं सीमकृण्वन् तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥ ३ ॥

१४८ वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तु- मवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः ॥ ४ ॥

---

[१३]

अर्थ— [१४५] (सुमनाः अग्निः) श्रेष्ठ मनवाला अग्नि, (विभातीनां उषसां अग्रं रत्नधेयं प्रति अख्यत्) प्रकाशित होनेवाली उषाके पहले रत्नके समान प्रकाशमान अपने तेजको फैलाता है । हे (अश्विना) अश्विनीकुमारो ! तुम (सुकृतः दुरोणं यातं) उत्तम कर्म करनेवालेके घर जाओ, क्योंकि (सूर्यः देवः ज्योतिषा उत् एति) सूर्यदेव अपने तेजके साथ उदय हो रहा है ॥ १ ॥

[१४६] (गविषः सत्वा द्रप्सं द्रविध्वत् न) जिस प्रकार गायकी इच्छा करनेवाला बैल धूलको उडाता है, उसी प्रकार (देवः सविता भानुं ऊर्ध्वं अश्रेत्) तेजस्वी सूर्य अपनी किरणोंको ऊपरकी तरफ फेंकता है । (यत् सूर्यं दिवि अरोहयन्ति) जब किरणें सूर्यको द्युलोकमें चढाती हैं तब (वरुणः मित्रः व्रतं अनुयन्ति) वरुण और मित्र अपने अपने कर्मोंका अनुसरण करते हैं ॥ २ ॥

[१४७] (ध्रुवक्षेमाः अर्थं अनवस्यन्तः) अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले तथा अपने कार्यको न त्यागनेवाले देवोंने (सीं तमसे विपृचे यं अकृण्वन्) चारों ओरसे अंधकारको दूर करनेके निमित्त जिस सूर्यकी रचना की, (तं विश्वस्य जगतः स्पशं सूर्यं) उस समस्त संसारको देखनेवाले सूर्यको (यह्वीः सप्त हरितः वहन्ति) महान् सात घोडे ढोते हैं ॥ ३ ॥

[१४८] हे (देव) प्रकाशमान् सूर्य ! तू (तन्तुं विहरन् असितं वस्म) अपने किरण समूहको फैलाते हुये तथा कृष्णवर्णवाले रात्रीरूप वस्त्रको (अवव्ययन् वहिष्ठेभिः यासि) दूर हटाते हुये अत्यन्त बलवान् अश्वों द्वारा सर्वत्र जाता है। (दविध्वतः सूर्यस्य रश्मयः) कम्पनयुक्त सूर्यकी किरणें (अन्तः अप्सु तमः चर्म इव अवाधुः) मध्यअन्तरिक्षमें स्थित अंधकारको चर्मके समान हटा देती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह श्रेष्ठ मनवाला अग्नि तेजस्वी उषाओंके पहले ही अपने तेजको फैलाता है, उसके बाद अश्विनीकुमार उत्तम कर्म करनेवालेके घर जाते हैं और सूर्य अपने तेजके साथ उदय हो रहा है ॥ १ ॥

जिस प्रकार कामोन्मत्त बैल अपने खुरों और सीगोंसे धूल उडाता है, उसी प्रकार यह सूर्य अपनी किरणोंको चारों ओर फेंकता है । तथा जब सूर्य आकाशमें ऊपर चढ जाता है, तब वरणीय और हितकारी ज्ञानी अपने अपने कर्मोंको करना शुरु करते हैं ॥ २ ॥

अपने स्थानपर स्थिर रहनेवाले तथा अपने कर्मका त्याग न करनेवाले देवोंने अन्धकारके नाशके लिए इस सूर्यकी रचना की। सब जगत्के द्रष्टा उस सूर्यको सात महान् घोडे सब जगह ले जाते हैं ॥ ३ ॥

अपनी किरणोंको फैलाता हुए तथा रात्रीरूपी काले वस्त्रको दूर करता हुआ सूर्य अपने बलवान् घोडोंसे सर्वत्र जाता है। इस सूर्यकी किरणें अन्तरिक्षमें स्थित अंधकारको चमडेके समान हटा देती हैं ॥ ४ ॥

१४९ अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१५० प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद् देवो रोचमाना महोभिः ।
आ नासत्योरुगाया रथेने- मं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥ १ ॥

१५१ ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रे- ज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२ ॥

१५२ आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागा- न्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुविताय देव्यु१ -षा ईयते सुयुजा रथेन ॥ ३ ॥

---

[१४]

अर्थ— [१४९] (अनायतः अयं अनिबद्धः) आधारहीन तथा बंधनहीन यह सूर्य (उत्तानः कया स्वधया याति) ऊपरकी दिशामें किस बलसे जाता है ? (न्यङ् कया न अव पद्यते) और नीचे क्यों नहीं गिरता, इसको (कः ददर्श) कौन देखता है ? पर यह निश्चित है कि (दिवः स्कम्भः स्मृतः नाकं पाति) द्युलोकका आधार होकर ऋतवान् सूर्य स्वर्गकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

[१५०] (देवः जातवेदः अग्निः) दिव्य गुण युक्त तथा संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाला अग्नि अपने (महोभिः रोचमानाः उषसः प्रति अख्यत्) तेजोंसे तेजस्वी उषाओंको प्रकाशित करता है । हे (उरुगाया नासत्या) बहुतों द्वारा प्रशंसित होने योग्य अश्विनो ! तुम भी (रथेन नः इमं यज्ञं अच्छ उपयातं) रथके द्वारा हमारे इस यज्ञमें सीधे चले आओ ॥ १ ॥

[१५१] (सविता देवः विश्वस्मै भुवनाय) सूर्यदेव समस्त लोकके लिये (ज्योतिः कृण्वन् उर्ध्वं केतुं अश्रेत्) आलोक करता हुआ सबसे ऊपर प्रकाशको धारण करता है । (वि चेकितानः सूर्यः रश्मिभिः) सबको विशेष रूपसे देखनेवाला सूर्य अपनी किरणोंसे (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आप्राः) आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षको पूर्ण करता है ॥ २ ॥

[१५२] (आवहन्ती, अरुणीः ज्योतिषा मही) धनोंको धारण करनेवाली, अरुणवर्णवाली, ज्योतिसे महान् (रश्मिभिः चित्रा) किरणोंके कारण सुन्दर (चेकिताना देवी उषाः आगात्) सबका निरीक्षण करनेवाली दिव्यगुणों-वाली उषा प्रकट हुई है । वह जीवमात्रको (प्रबोधयन्ती सुयुजा रथेन सुविताय ईयते) जगाती हुई सुशोभित रथ द्वारा कल्याणके निमित्त सर्वत्र जाती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— आधारहीन और बंधनहीन होता हुआ भी यह सूर्य ऊपर किस प्रकार चढ जाता है और ऊपर चढता हुआ नीचे गिरता क्यों नहीं, इस रहस्यको कौन जानता है ? पर यह निश्चित है कि वही सूर्य द्युलोकका आधार बनकर उसकी रक्षा कर रहा है ॥ ५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय उषायें प्रकाशित होती हैं और यह तेजस्वी तथा सर्वज्ञ अग्नि अपने तेजोंके साथ प्रज्वलित होता है, उस समय तुम हमारे यज्ञमें सीधे चले आओ ॥ १ ॥

सबका प्रेरक सूर्यदेव जब समस्त भुवनोंको प्रकाशित करता हुआ अपने प्रकाशको ऊपर चारों ओर फैलाता है तो उससे आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष तीनों स्थानोंको भर देता है ॥ २ ॥

ऐश्वर्य अपने साथ लेनेवाली तेजस्वी ज्योतिसे युक्त किरणोंके कारण सुन्दर दिखाई देनेवाली उषा प्रकट होकर दूसरोंको जगाती हुई उनका कल्याण करनेके लिए अपने सुन्दर रथसे सब जगह जाती है ॥ ३ ॥

१५३ आ वां वहिष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।
इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥ ४ ॥
१५४ अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥ ५ ॥

[१५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, ७-८ सोमकः साहदेव्यः, ९-१० अश्विनौ ।
छन्दः- गायत्री ।]

१५५ अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन् परि णीयते । देवो देवेषु यज्ञियः ॥ १ ॥
१५६ परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव । आ देवेषु प्रयो दधत् ॥ २ ॥
१५७ परि वाजपतिः कवि रग्निर्हव्यान्यक्रमीत् । दधद् रत्नानि दाशुषे ॥ ३ ॥

अर्थ— [१५३] हे अश्विनीकुमारो ! (वहिष्ठाः रथाः ते अश्वासः) वहन करनेमें अत्यन्त समर्थ तुम्हारे रथ व घोडे (वां उषसः व्युष्टौ इह आवहन्तु) तुम दोनोंको उषाके प्रकाशित होनेपर इस यज्ञमें ले आवें। हे (वृषणा) बलवान् अश्विनीकुमारो ! (हि इमे सोमा वां) निश्चयसे ये सोमरस तुम दोनोंके लिये प्रस्तुत हैं, अतः (अस्मिन् यज्ञे मधुपेयाय मादयेथां) इस यज्ञमें सोमरस पान करनेके लिये हर्षको प्राप्त होओ ॥ ४ ॥

[१५४] (अनायतः अनिबद्धः) आधारहीन तथा बंधनहीन यह सूर्य (उत्तानः कया स्वधया याति) ऊपरकी दिशामें किस बलसे जाता है ? (न्यङ् कथा न अव पद्यते) और नीचे क्यों नहीं गिरता इसको (कः ददर्श) कौन देखता है ? पर यह निश्चित है कि (दिवः स्कम्भः समृतः नाकं पाति) द्युलोकका आधार होकर ऋतवान् सूर्य स्वर्गकी रक्षा करता है ॥ ५ ॥

[१५]

[१५५] (होता, देवेषु देवः यज्ञियः अग्निः) यज्ञका सम्पादन करनेवाला, देवोंके बीचमें अत्यधिक तेजस्वी, यज्ञके योग्य अग्नि (नः अध्वरे वाजी सन् परिणीयते) हमारे यज्ञमें शीघ्रगामी अश्वकी तरह सब ओर ले जाया जाता है ॥ १ ॥

[१५६] (अग्निः देवेषु प्रयः आ दधत्) यह अग्नि देवोंके लिए हविरूप अन्नको धारण करता हुआ (रथी इव) रथीके समान (अध्वरं त्रिविष्टि परि याति) यज्ञके चारों ओर तीन बार घूमता है ॥ २ ॥

[१५७] (वाजपतिः कविः अग्निः) अन्नका स्वामी ज्ञानी अग्नि, (दाशुषे रत्नानि दधत्) हवि देनेवाले मनुष्यको रमणीय धनोंको प्रदान करता हुआ (हव्यानि परि अक्रमीत्) हव्योंको चारों ओरसे व्याप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अश्विनीकुमारो ! उषःकालमें तुम्हें तुम्हारे बलशाली घोडे सोमपानके लिए यज्ञमें ले आवें। इस यज्ञमें तुम्हारे पीनेके लिए सोमरस तय्यार हैं, तुम उन्हें पीकर आनन्दित होवो ॥ ४ ॥

आधारहीन और बंधनहीन होता हुआ भी यह सूर्य ऊपर किस प्रकार चढ जाता है और ऊपर चढता हुआ नीचे गिरता क्यों नहीं, इस रहस्यको कौन जानता है ? पर यह निश्चित है कि वही सूर्य द्युलोकका आधार बन कर उसकी रक्षा कर रहा है ॥ ५ ॥

देवोंको बुलाकर लानेवाला, तेजस्वी तथा पूज्य अग्नि इस हिंसारहित यज्ञमें चारों ओर ले जाया जाता है ॥ १ ॥

यह अग्नि हविको धारण करता हुआ यज्ञके चारों ओर तीन बार प्रदक्षिणा करता है ॥ २ ॥

अन्नका स्वामी तथा ज्ञानी अग्नि दाता मनुष्यको धन प्रदान करता हुआ यज्ञको चारों ओरसे व्याप्त कर लेता है ॥ ३ ॥

१५८ अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते । द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥ ४ ॥
१५९ अस्य घा वीर ईवतो ऽग्नेरीशीत मर्त्यः । तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥ ५ ॥
१६० तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् । मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥ ६ ॥
१६१ बोधयन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः । अच्छा न हूत उदरम् ॥ ७ ॥
१६२ उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात् । प्रयता सद्य आ ददे ॥ ८ ॥
१६३ एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः । दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
१६४ तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् । दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥

अर्थ— [१५८] (अयं यः अमित्रदम्भनः द्युमान्) यह जो शत्रु विनाशक और तेजस्वी अग्नि है वह (दैववाते सृंजये) देवों द्वारा अभिलषित विजयके कार्यमें (पुरः समिध्यते) सबसे आगे प्रज्वलित किया जाता है ॥ ४ ॥

[१५९] (तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ईवतः अस्य अग्नेः) तीक्ष्ण दाढवाले, अभीष्ट फल देनेवाले और गमनशील इस अग्निकी उपासना करनेवाला (मर्त्यः) मनुष्य ही (वीरः) वीर होकर (ईशीत घ) सब ऐश्वर्योंका स्वामी होता है ॥ ५ ॥

ईवतः अस्य अग्नेः मर्त्यः वीरः ईशीत— सर्वत्र गमन करनेवाले इस अग्निकी उपासना करनेवाला मनुष्य वीर होकर सब ऐश्वर्योंका स्वामी बनता है ।

[१६०] लोग (अर्वन्तं न) शीघ्रगामी घोडेकी तरह (दिवः शिशुं न) द्युलोकके पुत्रभूत सूर्यकी तरह (अरुषं, सानसिं तं) दीप्तिमान् और सबके द्वारा सेवा किए जानेके योग्य उस अग्निकी (दिवे दिवे मर्मृज्यन्ते) प्रतिदिन बारबार सेवा करते हैं ॥ ॥ ६ ॥

[१६१] (यत्) जब (साहदेव्यः कुमारः) सहदेवके कुमारने (मां हरिभ्यां बोधत्) मुझे घोडोंसे ज्ञान प्रदान किया, तब (हूतः) अच्छी तरह निमंत्रित होकर (अच्छ उदरं) अपने उदरको तृप्त किया ॥ ७ ॥

[१६२] (उत) और (साहदेव्यात् कुमारात्) सहदेवके कुमारसे (त्या यजता प्रयता हरी) उन प्रशंसनीय और प्रयत्न करनेवाले घोडोंको मैंने (सद्यः आ ददे) शीघ्रही प्राप्त कर लिया ॥ ८ ॥

[१६३] हे (अश्विना देवा) अश्विनी देवो! (वां) तुम्हारा प्रिय (एष साहदेव्यः कुमारः सोमकः) सहदेवका पुत्र कुमार सोमक (दीर्घायुः अस्तु) दीर्घ आयु वाला हो ॥ ९ ॥

[१६४] हे (अश्विना देवा) अश्विनी देवो! (युवं) तुम दोनों (तं साहदेव्यं कुमारं) उस सहदेवके पुत्र कुमारको (दीर्घायुषं कृणोतन) दीर्घ आयु वाला करो ॥ १० ॥

भावार्थ— देवगण शत्रु विजयके कार्यमें भी इस शत्रु विनाशक और तेजस्वी अग्निको आगे स्थापित करते हैं यह अग्नि शत्रु विजयके कार्यमें भी अग्रणी है ॥ ४ ॥

जो इस तेजस्वी अग्रणीकी उपासना करता है वह वीर होकर सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

जिस प्रकार घोडेको प्रतिदिन धोकर साफ किया जाता है, उसी प्रकार लोग प्रतिदिन इस अग्निकी सेवा करके इसे शुद्ध करते हैं ॥ ६ ॥

विद्वानोंसे मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके अपनी उदरपूर्तिका निर्वाह उत्तम प्रकारसे करे। उसके पास साधन भी उत्तम तरहके प्रशंसनीय तथा प्रयत्नशील हों ॥ ७-८ ॥

जो उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण सबके लिए आल्हाद कारक होते हैं, सबको आनन्द देते हैं, उनकी आयु दीर्घ होती है ॥ ९-१० ॥

[१६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१६५ आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥

१६६ अव स्य शूराध्वनो नान्ते ऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥

१६७ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥

१६८ स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

---

[१६]

अर्थ— [१६५] (ऋजीषी सत्यः मघवान्) सरल मार्गसे जानेवाला, सत्यनिष्ठ तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र (नः उप आ यातु) हमारे पास आवे । (अस्य हरयः नः उप द्रवन्तु) इसके घोडे हमारे पास दौडकर आवें । (इह) इस यज्ञमें हम (तस्मै) उस इन्द्रके लिए (इत अन्धः सुषुम) इस अन्नरूपी सोमको निचोड़ते हैं। (गृणानः) प्रशंसित हुआ हुआ वह इन्द्र (अभिपित्वं करते) हमारी इच्छाएं पूर्ण करे ॥ १ ॥

[१६६] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (अध्वनः अन्ते न) जिस प्रकार लोग मार्गके दोनों बाजुओंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (अद्य अस्मिन् सवने) आज इस यज्ञमें (मन्दध्यै नः अवस्य) आनन्दित करनेके लिए तू हमारी रक्षा कर । (उशना इव वेधा) उशना ऋषिके समान बुद्धिमान् यह स्तोता (चिकितुषे असुर्याय) ज्ञानवान् तथा असुरोंको मारनेवाले तेरे लिए (मन्म उक्थं शंसाति) मननीय स्तोत्रको कहता है ॥ २ ॥

[१६७] (कविः निण्यं न) जिसप्रकार विद्वान् गुह्यार्थको जानता है, उसीप्रकार यह इन्द्र (यत् विदथानि साधन्) जब यज्ञोंको करता हुआ तथा (सेकं विपिपानः अर्चात्) सोमको पीता हुआ पूजा करता है, तब (इत्था) इसप्रकार वह (दिवः सप्त कारून् जीजनत्) द्युलोकसे सात किरणोंको प्रकट करता है । तब (गृणन्तः) स्तोतागण (अन्हा) दिनके प्रकाशकी सहायतासे (वायुना चक्रुः) अपने कर्म करते हैं ॥ ३ ॥

[१६८] (यत् ह) जब (महि ज्योतिः स्वः) विशाल और तेजस्वी द्युलोक (अर्कैः सुदृशीकं वेदि) किरणोंसे उत्तम देखने योग्य बनता है, तब (वस्तोः रुरुचे) घर भी प्रकाशित होते हैं। (नृतमः) उत्तम नेता सूर्य (अभिष्टौ) उदय होनेपर (नृभ्यः विचक्षे) मनुष्योंके देखनेके लिए (अन्धा तमांसि दुधिता चकार) गहरे अन्धकारका नाश करता है ॥ ४ ॥

नृतमः नृभ्यः विचक्षे अन्धा तमांसि दुधिता चकार— अत्यन्त श्रेष्ठ नेता अपनी प्रजाओंके देखनेके लिए घने अन्धकारका नाश करता है ।

भावार्थ— सरल व्यवहार करनेवाला, अर्थात् कुटिल व्यवहारसे रहित सत्यका पालक इन्द्र हमारे पास आकर हमारे द्वारा दिए गए सोमको पीए और हमारी इच्छायें पूर्ण करे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिसप्रकार किसी मार्गके दोनों और पेड आदि रोपकर मार्गकी रक्षा करते हैं और उन वृक्षोंकी छायाके कारण लोग आनन्द पाते है, उसी तरह इन्द्र भी इस यज्ञमें आनन्द प्राप्त करनेके लिए हमारी रक्षा करे । वह इन्द्र ज्ञानी और असुरोंको मारनेवाला है, अतः उसके लिए ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको कहते है ॥ २ ॥

जिसप्रकार एक ज्ञानी गुह्य अर्थोंको भी जानता है, उसीप्रकार यह सूर्यरूपी इन्द्र द्युलोकसे अपनी किरणोंको प्रकट करके गुह्य स्थलोंको भी प्रकाशित करता है। तब स्तोतागण इसकी प्रशंसा करते हुए इसके प्रकाशकी सहायतासे अपने कर्मोंको करते हैं ॥ ३ ॥

१६९ वव्रक्ष इन्द्रो अमितमृजी—ष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रे—च्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
१७० विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वा—नपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभि—र्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
१७१ अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत् ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥

अर्थ— [१६९] (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जिसने सारे भुवनों को जीत लिया ऐसा वह (इन्द्रः) इन्द्र (अमितं वव्रक्ष) अपार यशको धारण करता है, उस (ऋजीषी) सोमका पान करनेवाला (महित्वा) अपने महत्वसे (उभे रोदसी आ पप्रौ) दोनों द्युलोक और पृथ्वी लोकको भर देता है, (अतः चित्) इसी लिए (अस्य महिमा विरेचि) इसकी महिमा सबसे अधिक है ॥ ५ ॥

१ यः विश्वा भुवना अभि बभूव अमितं वव्रक्ष— जो सारे भुवनोंको अपने अधिकारमें कर लेता है, उसका यश अपरिमित होता है ।

२ महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ— वह अपने महत्वसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है ।

३ अतः चित् अस्य महिमा विरेचि— इसी कारण इसका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है ।

[१७०] (विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सम्पूर्ण मनुष्योंके हितकारी कार्योंको जाननेवाले (शक्रः) सामर्थ्यशाली इन्द्रने (निकामैः सखिभिः) इच्छा करनेवाले अपने मित्रोंके द्वारा (अपः रिरिचे) पानीको गिराया । (ये वचोभिः अश्मानं चित् विभिदुः) जिन मरुतोंने अपने शब्दोंसे मेघ को भी फोड दिया, उन (उशिजः) कामना करनेवाले मरुतोंने (गोमन्तं व्रजं विवव्रुः) गायोंसे युक्त बाडेको प्राप्त किया ॥ ६ ॥

अश्मा— पर्वत, मेघ

विश्वनि निर्याणि विद्वान् — सब जन हितकारी कर्मोंको जाननेवाला ।

वचोभिः अश्मानं विभिदुः — आवाजसे मेघोंसे पानी बरसाया ।

[१७१] हे इन्द्र ! (प्रावत् ते वज्रं) रक्षण करनेवाले तेरे वज्रने (अपः वव्रिवांसं वृत्रं) जलको रोकनेवाले मेघको (पराहन्) मारा, तब (पृथिवी सचेताः) पृथ्वी सचेत हुई । हे (धृष्णो शूर) शत्रुओंको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! (पति भवन्) स्वामी होते हुए तूने (शवसा) अपने बलसे (समुद्रियाणि अर्णांसि) अन्तरिक्षके जलोंको (प्र ऐनोः) प्रेरित किया ॥ ७ ॥

भावार्थ— जब विशाल द्युलोक सूर्यकी किरणोंके कारण तेजस्वी और उत्तम रीतिसे देखने योग्य हो जाता है, तब पृथ्वीपरके सब घर भी प्रकाशित हो जाते हैं । उत्तम नेता सूर्य मनुष्योंके देखनेके लिए गहरे अन्धकारको दूर करता है । इसीप्रकार उत्तम नेता और ज्ञानी भी अपनी प्रजाओंके लिए अन्धकारको दूर करके सर्वत्र ज्ञानका प्रकाश करे ॥ ४ ॥

वह सूर्य अपने प्रकाशसे सारे लोकों पर अधिकार कर लेता है, इसीलिए उस सूर्यका यश अपार है । इसके महत्वसे द्यु और पृथ्वी ये दोनों लोक भर जाते हैं । इसीकारण इसका महत्त्व सबसे बढकर है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र मनुष्योंके लिए हितकारी सभी कर्मोंको जाननेवाला और समर्थ है । वह अपने मित्रोंकी सहायतासे जल बरसाता है । इन्द्रके वे मित्र इन्द्रकी सहायतासे अनेक गायोंको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

जलोंको रोकनेवाले मेघको इन्द्रने बिजलीसे फोडा, पृथिवी पर पानी गिराया, इससे पृथिवी प्रसन्न हो गयी । समुद्रके जलोंका बाष्प बनकर उससे बननेवाले मेघ अन्तरिक्षमें भ्रमण करने लगे, जिनसे वर्षा होने लगी ।

×

१७२ अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्द॒राविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥
१७३ अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त ॥ ९ ॥
१७४ आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत् ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥ १० ॥

अर्थ— [१७२] (यत् सरमा) जब सरमाने (पूर्व्यं ते आविर्भुवत्) पहले तेरे लिए गायोंको प्रकट किया, तब तूने (अपः अद्रिं दर्दः) जलसे भरे मेघको फोडा। (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिराओंसे प्रशंसित होते हुए तथा (गोत्रा रुजन्) मेघोंको फोडते हुए (नेता सः) उत्तम नेता वह तू (नः भूरिं वाजं आ दर्षि) हमें बहुत सा अन्न दे ॥ ८ ॥

[१७३] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (नृमणः) मनुष्योंका हित करनेवाला तू (कविं अच्छ गाः) बुद्धिमान्‌के पास सीधा जा, तथा (स्वर्षाता अभिष्टौ) धनके लिए होनेवाले युद्धमें (नाधमानं ऊतिभिः इषणः) तेरी कामना करनेवालेको अपने संरक्षणोंसे सुरक्षित करनेकी इच्छा कर। (द्युम्न हूतौ) युद्धमें (मायावान् अब्रह्मा दस्युः) मायावी तथा ज्ञानसे रहित दस्यु (अर्त) नष्ट हो जाय ॥ ९ ॥

१ नृमणः कविं अच्छ गाः— मानवोंका हित करनेकी इच्छासे ज्ञानके पास सीधा जा।
२ स्वर्षाता अभिष्टौ नाधमानं ऊतिभिः इषणः— धनप्राप्तिके लिये होनेवाले युद्धमें तेरी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेको संरक्षणोंसे बचा।
३ द्युम्न हुतौ मायावान् अब्रह्मा दस्युः अर्त— युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाय।

[१७४] हे इन्द्र ! तू (दस्युघ्ना मनसा) दस्युको मारनेकी इच्छावाले मनसे युक्त होकर (अस्तं आयाहि) घर आ, (निकामः कुत्सः) तेरी इच्छा करनेवाला कुत्स (ते सख्ये भुवत्) तेरी मित्रतामें रहे। (सरूपा स्वे योनौ निषदतं) समान रूपवाले तुम दोनों अपने घरमें बैठो, तब (ऋतचित् नारी वां चिकित्सत्) सत्य ज्ञान युक्त स्त्री तुम दोनोंको यथावत् जाने ॥ १० ॥

१ दस्युघ्ना मनसा अस्तं आयाहि— दुष्टको मारनेके विचारसे अपने घर जा कर रहो।
२ सरूपा स्वे योनौ निषीदतम्— समान रूप या विचारवाले एकत्र रहें।
३ ऋतचित् नारी वां चिकित्सत्— सत्यज्ञानवाली स्त्री तुम दोनोंको जाने। तुम्हारी परीक्षा करे।

भावार्थ— प्रतिदिन प्रकट होनेवाली उषाने सूर्यकी किरणोंको प्रकट किया उन किरणोंके द्वारा सूर्यने जलसे भरे मेघोंकोफोडा। उससे पानी बरसा और उस वृष्टिके कारण बहुतसा अन्न उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

मनुष्योंका हित करनेकी इच्छा करनेवाला नेता ज्ञानीके पास जाकर जनहितका मार्ग पूछे। धनप्राप्तिके लिए होनेवाले युद्धोंमें इस नेताकी सहायता सभी चाहते हैं। पर उनमें जो सज्जन होता है, वही बचे रहते हैं, बाकी दुष्ट और कपटी मनुष्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! दुष्टको मारनेकी इच्छावाले मनसे युक्त होकर हमारे घर आ तब हमारे घरमें रहनेवाला ज्ञानी तुमसे मित्रता करे, तब समान स्वभाववाले तुम दोनों घरमें आनन्दसे रहो, और तब उस घरकी गृहिणी तुम दोनोंका सत्कार करे। इसीप्रकार एक राष्ट्रके राजनैतिक नेता तथा ज्ञानी परस्पर एक मतवाले होकर रहें और घरमें गृहिणी उनका सत्कार करें ॥ १० ॥

१७५ यासि कुत्सेन सरथमवस्यु- स्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन् कविर्यदहन् पार्याय भूषात् ॥ ११ ॥
१७६ कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून् प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥ १२ ॥
१७७ त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांस- मृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः सहस्रा ऽत्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥ १३ ॥
१७८ सूर उपाके तन्वं१ दधानो वि यत् ते चेत्यमृतस्य वर्पः ।
मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः सिंहो न भीम आयुधानि बिभ्रत् ॥ १४ ॥

अर्थ— [१७५] हे इन्द्र ! (यत् अहन्) जिस दिन, (गध्यं वाजं न) योग्य बलको प्राप्त करनेके समान, (ऋज्रा युयूषन्) सरलतासे जानेवाले घोडोंको अपने रथमें जोडकर (कविः पार्याय भूषात्) बुद्धिमान् कुत्स संकटसे पार होनेके लिए तैय्यार होता है, उस समय (अवस्युः) उसके रक्षणकी इच्छा करनेवाला और (तोदः) शत्रुओंको मारनेवाला तथा (वातस्य हर्योः ईशानः) वायुवेगवाले घोडोंका स्वामी तू (कुत्सेन सरथं यासि) कुत्सके साथ एक रथ पर बैठकर जाता है ॥ ११ ॥

[१७६] हे इन्द्र ! तूने (कुत्साय अशुषं शुष्णं निबर्हीः) कुत्सके रक्षणके लिए महाबलवान् शुष्णनामक असुरको मारा, तथा (अन्हः प्रपित्वे) दिनके पूर्व भागमें तूने (सहस्रा कुयवं) हजारों सैनिकोंके साथ कुयव नामक असुरको मारा, तथा (कुत्स्येन सद्यः दस्यून् प्रमृण) वज्रसे शीघ्रही दस्युओंको मारा और (अभीको शूरः चक्रं प्रवृहतात्) युद्धमें तूने सूर्यका चक्र तोड दिया ॥ १२ ॥

[१७७] हे इन्द्र ! (वैदथिनाय ऋजिश्वने) विदथिके पुत्र ऋजिश्वीके लिए (त्वं) तूने (पिप्रुं) पिप्रु नामक असुरको तथा (शूशुवांसं मृगयं) अति बलशाली मृगया नामक राक्षसको (रन्धीः) मारा। तूने (पंचाशत् सहस्रा कृष्णा निवपः) पचास हजार काले वर्णके असुरोंको मारा, तथा (जरिमा अत्कं न) जैसे लोग जीर्णशीर्ण कपडेको फाड डालते हैं, उसी तरह तूने (पुरः विदर्दः) शत्रुके नगरोंको तोड डाला ॥ १३ ॥

१ पंचाशत् सहस्रा कृष्णा नि वपः— पचास हजार काले शत्रुओंको मारा। आर्य गोरे थे और उनके शत्रु काले थे।

२ पुरः निदर्दः— नगर, काले शत्रुओंके नगर तोड दिये।

[१७८] हे इन्द्र ! (यत्) जब तू (सूर उपाके) सूर्यके पास अपने (तन्वं दधानः) शरीरको धारण करता है, तब (अमृतस्य ते) अमर तेरा (वर्पः विचेति) रूप और ज्यादा चमकता है। (हस्ती मृगः न) बलशाली हाथीके समान (तविषीं उषाणः) शत्रुकी सेनाको जलाता हुआ तथा (आयुधानि बिभ्रत्) शस्त्रोंको धारण करता हुआ तू (सिंहः भीमः न) सिंहके समान भयंकर होता है ॥ १४ ॥

१ आयुधानि बिभ्रत् सिंहः भीमः न— तू शस्त्रोंको धारण करनेपर सिंहके समान भयंकर दीखता है।

२ अमृतस्य ते वर्पः विचेति— तुझ अमर देवका शरीर चमकता है।

भावार्थ— जब योग्य बलको प्राप्त करके ज्ञानी संकटसे पार होनेके लिए तैय्यार होता है, तब उसकी रक्षा करनेकी इच्छासे शत्रुओंको मारनेवाला, तथा वायुके समान वेगवान् घोडों पर बैठकर इन्द्र उसके पास जाता है ॥ ११ ॥

इस इन्द्रने ज्ञानीके लिए महाबलवान् शुष्ण असुरको मारा, तथा हजारों सैनिकोंके साथ कुयव नामक राक्षसको मारा, संग्राममें उनके सूर्यके चक्रके समान तेजस्वी शस्त्रास्त्रोंको भी तोड डाला ॥ १२ ॥

युद्धमें प्रवीण तथा युद्धमें सरलतापूर्वक घोडोंको दौडानेवाले वीरके लिए इन्द्रने पिप्रु नामक असुरको मारा और अत्यन्त बलशाली मृगय नामक राक्षसको मारा, तथा पचास हजार कृष्ण वर्णके असुरोंको मारा और जिसप्रकार लोग सडे गले कपडेको आसानीसे फाड डालते हैं, उसी तरह इन्द्रने सरलतासेही शत्रुओंके नगरोंको तोड डाला ॥ १३ ॥

१७९ इन्द्रं कामा वसूयन्तो अग्मन् त्स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः ।
श्रवस्यवः शशमानास उक्थै-रोको न रण्वा सुदृशीव पुष्टिः ॥ १५ ॥
१८० तमिद् व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चि-न्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ॥ १६ ॥
१८१ तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य समृतिर्भवा-त्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ॥ १७ ॥

अर्थ— [१७९] (स्वर्मीळ्हे न सवने चकानाः) युद्धके समान यज्ञमें चमकनेवाले, (उक्थैः शशमानासः) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करनेवाले (श्रवस्यवः वसूयन्तः कामाः) अन्न तथा धनकी इच्छा करनेवाले स्तोतागण (इन्द्रं अग्मन्) इन्द्रके पास जाते हैं । वह इन्द्र (ओकः न) घरके समान सुखदायक है, तथा (रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव) रमणीय, दीखनेमें उत्तम समृद्धिके समान पोषक है ॥ १५ ॥

१ ओकः न रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव— यह इन्द्र घरके समान सुखदायक तथा रमणीय और दीखनेमें उत्तम समृद्धिके समान पोषक है

[१८०] (यः) जिस इन्द्रने (ता पुरूणि नर्या चकार) उन बहुतसे मनुष्योंके हितकारी कार्योंको किया तथा (स्पार्हराधाः यः) स्पृहणीय धनोंको अपनेपास रखनेवाला जो इन्द्र (मावते जरित्रे) मेरे जैसे स्तोताके लिए (गध्यं चित् वाजं) ग्रहण करने योग्य अन्नको (मक्षू भरति) शीघ्र देता है ऐसे (सुहवं तं इन्द्रं) अच्छी तरहसे सहायार्थ बुलाने योग्य उस इन्द्रको हम (वः) तुम्हारे सहायतार्थ हम (हुवेम) बुलाते हैं ॥ १६ ॥

१ यः ता पुरूणि नर्या चकार— जिसने मनुष्योंके बहुतसे हितकारक कार्य किये हैं । सार्वजनिक हितके कार्य जो करता रहता है ।

२ यः स्पार्हराधाः— स्पृहणीय धन जिसके पास है ।

[१८१] हे (शूर) शूरवीर इन्द्र ! (यत्) जब (मुहुके) युद्धमें (कस्मिन् चित् जनानां अन्तः) किन्हीं मनुष्योंके बीचमें (तिग्मः अशनिः पताति) तीक्ष्ण अस्त्र गिरे अथवा हे (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र ! (यत् घोरा समृतिः भवाति) जब भयंकर युद्ध होता है, (अध) तब तू (न तन्वः गोपाः) हमारे शरीरका रक्षक है । यह (बोधिस्म) तू जान ॥ १७ ॥

१ यत् मुहुके तिग्मः अशनिः पताति, यत् घोरा समृतिः भवाति, अधः न तन्वः गोपाः— जब युद्धमें तीक्ष्ण वज्र गिरता है और जब वनघोर युद्ध होता है, तब हमारे शरीरकी हे इन्द्र ! तू रक्षा कर ।

भावार्थ— यह इन्द्र जब सूर्यके साथ मिलकर अपना रूप प्रदर्शित करता है, तब उस अमर देवका रूप और ज्यादा चमकने लगता है. तथा जब यह शस्त्रोंको धारण करता है, तब वह सिंहके समान भयंकर हो जाता है ॥ १४ ॥

यज्ञमें चमकनेवाले, प्रशंसा करनेवाले अन्न और धनकी इच्छा करनेवाले स्तोता इन्द्रके पास जाते हैं । यह इन्द्र उन लोगोंके लिए घरके समान सुखदायक और उत्तम समृद्धि देकर पुष्ट करनेवाला है ॥ १५ ॥

वह इन्द्र बहुतसे मनुष्योंके लिए हितकारी कार्योंको करता है और अत्युत्तम धनोंको अपने पास रखता है । वह अपनी स्तुति करनेवालेके लिए उत्तम अन्न शीघ्र देता है । इसीलिए हम इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १६ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारा रक्षक है, इसलिए जब हमारे मनुष्यों पर शत्रुओंके तीक्ष्ण शस्त्र आकर गिरें और जब भयंकर युद्ध हों, तब तू हमारी रक्षा कर और हमारे शरीरोंको सुरक्षित रख ॥ १७ ॥

१८२ भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मो—रुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः ॥ १८ ॥
१८३ एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन् विश्व आजौ ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः ॥ १९ ॥
१८४ एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम् ।
नू चिद् यथा नः सख्या वियोषद—दसन्न उग्रोऽविता तनूपाः ॥ २० ॥
१८५ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

अर्थ— [१८२] हे इन्द्र ! तू (वामदेवस्य धीनां अविता भुवः) वामदेवकी बुद्धियोंका रक्षक हुआ तू (वाजसातौ) युद्धमें हमारा (अवृकः) अकुटिल (सखा भुवः) मित्र हुआ हम । प्रमतिं त्वा अनु अगन्म) प्रकृष्ट ज्ञानी होकर तेरे पीछे चलें । तू (विश्वध) हमेशा (जरित्रे उरुशंसः स्याः) स्तोताके लिए प्रशंसनीय हो ॥ १८ ॥

१ धीनां अविता भुवः— तू बुद्धियोंका रक्षक है ।
२ वाजसातौ अवृकः सखा भुवः— तू युद्धमें सीधा मित्र हुआ है ।
३ प्रमतिं त्वा अनु अगन्म— तुझ जैसे बुद्धिमानके अनुगामी हम होते हैं ।
४ विश्वध जरित्रे उरुशं सः स्याः— सर्वदा तू स्तोताके लिये प्रशंसनीय होता है ।
५ सखा अकुटिलः— मित्र हमेशा अकुटिल हो, कुटिलतासे रहित होकर व्यवहार करे ।

[१८३] हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (विश्वे आजौ) सभी युद्धोंमें (त्वायुभिः) तुझे चाहनेवाले (मघवद्भिः) ऐश्वर्योंसे युक्त (द्यावः न द्युम्नैः) द्युलोकके समान तेजस्वी (एभिः नृभिः) इन मरुतोंके साथ रह कर हम (अर्यः अभि सन्तः) शत्रुओंको हराते हुए (पूर्वीः शरदः) बहुत वर्षों तक (क्षपः) दिन रात (त्वा मदेम) तुझे आनन्दित करते रहें ॥ १९ ॥

[१८४] (यथा नः सख्या वियोषद्) जिससे हमारी मित्रता दृढ हो, तथा वह (उग्रः) वीर इन्द्र (नः तनूपाः अविता असत्) हमारे शरीरका पालक तथा रक्षक हो, (एव) इसलिए (भृगवः रथं न) जैसे भृगुओंने इन्द्रको रथ दिया, उसी प्रकार हम उस (वृषभाय वृष्णे इन्द्राय) बलवान् तथा कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इन्द्रके लिए (ब्रह्म अकर्म) स्तोत्र करते हैं ॥ २० ॥

१ उग्रः नः तनूपा अविता असत्— उग्र वीर हमारा शरीर रक्षक तथा संरक्षक हो ।
२ नः सख्या वियोषद्— हमारी इन्द्रके साथ मित्रता दृढ हो ।

[१८५] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (स्तुतः गृणानः) स्तुत्य होकर तथा प्रशंसित होकर (जरित्रे) स्तोताके लिए (नद्यः न) जैसे नदियां पानी देती हैं, उसी प्रकार (इषं पीपेः) अन्न दे । हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! हम (ते) तेरे लिए अपनी (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिसे नये नये स्तोत्र बनाते हैं । हम (रथ्याः स-दासाः स्याम) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ २१ ॥

१ रथ्याः सदासाः स्याम— हमारे पास रथ और सेवक हों ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू उत्तम और दिव्य गुणोंसे युक्त मनुष्यकी बुद्धियोंका रक्षक है । तू युद्धमें ऐसे मनुष्योंका सच्चा मित्र होता है । इसलिए उत्तम ज्ञानसे युक्त होकर हम तेरे कहनेके पीछे चलें ॥ १८ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम सभी युद्धोंमें ऐश्वर्योंसे युक्त होकर तेरे सहयोगी मरुतोंके साथ मिल कर हम शत्रुओंको हरायें । और कई वर्षों तक तुझे आनन्दित करते रहें ॥ १९ ॥

जिससे इन्द्रके साथ हमारी मित्रता दृढ हो, और वह हमारे शरीरोंका रक्षक हो । इसलिए हम उस बलवान् तथा कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए उसकी स्तुति करते हैं ॥ २० ॥

[१७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः। देवता- इन्द्रः। छन्दः- त्रिष्टुप् १५ एकपदा विराट्।]

१८६ त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्यं॑ ह॒ क्षा अनु॑ क्ष॒त्रं मं॒हना॑ मन्यत॒ द्यौः।
त्वं वृ॒त्रं शव॑सा जघ॒न्वान् त्सृ॒जः सिन्धूँ॒रहि॑ना जग्रसा॒नान् ॥ १ ॥

१८७ तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन् रेजत॒ द्यौ रेज॒द् भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः।
ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्व१॒॑: पर्व॑तास॒ आर्द॑न् धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥ २ ॥

१८८ भि॒नद् गि॒रिं शव॑सा॒ वज्र॑मि॒ष्णन्ना॑वि॒ष्कृ॒ण्वा॒नः स॑हसा॒न ओजः॑।
वधी॑द् वृ॒त्रं वज्रे॑ण मन्दसा॒नः सर॒न्नापो॑ जव॑सा ह॒तवृ॑ष्णीः ॥ ३ ॥

[१७]

अर्थ— [१८६] हे इन्द्र! (त्वं महान्) तू महान् है, (क्षा तुभ्यं क्षत्रं ह अनु) पृथ्वी तेरे क्षात्रसामर्थ्यके पीछे चलती है, तथा (मंहना द्यौः) महिमासे युक्त द्युलोक भी (मन्यत) तेरी महत्ताको स्वीकार करता है। (त्वं शवसा वृत्रं जघन्वान्) तूने बलसे वृत्रको मारा, तथा (अहिना जग्रसानान् सिन्धुन् सृजः) अहिके द्वारा रोकी गयी नदियोंको बहाया ॥ १ ॥

१ त्वं महान्— तू महान् है।
२ क्षा तुभ्यं क्षत्रं अनु— पृथ्वी तेरे क्षात्र सामर्थ्यके पीछे चलती है।
३ मंहना द्यौः मन्यत— महिमासे युक्त द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है।

[१८७] हे इन्द्र! (त्विषः तव जनिमन्) तेरे जैसे तेजस्वीके जन्मते ही (स्वस्य मन्योः भियसा) तेरे क्रोधके डरसे (द्यौः रेजत्) द्युकांपने लगी, तथा (भूमिः रेजत्) भूमि भी कांपने लगी (सुभ्वः पर्वतासः ऋघायन्त) महान् पर्वत भयभीत होने लगे, तथा (आपः) जल प्रवाह (धन्वानि आर्दन् सरयन्ते) मरुस्थलोंको गीला बनाते हुए बहने लगे ॥ २ ॥

[१८८] (सहसानः ओजः आविष्कृण्वानः) शत्रुओंको हरानेवाले सामर्थ्यको प्रकट करते हुए इन्द्रने (शवसा वज्रं इष्णन्) बलसे वज्रको प्रेरित किया और (गिरिं भिनद्) मेघोंको फोडा। (मन्दसानः) सोमसे आनन्दित होते हुए इन्द्रने (वज्रेण वृत्रं वधीत्) वज्रसे वृत्रको मारा, तथा (हत वृष्णीः) बलवान् वृत्रके मर जाने पर (आपः जवसा सरन्) जल प्रवाह वेगसे बहने लगे ॥ ३ ॥

१ गिरिः— पर्वत, मेघ, पर्वत परका बर्फ।

भावार्थ— हे इन्द्र! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ २१ ॥

हे इन्द्र तू महान् है, यह पृथ्वी भी तेरे सामर्थ्यके वशमें होकर तेरे आदेशोंके अनुसार चलती है। विशाल और विस्तृत द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है। तूने असुरोंको मार कर पानीको प्रवाहित किया, इसी कारण सब लोक तुझसे घबराते हैं और तेरी आज्ञाके अनुसार चलते हैं ॥ १ ॥

इस महातेजस्वी इन्द्रके जन्मते ही इसके क्रोधसे द्युलोक कांपने लगा, भूमि कांपने लगी, सभी पर्वत और और मेघ कांपने लगे और उन मेघोंसे जब जल प्रवाह बहने लगे, तब उन प्रवाहोंसे मरुस्थल भी गीले और पानीसे भर गए ॥ २ ॥

शत्रुओंको हरानेवाले अपने सामर्थ्यसे जब इन्द्रने वज्रको प्रेरित किया, तब उससे मेघ विदीर्ण होकर पानी बरसाने लगे ॥ ३ ॥

१८९ सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौ- रिन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्यं सुवज्र- मनपच्युतं सदसो न भूम ॥ ४ ॥

१९० य एक इच्च्यावयति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥ ५ ॥

१९१ सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः ।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥ ६ ॥

१९२ त्वमध प्रथमं जायमानो ऽमे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
त्वं प्रति प्रवत आशयान- महिं वज्रेण मघवन् वि वृश्चः ॥ ७ ॥

अर्थ— [१८९] (यः) जिसने (स्वर्यं) स्तुत्य, (सुवज्रं) उत्तम वज्र धारण करनेवाले तथा (सदसः अनपच्युतं) अपने स्थानसे न हटाये जा सकनेवाले (भूम) तथा ऐश्वर्यसे युक्त (ईं जजान) इस इन्द्रको उत्पन्न किया। वह (इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्) इन्द्रको उत्पन्न करनेवाला प्रजापति उत्तम कर्म करनेवाला था। हे इन्द्र ! (ते जनिता) तुझे उत्पन्न करनेवालेने तुझे (सुवीरः मन्यत) उत्तम वीर माना ॥ ४ ॥

यः ईं जजान, इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्— जिसने इस इन्द्रको उत्पन्न किया, वह इन्द्रका जन्मदाता उत्तम कर्म करनेवाला था।

[१९०] (कृष्टीनां राजा पुरुहूत यः इन्द्रः) मनुष्योंका राजा तथा बहुतों द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाला जो इन्द्र (एकः इत्) अकेला होते हुए भी (भूम च्यावयति) बहुतसे शत्रुओंको अपने स्थानसे हटा देता है। (विश्वे मघोनः) सब ऐश्वर्यवान् मनुष्य (देवस्य गृणतः रातिं) दिव्य गुणवाले तथा स्तुति करनेवालेको धन देनेवाले (एनं अनु मदन्ति) इस इन्द्रको आनन्दित करते हैं ॥ ५ ॥

१ कृष्टीनां राजा इन्द्रः— प्रजाओंका राजा इन्द्र है।

२ एकः भूम च्यावयति— वह अकेलाही बहुत शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है।

[१९१] (सत्रा सोमाः अस्य) सब सोम इसी इन्द्रके हैं, (विश्वे मदासः) सब आनन्द देनेवाले सोम (बृहतः) इस महान् इन्द्रको (सत्रा मन्दिष्ठाः) एक साथ आनन्दित करते हैं। वह (वसूनां वसुपतिः अभवः) सब धनोंका स्वामी है, हे इन्द्र ! तू (विश्वाः कृष्टीः) सारे मनुष्योंको (दत्रे अधिथाः) ऐश्वर्यमें स्थापित करता है ॥ ६ ॥

विश्वाः कृष्टीः दत्रे अधिथाः— हे इन्द्र तू सब मनुष्योंको ऐश्वर्यमें स्थापित करता है।

[१९२] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जायमानः प्रथमं) उत्पन्न होते ही सबसे पहले (त्वं) तूने (अमे) युद्धमें (विश्वाः कृष्टीः) सब प्रजाओंको (अधिथा) धारण किया, (त्वं) तूने (प्रवतः प्रति) बहनेवाले जल प्रवाहोंको रोककर (आशयानं अहिं) सोनेवाले अहिको (वज्रेण विवृश्चः) वज्रसे मारा ॥ ७ ॥

भावार्थ— जिसने अपने स्थानसे च्युत न होनेवाले सामर्थ्यशाली इन्द्रको उत्पन्न किया, वह उत्तम कर्म करनेवाला पुण्यशाली था। ऐसे सामर्थ्यशाली वीरको जो स्त्री उत्पन्न करती है, वह सचमुच पुण्यशालिनी होती है। ऐसे सामर्थ्यशालीका सभा समाजमें सत्कार करती है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र मनुष्योंका पालक होनेसे सबका राजा है, इसीलिए सब इसे अपनी सहायता के लिए बुलाते हैं। यह अपनी वीरताके कारण बहुतसे शत्रुओंको भी अपने स्थानसे च्युत कर देता है। अतः सब दिव्यगुणवाले मनुष्य इस इन्द्रको आनन्दित करते हैं ॥ ५ ॥

सब सोम इसी इन्द्रके लिए निचोडे जाते हैं, और वे इसीको एक साथ आनन्दित करते हैं। वह सब धनोंका स्वामी है, इसीलिए वह सब मनुष्योंको ऐश्वर्यमें स्थापित करता है ॥ ६ ॥

१९३ सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥ ८ ॥

१९४ अयं वृतश्चातयते समीची- र्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्य- स्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥ ९ ॥

१९५ अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्न- न्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥ १० ॥

अर्थ— [१९३] (यः वृत्रं हन्ता) जो वृत्रको मारनेवाला, (वाजं सनिता) अन्न देनेवाला, (मघानि दाता) ऐश्वर्योंको देनेवाला (सुराधाः मघवा) उत्तम धन युक्त तथा ऐश्वर्यवान् है, इस (सत्राहणं) शत्रुओंको एक साथ मारनेवाले, (दाधृषिं) शत्रुओंका धर्षण करनेवाले (तुम्रं) प्रेरणा देनेवाले, (महां अपारं वृषभं सु-वज्रं) महान् अपार बलवान्, उत्तम वज्र धारण करनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रकी हम स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

[१९४] (यः मघवा) जो ऐश्वर्यवान् इन्द्र (आजिषु एकः शृण्वः) युद्धोंमें अकेला ही प्रसिद्ध है, (अयं) ऐसे इस इन्द्रने (समीचीः वृतः) संगठित हुए हुए शत्रुओंको (चातयते) हटाया है । (अयं) यह इन्द्र (यं वाजं भरति) जिस अन्नको देना चाहता है, (सनोति) उसे देता ही है, हम (अस्य सख्ये प्रियासः स्याम) इसकी मित्रतामें प्रिय होकर रहें ॥ ९ ॥

अस्य सख्ये प्रियासः स्याम— इस इन्द्रकी मित्रतामें हम इसके प्रिय होकर रहें ।

[१९५] (अध) तब (अयं) यह इन्द्र (जयन् घ्नन्) शत्रुओंको जीतता हुआ और मारता हुआ (शृण्वे) प्रसिद्ध होता है, (उत) और (युधा गाः प्र कृणुते) युद्धसे गायोंको प्राप्त करता है (यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते) जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है, तब (विश्वं एजत् दृळ्हं) सारा जंगम और स्थावर जगत् (अस्मात् भयत) इससे डरता है ॥ १० ॥

यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते, विश्वं एजत् दृळ्ह अस्मात् भयत्— जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है ।

भावार्थ— इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही सबसे पहले युद्धमें सब प्रजाओंको धारण किया और जल प्रवाहको रोककर सोनेवाले अहि नामक राक्षसको मारा । अहि मेघ है । जब मेघ बरसता नहीं और पानीको रोककर पड़ा रहता है, तब सूर्यकी किरणें बिजलीके रूपमें परिवर्तित होकर मेघोंको फोड़कर पानी बरसाती हैं ॥ ७ ॥

वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाला, अन्नको देनेवाला, ऐश्वर्योंको देनेवाला, उत्तम धन युक्त और ऐश्वर्यवान् है । वह शत्रुओं को एक साथ मारनेवाला, शत्रुओंको हरानेवाला, सबको प्रेरणा देनेवाला, और अत्यन्त बलवान् है ॥ ८ ॥

यह ऐश्वर्यवान् इन्द्र युद्धोंमें अकेलाही शत्रुओंको मारनेके कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है । वह जिस पर प्रसन्न होकर अन्नको देना चाहता है, उसको वह देता ही है । अतः हम भी इसकी मित्रतामें इसके प्रिय होकर रहें ॥ ९ ॥

जब यह इन्द्र शत्रुओंके विजेता और नाशकके रूपमें प्रसिद्ध होता है, तब युद्धमें इसका वास्तविक क्रोध प्रकट होता है और तब इसके क्रोधको देखकर सारा चर और अचर जगत् इससे डरने लगता है ॥ १० ॥

१९६ समिन्द्रो गा अजयत् सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः ।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता संभरश्च वस्वः ॥ ११ ॥
१९७ कियत् स्विदिन्द्रो अध्येति मातुः कियत् पितुर्जनितुर्यो जजान ।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयद्भिरभ्रैः ॥ १२ ॥
१९८ क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोती—यर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौ—रुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥ १३ ॥
१९९ अयं चक्रमिषणत् सूर्यस्य न्येतशं रीरमत् ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥ १४ ॥

अर्थ— [१९६] (मघवा इन्द्रः गाः सं अजयत्) ऐश्वर्यवान् इन्द्रने गायोंको अच्छी तरह जीता, तथा (हिरण्या सं) सोनेको भी जीता (अश्विया सं) घोडोंको जीता तथा (यः पूर्वीः) जिस इन्द्रने बहुतसी सेनाओंको जीता, वह (शाकैः नृतमः) शक्तियोंसे युक्त तथा उत्तम नेता इन्द्र (एभिः नृभिः) इन मनुष्योंसे प्रशंसित होकर (अस्य रायः विभक्ताः) अपने धनको बांट देता है, पर (वस्वः संभरः) फिर भी अनेक प्रकारके धनोंको धारण करता है ॥ ११ ॥

अस्य रायः विभक्ताः, वस्वः संभरः— यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, पर फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

[१९७] (यः जनितुः जजान) जो इन्द्र अपने उत्पन्न करनेवालेसे उत्पन्न होता है, तथा (स्तनयद्भिः अभ्रैः जूतः वातः न) गर्जनेवाले मेघोंके साथ प्रेरित वायुके समान (यः अस्य मुहुकैः इयर्ति) जो अपने बलको बारबार प्रेरित करता है, ऐसे (इन्द्रः) इन्द्रने (मातुः कियत स्वित् अधि एति) मातासे कितना बल प्राप्त किया और (पितुः कियत्) पितासे कितना बल प्राप्त किया ॥ १२ ॥

[१९८] हे इन्द्र ! (त्वं) तू (अ- क्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति) आश्रयरहितको आश्रयसे युक्त करता है। वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (समोहं रेणु इयर्ति) किये हुए पापको नष्ट करता है। (द्यौः इव अशनिमान्) द्युलोकके समान वज्र धारण करनेवाला, (विभंजनुः) शत्रुओंको तोडनेवाला (मघवा) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (स्तोतारं वसौ धात्) स्तोताको धनोंमें स्थापित करता है ॥ १३ ॥

अक्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति— वह इन्द्र आश्रय रहितको आश्रय प्रदान करता है।

[१९९] (अयं सूर्यस्य चक्रं इषणत्) इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया, तथा (ससृमाणं एतशं नि रीरमत्) युद्धके लिए आगे हुए एतशको वापस भेजा ! (जुहुराणः कृष्णः) कुटिल गति करनेवाला काला मेघ (त्वचः अस्य रजसः बुध्ने योनौ) तेजस्वी इस अलके मूल भूत स्थान अन्तरिक्षमें (ईं जिघर्ति) इस इन्द्रको रखता है ॥ १४ ॥

भावार्थ— उत्तम शक्तियोंसे भरपूर यह इन्द्र गाय, घोडे तथा अनेक तरहके ऐश्वर्योंको जीत कर जो धन प्राप्त करता है, उन्हें वह सब मनुष्योंमें बांट देता है फिर भी उसके पास भरपूर धन रहता है । इसीप्रकार राजा भी युद्ध आदिमें जो धन प्राप्त करे उसे वह प्रजाओंकी उन्नतिके कार्मोमें खर्च करे, तब प्रजा भी उन्नत होकर राज्यकोषको भरपूर करेगी ॥ ११ ॥

यह इन्द्र जिसे उत्पन्न करता है, उसीसे फिर यह उत्पन्न होता है, और वायुके समान अपने बलको प्रेरित करता है । यह इन्द्र कुछ शक्ति अपनी मातासे प्राप्त करता है, तो कुछ शक्ति अपने पितासे । यह इन्द्र राजा है, जो प्रजाका पालन होनेसे प्रजाको उत्पन्न करता है, फिर प्रजाओंके द्वारा चुने जानेके कारण उससे फिर उत्पन्न होता है । प्रजाओंकी सहायता पाकर वह अपने बलको शत्रुओंकी ओर प्रेरित करता है । प्रजा उसकी माता है और राष्ट्र या राज्यशासन उसका पिता है । राजाके रूपमें वह थोडेसे अधिकार प्रजासे प्राप्त करता है, तो थोडेसे अधिकार राज्यशासनसे प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है और किए हुए पापको नष्ट करता है । वह वज्रधारी इन्द्र अपने स्तोताओंको धन प्रदान करता है । राजा भी अपने राष्ट्रमें जो आश्रयरहित हो उसे सहारा दे । अनाथको सुखप्रदान करे और अपनी प्रजाओंको ऐश्वर्यसे युक्त करके उन्हे अपराध करनेका अवसर न दे ॥ १३ ॥

×

२०० असिक्न्यां यजमानो न होता ॥ १५ ॥

२०१ गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोति—मा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥ १६ ॥

२०२ त्राता नो बोधि ददृशान आपि—रभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितॄणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥ १७ ॥

२०३ सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाधं आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ १८ ॥

---

[२००] (असिक्न्यां न यजमानः होता) रात्रीमें प्रशंसित यजमान अग्निका रक्षण करता है ॥ १५ ॥

[२०१] (अवते कोशं न) जिसप्रकार लोग कुंओंमेंसे जलसे भरे बर्तनको निकालते हैं, उसी प्रकार (गव्यन्तः अश्वायन्तः, वाजयन्तः जनीयन्तः) गायकी इच्छा करनेवाले, घोडोंकी इच्छा करनेवाले, अन्नकी इच्छा करनेवाले तथा स्त्रियोंकी इच्छा करनेवाले (विप्राः) बुद्धिमान् हम (वृषणं जनिदां अक्षितोतिं) बलवान्, स्त्रियोंको देनेवाले, क्षीण न होनेवाले संरक्षणके साधनोंसे युक्त (इन्द्रं) इन्द्रको (आच्यावयामः) अपनी तरफ लाते हैं ॥ १६ ॥

[२०२] हे इन्द्र ! (ददृशानः) सबको देखनेवाला तू (नः त्राता आपिः बोधि) हमारा रक्षण करनेवाला भाई हो कर हमें जान । वह इन्द्र (अभिख्याता) सब तरफ प्रसिद्ध, (सोम्यानां मर्डिता) सोम यज्ञ करनेवालोंको सुखी करनेवाला (सखा) मित्र (पिता) पालन करनेवाला (पितॄणां पितृतमः) पालन करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ (ईं लोकं कर्ता) इस लोकका बनानेवाला तथा (उशते वयोधाः) स्तोताके लिए अन्नको धारण करनेवाला है ॥ १७ ॥

[२०३] हे इन्द्र ! (सखीयतां अविता बोधि) तेरी मित्रता चाहनेवाले हमारा तू रक्षक हो, हे (गृणानः इन्द्र) प्रशंसित होनेवाले इन्द्र ! तू (सखा) हमारा मित्र हो, तथा (स्तुवते वयः धाः) स्तोताके लिए अन्नको धारण कर । हे इन्द्र ! (सबाधः वयं) आपत्तिमें पडे हुए हम (आभिः शमीभिः महयन्तः) इन स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (ते आ चकृम) तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया तथा चारों ओरसे घिरकर आते हुए अन्धकारको दूर किया, जब काले काले मेघ छाते हैं, तब उन जलोंमें सूर्यकी किरणें प्रविष्ट होती हैं और बादल जब रगड खाते हैं, तब उनमें बिजली चमकती है वही इन्द्रका रूप है ॥ १४ ॥

दिनमें यज्ञ करनेके समय अग्निकी रक्षा ऋत्विग्गण करते हैं, पर रात्रीमें ऋत्विग्गणोंके अभावमें यजमानको ही अग्निकी रक्षा करनी पडती है । इसी लिए यजमानको "अग्नीध्र" कहा जाता है ॥ १५ ॥

जिस प्रकार मनुष्य कुंवेमेंसे पानी भरते हैं, उसी तरह ऐहिक सुखकी कामना करनेवाले ज्ञानी जन हम इन्द्रको अपनी ओर बुलाते हैं ॥ १६ ॥

इन्द्र सबके कार्यको देखनेवाला और सबका भाई होकर सबकी रक्षा करनेवाला है । यह सर्वत्र प्रसिद्ध, सोम यज्ञ करनेवालोंको सुखी करनेवाला, मित्रके समान हितकारी सबका पालन करनेवाला और पालन करनेवालोंमें भी सर्वश्रेष्ठ और लोकोंका बनानेवाला है ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! हमारी मित्रताको चाहते हुए तू हमारा रक्षक हो । हम आपत्तिमें पडे हुए हैं अतः हम तेरी प्रार्थना करते हैं ॥ १८ ॥

२०४ स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥ १९ ॥
२०५ एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत् सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥ २० ॥
२०६ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ २१ ॥

[१८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः, १ इन्द्र, ४ (उत्तरार्धर्चस्य), ७ अदितिः । देवता- १ वामदेवः, २-४ (पूर्वार्धर्चस्य), ८-१३ इन्द्रः, ४ (उत्तरार्धर्चस्य), ७ वामदेवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२०७ अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥ १ ॥

अर्थ— [२०४] (यत् ह) जब (मघवा इन्द्रः स्तुतः) ऐश्वर्यवान इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब वह (एकः) अकेला ही (अप्रतीनि भूरीणि वृत्रा हन्ति) पीछे न हटनेवाले बहुतसे वृत्रोंको मार देता है। (यस्य शर्मन्) जिस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले (अस्य प्रियः जरिता) इसके प्रिय स्तोताको (नकिः देवाः वारयन्ते न मर्ताः) न देव नष्ट कर सकते हैं और न मनुष्य नष्ट कर सकते हैं ॥ १९ ॥

यस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते न मर्ताः— इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले इसके मित्रको न देव मार सकते हैं न मनुष्य ।

[२०५] (विरप्शी, चर्षणीधृत्, अनर्वा मघवा इन्द्रः) शक्तिशाली, मनुष्योंको धारण करनेवाला, प्रतिबन्ध रहित और ऐश्वर्यवान् इन्द्र (एव) ही (नः सत्या करत्) हमारी कामनाओंको सत्य करनेवाला है। (जनुषां राजा त्वं) जन्मलेनेवाले प्राणियोंका राजा तू (यत् माहिनं श्रवः) जो यशस्वी अन्न (जरित्रे) स्तोताको देता है, वह (अस्मे अधि धेहि) हमें भी दे ॥ २० ॥

[२०६] (नद्यः न) जिस प्रकार नदियोंको जल पूर्ण करते हैं उसीप्रकार हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) प्रशंसित तथा स्तुति किया हुआ तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर। हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! हमने (धिया) अपनी बुद्धिसे (ते नव्यं ब्रह्म अकारि) तेरे लिए नया स्तोत्र बनाया है, हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथवाले तथा दासोंसे युक्त हों ॥ २१ ॥

[१८]

[२०७] (अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः) यह मार्ग ऐश्वर्य दिलानेवाला सनातन है। (यतः विश्वे देवाः उत् अजायन्त) जिस मार्गसे सब देव उन्नत हुए हैं, (अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट) इसीसे मनुष्य उन्नत होकर बडा हुआ है हे मनुष्य ! (अमुया) अपनी उत्पत्तिसे (मातरं पत्तवे मा कः) माताको नष्ट मत कर।

१ अमुया मातरं पत्तवे मा कः— अपनी कार्य प्रवृत्तीसे अपनी मातृभूमिको गिरावट न कर।
२ अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः— यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला सनातन है।
३ अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट— इस मार्गसे निश्चयसे बडे होते हैं।

भावार्थ— जब इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तब इन्द्रका बल बढता है और वह अकेला ही अनेक शत्रुओंको मारता है। जो मनुष्य इसके आश्रयमें रहता है और इसका प्रेम प्राप्त करता है, उसे न देव मार सकते हैं और न मनुष्य ॥ १९ ॥

शक्तिशाली, मनुष्योंको धारण करनेवाला, तथा किसीसे भी न रुकनेवाला ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही हमारे मनोरथोंको पूर्ण कर सकता है। हे इन्द्र ! तू सारे प्राणियोंका राजा है तू जो उत्तम अन्न स्तोताको देता है, वही हमें भी दे ॥ २० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं अतः तू जैसे नदियाँ मनुष्योंको पानी देती हैं उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ २१ ॥

२०८ नाहमतो निरया दुर्गहैतत् तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥ २ ॥
२०९ परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत् सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥ ३ ॥
२१० किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥ ४ ॥

अर्थ— [२०८] (अहं अतः न निरय) मैं इस मार्गसे नहीं जाऊंगा, (एतत् दुः गहा) यह मार्ग बहुत दुर्गम है, इसलिए मैं (तिरश्चता पार्श्वात् निगर्माणि) तिरछे बाजूसे निकलूंगा, (मे) मेरे (बहूनि अकृता कर्त्वानि) बहुतसे न किए हुए करने योग्य कर्म हैं। (त्वेन युध्यै) किससे युद्ध करना है, यह मैं (त्वेन संपृच्छै) किससे पूछुं ॥२॥

१ एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय— यह दुर्गम मार्ग है अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा।
२ तिरश्चता पार्श्वात् निर्गमाणि— दूसरे मार्गसे जाऊंगा।
३ बहूनि कर्त्वानि अकृता— बहुतसे कर्तव्य किये नहीं हैं।
४ त्वेन युध्यै, त्वेन संपच्छै— एकसे लडूंगा और पूछूंगा।

[२०९] मैंने (परायतीं मातरं अनु अचष्ट) आसन्नमरण हुई माताको देख लिया है, और मैं (न अगानि न) उसके सहायार्थ नहीं जाता हूँ ऐसी बात नहीं, अपितु (गमानि नु) जाता ही हूँ। (इन्द्रः) इन्द्रने (चम्वो सुतस्य त्वष्टुः) लकडीके पात्रोंमें सोमरस निचोडनेवाले त्वष्टाके (गृहे) घरमें (शत धन्यं सोमं अपिबत्) सैकडों प्रकारके धन्यता देनेवाले सोमको पिया ॥ ३ ॥

[२१०] (यं) जिसका (सहस्रं मासः पूर्वीः शरदः च) हजारों महिनों और बहुत वर्षों तक (जभार) भरणपोषण किया है, (सः) वह (ऋधक् किं कृणवत्) विरुद्ध कर्म क्यों करेगा? (ये जनित्वाः) जो उत्पन्न होनेवाले हैं, उनके और (जातेषु) उत्पन्न हुओंके (अन्तः) बीचमें (अस्य प्रतिमानं न हि) इस इन्द्रकी उपमा कोई नहीं है ॥ ४ ॥

१ यं सहस्रं मासाः पूर्वीः शरदः च जभार सः ऋणक् किं कृणवत्— जिसका बहुत मासों और वर्षोंतक भरणपोषण किया गया है, वह अपने पोषण करनेवालेके विरुद्ध कोई काम क्यों करेगा? अर्थात् कभी नहीं कर सकता।
२ जनित्वाः जातेषु अस्य प्रतिमानं नहि— उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

भावार्थ— मनुष्य उत्पन्न होकर ऐसा कर्म करे कि जिससे उसके कुल और उसकी मातृभूमिका अपयश होकर उसकी अवनति न हो। यही उत्तम मार्ग ऐश्वर्यको दिलानेवाला है। इसी उत्तम मार्गपर चलकर सब देव उन्नत हुए हैं और इसीप्रकार चलकर मनुष्य भी उन्नत हो सकता है ॥ १ ॥

मातृभूमिको तथा स्वयंको गिरानेवाले मार्ग बहुत खतरनाक होते हैं, अतः मनुष्यको चाहिए कि वह इस मार्गसे न जाए। इसके विपरित वह इस मार्गको बगल करके निकल जाए। उसके सामने हमेशा आगे बढनेका ही आदर्श हो, क्यों कि उसके सामने ऐसे कई काम पडे रहते हैं जो अभी करने बाकी है। मनुष्य जीवनभर कर्म करता रहे फिर भी काम खतम होनेवाले नहीं है। मनुष्य मरणशील हैं। पर कर्म अमर है इसलिए मनुष्य सदा उन्नतिके मार्गपर ही चले ॥ २ ॥

मनुष्यको चाहिए कि जब उसकी मातृभूमि अवनत हो रही हो, तब उसकी सहायताके लिए वह अवश्य जाए। अपनी मातृभूमिकी उपेक्षा न करे। ऐसा मनुष्य ही इन्द्रका प्रिय होकर धन्य होता है ॥ ३ ॥

मनुष्यको चाहिए कि वह अपने आश्रितोंका बडे प्रेमसे भरणपोषण करे और जिनका भरणपोषण किया जाता है, उन्हे भी चाहिए कि वे अपने स्वामीके विरुद्ध कोई काम न करे। आश्रयदाता और आश्रित दोनों बडे प्रेमसे रहें ॥ ४ ॥

२११ अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात् स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥ ५ ॥

२१२ एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥ ६ ॥

२१३ किमु ष्विदस्मै निविदो भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिधिषन्त आपः ।
ममैतान् पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ॥ ७ ॥

२१४ ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२११] (माता) माताने (गुहा इन्द्रं अवद्यं इव मन्यमाना) गुहा (गर्भ) में स्थित इन्द्रको निन्दनीय मानकर (वीर्येण न्यृष्टं अकः) बलपूर्वक बाहर निकाल फेंका। (अथ , तब इन्द्र (अत्कं वसानः स्वयं उत् अस्थात्) तेजको आवरण धारण करता हुआ स्वयं उठ खडा हुआ और (जायमानः) उत्पन्न होते ही उसने (रोदसी अपृणात्) द्यावा पृथिवीको अपने तेजसे भर दिया ॥ ५ ॥

[२१२] (अल्लाभवन्तीः) हर्षसे शब्द करती हुई (ऋतावरीः) पानीसे भरी हुई (एताः) ये नदियां (संक्रोशमानाः इव) मानों चिल्लाती हुई (अर्षन्ति) बह रही हैं। (आपः इदं किं भनन्ति) ये जल यह क्या कह रहे हैं, (एताः वि पृच्छ) इनसे यह पूछ। इन्द्रके शस्त्र (कं परिधिं अद्रिं रुजन्ति) जलको घेरनेवाले मेघकों फोडते हैं ॥ ६ ॥

[२१३] (नि विदः अस्मै किं उ भनन्त) स्तुतियां इस इन्द्रसे क्या कहती हैं तथा (आपः) जल (इन्द्रस्य अवद्यं दिधिषन्तेः) इन्द्रके निर्दोषपनको स्तुतियां धारण करती हैं। (मम पुत्रः) मेरे पुत्रने (महता वधेन वृत्रं जघन्वान्) बडे शस्त्रसे वृत्रको मारा और (एतान् सिन्धून् वि असृजत्) इन नदियोंको बहाया ॥ ७ ॥

[२१४] हे इन्द्र ! (ममत् चन त्वा) एक बार तुझे (युवतिः परास) स्त्री (अदिति) ने दूर रखा, (ममत् चन त्वा कुषवा जगार) एक बार तुझे कुषवा नामक नदीने निगल लिया था, तथा (ममत्- चित् आपः , वहां पर एक बार जलोंने (शिशवे ममृड्युः) शिशुके रूपवाले तुझे सुखी किया और तब (ममत्- चित् इन्द्रः) दूसरी बार इन्द्र (सहसा उत् अतिष्ठत्) अपने बलसे उठ खडा हुआ ॥ ८ ॥

भावार्थ— प्रकृति माताके गर्भमें रहता हुआ यह इन्द्ररूपी सूर्य अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण माताके लिए इसे गर्भमें धारण करना असह्य हो गया, तब प्रकृति माताने बलपूर्वक उसे अपने गर्भसे बाहर निकाल फेंका। तब वह गर्भ सूर्यके रूपमें बाहर आकर द्युलोकमें स्थित हो गया और उत्पन्न होते ही उसने द्युलोक और पृथ्वी लोकको अपने प्रकाशसे भर दिया ॥ ५ ॥

बहनेवाली नदियां अत्यन्त हर्षसे युक्त होकर कल कल करती हुई बहती हैं, और हर्षसे युक्त शब्दको प्रकट करती हुई बह रही हैं। वे मानों यह कह रही हों कि हमारे जलको मेघ घेरे रहते हैं, पर जब अपने शस्त्रसे इन्द्र उन्हें फोडता है, तब पानी बरसता है और तब हम भी बहना शुरु कर देती हैं ॥ ६ ॥

ऋत्विजोंके द्वारा की गई स्तुतियां इन्द्रके बलको बढाती है इस प्रकार मानों वे इन्द्रको उत्पन्न ही करती हैं। वे स्तुतियां कहती हैं कि हमारे पुत्र इन्द्रने बडे शस्त्रसे मेघोंको मारा और इन जल प्रवाहोंको बहाया, और जल प्रवाहोंसे भरी हुई नदियां इन्द्रकी शक्तिको धारण करती हैं ॥ ७ ॥

माताने बालक इन्द्रको प्रथम दूर रखा, वह बालक नदीमें एक बार डूब गया, वही एक बार जलमें खेलने लगा। पश्चात् वह बडा हुआ और अपने पांवपर खडा रहा। यह बाल इन्द्रका आलंकारिक वर्णन है।

२१५ मर्मचन ते मघवन् व्यंसो निविविध्वाँ अप हनू जघान ।
अधा निविद्ध उत्तरो बभूवा- ञ्छिरो दासस्य सं पिणग्वधेन ॥ ९ ॥

२१६ गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागा- मनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम् ।
अरीळ्हं वत्सं चरथाय माता स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानम् ॥ १० ॥

२१७ उत माता महिषमन्ववेन- दमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन् त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ११ ॥

अर्थ— [२१५] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र! (ममत्- चन) एक वार तुझपर (नि विविध्वान्) आक्रमण करते हुए (व्यंसः) व्यंस नामक राक्षसने (ते हनू अप जघान) तेरी ठोढी पर प्रहार किया (अधः) बादमें (निविद्धः उत्तरः बभूवान्) वींधा गया तू अधिक बलशाली हुआ और तूने (दासस्य शिरः वधेन सं पिणक्) उस दासके सिरको शस्त्रसे काट दिया ॥ ९ ॥

[२१६] (गृष्टिः वत्सं) जिस प्रकार गाय बछडेको उत्पन्न करती है, उसीप्रकार (माता) माता अदितिने (स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानं) स्वयं चलनेके लिए शरीरकी इच्छा करनेवाले (स्थविरं तवागां) बडे, बलशाली, (अनाधृष्यं वृषभं) शत्रुओंसे न हारनेवाले बलवान् (तुम्रं अरीळ्हं इन्द्रं) प्रेरक और न मारे जानेवाले, इन्द्रको (चरथाय ससूव) विचरनेके लिए उत्पन्न-प्रकट किया ॥ १० ॥

[२१७] (उत) और (माता) माताने (महिषं अनु अवेनत्) महान् इन्द्रकी प्रशंसा की कि हे (पुत्र) पुत्र! (अमी देवाः त्वा जहति) ये देव तुझे छोड रहे हैं। (अथ) तब (वृत्रं हनिष्यन्) वृत्रको मारनेकी इच्छा करते हुए (इन्द्रः) इन्द्रने [विष्णुसे] (अब्रवीत्) कहा कि हे (सखे विष्णो) मित्र विष्णो! (वितरं विक्रमस्व) तू उत्तम पराक्रम कर ॥ ११ ॥

भावार्थ— व्यंस राक्षसने युद्धमें इन्द्रकी ठोढी पर प्रहार किया। इसके पश्चात् इन्द्र बडा होकर अधिक शक्तिशाली हुआ और उसी दासके सिरको उसी इन्द्रने काटा ॥ ९ ॥

इन्द्र शत्रुपर हमले करनेके लिये आक्रमण करना चाहता था। इसलिये बलवान् इन्द्रको माताने बलशाली स्थितिमें उत्पन्न किया ॥ १० ॥

एक बार इन्द्र जब शक्तिरहित होने लगा, तब उसकी माताने कहा कि तुझे ये देवगण छोड रहे हैं, तब वृत्र असुर को मारनेकी इच्छासे इन्द्रने विष्णुसे कहा कि तू अपना पराक्रम प्रकट करके उस असुरका नाश कर। यह एक आध्यात्मिक अलंकार है, इस मंत्रमें शरीरकी अवस्थाका वर्णन है। जब इन्द्र-आत्मा निर्बल हो जाती है, तब उसे सब देवरूपी इन्द्रियां छोडने लगती हैं, अर्थात् आत्मशक्ति कमजोर पड जाती है, तब इन्द्रियोंकी शक्ति भी कमजोर पडने लगती है, तब आत्माको शक्ति देनेवाली उसकी माता अर्थात उसे सजग करता है कि देख इस शरीरमेंसे इन्द्रियोंकी शक्ति कम हो रही है, तब आत्मा भी सजग होकर विष्णु अर्थात् प्राणशक्तिको प्रेरित करती है और वह प्राणशक्ति प्रेरित होकर फिर इन्द्रियोंको पुष्ट करती है ॥ ११ ॥

२१८ कस्ते मातरं विधवामचक्र—च्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।
कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद् यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥ १२ ॥
२१९ अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।
अपश्यं जायाममहीयमाना—मधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥ १३ ॥

[१९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२२० एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद् वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥

अर्थ— [२१८] हे इन्द्र ! (यत्) जब तूने (पितरं पादगृह्य प्राक्षिणाः) पिताको पैर पकड कर फेंका तब (कः ते मातरं विधवां अचक्रत्) तेरी माताको किसने विधवा बनाया ? और (शयुं चरन्तं त्वां) सोनेवाले और चलनेवाले तुझे (कः जिघांसत्) किसने मारनेकी इच्छा की और (कः देवः मार्डीके ते अधि आसीत्) कौन देव सुख देनेमें तुझसे अधिक था ? ॥ १२ ॥

[२१९] मैंने (अवर्त्या शुनः आंत्राणि पेचे) नबर्तने योग्य कुत्तेकी अंतडियोंको पकाया, (देवेषु मर्डितारं न विविदे) देवोंमें सुखी करनेवालेको मैंने नहीं जाना, और (जायां अमहीयमानां अपश्यं) अपनी स्त्रीको अप्रशंसनीय स्थितिमें देखा, (अध श्येनः मे मधु आ जभार) तब श्येन मेरे लिए मधुर अन्न लाया ॥ १३ ॥

[१९]

[२२०] हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (सु-हवासः ऊमाः विश्वे देवासः) उत्तम प्रकारसे सहायार्थ बुलाने योग्य, रक्षा करनेवाले सम्पूर्ण देव तथा (उभे रोदसी) दोनों द्यावापृथिवी (वृद्ध ऋष्वं) वृद्ध, महान् (त्वा) तुझे (एकं इत्) अकेलेको ही (अत्र वृत्रहत्ये) इस युद्धमें (वृणते) स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— यह मंत्र भी आध्यात्मिक भावार्थको लिए हुए है। जब इन्द्ररूपी जीवात्मा अपने पिता परमात्माको दूर फेंक देता है अर्थात् भुला देता है, तब आत्माको उत्पन्न करनेवाली शक्तिरूप उसकी माता विधवाके समान शक्तिरहित हो जाती है। परमात्माकी शक्ति ही आत्माको शक्तिसम्पन्न करती है। इसलिए वह मानों आत्माको उत्पन्न ही करती है। जब यह आत्मा सोती रहती है, सजग नहीं रहती, तो मानों उसकी मृत्यु ही हो जाती है। जितना सुख यह जीवात्मा देती है, उससे ज्यादा सुख सुखस्वरूप परमात्मा देता है ॥ १२ ॥

इस मंत्रमें नीच प्रवृत्तिके मनुष्यके विषयमें विधान है। जब मनुष्य अत्यन्त नीच स्थितिमें पहुंचकर कुत्ते आदि पशुओंके मांस पर अपना जीवन निर्वाह करने लगता है, तब उसे कोई भी देव सुख प्रदान नहीं करता, उसके शरीरमें स्थित इन्द्रियां रूपी देव शक्तिहीन होकर दुःख भोगने लगते हैं। उसकी स्त्री आदि उसके पारिवारक सदस्य भी अप्रशंसनीय स्थितिमें ही रहते हैं, उनकी स्थिति भी बडी दयनीय होती है। तब एक विद्वान् आकर उसे मीठा प्रशंसनीय अन्नका महत्त्व बताकर उसे पशुमांसको छोडनेका आदेश देता है, तब उसकी स्थिति सुधरती है। शारीरिक स्थिति मधुर अन्न खानेसे ही सुधरती है, पशुमांसको खानेसे नहीं ॥ १३ ॥

इस वज्रधारी इन्द्रको सभी देव और सभी लोक असुरोंको मारनेके लिए बुलाते हैं और अपने नेताके रूपमें स्वीकार करते हैं ॥ १ ॥

२२१ अवासृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः ॥ २ ॥

२२२ अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्य— मबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।
सप्त प्रति प्रवत आशयान— महिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥ ३ ॥

२२३ अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजो— ऽवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥ ४ ॥

२२४ अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२२१] (जिव्रयः न) जिस प्रकार वृद्ध तरुणोंको प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार (देवाः) देवगण तुझे (अवाअसृजन्त) प्रेरित करते हैं। हे (सत्ययोनिः इन्द्र) सत्यके आश्रयस्थान इन्द्र ! तू (सम्राट् भुवः) सम्राट् हुआ है, तूने (अर्णः परिशयानं अहिं) पानीके चारों तरफ सोनेवाले अहि राक्षसको (अहन्) मार कर (विश्वधेनाः प्रवर्तनी अरदः) सबको तृप्त करनेवाली नदियोंको प्रेरित किया ॥ २ ॥

[२२२] (अतृप्णुवन्तं अबुध्यं) तृप्त न होनेवाले, कठिनतासे जाने जानेवाले, (अबुध्यमानं) स्वयं कुछ न जाननेवाले, (सुषुपाणं) सोनेकी इच्छा करनेवाले (सप्त प्रवतः) सात नदियोंको (प्रति आशयानं) घेर कर बैठनेवाले (वियतं) तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले (अहिं) अहिको, हे इन्द्र ! तूने (अपर्वन्) संधियोंसे रहित करते हुए (वज्रेण विरिणाः) वज्रसे मारा ॥ ३ ॥

१ अ- पर्वन्— संधियोंसे रहित, जो पर्वका दिन नहीं, ऐसे पौर्णमासी अष्टमी और चतुर्दशी। पर्वके दिन छोडकर दूसरे दिन मारा।

[२२३] (वातः तविषीभिः वार्ण) जिस प्रकार वायु अपने बलोंसे पानीमें हलचल पैदा करता है, उसी तरह (इन्द्रः) इन्द्रने (शवसा) बलसे (बुध्नं क्षाम) द्युलोक और पृथ्वीलोकको (अक्षोदयत्) हिला दिया। (ओजः उशमानः) बलकी कामना करते हुए इन्द्रने (दृळ्हानि औभ्नात्) अत्यंत दृढ शत्रुओंको भी मार दिया, तथा (पर्वतानां ककुभः अवाभिनत्) पर्वतोंके पंखोंको भी काट डाला ॥ ४ ॥

[२२४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (जनयः गर्भं न) जैसे मातायें अपने गर्भकी रक्षा करती हैं उसी तरह (अद्रयः) शस्त्र (अभि प्रदद्रुः) तेरे पीछे पीछे चलते हैं, (रथाः इव) तथा जिसप्रकार रथ युद्धमें साथ जाते हैं उसी तरह ये शस्त्र तेरे (साकं ययुः) तेरे साथ चलते है। तूने (विसृतः अतर्पयः) नदियोंको तृप्त किया (ऊर्मीन् उब्ज) मेघोंको फोडा तथा, हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (वृतान् सिन्धून्) रुकी हुई नदियोंको (अरिणाः) बहाया ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिसप्रकार वृद्ध तरुणोंको उत्तम उपदेश देकर उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं, उसी प्रकार देवगण इस इन्द्रको वीरतापूर्ण कर्म करनेके लिए प्रेरित करते हैं। यह इन्द्र सदा सत्यका ही पक्ष लेता है। इसलिए अहि आदि असुर असत्यका पक्ष लेकर प्रजाको दुःख देते हैं, उन्हें मारकर इन्द्र सबको तृप्त एवं सुखी करता है ॥ २ ॥

कभी न तृप्त होनेवाले, सदा ही असन्तोषकी वृत्ति धारण करनेवाले, स्वयं कुछ न जाननेवाले अज्ञानसे भरपूर मनुष्य असुर कहलाते हैं, इन्द्र उनका वध करता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार हवा अपने बलसे पानीमें हलचल पैदा करती है उसी प्रकार इन्द्रने अपने बलसे द्युलोक और पृथ्वीलोकको क्षुब्ध किया। वह बहुत शक्तिशाली है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार मातायें अपने गर्भकी रक्षा करती हैं उसी प्रकार शस्त्र भी इस इन्द्रकी रक्षा करते हैं अथवा जिस प्रकार रथयुद्धमें रथ वीरोंके साथ साथ जाते हैं, उसी प्रकार ये शस्त्र भी इन्द्रके साथ साथ चलते हैं। इस इन्द्रने मेघोंको तोडकर जलप्रवाह चलाकर नदियोंको तृप्त किया ॥ ५ ॥

२२५ त्वं महीमवनिं विश्वधेनां तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥ ६ ॥
२२६ प्राग्रुवो नभन्वोऽ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद् युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक् तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्योऽ दंसुपत्नीः ॥ ७ ॥
२२७ पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद् वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥ ८ ॥
२२८ वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्य१न्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित् समरन्त पर्व ॥ ९ ॥

अर्थ— [२२५] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं) तूने (तुर्वीतये वय्याय) तुर्वीति और वय्यके लिये (विश्वधेनां क्षरन्तीं महीं अवनिं) सबको तृप्त करनेवाली, धान्यको देनेवाली विस्तृत पृथ्वीको (एजत् अर्णः नमसा) बहनेवाले पानीसे और अन्नसे (अरमयः) आनन्दित किया, तथा तूने (सिन्धून् सुतरणान् अकृणोः) नदियोंको उत्तमता से पार करने योग्य बनाया ॥ ६ ॥

[२२६] इन्द्रने (नभन्वः वक्वाः न) हिंसक सेनाओंके समान (ध्वस्राः) किनारोंको ध्वस्त करनेवाली (युवतीः ऋतज्ञाः) जलसे भरी हुई तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाली (अग्रुवः अपिन्वद्) नदियोंको पूर्ण किया। (धन्वानि) मरुस्थलोंको तथा (तृषाणां अज्रान्) प्यासी भूमियोंको (अपृणक्) तृप्त किया तथा (दंसुपत्नीः स्तर्यः) शक्तिशाली स्वामियोंवाली गायोंको (इन्द्रः अधोक्) इन्द्रने दुहा ॥ ७ ॥

[२२७] इन्द्रने (वृत्रं जघन्वान्) वृत्रको मारा और (गूर्ताः पूर्वीः उषसः शरदः च) अन्धकारमें डूबी हुई बहुतसी उषाओंको और वर्षोंको तथा (सिन्धून्) नदियोंको (असृजत्) प्रकट किया। (परिष्ठिताः) बादलोंमें स्थित (बद्बधानाः) वृत्रके द्वारा रोकी गई (सीराः) नदियोंको (पृथिव्या स्रवितवे) पृथिवीपर बहनेके लिए (अतृणत्) प्रेरित किया ॥ ८ ॥

[२२८] हे (हरि-वः) घोडोंको रखनेवाले इन्द्र! तूने (वम्रीभिः अदानं) चींटियोंके द्वारा खाये जानेवाले (अग्रुवः पुत्रं) अग्रुके पुत्रको (निवेशनात् आ जभर्थ) उसके घरसे बाहर निकाला। (आददानः अन्धः अहिं अख्यत्) बाहर निकल कर उस अन्धे अग्रुके पुत्रने अहिको देखा। (निर्भूतः) वह घरसे बाहर निकला, तब इन्द्रने (उखाच्छित् पर्व) बर्तनके समान टूट जानेवाले उसके जोडोंको (समरन्त) अच्छी तरह जोडा ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने वीरके लिए सारी पृथ्वीको विस्तृत, धान्यसे सम्पन्न और तृप्त करनेवाली बनाया और नदियोंको भी सरलतासे पार करने योग्य बनाया ॥ ६ ॥

इन्द्रने, जिसप्रकार हिंसक सेनायें अपनी प्रतिपक्षी सेनाओंका नाश करती हैं, उसीप्रकार किनारोंको ध्वस्त करनेवाली जलसे पूर्ण नदियोंको प्रवाहित किया, उससे मरुस्थलों और प्यासी भूमियोंको तृप्त करके उर्वरा बनाया तब उन भूमियोंको बनाकर उनको दुहा अर्थात् उससे अनेक रस प्राप्त किए ॥ ७ ॥

इन्द्रने अन्धकारमें डूबी हुई उषाओंको प्रकट किया, उन उषाओंके कारण सूर्य प्रकट हुआ, सूर्यके प्रकट होनेके साथही वर्षों, मासों और दिवसोंकी गणना होने लगी। सूर्यके उगनेसे बर्फ पिघलने लगी, तो नदियोंमें प्रवाह तेज हो गया ॥ ८ ॥

इन्द्रने अग्रुवके पुत्रकी रक्षा की, वह अन्धा था, अतः उसे दृष्टि देकर देखने योग्य बनाया और उसकी टूटी हुई सन्धियोंको जोडकर फिर उसे स्वस्थ कर दिया ॥ ९ ॥

×

२२९ प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्रा ऽऽविद्वाँ आह विदुषे करांसि ।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्ता ऽपांसि राजन् नर्याविवेषीः ॥ १० ॥
२३० नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२३१ आ न इन्द्रो दूरादा न आसा दभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः ।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः संगे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥ १ ॥
२३२ आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छा ऽर्वाचीनोऽवसे राधसे च ।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शी मं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥ २ ॥

अर्थ— [२२९] हे (राजन्) तेजस्वी इन्द्र ! (यथा यथा) जैसे जैसे तू (स्वगूर्ता) स्वयं प्रशंसित तथा (नर्या) मनुष्योंके लिए हितकारक और (वृष्ण्यानि अपांसि) पराक्रमसे युक्त कर्मोंको (आ विवेषीः) करता है, वैसे वैसे हे (विप्र) विद्वान् इन्द्र ! (विदुषे ते) ज्ञानसे युक्त तेरे द्वारा किए गए (पूर्वाणि करणानि) बहुतसे कर्मोंको (आ विद्वान्) जाननेवाला मैं (करांसि आह) तेरे कर्मोंका वर्णन करता हूँ ॥ १० ॥

[२३०] हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (जरित्रे) स्तोताके लिए (इषं) अन्नको (नद्यः न) नदियोंके समान (पीपेः) भर दे । हे (हरि- वः) घोडोंवाले इन्द्र ! मैं (धिया) अपनी बुद्धिसे (ते) तेरे लिए (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (अकारि) करता हूँ, हम (रथ्यः सदासाः) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२०]

[२३१] (समत्सु संगे पृतन्यून् तुर्वणिः) बडे बडे संग्रामोंमें और छोटे संग्राममें हिंसकोंको मारनेवाला (वज्रबाहुः) वज्रके समान कठोर बाहुओंवाला, (नृपतिः) मनुष्योंका पालन करनेवाला (ओजिष्ठेभिः) सामर्थ्योंसे युक्त तथा (अभिष्टिकृत् इन्द्रः) अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला इन्द्र (नः अवसे) हमारे संरक्षणके लिए (दूराद्- आसाद् नः यासत्) दूरसे और पाससे हमारे पास आवे ॥ १ ॥

[२३२] (अर्वाचीनः इन्द्रः) हमारी तरफ आनेवाला इन्द्र (अवसे राधसे) हमारे संरक्षणके लिए तथा हमें धन देनेके लिए (हरिभिः नः अच्छ आ यातु) घोडोंसे हमारी तरफ सीधा आवे । (वज्री, मघवा, विरप्शी) वज्र धारण करनेवाला, ऐश्वर्यवान् और महान् इन्द्र (वाजसातौ) अन्नप्राप्तिके लिए यज्ञोंके शुरु होनेपर (इमं यज्ञं तिष्ठाति) हमारे इस यज्ञमें ही बैठता है ॥ २ ॥

भावार्थ— यह तेजस्वी इन्द्र सुखदायक मनुष्योंके लिए हितकारक और पराक्रमसे युक्त कर्मोंको करता है, उसी कारण इस इन्द्रके कर्मोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे । हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं । तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११

यह इन्द्र संग्रामोंमें शत्रुओंको मारनेवाला, वज्रके समान कठोर बाहुओंवाला, मनुष्योंका पालन करनेवाला, सामर्थ्योंसे युक्त और अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ १ ॥

हमारी तरफ आनेवाला इन्द्र हमारी रक्षाके लिए तथा हमें धन देनेके लिए हमारी ओर आवे । वह वज्रधारी और ऐश्वर्यवान् इन्द्र हमारे यज्ञमें आकर बैठे और हमें अन्न प्रदान करे ॥ २ ॥

२३३ इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत् सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन् त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥ ३ ॥
२३४ उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥ ४ ॥
२३५ वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभि- र्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।
मर्यो न योषामभि मन्यमानो- ऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ५ ॥
२३६ गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।
आदर्ता वज्रं स्थविरं न भीमं उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२३३] हे (इन्द्र) इन्द्र! (त्वं) तू (नः पुरः दधत्) हमें आगे रखकर (अस्माकं इमं क्रतुं यज्ञं) हमारे इस किए जानेवाले यज्ञका (सनिष्यसि) सेवन कर। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र! (श्वघ्नी इव) शिकारी जिसप्रकार पशुओंको ढूंढता है, उसी तरह (अर्यः वयं) तेरी स्तुति करनेवाले हम (धनानां सनये) धनकी प्राप्तिके लिए (त्वया) तेरी सहायतासे (आजिं जयेम) संग्रामको जीतें ॥ ३ ॥

[२३४] हे (स्वधावः) अन्नवान् इन्द्र! (सुमनाः) उत्तम मनवाला तू (उशन्) हमारी कामना करता हुआ (नः उपाके) हमारे पास आकर (नः सु-सुतस्य) हमारे द्वारा निचोडे गए (मध्वः सोमस्य नु पाः) मीठे सोमको पी। (पृष्ठ्येन अन्धसा) अपने पीछे रखे हुए अन्नरूप सोमसे (सं ममदः) आनन्दित हो ॥ ४ ॥

[२३५] (पक्वः वृक्षः न) जिसप्रकार पके हुए फलोंवाला वृक्ष प्रशंसित होता है, अथवा (सृण्यः जेता न) शस्त्र चलानेमें कुशल विजेता जिसप्रकार प्रशंसित होता है, उसी प्रकार (यः नवेभिः ऋषिभिः ररप्श) जो नये ऋषियोंके द्वारा प्रशंसित होता है। (योषां मर्यः न) जिस तरह अपनी स्त्रीकी पुरुष प्रशंसा करता है, उसी तरह (अभि मन्यमानः) अच्छी तरह जानता हुआ मैं (पुरुहूतं इन्द्रं) बहुतोंके द्वारा सहायार्थ बुलाये जानेवाले इन्द्रका (अच्छा विवक्मि) उत्तम रीतिसे वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥

[२३६] (गिरिः न स्वतवान्) पहाडके समान बलवान् (यः ऋष्वः उग्रः इन्द्रः) जो महान् और वीर इन्द्र (सहसे) शत्रुओंको जीतनेके लिए (सनात् एव जातः) प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है, वह इन्द्र (उद्न कोशं इव) पानीसे भरे हुए बर्तनके समान (वसुना न्यृष्टं) धनसे युक्त (स्थविरं वज्रं) पुष्ट वज्रको (आदर्ता) स्वीकार करता है ॥ ६ ॥

१ ऋष्वः उग्रः इन्द्रः सहसे सनात् एव जातः— वह महान और वीर इन्द्र शत्रुओंको जीतनेके लिए प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है।

भावार्थ— हे इन्द्र! हमारे इस यज्ञमें आकर तू यज्ञका सेवन कर। तेरी स्तुति करनेवाले हम धनकी प्राप्तिके लिए तेरी सहायतासे संग्रामको जीतें ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! उत्तम मनसे युक्त होकर हमारे पास आनेकी इच्छा करता हुआ तू हमारे दिए गए अन्नका सेवन कर ॥ ४ ॥

जिसप्रकार पके हुए फलोंवाला वृक्ष अथवा शस्त्र चलानेमें कुशल विजता सर्वत्र प्रशंसित होता है, अथवा जिसप्रकार एक स्त्री अपने पतिके द्वारा प्रशंसित होती है उसीप्रकार यह इन्द्र भी सबके द्वारा प्रशंसित होता है ॥ ५ ॥

महान् और वीर इन्द्र शत्रुओंको जीतनेके लिए प्राचीनकालसे ही उत्पन्न हुआ है। वह इस कामके लिए महान् वज्रको धारण करता है ॥ ६ ॥

२३७ न यस्य॑ व॒र्ता ज॒नुषा॒ न्वस्ति॒ न राध॑स आमरी॒ता म॒घस्य॑ ।
उ॒द्वा॒वृ॒षा॒णस्त॑विषीव उ॒ग्रा॒ऽस्मभ्यं॑ दद्धि पुरुहूत रा॒यः ॥ ७ ॥
२३८ ईक्षे॑ रा॒यः क्षय॑स्य चर्षणी॒ना॒मु॒त व्र॒जम॑पव॒र्तासि॒ गोना॑म् ।
शि॒क्षा॒न॒रः स॑मि॒थेषु॑ प्र॒हावा॒न् वस्वो॑ रा॒शिम॑भिने॒तासि॒ भूरि॑म् ॥ ८ ॥
२३९ कया॒ तच्छृ॑ण्वे॒ शच्या॒ शचि॑ष्ठो॒ यया॑ कृ॒णोति॒ मुहु॒ का चि॑दृ॒ष्वः ।
पु॒रु दा॒शुषे॒ विच॑यिष्ठो॒ अंहो॒ऽथा॑ दधाति॒ द्रवि॑णं जरि॒त्रे ॥ ९ ॥
२४० मा नो॑ मर्धी॒रा भ॑रा द॒द्धि तन्नः॒ प्र दा॒शुषे॒ दात॑वे॒ भूरि॒ यत् ते॑ ।
नव्ये॑ दे॒ष्णे श॒स्ते अ॒स्मिन् त॑ उ॒क्थे प्र ब्र॑वाम व॒यमि॑न्द्र स्तु॒वन्तः॑ ॥ १० ॥

अर्थ— [२३७] (जनुषा यस्य वर्ता न आस्ति) जन्मसे ही जिसका कोई नाश करनेवाला नहीं है। तथा (राधसः मघस्य न आमरीता) जिसके ऐश्वर्यसे युक्त धनका भी नाश करनेवाला कोई नहीं है। हे (तविषीवः उग्र पुरुहूत) बलवान्, वीर और बहुतोंके द्वारा सहाय्यार्थ बुलाये जानेवाले इन्द्र! (वृषाणः) अत्यन्त बलशाली तू (अस्मभ्यं रायः दद्धि) हमें धन दे ॥ ७ ॥

१ जनुषा (अस्य) वर्ता न अस्ति— जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

[२३८] हे इन्द्र! तू (चर्षणीनां रायस्य क्षयस्य) मनुष्यों पर, धन पर, तथा घर पर (ईक्षे) शासन करता है (उत) और (गोनां व्रजं अपवर्तासि) गायोंके बाडेको खोलनेवाला है। (शिक्षानरः) शिक्षाके द्वारा लोगोंको उन्नत करनेवाला तथा (समिथेषु प्रहावान्) युद्धोंमें शत्रुओं पर प्रहार करनेवाला तू (भूरिं वस्वः राशिं) बहुतसी धनकी राशिको (अभिनेता असि) प्राप्त करानेवाला है ॥ ८ ॥

[२३९] (शचिष्ठः ऋष्वः) अत्यन्त बलवान् और महान् इन्द्र (कया शच्या शृण्वे) किस शक्तिके कारण प्रसिद्ध है? तथा (यया मुहु कृणोति) जिससे बारबार काम करता है वह शक्ति (का चित्) कौनसी है? वह इन्द्र (दाशुषे) दान देनेवालेके लिए (पुरु अंहः विचयिष्ठः) बहुतसे पापका नाश करनेवाला है। (अथ) और (जरित्रे द्रविणं दधाति) स्तोताके लिए धन देता है ॥ ९ ॥

[२४०] हे इन्द्र! तू (नः मा मर्धीः) हमें न मार, अपितु (आ भर) हमारा भरण पोषण कर। (ते यत् भूरि) तेरे जो बहुत साधन (दाशुषे दातवे) दान देनेवालेको देनेके लिए हैं (तत् नः दद्धि) वह हमें दे। हे इन्द्र! (स्तुवन्तः वयं) तेरी स्तुति करते हुए हम (अस्मिन् नव्ये देष्णे शस्ते उक्थे) इस नये, दान जिसमें दिया जाता है ऐसे तथा अनुशासित यज्ञमें (प्र ब्रवाम) तेरा बहुत गुणवर्णन करते है ॥ १० ॥

भावार्थ— यह इन्द्र ऐसा वीर है कि जन्मसे ही इसका कोई नाश नहीं कर सकता। इसके ऐश्वर्यका भी कोई नाश नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

यह इन्द्र मनुष्यों पर, धन पर और घर पर भी शासन करता है और गायोंकी भी रक्षा करनेवाला है। यह इन्द्र शिक्षाके द्वारा लोगोंको उन्नत करनेवाला, युद्धमें शत्रुओं पर प्रहार करनेवाला और धनकी राशिको प्रदान करनेवाला है ॥ ८ ॥

वह इन्द्र अपने बल और महानताके कारण ही प्रसिद्ध है, उसमें सतत काम करनेकी शक्ति है। वह दान देनेवालेके बहुतसे पापोंका नाश करता है ॥ ९ ॥

हे इन्द्र! तू हमें मार मत, इसके विपरीत हमारा पालन पोषण कर। जो पदार्थ तू दानशीलोंको देता है, वही हमें भी दे। हम भी अनुशासित यज्ञमें बैठकर तेरा गुणगान करें ॥ १० ॥

२४१ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२१]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्रः । छन्दः— त्रिष्टुप् ।]

२४२ आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ १ ॥

२४३ तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।
यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान् तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥ २ ॥

अर्थ— [२४१] हे इन्द्र ! (नद्यः न) जिस प्रकार नदियां पानीसे भरी जाती हैं, उसी तरह (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर । हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! मैंने (ते धियां नव्यं ब्रह्म अकारि) तेरे लिए बुद्धिसे नया स्तोत्र बनाया है । हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२१]

[२४२] (द्यौः न) द्युलोकके समान तेजस्वी (यस्य तविषीः पूर्वीः) जिस इन्द्रके बल बहुतसे हैं, वह (इन्द्रः) इन्द्र (अवसे नः उप आयातु) संरक्षणके लिए हमारे पास आवे तथा (स्तुतः) प्रशंसित होकर वह (इह सधमात् अस्तु) इस यज्ञमें हमारे साथ आनन्द प्राप्त करनेवाला हो, और (अभिभूति क्षत्रं पुष्यात्) शत्रुको हरानेवाले बलको पुष्ट करे ॥ १ ॥

[२४३] (साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट् न) शत्रुको हरानेवाले तथा उनकी हिंसा करनेवाले, युद्धके योग्य सम्राट्के समान (यस्य क्रतुः) जिस इन्द्रकी शक्ति (कृष्टीः) प्रजाओंपर (अभि अस्ति) शासन करती है, ऐसे (तुविद्युम्नस्य तुविराधसः तस्य इत्) बहुत तेजस्वी और बहुत धनोंवाले उस इन्द्रके (वृष्ण्यानि) बलोंकी तथा (नॄन्) अन्य नेताओंकी (इह स्तवथ) यहां तुम स्तुति करो ॥ २ ॥

१ साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट्— शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला, युद्धमें कुशल सम्राट हो ।
२ तरुत्रः— शत्रुका नाश तथा प्रजाका रक्षण करनेवाला ।
३ तुविद्युम्नस्य तुविराधसः वृष्ण्यानि स्तवथ— तेजस्वी और साधन संपन्नके बलोंकी प्रशंसा करो ।
४ नॄन् स्तवथ— नेताओंकी प्रशंसा करो ।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे । हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं । तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

यह इन्द्र द्युलोकके समान तेजस्वी है, इसीलिए इस इन्द्रके बल बहुतसे हैं । ऐसा यह तेजस्वी इन्द्र संरक्षणके लिए हमारे पास आवे । वह हमारे यज्ञमें आकर आनन्द प्राप्त करे ॥ १ ॥

यह इन्द्र एक ऐसा सम्राट् है कि जो शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल है । ऐसे तेजस्वी और साधनसम्पन्न इन्द्रके बलोंकी सब प्रशंसा करते हैं । ऐसे नेताओंकी प्रशंसा सर्वत्र होती है ॥ २ ॥

२४४ आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥ ३ ॥
२४५ स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।
यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥ ४ ॥
२४६ उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन् यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ॥ ५ ॥
२४७ धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान् त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान् त्संवरणेषु वह्निः ॥ ६ ॥

अर्थ— [२४४] (मरुत्वान् इन्द्रः) मरुतोंको साथमें रखनेवाला इन्द्र (नः अवसे) हमारे संरक्षणके लिए (दिवःपृथिव्याः समुद्रात् पुरीषात्) द्युलोकसे, पृथिवीसे, अन्तरिक्षसे, जलसे (स्वर्णरात्) स्वर्गलोकसे (परावतः) दूर देशसे (उत वा) और (ऋतस्य सदनात्) यज्ञके स्थानसे (आयातु) आवे ॥ ३ ॥

१ समुद्रः— समुद्र, अन्तरिक्ष " समुद्र इति अन्तरिक्षनाम " (निघं १ । ३ । १५)

२ पुरीषं— शौच, पानी " पुरीषमित्युदकनाम " (निघं १ । १२ । १२)

३ मरुत्वान् इन्द्रः नः अवसे आयातु— सेनाके साथ इन्द्र हमारे संरक्षणके लिये हमारे पास आवे ।

[२४५] (यः) जो इन्द्र (स्थूरस्य बृहतः रायः ईशे) बहुत बडे धन पर शासन करता है, (यः वायुना गोमतीषु जयति) जो वायुकी सहायतासे गायोंकी प्राप्ति होनेवाले युद्धोंमें जय प्राप्त करता है तथा (धृष्णुया) जो शत्रुओंका धर्षण करनेवाला (वस्यः अच्छ नयति) धनको अच्छी तरह प्राप्त कराता है, (तं इन्द्रं विदथेषु स्तवाम) उस इन्द्रकी यज्ञोंमें हम प्रशंसा करते हैं ॥ ४ ॥

१ यः बृहतः रायः ईशे, धृष्णुया वस्यः, तं विदथेषु स्तवाम— जो वीर बडे धनको अपने आधीन रखता है शत्रुओंका धर्षण करके जो धन प्राप्त करता है, उसकी हम यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें प्रशंसा गाते हैं ।

[२४६] (नमः ऋंजसानः उक्थैः पुरुवारः) नमन करने योग्य, कर्मोंको सिद्ध करनेवाला और स्तोत्रोंके द्वारा बहुत बार वरण करने योग्य (यः) जो इन्द्र (स्तभायन्) लोकोंको आधार देता है तथा (यजध्यै वाचं जनयन्) यज्ञ करनेके लिए स्तुतिके स्तोत्र करता हुआ यजमानको (नमसि इयर्ति) अन्नप्राप्तिके कार्यमें प्रेरित करता है, उस (इन्द्रं) इन्द्रको (होता सदनेषु) होता यज्ञोंमें (कृण्वीत) आनन्दित करे ॥ ५ ॥

[२४७] (औशिजस्य गोहे) उशिक् ऋषिके पुत्रके घरमें (सदन्तः धिषण्यन्तः) बैठे हुए स्तुति करनेवाले ऋत्विक् (यदि) जब (धिषा) बुद्धिपूर्वक (अद्रिं सरण्यान्) [सोम पीसनेके लिए] पत्थरके पास जाएं, तब इन्द्र (आ) आवेगा (यः नः संवरणेषु वह्निः) जो हमें युद्धोंमें पार ले जानेवाला तथा (महान्) महान् है, वह (दु-रोषाः) शत्रुपर भयंकर क्रोध करनेवाला (होता) बुलाने पर (पास्त्यस्य आ) यजमानके घर आवेगा ॥ ६ ॥

१ यः संवरणेषु नः वह्निः— जो युद्धोंमेंसे हमें पार ले जाता है ।

२ दुरोषाः— शत्रुपर भयंकर क्रोध करनेवाला ।

भावार्थ— मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाला इन्द्र, हमारी रक्षा करनेके लिए द्युलोक, पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष और जल प्रदेशोंसे हमारे पास आवे ॥ ३ ॥

यह इन्द्र बहुत बडे धन और ऐश्वर्यों पर शासन करता है । यही वायुकी सहायतासे गायोंकी प्राप्ति होनेवाले युद्धोंमें जय प्राप्त करता है । यह इन्द्र शत्रुओंको अच्छी तरह परास्त करके धनको प्राप्त करता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र नमन करने योग्य, उत्तम कर्मोंको सिद्ध करनेवाला, वरणीय और लोकोंके लिए आधार देनेवाला है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र शत्रुओंपर भयंकर क्रोध करनेवाला और महान् है । जब यजमानके घरमें ऋत्विक् गण सोम पीसनेके लिए पत्थरोंके पास जाते हैं, तब उन पत्थरोंकी आवाज सुनकर इन्द्र वहां आता है ॥ ६ ॥

२४८ सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद् धिये प्रायसे मदाय ॥ ७ ॥
२४९ वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥ ८ ॥
२५० भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥ ९ ॥
२५१ एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥ १० ॥

अर्थ— [२४८] (यत् ईं) जब इस इन्द्रको (भार्वरस्य सत्रा) भार्वरके यज्ञमें तथा (यत् ईं औशिजस्य गोहे) जब इसको उशिक् ऋषिके पुत्रके घरमें (धिये, अयसे, मदाय) बुद्धि बढानेके लिए, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए और आनन्दके लिए (वृष्णः सिषक्ति) बलवर्धक सोम सींचता है, तब यह (भराय) भरण पोषणके लिए (स्तुवते) स्तोताको (गुहा) गुहामें रखे हुए धनको (प्र) देता है ॥ ७ ॥

[२४९] इन्द्रने (यत्) जब (पर्वतस्य वरांसि वि वृण्वे) पर्वतके दरवाजोंको खोल दिया, तथा (यदि) जब (अपां जवांसि पयोभिः जिन्वे) नदियोंके वेगोंको जलोंसे पूर्ण किया, तब उसने (गौरस्य गवयस्य विदद्) हिरण और गायके समूहको प्राप्त किया। (सुध्यः) बुद्धिमान् ऋत्विज् (गोहे) यज्ञशालामें (वाजाय) इस बलवान् इन्द्रके लिए (वहन्ति) सोम पहुंचाते हैं ॥ ८ ॥

[२५०] हे इन्द्र ! (ते हस्ता भद्रा) तेरे हाथ कल्याण करनेवाले हैं, (उत) और (पाणी सुकृता) तेरे पंजे उत्तम कर्म करनेवालेहैं , तथा वे (स्तुवते राधः प्रयन्तारा) स्तोताको धन देनेवाले हैं। (ते निषत्तिः का) तेरे रहनेका स्थान कौनसा है ? (उत्) और तू हमें (किं न ममत्सि) क्यों नहीं आनन्दित करता ? (उत्) और हमें (दातवे) धन देनेके लिए (किं न हर्षसे) क्यों नहीं हर्षित होता है ? ॥ ९ ॥

[२५१] (एवा) इस प्रकार (सत्यः वस्वः सम्राट्) अविनाशी, धनोंका सम्राट् (वृत्रं हन्ता) वृत्रको मारनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (पूरवे वरिवः कः) यजमानके लिए धन देता है। हे (पुरुस्तुत) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू (क्रत्वा) अपने पराक्रमसे (नः रायः) हमें धनसे (शग्धि) समर्थ कर, मैं (ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय) तेरे दिव्य संरक्षणका उपभोग करूं ॥ १० ॥

१ सत्यः वस्वः सम्राट्— यह सच्चे धनोंका सम्राट् है।
२ पूरवे वरिवः कः— यज्ञ करनेवालेको धन देता है।
३ ते दैव्यस्य अवसः भक्षीय— तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करते हैं।

भावार्थ— जब किसी भरणपोषण करनेवाले अथवा किसी पदार्थकी कामना करनेवालेके घरमें इस इन्द्रके लिए बलवर्धक सोम सींचा जाता है, तब यह इन्द्र बुद्धिके लिए, शत्रुपर आक्रमण करनेके लिए अपने भक्तको अत्यन्त गुप्त धनकोभी बता देता है ॥ ७ ॥

इन्द्रने जब पर्वतोंके दरवाजोंको खोल दिया, तो जलके प्रवाह भरपूर वेगसे बहने लगे। तब जब सर्वत्र धान्यकी बहुतायत हो गई, तब गायें और हिरण आदि पशु समृद्ध और हृष्टपुष्ट हो गए ॥ ८ ॥

इस इन्द्रके हाथ कल्याण करनेवाले और उसके पंजे भी उत्तम कर्म करने वाले हैं। इस पर भी वह हमें आनन्दित क्यों नहीं करता तथा हमें धन देते समय वह हर्षित क्यों नहीं होता, यह विचारणीय है ॥ ९ ॥

वह इन्द्र धनोंका सच्चा सम्राट् है। वह यज्ञ करनेवालोंको धन देता है। उस धनसे वह मनुष्य समर्थ बनता है। हे इन्द्र ! तेरे दिव्य संरक्षणको हम प्राप्त करें ॥ १० ॥

२५२ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२२]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

२५३ यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान् करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ १ ॥

२५४ वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥ २ ॥

अर्थ— [२५२] (नद्यः न) जिसप्रकार नदियां जलसे भरी जाती हैं, उसीप्रकार हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्न भरपूर दे। हे (हरि-वः) घोडोंवाले इन्द्र ! मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्र (अकारि) बनाये हैं, हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

१ रथ्यः सदासाः स्याम— हम रथोंसे तथा सेवकोंसे युक्त हों अर्थात् हमारे पास रथ हों और नौकर भी हों।

[२२]

[२५३] (यः) जो (अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति) वज्रको बलसे धारण करता हुआ आता है, वह (इन्द्रः) इन्द्र (नः यत्) हमारा जो कुछ है (च) और (यत् वष्टि) जो चाहता है उसका (जुजुषे) सेवन करता है। वह (महान् शुष्मी मघवा) महान् और बलवान् इन्द्र (नः ब्रह्म, स्तोमं, सोमं, उक्था) हमारे अन्न, स्तुति, सोम और स्तोत्रको (आ करति) स्वीकार करता है ॥ १ ॥

१ यः अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति— जो वज्रको धारण करके आता है। वह वीर है। (महान् शुष्मी मघवा) वह बडा बलवान् और धनवान् है।

[२५४] (वृषा) बलवान् (उग्रः) वीर (नृतमः शचीवान्) उत्तम नेता, शक्तिशाली इन्द्र (बाहुभ्यां वृषन्धिं चतुरश्रिं अस्यन्) बाहुओंसे बिजलीके समान तेजको धारण करनेवाले तथा चार धाराओंवाले वज्रको शत्रुओं पर फेंकते हुए (श्रिये) ऐश्वर्यके लिए (परुष्णीं उपमाणः) परुष्णी नदीका उपयोग करता है (यस्याः पर्वाणि) जिस नदीके प्रदेशोंका वह इन्द्र (सख्याय विव्ये) मित्रताके लिए संरक्षण करता है ॥ २ ॥

१ वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषंधिं चतुरश्रिं अस्यन् श्रिये— बलवान् उग्र श्रेष्ठ नेता बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धारोंवाले वज्रको यशके लिये शत्रुपर फेंकता है।

भावार्थ— हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसीतरह हमें अन्न दे हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

जो वज्रको धारण करके आता है, वह वीर, बडा बलवान् और धनवान् है। इसीलिए वह हमारे ऐश्वर्योंका यथेच्छ उपभोग करता है ॥ १ ॥

बलवान्, उग्र, श्रेष्ठनेता, बलवान् वीर अपने बाहुओंसे चार धाराओंवाले वज्रको यश प्राप्त करनेके लिए शत्रुपर फेंकता है। वह नदियोंके प्रदेशका संरक्षण करता है ॥ २ ॥

२५५ यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत् प्र भूम ॥ ३ ॥
२५६ विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वी द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गो र्नृवत् परिज्मन् नोनुवन्त वाताः ॥ ४ ॥
२५७ ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित् सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वा नहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥ ५ ॥
२५८ ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा प्र धेनवः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधा ह त्वद् वृषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवसा चक्रमन्त ॥ ६ ॥

अर्थ— [२५५] (यः देवः देवतमः) जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव (जायमानः) उत्पन्न होकर (महः वाजेभिः महद्भिः शुष्मैः) बडे सामर्थ्योंसे और बडी शक्तियोंसे युक्त है, वह (बाह्वोः उशन्तं वज्रं दधानः) भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करता हुआ (अमेन) अपने बलसे (द्यां भूम रेजयत्) द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥ ३ ॥

[२५६] (जनिमन्) जन्मते ही (ऋष्वात्) इस महान् इन्द्रसे (विश्वा रोधांसि) सभी पहाड (पूर्वी प्रवतः) पूर्ण भरी नदियां (द्यौः क्षाः) द्युलोक और पृथ्वीलोक (रेजत) कांपने लगे । (शुष्मी) बलवान् यह इन्द्र (गोः मातरा) सूर्यके माताओंको-द्यावापृथिवीको (आ भरति) धारण करता है । तथा (वाताः) वायु (नृवत्) मनुष्यके समान (परिज्मन् नोनुवन्त) अन्तरिक्षमें शब्द करते हैं ॥ ४ ॥

[२५७] हे (शूर धृष्णो इन्द्र) शूर और शत्रुओंका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! (यत्) जो तूने (दधृष्वान्) लोकोंको धारण करते हुए (शवसा) बलसे (धृषता वज्रेण) शत्रुओंको मारनेवाले वज्रके द्वारा (अहिं अविवेषीः) अहिको मारा (महतः ते) महान् तेरे (ता महानि) वे महान् कर्म (विश्वेषु इत् सवनेषु) सभी यज्ञोंमें (प्रवाच्या) वर्णन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

१ महतः ते ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या— महान् इस इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं ।

[२५८] हे (तुविनृम्ण) अत्यधिक बलशाली इन्द्र ! (ते ता विश्वा) तेरे वे सब कर्म (सत्या) यथार्थ हैं । हे (वृष्णः) बलवान् इन्द्र ! (धेनवः) गायें तेरे लिए (ऊध्नः सिस्रते) थनोंसे दूध चुआती हैं । (अध) और हे (वृषमनः) बलवान् मनवाले इन्द्र ! (त्वद् भियानाः) तुझसे डरती हुईं (सिन्धवः) नदियां (जवसा चक्रमन्त) वेगसे बहती हैं ॥ ६ ॥

१ ते ता विश्वा सत्या— इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं, काल्पनिक नहीं ।

भावार्थ— जो तेजस्वी श्रेष्ठ देव इन्द्र उत्पन्न होनेके साथ ही सामर्थ्यों और शक्तियोंसे युक्त हो जाता है । वह इन्द्र भुजाओंमें सुन्दर वज्रको धारण करके अपने बलसे द्युलोक और भूमिको कंपाता है ॥ ३ ॥

जन्मते ही इस महान् इन्द्रके बलसे पहाड, जलसे भरी हुई नदियां तथा सभी लोक कांपने लगे । यह बलवान् इन्द्र द्युलोक और पृथ्वी लोकको धारण करता है ॥ ४ ॥

हे शूर और शत्रुओंको हरानेवाले इन्द्र ! जो तूने लोकोंको धारण किया और अपने बल और वज्रसे अहिको मारा । महान् इन्द्रके ये महान् कर्म सभी उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं ॥ ५ ॥

अत्यधिक बलशाली इन्द्रके सभी कर्म सत्य हैं । इन्हें असत्य या काल्पनिक नहीं कहा जा सकता । इसी इन्द्रसे प्रेरित होकर गायें अपने थनोंसे दूध चुआती हैं । हे मनस्वी इन्द्र ! नदियां भी तुझसे डरकर वेगसे बहती हैं ॥ ६ ॥

×

२५९ अत्राह॑ ते हरिव॒स्ता उ॑ दे॒वी॒रवो॑भिरिन्द्र स्तवन्त॒ स्वसा॑रः ।
यत् सी॒मनु॒ प्र मु॒चो ब॑द्बधा॒ना दी॒र्घामनु॒ प्रसि॑तिं स्यन्द॒यध्यै॑ ॥ ७ ॥
२६० पिपी॒ळे अं॒शुर्मद्यो॒ न सिन्धु॒रा त्वा॒ शमी॑ शशमा॒नस्य॑ शक्तिः ।
अ॒स्म॒द्र्य॑क् शुशुचा॒नस्य॑ यम्या आ॒शुर्न र॒श्मिं तु॒व्योज॑सं गोः ॥ ८ ॥
२६१ अ॒स्मे वर्षि॑ष्ठा कृणु॒हि ज्येष्ठा॑ नृ॒म्णानि॑ स॒त्रा स॑हुरे॒ सहां॑सि ।
अ॒स्मभ्यं॑ वृ॒त्रा सु॒हना॑नि रन्धि ज॒हि वध॑र्व॒नुषो॒ मर्त्य॑स्य ॥ ९ ॥
२६२ अ॒स्माक॒मित् सु शृ॑णु॒हि त्वमि॑न्द्रा॒ऽस्मभ्यं॑ चि॒त्राँ उप॑ माहि॒ वाजा॑न् ।
अ॒स्मभ्यं॒ विश्वा॑ इषण॒: पुरं॑धी॒रस्माकं॑ सु म॑घवन् बोधि गो॒दाः ॥ १० ॥

अर्थ— [२५९] हे इन्द्र ! (यत्) जब तूने (सीं प्रसितिं दीर्घां) इस शक्तिशाली बडी नदीको (स्यन्दयध्यै प्र मुचः) बहनेके लिए मुक्त किया, तब हे (हरि-वः) घोडे रखनेवाले इन्द्र ! (बद्बधानाः ताः देवीः स्वसारः) [वृत्रके द्वारा] बांधे हुए उन दिव्य जलोंने (अवोभिः) रक्षण करनेके कारण (ते स्तवन्तः) तेरी स्तुति की ॥ ७ ॥

[२६०] हे इन्द्र ! (त्वा मद्यः अंशुः पिपीळे) तेरे लिए आनन्ददायक सोम पीस दिया गया है। (न सिन्धुः आ यस्याः) अब नदी सोमके पास आवे अर्थात् सोमरसमें नदीका पानी मिलाया जावे (आशुः गोः तुवि- ओजसं रश्मिं न) जिस प्रकार तेजीसे जीनेवाले घोडेके मजबूत लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है उसी तरह (शमी शक्तिः) शत्रुओंका शमन करने वाला शक्तिशाली यह सोम (शुशुचानस्य शशमानस्य अस्मद्र्यक्) तेजस्वी और स्तुतिके योग्य इन्द्रको हमारी तरफ लानेवाला करे ॥ ८ ॥

[२६१] हे (सहुरे) शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र ! तू (अस्मे) हमारे लिए (सहांसि, वर्षिष्ठा, ज्येष्ठा) शत्रुका पराभव करनेवाले, श्रेष्ठ और प्रशस्त (नृम्णानि) पराक्रम (कृणुहि) कर। तथा (अस्मभ्यं सु-हननानि वृत्रा रन्धि) हमारे लिए अच्छी तरह मारने योग्य शत्रुओंका नाश कर और (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक मनुष्यके शस्त्रको भी नष्ट कर ॥ ९ ॥

१ हे सहुरे ! अस्मे सहांसि वर्षिष्ठा ज्येष्ठा नृम्णानि कृणुहि— हे शत्रुका पराभव करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराभूत करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर।

२ अस्मभ्यं सुहननानि वृत्रा रन्धि— हमारे लिये वध्य शत्रुओंको मार।

३ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि— हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर।

[२६२] हे इन्द्र ! तू (अस्माकं इत् सु शृणुहि) हमारी ही प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन तथा (त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान्) तू हमारे लिए अनेक तरहके अन्न (उप माहि) दे। (अस्मभ्यं विश्वाः पुरन्धिः इषणः) हमारी तरफ सब बुद्धियोंको प्रेरित कर, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (गो-दाः) गायोंको देनेवाला तू (अस्माकं सु बोधि) हमें ज्ञानवान् कर ॥ १० ॥

१ त्वं अस्मभ्यं चित्रान् वाजान् उप माहि— तू हमारे लिये अनेक प्रकारके अन्न, भोग तथा बल दे।

२ गोदाः अस्माकं बोधि— हमें गायें और ज्ञान दे।

भावार्थ— जब इन्द्रने अपरिमित शक्तिसे सम्पन्न नदियोंके प्रवाहोंको बहनेके लिए मुक्त किया, तब वे शब्द करती हुई बहने लगीं, मानों इस ध्वनिसे वे इन्द्रकी स्तुति कर रही हों ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तेरे लिए यह सोमरस निकालकर उसमें पानी मिलाकर तैय्यार कर दिया गया है। यह सोमरस इन्द्रको हमारी तरफ उसी तरह खींचकर लाये कि जिसप्रकार तेजीसे जानेवाले घोडोंकी लगाम सारथी अपनी तरफ खींचता है ॥ ८ ॥

हे शत्रुको परास्त करनेवाले वीर ! हमारे हितके लिए शत्रुको पराजित करनेवाले श्रेष्ठ और प्रशंसित पराक्रम तू कर। तू हमारी रक्षा करनेके लिए हमारे वध्य शत्रुओंको मार। हिंसक मनुष्यके शस्त्रको नष्ट कर ॥ ९ ॥

२६३ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः, ८-१० ऋतं वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२६४ कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः ।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय ॥ १ ॥

२६५ को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य ।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः ॥ २ ॥

अर्थ— [२६३] (नद्यः न) जिसतरह नदियां जलसे पूर्णकी जाती हैं, उसीतरह हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित होकर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्न भरपूर दे। हे (हरिवः) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिपूर्वक नये स्तोत्रको बनाया है। हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथसे तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२३]

[२६४] (महा कथा अवृधत्) उस महान् इन्द्रको कैसे बढाया ? वह (कस्य होतुः यज्ञं जुषाणः अभि) किस होताके यज्ञका सेवन करेगा ? तथा (ऊधः सोमं पिबन्) गौ दूधसे मिश्रित सोमको पीता हुआ और (उशानः अन्धः जुषमाणः) इच्छापूर्वक अन्नका सेवन करता हुआ वह (ऋष्वः) महान् इन्द्र (शुचते धनाय ववक्ष) तेजस्वी धनको प्राप्त कराता है ॥ १ ॥

[२६५] (अस्य सधमादं) इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको (कः वीरः आप) कौन वीर प्राप्त करता है ? (कः अस्य सुमतिभिः सं आनंश) कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? (अस्य चित्रं कद् चिकिते) इसके अनेक तरहके धनको कौन जानता है ? तथा यह इन्द्र (शशमानस्य यज्योः) स्तुति करनेवाले यजमानको (वृधे) बढानेके लिए (ऊती) संरक्षणके साधनोंसे युक्त (कद् भुवत्) कब होगा ? ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमारी प्रार्थनाको अच्छी तरह सुन और हमारे लिए अनेक तरहके अन्न दे। हमारी बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित कर। तू हमें ज्ञानवान् कर ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू, जैसे नदियां मनुष्यको पानी देती हैं, उसी तरह हमें बचा दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

उस महान् इन्द्रको किस तरह बढाया जाए, और वह किस भक्तकी हविका सेवन करेगा, यह जानने योग्य बात है। वह जिस भक्तके द्वारा दिए गए सोमको पीता है, उस भक्तको वह तेजस्वी धन प्रदान करता है ॥ १ ॥

इस इन्द्रके साथ बैठनेके आनन्दको कौनसा वीर प्राप्त करता है ? कौन इसकी उत्तम बुद्धियोंसे युक्त होता है ? कौन इसके अनेक तरहके धनको जानता है ? यह इन्द्र अपने स्तोताको रक्षा करनेके लिए साधनोंसे युक्त कब होता है ? यह सभी बातें कठिनतासे जानी जाती हैं ॥ २ ॥

२६६ कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥ ३ ॥

२६७ कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥ ४ ॥

२६८ कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्तस्य सख्यं जुजोष ।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन् कामं सुयुजं ततस्रे ॥ ५ ॥

अर्थ— [२६६] (इन्द्रः) इन्द्र (हूयमानं) बुलानेवालेकी प्रार्थनाको (कथा शृणोति) कैसे सुनता है ? तथा (शृण्वन्) प्रार्थनाको सुनकर वह इन्द्र (अस्य अवसां कथा वेद) इस स्तोताके संरक्षणके मार्गको कैसे जानता है ? (अस्य पूर्वीः उपमातयः काः) इसके बहुतसे दान कौन कौनसे हैं ? तथा (जरित्रे पपुरिं एनं) स्तोताकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले इसका लोग (कथं आहुः) किस प्रकार वर्णन करते हैं ? ॥ ३ ॥

[२६७] (स-बाधः शशमानः दीध्यानः) आपत्तियोंमें पडा हुआ और स्तुति करनेवाला तेजस्वी यजमान (अस्य द्रविणं कथा अभिनशत्) इस इन्द्रके धनको कैसे प्राप्त करेगा ? (जगृभ्वान्) शत्रुओंको पकडनेवाला इन्द्र (यत् नमः जुजोषत्) जब अन्नका सेवन करता है. तब वह (देवः) देव इन्द्र (मे ऋतानां नवेदाः भुवत्) मेरे यज्ञोंको अच्छी तरह जाननेवाला होता है ॥ ४ ॥

[२६८] (देवः) यह देव इन्द्र (अस्याः उषसः व्युष्टौ) इस उषःकालके उदय होने पर (मर्त्यस्य सख्यं) मनुष्यकी मित्रताको (कथा कद् जुजोष) कैसे और कब प्राप्त करेगा ? (ये अस्मिन् सु- युजं कामं ततस्रे) जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रोंके लिए (अस्य सख्यं कत् कथा) इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी ? ॥ ५ ॥

१ ये अस्मिन् सुयुजं कामं ततस्रे, सखिभ्यः अस्य सख्ये कथा — जो भक्त इसमें अपनी सुयोग्य कामना सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिये इसकी मित्रकी कब प्राप्त होगी ?

भावार्थ— वह इन्द्र बुलानेवालेकी प्रार्थनाको कैसे सुनता है ? प्रार्थनाको सुनकर भी वह स्तोताकी रक्षा किस तरह करता है ? स्तोताओंको दिए जानेवाले इसके दान कौन कौनसे हैं ? कामनाओंको पूरा करनेवाले इस इन्द्रका लोग किस तरह वर्णन करते हैं ? यह भी आश्चर्यकारक बातें हैं ॥ ३ ॥

जब कोई भक्त आपत्तिमें पड जानेके कारण सच्चे हृदयसे इन्द्रकी प्रार्थना करता है, तब वह इन्द्रके धनको किस तरह प्राप्त करता है, अर्थात् इन्द्र अपने इस भक्तकी रक्षा कैसे करता है, यह जानना कठिन है। शत्रुओंको पकडनेवाला यह इन्द्र भक्तोंके द्वारा दिए गए अन्नका सेवन करता है, तब वह यज्ञोंको अच्छी तरह जानता है ॥ ४ ॥

जो इस इन्द्रके पाससे सुयोग्य इच्छाको सफल करना चाहते हैं, उन मित्रोंके लिए इसकी मित्रता कब और कैसे प्राप्त होगी और यह देव इन्द्र भी मनुष्यकी मित्रता किस तरह प्राप्त करेगा इसका मार्ग खोजना चाहिए ॥ ५ ॥

२६९ किमादमंत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम ।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्व१र्ण चित्रतममिष आ गोः ॥ ६ ॥

२७० द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद् यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥ ७ ॥

२७१ ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२६९] हम (सखिभ्यः) मित्रोंके सामने तेरी (अमत्रं सख्यं) शत्रुके आक्रमणसे रक्षा करनेवाली मित्रताका (किं आत् प्रब्रवाम) किस तरह वर्णन करें, तथा (ते भ्रात्रं) ते भ्रातृत्वका वर्णन हम (कदा) कब करें ? (सुदृशः अस्य) सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्रकी (सर्गाः श्रिये) सृष्टियां सबके आश्रयके लिए हैं। (स्वः न) सूर्यके समान तेजस्वी और (गोः) सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके (चित्रतमं वपुः) अत्यन्त सुन्दर तेजको सब (आ इषे) चाहते हैं ॥ ६ ॥

१ अस्य सुदृशः सर्गाः श्रिये— इस सुन्दर इन्द्रकी रचनाएं सबके आश्रय करनेके लिये हैं।
२ अम-त्रं सख्यं प्र ब्रवाम— शत्रुसे रक्षण करनेवाली मित्रताका हम वर्णन करते हैं।
३ स्वः न, गोः चित्रतमं वपुः आ इषे— सूर्यके समान तेजस्वी और सब जगह जानेवाले इस इन्द्रके अत्यन्त सुन्दर तेजको सब चाहते हैं।

[२७०] (द्रुहं, ध्वरसं, अन्-इन्द्रां जिघांसन्) द्रोह करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेकी इच्छा करते हुए इन्द्रने (तुजसे) उन्हें मारनेके लिए (तिग्मा अनीका) तीक्ष्ण शस्त्रोंको (तेतिक्ते) और ज्यादा तीक्ष्ण किया। (ऋण-या उग्रः) ऋणको दूर करनेवाला और वीर इन्द्र (अज्ञाताः उषसः) आनेवाली उषाओंमें (नः ऋणा चित्) हमारे ऋणोंको भी (दूरे बबाध) दूरसे ही नष्ट करता है ॥ ७ ॥

१ द्रुहं, ध्वरसं, अनिन्द्रां जिघांसन् तुजसे तिग्मा अनीका तेतिक्ते— द्रोही, विनाशक और नास्तिकको मारनेके लिये इन्द्रने तीक्ष्ण आयुधों को अधिक तीक्ष्ण किया।
२ ऋणया उग्रः नः ऋणा दूरे बबाध— ऋण दूर करनेवाले इन्द्रने हमारे ऋणोंको दूर किया।

[२७१] (ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति) ऋतकी शक्तियां बहुत हैं, (ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति) ऋतकी बुद्धि पापोंको नष्ट कर देती है। (ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः) ऋतके ज्ञानयुक्त और तेजस्वी स्तोत्र (आयोः कर्णा बधिरा ततर्द) मनुष्यके कानोंको बहरा कर देते हैं ॥ ८ ॥

१ ऋत— सत्य, ठीक, यज्ञ, पानी, आदरणीय, उचित
२ ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति— उचित कर्तव्यकी शक्तियां अनन्त हैं, पहिलेसे हैं।
३ ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति— उचित बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।
४ ऋतस्य बुधानः शुचमानः श्लोकः आयोः कर्णा बधिरा ततर्द— सत्यके ज्ञानमय और शुद्ध स्तोत्र मनुष्यके कानोंको बधिर करते हैं। इतने वे स्तोत्र बडे होते हैं।

भावार्थ— सुन्दर दीखनेवाले इस इन्द्रकी सृष्टिभी सुन्दर है। यह सृष्टि त्यागने योग्य नहीं है, यह सबके आश्रय लेनेके योग्य है। इसी सृष्टिमें रहकर इन्द्रके सुन्दर तेजको प्राप्त किया जा सकता है ॥ ६ ॥

द्रोह करनेवाले, हिंसा करनेवाले और इन्द्रको न माननेवाले अर्थात् नास्तिकोंको मारनेके लिए इन्द्र अपने शस्त्रोंको तीक्ष्ण करता है। वह इन्द्र ऋणोंको दूर करनेवाला है। वह हमारे ऊपर लदे हुए ऋणोंको भी दूर करे ॥ ७ ॥

उत्तम कर्तव्यमें अनन्त शक्तियां भरी होती हैं। उत्तम बुद्धियां पापोंको नष्ट करती हैं। उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानोंको बहरा कर देती हैं अर्थात् उत्तम स्तुतियां दुष्ट मनुष्योंके कानोंको अच्छी नहीं लगतीं, इसलिए वह मानों उन स्तुतियोंके प्रति बहरा बन जाता है ॥ ८ ॥

२७२ ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥ ९ ॥
२७३ ऋतं येमान ऋतमिद् वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥ १० ॥
२७४ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

[२४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १० अनुष्टुप् ।]

२७५ का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥ १ ॥

अर्थ—[२७२] (वपुषे ऋतस्य वपूंषि) बलवान् ऋतके शरीर (दृळ्हा, धरुणानि चन्द्रा पुरूणि) दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और बहुतसे (सन्ति) हैं। लोग (ऋतेन) ऋतसे (दीर्घं पृक्षः इषणन्त) बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। (ऋतेन गावः ऋतं आ विवेशुः) ऋतकी सहायतासे गायें यज्ञमें प्रविष्ट होती हैं ॥ ९ ॥

१ ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा, धरुणानि, चन्द्रा पुरूणि सन्ति— सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनंददायी और अनेक होते हैं।

२ ऋतेन दीर्घं पृक्षः इषणन्त— सत्यसे बहुत अन्न लोग चाहते है। सत्यके पालनसे बहुत लाभ होते हैं।

[२७३] (ऋतं येमानः ऋतं इत् वनोति) ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है, (ऋतस्य शुष्मः तुरया उ गव्युः) ऋतका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। (ऋताय बहुले गभीरे पृथ्वी) ऋतके लिए विस्तीर्ण और गंभीर द्यावापृथिवी और (ऋताय परमे धेनू दुहाते) ऋतके लिए ही उत्कृष्ट गायें दुहती हैं ॥ १० ॥

[२७४] (नद्यः न) जिस प्रकार नदियां जलसे पूर्ण होती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) तेरी स्तुती और प्रशंसा करनेपर तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण करता है। मैंने (ते) तेरे लिए (धिया नव्यं ब्रह्म अकारि) बुद्धिपूर्वक नया स्तोत्र बनाया है। हम (रथ्यः सदासाः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[२४]

[२७५] (का सु- स्तुतिः) कौनसी उत्तम स्तुति (शवसः सूनुं अर्वाचीनं इन्द्रं) बलके लिये प्रसिद्ध और हमारी तरफ आनेवाले इन्द्रको हमें (राधसे आ ववर्तत्) धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी ? हे (जनासः) मनुष्यो ! (वीरः गोपतिः इन्द्रः) वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र (निष्षिधां वसूनि) शत्रुओंके धनोंको (गृणते नः ददिः हि) स्तुति करनेवाले हमें देगा ! ॥ १ ॥

१ वीरः निः षिधां वसूनि गृणते ददिः— शूरवीर शत्रुके धनोंको स्तुति करनेवालेको देता है।

भावार्थ— सत्य अर्थात अविनाशी देवके शरीर दृढ, धारण करनेवाले, आनन्ददायक और अनेक हैं। मनुष्य इस अविनाशी देवको प्रसन्न करके बहुत अधिक अन्न चाहते हैं। इस अविनाशी देवकी सहायतासे गायें अर्थात् इन्द्रियां उत्तम कर्मकी तरफ प्रवृत्त होती हैं ॥ ९ ॥

ऋतका पालन करनेवाला ऋतकी ही भक्ति करता है। इस अविनाशी देवका बल घोडे और गायोंको देनेवाला है। इसी देवसे प्रेरित होकर द्युलोक और पृथ्वीलोक विस्तीर्ण और गंभीर हुए हैं। इसी देवसे प्रेरित होकर गायें उत्तम पदार्थ दुहती हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं, अतः तू जैसे नदियां मनुष्योंको पानी देती हैं, उसी तरह हमें अन्न दे। हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं। तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

हे ज्ञानियो ! वीर और गायोंका पालन करनेवाला वह इन्द्र हमें शत्रुओंका धन देगा भला ? यदि देगा तो वह कौनसी स्तुति है, जो इन्द्रको हमें धन देनेके लिए प्रवृत्त करेगी ? ॥ १ ॥

२७६ स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः　स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय　ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥ २ ॥
२७७ तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके　रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत् त्यागमुभयासो अग्मन्　नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥ ३ ॥
२७८ क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्रा ऽऽशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद् विशोऽववृत्रन्त युध्मा　आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥ ४ ॥

अर्थ— [२७६] (सः वृत्रहत्ये यामन् हव्यः) वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहायार्थ बुलाने योग्य है, (सः ईड्यः) वह प्रशंसनीय है, (सः सु-स्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः) वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करने पर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है, (सः मघवा) वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र (ब्रह्मण्यते सुष्वये मर्त्याय) स्तुति करनेवाले तथा सोम तैय्यार करनेवाले मनुष्यके लिए (वरिवः धात्) श्रेष्ठ धन देता है ॥ २ ॥

१ सः सुस्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः— वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करनेपर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है ।

[२७७] (नरः) मनुष्य (समीके तं इत् विह्वयन्ते) युद्धमें उसी इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं । (यत्) जब (रिरिक्वांसः) तपसे तेजस्वी मनुष्य इन्द्रको (तन्वः त्राम् कृण्वत) अपने शरीरका रक्षक बनाते हैं तब (उभयासः नरः मिथः) दोनों तरहके मनुष्य संगठित होकर (तोकस्य तनयस्य सातौ) पुत्र और पौत्रकी प्राप्ति (त्यागं अग्मन्) करानेवाले उस इन्द्रके पास जाते हैं ॥ ३ ॥

१ नरः समीके तं विह्वयन्त— मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिये उस वीरको बुलाते हैं ।
२ रिरिक्वांसः तन्वः त्रां कृण्वत— तेजस्वी लोग अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं ।
३ उभयासः नरः मिथः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्— दोनों प्रकारके लोग परस्पर पुत्र पौत्रोंके लाभके लिये त्याग करते हैं अपने बालबच्चोंके लाभ करनेके लिये स्वयं त्याग करते हैं ।

[२७८] (उग्राः अशुषाणासः क्षितयः) वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य (मिथः) मिलकर (अर्णसातौ योगे) धनादिकी प्राप्ति होनेवाले युद्धमें (क्रतूयन्ति) पराक्रम करते हैं । (यत् युध्माः विशः अभीके अववृत्रन्त) जब युद्ध करनेवाली प्रजायें युद्धमें संगठित होती हैं (आत् इत् नेमे) तब युद्ध ही करनेवाले (इन्द्रयन्ते) इन्द्रको अपने सहायार्थ बुलाते हैं ॥ ४ ॥

१ उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति— उग्र प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश मिलनेके लिये प्रयत्न करते हैं ।
२ युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते— युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिये इन्द्रको बुलाते हैं ।

भावार्थ— वह इन्द्र वृत्रको मारनेवाले युद्धमें सहाय्यार्थ बुलाने योग्य है, वह प्रशंसनीय है । वह उत्तम स्तुति करनेवालेको सच्चे तथा अविनाशी ऐश्वर्य प्रदान करता है । वह ऐश्वर्यवान् इन्द्र स्तुति तथा सोम तैय्यार करनेवालेको श्रेष्ठ धन देता है ॥ २ ॥

मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिए उस वीरको बुलाते हैं । तेजस्वी जन अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं । शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग पुत्र- पौत्रोंके लाभके लिए त्याग करते हैं । अपने बालबच्चोंके सुखके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं ॥ ३ ॥

वीर और प्रयत्न करनेवाले मनुष्य संगठित होकर धनप्राप्तिके लिए युद्धमें पराक्रम करते हैं । जब प्रजायें पहले स्वयं संगठित होकर अपना पराक्रम दिखाती हैं, तभी इन्द्र भी उनकी सहायताके लिए आता है ॥ ४ ॥

२७९ आदिद्ध नेमं इन्द्रियं यजन्त आदित् पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित् सोमो वि पपृच्यादसुष्वी–नादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥ ५ ॥
२८० कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थे–न्द्राय सोममुशते सुनोति ।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन् तमित् सखायं कृणुते समत्सु ॥ ६ ॥
२८१ य इन्द्राय सुनवत् सोममद्य पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः ।
प्रति मनायोरुचथानि हर्यन् तस्मिन् दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥ ७ ॥

अर्थ— [२७९] (आत् इत्) इसके बाद (नेमे) योद्धागण (इन्द्रियं यजन्ते) इन्द्रकी शक्तिका यजन करते हैं, (आत् इत्) इसके बाद (पक्तिः) पकाने वाला (पुरोळाशं रिरिच्यात्) पुरोडाशको पकाता है, (आत् इत्) इसके बाद ही (सोमः) सोमयज्ञ करनेवाला (असुष्वीन् पपृच्यात्) सोमयाग न करनेवालोंको दूर करता है। (आत् इत्) इसके बाद (यजध्यै वृषभं) यज्ञके लिए बलवान् इन्द्रकी (जुजोष) सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

१ नेमे इन्द्रियं यजन्ते— कई वीर इंद्रियशक्तिसे सम्पन्न वीरको संमानित करते हैं।

२ वृषभं जुजोष— बलवान्‌की सेवा करते हैं।

[२८०] (इत्था) इस प्रकार (यः) जो हित करनेकी (उशते इन्द्राय) इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए (सोमं सुनोति) सोम निचोडता है, (अस्मै) इसके लिए यह इन्द्र (वरिवः कृणोति) धन देता है। यह इन्द्र (सध्रीचीनेन मनसा अविवेनन्) उत्तम मनसे [उस मनुष्यकी] हित करनेकी इच्छा करता हुआ (समत्सु) युद्धोंमें (तं इत् सखायं कृणुते) उसीको मित्र बनाता है ॥ ६ ॥

१ सध्रीचीनेन मनसा अविवेनन् समत्सु तं सखायं कृणुते— उत्तम मनसे जनहित करनेकी इच्छासे युद्धोंमें उसको ही वह मित्र करता है। सदिच्छावालेको मित्र करता है।

[२८१] (अद्य) आज (यः) जो (इन्द्राय सोमं सुनवत्) इन्द्रके लिए सोम निचोडेगा, (पक्तीः पचात्) पुरोडाश पकायेगा, (उत) और (धानाः भृज्जाति) धानकी खीलोंको भूनेगा, (तस्मिन्) उसके लिए (मनायोः) उत्तम मनवाला (इन्द्रः) इन्द्र (उचथानि हर्यन्) स्तोत्रोंको सुनता हुआ (वृषणं शुष्मं दधत्) अत्यन्त उत्तम बलको देगा ॥ ७ ॥

१ मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्— मननशील वीर बलिष्ठको अधिक बल देता है। जो मननशील वीर अपना बल बढानेका यत्न करता है उसका बल वह बढाता है।

भावार्थ— इन्द्रकी पूजा सभी करते हैं, पर पूजा करनेके ढंग अलग अलग हैं। योद्धागण इन्द्रके शक्तिकी पूजा करते हैं और याजक गण सोम रसको प्रदान करके इन्द्रकी पूजा करते हैं। ये याजकगण सोमयज्ञ न करनेवाले नास्तिकोंको दूर करते हैं। तब वे बलवान् इन्द्रकी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥

जो मनुष्य हित करनेकी इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिए सोम निचोढता है, उसे यह इन्द्र भी धन प्रदान करता है यह इन्द्र उत्तम मनसे हित करनेकी इच्छा करता हुआ युद्धोंमें उसी सोमयज्ञ करनेवालेको मित्र बनाता है। उसीकी वह सहायता करता है ॥ ६ ॥

जो इन्द्रके लिए सोम निचोडकर, पुरोडाश पकाकर उसे देगा, उसे इन्द्र उसकी प्रार्थनाओंको सुनकर अत्यन्त उत्तम बल देगा ॥ ७ ॥

२८२ यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद् वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥ ८ ॥

२८३ भूयसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद् दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥ ९ ॥

२८४ क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥ १० ॥

२८५ नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ११ ॥

अर्थ— [२८२] (यदा) जब (ऋघावा) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (समर्यं वि अचेत्) अपने युद्धके वीरोंको विशेषरीतिसे जानता है, (यदा) जब (अर्यः) श्रेष्ठ इन्द्र (आजिं अभि अख्यत्) युद्धका वर्णन करता है, तब (दुरोणे) घरमें (पत्नी) इस इन्द्रकी पत्नी (सोमसुद्भिः निशितं) सोम इस निकालनेवालोंके द्वारा उत्साहित किए गए तथा (वृषणं) बलवान् इन्द्रके (अचिक्रदत्) यशका वर्णन करती है ॥ ८ ॥

[२८३] किसीने (भूयसा कनीयः वस्नं अचरत्) बहुत धन देकर थोडीसी चीज प्राप्त की, जब वह चीज (अविक्रीतः) कहीं बिकी नहीं, तो (पुनः यन्) उसने फिर जाकर (अकानिषं) पैसे वापिस मांगे, (सः भूयसा कनीयः न अरि रेचीत्) वह बेचनेवाला बहुत धन देकर थोडीसी चीज लेनेको तैय्यार न हुआ । (दीनाः दक्षाः) असमर्थ और चतुर (वाणं) जो कुछ बोल देते हैं, उसीको (वि प्र दुहन्ति) प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

[२८४] (मम इमं इन्द्रं) मेरे इस इन्द्रको (दशभिः धेनुभिः कः क्रीणाति) दस गायोंसे कौन खरीद सकता है ? हे खरीदनेवालो ! (यदा) जब यह इन्द्र (वृत्राणि जंघनत्) शत्रुओंको मार देगा (अथ) तब (एनं मे पुनः ददत्) इस इन्द्रको मुझे फिर वापस कर दो ॥ १० ॥

[२८५] (नद्यः न) जिसतरह नदियां जलोंसे पूर्ण हो जाती हैं, उसी तरह हे इन्द्र ! (स्तुतः गृणानः) स्तुत और प्रशंसित हुआ तू (जरित्रे इषं पीपेः) स्तोताको अन्नसे पूर्ण कर । मैंने (ते) तेरे लिए (धिया) बुद्धिसे (नव्यं ब्रह्म) नये स्तोत्रको (अकारि) किया है, हम (रथ्यः सदासः स्याम) रथ और दासोंसे युक्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ— जब कोई वीर योद्धा युद्धके तरीकोंको विशेष रीतिसे जान जाता है और वह युद्धका वर्णन करता है, तब घरमें बैठी हुई उसकी पत्नी भी अपने पराक्रमी पतिका वर्णन करती है, उसकी प्रशंसा करती है ॥ ८ ॥

मनुष्य अपनी आत्मारूपी अपार धनके बदलेमें संसारसुख रूपी अल्पसे पदार्थको ले लेते हैं, पर जब संसारसुख उन्हें किसी कामका प्रतीत नहीं होता, तब वे फिर संसारसुखके बदलेमें आत्मरूपी धनको लेना चाहते हैं, पर वह उन्हें नहीं मिल पाता, क्योंकि वे जो कुछ वाणीसे बोलते या कर्मसे करते हैं, उसीका फल वे प्राप्त करते हैं । यह मंत्र प्रतीकवादी है ॥ ९ ॥

मेरे इन्द्रको इस गायोंके बदलेमें कौन खरीद सकता है ? जो खरीदे, वह अपना काम करनेके बाद इन्द्र मुझे लौटा दे । मंत्रका रहस्य अस्पष्ट है ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी स्तुति और प्रशंसा करते हैं अतः तू जैसे नदियाँ मनुष्योंको पानी देती हैं उसी तरह हमें अन्न दे । हम तेरे लिए अपनी बुद्धियोंसे उत्तम उत्तम स्तोत्र बनाते हैं । तेरी कृपासे हम रथ तथा दासोंसे युक्त हों ॥ ११ ॥

×

[२५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८६ को अद्य नर्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष ।
को वा महेऽवसे पार्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे ॥ १ ॥

२८७ को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः ।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ २ ॥

२८८ को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांऽशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥ ३ ॥

२८९ तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसज्ज्योक् पश्यात् सूर्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्याय नृतमाय नृणाम् ॥ ४ ॥

[२५]

अर्थ — [२८६] (अद्य) आज (देवकामः उशन्) देवोंकी इच्छा करता हुआ तथा कामना करता हुआ (कः नर्यः) कौन मनुष्य (इन्द्रस्य सख्यं जुजोष) इन्द्रको मित्रता प्राप्त करता है (वा) अथवा (सुतसोमः कः) सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान (अग्नौ समिद्धे) अग्निके प्रज्वलित होने पर (पार्याय महे अवसे) दुःखोंसे पार होनेके लिये तथा बडे संरक्षणके लिए इन्द्रकी (ईट्टे) स्तुति करता है ॥ १ ॥

[२८७] ((सोम्याय) सोमको पीनेवाले इस इन्द्रको (कः वचसा ननाम) कौन अपनी वाणीसे स्तुति करता है ? (वा) अथवा कौन इसका (मनायुः भवति) भक्त होना चाहता है ? कौन (उस्राः वस्त) गायोंको पालता है ? (इन्द्रस्य युज्यं कः) इन्द्रकी सहायताको कौन चाहता है, (सखित्वं कः) उसकी मित्रताको कौन चाहता है, (कः भ्रात्रं वष्टि) कौन उसके भाईपनेकी कामना करता है, तथा (कवये) उस दूर दर्शी इन्द्रको (कः ऊती) कौन अपने संरक्षणके लिये चाहता है ? ॥ २ ॥

[२८८ (अद्य) आज (देवानां अवः कः वृणीते) देवोंके संरक्षणको कौन पाता है ? तथा (आदित्यान्, अदितिं ज्योतिः) आदित्यों, अदिति और ज्योति रूपी उषाकी (कः ईट्टे) कौन स्तुति करता है ? (अश्विनौ, इन्द्रः अग्निः) अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि (कस्य सुतस्य अंशोः) किसके निचोडे हुए सोम रसका (मनसा अविवेनं पिबन्ति) मनसे इच्छानुसार पीते हैं ? ॥ ३ ॥

[२८९] (यः) जो (नरे नर्याय नृणां नृतमाय) आगे ले जानेवाले, मनुष्योंका हित करनेवाले तथा नेताओंमें सर्वोत्तम नेता (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (सुनवाम इति आह) सोम रस निकाले, ऐसा कहता है, (तस्मै) उसके लिए (भारतः अग्निः) भरणपोषण करनेवाला अग्नि (शर्म यंसत्) सुख देवे, तथा वह मनुष्य (उच्चरन्तं सूर्यं) उदय होते हुए सूर्यको (ज्योक् पश्यात्) बहुत कालतक देखे ॥ ४ ॥

१ उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्यात्— उदय होनेवाले सूर्यको दीर्घ कालतक देखे । दीर्घायु हो ।

भावार्थ— देवोंकी इच्छा और कामना करता हुआ कौनसा मनुष्य इन्द्रकी मित्रता चाहता है ? अथवा सोमयज्ञ करनेवाला कौन यजमान अग्निके प्रज्वलित होने पर दुःखोंसे पार होनेके लिए इन्द्रकी स्तुति करता है ? ॥ १ ॥

सोम पिलानेसे पूर्व इस इन्द्रकी स्तुति कौन करता है ? इसका भक्त कौन हो सकता है ? इन्द्रका मित्र कौन है ? उसकी मित्रताको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उसके भ्रातृत्वको कौन प्राप्त करना चाहता है ? उस दूरदर्शी इन्द्रको कौन अपने संरक्षणके लिए बुलाना चाहता है ? यह बातें मननीय हैं ॥ २ ॥

देवोंके संरक्षणको कौन प्राप्त करता है ? आदित्य, अदिति और ज्योति अर्थात् प्रकाशकी कौन स्तुति करता है ? अश्विनौ, इन्द्र और अग्नि आदि देव किसके द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको मनःपूर्वक पीनेकी इच्छा करते हैं ? ॥ ३ ॥

२९० न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥ ५ ॥
२९१ सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामि र्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥ ६ ॥
२९२ न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रो ऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते ।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥ ७ ॥

अर्थ— [२९०] (तं) उस मनुष्यको (दभ्राः बहवः) थोडे और बहुतसे शत्रु भी (न जिनन्ति) नहीं जीत सकते, तथा (अदितिः) अदिति (अस्मै उरु शर्म यंसत्) इसके लिए महान् सुख देती है। (इन्द्रे) इन्द्रके लिए (सुकृत् प्रियः) उत्तम कर्म करनेवाला प्रिय होता है, (मनायुः प्रियः) यज्ञ करनेवाला प्रिय होता है, (सु-प्र-अवीः प्रियः) उत्तम मार्गसे जानेवाला इसे प्रिय होता है, तथा (सोमी अस्य प्रियः) सोम यज्ञ करनेवाला इस इन्द्रका प्यारा होता है ॥ ५ ॥

१ तं दभ्राः बहवः न जिनन्ति— उसको थोडे या बहुत शत्रु नहीं जीत सकते।
२ अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्— प्रकृति उसको बडा सुख देती है।
३ इन्द्रे सुकृत्, मनायुः, सुप्रावीः प्रियः— इन्द्रको उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला प्रिय होता है।

[२९१] (प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः) शत्रुओंको मारनेवाला यह वीर इन्द्र (केवला) केवल (सु-प्र- अव्यः सुष्वेः) उत्तममार्ग पर चलनेवाले तथा सोम तैयार करनेवाले मनुष्यके ही (पक्तिं कृणुते) पुरोडाशको स्वीकार करता है। यह इन्द्र (असुष्वेः आपिः न) सोमयाग न करनेवालेका मित्र नहीं होता (न सखा) न सखा होता है (न जामिः) न भाई होता है अपितु (दुष्प्राव्यः अ- वाचः अवहन्ता इत्) बुरे मार्ग पर चलनेवाले और स्तुति न करनेवालेको यह मारनेवाला ही होता है ॥ ६ ॥

१ दुष्प्राव्यः अवाचः अव हन्ता वीरः — बुरे मार्गसे जानेवालेका, स्तुति न करनेवालेका मारनेवाला यह वीर है।
२ प्राशुषाट् एषः वीरः इन्द्रः केवला सु - प्र - अव्यवः पक्तिं कृणुते — शत्रुओंका संहारक यह वीर इन्द्र केवल उत्तम मार्ग पर चलनेवालेकी हविको ही स्वीकार करता है।

[२९२] (सुत- पाः इन्द्रः) सोमरसको पीनेवाला यह इन्द्र (असुन्वता रेवता पणिना) सोम न निचोनेवाले धनवान् पर कंजूस मनुष्यके साथ (सख्यं न सं गृणीते) मित्रता नहीं जोडता। वह इन्द्र (अस्य नग्नं वेदः खिदति) इस कंजूसके निरर्थक धनको नष्ट कर देता है, (हन्ति) और कंजूसको मार देता है, वह (केवला) केवल (सुष्वये पक्तये वि भूत्) सोमयज्ञ करनेवाले तथा पुरोडाश पकानेवालेका ही मित्र होता है ॥ ७ ॥

१ इन्द्रः रेवता पणिना सख्यं न सं गृणीते — यह इन्द्र धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ मित्रता नहीं जोडता।
२ अस्य नग्नं वेदः खिदति — ऐसे कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है।

भावार्थ— जो मनुष्य ऐसा कहता है कि ' हम इन्द्रके लिए सोम तैयार करें ' ऐसे नेता, मानवोंके हितकारी मनुष्योंको भरणपोषण करनेवाला अग्नि सुख प्रदान करे और ऐसा सर्वोत्तम मनुष्य उदय होते हुए सूर्यको चिरकाल तक देखे अर्थात् वह दीर्घकाल तक जीवित रहे ॥ ४ ॥

जो श्रेष्ठ नेता और प्रजाओंका हित करनेवाला मनुष्य है, उस मनुष्यको थोडोंकी तो बात ही क्या, बहुत सारे शत्रु भी मिलकर नहीं जीत सकते। अदिति अविनाशी माता ऐसे मनुष्यको महान् सुख देती है। इन्द्रको उत्तम कर्म करनेवाला, यज्ञ करनेवाला, उत्तम मार्गसे जानेवाला मनुष्य ही प्रिय होता है ॥ ५ ॥

शत्रुओंका विनाशक यह इन्द्र केवल उन्हींकी हवियोंको स्वीकार करता है, जो उत्तम मार्गसे जाते हैं। यह इन्द्र यज्ञ आदि उत्तम कर्म करनेवालेका न मित्र होता है और न भाई, वह तो ऐसे बुरे मार्ग पर चलनेवाले नास्तिकोंको मारनेवाला ही होता है ॥ ६ ॥

२९३ इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम् ।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥ ८ ॥

[२६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः १-३ इन्द्रो वा । देवता- १-३ इन्द्रः, आत्मा वा, ४-७ श्येनः ।
छन्दः-त्रिष्टुप् ।]

२९४ अहं मनुरभवं सूर्यश्चाऽहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥ १ ॥

२९५ अहं भूमिमददामार्यायाऽहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥ २ ॥

अर्थ— [२९३] (परे अवरे मध्यमासः) उत्तम अधम और मध्यम कोटिके लोग (इन्द्रं हवन्ते) इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं । (यान्तः अवसितासः इन्द्रं) चलते हुए और बैठे हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं । (क्षियन्तः युध्यमानाः इन्द्रं) घरमें बैठे हुए और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं, तथा (वाजयन्तः नरः इन्द्रं हवन्ते) अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

[२६]

[२९४] (अहं मनुः अभवं) मैं मनु हुआ हूँ (अहं सूर्यः च) मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही (विप्रः कक्षीवान् ऋषिः) बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। (अहं आर्जुनेयं कुत्सं नि ऋंजे) मैंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है, (अहं कविः उशना) मैं ही दूरदर्शी उशना ऋषि हूँ; (मा पश्यत) मुझे देखो ॥ १ ॥

[२९५] (अहं आर्याय भूमिं अददां) मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी, (अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं) मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। (अहं वावशानाः अपः अनयं) मैं ही शब्द करते हुए जलोंको आगे ले गया, और (देवासः मम केतं अनु आयन्) देव मेरे संकल्पके पीछे चले ॥ २ ॥

१ अहं आर्याय भूमिं अददां— मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी।
२ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं— मैंने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया।

भावार्थ— सोमको पीनेवाला यह इन्द्र यज्ञ न करनेवाले, धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवालेके साथ मित्रता नहीं जोडता। ऐसे कंजूस मनुष्यका धन पडा पडा रोता रहता है। इन्द्र ऐसे कंजूसके धनको नष्ट कर देता है और उस कंजूसको भी मार देता है। वह इन्द्र तो केवल यज्ञ करनेवाले और हवि देने वाले मनुष्यसे ही मित्रता करता है ॥ ७ ॥

उत्तम, अधम और मध्यम कोटिके लोग, चलते हुए बैठे हुए, और युद्ध करते हुए लोग भी इन्द्रको बुलाते हैं, इसी तरह अन्नकी इच्छा करनेवाले मनुष्य भी इन्द्रको बुलाते हैं ॥ ८ ॥

मैं इन्द्र या आत्मा ही मनु हुआ हूँ, मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही बुद्धिमान् कक्षीवान् ऋषि हूँ। मैंने ही अर्जुनीके पुत्र कुत्सको समर्थ किया है। मैं ही दूरदर्शी उशना कवि हूँ ॥ १ ॥

मुझ इन्द्रने ही श्रेष्ठ पुरुषोंके निवास करनेके लिए भूमि दी। मैंने ही दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया। मैंने ही शब्द करते हुए बहनेवाले जलोंके प्रवाहोंको प्रेरित किया। सभी देव मुझ इन्द्रके पीछे चलते हैं। इन्द्र परमात्मा है, इसी परमात्माकी आज्ञाके अनुसार सभी देव चलते हैं ॥ २ ॥

२९६ अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥ ३ ॥
२९७ प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा ।
अचक्रया यत् स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥ ४ ॥
२९८ भरद् यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि ।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥ ५ ॥
२९९ ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम् ।
सोमं भरद् दादृहाणो देववान् दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥ ६ ॥

अर्थ— [२९६] (अहं मन्दसानः) मैंने आनन्दसे (शम्बरस्य नवः नवतीः पुरः) शम्बरासुरके निन्यानवे नगरोंको (साकं वि ऐरं) एक साथ नष्ट किया। तथा (यत्) जब (सर्वताता) यज्ञमें मैंने (अतिथिग्वं दिवोदासं) अतिथियोंको गौवें देनेवाले दिवोदासकी (आवं) रक्षा की, तब उसके लिए (शततमं वेश्यं) सौवें नगरको रहने योग्य बनाया ॥ ३ ॥

१ अहं शंवरस्य नवनवतीः पुरः साकं वि ऐरं— मैंने शंवरासुरकी निन्यानवे पुरियोंको एक साथ तोडा।

२ शततमं वेश्यं— सोवे नगरको रहने योग्य बनाया।

[२९७] (यत् सुपर्णः) जो उत्तम शक्तिशाली पंखोंवाला पक्षी (अचक्रया स्वधया) अपनी कभी भ्रान्त न होनेवाली शक्तिसे (मनवे) मनुके लिए (देव जुष्टं हव्यं) देवोंको प्रिय लगनेवाली हविको (भरत्) ले आया, हे (मरुतः) मरुतो ! (सः विः) वह सुपर्ण पक्षी (विभ्यः प्र) अन्य पक्षियोंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली (अस्तु) हो। वह (श्येनः) श्येन पक्षी (श्येनेभ्यः आशुपत्वा) अन्य श्येनपक्षीयोंसे शीघ्रगामी हो ॥ ४ ॥

[२९८] (यदि) जब (विः) पक्षी (वेविजानः) सब लोकोंको कंपाता हुआ सोमको (अतः भरत्) उस लोक अर्थात द्युलोकसे ले आया, तब वह (उरुणा पथा) विस्तृतमार्गमें (मनोजवा असर्जि) मनके वेगसे उडा। (उत) और वह पक्षी (सौम्येन मधुना) शान्ति प्रदान करनेवाले तथा मधुर रसको लेकर (तूयं ययौ) शीघ्रतासे आया, तब (श्येनः) उस श्येन पक्षीने (अत्र श्रवः विविदे) इस लोकमें यशको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

[२९९] (परावतः अंशुं ददमानः) दूर देशसे सोमको लेकर (ऋजीपी) सरल मार्गसे जानेवाला, तथा (देववान्) देवोंके साथ रहनेवाला (श्येनः शकुनः) श्येन पक्षी (मन्द्रं मदं सोमं) मधुर और आनन्ददायक सोम (अमुष्यात् उत्तरात् दिवः) उस ऊंचे द्युलोकसे (आदाय) लेकर (दादृहाणः) दृढ होकर (भरत्) ले आया ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैंने आनन्दसे शम्बरासुरकी निन्यानवे नगरियोंको तोडा। जब मैंने अतिथियोंको गायें देनेवाले दिवोदासकी रक्षा की, तब उसके लिए सौवें नगरको रहनेके योग्य बनाया ॥ ३ ॥

उत्तम शक्तियोंवाली यह जीवात्मा जब देवों अर्थात् विद्वानोंको प्रिय लगनेवाले उस परमात्मतत्त्व रूप अमृतको प्राप्त कर लेती है, तब वह आत्मा अन्य आत्माओंकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और शीघ्रगामी हो जाती है ॥ ४ ॥

जब यह जीवात्मा द्युलोक रूपी ब्रह्मरन्ध्रमें प्रविष्ट होकर वहां अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेता है, तब उसके लिए असाध्य ऐसी कोई भी चीज नहीं रह जाती। इस अमृततत्त्वको प्राप्त कर लेनेके बाद उसका जीवन शान्त और मधुर हो जाता है और वह महान् यशको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

यह श्येन पक्षी रूपी जीवात्मा सदा सरल मार्गसे जानेवाला, देवोंके साथ रहनेवाला है। यह द्युलोकसे सोम लाकर जब उसका आस्वादन करता है, तब वह बहुत शक्तिशाली हो जाता है ॥ ६ ॥

३०० आदाय श्येनो अभरत् सोमं सहस्रं सवाँ अयुतं च साकम् ।
अत्रा पुरंधिरजहादरातीर्मदे सोमस्य मूरा अमूरः ॥ ७ ॥

[२७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- श्येनः, ५ इन्द्रो वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५ शक्वरी ।]

३०१ गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥ १ ॥

३०२ न घा स मामप जोषं जभाराऽभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरंधिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥ २ ॥

३०३ अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरंधिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३००] (श्येनः) श्येन (सहस्रं अयुतं च सवान्) हजारों यज्ञोंके (साकं) साथ (सोमं आदाय अभरत्) सोमको लेकर उडा । (अत्र) इसके बाद (पुरंधिः अमूरः) अनेकों उत्तम कर्मोंको करनेवाले तथा बहुत ज्ञानवान् इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (मूराः) मूर्ख (अरातीः) शत्रुओंको (अजहात्) मारा ॥ ७ ॥

[२७]

[३०१] (गर्भे नु सन्) गर्भमें रहकर (अहं) मैंने (एषां देवानां) इन देवोंके (विश्वा जनिमानि अवेदम्) सब जन्मोंको जान लिया । (शतं आयसीः पुरः मा अरक्षन्) सौ लौहमय नगरियोंने मेरी रक्षा की । (अधः) इसके बाद (श्येनः) श्येन होकर मैं (जवसा निः अदीयम्) वेगसे बाहर निकल आया ॥ १ ॥

[३०२] (सः) वह (मां जोषं न घ अप जभार) मुझे अच्छी तरह घेर नहीं पाया । मैंने ही (इदं) इसे (त्वक्षसा वीर्येण) तीक्ष्ण सामर्थ्यसे (अभि आस) घेर लिया । (ईर्मा) सबका प्रेरक (पुरंधिः) प्रज्ञावान् परमात्माने (आरातिः अजहात्) शत्रुओंको मारा । (शूशुवानः) परिपूर्ण परमात्माने (वातान्) वायुके समान वेगवान् शत्रुओंको भी मारा ॥ २ ॥

[३०३] (अध) तब सोम लानेके समय (यत्) जब (श्येनः) श्येनने (द्योः) द्युलोकसे (अव अस्वनीत्) गर्जना की, तब (पुरंधिं) बुद्धिको बढानेवाले सोमको सोमरक्षकोंने (अतः वि ऊहुः) इस श्येनसे छीनना चाहा, तब (मनसा भुरण्यन्) मनोवेगसे जानेवाले (अस्ता) धनुर्धारी (कृशानुः) कृशानुने (ज्यां क्षिपत्) डोरी चढाई, और (अस्मा अव सृजात्) इस श्येन पर तीर छोडा ॥ ३ ॥

भावार्थ— जब श्येन पक्षी द्युलोकसे इस सोमको लाया, तब उसके साथ ही वह अनेकों तरहके यज्ञ भी लेता आया । उन यज्ञमें इन्द्रको सोम दिया जाने लगा, तब उसने उस सोमके आनन्दमें बहुतसे मूर्ख शत्रुओंको मारा । इन्द्र स्वयं ज्ञानी है, इसलिए वह अज्ञानियोंका नाश करता है ॥ ७ ॥

जहां सोम रखा हुआ था, वह देवोंकी नगरी थी और वह स्थान सौ लोहेके नगरोंसे सुरक्षित था, पर श्येन उन देवोंकी कोई परवाह न करके उन सौ नगरियोंको पार कर गया और वहां जाकर सोम लेकर वेगसे उन नगरियोंसे बाहर निकल आया ॥ १ ॥

श्येन रूपी यह जीवात्मा जब सोम लानेके लिए द्युलोककी तरफ जाता है, तब उसे अनेक विघ्न घेर लेते हैं और उसके मार्गमें रोडे अटकाते हैं, पर वे विघ्न उसे घेर नहीं पाते, इसके विपरीत वही आत्मा अपनी शक्तिसे इन विघ्नों पर विजय प्राप्त कर लेती है । ऐसे समय सबके प्रेरक परमात्मा भी इसके सहायक होते हैं ॥ २ ॥

सोम लाते समय श्येन और सोमरक्षकोंमें युद्ध छिड गया, तब श्येनने गर्जना की और दूसरी तरफ सोमरक्षक श्येनसे सोम छुडानेकी कोशिश करने लगे । तब उन सोमरक्षकोंमेंसे एकने अपने धनुष पर डोरी चढाई और श्येनकी तरफ एक तीर चला दिया ॥ ३ ॥

३०४ ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधि ष्णोः ।
अन्तः पतत् पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद् वेः ॥ ४ ॥

३०५ अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत् पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत् पिबध्यै ॥ ५ ॥

[२८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- इन्द्रः, इन्द्रासोमौ वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३०६ त्वा युजा तव तत् सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥ १ ॥

अर्थ— [३०४] (ऋजिप्यः श्येनः) सरल मार्गसे जानेवाला श्येन पक्षी (इन्द्रावतः बृहतः स्नोः अधि) इन्द्रके द्वारा रक्षित महान् द्युलोकसे (ईं जभार) इस सोमको उसी तरह लाया. (भुज्युं न) जिस तरह अश्विनौ भुज्युको ले आए थे। (अध) इसके बाद (यामनि अन्तः) युद्धमें (अस्य प्रसितस्य वेः) इस अस्त्रसे विद्ध पक्षीका (तत् पतत्रि पर्णं) वह उडनेका साधन पंख (पतत्) गिर गया ॥ ४ ॥

[३०५] (अध) इसके बादसे (श्वेतं कलशं) तेजस्वी, कलशमें रखे हुए (गोभिः अक्तं आपिप्यानं) गायके दूधसे मिश्रित, तृप्त करनेवाले (शुक्रं) तेजस्वी (अध्वर्युभिः प्रयतं) अध्वर्युके द्वारा दिए गए (मध्वः अग्रं) मधुररसोंमें सर्वश्रेष्ठ (अन्धः) अन्नरूप इस सोमको (मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (मदाय) आनन्दके लिए (पिबध्यै) पीये और (प्रति धत्) धारण करे (शूरः) वह शूरवीर इन्द्र (मदाय पिबध्यै) आनन्दके लिए इस सोमरसको पीये और (प्रति धत) धारण करे ॥ ५ ॥

[२८]

[३०६] हे सोम ! (तव तत् सख्ये) तेरी उस मित्रतामें (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (इन्द्रः) इन्द्रने (मनवे) मनुके लिए (सस्रुतः अपः कः) बहनेवाले जलोंको उत्पन्न किया, (अहिं अहन्) अहिको मार कर (सप्त सिन्धून् अरिणात्) सात नदियोंको बहाया, तथा (अपिहिता इव खानि अपावृणोद्) बन्द किए द्वारोंको खोला ॥ १ ॥

१ अहिं अहन् सप्त सिन्धून् अरिणात्— अहिको मारा और सात नदियोंको बहाया ।

भावार्थ— जिस प्रकार अश्विनीकुमार समुद्रमें पडकर डूबते हुए भुज्युको बाहर निकाल लाए थे, उसीप्रकार यह श्येन पक्षी इन्द्रके द्वारा रक्षित विशाल द्युलोकसे सोम ले आया। सोम लाते समय जो युद्ध हुआ उसमें कृशानुने एक तीर जो मारा उससे इस श्येनका एक पंख कट कर गिर गया ॥ ४ ॥

ऐश्वर्यवान् इन्द्र कलशमें गायके दूधके साथ मिलाकर रखे गए, तेजस्वी, मधुर रसोंमें सर्वश्रेष्ठ अन्नरूप सोमरसको आनन्दके लिए पीये और इसकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

सोमसे मित्रता करके तथा उसकी सहायता प्राप्त करके इन्द्रने मनुके लिए बहनेवाले जलोंको उत्पन्न किया। अहि नामक असुरको मारा, सात नदियोंको बहाया और जलके बन्द किए द्वारोंको खोल डाला ॥ १ ॥

३०७ त्वा युजा नि खिदत् सूर्यस्ये-न्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥ २ ॥
३०८ अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून् मध्यंदिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥ ३ ॥
३०९ विश्वस्मात् सीमधमाँ इन्द्र दस्यून् विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रू-नविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥ ४ ॥
३१० एवा सत्यं मघवाना युवं त-दिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित् ततृदाना ॥ ५ ॥

अर्थ— [३०७] हे (इन्दो) सोम ! (त्वा युजा) तेरी सहायतासे (इन्द्रः) इन्द्रने (सद्यः) शीघ्र ही (बृहता स्नुना अधि वर्तमानं) विशाल द्युलोकमें चलनेवाले (सूर्यस्य चक्रं) सूर्यके चक्रको (सहसा नि खिदत्) बलके द्वारा अपने अधिकारमें किया । और (महः द्रुहः) महान् द्रोह करनेवाले सूर्यके (विश्वायुः) सब जगह जानेवाले चक्र पर (अप धायि) अधिकार किया ॥ २ ॥

[३०८] हे (इन्दो) सोम ! (अभीके) संग्राममें (मध्यंदिनात् पुरा) मध्याह्नसे पहले ही (इन्द्रः दस्यून् अहन्) इन्द्रने दस्युओंको मार डाला और (अग्निः अदहत्) अग्निने उन्हें जला दिया । (न) प्रशंसित इन्द्रने (दुरोणे दुर्गे) कठिनतासे प्रवेश करने योग्य किलेमें छिपे रहने पर भी (यातां) राक्षसोंके (पुरू सहस्रा) बहुतसे हजारों नगरोंको (क्रत्वा, शर्वा) अपने पराक्रम व बलसे (नि बर्हीत्) नष्ट कर दिए ॥ ३ ॥

१ दुरोणे दुर्गे यातां पुरू सहस्रा क्रत्वा शर्वा नि बर्हीत् — प्रवेश करनेके लिये कठिन किलेमें रहनेवाले राक्षसोंके सहस्रों सैनिकोंको अपने पराक्रमसे मारा ।

२ दुरोणः दुर्गः — जिसमें प्रवेश करना कठिन है ऐसा किला ।

[३०९] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तूने (सीं दस्यून्) इन दस्युओंको (विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः) सभीसे नीचा किया, तथा (दासीः विशः अ- प्रशस्ताः अकृणोः) दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दनीय बनाया । हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनोंने (शत्रून् अवाधेथां) शत्रुओंको रोका और उन्हें (वधत्रैः अमृणतं) शस्त्रोंसे मारा, तब तुमने (अपचितिं अविन्देथां) सत्कारको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

१ इन्द्र ! दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः — हे इन्द्र ! तू दस्युओंको सबसे नीच बना देता है ।

२ दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः — दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दाके योग्य करता है । दासभावसे युक्त मनुष्य हमेशा निन्दनीय होते हैं ।

[३१०] हे सोम ! (सत्यं एव) यह सत्य ही है, कि तूने (च इन्द्रः) और इन्द्रने अर्थात् (मघवाना युवं) ऐश्वर्यसे युक्त तुम दोनोंने (ऊर्वं अश्व्यं गोः) महान् घोडे और गायोंके समूहका (आदर्दृतं) आदर किया । तुम दोनोंने (अश्ना अपिहितानि) पत्थरसे छुपाये गए गौसमूहको तथा (क्षाः) भूमिको (रिरिचथुः) प्राप्त किया । और शत्रुओंको (ततृदाना) मारा ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे सोम ! तुझसे उत्साह पाकर इन्द्रने विशाल द्युलोकमें घूमनेवाले सूर्यके चक्रको अपने सामर्थ्यसे अपने अधिकारमें किया ॥ २ ॥

हे सोम ! तुझसे उत्साह लेकर इन्द्रने संग्राममें मध्याह्नसे पूर्व ही दस्युओंको मार डाला, अर्थात् इतना सामर्थ्य उसमें आ गया । इन्द्रके मार डालनेके बाद अग्निने उन दस्युओंको जला डाला । इन्द्रने उन दस्युओंके अनेक दुर्गम किलोंको अपने पराक्रम और बलसे नष्ट कर दिया ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तूने ही इन दस्युओंको सबसे नीचा किया तथा जो प्रजायें गुलाम बनकर रहती हैं, उसे निन्दाके योग्य बनाया । हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनोंने शत्रुओंको रोका और उन्हें शस्त्रोंसे मारा, तब तुमने सत्कारको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

[२९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३११ आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥ १ ॥

३१२ आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान् हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥ २ ॥

३१३ श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान् करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥ ३ ॥

३१४ अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्याशून् त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥ ४ ॥

---

[२९]

अर्थ— [३११] हे इन्द्र ! (स्तुतः, आंगूषेभिः गृणानः, सत्यराधाः अर्यः) प्रशंसित तथा स्तोत्रोंसे वर्णित तथा अविनाशी धनसे युक्त तथा श्रेष्ठ तू (मन्दसानः) आनन्दित होकर (वाजेभिः तिरश्चित्) अन्नोंके साथ प्राप्त होनेवाले हमारे (पुरूणि सवनानि उप) बहुतसे यज्ञोंके पास (नः ऊती) हमारे संरक्षणके लिए (हरिभिः आ याहि) घोडोंसे आ ॥ १ ॥

१ तिरः- चित्— प्राप्त होनेवाले ' तिरः सतः इति प्राप्तस्य ' (निरु ३ । २०)

[३१२] वह (नर्यः चिकित्वान्) मनुष्योंका हित करनेवाला, बुद्धिमान्, तथा (सोतृभिः हूयमानः) सोम निचोडनेवालोंके द्वारा बुलाया जानेवाला वह इन्द्र हमारे (यज्ञं उप आ याति) यज्ञके पास आवे । (सु- अश्वः) उत्तम घोडोंवाला, (अ- भीरुः) निर्भय तथा (सुष्वाणेभिः मन्यमानः) सोम तैय्यार करनेवालोंके द्वारा प्रशंसित (यः) जो इन्द्र है, वह (वीरैः सं मदति) वीरोंके साथ आनन्दित होता है ॥ २ ॥

[३१३] हे मनुष्य ! (अस्य कर्णा) इस इन्द्रके कानोंको (वाजयध्यै) इन्द्रका बल बढानेके लिए तथा (जुष्टां दिशं मन्दयध्यै) सब दिशामें आनन्दित होनेके लिए (श्रावयेत्) स्तोत्र सुना । (उत् वावृषाणः) सोमसे युक्त होता हुआ तथा (तुविष्मान्) बलवान् (इन्द्र) इन्द्र (नः राधसे) हमारे धनप्राप्तिके लिए (सुतीर्था) उत्तम तीर्थके समान (अभयं करत्) भयरहित करे ॥ ३ ॥

[३१४] (यः वज्रबाहुः) जो भुजाओंमें वज्रको धारण करनेवाला इन्द्र है, वह (सहस्राणि शतानि) हजारों व सैकडों (आशून्) शीघ्र दौडनेवाले घोडोंको (त्मनि धुरि उप दधानः) अपने रथकी धुरामें जोडकर (ऊती) संरक्षण करनेके लिए (नाधमानं हवमानं, गृणन्तं, विप्रं) प्रार्थना करनेवाले, बुलानेवाले, स्तुति करनेवाले तथा ज्ञानी यजमानके पास (इत्था) इसप्रकार (अच्छ गन्ता) सीधा जानेवाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और सोम ! तुम दोनों ऐश्वर्यशाली हो । तुम दोनोंने घोडे, गाय आदि प्राणियोंका बडा आदर किया । तुम्हीं दोनोंने पहाडोंकी गुफाओंमें छिपाये गए भूमिको प्राप्त किया और शत्रुओंको मारा ॥ ५ ॥

प्रशंसित, स्तोत्रोंसे वर्णित अविनाशी धनसे युक्त तथा श्रेष्ठ इन्द्र ! तू आनन्दित होकर अन्नोंके साथ प्राप्त होनेवाले हमारे यज्ञोंके पास आ और हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

मनुष्योंका हित करनेवाला, बुद्धिमान् तथा सबके द्वारा बुलाया जानेवाला वह इन्द्र हमारे यज्ञके पास आवे । उत्तम घोडोंवाला, निर्भय वह इन्द्र वीरोंके साथ आनन्दित होता है ॥ २ ॥

इन्द्रका बल बढानेके लिए तथा आनन्दित होनेके लिए स्तोत्र किए जाए । तब बलवान् इन्द्र हमें धन प्राप्त करानेके लिए उत्तम तीर्थके समान अभयता प्रदान करे ॥ ३ ॥

यह इन्द्र भुजाओंमें वज्रको धारण करनेवाला, अनेकों घोडोंको अपने रथमें जोडनेवाला, रक्षा करनेवाला और सदाही सन्मार्गसे जानेवाला है ॥ ४ ॥

×

३१५ त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥ ५ ॥

[३०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः, ९-११ इन्द्रोषसौ । छन्दः- गायत्री; ८, २४ अनुष्टुप् ।]

३१६ नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥
३१७ सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः । सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥
३१८ विश्वे चनेदना त्वा देवास इन्द्र युयुधुः । यदहा नक्तमातिरः ॥ ३ ॥
३१९ यत्रोत बाधितेभ्यश्चक्रं कुत्साय युध्यते । मुषाय इन्द्र सूर्यम् ॥ ४ ॥
३२० यत्र देवाँ ऋघायतो विश्वाँ अयुध्य एक इत् । त्वमिन्द्र वनूँरहन् ॥ ५ ॥

अर्थ— [३१५] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (त्वा ऊतासः) तेरे द्वारा संरक्षित हुए हुए (विप्राः गृणन्तः सूरयः वयं) ज्ञानी, स्तुति करनेवाले, तथा बुद्धिमान् हम (बृहत्-दिवस्य आकाय्यस्य पुरु-क्षोः ते) अत्यन्त तेजस्वी चारों ओरसे प्रशंसित होनेवाले तथा बहुत अन्नसे युक्त तेरे (रायः दावने) धनके दानमें (भेजानासः स्याम) भाग लेनेवाले हों ॥ ५ ॥

[३०]

[३१६] हे (वृत्र-हन् इन्द्र) वृत्रके नाश कर्ता इन्द्र ! (त्वत् उत्तरः नकिः) तुझसे अधिक श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है। (न ज्यायान्) तुझसे अधिक बडा भी कोई नहीं है। (यथा त्वं) जैसा तू है वैसा (नकिः एव) दूसरा कोई नहीं ॥ १ ॥

[३१७] हे इन्द्र ! (कृष्टयः) सब प्रजाजन (ते अनु सत्रा वावृतुः) तेरे अनुकूल और तेरे साथ साथ रहते हैं। (विश्वा चक्रा इव) सब रथोंके चक्र जैसे साथ घूमते हैं वैसे ही सब लोग तेरे साथ चलते हैं। इसकारण (सत्रा महान् श्रुतः असि) तू सचमुच बडा प्रख्यात हुआ है ॥ २ ॥

[३१८] हे इन्द्र ! (विश्वे चन् इत् देवासः) सब देव (अना त्वा युयुधुः) बलके साथ तुझे प्राप्त करके असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। उस समय (यत् अहा नक्तं आतिरः) दिनमें और रात्रीमें तूने शत्रुओंको पूर्ण नाश किया ॥ ३ ॥

[३१९] हे इन्द्र ! (यत्र) जिस युद्धमें (उत) और (बाधितेभ्यः युध्यते कुत्साय) शत्रुके साथ युद्ध करनेवाले कुत्सके हितके लिये (सूर्य चक्रं मुषाय) सूर्य संबंधी चक्र तूने उठाया और अपने भक्तकी सहायता की ॥ ४ ॥

[३२०] हे इन्द्र ! (त्वं एकः इत्) तू अकेलाही (यत्र) जिस युद्धमें (देवान् ऋघायतः विश्वान् अयुध्यः) देवोंका नाश करनेवाले राक्षसोंके साथ युद्ध करता रहा और (वनून् अहन्) हिंसकोंका तूने ही वध किया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तेरे द्वारा संरक्षित होकर ज्ञानी तथा बुद्धिमान् हम अत्यन्त तेजस्वी चारों ओरसे प्रशंसित होनेवाले तथा बहुत अन्नसे युक्त तेरे धनके दानमें हम भाग लेनेवाले हों ॥ ५ ॥

इन्द्रके समान सर्वगुण संपन्न दूसरा कोई नहीं है। इन्द्रका अर्थ प्रभु परमेश्वर, है सूर्य है, राजा है, वीर है। जगत्का इन्द्र परमेश्वर, सूर्य मालिकाका इन्द्र सूर्य. नरेन्द्र राजा, मानवेन्द्र वीर। ये गुण इनमें देखने चाहिये ॥ १ ॥

सब प्रजाजन, सब लोक लोककार प्रभुके साथ घूमते हैं इसलिये प्रभुको सबसे महान् कहते हैं। ॥ २ ॥

सब विबुधवीर ईश्वरका बल प्राप्त करके दुष्टोंके साथ युद्ध करके उन दुष्टोंको दूर करनेका यत्न करने लगे थे। तूने उनके साथ रहकर दिनरात शत्रुओंका पूर्ण नाश किया। परमेश्वर पर विश्वास रख कर उसका बल प्राप्त करके सब श्रेष्ठ पुरुषोंको उचित है कि वे दुष्टोंको दूर करें। ॥ ३ ॥

इस इन्द्रने युद्धचक्रके द्वारा अपने भक्तकी सहायता की। अकेले इन्द्रने सब देवोंका नाश करनेकी इच्छासे लडनेवाले असुरोंका पूर्ण नाश किया और सब शत्रुओंका वध किया। उस तरह वीरोंको करना उचित है ॥ ४-५ ॥

३२१ यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥ ६ ॥
३२२ किमादुतासि वृत्रहन् मघवन् मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥ ७ ॥
३२३ एतद् घेदुत वीर्यमिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद् दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥ ८ ॥
३२४ दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् । उषासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥
३२५ अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी । नि यत् सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥
३२६ एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या । ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

अर्थ—[३२१] (यत्र) जहां (उत) और हे इन्द्र! (मर्त्याय कं सूर्यं अरिणाः) मानवोंको सुख देनेके लिये सूर्यको प्रवर्तित किया तथा (एतशं शचीभिः प्र आवः) एतशको अपनी शक्तियोंसे विशेष रीतिसे सुरक्षित रखा ॥ ६ ॥

[३२२] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले! (मघवन्) धनवान् इन्द्र! तू (मन्यु - मत् - तमः) अत्यंत उत्साही अथवा शत्रुपर अत्यंत क्रोध करनेवाला (किं आत् उत असि) सचमुच है (अत्र अह) और यहीं तूने (दानुं आतिरः) दानवका नाश किया है ॥ ७ ॥

[३२३] हे इन्द्र (उत) और (यत् एतत्) जो यह तूने (वीर्यं पौंस्यं चकर्थ घेदुत) पराक्रम युक्त पौरुषका कर्म किया (दुः हनायुवं) मारनेकी इच्छा करनेवाली (दिवः दुहितरं स्त्रियं वधीः) द्युलोककी पुत्री स्त्री-रूपी उषाको तूने मारा ॥ ८ ॥

[३२४] हे इन्द्र! (महान्) तू बडा है। ऐसे तूने (दिवः महीयमानां दुहितरं) द्युलोककी महिमावाली पुत्री (उषसं) उषाके रथको (संपिणक् चित् घ) पीस दिया यह सत्य है ॥ ९ ॥

[३२५] (वृषा) बलवान् इन्द्रने (यत्) जब (सीं नि शिश्नथत्) उसके रथको तोड डाला तब (बिभ्युषी उषा) डरनेवाली उषा (संपिष्टात् अनसः) टूटे हुए रथसे (अह अपसरत्) दूर हो गयी ॥ १० ॥

[३२६] (अस्याः एतत् सुसंपिष्टं अनः) इस उषाका यह टूटा हुआ रथ (विपाशि आशये) विपाशा नदीके तीर पर पडा है। और (सीं परावतः ससार) वहांसे यह उषा दूर भाग कर चली गयी ॥ ११ ॥

भावार्थ— परमेश्वरने सब लोकोंको सुख मिले इसलिये सूर्यको निर्माण करके चलाया। इस तरह राजा अपनी प्रजाको सुख देनेके लिये विविध कार्य करें ॥ ६ ॥

वीर अपने घेरनेवाले शत्रुका नाश करे, धनका संग्रह अपने पास रखे, अत्यंत उत्साह धारण करे तथा शत्रुपर क्रोध करे और दुष्टोंका पूर्ण नाश करें ॥ ७ ॥

इन्द्र सदा पुरुषार्थके कर्म करता है। इस इन्द्रने द्युलोककी पुत्री उषाका रथ तोड डाला ॥ ८ ॥

द्युलोककी पुत्री उषा मर्यादासे बाहर जा रही थी, इसलिये इन्द्रने उस स्वतंत्र होनेवाली पुत्रीके रथको विनष्ट किया। पुत्रियोंको उचित है कि वे अपनी मर्यादामें रहें। अपनी मर्यादाका अतिक्रमण न करें ॥ ९ ॥

इन्द्रने उषाके रथको तोड डाला, इसका कारण यह था कि यह उषा सबेरे ही अपना रथ लेकर भ्रमण करनेके लिये जाने लगी थी। इस तरह स्वेच्छासे पुत्रियोंका भ्रमण योग्य नहीं है, इसलिये इन्द्रने उषाका रथ तोड दिया। इससे उषा डर गयी और वहांसे दूर गयी जब इन्द्रने उषाका रथ तोड दिया, वह तब सूर्यसे डर कर भाग गई ॥ १० ॥

यहां उषाके रथका तोडना आदि आलंकारिक वर्णन है। कुमारिकाएं मर्यादामें रहें, स्वेच्छाचारी न बनें। स्वेच्छासे भ्रमण करनेपर कुमारिकाएं दण्डनीय होती हैं यह बतानेके लिये यह अलंकारिक वर्णन है। सूर्य इन्द्र है, उसके आते ही उषाका स्वैरसंचार बंद होता है। इस पर यह अलंकार रचा है ॥ ११ ॥

३२७ उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि । परि ष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥
३२८ उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् । पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥
३२९ उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥ १४ ॥
३३० उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५ ॥

अर्थ— [३२७] हे इन्द्र ! (उत) और (वि-बाल्यं वितस्थानां सिन्धुं) पूर्ण भरपूर भरी हुई वेगसे बहनेवाली सिन्धुनदीको इस (क्षमि अधि) पृथ्वीपर (मायया परिष्ठाः) अपनी शक्तिसे स्थिर किया ॥ १२ ॥

[३२८] (उत) और, हे इन्द्र ! (धृष्णु-या) शत्रुका घर्षण करनेवाले तूने (यत् अस्य शुष्णस्य पुरः संपिणक्) जब इस शोषक शत्रुके नगरोंको चूर्ण कर दिया, तब उसका (वेदनं अभि प्र मृक्षः) धन भी तूने प्राप्त किया ॥ १३ ॥

१ 'शुष्णः'— शोषण करनेवाला शत्रु, जो प्रजाका शोषण करता है।

२ 'वेदनं'— धन, ऐश्वर्य, खजाना, धनकोश ।

[३२९] इन्द्र ! (उत) और तूने (दासं कौलितरं शम्बरं) विनाश करनेवाले कुलितर पुत्र शंबरको बहुत (पर्वतात् अधि) बडे पर्वतके ऊपरसे (अवाहन्) नीचे पटक कर मार दिया ॥ १४ ॥

[३३०] हे इन्द्र ! (उत) और तूने (प्रधीन् इव) चक्रके अरोंकी तरह जुडकर रहनेवाले (वर्चिनः दासस्य) तेजस्वी दासके अर्थात् विनाशक शत्रुके (पंच शता सहस्राणि) पांच लाख सैनिकोंको (अधि अवधीः) मार दिया ॥ १५ ॥

भावार्थ— सिन्धु नदी, अथवा कोई एक नदी जो पानीसे भरपूर भरनेके कारण वेगसे बह रही थी, उस नदीको अपनी आयोजनासे इन्द्रने स्थिर किया और बाढका भय दूर किया। राजा भी अपने राज्यकी नदियोंको काबूमें रखे और बाढ आनेपर भी नदियां नाश न करें ऐसा प्रबंध करे ॥ १२ ॥

शोषक शत्रुके नगर तोडो और उसके धनकोश अपने कब्जेमें लेलो तथा इस तरह शत्रुको निर्बल करो ॥ १३ ॥

'शं-वर' यह मेघका नाम है। 'शं,' कल्याण करनेवाले जलको जो ऊपर ले जाता है और वहां संग्रहित करता है वह 'शं-वर' मेघ है। यह 'दास' है, 'दास' का अर्थ (दस् उपक्षये) क्षय करनेवाला, विनाश कर्ता। कष्ट देनेवाला। मेघ आकाशमें आनेसे नीचेके प्रदेशमें गर्मी बढती है यही मेघके क्लेश हैं। इसलिये मेघको तोडकर वृष्टि करनी आवश्यक है। यह मेघ 'कौलि- तर' है, अधिक कुलीन है 'जल' अर्थात् उदक 'कुलीन' है, (कु) पृथ्वीमें (लीन) विलीन होता है. इस कारण जल 'कु-लीन' है। 'कौलि-तर' का अर्थ (कु) भूमिमें लीन विलीन होनेमें (तर) अधिक शीघ्र विलीन होनेवाला। ऐसा 'शं' कल्याण करनेवाला जल है उसको (वरं) ऊपर लेजाता है। यह मेघ है। केवल मेघ ही रहे और वृष्टि नहीं हुई तो बडे कष्ट होते हैं। इसलिये इन्द्र मेघको तोडता है और वृष्टी करता है। यह कथा या वर्णन आलंकारिक है ॥ १४ ॥

'प्रधी' चक्रके चारों ओर रहनेवाले जैसे अरे जुडे रहते हैं। वैसे जुडे हुए रहकर लडनेवाले (पञ्च शता सहस्राणि) पांच सौ हजार अर्थात पांच लाख अथवा (सहस्राणि पंच शता) एक हजार और पांच सौ अथवा (पञ्च सहस्राणि शता) पांच हजार और सौ शत्रुकी इतनी सैन्य संख्या युद्धमें इन्द्रने मारी थी। 'वर्चिनः दासस्य' वर्चका अर्थ तेज और बल है। यह दास अर्थात शत्रु तेजस्वी था और बलवान् भी था ॥ १५ ॥

३३१ उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥ १६ ॥
३३२ उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥ १७ ॥
३३३ उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥ १८ ॥
३३४ अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत् ते सुम्नमष्टवे ॥ १९ ॥
३३५ शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥ २० ॥
३३६ अस्वापयद् दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः । दासानामिन्द्रो मायया ॥ २१ ॥
३३७ स घेदुतासि वृत्रहन् त्समान इन्द्र गोपतिः । यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥ २२ ॥

अर्थ— [३३१] (उत) और (शतक्रतुः इन्द्रः) सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रने (त्यं) उस (अग्रुवः पुत्रं) अग्रगामी के पुत्र (परावृक्तं) परावृक्तको (उक्थेषु आभजत्) स्तोत्र पाठोंके समयमें उच्चार करने योग्य करके मान लिया है ॥ १६ ॥

[३३२] (उत त्या) और वे दोनों (अस्नातारा) तैरना न जाननेवाले (तुर्वशा-यदू) तुर्वश और यदूको (शचीपतिः विद्वान् इन्द्रः) शचीके पति, ज्ञानी इन्द्रने (अपारयत्) पार किया ॥ १७ ॥

[३३३] हे इन्द्र ! (उत) और (त्या आर्या) उन आर्य राजाओंने (सरयोः पारतः) सरयूके पार रहनेवाले (अर्णा-चित्ररथा) अर्ण और चित्ररथको (सद्यः अवधीः) तत्काल मार दिया ॥ १८ ॥

[३३४] हे (वृत्र-हन्) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र ! तूने (जहिता) समाजके द्वारा त्यागे हुए (अन्धं श्रोणं च) अन्धे और पङ्गु (द्वा) इन दोनोंको (अनुनयः) अनुकूल मार्गसे चलाया। (तत् ते सुम्नं) यह तेरा दिया हुआ सुख (अष्टवे न) हटानेके लिये कोई समर्थ नहीं होता ॥ १९ ॥

[३३५] (इन्द्रः) इन्द्रने (अश्मन्मयीनां शतं पुरां) शत्रुके सौ किलोंवाले नगरोंको (दाशुषे दिवोदासाय) दातादिवो दासके लिये (वि आस्यत्) दे दिया ॥ २० ॥

[३३६] (इन्द्रः) इन्द्रने (मायया) अपनी शक्तिसे (दासानां त्रिंशतं सहस्रा) दुष्ट विनाशकारियोंके तीस सहस्र वीरोंको (हथैः दभीतये अस्वापयत्) हथियारोंसे दभीतिका हित करनेके लिये मारा, सुला दिया ॥ २१ ॥

[३३७] (उत) और हे इन्द्र ! (यः ता विश्वानि) जो तू उन सब शत्रुओंको (चिच्युषे) हिला देता है। हे (वृत्रहन्) वृत्रका वध करनेवाले इन्द्र ! (गोपतिः सः) गौओंका पालन करनेवाला वह तू (समान घ) सबके साथ समान बर्ताव करता है ॥ २२ ॥

भावार्थ—शत-क्रतुः—सौ यज्ञ करनेवाला इन्द्र। सैंकडों उत्तम कर्म करनेवाला वीर, अग्रुवः—अग्र भागमें जानेकी इच्छा करनेवाली स्त्री। अच्छे कार्यमें पीछे न रहनेवाली स्त्री। परावृक्त—दुष्ट कर्मसे निवृत्त होकर सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेवाला वीर। ऐसे वीरोंका यज्ञोंमें सत्कार करना चाहिये। इनकी प्रशंसा होनी चाहिये ॥ १६ ॥

पानीमें उतर कर तैर कर जो स्नान नहीं कर सकते, ऐसे तुर्वश और यदूको इन्द्रने जलसे पार किया ॥ १७ ॥

वे आर्यवंशके होनेपर भी आचारभ्रष्ट हो चुके थे इसलिये वधके योग्य समझे गये। जो राजा आर्यवंशीय होने पर भी आचारसे भ्रष्ट हो जाएं, उन्हें मारना ही चाहिए ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! तूने समाजके द्वारा त्यागे हुए अन्धे और पंगुजनोंको भी उत्तम मार्गसे चलाया। तू जिसे सुख प्रदान करता है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

शत्रुका नाश करके शत्रुके सौ किले अपने अनुयायीको दिये ॥ २० ॥

दभीतिकी सहायता करनेके लिये इन्द्र गया और शत्रुके सहस्रों वीरोंका वध करके दभीतिको निर्भय किया ॥ २१ ॥

शत्रुका नाश करना और समान बर्ताव करना ये दो गुण इस मंत्रमें वर्णन किये हैं ॥ २२ ॥

३३८ उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् । अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥ २३ ॥
३३९ वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्यमा ।
वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥ २४ ॥

[३१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- गायत्री, ३ पादनिचृत् ।]

३४० कया नश्चित्र आ भुव दूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥
३४१ कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥
३४२ अभी षु णः सखीना मविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३ ॥

अर्थ— [३३८] (उत) और हे इन्द्र! (यत् पौंस्यं) जो पुरुषार्थ और जो (इन्द्रियं) इन्द्रियविषयक सामर्थ्य (नूनं करिष्य) तूने प्रकट किया (अद्य नकिः) आज कोई भी (तत् आमिनत्) उसका निराकरण नहीं कर सकता ॥ २३ ॥

[३३९] हे (आ-दुरे) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (अर्यमा देवः) शत्रुओंका नियमन करनेवाला देव (ते वामं वामं ददातु) तेरे पासका उत्तम धन हमें देवे ! (पूषा) पोषक देव (वामं) उत्तम धन देवे ! (भगः देवः वामं) भाग्य युक्त देव उत्तम धन हमें देवे तथा (करूळती) कारीगरोंको धन देनेवाला हमें धन देवे ॥ २४ ॥

१ आ-दुरः (आ-दुरिः) सब शत्रुओंको दूर करनेवाला इन्द्र । अर्यमा (अरीणां नियमयिन्ता) शत्रुओंका नियमन करनेवाला । (अर्यमिमीते) श्रेष्ठ कौन है, सीधा कौन है और दुष्ट कौन है इसका निर्णय देनेवाला ।

[३१]

[३४०] (सदावृधः चित्रः सखा) सदा बढनेवाला तथा विलक्षण सामर्थ्यवान् मित्र इन्द्र (कया ऊती) किस संरक्षणके साधनके साथ तथा (कया वृता शचिष्ठया) किस वरणीय शक्तिके साथ (नः आभुवत्) हमारी तरफ आएगा ? ॥ १ ॥

१ सदावृधः चित्रः सखा— सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला विलक्षण शक्तिशाली मित्र हो ।

२ ऊती शचिष्ठया वृता नः आभुवत्— संरक्षणके सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारे पास आजाय ।

[३४१] (सत्यः मदानां मंहिष्ठः कः अन्धसः) अविनाशी तथा आनन्द देनेवाले पदार्थोंमें सबसे अधिक पूज्य कौनसा अन्न (त्वा) तुझे (दृळ्हा वसु चित् आरुजे) शत्रुओंके पास सुदृढ रहनेवाले धनोंको प्राप्त करनेके लिए (मत्सत्) आनन्दित करेगा ? ॥ २ ॥

[३४२] (जरितॄणां सखीनां अविता) स्तुति करनेवाले मित्रोंका रक्षक तू (शतं ऊतिभिः) सैंकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (नः अभि सु भवासि) हमारे पास आ ॥ ३ ॥

भावार्थ— इन्द्रने जो भी पुरुषार्थ और इन्द्रियोंका सामर्थ्य प्रकट किया, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ २३ ॥

पूषा— पोषक देव, पोषण करनेवाला । भगः— भाग्य जिसके पास है, धनका अधिकारी करूळती— (करुः-दती= कृतदंतः) जिसके दांत कटे हैं । (करुः कारुः, दती दाता) कारीगरोंको योग्य धन देनेवाला । इन्द्रका धन ये देव हमें देवें । यह प्रार्थना इस मंत्रमें है ॥ २४ ॥

मित्र सदा ही विलक्षण सामर्थ्यसे युक्त और शक्तिशाली हो । उसकी शक्ति वरण करने योग्य अर्थात् सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला हो ॥ १ ॥

अन्नोंमेंसे कौनसा अन्न तुझे शत्रुके पास सुदृढ रूपसे रखे हुए धनोंको प्राप्त करनेके लिये उत्साहित करेगा ? जो ऐसा करे वही अन्न तुझे सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

तू संरक्षण करनेकी इच्छासे सैंकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ कर रह ॥ ३ ॥

३४३	अभी न आ ववृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः	नियुद्भिश्चर्षणीनाम्	॥ ४ ॥
३४४	प्रवता हि क्रतूना मा हा पदेव गच्छसि	अभक्षि सूर्ये सचा	॥ ५ ॥
३४५	सं यत् त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे	अध त्वे अध सूर्ये	॥ ६ ॥
३४६	उत स्मा हि त्वामाहुरि न्मघवानं शचीपते	दातारमविदीधयुम्	॥ ७ ॥
३४७	उत स्मा सद्य इत् परि शशमानाय सुन्वते	पुरू चिन्मंहसे वसु	॥ ८ ॥
३४८	नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः	न च्यौत्नानि करिष्यतः	॥ ९ ॥
३४९	अस्माँ अवन्तु ते शत मस्मान् त्सहस्रमूतयः	अस्मान् विश्वा अभिष्टयः	॥ १० ॥

अर्थ— [३४३] (वृत्तं चक्रं अर्वतः न) जिस प्रकार गाडीका गोल पहिया घोडेके पीछे चलता है उसी प्रकार [तेरे पीछे चलनेवाले] (नः चर्षणीनां) हम मनुष्योंकी (अभि) तरफ तू (नियुद्भिः आ ववृत्स्व) घोडोंसे आ ॥ ४ ॥

[३४४] हे इन्द्र ! (क्रतूनां प्रवता हि) तू यज्ञके स्थानोंको (पदा इव गच्छसि) अपने पांवसे जानेके समान जाता है । मैं (सूर्ये सचा) सूर्यके साथ तेरी (अभक्षि) पूजा करता हूँ ॥ ५ ॥

[३४५] हे इन्द्र ! (यत् मन्यवः दधन्विरे) जब हम तेरी स्तुति करते हैं, तो वे स्तुतियां (चक्राणि ते सं) चक्रोंके समान तेरी ओर जाती है । (अध त्वे) पहले तेरे पास जाती हैं, (अध सूर्ये) फिर बादमें सूर्यके पास ॥ ६ ॥

[३४६] हे (शचीपते) शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! (मघवानं दातारं) ऐश्वर्यशाली तथा धन देनेवाले (त्वां) तुझे लोग (अविदीधयुं आहुः इत्) तेजस्वी कहते हैं ॥ ७ ॥

[३४७] हे इन्द्र ! तू (शशमानाय सुन्वते) स्तुति करनेवाले और सोम तैय्यार करनेवालेके लिए (पुरूचित् वसु) बहुतसे धनको भी (सद्यः इत्) शीघ्रही (परिमंहसे) चारों ओरसे देता है ॥ ८ ॥

[३४८] हे इन्द्र ! (आमुरः) हिंसक शत्रु (ते शतं चन राधः) तेरे सैंकडों तरहके धनको (नहि वरन्ते स्म) नहीं पासकते, तथा (करिष्यतः) शत्रुओंकी हिंसा करते हुए तेरे (च्यौत्नानि न) बलोंको रोक नहीं सकते ॥ ९ ॥

[३४९] हे इन्द्र ! (ते शतं ऊतयः अस्मान् अवन्तु) तेरे सैकडों रक्षाके साधन हमारी रक्षा करें, तथा (सहस्रं ऊतयः अस्मान्) हजारों रक्षणके साधन हमारी रक्षा करें, तथा (विश्वाः अभिष्टयः अस्मान्) सब प्रकारकी इच्छायें हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

भावार्थ— जिस प्रकार गाडीका पहिया घोडेके पीछे पीछे चलता है, उसी तरह, हे इन्द्र ! तेरे पीछे चलनेवाले हमारी ओर तू आ ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तू यज्ञोंसे इतना प्रेम करता है कि तू इन यज्ञोंमें पैरोंसे ही जाता है । मैं सूर्यके साथ तेरी पूजा करता हूं ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! जब हम तेरी स्तुति करते हैं, तब वे तेरी स्तुतियां तेरी तरफ जाती हैं । पहले वे स्तुतियाँ तेरे पास जाती हैं, फिर सूर्यके पास ॥ ६ ॥

हे शक्तियोंके स्वामी इन्द्र ! तू ऐश्वर्यशाली और धनको देनेवाला है । तुझे सभी प्राणी तेजस्वी कहते हैं ॥ ७ ॥

तू स्तुति करनेवाले और सोम यज्ञ करनेवालेके लिए बहुत सारा धन बहुत शीघ्र देता है ॥ ८ ॥

अनेकों हिंसक शत्रु मिलकर भी इस इन्द्रके सैंकडों तरहके धन नहीं पासकते और जब वह इन्द्र हिंसक शत्रुओंका संहार करता है, तब शत्रु संगठित होकर भी उसके बलको नहीं रोक सकते । उसका मुकाबला नहीं कर सकते ॥ ९ ॥

हे इन्द्र ! तेरे पास सैकडों और हजारों तरहके जो रक्षाके साधन हैं, वे हमारी रक्षा करें और सब प्रकारकी इच्छायें हमारी रक्षा करें ॥ १० ॥

३५० अस्माँ इह वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥ ११ ॥
३५१ अस्माँ अविड्ढि विश्वहे-न्द्र राया परीणसा । अस्मान् विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥
३५२ अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः । नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥
३५३ अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥ १४ ॥
३५४ अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥ १५ ॥

[३२]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्रः, २३-२४ इन्द्राश्वौ । छन्दः— गायत्री ।]

३५५ आ तू न इन्द्र वृत्रह-न्नस्माकमर्धमा गहि । महान् महीभिरूतिभिः ॥ १ ॥
३५६ भृमिश्चिद् घासि तूतुजि-रा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥ २ ॥

अर्थ— [३५०] हे इन्द्र ! (इह) यहां (अस्मान्) हमें (सख्याय स्वस्तये) मित्रता तथा कल्याण करनेके लिए और (महान् दिवित्मते राये) महान् तेजस्वी धन देनेके लिए (वृणीष्व) स्वीकार कर ॥ ११ ॥

[३५१] हे इन्द्र ! तू (परीणसा राया) महान् ऐश्वर्यसे (विश्वहा) सब दिन (अस्मान् अविड्ढि) हमारी रक्षा कर । तथा (विश्वाभिः ऊतिभिः अस्मान्) सभी संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ १२ ॥

[३५२] (अस्ता इव) जिस प्रकार लोग घर खोलते हैं उसी प्रकार तू हे इन्द्र ! अपने (नवाभिः ऊतिभिः) नये संरक्षणोंके साधनोंके द्वारा (अस्मभ्यं) हमारे लिए (तान् गोमतः व्रजान्) उन गायोंके बाडोंको (अपावृधि) खोल दे ॥ १३ ॥

[३५३] हे इन्द्र ! (अस्माकं) हमारा (धृष्णुया द्युमान्, अनपच्युतः) शत्रुओंका विनाश करनेवाला, तेजस्वी-विनाश रहित (गव्युः अश्वयुः) गायों तथा घोडोंको प्राप्त करानेवाला (रथः) रथ (ईयते) आता है ॥ १४ ॥

[३५४] हे (सूर्य) सबके प्रेरक इन्द्र ! तूने (वर्षिष्ठं द्यां उपरि इव) जिस प्रकार अत्यधिक तेजस्वी द्युलोकको ऊपर स्थापित किया है, उसीतरह तू (देवेषु) देवोंमें (अस्माकं श्रवः उत्तमं कृधि) हमारे यशको उत्तम कर ॥ १५ ॥

[३२]

[३५५] हे (वृत्रहन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (महान्) महान् तू (महीभिः ऊतिभिः) बडे बडे संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (नः अस्माकं अर्धं आगहि) हमारे पास आ ॥ १ ॥

[३५६] हे इन्द्र ! तू (भृमिः चित्) पुरुषार्थी है और (तूतुजि असि) हमें बढानेवाला है । हे (चित्र) विलक्षण शक्तिमान् इन्द्र ! तू (चित्रणीषु) अनेक पुरुषार्थके काम करनेवालोंको (ऊतये) संरक्षण करनेके लिए (चित्रं कृणोषि) अनेक तरहके सामर्थ्य देता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र हमें अपनी मित्रताकी छायामें रख और हमारा कल्याण कर । महान् और तेजस्वी धन देनेके लिए हमें तू अपना भक्त बना ले ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! तू महान् ऐश्वर्यसे हमेशा हमारी रक्षा कर, तथा सभी संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा कर ॥ १२ ॥

जिस प्रकार लोग अपने घरके दरवाजोंको खोलते हैं, उसी तरह, हे इन्द्र ! तू अपने नये संरक्षणके साधनोंके द्वारा हमारे लिए उन गायोंके बाडोंको खोल दे ॥ १३ ॥

हे इन्द्र ! शत्रुओंका विनाश करनेवाला, तेजस्वी, विनाश रहित तथा अनेक तरहके पशुओंको प्राप्त करानेवाला रथ हमारी तरफ आवे ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! तूने जिसप्रकार अत्यधिक तेजस्वी द्युलोकको सबसे ऊपर स्थापित किया है, उसीतरह विद्वानोंमें हमारे यशको सबसे श्रेष्ठ और ऊंचा कर ॥ १५ ॥

हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! महान् तू बडे बडे संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ १ ॥

अनेक उत्तम कर्म करनेवाली प्रजामें अपने संरक्षण करनेके लिए विलक्षण सामर्थ्य उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

३५७ दुभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा । सखिभिर्ये त्वे सचा ॥ ३ ॥
३५८ वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ॥ ४ ॥
३५९ स नश्चित्राभिरद्रिवो ऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ॥ ५ ॥
३६० भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥ ६ ॥
३६१ त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥ ७ ॥
३६२ न त्वा वरन्ते अन्यथा यद् दित्ससि स्तुतो मघम् । स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥ ८ ॥
३६३ अभि त्वा गोतमा गिरा ऽनूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥ ९ ॥

अर्थ—[३५७] हे इन्द्र! (ये त्वे सचा) जो तेरे साथ रहते हैं, ऐसे (दभ्रेभिः सखिभिः) थोडेसे मित्रोंकी सहायतासे तू (शशीयांसं व्राधन्तं) उछलनेवाले बडे शत्रुको (चित्) भी (ओजसा हंसि) मार देता है ॥३॥

[३५८] हे इन्द्र! (वयं त्वे सचा) हम तेरे साथ हैं, (वयं त्वा अभि नोनुमः) हम तेरी स्तुति करते हैं। तू (अस्मान् इत् अस्मान् उत् अव) हमारी ही अर्थात् केवल हमारी ही रक्षा कर ॥ ४ ॥

[३५९] हे (अद्रि-वः) शस्त्रोंसे युक्त इन्द्र! (सः) वह तू (चित्राभिः अनवद्याभिः अन-अधृष्टाभिः ऊतिभिः) अनेक तरहके प्रशंसनीय तथा शत्रुओंके द्वारा न हराये जाने योग्य संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर (नः आगहि) हमारे पास आ ॥ ५ ॥

[३६०] हे इन्द्र! (त्वावतः गोमतः सखायः) तेरे जैसे गायोंवालेके मित्र होकर हम (घृष्वये वाजाय) शत्रुका पराजय करनेवाले बलकी प्राप्तिके (युजः भूयामः) योग्य हों ॥ ६ ॥

(३६१) हे इन्द्र! (गोमतः वाजस्य) गायोंसे उत्पन्न अन्न पर (त्वं एकः ईशिषे) तू अकेला ही स्वामित्व करता है। (सः) वह तू (महीं इषं) उस महान् अन्नको (नः यन्धि) हमें दे ॥ ७ ॥

[३६२] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुत्य इन्द्र! (स्तुतः) प्रशंसित होकर तू (यद्) जब (स्तोतृभ्यः मघं दित्ससि) स्तोताओंको धन देना चाहता है, तब (त्वा) तुझे कोई भी (अन्यथा न वरन्ते) किसी भी प्रकार रोक नहीं सकते ॥ ८ ॥

[३६३] हे इन्द्र! (गोतमाः) गोतम तुझे (गिरा अवीवृधन्त) स्तुतिसे बढाते हैं। तथा (घृष्वये वाजाय दावने) महान् अन्नके दानके लिए तेरी (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— इन्द्र! तू हमेशा तेरे साथ रहनेवाले थोडेसे भी मित्रोंकी सहायतासे बडे बडे पराक्रमी शत्रुओंको भी मार देता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! हम तेरे साथ हैं, और हम तेरी स्तुति करते हैं, इसलिए तू हमारी ही केवल हमारी ही रक्षा कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! शस्त्रोंसे युक्त होकर तू अनेक तरहके प्रशंसनीय और शत्रुओंके लिए अजेय संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! तू गायोंका स्वामी है, अतः हम तेरे मित्र होकर शत्रुको हरानेवाले बलकी प्राप्तिके लिए योग्य हों ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! गायोंसे उत्पन्न होनेवाले अन्न पर तू अकेला ही स्वामित्व करता है। उस महान अन्नको तू हमें प्रदान कर ॥ ७ ॥

हे प्रशंसाके योग्य इन्द्र! प्रशंसित होकर तू जब स्तोताओंको धन देना चाहता है, तब तुझे कोई किसी भी प्रकार नहीं रोक सकता ॥ ८ ॥

हे इन्द्र! गोतम तुझे स्तुतिसे बढाते हैं, तथा महान् अन्नके दानके लिए तेरी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥

×

३६४ प्र ते वोचाम वीर्या३ या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥ १० ॥
३६५ ता ते गृणन्ति वेधसो यानि चकर्थ पौंस्या । सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ११ ॥
३६६ अवीवृधन्त गोतमा इन्द्र त्वे स्तोमवाहसः । एषु धा वीरवद् यशः ॥ १२ ॥
३६७ यच्चिद्धि शश्वतामसी-न्द्र साधारणस्त्वम् । तं त्वा वयं हवामहे ॥ १३ ॥
३६८ अर्वाचीनो वसो भवा-ऽस्मे सु मत्स्वान्धसः । सोमानामिन्द्र सोमपाः ॥ १४ ॥
३६९ अस्माकं त्वा मतीना-मा स्तोम इन्द्र यच्छतु । अर्वागा वर्तया हरी ॥ १५ ॥
३७० पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः । वधूयुरिव योषणाम् ॥ १६ ॥

अर्थ— [३६४] हे इन्द्र ! (मन्दसानः) आनन्दित होते हुए तूने (अभीत्य) आक्रमण करके (दासीः याः पुरः आरुजः) दासके जो नगरोंको तोड दिया, हम (ते वीर्या वोचाम) तेरे उन पराक्रमोंका वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

[३६५] हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! तूने (यानि पौंस्या चकर्थ) जिन पराक्रमोंको किया है, (ते ता) तेरे उन पराक्रमोंकी (वेधसः गृणन्ति) ज्ञानी प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

[३६६] हे इन्द्र ! ये (स्तोमवाहसः गोतमाः) स्तुति करनेवाले गौतम (त्वे अवीवृधन्त) तेरा यश बढाते हैं अतः तू (एषु वीरवत् यशः आ धाः) इनमें पुत्रोंसे युक्त यशको स्थापित कर ॥ १२ ॥

[३६७] (यत् चित् हि) जिस कारण हे इन्द्र ! (शश्वतां) बहुतसे सज्जनोंके लिए (त्वं साधारणः असि) तू साधारण परिचित हो है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझे ही सहायार्थ (वयं हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ १३ ॥

[३६८] हे (सोम-पाः वसो इन्द्र) सोमको पीनेवाले तथा सबको बसानेवाले इन्द्र ! तू (अर्वाचीनः भव) हमारी तरफ आ और (सोमानां अन्धसः मत्स्व) सोमरूपी अन्नसे आनन्दित हो ॥ १४ ॥

[३६९] हे इन्द्र ! (मतीनां अस्माकं) स्तुति करनेवाले हमारा (स्तोमः) स्तोत्र (त्वा आ यच्छतु) तुझे इधर ले आवे तथा तू भी (हरी) अपने घोडोंको (अर्वाक् आ वर्तय) हमारी तरफ प्रेरित कर ॥ १५ ॥

[३७०] हे इन्द्र ! तू (नः पुरोळाशं घस) हमारे पुरोडाशको खा। तथा (वधूयुः योषणां इव) जिसप्रकार स्त्रीकी कामना करनेवाला स्त्रीका सेवन करता है, उसीप्रकार तू (नः गिरः जोषयासे) हमारी स्तुतियोंका सेवन कर ॥१६॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! आनन्दित होते हुए तूने आक्रमण करके जो दासासुर के नगरोंको तोड दिया, उन तेरे पराक्रमोंका हम वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! तूने जिन पराक्रमोंको प्रकट किया है, उन पराक्रमोंकी ज्ञानी प्रशंसा करते हैं ॥ ११ ॥

इन स्तोताओंमें पुत्रोंवाले यशको स्थापित कर। मनुष्योंको ऐसे पुत्र प्राप्त करने चाहिए, जो अपने पिताओंको यशस्वी बना सकें ॥ १२ ॥

हे इन्द्र ! प्रायः सभी उत्तम जन तुझे अच्छी तरह जानते हैं, इसलिए वे तुझे ही अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं ॥ १३ ॥

हे सोमको पीनेवाले इन्द्र ! तू हमारी तरफ आ और इस सोमरूपी अन्नसे आनन्दित हो ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! हमारी स्तुतियोंसे आकर्षित होकर तू अपने घोडोंको हमारी तरफ कर अर्थात् तू हमारी तरफ आ ॥ १५ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारे पुरोडाशको खा और हमारी स्तुतियोंका तू सेवन कर, हमारी स्तुतियोंको तू सुन ॥ १६ ॥

३७१ सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥ १७ ॥
३७२ सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि । अस्मत्रा राध एतु ते ॥ १८ ॥
३७३ दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥ १९ ॥
३७४ भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर । भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥ २० ॥
३७५ भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् । आ नो भजस्व राधसि ॥ २१ ॥
३७६ प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् । माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥ २२ ॥
३७७ कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥ २३ ॥

अर्थ— [३७१] हम (इन्द्रं) इन्द्रसे (सहस्रं युक्तानां व्यतीनां) हजारों योग्य शिक्षित तथा शत्रुओंको हरानेवाले घोडोंको तथा (सोमस्य शतं खार्यः) सोमके सौ खारियोंको (ईमहे) मांगते हैं ॥ १७ ॥

१ खारी— एक प्राचीन कालका माप, जिसमें १६ द्रोण होते हैं । एक द्रोण=करीब एक बाल्टी ।

[३७२] हे इन्द्र ! हम (ते शता सहस्रा गवां) तेरी सैंकडों व हजारों गायोंको (आच्यावयामसि) अपनी तरफ प्रेरित करते हैं, (ते राधः अस्मत्रा एतु) तेरा ऐश्वर्य हमारी तरफ आवे ॥ १८ ॥

[३७३] हे इन्द्र ! हम (ते दश हिरण्यानां कलशानां) तेरे दस सोनेसे भरे कलशोंको (अधीमहि) धारण करते हैं । हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (भूरिदा असि) बहुत दान देनेवाला है ॥ १९ ॥

[३७४] हे (भूरि-दा) बहुत दान देनेवाले इन्द्र ! तू (नः भूरि देहि) हमें बहुत अधिक धन दे । (दभ्रं मा) थोडा नहीं, (भूरि आभर) बहुत ज्यादा धन दे, (घ) क्योंकि हे इन्द्र ! तू (भूरि दित्ससि) बहुत अधिक देना चाहता है ॥ १० ॥

[३७५] हे (वृत्रहन् शूर) वृत्रको मारनेवाले तथा शूर इन्द्र ! तू (पुरुत्रा) बहुत लोगोंमें (भूरिदा शूरः श्रुतः असि) बहुत देनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध है । तू (नः राधसि भजस्व) तू हमें ऐश्वर्यमें स्थापित कर ॥ २१ ॥

[३७६] हे (विचक्षणः, गोषणः, नपात्) बुद्धिमान्, गायोंके पालन करनेवाले तथा विनाश न करनेवाले इन्द्र ! मैं (ते बभ्रू शंसामि) तेरे भूरे रंगवाले घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ । तू (आभ्यां गाः मा अनु शिश्रथः) इनसे हमारी गायोंको मत मार ॥ २२ ॥

[३७७] (विद्रधे नव अर्भके द्रुपदे) मजबूत नये और छोटे लडकीके टुकडेपर अंकित (कनीनका इव) पुतली जिसप्रकार शोभित होती है, उसी तरह (बभ्रू यामेषु शोभते) तेरे भूरे रंगके घोडे यज्ञोंमें शोभित होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू हमें हजारों योग्य शिक्षित घोडोंको तथा बहुत मात्रामें सोमको प्रदान कर ॥ १७ ॥

हे इन्द्र ! हम तेरी सैंकडों और हजारों गायोंको मांगते हैं तेरा ऐश्वर्य हमारी तरफ आवे ॥ १८ ॥

हे इन्द्र ! हम तुझसे अत्यधिक धन प्राप्त करें । तू बहुत दान देनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध ही है ॥ १९ ॥

हे इन्द्र ! तू अत्यधिक दान देनेवाला है, इसलिए तू हमें बहुत ज्यादा धन दे । हमें कम धन मत दे ॥ २० ॥

हे वृत्रको मारनेवाले शूरवीर इन्द्र ! तू अत्यधिक धन देनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध है । तू हमें ऐश्वर्यमें स्थापित कर ॥ २१ ॥

हे बुद्धिमान्, गायोंके पालन करनेवाले तथा विनाश न करनेवाले इन्द्र ! मैं तेरे घोडोंकी प्रशंसा करता हूँ । तू हमारी गायोंको मत मार ॥ २२ ॥

जिसप्रकार मजबूत लकडीके टुकडेपर अंकित पुतली जिसतरह सुन्दर लगती है, उसीतरह इन्द्रके घोडे यज्ञमें शोभा देते हैं ॥ २३ ॥

३७८ अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥ २४ ॥

[३३]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

३७९ प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥ १ ॥

३८० यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद् देवानामुप सख्यमायन् धीरासः पुष्टिमवहन् मनायै ॥ २ ॥

३८१ पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [३७८] हे इन्द्र! (यामेषु) यज्ञोंमें शोभित होनेवाले तेरे (अस्रिधा बभ्रू) अहिंसक घोडे (उस्रयाम्णे अरं) बैलोंके रथ पर जानेवाले मेरे लिए कल्याण करनेवाले हों (अनुस्रयाम्णे) पैरोंसे ही जानेवाले मेरे लिए (अरं) कल्याण करनेवाले हों ॥ २४ ॥

[३३]

[३७९] (ये वातजूताः अपसः) जो वायुके समान वेगवान् और कर्तृत्वशाली ऋभु अपने (तरणिभिः एवैः) चालाक और होशियार घोडोंसे (द्यां सद्य परि बभूवुः) द्युलोकको शीघ्र ही व्याप्त करते हैं, उन (ऋभुभ्यः) ऋभुओंके लिए (वाचं) स्तुतियोंको (दूतं इव इष्ये) दूतके समान प्रेरित करता हूँ और उनसे (उपस्तिरे) सोमको उत्तम बनानेके लिए (श्वैतरीं धेनुं ईळे) दुधारु गायको मांगता हूँ ॥ १ ॥

[३८०] (यदा) जब (ऋभवः) ऋभुओंने (पितृभ्यां) माता पिताओंके (परिविष्टी) सेवा करके (वेषणा) अपने महत्त्व और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मोंसे स्वयंको (अरं अक्रन्) सामर्थ्यशाली बनाया (आत् इत्) उसके बाद ही (देवानां सख्यं उप आयन्) देवोंकी मित्रताको प्राप्त किया । देवोंकी मैत्री प्राप्त करके (धीरासः) उन बुद्धिमान् ऋभुओंने (मनायै पुष्टिं अवहन्) अपने मनको शक्तिशाली बनाया ॥ २ ॥

२ ऋभवः पितृभ्यां परिविष्टी दंसनाभिः अरं अक्रन्— ऋभुओंने अपने माता पिताकी सेवा और उत्तम कर्मोंको करके स्वयंको सामर्थ्यशाली बनाया ।

२ देवानां सख्यं उप आयन् मनायै पुष्टिं अवहन्— देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया ।

[३८१] (ये) जिन ऋभुओंने (यूपा इव) पडे हुए खम्भेके समान (जरणा शयाना पितरा) जीर्ण होकर पडे हुए मातापिताको (पुनः) फिरसे (सना युवाना चक्रुः) हमेशाके लिए तरुण बना दिया, (ते) वे (वाजः विभ्वा ऋभुः) वाज विभ्वा और ऋभु (इन्द्रवन्तः) इन्द्रकी कृपासे युक्त होकर तथा (मधुप्सरसः) मधुर सोमका भक्षण करनेवाले होकर (नः यज्ञं अवन्तु) हमारे यज्ञकी रक्षा करें ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरे अहिंसक घोडे बैलोंके रथ पर तथा पैदल ही जानेवाले मेरा कल्याण करनेवाले हों ॥ २४ ॥

ये ऋभु वेगवान् और उत्तम कार्य करनेवाले हैं । इनके घोडे द्युलोकको शीघ्र ही व्याप लेते हैं । ऐसे ऋभुओंके लिए मैं अपने स्तोत्रोंको उसीतरह भेजता हूँ कि जिसतरह स्वामी अपने दूत भेजते हैं । मैं उन ऋभुओंसे सोमयज्ञ करनेके लिए दुधारु गायें मांगता हूँ ॥ १ ॥

ऋभुओंने मातापिताकी सेवा करके तथा उत्तम उत्तम कर्म करके स्वयंको शक्तिशाली बनाया, तब वे देवोंके मित्र बने और उन्होंने अपने मनको भी शक्तिशाली बनाया । ऋभु प्रथम मनुष्य थे, पर जब उन्होंने अपने मातापिताकी सेवा की और उत्तम उत्तम कर्म किए, तब उन्हें देवत्वकी प्राप्ति हुई । वे मनुष्यसे देव बन गए । देव बननेके बाद उनके मनकी शक्ति भी बढ गई इसीतरह मनुष्य भी उत्तम उत्तम कर्म करके देव बन सकता है और अपनी मनःशक्ति को बढा सकता है ॥ २ ॥

३८२ यत् संवत्सम् ऋभवो गामरक्षन् यत् संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत् संवत्समभरन् भासो अस्या- स्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥ ४ ॥
३८३ ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान् त्रीन् कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत् पनयद् वचो वः ॥ ५ ॥
३८४ सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रु- रनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवा- ऽवेनत् त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥ ६ ॥
३८५ द्वादश द्यून् यदगोह्यस्या- ऽऽतिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून् धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥ ७ ॥

अर्थ— [३८२] (यत्) जब (ऋभवः) ऋभुओंने (सं वत्सं) एक वर्षतक (गां अरक्षन्) गायकी रक्षा की। (यत्) जब (संवत्सं) एक वर्षतक (ऋभवः) ऋभुओंने (माः अपिंशन्) उस गायके अवयवोंमें मांस भर कर उसे सुन्दर रूपसे युक्त किया। (यत्) जब (संवत्सं) एक वर्षतक (अस्याः भासः अभरन्) इस गायमें तेज भरा, (ताभिः शमीभिः) अपने उन उत्तम कर्मोंके कारण ही उन ऋतुओंने (अमृतत्वं आशुः) अमरता प्राप्त की ॥ ४ ॥

[३८३] (ज्येष्ठः आह चमसा द्वा कर इति) बडा बोला कि हम चमसके दो भाग करें, (कनीयान् त्रीन् कृणवाम इति आह) छोटा बोला हम तीन करें। (कनिष्ठः आह चतुरः कर इति) सबसे छोटा बोला कि हम चार भाग करें, हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (त्वष्टा) त्वष्टाने (वः वचः पनयत्) तुम्हारे इन बातोंकी प्रशंसा की ॥ ५ ॥

[३८४] (नरः) नर रूपी ऋभुओंने (सत्यं ऊचुः) सत्य ही कहा (हि) क्योंकि उन्होंने (एव चक्रुः) जैसा कहा था, वैसा ही किया। (अनु) उसके बाद (एतां स्वधां) इस हविको (ऋभवः जग्मुः) ऋभुओंने प्राप्त किया। (त्वष्टा) त्वष्टा देवने (अहा इव विभ्राजमानान्) दिनके समान तेजस्वी (चतुर चमसान्) चार चमसोंको (ददृश्वान्) देखा और (अवेनत्) उन्हें बहुत पसन्द किया ॥ ६ ॥

[३८५] (यत्) जब (ऋभवः) ऋभुओंने (द्वादश द्यून्) बारह दिनतक (अगोह्यस्य आतिथ्ये) जिसका तेज छिप नहीं सकता, ऐसे आदित्यके आतिथ्यमें (ससन्तः रणत्) रहते हुए आनन्द किया, तब ऋभुओंने (सुक्षेत्रा अकृण्वन्) खेतोंको उत्तम बनाया, (सिन्धून् अनयन्त) नदियोंको प्रेरित किया (धन्व ओषधीः आ अतिष्ठन्) निर्जल प्रदेशमें ओषधी वनस्पतियोंका उगाया और (आपः निम्नं) जलोंको नीचेकी ओर बहाया ॥ ७ ॥

भावार्थ — इन ऋभुओंने लकडीके खम्भेके समान निश्चेष्ट पडे हुए अपने वृद्ध मातापिताको फिरसे हमेशाके लिए तरुण बना दिया। तब वे ऋभु इन्द्रकी कृपाके पात्र हुए ॥ ३ ॥

इन ऋभुओंने एक अत्यन्त जीर्ण गायकी वर्षभरतक सेवा की। उस गायमें मांस भरा, उसके अवयवोंको सुन्दर बनाया और उसमें तेज भरा। इस प्रकार उन्होंने एक मृतवत् गायको पुष्ट किया। अपने इन उत्तम कर्मोंके कारण उन्होंने अमरता प्राप्त की। गोरक्षण करनेसे दूध घी मिलता है और दूध घीके भक्षणसे दीर्घायु प्राप्त होती है ॥ ४ ॥

ऋभुओंमें सबसे बडेने कहा कि हम इसके दो भाग करें, छोटेने कहा कि हम तीन करें और सबसे छोटेने कहा कि हम इसके चार भाग करें। त्वष्टाने ऋभुओंके इन बातोंकी बहुत प्रशंसा की ॥ ५ ॥

ये नर रूपी ऋभु हमेशा सत्य ही बोलते हैं और ये जैसा बोलते हैं, वैसा ही आचरण करते हैं। अपने इस सत्य आचरणके कारण ही वे अपनी शक्तिको प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

इस मंत्रमें ऋभुओंका वर्णन सूर्यकी रश्मिके रूपमें है। जब ये किरणें आदित्यके समीप तेजीसे प्रकाशित होती हैं अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें अत्यधिक प्रकाशित होती हैं, तब उसके बाद बरसात होती है। उस बरसातसे जल बरसाकर सूर्य-किरणें खेतोंको उपजाऊ बनाती हैं, नदियोंको बहाती हैं, निर्जल प्रदेशोंमें ओषधियोंको उत्पन्न करती हैं और जलोंको बहाती हैं ॥ ७ ॥

३८६ रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ ८ ॥
३८७ अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत् सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥ ९ ॥
३८८ ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥ १० ॥
३८९ इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन् त्सवने दधात ॥ ११ ॥

अर्थ— [३८६] (ये) जिन ऋभुओंने (सुवृतं नरेष्ठां रथं चक्रुः) अच्छी तरह बन्धनोंसे बंधे हुए और मनुष्योंके लिए बैठने योग्य रथको तैय्यार किया, (ये विश्वजुवं विश्वरूपां धेनुं) जिन्होंने सबको प्रेरणा देनेवाली और अनेक रूपोंवाली गायको बनाया, (ते) वे (सु-अपसः सु-अवसः सुहस्ताः) उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त और उत्तम हाथोंवाले (ऋभवः) ऋभु (नः रयिं आ तक्षन्तु) हमें ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ८ ॥

[३८७] (एषां अपः) इन ऋभुओंके कर्मोंको (क्रत्वा मनसा अभि दीध्यानः) कर्म और मनसे तेजस्वी (देवाः) देवोंने (अभि अजुषन्त) स्वीकार किया है। अपने कर्मोंके कारण (सुकर्मा वाजः) उत्तम कर्म करनेवाला वाज नामक ऋभु (देवानां अभवत्) देवोंका प्रिय बना, (ऋभुक्षा इन्द्रस्य) ऋभुक्षा इन्द्रका प्रिय बना, (विभ्वा वरुणस्य) और विभ्वा वरुणका प्रिय बना ॥ ९ ॥

[३८८] (ये) जिन ऋभुओंने (उक्था मदन्तः) स्तोत्रोंसे आनन्दित होकर (मेधया) अपनी बुद्धिसे (हरी चक्रुः) दो उत्तम घोडोंको बनाया, (ये) जिन ऋभुओंने (इन्द्राय) इन्द्रके लिए (सुयुजा चक्रुः) आसानीसे रथमें जुड जानेवाले घोडोंको तैय्यार किया, हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (ते) वे तुम (क्षेमयन्तः मित्रं न) कल्याण चाहनेवाले मित्रके समान (अस्मे) हमारे लिए (रायस्पोषं द्रविणानि) धन, पुष्टि और अन्यान्य ऐश्वर्य भी (धत्त) प्रदान करो ॥ १० ॥

[३८९] हे ऋभुओ ! (इदा अह्नः) इस दिनके भागमें देवोंने (वः) तुम्हारे लिए (पीतिं मदं धुः) सोम और आनन्द प्रदान किया। (श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति) कष्ट उठाये विना देवगण मित्रता नहीं करते। हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (अस्मिन् तृतीये सवने) इस तीसरे सवनमें (अस्मे वसूनि नूनं दधात्) हमें धन निश्चयसे दो ॥ ११ ॥

१ श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति— कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते।

भावार्थ— ये ऋभु शिल्पी भी हैं। इन्होंने एक मजबूत और मनुष्योंके लिए आसानीसे बैठने योग्य रथका निर्माण किया। उन्होंने गायोंको कामधेनु बनाया। वे सभी ऋभु उत्तम कर्म करनेवाले, उत्तम रक्षाके साधनोंसे युक्त और कुशल हाथोंवाले हैं। ये ऋभु हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ ८ ॥

इन ऋभुओंके कर्म इतने सुन्दर होते हैं कि इनके कर्म अपनी कर्तृत्वशक्ति तथा मानसिक शक्तिके कारण तेजस्वी देवोंको भी बहुत पसन्द आते हैं। अपने इन उत्तम कर्मोंके कारण ही ये ऋभु देवोंके प्रिय बने। उनमें उत्तम कर्म करनेवाला वाजनामक ऋभु सभी देवोंका प्रिय बना, ऋभुक्षा इन्द्रका प्रिय बना और विभ्वा वरुणका प्रिय बना ॥ ९ ॥

इन ऋभुओंने स्तुतियोंसे आनन्दित होकर अपनी बुद्धिके प्रभावसे उत्तम घोडोंको तैय्यार किया। इन्द्रके घोडोंको भी इन ऋभुओंने सुशिक्षित किया। वे ऋभु कल्याण चाहनेवाले मित्रके समान हमें धन, पुष्टि और अन्यान्य ऐश्वर्य प्रदान करें ॥ १० ॥

हे ऋभुओ ! तुम्हारे परिश्रम और कुशाग्र बुद्धिको देखकर ही देवोंने तुम्हें सोमपानका अधिकारी बनाकर आनन्द प्रदान किया, क्योंकि बिना परिश्रम किये या विना कष्ट उठाये देवगण किसीसे मित्रता नहीं करते। जो मनुष्य परिश्रम नहीं करता या कष्ट नहीं करता, देवगण उसकी सहायता नहीं करते ॥ ११ ॥

[३४]

(ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३९० ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छे॒मं य॒ज्ञं र॑त्न॒धेयोप॑ यात ।
इ॒दा हि वो॑ धि॒षणा॑ दे॒व्यह्ना॒मधा॑त् पी॒तिं सं मदा॑ अग्मता वः ॥ १ ॥

३९१ वि॒दा॒नासो॒ जन्म॑नो वाजरत्ना उ॒त ऋ॒तुभि॑र्ऋभवो मादयध्वम् ।
सं वो॒ मदा॒ अग्म॑त॒ सं पुरं॑धिः सु॒वीरा॑म॒स्मे र॒यिमेर॑यध्वम् ॥ २ ॥

३९२ अ॒यं वो॑ य॒ज्ञ ऋ॑भवोऽकारि॒ यमा मनु॒ष्वत् प्र॒दिवो॑ दधि॒ध्वे ।
प्र वो॒ऽच्छा॑ जुजुषा॒णासो॑ अस्थु॒रभू॑त॒ विश्वे॑ अग्रि॒योत वा॑जाः ॥ ३ ॥

३९३ अभू॑दु वो विध॒ते र॑त्न॒धेय॑मि॒दा नरो॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
पिब॑त वाजा ऋभवो द॒दे वो॒ महि॑ तृ॒तीयं॒ सव॑नं॒ मदा॑य ॥ ४ ॥

[३४]

अर्थ— [३९०] (ऋभुः विभ्वा वाजः इन्द्रः) ऋभु, विभ्वा, वाज और इन्द्र हमें (रत्नधेया.) रत्न प्रदान करनेके लिए (नः इमं यज्ञं अच्छ उपयात) हमारे इस यज्ञकी ओर सीधा आवें । (वः) तुम्हारे लिए (धिषणा देवी) वाग्देवीने (इदा अह्नां) आजके दिन (पीतिं अधात्) सोम पीनेके लिए दिया है । (मदाः) ये आनन्द कारक सोम (वः सं अग्मत) तुमसे संयुक्त हों, तुम्हें प्राप्त हों ॥ १ ॥

[३९१] हे (वाजरत्नाः ऋभवः) समृद्ध अन्नसे युक्त ऋभुओ ! (जन्मनः विदानासः) सभी प्राणियोंके जन्मोंको जानते हुए (ऋतुभिः मादयध्वम्) सभी ऋतुओंमें आनन्द प्राप्त करो । (वः मदाः सं अग्मत) तुम्हें ये आनन्द कारक सोम सदा प्राप्त होते रहें । (पुरंधि सं अग्मतः) उत्तम बुद्धि भी प्राप्त होती रहे । तुम (सुवीरां रयिं) उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धनको (अस्मे एरयध्वं) हमारी तरफ प्रेरित करो ॥ २ ॥

[३९२] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (वः अयं यज्ञः अकारि) तुम्हारे लिए यह यज्ञ किया गया है । (यं) जिस यज्ञको (प्रदिवः) तेजस्वी तुम (मनुष्वत् दधिध्वे) मनुष्यके समान स्वीकार करो । (जुजुषाणासः) प्रसन्न करनेवाले सोम (वः अच्छा प्र अस्थुः) तुम्हारी तरफ सीधे आते हैं । इसी कारण हे (वाजाः) बलवान् ऋभुओ ! (विश्वे) तुम सब (अग्रिया अभूत) सबसे श्रेष्ठ हुए ॥ ३ ॥

[३९३] हे (नरः) नेता ऋभुओ ! (वः इदा) तुम्हारा यह (रत्नधेयं) रत्नादि ऐश्वर्य (विधते दाशुषे) सेवा करनेवाले तथा हवि देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्यके लिए (अभूत्) हो । (वाजाः ऋभवः) हे बलशाली ऋभुओ ! मैं (वः) तुम्हें (मदाय) आनन्दके लिए (म हि तृतीयं सवनं) बहुत मात्रामें तीसरे सवनके सोमको (ददे) देता हूँ, तुम (पिवत) पीओ ॥ ४ ॥

भावार्थ— ऋभु, विभ्वा, वाज और इन्द्र हमें रत्न आदि धन प्रदान करनेके लिए हमारे इस यज्ञकी तरफ सीधे आवें । क्योंकि इन्हें यज्ञमें स्तुतियोंके साथ सोमरस दिए जाते हैं । ये आनन्दकारक सोमरस इन देवोंके साथ संयुक्त हों ॥ १ ॥

उत्तम और श्रेष्ठ अन्नसे युक्त ऋभुओ ! तुम सभी प्राणियोंके जन्मोंको जानते हो । अतः तुम सभी ऋतुओंमें आनन्दित रहो । ये आनन्दकारक सोम और उत्तम बुद्धिया तुम्हें प्राप्त होती रहें । तुम हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥ २ ॥

हे ऋभुओ ! तुम्हारे लिए ही यह यज्ञ किया है । अतः इस यज्ञको तुम मनुष्यके समान प्रेमसे स्वीकार करो । आनन्द देनेवाले सोम तुम्हारी ओर आते हैं । इन्हीं सोमरसोंके कारण तुम सबसे श्रेष्ठ हुए हो ॥ ३ ॥

हे नेता ऋभुओ ! तुम्हारे रत्न आदि ऐश्वर्य तुम्हारी सेवा करनेवाले तथा तुम्हें हवि देनेवाले मनुष्यके लिए हों । हे बलशाली ऋभुओ ! मैं तुम्हारे आनन्दके लिए बहुत मात्रामें सोमरस प्रदान करता हूँ, तुम सब पीओ ॥ ४ ॥

३९४ आ वाजा यातोप न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्व इव ग्मन् ॥ ५ ॥
३९५ आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ॥ ६ ॥
३९६ सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥ ७ ॥
३९७ सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥ ८ ॥

अर्थ— [३९४] (वाजाः नरः ऋभुक्षाः) हे बलशाली नेता ऋभुओ ! (महः द्रविणसः गृणानाः) अत्यधिक सम्पत्तिशालीके रूपमें प्रसिद्ध तुम (नः उप यात) हमारे पास आओ। (अह्नां अभि पित्वे) दिवसकी समाप्ति पर (इमाः पीतयः) ये सोमरस (वः ग्मन्) तुम्हारी तरफ उसी तरह जाते हैं, जिसप्रकार (नवस्वः अस्तं इव) नव प्रसूत गायें अपने घरकी तरफ उत्सुकतासे जाती हैं ॥ ५ ॥

[३९५] हे (शवसः नपातः) बलको नष्ट न करनेवाले ऋभुओ ! (सूरयः) बुद्धिमान् तथा (नमसा हूयमानाः) विनीतभावसे बुलाये जानेवाले तुम (सजोषसः) प्रेमसे युक्त होकर (इमं यज्ञं उप आ यातन) इस यज्ञमें आओ। (यस्य च स्थ) तुम जिसके हो, उस (इन्द्रवन्तः) इन्द्रसे संयुक्त होकर (रत्नधाः) रमणीय धनोंको धारण करनेवाले तुम (मध्वः पात) मधुरसोम पीओ ॥ ६ ॥

[३९६] हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (सजोषाः) प्रीतिपूर्वक (वरुणेन सोमं) वरुणके साथ सोम पी । हे गिर्वणः) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! तू (सजोषाः) प्रीतिसे युक्त होकर (मरुद्भिः पाहि) मरुतोंके साथ, सोम पी। तू (अग्रेपाभिः ऋतुपाभिः) सबसे प्रथम सोमरसको पीनेवाले तथा ऋतुओंके अनुसार सोमको पीनेवाले देवोंके साथ (सजोषाः) प्रीतिपूर्वक सोम पी, तथा (रत्नधाभिः) उत्तम ऐश्वर्योंको धारण करनेवाली तथा (ग्नास्पत्नीभिः) स्त्रियोंका पालन करनेवाली दिव्य स्त्रियोंके साथ (सजोषाः) प्रीतिपूर्वक सोम पी ॥ ७ ॥

[३९७] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! तुम (सजोषसः) प्रेमसे युक्त होकर (आदित्यैः मादयध्वं) आदित्योंके साथ आनन्द करो। (सजोषसः) प्रीतिपूर्वक (पर्वतेभिः) पर्वतोंके साथ आनन्द करो। (सजोषसः) प्रेमसे युक्त होकर (दैव्येन सवित्रा) देवोंके हितकारी सविता देवके साथ आनन्द करो। तथा (सजोषसः) प्रेमपूर्वक (रत्नधेभिः सिन्धुभिः) रत्नोंको धारण करनेवाले सागरोंके साथ आनन्द करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे बलशाली नेता ऋभुओ ! तुम अत्यधिक सम्पत्तिशालीके रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध हो। तुम हमारे पास आओ। तुम्हारे आनेपर ये सोमरसकी धारायें तुम्हारी तरफ उसी तरह बहें कि जिसप्रकार नव प्रसूता गायें अपने बछडोंके लिए उत्कंठित होकर अपने घरकी तरफ जाती हैं ॥ ५ ॥

हे बलसे उत्पन्न होनेवाले ऋभुओ ! तुम बुद्धिमान् हो और सब विनीतभावसे तुम्हें बुलाते हैं। अतः तुम प्रेमसे युक्त होकर हमारे यज्ञमें आओ। तुम इन्द्रके बहुत प्रिय हो, इसलिए इन्द्रके साथ ही हमारे यहां आकर सोम पीओ और सुन्दर धनों को प्रदान करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तू प्रेमपूर्वक वरुण, मरुतों और ऋतुओंके अनुसार कार्य करनेवाले तथा दिव्यशक्तियोंके साथ प्रेमपूर्वक सोमरसका पान कर ॥ ७ ॥

हे ऋभुओ ! तुम प्रेमसे युक्त होकर आदित्य, पर्वत, देवोंके लिए हितकारी और रत्नोंको धारण करनेवाले सागराभिमानी देवोंके साथ आनन्द करो ॥ ८ ॥

३९८ ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ९ ॥
३९९ ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥ १० ॥
४०० नापाभूत न वोऽतीतृषामाऽनिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥ ११ ॥

[३५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४०१ इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥ १ ॥

अर्थ— [३९८] (ये) जिन ऋभुओंने (ऊती) अपने संरक्षणके साधननें (अश्विना ततक्षुः) अश्विनीकुमारोंको समर्थ बनाया, (ये पितरा) जिन्होंने पितरोंको समर्थ बनाया, (ये धेनुं) जिन्होंने गायोंको दुधारु बनाया, (ये अश्वा) जिन्होंने घोडोंको शक्तिशाली बनाया । (ये अंसत्रा) जिन्होंने कवचोंका निर्माण किया, (ये रोदसी ऋधक्) जिन्होंने द्यु और पृथ्वीको अलग अलग किया, (ये विभ्वः नरः) जिन शक्तिशाली नेताओंने (सु- अपत्यानि चक्रुः) सुन्दर कर्मोंको किया ॥ ९ ॥

[३९९] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (ये) जो तुम (गोमन्तं वाजवन्तं) गायोंसे युक्त, घोडोंसे युक्त (सुवीरं) उत्तम वीर सन्तानोंसे युक्त (वसुमन्तं पुरुक्षुम्) द्रव्य और अन्नसे समृद्ध (रयिं धत्थ) ऐश्वर्यको धारण करते हो । (ये च रातिं गृणन्ति) जिनके दानकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, (ते अग्रेपाः) वे सबसे प्रथम सोम पीनेवाले तुम (मन्दसानाः) आनन्दसे युक्त होकर (अस्मे धत्त) हमें धन दो ॥ १० ॥

[४००] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! तुम (न अपाभूत) हमसे दूर मत जाओ, (वः न अतीतृषाम) हम भी तुम्हें प्यासे न रखें, अर्थात् सोम प्रदान करते रहें । हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (देवाः) दिव्य गुणोंसे युक्त तुम (अनिः- शस्ताः) निन्दारहित होकर (अस्मिन्यज्ञे) इस यज्ञमें (इन्द्रेण सं मदथ) इन्द्रके साथ बैठकर आनन्दित होओ । हे (देवाः) ऋभुओ ! (रत्नधेयाय) रत्न प्रदान करनेके लिए (राजभिः मरुद्भिः) तेजस्वी मरुतोंके साथ (सं) आनन्द प्राप्त करो ॥ ११ ॥

[३५]

[४०१] हे (शवसः नपातः) बलको नष्ट न करनेवाले (सौधन्वनाः ऋभवः) तथा उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ ! (इह उपयात) हमारे पास आओ, (मा अप भूत) हमसे दूर मत जाओ । (अस्मिन् सवने) इस यज्ञमें (रत्नधेयं इन्द्रं अनु) रत्नोंको प्रदान करनेवाले इन्द्रको दिए जानेवाले (मदासः) आनन्दकारक सोम (वः गमन्) तुम्हें भी प्राप्त हों ॥ १ ॥

भावार्थ— जिन ऋभुओंने अश्विनीकुमारों, पितरों और घोडोंको शक्तिशाली बनाया, तथा गायोंको दुधारु बनाया, जिन्होंने कवचोंका निर्माण किया, जिन्होंने द्यु और पृथ्वीको अलग अलग किया, तथा जिन्होंने उत्तम कर्म किए, जो गायों, घोडों, उत्तम सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको धारण करते हैं, जिनके दानकी प्रशंसा सर्वत्र होती है, ऐसे ये ऋभु आनन्दित होकर हमें धन प्रदान करें ॥ ९-१० ॥

हे ऋभुओ ! तुम हमसे दूर मत जाओ और हम भी तुम्हें प्यासे न रखें, तुम्हें सदा सोम प्रदान करते रहें । तुम अनिन्दित होकर इस यज्ञमें इन्द्रके साथ बैठकर आनन्द प्राप्त करो, तथा हमें रत्न प्रदान करनेके लिए तेजस्वी मरुतोंके साथ बैठकर आनन्द प्राप्त करो ॥ ११ ॥

×

४०२ आगन्नृभूणामिह रत्नधेय॒मभूत् सोम॑स्य सुषु॑तस्य पी॒तिः ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया॑ च॒ एकं॑ विच॒क्र च॑मसं॑ च॑तु॒र्धा ॥ २ ॥
४०३ व्यं॑कृणोत चमसं॑ च॑तु॒र्धा सखे॒ वि शिक्षेत्य॑ब्रवीत ।
अथै॑त वाजा अमृत॑स्य पन्थां॒ गणं॑ दे॒वाना॑मृभवः सुहस्ताः ॥ ३ ॥
४०४ किंमयः॑ स्विच्चमस एष आ॑स यं काव्येन॒ चतु॑रो॑ विच॒क्र ।
अथा॑ सुनुध्वं॒ सव॑नं॒ मदा॑य पा॒त ऋभवो॒ मधु॑नः सो॒म्यस्य॑ ॥ ४ ॥
४०५ शच्या॑कर्त पि॒तरा॒ युवा॑ना॒ शच्या॑कर्त चमसं॑ देव॒पान॑म् ।
शच्या॒ हरी॒ धनु॑तरावतष्टे॒न्द्रवाहा॑वृभवो वाजरत्नाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [४०२] (ऋभूणां रत्नधेयं इह आगन्) ऋभुओंके रत्न आदियोंके दान यहां आवें, (सु-सुतस्य सोमस्य पीतिः अभूत्) अच्छी तरहसे निचोडे गए सोमरसका पान होता रहे । हे ऋभुओ ! (यत्) क्योंकि तुमने (सुकृत्यया सु अपस्यया) अपनी कुशलता और कर्तृत्वशक्तिसे (एकं चमसं चतुर्धा विचक्र) एक चमसको चार प्रकारसे बनाया ॥ २ ॥

[४०३] हे ऋभुओ ! तुमने (चमसं चतुर्धा वि अकृणोत) चमसको चार तरहसे विभक्त किया, (सखे) हे मित्र ! (शिक्ष इति अब्रवीत) दान दे, ऐसा तुमने कहा था। (अथ) इसके बाद, हे (वाजाः) ऋभुओ ! (अमृतस्य पन्थां एत) अमृतके मार्ग पर चले । हे (ऋभव) ऋभुओ ! (सुहस्ताः) उत्तम हाथोंवाले तुम (देवानां गणं) देवोंके संघमें शामिल हो गए ॥ ३ ॥

(४०४] हे ऋभुओ ! (यं) जिस चमसके तुमने (काव्येन) अपनी बुद्धिसे (चतुरः विचक्र) चार भाग किए (एषः चमसः) वह चमस (किंमयः स्वित् आस) भला किस चीजका बना हुआ था ? (अथ) अब हे ऋत्विजो ! (मदाय) आनन्दके लिए (सवनं सुनुध्वं) सोमको पीसकर निचोडो । हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (मधुनः सोम्यस्य पात) तुम मीठे सोमरसका पान करो ॥ ४ ॥

[४०५] हे ऋभुओ ! तुमने (शच्या) अपनी कर्मकुशलतासे (पितरा युवाना अकर्त) माता पिताको तरुण बनाया । तुमने (शच्या) अपनी कुशलतासे (चमसं देवपानं अकर्त) चमसको देवोंके लिए पीने योग्य बनाया । हे (वाजरत्नाः ऋभवः) ऐश्वर्यसे समृद्ध ऋभुओ ! तुमने (शच्या) अपनी कुशलतासे (इन्द्रवाहा) इन्द्रको ले जानेवाले (हरी) घोडोंको (धनुतरौ अतष्ट) बाणसे भी अधिक वेगसे जानेवाला बनाया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे बलोंको क्षीण न करनेवाले तथा उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ ! हमारे पास ही सदा रहो, हमारे पाससे दूर कभी मत जाओ । यज्ञमें आनन्दप्रद सोमरस जिस तरह रत्नोंको धारण करनेवाले इन्द्रको प्रदान किए जाते हैं, उसी तरह हम तुम्हें भी प्रदान करते हैं ॥ १ ॥

ऋभुओंके रत्न आदियोंके दान हमें प्राप्त हों । ये ऋभु अपने काममें कुशल और सदा ही उत्तम कर्म करनेवाले हैं । इसलिए इन्हें सोमरस प्रदान किए जाएं ॥ २ ॥

हे ऋभुओ ! तुमने चमसको चार तरहसे विभक्त किया और तुमने अपने मित्रसे कहा कि हे मित्र ! तू दान दे । तुम अपने हाथों की कुशलताके कारण देवोंके संघमें शामिल हुए और इसप्रकार तुम अमृत मार्गके पथिक बने । जो अपने हाथोंसे उत्तम कर्म करता है, वह देव बनकर अमृतके मार्ग पर चलता है ॥ ३ ॥

हे ऋभुओ ! जिस चमसके तुमने चार भाग किए, वह भला किसका बना हुआ था ? ऋत्विजो ! तुम इन ऋभुओंके आनन्दके लिए सोम निचोडो और हे ऋभुओ ! तुम इस मधुर सोमरसका पान करो ॥ ४ ॥

हे ऋभुओ ! तुमने अपनी कुशलतासे माता पिताको तरुण बनाया । अपनी कुशलतासे तुमने चमसको इतना सुन्दर बनाया कि वह देवगणोंके सोम पीनेका एक साधन बना । तुमने अपने चातुर्यसे इन्द्रको ले जानेवाले घोडोंको इतना गवान् बनाया कि वे बाणसे भी अधिक वेगशाली हुए ॥ ५ ॥

४०६ यो वः सुनोत्यभिपित्वे अह्नां तीव्रं वाजासः सवनं मदाय ।
तस्मै रयिमृभवः सर्ववीर—मा तक्षत वृषणो मन्दसानाः ॥ ६ ॥
४०७ प्रातः सुतमपिबो हर्यश्व माध्यंदिनं सवनं केवलं ते ।
समृभुभिः पिबस्व रत्नधेभिः सखींर्यां इन्द्र चकृषे सुकृत्या ॥ ७ ॥
४०८ ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥ ८ ॥
४०९ यत् तृतीयं सवनं रत्नधेय—मकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत् सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [४०६] हे (वाजासः) ऋभुओ! (यः) जो मनुष्य (अह्नां अभिपित्वे) दिनके समाप्त होने पर (वःमदाय) तुम्हें आनन्द प्राप्त करानेके लिए (तीव्रं सवनं सुनोति) तीक्ष्ण सोमरसको निचोडता है, (तस्मै) उसे हे (वृषणः ऋभवः) शक्तिशाली ऋभुओ! (मन्दसानाः) स्वयं आनन्दित होकर (सर्ववीरं रयिं) सब तरहसे वीर सन्तानोंसे युक्त धनको (आ तक्षत) प्रदान करो ॥ ६ ॥

[४०७] हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंवाले इन्द्र! तू (प्रातः) प्रातःकाल (सुतं अपिबः) निचोडे गए सोमको पी। (माध्यन्दिनं सवनं केवलं ते) मध्याह्न समयका सोम भी केवल तेरे लिए ही है। हे (इन्द्र) इन्द्र! (सुकृत्या) उत्तम कर्मोंके कारण (यान् सखीन् चकृषे) जिन्हें तुमने अपना मित्र बनाया, उन (रत्नधेभिः ऋभुभिः) रत्नोंको धारण करनेवाले ऋभुओंके साथ तू (पिबस्व) सोम पी ॥ ७ ॥

१ सुकृत्या सखीन् चकृषे— उत्तम कर्मोंके कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया। जो मनुष्य उत्तम कर्म करता है, उसे ही इन्द्र अपना मित्र बनाता है।

[४०८] हे ऋभुओ! (ये) जो तुम (सुकृत्या देवासः अभवत) अपने उत्तम कर्मोंके कारण देव बने, उसी कारण तुम (श्येनाः इव) सुपर्णके समान (दिवि अधि निषेद) द्युलोकमें प्रतिष्ठित हुए। हे (शवसः नपातः) बलको क्षीण न करनेवाले ऋभुओ! (ते) वे तुम (रत्नं धात) रत्नोंको प्रदान करो। हे (सौधन्वनाः) उत्तम धनुषोंको धारण करनेवाले ऋभुओ! तुम (अमृतासः अभवत) अमर हो गए हो ॥ ८ ॥

सुकृत्या देवासः अभवत— उत्तम कर्मोंसे ही देव बना जा सकता है।

[४०९] हे (सुहस्ताः) उत्तम तथा कुशल हाथोंवाले ऋभुओ! तुमने (सुअपस्या) अपने उत्तम कर्मोंसे (यत् तृतीयं सवनं) जिस तीसरे सवनको (रत्नधेयं अकृणुध्वं) रत्न प्रदान करनेवाला बनाया है, (तत्) इसलिए हे (ऋभवः) ऋभुओ! (मदेभिः इन्द्रियेभिः) प्रसन्न इन्द्रियोंसे युक्त होकर (वः परिषिक्तं) तुम्हारे लिए निचोडे गए (एतत्) इस सोमको (सं पिबध्वम्) अच्छी तरह पीओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे ऋभुओ! जो मनुष्य सायंकालके समय तुम्हें आनन्द देनेके लिए तीव्र सोमको तैय्यार करता है, उस मनुष्यको तुम प्रसन्न होकर वीर सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! तू प्रातःकाल और मध्याह्न कालमें आकर सोम पी। जिनके उत्तम कर्मोंके कारण तूने जिन ऋभुओंको अपना मित्र बनाया, उन रत्नोंको धारण करनेवाले ऋभुओंके साथ तू सोम पी ॥ ७ ॥

हे ऋभुओ! चूंकि तुम अपने उत्तम कर्मोंके कारण देव बने हो, इसी कारण तुम द्युलोक या स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुए हो। तुम अमर हो गए हो, इसलिए हमें भी तुम क्षीण न होनेवाले धन प्रदान करो ॥ ८ ॥

हे उत्तम कर्म करनेवाले ऋभुओ! तुमने अपने उत्तम कर्मोंसे इस तीसरे सवनको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला बनाया। इस कारण तुम्हारे लिए यह सोमरस निचोडा गया है। तुम प्रसन्न इन्द्रियोंसे युक्त होकर इस सोमको पीओ ॥ ९ ॥

[३६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

४१० अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः ।
महत् तद् वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥ १ ॥

४११ रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥ २ ॥

४१२ तद् वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत् सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥ ३ ॥

४१३ एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद् व उक्थ्यम् ॥ ४ ॥

---

[३६]

अर्थ— [४१०] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! तुम्हारा (रथः) रथ (अनश्वः जातः) घोडोंसे रहित (अनभीशुः) लगामसे रहित (त्रिचक्रः) तीन पहियोंसे युक्त तथा (उक्थ्यः) प्रशंसनीय है । वह (रजः परि वर्तते) अन्तरिक्षमें चारों ओर घूमता है । तुम (यत्) जो (द्यां पृथिवीं च पुष्यथ) द्युलोक और पृथिवी लोकको पुष्ट करते हो, (तत् महत्) वह महान् कर्म (वः देव्यस्य प्रवाचनं) तुम्हारे देवत्वका द्योतक है ॥ १ ॥

[४११] (सुचेतसः ये) उत्तम चित्त तथा ज्ञानवाले जिन ऋभुओंने (सुवृतं) अच्छी तरहसे घूमनेवाले तथा (अविह्वरन्तं) कभी कुटिलतासे न जानेवाले (रथं) रथको (मनसः परि ध्यया) मनके संकल्पसे ही (चक्रुः) बनाया, (वाजाः ऋभवः) हे बलशाली ऋभुओ ! (तान् वः) उन तुम लोगोंको (अस्य सवनस्य पीतये) इस सोमको पीनेके लिए (आवेदयामसि) आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

[४१२] हे (वाजाः विभ्वः ऋभवः) बलशाली तथा तेजस्वी ऋभुओ ! (यत्) जो तुमने (जिव्री सन्ता) अत्यन्त वृद्ध (सना-जुरा) अत्यन्त जीर्ण (पितरा) मातापिताको (चरथाय) घूमने फिरनेके लिए (पुनः युवाना तक्षथ) फिरसे तरुण बना दिया, (वः तत् महित्वनं) तुम्हारा वह महत्त्वपूर्ण कर्म (देवेषु सुप्रवाचनं अभवत्) देवोंमें अत्यधिक प्रशंसनीय हुआ ॥ ३ ॥

[४१३] हे (वाजाः ऋभवः) बलशाली ऋभुओ ! तुमने (एकं चमसं चतुर्वयं विचक्र) एक ही चमसको चार अवयवोंवाला बनाया और अपने (धीतिभिः) कर्मोंसे तुमने (निश्चर्मणः गां अरिणीत) केवल चमडीवाली गायको भी हृष्टपुष्ट बनाया । (वः तत्) तुम्हारा वह काम (श्रुष्टी उक्थ्यं) शीघ्र ही प्रशंसनीय हो गया, (अथ) इसके बाद तुमने (देवेषु अमृतत्वं आनश) देवोंमें अमरता प्राप्त की ॥ ४ ॥

भावार्थ— ऋभु सूर्यकी किरणें हैं । इनका रथ सूर्य घोडोंसे रहित और लगामसे रहित है । प्रातः, मध्यान्ह और सायं ये तीन उस रथके तीन चक्र हैं । इन चक्रोंसे वह पूरे द्युलोकमें घूमता है । इन्हीं किरणोंसे द्युलोक और पृथ्वी लोक पुष्ट होते हैं । इसीलिए इन सूर्य किरणोंको देव कहा जाता है ॥ १ ॥

हे बलशाली ऋभुओ ! उत्तम ज्ञानवाले तुमने अच्छी तरह जानेवाले तथा कभी भी कुटिल मार्गसे न जानेवाले रथको अपने मनके संकल्पमात्रसे ही बना डाला । इसलिए हम उत्तम ज्ञानवाले तुम्हें इस सोमको पीनेके लिए आमंत्रित करते हैं, बुलाते हैं ॥ २ ॥

हे बलशाली और तेजस्वी ऋभुओ ! तुमने अपने अत्यन्त वृद्ध और अत्यन्त क्षीण माता पिताको घूमने फिरनेके लिए फिरसे तरुण बना दिया, वह तुम्हारा महत्त्वपूर्ण कर्म देवोंमें अत्यधिक प्रशंसनीय हुआ ॥ ३ ॥

हे बलशाली ऋभुओ ! तुमने एक ही चमसको चार अवयवोंवाला बनाया, और अपने कर्मोंसे तुमने केवल चमडों और हड्डियोंवाली गायमें मांस भरकर उसे हृष्टपुष्ट बनाया । अपने इन्हीं कर्मोंके कारण तुमने प्रशंसा प्राप्त की और देवोंमें स्थान पाकर अमर हुए ॥ ४ ॥

४१४ ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन् नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥ ५ ॥
४१५ स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥ ६ ॥
४१६ श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चित-स्तान् व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥ ७ ॥
४१७ यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।
द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तम-मा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥ ८ ॥

अर्थ— [४१४] (यं नरः अजीजनन्) जिसे नेता ऋभुओंने उत्पन्न किया, वह (प्रथमश्रवस्तमः) सबसे श्रेष्ठ और अत्यन्त यश प्रदान करनेवाला धन (वाजश्रुतासः ऋभुतः) अपने बलके लिए विख्यात ऋभुसे हमें प्राप्त हो। (विभ्वतष्टः) विशेष तेजस्वी ऋभुओंके द्वारा बनाया गया रथ (विदथेषु प्रवाच्यः) युद्धोंमें विशेषरूपसे प्रशंसनीय होता है। हे (देवासः) देवो ! (यं अवथ) जिसकी तुम रक्षा करते हो, (सः विचर्षणिः) वह विश्वविख्यात होता है ॥ ५ ॥

१ यं देवासः अवथ सः विचर्षणिः— जिसकी रक्षा देवगण करते हैं, वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

[४१५] (वाजः विभ्वा ऋभवः) वाज, विभ्वा और ऋभु (यं यं आविषुः) जिस जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, (सः वाजी अर्वा) वह बलवान् और प्रगतिशील, (सः ऋषिः वचस्यया) वह मंत्रद्रष्टा ज्ञानी और प्रशंसनीय (स शूरः अस्ता) वह शूर वीर, शस्त्रास्त्र फेंकनेवाला इसी कारण (पृतनासु दुष्टरः) युद्धोंमें, अपराजेय होता है। (सः रायस्पोषं) वह धन और पोषण (सः सुवीर्यं) वह उत्तम पराक्रमको धारण करता है ॥ ६ ॥

[४१६] हे (वाजाः ऋभवः) बलशाली ऋभुओ ! (वः श्रेष्ठं दर्शतं पेशः) तुम्हारा श्रेष्ठ और देखने योग्य सुन्दररूप (अधि धायि) सबसे ऊपर है। (स्तोमः) हमने जो स्तोत्र किया है, (तं जुजुष्टन) उसका सेवन करो तुम (धीरासः कवयः विपश्चितः स्थ) धैर्यशाली, दूरदर्शी और बुद्धिमान् हो। (तान् वः) उन तुमको (एना ब्रह्मणा वेदयामसि) इन मंत्रोंसे बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[४१७] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (विद्वांसः यूयं) ज्ञानसेयुक्त तुम (अस्मभ्यं) हमें (धिषणाभ्यः परि) हमारी कल्पनाकी अपेक्षा भी अधिक (विश्वा नर्याणि भोजना) सम्पूर्ण प्राणियोंका हित करनेवाली सम्पत्ति, (द्युमन्तं वृषशुष्मं) तेजस्वी ऐश्वर्यसे युक्त अधिकार (उत्तमं वयः रयिं वाजं) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य और बल (नः आ तक्षत) हमें प्रदान करो ॥ ८ ॥

भावार्थ— जिस धनको ऋभु उत्पन्न करते हैं, वह अत्यन्त श्रेष्ठ और अत्यन्त यश प्रदान करनेवाला धन होता है। उसी तरह जिस रथको ऋभु बनाते हैं, वह युद्धोंमें उत्तम काम करनेके कारण अत्यन्त प्रशंसनीय होता है। देवगण जिसकी रक्षा करते हैं, वह विशेष बुद्धिमान् होकर विश्वविख्यात होता है ॥ ५ ॥

ये ऋभुगण जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह बलवान्, प्रगतिशील, ज्ञानी, प्रशंसनीय, शूरवीर, युद्धमें शस्त्रास्त्रोंका प्रहार करनेवाला, युद्धोंमें अपराजेय, धन ऐश्वर्यसे युक्त और उत्तम पराक्रमशील होता है ॥ ६ ॥

इन ऋभुओंका रूप बडा ही सुन्दर और श्रेष्ठ है। उनका रूप अन्य देवोंसे बढ चढकर होनेके कारण सबसे उच्च स्थान पर है। वे धैर्यशाली दूरदर्शी और बुद्धिमान् है। उन्हें स्तोत्रोंके द्वारा बुलाया जाता है। ॥ ७ ॥

ज्ञानसे युक्त ऋभुओ ! तुम हम जितनी कल्पना करते हैं, उसकी भी अपेक्षा अधिक ऐश्वर्य हमें प्रदान करो। वह ऐश्वर्य सब प्राणियोंका हित करनेवाला, उत्तम अन्न और बल हमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

४१८ इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत् तक्षता नः ।
येन वयं चितयेमात्यन्यान् तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥ ९ ॥

[३७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- ऋभवः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ५-८ अनुष्टुप् ।]

४१९ उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः ।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वा३सु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ १ ॥
४२० ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥ २ ॥
४२१ त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [४१८] (ऋभवः) हे ऋभुओ ! तुम (रराणाः) आनन्दित होते हुए (नः) हमें (इह) इस संसारमें (प्रजां उत्तम सन्तान (इह रयिं) इस संसारमें ऐश्वर्य (इह वरिवत् श्रवः) यहां वीरताको देनेवाला अन्न प्रदान करो। (नः) हमें (तं चित्रं वाजं दद) उस श्रेष्ठ और विलक्षण बलको दो कि (येन) जिससे (वयं) हम (अन्यान् आति चितयेम) दूसरोंसे आगे बढ जाएं ॥ ९ ॥

[३७]

[४१९] हे (वाजाः ऋभुक्षाः देवाः) बलवान् ऋभुदेवो ! तुम (देवयानैः पथिभिः) देव जिनसे जाते हैं ऐसे मार्गोंसे (नः अध्वरं उप यात) हमारे यज्ञमें आओ । हे (रण्वाः) सुन्दर ऋभुओ ! (यथा) ताकि (आसु मनुषः विक्षु) इन मनुकी प्रजाओंमें तुम (अह्नां सुदिनेषु) दिनोंमें उत्तम दिनपर (यज्ञं दधिध्वे) यज्ञकी हविको ग्रहण करो ॥ १ ॥

[४२०] (अद्य) आज (ते यज्ञाः) वे यज्ञ (वः मनसे हृदे) तुम्हारे मन और हृदयको आनन्द देनेवाले (सन्तु) हों । आज (घृतनिर्णिजः) घी के समान तेजस्वी (जुष्टासः) सेवन करने योग्य सोम (गुः) तुम्हारी ओर बढें । (पूर्णाः सुतासः) उत्साहसे पूर्ण और अच्छी तरह निचोडे गए सोम (वः प्र हरयन्त) तुम्हारे लिए ले जाए जाएं । तथा (पीताः) पिए गए सोम (क्रत्वे दक्षाय) तुम्हारे पराक्रम और चातुर्यको प्रकट करनेके लिए (हर्षयन्त) तुम्हें हर्षित करें ॥ २ ॥

[४२१] हे (वाजाः ऋभुक्षणः) बलवान् ऋभुओ ! (यथा वः स्तोमः) जिस तरह तुम्हें स्तोत्र समर्पित किए जाते हैं, उसी तरह मैं (वः) तुम्हें (त्रि-उदायं देवहितं ददे) तीनों सवनोंमें तैय्यार होनेवाला तथा देवोंके लिए हितकारी सोम समर्पित करता हूँ । (बृहत् दिवेषु उपरासु विक्षु) अत्यन्त तेजस्वी और श्रेष्ठ मनुष्योंमें भी (मनुष्वत्) मनुके समान तेजस्वी मैं (युष्मे) तुम्हारे लिए (सचा सोमं जुह्वे) एक साथ सोमरस प्रदान करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऋभुओ ! तुम आनन्दित होकर हमें इस संसारमें उत्तम सन्तान, उत्तम ऐश्वर्य और वीरताको प्रदान करनेवाला अन्न प्रदान करो । हमें ऐसा विलक्षण बल प्रदान करो कि जिससे हम दूसरोंसे आगे बढ जाएं ॥ ९ ॥

हे बलवान् ऋभुओ ! तुम देवोंके मार्गोंसे चलकर हमारे यज्ञमें आओ । मनुकी इन प्रजाओंके यज्ञमें आकर उत्तम दिनमें यज्ञकी हविको ग्रहण करो ॥ १ ॥

हे ऋभुओ ! हमारे द्वारा किए जानेवाले ये यज्ञ तुम्हारे मन और हृदयको आनन्दित करें, तथा घीके समान तेजस्वी ये सोम तुम्हारी तरफ बढें । इनसे तुम हर्षित होकर अपनी कुशलताको प्रकट करो ॥ २ ॥

हे बलवान् ऋभुओ ! जिस तरह तुम्हें स्तोत्र समर्पित किए जाते हैं, उसी तरह मैं तीनों सवनोंमें तैय्यार होनेवाला तथा देवोंके लिए हितकारी सोम तुम्हें समर्पित करता हूँ । मैं अत्यन्त तेजस्वी मनुष्योंमें भी अत्यन्त तेजस्वी हूँ । ऐसा मैं तुम्हें सोम प्रदान करता हूँ ॥ ३ ॥

४२२ पीवोअश्वाः शुचद्रथा हि भूता॒ऽयःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातो॒ऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥ ४ ॥

४२३ ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ॥ ५ ॥

४२४ सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ॥ ६ ॥

४२५ वि नो वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं सूरयः स्तुता विश्वा आशास्तरीषणि ॥ ७ ॥

अर्थ—[४२२] (पीवो अश्वाः) पुष्ट घोडोंवाले (शुचद्रथाः) तेजस्वी रथोंवाले (अयःशिप्राः) लोहेके कवचोंको धारण करनेवाले तुम, हे (वाजिनः) बलवान् ऋभुओ ! (सुनिष्काः) उत्तम धनवाले होओ । हे (इन्द्रस्य सूनो) इन्द्रके पुत्रो ! (शवसः नपातः) बलसे उत्पन्न हुए ऋभुओ ! (वः मदाय) तुम्हारे आनन्दके लिए (अग्रियं अनु चेति) यह श्रेष्ठ सोम दिया जाता है ॥ ४ ॥

[४२३] हे (ऋभुक्षणः) ऋभुओ ! (ऋभुं) तेजस्वी (रयिं) सम्पत्तिरूप (वाजे वाजिन्तमं) युद्धमें अत्यन्त बलशाली (युजं) एक साथ रहनेवाले (इन्द्रस्वन्तं) इन्द्रके प्रिय (सदासातं) सदा अत्यन्त उदार (अश्विनं) उत्तम घोडोंवाले तुम्हारे समूहको (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[४२४] हे (ऋभवः) ऋभुओ ! (यूयं इन्द्रश्च) तुम और इन्द्र (यं मर्त्यं अवथ) जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, (सः इत् अस्तु) वही श्रेष्ठ होता है । (सः धीभिः सनिता) वही अपने कर्मोंसे उपभोगोंसे संयुक्त होता है । (सः) वही (मेधसाता अर्वता) यज्ञमें अश्वसे युक्त हो ॥ ६ ॥

धीभिः सनिता— मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

[४२५] (वाजाः ऋभुक्षणः) बलवान् ऋभुओ ! तुम (नः यष्टवे) हमें उत्तम कर्मोंका आचरण करनेके लिए (पथः वि चतन) उत्तम मार्गको प्रकाशित करो । हे (सूरयः) बुद्धिमान् ऋभुओ ! (स्तुतः) तुम स्तुत होकर (विश्वाः आशाः तरीषणि) सब दिशाओंको पार कर जानेके लिए (अस्मभ्यं) हमें मार्ग दिखाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे बलशाली ऋभुओ ! पुष्ट घोडोंवाले, तेजस्वी रथोंवाले, लोहेके कवचोंको धारण करनेवाले तुम उत्तम और श्रेष्ठ धनोंके स्वामी हो । हम तुम्हारे आनन्दके लिए यह श्रेष्ठ सोम प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥

ये ऋभु तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, युद्धोंमें अत्यन्त बलशाली, सदा संघटित होकर रहनेवाले, इन्द्रके अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त उदार और उत्तम घोडोंको अपने पास रखनेवाले हैं. इसलिए इन्हें सब बुलाते हैं ॥ ५ ॥

हे ऋभुओ ! तुम और इन्द्र जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, वही श्रेष्ठ होता है और वही अपने उत्तम कर्मों और अपनी उत्तम बुद्धियोंसे उत्तम उपभोगोंसे संयुक्त होता है ॥ ६ ॥

हे बलवान् ऋभुओ ! तुम उत्तम कर्मोंका आचरण करनेके लिए हमें उत्तम मार्ग बताओ, तथा जिससे हम सभी दिशाओंको तर जाएं, ऐसा मार्ग भी हमें बताओ ॥ ७ ॥

४२६ तं नो वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नासत्या रयिम् ।
समश्वं चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥ ८ ॥

[३८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- दधिक्राः; १ द्यावापृथिवी । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४२७ उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे ।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम् ॥ १ ॥
४२८ उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम् ।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम् ॥ २ ॥
४२९ यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [४२६] हे (वाजाः ऋभुक्षणः इन्द्र नासत्या) बलवान् ऋभुओ, इन्द्र और अश्विनी देवो ! तुम (नः चर्षणिभ्यः) हम मनुष्योंको (तं पुरु रयिं) उस बहुतसे धन और (अश्वं) घोडोंकी (मघत्तये) प्राप्तिके लिए (सं आ शास्त) आशीर्वाद दो ॥ ८ ॥

[३८]

[४२७] हे द्यावापृथिवी ! (दात्रा त्रसदस्युः) दानशील त्रसदस्युने (पुरुभ्यः) मनुष्योंको (या नितोशे) जो धन दिए, (पूर्वाः) वे सभी धन (वां हि सन्ति) तुम्हारे ही हैं। तुमने (क्षेत्रासां ददथुः) हमें भूमिको जीतनेवाले घोडे दिए, (उर्वरासां) जमीनको उपजाऊ बनानेवाला पुत्र दिया, तथा (दस्युभ्यः अभिभूतिं) दुष्टोंका पराभव करनेवाला (उग्रं घनं) तीक्ष्ण अस्त्र दिया ॥ १ ॥

[४२८] (उत) और (वाजिनं) बलशाली (पुरुनिष्षिध्वानं) बहुतसे शत्रुओंको संहार करनेवाले (विश्वकृष्टिं) सब मनुष्योंका हित करनेवाले (श्येनं ऋजिप्यं) श्येनके समान सरल जानेवाले (प्रुषितप्सुं) तेजस्वी रूपवाले (अर्यः चर्कृत्यं) श्रेष्ठोंके द्वारा प्रशंसनीय (नृपतिं न शूरं) राजाके समान शूरवीर (आशुं) शीघ्रगतिसे जानेवाले (दधिक्रां) दधिक्राको ये द्यावापृथिवी (ददथुः) धारण करते हैं ॥ २ ॥

[४२९] (सीं प्रवता इव द्रवन्तं) नीची जगह पर जिसतरह चारों ओरसे पानी दौडता है, उसीतरह दौडनेवाले (मेधयुं शूरं न) संग्रामको जीतनेकी इच्छा करनेवाला शूरवीरके समान (पड्भिः गृध्यन्तं) पैरोंसे आगे बढनेकी इच्छा करनेवाले (वातं इव ध्रजन्तं) वायुके समान वेगवान् (रथतुरं) रथको प्रेरणा देनेवाले (यं) जिस दधिक्रादेवको (विश्वः पूरुः) सभी मनुष्य (हर्षमाणः मदति) हर्षित होते हुए आनन्दित करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे ऋभुओ, इन्द्र और अश्विनी देवो ! तुम सब हमें आशीर्वाद दो ताकि हम उत्तम धन, घोडे और अन्यान्य ऐश्वर्य भी प्राप्त कर सकें ॥ ८ ॥

हे द्यावापृथिवी ! दानशील त्रसदस्युने जो कुछ भी मनुष्योंको दिया, वह सब धन तुम्हारा ही है। तुमने हमें भूमिको जीतनेवाला घोडा दिया, भूमिको उपजाऊ बनानेवाला पुत्र दिया और दुष्टोंका संहार करनेवाला तीक्ष्ण अस्त्र दिया ॥ १ ॥

बलशाली बहुतसे शत्रुओंके संहार करनेवाले, सब मनुष्योंका हित करनेवाले, श्येन पक्षीके समान सरलतासे जानेवाले, तेजस्वी रूपवाले, श्रेष्ठोंके द्वारा प्रशंसनीय, राजाके समान शूरवीर दधिक्राको ये द्यावापृथिवी धारण करते हैं ॥ २ ॥

नीची जगहपर जिसतरह पानी चारों ओरसे इकट्ठा होकर दौडता है, अथवा जिसतरह संग्रामको जीतनेकी इच्छा करनेवाला शूरवीर पैदलही आगे बढता चला जाता है, जो वायुके समान वेगवान् है तथा जो रथको प्रेरणा देनेवाला है, उस दधिक्रादेवको सभी मनुष्य आनन्दित करते हैं और स्वयं भी हर्षित होते हैं ॥ ३ ॥

४३० यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत् तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥ ४ ॥
४३१ उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायु—मनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥ ५ ॥
४३२ उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन् नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत् किरणं ददश्वान् ॥ ६ ॥
४३३ उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्यो—ऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥ ७ ॥

अर्थ— [४३०] (यः स्म) जो देव (समत्सु) युद्धोंमें (गध्या आरुन्धानः) ऐश्वर्योंको रोके रखता है, (सनुतरः) ऐश्वर्यसे युक्त होकर (गोषु गच्छन्) सभी दिशाओं जाता हुआ (चरति) सर्वत्र संचार करता है। (आविर्ऋजीकः विदथा निचिक्यत्) अपने शस्त्रास्त्रोंको प्रकट करके युद्धोंमें प्रसिद्ध होता है। वह दधिक्रादेव (आपः आयोः) आप्त अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यके (अरतिं) शत्रुको (परि तिरः) दूर करता है ॥ ४ ॥

[४३१] (उत स्म) तथा जिसप्रकार (वस्त्रमथिं तायुं न) कपडोंको चुरानेवाले चोरको देखकर लोग चिल्लाते हैं, इसी तरह (श्रवः पशुमत् यूथं च अच्छ) धन और पशुओंके समूहकी तरफ सीधे जानेवाले (एनं) इस दधिक्राको (भरेषु) संग्रामोंमें देखकर (क्षितयः अनु क्रोशन्ति) शत्रुपक्षके मनुष्य भयसे चिल्लाने लगते हैं, तथा जिसतरह (नीचायमानं जसुरिं श्येनं न) नीचेकी ओर झपट्टा मारते हुए भूखे बाजको देखकर सभी पक्षी भाग जाते हैं उसी तरह इस दधिक्राको देखकर सभी शत्रु भाग जाते हैं ॥ ५ ॥

[४३२] (रथानां श्रेणिभिः) रथोंकी पंक्तियोंसे (आसु सरिष्यन्) इन सेनाओंमें जानेकी इच्छा करता हुआ वह दधिक्रा (प्रथमः नि वेवेति) सबसे आगे दौडता है। (जन्यः न) स्त्रीकामी जैसे अपने शरीरको मालाओंसे सजाता है, उसी तरह (स्रजं कृण्वानः शुभ्वा) मालाओंके पहननेके कारण अत्यन्त शोभायमान यह दधिक्रा (किरणं ददश्वान्) लगामोंको चबाता हुआ (रेणुं रेरिहत् स्म) धूलसे सन जाता है ॥ ६ ॥

[४३३] (उत) और (स्यः) वह (वाजी) बलवान् (समर्थे सहुरिः) युद्धमें शत्रुओंका संहारक (ऋतावा) अनुशासनमें रहनेवाला (तन्वा शुश्रूषमाणः) स्वयं चाटकर अपने शरीरकी सेवा करनेवाला (तुरं यतीषु तुरयन्) शीघ्रतासे जानेवाली सेनाओं पर आक्रमण करनेवाला (ऋजिप्यः) सरल मार्गसे जानेवाला यह दधिक्रा (रेणुं ऋञ्जन्) धूलिको उडाता हुआ उस धूलको (भ्रुवोः अधि किरते) अपनी भौंहोंके ऊपर फैलाता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो दधिक्रा देवता युद्धोंमें ऐश्वर्योंको शत्रुओंके हाथोंमें जाने नहीं देता, सभी दिशाओंमें बिना किसी रुकावटके संचार करता है। जो युद्धमें अपने बलको प्रकट करनेके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है, वह श्रेष्ठ मनुष्यके शत्रुओंको दूर करता है ॥ ४ ॥

जिसतरह किसी चोरको देखकर मनुष्य चिल्लाने लगते हैं, उसीतरह संग्राममें इस दधिक्रा उत्तम घोडेको देखकर शत्रु डरसे चिल्लाने लगते हैं अथवा जिस तरफ नीचेकी तरह झपट्टा मारकर उडनेवाले भूखे बाजको देखकर सब पक्षी भाग जाते हैं, उसी तरह इस घोडेको देखकर सभी शत्रु रणभूमिसे भाग जाते हैं ॥ ५ ॥

यह उत्तम अश्व युद्धमें रथकी पंक्तियोंसे भी आगे बढ जाता है और शत्रुकी सेनामें प्रविष्ट हो जाता है जैसे कोई स्त्रीकामी पुरुष अपने शरीरको मालाओंसे सजाता है, उसी प्रकार यह दधिक्रा मालाओंसे सदा सुशोभित रहता है। जब यह युद्धमें जाता है, तब लगामको चबाता हुआ इतनी तेजीसे दौडता है कि उसके खुरोंसे उडनेवाली धूलसे उसका शरीर सन जाता है ॥ ६ ॥

×

४३४ उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद् दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥ ८ ॥
४३५ उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत् सहस्रैः ॥ ९ ॥
४३६ आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥ १० ॥

अर्थ— [४३४] (उत) इसके अलावा भी (द्योः तन्यतोः इव) अत्यन्त तेजस्वी और कडकनेवाली बिजलीसे जैसे सब घबराते हैं, उसी तरह (ऋघायतः अस्य) शत्रुओंका संहार करनेवाले इस दधिक्रासे (अभियुजः भयन्ते स्म) आक्रमणकारी डरते हैं । (यदा) जब यह दधिका (सीं सहस्रं अभि अयोधीत्) चारों ओरसे हजारों शत्रुओंसे लडता है, तब (ऋञ्जन्) सजा संवरा हुआ यह (भीमः दुर्वर्तुः भवति स्म) भयंकर और दुर्निवार हो जाता है ॥ ८ ॥

[४३५] (उत) और (कृष्टिप्रः आशोः) मनुष्योंकी मनोकामनाओंको पूरा करनेवाले तथा वेगवान् (अस्य) इस दधिक्राके (अभिभूतिं जूतिं) पराक्रम और वेगकी (जनाः पनयन्ति) मनुष्य स्तुति करते हैं । (समिथे वियन्तः) युद्धमें जानेवाले योधा (एनं आहुः) इसके बारेमें कहते हैं कि (दधिक्रा) यह दधिक्रा (सहस्रैः परा असरत्) हजारों शत्रुओंको भी भेद कर आगे निकल गया ॥ ९ ॥

[४३६] (सूर्यः ज्योतिषा अपः इव) सूर्य जैसे अपने प्रकाशसे अन्तरिक्षको व्याप्त कर देता है, उसी तरह यह (दधिक्रा) दधिक्रा (शवसा) अपने तेजसे (पंच कृष्टीः) पांचों तरहके मनुष्योंको (आ) व्याप्त कर लेता है। (शतसाः सहस्रसाः) सैकडों और हजारों तरहके धनोंको देनेवाला यह (वाजी अर्वा) बलवान् घोडा (इमा वचांसि) इन हमारी प्रार्थनाओंको (मध्वा पृणक्तु) मधुर फलोंसे संयुक्त करे ॥ १० ॥

भावार्थ— वह बलवान्, युद्धमें शत्रुओंका संहारक, अनुशासनमें रहनेवाला, स्वयं अपनी सेवा करनेवाला, शीघ्रतासे जानेवाली सेनाओं पर आक्रमण करनेवाला तथा सरल मार्गसे जानेवाला यह दधिक्रा इतनी धूल उडाता है कि उससे उसकी आंखें भी भर जाती हैं ॥ ७ ॥

जिस तरह प्राणी तेजस्वी और कडकनेवाली बिजलीसे घबराते हैं उसी तरह शत्रुओंका संहार करनेवाले इस दधिक्रासे शत्रुगण घबराते हैं । जब यह हजारों योधाओंसे एक साथ लडता है, तब सजा संवरा होनेपर भी यह भयंकर और दुर्निवार हो जाता है ॥ ८ ॥

मनुष्योंकी मनोकामनाको पूर्ण करनेवाले तथा वेगवान् इस दधिक्राके पराक्रम और वेगकी मनुष्य स्तुति करते हैं । युद्धमें जानेवाले योधा इस दधिक्राके बारेमें यह कहते हैं कि यह दधिक्रा हजारों शत्रुओंके व्यूहको भी भेदकर आगे निकल जाता है ॥ ९ ॥

सूर्य जैसे अपने प्रकाशसे अन्तरिक्षको व्याप लेता है, उसी प्रकार यह दधिक्रा अपने तेजसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों तरहके मनुष्योंको व्याप लेता है । यह बलवान् घोडा सैंकडों और हजारों तरहके धन प्रदान करता है, इसलिए वह हमारी प्रार्थनाओंको मधुर फलोंसे युक्त करे ॥ ॥० ॥

[३९]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता-दधिक्राः । छन्दः- त्रिष्टुप् , ६ अनुष्टुप् ।]

४३७ आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।
उच्छन्तीर्मामुषसः सूदय न्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥ १ ॥

४३८ महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।
यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं दुदथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥ २ ॥

४३९ यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत् समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।
अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥ ३ ॥

४४० दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो य दमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामह इन्द्रं वज्रबाहुम् ॥ ४ ॥

---

[३९]

अर्थ— [४३७] (तं आशुं दधिक्रां नु स्तवाम) उस वेगवान् दधिक्राकी हम स्तुति करें । (उत) और (दिवः पृथिव्याः चर्किराम) द्युलोक और पृथ्वीलोककी भी प्रशंसा करें । (उच्छन्तीः उषसः) उदय होनेवाली उषायें (मां सूदयन्तु) मुझे उत्साह प्रदान करें और (विश्वानि दुरितानि अति पर्षन्) सम्पूर्ण संकटोंसे पार करें ॥ १ ॥

[४३८] (क्रतुप्राः) पराक्रम करनेवाला मैं (महः) महान् (अर्वतः) शीघ्रगामी (पुरुवारस्य) बहुजनप्रिय (वृष्णः) बलशाली (दधिक्राव्णः) दधिक्राकी (चर्कर्मि) बार बार स्तुति करता हूँ । हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (पुरुभ्यः) मनुष्योंके लिए (अग्निं न दीदिवांसं) अग्निके समान तेजस्वी (यं ततुरिं) जिस संकटोंसे पार लगानेवाले ऐश्वर्यको (ददथुः) प्रदान करते हो ॥ २ ॥

[४३९] (यः) जो मनुष्य (उषसः व्युष्टौ) उषाके उदय होने और (अग्नौ समिद्धे) अग्निके प्रज्वलित होने पर (अश्वस्य दधिक्राव्णः) वेगशाली दधिक्राकी (अकारीत्) स्तुति किया करता है, (तं) उसे (मित्रेण वरुणेन सजोषाः) मित्र और वरुणके साथ आनन्दमें रहनेवाला (अदितिः) अविनाशी दधिक्रा (अनागसं कृणोतु) निष्पाप करे ॥ ३ ॥

[४४०] (इषः) अन्न देनेवाले और (ऊर्जः) बल देनेवाले (महः दाधिक्राव्णः) महान् दधिक्राका तथा (मरुतां) मरुतों का (यत्) जो (भद्रं नामः) कल्याणकारी स्वरूप है, उसका (अमन्महि) हम मनन करते हैं तथा हम (वरुणं मित्रं अग्निं) वरुण, मित्र, अग्नि और (वज्रबाहुं इन्द्रं) वज्रको हाथोंमें धारण करनेवाले इन्द्रको (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हम इस वेगवान् दधिक्राकी स्तुति करते हैं, इस द्यु और पृथ्वीलोककी भी प्रशंसा करते हैं । उदय होती हुई उषायें मुझे उत्साह प्रदान करें और वे मुझे सब संकटोंसे पार करें ॥ १ ॥

पराक्रम करनेवाला मैं महान् शीघ्रगामी, बहुजन प्रिय और बलशाली दधिक्राकी बार बार स्तुति करता हूँ । हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों मनुष्योंको अग्निके समान तेजस्वी और उन्हें संकटोंसे पार लगानेवाला धन प्रदान करते हो ॥ २ ॥

जो मनुष्य उषाके प्रकाशित तथा अग्निके प्रज्वलित होनेपर इस वेगशाली दधिक्राकी स्तुति करता है, उसे मित्र और वरुणके साथ आनन्दित होनेवाला अविनाशी दधिक्रा निष्पाप करे ॥ ३ ॥

अन्न तथा बल देनेवाले दधिक्रा तथा मरुतोंका जो कल्याणकारी रूप हैं उसका मनन करते हैं । हम वरुण मित्र, अग्नि और वज्रधारी इन्द्रको अपने कल्याणके लिए बुलाते हैं ॥ ४ ॥

४४१ इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ॥ ५ ॥
४४२ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ६ ॥

[४०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- दधिक्रा, ५ सूर्यः । छन्दः- जगती, १ त्रिष्टुप् ।]

४४३ दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु ।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः ॥ १ ॥
४४४ सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत् ।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत् ॥ २ ॥

अर्थ— [४४१] (उदीराणाः) युद्ध करनेके लिए जानेवाले क्षत्रिय तथा (यज्ञं उपप्रयन्तः) यज्ञके लिए प्रयत्न करनेवाले ब्राह्मण (उभये) ये दोनों ही (इन्द्रं इव) इन्द्रके समान इस दधिक्राको (वि ह्वयन्ते बुलाते हैं। हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुमने (नः) हमें (मर्त्याय सूदनं) मनुष्यको प्रेरणा देनेवाले (अश्वं दधिक्रां) वेगवान् घोडेको (ददथुः) प्रदान किया ॥ ५ ॥

[४४२] मैंने (जिष्णोः) विजयशील (अश्वस्य) व्यापक (वाजिनः दधिक्राव्णः) बलवान् दधिक्राकी (अकारिषं) स्तुति की है, वह (नः मुखा सुरभि करत्) हमारी मुखादि इन्द्रियोंको निरोगी करे और (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुको दीर्घ करे ॥ ६ ॥

[४०]

[४४३] हम (दधिक्राव्णः इत् उ नु) दधिका देवी की ही (चर्किराम) स्तुति करें। (मां) मुझे (विश्वाः इत् उषसः) सभी उषायें (सूदयन्तु) प्रेरणा प्रदान करें। हम (अपां अग्नेः उषसः सूर्यस्य) जल, अग्नि, उषा, सूर्य (बृहस्पतेः जिष्णोः आंगिरसस्य) बृहस्पति और विजयशील आंगिरसकी स्तुति करें ॥ १ ॥

[४४४] (सत्वा भरिषः गविषः) बलशाली, भरणपोषण करनेवाला, गौओंको प्रेरणा देनेवाला (दुवन्यसत्) भक्तोंके बीचमें रहनेवाला (तुरण्यसत्) शीघ्रतासे जानेवाला दधिक्रा (उषसः) उष कालमें (इषः श्रवस्यात्) अन्न या हविकी कामना करे। (सत्यः) अविनाशी (द्रवः) स्वयं वेगवान् तथा (द्रवरः) अन्योंको भी वेग प्रदान करनेवाला (पतंगरः) उछाल मारते हुए जानेवाला (दधिक्रा) दधिक्रा हमारे लिए (इषं ऊर्जं स्वः जनत्) अन्न, बल और सुख उत्पन्न करे ॥ २ ॥

भावार्थ— जिसप्रकार यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण तथा युद्ध करनेवाले क्षत्रिय ये दोनों इन्द्रको रक्षाके लिए बुलाते हैं, उसीतरह दधिक्राको बुलाते हैं। तब मित्र और वरुण मनुष्यको उत्साह देनेवाले दधिक्राको प्रदान करते हैं ॥ ५ ॥

विजयशील, व्यापक और बलवान दधिक्राकी मैंने स्तुति की है, वह हमारी इन्द्रियोंको स्वस्थ करके हमारी आयुको दीर्घ बनाये ॥ ६ ॥

हम दधिक्रा, जल, अग्नि, उषा, सूर्य, बृहस्पति और आंगिरसकी स्तुति करें। प्रतिदिन उदय होनेवाली उषा हमें उत्तम प्रेरणा प्रदान करती रहे ॥ १ ॥

बलशाली, सबका भरणपोषण करनेवाला, भक्तोंका हितकारी, शीघ्रतासे जानेवाला दधिक्रा उषःकालमें हविकी कामना करे। अविनाशी, वेगवान् तथा अन्योंको भी प्रेरणा देनेवाला दधिक्रा हमारे लिए अन्न, बल और सुख उत्पन्न करे ॥ २ ॥

४४५ उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥ ३ ॥
४४६ उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु संतवीत्वत् पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥ ४ ॥
४४७ हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षस— द्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसदृतसद् व्योमस— दब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ५ ॥

[४१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४४८ इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता ।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान् ॥ १ ॥

अर्थ— [४४५] (उत स्म) तथा (द्रवतः तुरण्यतः) जानेवाले तथा वेगसे भागनेवाले तथा (प्रगर्धिनः) स्पर्धा करनेवाले (अस्य) इस दधिक्राके (अनु) पीछे लोग उसी प्रकार जाते हैं, (वेः पर्णं न) जिस प्रकार पक्षीके पीछे उसके पंख होते हैं। (श्येनस्य इव ध्रजतः) श्येन पक्षीके समान जानेवाले तथा (तरित्रतः) रक्षा करनेवाले (दधिक्राव्णः) दधिक्राके (अंकसं परि) शरीरके चारों ओर (ऊर्जा सह) सामर्थ्यसे घेरते हैं ॥ ३ ॥

[४४६] (उत) और (स्यः वाजी) वह बलवान् दधिक्रा (ग्रीवायां अपि कक्षे आसनि बद्धः) गर्दन, कांख और मुंहसे बंधा होनेपर भी (क्षिपणिं तुरण्यति) अपने शत्रुओंकी तरफ तेजीसे भागता है (दधिक्रा) यह दधिक्रा (संतवीत्वत्) अत्यन्त बलवान् होकर (क्रतुं अनु) कर्मका अनुसरण करके (पथां अंकांसि आपनीफणत्) मार्गोंके टेढेपनको भी पार कर जाता है ॥ ४ ॥

[४४७] (ऋतं) वह ब्रह्मतत्त्व (हंस) सर्वत्र व्यापक (शुचिषत्) अत्यन्त तेजस्वी (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्षमें व्यापक (वेदिषत् होता) वेदिमें बैठनेवाला होता (दुरोणसत् अतिथिः) घरमें आनेवाला अतिथि (नृषद्) मनुष्योंमें व्यापक (वरसत्) श्रेष्ठ मनुष्योंमें रहनेवाला, (ऋतसत्) ऋत या यज्ञमें रहनेवाला (व्योमसत्) व्योममें व्यापक (अब्जाः) कर्मोंसे प्राप्य (गोजाः) वाणी अर्थात् विद्याके द्वारा ज्ञेय (ऋतजाः) सत्यसे प्राप्य और (अद्रिजाः) मेघोंमें व्याप्त है ॥ ५ ॥

[४१]

[४४८] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण ! (अस्मत् उक्तः) हमारे द्वारा बोला गया (क्रतुमान् नमस्वान् यः) बुद्धिपूर्वक और नम्रतासे किया गया जो स्तोत्र (वां हृदि पस्पर्शत्) तुम दोनोंके हृदयोंको छू ले, हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र वरुण ! (अमृतः हविष्मान् होता न) अमर और हविसे युक्त अग्निके समान तेजस्वी ऐसा (कः स्तोत्रः) कौनसा स्तोत्र है कि जो (वां सुम्नं आपः) तुम्हारे सुख को प्राप्त कर सके ॥ १ ॥

भावार्थ— वेगसे भागनेवाले तथा स्पर्धा करनेवाले इस दधिक्राके पीछे लोग उसी तरह जाते हैं, जिस प्रकार एक पक्षीके पीछे पंख होते हैं। श्येन पक्षीके समान जानेवाले तथा रक्षा करनेवाले दधिक्राको मनुष्य चारों ओरसे घेरते हैं ॥३॥

वह बलवान् दधिक्रा गले, कांख और मुंहसे बंधा हुआ होनेपर भी अपने शत्रुओंकी तरफ तेजीसे दौडता है। अत्यन्त बलवान् वह दधिक्रा अपने लक्ष्यको सामने रखकर टेढे मेढे मार्गोंको भी आसानीसे पार कर जाता है ॥ ४ ॥

वह ब्रह्मतत्त्व सर्वत्र व्यापक, अत्यन्त तेजस्वी, यज्ञमें विद्यमान रहता है। वही घरमें अतिथिके रूपमें आता है। वही मनुष्योंमें व्यापक है। यज्ञमें वह निवास करता है वह कर्म, ज्ञान और सत्यसे प्राप्य है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! हम बुद्धिपूर्वक और नम्रता पूर्वक ऐसा कौनसा स्तोत्र बोलें, कि जो तुम दोनोंके हृदयोंको छू ले और उसके द्वारा हम उत्तम सुखको प्राप्त कर सकें ॥ १ ॥

४४९ इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रू-नवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥ २ ॥
४५० इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठे-त्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥ ३ ॥
४५१ इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मि-न्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीति-स्तस्मिन् मिमाथामभिभूत्योजः ॥ ४ ॥
४५२ इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ५ ॥

अर्थ— [४४९] (यः मर्तः) जो मनुष्य (प्रयस्वान्) हविसे युक्त होकर (सख्याय) मित्रताप्राप्तिके लिए (इन्द्रावरुणा देवौ) इन्द्र और वरुण इन दोनों देवोंको (आपी चक्रे) अपना भाई बनाता है, (सः) वह (वृत्रा हन्ति) पापोंको नष्ट करता है, (समिथेषु शत्रून्) युद्धोंमें शत्रुओंको मारता है और (महद्भिः अवोभिः) महान् संरक्षणोंको प्राप्त करनेके कारण (सः) वह (प्र शृण्वे) प्रसिद्ध होता है ॥ २ ॥

१ यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे— जो मनुष्य इन्द्र वरुण इन देवोंको अपना भाई बनाता है।
२ सः वृत्रा हन्ति—वह पापोंको नष्ट करता है, और
३ प्र शृण्वे— बहुत प्रसिद्ध होता है।

[४५०] (यदि) यदि (सखाया) मित्र हुए इन्द्र और वरुण (सख्याय) मित्रताके लिए (सुतेभिः सोमैः) निचोडे गए सोमरसोंसे और (सुप्रयसा) उत्तम अन्नोंसे (मादयेते) आनन्दित हों, तो (ता इन्द्रा वरुणा) वे दोनों इन्द्र और वरुण (शशमानेभ्यः नृभ्यः) स्तुति करनेवाले मनुष्योंको (इत्था ह) इस प्रकार (रत्नं धेष्ठा) रत्न प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

[४५१] (यः) जो (नः दुरेवः) हमारा अहित करनेवाला (वृकतिः) कजूंस और (दभीतिः) हिंसा करनेवाला हो, हे (उग्रा इन्द्रावरुणा) वीर इन्द्र और वरुण! (युवं) तुम दोनों (तस्मिन्) उस पर (अभिभूतिः ओजः) उसे नष्ट करनेवाला अपना तेज (मिमाथां) प्रकट करो, तथा (अस्मिन्) इस शत्रु पर (दिद्युं) तेजस्वी ओजिष्ठं) अत्यन्त तेजस्वी (वज्रं वधिष्टं) वज्रको मारो ॥ ४ ॥

[४५२] हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र और वरुण! (वृषभा धेनोः इव) जैसे दो बैल गाय पर प्रेम करते हैं, उसी तरह (युवं) तुम दोनों (अस्याः धियः प्रेतारा भूतं) इस स्तुति पर प्रेम करनेवाले होओ। जिसप्रकार (मही गौः) एक बडी गाय (यवसा गत्वी) तृणादिका भक्षण करके (सहस्रधारा पयसा इव) हजारों धाराओंवाले दूधको दुहती है, उसी तरह (सा) वह स्तुति (नः दुहीयत्) हमारी कामनाओंको दुहे ॥ ५ ॥

भावार्थ— जो मनुष्य इन्द्र और वरुणको अपना मित्र और भाई बनाता है, वह पापोंको नष्ट करता है, युद्धोंमें शत्रुओंको मारता है और इन्द्र और वरुणसे सुरक्षित होकर वह महान् यश प्राप्त करता है ॥ २ ॥

यदि मित्र हुए हुए इन्द्र और वरुण मित्रताको स्थायी बनानेकेलिए तैय्यार किए गए सोमरसों और उत्तम अन्नोंसे आनन्दित हों, तो ये दोनों इन्द्र और वरुण स्तुति करनेवाले मनुष्योंको रत्न प्रदान करें ॥ ३ ॥

हे वीर इन्द्र और वरुण! हमारा अहित करनेवाला, कंजूस और हिंसा करनेवाला जो मनुष्य हो, उस पर तुम अपना तेज प्रकट करो ताकि वह नष्ट हो जाए। उस पर अपना तेजस्वी वज्र मारो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वरुण! जिस तरह दो बैल एक गाय पर प्रेम करते हैं, उसी तरह तुम दोनों इस हमारी स्तुति पर प्रेम करो, तथा जिसप्रकार एक बडी गाय घास खाकर भी हजारों धाराओंसे दूध देती है, उसी तरह वह स्तुति हमारी कामनाओंको पूर्ण करे ॥ ५ ॥

४५३ तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥ ६ ॥
४५४ युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शंभू ॥ ७ ॥
४५५ ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥ ८ ॥
४५६ इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टार इव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४५३] हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण ! (नः हिते) हमारा हित करनेके लिए (तोके तनये) पुत्रपौत्रोंकी प्राप्तिके लिए (उर्वरासु सूरः दृशीके) उपजाऊ जमीन पर चिरकाल तक सूर्यका दर्शन करनेके लिए (च) तथा (वृषणः पौंस्ये) शक्तिशाली मुझे प्रजोत्पादनमें समर्थ बनानेके लिए (दस्मा) सुन्दर रूपवाले तुम दोनों (अवोभिः) अपने सुरक्षाके साधनोंसे (परितक्म्यायां) रात्रीमें भी तैय्यार (स्यातां) रहो ॥ ६ ॥

[४५४] हे इन्द्रावरुण ! (गविषः) गायोंकी इच्छा करनेवाले हम (प्रभूती सु-आपी) प्रभावशाली और उत्तम बन्धूरूप (युवां इत्) तुम दोनोंके ही (पूर्व्याय अवसे परि) प्राचीन संरक्षणको चाहते हैं। (पितरा इव शंभू) मातापिताके समान सुखदायक (शूरा मंहिष्ठा) शूर और पूज्य तुम दोनोंको हम (प्रियाय सख्याय) प्रेमपूर्ण मित्रताके लिए (वृणीमहे) बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[४५५] (सुदानू) हे उत्तम फल देनेवाले इन्द्र और वरुण ! (युवयूः आजिं अवसे न) जिस तरह तुम्हारे भक्त संग्राममें संरक्षणके लिए तुम्हारे पास आते हैं उसी प्रकार (ताः वाजयन्तीः धियः) वे बलादि ऐश्वर्यकी कामना करती हुई हमारी बुद्धियां (वां जग्मुः) तुम्हारी तरफ जाती हैं। (गावः श्रिये सोमं उप न) जिस तरह गायें तेजको बढानेके लिए सोमके पास जाती हैं, उसी तरह (मे मनीषाः गिरः) मेरी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां (इन्द्रं वरुणं) इन्द्र और वरुणके पास (अस्थुः) जायें ॥ ८ ॥

[४५६] (मे) मेरी (द्रविणं इच्छमानाः इमाः मनीषाः) धनकी अभिलाषा करनेवाली ये बुद्धियां (इन्द्रं वरुणं उप अग्मन्) इन्द्र और वरुणके पास जाती हैं। (जोष्टारः वस्वः इव) जिसतरह धनके अभिलाषी जन धनीके पास जाते हैं, (श्रवसः भिक्षमाणाः रघ्वीः इव) अन्नकी भीख मांगनेवाले भिखारी जिस तरह दानियोंके पास जाते हैं उसीतरह मेरी स्तुतियां (ईं उप) इन इन्द्र और वरुणके पास (अस्थुः) जाती हैं ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वरुण ! हमारा हित करनेके लिए, पुत्रपौत्रोंकी प्राप्तिके लिए, उपजाऊ जमीन पर चिरकाल तक रहनेके लिए, तथा उत्तम प्रजोत्पादनके लिए तुम रात्रीके समय भी हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥

गायोंकी इच्छा करनेवाले हम अत्यन्त प्रभावशाली तथा उत्तम बन्धुके समान व्यवहार करनेवाले इन्द्र और वरुणकी सुरक्षाको चाहते हैं। मातापिताके समान सुखदायक, शूर और पूज्य तुम दोनोंको हम प्रेमपूर्ण मित्रताके लिए बुलाते हैं ॥ ७ ॥

हे उत्तम फल देनेवाले इन्द्र और वरुण ! जिस तरह तुम्हारे भक्त संग्राममें संरक्षणके लिए तुम्हारे पास आते हैं, उसी तरह ऐश्वर्यकी कामना करनेवाली मेरी बुद्धियां तुम्हारे पास जाती हैं अथवा जिस प्रकार सोमका तेज बढानेके लिए उसमें गायका दूध दही मिलाया जाता है, उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतियां इन्द्र और वरुणसे जाकर मिलें ॥ ८ ॥

धनकी अभिलाषा करनेवाले मेरी प्रार्थनायें इन इन्द्र और वरुणके पास उसी तरह जाती हैं, जिस तरह धनके अभिलाषी जन धनीके पास जाते हैं या अन्नकी भीख मांगनेवाले भिखारी दानीके पास जाते हैं ॥ ९ ॥

४५७ अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टे-र्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभि-रस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥ १० ॥
४५८ आ नो बृहन्ता बृहतीभिरूती इन्द्र यातं वरुण वाजसातौ ।
यद् दिद्यवः पृतनासु प्रक्रीळान् तस्य वां स्याम सनितार आजेः ॥ ११ ॥

[४२]

[ऋषिः- त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः । देवता- त्रसदस्युः, ७-१० इन्द्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४५९ मम द्विता राष्ट्रं क्षत्रियस्य विश्वायोर्विश्वे अमृता यथा नः ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ १ ॥
४६० अहं राजा वरुणो मह्यं ता-न्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥ २ ॥

अर्थ— [४५७] हम (त्मना) अपने सामर्थ्यसे ही (अश्व्यस्य) घोडोंके समूहोंके, (रथ्यस्य) रथके समूहोंके (पुष्टेः) पोषक पदार्थोंके तथा (नित्यस्य रायः) हमेशा रहनेवाले ऐश्वर्यके (पतयः स्याम) स्वामी हों । (चक्राणा ता) मन करनेवाले वे दोनों देव (नव्यसीभिः ऊतिभिः) अपने नवीनतम संरक्षणके साधनोंसे (अस्मत्रा) हमें (नियुतः रायः) घोडे आदि पशुओं और ऐश्वर्यसे (सचन्तां) संयुक्त करें ॥ १० ॥

[४५८] हे (बृहन्ता इन्द्र वरुण) महान् इन्द्र और वरुण ! तुम (वाजसातौ) युद्धमें (नः) हमारी सहायता करनेके लिये (बृहतीभिः ऊती) बडे बडे रक्षाके साधनोंसे सुसज्जित होकर हमारे पास (आ यातं) आओ । (यत् पृतनासु) जिन युद्धोंमें (दिद्यवः प्रक्रीळान्) तेजस्वी शस्त्रास्त्र खेलते हैं, (तस्य आजेः) उन युद्धोंमें हम (वां) तुम दोनोंकी कृपासे (सनितारः स्याम) ऐश्वर्यसे युक्त हों ॥ ११ ॥

[४२]

[४५९] (यथा विश्वे अमृताः नः) जिस प्रकार सभी देव मेरे हैं, उसी तरह (विश्व आयोः) सभी मनुष्यों पर अधिकार चलानेवाले (मम क्षत्रियस्य) मुझ रक्षकके (द्विता राष्ट्रं) दो तरहके राष्ट्र हैं । (देवाः) सभी देव (वरुणस्य क्रतुं सचन्ते) वरुणकी आज्ञानुसार चलते हैं । मैं (कृष्टेः) सभी मनुष्योंका तथा (उपमस्य वव्रेः) सब मनुष्यके पास रहनेवाले धनका (राजामि) राजा हूँ ॥ १ ॥

[४६०] (अहं) मैं ही (राजा वरुणः) राजा वरुण हूँ, देवगण (मह्यं) मेरे लिए ही (तानि प्रथमा असुर्याणि) उन श्रेष्ठ बलोंको (धारयन्त) धारण करते हैं । (देवाः वरुणस्य क्रतुं सचन्ते) देवगण वरुणकी आज्ञानुसार चलते हैं । मैं (कृष्टेः) मनुष्योंका और (उपमस्य) उनके पालके (वव्रेः) धनका (राजामि) स्वामी हूँ ॥ २ ॥

भावार्थ— हम स्वयं अपने प्रयत्नोंसे घोडोंके समूहोंके, रथके समूहोंके पोषक पदार्थोंके तथा शाश्वत रूपसे टिकनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी हों, तथा इन्द्र और वरुण भी अपने नवीनतम रक्षाके साधनोंसे युक्त होकर हमें घोडे आदि पशुओं और ऐश्वर्योंसे संयुक्त करें ॥ १० ॥

हे महान् इन्द्र और वरुण ! तुम युद्धमें आकर हमारी रक्षा करो । जिस युद्धमें तेजस्वी शस्त्रास्त्र खेल किया करते हैं, उस युद्धमें हम तुम्हारी कृपासे धनके भागी बनें ॥ ११ ॥

सभी देव उस परमात्माके अधीन हैं, तथा द्यु और पृथ्वी रूपी दो राष्ट्र भी उसीके हैं । इसी वरणीय परमात्माके आज्ञामें सब देव चलते हैं । वही परमात्मा सब मनुष्यों और उनके पास निहित धनोंका स्वामी है ॥ १ ॥

परमात्मा ही सर्वश्रेष्ठ राजा है । उसीके कारण सब देव अपना सामर्थ्य धारण करते हैं । चन्द्र सूर्यादि देव उसीके सामर्थ्यसे सामर्थ्यशाली हैं । सभी देव उसकी आज्ञामें चलते हैं । परमात्मा ही मनुष्योंका और उनके पास निहित धनोंका स्वामी है ॥ २ ॥

४६१ अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वो–र्वी गभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान् त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥ ३ ॥
४६२ अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावो–त त्रिधातु प्रथयद् वि भूम ॥ ४ ॥
४६३ मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥ ५ ॥
४६४ अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थो–भे भयेते रजसी अपारे ॥ ६ ॥

अर्थ— [४६१] (अहं इन्द्रः वरुणः) मैं इन्द्र और वरुण हूँ । (महित्वा उर्वी) अपनी महिमाके कारण विशाल (गभीरे) गहरे और (सुमेके ते रोदसी) सुन्दर रूपवाले वे दोनों द्यु और पृथिवी भी मैं ही हूँ । (विद्वान्) सब कुछ जाननेवाला मैं (त्वष्टा इव) त्वष्टाके समान (विश्वा भुवनानि सं ऐरयं) सब लोकोंको प्रेरणा देता हूँ । (च) और (रोदसी धारयं) दोनों द्यावापृथ्वीको धारण करता हूँ ॥ ३ ॥

[४६२] (अहं) मैंने (उक्षमाणाः अपः अपिन्वं) सींचने योग्य जलकी वृष्टि की । मैंने (ऋतस्य सदने) जलके स्थान द्युलोकमें (दिवं धारयं) सूर्यको स्थापित किया । (ऋतेन अदितेः पुत्रः ऋतावा) नियमानुसार अदितिका पुत्र बनकर मैंने विश्वको नियममें स्थापित किया । (उत) और (त्रिधातु भूम) तीन लोकोंवाली सृष्टि (वि प्रथयत्) विस्तृत की ॥ ४ ॥

[४६३] (सुअश्वाः वाजयन्तः नराः) उत्तम घोडोंवाले तथा संग्राम करनेवाले योद्धा (मां हवन्ते) मुझे बुलाते हैं । वे योद्धा (समरणे) संग्राममें (वृताः) शत्रुओंसे घिर जाने पर (मां हवन्ते) मुझे ही बुलाते हैं । (मघवा इन्द्रः अहं) ऐश्वर्यशाली व शक्तिशाली मैं (आजिं कृणोमि) संग्राम करता हूँ । (अभिभूति ओजाः) शत्रुओंको हरानेवाले तेजसे युक्त मैं (रेणुं इयर्मि) धूल उडाता हूँ ॥ ५ ॥

[४६४] (अहं ता विश्वा चकरं) मैंने ही उन सब लोकोंको बनाया है । (अप्रतीतं मा) कहीं भी न रुकने वाली गतिवाले मुझे (दैव्यं सहः नकिः वरते) दिव्य बल भी नहीं रोक सकता । (यत् मा सोमासः ममदन्) जब मुझे सोमरस आनन्दित करते हैं (यत् उक्था) जब स्तोत्र आनन्दित करते हैं, तब (उभे अपारे रजसी) दोनों अपार द्यु और पृथिवी (भयेते) भयभीत हो जाते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— परमात्मा ही इन्द्र और वरुण है । वही यह विशाल और अनन्त द्युलोक और पृथ्वी लोक है । वह सर्व ज्ञाता है । इसलिए वही परमात्मा प्रजापतिके रूपमें सब लोकोंको प्रेरणा देता है । वही सब लोकोंको धारण करता है ॥ ३ ॥

परमात्मा ही सींचने योग्य जलको बरसातके रूपमें बरसाता है । वही द्युलोकमें सूर्यको स्थापित करता है । वह अदितिका पुत्र होकर विश्वको नियममें रखता है और वही तीन लोकोंसे युक्त सृष्टिका विस्तार करता है ॥ ४ ॥

जब योधागण संग्राममें युद्ध करते हैं, तब वे अपनी रक्षाके लिए परमात्माकी ही प्रार्थना करते हैं, जब वे शत्रुसैनिकोंसे घिर जाते हैं, तब भी वे परमात्माकी शरणमें ही जाते हैं । वही परमात्मा ऐश्वर्यशाली और शक्तिशाली है, वही योधाओंमें स्थित होकर उन्हें शक्ति देता है, इसलिए मानों परमात्मा ही योधाओंके रूपमें युद्ध करता है ॥ ५ ॥

परमात्माने ही उन सब लोकोंको बनाया है । अप्रतिहत गतिवाला परमात्मा सब देवोंका भी देव है, इसलिए देवों का बल भी उसकी गतिको कुण्ठित नहीं कर सकता । जब उत्तम ज्ञान तथा उत्तम स्तुतियां इस परमात्माको प्रसन्न कर देती हैं, तो उस परमात्मासे प्राप्त शक्तिके आगे द्यु और पृथ्वी भी कांपने लगते हैं ॥ ६ ॥

×

४६५ विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥ ७ ॥

४६६ अस्माकमत्र पितरस्त आसन् त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम् ॥ ८ ॥

४६७ पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवम् ॥ ९ ॥

४६८ राया वयं ससवांसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः ।
तां धेनुमिन्द्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीम् ॥ १० ॥

अर्थ— [४६५] हे वरुण ! (तस्य ते) उस तेरी महिमाको (विश्वा भुवनानि विदुः) सभी भुवन जानते हैं। हे (वेधः) स्तोता ! तू [वरुणाय ता प्र ब्रवीषि) वरुणके लिए इन स्तुतियोंका गान कर । हे (इन्द्र) इन्द्र ! (त्वं वृत्राणि जघन्वान्) तूने वृत्रोंको मारा, इसलिए तू (शृण्विषे) प्रसिद्ध है । (त्वं) तूने (वृतान् सिन्धून् अरिणाः) ढकी या रुकी हुई नदियोंको प्रवाहित किया ॥ ७ ॥

[४६६] (दौर्गहे बध्यमाने) दुर्गहके पुत्रके बांध दिए जाने पर (ते सप्त ऋषयः) वे सात ऋषि (अस्माकं अत्र पितरः आसन्) हमारे यहां पालक बने। (ते) उन ऋषियोंने (अस्याः) इस स्त्रीको (इन्द्रं न वृत्रतुरं) इन्द्रके समान वृत्रका नाशक (अर्धदेवं) आधे देव (त्रसदस्युं) दस्यु अर्थात् दुष्टको भयभीत करनेवाले वीरको (आयजन्त) प्रदान किया ॥ ८ ॥

[४६७] हे (इन्द्रावरुणौ) इन्द्र और वरुण ! (पुरुकुत्सानी), पुरुकुत्साकी पत्नीने (वां) तुम दोनोंको (हव्येभिः नमोभिः) हवियोंसे और स्तुतियोंसे (अदाशत्) प्रसन्न किया । (अथ) इसके बाद (वृत्रहणं अर्धदेवं) वृत्रको मारनेवाले आधे देव (राजानं त्रसदस्युं) राजा त्रसदस्युको (अस्याः ददथुः) इस पत्नीको प्रदान किया ॥९॥

[४६८] हे (इन्द्रावरुण) इन्द्र वरुण ! (युवां ससवांसः) तुम दोनोंको नमस्कार करनेवाले (वयं) हम (राया मदेम) ऐश्वर्यसे आनन्दित हों । (हव्येन देवाः) हव्यसे देवगण आनन्दित हों, और (यवसेन गावः) जौ आदिसे गायें आनन्दित हों । (युवं) तुम दोनों (विश्वाहा) प्रतिदिन (नः) हमें (अनपस्फुरन्तीं तां धेनुं) उपद्रव न करनेवाली उस गायको (धत्तं) प्रदान करो ॥ १० ॥

भावार्थ— हे वरुण ! तेरी उस महिमाको सारे लोक जानते हैं, इसीलिए सभी स्तोता तेरी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! तूने वृत्रोंको मारा, इसीलिए तू प्रसिद्ध हुआ, और तूने वृत्रोंको मार कर रुकी हुई नदियोंको प्रवाहित किया ॥ ७ ॥

जब दुष्ट मनुष्य राष्ट्रमेंसे नष्ट होते हैं, तब ज्ञानीजन उस राष्ट्रका पालन करते हैं । तब उन ज्ञानियोंकी कृपासे राष्ट्रमें इन्द्रके समान शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा दुष्ट जनोंको भयभीत करनेवाले वीर पैदा होते हैं, जो देवोंके समान ही होते हैं ॥ ८ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! पुरुकुत्सकी पत्नीने हवियों और नमस्कारोंसे तुम्हें प्रसन्न किया । इसके बाद तुमने उस स्त्रीको वृत्रहन्ता त्रसदस्युको प्रदान किया ॥ ९ ॥

हे इन्द्र और वरुण ! तुम दोनोंको नमस्कार करनेवाले हम ऐश्वर्यसे आनन्दित हों । उसी तरह हमारे द्वारा दी गई हविसे देवगण और हमारे द्वारा दिए गए जौ आदि धान्य तथा तृणसे गायें प्रसन्न हों । तुम भी हमें रोज ऐसी गायें प्रदान करो कि जो उपद्रव करनेवाली न हों ॥ १० ॥

[४३]

[ऋषिः- पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । देवता- अश्विनौ । । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४६९ क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते ।
कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥ १ ॥
४७० को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहितावृणीत ॥ २ ॥
४७१ मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यू निन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥ ३ ॥
४७२ का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीके उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥ ४ ॥

---

[४३]

अर्थ— [४६९] (यज्ञियानां कतमः कः उ) पूजनीय देवोंमेंसे कौनसा देव (श्रवत्) हमारी प्रार्थना सुनेगा ? (कतमः देवः) इनमेंसे भला कौनसा देव (वन्दारु जुषाते) वन्दनीय स्तोत्रका मनःपूर्वक सेवन करता है ? (इमां) इस (सुष्टुतिं सुहव्यां) सुन्दर अच्छी (देवीं) दिव्य गुणोंवाली (प्रेष्ठां) अत्यन्त प्रिय स्तुतिको (अमृतेषु) अमरोंमें (कस्य हृदि श्रेषाम) भला किसके लिये हम करें ? ॥ १ ॥

[४७०] (कः मृळाति) कौन सुख देता है ? (देवानां) देवोंमें (कतमः आगमिष्ठः) भला कौनसा इधर आनेमें अत्यन्त आतुरता दर्शाता है ? (कतमः उ शंभविष्ठः) कौनसा देव सचमुच अत्यन्त सुखदायक है ? (कं आशुं द्रवत् अश्वं रथं आहुः) किसे भला शीघ्रगामी और दौडनेवाले घोडोंसे युक्त रथ है ऐसा कहते हैं (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (यं अवृणीत) जिसे स्वीकार कर चुकी ॥ २ ॥

[४७१] (दिव्या सुपर्णा) दिव्य तथा सुन्दर पर्णवाले और (दिवः आजाता) द्युलोकसे आनेवाले अश्विदेवो ! (शचीनां कया) अनेक शक्तियोंमेंसे भला किस शक्तिके कारण तुम (शचिष्ठा भवथः) अत्यन्त शक्तिमान् बन जाते हो ? (परितक्म्यायां) रात्रिमें (इन्द्रः न) इन्द्रके तुल्य तुम (शक्तिं) बल दर्शाते हो, (ईवतः द्यून्) आनेवाले दिनोंमें अर्थात् आगामी कालमें होनेवाले कार्योंके प्रति (मक्षु हि) बहुतही शीघ्र तुम (गच्छथः स्म) जाते हो ॥ ३ ॥

[४७२] हे (माध्वी दस्रा अश्विना) मीठे स्वभाववाले तथा शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (का उपमातिः) भला कौनसी उपमा (वां भूत्) तुम्हारे [गुणोंका वर्णन करनेके] लिए पर्याप्त होगी ? (कया हूयमाना) भला किस स्तुतिसे बुलानेपर (नः आगमथः) हमारे पास तुम आओगे ? (वां अभीके) तुम्हारे (महः त्यजसः चित्) बडे भारी क्रोधको (कः) भला कौन सहन करेगा ? (ऊती नः उरुष्यतं) रक्षाकी आयोजनासे हमें सुरक्षित रखो ॥ ४ ॥

भावार्थ— पूज्य देवोंमें ऐसा कौन है कि जो हमारी प्रार्थनाओंको सुनेगा ? हमारे वन्दनीय स्तोत्रोंको कौन मानेगा ? इस बातका विचार करके उस देवकी पूजा करनी चाहिए ॥ १ ॥

देवोंमें अश्विनी देव सुख देते हैं । ये ही देव सचमुच सुखकारक हैं । इसीलिए इन्हें सूर्यकी कन्याने वरण किया था ॥ २ ॥

हे अश्विनी देवो ! हमें बताओ कि तुम किन शक्तियोंके कारण शक्तिमान् हुए । तुम किस शक्तिसे युक्त होकर रात और दिन संचार करते हो ? ॥ ३ ॥

ये अश्विदेव मीठे स्वभाववाले और शत्रु विनाशक हैं । उनके गुणोंका वर्णन करनेके लिए कोई भी उपमा नहीं है । इनका क्रोध इतना भयंकर है कि उसे कोई सहन नहीं कर सकता ॥ ४ ॥

४७३ उरु वां रथः परि नक्षति द्या मा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन् यत् सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥ ५ ॥
४७४ सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन् ।
तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥ ६ ॥
४७५ इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४४]

[ऋषिः- पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

४७६ तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायु र्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥

अर्थ— [४७३] (वां उरु रथः) तुम दोनोंका विशाल रथ (यत्) जब (समुद्रात् वां आ अभिवर्तते) समुद्र-अन्तरिक्षमेंसे तुम्हारी ओर आता है, तब (द्यां परि नक्षति) द्युलोकमें चारों ओर चला जाता है, हे (माध्वी) मीठे अश्विदेवो ! (वां मधु) तुम्हारे मीठे रस हमको (मध्वा प्रुषायन्) मीठाससे भर देते हैं । (यत्) जब (वां पृक्षः) तुम्हारे अन्नोंको (सीं) सब जगहसे (पक्वा भुरजन्त) पके धान्य प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

[४७४] (वां अश्वान्) तुम्हारे घोडोंको (सिन्धुः ह) बडी भारी नदीने (रसया सिञ्चत्) रसीले जलसे सिञ्चित किया है । (अरुषासः) लाल रँगवाले (घृणा वयः) दीप्तिमान् और पक्षीके समान वेगवान् घोडे (परि ग्मन्) चारों ओर चले गये हैं, (वां तत्) तुम्हारा वह (अजिरं यानं) शीघ्रगामी रथ (सु चेति) भलीभाँति ज्ञात हो गया है, (येन) जिसकी सहायतासे (सूर्यायाः पती भवथः) तुम दोनों सूर्याके पति—पालनकर्ता बनते हो ॥ ६ ॥

[४७५] हे (वाजरत्ना नासत्या) बलरूप अन्न अपने पास रखनेवाले अश्विदेवो ! (यत् समना वां) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न अर्पण करता हूँ, (इयं सा सुमति) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे) हमें (सुख हो); (जरितारं युवं उरुष्यतं) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्रिक् ह श्रितः) तुम्हारी ओरही जा रही है ॥ ७ ॥

[४४]

[४७६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां तं) तुम्हारे उस (वसूयुं) धनसे पूर्ण (पुरुतमं) विशाल (गिर्वाहसं) भाषणोंको दूरतक पहुँचानेवाले (गोः संगतिं) गायोंसे युक्त करनेवाले (पृथुज्रयं रथं) विख्यात वेगवाले रथको (अद्य हुवेम) आज बुलाते हैं, (यः वन्धुरायुः) जो लट्ठवाला होकर (सूर्यां वहति) सूर्याको इष्ट स्थानपर पहुँचाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— अश्विनीकुमारोंका विशाल रथ अन्तरिक्षमें सर्वत्र संचार करता है । द्युलोकमें भी उसकी गति कहीं नहीं रुकती । इनकी स्तुति करने पर स्तोता मिठाससे परिपूर्ण हो जाता है । इन्हीं अश्विनौके कारण धान्य पक्व होते हैं । अश्विनौ सूर्य और चन्द्र हैं, जो अपनी किरणोंसे ओषधि वनस्पतियोंमें मीठा रस भरते और पकाते हैं ॥ ५ ॥

अश्विनीकुमारके घोडे अर्थात् सूर्यकी किरणें नदियों और तालावोंके जलोंमें अपने मुंह डालकर जल पीती हैं । मधुर जल उन किरणोंको सींचते हैं । ये किरणें तेजस्वी और पक्षीके तुल्य वेगवान् हैं । सूर्यका वह तेजस्वी रथ प्रातःकाल शीघ्र ही दिखलाई पडने लगता है ॥ ६ ॥

अश्विनौ देवोंकी पूजा करनेवालोंको ये देव उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं और उत्तम बुद्धिसे उन्हें सुख प्राप्त होता है । इस प्रकार ये दोनों देव स्तोताकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

अश्विनौ देवोंका रथ धनसे पूर्ण, विशाल, गायोंसे युक्त और सुप्रसिद्ध वेगवाला है । उसे हम अपनी तरफ बुलाते हैं ॥ १ ॥

४७७ युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
४७८ को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
४७९ हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥
४८० आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४७७] हे (दिवः नपाता अश्विना) द्युलोकको न गिरानेवाले अश्विदेवो ! (देवता युवं) देवतारूपी तुम दोनों (तां श्रियं) उस शोभाको (शचीभिः वनथः) शक्तियोंसे प्राप्त करते हो। (यत्) जब (ककुहासः) बडे भारी घोडे (वां) तुम्हें (रथे वहन्ति) रथपर बैठनेपर इष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं, तब (पृक्षः) अन्न (युवोः वपुः अभि सचन्ते) तुम दोनोंके शरीरको प्राप्त होते हैं, पुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

[४७८] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (रातहव्यः कः) हविर्भाग दे चुकनेपर भला कौन (अर्कैः) पूजनीय साधनोंसे (वां अद्य) तुम्हारी आज (ऊतये वा सुतपेयाय वा) संरक्षणके लिए या निचोडे हुए सोमको पीनेके लिए (करते) प्रशंसा करता है ? (पूर्व्याय ऋतस्य वनुषे वा) पूर्वकालीन सत्यधर्मकी प्राप्तिके लिए (नमः येमानः) नमन करता हुआ (आ ववर्तत्) अपनी ओर तुम्हें कौन प्रवृत्त करता है ॥ ३ ॥

[४७९] हे (पुरुभु नासत्या) बहुत प्रकारसे अपना अस्तित्व जतलानेहारे तथा सत्यपालक अश्विदेवो ! (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथपरसे (इमं यज्ञं) इस यज्ञके (उपयातं) समीप आओ, (मधुनः सोम्यस्य) मीठे सोमरसका (पिबाथः इत्) पान करो और (विधते जनाय) पुरुषार्थ करनेहारे लोगोंको (रत्नं दधथः) रत्न दो ॥ ४ ॥

[४८०] (दिवः पृथिव्याः) द्युलोकसे या भूलोकसे (नः अच्छ) हमारी ओर (हिरण्ययेन सुवृता रथेन) सुवर्णमय सुन्दर रथपरसे (आयातं) आओ, (देवयन्तः अन्ये) देवोंकी कामना करनेहारे दूसरे लोग (वां मा नियमन्) तुम्हें बीचमेंही न रोक रखें, (यत्) क्योंकि (पूर्व्या नाभिः) पर्वकालसे हमारा यह घर (वां) तुम्हें (सं ददे) भलीभाँति बद्ध कर चुका है। तुम्हारा संबंध हमसे पूर्वकालसे चला आया है ॥ ५ ॥

भावार्थ— देवत्वको प्राप्त हुए ये अश्विनीकुमार अपनी शक्तियोंके कारण ही शोभाको प्राप्त होते हैं। जब इनके पुष्ट घोडे उन्हें रथमें बैठाकर इनके इष्ट स्थानपर पहुंचाते हैं, तब भक्तोंके द्वारा दिए गए इनके शरीरोंको पुष्ट करते हैं ॥ २ ॥

हे अश्विनौ ! हवि दे चुकनेके बाद पूज्य साधनोंसे अपने संरक्षणके लिए कौन तुम्हारी पूजा करता है और सत्यधर्मकी प्राप्तिके लिए कौन तुम्हें प्रवृत्त करता है, इसका विचार तुम करो ॥ ३ ॥

हे अनेक प्रकारसे अस्तित्वमान् और सत्यके पालक अश्विदेवो ! तुम सोनेके रथसे इस यज्ञके समीप आओ। मीठे सोमरसका पान करो और पुरुषार्थी जनोंको रत्न दो ॥ ४ ॥

हे अश्विनौ ! द्युलोकसे या भूलोकसे हमारी तरफ सुन्दर सोनेके रथसे आओ। देवोंकी कामना करनेवाले लोग तुम्हें बीचमें ही न रोकें। तुम्हारा और हमारा सम्बन्ध पूर्वकालसे चला आ रहा है ॥ ५ ॥

४८१ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद् वामश्विना स्तोममावन् त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
४८२ इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥

[४५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

४८३ एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥ १ ॥
४८४ उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥ २ ॥

अर्थ—[४८१] हे (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशक अश्विदेवो! (नः नु) हमें जल्दीही (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) अनेक वीरोंसे युक्त प्रचण्ड धनको (अस्मे उभयेषु मिमाथां) हमारे दोनों दलोंमें दे डालो; (यत् वां स्तोमं) जब कि तुम्हारी स्तुतिको (नरः आवन्) नेताओंने सुरक्षित कर रखा है तथा (आजमीळ्हासः) अजमीळ्ह परिवारके लोग (सधस्तुतिं अग्मन्) मिलकर की जानेवाली प्रशंसामें सम्मिलित होनेके लिए आगये हैं ॥ ६ ॥

[४८२] हे (वाजरत्ना नासत्या) बलरूप अन्न अपने पास रखनेवाले अश्विदेवो! (यत् समना वां) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न अर्पण करता हूँ, (इयं सा सुमतिः) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे) हमें [सुख हो]; (जरितारं युवं उरुष्यतं) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्रिक् ह श्रितः) तुम्हारी ओरही जा रही है ॥ ७ ॥

[४५]

[४८३] (स्यः एषः) वह यह (भानुः उत् इयर्ति) सूर्य ऊपर आ रहा है, (अस्य दिवः सानवि) इस द्युलोकके ऊँचे विभागमें (परिज्मा रथः युज्यते) चारों ओर जानेवाला रथ जोता है; (अस्मिन् अधि) इसपर (त्रयः मिथुनाः पृक्षासः) तीन युगल अन्न रखे हुए हैं, (तुरीयः) चौथा (मधुनः दृतिः) मधुका पात्र (वि रप्शते) विविध प्रकारसे विराजित होता है ॥ १ ॥

[४८४] (उषसः व्युष्टिषु) उषाओंसे निकल आनेपर (मधुमन्तः पृक्षासः) मीठासरसे युक्त अन्न, (अश्वासः रथाः) घोडे तथा रथ (परिवृतं तमः) चारों ओरसे घिरा हुआ अंधकार (आ अप ऊर्णुवन्तः) पूर्णतया दूर हटाते हुए, (शुक्रं रजः) दीप्त तेजको (स्वः न) सूर्यके समान (आ तन्वन्तः) चारों ओर फैलाते हुए (वां उत् ईरते) तुम दोनोंको ऊपर उठाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे शत्रुविनाशक अश्विदेवो! हमें शीघ्रही अनेक वीरोंसे युक्त धन प्रदान करो ॥ ६ ॥

अश्विनौ देवोंकी पूजा करनेवालोंको ये देव उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं और उत्तम बुद्धिसे उन्हें सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार ये दोनों देव स्तोताकी रक्षा करते हैं ॥ ७ ॥

सूर्यका रथ आकाशमें जब ऊपर चढता है, तब द्युलोकके ऊंचे भागमें चारों ओर जानेवाला रथ जोडा जाता है सूर्यका रथ ऊंचे द्युलोकमें सर्वत्र जाता है। उस समय यज्ञशालामें सब तरफ अन्न और सोमके पात्र सुशोभित होते हैं ॥ १ ॥

जब उषायें प्रकाशित होती हैं, तब अन्धकार पूरी तरहसे दूर हो जाता है और सूर्य निकल आता है और दीप्त तेज सर्वत्र छा जाता है, तब अश्विनौ भी उन्नत होते दिनके समय या प्रातःकाल सूर्योदयके समय प्राण और अपान बलशाली होते हैं ॥ २ ॥

४८५ मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥ ३ ॥
४८६ हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥
४८७ स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥ ५ ॥
४८८ आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान् युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४८५] हे (अश्विना) अश्विदेवो! (मधुपेभिः आसभिः) मीठे रसको पीनेवाले मुखोंसे (मध्वः पिबतं) मीठा रस पीओ (उत) और (प्रियं रथं) प्यारे रथको (मधुने युञ्जाथां) मधु पानेके लिये घोडोंसे जोड दो। (वर्तनिं पथः) घरतकके मार्गको (मधुना आ जिन्वथः) मधुसे पूरी तरह भर देते हो (मधुमन्तं दृतिं वहेथे) मीठास भरे पात्रको तुम दोनों ढोते हो ॥ ३ ॥

१ 'दृतिं'— यह चमडेका पात्र है, पखाल, मशक,। सोमका रस इस चर्मपात्रमें भरकर रखते थे ऐसा इससे पता लगता है। मधुमन्तं दृतिं। मीठा सोमरस जिसमें भरा हुआ है ऐसा दृति, पखाल या मशक।

[४८६] (ये) जो (हंसासः, मधुमन्तः) हंसतुल्य, मीठाससे पूर्ण, (अस्रिधः हिरण्यपर्णाः) द्रोह न करनेवाले, सुवर्णके समान चमकनेवाले पत्तोंसे युक्त (उषर्बुधः उहुवः) प्रातःकाल जागनेवाले, दूरतक पहुँचानेवाले, (उदप्रुतः मन्दिनः) वेगसे जानेके कारण पसीनेके बूँदोंको टपकानेवाले, आनन्दित (मन्दिनिस्पृशः) हर्षित करनेवालेको छूनेवाले घोडे (वां) तुम्हें ले चलते हैं, इसलिए (मक्षः मध्वः न) मधुमक्खियाँ मधुकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसेही (सवनानि गच्छथः) हमारे सवनोंमें तुम जाते हो ॥ ४ ॥

[४८७] (यत्) जब (विचक्षणः तरणिः) बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाला मानव (निक्तहस्तः) हाथोंको स्वच्छ धोकर (मधुमन्तं सोमं अद्रिभिः सुषाव) मीठे सोम वनस्पतिको पत्थरोंसे कूटकर निचोड चुका हो, तब (प्रति वस्तोः) हर प्रातःकाल (मधुमन्तः स्वध्वरासः अग्नयः) मीठाससे पूर्ण, अच्छे हिंसारहित अग्रणी दीप्तिमान् अग्निसमान युक्त कार्योंसे लोग (उस्रा अश्विना जरन्ते) साथ रहनेवाले अश्विदेवोंकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[४८८] (शुक्रं रजः) प्रदीप्त तेजको (स्वः न) सूर्यके समान (आ तन्वन्तः) फैलाती हुई (अहभिः) दिनोंसे (दविध्वतः) अँधियारीको हटाती हुई (आकेनिपासः) समीप आ गिरनेवाली किरणें होती हैं; (अश्वान् युयुजानः) घोडोंको जोतता हुआ (सूरः चित् ईयते) विद्वान् भी संचार करता है। (स्वधया) स्वधासे—अपनी धारणाशक्तिसे (विश्वान् पथः) सभी मार्गोंको तुम (अनु चेतथः) अनुक्रमसे जतलाते हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अश्विनौ! मीठे रसको पीनेवाले मुखोंसे मीठा रस पीओ। अपने रथको भी मधु पानेके लिए जोड दो। तुम्हारे जानेके मार्ग मधुरतासे पूर्ण हों और मिठाससे भरे हुए पात्र तुम्हारे पास हों ॥ ३ ॥

अश्विनोकुमारोंके घोडे हंसके समान सफेद, मधुरतासे पूर्ण, द्रोह न करनेवाले, सोनेके समान चमकनेवाले, प्रातःकाल जागनेवाले, दूर तक पहुंचानेवाले और वेगवान् हैं। उन घोडोंवाले रथपर चढकर तुम यज्ञोंमें जाते हो ॥ ४ ॥

जब प्रातःकाल बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाला मनुष्य शुद्ध और पवित्र होकर मीठे सोमरसको निचोड चुकता है, तब प्रतिदिन प्रातःकाल हिंसा रहित कार्योंको करनेवाले तथा अग्निके समान तेजस्वी मनुष्य इन अश्विदेवोंको बुलाते हैं ॥ ५ ॥

४८९ प्र वा॑मवोचमश्विना धियं॒धा रथ॒: स्वश्वो॑ अ॒जरो॒ यो अस्ति॑ ।
येन॑ स॒द्यः परि॒ रजां॑सि या॒थो ह॒विष्म॑न्तं त॒रणिं॑ भो॒जमच्छ॑ ॥ ७ ॥

[४६]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- इन्द्रवायू, १ वायुः । छन्दः- गायत्री ।]

४९० अग्रं॑ पिबा॒ मधू॑नां सु॒तं वा॑यो॒ दिवि॑ष्टिषु । त्वं हि पू॑र्व॒पा असि॑ ॥ १ ॥

४९१ श॒तेना॑ नो अ॒भिष्टि॑भि॒र्नि॒युत्वाँ॒ इन्द्र॑सारथिः । वायो॑ सु॒तस्य॑ तृम्पतम् ॥ २ ॥

४९२ आ वां॑ स॒हस्रं॒ हर॑य॒ इन्द्र॑वायू अ॒भि प्रयः॑ । वह॑न्तु॒ सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

४९३ रथं॒ हिर॑ण्यवन्धु॒रमिन्द्र॑वायू स्वध्व॒रम् । आ हि स्थाथो॑ दिवि॒स्पृश॑म् ॥ ४ ॥

अर्थ—[४८९] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (धियंधाः) बुद्धिको धारण करनेवाला मैं (वां प्र अवोचं) तुम्हारे संबंधमें बहुत कुछ कह चुका हूँ, (यः स्वश्वः) जो अच्छे घोडोंवाला (अजरः रथः अस्ति) जीर्ण न होनेवाला रथ है, (येन) जिसपरसे (हविष्मन्तं तरणिं) हविसे युक्त तारण करनेवाले (भोजं अच्छ) तथा भोजन देनेवाले [यज्ञ] के प्रति (सद्यः) तुरन्त ही (रजांसि परि याथः) लोकोंको पारकर तुम चले जाते हो ॥ ७ ॥

[४६]

[४९०] हे (वायो) वायु ! (दिविष्टिषु) यज्ञोंमें बैठकर (मधूनां सुतं) मधुर सोमोंके निचोडे गए रसको (अग्रं पिब) सबसे पहले पी । (हि) क्योंकि (त्वं पूर्वपाः असि) तू सबसे पहले इन रसोंको पीनेवाला है ॥ १ ॥

[४९१] हे (वायो) वायुदेव ! (नियुत्वान्) उत्तम घोडोंवाला तू (इन्द्रसारथिः) इन्द्रको सारथि बनाकर (अभिष्टिभिः) अभिलाषा पूरा करनेके लिए (शतेन नः) सैंकडों घोडोंसे हमारे पास आ और (सुतस्य तृम्पतं) निचोडे गए सोमरसको पीकर तू और इन्द्र तृप्त होओ ॥ २ ॥

[४९२] हे (इन्द्रवायु) इन्द्र और वायु ! (वां सहस्रं हरयः) तुम दोनोंके हजारों घोडे (प्रयः अभिः) अन्नकी ओर जाते हैं वे तुम्हें (सोमपीतये) सोम पीनेके लिए (वहन्तु) ले आयें ॥ ३ ॥

[४९३] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु ! तुम दोनों (हिरण्यवन्धुरं) सोनेसे मढे हुए (सु अध्वरं) उत्तम यज्ञके साधक (दिविस्पृशं रथं) आकाशको छूनेवाले रथ पर (आ स्थाथः) आकर बैठते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— अश्विनों की किरणें अत्यन्त तेजस्वी, अन्धेरेको हटानेवाली और सर्वत्र प्रकाश करनेवाली हैं। तब विद्वान् अपने रथोंमें बैठकर संचार करते हैं और अपनी धारणा शक्तिसे सभी मार्गोंको प्रदर्शित करते हैं ॥ ६ ॥

इन अश्विदेवोंका रथ कभी जीर्ण न होनेवाला है। इन पर बैठकर अश्विदेव सभी लोकोंमें संचार करते हैं ॥ ७ ॥

यह वायुदेव देवोंमें सबसे पहले इन सोमरसोंको पीता है, इसलिए यज्ञोंमें सबसे पहले इस वायुको मधुर सोमोंका रस निचोडकर दिया जाता है ॥ १ ॥

हे वायो ! तू इन्द्रको अपना सारथि बनाकर उत्तम घोडोंसे हमारी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिए आ और तू तथा इन्द्र दोनों इन निचोडे गए सोमरसोंको पीकर तृप्त हो ॥ २ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके हजारों घोडे अन्नकी ओर जाते हैं। वे तुम दोनोंको सोम पीनेके लिए हमारी ओर ले आयें ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुम दोनों सोनेसे मढे हुए, यज्ञको उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाले तथा बहुत ही ऊंचे रथपर आकर बैठते हो ॥ ४ ॥

४९४ रथे॑न पृ॒थु॒पाज॑सा दा॒श्वांस॒मुप॑ गच्छतम् । इन्द्र॑वायू इ॒हा ग॑तम् ॥ ५ ॥
४९५ इन्द्र॑वायू अ॒यं सु॒त॒स्तं दे॒वेभि॑ः स॒जोष॑सा । पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृ॒हे ॥ ६ ॥
४९६ इ॒ह प्र॒याण॑मस्तु वा॒मिन्द्र॑वायू वि॒मोच॑नम् । इ॒ह वां॒ सोम॑पीतये ॥ ७ ॥

[४७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- इन्द्रवायू, १ वायुः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

४९७ वायो॑ शु॒क्रो अ॑यामि ते॒ मध्वो॒ अग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु ।
आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता ॥ १ ॥
४९८ इन्द्र॑श्च वायवे॒षां सोमा॑नां पी॒तिम॑र्हथः ।
यु॒वां हि यन्तीन्द॑वो नि॒म्नमापो॒ न स॒ध्र्यक् ॥ २ ॥

अर्थ— [४९४] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु! (पृथुपाजसा रथेन) अत्यन्त बलशाली रथके द्वारा (दाश्वांसं) दान देनेवालेके (उपगच्छतं) पास जाओ। (इह आगतम्) इस यज्ञमें तुम दोनों आओ ॥ ५ ॥

[४९५] हे (इन्द्रवायू) इन्द्र और वायु! (अयं सुतः) यह सोमरस निचोडा गया है। (तं) उस सोमरसको (सजोषसा) परस्पर प्रीति करनेवाले तुम दोनों (दाशुषः गृहे) दानशीलके घरमें जाकर (देवेभिः पिबतं) देवोंके साथ मिलकर पियो ॥ ६ ॥

[४९६] हे (इन्द्रवायू) इन्द्रवायु! (वां इह प्रयाणं अस्तु) तुम दोनोंका इधर हमारी तरफ आगमन हो। (इह) यहां आकर (सोमपीतये) सोमपानेके लिए (वां विमोचनं) तुम दोनोंके घोडोंका विमोचन हो ॥ ७ ॥

[४७]

[४९७] हे (वायो) वायु! (शुक्रः) तेजस्वी मैं (दिविष्टिषु) यज्ञोंमें (मध्वः) इस मधुर रसको (ते) तुझे (अग्रं अयामि) सबसे पहले देता हूँ। हे (देव) देव! (स्पार्हः) कान्तिमान् तू (सोमपीतये) सोमपानेके लिए (नियुत्वता आ याहि) उत्तम घोडोंसे आ ॥ १ ॥

[४९८] (इन्द्रः च वायो) हे इन्द्र और वायु! तुम दोनों (एषां सोमानां पीतिमर्हथः) इन सोमरसोंका पान कर सकते हो। (आपः सध्र्यक् निम्नं न) जिसतरह जल इकट्ठे होकर नीचे स्थलकी तरफ बहते हैं, उसीतरह ये (इन्दवः) सोमरस (युवां हि यान्ति) तुम दोनोंकी तरफ दौडते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वायु! तुम दोनों अत्यन्त बलशाली रथसे दान देनेवाले मनुष्यके पास जाओ और उसके यज्ञमें जाकर सम्मिलित होओ ॥ ५ ॥

हे इन्द्र वायु! यह सोमरस तुम्हारे लिए निचोडा गया है। उस सोमरसको परस्पर प्रीति रखनेवाले तुम दोनों दाताके घर जाकर देवोंके साथ बैठकर पियो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र और वायु! तुम दोनों हमारी तरफ आओ और सोमपीनेके लिए हमारे यहां आकर यहां घोडोंको मुक्त करो ॥ ७ ॥

हे वायुदेव! तेजसे युक्त मैं यज्ञोंमें इस मधुर सोमरसको सबसे पहले तुझे देता हूँ। कान्तिसे युक्त तू सोमपीनेके लिए उत्तम घोडोंसे आ ॥ १ ॥

हे इन्द्र और वायु! तुम दोनों इन सोमरसोंका पान कर सकते हो। जिसतरह जल इकट्ठे होकर नीचे स्थलकी तरफ बहने लगते हैं, उसीतरह ये सोमरस तुम दोनोंकी तरफ दौडते हैं ॥ २ ॥

×

४९९ वायुविन्द्रश्च शुष्मिणां सरथं शवसस्पती ।
नियुत्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥ ३ ॥
५०० या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसे्न्द्रवायू नि यच्छतम् ॥ ४ ॥

[४८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- वायुः । छन्दः-अनुष्टुप् ।]

५०१ विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ १ ॥
५०२ निर्युवाणो अशस्ती्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [४९९] हे (वायो इन्द्रः च) वायो और इन्द्रदेव ! (शवसस्पती शुष्मिणा) बलोंके स्वामी अतएव अत्यन्त बलशाली (नियुत्वन्ता) उत्तम घोडोंसे सम्पन्न तुम दोनों (सरथं) एक ही रथ पर चढकर (नः ऊतये सोमपीतये) हमारी रक्षा करनेके लिए तथा सोम पीनेके लिए (आ यातं) आओ ॥ ३ ॥

[५००] हे (नरा यज्ञवाहसा इन्द्रवायू) नेतृत्व करनेवाले तथा यज्ञको सम्पन्न करनेवाले इन्द्र और वायु ! (वां) तुम दोनोंके (याः पुरुस्पृहः नियुतः सन्ति) जो बहुतोंके द्वारा चाहे जाने योग्य घोडे हैं, (ताः) उन घोडोंको (दाशुषे अस्मे) दान देनेवाले हमें (नि यच्छतम्) प्रदान करो ॥ ४ ॥

[४८]

[५०१] हे (वायो) वायुदेव ! (हो-त्राः) हवनसे रक्षण करनेवाले (अ-वीताः) अन्योंके द्वारा पहले न पिये गए इस सोमरसका (विहि) भक्षण करो । (विपः न) तू शत्रुओंको कंपानेवाले वीरके समान (अर्यः) स्तुति करनेवाले हमारे (रायः) धनैश्वर्यको बढा । तथा तू (चन्द्रेण रथेन) आल्हादकारक रथके द्वारा (सुतस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए (आ याहि) आ ॥ १ ॥

[५०२] हे (वायो) वायु ! (अशस्तीः) अवर्णनीय (निर्युवाणः नियुत्वान्) तारुण्यसे सम्पन्न घोडोंको नियुक्त करके तू (इन्द्रसारथिः) इन्द्रकी सहायता करते हुए अपने (चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी रथसे (सुतस्य पीतये) सोमपीनेके लिए (आ याहि) आ ॥ २ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और वायु ! बलोंके स्वामी तथा अत्यन्त बलशाली एवं उत्तम घोडोंवाले तुम दोनों हमारी रक्षा करने तथा सोम पीनेके लिए एक रथ पर बैठकर आओ ॥ ३ ॥

हे नेतृत्व करनेवाले तथा यज्ञको सम्पन्न करनेवाले इन्द्र और वायु ! तुम दोनोंके पास जो अत्यन्त उत्तम घोडे हैं, उन्हें दान देनेवाले हम लोगोंको प्रदान करो ॥ ४ ॥

हे वायु ! हवनके द्वारा जो लोगोंकी रक्षा करता है, तो जिसे अभी तक किसीने जूठा नहीं किया है, उस सोमरसका तू भक्षण कर । तू स्तुति करनेवाले हमारे धनैश्वर्यको बढा । और चमकते हुए रथसे सोम पीनेके लिए आ ॥ १ ॥

वायु प्राण है । उसका रथ शरीर है, उस शरीरमें वह इन इन्द्रियां रूपी घोडोंको जोडता है । तब इस तेजस्वी शरीर रूपी रथमें बैठकर वह प्राण इन्द्र अर्थात् आत्माके साथ संयुक्त होता है और तब वह सोम अर्थात् अमृततत्वका पान करता है ॥ २ ॥

५०३ अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ३ ॥
५०४ वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥ ४ ॥
५०५ वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ॥ ५ ॥

[४९]

[ऋषिः— वामदेवो गौतमः । देवता— इन्द्राबृहस्पती । छन्दः— गायत्री ।

५०६ इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ॥ १ ॥
५०७ अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥ २ ॥

अर्थ— [५०३] हे (वायो) वायु! (कृष्णे) आकर्षण शक्तिसे युक्त (वसुधिती) धनोंको धारण करनेवाली (विश्व पेशसा) अनेक रूपोंवाली ये द्यावापृथिवी तेरी ही (अनुयेमाते) अनुसरण करती हैं। तू (सुतस्य पीतये) सोम पीनेके लिए (चन्द्रेण रथेन) आल्हादकारक रथसे (आ याहि) आ ॥ ३ ॥

[५०४] हे (वायो) वायु! (त्वा) तुझे (मनोयुजः) मनसे जुडजानेवाले (युक्तासः) रथमें जोडे हुए (नवतिः नव) निन्यानवे घोडे (वहन्तु) ले जायें। तू भी (सुतस्य पीतये) सोमरसको पीनेके लिए (चन्द्रेण रथेन आ याहि) तेजस्वी रथसे आ ॥ ४ ॥

[५०५] हे (वायो) वायुदेव! तू (पोष्याणां) पोषणके योग्य, बलशाली (हरीणां शतं) सौ घोडोंको अपने रथमें (युवस्व) नियुक्त कर। (उत वा) और (ते) तेरा (सहस्रिणः रथः) हजार घोडोंवाला रथ (पाजसा) बलसे (आ यातु) आए ॥ ५ ॥

[४९]

[५०६] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति! (इदं प्रियं हविः) यह प्रिय हवि (वां आस्ये) तुम दोनोंके सामने समर्पितकी जाती है। (च) तथा ((मदः उक्थं शस्यते) आनन्ददायक स्तोत्र गाये जाते हैं ॥ १ ॥

[५०७] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति! (वां मदाय पीतये) तुम्हारे आनन्दके लिए तथा पीनेके लिए (अयं चारुः सोमः) यह सुन्दर सोम (परि षिच्यते) तैय्यार किया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— आकर्षण शक्तिसे युक्त धनोंको धारण करनेवाली तथा अनेक रूपोंवाली ये द्यावापृथिवी इसी प्राणसे जीवित रहती हैं। प्राणके कारण ही इन लोकोंमें जीवनशक्ति रहती है ॥ ३ ॥

इस प्राण की असंख्य शक्तियां हैं। निन्यानवे असंख्यताका द्योतक है। ये असंख्य शक्तियां शरीरमें रहती हैं और जब मनको इन शक्तियोंपर केन्द्रित किया जाता है, तब ये शक्तियां शरीरको प्रेरणा देती हैं ॥ ४ ॥

यह प्राण सबसे अधिक बलशाली, सबका पोषण करनेवाला तथा हजारों शक्तियोंसे सम्पन्न है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति! यह प्रिय हवि तुम दोनोंके लिए समर्पित की जाती है और आनन्ददायक स्तोत्र भी गाये जाते हैं ॥ १ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति! तुम्हारे आनन्दके लिए तथा पीनेके लिए यह सुन्दर सोम तैय्यार किया जाता है ॥ २ ॥

५०८ आ नं इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् । सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥
५०९ अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् । अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥ ४ ॥
५१० इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥
५११ सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥ ६ ॥

[५०]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- बृहस्पतिः, १०-११ इन्द्राबृहस्पती । छन्दः- त्रिष्टुप्, १० जगती ।]

५१२ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥

अर्थ— [५०८] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! (सोमपा) सोमपीनेवाला तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (सोमपीतये) सोमपीनेके लिए (नः गृहं आ गच्छतम्) हमारे घर आओ ॥ ३ ॥

[५०९] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! (अश्वावन्तं, शतग्विनं, सहस्रिणं) घोडोंसे युक्त, सैकडों गौओंवाले तथा हजारोंकी संख्यामें (अस्मे रयिं धत्तम्) हमें ऐश्वर्य दो ॥ ४ ॥

[५१०] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! (सुते) सोमके तैय्यार हो जानेपर (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमको पीनेके लिए (वयं गीर्भिः हवामहे) इस स्तुतियोंसे हमें बुलाते हैं ॥ ५ ॥

[५११] हे (इन्द्राबृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों (दाशुषः गृहे) दानशील मनुष्यके घरमें (सोमं पिबतं) सोमको पीओ और (तत् ओकसा) उसके घरको अपना ही समझकर (मादयेथां) तुम दोनों आनन्दित होओ ॥ ६ ॥

[५०]

[५१२] (त्रिषधस्थः यः बृहस्पतीः) तीनों लोकोंमें रहनेवाले जिस बृहस्पतिने (रवेण सहसा) अपने शब्द और बलसे (ज्मः अन्तान्) पृथिवीके अन्तिम प्रदेशों अर्थात् दिशाओंको (तस्तम्भ) आधार दिया, (तं मन्द्रजिह्वं) उस मधुरवाणीवाले बृहस्पतिको (प्रत्नासः ऋषयः) प्राचीन ऋषि तथा (दीध्यानाः विप्राः) तेजस्वी ज्ञानी (पुरः दधिरे) आगे स्थापित करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों सोमपान करनेके लिए हमारे घर आओ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों हमें घोडोंसे युक्त, सैंकडों गौओंवाले धनोंको हजारोंकी संख्यामें दो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! इस सोमके तैय्यार होजानेपर हम इस सोमको पीनेके लिए तुम्हें अपनी स्तुतियोंसे बुलाते हैं ५ ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों दानीके घरमें जाकर सोम पिओ और उसके घरको अपना ही समझकर वहां आनन्दित होवो ॥ ६ ॥

वाणीका अधिपति यह देव अपने बल तथा आवाजसे दसों दिशाओंको आधार देता है और उन्हें स्थिर करता है। इस वाणीके स्वामीकी सभी प्राचीन मंत्रद्रष्टा ऋषि और तेजस्वी ज्ञानी स्तुति करते हैं और हर काममें इसे आगे स्थापित करते हैं ॥ १ ॥

५१३ धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् । ॥ २ ॥

५१४ बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥

५१५ बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत् तमांसि ॥ ४ ॥

५१६ स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५१३] हे (बृहस्पते) वाणीके स्वामिन् ! (धुनेतयः) अपनी गतिसे शत्रुओंको भयभीत करनेवाले (ये नः) जो हमारे मनुष्य हैं, जो (सुप्रकेतं मदन्तः) उत्तम ज्ञानवाले तुम्हें आनन्दित करते हुए (अभिततस्रे) तेरी स्तुति करते हैं, (अस्य) उनके (पृषन्तं) फल प्रद (सृप्रं) उत्साह देनेवाले (अदब्धं) अजेय (ऊर्वं योनिं रक्षतात्) विशाल गृहकी रक्षा कर ॥ २ ॥

[५१४] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (परावत् या परमा) दूर पर जो अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान है, (अतः) वहांसे (आ) पास ही (ते ऋतस्पृशः नि षेदुः) ऋतको स्पर्श करनेवाली किरणें रह रही हैं । (तुभ्यं अद्रिदुग्धाः मध्वः) तेरे लिए पत्थरसे कूटकर निचोडे गए मधुर सोमरस (खाताः अवताः) गहरे कुंवेके समान (अभितः विरप्शं) चारों ओरसे शब्द करते हुए (श्चोतन्ति) चू रहे हैं ॥ ३ ॥

[५१५] (सप्तास्यः) सात मुखवाला (तुविजातः) अनेक तरहसे प्रकट होनेवाला तथा (सप्तरश्मिः) सात किरणोंवाला (बृहस्पतिः) बृहस्पति (महः ज्योतिषः परमे व्योमन्) महान् ज्योतिके स्थान परम आकाशमें (प्रथमं जायमानः) सबसे पहले प्रकट होकर (रवेण तमांसि वि अधमत्) अपनी ज्योतिसे अन्धकारका नाश करता है ॥ ३ ॥

[५१६] (सः) उस बृहस्पतिने (सुस्तुभा) उत्तम रीतिसे करनेवाले (स ऋक्वता गणेन) उसने तेजस्वी गणसे तथा (रवेण) शब्दसे (फलिगं वलं रुरोज) मेघ और वल नामक असुरको फोडा । (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (हव्यसूदः वावशतीः उस्रियाः) हव्य पदार्थोंको दुहनेवाली तथा रंभानेवाली गायोंको (कनिक्रदत् उत् आजत्) शब्द करते हुए मुक्त किया ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे वाणीके स्वामी बृहस्पते ! शत्रुओंको अपनी गतिसे भयभीत करनेवाले जो हमारे मनुष्य हैं । उनके हर तरहसे सुखदायक घर या शरीर की तू रक्षा कर । यह शरीररूपी गृह हर तरहके फलोंको देनेवाला है, उत्साहप्रद है, अयोध्या होनेसे अजेय है और अनन्त शक्तियोंसे परिपूर्ण होनेके कारण विशाल है ॥ २ ॥

हे सब जगत्के स्वामिन् देव ! सभी जगत्में तुम्हारे ही तेजकी किरणें फैल रही हैं । जहां दूर प्रदेशोंमें भी प्रकाश फैला हुआ दीखता है, वहां भी तेरी ही किरणें प्रकाश फैला रही हैं । इसी कारण तेरे लिए, जिसप्रकार एक गहरे कुंवेमें चारों ओरसे पानीका झरना झरता है, उसी तरह स्तुतियां की जाती हैं ॥ ३ ॥

इस मंत्रमें बृहस्पतिका वर्णन सूर्यके रूपमें किया गया है । सात रंगकी किरणें ही सूर्यके सात मुख हैं जिनसे वह रसोंको ग्रहण किया करता है । ऐसे सात मुखोंवाला वह सूर्य रूपी बृहस्पति द्युलोकमें प्रकाशित होता है । वह प्रतिदिन सबसे प्रथम प्रकट होता है और प्रकट होकर अन्धकारका नाश करता है ॥ ४ ॥

उस बृहस्पतिने उत्तम रीतिसे स्तुति करनेवाले तेजस्वी गणसे हर्षयुक्त शब्द करते हुए मेघों और वल नामक राक्षस को मारा । उन मेघों को फोडकर और पानी बरसाकर बृहस्पतिने हवनीय पदार्थोंको दुहनेवाली तथा रंभानेवाली गायोंको हर्षसे शब्द करते हुए मुक्त किया ॥ ५ ॥

५१७ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥
५१८ स इद् राजा प्रतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभि वीर्येण ।
बृहस्पतिं यः सुभृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम् ॥ ७ ॥
५१९ स इत् क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन् ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥ ८ ॥

अर्थ— [५१७] (एवा) इस प्रकार (पित्रे) सबका पालन करनेवाले (विश्वदेवाय) सम्पूर्ण देवोंके स्वामी (वृष्णे) बलवान् बृहस्पतिकी हम (यज्ञैः नमसा हविर्भिः) यज्ञोंसे, नमस्कारोंसे और हवियोंसे (विधेम) सेवा करें। हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (सुप्रजाः वीरवन्तः वयं) उत्तम प्रजाओं तथा पराक्रमसे युक्त हम (रयीणां पतयः स्याम) धनोंके स्वामी हों ॥ ६ ॥

[५१८] (यः बृहस्पतिं) जो राजा वाणीके स्वामी पुरोहितकी (पूर्वभाजं सुभृतं बिभर्ति) सबसे पहले उत्तम पोषक पदार्थोंसे सत्कार करता है (वल्गूयति वन्दते) स्तुति करता है और वन्दना करता है, (सः इत्) वही राजा (विश्वा प्रतिजन्यानि) सभी युद्धोंको (शुष्मेण वीर्येण) अपने बल और शक्तिसे (अभि तस्थौ) जीतता है ॥ ७ ॥

१ यः बृहस्पतिं वन्दते, सः इत् राजा विश्वा प्रतिजन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ— जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है।

[५१९] (यस्मिन् राजनि) जिस राजाके राज्यमें (ब्रह्मा पूर्वः एति) ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सबसे पूज्य होकर आगे चलता है, (सः इत्) वही राजा (सुधितः) अच्छी तरहसे तृप्त होकर (स्वे ओकसि) अपने घरमें (क्षेति) रहता है। (तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते) उसके राज्यमें भूमि प्रतिदिन पुष्ट होकर बढती जाती है, (तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुकती हैं ॥ ८ ॥

१ यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति— जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है।

२ सः इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति— वही राजा अच्छी तरहसे तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है।

३ तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते— उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है।

४ तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते— उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती हैं।

भावार्थ— यह बृहस्पति सबका पालन करनेवाला, सम्पूर्ण देवोंका स्वामी, बलवान् बृहस्पतिकी हम हवियोंसे सेवा करते हैं। उसकी कृपासे उत्तम प्रजाओं और पराक्रमसे युक्त हम धन ऐश्वर्योंके स्वामी हों ॥ ६ ॥

जो राजा अपने वेदज्ञ पुरोहितका सत्कार करता है, उसकी स्तुति करता है और वन्दना करता है, वही बलसे युक्त होकर सभी युद्धोंमें विजय प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

जिस राजाके राज्यमें हर काममें वेदज्ञ पुरोहितकी सलाह ली जाती है, उस राज्यमें सब प्रजायें सुखसे रहनेके कारण राजाका आदर करती हैं, वह राज्य धनधान्यसे समृद्ध होता है, वहांकी भूमि बडी उपजाऊ और पोषक पदार्थोंको उत्पन्न करनेवाली होती है। अतः वह राजा भी सभी तरहकी चिन्ताओंसे मुक्त होकर अपने घरमें सुखपूर्वक निवास करता है ॥ ८ ॥

५२० अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥ ९ ॥

५२१ इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पते ऽस्मिन् यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवो ऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १० ॥

५२२ बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः सचा सा वां सुमतिर्भूत्वस्मे ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधी र्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ११ ॥

अर्थ— [५२०] (यः राजा) जो राजा (अवस्यवे ब्रह्मणे) रक्षाके अभिलाषी ब्रह्मज्ञानी पुरोहितके लिए (वरिवः कृणोति) धनादि प्रदान कर उसकी रक्षा करता है, (तं देवाः अवन्ति) उस राजाकी देवगण रक्षा करते हैं। वह राजा (अप्रतिइतः) कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ (प्रतिजन्यानि धनानि) शत्रुओंके धनोंको (उत) और (या सजन्या) जो अपने सम्बन्धियोंके धन हैं, उन सबको (सं जयति) सम्यक् रीतिसे जीतता है ॥ ९ ॥

१ यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति— जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणकी धनादि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं।

२ सः अप्रतिइतः प्रतिजन्यानि सजन्या धनानि संजयति— वह राजा कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको भी जीतता है।

[५२१] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों ही (मन्दसानाः वृषण्वसू) आनन्दसे रहनेवाले तथा धनोंकी वर्षा करनेवाले हो। तुम दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (सोमं पिबतं) सोमको पिओ। (सु-आ-भुवः इन्दवः) हर तरहसे उत्तम सामर्थ्य प्रदान करनेवाले सोम (वां विशन्तु) तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट हों। (अस्मे) हमें तुम (सर्ववीरं रयिं नि यच्छतम्) हर तरहके वीर सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥ १० ॥

[५२२] हे (बृहस्पते इन्द्र) बृहस्पति और इन्द्र ! (नः वर्धतं) हमें बढाओ। (वां) तुम दोनोंकी (सा सुमतिः अस्मै सचा भूतु) वह उत्तम बुद्धि हमें एकसाथ प्राप्त हो। तुम दोनों हमारे (धियः अविष्टं) कर्मोंकी रक्षा करो, (पुरंधीः जिगृतं) बुद्धियोंको जागृत करो तथा (वनुषां) तुम्हारी भक्ति करनेवाले हमारे (अर्यः अरातीः) आक्रमणकारी शत्रुओंको (जजस्तं) नष्ट करो ॥ ११ ॥

भावार्थ— जो राजा रक्षाकी अभिलाषा करनेवाले ज्ञानी पुरोहितकी हरतरहसे रक्षा करता है, उसकी रक्षा देवगण करते हैं। देवोंसे रक्षित होकर वह राजा अपनोंके और शत्रुओंके धनोंको जीतता है ॥ ९ ॥

हे बृहस्पते तथा इन्द्र ! तुम दोनों सदा आनन्दमें रहनेवाले तथा धनोंकी वर्षा करनेवाले हो। तुम दोनों इस यज्ञमें सोमपान करो। सामर्थ्य प्रदान करनेवाले ये सोम तुम्हें सामर्थ्य प्रदान करें और तुम भी हमें उत्तम सन्तानोंसे युक्त ऐश्वर्यको प्रदान करो ॥ १० ॥

हे इन्द्र और बृहस्पति ! तुम दोनों हमें बढाओ। तुम दोनोंकी उत्तम बुद्धि हमें प्राप्त हो। तुम हमारे कर्मोंकी रक्षा करो, हमारी बुद्धियोंको जागृत करो तथा हम पर आक्रमण करनेवाले जो हमारे शत्रु हैं, उन्हें नष्ट करो ॥ ११ ॥

[५१]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

५२३ इदमु त्यत् पुरुतमं पुरस्ता-ज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभाती-र्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

५२४ अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्ता-न्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो-च्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

५२५ उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान् राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः सस-न्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

५२६ कुवित् स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

[५१]

अर्थ—[५२३] (इदं उ त्यत् पुरुतमं) यह निश्चयसे वह अत्यंत विशाल और (वयुनावत् ज्योतिः) ज्ञान देकर कर्म करानेवाला तेज (पुरस्तात् तमसः अस्थात्) पूर्व दिशामें अन्धकारमेंसे ऊपर आ रहा है। (नूनं) निःसंदेह ये (विभातीः दिवः दुहितरः उषसः) प्रकाशनेवाली द्युलोककी पुत्री उषाएँ (जनाय गातुं कृणवन्) लोगोंके लिए मार्ग कर रही हैं ॥ १ ॥

[५२४] (चित्राः उषसः पुरस्तात् अस्थुः उ) ये सुन्दर उषायें पूर्व दिशामें उसीतरह ऊपर खडी हो रही हैं। (अध्वरेषु मिताः स्वरवः इव) जिस तरह यज्ञोंमें यूप खडे होते हैं। वे उषाएँ (व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः) गौओंके बाडोंके अन्धकारमय द्वारोंको खोलती हैं और (शुचयः पावकाः अव्रन्) शुद्ध पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्यापती हैं ॥ २ ॥

[५२५] (अद्य) आज (उच्छन्तीः मघोनीः उषसः) प्रकाशनेवाली धनवाली उषाएँ (भोजान् राधोदेयाय चितयन्तः) भोजन देनेवालोंको धन देनेके लिये जगाती हैं। (अचित्रे तमसः विमध्ये अन्तः) एक जैसे अन्धकारके अन्दर (अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु) न जागनेवाले कंजूस बनिये सोते हैं ॥ ३ ॥

[५२६] हे (देवीः उषसः) दिव्य उषाओ ! (वः सनयः नवो वा सः यामः) तुम्हारा पुराना अथव नया वह रथ (अद्य कुवित् बभूयात्) आज बहुत बार चलता रहे। (येन रेवतीः) जिस रथसे तुम धनवाली उषायें (नवग्वे अंगिरे) नौ गौवोंवाले अंगिरसके लिये और (दशग्वे सप्तास्ये) दस गौवोंवाले सप्तास्यके लिये (रेवत् ऊष) धनयुक्त होकर प्रकाशती रहो ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह महान् और कर्मोंमें मनुष्योंको प्रवृत्त करनेवाला तेज पूर्व दिशामें अन्धकारमेंसे प्रकट हो रहा है। निस्सन्देह ये प्रकाशनेवाली उषायें लोगोंके लिए प्रगतिका मार्ग बता रही हैं ॥ १ ॥

ये विलक्षण प्रकाश देनेवाली उषायें पूर्वदिशामें ऊपर उठ रही हैं। गौओंके बाडोंके ढके हुए द्वार ये उषायें आकर खोलती हैं और अपने शुद्ध और पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्याप लेती हैं रात्रीके अन्धकारमें गायें अपने गोष्ठोंमें बन्द पडी रहती हैं, उषाके प्रकट होनेपर उन गोष्ठोंके द्वार खोल दिए जाते हैं ॥ २ ॥

आज अन्धकारको दूर करनेवाली ऐश्वर्यशाली उषायें धनीलोगोंको यज्ञके लिए धनका दान करनेके लिए जगाकर प्रेरित करें। जो न जागनेवाले कजूस बनिये हैं, वे गाढ अन्धकारमें सोते रहे। ऐसे कंजूस बनिये कभी भी ज्ञानसम्पन्न नहीं हो सकते, वे सदा ही अन्धकारमें ठोकर खाते फिरेंगे। जो यज्ञके कार्यके लिए अपना धन समर्पित करेंगे, वे उन्नति करेंगे और अदानशील व्यक्ति नष्ट हो जाएंगे ॥ ३ ॥

हे दिव्य उषाओ ! तुम्हारा रथ सदा चलता रहे। इस रथमें तुम धनोंको लादकर अनेक शक्तियोंवाले मनुष्यको ये धन प्रदान करो ॥ ४ ॥

५२७ यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः　परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं　द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्　॥ ५ ॥

५२८ क्व स्विदासां कतमा पुराणी　यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति　न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः　॥ ६ ॥

५२९ ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः　स्तुवञ्छंसन् द्रविणं सद्य आप　॥ ७ ॥

५३० ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्　समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना　गवां न सर्गा उषसो जरन्ते　॥ ८ ॥

अर्थ— [५२७] हे (देवीः उषसः) दिव्य उषाओ ! (यूयं हि ऋतयुग्भि' अश्वैः) तुम सीधे जोते जानेवाले घोडोंसे, (भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ) सब भुवनोंमें चारों ओर घूमती हो और (ससन्तं द्विपात् चतुष्पाद् जीवं) सोनेवाले द्विपाद् और चतुष्पाद् जीवोंको (चरथाय प्रबोधयन्तीः) घूमनेके लिये जगाती हो ॥ ५ ॥

[५२८] (यया ऋभूणां विधाना विदधुः) जिसके साथ ऋभुओंके कार्य हुए वह उषा (आसां पुराणी कतमा क स्वित्) इनमें पुरानी कौनसी और कहां है ? (यत् उषसः शुभ्राः शुभं चरन्ति) जब तेजस्वी उषाएं शोभा प्रकट करती हैं, तब (अजुर्याः सदृशीः न विज्ञायन्ते) नित्य नवीन होनेपर भी सदृश होनेसे कौन नूतन और कौन पुरानी है इसका पता नहीं चलता ॥ ६ ॥

[५२९] (ताः घ ताः भद्राः) वे निःसंदेह कल्याण करनेवाली (उषसः) उषाएं (पुरा आसुः) पूर्व समयमें हो चुकी हैं। वे (अभिष्टिद्युम्नाः) जाते ही धन देनेवाली और (ऋत-जात-सत्याः) सत्य और सरलतामें प्रसिद्ध हैं। (यासु ईजानः) जिन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला (उक्थैः शशमानः) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करनेवाला (स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणं आप) स्तवन और प्रशंसा करता हुआ तत्काल ही धन प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

[५३०] (ताः) वे उषाएं (पुरस्तात् समनाः) पूर्व दिशामें समान रीतिसे (आ चरन्ति) चारों ओर फैल रही हैं। (समनाः समानतः पप्रथानाः) वे समान उषाएं समान अन्तरिक्षके प्रदेशसे फैलती हैं। (ऋतस्य सदसः बुधानाः) यज्ञके स्थानको बताती हैं। ये (देवीः उषसः) दिव्य उषाएं (गवां सर्गाः न) गौवोंके समूहके समान (जरन्ते) प्रशंसित होती हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— ये दिव्य उषायें उत्तम घोडोंसे चलनेवाले रथोंसे भुवनोंको व्यापती हैं और सोनेवाले द्विपाद और चतुष्पाद् प्राणियोंको घूमनेके लिए जगाती हैं ॥ ५ ॥

अनेक उषायें जब आती है, तब उनमें कौनसी उषायें नई हैं और कौनसी पुरानी, यह जानना कठिन हो जाता है, क्योंकि सब उषायें एक जैसी दीखती हैं। सभी उषायें एक जैसी होती है ॥ ६ ॥

वे तेजस्वी सत्य यज्ञोंके प्रवर्तक अनेक उषायें पूर्व समयमें आचुकी हैं। इन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला स्तुति करता हुआ यज्ञ करनेके कारण पर्याप्त धन प्राप्त करता है ॥ ७ ॥

वे एक मनसे आनेवाली उषायें पूर्वदिशासे फैलती हैं और यज्ञके स्थानको प्रकाशित करती हैं ॥ ८ ॥

×

५३१ ता इन्न्वे३व समना समानी--रमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥ ९ ॥
५३२ रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १० ॥
५३३ तद् वो दिवो दुहितरो विभाती--रुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥ ११ ॥

[५२]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- उषाः । छन्दः- गायत्री ।]

५३४ प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

अर्थ— [५३१] (ता इत् नु एव उषसः) वे ही उषाएं (समनाः समानीः) समान एक रंगरूपवाली (अमीत-वर्णाः चरन्ति) अनेक रंगोंसे युक्त होकर संचार करती हैं। (अभ्वं असितं गूहन्तीः) विशाल अंधकारको ढक देती हैं और (रुशद्भिः तनूभिः) तेजस्वी शरीरोंसे (शुक्राः शुचयः रुचानाः) शुद्ध प्रकाशोंको चमका देती हैं ॥ ९ ॥

[५३२] हे (दिवः दुहितरः) द्युलोककी पुत्री उषाओं ! तुम (विभातीः देवीः) प्रकाशनेवाली देवियां हो (अस्मासु प्रजावन्तं रयिं यच्छत) हमें पुत्रपौत्रादि युक्त धन दो। (स्योनात् वः प्रतिबुध्यमानाः) सुखसे तुम्हारे द्वारा जागृत होनेवाले हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम वीरताके स्वामी हों ॥ १० ॥

[५३३] हे (दिवः दुहितरः उषसः) द्युलोककी पुत्री उषाओ ! (यज्ञ केतुः) यज्ञका ध्वज जैसा यज्ञकर्ता मैं (विभातीः वः तत् उपब्रुवे) प्रकाशनेवाली तुमसे वह कहता हूं कि (वयं जनेषु यशसः स्याम) हम सब लोगोंमें यशस्वी हों और (तत् द्यौः पृथिवी देवीः च धत्तां) वह हमारी इच्छा द्यौ और पृथिवी देवी सफल करें ॥ ११ ॥

[५२]

[५३४] (स्या सूनरी जनी) वह उत्तम नेतृत्व करनेवाली, फल देनेवाली और (स्वसुः परि व्युच्छन्ती) अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम समयमें प्रकाशती हुई यह (दिवः दुहिता प्रति अदर्शि) स्वर्गकन्या दीख रही है ॥ १ ॥

भावार्थ— ये उषायें अनेक रंगोंवाली अन्धकारको नष्ट करके प्रकाशको फैलाती हुईं अपने तेजस्वी शरीरोंसे शुद्ध पवित्र और तेजस्वी होकर विश्वमें संचार करती हैं ॥ ९ ॥

हे स्वर्गकी कन्याओं ! तेजस्वी देवियां तुम हमारे लिए पुत्र पौत्रोंको बढानेवाला धन दो। हम ज्ञानी और सुखी हों और उत्तम वीर्यके कार्य उत्तम रीतिसे सिद्ध हों। धनप्राप्तिके बाद हम आलसी न हों, हम अपने कार्यमें शिथिल न हों। हम उत्साहसे वीरताके काम करें ॥ १० ॥

हे स्वर्गकन्याओं उषाओ ! तुम प्रकाशफैला रही हो। इसलिए मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं विजयी, यशस्वी और कीर्तिमान् होऊं। द्यु और पृथिवी भी हमारी सहायता करें ॥ ११ ॥

यह स्वर्गीय कन्या उषा अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम भागमें प्रकाशित होती है और रात्रीके अन्धकारको दूर करती है। यह उत्तम नेतृत्व करती है और उत्तम सन्तान उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

५३५ अश्वे॑व चि॒त्रारु॑षी मा॒ता गवा॑मृ॒ताव॑री ।
सखा॑भूद॒श्विनो॑रु॒षाः ॥ २ ॥

५३६ उ॒त सखा॑स्य॒श्विनो॑रु॒त मा॒ता गवा॑मसि ।
उ॒तोषो॒ वस्व॑ ईशिषे ॥ ३ ॥

५३७ या॒व॒यद्द्वे॑षसं त्वा चिकि॒त्वित् सू॑नृतावरि ।
प्रति॒ स्तोमै॑रभुत्स्महि ॥ ४ ॥

५३८ प्रति॑ भ॒द्रा अ॑दृक्षत॒ गवां॒ सर्गा॒ न र॒श्मयः॑ ।
ओषा अ॑प्रा उ॒रु ज्रयः॑ ॥ ५ ॥

५३९ आ॒प॒प्रुषी॑ विभावरि॒ व्या॑वर्ज्योति॑षा॒ तमः॑ ।
उषो॒ अनु॑ स्व॒धामव ॥ ६ ॥

अर्थ— [५३५] (अश्वा इव चित्रा) घोडीके समान सुंदर (अरुषी) तेजस्विनी (गवां माता) किरणोंकी जननी (ऋतावरी) सरल कर्म करनेवाली (उषा अश्विनोः सखा अभूत्) यह उषा अश्विदेवोंकी सखी है ॥ २ ॥

[५३६] हे (उषः) उषा ! (उत अश्विनोः सखा असि) तू अश्विदेवोंकी सखी है, (उत गवां माता असि) और किरणोंकी माता है (उत वस्व ईशिषे) और तू धनकी स्वामिनी है ॥ ३ ॥

[५३७] हे (सूनृतावरि) मधुर भाषण करनेवाली उषा ! (यावयत्-द्वेषसं त्वां) शत्रुओंको दूर करनेवाली तू है ऐसी तुझ (चिकित्वत्) ज्ञानवतीको (स्तोमैः प्रति अभुत्स्महि) स्तोत्रोंसे हम जाग्रत करते हैं ॥ ४ ॥

[५३८] (भद्राः रश्मयः) कल्याणकारक किरणें (गवां सर्गाः न) गौओंके झुण्डके सदृश (अदृक्षत) दीख रही हैं, यह (उषाः) उषा (उरु ज्रयः आ अप्राः) विशेष तेजको सर्वत्र भर देती हैं ॥ ५ ॥

[५३९] (विभावरि उषः) चमकनेवाली उषा ! (आपप्रुषी) तेजसे जगत्को भर देनेवाली तू (ज्योतिषा तम वि आवः) प्रकाशसे अन्धकारको दूर करती है । (अनु स्वधां अव) पश्चात् तू अपनी धारक शक्तिका संरक्षण कर ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह उषा तेजस्विनी और प्रकाशवाली है । यह गौओं का हित करती है । माताके समान गौओंका पालन करती है । यज्ञको सिद्ध करनेवाली, सत्यका पालन करनेवाली तथा अश्विदेवोंसे मित्रता करनेवाली है ॥ २ ॥

हे उषा ! तू अश्विदेवोंकी हितकारिणी, गौओंकी माता और धनकी स्वामिनी है ॥ ३ ॥

हे मधुरभाषण करनेवाली उषा ! तू अपने मधुर भाषणसे शत्रुओंको दूर कर । ज्ञानवान् होकर सदा जागती रह ॥ ४ ॥

कल्याण करनेवाली किरणें इस तरह दीख रही हैं कि मानों गायें बन्धनसे मुक्त हुई हों । हे उषा ! तू इन किरणोंसे सर्वत्र प्रकाश भर दे ॥ ५ ॥

हे उषा ! तू सर्वत्र प्रकाश भर दे । प्रकाशसे अन्धकारको दूर कर और अपनी धारणाशक्तिको बढा और उसकी रक्षा कर ॥ ६ ॥

५४० आ द्यां तनोषि रश्मिभि॒रान्तरिक्षमु॒रु प्रि॒यम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥ ७ ॥

[५३]

(ऋषिः– वामदेवो गौतमः । देवता– सविता । छन्दः– जगती।)

५४१ तद् देवस्य सवितुर्वार्यं महद् वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान् देवो अक्तुभिः ॥ १ ॥
५४२ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापतिः पिशङ्गं द्रापिं प्रति मुञ्चते कविः ।
विचक्षणः प्रथयन्नापृणन्नुर्व॒जीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्यम् ॥ २ ॥
५४३ आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे ।
प्र बाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन् प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ ३ ॥

अर्थ— [५४०] हे (उषः) उषा ! (रश्मिभिः द्यां आ तनोषि) किरणोंसे द्युलोकको भर देती है तथा (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध प्रकाशसे (प्रियं उरु अन्तरिक्षं आ) प्रिय विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर देती है ॥ ७ ॥

[५३]

[५४१] हम (असुरस्य प्रचेतसः) प्राणशक्तिके दाता तथा बुद्धिमान् (देवस्य सवितुः) सविता देवके (तत् वार्यं महत् वृणीमहे) उस वरणीय तथा महान् तेजकी अभिलाषा करते हैं। (येन) जिस तेजसे वह देव (त्मना) स्वयं ही (दाशुषे) दानशील मनुष्यके लिए (छर्दिः यच्छति) सुख प्रदान करता है। (नः तत्) हमें उस तेजको देता हुआ (महान् देवः) वह महान् देव (अक्तुभिः) रात्रीकी समाप्ति पर (उदयान्) उदय होता है॥ १ ॥

[५४२] (दिवः धर्ता) द्युलोकको धारण करनेवाला (भुवनस्य प्रजापतिः) सभी लोकोंकी प्रजाओंका पालन करनेवाला तथा (कविः सविता) ज्ञानी सविता देव (पिशंगं द्रापिं प्रति मुंचते) अपने सुनहरे कवचको उतारता है। (विचक्षणः) सर्वद्रष्टा वह सूर्य (प्रथयन् आपृणन्) अपने तेजको प्रकट करता हुआ तथा उस तेजसे सब लोकोंको पूर्ण करता हुआ (उरु उक्थ्यं सुम्नं) अत्यधिक स्तुत्य सुखको (अजीजनत्) उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

[५४३] (देवः) यह सविता देव (दिव्यानि रजांसि पार्थिवा) द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा पृथ्वीलोकको (आप्राः) अपने तेजसे भर देता है । तथा (स्वाय धर्मणे) अपने इस कर्मके कारण (श्लोकं कृणुते) प्रसिद्धि प्राप्त करता है। वह (सविता) सविता देव (जगत्) जगत्को (अक्तुभिः निवेशयन्) रातके समय सुलाता हुआ तथा (प्रसुवन्) दिनमें सबको प्रेरणा देता हुआ (सवीमनि) उषःकालमें (बाहु प्र अस्राक्) अपनी किरणोंको फैलाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे उषः ! तू अपनी किरणोंसे आकाशको भर दे । अपने तेजस्वी प्रकाशसे विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर दे। सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश कर दे ॥ ७ ॥

हम प्राणशक्तिके देनेवाले तथा बुद्धिमान् उस सविता देवके उस तेजकी अभिलाषा करते हैं, जिस तेजसे वह देव दानशील मनुष्यके लिए सुख प्रदान करता है। उस तेजको हमें देता हुआ वह महान् देव रात्रीकी समाप्ति पर उदय होता है ॥ १ ॥

द्युलोकको धारण करनेवाला तथा सभी लोकोंकी प्रजाओंका पालन करनेवाला यह ज्ञानी प्रेरक देव सूर्य अपने सुनहरे कवच अर्थात् सुनहरी किरणोंको प्रकट करता है। जब वह सूर्य प्रकट होता है, तब उसके तेजसे सभी लोक भर जाते हैं और उदय होते हुए सूर्यको देखकर सभी प्राणी सुख पाते हैं ॥ २ ॥

यह सविता देव द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकोंको अपने तेजसे भर देता है । अपने इस कामके लिए वह देव सर्वत्र विख्यात है । वह सबका प्रेरक देव सम्पूर्ण जगत्को रातके समय सुला देता है और दिनके समय उन्हें अपने अपने कामोंमें प्रेरित करता है । उषःकालमें वह अपनी भुजाओं अर्थात् किरणोंको प्रकट करता हैं ॥ ३ ॥

५४४ अदा॑भ्यो॒ भुव॑नानि प्र॒चाक॑श॒द् व्र॒तानि॑ दे॒वः स॑वि॒ताभि र॑क्षते ।
प्राखा॑ग्बा॒हू भुव॑नस्य प्र॒जाभ्यो॑ धृ॒तव्र॑तो म॒हो अज्म॑स्य राजति ॥ ४ ॥

५४५ त्रिर॒न्तरि॑क्षं सवि॒ता म॑हित्व॒ना त्री रजां॑सि परि॒भूस्त्रीणि॑ रोच॒ना ।
ति॒स्रो दिवः॑ पृथि॒वीस्ति॒स्र इ॑न्वति त्रि॒भिर्व्र॒तैर॒भि नो॑ रक्षति॒ त्मना॑ ॥ ५ ॥

५४६ बृ॒हत्सु॑म्नः प्रसवी॒ता नि॒वेश॑नो॒ जग॑तः स्था॒तुरु॒भय॑स्य॒ यो व॒शी ।
स नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता शर्म॑ यच्छत्व॒स्मे क्षया॑य त्रि॒वरू॑थ॒मंह॑सः ॥ ६ ॥

५४७ आग॑न् दे॒व ऋ॒तुभि॒र्वर्ध॑तु॒ क्षयं॒ दधा॑तु नः सवि॒ता सु॑प्र॒जामिष॑म् ।
स नः॑ क्ष॒पाभि॒रह॑भिश्च जिन्वतु प्र॒जाव॑न्तं र॒यिम॒स्मे समि॑न्वतु ॥ ७ ॥

अर्थ— [५४४] (अदाभ्यः) किसीसे न दबनेवाला यह (सविता देवः) सविता देव (भुवनानि प्रचाकशत्) सभी लोकोंको प्रकाशित करता है। वह (व्रतानि) सभी व्रतोंकी (अभि रक्षते) रक्षा करता है। (भुवनस्यः प्रजाभ्यः) सभी लोकोंकी प्रजाओंके हितके लिए वह (बाहू प्र अस्राक्) अपनी भुजाओंको फैलाता है। (धृतव्रतः) व्रतोंको धारण करनेवाला वह देव (महः अज्मस्य राजति) महान् जगत्का राजा है ॥ ४ ॥

[५४५] वह (सविता) सविता देव (अन्तरिक्षं त्रिः) अन्तरिक्षको तीन बार अपने तेजसे भरता है। (महित्वना) अपने महत्त्वसे (त्रिः रजांसि) तीनों लोकोंको भर देता है। (परिभूः) सर्वश्रेष्ठ वह सविता देव (त्रीणि रोचना) तीनों तेजस्वी स्थानोंको व्यापता है। वह (तिस्रः दिवः तिस्रः पृथिवीः इन्वति) तीनों द्युलोकको और तीनों पृथ्वीलोकोंको प्रेरणा देता है। वह (त्मना) स्वयं (त्रिभिः व्रतैः) तीन कर्मोंसे (नः अभि रक्षति) हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

[५४६] (यः बृहत्सुम्नः) जो बहुत सुखोंका दाता सविता (जगतः स्थातुः उभयस्य वशी) जंगम और स्थावर रूप दोनों जगतोंको अपने अधीन रखनेवाला (प्रसविता) सबको उत्पन्न करनेवाला तथा (निवेशनः) स्थिर रखनेवाला है, (सः सविता देवः) वह सविता देव (त्रिवरूथं शर्म) तीनों लोकोंका सुख (नः यच्छतु) हमें प्रदान करे। तथा (अस्मे अंहसः क्षयाय) हमारे पापोंका नाश करनेवाला हो ॥ ६ ॥

[५४७] (आगन् देवः) उदय होता हुआ सूर्य (ऋतुभिः नः क्षयं वर्धतु) सभी ऋतुओंमें हमारे सुखोंको बढाये। (सविता) वह सविता देव (नः) हमें (सुप्रजां इषं) उत्तम प्रजाओंसे युक्त अन्नको (दधातु) प्रदान करे। (सः) वह देव (क्षपाभिः अहभिः) रात और दिन (नः जिवन्तु) हमें समृद्धिसे तृप्त करे। तथा (अस्मे) हमें वह (प्रजावन्तं रयिं) प्रजासे युक्त ऐश्वर्यको (सं इन्वतु) प्रदान करे ॥ ७ ॥

भावार्थ— किसीसे न दबनेवाला यह सूर्य सभी लोकोंको प्रकाशित करता है, सभी तरहके कर्मोंकी यह रक्षा करता है। सभी प्राणियोंके हितके लिए यह अपनी भुजाओंको फैलाता है, और व्रतोंकी रक्षा करनेवाला यह देव महान् जगत्का राजा है ॥ ४ ॥

वह सविता देव अन्तरिक्षको प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालोंमें अपने तेजसे भर देता है। वह तेजस्वी देव द्यु, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों तेजस्वी स्थानोंको तेजसे भर देता है। वह अपने कार्योंसे हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

बहुत सुखोंका दाता यह सविता जंगम और स्थावर जगत्का ईश्वर होनेसे वह इन दोनों जगतोंको उत्पन्न करनेवाला तथा स्थिर करनेवाला है। वह देव हमारे पापोंको नष्ट करके हमें तीनों लोकोंका सुख प्रदान करे ॥ ६ ॥

उदय होता हुआ सूर्य सभी ऋतुओंमें हमारे सुखोंको बढाये। वह प्रेरक देव हमें उत्तम प्रजाओंसे युक्त अन्नको प्रदान करे। वह देव रातदिन हमें समृद्धिसे युक्त करे तथा प्रजायुक्त ऐश्वर्य प्रदान करे ॥ ७ ॥

[५४]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- सविता । छन्दः- जगती, ६ त्रिष्टुप् ।]

५४८ अभूद् देवः सविता वन्द्यो नु न इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥ १ ॥
५४९ देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे ऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ २ ॥
५५० अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥ ३ ॥
५५१ न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद् यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरि र्वर्ष्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥ ४ ॥

---

[५४]

अर्थ— [५४८] (नः वन्द्यः सविता देवः अभूत्) हमारे लिए वन्दनीय सविता देव उदय हो रहा है। (यः मानवेभ्यः रत्ना वि भजति) जो मनुष्योंको रत्न प्रदान करता है, तथा जो (अत्र) इस जगत्में (नः) हमें (श्रेष्ठं द्रविणं दधत्) श्रेष्ठ धन प्रदान करता है, वह (अह्नः इदानीं) दिनके इस भागमें (नृभिः उपवाच्यः भवति) मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय होता है ॥ १ ॥

[५४९] हे (सवितः) सविता देव ! तू (प्रथमं) सबसे पहले (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) पूज्य देवोंके लिए (अमृतत्वं सुवसि) अमृतत्वको प्रदान करता है फिर (उत्तमं भागं) यज्ञके उत्तम भागको प्रदान करता है (आत् इत्) इसके बाद ही (दामानं) देने योग्य धनोंको (वि ऊर्णषे) प्रकाशित करता है। तथा (मानुषेभ्यः) मनुष्योंको (अनुचीना जीविता) क्रमसे पुत्रपौत्रादिकोंको प्रदान करता है ॥ २ ॥

[५५०] हे (सवितः) सविता देव ! (दैव्ये जने) तुझ दिव्य देवके बारेमें (यत्) जो पाप हम (अचित्ती) अज्ञानतासे (दीनैः) दुर्बलताके कारण (दक्षैः) अभिमानके कारण (प्रभूती) ऐश्वर्यके अहंकारसे अथवा (पूरुषत्वता) मनुष्य होनेके कारण किया हो, (देवेषु च मानुषेषु च) जो पाप देवोंके बारेमें और मनुष्योंके बारेमें किया हो, (त्वं) तू (नः) हमें (अनागसः) उस पापसे रहित (सुवतात्) कर ॥ ३ ॥

[५५१] (यथा भुवनं धारयिष्यति) जिससे सारे भुवनोंको धारण करता है, (सवितुः दैव्यस्य तत्) सविता देवकी वह शक्ति (न प्रमिये) कभी नष्ट नहीं होगी। (सु अंगुरिः) कुशल हाथोंवाले इस सविताने (यत् पृथिव्याः वरिमन्) जो पृथिवीको विस्तृत रूपसे (सुवति) उत्पन्न किया, तथा (दिवः वर्ष्मन्) द्युलोकको विस्तृत रूपसे उत्पन्न किया, (अस्य तत् सत्यं) इस सविता देवका वह कर्म सत्य है ॥ ४ ॥

भावार्थ— सबके द्वारा वन्दनाके योग्य वह सूर्य उदय होकर मनुष्योंको उत्तम उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसीलिए वह सभी मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय होता है ॥ १ ॥

सूर्योदयके समय जो यज्ञ किया जाता है, उस यज्ञका अमृततत्व और उत्तम भाग यह सूर्य देवोंको प्रदान करता है। इसके बाद उस यज्ञ करनेवालेको उत्तम धन तथा पुत्रपौत्रादि प्रदान करता है ॥ २ ॥

हे सविता देव ! तेरे विषयमें हमने यदि अज्ञान, दुर्बलता, अभिमान, ऐश्वर्य मद और मनुष्य होनेके कारण कोई अपराध कर डाला हो, इसीप्रकार जो अपराध हमने देवों और मनुष्योंके बारेमें किया हो, उन अपराधोंसे तू हमें मुक्त कर ॥ ३ ॥

जिस अपनी शक्तिसे यह सूर्यदेव भुवनोंको धारण करते हैं, उस शक्तिका नाश कभी नहीं होता। कुशल हाथोंवाले इस सूर्यने जो पृथ्वीको और द्युलोकको इतना विस्तृत बनाया, वह उसका कर्म भी कभी नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

५५२ इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥ ५ ॥
५५३ ये ते त्रिरहन् त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भि- रादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ ६ ॥

[५५]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ८-१० गायत्री ।]

५५४ को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्तात् को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥ १ ॥
५५५ प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान् वि यदुच्छान् वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥ २ ॥

अर्थ— [५५२] हे (सवितः) सविता देव ! तूने (इन्द्रज्येष्ठान्) इन्द्रको पूज्य और बडा माननेवाले हमें (बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः सुवसि) बडे बडे पर्वतोंकी अपेक्षा भी बडा बनाया । तू ही (एभ्यः) इन मनुष्योंको (पस्त्यावतः क्षयान्) घरसे युक्त स्थानोंको प्रदान करता है । ये किरणें (यथा यथा पतयन्तः) जैसे जैसे ऊपर जाती हुई (वियेमिरे) इस विश्वका नियमन करती हैं । वे भी किरणें (ते सवाय एव एव तस्थुः) तेरी आज्ञामें ही रहती हैं ॥ ५ ॥

[५५३] हे (सवितः) सविता ! (ये) जो मनुष्य (ते) तेरे लिए (दिवे दिवे) प्रतिदिन (त्रिः अहन्) तीन बार (सौभगं सवासः) उत्तम ऐश्वर्यको देनेवाले सोमको (आसुवन्ति) निचोडते हैं, उन (नः) हमारे लिए (इन्द्रः द्यावा पृथिवी) इन्द्र, द्यु, पृथिवी (अद्भिः सिन्धुः) जलसहित नदियां (आदित्यैः अदितिः) आदित्योंके साथ अदिति (शर्म यंसत्) सुख प्रदान करें ॥ ६ ॥

[५५]

[५५४] हे (वसवः) वसुओ ! (वः) तुममेंसे (कः त्राता) कौन रक्षा करनेवाला है ? (कः वरूता) कौन दुःखका निवारण करनेवाला है ? हे (अदिते द्यावाभूमी) अखण्डनीय द्यु और पृथ्वी ! (नः त्रासीथां) हमारी रक्षा करो । हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (सहीयसः मर्तात्) शक्तिशाली शत्रुसे भी हमारी रक्षा करो । हे (देवाः) देवो ! (वः कः) तुममेंसे कौन सा देव (अध्वरे वरिवः धाति) यज्ञमें धन प्रदान करता है ? ॥ १ ॥

[५५५] (ये) जो देव (पूर्व्याणि धामानि) प्राचीन और सनातन स्थानोंको प्रदान करते तथा (यत् वियोतारः अमूराः) जो दुःखनाशक तथा ज्ञानी देव (उच्छान्) अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं। वे (विधातारः) फल देनेवाले देव (अजस्राः) हमेशा (वि दधुः) उत्तम फल ही देते हैं। वे (ऋतधीतयः दस्माः) सच्चा पराक्रम करनेवाले तथा सुन्दर देव (रुरुचन्त) अत्यन्त तेजस्वी होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सविता देव ! तूने इन्द्रको पूज्य मानकर उसकी उपासना करनेवालोंको बडे बडे पर्वतोंसे भी बडा बनाया । इन मनुष्योंको तू घरसे युक्त स्थानोंको प्रदान करता है । इस सूर्यकी किरणें ज्यों ज्यों मध्याकाशकी तरफ बढती हैं, तैसे तैसे जगत्के सभी प्राणी अपने अपने कार्योंमें संलग्न हो जाते हैं । इसप्रकार सूर्यकी किरणें सब जगत्को वशमें रखती हैं, पर ये किरणें इस सविता देवकी आज्ञामें चलती हैं ॥ ५ ॥

हे सविता देव ! जो मनुष्य प्रतिदिन तीन सवनोंमें तीन बार उत्तम भाग्य देनेवाले सोमको निचोडते हैं, उन हमारे लिए इन्द्र, द्यु, पृथिवी, जलपूर्ण नदियां, आदित्योंके साथ अदिति सुख प्रदान करे ॥ ६ ॥

हे वसुओ ! तुममेंसे कौन रक्षण कर्ता और दुःख निवारक है ? हे अखण्डनीय द्यु और पृथ्वी ! तुम दोनों हमारी रक्षा करो । हे मित्र तथा वरुण ! तुम दोनों शक्तिशाली शत्रुसे भी हमारी रक्षा करो । हे देवो ! तुममेंसे ऐसा कौन सा देव है कि जो यज्ञमें धन प्रदान करता है ? ॥ १ ॥

५५६ प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥ ३ ॥
५५७ व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म नो यन्तममवद् वरूथम् ॥ ४ ॥
५५८ आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥ ५ ॥
५५९ नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो अप व्रन् ॥ ६ ॥

अर्थ— [५५६] (पस्त्यां अदितिं) सबको शरण देनेवाली अदितिको (सिन्धुं स्वस्तिं देवीं) नदी तथा कल्याण-कारिणी देवीको (सख्याय अर्कैः ईळे) उनकी मित्रता-प्राप्तिके लिए स्तोत्रोंसे स्तुति करता हूँ। (उभे अहनी) दोनों द्यावापृथिवी (नः यथा निपातः) हमारी जिस तरह रक्षा करते हैं, उसी तरह (अदब्धे उषासानक्ता) अहिंसनीय उषा और रात्री हमारी रक्षा (करतां) करें ॥ ३ ॥

[५५७] (अर्यमा वरुणः पन्थां वि चेति) अर्यमा और वरुण ये दोनों देव उत्तम मार्गको प्रकाशित करें। (इषः पतिः अग्निः) अन्नोंको पुष्ट करनेवाला अग्निदेव (सुवितं गातुं) सुखकारी मार्गको बताये। (इन्द्राविष्णू) इन्द्र और विष्णु (सु स्तवाना) अच्छीतरहसे प्रशंसित होकर (नृवत् अमवत् वरूथं शर्म) मनुष्योंसे युक्त तथा बलसे युक्त उत्तम सुख (नः यन्तं) हमें प्रदान करें ॥ ४ ॥

[५५८] मैं (पर्वतस्य मरुतां) पर्वत, मरुत् (त्रातुः भगस्य देवस्य) रक्षा करनेवाले भग देवकी (रक्षांसि) रक्षाओंकी (आ अव्रि) अभिलाषा करता हूँ। (पतिः) सबका पालक देव (नः जन्यात् अंहसः पातु) हमें मनुष्यों के प्रति होनेवाले पापसे बचाये। (उत) तथा (मित्रः) मित्र देव (मित्रियात् नः उरुष्येत्) मित्रभावसे हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

[५५९] हे (देवी रोदसी) देवी द्यावापृथ्वी! जिस तरह (सनिष्यवः संचरणे समुद्रं न) धन पाने की इच्छा करनेवाले लोग यात्रा करनेके लिए समुद्र की स्तुति करते हैं, उसी तरह मैं (अहिना बुध्न्येन) अहिर्बुध्न्यके साथ तुम्हारी (इष्टैः अप्येभिः) उत्कृष्ट हविर्द्रव्योंसे (स्तवीत) स्तुति करता हूँ। तुम (घर्मस्वरसः) जोरसे ध्वनि करने-वाली (नद्यः) नदियोंको (अपव्रन्) मुक्त कर दो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ये देव भक्तोंको सनातन स्थानोंको प्रदान करते हैं। दुःखनाशक तथा ज्ञानी देव अन्धकारको दूर करके सर्वत्र प्रकाश फैलाते हैं। वे फल देनेवाले देव सदा उत्तम फल ही प्रदान करते हैं। तब सच्चा पराक्रम करनेवाले तथा देखनेमें सुन्दर देव तेजसे युक्त होकर प्रकाशते हैं ॥ २ ॥

मैं सबको शरण देनेवाली अदिति, नदी तथा अन्य भी कल्याण करनेवाली देवियोंकी उनकी मित्रता प्राप्त करनेके लिए स्तुति करता हूँ। ये द्यु और पृथ्वी हमारी जिसतरह रक्षा करते हैं, उसीतरह उषा और रात्री भी हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

अर्यमा और वरुण ये दोनों देव उत्तम मार्गको प्रकाशित करें। उसीतरह अन्नोंको पुष्ट करनेवाला अग्निदेव सुखकारी मार्गको बताये। इन्द्र और विष्णु हमें मनुष्योंसे और बलसे भरपूर उत्तम सुख प्रदान करें ॥ ४ ॥

पर्वत, मरुत् और भगदेव हमारी रक्षा करें। हमने अन्य मनुष्योंके प्रति जो अपराध किया हो, उससे सबका पालन करनेवाला देव बचाये। सबसे स्नेह करनेवाला देव भी प्रेमभावसे हमारी रक्षा करे ॥ ५ ॥

हे द्यावापृथ्वी! जिस तरह धन पानेकी इच्छा करनेवाले व्यापारी यात्रा पर जानेसे पहले समुद्र की स्तुति करते हैं, उसी तरह मैं तुम्हारी उत्तम द्रव्योंसे पूजा करता हूँ। तुम दोनों प्रसन्न होकर कलकल ध्वनि करती हुई बहनेवाली नदियोंको बहनेके लिए मुक्त कर दो ॥ ६ ॥

५६० देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासि— मर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥ ७ ॥
५६१ अग्निरीशे वसव्यस्या— ऽग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥ ८ ॥
५६२ उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।
अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥ ९ ॥
५६३ तत् सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥ १० ॥

[५६]

[ऋषिः– वामदेवो गौतमः । देवता– द्यावापृथिवी । छन्दः– त्रिष्टुप्, ५–७ गायत्री ।]

५६४ मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ १ ॥

अर्थ— [५६०] (देवी अदितिः) देवी अदिति (देवैः) देवोंके साथ (नः नि पातु) हमारा पालन करे। (त्राता देवः) रक्षण करनेवाला देव (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करते हुए (त्रायतां) हमारी रक्षा करे। हम (मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः) मित्र, वरुण और अग्निके (सानु धासिं) उत्तम स्थानको (नहि प्रमियं अर्हामसि) नष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ७ ॥

[५६१] (अग्निः वसव्यस्य ईशे) अग्नि धनोंके समूहोंका स्वामी है। (अग्निः महः सौभगस्य) अग्नि महान् सौभाग्यका भी स्वामी है। वह (तानि) उन धनों और सौभाग्योंको (अस्मभ्यं रासते) हमें प्रदान करे ॥ ८ ॥

[५६२] हे (मघोनि सूनृते वाजिनीवति उषः) ऐश्वर्य युक्त, उत्तम वाणीवाली तथा बल देनेवाली उषे! तू (अस्मभ्यं) हमें (पुरु वार्या वह) बहुत सारा उत्कृष्ट धन दे ॥ ९ ॥

[५६३] (सविता भगः वरुणः मित्रः अर्यमा इन्द्रः) सविता, भग, वरुण, मित्र, अर्यमा और इन्द्र ये सभी देव (नः राधसा गमत्) हमारे पास ऐश्वर्यसे युक्त होकर आवें तथा (नः तत् सु) हमें वह धन सम्यक् रीतिसे प्रदान करें ॥ १० ॥

[५६]

[५६४] (यत्) जब (वरिष्ठे बृहती) बहुत श्रेष्ठ और विशाल द्यावापृथिवीको (सीं विमिन्वन्) चारों ओरसे घेरता हुआ (उक्षा) मेघ (पप्रथानेभिः एवैः) अत्यन्त विस्तृत तथा गतिमान् वायुओंसे प्रेरित होकर (रुवत्) शब्द करता है, तब (इह) यहां (ज्येष्ठे मही रुचा द्यावापृथिवी) ज्येष्ठ, विशाल और तेजस्वी द्यु और पृथिवी (शुचयद्भिः अर्कैः) तेजस्वी पूजाओंसे युक्त (भवतां) हों ॥ १ ॥

भावार्थ— देवी अदिति अन्य देवोंके साथ मिलकर हमारा पालन करे। रक्षण करनेवाला देव प्रमाद न करते हुए हमारी रक्षा करे। हम मित्र, वरुण और अग्निके श्रेष्ठ स्थानको नष्ट करनेमें समर्थ नहीं है ॥ ७ ॥

अग्नि सभी तरहके धनोंका तथा महान् सौभाग्यका भी स्वामी है। उन धनोंको वह हमें प्रदान करे ॥ ८ ॥

उषा ऐश्वर्यवाली, उत्तम वाणीसे युक्त तथा बलसे युक्त है। वह हमें बहुत सारा उत्कृष्ट धन देवे ॥ ९ ॥

सविता, भग आदि सभी देव हमारे पास आवें और हमें उत्कृष्ट धन प्रदान करें ॥ १० ॥

जब हवाओंसे प्रेरित होनेवाले मेघ इस द्यावापृथिवीको चारों ओरसे घेर लेते हैं, तब तेजसे युक्त इन दोनों लोकोंकी स्तुति सब प्राणी करते हैं ॥ १ ॥

×

५६५ देवी देवेभिर्यजते यजत्रै॒रमिनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावरी अद्रुहा देवपुत्रे यज्ञस्य नेत्री शुचयद्भिरर्कैः ॥ २ ॥
५६६ स इत् स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजान ।
उर्वी गभीरे रजसी सुमेके अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥ ३ ॥
५६७ नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥ ४ ॥
५६८ प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥ ५ ॥

अर्थ— [५६५] (यजत) यज्ञीय अर्थात् पूजनीय (अमिनती) किसीकी हिंसा न करनेवाली (उक्षमाणे) बलिष्ठ (ऋतावरी) यज्ञसे युक्त (अद्रुहा) किसीसे द्रोह न करनेवाली (देवपुत्रे) देवोंको उत्पन्न करनेवाली (यज्ञस्य नेत्री) यज्ञका सम्पादन करनेवाली, (देवी) तेजयुक्त देवियां द्यु और पृथ्वी (देवेभिः यजत्रैः शुचयद्भिः अर्कैः) दिव्य गुणोंसे युक्त, यज्ञके योग्य तेजस्वी स्तोत्रोंसे युक्त (तस्थतुः) हों ॥ २ ॥

[५६६] (यः इमे द्यावापृथिवी जजान) जिसने इन द्यावापृथिवीका निर्माण किया, (सः इत् सु अपाः) वही उत्तम कर्म करनेवाला है और वही (भुवनेषु आस) सारे भुवनोंमें व्याप्त है। उसी (धीरः) उत्तम बुद्धिको प्रदान करनेवाले देवने (सच्चा) अपनी कुशलतासे (उर्वी) विशाल (गभीरे) गंभीर (सुमेके) उत्तम रूपवाले (अवंशे) बिना किसी आधारके भी स्थिर रहनेवाले (रजसी) इन दोनों लोकोंको (सं ऐरत्) बनाया ॥ ३ ॥

१ यः इमे द्यावापृथिवी जजान सः इत् सु अपाः भुवनेषु आस—जिस परमात्माने इन द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन दोनों लोकोंमें व्याप्त है।

[५६७] हे (रोदसी) द्यु और पृथिवी ! (बृहद्भिः वरूथैः) महान् धनों और (पत्नीवद्भिः) पत्नियोंसे युक्त (नः) हमारी (इषयन्ती) हविकी इच्छा करनेवाली, (सजोषाः) परस्पर प्रेमसे रहनेवाली (उरूची) विशाल क्षेत्रवाली (विश्वे यजते) सबके द्वारा पूज्य तुम दोनों (नि पातं) रक्षा करो। हम भी (धिया) अपने उत्तम कर्म या बुद्धिसे (सदासाः रथ्यः स्याम) दास तथा रथोंसे युक्त हों ॥ ४ ॥

[५६८] हे द्यावापृथिवी ! (द्यवी) तेजस्वी (वां) तुम दोनोंके लिए (महि उपस्तुतिं) बडी बडी स्तुतियोंको (अभि प्र भरामहे) हम करते हैं। (प्रशस्तये) अपनी स्तुति सुननेके लिए (शुची) पवित्र तुम दोनों (उप) हमारे पास आओ ॥ ५ ॥

भावार्थ— पूज्य, किसीकी हिंसा न करनेवाली, बलिष्ठ, यज्ञयुक्त, किसीसे द्रोह न करनेवाली, देवोंको उत्पन्न करनेवाली, यज्ञको पूर्ण करनेवाली, तेजस्वी देवियां उत्तम स्तोत्रोंसे युक्त हों ॥ २ ॥

जिसने इन अगाध, अपार, विशाल उत्तम रूपवाले तथा बिना किसी आधारके स्थिर रहनेवाले इन दोनों लोकोंको बनाया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन लोकोंमें व्याप्त है ॥ ३ ॥

हे द्यावापृथिवी ! धनों और उत्तम पत्नियोंसे युक्त होकर घरमें आनन्दसे रहनेवाले हमारी तुम दोनों रक्षा करो। हम भी अपनी उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्मोंसे दास और रथोंको प्राप्त करें ॥ ४ ॥

हे द्यु और पृथिवी ! तेजसे युक्त तुम दोनोंके लिए हम उत्तम स्तुतियोंको करते हैं। अपनी स्तुति सुननेके लिए तुम दोनों यहां आओ ॥ ५ ॥

५६९ पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥
५७० मही मित्रस्य साधथ—स्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥ ७ ॥

[५७]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवताः- १-३ क्षेत्रपतिः; ४ शुनः; ५, ८ शुनासीरौ; ६-७ सीता ।
छन्दः- अनुष्टुप्; ५ पुर उष्णिक्; २, ३, ८ त्रिष्टुप् ।]

५७१ क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे ॥ १ ॥
५७२ क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूत—मृतस्य नः पतयो मृळयन्तु ॥ २ ॥

अर्थ— [५६९] हे द्यावापृथिवी ! (पुनाने) पवित्र करनेवाली (मिथः) तुम दोनों (तन्वं स्वेन दक्षेण) अपने रूप तथा बलसे (राजथः) सुशोभित होती हो । तुम दोनों (सनात् ऋतं ऊह्याथे) अनन्त कालसे यज्ञका सम्पादन करती हो ॥ ६ ॥

[५७०] (तरन्ती) दुःखसे तारती हुई (मही) विशाल तथा (ऋतं पिप्रती) यज्ञको पूर्ण करती हुई तुम दोनों, हे द्यु और पृथिवी ! (मित्रस्य साधथः) अपने मित्रकी अभिलाषाको पूर्ण करती हो । तथा (यज्ञं परि नि सेदथुः) यज्ञके चारों ओर बैठती हो ॥ ७ ॥

[५७]

[५७१] (हितेन इव) मित्रके समान हितकारी (क्षेत्रस्य पतिना) क्षेत्रपति की सहायतासे (वयं) हम (जयामसि) खेतोंको जीतें । (सः) वह क्षेत्रपति देव (नः) हमें (गां अश्वं) गाय और घोडोंको (पोषयित्नु) पुष्ट करनेवाला धन (आ) प्रदान करे, तथा (ईदृशे) ऐसे धनमें (मृळाति) हमें सुखी करे ॥ १ ॥

[५७२] हे (क्षेत्रस्य पते) क्षेत्रपति देव ! (धेनुः पयः इव) जिस प्रकार गाय दूध दुहती है, उसीतरह तू (मधुमन्तं ऊर्मिं पयः) मिठास और प्रवाहसे भरपूर जलको (अस्मासु धुक्ष्व) हमें दुह अर्थात् प्रदान कर । (ऋतस्य पतयः) सत्य कर्मोंका पालन करनेवाले देवगण (नः मृळयन्तु) हमें उसीतरह सुखी करें, (मधुश्चुतं सुपूतं घृतं इव) जिसतरह मिठास चुआनेवाले तथा अच्छी तरहसे पवित्र किए गए जल सुख देते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे द्यु और पृथ्वी ! सबको पवित्र करनेवाली तुम दोनों अपने रूप और बलसे सुशोभित होती हो, तथा अनन्त कालसे यज्ञका सम्पादन करती हो ॥ ६ ॥

दुःखसे पार करनेवाली विशाल तथा यज्ञको पूर्ण करती हुई तुम दोनों, हे द्यु और पृथिवी ! अपने भक्त की अभिलाषाओंको पूरा करती हो, तथा यज्ञको पूर्ण करती हो ॥ ७ ॥

मित्रके समान हित करनेवाले उस क्षेत्रपति देव की सहायतासे हम खेतोंको प्राप्त करें । वह देव हमें गाय और घोडोंको पुष्ट करनेवाला धन प्रदान करे और उन धनोंमेंसे हमें सुखी करे ॥ १ ॥

हे क्षेत्रके स्वामी भूमिके स्वामी देव ! जिस प्रकार एक गाय दूध देती है, उसी तरह तू मिठाससे भरपूर और प्रवाहसे युक्त जल प्रदान कर । अथवा जिसप्रकार मीठे और पवित्र शीतल जल प्यासे मनुष्यको सुख देते हैं, उसी तरह सत्य कर्मोंका पालन करनेवाले देवगण हमें सुख दें ॥ २ ॥

५७३ मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान् नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥
५७४ शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥ ४ ॥
५७५ शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद् दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥
५७६ अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥ ६ ॥

अर्थ— [५७३] (ओषधी) ओषधि वनस्पतियां (नः मधुमतीः) हमारे लिए मिठाससे भरपूर हों । (द्यावः आपः अन्तरिक्षं) द्यु, जल और अन्तरिक्ष (नः मधुमत् भवतु) हमारे लिए मधुर हों । (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) क्षेत्रका स्वामी भूमि देव हमारे लिए मधुरतासे युक्त हो, तथा (अरिष्यन्तः) किसी तरहसे हिंसित न होते हुए हम (एनं अनु चरेम) इस क्षेत्रपतिका अनुसरण करें ॥ ३ ॥

[५७४] (वाहाः शुनं) घोडे आदि वाहन हमारे लिए सुखकारी हों, (नरः शुनं) मनुष्य हमारे लिए सुखकारी हों, (लाङ्गलं शुनं कृषतु) हल सुखपूर्वक हमारे खेतोंको जोते । (वरत्रा शुनं बध्यन्तां) जुवे आदि सुखपूर्वक बांधे जायें (अष्ट्रां शुनं उत् इङ्गय) चाबुक भी मिठाससे युक्त होकर चलाये जायें ॥ ४ ॥

[५७५] हे (शुनासीरौ) शुना और सीर ! तुम दोनों (इमां वाचं जुषेथां) इस वाणीको सुनो, तुमने (दिवि यत् पयः चक्रथुः) द्युलोकमें जो जल उत्पन्न किया है, (तेन) उस जलसे (इमां उप सिंचतम्) इस भूमिको सींचो ॥ ५ ॥

शुना सीर— शुनः इन्द्रः सीरः वायुः इति शौनकः । शुनः वायुः सीरः आदित्यः इति निरुक्तः (नि ९, ४० ।)

[५७६] हे (सुभगे सीते) उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली भूमि ! (अर्वाची भव) हम पर कृपा करनेवाली हो । (त्वा वन्दामहे) तेरी हम वन्दना करते हैं, (यथा) ताकि तू (नः सुभगा अससि) हमें उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली हो (यथा) ताकि (नः सुफला अससि) उत्तम फलोंका देनेवाली हो ॥ ६ ॥

भावार्थ— ओषधी-वनस्पतियां हमारे लिए मिठाससे भरपूर हों । द्यु, जल और अन्तरिक्ष हमारे लिए मधुर हों । भूमि भी हमारे लिए मधुरतासे युक्त हो और हम किसी भी तरहसे हिंसित न होते हुए क्षेत्रपतिका अनुसरण करें ॥ ३ ॥

घोडे आदि वाहन हमारे लिए सुखकारी हों, मनुष्य हमारे लिए सुखकारी हों, हल सुखपूर्वक चलाये जाएं, जुवे आदि उत्तम रीतिसे बांधे जायें तथा बैलों पर चाबुक आदि जो उठाये जायें, वे अत्याचार करनेके लिए न होकर मिठाससे भरे हुए हों ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और वायु ! तुमने द्युलोकमें जिस उत्तम जलका निर्माण किया है, उस जलसे इस भूमिको सींचों ॥ ५ ॥

हे उत्तम ऐश्वर्यवाली भूमे ! तू हम पर कृपा कर । हम तेरी वन्दना करते हैं । तू हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्य देनेवाली तथा उत्तम फल देनेवाली हो ॥ ६ ॥

५७७ इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहा॒मुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥
५७८ शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥ ८ ॥

[५८]

[ऋषिः- वामदेवो गौतमः । देवता- अग्निः, सूर्यो वाऽऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा । छन्दः- त्रिष्टुप्, ११ जगती ।]

५७९ समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदार॒दुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥ १ ॥
५८० वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्या॒स्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद्गौर एतत् ॥ २ ॥

अर्थ— [५७७] (इन्द्रः सीतां निगृह्णातु) इन्द्र हलकी मूठ पकडे, (पूषा तां अनु यच्छतु) पूषा देव उसकी निगरानी रखे, तब (सा पयस्वती) वह भूमि उत्तम धान्य तथा जलसे भरपूर होकर (उत्तरां उत्तरां समां) प्रत्येक वर्ष (नः दुहां) हमारे लिए धान्यादि दुहे ॥ ७ ॥

[५७८] (फालाः नः भूमिं शुनं वि कृषन्तु) हलके फाल हमारी भूमिको सुखपूर्वक जोतें । (कीनाशाः वाहैः शुनं अभि यन्तु) किसान अपने बैलोंके साथ सुखपूर्वक चलें । (पर्जन्यः) मेघ (मधुना पयोभिः) अपने मिठास तथा जलोंसे (शुनं) हमारे लिए सुखकारी हो, तथा (शुनासीरा) इन्द्र और वायु ! (अस्मासु शुनं धत्तं) हमें सुख प्रदान करें ॥ ८ ॥

[५८]

[५७९] (समुद्रात् मधुमान् ऊर्मिः उत् आरत्) समुद्रसे मीठी लहर ऊपर उठी, वह (अंशुना) सोमके साथ (अमृतत्वं उप आनट्) अमरताको प्राप्त हुई । (घृतस्य यत् गुह्यं नाम अस्ति) घीका जो गुप्त नाम है, वही (देवानां जिह्वा) देवोंकी जीभ और (अमृतस्य नाभिः) अमृतकी नाभि है ॥ १ ॥

[५८०] (वयं) हम (घृतस्य नाम प्र ब्रवाम) घृतकी प्रशंसा करें । (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नमोभिः धारयाम) नमस्कारोंसे इसे धारण करें । (शस्यमानं ब्रह्मा उप शृणवत्) हमारे द्वारा गाये जानेवाले स्तोत्रोंको ब्रह्मा सुने । (चतुःशृंगः गौरः एतत् अवमीत्) चार सींगोंवाले गौरने इस जगत्को बनाया ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र भूमिको समृद्ध बनानेके लिए हल चलाये, पोषक देव पूषा भूमिकी निगरानी रखे । तब उत्तम धान्य एवं जलसे समृद्ध होकर वह भूमि हमें प्रति वर्ष उत्तम धान्य प्रदान करे ॥ ७ ॥

हलके फाल हमारी भूमिको अच्छी तरह जोतें, किसान अपने बैलोंके साथ सुखसे रहें । मेघ भी समय समय पर जल बरसाकर हमें सुख प्रदान करें, इसप्रकार इन्द्र और वायु हमें हरतरहसे सुखी करें ॥ ८ ॥

अध्यात्मपक्षमें— हृदयरूपी समुद्रसे जो लहरें उठती हैं, वे सोमके स्थान मस्तिष्कमें जाकर पहुंचती हैं । घृतका एक गुह्यनाम वीर्य भी है, यह वीर्य ही अमृततत्त्व है और यही वीर्य देवों अर्थात् इन्द्रियोंके लिए जिव्हा अर्थात् रस रूप है ॥१॥

हम इस वीर्यरूपी घृतकी प्रशंसा करें, इस जीवनरूपी यज्ञमें हम नम्र होकर इस वीर्यको धारण करें । इन हमारी स्तुतियोंको परमात्मा सुने । उसी चार वेद रूपी सींगोंवाले तेजस्वी परमात्माने इस जगत्को बनाया ॥ २ ॥

५८१ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ॥ ३ ॥
५८२ त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ४ ॥
५८३ एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ५ ॥

अर्थ— [५८१] (अस्य चत्वारि शृंगाः) इस देवके चार सींग (त्रयः पादाः) तीन पैर (द्वे शीर्षे) दो सिर और (अस्य सप्त हस्तासः) इसके सात हाथ हैं। यह (वृषभः) बलवान् देव (त्रिधा बद्धः) तीन स्थानोंपर बंधा हुआ (रोरवीति) शब्द करता है, वह (महः देवः) महान् देव (मर्त्यान् आ विवेश) मनुष्योंमें प्रविष्ट है ॥ ३ ॥

[५८२] (पणिभिः) पणियोंके द्वारा (गवि त्रिधा हितं) गायोंमें तीन प्रकारसे रखे हुए (गुह्यमानं घृतं) गुप्त घृतको (देवासः अनु अविन्दन्) देवोंने जान लिया। उनमेंसे (एकं इन्द्रः जजान) एकको इन्द्रने उत्पन्न किया, (एकं सूर्यः जजान) दूसरेको सूर्यने उत्पन्न किया, तथा (एकं) तीसरेको देवोंने (स्वधया) अपनी शक्तिके द्वारा (वेनात् निष्टतक्षुः) तेजस्वी अग्निसे पैदा किया ॥ ४ ॥

[५८३] (हृद्यात् समुद्रात्) रमणीय समुद्रसे (एताः) ये धारायें (शतव्रजाः) सैंकडों मार्गोंसे (रिपुणा न अवचक्षे) शत्रुकी दृष्टिमें न पडते हुए (अर्षन्ति) बह रही हैं। मैं (घृतस्य धाराः) घीकी इन धाराओं को (अभि चाकशीमि) देख रहा हूँ। (आसां मध्ये) इन घृतकी धाराओंके बीचमें (हिरण्ययः वेतसः) स्वर्णके समान तेजस्वी अग्नि है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्निपक्षमें— इस यज्ञकी अग्निके चारवेद चार सींग हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन सवन इसके तीन पैर हैं, ब्रह्मोदन और प्रवर्ग्य ये दो इसके सिर हैं, सात छन्द ही इस यज्ञाग्निके सात हाथ हैं, वह यज्ञाग्नि मंत्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन स्थानोंपर बंधा हुआ है। वह महान् देव अग्नि सब स्थानोंमें व्याप्त है। सूर्यपक्षमें— चार दिशायें इस सूर्यके चार सींग हैं, प्रातः, मध्याह्न और सायं ये तीन इस सूर्यके तीन पैर हैं, दिन-रात या दक्षिणायन-उत्तरायण ये दो सिर हैं, सातरंगकी किरणें इस सूर्यके साथ हाथ हैं। भूमि, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंमें बंधा हुआ यह सूर्यदेव शब्द करता है। ऐसा यह महान् देव सर्वत्र गमन करता है ॥ ३ ॥

पणियोंने घृतको दूध, दही और मक्खनके रूपमें गौमें छुपा दिया था। इस बातको विद्वानोंने जान लिया। इन्द्रने दूधको जाना, सूर्यने दहीको जाना और अग्निने घृतको जान लिया ॥ ४ ॥

हृदयरूपी समुद्रसे निकलकर सैकडों नाडियोंमें यह तेजरूपी घृतकी धारा बह रही है, पर इन धाराओंको कोई देख नहीं सकता, केवल मैं अर्थात् आत्मा ही इन्हें देख सकता है। आत्माकी देखरेखमें ही ये तेजकी धारायें नाडियोंमें बहा करती हैं। इन नाडियोंमें बहनेवाली धाराओंमें तेजस्वी अग्निकी शक्ति है। इसी अग्निके कारण ये नाडियां अपना काम करती हैं ॥ ५ ॥

५८४ सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ६ ॥
५८५ सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥ ७ ॥
५८६ अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ८ ॥
५८७ कन्याइव वहतुमेतवा उ अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत् पवन्ते ॥ ९ ॥

अर्थ— [५८४] (अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः) हृदयमेंसे निकलकर तथा मनके द्वारा पवित्रकी गई ये तेजकी धारायें (धेनाः सरितः न) आनन्द देनेवाली नदियोंके समान (सम्यक् स्रवन्ति) अच्छी तरह बहती हैं। (क्षिपणोः ईषमाणाः मृगाः इव) शिकारीसे डरकर भागनेवाले हिरणोंके समान (एते घृतस्य धाराः) ये घीकी धारायें (अर्षन्ति) तेजीसे बह रही हैं ॥ ६ ॥

[५८५] (प्र अध्वने सिन्धोः इव शूघनासः) नीची जगह पर बहनेवाले नदियोंके जलके समान शीघ्रगामी, (वातप्रमियः) वायुके समान बलशाली, (ऊर्मिभिः पिन्वमानः) लहरोंके कारण बढनेके कारण (अरुषः वाजी न काष्ठाः भिन्दन्) तेजस्वी घोडेके समान अपनी मर्यादाओंको तोडती हुई ये (घृतस्य यह्वाः धाराः) घृतकी बडी बडी धारायें (पतयन्ति) गिरती हैं ॥ ७ ॥

[५८६] जिसतरह (समना कल्याण्यः स्मयमानासः योषाः इव) समान मनवाली हितकारिणी, हंसती हुई स्त्रियां अपने पतियोंके पास जाती हैं, उसीप्रकार ये घृतकी धारायें (अग्निं अभि प्रवन्त) अग्निकी तरफ जाती हैं। (घृतस्य धाराः) ये घी की धारायें (समिधः नसन्त) प्रदीप्त हुई अग्निकी तरफ जाती हैं, (ताः जुषाणः) उन धाराओंका सेवन करता हुआ यह (जातवेदाः) अग्नि (हर्यति) आनन्दित होता है ॥ ८ ॥

[५८७] (यत्र सोमः सूयते) जहां सोमरस निचोडा जाता है, (यत्र यज्ञः) जहां यज्ञ होता है, (तत्) वहां (घृतस्य धाराः अभिपवन्ते) वहां ये घी की धारायें बहती हैं। (वहतुं एतवै उ) विवाहके लिए जानेवाली (कन्याः इव) कन्यायें जिसतरह (अञ्जि अञ्जानाः) अलंकार आदि धारण करके अपना तेज प्रकट करती हैं, उसीतरह इन धाराओंको मैं (अभि चाकशीमि) देखता हूँ ॥ ९ ॥

भावार्थ— हृदयमेंसे निकलनेवाली नाडियोंके अन्दर बहनेवाली रक्तरूपी तेजकी धारायें मनके उत्तम विचारोंसे पवित्र होकर बहती हैं। मनके विचारोंका परिणाम नाडियोंमें बहनेवाले रक्त पर भी पडता है। उत्तम विचारोंसे रक्त शुद्ध होता है और दुष्ट विचारोंसे अशुद्ध होता है ये रक्तकी धारायें नाडियोंमें इतनी तेजीसे बहती हैं कि जिस प्रकार किसी शिकारीसे डर कर हिरण भागते हैं ॥ ६ ॥

नाडियोंमें बहनेवाली रक्तकी धाराओंका वेग ऐसा है कि जिस तरह नीची जगह पर जलप्रवाह बहता है। ये धारायें वायुके वेगके समान शक्तिशाली हैं। कभी कभी जब इन रक्तकी धाराओंमें इतनी लहरें उठती हैं, कि ये अपनी मर्यादा को तोड देती है। कभी कभी मनुष्यको इतना हर्ष हो जाता है कि उसके शरीरमें रक्तकी लहरें बहुत बढ जाती है और रक्तका प्रवाह बहुत वेगवान् हो जाता है, तब नाडियां रक्तके वेगको सहनेमें असमर्थ हो जाती हैं, लिहाजा रक्त नाडियोंको फाडकर बहने लगता है ॥ ७ ॥

जिसतरह कल्याण करनेवाली, तथा अपने पति पर मन लगानेवाली स्त्रियां मुस्कराती हुई अपने पतियोंके पास जाती हैं, उसीतरह ये नाडियां अग्निरूपी आत्माके अधिष्ठान हृदयकी तरफ जाती हैं। ये धारायें जीवित हृदयकी तरफ ही जाती हैं, मृतकी तरफ नहीं, इन शुद्ध रसोंका सेवन करके शरीरस्थ आत्मा हर्षित होती है ॥ ८ ॥

५८८ अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजि–मस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत् पवन्ते ॥ १० ॥

५८९ धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रित–मन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृत–स्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ ११ ॥

॥ इति चतुर्थं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [५८८] हे मनुष्यो ! तुम देवोंके लिए (सुस्तुतिं अभि अर्षत) उत्तम स्तुतियोंको करो। हे देवो ! तुम (अस्मासु) हमें (गव्यं आजिं) गौसमूह, विजय, (भद्रा द्रविणानि धत्त) कल्याणकारी धनोंको प्रदान करो। (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (देवता नयत) देवों तक पहुंचाओ। (घृतस्य मधुमत् धाराः) घी की मीठी धारायें (पवन्ते) बह रही हैं ॥ १० ॥

[५८९] हे परमात्मन् ! (ते धामन्) तेरे ही तेजमें (विश्वं भुवनं अधिश्रितं) सारे भुवन आश्रित हैं। (यः) जो तेरे मधुररस (समुद्रे अन्तः) समुद्रके अन्दर (हृदि अन्तः) हृदयके अन्दर (आयुषि) अन्नमें (अपां अनीके) जलोंके अन्दर (समिथे) तथा संग्राममें (आभृतः) भरा पडा है, (ते तं मधुमन्तं ऊर्मिं) तेरे उस मधुरता से भरे रसको (अश्याम) हम भोगें ॥ ११ ॥

भावार्थ— जहां सोमरस निचोडे जाते हैं, जहां यज्ञ होता है, वहीं ये घी की धारायें बहती हैं। जिसतरह कन्यायें विवाहके लिए जाते समय अलंकारोंसे सजकर तेज बिखेरती चलती हैं, उसीतरह ये घृतकी धारायें तेजसे युक्त हैं ॥ ९ ॥

हे मनुष्यो ! तुम इन देवोंकी स्तुति करो। हे देवो ! तुम हमें गाय, विजय और कल्याणकारी धन प्रदान करो, तथा हमारे द्वारा किए जानेवाले यज्ञको देवोंतक पहुंचाओ। ये घीकी मीठी धारायें बह रही हैं ॥ १० ॥

हे परमात्मन् ! तेरे ही तेजमें ये सारे भुवन आश्रित हैं। तेरे ही तेजके कारण समुद्र, हृदय, अन्न, जलादि पदार्थोंमें मधुरतासे भरे रसोंकी लहरें उठ रही हैं, हम उस मधुर रसको प्राप्त करें ॥ ११ ॥

॥ चतुर्थ मण्डल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

चतुर्थ मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम-सूची

अकर्म ते स्वपसो ३९
अकारि ब्रह्म समिधान ९७
अक्षेदयच्छवसा क्षाम २२३
अग्निरीशे बृहतः १४१
अग्निरीशे वसव्यस्या ५६१
अग्निर्होता नो अध्वरे १५५
अग्ने कदा त आनुषम् ९९
अग्ने तमद्याऽश्वं न १२५
अग्ने मृळ महाँ असि ११७
अग्रं पिबा मधूनां ४९०
अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये ५५०
अच्छा कवि नृमणो १७३
अच्छा यो गन्ता नाधमानं ३१४
अच्छा वोचेय शुशुचानम् १९
अतृष्णुवन्तं वियतं २२२
अत्या वृधस्नू रोहिता २२
अत्राह ते हरिवस्ता २५९
अदाभ्यो भुवनानि ५४४
अध द्युतानः पित्रोः ८१
अध श्वेतं कलशं गोभिः ३०५
अधा मातुरुषसः ३५
अधा यथा नः पितरः ३६
अधा ह यद् वयं ३४
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य १२६
अनश्वो जातो अनभीशुः ४१०
अनायतो अनिबद्धः १४९,१५४
अनिरेण वचसा फल्ग्वेन ८५
अनु कृष्णे वसुधिती ५०३
अनु द्वा जहिता ३३४
अपो यदद्रि पुरुहूत १७२
अपो वृत्रं वव्रिवांसं १७१
अपोषा अनसः सरत् ३२५
अपो ह्येषामजुषन्त ३८७
अप्रतीतो जयति सं ५२०
अभि त्वा गोतमा ३६३
अभि प्र दद्रुर्जनयो २७४
अभि प्रवन्त समनेव ५८६
अभि न आ ववृत्स्व ३४३
अभी षु णः सखीनाम् २४२
अभूदु वो विधते ३९३
अभूद् देवः सविता ५४८
अभ्यर्षत सुष्टुतिं ५८८
अभ्रातरो न योषणो ७६
अमूरो होता न्यसादि ८८
अया ते अग्ने समिधा ७१
अयमिह प्रथमो धायि ९८
अयं वां परि षिच्यते ५०७
अयं चक्रमिषणत् १९९
अयं पन्था अनुवित्तः २०७
अयं योनिश्चकृमा यं ४२
अयं यः सृञ्जये पुरो १५८
अयं वृतश्चातयते १९४
अयं वो यज्ञ ऋभवः ३९२
अयं शृण्वे अध जयन् १९५
अरं म उस्रयाम्णे ३७८
अर्चामि ते सुमतिं ६४
अर्यमणं वरुणं मित्रं २४
अर्वाचीनो वसो भव ३६८
अर्वाची सुभगे भव ५७६
अवद्यमिव मन्यमाना २११
अव यच्छ्येनो अस्वनीत् ३०३
अवर्त्या शुन आन्त्राणि २१९
अव स्य शूराध्वनो १६६
अवासृजन्त जिव्रयो २२१
अवीवृधन्त गोतमा ३६६
अश्वेव चित्रारुषी ५३५
अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य ४५७
असिक्न्यां यजमानो २००
अस्युरु चित्रा उषसः ५२४
अस्मभ्यं तां अपा ३५२
अस्माकं जोष्यध्वरं १२३
अस्माकं त्वा मतीनां ३६९
अस्माकं धृष्णुया रथो ३५३
अस्माकमत्र पितरस्त ४६६
अस्माकमत्र पितरो १३

अस्माकमित् सु शृणुहि	२६२
अस्माकमुत्तमं कृधि	३५४
अस्मां अवन्तु ते शतं	३४९
अस्मां अविड्ढि विश्वहेन्द्र	३५१
अस्मां इन्द्रा वृणीष्व	३५०
अस्मे इन्द्राबृहस्पती	५०९
अस्मे रायो दिवेदिवे	११५
अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि	२९१
अस्य घा वीर ईवतो	१५९
अस्य श्रिये समिधानस्य	८६
अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य	६
अस्वप्नजस्तरणयः	६८
अस्वापयद् दभीतये	३३६
अहन्निन्द्रो अदहदग्निः	३०८
अहमपो अपिन्वं	४६२
अहमिन्द्रो वरुणस्ते	४६१
अहं ता विश्वा चकरं	४६४
अहं पुरो मन्दसानो	२९६
अहं भूमिमददामार्यायाऽहं	२९५
अहं मनुरभवं सूर्यः	२९४
अहं राजा वरुणो	४६०
आकेनिपासो अहभिः	४८८
आगन् देव ऋतुभिः	५४७
आगन्नृभूणामिह रत्नधेयम्	४०२
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्	३५५
आ तो यात दिवो	४८०
आ दधिक्राः शवसा	४३६
आ दस्युघ्ना मनसा	१७४
आदाय श्येनो अभरत्	३००
आदित् पश्चा बुबुधाना	१८
आविद्ध नेम इन्द्रियं	२७९
आ द्यां तनोषि	५४०
आ न इन्द्राबृहस्पती	५०८
आ न इन्द्रो दूरादा	२३१
आ न इन्द्रो हरिभिः	२३२
आ नपातः शवसो	३९५
आ नः स्तुत उप वाजेभिः	३११
आ नो बृहन्ता बृहतीभिः	५५८
आपप्रुषी विभावरि	५२९
आ पर्वतस्य मरुतां	५५८
आप्रा रजांसि दिव्यानि	५४३
आभिष्टे अद्य	१२८
आ यात्विन्द्रो दिव	२४४
आ यात्विन्द्रोऽवस उप	२४१
आ यूथेव क्षुमति	३८
आरे अस्मदमतिमारे	१३८
आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागात्	१५२
आ वाजा यातोप न	३९४
आ वां वहिष्ठा इह ते	१५३
आ वां सहस्रं हरय	४९२
आ वो राजानम्	४१
आशुं दधिक्रां तमु	४३७
आशुं दूतं विवस्वतो	१०१
आशृण्वते अदृपिताय	४३
आ सत्यो यातु मघवां	१६५
आ हि ष्मा याति	३१२
इदमु त्यत् पुरुतमं	५२३
इदमु त्यन्महि महां	८०
इदं वामास्ये हविः	५०६
इदं मे अग्ने क्रियते	५७
इदाह्नः पीतिमुत	३८९
इदं यस्मै जभरच्छश्रमाणो	१४०
इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः	५५२
इन्द्रमिवेदुभये वि	४४१
इन्द्रं कामा वसूयन्तो	१७९
इन्द्र परेऽवरे मध्यमास	२९३
इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु	५७७
इन्द्रवायू अयं सुतः	४९५
इन्द्रश्च वायवेषां	४९८
इन्द्रश्च सोमं पिबतं	५२१
इन्द्रा को वां वरुणा	४४८
इन्द्रा बृहस्पति वयं	५१०
इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युं	४५१
इन्द्रा युवं वरुणा भूत	४५२
इन्द्रा ह यो वरुणा	४४९
इन्द्रा ह रत्नं वरुणा	४५०
इमं यज्ञं त्वमस्माकं	५३३
इमा इन्द्रं वरुण मे	४५६
इह त्वं सूनो सहसो	२२
इह त्वा भूर्या चरेत्	१५
इह प्रजामिह रयिं	४१८
इह प्रयाणमस्तु वां	४९६
इहेह यद् वां समना	४७५,४८२
इहोप यात शवसो	४०१
ईशे रायः क्षयस्य	२३८
उच्छन्तीरद्य चितयन्त	५२५
उत ग्ना अग्निरध्वर	१२०
उत त्यं पुत्रमग्रुवः	३३१
उत त्या तुर्वशायदू	३३२
उत त्या यजता हरी	१६२
उत त्या सद्य आर्या	३३३
उत दास कौलितरं	३२९
उत दासस्य वर्चिनः	३३०
उत नूनं यदिन्द्रियं	३३८
उत माता महिषं	२१७
उत वाजिनं पुरुनि.	४१८
उत शुष्णस्य धृष्णुया	३२८
उत सखास्यश्विनोः	५१६
उत सिन्धुं विबाल्यं	३२७
उत स्मा सद्य इत्	३४७
उत स्मासु प्रथमः	४२२
उत स्मास्य तन्यतोः	४३४
उत स्मास्य द्रवतः	४४५
उत स्मास्य पनयन्ति	४२९
उत स्मा हि त्वामाहुरिन्	३४६
उत स्मैनं वस्त्रमथिं न	४३८
उत स्य वाजा क्षिपणिं	४४६
उत स्य वाजी सहुरिः	४३३
उतो हि वां दात्रा सन्ति	४२७
उदग्ने तिष्ठ प्रत्या	६०
उद् वां पृक्षासो	४८४
उप नो वाजा अध्वरम्	४१९
उप यो नमो नमसि	५४६
उरुं वां रथः परि	४७३
उशन्नु षु णः सुमना	२३४
उषो मघोन्या वह	५६९
ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य	८७

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो १५१
उर्ध्वं भानुं सविता देवो १४६
उर्ध्वो भव प्रति ६१
ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो ३०४
ऋजोपी श्येनो ददमानो २९९
ऋतं येमान ऋतमिद् २७३
ऋतं वोचे नमसा ८२
ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि २७२
ऋतस्य हि शुरुधः २७१
ऋतावानं विचेतसं १००
ऋतेन ऋतं नियतं ४९
ऋतेन देवीरमृता ५२
ऋतेनाद्रिं व्यसन् ५१
ऋतेन हि ष्मा वृषभः ५०
ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमः ४१४
ऋभुमृभुक्षणो रयिं ४२३
ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो ३९०
एकं वि चक्र चमसं ४१३
एतदस्या अनः शये ३२६
एतद् घेदुत वीर्यम् ३२३
एता अर्षन्ति हृद्यात् ५८३
एता अर्षन्त्यललाभवन्तीः २१२
एता ते अग्न उचथानि ४०
एता विश्वा विदुषे ५६
एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिः १८३
एभिर्नो अर्कैर्भवा १२७
एभिर्भव सुमना अग्ने ५५
एवा त्वामिन्द्र वज्रिन् २२०
एवा न इन्द्रो मघवा २०५
एवा पित्रे विश्वदेवाय ५१७
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः २५१
एवा सत्यं मघवाना ३१०
एवेदिन्द्राय वृषभाय १८४
एष वां देवावश्विना १६३
एष स्य भानुः ४८३
क इमं दशभिर्ममेन्द्रं २८४
क उ श्रवत् कतमो ४६९
कथा कदस्या उषसो ४६८
कथा महामवृधत् २६४
कथा महे पुष्टिंभराय ४७
कथा शर्धाय मरुतां ४८
कथा शृणोति हूयमानं २६६
कथा सबाधः शशयानो २६७
कथा ह तद् वरुणाय ४५
कद् धिष्ण्यासु वृधसानो ४६
कनीनकेव विद्रधे ३७७
कन्याइव वहतुं ५८७
कया तच्छृण्वे शच्या २३९
कया नश्चित्र आ भुवत् ३४०
कविं शशासुः कवयः ३२
कविर्न निण्यं विदथानि १६७
कस्ते मातरं विधवां २१८
कस्त्वा सत्यो मदानां ३४१
का मर्यादा वयुना कद्ध ८४
का वां भूदुपमातिः ४७२
का सुष्टुतिः शवसः २७५
किमादमत्रं सख्यं २६९
किमादुतासि वृत्रहन् ३२२
किमु ष्विदस्मै निविदो २१३
कियत् स्विदिन्द्रो १९७
किमयः स्विच्चमस एष ४०४
किं स ऋधक् कृणवद् २१०
किं नो अस्य द्रविणं ८३
कुत्साय शुष्णमशुषं १७६
कुवित् स देवीः सनयो ५२६
कृणुष्व पाजः प्रसितिं ५७
कृणोत्यस्मै वरिवो य २८०
कृतं चिद्धि ष्मा १३१
कृष्णं त एम रुशतः १०६
का अद्य नर्यो देवकाम २८६
को अस्य वीरः सधमादं २६५
को देवानामवो अद्या २८८
को नानाम वचसा २८७
को मृळाति कतम ४७०
को वामद्या करते ४७८
को वस्त्राता वसवः को ५५४
क्रतूयन्ति क्षितयो योग २७८
क्व स्विदासां कतमा ५२८
क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं १९८
क्षेत्रस्य पतिना वयं ५७१
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तं ५७२
गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदम् ३०१
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय २०१
गिरिर्न यः स्वतवां २३६
गृष्टिः ससूव स्थविरं २१६
गोमां अग्नेऽविमां अश्वी २५
घृतं न पूतं १३०
चत्वारि शृङ्गा त्रयो ५८१
चित्तिमचित्तिं चिनवद् ३१
ज्येष्ठ आह चमसा द्वा ३८३
तत् सु नः सविता ५६३
तद् देवस्य सवितुः ५४१
तद् वो दिवो ५३३
तद् वो वाजा ऋभवः ४१२
तमर्वन्तं न सानसिं १६०
तमिद् व इन्द्रं सुहवं १८०
तमिन्नरो वि ह्वयन्ते २७७
तमीं होतारमानुषक् १०२
तव त्ये अग्ने हरितो ९५
तव त्विषो जनिमत् १८७
तव भ्रमास आशुया ५८
तव स्वादिष्ठाऽग्ने १२९
तस्मा अग्निर्भारतः शर्म २८९
तस्मिन्न्वेव समना ७८
तस्येदिह स्तवथ २४३
तं नो वाजा ऋभुक्षण ४२६
तं युवं देवावश्विना १६४
तं वां रथं वयं ४७६
तं शश्वतीषु मातृषु १०३
ता आ चरन्ति समना ५३०
ता इन्न्वेव समना ५३१
ता घा ता भद्रा उषसः ५२९
ता तू त इन्द्र महतो २५७
ता तू ते सत्या तुविनृम्ण २५८
ता ते गृणन्ति वेधसो ३६५
ता वां धियोऽवसे ४५५
तिग्मा यदन्तरशनिः १८१

तृषु यदन्ना तृषुणा	१०८
ते गव्यता मनसा	१५
ते मन्वत प्रथमं	१६
ते मर्मृजत ददृवांसो	१४
ते राया ते सवीर्यैः	११४
ते वो हृदे मनसे	४२०
ते स्याम ये अग्नये	११३
तोके हिते तनय	४५३
त्राता नो बोधि ददृशान	२०२
त्रिधा हितं पणिभिः	५८२
त्रिरन्तरिक्षं सविता	५४५
त्रिरस्य ता परमा सन्ति	७
त्र्युदायं देवहितं यथा	४२१
त्वदग्ने काव्या त्वत्	१३५
त्वद् वाजी वाजंभरो	१३६
त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः	३२
त्वमध प्रथमं जायमानो	१९२
त्वया वयं सघन्यः	७०
त्वं चिन्नः शम्या अग्ने	४४
त्वं नो अग्ने वरुणस्य	४
त्वं पिप्रुं मृगयं	१७७
त्वं महां इन्द्र तुभ्यं	१८६
त्वं महीमवनिं विश्वधेनां	२२५
त्व ह्येक ईशिष	३६१
त्वामग्ने प्रथमं	१३७
त्वा युजा तव तत् सोम	३०६
त्वा युजा नि खिदत्	३०७
त्वां ह्यग्ने सदमित्	१
त्वोतासो मघवन्निन्द्र	३१५
दधिक्राव्णः इदु नु	४४३
दधिक्राव्ण. इष ऊर्जो	४४०
दधिक्राव्णो अकारिषं	४४२
दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं	३५७
दश ते कलशानां	३७३
दिवश्चिद् घा दुहितरं	३२४
दिवो धर्ता भुवनस्य	५४२
दूतं वो विश्ववेदसं	१०९
देवेभ्यो हि प्रथमं	५४९
देवी देवेभिर्यजते	५६५
देवैर्नो देव्यदितिर्नि	५६०
द्रुह् जिघांसन् ध्वर.	२७०
द्वादश द्यून् यदगोह्यस्य	३८५
द्वियं पञ्च जीजनन्	९४
धामन् ते विश्वं	५८९
धिषा यदि धिषण्यन्तः	२४७
धुनेतयः सुप्रकेतं	५१३
नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो	३१६
न घा स मामप जोषं	३०२
न तं जिनन्ति बहवो	२९०
न त्वा वरन्ते अन्यथा	३६२
न प्रमिये सवितुः	५५१
न यस्य वर्ता जनुषा	२३७
न यस्य सातुर्जनितोरवारि	९३
न रेवता पणिना	२९२
नहि ष्मा ते शतं	३४८
नापाभूत न वो	४००
नाहमतो निरया	२०८
निर्धुवाणो अशस्तीः	५०२
नूनो रयिं पुरुवीरं	४८१
नू रोदसी अहिना	५५९
नू रोदसी बृहद्भिः	५६७
नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान	१८५,२०६, २३०, २४१, २५२, २६३, २७४, २८५.
नेशत् तमो दुधितं	१७
परायतीं मातरम्	२०९
परि त्मना मितद्रुः	९१
परि त्रिविष्टयध्वरं	१५६
परि वाजपतिः कविः	१५७
पिपीळे अंशुर्मद्यो	२६०
पिबो अश्वाः शुचद्रथा हि	४२२
पीनर्यं चक्रुः पितरा	३८१
पुनाने तन्वा मिथः	५६९
पुरु कुत्सानी हि वां	४६७
पुरोळाशं च नो घसो	३७०
पूर्वीरुषसः शरदश्च	२२७
प्र ऋभुभ्यो दूतमिव	३७९
प्र तां अग्निर्वभसत्	७५
प्रति ते दूळभो रथो	१२४
प्रति भद्रा अदृक्षत	५३८
प्रति ष्या सूनरी	५३४
प्रति स्पशो वि सृज	५९
प्र ते पूर्वाणि करणानि	२२९
प्र ते बभ्रू विचक्षण	३७६
प्र ते वोचाम वीर्या	३६४
प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्	१४५
प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा	१५०
प्र पस्त्यामदितिं सिन्धुं	५५६
प्र ये धामानि पूर्व्याणि	५५५
प्रवेता हि ऋतूनां	३४४
प्रवाच्यं वचसः किं मे	७९
प्र वामवोचमश्विना	४८९
प्र वां मही द्यवी	५६८
प्र शर्ध आर्त प्रथमं	१२
प्र सु ष विभ्यो मरुतो	२१७
प्राग्रुवो नभन्वो न	२२६
प्रातः सुतमपिबो	४०७
बृहत्सुम्नः प्रसवीता	५४६
बृहस्पत इन्द्र वर्धतं	५२२
बृहस्पतिः प्रथमं	५१५
बृहस्पते या परमा	५१४
बोधद्यन्मा हरिभ्यां	१६१
भद्रं ते अग्ने सहसिन्	१३३
भद्रा ते अग्ने स्वनीक	९२
भद्रा ते हस्ता सुकृतोत	२५०
भरद् यदि विरतो	२९८
भिनद् गिरिं शवसा	१८८
भुवोऽविता वामदेवस्य	१८२
भूयसा वस्नमचरत्	२८३
भूयामो षु त्वावतः	३६०
भूरिदा भूरिदेहि नो	३७४
भूरिदा ह्यसि श्रुतः	३७५
भूमिश्चिद् घासि	३५६
मक्षू हि ष्मा गच्छथ	४७१
मकिंचन ते मघवन्	२१५
मधुमतीरोषधीर्द्याव	५७३

मत्स्वः पिदतं मधुपेभिः ४८५
मनगच्छन त्वा युवतिः २१४
मम हिता राष्ट्रं क्षत्रियस्य ४५९
महद्यर्शंस्मांर्गतः कमुरा ४३८
महत्चिदम्न एनसो १४३
मही द्यावापृथिवी इह ५६४
मही मित्रस्य साधथः ५७०
महो दजामि बन्धुता ६७
मा कस्य यक्षं सदमित् ५३
मा निन्दत य इमां ७३
मा नो मर्धीरा भरा २४०
मा नरः स्वश्वा ४६३
य इन्द्राय सुनवत २८१
य एक इत्तमुष्टुहि १९०
यच्चिद्धि ते पुरुत्रा १४२
यच्चिद्धि शश्वती ३६७
यता सुभूर्णी रातिनी ८९
यत् तृतीयं सवनं ४०९
यत्र देवा ऋभुपायतो ३२०
यत्रोत बाधितेभ्यः ३१९
यत्रोत मर्त्याय कं ३२१
यत् संवत्समृभवो ३८२
यदा ह त्यद् यमवो १४५
यदारमक्रमृभवः पितृभ्यां ३८०
यदा गमर्ग स्वैत् २८२
यद इन्द्रो अजुषं २५३
यस्य इन्द्र अभरत् २६
यस्याराजन्त सहसा वि ५१२
यस्तुभ्यमग्ने अमृताय २९
यस्ते भराटन्नियते २७
यस्त्वा दोषा य उषसि २८
यस्त्वामग्न इनधते १३९
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो ६६
यस्य त्वमग्ने अध्वरं ३०
य सोमकृत्वन् सदनं १४७
यं सोमम् इन्द्र ४२९
यः स्माश्न्धानो गव्या ४३०
याः वाच्यदू इन्द्रा त्वा ५३७
यां वां मर्त्या पृक्ष्यो ५०८
याति शुभ्रेण सत्यम् १६५
युवं श्रियमश्विना देवता ४७७
युवाभिद्धचवसे पूर्व्याय ४५५
युवमस्मभ्यं धिषणाभ्यः ४१७
युवं हि देवीर्ऋतावभिः ५२७
ये अश्विना ये पितरा ३९८
ये गोमन्तं वाजवन्तं ३०९
ये ते त्रिरहन् ३५३
ये देवासो अभवता ४०८
ये पायवो मामतेयं ते ६१
ये ह त्ये ते सहमाना ९६
ये हरी मेधयोक्था ३८८
यो अस्त्रस्य दधिक्राव्णो ४३९
यो देवो देवतमो २५५
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा २१
यो वः सुनोत्यभिपित्वे ४०६
रक्षा णो अग्ने तव ५४
रथेन पृथुपाजसा ४९४
रथं ये चक्रः सुवृतं ३८६, ४११
रथं हिरण्यवन्धुम् ४९३
रयिं दिवो दुहितरो ५३२
राया वयं ससवांसो ४६८
वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो २२८
वायविन्द्र च शुष्मिणा ३९८
वयं नाम प्र ब्रवामा ५८०
ववक्ष इन्द्रो अमितम् १६९
वहन्तु त्वा मनोयुजो ५०४
वहिष्ठेभिर्विहरन्याति १४८
वामंवामं त आदुरे ३३९
वायविन्द्रश्च शुष्मिणा ४९९
वायो शतं हरीणां ५०५
वायो युक्तो अश्वाभिः ते ४९७
विदानासो जन्मनो ३९१
विदुष्टे विश्वा भुवनानि ४९५
विहि होत्रा अवीता ५०१
वि नो वाजा ऋभुक्षणः ४२५
वि यद् वराति २४९
वि यो ररप्श ऋषिभिः २३५
विरप्शमाद् शोभायता ३०९
विश्वानि शक्रो नर्याणि १७०
विश्वा रोमाणि प्रवतश्च २५६
विश्वे यज्ञत्रा रथा ३१८
विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां २०
वि षाह्यग्ने गृणते १३४
वृषा वृषन्धि चतुरश्रि २५४
वेराज्यस्य दूत्यानि १०५
वेषि ह्यध्वरीयताम् १२१
वेषीद्वस्य दूत्यं १२२
वैश्वानराय मीळ्हुषे ७२
व्यकृणोत चमसं ४०३
व्यर्यमा वरुणश्चेति ५५७
शच्याकर्ता पितरा ४०५
शतमश्मन्मयीनां पुरां ३३५
शतेना नो अभिष्टिभिः ४९१
शं नः सख्या १३२
शुनासीराविमां वाचं ५७५
शुनं नः फाला वि ५७८
शुनं वाहाः शुनं नरः ५७४
श्वावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै ३१३
श्रेष्ठं वः पेषो अधि ४१६
स इत् क्षेति सुधित ५१९
स इद् राजा प्रतिजन्यानि ५१८
स इत् स्वपा भुवनेषु ५६६
सखीयतामविता बोधि २०३
सखे सखायमभ्या ३
स चेतयन्मनुषो ३३७
स चेतयन्मनुषो ९
स जायत प्रथमः ११
सजोषा आदित्यैः ३९७
सजोषा इन्द्र वरुणेन ३०६
स नरिषणाभिरद्रिवः ३५९
स तू नो अग्निर्नयतु १०
स ते जानाति सुमतिं ६२
सत्यमुत्थं नर एवा हि ३८४
सत्रा ते अनु कृष्टयो ३१७
सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः २४८
सत्रा सोमा अभवन् १९१
सत्राहणं दाधृषिं १९२

सत्वा भरिषो गविषो	४४४
स त्वं नो अग्नेऽवमो	५
सदग्ने अस्तु सुभगः	६३
स दूतो विश्वेदभि	८
सद्यो जातस्य ददृशानम्	१०७
स प्रातर वरुणमग्न	२
स मानुषीषु दूळभो	११८
समिन्द्रो गा अजयत्	१९६
समुद्रादूर्मिमंधुमां	५७९
सम्यक् स्रवन्ति सरितो	५८४
स वाज्यर्वा स ऋषिः	४१५
स विप्रश्चर्षणीनां	११६
स वृत्रहत्ये हव्यः स	२७६
स वेद देव आनमं	१११
स सद्म परि णीयते	११९
ससस्य यद् वियुता	१०४
स सुष्टुभा स ऋक्वता	५१६
सहस्र व्यतीनां	३७१
सहस्रा ते शता वयं	३७२
स हि वेदा वसुधिति	११०
स होता सेदु दुत्यं	११२
सं यत् त इन्द्र मन्यवः	२४५
साम द्विबर्हा महि	७४
सिन्धुर्ह वां रसया	४७४
सिन्धोरिव प्राध्वने	५८५
सुकर्माणः सुरुचो	३७
सुप्राव्यः प्राशुषाळेष	२९१
सुविरस्ते जनिता	१८९
सूर उपाके तन्वं	१७८
सेदृभवो यमवथ	४२४
सोममिन्द्रा बृहस्पती	५११
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने	९०
स्तुत इन्द्रो मघवा	२०४
स्थूरस्य रायो बृहतो	२४५
स्वध्वरासो मधुमन्तो	४८७
स्वर्यद् वेदि सुदृशीकम्	१६८
हिरण्ययेन पुरुभू	४७९
हंसः शुचिषद् वसुः	४४७
हंसासो ये वां मधुमन्तो	४८६

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

पञ्चमं मण्डलम्

[१]

[ऋषिः- बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१ अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वाइ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥ १ ॥

२ अबो॑धि॒ होता॑ य॒जथा॑य दे॒वानू॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॒मनाः॑ प्रा॒तर॑स्थात् ।
समि॑द्धस्य॒ रुश॒दद॑र्शि॒ पाजो॑ म॒हान् दे॒वस्तम॑सो॒ निर॑मोचि ॥ २ ॥

---

[१]

अर्थ— [१] (आयतीं उषासं प्रति धेनुं इव) आती हुई उषाओंके समय जिस प्रकार गायोंको जगाया जाता है उसी प्रकार (जनानां समिधा अग्निः अबोधि) मनुष्योंकी समिधाओंसे यह अग्नि प्रज्वलित हुआ है। प्रज्वलित हुए इस अग्निकी (उज्जिहानाः यह्वाः भानवः) ऊपरकी तरफ जलनेवाली बडी बडी ज्वालायें (वयां इव) वृक्षोंकी शाखाओंके समान (नाकं अच्छ सिस्रते) आकाशकी तरफ सीधी जाती हैं ॥ १ ॥

१ उषासं धेनुं इव जनानां समिधा अग्निः अबोधि— उषःकालमें उठनेवाली गायके समान यह अग्नि मनुष्योंके द्वारा लाई गई समिधाओंसे प्रज्वलित किया जाता है।

[२] (देवान् यजथाय) देवोंकी पूजा करनेके लिए (होता अबोधि) देवोंको बुलाकर लानेवाला यह अग्नि प्रज्वलित किया जाता है। (प्रातः) प्रातःकालमें प्रज्वलित होकर (सुमनाः अग्निः) उत्तम मनवाला यह अग्नि (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊपरकी तरफ जाता है। तब (समिद्धस्य रुशत् पाजः अदर्शि) प्रदीप्त हुए इस अग्निका तेजस्वी सामर्थ्य दिखाई देता है। इसके बाद (महान् देवः तमसः निरमोचि) यह महान् देव अन्धकारसे छूट जाता है ॥ २ ॥

१ सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्— उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उत्तम होता है।

२ महान् देवः तमसः निरमोचि— तब वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है।

भावार्थ— उषःकालमें जिस प्रकार गायें उठाई जाती हैं उसी प्रकार समिधाओंसे यज्ञाग्नि भी प्रज्वलित की जाती है। तब उस अग्निकी बडी बडी ज्वालायें आकाशमें उसी प्रकार सीधी जाती हैं, जिस प्रकार पेडकी शाखायें ॥ १ ॥

देवोंकी पूजा करनेके लिए मनुष्य इस यज्ञाग्निको प्रातःकाल प्रज्वलित करते हैं, तब वह प्रसन्न होकर ऊपरकी तरफ जलता है, इस प्रकार उसका तेजस्वी रूप प्रकट होता है और चारों ओरका अन्धकार छंट जाता है ॥ २ ॥

×

३ यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।
आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ॥ ३ ॥
४ अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥ ४ ॥
५ जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥ ५ ॥
६ अग्निर्होता न्यसीदद् यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] (यत्) जब (ईं शुचिः अग्निः) यह पवित्र अग्नि (शुचिभिः गोभिः) अपनी तेजस्वी किरणोंके साथ (अंक्ते) प्रकट होता है, तब वह (गणस्य रशनां अजीगः) जगत्के व्यवहारका लगाम अपने हाथमें ले लेता है। (आत्) उसके बाद उससे (वाजयन्ती दक्षिणा युज्यते) बल बढानेवाली आहुति संयुक्त होती है, तब (उत्तानां ऊर्ध्वः) श्रेष्ठोंमें भी सर्वश्रेष्ठ वह अग्नि उस आहुतिको (जुहूभिः अधयत्) अपनी जिह्वाओंके द्वारा पीता है ॥ ३ ॥

[४] (सूर्ये चक्षूंषि इव) जिस प्रकार लोगोंकी आंखें सूर्योदयकी प्रतीक्षा करती हैं, उसी प्रकार इस (देवयतां मनांसि अग्निं अच्छा सं चरन्ति) देवोंके उपासकोंके मन अग्निके चारों ओर घूमते हैं। (यत्) जब (ईं) अग्निको (विरूपे) अनेक रूपवाली द्यावापृथ्वी (उषसा सुवाते) उषाके साथ पैदा करती हैं, तो (श्वेतः वाजी) तेजस्वी और बलवान् अग्नि (अह्नां अग्रे) दिनोंके प्रारंभमें (जायते) प्रकट होता है ॥ ४ ॥

[५] (जेन्यः) उत्पन्न किए जाने योग्य यह अग्नि (अह्नां अग्रे जनिष्ट) दिनोंके प्रारंभमें उत्पन्न हुआ, तथा (हितेषु वनेषु हितः अरुषः) हितकारी लकडियोंमें रखे जाने पर वह और प्रज्वलित हुआ। तब (होता यजीयान् अग्निः) यज्ञको पूर्ण करनेवाला तथा पूज्य अग्नि (दमे दमे सप्त रत्ना दधानः) प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको धारण करता हुआ (नि ससाद) अपने स्थान पर जाकर बैठता है ॥ ५ ॥

[६] (यजीयान् होता अग्निः) पूज्य तथा यज्ञ पूर्ण करनेवाला अग्नि (मातुः उपस्थे) माता अर्थात् पृथ्वीकी गोदमें तथा (सुरभा लोके) सुगंधित स्थान पर (नि असीदत्) बैठता है। (युवा कविः पुरुनिःष्ठः) तरुण, ज्ञानी तथा अनेक स्थानों पर रहनेवाला (ऋतावा धर्ता) सत्यपालक तथा सबको धारण करनेवाला अग्नि (कृष्टीनां मध्ये इद्धः) मनुष्योंके बीचमें प्रदीप्त होता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— उस पवित्र अग्निकी किरणोंसे प्रकट होते ही संसारका सब कार्य-व्यवहार उस अग्निके आधारपर चलने शुरु हो जाते हैं। तभी उस अग्निमें आहुतियां पडनी शुरु हो जाती हैं, जिन्हें वह अपनी ज्वालाओं द्वारा पीता है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार लोग उठकर सूर्योदयकी प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार देवोंकी पूजा करनेवाले अग्निके प्रकट होनेकी प्रतीक्षा करते हैं। द्यावापृथ्वी इस अग्निको दिनके प्रारम्भमें उत्पन्न करते हैं ॥ ४ ॥

प्रथम यह अग्नि धीरे जलता है पर जब समिधाएं उसमें डाल दी जाती हैं, तब यह बहुत जोरसे जलने लगता है। यह प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको लेकर बैठता है। घर-शरीर; सात रत्न-दो आंख, दो कान दो नाक, एक मुंह ॥ ५ ॥

यह अग्नि भूमिमें खोदे हुए तथा आहुतिके द्रव्योंसे सुगंधित वेदिमें बैठता है। तथा वहां यज्ञके आधार इस अग्निको मनुष्य प्रज्वलित करते हैं ॥ ६ ॥

७ प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधु—मग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥ ७ ॥
८ मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥ ८ ॥
९ प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्या—नाविर्यस्मै चारुतमो बभूथ ।
ईळेन्यो वपुष्यो विभावा प्रियो विशामतिथिर्मानुषीणाम् ॥ ९ ॥
१० तुभ्यं भरन्ति क्षितयो यविष्ठ बलिमग्ने अन्तित ओत दूरात् ।
आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि बृहत् ते अग्ने महि शर्म भद्रम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] (यः ऋतेन रोदसी ततान) जिसने अपने दैवी सामर्थ्यसे द्यावापृथ्वीका विस्तार किया, (वाजिनं घृतेन नित्यं मृजन्ति) जिस बलवान्‌को घीसे रोज प्रदीप्त करते हैं, (त्यं विप्रं) उस ज्ञानी (साधुं होतारं) कार्य सिद्ध करनेवाले तथा देवोंको बुलाकर लानेवाले अग्निकी (अध्वरेषु) यज्ञोंमें मनुष्य (नमोभिः ईळते) स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

[८] (मार्जाल्यः) सबको शुद्ध करनेवाला, (दमूनाः) शत्रुओंका दमन करनेवाला, (कविप्रशस्तः अतिथिः नः शिवः) ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित, अतिथिके समान पूज्य, हम सबका कल्याण करनेवाला, (सहस्रशृंगः) हजारों ज्वालाओंवाला (वृषभः) सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, (तद् ओजाः) ओजस्वी यह अग्नि (स्वे मृज्यते) अपने स्थान पर प्रदीप्त किया जाता है । हे (अग्ने) अग्ने ! (अन्यान् विश्वान्) दूसरे सभी प्राणियोंको तू (सहसा प्र-असि) अपने बलसे पराजित करता है ॥ ८ ॥

[९] हे (अग्ने) अग्ने ! (यस्मै आविः बभूथ) जिसके लिए तू प्रकट हुआ, उसके लिए तू (सद्यः अन्यान् अति एषि) शीघ्र ही दूसरोंको पराजित कर देता है । (चारुतमः) अत्यन्त सुन्दर (ईळेन्यः) अत्यन्त स्तुत्य (वपुष्यः) सुन्दर रूपवाला (विभावा) तेजस्वी (प्रियः) प्रिय तू (मानुषीणां विशां) मानवी प्रजाओंके लिए (अतिथिः) अतिथिके समान पूज्य है ॥ ९ ॥

[१०] हे (यविष्ठ अग्ने) बलवान् अग्ने ! (क्षितयः) प्रजायें (तुभ्यं) तेरे लिए (अन्तितः आ उत दूरात्) पास और दूरसे (बलिं भरन्ति) आहुति देती हैं । तू (भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि) जोरसे तेरी स्तुति करनेवालेकी उत्तम बुद्धिको जान । हे (अग्ने) अग्ने ! (ते बृहत् शर्म) तेरा महान् आश्रय (महि भद्रं) पूज्य और कल्याणकारी है ॥ १० ॥

भावार्थ— उसी अग्निने अपने सामर्थ्यसे द्यु और पृथ्वी लोकका विस्तार किया, अतः ऐसे सामर्थ्यशाली अग्निको उपासक घीसे प्रदीप्त करते हैं तथा यज्ञोंमें उत्तम स्तोत्रोंसे इसकी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥

सबको शुद्ध करनेवाला, अतिथिवत् पूज्य, ज्ञानियों द्वारा पूजित, हजारों ज्वालाओंवाला अग्नि अपने स्थान वेदिमें प्रदीप्त किया जाता है । प्रदीप्त होकर वह सबको अपनी शक्तिसे पराजित करता है ॥ ८ ॥

जिस पर इस अग्निकी कृपा होती है, उसके सभी शत्रु नष्ट हो जाते हैं । इसलिए सुन्दर और तेजस्वी इस अग्निको सब लोग अतिथिके समान पूजा करते हैं ॥ ९ ॥

पास और दूर रहती हुई सभी प्रजाएं इस बलवान् अग्निको बलि देती हैं । यह भी अपने उपासककी मनकी भावनाओंको जानता है और उसे अपना कल्याणकारी और महान आश्रय प्रदान करता है ॥ १० ॥

११ आ॒द्य रथं॑ भानुमो भा॒नुम॑न्त॒—मग्ने॒ तिष्ठ॑ य॒ज॒तेभिः॒ सम॑न्तम् ।
वि॒द्वान् प॑थी॒नामु॒र्व१॒॑न्तरि॑क्ष॒—मे॒ह दे॒वान् ह॑वि॒रद्या॑य वक्षि ॥ ११ ॥
१२ अवो॑चाम क॒वये॒ मेध्या॑य॒ वचो॑ व॒न्दारु॑ वृष॒भाय॒ वृष्णे॑ ।
गवि॑ष्ठिरो॒ नम॑सा॒ स्तोम॑म॒ग्नौ दि॒वी॑व रु॒क्मम॑रु॒व्यञ्च॑मश्रेत् ॥ १२ ॥

[२]

[ऋषिः- कुमार आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा; २, ९ वृशो जानः । देवता-अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १२ शाक्वरी ।]

१३ कु॒मा॒रं मा॒ता यु॑व॒तिः समु॑ब्धं॒ गुहा॑ बिभर्ति॒ न द॑दाति पि॒त्रे ।
अनी॑कमस्य॒ न मि॒नज्जना॑सः पु॒रः प॑श्यन्ति॒ निहि॑तमर॒तौ ॥ १ ॥
१४ कमे॒तं त्वं यु॑वते कुमा॒रं पेषी॑ बिभर्षि॒ महि॑षी जजान ।
पू॒र्वीर्हि गर्भः॑ श॒रदो॑ व॒वर्धा॒—ऽप॑श्यं जा॒तं यदसू॑त मा॒ता ॥ २ ॥

अर्थ— [११] हे (भानुमः अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (अद्य) आज (भानुमन्तं समन्तं रथं) तेज पूर्ण तथा सुदृढ रथ पर दूसरे (यजतेभिः तिष्ठ) पूज्य देवोंके साथ बैठ, तथा (विद्वान्) सब जाननेवाला तू (देवान्) उन देवोंको (हविरद्याय) हवि खानेके लिए (उरु अन्तरिक्षं) विस्तृत अन्तरिक्षके (पथीनां) उत्तम मार्गोंके द्वारा (इह वक्षि) यहां इस यज्ञमें ले आ ॥ ११ ॥

[१२] हम (कवये मेध्याय वृषभाय वृष्णे) ज्ञानी, बुद्धिमान्, बलवान्, और कामना पूरी करनेवाले अग्निके लिए (वन्दारु वचः अवोचाम) स्तुतिपरक मंत्र बोलते हैं । (गविष्ठिरः) गायोंकी इच्छा करनेवालोंको गाय देनेवाला उपासक (अग्नौ नमसा स्तोमं अश्रेत्) अग्निमें नमनपूर्वक अपने स्तोत्रको उसी प्रकार स्थापित करता है, जिस प्रकार (रुक्मं उरुव्यंचं दिवि इव) तेजस्वी और अत्यधिक गतिशील सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया है ॥ १२ ॥

[२]

[१३] (युवतिः माता) तरुणी माता (समुब्धं कुमारं) सम्यक् रूपसे गुप्त अपने पुत्रको (गुहा बिभर्ति) अपने गर्भमें धारण करती है, (पित्रे न ददाति) पिताको नहीं देती । (अरतौ) प्रदीप्त होने पर (निहितं) गुप्त रूपमें स्थित इस कुमारको लोग (पुरः पश्यन्ति) साक्षात् देखते हैं, और तब (जनासः) मनुष्य (अस्य अनीकं न मिनत) इसके तेजको नष्ट नहीं कर सकते ॥ १ ॥

[१४] हे (युवते) तरुणी ! (पेषी त्वं) मथी जानेवाली तू (एतं कं कुमारं बिभर्षि) इस सुखस्वरूप कुमारको धारण करती है । इसे (महिषी जजान) अत्यन्त पूजनीय माताने उत्पन्न किया था । (गर्भः) यह गर्भ (पूर्वीः शरदः ववर्ध) अनेक वर्षोंतक बढा, और (यत् माता असूत) जब माताने इसे उत्पन्न किया, तब (जातं अपश्यन्) इस उत्पन्न हुए कुमारको सबने देखा ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू आज हवि खानेके लिए अन्तरिक्षसे उत्तम मार्गोंसे चलकर अपने रथसे पूजाके योग्य देवोंको बुला ला ॥ ११ ॥

हम इस ज्ञानी, बुद्धिमान् और अपने उपासकोंकी कामना पूर्ण करनेवाले अग्निकी विनम्रतासे स्तुति करते हैं । इस अग्निमें सारे स्तोत्र उसी प्रकार स्थित हैं, जिस प्रकार द्युलोकमें तेजस्वी और गतिशील सूर्य ॥ १२ ॥

युवती माता अरणि गुप्त रूपमें स्थित अपने कुमार अग्निको अपने अन्दर ही धारण करती है, इसके पिता ऋत्विजों को नहीं देती । पर जब वही प्रदीप्त होकर सामने आ जाता है, तो सभी प्रजाएं इसे देखती हैं और तब इसके तेजको कोई नष्ट नहीं कर पाता । इस पूरे सूक्तमें अरणि स्थित गुप्त अग्निका आलंकारिक वर्णन है ॥ १ ॥

१५ हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत् किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥ ३ ॥
१६ क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद् यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद् युवतयो भवन्ति ॥ ४ ॥
१७ के मे मर्यकं वि यवन्त गोभि—र्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृज—न्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥ ५ ॥
१८ वसां राजानं वसतिं जनाना—मरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥ ६ ॥

अर्थ— [१५] मैंने (आरात् क्षेत्रात्) पासके स्थानसे (हिरण्यदन्तं शुचिवर्णं) स्वर्णके समान ज्वालावाले तेजस्वी वर्णवाले तथा (आयुधा मिमानं) अपने शस्त्ररूपी ज्वालाओंको प्रकट करनेवाले अग्निको (अपश्यं) देखा, और देखकर (अस्मै) इसे (अमृतं वि पृक्वत्) अमृततुल्य हविको (ददानः) दिया, अतः (अन्-इन्द्राः अन्-उक्थाः) इन्द्रको न माननेवाले तथा स्तुति न करनेवाले (मां किं कृणवन्) मेरा क्या करेंगे ? ॥ ३ ॥

१ अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन्— इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे? अर्थात् अग्निके उपासकका नास्तिक जन कुछ भी नहीं बिगाड सकते।

[१६] (चरन्तं यूथं न सुमत् पुरु शोभमानं) विचरते हुए पशुओंके झुण्डके समान स्वयं बहुत सुशोभित (क्षेत्रात् सनुतः) अपने स्थान अरणिमें गुप्त अग्निको मैंने (अपश्यं) देखा है। (सः अजनिष्ट) जब वह अग्नि उत्पन्न हो जाता है, तब (ताः न अगृभ्रन्) लोग उसकी ज्वालाओंको पकड नहीं सकते, क्योंकि तब उसकी (पलिक्नीः इत् युवतयः भवन्ति) क्षीण ज्वालायेंभी युवावस्थावाली हो जाती हैं ॥ ४ ॥

[१७] (येषां गोपाः अरणः चित् न आस) जिनका रक्षक गतिमान् अग्नि भी नहीं होता ऐसे (के) कौन जन (मे मर्यकं गोभिः वि यवन्त) मेरे राष्ट्रको गायोंसे पृथक् कर सकते हैं? (ये ईं जगृभुः) जो इस राष्ट्रपर आक्रमण करते हैं, (ते अव सृजन्तु) वे नष्ट हो जायें। रक्षाके लिए (चिकित्वान्) ज्ञानवान् अग्नि (नः पश्वः उप आजाति) हमारे पशुओंके पास आता है ॥ ५ ॥

[१८] (वसां राजानं) प्राणियोंके स्वामी और (जनानां वसतिं) मनुष्योंमें आश्रयस्थान इस अग्निको (अरातयः) शत्रुओंने (मर्त्येषु नि दधुः) मर्त्यलोकमें छिपा कर रख दिया, (अत्रेः ब्रह्माणि) अत्रि ऋषिके स्तोत्र (तं अवसृजन्तु) उस अग्निको मुक्त करें, (निन्दितारः निन्द्यासः भवन्तु) तथा अग्निकी निन्दा करनेवाले स्वयं निन्दाके योग्य हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— मथन करने योग्य यह अरणी इस सुखदायक कुमार अग्निको धारण करती है, फिर यही मथे जानेपर अग्निको उत्पन्न करती है। अनेक वर्षोंतक यह अरणि बढती रही, साथ ही उसके अन्दर स्थित अग्नि भी बढता रहा। पर जब माता अरणि के मथनेपर यह प्रकट हुआ, तब लोगोंने इस अग्निको देखा ॥ २ ॥

मैंने पास ही तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त अग्निको देखा है और उसमें आहुति दी है, अर्थात् उसकी उपासना की है, अतः नास्तिक और भक्तिहीन मनुष्य मेरा कुछ भी नहीं बिगाड सकते ॥ ३ ॥

ज्ञानी लोग अरणिस्थ गुप्त अग्निके भी महत्त्वको जानते हैं। पर साधारण लोग उसके महत्त्वको तभी जानते हैं, जब कि वह उत्पन्न हो जाता है और उसकी ज्वालायें शक्तियुक्त हो जाती हैं। क्योंकि उस समय उस अग्निको वे पकड नहीं सकते ॥ ४ ॥

ऐसा कौन मनुष्य है कि जो अग्निकी सहायताके बिना ही हमारे राष्ट्रमें गौवोंका नाश कर राष्ट्रको गौवोंसे अलग कर दे। यदि कोई ऐसा करता है तो अग्नि हमारे पशुओंकी रक्षा करनेके लिए हमारे पास आता है और उस शत्रुको नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

१९ शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद् यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान् होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥ ७ ॥
२० हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥ ८ ॥
२१ वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा ।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे ॥ ९ ॥
२२ उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उ ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥ १० ॥

अर्थ— [१९] (अग्ने) हे अग्ने ! (हि सः अशमिष्ट) चूंकि उस ऋषिने तेरी स्तुति की, इसलिए तूने (निदितं चित् शुनःशेपं) अच्छी तरहसे बंधे हुए शुनःशेपको (सहस्रात् यूपात्) हजारों यूपस्तंभसे (अमुंचः) छुडाया (एव) उसी प्रकार हे (होतः चिकित्वः) यज्ञ करनेवाले तथा ज्ञानी अग्ने ! तू (इह निषद्य) यहां बैठ कर (अस्मत् पाशान् वि मुमुग्धि) हमसे बंधनोंको छुडा ॥ ७ ॥

[२०] (व्रतपाः देवानां इन्द्रः मे उवाच) व्रतोंके पालक देवोंके राजा इन्द्रने मुझसे कहा है कि हे (अग्ने) अग्ने ! तू (हृणीयमानः मत् अप ऐयेः) नाराज होकर मुझसे दूर चला गया है, क्योंकि (विद्वान् त्वा चचक्ष) विद्वान् इन्द्रने तुझे देखा और (तेन अनुशिष्टः अहं आगां) उसके कहनेपर मैं आया हूँ ॥ ८ ॥

[२१] (अग्निः) अग्नि (बृहता ज्योतिषा विभाति) महान् तेजसे प्रकाशित होता है तथा (महित्वा) अपने सामर्थ्यसे (विश्वानि आविः कृणुते) सभी पदार्थोंको प्रकट करता है। (दुरेवाः अदवीः मायाः प्र सहते) दुःखदायक असुरोंकी मायाको वह नष्ट करता है तथा (रक्षसे विनिक्षे शृंगे शिशीते) राक्षसोंके विनाशके लिए अपनी ज्वालायें तीक्ष्ण करता है ॥ ९ ॥

[२२] (अग्नेः तिग्मायुधाः स्वानासः) अग्निकी तीक्ष्ण शस्त्रोंके समान शब्द करनेवाली ज्वालायें (रक्षसे हन्तवै) राक्षसोंको मारनेके लिए (दिवि सन्तु) द्युलोक प्रकट हों । (मदे चित् अस्य भामाः रुजन्ति) आनन्दित होनेपर इसकी ज्वालायें राक्षसोंको पीडा देती हैं तथा (अदेवीः परिबाधः न वरन्ते) आसुरी बाधायें इस अग्निक निवारण नहीं कर सकतीं ॥ १० ॥

भावार्थ— प्राणियोंके स्वामी तथा सबके जीवनके आधार इस अग्निको शत्रुओंने मर्त्यलोकमें छिपाकर रख दिया था, उसे अग्निके स्तोत्रोंने छुडाया। इस अग्निकी निन्दा करनेवाले स्वयं ही निन्दाके योग्य होते हैं ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! स्तुत होकर तूने जिस प्रकार शुनःशेपको हजारों तरहके बंधनसे छुडाया था, उसी प्रकार तू हमें भी बंधनोंसे मुक्त कर ॥ ७ ॥

इन्द्रसे मुझे मालूम हुआ कि अग्नि मुझसे नाराज होकर दूर चला गया है, अतः इन्द्रसे आज्ञा पाकर अग्निको प्रसन्न करनेके लिए मैं अग्निके पास गया ॥ ८ ॥

यह अग्नि अपने तेज और सामर्थ्यसे स्वयं प्रकाशित होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको प्रकट करता है। वह असुरोंकी दुःखदायक मायाको नष्ट करके राक्षसोंको नष्ट करनेके लिए भी अपनी ज्वालायें तीक्ष्ण करता है । अग्निसे राक्षसरूपी रोगजन्तु नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए प्रतिदिन हवन करनेका विधान है ॥ ९ ॥

इस अग्निकी तीक्ष्ण ज्वालायें राक्षसोंके हननके लिए द्युलोकमें चमकती हैं और राक्षसोंको मारती हैं । उस समय इसकी ज्वालाओंको कोई रोक नहीं सकता ॥ १० ॥

२३ एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥ ११ ॥
२४ तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः ।
इतीममग्निममृता अवोचन् बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥ १२॥

[३]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- अग्निः, ३ मरुद्रुद्रविष्णवः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १ विराट् ।]

२५ त्वमग्ने वरुणो जायसे यत् त्वं मित्रो भवसि यत् समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवा स्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥ १ ॥
२६ त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन् गुह्यं बिभर्षि ।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभि र्यद् दंपती समनसा कृणोषि ॥ २ ॥

अर्थ— [२३] हे (तुविजात अग्ने) अनेक स्वरूपवाले अग्ने ! (विप्रः धीरः सु-अपाः) बुद्धिमान्, धीर और उत्तम कर्म करनेवाले मैंने (ते एतं स्तोमं अतक्षं) तेरे लिए इस स्तोत्रको उसी प्रकार बनाया है, (रथं न) जिस प्रकार रथ बनाया जाता है । हे (अग्ने देव) अग्ने ! (यदि त्वं हर्यः) यदि तू इस स्तोत्रकी कामना करे, तो हम (एना) इस तेरी प्रसन्नतासे (स्वर्वतीः अपः जयेम) सुखदायक ज्ञानको प्राप्त करें ॥ ११ ॥

[२४] (तुविग्रीवः वृषभः वावृधानः) बहुत ज्वालाओंवाला, बलवान् तथा वृद्धिको प्राप्त होनेवाला अग्नि (अर्यः) श्रेष्ठ पुरुषको (अ-शत्रु देवः सं अजाति) शत्रुरहित धन प्रदान करता है, (इति) इस प्रकार (इमं अग्निं) इस अग्निके बारेमें (अमृता अवोचन्) अमर देव कहते हैं, वह अग्नि (बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसत्) यज्ञशील मनुष्यको सुख देवे, वह निश्चयसे (हविष्मते मनवे शर्म यंसत्) यज्ञशील पुरुषके लिए सुख देवे ॥ १२ ॥

[३]

[२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (यत् त्वं जायसे) जब तू उत्पन्न होता है, तो (त्वं वरुणः) तू वरुण होता है, (यत् सुमिद्धः भवसि त्वं मित्रः) जब तू प्रदीप्त होता है, तब तू मित्र होता है, हे (सहसः पुत्र) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (त्वे विश्वे देवाः) तुझमें ही सब देव स्थित हैं, (त्वं दाशुषे मर्त्याय इन्-द्रः) तू दाता मनुष्यके लिए शत्रुका विनाशक है ॥ १ ॥

[२६] हे (स्वधावन् अग्ने) बलवान् अग्ने ! (यत् त्वं कनीनां अर्यमा भवसि) जब तू कन्याओंका स्वामी होता है, तब तू (गुह्यं नाम बिभर्षि) गुप्त नामको धारण करता है । (यत्) क्योंकि तू (दम्पती समनसा कृणोषि) पति पत्नीको समान मनवाला करता है । इसलिए सब तुझे (सुधितं मित्रं न) उत्तम मित्रके समान (गोभिः अंजन्ति) गायके घी से सींचते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे सर्वज्ञ अग्ने ! हमने तेरे लिए ये स्तोत्र बनाये हैं । यह तू स्वीकार कर, यदि तू इन स्तोत्रोंको स्वीकार करेगा, तो हम भी तेरी कृपासे ज्ञानवान् हो सकेंगे ॥ ११ ॥

यह बहुत बलवान् अग्नि श्रेष्ठ पुरुषोंको शत्रुरहित धन प्रदान करता है, ऐसा सभी अमर देव कहते हैं । वह यज्ञ करनेवाले मनुष्यको हर तरहका सुख देता है ॥ १२ ॥

जब यह उत्पन्न होता है, तो सबको यह प्रिय (वरणीय) लगता है, तथा जब यह प्रदीप्त होता है, तब वह सूर्यके समान चमकने लगता है इसीमें सब देव स्थित हैं, तथा यह दानी मनुष्यके शत्रुका नाश करता है ॥ १ ॥

विवाह संस्कारमें अग्नि कन्याओंका प्रथम स्वामी होता है, उस समय उसका नाम ' अर्यमा ' होता है, फिर वह पतिपत्नीके हृदयोंको परस्पर मिलाता है, इससे प्रसन्न होकर वे पतिपत्नी इस अग्निको घीसे सींचते हैं ॥ २ ॥

२७ तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत् ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम् ।
प॒दं यद् विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म् ॥ ३ ॥
२८ तव॑ श्रि॒या सु॒दृशो॑ देव दे॒वाः पु॒रू दधा॑ना अ॒मृतं॑ सपन्त ।
होता॑रम॒ग्निं मनु॑षो॒ नि षे॑दु॒र्दश॒स्यन्त॑ उ॒शिजः॒ शंस॑मा॒योः ॥ ४ ॥
२९ न त्वद्धोता॒ पूर्वो॑ अग्ने॒ यजी॑या॒न् न काव्यैः॒ प॒रो अ॑स्ति स्वधावः ।
वि॒शश्च॒ यस्या॒ अति॑थि॒र्भवा॑सि॒ स य॒ज्ञेन॑ वनवद् देव॒ मर्ता॑न् ॥ ५ ॥
३० व॒यम॑ग्ने वनु॒याम॒ त्वोता॑ वसू॒यवो॑ ह॒विषा॒ बुध्य॑मानाः ।
व॒यं स॑म॒र्ये वि॒दथे॒ष्वह्नां॑ व॒यं रा॒या स॑हसस्पुत्र॒ मर्ता॑न् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२७] हे अग्ने ! (तव श्रिये) तेरी शोभा बढानेके लिए (मरुतः मर्जयन्त) मरुद्गण तुझे शुद्ध करते हैं। हे (रुद्र) रुद्र ! (ते यत् जनिम) तेरा जो जन्म है वह (चारु चित्रम्) सुन्दर और विलक्षण है। (विष्णोः) विष्णुका (यत् उपमं पदं निधायि) जो उपमा देने योग्य स्थान निश्चित किया गया है, (तेन) उससे तू (गोनां गुह्यं नाम) जलोंके छिपे हुए नामकी (पासि) रक्षा करता है ॥ ३ ॥

[२८] हे (देव) तेजस्वी अग्ने ! (सुदृशः देवाः) उत्तम रूपवान् देवगण (तव श्रिया पुरु दधानाः) तेरे समृद्धिसे और अधिक तेज धारण करते हुए (अमृतं सपन्त) अमृतको प्राप्त करते हैं। (आयोः दशस्यन्त) घृतकी हवि देनेकी इच्छा करनेवाले (शंसं) स्तोत्र कहते हुए (उशिजः मनुषः) कामना करनेवाले मनुष्य (होतारं अग्निं नि षेदुः) होता अग्निकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

१ सुदृशः श्रिया पुरु दधानाः अमृतं सपन्त— उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेजको प्राप्त कर अमृत पाते हैं। आयु-घृत ' आयुर्वै घृतं "

[२९] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वत् पूर्वः) तुझसे पहले (होता यजीयान् न) यज्ञ करनेवाला और पूज्य कोई नहीं था। (परः) आगे भी (काव्यैः न) तुझ जैसा स्तोत्रोंके द्वारा प्रशंसनीय कोई नहीं होगा। हे (स्वधावः) अन्नसे समृद्ध अग्ने ! (यस्याः विशः अतिथिः भवासि) जिस मनुष्यका तू अतिथि होता है, हे (देव) अग्ने ! (सः यज्ञेन मर्तान् वनवत्) वह यज्ञके द्वारा पुत्रपौत्रादिकोंको प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

१ त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः न— इस अग्निसे पहले न कोई स्तुतिके योग्य था और न आगे होगा।

२ यस्याः अतिथिः भवासि स मर्तान् वनवत्— जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है।

[३०] हे (अग्ने) अग्ने ! (वसूयवः वयं) धनकी कामना करनेवाले हम (हविषा बुध्यमानाः) हविसे तुझे प्रज्वलित करते हुए तथा (त्वा ऊताः) तुझसे सुरक्षित होकर (वनुयाम) धनसे संयुक्त हों। (वयं समर्ये विदथेषु अह्नां) हम छोटे युद्धों और बडे बडे संग्रामोंमें प्रतिदिन विजय प्राप्त करें तथा (सहसः पुत्र) हे बलके पुत्र ! (वयं) हम (राया) धनसे समृद्ध होकर (मर्तान्) पुत्रपौत्रादिकोंको प्राप्त करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तेरा तेज बढानेके लिए वायु तुझे प्रदीप्त करके तुझे शुद्ध करते हैं। हे रुद्र ! तेरा जन्म सुन्दर और विलक्षण है। जो विष्णु अर्थात् सूर्यका स्थान द्युलोक है, उसमें जलोंका स्थान छिपा हुआ है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य स्तोत्रपूर्वक इस अग्निमें घीकी आहुति डालते हैं और इस अग्निकी सेवा करते हैं, वे देवोंके समान तेज और समृद्धिसे युक्त होकर अमृतको प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

इस अग्निसे पहले न कोई स्तुत्य था और न भविष्यमें कोई होगा ही। यह अद्वितीय है। जो इस अग्निका अतिथिके समान सत्कार करता है वह पुत्रपौत्रादियोंसे युक्त होता है ॥ ५ ॥

३१ यो न आगो अभ्येनो भरा॒त्यधीदुघमघशंसे दधात ।
जही चिकित्वो अभिशस्तिमेता॒मग्ने यो नो मर्चयति द्वयेन ॥ ७ ॥
३२ त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अयजन्त हव्यैः ।
संस्थे यदग्न ईयसे रयीणां देवो मर्तैर्वसुभिरिध्यमानः ॥ ८ ॥
३३ अव स्पृधि पितरं योधि विद्वान् पुत्रो यस्ते सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नो॒ऽग्ने कदाँ ऋतचिद् यातयासे ॥ ९ ॥
३४ भूरि नाम वन्दमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयासे ।
कुविद् देवस्य सहसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥ १० ॥

अर्थ— [३१] (यः नः आगः एनः अभि भराति) जो हमारे प्रति अपराध और पाप करता है, (अघं) उस पापको यह अग्नि (अघशंसे इत् आधि दधात) उस पापीमें ही स्थापित कर दे। हे (चिकित्वः अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (यः नः द्वयेन मर्चयति) जो हमें पाप और अपराध इन दोनोंसे कष्ट पहुंचाता है, तू (एतां अभिशस्तिं जहि) उस इस पापीको मार डाल ॥ ७ ॥

[३२] हे (देव अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! (अस्याः व्युषि) इस रात्रीके समाप्त होकर उषाके प्रकट होनेपर (यत्) जब (पूर्वे त्वा) प्राचीन लोग तुझे (दूतं कृण्वानाः) दूत बनाकर तुझमें (हव्यैः अयजन्त) हवियोंसे यज्ञ करते हैं, तब (संस्थे वसुभिः मर्तैः इध्यमानः) श्रेष्ठ मनुष्योंके द्वारा प्रज्वलित होता हुआ (रयीणां ईयसे) धनोंके साथ जाता है ॥ ८ ॥

[३३] (पुत्रः पितरं इव) जिसप्रकार पुत्र पिताकी सेवा करता है, उसीप्रकार हे (सहसः सूनो) बलके द्वारा उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (यः विद्वान् ते ऊहे) जो विद्वान् तेरी सेवा करता है, उसे तू (अव स्पृधि) संकटोंसे पार कर और (योधि) पापसे अलग कर। हे (चिकित्वः अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (नः कदा अभिचक्षसे) तू हमपर कृपादृष्टिसे कब देखेगा ? और (ऋतचित्) ऋतका पालक होकर (कदा यातयासे) हमें सन्मार्गपर कब प्रेरित करेगा ? ॥ ९ ॥

[३४] हे (वसो पिता) निवास करानेवाले पालक अग्ने ! (यदि तत् जोषयासे) जब तू उस हविका सेवन करता है, तब उपासक (वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ (भूरि नाम दधाति) तेरा बहुत यश धारण करता है। (कुवित् सहसा) अत्यधिक बलशाली (चकानः) सुन्दर होता हुआ (वावृधानः अग्निः) बढता हुआ अग्नि (देवस्य सुम्नं वनुते) उपासकको सुख देता है ॥ १० ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! धनकी इच्छा करनेवाले हम तुझे अच्छी तरह प्रज्ज्वलित करके तथा तुझसे सुरक्षित होकर धन प्राप्त करें तथा युद्धोंमें शत्रुओंको जीतें और पुत्रपौत्रादिकोंको प्राप्त करें ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! जो हमें लक्ष्य करके पाप और अपराध करता है, वह पाप उसीको नष्ट करे, तथा जो हमें सताता है, उसे यह अग्नि नष्ट कर दे ॥ ७ ॥

रात्रीके समाप्त होकर उषाके प्रकट होनेपर उत्तम श्रेष्ठ जन इस अग्निको प्रज्वलित करके उसमें हवियां डालते हैं, तब यह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे युक्त होकर प्रज्ज्वलित होता है ॥ ८ ॥

हे अग्ने ! पुत्र जैसे पिताकी सेवा करता है, उसी प्रकार जो तेरी सेवा करता है, उसे तू संकटोंसे पार कराकर पापोंसे पृथक् कर। उसपर अपनी कृपादृष्टि रखकर उसे सन्मार्ग पर प्रेरित कर ॥ ९ ॥

जब यह अग्नि वेदिमें प्रतिष्ठित होता है, तब उपासक इसकी स्तुति करता हुआ अग्निके बहुत यशका वर्णन करता है, तब अग्नि भी बढता हुआ उस उपासकको सुख प्रदान करता है ॥ १० ॥

×

३५ त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।
स्तेना अदृश्रन् रिपवो जनासो ऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥ ११ ॥
३६ इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन् वसवे वा तदिदागो अवाचि ।
नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥ १२ ॥

[४]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवताः- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

३७ त्वामग्ने वसुपतिं वसूना मभि प्र मन्दे अध्वरेषु राजन् ।
त्वया वाजं वाजयन्तो जयेमा ऽभि ष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम् ॥ १ ॥
३८ हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदी ह्यस्मद्र्यक् सं मिमीहि श्रवांसि ॥ २ ॥

अर्थ—[३५] (स्तेनाः अदृश्रन्) यहां बहुतसे चोर दिखाई देते हैं तथा (अज्ञातकेताः जनासः) अनजाने मनुष्य (वृजिनाः रिपवः अभूवन्) कुटिल और शत्रु हो गए हैं अतः (अंग यविष्ठ अग्ने) हे प्रिय और बलवान् अग्ने! तू (जरितारं विश्वानि दुरिता अति पर्षि) स्तोताको सम्पूर्ण संकटोंसे पार कर ॥ ११ ॥

[३६] हे अग्ने! (यामासः इमे त्वत् रिक् अभूवन्) स्तुति करनेवाले ये उपासक तेरी ओर हुए हैं (वा इत्) और मैंने भी (वसवे) निवास करानेवाले तुझ अग्निसे (तत् आगः अवाचि) वह अपराध स्पष्ट कर दिया है। (अयं अग्निः वावृधानः) यह अग्नि प्रज्वलित होते हुए (नः अभिशस्तये नाह परा दात्) हमें निन्दकोंके लिए न सौंपे और (नि रिषते) न हिंसकोंके लिए ही हमें सौंपे ॥ १२ ॥

[४]

[३७] हे (राजन् अग्ने) तेजस्वी अग्ने! (वसूनां वसुपतिं त्वां) उत्तम उत्तम धनोंके स्वामी तेरी (अध्वरेषु अभि प्र मन्दे) यज्ञोंमें मैं स्तुति करता हूं। (वाजयन्तः) बलकी इच्छा करनेवाले हम (त्वया वाजं अभि जयेम) तेरी सहायतासे बलको प्राप्त करें और (मर्त्यानां पृत्सुतीः अभि स्याम) मनुष्योंकी सेनाओंको जीतें ॥ १ ॥

[३८] (हव्यवाट् अजरः अग्निः नः पिता) हवियोंको ले जानेवाला जरारहित अग्नि हमारा पालक है। (विभुः विभावा अस्मे सुदृशीकः) वह व्यापक और तेजस्वी अग्नि हमें सुन्दर लगता है। हे अग्ने! तू हमें (सुगार्हपत्याः इषः दिदीहि) उत्तम गृहस्थीके योग्य अन्न दे और (अस्मद्र्यक् श्रवांसि संमिमीहि) हमारी ओर कीर्तिको प्रेरित कर ॥ २ ॥

भावार्थ—हे बलवान्! यहां इस संसारमें बहुतसे मनुष्य दुष्ट, कुटिल, अज्ञात और शत्रु हैं, उन सबसे तू उपासकको बचा और उसे सब संकटोंसे पार करा ॥ ११ ॥

स्तुति करनेवाले ये उपासक इस अग्निके सामने उपस्थित हो गए हैं और मैंने भी इस अग्निके सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है अतः अब वह हमपर कृपा करे और हमें निन्दकों और हिंसकोंके हाथोंमें न सौंपे ॥ १२ ॥

हे अग्ने! तू श्रेष्ठतम धनोंका स्वामी है अतः मैं तेरी स्तुति करता हूं। बलकी इच्छा करनेवाले हम तुझसे बल प्राप्त करें और दुष्ट शत्रुओंको जीतें ॥ १ ॥

यह जरारहित हविभक्षक अग्नि व्यापक, तेजस्वी, सुन्दर और मनुष्योंका पालक है। वह अग्नि हमें गृहस्थाश्रमको चलानेके लिए उत्तम अन्न दे और हमें यश भी प्रदान करे ॥ २ ॥

३९ विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
निं होतारं विश्वविदं दधिध्वं स देवेषु वनते वार्याणि ॥ ३ ॥

४० जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्व नः समिधं जातवेद आ च देवान् हविरद्याय वक्षि ॥ ४ ॥

४१ जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥ ५ ॥

४२ वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत् सहसस्पुत्र देवान् त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥ ६ ॥

४३ वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे ।
अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वा—स्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥ ७ ॥

अर्थ— [३९] हे मनुष्यो ! (मानुषीणां विशां विश्पतिं) मानवी प्रजाओंके पालक (कविं) ज्ञानी (शुचिं पावकं घृतपृष्ठं) स्वयं शुद्ध रहकर दूसरोंको पवित्र करनेवाले, तेजस्वी शरीरवाले (होतारं विश्वविदं अग्निं) देवोंको बुलाकर लानेवाले सर्वज्ञ अग्निको (दधिध्वं) तुम धारण करो । (सः) वह (देवेषु वार्याणि वनते) देवोंमें वरण करने योग्य धन हमें देवे ॥ ३ ॥

[४०] हे (अग्ने) अग्ने ! (इळया सजोषाः) वेदिमें प्रीतिपूर्वक प्रज्वलित होकर (सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानः) सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होकर (जुषस्व) हमारी हविका सेवन कर । हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (नः समिधं जुषस्व) हमारी समिधाओंका सेवन कर और (हविः अद्याय देवान् आ वक्षि) हविको खानेके लिए देवोंको ले आ ॥ ४ ॥

[४१] हे (अग्ने) अग्ने ! (जुष्टः दमूनाः) प्रीतियुक्त, उदार मनवाला (दुरोणे विद्वान् अतिथिः) घरमें विद्वान् अतिथिके समान पूज्य तू (नः इमं यज्ञं उप याहि) हमारे इस यज्ञमें आ, तथा (विश्वाः अभियुजः) सभी आक्रमणकारियोंको (विहत्य) मारकर (शत्रूयतां भोजनानि आ भर) शत्रुता करनेवाले मनुष्योंका अन्न हमारे पास ले आ ॥ ५ ॥

[४२] (स्वायै तन्वे वयः कृण्वानः) अपने शरीरके लिए अन्न प्राप्त करते हुए तू (वधेन दस्युं प्र चातयस्व) शस्त्रसे दस्युको मार । (यत्) क्योंकि हे (सहसः पुत्र) बलके पुत्र अग्ने ! तू (देवान् पिपर्षि) देवोंको तृप्त करता है । हे (नृतम अग्ने) श्रेष्ठ नेता अग्ने ! (सः) वह तू (वाजे अस्मान् पाहि) युद्धमें हमारी रक्षा कर ॥ ६ ॥

[४३] हे (पावक भद्रशोचे अग्ने) पवित्र करनेहारे, कल्याणकारी तेजवाले अग्ने ! (वयं ते) हम तेरी (उक्थैः हव्यैः विधेम) स्तोत्रों और हवियोंसे सेवा करते हैं । तू (अस्मे विश्ववारं रयिं सं इन्व) हमें सबके द्वारा वरणीय धन दे, (अस्मे इत् विश्वानि द्रविणानि धेहि) हमें ही सभी तरहके धन दे ॥ ७ ॥

भावार्थ— वह अग्नि सब प्रजाओंका पालक, स्वयं शुद्ध, दूसरोंको पवित्र करनेवाला, तेजस्वी और सर्वज्ञ है, वह सबके द्वारा धारण करने योग्य है । वह अग्नि हमपर प्रसन्न होकर हमें श्रेष्ठ श्रेष्ठ धन प्रदान करे ॥ ३ ॥

वेदिमें अग्निके प्रज्वलित होनेपर उसकी किरणें सूर्यकी किरणोंके साथ मिलती हैं । उस समय अग्निके साथ संयुक्त होकर सूर्य भी मानो हविका भक्षण करता है । उस समय सभी देव हविके भक्षणके लिए यज्ञमें उपस्थित होते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! प्रीतियुक्त, उदार तथा अतिथिके समान पूज्य तू हमारे इस यज्ञमें आ तथा सम्पूर्ण आक्रमणकारियोंको मारकर उनके अन्न उनसे छीन कर हमें दे ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू अपने शरीरके लिए हवि प्राप्त करते हुए दुष्टोंको मार तू ही देवोंके तृप्त करता है अतः तू हमारी भी सर्वत्र रक्षा कर ॥ ६ ॥

हे उत्तम कल्याणकारी तेजवाले अग्ने ! हम तेरी स्तोत्रों और हवियोंसे सेवा करते हैं अतः तू हमें हर तरहका धन दे ॥ ७ ॥

४४ अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम् ।
वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥ ८ ॥
४५ विश्वानि नो दुर्गहा जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरितातिं पर्षि ।
अग्ने अत्रिवन्नमसा गृणानोऽस्माकं बोध्यविता तनूनाम् ॥ ९ ॥
४६ यस्त्वा हृदा कीरिणा मन्यमानोऽमर्त्यं मर्त्यो जोहवीमि ।
जातवेदो यशो अस्मासु धेहि प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम् ॥ १० ॥
४७ यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ११ ॥

अर्थ— [४४] हे (सहसः सूनो त्रिसधस्थ अग्ने) बलके पुत्र और तीनों लोकोंमें रहनेवाले अग्ने ! तू (अस्माकं हव्यं अध्वरं जुषस्व) हमारी हवि और यज्ञका सेवन कर। (वयं देवेषु सुकृतः स्याम) हम देवोंमें श्रेष्ठ कर्म करनेवाले हों। तू (त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि) तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर ॥ ८ ॥

१ वयं देवेषु सुकृतः स्याम— हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों।
२ त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि— तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर।

[४५] हे (जातवेदः अग्ने) सर्वज्ञ अग्ने ! (सिन्धुं न नावा) जैसे नाविक नावके द्वारा लोगोंको समुद्रके पार पहुंचाता है, उसी प्रकार तू (नः) हमें (दुर्गहा विश्वानि दुरिता अतिपर्षि) कठिनतासे पार जाने योग्य सभी पापोंसे पार करा। (अत्रिवत् नमसा गृणानः) अत्रिके समान स्तोत्रोंसे स्तुति करनेवाले (अस्माकं तनूनां अविता) हमारे शरीरोंका तू रक्षक है, यह तू (बोधि) जान ॥ ९ ॥

[४६] (यः मर्त्यः) जो मरणशील मैं (अमर्त्यं त्वां) अमरणशील तुझे (कीरिणा हृदा मन्यमानः) आनन्दयुक्त अन्तःकरणसे स्तुति करता हुआ (जोहवीमि) बुलाता हूँ। हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (अस्मासु यशः धेहि) हममें कीर्ति स्थापित कर और हे (अग्ने) अग्ने ! (प्रजाभिः) प्रजाओंसे युक्त होकर (अमृतत्वं अश्यां) मैं अमृतको प्राप्त करूं ॥ १० ॥

[४७] हे (जातवेदः) सर्वज्ञ अग्ने ! (त्वं) तू (यस्मै सुकृते) जिस श्रेष्ठ कर्म करनेवाले उपासकके लिए (लोकं स्योनं कृणवः) लोकको सुखकर बनाता है। (सः) वह (अश्विनं पुत्रिणं वीरवन्तं) घोडोंसे, पुत्रोंसे, वीरोंसे (गोमन्तं स्वस्ति रयिं नशते) तथा गौओंसे युक्त कल्याणकारी धन प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

भावार्थ— हे बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! तू तीनों लोकोंमें रहनेवाला है अतः तू हमारे यज्ञका सेवन कर। हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों तथा तीन तीन मंजिलवाले घरोंमें हम सुखसे रहें ॥ ८ ॥

जिस प्रकार नाविक नावके द्वारा लोगोंको समुद्रके पार पहुंचाता है, उसी प्रकार हे अग्ने ! तू हमें सब संकटोंसे पार करा। अत्रिऋषिके समान स्तुति करनेवाले हमारे शरीरोंकी तू रक्षा कर ॥ ९ ॥

मैं मरणशील होता हुआ आनन्दित हृदयसे तुझ अमर अग्निकी स्तुति करता हूँ अतः तू मुझे भी मेरी प्रजाओंके साथ अमर कर और यश दे ॥ १० ॥

हे सर्वज्ञ अग्ने ! तू जिस उत्तम कर्म करनेवाले उपासकके लिए सुख प्रदान करता है, वह पुत्रपौत्रोंसे युक्त कल्याणकारी धन प्राप्त करता है ॥ ११ ॥

[५]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा-भारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः) । छन्दः- गायत्री]

४८ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ १ ॥

४९ नराशंसः सुषूदती—मं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥ २ ॥

५० ईळितो अग्न आ वहे—न्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥ ३ ॥

५१ ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वा—ऽभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥ ४ ॥

५२ देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ५ ॥

५३ सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

---

[५]

अर्थ— [४८] हे मनुष्यो (सुसमिद्धाय शोचिषे) अच्छी तरहसे प्रदीप्त तथा तेजस्वी (जातवेदसे अग्नये) जातवेदा अग्निके लिए (तीव्रं घृतं जुहोतन) बलसे युक्त घीकी आहुति दो ॥ १ ॥

[४९] (नराशंसः) मनुष्योंसे प्रशंसित होनेवाला अग्नि (इमं यज्ञं) इस यज्ञको (सुसूदाति) अच्छी तरह प्रेरित करे। (हि) क्योंकि (अदाभ्यः कविः मधुहस्त्यः) वह अग्नि अहिंस्य, ज्ञानी और मधुरता पूर्ण किरणोंवाला है ॥ २ ॥

[५०] हे (अग्ने) अग्ने! तू (ईळितः) स्तुत होकर (ऊतये) हमारी रक्षाके लिए (सुखैः रथेभिः) सुख-दायक रथोंसे (प्रियं चित्रं इन्द्रं) प्रिय और विलक्षण शक्तिवाले इन्द्रको (इह आ वह) यहां ले आ ॥ ३ ॥

[५१] हे मनुष्य! तू (ऊर्णम्रदा अभि वि प्रथस्व) ऊनके समान कोमल आसनको बिछा, क्योंकि मनुष्योंने (अर्काः अनूषत) स्तुतियोंको गाना शुरु कर दिया है। हे (शुभ्र) तेजस्वी आसन ! तू (नः सातये भव) हमें धन प्रदान करनेवाला हो ॥ ४ ॥

[५२] हे (देवीः द्वारः) दिव्य द्वारो! तुम (वि श्रयध्वं) खुल जाओ, (सुप्रायणाः) उत्तम गुणोंवाली तुम (नः ऊतये) हमारी रक्षाके लिए (यज्ञं प्र पृणीतन) यज्ञको पूर्ण करो ॥ ५ ॥

[५३] (सुप्रतीके) उत्तम रूपवाली (वयोवृधा) आयुको बढानेवाली (यह्वी) महान् (ऋतस्य मातरा) यज्ञका निर्माण करनेवाली (दोषां उषासं) रात्री और उषाकी (ईमहे) हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— हे मनुष्यो ! मनुष्योंसे प्रशंसित होनेवाला वह अग्नि इस यज्ञको प्रेरणा देता है। वह जातवेदा अर्थात् सम्पूर्ण उत्पन्न हुए जगतको जाननेवाला वह अग्नि किसीसे भी न दबनेवाला, बुद्धियोंका प्रेरक और मधुर किरणोंवाला है। ऐसे अग्निको प्रज्वलित करके और अधिक तेजस्वी बनानेके लिए उत्तम घीकी आहुति डालो ॥ १–२ ॥

हे अग्ने! तू प्रशंसित होकर हमारी रक्षाके लिए सुखदायक रथोंसे प्रिय और आश्चर्य कारक कर्म करनेवाले इन्द्रको हमारे पास ले आ ॥ ३ ॥

यज्ञमें आसन ऊनके समान कोमल हों। उनपर सुखपूर्वक बैठकर मनुष्य स्तुति करें ॥ ४ ॥

ये दिव्य द्वार हमारे आने जानेके समय पर सुखदायी हों। हमारी रक्षाके लिए यज्ञको पूर्ण करें ॥ ५ ॥

दिन रात ये दोनों देवियां उत्तम रूपवाली, आयुको बढानेवाली महान् यज्ञका निर्माण करनेवाली हैं ॥ ६ ॥

५४ वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः । इमं नो यज्ञमा गतम् ॥ ७ ॥
५५ इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ८ ॥
५६ शिवस्त्वष्टरिहा गहि विभुः पोषं उत त्मना । यज्ञेयज्ञे न उदव ॥ ९ ॥
५७ यत्र वेत्थ वनस्पते देवानां गुह्या नामानि । तत्र हव्यानि गमय ॥ १० ॥
५८ स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः । स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥ ११ ॥

[६]

[ऋषिः- वसुश्रुत आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- पङ्क्तिः ।]

५९ अग्निं तं मन्ये यो वसु- रस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवो ऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १ ॥

अर्थ— [५४] हे (दैव्या होतारा) दिव्य होताओ ! तुम दोनों (ईळिता) स्तुत होकर (मनुषः) मनुष्यके द्वारा किए जानेवाले (नः इमं यज्ञं) हमारे इस यज्ञको (वातस्य पत्मन्) वायुकी सी गतिसे (आ गतं) आओ ॥ ७ ॥

[५५] (इळा सरस्वती मही) इळा, सरस्वती और महान् भारती ये (तिस्रः देवीः) तीनो देवियां (मयोभुवः) सुखकारक हैं, ये (अस्रिधः) अहिंसक होकर (बर्हिः सीदन्तु) यज्ञमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

[५६] हे (त्वष्टः) त्वष्टा ! (शिवः विभुः) कल्याणकारी और व्यापक तू (इह आगहि) यहां आ और (पोषे) हमारे पोषणके लिए (नः) हमारी (त्मना) स्वयं ही (यज्ञे यज्ञे उदव) प्रत्येक यज्ञमें रक्षा कर ॥ ९ ॥

[५७] हे (वनस्पते) वनस्पते ! (यत्र देवानां गुह्या नामानि वेत्थ) जहां जहां तू देवोंके गुप्त स्थानोंको जानता है, (तत्र हव्यानि गमय) वहां वहां हमारी हवियोंको पहुंचा ॥ १० ॥

[५८] (अग्नये स्वाहा) अग्निके लिए यह हवि समर्पित है, (वरुणाय स्वाहा) वरुणके लिए यह हवि समर्पित है (इन्द्राय मरुद्भ्यः स्वाहा) इन्द्र और मरुतोंके लिए यह हवि समर्पित है, (देवेभ्यः हविः स्वाहा) देवोंके लिए यह हवि समर्पित है ॥ ११ ॥

[६]

[५९] (यः वसुः) जो अग्नि निवास करानेवाला है, (धेनवः यं अस्तं यन्ति) गायें जिसके घर जाती हैं, (अस्तं आशवः अर्वन्तः) जिसके घर वेगवान् घोडे जाते हैं (अस्तं नित्यासः वाजिनः) जिसके घर नित्य बलवान् जाते हैं, (तं अग्निं मन्ये) उस अग्निकी मैं स्तुति करता हूँ । हे अग्ने ! तू (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे दिव्य होताओ ! तुम दोनों स्तुत होकर मनुष्योंके द्वारा किए जानेवाले इस यज्ञमें वायुकी गतिसे आओ ॥ ७ ॥

इळा, सरस्वती और भारती ये तीनों देवियां सुखकारक हैं, अतः ये किसीकी हिंसा न करती हुई हमारे यज्ञोंमें आकर बैठें ॥ ८ ॥

हे त्वष्टा देव ! तू सुखकारी और कल्याणकारी है तथा व्यापक है। तू स्वयं ही हमारे यज्ञोंमें आ और हमारी रक्षा कर ॥ ९ ॥

हे वनस्पते देव ! तू देवोंके जिन जिन गुह्य स्थानोंको जानता है, वहां वहां हमारी हवियोंको पहुंचा ॥ १० ॥

अग्नि, वरुण, इन्द्र, मरुत् तथा अन्य देवोंके लिए यह हवि समर्पित हो ॥ ११ ॥

६० सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ २ ॥
६१ अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्य-मिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ३ ॥
६२ आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवी-षं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४ ॥
६३ आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ५ ॥

अर्थ— [६०] (यः वसुः) जो निवास करानेवाला है, (यं धेनवः सं आयन्ति) जिसके पास गायें आती हैं (रघुद्रुवः अर्वन्तः सं) शीघ्र दौडनेवाले घोडे जिसके पास जाते हैं, (सुजातासः सूरयः सं) उत्तम कुलमें उत्पन्न विद्वान् जिसके पास जाते हैं, (सः अग्निः गृणे) उस अग्निकी सब लोग स्तुति करते हैं, हे अग्ने (स्तोतृभ्यः इषं आभर) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥ २ ॥

[६१] (विश्वचर्षणिः अग्निः) सबको देखनेवाला अग्नि (विशे वाजिनं ददाति) अपने उपासकोंको घोडा देता है और (अग्निः) यह अग्नि (प्रीतः) प्रसन्न होकर (राये) धनकी इच्छा करनेवालेके लिए (वार्यं सु-आभुवं) चाहने योग्य और उत्तम अस्तित्व देनेवाले धनको (याति) देता है । हे अग्ने ! (स्तोतृभ्यः इषं आभर) स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥ ३ ॥

[६२] हे (देव अग्ने) दिव्यगुणयुक्त अग्ने (द्युमन्तं अजरं ते यत्) तेजस्वी और जरारहित तुझे जब हम (आ इधीमहि) चारों ओरसे प्रज्वलित करते हैं, तब (ते स्या पनीयसी समित्) तेरी वह प्रशंसनीय तेज (द्यवि दीदयति) द्युलोकमें प्रकाशित होता है । हे अग्ने ! (स्तोतृभ्यः इषं आभर) स्तोताओंको भरपूर अन्न दे ॥ ४ ॥

[६३] हे (शोचिषः पते, सुश्चन्द्र, दस्म) तेजोंके स्वामी, आनन्ददायक, सुन्दर (विश्पते हव्यवाट् अग्ने) प्रजाओंके पालक और हवि के जानेवाले अग्ने ! (शुक्रस्य ते तुभ्यं) तेजस्वी तेरे लिए (ऋचा हविः हूयते) मंत्रके साथ हवि दी जाती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसी अग्निके आश्रयसे गायें, वेगवान् घोडे, बलवान् तथा उत्तम कुलोत्पन्न विद्वान् नित्यप्रति रहते हैं । वह स्तोताओंके लिए भरपूर अन्न देता है ॥ १-२ ॥

सर्व द्रष्टा अग्नि अपने उपासकोंको घोडा देता है और प्रसन्न होनेपर धनकी इच्छा करनेवालोंको उत्तम धन देता है ॥ ३ ॥

जब लोग इस तेजस्वी जरारहित अग्निको चारों ओरसे प्रज्वलित करते हैं, तब इसका तेज द्युलोकमें सर्वत्र फैलता है और यह प्रसन्न होकर स्तोताओंको भरपूर अन्न देता है ॥ ४ ॥

यह अग्नि तेजोंका स्वामी आनन्ददायक, सुन्दर प्रजाओंका पालक हवि ले जानेवाला और तेजस्वी है । इसके लिए मंत्रपूर्वक हवि दी जाती है ॥ ५ ॥

६४ प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुष॒गिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ६ ॥

६५ तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।
ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोना॒मिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

६६ नवा नो अग्न आ भर स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः ।
ते स्याम य आनृचु॒स्त्वादूतासो दमेदम इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ८ ॥

६७ उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत् पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ९ ॥

अर्थ— [६४] (त्ये अग्नयः) वे अग्नि (अग्निषु) अन्य अग्नियोंमें (विश्वं वार्यं पुष्यन्ति) सब चाहने योग्य धनको पुष्ट करते हैं। (ते हिन्विरे) वे लोगोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं (ते इन्विरे) वे लोगोंको आनंदित करते हैं (ते इषण्यन्ति) वे आहुतिकी इच्छा करते हैं। हे अग्ने! (स्तोतृभ्यः इषं आभर) स्तोताओंके लिए अन्न भरपूर दे ॥ ६ ॥

[६५] (ये) जो (पत्वभिः) अपनी वेगशील किरणोंके द्वारा (शफानां गोनां व्रजा भुरन्त) अच्छे खुरोंवाली गायोंके बाडोंकी कामना करते हैं, हे अग्ने! (तव त्ये अर्चयः) तेरी वे किरणें (वाजिनः महि व्राधन्त) आहुतियोंसे युक्त होकर बहुत बढती हैं ॥ ७ ॥

[६६] हे (अग्ने) अग्ने! (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंको (सुक्षितीः) उत्तम घर और (नवाः इषः) नये अन्न (आ भर) भरपूर दे (ये दमे दमे आनृचुः) जो घर घरमें पूजा करते हैं (ते त्वादूतासः स्याम) वे हम तुझ दूतको पाकर सुखी हों (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) अन्य स्तोताओंको भी भरपूर अन्न दे ॥ ८ ॥

[६७] हे (शवसः पते सुश्चन्द्र) बलोंके स्वामी और आल्हादक अग्ने! तू (आसनि) अपने मुखमें पडे हुए (सर्पिषः उभे दर्वी) घीके दो चमचोंको (श्रीणीषे) अच्छी तरह पचा जाता है, अतः (उक्थेषु नः उत् पुपूर्याः) यज्ञोंमें हमें फलोंसे तृप्त कर और (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥ ९ ॥

भावार्थ— भौतिक अग्नि दिव्य अग्नियोंके अन्दर पुष्टिकारक शक्तियां स्थापित करते हैं, जब इस भौतिक यज्ञाग्निमें आहुतियां डालीं जाती हैं, तब अग्नि प्रज्वलित होती है और उसकी किरणें दिव्य अग्नि अर्थात् सूर्यकी किरणोंके साथ संयुक्त होती हैं उन्हीं किरणोंके साथ यज्ञाग्निमें प्रदत्त हवि भी सूक्ष्मतम होकर सूर्यकी किरणोंमें जा पहुंचती है, फिर वह सूर्य अपनी किरणों द्वारा हविके सूक्ष्म भागको सब ओषधियोंमें स्थापित करता है। उन औषधियोंको खाकर सारे प्राणी प्रसन्न होते हैं ॥ ६ ॥

अग्नियोंमें गायोंके दूध आदि पदार्थोंकी आहुतियां दी जाती हैं, इसलिए मानों वे अग्नियां ही गायोंकी कामना करती हैं। उन आहुतियोंको पाकर वे अग्नियां और अधिक प्रज्वलित होकर वृद्धिको प्राप्त होती हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने! तू हमें उत्तम घर और नये अन्न भरपूर प्रमाणमें दे। हम तेरी सर्वत्र पूजा करते हैं, अतः हम तुझे पाकर समृद्ध हों ॥ ८ ॥

हे बलोंके स्वामी अग्ने! तू तुझमें डाली गई घृतादि हवियोंको आसानीसे पचा डालता है और यज्ञोंमें अपने स्तोताओंको फलोंसे तृप्त करता है ॥ ९ ॥

६८ एवाँ अग्निमजुर्यमु गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्य मुत त्यदाश्वश्व्य मिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ १० ॥

[७]

[ऋषिः- इष आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, १० पङ्क्तिः ।]

६९ सखायः सं वः सम्यञ्च मिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीना मूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥ १ ॥

७० कुत्रा चिद् यस्य समृतौ रण्वा नरो नृषदने ।
अर्हन्तश्चिद् यमिन्धते संजनयन्ति जन्तवः ॥ २ ॥

७१ सं यदिषो वनामहे सं हव्या मानुषाणाम् ।
उत द्युम्नस्य शवस ऋतस्य रश्मिमा ददे ॥ ३ ॥

अर्थ— [६८] (एव) इस प्रकार (गीर्भिः यज्ञेभिः) स्तुतियोंके और यज्ञोंके द्वारा लोग (अग्निं अजुः यमुः) अग्निके पास जाते हैं और उसे पूजते है। वह अग्नि (अस्मे) हमें (सुवीर्यं उत आश्वश्व्यं दधत्) उत्तम वीर पुत्र पौत्रादि और अश्वोंका समूह प्रदान करे और (स्तोतृभ्यः इषं आ भर) अन्य स्तोताओंको अन्न भरपूर दे ॥ १० ॥

[७]

[६९] हे (सखायः) मित्रो ! (वः) तुम (क्षितीनां वर्षिष्ठाय) प्रजाओंमें सबसे वृद्ध (ऊर्जः नप्त्रे) बलके नाती और (सहस्वते) स्वयं भी बलवान् (अग्नये) अग्निके लिए (इषं स्तोमं सम्यंचं) अन्न और स्तोत्रको उत्तम रीतिसे तैय्यार करो ॥ १ ॥

[७०] (यस्य समृतौ नरः रण्वाः) जिसके आनेपर मनुष्य आनन्दित होते हैं (नृषदने अर्हन्तः यं इन्धते) मनुष्योंके द्वारा बैठने योग्य यज्ञस्थानमें बुद्धिमान् जन जिसको प्रज्वलित करते हैं (जन्तवः सं जनयन्ति) अन्य प्राणी भी उत्पन्न करते हैं वह अग्नि (कुत्र चित्) कहां है ? ॥ २ ॥

[७१] (यत्) जब हम (इषः सं वनामहे) अन्नकी कामना करते हैं और जब (मानुषाणां हव्या सं) मनुष्योंकी हवियां उस अग्निकी ओर जाती हैं, तब वह अग्नि (द्युम्नस्य शवसा) अपने तेजके सामर्थ्यसे (ऋतस्य रश्मिं आ ददे) जल बरसानेवाली किरणोंको ग्रहण करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— इस प्रकार लोग स्तुतियोंके साथ यज्ञ करते हुए अग्निकी उपासना करते हैं और वह अग्नि भी अपने उपासकोंको पुत्र, घोडे, गाय और अन्न ये सभी पदार्थ भरपूर प्रमाणमें देता है ॥ १० ॥

वह अग्नि प्रजाओंमें सबसे वृद्ध और बलका पुत्र होनेके कारण स्वयं भी बलवान् है। उसके लिए उत्तम रीतिसे तैय्यार किया गया अन्न ही देना चाहिए ॥ १ ॥

इस अग्निको यज्ञस्थानमें बुद्धिमान् उत्पन्न करते हैं, अन्य प्राणी भी इसे अपनी रक्षाके लिए उत्पन्न करते हैं और इसे उत्पन्न हुआ हुआ देखकर लोग प्रसन्न भी होते हैं। पर इसका मूल स्थान कहां है, यह रहता कहां है ? यह कोई भी नहीं जानता ॥ २ ॥

जब मनुष्योंकी अन्न पानेकी इच्छा होती है, तब वे अग्निमें हवियां डालते हैं और तभी अग्निकी किरणें पानी बरसाती हैं ॥ ३ ॥

×

७२ स स्मा कृणोति केतुमा नक्तं चिद् दूर आ सते ।
पावको यद् वनस्पतीन् प्र स्मा मिनात्यजरः ॥ ४ ॥
७३ अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।
अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥ ५ ॥
७४ यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विददू विश्वस्य धायसे ।
प्र स्वादनं पितूना मस्ततातिं चिदायवे ॥ ६ ॥
७५ स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।
हिरिश्मश्रुः शुचिद न्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥ ७ ॥
७६ शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत् प्र स्वधितीव रीयते ।
सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [७२] (अजरः पावकः) यह जरारहित और पवित्र करनेवाला (यत् वनस्पतीन् प्र मिनाति) जब वनस्पतियोंको जलाने लगता है, तब (सः) वह (नक्तं) रातमें (दूरे सते चित्) दूर पर रहनेवाले मनुष्यके लिए भी (केतुं आकृणोति स्म) अपनी ज्वालाएं प्रकट करता है ॥ ४ ॥

[७३] (यस्य वेषणे) जिस अग्निकी सेवामें (पथिषु) होममार्गोंमें (स्वेदं अव जुहति) घृतकी मनुष्य आहुतियां देते हैं, तब वे घृतकी धारायें (एनं अभि रुरुहुः) इस अग्नि पर उसी प्रकार चढती है, जिस प्रकार (स्व-जेन्यं भूम पृष्ठा इव) अपनेसे उत्पन्न पुत्र पिताकी पीठपर चढता है ॥ ५ ॥

[७४] (मर्त्यः) मनुष्य (पितूनां स्वादनं) अन्नको स्वादिष्ट बनानेवाले (आयवे अस्ततातिं) मनुष्योंके कल्याणके लिए घरोंमें रहनेवाले (पुरुस्पृहं यं विदत्) बहुतोंके द्वारा चाहे जाने योग्य जिस अग्निको जानता है, वह (विश्वस्य धायसे प्र) विश्वको पुष्ट करनेके लिए प्रयत्न करता है ॥ ६ ॥

[७५] (हिरिश्मश्रुः शुचिदन् ऋभुः अनिभृष्टतविषिः सः) सोनेके समान तेजस्वी मूंछ-ज्वाला वाला, सफेद दांतोंवाला, व्यापक और अपराजित बलवाला वह अग्नि (दाता पशुः न) घासको काटनेवाले पशुकी तरह (धन्व-आक्षितं दाति) निर्जल प्रदेशमें रखे गए लकडी आदियोंको जलाकर टुकडे टुकडे कर देता है ॥ ७ ॥

[७६] मनुष्य (यस्मै अत्रिवत् रीयते) जिसको अत्रि ऋषिके समान हवि आदि देता है, जो (स्वधिति इव प्र) कुल्हाडीके समान लकडियोंको फाड देता है (यत् भगं आनशे) जो ऐश्वर्यका उपभोग करता है, उस अग्निको (सूषुः माता क्राणा असूत) प्रसव करनेवाली माता अरणी स्वेच्छासे उत्पन्न करती है, वह (शुचिः स्म) तेजस्वी है ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब यह अग्नि लकडियोंको जलाने लगता है, तब रातमें दूर पर रहनेवाले मनुष्यको भी उसकी ज्वालाएं दीखने लगती हैं ॥ ४ ॥

उस अग्निकी सेवा करते हुए जो घृतकी धारायें अग्निमें डाली जाती हैं, वे उस अग्निको ऊपरसे आच्छादित कर लेती हैं ॥५॥

यह अग्नि अन्नको परिपक्व करके स्वादिष्ट बनाता और घरमें रहकर लोगोंका कल्याण करता है। इस प्रकार यह अग्नि सारे संसारका पालन पोषण करता है ॥ ६ ॥

सोनेकी रंगवाली ज्वालाओंसे युक्त तेजस्वी दांतोंवाला व्यापक यह अग्नि जलहीन अर्थात् सूखे प्रदेशमें रखी हुई काष्ठादिकोंको जलाकर टुकडे टुकडे कर देता है ॥ ७ ॥

इस अग्निको अरणी स्वेच्छासे उत्पन्न करती है। जब यह प्रज्वलित होकर समिधाओंको जलाकर तेजस्वी होता है, तब लोग इसमें आहुतियां डालते हैं ॥ ८ ॥

७७ आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।
ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥ ९ ॥
७८ इति चिन्मन्युमध्रिजस्त्वादातमा पशुं ददे ।
आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद् दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन् ॥ १० ॥

[८]

[ऋषिः- इष आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

७९ त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥ १ ॥
८० त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥ २ ॥

अर्थ— [७७] हे (सर्पिः आसुते अग्ने) घृतको भक्षण करनेवाले अग्ने ! (यः आ) जो तू सर्वत्र व्यापक है, उस (धायसे ते शं अस्ति) जगत्को धारण करनेवाले तुझे सुख प्राप्त हो, (एषु मर्त्येषु) इन मनुष्योंमें तू (द्युम्नं श्रवः चित्तं आ धाः) तेज, यश और उत्तम मन स्थापित कर ॥ ९ ॥

[७८] हे अग्ने ! (इति मन्युं) इस प्रकार स्तोत्र बनानेवाला (अध्रिजः) अपराजेय ऋषि (त्वादातं पशुं आ ददे) तेरे द्वारा दिए गए पशुको स्वीकार करता है और (आत्) उसके बाद (अत्रिः) अत्रि ऋषि (अपृणतः दस्यून्) दान न देनेवाले दस्युओंको (सासह्यात्) पराजित करे, तथा (इषः नॄन् सासह्यात्) आक्रमण करनेवाले मनुष्योंको भी पराजित करे ॥ १० ॥

[८]

[७९] हे (सहस्कृत अग्ने) बलको उत्पन्न करनेवाले अग्ने ! (ऋतायवः प्रत्नासः) सत्यके मार्गपर चलनेवाले प्राचीन ऋषि मुनि (ऊतये) अपने संरक्षणके लिए (प्रत्नं पुरुश्चन्द्रं) प्राचीन, अत्यन्त आनन्ददायक (विश्वधायसं यजतं) संसारके भरणपोषण करनेवाले, उदारचित्तवाले, पूजनीय (वरेण्यं गृहपतिं) वरण करनेके योग्य, घरके पालक (त्वां सं ईधिरे) तुझको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं ॥ १ ॥

[८०] हे (अग्ने) अग्ने ! (विशः) मनुष्य (अतिथिं पूर्व्यं) अतिथिके समान पूज्य, प्राचीन (शोचिष्केशं गृहपतिं) तेजस्वी ज्वालाओंवाले, घरके स्वामी (बृहत् केतुं पुरुरूपं) बहुत ऊंची ज्वालाओंसे युक्त, अनेक रूपोंवाले (धनस्पृतं सु शर्माणं) धनसे भरपूर, उत्तम सुखकारी, (सु-अवसं जरद्विषं) उत्तम संरक्षण करनेवाले सूखी समिधाओंको जलानेवाले (त्वां नि षेदिरे) तुझे वेदिमें स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तू हमेशा शान्त रह, कभी भी हम पर क्रोधित मत हो, तथा हमें तेज, यश और उत्तम मन प्रदान कर ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! अपराजित अत्रि ऋषि इस प्रकार स्तोत्रोंके द्वारा तुझसे धन आदि प्राप्त करके अदानशील दस्युओं और आक्रमणकारी मनुष्योंको नष्ट करे ॥ १० ॥

यह अग्नि अत्यन्त प्राचीन और आनन्ददायक, संसारका भरणपोषण करनेवाला, उदार मनवाला, पूजनीय वरण करने योग्य और घरका स्वामी है। ऐसे इस अग्निको ऋतके मार्गपर चलनेवाले प्राचीन विद्वान् अपनी रक्षाके लिए प्रज्वलित करते हैं ॥ १ ॥

यह अग्नि अतिथिके समान पूज्य, तेजस्वी और ऊंची ज्वालाओंवाला, घरका स्वामी, अनेक रूपोंवाला, उत्तम सुखकारी, उत्तम संरक्षण देनेवाला है। अतः इसे मनुष्य वेदिमें स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

८१ त्वाम॑ग्ने मानु॑षीरीळते॒ विशो॑ होत्रा॒विदं॒ विवि॑चिं रत्न॒धात॑मम् ।
गुहा॒ सन्तं॑ सुभग वि॒श्वद॑र्शतं तुविष्व॒णसं॑ सु॒यजं॑ घृत॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥
८२ त्वाम॑ग्ने धर्णसिं॑ वि॒श्वधा॑ व॒यं गी॒र्भिर्गृ॒णन्तो॒ नम॒सोप॑ सेदिम ।
स नो॑ जुषस्व समिधा॒नो अ॑ङ्गिरो दे॒वो मर्त॑स्य य॒शसा॑ सु॒दीति॑भिः ॥ ४ ॥
८३ त्वम॑ग्ने पुरु॒रूपो॑ वि॒शेवि॑शे॒ वयो॑ दधासि प्र॒त्नथा॑ पुरुष्टुत ।
पु॒रूण्यन्ना॒ सह॑सा॒ वि रा॑जसि॒ त्विषिः॒ सा ते॑ तित्विषा॒णस्य॒ नाधृषे॑ ॥ ५ ॥
८४ त्वाम॑ग्ने समिधा॒नं य॑विष्ठ्य दे॒वा दू॒तं च॑क्रिरे हव्य॒वाह॑नम् ।
उ॒रु॒ज्रय॑सं घृ॒तयो॑नि॒माहु॑तं त्वे॒षं चक्षु॑र्दधिरे चोद॒यन्म॑ति ॥ ६ ॥

अर्थ— [८१] हे (सुभग अग्नेः) उत्तम भाग्यशाली अग्ने ! (मानुषीः विशः) मानवी प्रजायें (होत्राविदं विविचिं) होत्रोंके जाननेवाले, सत्यासत्यका विवेक करनेवाले (रत्नधातमं) उत्तम उत्तम रत्नोंको देनेवाले (गुहा सन्तं) अरणीरूप गुहामें रहनेवाले (विश्वदर्शतं तुविष्वणसं) सबके द्वारा देखने योग्य, अत्यन्त ध्वनियुक्त (सुयजं घृतश्रियं) उत्तम रीतिसे पूजनीय, घृतके कारण तेजस्वी (त्वां ईळते) तेरी स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

[८२] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वां विश्वधा गीर्भिः गृणन्तः) हम अनेक तरहके स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए (धर्णसिं त्वां) सबको धारण करनेवाले तेरे पास (नमसा सेदिम) नमस्कारपूर्वक आते हैं। (अंगिरः देवः) अंगोंमें तेज प्रदान करनेवाला तथा स्वयं भी तेजस्वी तू (सं इधानः) अच्छी तरह प्रज्वलित होता हुआ (नः जुषस्व) हमारी आहुतियोंका सेवन कर और (सुदीतिभिः) अपनी तेजस्वी ज्वालाओंसे (मर्तस्य यशसा) मनुष्यको यशसे युक्त कर ॥ ४ ॥

[८३] हे (अग्ने) अग्ने ! (पुरुरूपः त्वं) अनेक रूपोंवाला तू (प्रत्नथा) पहलेके समान ही (विशे विशे वयः दधासि) प्रत्येक मनुष्यको अन्न देता है। हे (पुरुस्तुत) बहुतों द्वारा स्तुत होनेवाले अग्ने ! तू (सहसा) अपने बलसे ही (पुरूणि अन्ना वि राजसि) अनेक तरहके अन्नोंका स्वामी है। (तित्विषाणस्य ते) अत्यन्त तेजस्वी तेरी (सा त्विषिः) वह दीप्ति (न अधृषे) दूसरोंके द्वारा दबाई नहीं जा सकती ॥ ५ ॥

[८४] हे (यविष्ठ्य अग्ने) बलवान् अग्ने ! (समिधानं त्वां) उत्तम प्रकारसे प्रज्वलित होनेवाले तुझे (देवाः) देवोंने (हव्यवाहनं दूतं चक्रिरे) हविको लेनेवाला दूत बनाया है। (उरुज्रयसं घृतयोनिं आहुतं त्वेषं) अत्यन्त वेगवान् घीके आधारसे रहनेवाले, हवियोंको प्राप्त करनेवाले और तेजस्वी तुझे लोग (चोदयन्मति चक्षुः दधिरे) बुद्धिको प्रेरणा देनेवाले और आंखके रूपमें धारण करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ— यह अग्नि सौभाग्यशाली, सत्यासत्यको जाननेवाला, उत्तम उत्तम रत्नोंको देनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, जलते समय अत्यन्त जोरकी ध्वनि करनेवाला, घृतके कारण तेजस्वी है, इसकी मानवी प्रजायें स्तुति करती हैं ॥ ३ ॥

यह अग्नि शरीरमें रहते हुए शरीरके अंगोंमें तेज भरता है, तथा स्वयं भी तेजस्वी है। वह उपासकको अपनी ज्वालाओंके द्वारा यशसे युक्त करता है, इसीलिए सब मनुष्य उसके पास विनम्रतासे जाते हैं ॥ ४ ॥

अनेक रूपोंवाला वह अग्नि पहलेके समान ही प्रत्येक मनुष्यको अन्न देता है, क्योंकि वह स्वयं अन्नका स्वामी है। उस तेजस्वी अग्निके तेजको कोई दबा नहीं सकता ॥ ५ ॥

यह तेजस्वी अग्नि सबकी बुद्धियोंको प्रेरणा देता है और यह सब देवोंके लिए चक्षुरूप है। इसलिए इसे सब देव अपना दूत बनाते हैं ॥ ६ ॥

८५ त्वाम॑ग्ने प्र॒दिव॒ आहु॑तं घृ॒तैः सु॑म्ना॒यवः॑ सुष॒मिधा॒ समी॑धिरे ।
स वा॑वृधा॒न ओष॑धीभिरु॒क्षितो॒ऽभि ज्रयां॑सि॒ पार्थि॑वा॒ वि ति॑ष्ठसे ॥ ७ ॥

[९]

[ऋषिः- गय आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५, ७ पङ्क्तिः ।]

८६ त्वाम॑ग्ने ह॒विष्म॑न्तो दे॒वं मर्ता॑स ईळते ।
मन्ये॑ त्वा जा॒तवे॑दसं॒ स ह॒व्या व॑क्ष्यानु॒षक् ॥ १ ॥

८७ अ॒ग्निर्होता॑ दा॒स्वतः॒ क्षय॑स्य वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
सं य॒ज्ञास॒श्चर॑न्ति॒ यं सं वाजा॑सः श्रव॒स्यवः॑ ॥ २ ॥

८८ उ॒त स्म॒ यं शिशुं॒ यथा॒ नवं॒ जनि॑ष्टा॒रणी॑ ।
ध॒र्तारं॒ मानु॑षीणां वि॒शाम॒ग्निं स्व॑ध्व॒रम् ॥ ३ ॥

अर्थ—[८५] हे (अग्ने) अग्ने ! (सुम्नायवः प्रदिवः) सुखकी इच्छा करनेवाले प्राचीन जन (आहुतं त्वां) आहुतिसे युक्त तुझे (घृतैः सुसमिधा सं ईधिरे) घी और समिधासे प्रदीप्त करते हैं । (ओषधीभिः वावृधानः) काष्ठ आदियोंसे बढता हुआ तथा (उक्षितः सः) घीसे सिंचित हुआ वह तू (पार्थिवा ज्रयांसि अभि वि तिष्ठसे) पृथ्वीकी सतहों पर दृढतासे स्थित होता है ॥ ७ ॥

[९]

[८६] हे (अग्ने) प्रकाशक अग्ने (हविष्मन्तः मर्तासः) हवियोंसे युक्त मनुष्य (देवं त्वां ईळते) तेजस्वी तेरी स्तुति करते हैं । (त्वा जातवेदसं मन्ये) मैं तुझे सर्वज्ञ मानता हूं । (सः) वह तू (हव्या आनुषक् आ वक्षि) हवियोंको सब जगह पहुंचाता है ॥ १ ॥

[८७] (यज्ञासः यं सं चरन्ति) सब यज्ञ जिसकी ओर जाते हैं, (श्रवस्यवः वाजासः सं) अन्न और यशकी इच्छा करनेवाले मनुष्यकी हवियां भी जिस अग्निकी ओर जाती हैं, (अग्निः) वह अग्नि (दास्वतः वृक्तबर्हिषः क्षयस्य होता) दान देनेवाले तथा कुशासन बिछानेवाले मनुष्यके घरमें देवोंको बुलाकर लाता है ॥ २ ॥

[८८] (मानुषीणां विशां धर्तारं) मानवी प्रजाओंको धारण करनेवाले (सु-अध्वरं) उत्तम रीतिसे यज्ञ करनेवाले (यं अग्निं) जिस अग्निको (अरणी) दो अरणियां (नवं शिशुं यथा) नये बच्चेके समान (जनिष्ट) उत्पन्न करती हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जब यह अग्नि सुखकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके द्वारा घी आदिसे अच्छी प्रकार जलाया जाता है, तब घीसे सिंचित होकर वह पृथ्वीके ऊपर अच्छी प्रकार अपना स्थान बना लेता है अर्थात् वेदिमें वह उत्तम प्रकारसे जलने लगता है ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! क्योंकि तू इस संसारमें उत्पन्न सभी पदार्थोंको जाननेवाला है, इसलिए सभी तेरी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

सभी यज्ञ और यज्ञोंमें दी हुई सभी हवियां इसी अग्निके पास पहुंचती हैं । और वह अग्नि यज्ञ करनेवाले मनुष्यके घरमें देवोंको बुलाकर लाता है और उसके घरकी रक्षा करता है ॥ २ ॥

मनुष्योंके शरीरोंके अन्दर रहकर मनुष्योंके जीवनको धारण करनेवाले इस अग्निको दो अरणियां उसी प्रकार उत्पन्न करती हैं, जिस प्रकार माता नवीन बच्चेको ॥ ३ ॥

८९ उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाऽग्ने पशुर्न यवसे ॥ ४ ॥

९० अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः ।
यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥ ५ ॥

९१ तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥ ६ ॥

९२ तं नो अग्ने अभी नरो रयिं सहस्व आ भर ।
स क्षेपयत् स पोषयद् भुवद् वाजस्य सातय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ७ ॥

अर्थ— [८९] (पशुः न यवसे) जिस प्रकार भूखा पशु जौको खा जाता है, उसी प्रकार (यः पुरू वना दग्धा असि) जो बहुतसे वनोंको जला देता है, उस अग्निको (ह्वार्याणां पुत्रः न) कुटिल गतिवाले सांपोंके पुत्रके समान (दुर्गृभीयसे) पकडना बडा कठिन है ॥ ४ ॥

[९०] (यत्) जब (ध्माता इव) लुहारके समान (त्रितः ईं धमति) त्रित ऋषि इसको प्रज्वलित करता है, तब (ध्मातरि यथा शिशीते) लोहारके समान तीक्ष्ण होने पर (यस्य धूमिनः) जिस धूंवेसे युक्त अग्निकी (अर्चयः) ज्वालायें (दिवि सम्यक् संयन्ति) द्युलोकमें अच्छी तरह संचार करती हैं ॥ ५ ॥

[९१] हे (अग्ने) अग्ने ! (अहं) मैं (मित्रस्य तव ऊतिभिः प्रशस्तिभिः च) सबके मित्र तेरे संरक्षणों और स्तोत्रोंसे (मर्त्यानां दुरिता) मानवी पापकर्मोंसे (तुर्याम) उसी प्रकार पार होजाऊं जिस प्रकार (द्वेषोयुतः न) द्वेष करनेवाले शत्रुओंसे पार होता हूँ ॥ ६ ॥

[९२] हे (सहस्वः अग्ने) बलवान् अग्ने ! (नरः) नेता तू (नः तं रयिं आ भर) हमें वह ऐश्वर्य भरपूर दे । (सः क्षेपयत्) वह हमारे शत्रुओंको नष्ट करे, (सः पोषयत्) वह हमें पुष्ट करे (वाजस्य सातये भुवत्) वह अन्नकी प्राप्तिमें हमारा सहायक हो । अग्ने ! (पृत्सु वृधे नः) युद्धोंमें उन्नतिके लिए हमें शक्तिशाली कर (उत एधि) और हमें बढा ॥ ७ ॥

भावार्थ— वह अग्नि जब पशु जैसे जौको खा जाता है, उसी प्रकार बहुत सी लकडियोंको जलाकर बलवान् हो जाता है, तब उसे पकडना उसी प्रकार कठिन हो जाता है जिस प्रकार सांपके बच्चेको, अर्थात् तब वह सांपके बच्चेकी तरह भयंकर हो जाता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार लोहार अग्निको प्रज्वलित करता है, उसी प्रकार तीनों लोकोंमें स्थित यह अग्नि जब तीक्ष्ण होता है, तब धुंवेंसे लिपटे रहने पर भी इसकी ज्वालाएं द्युलोकतक जाती हैं ॥ ५ ॥

जिस प्रकार द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पराजित करता हूँ, उसी प्रकार मैं इस अग्निके संरक्षणोंसे मनुष्यके पापकर्मोंको पराजित करूं अर्थात् मैं कभी पाप न करूं ॥ ६ ॥

बलशाली वह अग्नि हमें ऐश्वर्य देकर हमारे शत्रुओंको नष्ट करे और हमें पुष्ट करे, तथा अन्न प्राप्त करनेमें हमारी सहायता करे । हमें युद्धोंमें भी बढावे ॥ ७ ॥

[१०]

[ऋषिः- गय आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्; ४, ७ पङ्क्तिः ।]

९३ अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो ।
प्र नो राया परीणसा रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥ १ ॥

९४ त्वं नो अग्ने अद्भुत क्रत्वा दक्षस्य मंहना ।
त्वे असुर्यमारुहत् क्राणा मित्रो न यज्ञियः ॥ २ ॥

९५ त्वं नो अग्न एषां गयं पुष्टिं च वर्धय ।
ये स्तोमेभिः प्र सूरयो नरो मघान्यानशुः ॥ ३ ॥

९६ ये अग्ने चन्द्र ते गिरः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
शुष्मेभिः शुष्मिणो नरो दिवश्चिद् येषां बृहत् सुकीर्तिर्बोधति त्मना ॥ ४ ॥

---

[१०]

अर्थ— [९३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अस्मभ्यं ओजिष्ठं द्युम्नं आभर) हम लोगोंके लिए अत्यन्त बलशाली तेज भरपूर प्रदान कर । हे (अध्रिगो) न रोके जानेवाली गतिसे युक्त अग्ने ! (नः परीणसा राया) हमें अपार सम्पत्तिसे युक्त कर और (वाजाय पन्थां प्र रत्सि) अन्न और बलकी प्राप्तिके लिए हमें मार्ग दिखा ॥ १ ॥

[९४] हे (अद्भुत अग्ने) विलक्षण अग्ने ! (त्वं नः) तू हमारे (क्रत्वा, दक्षस्य मंहना) यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मोंसे प्रसन्न होकर उत्तम बल प्रदान कर, (त्वे असुर्य आरुहत्) तुझमें दैवी सामर्थ्य भरा हुआ है । अतः (यज्ञियः) पूजनीय तू (मित्रः न क्राणा आ) सूर्यके समान शीघ्र ही चारों ओर व्याप्त हो ॥ २ ॥

[९५] हे (अग्ने) अग्ने ! (ये सूरयः नरः स्तोमेभिः मघानि आनशुः) जिन विद्वान् मनुष्योंने तेरी स्तुतियोंसे धनकी प्राप्ति की (त्वं एषां नः गयं पुष्टिं वर्धय) तू उनके और हमारे घरकी तथा पोषकताकी वृद्धि कर ॥ ३ ॥

[९६] (चन्द्र अग्ने) हे आनन्ददायक अग्ने ! (येषां सुकीर्तिः दिवः चित् बृहत्) जिनका यश द्युलोकसे भी बढचढ कर है, ऐसे (ये नरः) जो मनुष्य (गिरः शुंभन्ति) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति करते हैं, (ते अश्वराधसः) वे घोडोंके साथ सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, (शुष्मेभिः शुष्मिणः) तेरे बलोंसे बलशाली होते हैं । ऐसोंको तू (त्मना बोधति) स्वयं जानता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हमें अपार सम्पत्ति देकर उसके साथ ही अन्नकी प्राप्तिका मार्ग भी दिखा, ताकि हम बलशाली और तेजसे युक्त हों ॥ १ ॥

हे अद्भुत अग्ने ! हमारे कर्मोंसे प्रसन्न होकर तू हमें उत्तम सामर्थ्य प्रदान कर, क्योंकि तू भी दैवी सामर्थ्यसे युक्त है । पूजनीय तू अपनी किरणोंसे सूर्यके समान इस लोकको चारों ओरसे व्याप्त कर ले ॥ २ ॥

हे अग्ने ! जिन बुद्धिमान् लोगोंने तेरी उपासना और प्रार्थनासे धनकी प्राप्ति की, तू उनके और हमारे घर और स्वास्थ्यकी रक्षा कर ॥ ३ ॥

जिनका बहुत भारी यश है, जो इस अग्निकी उपासना करते हैं, वे सम्पत्तियोंसे युक्त होते हैं, बलवान् होते हैं और अग्नि भी उनका सहायक होता है ॥ ४ ॥

९७ तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या ।
परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॒ स्वा॒नो रथो॒ न वा॑ज॒युः ॥ ५ ॥

९८ नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑ ।
अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥ ६ ॥

९९ त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तु॒तः स्तवा॑न॒ आ भ॑र ।
होत॑र्विभ्वा॒सहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्यः॒ स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥ ७ ॥

[११]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- जगती ।]

१०० जन॑स्य गो॒पा अ॑जनिष्ट॒ जागृ॑वि-र॒ग्निः सु॒दक्षः॑ सुवि॒ताय॒ नव्य॑से ।
घृ॒तप्र॑तीको बृह॒ता दि॑वि॒स्पृशा॑ द्यु॒मद् वि भा॑ति भर॒तेभ्यः॒ शुचिः॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [९७] हे (अग्ने) अग्ने ! (तव धृष्णुया भ्राजन्तः त्ये अर्चयः) तेरी अत्यन्त चंचल और दीप्तिमान् वे प्रसिद्ध ज्वालायें (परिज्मानः विद्युतः न) सर्वत्रव्याप्त विद्युतके समान तथा (स्वानः वाजयुः रथः न) शब्द करते हुये बलशाली रथके समान (यन्ति) सर्वत्र जाती हैं ॥ ५ ॥

[९८] हे (अग्ने) अग्ने ! (नू नः ऊतये) शीघ्र ही हम लोगोंकी रक्षा करनेके लिए (च सबाधसः रातये) और आपत्तिमें पडे हुओंको सम्पत्ति आदि देनेके लिए आ । (अस्माकासः च सूरयः विश्वाः आशाः तरीषणि) हमारे विद्वान् लोग अपने सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त करें ॥ ६ ॥

[९९] हे (अङ्गिरः अग्ने) प्राणके सदृश प्रिय अग्ने ! पुरातन महर्षियोंके द्वारा (स्तुतः) उपासित और आगे भी (स्तवानः) उपासित होनेवाला तू (विभ्वासहं, रयिं नः आ भर) महान् शत्रुको भी पराजित करनेवाला धन हम लोगोंके लिये सब ओरसे भरपूर दे । (होतः स्तोतृभ्यः नः स्तवसे) देवोंको बुलानेवाले अग्ने ! तू स्तुति करनेवाले हम लोगोंको स्तुति करनेका सामर्थ्य प्रदान कर । (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और युद्धमें हम लोगोंको बढा ॥ ७ ॥

[११]

[१००] (जनस्य गोपाः जागृविः, सुदक्षः, अग्निः) लोगोंका रक्षक, जागरणशील प्रशंसितबलवाला अग्नि, लोगोंके (नव्यसे सुविताय अजनिष्ट) नूतन कल्याणके लिये उत्पन्न हुआ है । (घृतप्रतीकः बृहता, दिविस्पृशा शुचिः भरतेभ्यः) घृतसे प्रज्वलित, महान् प्रकाशको छूनेवाले तेजसे युक्त, पवित्र यह अग्नि भरणपोषण करनेवालोंके लिये (द्युमत् वि भाति) दीप्तिमान् होकरके प्रकाशित होता है ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तेरी ये तेजस्वी ज्वालायें विद्युत्‌के समान चमकती हैं और ध्वनि करते हुए बलशाली रथके समान सर्वत्र जाती हैं ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू हम लोगोंकी रक्षा करने और आपत्तियोंमें फंसे हुए लोगोंको सम्पत्ति देनेके लिए हमारे पास आ । हमारे सभी विद्वान् पूर्ण मनोरथवाले हों ॥ ६ ॥

हे प्रिय अग्ने ! प्राचीनों द्वारा उपासित और आगे आनेवालोंके द्वारा उपासित होनेवाला तू हमें शत्रुको हरानेवाला धन दे । हमारे स्तोताओंको सामर्थ्य दे और हमें भी युद्धमें बढा ॥ ७ ॥

यह अग्नि लोगोंका संरक्षण करनेवाला, जागृत रहनेवाला बलवान् तथा लोगोंका कल्याण करनेवाला है । घीसे प्रज्वलित होनेवाला यह अग्नि उनकी रक्षा करता है, जो लोगोंका पालन करते हैं ॥ १ ॥

१०१ यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहित—मग्निं नरस्त्रिषधस्थे समीधिरे ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन्नि होता यजथाय सुक्रतुः ॥ २ ॥
१०२ असंमृष्टो जायसे मात्रोः शुचि—र्मन्द्रः कविरुदतिष्ठो विवस्वतः ।
घृतेन त्वावर्धयन्नग्न आहुत धूमस्ते केतुरभवद् दिवि श्रितः ॥ ३ ॥
१०३ अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु साधुया—ऽग्निं नरो वि भरन्ते गृहेगृहे ।
अग्निर्दूतो अभवद्धव्यवाहनो—ऽग्निं वृणाना वृणते कविक्रतुम् ॥ ४ ॥
१०४ तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं वच—स्तुभ्यं मनीषा इयमस्तु शं हृदे ।
त्वां गिरः सिन्धुमिवावनीर्मही—रा पृणन्ति शवसा वर्धयन्ति च ॥ ५ ॥

अर्थ— [१०१] (यज्ञस्य केतुं) यज्ञकी पताका (प्रथमं पुरोहितं इन्द्रेण देवैः सरथं) सबसे प्राचीन, हर कार्यमें सर्वप्रथम स्थापित किये जानेवाले इन्द्रादि देवोंके साथ एक ही रथ पर बैठनेवाले इस (अग्निं नरः त्रिषधस्थे समीधिरे) अग्निको मनुष्य तीन स्थानोंमें प्रज्वलित करते हैं। (सुक्रतुः होता सः यजथाय बर्हिषि निसीदत्) शुभकर्मोंका कर्ता और देवोंको बुलानेवाला वह अग्नि यज्ञके लिये कुशासन पर प्रतिष्ठित होता है ॥ २ ॥

[१०२] हे (अग्ने) अग्ने! तू (मात्रोः असंमृष्टः जायसे) जननीस्वरूप अरणिद्वयसे बिना किसी कठिनाई के उत्पन्न होता है। (मन्द्रः कविः शुचिः) सबसे स्तुति किये जाने योग्य, मेधावी और पवित्र तू (विवस्वतः उद्-तिष्ठः) मनुष्यके कल्याणके लिए प्रज्वलित होता है। पूर्व महर्षियोंने (त्वा घृतेन अवर्धयन्) तुझको घृत द्वारा बढाया था। हे (आहुत) आहुतिसे युक्त! (ते दिविश्रितः धूमः केतुः अभवत्) तेरा अन्तरिक्ष व्यापी धूम ध्वजके समान है ॥ ३ ॥

[१०३] (साधुया अग्निः नः यज्ञं उपवेतु) सब कार्योंमें साधक अग्नि हमारे यज्ञमें आवे। (नरः गृहे गृहे अग्निं वि भरन्ते) मनुष्य प्रति घरमें अग्निको पुष्ट करते हैं। (हव्यवाहनः अग्निः दूतः अभवत्) हव्यको लेजानेवाला अग्नि देवोंका दूत हुआ है। (वृणानाः कविक्रतुं अग्निं वृणते) बुद्धिमान् लोग पवित्र और ज्ञानयुक्त कर्मवाले अग्निकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

[१०४] हे (अग्ने) अग्ने! (इदं मधुमत्तमं वचः तुभ्यं इत्) यह अतिशय मधुर स्तोत्र तेरे लिये है। (इयं मनीषा तुभ्यं हृदे शं अस्तु) यह स्तुति तेरे हृदयमें सुख प्रदान करनेवाली हो। (इव महीः अवनीः सिन्धुं) जैसे बडी नदियाँ समुद्रको परिपूर्ण करती हैं, उसी प्रकार (गिरः त्वां पृणन्ति) ये स्तुतियां तुझे पूर्ण करती हैं और (शवसा वर्धयन्ति) बलसे बढाती हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— यज्ञका चिन्ह, सबसे प्राचीन, इन्द्रादि देवोंके साथ एक स्थान पर बैठनेवाला यह अग्नि है, यह द्यु–अन्तरिक्ष-पृथ्वी इन तीनों स्थानों पर प्रज्वलित होता है। उत्तम कर्मोंका कर्ता यह अग्नि यज्ञमें उत्तम आसन पर बैठता है ॥२॥

यह अग्नि अपनी मातारूप अरणियोंको बिना किसी तरहकी हानि पहुंचाये प्रज्वलित होकर मनुष्योंका कल्याण करता है। प्राचीन ऋषियोंने इसे घीसे बढाया और जब इसका धुंआ आकाशमें गया तब लोगोंने समझा कि अग्नि जल रहा है ॥ ३ ॥

सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला अग्नि हमारे यज्ञमें आवे। इस अग्निको हर मनुष्य आहुति आदि देकर पुष्ट करते हैं। यह दूत होकर देवोंको हवि पहुंचाता है, अतः बुद्धिमान् जन इस अग्निकी सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

हे अग्ने! ये मधुरतायुक्त स्तुतियां तेरे लिए ही हैं। इनसे तेरे हृदयको सुख पहुंचे। जिस प्रकार बडी बडी नदियां समुद्रमें जाकर गिरती और उसे पूर्ण करती हैं, उसी प्रकार ये स्तुतियां अग्निको पूर्ण करती और और उसे बलयुक्त करके बढाती हैं ॥ ५ ॥

×

१०५ त्वाम॑ग्ने अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒त- मन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥ ६ ॥

[१२]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१०६ प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।
घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्रती॒चीम् ॥ १ ॥

१०७ ऋ॒तं चि॑कित्व ऋ॒तमिच्चि॑किद्ध्यृ॒- तस्य॒ धारा॒ अनु॑ तृन्धि पू॒र्वीः ।
नाहं या॒तुं सह॑सा॒ न द्व॒येन॑ ऋ॒तं स॑पाम्यरु॒षस्य॒ वृष्णः॑ ॥ २ ॥

१०८ कया॑ नो अग्न ऋ॒तय॑न्नृ॒तेन॒ भुवो॒ नवे॑दा उ॒चथ॑स्य॒ नव्यः॑ ।
वेदा॑ मे दे॒व ऋ॑तु॒पा ऋ॑तू॒नां नाहं पतिं॑ सनि॒तुर॒स्य रा॒यः ॥ ३ ॥

अर्थ— [१०५] हे (अग्ने) अग्ने ! (गुहाहितं) गुहाके मध्यमें छिपे हुये (वने वने शिश्रियाणं त्वां अङ्गिरसः अनु अविन्दन्) प्रत्येक वृक्षमें रहनेवाले तुझको अङ्गिराओंने प्राप्त किया । (सः महत् सहः मथ्यमानः जायसे) वह तू महान् बलके साथ मथित होने पर उत्पन्न होता है । इसी कारणसे हे (अङ्गिरः त्वां सहसः पुत्रं आहुः) प्रिय अग्ने ! तुझे बलका पुत्र कहते हैं ॥ ६ ॥

[१२]

[१०६] (बृहते, यज्ञियाय, ऋतस्य वृष्णे, असुराय, वृषभाय अग्नये) अपने सामर्थ्यसे अत्यन्त महान् पूजाके योग्य, जलको वृष्टि करनेवाले, प्राणोंको शक्ति देनेवाले, कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्निके लिये (यज्ञे, आस्ये सुपूतं घृतं न) यज्ञमें, उसके मुखमें डाली हुई परम पवित्र घृतकी तरह, (प्रतीचीं मन्म गिरं प्र भरे) सरल और मननीय स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

[१०७] हे (ऋतं चिकित्वः) हमारी स्तुतियोंको जाननेवाले अग्ने ! तू हमारे कहे हुये (ऋतं चिकिद्धि इव्) स्तोत्रको जान और (ऋतस्य पूर्वीः धाराः अनु तृन्धि) जलकी अनेक धारायें बरसा । (अहं सहसा यातुं न सपामि) मैं बलसे युक्त होकर हिंसक कामको नहीं करता, तथा (द्वयेन न) सत्य अनृतसे मिले हुये अवैदिक कार्यको भी नहीं करता, अपितु (अरुषस्य वृष्णः ऋतं) तेजस्वी और कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तेरे स्तोत्रको ही करता हूँ ॥२॥

[१०८] हे (अग्ने) अग्ने ! (ऋतयन् कया ऋतेन) सत्यका आचरण करता हुआ तू किस सत्यकर्म द्वारा (नः नव्यः उचथस्य नवेदाः भुवः) हमारे नवीन स्तोत्रको जाननेवाला होगा । (ऋतूनां ऋतुपाः देवः मे वेद) ऋतुओंका संरक्षण करनेवाला रक्षक दिव्यगुणयुक्त तू मुझको जान । (अहं सनितुः अस्य रायः पतिं न) मैं विभाग करनेवाले इस धनके स्वामीको नहीं जानता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ— यह अग्नि प्रथम प्रत्येक वृक्ष और लकडीके अन्दर छिपा हुआ था । पर बादमें इसे अंगिरा ऋषियोंने प्रकट किया । इसे अंगिराओंने मथकर प्रकट किया, तब इसमें बहुत बल आ गया । मथते समय बहुत शक्ति लगानी पडती है, तब जाकर यह उत्पन्न होता है । अत बलसे उत्पन्न होनेके कारण अग्निको 'बलका पुत्र' कहते हैं ॥ ६ ॥

वह अग्नि अपने सामर्थ्यसे महान् बना है, वह जलकी वर्षा करके प्राणोंको शक्तिशाली बनाता है । ऐसे अग्निके लिए मैं मननीय स्तोत्र बनाता हूँ ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू सबके मनोभावोंको जाननेवाला है अतः हमारे मनोभावोंको जान कर तू पानीकी अनेक धारायें बहा । बलसे युक्त होते हुए भी मैं हिंसा और छल कपटके कार्य न करूं अपितु केवल तेरी स्तुति ही करूं ॥ २ ॥

हे अग्ने ! सत्यका आचरण करनेवाला तू हमारे किस किस कर्मके द्वारा हमारे स्तोत्रको समझेगा ? तू सर्वज्ञ है, अतः मेरे सामर्थ्यको जानता है, पर मैं तेरे सामर्थ्यको पूरी तरह नहीं जानता क्योंकि तेरा सामर्थ्य अपार है ॥ ३ ॥

१०९ के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥ ४ ॥
११० सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभि-र्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥ ५ ॥
१११ यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥ ६ ॥

[१३]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११२ अर्चन्तस्त्वा हवामहे-ऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥ १ ॥

अर्थ— [१०९] हे (अग्ने) अग्ने ! (रिपवे बन्धनासः) जो अपने शत्रुके लिये बन्धनका निर्माण करते हैं (ते के) ऐसे सामर्थ्यशाली जन कौन हैं ? (के पायवः द्युमन्तः सनिषन्तः) कौन पोषण करनेवाले, तेजस्वी और दानशील हैं ? (अनृतस्य धासिं के पान्ति) असत्य बोलनेवालेको कौन बचाते हैं? तथा (असतः वचसः के गोपाः सन्ति) असत्य वचनसे कौन रक्षा कर सकते हैं ? ॥ ४ ॥

[११०] हे (अग्ने) अग्ने ! (विषुणाः ते सखायः एते अशिवाः सन्तः) सब जगह फैले हुये तेरे मित्रजन पहले सुखोंसे रहित हुये थे, पर बादमें वे (शिवासः अभूवन्) सौभाग्यशाली बन गए । (ऋजूयते वचोभिः वृजिनानि ब्रुवन्तः) हम सरल आचरण करते हैं फिर भी जो हमसे दुष्टवचनोंसे कुटिलशब्द बोलते हैं (एते स्वयं अधूर्षत) ये मेरे शत्रु अपने ही वचनों द्वारा स्वयं विनष्ट हो जाँय ॥ ५ ॥

१ ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्— इस अग्निके मित्र भी जब अग्निकी उपासना करना भूल गए; तब दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासनासे सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ।

२ ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षत— जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्टवचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

[१११] हे (अग्ने) अग्ने ! (अरुषस्य वृष्णः यज्ञं ते यः नमसा ईट्टे) प्रकाशमान् और कामना पूर्ण करनेवाले यजनीय तेरी जो स्तोत्रद्वारा स्तुति करता है, और तेरे लिये (ऋतं पाति) यज्ञकी रक्षा करता है (तस्य क्षयः पृथुः) उस मनुष्यका घर विस्तीर्ण हो और तेरी (प्रसर्स्राणस्य, नहुषस्य शेषः साधुः आ एतु) भलीभाँति सेवा करनेवाले मनुष्यकी कामना सिद्ध हो ॥ ६ ॥

[१३]

[११२] हे (अग्ने) अग्ने ! हम लोग (त्वा अर्चन्तः हवामहे) तेरी पूजा करते हुये तेरा आह्वान करते हैं । एवं तेरी (अर्चन्तः ऊतये समिधीमहि) स्तुति करते हुये अपनी रक्षाके लिये तुझको प्रज्वलित करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— अपने शत्रुओंको रोकनेवाले सामर्थ्यशाली वीर कौन हैं ? कौन दान देकर लोगोंका पालनपोषण करते हैं, कौन असत्य बोलते हैं और कौन जन उन असत्य बोलनेवालोंकी रक्षा करते हैं, यह सभी बातें अग्नि जानता है । वह सर्वज्ञ है अतः उससे कोई बात छिपी हुई नहीं है ॥ ४ ॥

इस अग्निकी उपासनाके बिना जो पहले सुखोंसे रहित दुर्भाग्यशाली बन गए थे, वे ही बादमें इस अग्निकी उपासना करके सुखी होकर उत्तम भाग्यशाली बने । जो सत्यका आचरण करनेवाले सज्जनसे दुष्ट वचन बोलते हैं, वे स्वयं अपने वचनोंसे नष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! जो तुझ बलवान् और तेजस्वीकी स्तुति करता है और यज्ञमें आहुति देता है, वह महान् धनी होता है और तेरी सेवा करनेवाले उस मनुष्यकी सभी कामनायें पूर्ण होती हैं ॥ ६ ॥

११३ अग्ने: स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥ २ ॥
११४ अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद् दैव्यं जनम् ॥ ३ ॥
११५ त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥ ४ ॥
११६ त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ५ ॥
११७ अग्ने नेमिरराँ इव देवाँस्त्वं परिभूरसि । आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥ ६ ॥

[१४]

[ऋषिः- सुतंभर आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री ।]

११८ अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १ ॥

अर्थ— [११३] (अद्य) आज (द्रविणस्यवः दिविस्पृशः देवस्य अग्नेः) धन-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग आकाशको छूनेवाले, प्रकाशमान् अग्निके (सीध्रं स्तोमं मनामहे) कामना सिद्ध करनेवाले स्तोत्रको बोलते हैं ॥ २ ॥

[११४] (यः अग्निः मानुषेषु होता) जो अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थापित हुआ हुआ और देवोंको बुलानेवाला है, (सः नः गिरः जुषत) वह हम लोगोंकी स्तुतियोंको ग्रहण करे और (दैव्यं जनं आ यक्षत्) देवताओंके पास हविको सब ओरसे पहुँचावे ॥ ३ ॥

[११५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं जुष्टः वरेण्यः होता सप्रथाः असि) तू सर्वदा सेवन करने योग्य, अतिश्रेष्ठ होम निष्पादक और प्रसिद्ध यशवाला है । (त्वया यज्ञं वि तन्वते) तेरे द्वारा ही यज्ञका विस्तार किया जाता है ॥ ४ ॥

[११६] हे (अग्ने) अग्ने ! (विप्राः वाजसातमं सुष्टुतं त्वां वर्धन्ति) बुद्धिमान् लोग, अन्नके दाता, उत्तम यशवाले तुझको स्तुतियोंसे बढाते हैं । (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमको उत्कृष्ट बल प्रदान कर ॥ ५ ॥

[११७] हे (अग्ने) अग्ने ! (इव नेमिः अरान्) जिस प्रकार चक्रकी नाभिके चारों ओर अरे होते हैं, उसी प्रकार (त्वं देवान् परि भूरसि) तू देवोंको चारों ओरसे व्याप्त करता है । तू हम लोगोंको (चित्रं राधः आ ऋञ्जसे) नाना प्रकारका धन सब ओरसे प्रदान कर ॥ ६ ॥

[१४]

[११८] हे मनुष्य ! (अमर्त्यं अग्निं) अविनाशी अग्निको (स्तोमेन बोधय) स्तोत्र द्वारा चैतन्य कर । वह (समिधानः नः हव्या देवेषु दधत्) अच्छी प्रकार प्रज्वलित होनेपर हमारे हव्योंको देवताओंमें स्थापित करे ॥ १ ॥

भावार्थ— अग्निकी पूजा करते हुए हम अपने संरक्षणके लिए अग्निको बुलाते हैं और कामनाको सिद्ध करनेवाले स्तोत्रोंसे उसकी स्तुति करते हैं ॥ १-२ ॥

यह अग्नि सब प्राणियोंके पास देवोंको बुलाकर लाता और स्वयं भी अन्य देवोंके साथ मनुष्योंके अन्दर विराजता है वह अग्नि सब देवोंके पास उनका भाग पहुंचाता है और इस प्रकार सभी देवोंको वह पुष्ट करता है ॥ ३ ॥

यह अग्नि मनुष्योंके बीचमें स्थित होकर देवोंको बुलाकर लाता है और इस प्रकार यज्ञका विस्तार करता है फिर उस यज्ञमें डाली गई हवियोंको वह देवोंतक पहुंचाता है ॥ ४ ॥

सब श्रेष्ठ बुद्धिमान् मनुष्य अन्नको देनेवाले तथा उत्तम यश देनेवाले इस अग्निको स्तोत्रोंसे बढाते हैं; तब वह प्रसन्न होकर अपने उपासकोंको बल प्रदान करता है । इस शरीरमें स्थित अग्निको अन्नादिसे पुष्ट करने पर शरीर भी पुष्ट होता है ॥ ५ ॥

ज्ञानी लोग इस सर्व व्यापक अग्निकी सब तरहसे स्तुति करते हैं और इस अग्निको बढाते हैं । तब यह प्रसन्न होकर उपासकोंको नाना तरहके धन देता है ॥ ६ ॥

हर मनुष्यको चाहिए कि वह अग्निको अच्छी तरह प्रज्वलित करे, क्योंकि अच्छी तरह प्रज्वलित होनेपर वह डाली गई आहुतियोंको देवोंतक पहुंचाता है ॥ १ ॥

११९ तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥ २ ॥
१२० तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता । अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥ ३ ॥
१२१ अग्निर्जातो अरोचत घ्नन् दस्यूञ्ज्योतिषा तमः । अविन्दद् गा अपः स्वः ॥ ४ ॥
१२२ अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५ ॥
१२३ अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् । स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ ॥

[१५]

[ऋषिः- धरुण आङ्गिरसः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१२४ प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १ ॥

अर्थ— [११९] (मर्ताः) मनुष्यगण, (देवं अमर्त्यं मानुषे जने यजिष्ठं तं) दिव्यगुण युक्त, अमर और मनुष्योंके मध्यमें परम पूजनीय उस अग्निको (अध्वरेषु ईळते) यज्ञोंमें स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

[१२०] यज्ञस्थलमें (शश्वन्तः घृतश्चुता) बहुतसे स्तोतागण घृत गिराते हुये स्रुवाके साथ (हव्याय वोढवे हि) हव्यको देवों तक पहुंचानेके लिए निश्चयसे (तं देवं अग्निं ईळते) उस दिव्यगुणयुक्त अग्निकी स्तुति करते हैं ॥३ ॥

[१२१] (जातः अग्निः) उत्पन्न अग्नि अपने (ज्योतिषा तमः दस्यून् घ्नन् अरोचत) तेजसे अन्धकार और शत्रुओंको विनष्ट करता हुआ प्रकाशित हुआ और उसने (गाः अपः स्वः अविन्दत्) किरण, जल और सुख इन तीनोंको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

[१२२] हे मनुष्यो! तुम उस (ईळेन्यं कविं घृतपृष्ठं अग्निं सपर्यत) प्रशंसा करने योग्य, ज्ञानी और तेजस्वी ज्वालावाले अग्निकी सेवा करो। वह अग्नि (मे हवं शृणवत् वेतु) मेरे इस आह्वानको सुने और मेरी इच्छाको जाने ॥५॥

[१२३] ऋत्विक्गण (घृतेन स्तोमेभिः) घृतसे और स्तोत्रोंके द्वारा (वचस्युभिः स्वाधीभिः) स्तुतिके अभिलाषी और ध्यानगम्य देवोंके साथ, (विश्वचर्षणिं अग्निं वावृधुः) संसारको प्रकाशित करनेवाले अग्निको बढाते हैं ॥ ६ ॥

[१२४] (अग्निः घृतप्रसत्तः) अग्नि हविरूपघृतसे प्रसन्न होता है। वह (असुरः सुशेवः रायः धर्ता धरुणः वस्वः) बलवान्, सुखस्वरूप, धनका पोषक, हविको धारण करनेवाला और गृहका प्रदाता है। ऐसे (कवये यशसे पूर्व्याय, वेद्याय, वेधसे गिरं प्रभरे) दूरदर्शी, यशस्वी, श्रेष्ठ, जानने योग्य और बुद्धिमान् अग्निके लिये मैं स्तुति और प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ— वह अग्नि दिव्य गुण युक्त, अमर और मनुष्योंके बीचमें अत्यन्त पूज्य है, अतः सब उसकी स्तुति करते हैं। उसी प्रकार जो मनुष्य दिव्य गुण युक्त है, वह सबके द्वारा पूज्य होता है और सब उसकी प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

यह अग्नि दूतका काम करता है और यज्ञकर्ताओंकी प्रार्थना और हवियोंको देवोंतक पहुंचाता है, इसलिए सब उसकी स्तुति करते हैं। दूतकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ३ ॥

अग्निके प्रकाशित होते ही अन्धकार और रोगादिके जन्तु आदि शत्रु नष्ट हो जाते हैं। तब उसकी किरणोंसे पानी बरसता है और सभी मनुष्य सुख पाते हैं ॥ ४ ॥

यह अग्नि प्रशंसनीय, ज्ञानी और तेजस्वी है, ऐसी अग्निकी सेवा सभी मनुष्योंको करनी चाहिए। वह अग्नि मनुष्योंकी प्रार्थना सुनता है और उनकी इच्छाओंको समझता है ॥ ५ ॥

सर्वव्यापक होनेसे यह अग्नि सब कुछ देखता है। यह ध्यानके द्वारा देखने योग्य है, ऐसे अग्निको सब ऋत्विज बढाते हैं ॥ ६ ॥

वह अग्नि (असु-रः) प्राणोंको बलवान् बनानेवाला, सुखप्रदाता धनको धारण करनेवाला और सबको बसानेवाला है। वह भविष्यकी बातोंको भी जाननेवाला, यशस्वी तथा श्रेष्ठ है। ऐसे गुणोंसे युक्त मनुष्यकी पूजा होती है ॥ १ ॥

१२५ ऋतेन॑ ऋ॒तं ध॒रुणं॑ धारयन्त य॒ज्ञस्य॑ शा॒के प॑र॒मे व्यो॑मन् ।
दि॒वो धर्म॑न् ध॒रुणे॑ से॒दुषो॒ नॄ॒ञ्जा॒तैरजा॑ताँ अ॒भि ये न॑न॒क्षुः ॥ २ ॥

१२६ अं॒हो॒युव॑स्त॒न्व॑स्तन्व॒ते वि वयो॑ म॒हद् दु॒ष्टरं॒ पू॒र्व्याय॑ ।
स सं॒वतो॒ नव॑जातस्तुतुर्यात् सिं॒हं न क्रु॒द्धम॒भितः॒ परि॑ ष्ठुः ॥ ३ ॥

१२७ मा॒तेव॒ यद् भर॑से पप्रथा॒नो जनं॑जनं॒ धाय॑से॒ चक्ष॑से च ।
वयो॑वयो जरसे॒ यद् दधा॑नः॒ परि॒ त्मना॒ विषु॑रूपो जिगासि ॥ ४ ॥

१२८ वाजो॒ नु ते॒ शव॑सस्पा॒त्वन्त॑मु॒रुं दोघं॑ ध॒रुणं॑ देव रा॒यः ।
प॒दं न ता॒युर्गुहा॒ दधा॑नो म॒हो रा॒ये चि॒तय॒न्नत्रि॑मस्पः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१२५] (ये) जो मनुष्य (दिवः धरुणे धर्मन् सेदुषः, नॄन् अजातान्) द्युलोकके धारक, प्रतिष्ठित धर्ममें लगे हुये, नेता रूप अमर देवगणको (जातैः अभि ननक्षुः) ऋत्विजों द्वारा अच्छी प्रकार प्राप्त करते हैं, वे (यज्ञस्य धरुणं ऋतं शाके परमे व्योमन्) यज्ञके धारक सत्यस्वरूप अग्निको यज्ञके लिये उत्तम स्थानपर (ऋतेन धारयन्त) स्तोत्र द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

[१२६] जो मनुष्य (पूर्व्याय महत् दुष्टरं, वयः) श्रेष्ठ अग्निके लिये, अन्यों द्वारा अत्यधिक कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्न प्रदान करता है, (तन्वः अहोयुवः वि तन्वते) उसका शरीर पापसे रहित होकर बढता है । (स नव-जातः क्रुद्धं सिंहं न) वह नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह (संवतः अभितः तुतुर्यात्) इकट्ठे हुये हुए हमारे शत्रुओंको सब ओरसे नष्ट करे । तथा (परि स्थुः) सर्वत्र वर्तमान अन्य शत्रुओंको भी हमसे दूर करे ॥ ३ ॥

१ पूर्व्याय दुस्तरं वयः अंहोयुवः वि तन्वते— जो इस श्रेष्ठ अग्निके लिए अन्यों द्वारा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्नको प्रदान करता है, वह पापसे छूटकर वृद्धिको प्राप्त होता है ।

[१२७] हे अग्ने! (पप्रथानः) सर्वत्र प्रख्यात तू (यत् माता इव जनं जनं भरसे) माताकी तरह प्रत्येक जनका पोषण करता है । (धायसे च चक्षसे) धारण करनेके लिये और ज्ञानके लिये सबके द्वारा स्तुत होता है (यत् दधानः वयः वयः जरसे) जब प्रज्वलित होता है, तब सारे अन्नोंको जीर्ण कर देता है । और (विषुरूपः त्मना परि जिगासि) नाना रूप होकर अपनी शक्तिसे सब जगह व्याप्त होता है ॥ ४ ॥

[१२८] हे (देव) दिव्य गुण युक्त अग्ने ! (उरुं दोघं धरुणं वाजः ते अन्तं शवसः नु पातु) अत्यधिक कामनाओंके पूरक, धनके धारक हविरूप अन्न तेरे सम्पूर्ण बलकी उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार (तायुः न गुहा पदं दधानः) तस्कर गुहाके मध्यमें छिपकर धनको धारण करता है, (महः राये चितयन्, अत्रिं अस्पः) प्रचुर धन लाभके लिये सन्मार्गको प्रकाशित कर और पालन करनेवालेको प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— प्रथम मनुष्योंने द्युलोकको धारण करनेवाले, धार्मिक, उत्तम मार्गपर ले जानेवाले अमर अग्निका पता लगाया, फिर उस यज्ञका सम्पादन करनेवाले अग्निको यज्ञ करनेके लिए उत्तम स्थान पर मंत्रों द्वारा स्थापित किया ॥ २ ॥

जो इस श्रेष्ठ अग्निको उत्तमसे उत्तम अन्न प्रदान करता है, वह निष्पाप होकर बढता है और वह अग्नि क्रोधित सिंहकी तरह भयंकररूपसे प्रज्वलित होकर उसके सब शत्रुओंको नष्ट कर देता है ॥ ३ ॥

यह सर्वत्र विस्तृत अग्नि माताके समान प्रत्येक मनुष्यका पालन करता है । पुष्टि और ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए सब इसकी स्तुति करते हैं । जब प्रज्वलित होता है तब यह सब आहुतियोंको जला देती है और उस जली हुई आहुतिको सब जगह फैलाता है ॥ ४ ॥

यज्ञमें दी जानेवाली आहुति ऐसी पवित्र और उत्तम हो कि उससे अग्निका बल और सामर्थ्य बढे । यज्ञमें दी जाने-वाली हवि खराब न हो । प्रज्वलित होने पर अग्नि उत्तम मार्गको प्रकाशित करता है । और पालक मनुष्यको आनन्दित करता है ॥ ५ ॥

[१६]

[ऋषिः- पूरुरात्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

१२९ बृहद् वयो हि भानवे ऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभि र्मर्तासो दधिरे पुरः ॥ १ ॥

१३० स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुष ग्भगो न वारमृण्वति ॥ २ ॥

१३१ अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन् तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३ ॥

१३२ अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद् यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४ ॥

---

[१६]

अर्थ— [१२९] (मर्तासः यं मित्रं न प्रशस्तिभिः पुरः दधिरे) मनुष्यगण जिस अग्निको मित्रकी तरह प्रकृष्ट स्तुतियों द्वारा सबसे आगे स्थापित करते हैं । उस (देवाय भानवे अग्नये हि बृहद्वयः अर्च) दिव्यगुण युक्त और प्रकाशमान् अग्निके लिये महान् हविरूप अन्न प्रदान करके उसकी पूजा करो ॥ १ ॥

[१३०] जो (अग्निः आनुषक् हव्यं) अग्नि देवोंके लिये अनुकूलतासे हव्यको वहन करता है । जो (बाह्वोः दक्षस्य द्युभिः) अपनी भुजाओंके बलके अत्यधिक तेजोंसे युक्त है (जनानां होता सः भगः न वारं वि ऋण्वति) मनुष्योंका होता वह अग्नि हम लोगोंको सूर्यकी तरह श्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदान करता है ॥ २ ॥

[१३१] जो ऋत्विक्गण (तुविष्वणि यस्मिन् अर्ये शुष्मं सं आदधुः) अत्यधिक शब्द करनेवाले जिस श्रेष्ठ अग्निमें बलको स्थापित करते हैं (अस्य वृद्धशोचिषः मघोनः सख्ये स्तोमे) इस बढी हुई कान्तिवाले और बहु धनसे युक्त अग्निकी मित्रता और स्तुतिमें रहकर हम (विश्वा) सम्पूर्ण सुख प्राप्त करें ॥ ३ ॥

[१३२] हे (अग्ने) अग्ने ! (अध एषां सुवीर्यस्य मंहना) अनन्तर इन मनुष्योंको तुम श्रेष्ठ बलसे युक्त करो । (न यह्वं रोदसी परि बभूवतुः) जैसे महान् सूर्यके सहारे ये पृथ्वी और आकाश स्थित हैं उसी प्रकार (श्रवः तं इत्) सारे अन्न और धन उसीके आश्रयसे स्थित हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार मित्र अपने मित्रसे स्नेह करता है और हमेशा अपने मित्रको आगे बढानेका प्रयत्न करतs हैं, उसी तरह मनुष्य इस अग्निको सबसे आगे रखते हैं और उसका हर तरहसे सम्मान करते हैं ॥ १ ॥

इस सूर्यमें अनेक प्रकारकी सम्पत्तियां हैं, जिन्हें यह सूर्य अपनी किरणों द्वारा सब प्राणियोंको प्रदान करता है, उसी प्रकार इस अग्निकी किरणोंमें अनेक तरहकी शक्तियां रहती हैं, वे सभी शक्तियां उपासक अग्निसे प्राप्त करता है ॥ २ ॥

जब मनुष्य इस अग्निको आहुति आदि देकर पुष्ट करते हैं, और यह बडे शब्दके साथ जलने लगता है, तब इस बढी हुई कान्तिवाले अग्निकी उपासनासे मनुष्य सब सुखोंको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

जिस प्रकार पृथ्वी और द्युलोक सूर्यके आकर्षणसे अपने अपने स्थान पर स्थित हैं, उसी प्रकार सब अन्न इसी अग्निके सहारे टिके हुए हैं । अन्न इसी अग्निके कारण उत्पन्न होते हैं । उस अन्नको खाकर मनुष्य बलशाली होते हैं ॥ ४ ॥

१३३ नू न एहि वार्य॒मग्ने गृणान आ भर ।
ये व॒यं ये च॑ सू॒रयः॑ स्व॒स्ति धाम॑हे स॒चो॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥ ५ ॥

[१७]

[ऋषिः- पूरुरात्रेयः । देवता-अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, १ पंक्तिः ।]

१३४ आ य॒ज्ञैर्दे॑व मर्त्य॑ इ॒त्था तव्या॑समू॒तये॑ ।
अ॒ग्निं कृ॒ते स्व॑ध्व॒रे पू॒रुरी॑ळी॒ताव॑से ॥ १ ॥

१३५ अ॒स्य हि स्वय॑शस्तर आ॒सा वि॑धर्म॒न्मन्य॑से ।
तं नाकं॑ चि॒त्रशो॑चिषं म॒न्द्रं प॒रो म॑नी॒षया॑ ॥ २ ॥

१३६ अ॒स्य वा॒सा उ॑ अ॒र्चिषा॒ य आयु॑क्त तु॒जा गि॒रा ।
दि॒वो न यस्य॒ रेत॑सा बृ॒हच्छोच॑न्त्य॒र्चयः॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [१३३] हे (अग्ने) अग्ने ! हम सब तेरी (गृणानः) स्तुति करते हैं । (नु एहि) शीघ्र ही हमारे यज्ञमें आ । और (नः वार्यं आभर) हमारे लिये श्रेष्ठ धन भरपूर दे (ये वयं च ये सूरयः सचा स्वस्ति धामहे) जो हम और जो विद्वान् स्तोता हैं वे सब मिलकर कल्याणको धारण करें (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और युद्धोंमें हम लोगोंको बढानेके लिए तू स्वयं भी बढ ॥ ५ ॥

[१७]

[१३४] हे (देव) देव ! (मर्त्यः इत्था तव्यांसं अग्निं ऊतये यज्ञैः आ) मनुष्य इस प्रकार तेजस्वी अग्निको स्वरक्षाके लिये सम्मानपूर्वक बुलाता है । और (पूरुः कृते सु अध्वरे अवसे ईळीत) मनुष्य आरम्भ किए हुए शोभन अहिंसामय यज्ञमें, अपनी रक्षाके लिए अग्निकी स्तुति करता है ॥ १ ॥

[१३५] हे (विधर्मन्) धर्मका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ! (स्वयशस्तरः) अत्यन्त श्रेष्ठ यशवाला तू (मन्द्रं चित्रशोचिषं, नाकं परः तं अस्य) आनन्द देनेवाले, अद्भुत प्रकाशवाले, दुःखसे रहित, श्रेष्ठ उस प्रसिद्ध अग्निकी (हि मनीषया आसा मन्यसे) निश्चयसे प्रकृष्ट बुद्धिपूर्वक वाणीसे स्तुति कर ॥ २ ॥

[१३६] (यः तुजा आयुक्तः) जो अग्नि बलसे और स्तुतिसे सामर्थ्ययुक्त होता है । जो (दिवः न) प्रकाशमान् आदित्यकी तरह द्योतमान है । (यस्य) जिसकी (बृहत् अर्चयः) बडी ज्वालाएं (रेतसा) तेजसे प्रकाशित होती हैं ऐसे (अस्य अर्चिषा असौ उ) इस अग्निकी प्रभासे ही यह मनुष्य तेजस्वी होता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! तेरी हम स्तुति करते हैं अतः तू शीघ्र हमारे पास आ और हमें श्रेष्ठ धन भरपूर दे । हम सब संगठित होकर तेरी स्तुति करते हैं अतः हम सबका कल्याण हो और युद्धोंमें भी हमारी उन्नति हो ताकि हम धन धान्यसे समृद्ध होकर तुझे भी तुष्ट कर सकें ॥ ५ ॥

हे तेजस्वी देव ! यज्ञके आरंभ होनेपर मनुष्य इस अग्रणीका अपनी रक्षाके लिए उपासना करता है और इसे सम्मान पूर्वक अपने पास बुलाता है ॥ १ ॥

वह अग्नि आनन्द देनेवाला, अत्यन्त सुन्दर ज्वालाओंवाला, दुःखसे रहित और श्रेष्ठ है, इसलिए बुद्धिपूर्वक उसकी उपासना करनेवाला धार्मिक और श्रेष्ठ यशसे युक्त होता है ॥ २ ॥

यह अग्नि तेज और सामर्थ्यसे युक्त है । सूर्य जैसे अपनी किरणोंमें सबको शक्ति देता है, उसी तरह अग्नि भी अपने तेजसे सब प्राणियोंको तेज प्रदान करता है, जिस मनुष्यमें अग्नि जितना सामर्थ्यशाली होगा, उतना ही वह मनुष्य तेजोवान् होगा ॥ ३ ॥

१३७ अस्य क्रत्वा विचेतसो दुस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्यो ऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४ ॥

१३८ नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५ ॥

[१८]

[ऋषिः— द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः । देवता— अग्निः । छन्दः— अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

१३९ प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।
विश्वानि यो अमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥ १ ॥

१४० द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त आनुषक् स्तोता चित् ते अमर्त्य ॥ २ ॥

अर्थ— [१३७] (विचेतसः) सुन्दर मतिवाले बुद्धिमान् जन, (दस्मस्य अस्य क्रत्वा वसु रथ आ) दर्शनीय इस अग्निका यज्ञमें सत्कार करके धन और रथ सब ओरसे प्राप्त करते हैं। (अध हव्यः अग्निः विश्वासु विक्षु प्रशस्यते) इसके बाद यज्ञार्थ बुलाये जानेवाला यह अग्नि सम्पूर्ण प्रजाओंमें विशेष रूपसे प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥

[१३८] हे अग्ने ! जिस धनको (सूरयः आसा सचन्त) स्तोता लोग मुंहसे स्तोत्र बोलकर प्राप्त करते हैं। (वार्यं नः नु इद्धि) वह वरणीय धन हम लोगोंको शीघ्र ही प्रदान कर। हे (ऊर्जः नपात्) बलके पुत्र ! हमें (अभिष्टये पाहि) अभिलषित प्रदान करके हमारी रक्षा कर। हमें (स्वस्तये शग्धि) कल्याणके लिए समर्थ कर (उत पृत्सु नः वृधे एधि) और संग्राममें उपस्थित रहते हुये हमारे ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिए तू भी वृद्धिको प्राप्त हो ॥ ५ ॥

[१८]

[१३९ (अमर्त्यः यः मर्तेषु विश्वानि हव्या रण्यति) अमरणशील जो अग्नि मनुष्योंके मध्यमें प्रतिष्ठित होकर सम्पूर्ण हव्योंकी कामना करता है वह (अग्निः पुरुप्रियः) अग्नि बहुतोंका प्रिय (विशः अतिथिः) सर्वत्र व्यापक, अतिथिके समान सत्कारके योग्य और (प्रातः स्तवेत) प्रातःकालमें स्तुति किए जाने योग्य है ॥ १ ॥

[१४०] हे (अमर्त्य) अमर अग्ने ! (मृक्तवाहसे द्विताय स्वस्य दक्षस्य मंहना) पवित्र हवि पहुँचानेवाले द्वितको अपने बलसे महत्त्व युक्त कर। क्योंकि (सः ते आनुषक् इन्दुं धत्ते, (स्तोता चित्) वह तेरे लिये अनुकूलतासे सदा ही सोमरस देता है, और तेरी पूजा करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— उत्तम बुद्धिवाले मनुष्य इस अग्निका सत्कार करके सब तरहका धन और रथ प्राप्त करते हैं। उत्पन्न होनेके बाद यह अग्नि सब प्रजाओंमें अत्यधिक प्रशंसित होता है। जो इस अग्निका सत्कार करता है, वह हर तरहसे समृद्ध होता है ॥ ४ ॥

बुद्धिमान् जन अग्निकी उपासना करके उत्तम और श्रेष्ठ धन प्राप्त करते हैं। अग्निसे सम्पत्ति प्राप्त करनेका एकमात्र मार्ग उसकी उपासना है। हमारे अन्दर जो सामर्थ्य हो, वह लोगोंका कल्याण करनेके लिए ही हो। वह अग्रणी स्वयं भी सामर्थ्यशाली होकर युद्धोंमें हमें भी बढाए ॥ ५ ॥

यह अग्नि स्वयं अमर होता हुआ मरणशील मनुष्योंके अन्दर रहता हुआ उन्हें बलवान् और सामर्थ्यशाली बनाता है। इसीलिए वह सभीके लिए प्रिय और अतिथिके समान पूज्य है, उसकी प्रातःकाल स्तुति करनी चाहिए ॥ १ ॥

अमर अग्ने ! तू सदा स्तुति करनेवाले और सोमरस देनेवाले, दोनों प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न तथा उत्तम हवि देनेवाले मनुष्यको अपने सामर्थ्यसे सर्वश्रेष्ठ बना (द्वितय— दो प्रकारकी शक्तिसे सम्पन्न, शारीरिक और आध्यात्मिक।) ॥ २ ॥

×

१४१ तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥ ३ ॥

१४२ चित्रा वा येषु दीधिति-रासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥ ४ ॥

१४३ ये मे पञ्चाशतं ददु-रश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत् कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥ ५ ॥

[१९]

[ऋषिः- वव्रिरात्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- गायत्री, ३-४ अनुष्टुप्, ५ विराड्रूपा ।]

१४४ अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि चष्टे ॥ १ ॥

अर्थ— [१४१] हे (अश्वदावन्) अश्वदाता अग्ने ! (दीर्घायुशोचिषं तं वः मघोनां गिरा हुवे) दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले तथा तेजस्वी उस तुझको स्तुति द्वारा बुलाता हूँ । जिससे (येषां रथः अरिष्टः वि ईयते) जो वीर हैं, उनका रथ शत्रुओं द्वारा अहिंसित होकर युद्धमें विशेष रूपसे बढता जाये ॥ ३ ॥

[१४२] (येषु चित्रा दीधितिः) जिन ऋत्विजोंमें अनेक प्रकारके तेज होते हैं (ये आसन् उक्था पान्ति) जो मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञशील (स्वर्णरे स्तीर्णे बर्हिः परि श्रवांसि दधिरे) स्वर्ग प्रापक यज्ञमें फैले हुये कुशोंके ऊपर अनेक प्रकारके अन्न अग्निके लिये स्थापित करते हैं ॥ ४ ॥

१ येषु चित्रा दीधितिः — यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं ।

२ आसन् उक्था पान्ति — वे ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करके हैं ।

[१४३] हे (अमृत अग्ने) अमर अग्ने ! (सधस्तुति ये मे पञ्चाशतं अश्वानां ददुः) तेरी स्तुतिके साथ जो धनदाता मुझे पचास घोडोंको प्रदान करते हैं, तू उन (मघोनां नृणां द्युमत् बृहत् नृवत् महि श्रवः कृधि) धनिक मनुष्योंको तेजस्वी और बहुत सेवकोंसे युक्त यशस्वी अन्न प्रदान करो ॥ ५ ॥

[१९]

[१४४] (वव्रिः मातुः उपस्थे विचष्टे) वह अदृश्य अग्नि माता अरणीके समीप स्थित होकर सबको भली प्रकार देखता है और (चिकेत) सब कुछ जानता है, (वव्रेः अवस्थाः अभि प्रजायन्ते) जब वह अदृश्य अग्नि प्रकट होता है तब उसकी अनेक अवस्थायें होती हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अश्वको देनेवाले अग्ने ! मैं तुझे स्तुति द्वारा बुलाता हूँ ताकि तू अपने तेजसे हमारे वीरोंकी आयु दीर्घ कर सके और युद्धमें आगे जानेवाले उनके रथोंको शत्रु नष्ट न कर सकें ॥ ३ ॥

जो ब्राह्मण अनेक तेजोंसे युक्त है और वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करके वेदमंत्रोंकी रक्षा करते हैं वे यज्ञमें अग्निको देनेके लिए अनेक प्रकारके अन्नोंको तैय्यार करते हैं ॥ ४ ॥

जो अग्निके उपासकोंको गौ आदि धन प्रदान करते हैं, वे भी अग्निसे अनेक तरहका महत्त्वपूर्ण धन प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

वह अदृश्य अग्नि अपनी माता अरणीके गर्भमें रहकर सभी कुछ देखता है और जानता है जब वह प्रकट होता है, तब शरीराग्नि, भौतिकाग्नि, सूर्य आदि रूपोंमें उसकी अनेक अवस्थायें हो जाती हैं ॥ १ ॥

१४५ जुहुरे वि चितयन्तो ऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥ २ ॥

१४६ आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद् वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥ ३ ॥

१४७ प्रियं दुग्धं न काम्य-मजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरो ऽदब्धः शश्वतो दभः ॥ ४ ॥

१४८ क्रीळन् नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।
ता अस्य सन् धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [१४५] हे अग्ने ! (वि चितयन्तः अनिमिषं जुहुरे) तेरे प्रभावको जानकर जो लोग सर्वदा तुझमें आहुति डाला करते हैं और तेरे (नृम्णं पान्ति) बलकी रक्षा करते हैं। वे लोग (दळहां पुरं आ विविशुः) शत्रुओंके दृढ नगरको भी तोड करके उसमें सब ओरसे प्रवेश कर जाते हैं ॥ २ ॥

[१४६] (बृहदुक्थः वाजयुः निष्कग्रीवः जन्तवः कृष्टयः) महान् स्तोत्र करनेवाले, अन्नाभिलाषी, सुवर्णके अलंकारोंको कंठमें धारण करनेवाले उत्पन्नशील मनुष्य (मध्वा न एना श्वैत्रेयस्य द्युमत् आ वर्धन्तः) शहद सदृश मीठे इन अपनी स्तुतियोंसे अत्यधिक प्रकाशमान् अग्निके तेजस्वी बलको सब ओरसे बढाते हैं ॥ ३ ॥

[१४७] जो अग्नि ! (घर्मः न, वाजजठरः अदब्धः शश्वतः दभः) यज्ञके, समान, हवि अन्नको अपने अन्दर रखनेवाला, तथा शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित होकर शत्रुओंकी हिंसा करनेमें समर्थ है (जाम्योः सचा दुग्धं काम्यं अजामि प्रियं) आकाश और पृथ्वीका सहायक वह अग्नि दूधके समान चाहे जाने योग्य दोषोंसे रहित हमारे प्रिय स्तोत्रको सुने ॥ ४ ॥

[१४८] हे (रश्मे) प्रदीप्त अग्ने (क्रीळन् वायुना भस्मना सं वेविदानः नः आ भुवः) प्रदीप्त होता हुआ और वायुसे उडाई गई राखके द्वारा भली भांति ज्ञात होनेवाला तू हमारी तरफ ध्यान दे। तेरे (वक्षणेस्थाः वक्ष्यः सुसंशिता धृषजः) अन्दर स्थित ज्वलायें जो सुतीक्ष्ण और शत्रुनाशक हैं (ताः अस्य तिग्माः न सन्) वे ज्वालायें इस मेरे लिये तीक्ष्ण न हों अर्थात् शीतल हों ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस अग्निमें जो प्रतिदिन आहुति प्रदान करते हैं, और अग्निको पुष्ट करते हुए उसके बलकी रक्षा करते हैं, वे उस अग्निकी सहायतासे शत्रुओंके दृढसे दृढ नगरको भी तोडकर उसमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

महान् स्तुति करनेवाले अन्नकी इच्छा करनेवाले अलंकारोंसे सजे धजे मनुष्य उत्तम स्तुतियोंसे इस अग्निके बलको सब ओरसे बढाते हैं। मनुष्यको हमेशा शहदके समान मीठी वाणी ही बोलनी चाहिए ॥ ३ ॥

यह अग्नि हर तरहके अन्नको अपने अन्दर धारण करता है और शत्रुओं द्वारा स्वयं अहिंसित शत्रुओंका नाश होकर करता है, ऐसा अग्नि हमारी स्तुतियोंको सुने। स्तुति हमेशा दोषोंसे रहित और दूधके समान सुन्दर हो ॥ ४ ॥

जब अग्नि जलता है, तब उसकी राख इधर उधर हवामें उडती है, उसके द्वारा अग्निका जलना ज्ञात होता है। उस अग्निकी ज्वालाएं रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाली है, इसकी जो उपासना करता है, वह कभी रोगोंसे पीडित नहीं होता ॥ ५ ॥

[२०]

[ऋषिः- प्रयस्वन्त आत्रेयाः । देवता अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप् , ४ पंक्तिः ।]

१४९ यमग्ने वाजसातम त्वं चिन् मन्यसे रयिम् ।
तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ १ ॥
१५० ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥ २ ॥
१५१ होतारं त्वा वृणीमहे ऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
१५२ इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥ ४ ॥

---

[२०]

अर्थ— [१४९] हे (वाजसातम अग्ने) अनन्त अन्न देनेवाले अग्ने ! (नः यं रयिं त्वं मन्यसे चित्) हम लोगों द्वारा दिये गये जिस धनको तू स्वीकार करता है, हमारे (श्रवाय्यं गीर्भिः युजं तं देवत्रा पनय) प्रशस्त और स्तुतियोंके साथ उस धनको तू देवताओंको पहुंचा ॥ १ ॥

[१५०] हे (अग्ने) अग्ने ! (ये वृद्धाः) जो मनुष्य धनसे समृद्ध होकर भी (ते उग्रस्य शवसः अप न ईरयन्ति) तेरे इस भयंकर बलको देखकर भी नहीं कांपते हैं, वे (अन्यव्रतस्य द्वेषः ह्वरः सश्चिरे) दूसरे उत्तम कर्म करनेवालोंके द्वेष और हिंसासे अपने आपको संयुक्त करते हैं ॥ २ ॥

१ वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति ह्वरः सश्चिरे— जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे डरते नहीं हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

[१५१] हे (अग्ने) अग्ने ! (प्रयस्वन्तः) अन्नसे सम्पन्न हम (होतारं दक्षस्य साधनं) देवोंको बुलानेवाले और बलको प्रदान करनेवाले (त्वा वृणीमहे) तुझे चाहते हैं और (यज्ञेषु पूर्व्यं त्वां गिरा हवामहे) यज्ञोंमें सर्व श्रेष्ठ तेरी वाणी द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[१५२] हे (सहसावन् सुक्रतो) बलवान् और बुद्धिसे युक्त अग्ने ! (यथा ते ऊतये दिवे दिवे) जिसप्रकार तेरे रक्षणादिकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन हम तैय्यार रहें, तथा (ऋताय राये सधमादः स्याम) धर्मसे प्राप्त होनेवाले धनके लिये हम लोग इकट्ठे होकर आनंदित हों, उसी प्रकार (गोभिः वीरैः सधमादः स्याम, इत्था) गायों और वीर पुत्रोंके साथ सुखसे युक्त होकर निवास करनेवाले हों, इस प्रकारका तू हमें कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे अग्ने ! हमारे द्वारा दिए गए जिस उत्तम और स्तुतियोंके साथ हविको तू स्वीकार करता है, उस हविको तू अन्य देवताओंके पास पहुंचा ॥ १ ॥

जो मनुष्य इस अग्निकी कृपासे धन आदिसे समृद्ध होकर भी इस क्रोधको देखकर कांपते नहीं, अग्निके क्रोधकी परवाह नहीं करते, वे उत्तम व्रत करनेवाले मनुष्योंके शत्रु होते हैं और वे नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

यह अग्नि बल प्रदान करनेवाला है और यज्ञोंमें सर्वश्रेष्ठ है, ऐसे अग्निकी सब अन्न चाहनेवाले स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हम सभी अग्निकी स्तुति करते हुए प्रतिदिन इस अग्निके संरक्षणमें रहें और धर्मयुक्त धनको प्राप्त करके हम सभी संघटित होकर आनन्दका उपभोग करें तथा पशु और पुत्रपौत्रोंसे समृद्ध होकर हम सब आनन्दसे रहें। यह सब अग्निकी उपासनासे ही प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

[२१]

[ऋषिः- सस आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१५३ मनुष्वत् त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ १ ॥

१५४ त्वं हि मानुषे जने ऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् सुजात सर्पिरासुते ॥ २ ॥

१५५ त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥ ३ ॥

१५६ देवं वो देवयज्यया ऽग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥ ४ ॥

---

[२१]

अर्थ— [१५३] हे (अग्ने) अग्ने ! हम (त्वा मनुष्वत् नि धीमहि) तुझको मननशील विद्वान्‌की तरह स्थापित करते हैं, और (मनुष्वत् समिधीमहि) मननशील विद्वान्‌की ही तरह प्रज्वलित करते हैं। हे (अङ्गिर) प्राणोंके सदृश प्रिय ! तू (मनुष्वत् देवयते देवान् यज) मननशील विद्वान्‌की तरह ही उत्तम गुणोंको चाहनेवालोंको उत्तम गुणोंसे युक्त कर ॥ १ ॥

[१५४] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं मनुषे जने सुप्रीतः इध्यसे) तू मननशील मनुष्योंमें प्रसन्न होकर प्रकाशित होता है। हे (सुजात) उत्तम प्रकारसे उत्पन्न अग्ने ! (सर्पिः आ सुते स्रुचः त्वा आनुषक् यन्ति) घृतसे भरे हुए चमचे तुझको अनुकूलतासे प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

[१५५] हे (कवे) दूरदर्शिन् अग्ने ! (विश्वे देवासः सजोषसः त्वां दूतं अक्रत) सब देवोंने एक मतसे तुझे दूत बनाया है, इसलिए तेरे भक्त (देवं त्वा सपर्यन्तः यज्ञेषु ईळते) दिव्य गुण युक्त तेरी सेवा करते हुये, यज्ञोंमें तेरी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[१५६] हे (शुक्रः) तेजस्वी अग्ने ! (मर्त्यः देवं अग्निं वः देवयज्यया ईळीत) मनुष्य, दिव्यगुण युक्त और सबमें अग्रणी तेरी देवोंको प्रसन्न करनेके लिए स्तुति करते हैं। तू हवि द्वारा (समिद्धः दीदिहि) प्रवृद्ध होकर दीप्त हो। (ऋतस्य योनिं आ असदः) तू यज्ञकी वेदिमें आकर प्रतिष्ठित हो। तथा (ससस्य योनिं आ असदः) प्रशंसनीय इस यज्ञमें आकर प्रतिष्ठित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— मननशील विद्वान् जिस प्रकार अग्निको प्रतिष्ठित करके उसे अच्छी तरह प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार हम भी अग्निको प्रदीप्त करें और वह अग्नि भी दिव्य गुणोंकी अभिलाषा करनेवाले हमें दिव्य गुणोंसे युक्त करे ॥ १ ॥

मननशील मनुष्यों द्वारा यह अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, जब यह अच्छी तरह प्रज्वलित हो जाता है, तब उसमें घीसे भर भर कर स्रुचाएं डाली जाती हैं ॥ २ ॥

हे दूरदर्शी अग्ने ! सब देवोंने एक मतसे तुझे देवोंका दूत निश्चित किया है, इसलिये युक्त तेरी उपासना करते हैं ताकि उनकी प्रार्थनाएं तू देवोंके पास पहुंचा ॥ ३ ॥

यह अग्नि देवोंका मुख है, इसलिए देवोंको प्रसन्न करनेके लिए भक्त गण इसी अग्निका सहारा लेते हैं और इसे प्रज्वलित करके इसमें आहुति देते हैं। तब यह यज्ञकी वेदिमें अच्छी प्रकार प्रतिष्ठित होता है ॥ ४ ॥

[२२]

[ऋषिः- विश्वसामा आत्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१५७ प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥ १ ॥

१५८ न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥ २ ॥

१५९ चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥ ३ ॥

१६० अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दंपते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ४ ॥

[२२]

अर्थ— [१५७] हे (विश्वसामन्) विश्व भरके सामके ज्ञाता ! (यः अध्वरेषु ईड्यः) जो सब यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य है (होता विशि मन्द्रतमः) देवताओंको बुलानेवाला तथा प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है (पावकशोचिषे अत्रिवत् प्र अर्च) इस पवित्र दीप्तिवाले अग्निका अत्रिके समान पूजन कर ॥ १ ॥

[१५८] हे यजमानो ! तुम सब, (जातवेदसं देवं ऋत्विजं अग्निं निदधात) संसारके सब पदार्थोंको जाननेवाले, तेजस्वी और सब ऋतुओंमें यज्ञ करनेवाले अग्निको संस्थापित करो, जिससे (अद्य देवव्यचस्तमः यज्ञः आनुषक् प्र एतु) आज देवोंके प्रिय यज्ञके साधक रूप हव्यको हम अग्निके लिये अनुकूलतासे प्रदान करें ॥ २ ॥

[१५९] हे अग्ने ! (चिकित्विन्मनसं) विज्ञानयुक्त मनवाले (देवं त्वा मर्तासः ऊतये इयानासः) तेजस्वी तुझको हम सब मनुष्य अपनी रक्षाके लिये प्राप्त होते हैं । तथा (वरेण्यस्य ते अवसः अमन्महि) वरण करने योग्य श्रेष्ठ तेरी संरक्षण शक्ति प्राप्त करनेके लिए हम स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[१६०] हे (सहस्य अग्ने) बलके पुत्र अग्ने ! तू (अस्य नः इदं वचः चिकिद्धि) इस हमारी प्रार्थनाओंको जान । हे (सुशिप्र दम्पते) सुन्दर हनु और नासिकावाले गृहपति ! (तं त्वा अत्रयः स्तोमैः वर्धन्ति) उस तुझको तीन प्रकारके दुःखोंसे रहित जन स्तोत्रोंसे बढाते हैं । और (अत्रयः गीर्भिः शुम्भन्ति) काम क्रोध और लोभ इन तीनों दोषोंसे रहित जन उत्तम वचनोंसे अलंकृत करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह अहिंसक यज्ञोंका आधार है, सब प्रजाओंको अत्यन्त आनन्द देनेवाला है, इसलिए वह सब प्रकारसे पूज्य है ॥ १ ॥

यह अग्नि इस संसारमें उत्पन्न हुए हुए सब पदार्थोंको जाननेवाला है, ऋतुके अनुसार उसमें यज्ञ किए जाते हैं वह देवोंका प्रिय है और यज्ञको सिद्ध करनेवाला है ॥ २ ॥

उत्तम और मननशील बुद्धिसे युक्त यह अग्नि उत्तम संरक्षणकी शक्तिसे युक्त है, इसीलिए इससे वह शक्ति प्राप्त करनेके लिए मनुष्य इसकी स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हे बलके पुत्र अग्ने ! इन हमारी प्रार्थनाओंको तू समझ । (अ-त्रयः) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंसे रहित मनुष्य तुझे अपने स्तोत्रोंसे बढाते हैं और तुझे उत्तम वचनोंसे शुद्ध करते हैं । उत्तम वचन बोलनेवाला सदा शुद्ध और पवित्र रहता है ॥ ४ ॥

[२३]

[ऋषिः- द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप्, ४ पंक्तिः ।]

१६१ अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्याइसा वाजेषु सासहत् ॥ १ ॥

१६२ तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ २ ॥

१६३ विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः ।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥ ३ ॥

१६४ स हि ष्मा विश्वचर्षणि- रभिमाति सहो दधे ।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत् पावक दीदिहि ॥ ४ ॥

---

[२३]

अर्थ— [१६१] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः आसा वाजेषु विश्वाः चर्षणीः अभि सासहत्) जो मनुष्य स्तोत्रसे युक्त होकर युद्धोंमें सम्पूर्ण शत्रुओंको सब प्रकारसे अभिभूत करता है (द्युम्नस्य प्रासहा सहन्तं रयिं आ भर) उस तेजस्वी जनके लिये प्रकृष्ट बलसे शत्रुओंको पराजित करनेवाले धन प्रदान कर ॥ १ ॥

सहन्तं रयिं द्युम्नस्य आ भर— शत्रुको पराजित करनेवाला धन तेजस्वी मनुष्यको मिले ।

१६२] हे अग्ने ! (सहस्व अग्ने) बलवान् अग्ने ! (त्वं हि सत्यः, अद्भुतः, गोमतः वाजस्य दाता) तू सत्यस्वरूप, अद्भुत तथा गवादि युक्त धनोंका देनेवाला है । ऐसा तू (पृतनासहं रयिं आ भर) शत्रुओंकी सेनाको परास्त करनेवाले ऐश्वर्यको हमें प्रदान कर ॥ २ ॥

[१६३] हे अग्ने ! (सजोषसः वृक्तबर्हिषः विश्वे जनासः) समान प्रीतिवाले, आसन बिछानेवाले सब ऋत्विक् गण (हि सद्मसु) निश्चयसे यज्ञगृहमें (होतारं प्रियं त्वा) देवोंके आह्वाता, सबके प्रिय तुझसे (पुरु वार्या व्यन्ति) बहुत श्रेष्ठ धनोंकी याचना करते हैं ॥ ३ ॥

[१६४] (सः विश्वचर्षणिः अभिमाति सहः हि ष्म दधे) सब कर्मोंको देखनेवाला वह शत्रुओंके संहार करनेवाले बलको हमें प्रदान करे । हे (शुक्र अग्ने) तेजस्वी अग्ने ! तू (नः एषु क्षयेषु रेवत् आ दीदिहि) हमारे इन घरोंमें धनसे सम्पन्न तेज फैला । हे (पावक) पापशोधक (द्युमत् दीदिहि) तेज और यशसे युक्त तू सर्वत्र प्रकाशित हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो अग्निकी स्तुति करनेके साथ साथ इतना बलशाली है कि युद्धोंमें उसके सभी शत्रु हार जाते हैं उसीके पास सभी तरहके ऐश्वर्य रहते हैं ऐसा ही वीर ऐश्वर्योंकी रक्षा कर सकता है ॥ १ ॥

हे अग्ने ! तू अद्वितीय शक्तिवाला तथा ऐश्वर्योंसे भरपूर है, अतः संघटित होकर रहनेवाले तथा तेरे सत्कार करनेके लिए आसन बिछानेवाले मनुष्य तुझसे अनेक तरहके ऐश्वर्य मांगते हैं अतः तू उन्हें भरपूर ऐश्वर्य दे ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू सर्वव्यापक होनेके कारण सब कर्मोंको देखनेवाला है, तथा तेरे पास बलका भण्डार है, अतः तू हमारे घरोंको ऐश्वर्यसे और बलसे सम्पन्न कर, तथा स्वयं भी प्रकाशित होता रह, अर्थात् हम भी ऐश्वर्य और बलसे युक्त होकर यज्ञ करते रहें ॥ ३-४ ॥

[२४]

[ऋषिः- गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च । देवता- अग्निः ।
छन्दः- द्विपदा विराट् ।]

१६५ अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥ १ ॥
१६६ वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥ २ ॥
१६७ स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३ ॥
१६८ तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४ ॥

[२५]

[ऋषिः- वसूयव आत्रेयाः । देवता- अग्निः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

१६९ अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत् पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥ १ ॥

---

[२४]

अर्थ— [१६५] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वं नः अन्तमः) तू हमारे पास रहकर हमारे लिए (वरूथ्यः त्राता उत शिवः भव) स्तुतिके योग्य, रक्षक और कल्याणकारी हो ॥ १ ॥

[१६६] (वसुः वसुश्रवाः अग्निः) सबको बसानेवाला धन और धान्यसे युक्त अग्नि (अच्छ नक्षि) अच्छी प्रकारसे हमको व्याप्त करे । और (द्युमत्तमं रयिं दाः) अतिशय दीप्तिशील उत्तम धन हमको प्रदान करे ॥ २ ॥

[१६७] हे अग्ने ! (सः नः बोधि) वह प्रसिद्ध तू हम लोगोंको जान । हम लोगोंकी (हवं श्रुधि) पुकारको सुन । तथा (समस्मात् अघायतः नः उरुष्य) समस्त पापाचरण करनेवाले दुष्टोंसे हम लोगोंकी रक्षा कर ॥ ३ ॥

[१६८] हे (शोचिष्ठ दीदिवः) अत्यन्त शुद्ध करनेवाले और अपने तेजसे प्रदीप्त होनेवाले अग्ने ! (नूनं तं त्वा सुम्नाय सखिभ्यः ईमहे) निश्चयसे उन श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न तुझसे हम लोग सुखकी तथा मित्रताकी प्रार्थना करते हैं ॥ ४ ॥

[२५]

[१६९] हे ऋषियो ! अपनी (अवसे वः देवं अग्निं अच्छा गासि) रक्षाके लिये तुम दिव्यगुण युक्त अग्निकी अच्छी प्रकारसे स्तुति करो । (सः नः वसुः रासत्) वह अग्नि हमें धन भरपूर देवे । (ऋषूणां पुत्रः ऋतावा द्विषः पर्षति) ऋषियोंके पुत्र अर्थात् ऋषियों द्वारा अरणिमन्थनसे उत्पन्न, सत्यसे युक्त अग्नि हम लोगोंको शत्रुओंसे पार लगावे ॥ १ ॥

भावार्थ— संरक्षण करनेवाले साधनोंसे युक्त यह अग्नि हमारे पास बैठे और हमें सुखकारक हो, वह सर्वव्यापक अग्नि हम पर कृपा करके हमें अत्यन्त तेजस्वी सम्पत्ति प्रदान करे ॥ १-२ ॥

हे अग्ने ! तू हमें जान, हमारी पुकार सुन तथा हमें सब पापियोंसे बचा ताकि हम तुझसे सुख और मित्रता प्राप्त कर सकें ॥ ३-४ ॥

हर मनुष्यको अपनी रक्षाके लिए इस तेजस्वी अग्निकी ही स्तुति करनी चाहिए, वही हर तरहका धन देकर सबको बसने योग्य बनाता है । वह ज्ञानपूर्वक अरणिमन्थन करनेसे पैदा होता है, इसलिए वह अत्यधिक बलशाली होनेसे शत्रुओंको पराजित करता है ॥ १ ॥

१७० स हि सत्यो यं पूर्वे चिद् देवासश्चिद् यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित् सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥ २ ॥

१७१ स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥ ३ ॥

१७२ अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ४ ॥

१७३ अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥ ५ ॥

अर्थ— [१७०] (पूर्वे चित्) पूर्ववर्ती महर्षियोंने (होतारं, मन्द्रजिह्वं सुदीतिभिः विभावसुं यं ईधिरे) देवोंके आह्वाता, सुन्दर जिह्वावाले, अत्यन्त तेजवाले, शोभनदीप्तिसे सम्पन्न जिस अग्निको प्रदीप्त किया, तथा (यं देवासः चित्) जिसको देवोंने भी प्रदीप्त किया, (स हि सत्यः इत्) वह अग्नि सत्य संकल्पसे परिपूर्ण है ॥ २ ॥

[१७१] हे (सुवृक्तिभिः वरेण्य अग्ने) स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य अग्ने ! (सः श्रेष्ठया धीती च वरिष्ठया सुमत्या नः रायः दिदीहि) वह तू अपनी अति धारणावाली और अत्यन्त स्वीकार करने योग्य सुन्दर बुद्धिसे हम लोगोंके लिये धनको प्रदान कर ॥ ३ ॥

[१७२] जो (अग्निः देवेषु राजति) अग्नि देवोंके मध्यमें प्रकाशित होता है जो (अग्निः मर्तेषु आविशन्) अग्नि मनुष्योंमें प्रविष्ट होता है, तथा जो (अग्निः नः हव्यवाहनः) अग्नि हमारे यज्ञमें देवताओंके लिये हव्य वहन करनेवाला है। उस (अग्निं धीभिः सपर्यत) अग्निकी, हे मनुष्यो ! तुम सब अपनी बुद्धियोंसे स्तुतिद्वारा पूजा करो ॥ ४ ॥

[१७३] (अग्निः दाशुषे) अग्नि दाताके लिये, (तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणं उत्तमं अतूर्तं श्रावयत्पतिं) बहुविध अन्नोंसे युक्त, बहुत स्तोत्रोंका कर्ता, अत्यन्त श्रेष्ठ, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होनेवाला, अपने उत्तम कर्मोंसे कुलके यशको फैलानेवाला इस प्रकारके गुणोंसे अलंकृत (पुत्रं ददाति) पुत्र देता है ॥ ५ ॥

भावार्थ— इस अत्यन्त तेजस्वी अग्निको प्राचीन महर्षियोंने और देवोंने प्रदीप्त किया था। वह अग्नि अविनाशी और सत्य संकल्पोंसे युक्त है। वह जो संकल्प करता है, वह हमेशा श्रेष्ठ और उत्तम होता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू उत्तम और धारणावाली बुद्धिसे युक्त है, इसीलिए सब तेरी स्तुति करते हैं और तुझे चाहते हैं, अतः तू हमें भी अपनी उत्तम बुद्धिसे युक्त कर एवं धन प्रदान कर। धन प्राप्त करनेसे पूर्व मनुष्यमें उत्तम बुद्धि होनी चाहिए ताकि वह प्राप्त हुए धनका दुरुपयोग न करे ॥ ३ ॥

यह अग्नि देवोंमें भी प्रतिष्ठित है अर्थात् सूर्य, विद्युत् आदि रूपोंमें वह देवोंके बीचमें विद्यमान है, तथा मनुष्योंमें अग्नि ज्ञानी ब्राह्मणके रूपमें है, मनुष्य शरीरमें प्राणाग्नि या आत्माग्निके रूपमें विद्यमान है ॥ ४ ॥

इस अग्निकी कृपासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह धनवान्, बुद्धिमान्, बलवान् और यशोवान् होता है। जिस माता पिताओंमें यह अग्नि अत्यधिक शक्तिशाली होता है, उनकी सन्तानें इन गुणोंसे युक्त होती हैं ॥ ५ ॥

×

१७४ अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥ ६ ॥
१७५ यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयि–स्त्वद् वाजा उदीरते ॥ ७ ॥
१७६ तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥ ८ ॥
१७७ एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥ ९ ॥

[२६]

[ऋषिः– वसूयव आत्रेयाः । देवता– अग्निः, ९ विश्वे देवाः । छन्दः– गायत्री ।]

१७८ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ १ ॥

अर्थ— [१७४] (अग्निः यः नृभिः, युधा सासाह सत्पतिं ददाति) अग्नि हम लोगोंको उस तरहका, जो अपने परिजनोंका साथ देनेवाला, युद्धके द्वारा शत्रुओंको पराभूत करनेवाला और सत्य प्रतिज्ञ है ऐसा पुत्र देता है । तथा जो (अग्निः जेतारं, अपराजितं, रघुष्यदं अत्यं) अग्नि शत्रुओंको जीतनेवाला, कभी भी पराजित न होनेवाला, द्रुत वेगवाला और निरन्तर चलनेवाला घोडा भी देता है ॥ ६ ॥

[१७५] (यत् वाहिष्ठं तद् अग्नये) जो श्रेष्ठतम स्तोत्र है वह अग्निके लिये निवेदन किया जाता है । हे (विभावसो) तेजोमय अग्ने ! हम लोगोंको (बृहत् अर्च) बहुत धन प्रदान कर, क्योंकि (महिषी इव त्वत् रयिः उदीरते) जिस तरह स्त्रीसे पुत्र उत्पन्न होता है, उसी तरह तुझसे ही सम्पत्ति उत्पन्न होती है । और (वाजाः त्वत्) सम्पूर्ण अन्न भी तुझसे ही उत्पन्न होते हैं ॥ ७ ॥

[१७६] हे अग्ने ! (तव अर्चयः द्युमन्तः) तेरी शिखायें तेजसे युक्त हैं । हे (बृहत्) महान् ! तू (ग्रावा इव उच्यते) शत्रुओंको शिलाके समान चूर्ण करनेमें समर्थ कहा जाता है । (उतो त्मना दिवः) और अपने आप स्वयं द्योतमान होता है । (ते स्वानः तन्यतुः यथा अर्त) तेरा शब्द मेघ-गर्जनकी तरह प्रकट होता है ॥ ८ ॥

[१७७] (वसूयवः सहसानं अग्निं ववन्दिम) हम धनकी कामना करनेवाले लोग बलवान् अग्निकी स्तोत्रादिके द्वारा स्तुति करते हैं । (सुक्रतुः सः नः विश्वा द्विषः अति पर्षत् इव नावा) शोभन कर्मवाला वह अग्नि हम लोगोंको सम्पूर्ण शत्रुओंसे उसी प्रकार पार लगावे, जिस प्रकार नौकाके द्वारा नदी पार की जाती है ॥ ९ ॥

[२६]

[१७८] हे (पावक देव अग्ने) पवित्र करनेवाले और दिव्य गुणोंसे युक्त अग्ने ! तू अपनी (रोचिषा मन्द्रया जिह्वया देवान् आ वक्षि) दीप्तिसे और देवोंको प्रहृष्ट करनेवाली जिह्वासे देवोंको यज्ञमें ले आ (च यक्षि) और उनको तृप्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ— इस अग्निकी प्रसन्नतासे जो पुत्र प्राप्त होता है, वह सब मनुष्योंके साथ संगठित होकर रहनेवाला, युद्धमें शत्रुओंको हरानेवाला और सत्यके मार्गपर चलनेवाला होता है । उसकी प्रसन्नतासे उत्तम उत्तम पशु भी प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

इसी अग्निसे महान् धन और बल उत्पन्न होते हैं, और यह धन और बल वह अपने उपासकोंको देता है, इसलिए सारे श्रेष्ठ स्तोत्र उसीके लिए किए जाते हैं ॥ ७ ॥

जब इस अग्निकी ज्वालायें तेजसे युक्त होती हैं, तब शत्रुओंको उसी प्रकार पीस देती हैं, जिस प्रकार पत्थर पदार्थोंको, और तब वह अग्नि स्वयं प्रकाशमान् होता है उसका शब्द मेघकी गर्जनाके समान भयंकर होता है ॥ ८ ॥

बल और धनकी कामना करनेवाले लोग इस अग्निकी स्तुति करें, प्रसन्न होकर वह उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि अपने उपासकोंको शत्रुओंकी पीडासे दूर करे ॥ ९ ॥

१७९ तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥ २ ॥
१८० वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३ ॥
१८१ अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४ ॥
१८२ यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ ॥
१८३ समिधानः सहस्रजि—दग्ने धर्माणि पुष्यसि । देवानां दूत उक्थ्यः ॥ ६ ॥
१८४ न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥ ७ ॥
१८५ प्र यज्ञ एत्वानुष—गद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥ ८ ॥

अर्थ—[१७९] हे (घृतस्नो चित्रभानो) घृतसे प्रदीप्त होनेवाले आश्चर्यकारक रश्मिवाले अग्ने! (स्वर्दृशं तं त्वा ईमहे) सर्व द्रष्टा उस तुझसे हम सब अपने सुखके लिये याचना करते हैं। तू (वीतये देवान् आ वह) हव्य भक्षणके लिये देवोंको यहां ले आ ॥ २ ॥

[१८०] हे (कवे अग्ने) दूरदर्शी अग्ने! हम (अध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (वीतिहोत्रं द्युमन्तं बृहन्तं त्वा समिधीमहि) हव्यका भक्षण करनेवाले दीप्तिमान् और महान् गुणोंसे युक्त तुझको अच्छी तरह प्रज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥

[१८१] हे (अग्ने) अग्ने! (विश्वेभिः, देवेभिः हव्यदातये आ गहि) सम्पूर्ण देवोंके साथ तू हव्य दाताके लिये यज्ञमें उपस्थित हो। हम सब (होतारं त्वा वृणीमहे) देवोंको बुलाकर लानेवाले तुझको स्वीकार करते हैं चाहते हैं ॥ ४ ॥

[१८२] हे (अग्ने) अग्ने! (सुन्वते यजमानाय सुवीर्यं आ वह) सोम निचोडनेवाले यजमानके लिये तू श्रेष्ठ पराक्रमको प्रदान कर और (दैवैः बर्हिषि आ सत्सि) देवोंके साथ यज्ञमें कुश पर आकर बैठ ॥ ५ ॥

[१८३] हे (सहस्रजित् अग्ने) सहस्रों शत्रुओंको जीतनेवाले अग्ने! तू (समिधानः उक्थ्यः देवानां दूतः धर्माणि पुष्यसि) हव्य द्वारा प्रदीप्त, प्रशंसनीय देवोंका दूत होकर हम लोगोंके सभी धार्मिक कार्योंको उत्तम प्रकारसे पूर्ण करता है ॥ ६ ॥

[१८४] हे मनुष्यो! तुम (जातवेदसं, होत्रवाहं, यविष्ठ्यं, देवं, ऋत्विजं नि दधात्) सब उत्पन्न हुएको जाननेवाले, यज्ञके प्रापक, अतिशय युवा, तेजस्वी और यज्ञ साधक अग्निको निरन्तर धारण करो ॥ ७ ॥

[१८५] (देवव्यचस्तमः यज्ञः अद्य आनुषक् प्र एतु) प्रकाशमान् स्तोताओं द्वारा प्रदत्त हवि अन्न आज अनुकूलतासे देवताओंके पास पहुँचे। हे ऋत्विक्गण! (आसदे बर्हिः स्तृणीत) तुम अग्निके विराजमान होनेके लिये पवित्र कुशको बिछाओ ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे अग्ने! तेरी ज्वालाएं विलक्षण हैं, इसीलिए तेरी ज्वालायें आनन्द देनेवाली हैं, हम तुझसे सुखकी कामना करते हैं तू हमारे इस जीवन यज्ञमें सभी देवोंको स्थिर रख ताकि हम चिरकाल तक सुखका उपभोग कर सकें ॥ १-२ ॥

हे अग्ने! तू उत्तम कर्म करनेवाला है अतः इस हिंसासे रहित यज्ञमें भी सभी देवताओंके साथ आ, हम तुझे बुलाते हैं और हवि भी देते हैं ॥ ३-४ ॥

हे हजारों शत्रुओंको एक साथ जीतनेवाले अग्ने! तू प्रदीप्त होकर हमारे सभी धार्मिक कार्योंको पूर्ण करता है, इसलिए हमारे यज्ञोंमें आ और सब देवोंके साथ हमारे द्वारा दी गई आहुतिका भक्षण कर और हमें बल प्रदान कर ॥ ५-६ ॥

हे मनुष्यो! यह अग्नि सब कुछ जाननेवाला अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी और यज्ञको पूर्ण करनेवाला है। इसका अच्छी तरह सम्मान करो ताकि यह हवि अन्नको देवोंके पास प्रीतिपूर्वक पहुंचावे ॥ ७-८ ॥

१८६ एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः । देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥

[२७]

[ऋषिः- त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः, पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः, भारतोऽश्वमेधश्च राजानः; (अत्रिर्भौम इति केचित् ।)
देवता- अग्निः, ६ इन्द्राग्नी । छन्दः- त्रिष्टुप्, ४-५ अनुष्टुप् ।]

१८७ अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ १ ॥

१८८ यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति ।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ २ ॥

१८९ एवा ते अग्ने सुमतिं चकानो नविष्ठाय नवमं त्रसदस्युः ।
यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३ ॥

अर्थ— [१८६] (मरुतः अश्विना मित्रः) मरुद्गण अश्विनीकुमार, मित्र (वरुणः देवासः) वरुण तथा दूसरे देव (सर्वया विशा) सभी प्रजाओंके साथ (इदं आ सीदन्तु) इस जगह आकर बैठें ॥ ९ ॥

[२७]

[१८७] हे (वैश्वानर अग्ने) सम्पूर्ण मनुष्योंके नेता अग्ने ! (सत्पतिः चेतिष्ठः असुरः मघोनः त्रैवृष्णः त्रि - अरुणः) श्रेष्ठ जनोंके पालक ज्ञानवान्, बलवान्, धनवान्, द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीनों लोकोंमें व्यापक और तीन प्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त तूने (मे दशभिःसहस्रैः अनस्वन्ता गावा मामहे) मुझे भी दशसहस्र उत्तम शकटादि वाहन और गौ अथवा उत्तमवाणी प्रदान किया । यह मैं अच्छी तरह (चिकेत) जानता हूँ ॥ १ ॥

[१८८] हे (वैश्वानर अग्ने) सबमें प्रकाशमान् अग्ने ! (यः सुष्टुतः वावृधानः) जो उत्तम प्रकार प्रशंसित अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होता हुआ तू (मे शता च गोनां विंशतिं) मेरे लिये शत सुवर्ण और बीस धेनु (च, युक्ता, सुधुरा च हरी ददाति) और रथ, तथा रथसे संयुक्त दो सुन्दर अश्वोंको प्रदान करता है, उस (त्रि - अरुणाय शर्म यच्छ) उन तीनों गुणोंवाले पुरुषके लिये तू गृह वा सुख प्रदान कर ॥ २ ॥

[१८९] हे (अग्ने) अग्ने ! (यः तुविजातस्य ते सुमतिं, ते गिरः चकानः) जो अनेक तरहसे उत्पन्न होनेवाले तेरी सुन्दर बुद्धिकी और तेरी स्तुतियोंकी कामना करता है, एवं (नविष्ठाय नवमं) अत्यन्त स्तुति योग्य नवीनतम वचनोंसे तेरी स्तुति करता है, जिससे (त्रसदस्युः) चोर डरते हैं, ऐसा (युक्तेन त्र्यरुणः पूर्वीः अभि गृणाति एव) त्र्यरुण ऋषि उत्तम बुद्धिसे युक्त होकर अनेक तरहकी स्तुतियां करता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— मरुत्, अश्विनीकुमार, मित्र, वरुण आदि सब देव अपनी अपनी प्रजाओंके साथ हमारे स्थान पर आकर बैठें ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तू सज्जनोंका पालक, ज्ञानवान्, बलवान्, धनवान् सर्वत्र व्यापक और उत्तम ज्वालाओंमें युक्त है, तू अपने उपासकोंको अपरिमित धन प्रदान करता है, यह मैं जानता हूँ ॥ १ ॥

जो दानी पुरुष सोना, गाय, रथ घोडे आदि प्रदान करता है, वह तीन गुणोंसे युक्त मनुष्य सुख प्राप्त करता है ॥ २ ॥

जो इस अग्निकी सुन्दर बुद्धिको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह इस अग्निकी सर्वश्रेष्ठ स्तुतियोंसे स्तुति करता है और तब वह उत्तम बुद्धिसे युक्त होता है ॥ ३ ॥

१९० यो म इति प्रवोच॒त्यश्वमेधाय सूरये ।
दद॑दृचा स॒निं य॒ते दद॑न्मे॒धामृ॑ताय॒ते ॥ ४ ॥

१९१ यस्य॑ मा परु॒षाः श॒तमु॑द्धर्षय॑न्त्यु॒क्षणः॑ ।
अश्व॑मेधस्य दा॒नाः सोमा॑ इव॒ त्र्या॒शिरः ॥ ५ ॥

१९२ इन्द्रा॑ग्नी शतदा॒व्न्यश्व॑मेधे सु॒वीर्य॑म् ।
क्ष॒त्रं धा॑रयतं बृ॒हद्दि॒वि सूर्य॑मिवा॒जर॑म् ॥ ६ ॥

[२८]

[ऋषिः- विश्ववारात्रेयी । देवता- अग्निः । छन्दः- १, ३ त्रिष्टुप्, २ जगती, ४ अनुष्टुप्, ५-६ गायत्री ।]

१९३ समि॑द्धो अ॒ग्निर्दि॒वि शो॒चिर॑श्रेत् प्र॒त्यङ्ङु॒षस॑मुर्वि॒या वि भा॑ति ।
एति॒ प्राची॑ वि॒श्ववा॑रा॒ नमो॑भिर्दे॒वाँ ईळा॑ना ह॒विषा॑ घृ॒ताची॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [१९०] हे अग्ने (यः सूरये ऋचा) जो कोई बुद्धिमान् तेरी ऋचाओंसे प्रार्थना करता है । और (अश्वमेधाय मे इति प्र वोचति) अश्वमेधके लिये 'मुझे धन दो' इस प्रकार कहता है । तब तू उस (यते सनिं ददत्) यत्न करनेवालेको उत्तम धन प्रदान कर । हे अग्ने (ऋतायते मेधां ददत्) यज्ञकी कामना करनेवालेको तू श्रेष्ठतम बुद्धि देनेवाला हो ॥ ४ ॥

१ यते सनिं ददत् — यह अग्नि प्रयत्न करनेवालेको ही धन देता है ।

[१९१] (यस्य अश्वमेधस्य दानाः पुरुषाः) जिसके अश्वमेधमें दिये गये, अभिलाषाओंके पूरक (शतं उक्षणः मा उद्धर्षयन्ति) सौ बैल मुझको प्रहर्षित करते हैं । हे अग्ने ! वे बैल (त्र्याशिरः सोमा इव) दही, सत्तू और दूध इन तीनों पदार्थोंसे मिश्रित सोमकी तरह मुझे आनंद देनेवाले हों ॥ ५ ॥

[१९२] हे (शतदाव्नी इन्द्राग्नी) सैकडों तरहके ऐश्वर्योंका दान देनेवाले इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों (अश्वमेधे) इस अश्वमेधमें (दिवि अजरं सूर्यं इव) द्युलोकमें कभी भी क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान क्षीणताहीन (क्षत्रं) निर्बलोंके रक्षक (बृहत् सुवीर्यं धारयतं) श्रेष्ठ बलको धारण करें ॥ ६ ॥

१ अजरं सूर्यं इव क्षत्रं सुवीर्यम्— क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान तेजस्वी निर्बलोंका रक्षक बल हो ।

[२८]

[१९३] (समिद्ध अग्निः दिवि शोचिः अश्रेत्) भलीभाँति दीप्त अग्नि द्योतमान् अन्तरिक्षमें अपने तेजको प्रकाशित करता है । और (उषसं प्रत्यङ् उर्विया वि भाति) उषाके अभिमुख विस्तृत होकर विशेष शोभा पाता है । उस समय (देवान् नमोभिः ईळाना) देवोंकी स्तोत्रोंसे स्तुति करती हुई (हविषा घृताची विश्ववारा प्राची एति) हविसे और घृतसे भरी हुई स्रुवाको लेकर विश्ववारा पूर्वकी ओर मुख करके अग्निके प्रति जाती है ॥ १ ॥

भावार्थ— जो विद्वान् उस बुद्धिमान् अग्निकी प्रार्थना करता है और यह कहता है कि 'अश्वमेध यज्ञ करनेके लिए 'मुझे धन दो' तो वह अग्नि उस प्रयत्न करनेवालेको धन और उत्तम बुद्धि प्रदान करता है ॥ ४ ॥

क्षत्रियोंके लिए अश्वमेध बडा भारी यज्ञ है, उसमें राजा लोग भरपूर दान देते हैं । वह दान सात्विक होनेके कारण दान लेनेवालोंके लिए बहुत आनन्ददायक होता है ॥ ५ ॥

इन्द्र अग्निका बल निर्बलोंका रक्षक तथा सूर्यके समान कभी भी क्षीण होनेवाला नहीं है । इन दोनों देवोंका बल निर्बलोंकी रक्षा करनेवाला है । राष्ट्रमें इन्द्र और अग्नि क्रमशः क्षत्रिय और ब्राह्मणके वाचक हैं । ब्राह्मण और क्षत्रियोंका तेज राष्ट्रमें क्षीण न हो, तथा उन दोनोंका बल निर्बलोंकी सहायता करनेवाला हो ॥ ६ ॥

१९४ समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत् पुरः ॥ २ ॥
१९५ अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३ ॥
१९६ समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४ ॥
१९७ समिद्धो अग्न आहुत देवान् यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५ ॥
१९८ आ जुहोता दुवस्यताऽग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [१९४] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (समिध्यानः अमृतस्य राजसि) भलीभांति प्रज्वलित होकर अमृततत्त्वका प्रकाशक होता है। (हविष्कृण्वन्तं स्वस्तये सचसे) हव्यदाता यजमानको तू कल्याणसे युक्त करता है। तू (यं इन्वसि स विश्वं द्रविणं धत्ते) जिस मनुष्यके पास जाता है, वह सम्पूर्ण धनको धारण करता है। (च आतिथ्यं पुरः इत् नि धत्ते) और अतिथिके सत्कारके योग्य पदार्थको तेरे सम्मुख स्थापित करता है ॥ २ ॥

[१९५] हे (अग्ने) अग्ने ! तू हम लोगोंके (महते सौभगाय शर्ध) महान् सौभाग्यके लिये शत्रुओंका दमन कर। (तव द्युम्नानि उत्तमानि सन्तु) तेरे तेज उत्कृष्ट हों। तू (जास्पत्यं सं आ सुयमं कृणुष्व) दाम्पत्य सम्बन्धको सुदृढ और अच्छीतरह नियंत्रित कर। और (शत्रूयतां महांसि अभितिष्ठ) शत्रुओंके तेजको क्षीण कर ॥ ३ ॥

[१९६] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिद्धस्य तव प्रमहसः श्रियं वन्दे) अच्छी तरह प्रज्वलित होनेवाले तेरे प्रकृष्ट तेजकी हम प्रशंसा करते हैं। (वृषभः द्युम्नवान् असि) कामनाओंका पूरक और तेजस्वी है। तथा (अध्वरेषु सं इध्यसे) हिंसारहित यज्ञोंमें भलीभाँति प्रदीप्त होता है ॥ ४ ॥

[१९७] हे (आहुत सु अध्वर अग्ने) यजमानों द्वारा आहुत शोभन यज्ञवाले अग्ने ! (त्वं समिद्धः देवान् यक्षि) तू भलीभाँति प्रदीप्त होकर इन्द्र देवोंका यजन कर। क्योंकि तू (हि हव्यवाट् असि) निश्चयसे हव्यको वहन करनेवाला है ॥ ५ ॥

[१९८] हे ऋत्विजो ! तुम लोग हमारे (अध्वरे प्रयति, हव्यवाहनं अग्निं आ जुहोत) हिंसारहित यज्ञके शुरु होने पर हव्यको वहन करनेवाले अग्निमें हव्य प्रदान करो। और अग्निको (दुवस्यत वृणीध्वं) सेवा करो तथा देवोंमें उसका वरण करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— उषःकालमें इस अग्निकी किरणें विस्तृत होती हैं और तब अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित होता है और अन्तरिक्षमें उसकी ज्वालायें फैलती हैं । उस समय हविसे युक्त तथा घृतसे पूर्ण स्रुवाको लेकर विश्ववारा आहुति देती है। इस मंत्रके द्वारा स्त्रियोंको भी यज्ञ करनेका अधिकार वेद प्रदान करता है ॥ १ ॥

इस अग्निमें यह गुण है कि यह प्रज्वलित होकर रोग जन्तुओंका नाश करके मनुष्यको अमरता प्रदान करता है और उसका हर तरहसे कल्याण करता है। जिस मनुष्य पर यह अग्नि प्रसन्न होता है वह धनवान् होता है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! तू हम लोगोंका सौभाग्य बढानेके लिए शत्रुओंको नष्ट कर और अपने तेजसे हमें तेजस्वी बना, हमारा दाम्पत्यजीवन सुदृढ और संयमित हो और हमारे शत्रुओंके तेजको क्षीण कर ॥ ३ ॥

यह अग्नि अत्यन्त तेजस्वी है और सभी इसके तेजकी प्रशंसा करते हैं, वह कामनाओंका पूरक और हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदीप्त होता है ॥ ४ ॥

यह अग्नि सभीके द्वारा प्रशंसित तथा उत्तम यज्ञको पूर्ण करनेवाला होकर देवोंको हवि पहुंचानेवाला है, तथा देवोंको संगठित करता है ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! तुम यज्ञके शुरु होने पर इस अग्निमें आहुतियां डालो, इसकी सेवा करो और इसका दूतके रूपमें वरण करो ॥ ६ ॥

[२९]

[ऋषिः- गौरिवीतिः शाक्त्यः । देवता- इन्द्रः, ९ (प्रथमपादस्य) उशना वा । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

१९९ त्र्य॑र्य॒मा मनु॑षो दे॒वता॑ता॒ त्री रो॑च॒ना दि॒व्या धा॑रयन्त ।
अर्च॑न्ति त्वा म॒रुतः॑ पू॒तद॑क्षा॒ स्त्वमे॑षा॒मृषि॑रिन्द्रासि॒ धीरः॑ ॥ १ ॥

२०० अनु॒ यदीं॑ म॒रुतो॑ मन्दसा॒न मार्च॑न्निन्द्रं॑ पपि॒वांसं॑ सु॒तस्य॑ ।
आद॑त्त॒ वज्र॑म॒भि यदहिं॒ ह न्न॒पो य॒ह्वीर॑सृज॒त् सर्त॒वा उ॑ ॥ २ ॥

२०१ उ॒त ब्र॑ह्माणो म॒रुतो॑ मे अ॒स्ये न्द्रः॒ सोम॑स्य॒ सुषु॑तस्य पेयाः ।
तद्धि ह॒व्यं मनु॑षे॒ गा अवि॑न्द॒ दह॒न्नहिं॑ पपि॒वाँ इन्द्रो॑ अस्य ॥ ३ ॥

२०२ आद्रोद॑सी वित॒रं वि ष्क॑भायत् संवि॒व्यान॑श्चिद् भि॒यसे॑ मृ॒गं कः॑ ।
जिग॑र्ति॒मिन्द्रो॑ अप॒जर्गु॑राणः॒ प्रति॑ श्व॒सन्त॒मव॑ दान॒वं ह॑न् ॥ ४ ॥

---

[२९]

अर्थ— [१९९] (मनुषः देवताता) मनुष्यके यज्ञमें (त्रि-अर्यमा) तीन श्रेष्ठ पुरुष (त्री दिव्यां रोचना) तीन दिव्य तेजोंको (धारयन्त) धारण करते हैं। हे (इन्द्र) इन्द्र ! (पूतदक्षाः मरुतः) पवित्र बलसे युक्त मरुत् (त्वा अर्चन्ति) तेरी स्तुति करते हैं। (त्वं एषां ऋषिः असि) तू इनको देखनेवाला है ॥ १ ॥

१ इन्द्रः ऋषिः— इन्द्र सब तरहके ज्ञानको देखता है।

[२००] (यत्) जब इन्द्रने (वज्रं अभि आदत्त) वज्र हाथमें लिया (अहिं हन्) अहिको मारा और (यह्वीः अपः) बडे जल-प्रवाहोंको (सर्तवा असृजत्) बहनेके लिए मुक्त किया, तब (मरुतः) मरुतोंने (सुतस्य पपिवांसं) सोमको पीनेकी इच्छावाले (मन्दसानं इन्द्रं) आनन्दित इन्द्रकी (आर्चन्) प्रशंसा की ॥ २ ॥

[२०१] (उत) और (ब्रह्माणः मरुतः) हे महान् मरुतो ! तुम और (इन्द्रः) इन्द्र (मे) मेरे द्वारा (सु-सुतस्य अस्य सोमस्य) अच्छी तरह निचोडे गए इस सोमको (पेयाः) पिओ। (तत् हव्यं) वह हव्य सोम (मनुषे गाः अविन्दत्) मनुष्यके लिए गायें प्राप्त कराता है, तथा (अस्य पपिवान्) इसे पीकर (इन्द्रः अहिं अहन्) इन्द्रने अहिको मारा ॥ ३ ॥

[२०२] (आत्) बादमें (इन्द्रः) इन्द्र (रोदसी) द्यावापृथिवीको (वितरं विष्कभायत्) बहुत दृढतासे थामा, तथा (सं विव्यानः चित्) आक्रमण करते हुए (मृगं भियसे कः) मृगके समान मायावी वृत्रको भयभीत किया। तथा (जिगर्तिं प्रतिश्वसन्तं दानवं) निगलनेवाले और लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले दानवको (जर्गुराणः) प्रयत्न करते (अप अवहन्) मारा ॥ ४ ॥

भावार्थ—मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है, जिसमें मन, बुद्धि और चित्त ये तीन अर्यमा या श्रेष्ठतत्त्व मनन, विवेक और ज्ञानरूपी तीन दिव्यशक्तियां धारण करते हैं। मरुत्रूपी प्राण पवित्र होकर इस यज्ञाग्निको प्रज्वलित करते हैं। इन्द्र अर्थात् आत्मा इस यज्ञको देखता है ॥ १ ॥

इस इन्द्रने वज्रको हाथमें लेकर अहि नामक असुरको मारा और बडे बडे जलप्रवाहोंको मुक्त किया, तब मरुतोंने सोमको पीनेकी इच्छावाले आनन्दित इन्द्रकी प्रशंसा की ॥ २ ॥

हे वीर मरुतो ! तुम और इन्द्र अच्छीतरह निचोडे गए इस सोमको पियो। इस सोमको पीकर ही इन्द्रने अहिको मारा था और यह सोमरूप हव्य ही मनुष्यको गायें प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

इन्द्रने द्यु और पृथिवीको दृढतासे थाम रखा है। इस इन्द्रने अपने आक्रमणसे मृगके समान मायावी शत्रुको भयभीत किया तथा सब कुछ खाजानेवाले और लम्बी लम्बी सांस लेनेवाले दानवको अपने प्रयत्नोंसे मारा ॥ ४ ॥

२०३ अध॑ क्रत्वा॑ मघवन् तुभ्यं॑ देवा अनु॒ विश्वे॑ अददुः सोम॒पेय॑म् ।
यत् सूर्य॑स्य ह॒रित॑ः पत॑न्तीः पु॒रः स॒तीरुप॑रा एत॑शे कः ॥ ५ ॥

२०४ नव॒ यद॑स्य नव॒तिं च॑ भो॒गान् त्सा॒कं वज्रे॑ण म॒घवा॑ वि॒वृश्च॑त् ।
अर्च॒न्तीन्द्रं॑ म॒रुत॑ः स॒धस्थे॒ त्रैष्टु॑भेन॒ वच॑सा बाधत॒ द्याम् ॥ ६ ॥

२०५ सखा॒ सख्ये॑ अपच॒त् तूय॑म॒ग्नि-र॒स्य क्रत्वा॑ महि॒षा त्री श॒तानि॑ ।
त्री सा॒कमिन्द्रो॒ मनु॑षः॒ सरां॑सि सु॒तं पि॑बद् वृत्र॒हत्या॑य॒ सोम॑म् ॥ ७ ॥

२०६ त्री यच्छ॒ता म॑हि॒षाणा॒मघो॒ मा-स्त्री सरां॑सि म॒घवा॑ सो॒म्यापाः॑ ।
का॒रं न विश्वे॑ अह्वन्त दे॒वा भर॒मिन्द्रा॑य॒ यदहिं॑ ज॒घान॑ ॥ ८ ॥

अर्थ— [२०३] हे इन्द्र ! (यत्) जब तूने (पुरः पतन्तीः) आगे बढती आनेवाली (सूर्यस्य हरितः) सूर्यकी सुनहरे रंगकी घोडियोंको अर्थात् किरणोंको (एतशे) एतशके लिए (उपरा कः) गतिहीन कर दिया, स्थिर कर दिया (अध) तब हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तेरे इस (क्रत्वा अनु) कर्मसे प्रसन्न होकर (विश्वे देवाः) सब देवोंने (तुभ्यं सोमपेयं अददुः) तुझे सोम पीनेके लिए दिया ॥ ५ ॥

[२०४] (यत्) जब (मघवा) इन्द्रने (नव नवतिं च भोगान्) शत्रुकी निन्यानवे नगरियोंको (वज्रेण) वज्रसे (साकं विवृश्चत्) एक साथ तोड डाला तथा (द्यां बाधत) और द्युलोकको थामा, तो (मरुतः) मरुद्गण (सधस्थे) यज्ञमें (त्रैष्टुभेन वचसा) त्रिष्टुभ् छन्दकी ऋचासे (इन्द्रं अर्चन्ति) इन्द्र स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥

(२०५) (सखा अग्निः) मित्र अग्निने (सख्ये अस्य क्रत्वा) अपने मित्र इस इन्द्रके पराक्रमकी सहायतासे (त्री शतानि महिषा) तीन सौ शक्तिवर्धक कन्दोंको (अपचत्) पकाया और साथ साथ (इन्द्रः) इन्द्रने (वृत्रहत्याय) वृत्रको मारनेके लिए (मनुषः सुतं सोमं) मनुष्योंके द्वारा निचोडे गए सोमके (त्री सरांसि) तीन बर्तनोंको (साकं पिबत्) एक साथ पी डाला ॥ ७ ॥

[२०६] हे इन्द्र ! (यत्) जब तूने (त्री शता महिषाणां अघः) तीनसौ शक्ति वर्धक कंदोंको पकाया तथा (मघवा) ऐश्वर्यशाली तूने (सोम्या त्री सरांसि अपाः) सोमके तीन बर्तनोंको पिया तथा (यत् अहिं जघान) जब अहिको मारा, तब (कारं न) जिस प्रकार लोग कारीगरको बुलाते हैं, उसी प्रकार (विश्वे देवाः) सब देवोंने (माः) धनकी प्राप्तिके लिए (भरं इन्द्राय अह्वन्त) भरणपोषण करनेवाले इन्द्रको बुलाया ॥ ८ ॥

भावार्थ— जब इन्द्रने आगे बढती हुई सुनहरे रंग की किरणोंको स्थिर किया, उनकी चंचलता नष्ट कर दी, तब इसके इस कर्मसे प्रसन्न होकर सभी देवोंने इस इन्द्रकी बडी स्तुति की ॥ ५ ॥

जब इन्द्रने अपने वज्रसे शत्रुओंकी निन्यानवे नगरियोंको तोडा और द्युलोकको स्थिर किया तब मरुतोंने यज्ञमें त्रिष्टुप् छन्दके मंत्रोंसे इस इन्द्रकी स्तुति की ॥ ६ ॥

अग्निने इस इन्द्रकी सहायतासे तीन सौ शक्तिवर्धक कन्द पकाये। वृत्रको मारकर इन्द्रने मनुष्योंके द्वारा निचोडे गए सोमको बहुत पिया ॥ ७ ॥

इन्द्रने जब तीनसौ शक्तिवर्धक कन्दोंको पकाया और खूब सारा सोम पिया और उस सोमके उत्साहमें अहिको मारा। तब धनकी प्राप्तिके लिए भरणपोषण करनेवाले इन्द्रको सभी देवोंने बुलाया ॥ ८ ॥

२०७ उशना यत् सहस्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९ ॥

२०८ प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद् वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ १० ॥

२०९ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११ ॥

२१० नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२ ॥

अर्थ— [२०७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जब तू (उशना) और उशना दोनों (सहस्यैः जूजुवानेभिः अश्वैः) शत्रुओंके मारनेवाले और वेगसे दौडनेवाले घोडोंके द्वारा (गृहं अयातं) घर गए, तब (अत्र) उस समय तुम दोनों (कुत्सेन देवैः) कुत्स और देवोंके साथ (सरथं ययाथ) एकही रथ पर बैठकर गए और तूने (शुष्णं अवनोः) शुष्णको मारा ॥ ९ ॥

[२०८] हे इन्द्र ! तूने (सूर्यस्य अन्यत् चक्रं प्र अवृहः) सूर्यके एक चक्रको पृथक् किया तथा (कुत्साय वरिवः यातवे) कुत्सको धन देनेके लिए (अन्यत् अकः) दूसरा चक्र बनाया। तूने (अ-नासः दस्यून् वधेन अमृणः) नाक रहित अर्थात् छोटी नाकवाले दस्युओंको शस्त्रसे मारा, तथा (दुर्योणे) संग्राममें (मृध्रवाचः आवृणक्) बुरे शब्द बोलनेवालोंको मारा ॥ १० ॥

[२०९] हे इन्द्र ! (गौरिवीतेः स्तोमासः त्वा अवर्धन्) गौरिवीतिके स्तोत्रोंने तेरा यश बढाया तथा तूने (वैदथिनाय पिप्रुं अरन्धयः) विदथिके पुत्रके लिए पिप्रुको मारा। तब (ऋजिश्वा त्वां सख्याय आ चक्रे) ऋजिश्वाने तुझे मित्र बनानेके लिये प्रार्थना की, उसने तेरे लिए (पक्तीः पचन्) पुरोडाश पकाया तथा तूने (अस्य सोमं अपिबः) इसके सोमको पिया ॥ ११ ॥

[२१०] (सुतसोमासः नवग्वासः दशग्वासः) सोम तैय्यार करनेवाले नवग्व तथा दशग्वोंने (इन्द्रं अर्कैः अभि अर्चन्ति) इन्द्रकी स्तोत्रोंसे स्तुति की। तब उनके लिए (शशमानाः नरः) प्रशंसित हुए मरुतोंने (आपिधानवन्तं ऊर्वं गव्यं) छिपाकर रखे गए बहुत बडे गायोंके समूहको (अप व्रन्) खोल दिया, प्राप्त किया ॥ १२ ॥

१ नवग्वासः दशग्वासः— नौ और दस गायें पासमें रखनेवाले।

भावार्थ— इन्द्र और उशना अर्थात् महाज्ञानी शत्रुओंको मारनेके लिए घोडोंसे गए, तब यह इन्द्र अन्य देवोंके साथ उसी ज्ञानीके रथ पर बैठकर गया और उसने शुष्णको मारा ॥ ९ ॥

इस इन्द्रने सूर्यको एक चक्रसे युक्त किया, तथा ज्ञानीको धन देनेके लिए दूसरे उपायका सहारा लिया। इस इन्द्रने चिपटी नाकवाले दस्युओंको शस्त्रसे मारा और संग्राममें कुवचनोंको कहनेवालोंको मारा ॥ १० ॥

गौरिवीति अर्थात् गायोंकी रक्षा करनेवाले मनुष्यने इस इन्द्रका यश बढाया। यह इन्द्र भी गौ-रक्षक है, तथा युद्ध करनेवाले शूरवीरके पुत्रकी सहायता करते हुए पिप्रुको मारा। ऋजिश्वाने इन्द्रको मित्र बनानेके लिए इस इन्द्रकी प्रार्थना की, और उसने इन्द्रके लिए पुरोडाश पकाया ॥ ११ ॥

सोम तैय्यार करनेवाले नवग्व और दशग्वोंने इन्द्र की स्तोत्रोंसे स्तुति की, तब इन्द्रके सहायक मरुतोंने नौ और दस गायोंके स्वामीके लिए गायोंका समूह प्रदान किया ॥ १२ ॥

२११ कथो नु ते परि चराणि विद्वान् वीर्या मघवन् या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३ ॥
२१२ एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्य-परीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन् कृणवो दधृष्वान् न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४ ॥
२१३ इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ ॥

[३०]

[ऋषिः- बभ्रुरात्रेयः । देवता- इन्द्रः, १२-१५ ऋणंचयेन्द्रौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२१४ क्वश्स्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन् तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥ १ ॥

अर्थ— [२११] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तूने (या वीर्या चकर्थ) जो पराक्रमके कार्य किए हैं, उन्हें (विद्वान्) जाननेवाला मैं (ते कथो नु परिचराणि) तेरी किस तरह सेवा करूं ? हे (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! (च ह) और तूने (या नव्या कृणवः) जो नये पराक्रमके कार्य किए हैं (ते ता विदथेषु प्र ब्रवाम इत्) तेरे उन पराक्रमोंका यज्ञोंमें हम वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

[२१२] हे (अपरीतः इन्द्र) युद्धमें पीछे न हटनेवाले इन्द्र ! तूने (जनुषा) जन्मते ही (वीर्येण) अपने बलसे (एता भूरि विश्वा चकृवान्) इन सारे विश्वोंको बनाया । हे (दधृष्वान् वज्रिन्) शत्रुओंका धर्षण करनेवाले वज्रधारी इन्द्र ! तू (या चित् कृणवः) जिन पराक्रमोंको करता है, ते (तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति) तेरे इस बलका निवारण करनेवाला कोई नहीं है ॥ १४ ॥

१ जनुषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्– इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया ।

२ या चित् कृणवः तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति— यह इन्द्र जिन पराक्रमोंको करता है, उनका निवारण करनेवाला कोई नहीं है ।

[२१३] हे (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! हमने (ते) तेरे लिए (या नव्या अकर्म) जिन नये स्तोत्रोंको बनाया है, उनका और (क्रियमाणा ब्रह्म) आगे किए जानेवाले स्तोत्रोंका (जुषस्व) सेवन कर । (रथं न) जिसप्रकार बढई रथको उत्तम बनाता है, उसीप्रकार (सु-अपाः धीरः वसूयुः) उत्तम कर्म करनेवाला, बुद्धिमान् तथा धनको चाहनेवाला मैं (भद्रा वस्त्रा इव) उत्तम वस्त्रके समान स्तोत्रको (अतक्षम्) बनाता हूँ ॥ १५ ॥

[३०]

[२१४] (यः पुरुहूत वज्री) जो सहायार्थ बहुतोंके द्वारा बुलाया जानेवाला तथा वज्रधारी इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम रसकी इच्छा करता हुआ (राया) धनसे युक्त होकर (ऊती) संरक्षणके लिए (तत् ओकः गन्ता) उस घरको जाता है, (स्यः) वह (वीरः क्व) वीर कहां है ? तथा (हरिभ्यां सुखरथं) घोडोंसे युक्त और सुखदायक रथ पर बैठकर (ईयमानं इन्द्रं) जानेवाले इन्द्रको (कः अपश्यत्) किसने देखा है ? ॥ १ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! जो तूने नये पराक्रमके कार्य किए हैं, उनको तो हम जानते हैं, अतः यज्ञोंमें हम उनकी प्रशंसा कर भी सकते हैं, पर जो पराक्रम तूने पहले किए हैं, उन्हें हम नहीं जानते, फिर उनका वर्णन हम किस तरह करें ? ॥ १३ ॥

इस इन्द्रने जन्म लेते ही अपने बलसे सारे विश्वको बनाया । हे इन्द्र ! तू जिन पराक्रमोंको प्रकट करता है, उनको रोकनेवाला कोई नहीं है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! मैंने तेरे लिए उत्तम स्तोत्रोंको बनाया है, उन स्तोत्रोंको तू सुन । उत्तम कर्म करनेवाला, बुद्धिमान् तथा धनको चाहनेवाला मैं नये वस्त्रके समान सुन्दर स्तोत्रोंको बनाता हूँ ॥ १५ ॥

२१५ अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥ २ ॥

२१६ प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान् वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥ ३ ॥

२१७ स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ— [२१५] (अस्य सस्वः उग्रं पदं) मैंने इस इन्द्रके गुप्त तथा उग्र स्थानको (अवाचचक्षं) देख लिया है। मैं (इच्छन्) देखनेकी इच्छा करता हुआ (निधातुः अनु आयं) सबको धारण करनेवाले इन्द्रके स्थान पर गया। (अन्यान्, अपृच्छं) मैंने दूसरोंसे भी पूछा (उत ते मे आहुः) तब उन्होंने मुझे बताया कि (बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम) ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥

१ बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम— ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते हैं।

[२१६] हे इन्द्र ! (या ते कृतानि) जो तेरे पराक्रमके कार्य हैं, उनका (वयं सुते ब्रवाम) हम सोमयागमें वर्णन करते हैं। तथा तूने (नः यानि जुजोषः) हमारे जिन कर्मोंका सेवन किया है, उन्हें (विद्वान् वेदत् शृणवत्) विद्वान् जाने और सुने। (सर्वसेनः अयं विद्वान् मघवा) सब सेनाओंसे युक्त यह विद्वान् ऐश्वर्यवान् इन्द्र (वहते) घोडों द्वारा ले जाया जाता है ॥ ३ ॥

१ ते या कृत्यानि, वयं ब्रवाम— जो तेरे कर्म हैं, उनका वर्णन हम करते हैं।

[२१७] हे इन्द्र ! (जातः) उत्पन्न होते ही तूने (मनः स्थिरं चकृषे) मनको स्थिर किया। (युधये) युद्धमें (एकः चित्) अकेले होते हुए भी तूने (भूयसः वेषीत्) बहुतोंको नष्ट किया। तूने (शवसा) बलसे (अश्मानं चित् दिद्युतः) पहाडको भी तोड डाला तथा (उस्रियाणां ऊर्वं गवां विदः) गायोंके बडे समूहको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

१ जातः मनः स्थिरं चकृषे— उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया।

२ युधये एकः चित् भूयसः वेषीत्— युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया।

भावार्थ— जो वज्रधारी इन्द्र सोमपीनेकी इच्छा करता हुआ धनसे युक्त होकर संरक्षणके लिए अपने भक्तके घरको जाता है, वह वीर कहां है और उत्तम रथ पर बैठकर जानेवाले उस वीरको किसने देखा है? ॥ १ ॥

मैंने इस इन्द्रके गुप्त स्थानको जान तो लिया है, मैं इन्द्रके स्थान पर गया भी, पर वहां जानेपर मालूम हुआ कि सिर्फ ज्ञानसे युक्त पुरुष ही उस इन्द्रको प्राप्त कर सकते हैं। यह इन्द्र भी उसी तरह हृदयरूपी गुप्त स्थानमें छिपा रहता है, सब जानते हैं कि आत्माका स्थान हृदय है और कुछ लोग उस स्थान तक पहुंच भी जाते हैं, पर वहां जाकर ज्ञात होता है कि केवल ज्ञानी ही उस आत्माको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २ ॥

जो इन्द्रके कार्य हैं, उनका हम वर्णन करते हैं। यह इन्द्र भी केवल विद्वान्की बातोंका अनुसरण करता है। यह विद्वान् और ऐश्वर्यवान् है ॥ ३ ॥

इस इन्द्रने उत्पन्न होते ही मनमें संकल्प किया कि मैं शत्रुओंको मारूंगा और उसी संकल्पसे प्रेरित होकर उसने अकेले ही सब शत्रुओंको नष्ट किया। उसने अपने बलसे पहाडको भी तोडा और उनमेंसे गायोंको बाहर निकाला ॥ ४ ॥

२१८ परो यत् त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद् दासपत्नीः ॥ ५ ॥

२१९ तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥ ६ ॥

२२० वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन् गवा मघवन् त्संचकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥ ७ ॥

२२१ युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित् स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥ ८ ॥

अर्थ— [२१८] (यत्) जब (परः परमः त्वं) उत्कृष्टोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट तू (परावति) दूर देशमें (श्रुत्यं नाम बिभ्रत् आजनिष्ठाः) प्रसिद्ध यशको धारण करते हुए उत्पन्न हुआ, (अतः चित्) तबसे ही (देवाः इन्द्रात् अभयन्त) सब देव इन्द्रसे डरने लगे और इन्द्रने (दासपत्नी विश्वाः अपः अजयत्) दासके द्वारा रोके गए सब जलोंको जीत लिया ॥ ५ ॥

[२१९] (सुशेवाः मरुतः) उत्तम सेवा करने योग्य ये मरुत् (तुभ्य इत्) तेरे लिए ही (अर्कं अर्चन्ति) स्तोत्रसे अर्चा करते हैं तथा (अन्धः सुन्वन्ति) सोम निचोडते हैं। (इन्द्रः) इन्द्रने (मायाभिः) अपनी कुशलतासे (ओहानं) देवोंको पीडा देनेवाले (अपः आशयानं) जलोंको घेर कर सोनेवाले तथा (मायिनं) मायावी (अहिं) अहिको (सक्षत्) मारा ॥ ६ ॥

[२२०] हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र! (संचकानः) स्तुत होनेवाले तूने (जनुषा) जन्मते ही (दानं इन्वन्) दानासुरको मारते हुए (गवा) अपने वज्रसे (मृधः) दूसरे हिंसकोंको भी (अहन्) मारा। (मनवे गातुं इच्छन्) मनुके लिए मार्ग बनानेकी इच्छा करते हुए तूने (अत्र) इस युद्धमें (दासस्य नमुचेः शिरः) दासके और नमुचिके सिरको (अवर्तयः) काट डाला ॥ ७ ॥

[२२१] हे (इन्द्र) इन्द्र! तूने (स्वर्यं अश्मानं चित् वर्तमानं) गर्जना करनेवाले मेघके समान स्थित (दासस्य नमुचेः) दास नमुचिके (शिरः मथायन्) सिरके टुकडे टुकडे कर डाला (आत् इत्) फिर (मां युजं अकृथाः) मुझे मित्र बनाया। फिर (मरुद्भ्यः) मरुतोंके लिए (रोदसी चक्रिया इव) द्यावापृथिवी दो चक्रोंके समान हो गए ॥ ८ ॥

भावार्थ— दूर देशमें उत्पन्न होने पर भी इस इन्द्रसे सब देव डरने लग गए। जन्म लेते ही उसका यश फैलने लग गया। तब इन्द्रने दासके द्वारा रोके गए सब जलोंको जीत लिया ॥ ५ ॥

जब इन्द्रने अपनी कुशलतासे देवोंको पीडा देनेवाले जलोंको घेरकर सोनेवाले तथा मायावी अहि नामक असुरको मारा, तब मरुतोंने इस इन्द्रकी अर्चा की और उसकी प्रशंसा की ॥ ६ ॥

इस इन्द्रने जन्मते ही दानासुरको मारा और अपने वज्रसे दूसरे हिंसक शत्रुओंको भी मारा। मनुष्यके जानेके लिए मार्ग बनाया और युद्धमें दास और नमुचिके सिरको काटा ॥ ७ ॥

जब इन्द्रने गर्जना करवाले मेघके समान खडे हुए दास नमुचिके सिरके टुकडे किए, तब मरुतोंके लिए ये द्यु और पृथ्वी दो भागोंमें बंट गए ॥ ८ ॥

२२२ स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद् युधये दस्युमिन्द्रः ॥ ९ ॥
२२३ समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥ १० ॥
२२४ यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद् वृषभः सादनेषु ।
पुरंदरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ११ ॥
२२५ भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन् गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥ १२ ॥

अर्थ— [२२२] (दासः स्त्रियः आयुधानि चक्रे) तब दासने स्त्रियोंको आयुध अर्थात् सेना बनाया। (अस्य अबलाः सेनाः) इसकी स्त्रियोंकी सेना (मा किं करत्) मेरा क्या करेगी ? यह सोचकर (इन्द्रः) इन्द्रने (अस्य द्वे धेने) इसकी दो खूबसूरत स्त्रियोंको (अन्तः अख्यत्) अन्दर बन्द कर दिया और (युधये दस्युं उप प्र ऐत्) युद्ध करनेके लिए दस्यु पर चढ चला ॥ ९ ॥

[२२३] (यत्) जब (गावः वत्सैः वियुताः आसन्) गायें बछडोंसे अलग होगई और (इह इह अभितः सं अनवन्त) इधर उधर और सब जगह चिल्लाने लगीं, और (यत्) जब (सुसुताः सोमासः) निचोडे गए सोमोंने (ईं अमन्दन्) इस इन्द्रको आनन्दित किया तब (इन्द्रः) इन्द्रने (अस्य शाकैः) अपने सामर्थ्योंसे (ताः सं असृजत्) उन गायोंको (बछडोंके साथ) संयुक्त कर दिया ॥ १० ॥

[२२४] (यत्) जब (बभ्रुधूताः सोमाः) बभ्रु ऋषिके द्वारा निचोडे गए सोमोंने (ईं अमन्दन्) इस इन्द्रको आनन्दित किया, तब (वृषभः सादनेषु अरोरवीत्) बलवान् इन्द्रने युद्धमें गर्जना की। (पुरन्दरः इन्द्रः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले इन्द्रने (पपिवान्) सोम पिया (पुनः) फिर (अस्य) इस बभ्रुके लिए (उस्रियाणां गवां अददात्) दूध देनेवाली गायें दीं ॥ ११ ॥

[२२५] हे (अग्ने) तेजस्वी इन्द्र ! (गवां चत्वारि सहस्रा ददतः) चार हजार गायोंको मुझे देकर (रुशमाः इदं भद्रं अक्रन्) रुशमोंने यह बडा कल्याणकारी काम किया। (नृणां नृतमस्य) मनुष्योंमें उत्तम मनुष्य (ऋणंचयस्य प्रयता मघानि) ऋणंचयके द्वारा दिए गए ऐश्वर्योंको हमने (प्रति अग्रभीष्म) स्वीकार किया है ॥ १२ ॥

भावार्थ— पराभव होनेके कारण दासने, यह सोचकर कि शायद इन्द्र स्त्रियोंसे न लडे, स्त्रियोंकी एक सेना सजाई और इन्द्र पर चढ चला, तब इन्द्रने भी सोचा कि ये अबला स्त्रियां मेरा क्या कर लेंगी, और यह सोचकर उसने उस सेनामेंसे दो खूबसूरत स्त्रियोंको कैदखानेमें बंद कर दिया। तब वह सारी सेना डर कर भाग गई और इन्द्रने अपनी सेनासे दास पर आक्रमण कर दिया ॥ ९ ॥

गायें जब अपने बछडोंसे बिछडकर इधर उधर रंभाने लगीं, तब इन्द्रने सोमसे आनन्दित होकर उन गायोंको उनके बछडोंसे मिला दिया ॥ १० ॥

जब भरणपोषण करनेवाले दानीने सोमके द्वारा इस इन्द्रको आनन्दित किया, तब बलसे युक्त होकर उसने युद्धमें गर्जना की और उस दानीको इन्द्रने दुधारु गायें दीं ॥ ११ ॥

तेजस्वी मनुष्य हमेशा दान रूप कल्याणकारी कर्म करता है। मनुष्योंमें उत्तम मनुष्य तथा ऋणको दूर करनेवाले दानी महानुभावके ऐश्वर्योंको हम स्वीकार करते हैं। हमेशा वही दान स्वीकार करना चाहिए कि जो उत्तम मनुष्यके द्वारा दिया गया हो ॥ १२ ॥

२२६ सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासो ऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥ १३ ॥
२२७ औच्छत् सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणंचये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत् सहस्रा ॥ १४ ॥
२२८ चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित् तप्तः प्रवृजे य आसी दयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥ १५ ॥

[३१]

[ऋषिः- अवस्युरात्रेयः । देवता- इन्द्रः, ८ तृतीयपादस्य कुत्सो वा, चतुर्थपादस्य उशना वा,
९ इन्द्राकुत्सौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२२९ इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम् ।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥ १ ॥

अर्थ— [२२६] हे (अग्ने) अग्ने ! (रुशमासः) तेजस्वी मनुष्योंने (गवां सहस्रैः) हजारों गायोंसे युक्त (सुपेशसं अस्तं) उत्तम रूपवाले घरको मा अवसृजन्ति) मुझे प्रदान किया । तब (परितक्म्यायाः अक्तोः वि उष्टौ) अन्धकारमय रात्रीके समाप्त होकर उषःकालके प्रकाशित होने पर (सुतासः तीव्राः) हमारे द्वारा निचोडे गए तीखे सोमोंने (इन्द्रं अमन्दुः) इन्द्रको आनन्दित किया ॥ १३ ॥

[२२७] (रुशमानां राजनि ऋणंचये) रुशमोंके राजा ऋणंचयके घरमें आनेपर (या परितक्म्या) जो अन्धकारमय रात थी, (सा रात्री औच्छत्) वह रात्री बीत गई । तब (अत्यः वाजी न) निरन्तर दौडनेवाले घोडेकी तरह (रघुः अज्यमानः) शीघ्रतासे जानेवाले (बभ्रुः) बभ्रुने (चत्वारि सहस्रा असनत्) चार हजार गायें प्राप्त कीं ॥ १४ ॥

[२२८] हे (अग्ने) अग्ने ! हमने (रुशमेषु) रुशमदेशोंमें (चतुः सहस्रं गव्यस्य पश्वः) चार हजार गायरूपी पशुओंको (प्रति अग्रभीष्म) प्राप्त किया । तथा (प्रवृजे) प्रवर्ग्य यज्ञमें (यः तप्तः अयस्मयः घर्मः) जो तपे हुए सोनेका पात्र था, (तं उ) उसे भी, हे (विप्राः) ज्ञानियो ! (आदाम) हमने प्राप्त किया ॥ १५ ॥

[३१]

[२२९] (मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (वाजयन्तं यं अधि अस्थात्) जिस मजबूत रथ पर बैठता है (रथाय प्रवतं कृणोति) उस रथको वेगसे जानेवाला बना देता है । (गोपाः पश्वः यूथा इव) ग्वाला जिस प्रकार पशुओंके झुण्डको प्रेरित करता है, उसी प्रकार इन्द्र (व्युनोति) अपनी सेनाको प्रेरित करता है और (प्रथमः) मुख्य इन्द्र (अरिष्टः) स्वयं अहिंसित होता हुआ (सिषासन् याति) धन देनेकी इच्छा करता हुआ जाता है ॥ १ ॥

भावार्थ— जब मनुष्य गायोंसे युक्त समृद्धिशाली घरोंको प्राप्त करता है, तब वह प्रतिदिन रातके बीतने और उषःकालके प्रकट होने पर सोमरसोंको तैय्यार करता है और उसे पीकर इन्द्र आनन्दित होता है ॥ १३ ॥

ऋणसे दबा हुआ एक तेजस्वी मनुष्य जब एक ऋणको दूर करनेवाले दानी राजाके पास जाता है, तब ऋणके कारण उसकी जो अन्धकारमय रात थी, वह ऋणसे मुक्त होनेके कारण दूर हो गई । मनुष्य जब ऋणसे मुक्त हो जाता है, तब उसे सर्वत्र प्रकाश दीखने लगता है । ऋणसे मुक्त होकर भरणपोषण करनेवाले उस मनुष्यने बहुत सारी समृद्धि प्राप्त की ॥ १४ ॥

हे अग्ने ! हमने रुशम देशमें चार हजार गायोंको प्राप्त किया, साथ ही प्रवर्ग्यमें तपे हुए सोनेसे निर्मित सोनेके पात्रको भी प्राप्त किया ॥ १५ ॥

यह इन्द्र इतना कुशल है कि यह जिस रथ पर भी बैठ जाता है उसे वेगसे जानेवाला बना देता है । एक ग्वाला जिसप्रकार पशुओंके झुण्डको प्रेरित करता है, उसी तरह यह अपनी सेनाको प्रेरित करता है और युद्धमें अपराजेय होकर सबको धन देनेकी इच्छा करता हुआ जाता है ॥ १ ॥

२३० आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व ।
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्य-मेनाँश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥ २ ॥
२३१ उद्यत् सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत् सुदुघा वव्रे अन्त-र्वि ज्योतिषा संववृत्वत् तमोऽवः ॥ ३ ॥
२३२ अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कै-रवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥ ४ ॥
२३३ वृष्णे यत् ते वृषणो अर्कमर्चा-निन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥ ५ ॥

अर्थ— [२३०] हे (हरि-वः) घोडोंको पालनेवाले इन्द्र ! तू (मा आ द्रव) मेरे पास शीघ्र आ, (मा वि वेनः) मुझे निराश मत कर। हे (पिशंगराते) धनवान् इन्द्र ! (नः अभि सचस्व) हमें स्वीकार कर। हे इन्द्र ! (त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति) तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। तूने (अ-मेनान् जनिवतः चकर्थ) पत्नियोंसे रहित कई मनुष्योंको पत्नीवाला बनाया ॥ २ ॥

१ त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति— तुझसे अर्थात् इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

[२३१] (यत्) जब (सहसः सहः) उषाके तेजसे सूर्यका तेज (उत् आजनिष्ट) उदय हुआ, तब (इन्द्रः) इन्द्रने लोगोंको (विश्वा इन्द्रियाणि देदिष्ट) सब इन्द्रियां दे दी। तथा (वव्रे अन्तः) पहाडके अन्दर बन्दकी हुई (सु-दुघाः) उत्तम और दुधारु गायोंको (प्राचोदयत्) बाहर प्रेरित किया, तथा (सं ववृत्वत् तमः) सबको आच्छादित करनेवाले अन्धकारको (ज्योतिषा अवः) अपने तेजसे नष्ट किया ॥ ३ ॥

[२३२] हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (अनवः) कारीगर मनुष्योंने (ते रथं अश्वाय तक्षन्) तेरे रथको घोडेके लगानेके योग्य बनाया। तथा (त्वष्टा द्युमन्तं वज्रं) त्वष्टाने तेजस्वी वज्रको बनाया। (महयन्तः ब्रह्माणः) पूजा करनेवाले स्तोताओंने (अहये हन्तवै) अहिको मारनेके लिए (इन्द्रं अर्कैः अवर्धयन्) इन्द्रको स्तोत्रोंसे उत्साहित किया ॥ ४ ॥

[२३२] (अन्-अश्वासः) घोडोंसे रहित (अ-रथाः) रथोंसे रहित (इन्द्र-इषिताः पवयः) इन्द्रसे प्रेरित होकर चलनेवाले (ये) जिन मरुतोंने (दस्यून् अभ्यवर्तन्त) दस्युओंको मारा, (ते वृषणः) उन बलवान् मरुतोंने (यत्) जब (इन्द्र) हे इन्द्र ! (वृष्णे ते अर्कं अर्चान्) बलवान् तेरी स्तुतिसे पूजा की, तब (अदितिः ग्रावाणः सजोषाः) न टूटनेवाले पत्थर परस्पर संयुक्त होकर सोमरस निकालने लगे ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू मेरे पास शीघ्र आ, मुझे निराश मत कर। तू हमें अपना बनाकर स्वीकार कर, क्योंकि तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। तूने अनेकोंके घर समृद्ध किए हैं ॥ २ ॥

जब उषःकालके बाद सूर्यका तेज प्रकट होता है, तब उस सूर्यके तेजसे इन्द्रियोंको शक्तियां मिलती हैं। सूर्य चर और अचर जगत्की आत्मा है। सूर्य उदय होते ही अन्धकारको दूर कर देता है और अन्धकारके दूर होने पर गाय आदि पशु चरनेके लिए निकल पडते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तेरे रथको कारीगरोंने इतना उत्तम बनाया कि उसमें घोडे आसानीसे जुड गए, तेरे लिए ही त्वष्टाने तेजस्वी वज्रको बनाया, तथा स्तोताओंने अहि नामक असुरको मारनेके लिए तेरे उत्साहको बढाया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! घोडोंसे रहित, और रथोंसे रहित होनेपर भी इन्द्रसे प्रेरित होनेके कारण इन मरुतोंने दस्युओंको मारा। फिर उन बलवान् मरुतोंने इस इन्द्रकी स्तुति की तब इस इन्द्रके लिए सोमरस निचोडा गया ॥ ५ ॥

२३४ प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।
शक्तीवो यद् विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥ ६ ॥
२३५ तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राऽहिं यद् घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित् परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥ ७ ॥
२३६ त्वमपो यदवे तुर्वशायाऽरमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद् वामुशनारन्त देवाः ॥ ८ ॥
२३७ इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेनाऽऽ वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थात् मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥ ९ ॥

अर्थ— [२३४] (शक्तीवः, मघवन्) हे शक्तिशाली और ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (यत्) जब तूने (उभे रोदसी जयन्) दोनों द्यावापृथिवीको जीतकर (मनवे) मनुके लिए (दानुचित्राः अपः विभरा) स्नेहसे भरपूर पानियोंको धारण किया, तब तूने (या चकर्थ) जिन कामोंको किया, (ते) तेरे उन (नूतना पूर्वाणि करणानि) नये और पुराने कर्मोंका मैं (वोचं) वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

[२३५] हे (दस्म विप्र) सुन्दर और बुद्धिमान् इन्द्र ! तूने (अहिं घ्नन्) अहिको मार कर (यत् ओजः अत्र अमिमीथाः) जो पराक्रम यहां प्रकाशित किया, (तत् इत् नु ते करणं) वह भी तेरा ही काम है । तूने (शुष्णस्य चित् माया परि अगृभ्णाः) शुष्णकी मायाको जान लिया, तथा (प्रपित्वं यन्) संग्राममें जाकर (दस्यून् अप असेधः) दस्युओंको मारा ॥ ७ ॥

[२३६] हे इन्द्र ! (पारः त्वं) दुःखोंसे पार करानेवाले तूने (यदवे तुर्वशाय) यदु और तुर्वशके लिए (सुदुघा अपः अरमयः) उत्तम वनस्पतियोंको पैदा करनेवाले जलोंको बहाया । तूने (अयातं उग्रं) चढे चले आनेवाले भयंकर शत्रुसे (कुत्सं अवह) कुत्सकी रक्षा की, तब (उशना देवाः वां अरन्त) उशना और देवोंने तुम्हारी [इन्द्रकी और कुत्सकी] स्तुति की ॥ ८ ॥

[२३७] हे (इन्द्रा कुत्सा) इन्द्र और कुत्स ! (रथेन वहमाना) रथसे जानेवाले (वां) तुम दोनोंको (अत्याः) शीघ्र जानेवाले घोडे (कर्णे अपि आ वहन्तु) युद्धमें भी ले जाएं । तुमने (अद्भ्यः) पानियोंसे निकालकर (सीं) इस असुरको (निः धमथः) मारा, तथा उसे (सधस्थात् निः अवाधेतां) उसके स्थानसे भी तुमने च्युत कर दिया था । तुम (मघोनः हृदः तमांसि वरथः) दानी धनवान्के हृदयसे पापोंको दूर करते हो ॥ ९ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रने दोनों द्यावापृथिवीको जीतकर मनुष्यके लिए स्नेहसे भरपूर जलोंको प्रवाहित किया । इन्द्रके ये काम सनातन कालसे चले आनेपर भी नवीन जैसे ही लगते हैं ॥ ६ ॥

इन्द्रने अहि नामक असुरको मार कर अपना पराक्रम प्रकट किया । ऐसा काम केवल इन्द्र ही कर सकता है । वह इन्द्र स्वयं मायावी होनेके कारण शुष्णको आदि असुरोंकी मायाको जान लेता है और उन्हें मार देता है ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू दुःखोंसे पार करता है । तूने ही यत्न करनेवाले तथा शीघ्रतासे काम करनेवाले मनुष्यके लिए उत्तम वनस्पतियोंको पैदा करनेवाले जलोंको बहाया । तूने ही भयंकर वेगसे चढे चले आनेवाले शत्रुसे सज्जन पुरुषकी रक्षा की, तब बुद्धिमान् विद्वानोंने इस इन्द्रकी रक्षा की ॥ ८ ॥

हे इन्द्र और कुत्स ! रथसे जानेवाले तुम दोनोंको शीघ्रगामी घोडे युद्धमें ले जाएं और वहां तुम पानीमें छिपकर रहनेवाले असुरको मारो तथा दानी धनवान्के हृदयसे पापोंको दूर करो ॥ ९ ॥

२३८ वात॑स्य युक्तान् त्सुयुज॑श्चिदश्वा॑न् कविश्चि॑दे॒षो अ॑जगन्नव॒स्युः ।
विश्वे॑ ते अत्र॑ म॒रुतः॑ सखा॑य॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि तवि॒षीम॑वर्धन् ॥ १० ॥

२३९ सूर॑श्चि॒द् रथं॒ परि॑तक्म्यायां॒ पूर्वं॑ कर॒दुप॑रं जूजु॒वांस॑म् ।
भर॑च्च॒क्रमेत॑शः॒ सं रि॑णाति पु॒रो दध॑त् सनिष्यति॒ क्रतुं॑ नः ॥ ११ ॥

२४० आयं ज॑ना अ॒भिच॑क्षे जगा॒मेन्द्रः॒ सखा॑यं सु॒तसो॑ममि॒च्छन् ।
वद॑न् ग्रा॒वाव॒ वेदिं॑ भ्रियाते॒ यस्य॑ जी॒रम॑ध्व॒र्यव॒श्चर॑न्ति ॥ १२ ॥

२४१ ये चा॑कन॑न्त चा॒कन॑न्त॒ नू ते मर्ता॑ अमृत॒ मो ते अंह॒ आर॑न् ।
वा॒व॒न्धि यज्यूँ॑रु॒त तेषु॑ धे॒ह्योजो॒ जने॑षु॒ येषु॑ ते॒ स्याम॑ ॥ १३ ॥

अर्थ— [२३८] (एषः कविः अवस्युः) इस दूरदर्शी अवस्युने (सुयुजः) रथमें उत्तम प्रकारसे जुडनेवाले (वातस्य युक्तान् अश्वान्) वायुके समान घोडोंको (अजगन्) प्राप्त किया। हे (इन्द्र) इन्द्र ! तब (विश्वे सखायः मरुतः) सब मित्र मरुतोंने (ब्रह्माणि) स्तोत्रोंसे (ते तविषीं अवर्धन्) तेरे बलको बढाया ॥ १० ॥

[२३९] इन्द्रने (पूर्वं) पहले (परितक्म्यायां) युद्धमें (सूरः चित्) सूर्यसे भी अधिक (जूजुवांसं रथं) वेगसे दौडे जानेवाले रथको (उपरं करत्) गतिहीन कर दिया था। उस इन्द्रने (एतशः चक्रं भरत्) एतशके चक्रको छीन लिया था और उससे (रिणाति) शत्रुओंको मारा था, ऐसा वह इन्द्र हमें (पुरः दधत्) आगे बढाता हुआ (नः क्रतुं सनिष्यति) हमारे यज्ञका सेवन करे ॥ ११ ॥

[२४०] हे (जनाः) मनुष्यो ! (अभि चक्षे) तुम्हें देखनेके लिए (सखायं सुतसोमं इच्छन्) मित्रकी तथ निचोडे गए सोमकी इच्छा करता हुआ (अयं इन्द्रः) यह इन्द्र (आ जगाम) आ गया है। (अध्वर्यवः) अध्वर्युगण (यस्य जीरं चरन्ति) जिसे तेजीसे चलाते हैं, वे (ग्रावा) सोम पीसनेके पत्थर (वदन्) शब्द करते हुए (वेदिं अवभ्रियाते) वेदि पर लाये जाते हैं ॥ १२ ॥

[२४१] (ये चाकनन्त ते चाकनन्त) जो आनन्दमें हैं, वे आनन्दमें ही रहें। हे (अमृत) मरण धर्म रहित इन्द्र ! (ते मर्ताः) वे मनुष्य (नु) कभी भी (अंहः मा आरन्) पापसे युक्त न हों। तू (यज्यून् अवन्धि) भक्तोंको स्वीकार कर, (ते) तेरी भक्ति करनेवाले हम (येषु जनेषु स्याम) जिन मनुष्योंमें हैं (तेषु ओजः धेहि) उनमें बल स्थापित कर ॥ १३ ॥

भावार्थ— बुद्धिमान् और रक्षक मनुष्य वायुके समान वेगवान् घोडोंको प्राप्त करे। तथा वीर इन्द्र या राजाके सभी मित्र मिलकर उसका बल बढावें ॥ १० ॥

पहले युद्धमें इन्द्रने अपने शत्रुके सूर्यसे भी तेज दौडनेवाले रथको गतिहीन कर दिया था, तथा उसके ऊपर आक्रमण करता हुआ जो शत्रु चला आ रहा था, उसे मारा और अपने अनुयायियोंको आगे बढाया ॥ ११ ॥

हे मनुष्यो ! तुम्हें देखनेके लिए मित्रकी तथा सोमकी अभिलाषा करता हुआ यह इन्द्र आया है। अध्वर्यु अर्थात् यज्ञ करनेवालोंके द्वारा जोरसे चलाये जानेवाला पत्थर शब्द करता है ॥ १२ ॥

जो आनन्दसे हैं, वे सदा आनन्दसे ही रहें। वे कभी भी पापसे युक्त होकर दुःखी न हों। हे इन्द्र ! हम भक्तों पर तू कृपा कर, तथा तेरी भक्ति करनेवाले हम मनुष्योंमें बल स्थापित कर ॥ १३ ॥

×

[३२]

[ऋषिः- गातुरात्रेयः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२४२ अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद् वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥ १ ॥

२४३ त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥ २ ॥

२४४ त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥ ३ ॥

२४५ त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥ ४ ॥

---

[३२]

अर्थ— [२४२] हे इन्द्र ! तूने (उत्सं अदर्दः) मेघोंको फोडा, (खानि वि) जलके द्वारोंको खोला, (त्वं) तूने (बद्बधानान् अर्णवान् अरम्णाः) क्षुब्ध हुए हुए जलसे भरे मेघोंको मुक्त किया । (महान्तं पर्वतं विवः) बडे बडे पहाडको फोडा (धारा विसृजः) जलकी धाराओंको बहाया, तथा (दानवं अव हन्) दानवको मारा ॥ १ ॥

[२४३] हे इन्द्र ! (त्वं) तूने (ऋतुभिः) वर्षाकालमें (बद्बधानान् उत्सान्) क्षुब्ध हुए हुए मेघोंको फोडा । हे (वज्रिन्) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! तूने (पर्वतस्य ऊधः अरंहः) मेघके बलको नष्ट किया । तथा हे (उग्र इन्द्र) वीर इन्द्र ! तूने (शयानं प्रयुतं अहिं) सोये हुए बलवान् अहिको (जघन्वान्) मारा तथा तूने (तविषीं अधत्थाः) बलको धारण किया ॥ २ ॥

[२४४] (यः एकः इत्) जो अकेला ही स्वयंको (अप्रतिः मन्यमानः) प्रतिस्पर्धी रहित मानता था (अस्मात्) उससे (अन्यः तव्यान् अजनिष्ट) एक दूसरा बलवान् उत्पन्न हुआ, और उस (इन्द्रः) इन्द्रने (तविषीभिः) अपने बलोंसे (महतः मृगस्य) महान् और मृगके समान तेज दौडनेवाले (त्यस्य) उस शुष्णासुरके (वधः) आयुधोंको (जघान) नष्ट कर दिया ॥ ३ ॥

[२४५] (वृषप्रभर्मा वज्री) वर्षणशील मेघको गिरानेवाले तथा वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रने (एषां स्वधया मदन्तं) इन प्राणियोंके अन्नसे आनन्दित होनेवाले (मिहः न पातं) मेघको न गिरने देनेवाले (दानवस्य भामं) दानवके तेजको और (त्यं शुष्णं) उस शुष्णको (वज्रेण निजघान) वज्रसे मारा ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तूने दानवको मारकर मेघोंको फोडा, जलके द्वारोंको खोला, अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध होनेवाले जलोंको मुक्त किया, बडे बडे पर्वतोंको फोडा और जलकी धाराओंको बहाया ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! बलवान् होकर तूने वर्षाकालमें अन्दर ही अन्दर क्षुब्ध होते हुए मेघोंको फोडा, पानी बरसाकर तूने मेघके बलको नष्ट किया, तथा सोये हुए अहिको मारा ॥ २ ॥

शुष्णासुर स्वयंको बहुत बलशाली समझता था, तथा अपनेको प्रतिस्पर्धीसे रहित मानता था । तब इन्द्र पैदा हुआ, जो शुष्णासुरसे भी अधिक बलशाली निकला और उसने अपने बलोंसे महाबलशाली शुष्णको अपने शस्त्रास्त्रोंसे मार दिया ॥ ३ ॥

दानव और शुष्ण असुर प्राणियोंके द्वारा ही दिए गए अन्नसे आनन्दित होते थे, पर उन प्राणियोंके लिए जल बरसने नहीं देते थे, तब वज्रधारी इन्द्रने अपने वज्रसे उन दोनों असुरोंको मारा ॥ ४ ॥

२४६ त्वं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तम्—मर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥ ५ ॥
२४७ त्वं चिदित्था कत्पयं शयान—मसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्यो—च्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥ ६ ॥
२४८ उद् यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥ ७ ॥
२४९ त्यं चिदर्णं मधुपं शयान—मसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥ ८ ॥

अर्थ— [२४६] हे इन्द्र ! (अमर्मणः) जिसके मर्मको कोई नहीं जान सका ऐसे (अस्य निषत्तं मर्म) इस वृत्रके छुपे हुए मर्मको तूने (क्रतुभिः) अपने ज्ञान द्वारा (विदत् इत्) जान लिया । हे (सुक्षत्र) बलवान् इन्द्र ! (प्रभृता मदस्य) बहुत सोमके आनन्दमें तूने (युयुत्सन्तं ईं) युद्ध करनेकी इच्छावाले इस वृत्रको (तमसि हर्म्ये धाः) अन्धकार पूर्ण स्थानमें बन्द कर दिया ॥ ५ ॥

[२४७] (सुतस्य मन्दानः) सोमसे आनन्दित होकर (वृषभः इन्द्रः) बलवान् इन्द्रने (उच्चैः अपगूर्य) वज्रको ऊंचा उठाकर (कत्पयं) सुखकर जलवाले (शयानं) सोनेवाले (असूर्ये तमसि वावृधानं) सूर्यरहित अन्धकारके स्थानमें बढनेवाले (तं) उस वृत्रको (जघान) मारा ॥ ६ ॥

[२४८] (यत् इन्द्रः) जब इन्द्रने (महते दानवाय) महान् दानवको मारनेके लिए (सहः अप्रतीतं) शत्रुओंको मारनेवाले तथा अजेय (वधः) वज्रको (उद् यमिष्ट) ऊपर उठाया, और (यत्) जब (वज्रस्य प्रभृतौ) वज्रके प्रहारसे (ईं ददाभ) इस वृत्रको मारा, तब इन्द्रने (विश्वस्य जन्तोः अधमं चकार) सारे प्राणियोंको नीचा कर दिया ॥ ७ ॥

[२४९] (उग्रः) वीर इन्द्रने (महि) महान् (अर्णं) वेगसे चढाई करनेवाले, (मधुपं) मधुको पीनेवाले (शयानं) सोनेवाले (असिन्वं) शत्रुओंको दूर फेंक देनेवाले (वव्रं) सबको ढकनेवाले (त्यं) उस असुरको (अदात्) पकड लिया । बादमें (दुर्योणे) संग्राममें इन्द्रने (महता वधेन) वज्रसे (अ-पादं अ-मत्रं) पैरोंसे रहित पर असीमित और (मृध्रवाचं) असत्यभाषण करनेवाले वृत्रको (नि आवृणक्) मारा ॥ ८ ॥

भावार्थ—वृत्रासुरके मर्म स्थानको कोई जान नहीं पाता था, उसे भी इन्द्रने अपनी बुद्धिमत्तासे जान लिया, और फिर उस मर्म पर प्रहार करके इन्द्रने वृत्रको अपना बन्दी बना लिया और उसे एक अन्धेरे स्थानमें बन्द कर दिया ॥ ५ ॥

सोमसे आनन्दित होकर उस बलवान् इन्द्रने वज्रको उठाकर सुखदायक जलोंको रोककर उन्हीं पर सोनेवाले तथा सूर्य रहित अन्धकारके स्थानमें बढनेवाले उस वृत्रको मारा ॥ ६ ॥

जब इन्द्रने इस महान् दानव वृत्रको मारनेके लिए शत्रुओंको मारनेवाला तथा अजेय वज्र ऊपर उठाया, तब वज्रके प्रहारसे इस वृत्रको मारा । तब इन्द्रने अपनी शक्तिसे सभी प्राणियोंको अपनेसे नीचा कर दिया ॥ ७ ॥

वृत्रासुर पैरोंसे रहित होने परभी असीम शक्तिवाला और असत्यभाषण करनेवाला था, उस वेगसे चढाई करनेवाले, मधुको पीकर सोनेवाले शत्रुओंको दूर करनेवाले असुरको इन्द्रने जा पकडा और अपने बडे वज्रसे मार डाला ॥ ८ ॥

२५० को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥ ९ ॥

२५१ न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभि- रनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥ १० ॥

२५२ एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥ ११ ॥

२५३ एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥ १२ ॥

अर्थ— [२५०] (अस्य शुष्मं तविषीं कः वराते) इस इन्द्रके महान् बलका कौन निवारण कर सकता है ? (अ-प्रति-इतः) पीछे न हटनेवाला इन्द्र (एकः) अकेला ही (धना भरते) धनोंको धारण करता है। (देवी इमे चित्) तेजस्वी ये दोनों द्यावापृथिवी (ज्रयसः अस्य इन्द्रस्य) वेगवाले इस इन्द्रके (ओजसः भियसा) बलके डरसे (जिहाते) चलती हैं ॥ ९ ॥

[२५१] (अस्मै) इस इन्द्रके लिए (देवी स्वधितिः) तेजस्विनी द्यौ (नि जिहीते) नम्र होकर चलती है, तथा (उशती इव) जिस प्रकार स्त्री पतिके सामने आत्मसमर्पण कर देती है उसी प्रकार (गातुः) भूमि (इन्द्राय येमे) इन्द्रके आगे आत्मसमर्पण कर देती है, (यत्) जब यह इन्द्र (आभिः) इन प्रजाओंसे (विश्वं ओजः सं युवते) अपने सम्पूर्ण बलको संयुक्त करता है, तब (क्षितयः) प्रजायें (स्वधाव्ने) इस बलवान् इन्द्रको (नमन्ते) नमन करती हैं ॥ १० ॥

[२५२] हे इन्द्र ! (सत्पतिं पांचजन्यं) सज्जनोंका पालन करनेवाले, पंचजनोंका हित करनेवाले, (यशसं) यशस्वी और (जातं) उत्पन्न हुए (त्वा एकं) तुझ अकेलेको ही मैं (जनेषु शृणोमि) मनुष्योंमें सुनता हूँ। (दोषा वस्तोः हवमानासः) दिनरात हवि प्रदान करनेवाली तथा (आशसः) कामना करनेवाली (मे) मेरी प्रजायें (नविष्ठं तं इन्द्रं जगृभ्र) अतिशय स्तुत्य उस इन्द्रको स्वीकार करें ॥ ११ ॥

[२५३] (एवा) इस प्रकार (ऋतुथा) समय समय पर (यातयन्तं) जन्तुओंको प्रेरित करनेवाले हे इन्द्र ! (त्वां) तुझे (विप्रेभ्यः मघा ददतं शृणोमि) ज्ञानियोंको धन देनेवाला सुनता हूँ। हे इन्द्र ! (त्वाया ये कामं निदधुः) तुझमें जो अपनी अभिलाषाको स्थापित करते है वे (ब्रह्माणः सखायः) ज्ञानी मित्र (ते किं गृहते) तुझसे क्या पाते हैं ? ॥ १२ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके महान् बलका मुकाबला भला कौन कर सकता है ? क्योंकि यह कभी भी पीछे नहीं हटता, इसलिए यह अकेला ही सब धनोंको धारण करता है। ये दोनों तेजस्वी द्यावापृथिवी वेगशाली इस इन्द्रके बलके डरसे चलती हैं ॥ ९ ॥

इस इन्द्रके सामने तेजसे युक्त द्युलोक झुककर चलता है। भूमि भी इन्द्रके सामने नम्र होजाती है। वह अपनी प्रजाओंको हर तरहके बलसे युक्त करता है। तथा प्रजायें भी इस इन्द्रके आगे नम्र होकर चलती हैं ॥ १० ॥

सब मनुष्योंमें इन्द्र ही सज्जनोंके पालन करनेवाले और पंचजनोंका हित करनेवालेके रूपमें बहुत प्रसिद्ध है। वही यशस्वी है। सभी प्रजायें अपनी सभी कामनाओंकी पूर्णताके लिए इस इन्द्रकी प्रार्थना करती हैं ॥ ११ ॥

यथायोग्य समय पर जन्तुओंके प्रेरित करनेवाले इन्द्र ! मैं सुनता हूँ कि तू ज्ञानियोंको धन देनेवाला है। तुझसे जो भी अभिलाषा करते हैं, वे ज्ञानी जन सभी तरहके सुख प्राप्त करते हैं ॥ १२ ॥

[३३]

[ऋषिः- प्राजापत्यः संवरणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२५४ महिं म॒हे त॒वसे॑ दीध्ये॒ नॄ--निन्द्रा॑येत्था त॒वसे॒ अत॑व्यान् ।
यो अ॑स्मै सुम॒तिं वाज॑सातौ॒ स्तु॒तो जने॑ सम॒र्य॑श्चि॒केत॑ ॥ १ ॥

२५५ स त्वं न॑ इन्द्र धियसा॒नो अ॒र्कै--र्हरी॑णां वृषन् योक्त्र॑मश्रेः ।
या इ॒त्था म॑घवन्ननु॒ जोषं॒ वक्षो॑ अ॒भि प्रार्यः॑ सक्षि॒ जना॑न् ॥ २ ॥

२५६ न ते त॑ इन्द्राभ्य१॒॑स्मदृष्वा--ऽयु॑क्तासो अब्रह्म॒ता यदस॑न् ।
तिष्ठा॒ रथ॒मधि॒ तं व॑ज्रह॒स्ता--ऽऽ र॒श्मिं दे॑व यमसे॒ स्वश्वः॑ ॥ ३ ॥

[३३]

अर्थ— [२५४] (यः अस्मै जने सुमतिं) जो इस मनुष्यके लिए उत्तम बुद्धि देता है, तथा इन्द्रकी (स्तुतः) स्तुति होनेपर भी (वाजसातौ समर्यः चिकेत) युद्धके लिये श्रेष्ठ वीर पुरुषोंको जो पहचानता है, उस (महे तवसे इन्द्राय) महान् बलशाली इन्द्रकी (अतव्यान्) शक्तिहीन निर्बल मैं (नॄन् तवसे) मनुष्योंका बल बढानेके लिए (इत्था महिदीध्ये) इसप्रकार बहुत स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥

१ जने सुमतिं— मनुष्यमें इन्द्र उत्तम बुद्धि करता है।

२ वाजसातौ समर्यः चिकेत— युद्धमें उपयोगी वीरको जानता है।

३ तवसे इन्द्राय अतव्यान् महि दीध्ये— शक्तिमान् इन्द्रके लिये निर्बल मैं वही स्तुति करता हूँ इससे शक्ति मुझे प्राप्त होगी।

[२५५] हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः अर्कैः धियसानः) हमारे स्तोत्रोंसे स्तुति सुननेपर (हरीणां योक्त्रं अश्रेः) घोडोंके लगाम हाथमें लेता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (इत्था) इस प्रकार (याः जोषं वक्षः) इन लगामोंको तू प्रीति पूर्वक हाथमें ले और (अर्यः जनान् अभि प्रसक्षि) शत्रुके वीरोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

१ इत्था जोषं वक्षः अर्य जनान् अभि प्रसक्षि— इस तरह घोडोंकि लगाम पकड और शत्रुके वीरोंको मार।

२ अर्यः— (अरि) शत्रुके

[२५६] हे (ऋष्व इन्द्र) महान् इन्द्र ! (यत् अस्मत् अयुक्तासः असन्) जो हमसे अलग हैं, (अ-ब्रह्मता) ज्ञानसे रहित होनेके कारण (ते) वे मनुष्य (ते न) तेरे भक्त नहीं हैं। हे (वज्रहस्त देव) वज्रको हाथमें धारण करनेवाले, तेजस्वी तथा (सु-अश्वः) उत्तम घोडोंसे युक्त इन्द्र ! तू (तं रथं अधि तिष्ठ) उस रथ पर बैठ और (रश्मिं आ यमसे) लगामको नियंत्रित कर ॥ ३ ॥

१ यत् अस्मत् अयुक्ता असन्, ते अब्रह्मता, ते न— जो हमसे पृथक् हुए हैं वे अपने अज्ञानके कारण तेरे भक्त नहीं रहे हैं।

२ अ-ब्रह्मता— अज्ञान

भावार्थ— इन्द्र मनुष्यके लिए उत्तम बुद्धि देता है। यह युद्धमें वीर मनुष्योंको पहचानता भी है। निर्बल मैं उस महान् बलशाली इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, ताकि वह मनुष्योंका बल बढाये ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारी स्तुतियोंसे प्रेरित होकर घोडेके लगामोंको हाथमें ले और उन लगामोंको प्रेमपूर्वक हाथोंसे पकड कर तू शत्रुके वीरोंको नष्ट कर ॥ २ ॥

जो सदा ज्ञानियोंसे अलग रहते हैं वे ज्ञानसे रहित ही होते हैं, अतः वे मनुष्य तेरे भक्त नहीं हो सकते। हे वज्रधारी तेजस्वी इन्द्र ! तू रथ पर बैठ और लगामको पकड ॥ ३ ॥

२५७ पुरू यत् त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
तततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥ ४ ॥
२५८ वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ ॥
२५९ पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२५७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरे (पुरू उक्था सन्ति) बहुतसे वर्णनके सूक्त हैं उनमें ऐसा है कि (युध्यन्) युद्ध करते हुए तूने (उर्वरासु) उपजाऊ भूमियोंमें (गवे) पानी बहनेके लिए (चकर्थ) मार्ग किया हे (वृषा) बलवान् इन्द्र ! तूने (सूर्याय) सूर्यको (स्वे ओकसि) अपने स्थान पर स्थापित किया, तथा (समत्सु) युद्धोंमें (दासस्य नाम चित् ततक्षे) दासके नामको भी नष्ट कर दिया ॥ ४ ॥

१ हे इन्द्र ! ते पुरु उक्था सन्ति— हे इन्द्र ! तेरे बहुत स्तोत्र गाये जाते हैं।

२ उर्वरासु गवे चकर्थ— उपजाऊ भूमिमें तूने गौओंके लिये घास और पानी बनाया है।

३ समत्सु दासस्य नाम चित् ततक्षे— युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया। दुष्टोंको नष्ट किया।

[२५८] हे इन्द्र ! (ये नरः शर्धः जज्ञानाः) जो नेता, बलको बढानेवाले तथा (रथाः याताः च) रथोंसे जानेवाले हैं (ते वयं) वे हम (ते च) तेरे ही हैं। हे (अहिशुष्म) अहिको मारने योग्य बलसे युक्त इन्द्र ! (प्रभृतेषु चारुः हव्यः) युद्धोंमें अच्छी तरह सहाय्यार्थ बुलाने योग्य तू (सत्वा) बलसे युक्त होकर (भगः न) धनके समान (अस्मान् आ जगम्यात्) हमारी तरफ आ ॥ ५ ॥

१ ये नरः शर्धः जज्ञानाः — जो वीर बल बढाते हैं।

२ प्रभृतेषु चारुः हव्यः — युद्धोंमें अच्छी तरह सहायार्थ बुलाने योग्य वह वीर इन्द्र है।

३ सत्वा अस्मान् आ जगम्यात् — बलवान् वीर हमारे पास आ जांये।

[२५९] हे इन्द्र ! (पपृक्षेण्यं ओजः) पूज्य ओज और (नृम्णानि) अन्य बल (त्वे) तुझमें ही हैं। (नृतमानः अमर्तः) उत्तम नेता, अमर, तथा (वसवानः) अपनी शक्तिसे रहनेवाला (सः) वह तू (नः) हमें (एनीं रयिं दाः) श्वेतरंगका धन दे। मैं (तुविमघस्य अर्यः दानं स्तुषे) बहुत धनवाले तथा श्रेष्ठ इन्द्रके दानकी प्रशंसा करता हूँ ॥ ६ ॥

१ एनी — श्वेत, काले रंगका एक हिरण।

२ त्वे पपृक्षेण्यं ओजः नृम्णानि — तेरे अन्दर वर्णनीय सामर्थ्य और अनेक प्रकारके बल हैं।

३ नृतमानः अमर्तः वसवानः नः एनीं रयिं दाः — उत्तम वीर और अमरतासे रहनेवाला तू हमें उत्तम धन दे।

४ तुविद्युम्न अर्यः दानं स्तुषे — विशेष तेजस्वी श्रेष्ठ वीरके दानकी प्रशंसा करो।

भावार्थ —हे इन्द्र ! तेरा वर्णन करनेवाले जो अनेक सूक्त हैं, उनमें यही वर्णन है कि तूने उपजाऊ भूमियोंमें पानीके बहनेके लिए मार्ग बनाया। तूने ही सूर्यको अपने स्थान पर स्थिर किया, और युद्धमें सदा असुरका नाम भी रहने नहीं दिया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! जो नेता बलको बढाते हैं, तथा रथोंसे जाते हैं, वे सभी तेरे ही हैं। युद्धमें तुझे सब अच्छी तरह बुलाते हैं। अतः तू धनसे युक्त होकर हमारी तरफ आ ॥ ५ ॥

इस इन्द्रमें ओज और तेज है। यह अपनी ही शक्तिसे पराक्रम प्रकट करता है, इसीलिए यह उत्तम नेता और अमर है ॥ ६ ॥

२६० एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७ ॥
२६१ उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८ ॥
२६२ उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९ ॥
२६३ उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥ १० ॥

अर्थ— [२६०] हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (एवा) इस प्रकार (गृणतः कारून्) स्तुति करनेवाले तथा यज्ञोंको करनेवाले (नः) हमारी (ऊतिभिः अव पाहि) संरक्षणके साधनोंसे रक्षा कर, (उत) और (वाजसातौ) यज्ञमें (त्वचं ददतः) कान्तिको देनेवाले (सुषुतस्य चारोः मध्वः) उत्तम तरहसे निचोडे गए, सुन्दर सोमरससे (पिप्रीहि) प्रसन्न हो ॥ ७ ॥

[२६१] (हिरणिनः) बहुतसा सोना पासमें रखनेवाले (गैरिक्षितस्य) गिरिक्षित गोत्रमें उत्पन्न (पौरुकुत्स्यस्य सूरेः) पुरुकुत्सके विद्वान् पुत्र (त्रसदस्योः रराणाः) त्रसदस्युके द्वारा दिए गए (दश श्येतासः) दस सफेद रंगके घोडे (मा वहन्तु) मुझे ले जावें, मैं भी (क्रतुभिः सश्चे) अपने पराक्रमोंके साथ रहता हूँ ॥ ८ ॥

[२६२] (उत) उसी प्रकार (मारुताश्वस्य विदथस्य रातौ) मरुताश्वके पुत्र विदथके यज्ञमें (मा) मुझे (त्ये शोणाः क्रत्वामघासः) वे लाल तथा पराक्रमके कारण पूजे जानेवाले घोडे मिले। (च्यवतानः) च्यवतानने (सहस्रा ददानः) हजारों तरहके धन देते हुए (अर्यः मे) श्रेष्ठतासे युक्त मेरे (वपुषे) शरीरके लिए (आनूकं अर्चत्) अलंकार भी दिए ॥ ९ ॥

[२६३] (उत) और (लक्ष्मण्यस्य ध्वन्यस्य) लक्ष्मणके पुत्र ध्वनके (त्ये सुरुचः यतानाः) वे सुन्दर और पराक्रमी घोडे भी (मा जुष्टाः) मुझे प्राप्त हुए। (गावः व्रजं न) जिस प्रकार गायें बाडेमें जाती हैं उसी प्रकार (प्रयताः मह्ना रायः) दिए गए महत्त्वसे युक्त धन (संवरणस्य ऋषेः अपि ग्मन्) संरक्षण ऋषिकी तरफ गाये हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! स्तुति करनेवाले तथा यज्ञोंको करनेवाले हमारी तू रक्षा कर तथा यज्ञमें हमारे द्वारा दिए गए तथा तेजदायक सुन्दर सोमरसको पीकर प्रसन्न हो ॥ ७ ॥

अत्यन्त धनवान् तथा वाणीके द्वारा स्तुत्य विद्वान् सज्जनके साथ मेरी मैत्री हो और मैं भी अपने पराक्रमसे युक्त होकर रहूँ ॥ ८ ॥

मरुत्के समान वेगवान् घोडे जिसके पास हैं, ऐसे युद्धमें कुशल वीरके पाससे मुझे हर तरहके उत्तम साधन मिलें। दानी पुरुष मुझे हजारों तरहका धन प्रदान करते हुए मुझे अलंकार भी देता है ॥ ९ ॥

उत्तम चिन्होंसे युक्त तथा गर्जना करनेवाले वीरके सुन्दर और पराक्रमी घोडे मुझे प्राप्त हों। महत्त्वपूर्ण धन सबके द्वारा पूज्य ज्ञानीके पास ही जाते हैं ॥ १० ॥

[३४]

[ऋषिः- प्राजापत्यः संवरणः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

२६४ अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १ ॥

२६५ आ यः सोमेन जठरमपिप्रता ऽमन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २ ॥

२६६ यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३ ॥

---

[३४]

अर्थ— [२६४] (अ-जात-शत्रुं दस्मं) जिसका शत्रु उत्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे सुन्दर इन्द्रकी तरफ (अ-जरा स्वर्वाति अमिता स्वधा) क्षीण न होनेवाला, स्वर्गीय, अपरिमित अन्न जाता है,। उस (ब्रह्मवाहसे) ज्ञानी, (पुरु-स्तुताय) और बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्रके लिए (सुनोतन) सोम निचोडो, (पचत्) पुरोडाश पकाओ, तथा (प्रतरं दधातन) उत्तम हवि अर्पण करो ॥ १ ॥

[२६५] (यत्) जब (यः) जिस इन्द्रने (सोमेन जठरं अपिप्रत) सोमसे पेट भर लिया, और (मध्वः अन्धसः मघवा अमन्दत) जब सोमरूपी अन्नसे ऐश्वर्यवान् इन्द्र आनन्दित हुआ, तब (उशना) युद्धकी इच्छा करने वाले (महावधः) तथा शत्रुओंका बुरी तरह वध करनेवाले इन्द्रने (मृगाय हन्तवे) मृगनामक राक्षसको मारनेके-लिए (ईं सहस्रभृष्टिं वधं) इस हजारों धारवाले वज्रको (यमत्) हाथमें लिया ॥ २ ॥

[२६६] (यः अस्मै घ्रंसे) जो इस इन्द्रके लिए दिनमें (उत वा यः) और जो (ऊधनि) रातमें (सोमं सुनोति) सोम निचोडता है, वह (द्युमान् भवति) वह तेजस्वी होता है, पर (यः कवासखः) जो बुरे आदमियोंका मित्र है, उस (ततनुष्टिं) जो अपना दिखावा करना चाहता है अर्थात् जो अभिमानी तथा (तनूशुभ्रं) जो अपने शरीरको अलंकारोंसे सजाना चाहता है अर्थात् लोभी वे स्वार्थी मनुष्यका (मघवा शक्रः) ऐश्वर्यवान् और सामर्थ्यवान् इन्द्र (अप ऊहति) तिरस्कार करता है ॥ ३ ॥

१ यः अस्मै सोमं सुनोति द्युमान् भवति— जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है
२ यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति — पर जो दुष्टोंका मित्र है, उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है।

भावार्थ— इस इन्द्रका कोई भी शत्रु आज तक पैदा नहीं हुआ, इसलिए इसका प्रतिद्वन्द्वीभी कोई नहीं है। जो भी मनुष्य क्षीण न होनेवाले, स्वर्गीय और अपरिमित अन्न देता है, वह उस इन्द्रके पास ही पहुंचाता है। ऐसे ज्ञानी और बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्रके लिए सोम निचोडो ॥ १ ॥

सोमरसको भरपूर पीकर उससे आनन्दित होकर युद्धकी इच्छा करनेवाले इन्द्रने शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा राक्षसोंका वध करनेवाले वज्रको हाथमें धारण किया ॥ २ ॥

जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है, पर जो दुष्टोंका मित्र है, दिखावा करता है अपने शरीरको सजानेमें ही व्यस्त रहता है, जो शरीरको ही सब कुछ समझता है, इन्द्र उस मनुष्यका तिरस्कार करता है। उसकी कभी सहायता नहीं करता ॥ ३ ॥

२६७ यस्यावधीत् पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतंकरो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥ ४ ॥
२६८ न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनि-रा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५ ॥
२६९ वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजो-ऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥ ६ ॥

अर्थ—[२६७] (शक्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (यस्य पितरं) जिसके पिताको (यस्य मातरं) जिसकी माताको अथवा (यस्य भ्रातरं) जिसके भाईको (अवधीत्) मार देता है, (अतः न ईषते) उस दुष्टकी तरफ इन्द्र देखता भी नहीं है। (यतंकरः वस्वः आकरः) प्रयत्नशील तथा धनका भण्डार यह इन्द्र (अस्य प्रयता न वेति) इस दुष्ट मनुष्यके द्वारा दी गई हवियोंको स्वीकार भी नहीं करता, वह इन्द्र (किल्बिषात् ईषते) पापसे दूर भागता है ॥ ४ ॥

१ ईषते— (ईष्) दूर भागना, बचना, सरकना, इकट्ठा करना, देखना, देना, आक्रमण करना, घात करना

[२६८] (पंचभिः दशभिः) पांच अथवा दश शत्रुओंके साथ [युद्ध शुरु होने पर] भी इन्द्र (आरभं न वष्टि) सहायताकी इच्छा नहीं करता। यह (पुष्यता चन असुन्वता) धनवान् होनेपर भी सोमयज्ञ न करनेवालेके साथ (न सचते) मित्रता नहीं करता, इसके विपरीत (धुनिः) शत्रुओंको कंपानेवाला यह इन्द्र (अमुया जिनाति) यज्ञ न करनेवालेको जीतता है और उसे (हन्ति) मारता है, पर (देव-युं गोमति व्रजे आ भजति) देवके भक्तको गायोंसे युक्त बाडेसे संयुक्त करता है ॥ ५ ॥

१ पंचभिः दशभिः आरभं न वष्टि— पांच दश शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिए भी वह दूसरेकी सहायता नहीं चाहता। स्वयं अकेला ही उनसे युद्ध करता है।

[२६९] (समृतौ वित्वक्षणः) युद्धमें बहुत पराक्रमी, (चक्रं आसजः) रथ पर चक्र ठीक तरह बिठलानेवाला (असुन्वतः विषुणः) सोमयाग न करनेवालेका तिरस्कार करनेवाला, (सुन्वतः वृधः) सोमयाग करनेवालेको बढने-वाला (विश्वस्य दमिता) विश्वका दमन करनेवाला (विभीषणः) शत्रुओंके लिए भयंकर तथा (आर्यः इन्द्रः) श्रेष्ठ इन्द्र (दासं यथावशं नयति) शत्रुओंको अपने वशमें करता है ॥ ६ ॥

१ समृतौ वित्वक्षणः— युद्धमें शत्रुका संहार करनेवाला।
२ चक्रं आसजः— रथके चक्रको ठीक तरह बिठलानेवाला।
३ विश्वस्य दमिता— सब शत्रुओंका दमन करनेवाला।
४ भीषणः आर्यः दासं यथावशं नयति—अति पराक्रमी आर्यवीर शत्रुको अपने वशमें करता है।

भावार्थ— यह इन्द्र जिस मनुष्यको भी दुष्ट समझता है, उसके पिता, माता, भाई आदि सभी सम्बन्धियोंको मार देता है और ऐसे आदमी पर वह कभी कृपादृष्टि नहीं करता। सदा प्रयत्न करनेवाला तथा धनका भण्डार यह इन्द्र ऐसे दुष्ट मनुष्यके द्वारा दी गई हवियोंको कभी स्वीकार नहीं करता। वह इन्द्र स्वयं भी पापसे दूर भागता है और दूसरोंको दण्डादिके द्वारा पापमार्गसे दूर भगाता है ॥ ४ ॥

यह इन्द्र इतना शक्तिशाली है कि दसबीस शत्रुओंके साथ लडते हुए भी यह किसी दूसरेसे सहायताकी याचना तो नहीं करता। इसके पास धन भरा हुआ है तो भी यह किसी नास्तिकके साथ मित्रता नहीं करता। इसके विपरीत शत्रुओंको कंपानेवाला इन्द्र नास्तिक मनुष्योंको जीतता है और उसे मार भी देता है, पर उसका जो भक्त है, उसे वह इन्द्र उत्तम गायोंसे युक्त करता है ॥ ५ ॥

यह इन्द्र युद्धमें बहुत पराक्रम प्रकट करनेवाला, रथकी विद्यामें निष्णात, नास्तिकको मारनेवाला, आस्तिककी रक्षा करनेवाला, सारे विश्वपर सत्ता चलानेवाला, शत्रुओंके लिए भयंकर तथा शत्रुओंको वशमें करनेवाला है ॥ ६ ॥

×

२७० समी पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७ ॥
२७१ यं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसा-ववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥ ८ ॥
२७२ सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन् क्षत्रममवत् त्वेषमस्तु ॥ ९ ॥

अर्थ— [२७०] यह इन्द्र (पणेः भोजनं) कंजूस बनियेके अन्नको (मुषे) लूटनेके लिए आगे (सं अजति) जाता है, तथा (दाशुषे सू-नरं वसु भजति) दाताके लिए उत्तम उत्तम धन देता है। (यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्) जो इसके बलको क्रोधित करता है, उन (विश्वे पुरु जनः) सारे मनुष्योंको यह (दुर्गे चन आ ध्रियते) किलेमें बन्द कर देता है ॥ ७ ॥

१ दाशुषे सूनरं वसु भजति — दाताको उत्तम धन देता है।
२ यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आध्रियते — जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुजनोंको किलेमें कैद करके रखता है।
३ पणेः भोजनं मुषे अजति — दुष्टोंके धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है।
४ पणिः — व्यापारी, जो व्यापारमें अधिक लाभ लेना है और जो दान नहीं देता। अति कंजूस व्यापारी।

[२७१] (यत्) जब (मघवा इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् इन्द्र (सु-धनौ, विश्वशर्धसौ जनौ) उत्तम धनवाले अत्यन्त बलशाली मनुष्योंको (अवेत्) जानता है तब (शुभ्रिषु गोषु) सफेद गायोंके दान देनेके लिए उनमेंसे (अन्यं युजं अकृत) एक यज्ञ करनेवाले की ही सहायता करता है। (प्रवेपनिः) शत्रुओंको कंपानेवाला तथा (सत्वभिः धुनिः) अपने बलोंसे शत्रुको मारनेवाला यह इन्द्र (ईं गव्यं सृजते) इस यज्ञकर्ताके लिए गायोंके समूहका दान देता है ॥ ८ ॥

१ यत् इन्द्रः सुधनौ विश्वशर्धसौ जनौ अवेत्, अन्यं युजं अकृत् — जब इन्द्र धनी बली ऐसे दो मानवोंको जानता है तब वह उनमेंसे योग्यको ही अपना मित्र करता है।
२ ईं गव्यं सृजते — उसको गायें देता है।

[२७२] हे (अग्ने) तेजस्वी इन्द्र ! (अर्यः) श्रेष्ठ मैं (उपमां केतुं) अनुपम, विख्यात और (सहस्रसां) हजारों दान देनेवाले (आग्निवेशिं शत्रिं) अग्निवेशीके पुत्र शत्रिकी मैं (गृणीषे) स्तुति करता हूँ। (संयतः आपः) अच्छी तरह बहनेवाले जलप्रवाह (तस्मै पीपयन्तः) उसे तृप्त करते हैं। (तास्मिन् क्षत्रं अभवत्, त्वेषं अस्तु) उसमें क्षात्रबल प्रकट हुआ और उसमें तेज भी हुआ है।

१ संयतः आपः — अच्छी प्रकार तैयार किए गए नहरोंसे चलनेवाले जलप्रवाह।
२ तास्मिन् क्षत्रं अभवत्, त्वेषं अस्तु — उसमें क्षात्र तेज था, और उसमें बल हो। जिसमें क्षात्र तेज और बल होता है उसकी असाधारण योग्यता होती है ॥ २ ॥

भावार्थ— इन्द्र कंजूसों पर कभी भी कृपा नहीं करता, अपितु उनके अन्नादिको लूटनेके कार्यमें वह सदा आगे ही रहता है। पर जो दानशील है, उसके लिए वह उत्तम उत्तम धन देता है। जो इस इन्द्रको क्रोधित करता है, वह कभी भी इस इन्द्रसे बचकर नहीं निकल सकता ॥ ७ ॥

इन्द्र दुष्ट और सज्जन इन दोनों तरहके मनुष्योंको जानता है, पर उनमें वह सज्जन मनुष्यकी ही सहायता करता है और दूसरेको मार देता है ॥ ८ ॥

जो सदा अग्निकी उपासना करनेवाला यज्ञशील मनुष्य है ऐसे अनुपम और विख्यात मनुष्यकी इन्द्र सदा सहायता करता है। ऐसे सज्जन मनुष्यकी तरफ जलप्रवाह बहते हैं और उसमें क्षात्रशक्ति, बल और तेज बढता है ॥ ९ ॥

[३५]

[ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, ८ पङ्क्तिः ।]

२७३ यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १ ॥
२७४ यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद् वा पञ्च क्षितीना-मवस्तत् सु न आ भर ॥ २ ॥
२७५ आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३ ॥
२७६ वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४ ॥

---

[३५]

अर्थ— [२७३] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यः ते साधिष्ठः क्रतुः) जो तेरा अत्यन्त पराक्रम बलयुक्त है, उस (चर्षणीसहं) शत्रुओंको हरानेवाले, (सस्निं) शुद्ध और (वाजेषु दुस्तरं) संग्राममें कठिनतासे तरने योग्य पराक्रमको (अवसे) रक्षाके लिए (अस्मभ्यं आ भर) हमें दे ॥ १ ॥

१ चर्षणीसहं, सस्निं, वाजेषु दुस्तरं अस्मभ्यं अवसे आभर — शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले, उत्तम, तथा युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर होनेवाले सामर्थ्यको हमारेमें भरपूर रखो ।

[२७४] हे इन्द्र ! (ते यत् चतस्रः) तेरे जो चार प्रकारके (अवः) रक्षाके साधन हैं, अथवा हे शूर ! (यत् तिस्रः) जो तीन प्रकारके रक्षणके साधन हैं, (वा) अथवा (यत् पंच क्षितीनां अवः) जो पांच जनोंका हित करनेवाले रक्षाके साधन हैं, (तत् नः सु आ भर) उन्हें तू हमें अच्छी तरह दे ॥ २ ॥

[२७५] हे इन्द्र ! (वृषन्तमस्य ते) अत्यन्त बलवान् तेरे (अवः) रक्षणकी हम (आ हूमहे) कामना करते हैं (वृषजूतिः तुर्वणिः) वेगसे जानेवाला तथा शत्रुओंका हिंसक तू (आभूभिः) सहायकोंके साथ (जज्ञिषे) प्रकट होता है ॥ ३ ॥

[२७६] हे इन्द्र ! (राधसे वृषा असि) तू समृद्धि देनेके लिए समर्थ है, इसलिए (जज्ञिषे) तू प्रकट होता हैं, (ते शवः वृष्णिः) तेरा बल कामनाओंको प्रदान करनेवाला है । (ते मनः धृषत्) तेरा मन धर्षणशक्तिसे युक्त है, तथा (स्व-क्षत्रं) तेरा बल अधिकारमें रहता है, हे इन्द्र ! तेरा (पौंस्यं सत्राहं) बल शत्रुओंको मारनेवाला है ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस इन्द्रके अन्दर जो बल है, वह बहुत पराक्रमसे युक्त, शत्रुओंको हरानेवाला, शुद्ध पवित्र है । संग्राममें इसकी शक्तिका पार पाना बडा कठिन है । उस बलको हम अपनी रक्षाके लिए प्राप्त करें ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक रूप रक्षाके चार तरहके साधन हैं, उन्हें हमें तू प्रदान कर पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंसे तू हमारी रक्षा कर । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांच जनोंका हित करनेवाले साधनोंसे हमें युक्त कर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू अत्यन्त ही बलवान् है, इसलिए तेरी रक्षाकी हम कामना करते हैं । वेगसे जानेवाला तथा शत्रुओंका हिंसक तू सहायकोंके साथ हमारे पास आ ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! तू समृद्धिको देनेमें समर्थ है, इसलिए तू प्रकट होता है । तेरा बल कामनाओंको प्रदान करनेवाला है, तेरा मन शत्रुओंको हरानेवाली शक्तिसे युक्त है । तू अपनी शक्तियोंको अपने अधिकारमें रखता है ॥ ४ ॥

२७७ त्वं तमिन्द्र मर्त्यं — ममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ ॥
२७८ त्वामिद् वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६ ॥
२७९ अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७ ॥
२८० अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरंध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ ॥

[३६]

[ऋषिः- प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ३ जगती ।]

२८१ स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद् दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाण — श्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १ ॥

अर्थ— [२७७] हे (अद्रिवः शतक्रतो इन्द्र) वज्र धारण करनेवाले तथा सैंकडों उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! (त्वं) तू (तं अमित्रयन्तं मर्त्यं) उस शत्रु मनुष्यको मारनेके लिए (सर्वरथा नि याहि) अपने सब जगह चलनेवाले रथसे जा ॥ ५ ॥

[२७८] हे (वृत्रहन्तम) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (पूर्वीषु पूर्व्यं उग्रं) प्राचीनोंमें भी प्राचीन तथा वीर (त्वां इत्) तुझे (वृक्तबर्हिषः जनासः) आसन बिछानेवाले मनुष्य (वाजसातये हवन्ते) अन्नकी प्राप्ति होनेवाले यज्ञमें बुलाते हैं ॥ ६ ॥

[२७९] हे इन्द्र ! (दुस्तरं) कठिनतासे तरने योग्य, (आजिषु पुरः यावानं) युद्धोंमें आगे जानेवाले (सयावानं) तथा अनुचरों सहित जानेवाले (अस्माकं रथं) हमारे रथकी (अव) रक्षा कर ॥ ७ ॥

[२८०] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अस्माकं एहि) हमारी तरफ आ और (पुरन्ध्या नः रथं अव) बुद्धिसे हमारे रथकी रक्षा कर । हे (शविष्ठ) बलवान् इन्द्र ! (वार्यं श्रवः) ग्रहण करने योग्य अन्नको (वयं) हम (दिवि दधीमहि) यज्ञमें स्थापित करते हैं, तथा (दिवि स्तोमं मनामहे) यज्ञमें हम स्तोत्र बोलते हैं ॥ ८ ॥

[३६]

[२८१] (यः वसूनां दातु चिकेतत्) जो धनोंको देना जानता है, ऐसा (इन्द्रः) इन्द्र (आ गमत्) हमारे पास आवे । वह (रयीणां दामनः) धनोंका देनेवाला इन्द्र (तृषाणः) प्यासा (धन्वचरः वंसगः न) शिकारी जैसा पशुओंको चाहता है, उसी प्रकार (चकमानः) सोमकी इच्छा करता हुआ (दुग्धं अंशुं पिबतु) दूधसे मिले हुए सोमको पीवे ॥ १ ॥

भावार्थ – हे वज्रधारी तथा सैंकडों तरहके उत्तम काम करनेवाले इन्द्र ! तू शत्रुओंको मारनेके लिए रथ पर बैठकर जा ॥ ५ ॥

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुझे प्राचीनोंमें भी प्राचीन ज्ञानी अन्न और बलकी प्राप्तिके लिए बुलाते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! हमारा रथ हमेशा युद्धोंमें आगे जाता है । यह हमारा रथ यद्यपि दुस्तर है, तथापि तू हमारे इस रथकी रक्षा कर ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! तू हमारी तरफ आ, और बुद्धिपूर्वक हमारे रथकी रक्षा कर । हम तेरे लिए यज्ञमें उत्तम अन्नकी ही आहुति देते हैं और स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

२८२ आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत् सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २ ॥
२८३ चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥ ३ ॥
२८४ एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रे- यर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन् यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४ ॥
२८५ वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौ- र्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन् भरे धाः ॥ ५ ॥

अर्थ— [२८२] हे (हरि-वः शूर) घोडोंसे युक्त शूरवीर इन्द्र ! (पर्वतस्य पृष्ठे सोमः न) जिस तरह सोम पर्वतकी पीठपर रहता है, उसी प्रकार (ते) तेरे (शिप्रे हनू) सुन्दर होठपर सोम (आरुहत्) चढे । हे (पुरुहूत राजन्) बहुतों द्वारा बुलाये जानेवाले, तेजस्वी इन्द्र ! (अर्वतः न) जिस प्रकार घोडेको घास आदि देकर आनन्दित करते हैं, उसी प्रकार (विश्वे) हम सब (गीर्भिः त्वा हिन्वन्) स्तुतियोंसे तुझे आनन्दित करते हुए (मदेम) स्वयं भी आनन्दित हों ॥ २ ॥

[२८३] हे (सदावृधः पुरूवसुः मघवन्) हमेशा बढानेवाले, बहुत धनवान् तथा ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (वृत्तं चक्रं न) जिस प्रकार गोल पहिया चलते हुए कांपता है, उसी प्रकार (मे मनः) मेरा मन (अमतेः भिया वेपते) बुद्धिहीनताके भयसे कांपता है । इसीलिए हे (अद्रिवः) शस्त्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (जरिता) स्तुति करनेवाला मैं (रथात् अधि त्वा) रथ पर बैठनेवाले तेरी (कुवित् स्तोषत्) बहुत बार स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥

१ मे मनः अमतेः भिया वेपते— मेरा मन निर्बुद्धिताके भयसे कांपता है ।

[२८४] (ग्रावा इव) जैसे सोमपीसनेका पत्थर रस निकालता है, उसी तरह हे इन्द्र ! (एष जरिता) वह स्तोता (ते वाचं इयर्ति) तेरी स्तुति करता है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! (बृहत् आशुषाणः) बहुत धनको पासमें रखनेवाला तू (सव्येन दक्षिणित् रायः यंसि) बांये और दायें हाथोंसे धन देता है, हे (हरिवः) घोडोंसे युक्त इन्द्र ! (मा वि वेनः) तू हमें निराश न कर ॥ ४ ॥

[२८५] हे इन्द्र ! (वृषा द्यौः) बलवान् द्युलोक (वृषणं त्वा) बलवान् तुझे (वर्धतु) बढावे । (वृषा) बलवान् तू (वृषभ्यां हरिभ्यां) बलवान् घोडेके द्वारा (वहसे) ले जाया जाता है । हे (सु-शिप्र, वृषक्रतो वज्रिन्) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले, पराक्रम करनेवाले तथा वज्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (वृषा वृषरथः सः) बलवान् और बलवान् रथवाला वह तू (नः भरे धाः) हमें संग्राममें आधार दे, सहायता कर ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह इन्द्र अपने भक्तोंको धन देना जानता है । वह प्यासा सोम पीनेकी इच्छा करता हुआ दूध मिश्रित सोमको पीवे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार सोम पर्वतकी पीठपर रहता है, उसी तरह सोमरसकी पीठपर तेरे होठ रहें अर्थात् तू सोम पी । हम तुझे अपनी स्तुतियोंसे आनन्दित करते हुए स्वयं भी आनन्दित हों ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जिस प्रकार रथका पहिया चलते हुए कांपता है, उसी तरह निर्बुद्धि होनेके कारण मेरा मन बहुत कांपता है । इसीलिए मैं तेरी स्तुति करता हूँ । इन्द्रकी उपासना करनेसे मनकी शक्ति बढती है और वह दृढ होता है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! यह स्तोता अपने मुखसे स्तुतियोंको प्रकट करता है । तू दोनों रथोंसे धन देनेके लिए प्रसिद्ध है, इसलिए तू हमें भी खूब धन दे और हमें निराश मत कर ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! ये बलवान् द्युलोक तुझे बढावे । तथा तू हमें संग्राममें सहारा दे ॥ ५ ॥

२८६ यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान् त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ ॥

[३७]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

२८७ सं भानुना यतते सूर्यस्याऽऽजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान् य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥ १ ॥

२८८ समिद्धाग्निर्वनवत् स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २ ॥

२८९ वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद् रथ आ च घोषात् पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३ ॥

अर्थ— [२८६] (यः वाजिनीवान्) जिस बलवान् श्रुतरथने (सचमानौ रोहितौ वाजिनौ) साथ साथ चलनेवाले दो लाल घोडे (त्रिभिः शतैः) तथा तीन सौ गायें (अदिष्ट) मुझे दी। हे मरुतो ! (अस्मै यूने श्रुतरथाय) ऐसे इस तरुण श्रुतरथको (क्षितयः) प्रजायें (दुवोया नमन्तां) सेवाभावसे नमन करें ॥ ६ ॥

[३७]

[२८७] (सु-अंचाः आजुह्वानः घृतपृष्ठः) उत्तम गति करनेवाली तथा आहुतियोंसे प्रज्वलितकी गई अग्नि [की ज्वाला] (सूर्यस्य भानुना सं यतते) सूर्यके तेजसे स्पर्धा करती है। उस समय (यः) जो (इन्द्राय सुनवाम इति आह) इन्द्रके लिए सोम निचोडें ऐसा कहता है, (तस्मै) उसके लिए (अमृध्रः उषसः वि उच्छात्) सुखमय उषायें प्रकाशित हों ॥ १ ॥

[२८८] (समिद्धाग्निः स्तीर्णबर्हिः) अग्नि प्रज्वलित करके, आसन बिछाकर यजमान (वनवत्) अग्निकी सेवा करता है, तथा (युक्तग्रावा सुतसोमः) सोम कूटनेके पत्थरोंसे युक्त होकर तथा सोम तैय्यार करके यह यजमान (जराते) स्तुति करता है। (यस्य ग्रावाणः इषिरं वदन्ति) जिसके पत्थर शीघ्र शीघ्र शब्द करते हैं, वह (अध्वर्युः हविषा सिन्धुं अव अयत्) अध्वर्यु हविसे युक्त होकर सिन्धुकी तरफ यज्ञ करनेके लिए जाता है ॥ २ ॥

[२८९] (यः ईं इषिरां महिषीं वहाते) जिसने इस सुन्दर रानीको स्वीकार किया, (इयं वधूः) वह यह वधू (पतिं इच्छन्ती एति) पतिकी कामना करती हुई इधर ही आती है। (अस्य रथः आश्रवस्यात्) इस इन्द्रके रथकी कीर्ति चारों ओर फैले (च) और (घोषात्) उसका शब्द घोषित होवे और वह (पुरू सहस्रा परि वर्तयाते) बहुत हजारों प्रकार धनोंको चारों ओरसे हमारे पास लावे ॥ ३ ॥

भावार्थ— प्रसिद्ध रथवाला जो राजा ज्ञानीको घोडे और गायें देता है, उसके सैनिक उसकी सहायता करते हैं और प्रजायें उसके सामने नम्र रहती हैं, उस राजाके अनुकूल प्रजायें रहती हैं ॥ ६ ॥

आहुतियोंसे प्रज्वलित की गई तथा उत्तम प्रकारसे गति करनेवाली अग्निकी ज्वाला सूर्यके तेजसे स्पर्धा करती है। सूर्योदयके समय एक तरफ सूर्य उदय होता है, तो दूसरी तरफ यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है। तब मानों दोनोंकी किरणें परस्पर स्पर्धा करती हैं। ऐसे सूर्योदयके समय जो यज्ञमें सोम निचोडता है, उसके लिए उषायें सुख प्रदान करती हैं ॥ १ ॥

अग्नि प्रज्वलित करके यज्ञ करनेवाला अग्निकी सेवा करता है और उस यज्ञमें बैठकर सोम तैय्यार करता है ॥ २ ॥

शक्तिशाली मनुष्यका यश चारों ओर फैलता है और उसका नाम भी चारों ओर सुनाई देता है। तब उसके नाम और यशको सुनकर अनेक युवतियां उसे अपना पति बनाना चाहती हैं, और जिसकी वह अपनी रानी चुन लेता है, वह अपनेको धन्य मानकर उसकी कामना करती हुई उसके साथ आनन्दसे रहती है ॥ ३ ॥

२९० न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्र॒स्तीव्रं सोमं पिब॑ति गोस॑खायम् ।
आ सत्व॒नैरज॑ति हन्ति वृ॒त्रं क्षेति॑ क्षि॒तीः सु॒भगो॒ नाम॒ पुष्य॑न् ॥ ४ ॥

२९१ पुष्या॒त् क्षेमे॑ अ॒भि योगे॑ भवा॒त्यु॒भे वृतौ॑ सं॒यती॒ सं ज॑याति ।
प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वाति॒ य इन्द्रा॑य सु॒तसो॑मो॒ ददा॑शत् ॥ ५ ॥

[३८]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप् ।]

२९२ उ॒रोष्ट॑ इन्द्र॒ राध॑सो वि॒भ्वी रा॒तिः श॑तक्रतो ।
अधा॑ नो विश्वचर्षणे द्यु॒म्ना सु॑क्षत्र मंहय ॥ १ ॥

अर्थ— [२९०] (यस्मिन्) जिसके राज्यमें (इन्द्रः) इन्द्र (गोसखायं तीव्रं सोमं पिबति) गौ-दूधसे मिश्रित तीखे सोमको पीता है (सः राजा न व्यथते) वह राजा कभी दुःखी नहीं होता, वह (सत्वनैः अजति) अपनी शक्तियोंसे सर्वत्र विचरता है, (वृत्रं हन्ति) अपने शत्रुओंको मारता है (सुभगः नाम पुष्यन्) अपने सौभाग्य और यशको पुष्ट करता हुआ (क्षितीः) प्रजाओंको (क्षेति) शान्तिमय निवास कराता है ॥ ४ ॥

१ स राजा न व्यथते— वह राजा दुःखी नहीं होता।
२ सत्वनैः अजति— अपने बलोंके साथ घूमता है।
३ वृत्रं हन्ति— शत्रुको मारता है।
४ सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति— अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है।

[२९१] (यः इन्द्राय सुतसोमः ददाशत्) जो इन्द्रके लिए तैय्यार किया गया सोम देता है, वह (पुष्यात्) पुष्ट होता है, (क्षेमे योगे अभि भवाति) प्राप्त धनके रक्षणमें और अप्राप्त धनको प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, और (वृतौ) शुरु होनेपर (उभे सं जयाति) छोटे और बडे दोनों तरहके युद्धोंमें अच्छी तरह जय प्राप्त करता है, तथा वह (सूर्ये प्रियः भवाति) सूर्यके लिए प्रिय होता है और (अग्नौ प्रियः भवाति) अग्निके लिए प्रिय होता है ॥ ५ ॥

१ यः इन्द्राय सोमः ददाशत् पुष्यात्— जो इन्द्रके लिए सोम देता है, वह पुष्ट होता है।
२ योगे क्षेमे अभि भवाति— वह मनुष्य अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षण करनेमें समर्थ होता है।
३ सूर्ये अग्नौ प्रियः भवाति— वह सूर्य और अग्निके लिए प्रिय होता है।

[३८]

[२९२] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैंकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (उरोः ते) महान् तेरे (राधसः रातिः) धनके दान (विभ्वी) महान् हैं। (अध) इसलिए हे (विश्वचर्षणे सुक्षत्र) सबको देखनेवाले तथा उत्तम क्षात्र तेजवाले इन्द्र ! (नः द्युम्ना मंहय) हमें उत्तम तेजस्वी धन दे ॥ १ ॥

भावार्थ— जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता है, वह शक्तिसे युक्त होकर सर्वत्र विचरता हैं, वह अपने शत्रुओंको मारता और अपने सौभाग्य और यशको बढाता हुआ सुखपूर्वक निवास करता है। उसी तरह जिस राजाका सेनापति राष्ट्रमें आनन्दसे रहता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता, उसकी शक्ति बहुत बढ जाती है इसलिए वह अपने शत्रुओंका संहार करता है। उस राजाका सौभाग्य और यश बढता है और वह सुखसे निवास करता है ॥ ४ ॥

जो इन्द्रके लिए तैय्यार किया गया सोम देता है, वह पुष्ट होता है, वह प्राप्त धनके रक्षण और अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें समर्थ होता है। वह सभी तरहके संग्रामोंमें विजयी होता है और वह सूर्य तथा अग्निके लिए प्रिय होता है ॥ ५ ॥

२९३ यदीमिन्द्र श्रवाय्य॒मिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २ ॥
२९४ शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३ ॥
२९५ उतो नो अस्य कस्य चिद् दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरा॒ऽस्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४ ॥
२९६ नू त आभिरभिष्टिभि॒स्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ ॥

[३९]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पंक्तिः ।]

२९७ यदिन्द्र चित्र मेहना॒ऽस्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १ ॥

अर्थ— [२९३] हे (हिरण्यवर्ण) तेजस्वी वर्णवाले तथा (शविष्ठ इन्द्र) बलवान् इन्द्र ! तू (यत् ईं श्रवाय्यं इषं दधिषे) जो यह सुप्रसिद्ध यशको धारण करता है, वह तेरा (दुस्तरं दीर्घश्रुत्तमं) कठिनतासे पार करने योग्य तथा बहुत प्रसिद्ध यश (पप्रथे) फैल रहा है ॥ २ ॥

[२९४] हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (ये ते) जो तेरे (मेहना केतसापः शुष्मासः) उदार सर्वव्यापी और बलशाली देव हैं, (उभौ देवौ) वे और तू दोनों (दिवः च ग्मः च) द्युलोक और पृथिवी लोकके (अभिष्टये) उन्नतिके लिये (राजथः) शासन करते हो ॥ ३ ॥

[२९५] हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! तू (तव कस्य चित् दक्षस्य) अपने किसी भी बलकी सहायतासे (अस्य) इसके (नृम्णं) धनको (नः अस्मभ्यं आभर) हमें ही दे, क्योंकि तू (अस्मभ्यं नृमणस्यसे) हमें धनवान् करना चाहता है ॥ ४ ॥

[२९६] हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों शुभ कर्म करनेवाले इन्द्र ! (तव शर्मन्) तेरे आश्रयमें रहते हुए हम (आभिः अभिष्टिभिः) तेरे इन संरक्षणोंसे (सुगोपाः स्याम) अच्छी तरहसे सुरक्षित हों, हे शूर ! सुगोपाः स्याम) हम अच्छी तरह सुरक्षित हों ॥ ५ ॥

[३९]

[२९७] हे (अद्रिवः, चित्र, विदद्-वसो इन्द्र) शस्त्रधारी, विलक्षण सामर्थ्यवान् , तथा धनोंको प्राप्त करनेवाले इन्द्र ! (यत् मेहना त्वा दातं राधः अस्ति) जो पूजनीय तथा तेरे द्वारा दिया जानेवाला धन है, (तत्) उस धनको नः) हमें (उभया हस्त्या आ भर) दोनों हाथोंसे भरपूर दे ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अनेकों उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र ! तेरे दान बहुत बडे हैं । तू सर्वद्रष्टा है, उत्तम तेजवाला है, अतः हमें उत्तम तेजस्वी धन दे ॥ १ ॥

बलशाली इन्द्रका यश बहुत ही प्रसिद्ध, कठिनतासे पार किए जाने योग्य और बहुत ही विस्तृत है ॥ २ ॥

यह इन्द्र और इतर बलशाली देव मिलकर इस द्युलोक और पृथ्वीलोक पर शासन करते हैं ॥ ३ ॥

हे वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! अपने बलसे इस मनुष्यके धनको तू हमें प्रदान कर । हम जानते हैं कि तू हमें धनवान् करना चाहता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! तेरे आश्रयमें रहते हुए हम तेरे संरक्षणके साधनोंसे अच्छी तरह सुरक्षित हों । हम अच्छी तरह सुरक्षित रूपसे रहें ॥ ५ ॥

२९८ यन्मन्यसे वरेण्य—मिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वय—मकूपारस्य दावने ॥ २ ॥

२९९ यत् ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३ ॥

३०० मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४ ॥

३०१ अस्मा इत् काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ ॥

अर्थ — [२९८] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (यत्) जिस धनको तू (द्युक्षं वरेण्यं) तेजस्वी और ग्रहण करने योग्य (मन्यसे) मानता है, (तत् आ भर) उस धनको हमें दे। (ते वयं) तेरे हम (तस्य अकूपारस्य दावने) उस निस्सीम धनके दानमें (विद्याम) रहें ॥ २ ॥

[२९९] हे (अद्रिवः) शस्त्र धारण करनेवाले इन्द्र ! (यत् ते) जो तेरा (दित्सु प्रराध्यं) धन देनेकी इच्छावाला, स्तुत्य (श्रुतं बृहत् मनः अस्ति) प्रसिद्ध और उदार मन है, (तेन) उस मनसे (दृळ्हा चिद् वाजं) दृढसे दृढ शत्रुको तोड कर भी और अन्नको (सातये आ दर्षि) दान करनेके लिए हमें दे ॥ ३ ॥

[३००] (मघोनां मंहिष्ठं) धनवानोंमें अत्यन्त धनवान् (चर्षणीनां राजानं इन्द्रं) मनुष्योंके राजा इन्द्रकी (प्रशस्तये) प्रशंसाके लिए (गिरः) स्तोता (पूर्वीभिः जुजुषे) स्तुतियोंसे सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

[३०१] (अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिए ही (काव्यं वचः उक्थं शंस्यं) काव्य, स्तुतियां और स्तोत्र कहने योग्य हैं। (तस्मै ब्रह्मवाहसे) उसी स्तुतिको प्राप्त करानेवाले इन्द्रके यशको (अत्रयः गिरः वर्धन्ति) अत्रि ऋषिगण स्तुतियोंसे बढाते हैं (अत्रयः गिरः शुम्भन्ति) अत्रि ऋषि स्तुतियोंसे उसके यशको तेजस्वी करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तेरे द्वारा दिया जानेवाला धन बहुत ही पूज्य है। उस धनको तू हमें दे और दोनों हाथोंसे दे ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! जिस धनको तू तेजस्वी और ग्रहण करने योग्य समझता है, वही धन तू हमें दे। हम भी तेरे उस अपार धनके आश्रयमें रहें ॥ २ ॥

इन्द्रका मन बहुत ही उदार, स्तुत्य और अपने भक्तोंको सम्पत्ति देनेकी इच्छा करनेवाला है। अत तू हमारे मनको भी दृढ और उदार बना ॥ ३ ॥

यह इन्द्र मनुष्योंका राजा है, और धनवानोंमें भी अत्यन्त धनवान् है इसीलिए सब मनुष्य इन्द्रकी स्तुतियोंसे सेवा करते हैं ॥ ४ ॥

यही इन्द्र स्तुतिके योग्य है। इन्द्रके यशका सभी ऋषि वर्णन करते हैं और वे ऋषि भी इन्द्रके तेजको प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥

×

[४०]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्रः, ५ सूर्यः, ६-९ अत्रिः । छन्दः- १-३ उष्णिक्; ५, ९ अनुष्टुप्, ४, ६-८ त्रिष्टुप् ।]

३०२ आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १ ॥

३०३ वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २ ॥

३०४ वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः । वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३ ॥

३०५ ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४ ॥

३०६ यत् त्वा सूर्य स्वर्भानु- स्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ ॥

---

[४०]

अर्थ— [३०२] हे (वृत्रहन्तम वृषन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले, बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभिः आ याहि) बलवान् घोडोंसे आ और हे (सोमपते) सोमके स्वामी इन्द्र ! (अद्रिभिः सुतं सोमं पिब) पत्थरोंसे कूट कर निचोडे गए इस सोमको पी ॥ १ ॥

[३०३] (ग्रावा वृषा) पत्थर मजबूत हैं, (अयं सुतः सोमः वृषा) यह निचोडा गया सोम भी बलदायक है, और इसका (मदः वृषा) आनन्द भी बलदायक है, अतः हे (वृत्रहन्तम वृषन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभिः) बलवान् घोडोंसे आ और सोम पी ॥ २ ॥

[३०४] हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (वृषा) बलवान् मैं (चित्राभिः ऊतिभिः) अनेक तरहके रक्षणके साधनोंसे युक्त (त्वा वृषणं) तुझ बलवान्को (हुवे) बुलाता हूँ । हे (वृत्रहन्तम् वृषन् इन्द्र) वृत्रको मारनेवाले बलवान् इन्द्र ! तू (वृषभिः) बलवान् घोडोंसे आ ॥ ३ ॥

[३०५] (ऋजीषी) सोम पासमें रखनेवाला, (वज्री) वज्रधारी (वृषभः तुराषाट्) बलवान्, शत्रुओंका त्वरासे हिंसक (शुष्मी राजा) बलवान्, तेजस्वी (वृत्रहा सोमपावा) वृत्रको मारनेवाला, सोम पीनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (हरिभ्यां युक्त्वा अर्वाङ् उपयासद्) घोडोंको रथमें जोडकर हमारे पास आवे और (माध्यंदिने सवने मत्सत्) माध्यंदिनसवनमें आनन्दित हो ॥ ४ ॥

[३०६] हे (सूर्य) सूर्य ! (यत्) जब (त्वा) तुझे (आसुरः स्वर्भानुः) स्वर्भानु नामक असुरने (तमसा अविध्यत्) अन्धकारसे ढक लिया, तब (यथा अक्षेत्रवित् मुग्धः) जैसे अपने स्थानको न जाननेवाला मनुष्य मोहित हो जाता है, भटक जाता है, उसी तरह (भुवनानि अदीधयुः) सभी लोक मोहित हो गए ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे वृत्रहन्ता और बलशाली इन्द्र ! तू बलवान् घोडोंसे आ और अच्छी तरह निचोडे गए इस सोमको पी ॥ १ ॥

सोमका रस पिये जानेपर बल देनेवाला है और आनन्द भी देनेवाला है। अतः, हे इन्द्र ! तू बलशाली घोडों पर बैठकर आ और सोम पी ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! तू अनेक तरहके संरक्षणके साधनोंसे युक्त है, इसलिए मैं तुझ बलवान्को बुलाता हूँ। तू बलवान् घोडों- वाले रथ पर बैठकर आ ॥ ३ ॥

सोमको पीनेवाला, वज्रधारण करनेवाला, बलवान्, शत्रुओंका संहारक बलवान् और तेजस्वी इन्द्र घोडोंके रथमें बैठकर हमारे पास आवे और सोम पीकर आनन्दित हो ॥ ४ ॥

३०७ स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६ ॥

३०८ मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधा—स्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७ ॥

३०९ ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान् नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात् स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८ ॥

३१० यं वै सूर्यं स्वर्भानु—स्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ ॥

अर्थ—[३०७] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (अध) इसके बाद (यत्) जब तूने (स्वर्भानोः) स्वर्भानु असुरके (दिवः अव वर्तमानाः) द्युलोकके नीचे विद्यमान् (मायाः) मायाओंको (अवाहन्) दूर किया, तब (अपव्रतेन तमसा) प्रकाश करने रूप कर्मसे भ्रष्ट करनेवाले अन्धकारसे (गूळहं सूर्यं) छिपे हुए सूर्यको (अत्रिः) अत्रिने (तुरीयेण ब्रह्मणा) अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानसे (अविन्दत्) प्राप्त किया ॥ ६ ॥

[३०८] हे (अत्रे) अत्रि ऋषि ! (तव) तुम्हारे विद्यमान रहते (इमं मां) इस मुझे यह (द्रुग्धः) द्रोह करनेवाला दुष्ट असुर (इरस्या) भूखके कारण अथवा (भियसा) डरसे (मा नि गारीत्) निगल न जाए । (त्वं सत्यराधः मित्रः असि) तू सच्चे ऐश्वर्यसे युक्त मित्र है । तू (च) तथा (राजा वरुणः) तेजस्वी वरुण (तौ) वे दोनों मिलकर (इह मा अवतं) यहां मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

[३०९] तब (ब्रह्मा अत्रिः) ज्ञानी अत्रिने (ग्राव्णः युयुजानः) पत्थरोंको परस्पर संयुक्त करते हुए, (कीरिणा देवान् सपर्यन्) स्तोत्रसे देवोंकी पूजा अर्चा करते हुए, तथा (नमसा उप शिक्षन्) हविसे या नम्रतासे उन देवोंको प्रसन्न करते हुए (दिवि) द्युलोकमें (सूर्यस्य चक्षुः आधात्) सूर्यके मण्डलको स्थापित किया और (स्वर्भानोः मायाः अप अघुक्षत्) स्वर्भानुकी मायाको दूर किया ॥ ८ ॥

[३१०] (यं वै सूर्यं) जिस सूर्यको (आसुरः स्वर्भानुः) असुर स्वर्भानुने (तमसा आविध्यत्) अन्धकारसे ढक दिया था, (तं) उस सूर्यको (अत्रयः अनु अविन्दन्) अत्रियोंने प्राप्त किया, (अन्ये नहि अशक्नुवन्) दूसरे उसे प्राप्त नहीं कर सके ॥ ९ ॥

भावार्थ— जब स्वर्भानु नामक असुरने सूर्यको अन्धकारसे ढक दिया, तब सारा संसार अन्धकारसे घिर गया, उस समय सूर्यदर्शन न होनेके कारण सारे भुवन भ्रान्तसे हो गए । जिस तरह अपने गमन स्थानको न जाननेवाला मनुष्य भटक जानेके कारण भ्रान्त और मोहित सा हो जाता है, उसी तरह अन्धकारसे आवृत्त सारे भुवन भ्रान्त और मोहितसे हो गए ॥ ५ ॥

जब सूर्यको आच्छादित करनेवाले स्वर्भानुके माया भरे अन्धकारने ढक लिया, तब सूर्य लोकोंको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हो गया, इस प्रकार स्वर्भानुने सूर्यको अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट कर दिया, तब इन्द्रने उसकी सहायता और उस अन्धकारको दूर किया । तब ज्ञानी विद्वान्ने अपने श्रेष्ठतम ज्ञानकी सहायतासे यही समझा कि सूर्य तो अन्धकारसे ढक गया था, जो अब निकल आया है ॥ ६ ॥

इस मंत्रमें सूर्य कहता है हे ज्ञानी ! तुम्हारे यहां रहते हुए वह दुष्ट स्वर्भानु असुर भूखसे अथवा भयसे मुझे निगल न डाले । तुम मुझसे स्नेह करते हो, तुम हितकारी हो, इसलिए तुम और राजा वरुण दोनों मिलकर मेरी रक्षा करो ॥ ७ ॥

पूर्व मंत्रमें सूर्यके द्वाराकी गई प्रार्थनाको सुनकर ज्ञानी मनुष्यने सोम पीसनेवाले पत्थरोंको सोम पीसनेके लिए आपसमें संयुक्त किया, अर्थात् यज्ञ प्रारंभ किया, उस यज्ञमें देवोंकी स्तुति की, उन्हें हवियां प्रदान कीं, तब द्युलोकमें विद्यमान स्वर्भानु असुरकी मायाको अर्थात् अन्धकारको दूर किया और सूर्यके मण्डलको प्रकाश करनेके लिए अन्धकारसे मुक्त किया ॥ ८ ॥

[४१]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १६-१७ अतिजगती, २० एकपदा विराट् ।]

३११ को नु वां मित्रावरुणावृतायन् दिवो वा मुहः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १ ॥
३१२ ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायु-रिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्तिं स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥ २ ॥
३१३ आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन् रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३ ॥
३१४ प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४ ॥

अर्थ— [३११] हे (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण ! (कः नु वां ऋतायन्) तुम्हारी पूजा कौन कर सकता है ? तुम (दिवः) द्युलोकसे (महः पार्थिवस्य) महान् पृथ्वीके स्थानसे (वा) अथवा (ऋतस्य सदसि) जलके स्थान अन्तरिक्षके स्थानसे (नः त्रासीथां) हमारी रक्षा करो, तथा (यज्ञायते) यज्ञ करनेवाले हमें (पशुषः वाजान्) पशुओंके अन्दर रहनेवाले बलोंको प्रदान करो ॥ १ ॥

[३१२] (ये मीळ्हुषे रुद्राय सजोषाः) जो सुखदायक रुद्रके साथ मिलजुलकर (नमोभिः सुवृक्तिं स्तोमं) नम्रता पूर्वक बोले गए स्तोत्रको (दधते) धारण करते हैं, (ते) वे (मित्रः वरुणः अर्यमा आयुः इन्द्रः ऋभुक्षा मरुतः नः जुषन्तु) मित्र, वरुण, अर्यमा वायु, इन्द्र, ऋभुक्षा और मरुत हमारी इस स्तुतिको सुनें ॥ २ ॥

[३१३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वातस्य पत्मन्) जहां हवाके समान घोडे दौडते हैं, ऐसी जगह तथा (रथस्य पुष्टौ) रथको मजबूत करनेवाली जगहमें (येष्ठा वां) सबको नियंत्रणमें रखनेवाले तुम्हें (हुवध्यै) मैं बुलाता हूँ । (उत वा) और (दिवः यज्यवे असुराय) तेजस्वी, पूज्य और प्राणदाता रुद्रके लिए, हे मनुष्यो ! (अन्धांसि इव) अन्नोंके समान (मन्म भरध्वं) स्तोत्रोंका कहो ॥ ३ ॥

[३१४] (सक्षणः) शत्रुओंके आक्रमणको सहनेवाला, (दिव्यः कण्व होता) तेजस्वी ज्ञानी होता (त्रितः दिवः) तीनों लोकोंको व्यापनेवाला सूर्य तथा (सजोषाः वातः अग्निः) एक साथ रहनेवाला वायु अग्नि (पूषा भगः) पूषादेव और भग तथा (प्रभृथे विश्वभोजाः) यज्ञमें सब कुछ भक्षण करनेवाले (आश्वश्वतमाः) शीघ्र दौडनेवाले श्रेष्ठ घोडोंसे युक्त देव (आजिं न जग्मुः) युद्धमें जाते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— जिस सूर्यको स्वर्भानुने अन्धकारसे ढक दिया, उसे ज्ञानियोंने जान लिया कि यह तो अन्धकारने सूर्यको ढक लिया है दूसरे साधारण मनुष्य तो यही समझते थे कि सूर्यको राहुने निगल लिया है। वस्तुतः सूर्यको राहु निगलता नहीं, अपितु उसे अन्धकार ढक देता है। इस सच्चाईको ज्ञानी ही जाने सके, दूसरे साधारण बुद्धिके मनुष्य नहीं ॥ ९ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों इतने विशाल और महान् हो कि तुम दोनोंके गुणोंकी पूजा पूरी तरह कौन कर सकता है ? द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्षसे तुम दोनों हमारी रक्षा करो और यज्ञ करनेवाले हमें हर तरहके बल प्रदान करो ॥ १ ॥

सभी देव साथ साथ मिलकर रहते हैं और वे नम्रतापूर्वक बोली गई स्तुतिको ही सुनते हैं। वे सभी हमारी स्तुतियोंको सुनें ॥ २ ॥

जहां घोडे तेज दौडते हैं और रथ भी दृढ होते हैं, ऐसे युद्धमें हम सब पर शासन करनेवाले अश्विदेवोंको बुलाते हैं। हे मनुष्यो ! तुम तेजस्वी, पूज्य और प्राणदाता रुद्रके लिए उत्तम स्तोत्रोंको कहो ॥ ३ ॥

३१५ प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥ ५ ॥
३१६ प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः ।
इषुध्यव ऋतसापः पुरंधी र्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः ॥ ६ ॥
३१७ उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः ।
उषासानक्ता विदुषीव विश्व मा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम् ॥ ७ ॥
३१८ अभि वो अर्चे पोष्यावतो नॄन् वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः ।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभि र्वनस्पतीरोषधी राय एषे ॥ ८ ॥

अर्थ— [३१५] हे (मरुतः) मरुतो ! (वः) तुम (युक्ताश्वं रयिं) घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको (भरध्वं) भरपूर प्रदान करो। (रायः एषे) धनकी प्राप्ति और (अवसे) रक्षाके लिए (धीः दधीत) मनुष्य उत्तम बुद्धि धारण करे। हे मरुतो (तुराणां वः ये अश्वाः) शीघ्रता करनेवाले तुम्हारे जो घोडे हैं, उन (एवैः) घोडोंसे (औशिजस्य होता) औशिजका होता (सुशेवः) सुखी हो ॥ ५ ॥

[३१६] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (अर्कैः) अपनी स्तुतियोंसे (देवं विप्रं पनितारं वायुं) तेजस्वी, ज्ञानी, स्तुतिके योग्य वायु देवको (रथयुजं कृणुध्वं) रथसे संयुक्त करो। (इषुध्यवः ऋतसापः) शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवाली, धर्म कार्य करनेवाली, (वस्वीः पत्नीः) धनैश्वर्यसे भरपूर तथा पालन करनेवाली शक्तियां (धिये) कर्मको पूरा करनेके लिए (नः अत्र पुरन्धीः आ धुः) हमें यहां उत्तम बुद्धियोंको प्रदान करें ॥ ६ ॥

[३१७] हे (उषासानक्ता) दिन और रात ! तुम दोनों (यह्वी) बहुत बडी हो। (शूषैः चितयद्भिः अर्कैः) सुखकर और ज्ञान युक्त स्तोत्रोंसे हम (वन्द्येभिः वः) वन्दनीय देवोंके साथ रहनेवाले तुम्हें (दिवः उप प्र एषे) द्युलोकसे हवि पहुंचाता हूँ। तुम दोनों (विदुषी इव) विदुषियोंके समान, (मर्त्याय) मनुष्यको (विश्वं यज्ञं) सभी तरहके यज्ञकी तरफ (आ वहतः) प्रेरित करते हो ॥ ७ ॥

[३१८] मैं (वः अभि) तुम्हारे लिए (नॄन् पोष्यावतः) मनुष्योंको पुष्ट करनेवाले (वास्तोष्पतिं त्वष्टारं) वास्तोष्पति और त्वष्टाको (रराणः) प्रसन्न करते हुए (अर्चे) पूजा करता हूँ। तथा (रायः एषे) धनकी प्राप्तिके लिए (धन्या) धन प्रदान करनेवाली तथा (सजोषाः) आनन्ददायक (धिषणा) वाग्देवता (वनस्पतीन्) वनस्पतियों और (ओषधीः) ओषधियोंको (नमोभिः) नमस्कारोंसे प्रसन्न करता हूँ ॥ ८ ॥

भावार्थ— शत्रुओंके आक्रमणको सहनेवाला तेजस्वी ज्ञानी होता, तीनों लोकोंको व्यापनेवाला सूर्य तथा वायु और अग्नि, पूषा और भग तथा अन्य भी देव युद्धमें अपने भक्तोंकी सहायता करनेके लिए जाते हैं ॥ ४ ॥

हे मरुतो ! तुम घोडोंसे युक्त ऐश्वर्यको भरपूर प्रदान करो। धन और रक्षाकी प्राप्तिके लिए मनुष्य उत्तम बुद्धि धारण करे। हे मरुतो ! शीघ्रतासे काम करनेवाले तुम्हारे जो घोडे हैं, उन घोडोंसे औशिजका होता सुखी हो ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! अपनी स्तुतियोंसे तेजस्वी, ज्ञानी और स्तुतिके योग्य वायुको रथसे युक्त करो। शीघ्रतासे सर्वत्र जानेवाली, धर्म कार्य करनेवाली, धनैश्वर्यसे भरपूर तथा पालन करनेवाली शक्तियां कर्मको पूरा करनेके लिए हमें उत्तम बुद्धि प्रदान करें ॥ ६ ॥

हे दिन और रात ! तुम बहुत बडी हो। हम सुखकर और ज्ञानयुक्त स्तोत्रोंसे तुम्हें हवि पहुंचाते हैं। तुम दोनों संसारके सभी पदार्थोंको जानती हो और मनुष्यको सभी तरहके यज्ञकी तरह प्रेरित करती हो ॥ ७ ॥

मैं मनुष्योंका हित करनेके लिए सबका पोषण करनेवाले वास्तोष्पति और त्वष्टाको प्रसन्न करते हुए उनकी पूजा करता हूँ। धनकी प्राप्तिके लिए मैं धन और आनन्द देनेवाली वाग्देवता, वनस्पति और ओषधीकी स्तुति करता हूँ ॥ ८ ॥

३१९ तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥ ९ ॥
३२० वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥ १० ॥
३२१ कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥ ११ ॥
३२२ शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२ ॥

अर्थ— [३१९] (ये वसवः न वीरः) जो वसुओंके समान वीर (स्व एतवः) अपनी इच्छाके अनुसार जानेवाले (पर्वताः) मेघ हैं, वे (नः तने तुजे) हमारे विस्तृत दानमें सहायक हों। (नः पनितः आप्त्यः) हमारे द्वारा स्तुत्य, ज्ञानी, (यजतः) पूज्य तथा (नर्यः) मनुष्योंका हित करनेवाला देव (अभिष्टौ नः शंसं वर्धात्) यज्ञमें हमारे स्तोत्रोंको बढावे ॥ ९ ॥

[३२०] (भूम्यस्य वृष्णः) भूमिको सींचनेवाले मेघके (गर्भे) अन्दर रहनेवाले (अपां नपातं) जलोंको गिरानेवाले अग्निकी (सुवृक्ति) उत्तम स्तोत्रोंसे (अस्तोषि) स्तुति मैंने की। (त्रितः) तीनों लोकोंमें व्यापक वह (अग्निः) अग्नि (एतरि) जाते हुए अपने (शूषैः) सुखदायक किरणोंसे मुझे (न गृणीते) कष्ट नहीं देता। अपितु (शोचिष्केशः) प्रदीप्त ज्वालाओं रूपी बालों वाला वह अग्नि (वना नि रिणाति) वनोंको जलाता है ॥ १० ॥

[३२१] हम (महे रुद्रियाय) महान् रुद्रके पुत्र मरुतों की (कथा ब्रवाम) किस प्रकार स्तुति करें? (राये) धनप्राप्तिके लिए (चिकितुषे भगाय) ज्ञानवान् भग देवके लिए (कत्) किस तरहकी स्तुतिका उच्चारण करें? (आपः ओषधीः) जल, ओषधी, (द्यौः वना वृक्षकेशाः गिरयः) द्यु, वन और वृक्षरूपी बालोंवाले पहाड़ (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

[३२२] (नभः तरीयान्) आकाशमें संचार करनेवाला (इषिरः) सब जगह जानेवाला (परिज्मा) पृथ्वीके चारों ओर घूमनेवाला (ऊर्जां पतिः) बलोंका स्वामी वायु (नः गिरः शृणोतु) हमारी स्तुतिको सुने। तथा (पुरः न शुभ्राः) स्फटिकके समान निर्मल तथा (बबृहाणस्य अद्रे परि स्रुचः) विशाल पर्वतके चारों ओरसे निकालनेवाला (आपः) जल (शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुने ॥ १२ ॥

भावार्थ — वसुओंके समान वीर और सब जगह अपनी इच्छानुसार जानेवाले मेघ हमें बहुत दान दें। तथा स्तुतिके योग्य, पूज्य और मनुष्योंका हित करनेवाला देव यज्ञमें हमारी स्तुतियोंको बढावे ॥ ९ ॥

भूमिको सींचनेवाले मेघके अन्दर रहनेवाले तथा जलोंको न गिरानेवाले अग्निकी मैंने उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति की। वह अग्नि चलते हुए अपनी सुखदायक किरणोंसे मुझे कभी कष्ट नहीं देता, अपितु वह वनोंकोही जलाता है ॥ १० ॥

हम महान् रुद्रके पुत्र मरुतोंकी किस तरहकी स्तुति करें? तथा भगवान् भगकी किस तरहकी स्तुति करें ताकि हमें धन मिले? जल, ओषधीः, द्यु, वन और वृक्ष ही जिनके बालोंके समान हैं ऐसे पहाड हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

आकाशमें संचार करनेवाला सब जगह जानेवाला तथा पृथ्वीके चारों ओर घूमनेवाला बलोंका स्वामी वायु हमारी स्तुतिको सुने, उसीप्रकार स्फटिकके समान निर्मल तथा विशाल पहाडके चारों ओर घूमनेवाले जल हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १२ ॥

३२३ विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१ आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥ १३ ॥
३२४ आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मा ऽपश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥ १४ ॥
३२५ पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत् सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥ १५ ॥
३२६ कथा दाशेम नमसा सुदानू नेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धा दस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६ ॥

अर्थ— [३२३] हे (महान्तः) महान् मरुतो ! (वः ये एवाः) तुम्हारी उपासनाके जो मार्ग हैं, उन्हें हम (विद् चित्) जानते ही हैं। हे (दस्माः) सुन्दर मरुतो ! (वार्यं दधानाः) वरण करने योग्य ऐश्वर्यको धारण करते हुए हम (ब्रवामा) तुम्हारी स्तुति करते हैं। (वयः चन) अन्नको धारण करनेवाले ये मरुत् (क्षुभा अनुयतं मर्तं) क्षुब्ध होकर चले आनेवाले शत्रु मनुष्यको (वधस्नैः) शस्त्रास्त्रोंसे मार कर (सुभ्वः) अच्छी तरह वृद्धिको प्राप्त होकर (आ अव यन्ति) हमारी तरफ आते हैं ॥ १३ ॥

[३२४] (दैव्यानि पार्थिवानि जन्म) मैं द्युलोक और पृथ्वीलोकसे उत्पन्न हुए (आपः) जलोंकी (सुमखाय) यज्ञको उत्तम रीतिसे पूरा करनेके लिए (अच्छ आ वोचं) अच्छी तरह स्तुति करता हूँ। (द्यावः चन्द्राग्राः) चमकनेवाले चन्द्र आदि ग्रह (गिरः वर्धन्तां) हमारी स्तुतियोंको बढायें तथा (अभिषाताः अर्णाः) जलसे भरी हुई नदियां (उदा वर्धन्तां) जलसे हमारी उन्नति करें ॥ १४ ॥

[३२५] (पदे पदे) पद पदमें (मे जरिमा) मेरी स्तुति (निधायि) निहित है। (वा) और (या शक्रा) जो शक्ति है, वह (पायुभिः) अपनी सुरक्षाके साधनोंसे (वरूत्री) हमारी रक्षा करनेवाली हो। (सूरिभिः) विद्वानोंसे स्तुत यह (ऋजुहस्ता) सरल हाथोंवाली, (ऋजुवनिः) कल्याणकारक दानोंसे युक्त (महता मही) माता भूमि (रसा) अपने रसोंसे (नः सिषक्तु) हमें सींचे ॥ १५ ॥

[३२६] हम (सुदानून्) उत्तम दान देनेवाले मरुतोंको (नमसा कथा दाशेम) नम्रतापूर्वक किसतरह हवि दें ? (एवया मरुतः अच्छ उक्तौ) ऐसे स्तोत्र बोलकर भी हम मरुतोंकी सेवा किस तरह करें ? (प्रश्रवसः मरुतः अच्छ उक्तौ) हवि देकर भी इन मरुतोंकी सेवा किसतरह करें ? (अहिर्बुध्न्यः) अहिर्बुध्न्य देव (नः रिषे मा धात्) हमें हिंसकोंके अधिकारमें न दे अपितु वह (अस्माकं उपमातिवनिः भूत्) हमारे शत्रुओंका नाश करनेवाला हो ॥१५॥

भावार्थ— हे मरुतो ! तुम्हारी उपासनाके जो मार्ग हैं, उन्हें हम जानते हैं, इसलिए उत्तम ऐश्वर्यको धारण करके हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। अन्नको धारण करनेवाले ये मरुत् शत्रुओंका संहार करते हुए हमारी ओर आवें ॥ १३ ॥

द्यु और पृथ्वीसे उत्पन्न हुए जलोंकी मैं स्तुति करता हूँ। चमकनेवाले चन्द्र आदि ग्रह हमारी स्तुतियोंको बढायें, तथा जलसे भरी हुई नदियां अपने जलसे हमारी उन्नति करें ॥ १४ ॥

स्थान स्थान पर मेरी स्तुतियां निहित हैं। जो शक्ति है, वह अपने संरक्षणके साधनोंसे हमारी रक्षा करे। विद्वानोंसे प्रशंसित तथा कल्याण कारक दानोंको देनेवाली वह माता भूमि अपने रसोंसे हमें सींचे ॥ १५ ॥

उत्तम दान देनेवाले मरुतोंकी हम किसतरह स्तुति करें, या उन्हें किसतरह हवि दें कि वे खुश हो जाएं ? अहिर्बुध्न्य देव भी हमें शत्रुओंके अधीन न करें अपितु वह हमारे शत्रुओंका नाश ही करे ॥ १६ ॥

३२७ इति॑ चि॒न्नु प्र॒जायै॑ पशु॒मत्यै॒ देवा॑सो॒ वन॑ते॒ मर्त्यो॑ व॒ आ दे॑वासो वनते॒ मर्त्यो॑ वः ।
अत्रा॑ शि॒वां त॒न्वो॑ धा॒सिम॒स्या ज॒रां चि॑न्मे॒ निर्ऋ॑तिर्जग्रसीत ॥ १७ ॥

३२८ तां वो॑ देवाः सुम॒तिमू॒र्जय॑न्ती॒मिष॑मश्याम वसवः॒ शसा॒ गोः ।
सा नः॑ सु॒दानु॑र्मृ॒ळय॑न्ती दे॒वी प्रति॒ द्रव॑न्ती सुवि॒ताय॑ गम्याः ॥ १८ ॥

३२९ अ॒भि न॒ इळा॑ यू॒थस्य॑ मा॒ता स्मन्न॒दीभि॑रु॒र्वशी॑ वा गृणातु ।
उ॒र्वशी॑ वा बृहद्दि॒वा गृ॑णा॒नाऽभ्यू॒र्ण्वा॒ना प्र॑भृ॒थस्या॒योः ॥ १९ ॥

३३० सिष॑क्तु न ऊ॒र्जव्य॑स्य पु॒ष्टेः ॥ २० ॥

अर्थ— [३२७] हे (देवासः) देवो ! (मर्त्यः) यह मनुष्य (प्रजायै पशुमत्यै) प्रजाकी और पशुओंकी प्राप्तिके लिए (वः वनते) तुम्हारी सेवा करता है। हे (देवासः) देवो ! (मर्त्यः) मनुष्य (वः वनते) तुम्हारी उपासना करता है। (अस्याः तन्वः) मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए (अत्र शिवां धासिं) यहां इस संसारमें कल्याणकारी अन्न प्रदान करें। (निर्ऋतिः चित्) निर्ऋति तो (मे जरां जग्रसीत) मेरे बुढापेको ही निगले ।

१ अस्याः तन्वः शिवां धासिं— देवगण मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए कल्याणकारी अन्नको प्रदान करें।
२ निर्ऋतिः मे जरां जग्रसीत— बुरी अवस्था मेरे बुढापेको ही निगले।

[३२८] हे (वसवः देवाः) सबको निवास करानेवाले देवो ! हम (शसा) अपनी स्तुतिके कारण (गोः) गायके पाससे (वः) तुम्हारे (तां सुमतिं ऊर्जयन्तीं) उस उत्तम बुद्धि और बल देनेवाले (इषं अश्याम) अन्नको प्राप्त करें। (सा देवी) वह दिव्य गुणोंवाली गाय (नः सुविताय गम्याः) हमें सुख प्रदान करनेके लिए आवे, तथा (सुदानुः मृळयन्ती) वह उत्तम दानवाली गौ हमें सुख देती हुई (प्रति द्रवन्ती) हमारी तरफ आवे ॥ १८ ॥

[३२९] (यूथस्य माता) पशुओंके समूहको पुष्ट करनेवाली (उर्वशी) विशाल क्षेत्रोंवाली (नः इळा) हमारी भूमि (नदीभिः अभि गृणातु) नदियोंके द्वारा गर्जना करे। (बृहद्दिवा उर्वशी) अत्यन्त तेजस्वी और विस्तृत क्षेत्रोंवाली भूमि (गृणाना) प्रशंसित होती हुई और (अभि ऊर्ण्वाना) चारों ओरसे व्याप्त करती हुई (आयोः प्रभृथस्य) मनुष्यके द्वारा दी गई आहुतिको स्वीकार करे ॥ १९ ॥

[३३०] (ऊर्जव्यस्य पुष्टेः) बल और पोषणके लिए (नः सिषक्तुः) देव हमारी प्रार्थना सुने ॥ २० ॥

भावार्थ— देवो ! यह मनुष्य सन्तान और पशुओंकी प्राप्तिके लिए तुम्हारी सेवा करता है। हे देवो ! तुम मेरे शरीरकी पुष्टिके लिए उत्तम और कल्याणकारी अन्न दो। यदि निर्ऋति अर्थात् बुरी अवस्थाका अधिष्ठाता देव मेरे जीवनमेंसे किसी वस्तुको खाना चाहे तो वह मेरे बुढापेको ही खाए। मेरे तारुण्यको नहीं। मैं कभी बूढा न होऊं ॥ १७ ॥

हम अपनी स्तुतिके कारण गायसे उत्तम बुद्धि और बल देनेवाले अन्नको प्राप्त करें। गायका दूध बुद्धि और बलको बढानेवाला होता है। गाय हर तरहका सुख प्रदान करनेवाली, उत्तम दान देनेवाली होकर हमारी ओर आवे ॥ १८ ॥

पशुओंके समूहको पुष्ट करनेवाली तथा विशाल क्षेत्रोंवाली भूमि नदियोंके द्वारा गर्जना करे। इस भूमि पर नदियां जलसे भरपूर होकर बहें। तब इसके ऊपर अन्न भरपूर उगे, उस अन्नके द्वारा मनुष्य यज्ञ करें और उस यज्ञमें जो हवियां दी जाएं, उनसे माता भूमि तृप्त हो ॥ १९ ॥

देव हमारी प्रार्थना सुने और हमें बल तथा पोषण प्रदान करे ॥ २० ॥

[४२]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः, ११ रुद्रः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १७ एकपदा विराट् ।]

३३१ प्र शंतमा वरुणं दीधिती गी- र्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्व- तूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १ ॥

३३२ प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात् सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्य- हं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २ ॥

३३३ उदीरय कवितमं कवीना- मुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३ ॥

३३४ समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४ ॥

---

[४२]

अर्थ— [३३१] हमारी (शंतमा गीः , सुखकारक स्तुति तथा (दीधिती) कर्म (वरुणं मित्रं भगं अदितिं) वरुण, मित्र, भग और अदितिको (नूनं अश्याः) निश्चयसे प्राप्त हो (पृषद्योनिः) अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाला (पंच होता) पांच प्राणोंका आधार (अतूर्तपन्थाः) अप्रतिहत गतिवाला (असुरः) बलदाता तथा (मयोभुः) सुखदाता वायु (शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने ॥ १ ॥

[३३२] (माता सूनुं न) जिस तरह एक माता अपने पुत्रको बडे ही प्रेमसे अपनाती है, उसीतरह (अदितिः) अदिति देवी (मे इमं हृद्यं सुशेवं स्तोमं) मेरे इस आनन्ददायक स्तोत्रको (प्रति जगृभ्यात्) स्वीकार करे । (यत् देवहितं प्रियं ब्रह्म) जो देवोंके लिए हितकारी और प्रिय स्तोत्र है, और (यत् मयोभु अस्ति) जो सुखकारक है, उसे (अहं) मैं (मित्रे वरुणे) मित्र और वरुणके लिए समर्पित करता हूँ ॥ २ ॥

[३३३] (कवीनां कवितमं) ज्ञानियोंमें भी श्रेष्ठ इस इस देवको (उत् ईरय) हर्षित करो । (एनं मध्वा घृतेन) इस देवको मधु और घीसे (अभि उनत्त) सींचो-तृप्त करो । (सः सविता) वह सविता देव (नः) हमें (प्रयता) प्रयत्नसे मिलनेवाले (हितानि चन्द्राणि) हित करनेवाले, चमकनेवाले अथवा प्रसन्नता देनेवाले (वसूनि) धनोंको (सुवाति) प्रदान करता है ॥ ३ ॥

[३३४] हे (इन्द्र) इन्द्र ! (नः) हमें (सं मनसा) उत्तम मनसे युक्त होकर (गोभिः नेषि) गायोंसे संयुक्त कर, हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले (सूरिभिः सं) विद्वानोंसे युक्त कर (स्वस्ति सं) कल्याणसे युक्त कर, (देवहितं यत् अस्ति) देवोंका कल्याण करनेवाला जो ज्ञान है, उस (ब्रह्मणा सं) ज्ञानसे हमें संयुक्त कर, तथा (यज्ञियानां देवानां) पूजाके योग्य देवोंकी (सुमत्या) उत्तम बुद्धिसे (सं) हमें संयुक्त कर ॥ ४ ॥

१ सं मनसा गोभिः नेषि — हे इन्द्र ! तू उत्तम मनसे युक्त होकर हमें गायें प्रदान कर ।

२ सूरिभिः, देवहितं ब्रह्मणा, यज्ञियानां देवानां सुमत्या सं — विद्वानों, देवोंके लिए कल्याणकारक ज्ञान तथा पूज्य देवोंकी उत्तम बुद्धिसे संयुक्त कर ।

भावार्थ— हमारी सुखकारक स्तुति और उत्तम कर्म वरुण मित्र, भग और अदिति आदि देव निश्चयसे प्राप्त करें । अन्तरिक्षमें उत्पन्न होनेवाला, पांच प्राणोंका आधार, अप्रतिहतगतिवाला, बल और सुख देनेवाला वायु हमारी प्रार्थना सुने ॥ १ ॥

जिस तरह एक माता अपने पुत्रको बडे प्रेमसे अपनाती है, उसी तरह अदिति देवी मेरे इस आनन्ददायक और सुखदायक स्तोत्रको स्वीकार करे । तथा जो देवोंके लिए हितकारी और प्रिय स्तोत्र है, उसे मैं मित्र और वरुणके लिए समर्पित करता हूँ ॥ २ ॥

यह सबको प्रेरणा देनेवाला देव मधु और घीसे तृप्त होता है और उसे तृप्त करनेवालेको वह बडे ही प्रयत्नोंसे मिलनेवाले, चमकनेवाले तथा प्रसन्नता करनेवाले धनोंको प्रदान करता है ॥ ३ ॥

३३५ देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंधि—रवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ ॥

३३६ मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णो—रजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन् नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥ ६ ॥

३३७ उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७ ॥

अर्थ—[३३५] (देवः भगः) दिव्य गुणयुक्त भगदेवता, (सविता) सबका प्रेरक सविता देव (रायः) धनका स्वामी (अंशः) त्वष्टा (वृत्रस्य) वृत्रको मारनेवाला (धनानां संजितः) धनोंको जीतनेवाला (इन्द्रः) इन्द्र (ऋभुक्षाः वाजः उत वा पुरन्धिः) ऋभुक्षा, वाज और विभु ये सभी (अमृतासः) अमर देव (तुरासः) हमारी तरफ शीघ्रतासे आते हुए (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

[३३६] हम (अप्रतीतस्य) युद्धमें पीछे न हटनेवाले (जिष्णोः) जयशील (अजूर्यतः) कभी वृद्ध न होनेवाले तथा (मरुत्वतः) मरुतोंकी सहायता प्राप्त करनेवाले इन्द्रके (कृतानि) कर्मोंका हम (प्र ब्रवाम) वर्णन करते हैं । हे (मघवन्) इन्द्र ! (ते वीर्यं) तेरे पराक्रमको (न पूर्वे) न पहलेके लोग प्राप्त कर सके, (न नूतनः कश्चन आप) न इस समयका कोई प्राप्त कर सका, और (न अपरासः) न आगे आनेवाले ही प्राप्त कर सकेंगे ॥ ६ ॥

[३३७] (यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः) जो प्रशंसा करनेवाले तथा स्तुति करनेवालेको अत्यन्त सुख प्रदान करता है, तथा जो (जोहुवानं) बार बार आहुति देनेवालेके पास (पुरूवसुः) बहुत धनसे युक्त होकर (आगमत्) आता है, उस (प्रथमं) सबसे श्रेष्ठ (रत्नधेयं) स्वयं रत्नोंको धारण करनेवाले तथा (धनानां सनितारं) धनोंको प्रदान करनेवाले (बृहस्पतिं) बृहस्पतिकी (उप स्तुति) स्तुति कर ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे इन्द्र ! तू उत्तम मनसे हमें युक्त होकर हमें गायें प्रदान कर । विद्वानोंसे हमें संयुक्त कर । देवोंके लिए जो कल्याणकारक ज्ञान है, उससे हमें युक्त कर, तथा पूजाके योग्य देवोंकी उत्तम बुद्धिसे हमें युक्त कर ॥ ४ ॥

दिव्य गुणवाले भग, सबका प्रेरक सविता, धनका स्वामी त्वष्टा, धनोंको जीतनेवाला तथा वृत्रको मारनेवाला इन्द्र आदि सभी देव हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

यह इन्द्र युद्धमें कदम पीछे न हटानेवाला, जयशील और कभी वृद्ध न होनेवाला है । इसके पराक्रमको न पहलेके लोग प्राप्त कर सके, न आजके लोग प्राप्त कर सकते हैं और न आगे आनेवाले लोग ही प्राप्त कर सकेंगे ॥ ६ ॥

इस विशाल संसारका पालक बृहस्पति देव प्रशंसा तथा स्तुति करनेवाले मनुष्यको अत्यन्त सुख प्रदान करता है और जो इस देवके लिए आहुति देता है, उसके पास वह बहुत धनसे युक्त होकर आता है । ऐसे सबसे श्रेष्ठ, रत्नोंको धारण करनेवाले तथा धनोंको प्रदान करनेवाले बृहस्पतिकी स्तुति करनी चाहिए ॥ ७ ॥

३३८ तवो॒तिभिः॒ सच॑माना॒ अरि॑ष्टा॒ बृह॑स्पते म॒घवा॑नः सु॒वीराः॑ ।
ये अ॑श्व॒दा उ॒त वा॒ सन्ति॒ गो॒दा ये व॑स्त्र॒दाः सु॒भगा॒स्तेषु॒ रायः॑ ॥ ८ ॥

३३९ वि॒स॒र्माणं॑ कृणुहि वि॒त्तमे॑षां॒ ये भु॒ञ्जते॒ अपृ॑णन्तो न उ॒क्थैः ।
अप॑व्रतान् प्रस॒वे वा॑वृधा॒नान् ब्र॑ह्म॒द्विषः॒ सूर्या॑द् यावयस्व ॥ ९ ॥

३४० य ओह॑ते र॒क्षसो॑ दे॒ववी॑ता॒वच॒क्रेभि॒स्तं म॑रुतो॒ नि या॑त ।
यो वः॒ शमीं॑ शशमा॒नस्य॒ निन्दा॑त् तु॒च्छ्यान् कामा॑न् करते सिष्विदा॒नः ॥ १० ॥

अर्थ— [३३८] हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! (तव ऊतिभिः सचमानाः) तेरी रक्षाओंसे युक्त हुए मनुष्य (अरिष्टाः मघवानः) रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् तथा (सुवीराः) उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं। (ये अश्वदाः सन्ति) जो मनुष्य घोडोंका दान देनेवाले होते हैं, (उत वा गोदाः) अथवा गायोंको देनेवाले होते हैं, तथा (ये वस्त्रदाः) जो वस्त्रोंको देनेवाले होते हैं, (तेषु सुभगाः रायः) उनमें उत्तम भाग्यशाली ऐश्वर्य स्थित होते हैं ॥ ८ ॥

१ बृहस्पते ! तव ऊतिभिः सचमानाः अरिष्टाः मघवानः सुवीराः— हे बृहस्पते ! तेरी रक्षासे युक्त हुए मनुष्य रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं।

२ अश्वदाः, गोदाः, वस्त्रदाः सुमनाः रायः— अश्व, गाय और वस्त्र दानमें देनेवाले मनुष्य उत्तम भाग्यशाली और धनवान् होते हैं।

[३३९] (ये) जो (उक्थैः) प्रार्थना करने पर भी (नः अपृणन्तः) हमें न देकर स्वयं ही (भुंजते) भोग करते हैं, (एषां वित्तं) ऐसे मनुष्योंके धनको (विसर्माणं कृणुहि) नष्ट होजानेवाला कर। तथा ऐसे (अप-व्रतान्) नास्तिकों, (प्रसवे ववृधानान्) जगमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा (ब्रह्मद्विषः) परमात्मासे द्वेष करनेवाले मनुष्योंको (सूर्यात् यावयस्व) सूर्यसे दूर कर अर्थात् उन्हें अन्धकारमें स्थापित कर ॥ ९ ॥

१ उक्थैः नः अपृणन्तः भुंजते एषां वित्तं विसर्माणं कृणुहि— जो मनुष्य प्रार्थना करने पर भी हमें न देकर स्वयं ही भोगते हैं, उनके धनको नष्ट होजानेवाला कर।

२ अपव्रतान्, प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व— दुष्ट कर्म करनेवाले, संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर कर अर्थात् उन्हें अन्धकारमें डाल दे।

[३४०] हे (मरुतः) मरुतो ! (यः देववीतौ रक्षसः ओहते) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, (तं) उसे (अचक्रेभिः नि यात) चक्रोंसे रहित रथोंसे नष्ट करो। (यः) जो मनुष्य (वः शशमानस्य) तुम्हारे लिए स्तुति करनेवालेकी (निन्दात्) निन्दा करता है, वह (सिष्विदानः) महान् प्रयत्न करने परभी (कामान् तुच्छ्यान् करते) अपनी कामनाओंको तुच्छ कर देता है ॥ १० ॥

१ मरुतः यः देववीतौ रक्षसः ओहते तं अचक्रेभिः नि यात— हे मरुतो ! जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसके रथोंको तुम चक्रोंसे रहित करके मार डालो।

२ यः वः शशमानस्य निन्दात्, सिष्विदानः कामान् तुच्छ्यान् करते— जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है।

भावार्थ— बृहस्पतिसे सुरक्षित हुए मनुष्य सभी तरहके रोगादियोंसे रहित, अहिंसित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होते हैं। जो मनुष्य घोडोंका, गायोंका और वस्त्रोंका दान करते हैं, उन्हें सौभाग्य और ऐश्वर्य मिलता है ॥ ८ ॥

जो मनुष्य मांगने पर भी मनुष्योंको न देकर स्वयं ही खा जाते हैं, ऐसे मनुष्योंका धन नष्ट हो जाता है। ऐसे स्वार्थी मनुष्य नास्तिक होते हैं। ये परमेश्वरमें श्रद्धा नहीं करते अपितु उमसे द्वेष ही करते हैं। ऐसे मनुष्य थोडेसे समय के लिये तो इस संसारमें वृद्धिको प्राप्त होते हैं, पर अन्तमें गहरे अन्धकारमें ही ढकेल दिए जाते हैं ॥ ९ ॥

जो मनुष्य अपने यज्ञ जैसे पवित्र कार्योंमें दुष्ट राक्षसोंको बुलाता है, उसे देवगण धनहीन बनाकर नष्ट कर देते हैं। तथा जो उन देवोंके भक्तोंकी निंदा करता है, उसकी सभी कामनायें नष्ट हो जाती हैं ॥ १० ॥

३४१ तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११ ॥

३४२ दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२ ॥

३४३ प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३ ॥

अर्थ— [३४१] हे मनुष्य ! (यः सु-इषुः सु-धन्वा) जो उत्तम बाण और उत्तम धनुषसे युक्त है, (यः विश्वस्य भेषजस्य क्षयति) जो सभी ओषधियोंका निवासस्थान है, (तं उ स्तुहि) उसी रुद्रकी तू स्तुति कर। तू (महे सौमनसाय) अपने महान् मनको उत्तम करनेके लिए (रुद्रं यक्ष्व) रुद्रकी पूजा कर तथा (नमोभिः) नमस्कारसे (असुरं देवं दुवस्य) इस बलवान् रुद्रदेवकी सेवा कर ॥ ११ ॥

१ सु-इषुः सु-धन्वा— वह रुद्रदेव उत्तम बाण और धनुषसे युक्त है ।
२ विश्वस्य भेषजस्य क्षयति— यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका निवासस्थान है ।
३ महे सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व— अपने महान् मनको उत्तम बनानेके लिए बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए ।

[३४२] (ये दमूनसः) जो उदार हैं, तथा (अपसः सुहस्ताः) उत्तम कर्म करनेके कारण जो उत्तम हाथोंवाले हैं वे देव तथा (विभ्वतष्टाः) परमेश्वरने जिनके मार्गोंका निर्माण किया है, तथा जो (वृष्णः पत्नीः) बलवान् इन्द्रकी पत्नीरूप हैं, ऐसी (नद्यः) नदियां, (सरस्वती) सरस्वती (उत) और (बृहत् दिवा) अत्यन्त तेजस्वी राका आदि (शुभ्राः) तेजस्वी देवियां (दशस्यन्तीः) कामनाओंको पूर्ण करती हुई (वरिवस्यन्तु) हमें धन प्रदान करें ॥ १२ ॥

[३४३] (यः आहनाः) जिस वर्षणकर्ता इन्द्रने (रूपा मिनानः) अनेक रूपोंको प्रकट करते हुए (दुहितुः नः) अपनी पुत्री पृथ्वी तथा हमारे हितके लिए (वक्षणासु इदं अकृणोत्) नदियोंमें इस जलको उत्पन्न किया, उस (महे शरणाय) महान् रक्षक इन्द्रको मैं अपनी (नव्यसीं जायमानां) एकदम स्फुरित होनेवाली (मेधां) मेधाबुद्धि और (गिरं) वाणीको (प्र भरे) सौंपता हूँ ॥ १३ ॥

भावार्थ— शत्रुओंका संहार करनेके लिए यह रुद्रदेव हमेशा अपने हाथोंमें उत्तम धनुष और उत्तम बाण धारण करता है । इसी रुद्रदेवमें सब ओषधियां निवास करती हैं । मनको उत्तम और महान् बनानेके लिए इसी रुद्रदेवकी पूजा करनी चाहिए और स्तुतियोंसे इसी बलवान् देवकी सेवा करनी चाहिए ॥ ११ ॥

उदार तथा उत्तम कर्म करनेके कारण उत्तम हाथोंवाले देव तथा इन्द्रका पालन करनेवाली तथा परमात्माके द्वारा बनाये गए मार्गों पर बहनेवाली नदियां सरस्वती तथा निर्मल राका आदि देवियां हमारे मनोरथोंको पूरा करके हमें धन दें ॥ १२ ॥

जलको बरसानेवाला यह इन्द्र अनेक रूपोंको धारण करता है, तथा अपनी पुत्री पृथ्वी तथा हम मनुष्योंके हितके लिए इन्द्र नदियोंमें जल उत्पन्न करता है । वर्षाकालके दिनोंमें विद्युत् अनेक रूपोंमें चमकती हुई अनेक रूप धारण करती है, तब जलकी वृष्टिसे सारी नदियां भर जाती हैं, जो पृथ्वी और प्राणियोंका हित करते हैं । उस समय सभी ज्ञानी अपनी उत्तम बुद्धिसे इस विद्युत् रूपी इन्द्रकी स्तुति करते हैं ॥ १३ ॥

३४४ प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्त—मिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥ १४ ॥

३४५ एषः स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्यु—प स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५ ॥

३४६ प्रेष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १६ ॥

३४७ उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७ ॥

अर्थ— [३४४] (यः) जो मेघ (अब्दिमान्) जलोंको देनेवाला (उदनिमान्) जलसे भरपूर है, तथा जो (रोदसी उक्षमाणः) द्यु और पृथ्वीको सींचता हुआ (विद्युता प्र इयर्ति) बिजलीके साथ जाता है, उस (स्तनयन्तं रुवन्तं) गर्जना करनेवाले तथा शब्द करनेवाले (इळस्पतिं) अन्नके स्वामी मेघके पास, हे (जरितः) स्तोता! (सु स्तुतिः) तेरी उत्तम स्तुति (नूनं अश्याः) अवश्य पहुंचे ॥ १४ ॥

[३४५] (एषः स्तोमः) यह स्तोत्र (मारुतं शर्धः) मरुतोंके बलके पास (अश्याः) पहुंचे तथा (युवन्यून्) तारुण्यसे सुशोभित होनेवाले (रुद्रस्य सूनून्) तथा रुद्रके पुत्ररूप इन मरुतोंके पास यह स्तुति (उत्) पहुंचे। (कामः) मेरा संकल्प (मां) मुझे (स्वस्ति राये हवते) कल्याणकारक धनकी प्राप्तिके लिए प्रेरणा देता है। तू (अयासः) यज्ञकी तरफ जानेवाले तथा (पृषत्-अश्वान्) रंगबिरंगे घोडोंवाले मरुतोंकी (उप स्तुहि) स्तुति कर ॥ १५ ॥

[३४६] (एषः स्तोमः) यह स्तोत्र (राये) हमें धन प्रदान करनेके लिए (पृथिवीं, अन्तरिक्षं, वनस्पतीन् ओषधीः अश्याः) पृथिवी, अन्तरिक्ष वनस्पति और ओषधीको प्राप्त हो। (देवोदेवः) देवोंका भी देव परमात्मा (मह्यं सुहवो भूतु) मेरे लिए आसानीसे बुलाने योग्य हो। (माता पृथिवी) माता पृथिवी (नः) हमें (दुर्मतौ मा धात्) दुष्ट बुद्धिमें स्थापित न करे ॥ १६ ॥

१ माता पृथिवी नः दुर्मतौ मा धात्— माता पृथिवी हमें दुष्ट बुद्धिमें न रखें, हमारी बुद्धियां दुष्ट मार्गमें प्रेरित न हों।

[३४७] हे (देवा) देवो! हम तुम्हारे (उरौ अनिबाधे स्याम) विस्तृत और बाधारहित सुखमें रहें ॥ १७ ॥

भावार्थ— मेघ जब जलसे भरपूर होता है, तब उनमें बिजली चमकती हैं, वे गरजते हैं, गडगडाते हैं और अन्तमें बरसकर द्यु और पृथ्वीको गीला भी कर देते हैं। उससे पृथ्वीमें अन्न उत्पन्न होता है, इसलिए मेघ अन्नका स्वामी है। उस समय इस मेघकी सब स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥

मरुद्गण प्राण हैं ये ही रुद्र अर्थात् वायुके पुत्र हैं। ये प्राण सदा तरुण रहते हैं, कभी वृद्ध नहीं होते। इन्हीं प्राणोंसे प्रेरित होकर मन उत्तम संकल्प करता है और उस उत्तम संकल्पसे उत्तम धनकी प्राप्ति होती है। ये प्राण इस मानव जीवनरूपी यज्ञकी तरफ जाते हैं। तथा शब्द, स्पर्श आदि गुणोंका अनुभव करनेवाली इन्द्रियां ही प्राणोंके घोडे हैं। इन इन्द्रियोंमें संचार करके प्राण इन्हें शक्तिशाली रखता है ॥ १५ ॥

हमें धन प्रदान करनेके लिए अन्तरिक्ष, पृथिवी, वनस्पति आदि हमारी प्रार्थनाओंको सुनें। देवोंका देव परमात्मा भी हमारी प्रार्थनाओंको सुनें। माता पृथिवी हमारी बुद्धिको उत्तम मार्गमें प्रेरित करे ॥ १६ ॥

देवोंके द्वारा प्रदान किया गया सुख बहुत विस्तृत और बाधारहित होता है, उसमें दुःखका जरासा भी मिश्रण नहीं होता। ऐसे सुखमें हम रहें ॥ १७ ॥

३४८ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा—ना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १८ ॥

[४३]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, १६ एकपदा विराट् ।]

३४९ आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्थां अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १ ॥

३५० आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २ ॥

३५१ अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३ ॥

अर्थ— [३४८] हम (अश्विनोः) अश्विनीदेवोंके (नूतनेन) नये और (मयोभुवा) कल्याणप्रद (सुप्रणीती) कृपाके साथ और (अवसा) रक्षणके साथ (सं गमेम) संयुक्त हों। हे (अमृता) अमर अश्विदेवो! तुम (नः रयिं आ वहतं) हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो। (उत वीरान् आ) और वीर पुत्रपौत्रोंको भी प्रदान करो (विश्वानि सौभगानि आ) सम्पूर्ण सौभाग्य भी प्रदान करो ॥ १८ ॥

[४३]

[३४९] (मध्वा पयसा) मधुर जलसे भरे होनेके कारण (तूर्णि- अर्थाः) शीघ्रतासे बहनेवाली (धेनवः) नदियां (अमर्धन्तीः) हमारी हिंसा न करती हुईं (नः उप आ यन्तु) हमारे पास आवें। (विप्र जरिता) यह ज्ञानी स्तोता (महः राये) महान् धनकी प्राप्तिके लिए (मयोभुवः) सुख देने वाली (बृहतीः सप्त) बडी बडी सात नदियोंकी (जोहवीति) स्तुति करता है ॥ १ ॥

[३५०] मैं (वाजाय) अन्नप्राप्तिके लिए (सुस्तुती) उत्तम स्तोत्र और (नमसा) नमस्कारोंसे (अमृध्रे) हिंसा न करनेवाली (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवीको (आ वर्तयध्यै) अपनी ओर करता हूँ। (मधुवचाः सुहस्ता) मधुरवाणी और उत्तम हाथोंवालीं तथा (यशसा) यशसे युक्त (पिता माता) पिता द्यु और माता पृथिवी (भरे भरे) हर संग्राममें (नः अविष्टां) हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥

[३५१] हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युओ! तुम (मधूनि चकृवांसः) मधुर सोमरसोंको तैय्यार करते हुए इस (चारु शुक्रं) सुन्दर और तेजस्वी सोमरसको (वायवे भरत) वायुके लिए भरपूर दो। हे (देव) वायो! तू (होता इव) होताके समान (नः अस्य) हमारे द्वारा दिए गए इस सोमरसको (प्रथमः पाहि) सबसे पहले पी। हम (ते मदाय) तेरे आनन्दके लिए इस (मध्वः) मधुर सोमरसको (ररिम) देते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो! हम तुम्हारे नवीन और कल्याणप्रद कृपा तथा रक्षणके साथ संयुक्त हों। हे अमर देवो! तुम हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो, वीर पुत्रपौत्रोंको प्रदान करो और सभी तरहके सौभाग्योंको प्रदान करो ॥ १८ ॥

मधुर जलसे भरे होनेके कारण शीघ्रतासे बहनेवाली नदियां हमारी हिंसा न करती हुईं हमारे पास आवें। यह ज्ञानी स्तोता भी महान् धनकी प्राप्तिके लिए सुख देनेवाली बडी बडी सात नदियोंकी स्तुति करता है ॥ १ ॥

मैं अन्नप्राप्तिके लिए अपनी मधुर स्तुतिसे हिंसा न करनेवाली द्यु और पृथिवीको अपनी ओर करता हूँ। ये द्यु और मधुरतासे भरपूर है तथा प्राणियोंके पिता और माता हैं। जिसप्रकार माता पिता अपने बच्चोंके प्रति मिठाससे भरपूर होकर अपना प्रेमभरा हाथ उन पर फेरते हैं, उसी प्रकार ये द्यु और पृथ्वी सभी प्राणियों पर प्रेमसे अपना हाथ फेरकर उनकी हर संकटोंसे रक्षा करते हैं ॥ २ ॥

हे अध्वर्युओ! तुम इस तेजस्वी सोमरसको वायुदेवके लिए भरपूर दो और वायुदेव भी इस रसको सबसे पहले पिये, क्योंकि हम उसीके आनन्दके लिए इस मधुर सोमरसको प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥

३५२ दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४ ॥
३५३ असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥ ५ ॥
३५४ आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥ ६ ॥
३५५ अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥ ७ ॥

अर्थ- [३५२] (दश क्षिपः अद्रिं युंजते) दस उंगलियां पत्थरसे संयुक्त होती हैं। (बाहू) भुजायें भी संयुक्त होती हैं। (या सोमस्य शमितारा) जो सोमको निचोडनेवाले हैं ऐसे (सुहस्ता) उत्तम हाथ भी पत्थरसे संयुक्त होते हैं। (सुगभस्तिः) उत्तम हाथोंवाला होता (चनिश्चदत्) अत्यन्त हर्षित होता हुआ (मध्वः रसं दुदुहे) सोमके मीठे रसको निचोडता है, (गिरिष्ठां शुक्रं अंशुं) पर्वत पर उत्पन्न हुए तेजस्वी सोमरसको दुहता है ॥ ४ ॥

[३५३] हे इन्द्र ! (जुजुषाणाय) सोम पीनेकी इच्छावाले (ते क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय) तेरे पराक्रम, चातुर्य और महान् आनन्दके लिए मैं (सोमः असावि) सोम निचोडता हूँ । हे (इन्द्र) इन्द्र ! तू (हूयमानः) बुलाये जाने पर (रथे) अपने रथमें (सुधुरा) जुएको ढोनेमें उत्तम, (योगे) आसानीसे जोडे जानेवाले (प्रिया हरी) तथा अपने प्रिय घोडोंको जोडकर अपने रथको (अर्वाक् कृणुहि) हमारी ओर प्रेरित कर ॥ ५ ॥

[३५४] (अग्ने) अग्ने ! (सजोषाः) हमारे साथ रहकर आनन्द करनेवाला तू (महीं अरमतिं) बडी, सर्वत्र व्याप्त, (नमसा रातहव्यां) नम्रभावसे दी गई हविको स्वीकार करनेवाली (बृहतीं ऋतज्ञां) महान् तथा ऋतको जाननेवाली (देवीं ग्नां) तेजस्विनी देवीको (देवयानैः पथिभिः) देवोंके द्वारा जाने योग्य रास्तोंसे (मधोः मदाय) सोमरस पीकर आनन्द प्राप्त करनेके लिए (नः आ वह) हमारे पास ले आ। ॥ ६ ॥

१ ग्ना— स्त्री " मेना इति स्त्रीणां " (निरु ३ । २१)

[३५५] (वपावन्तं न) जिस प्रकार लोग सुन्दर और शक्तिशाली शरीरवाले मनुष्यकी स्तुति करते हैं, उसी तरह (विप्राः) ज्ञानी (प्रथयन्तः) विस्तृत बनाते हुए तथा (अग्निना तपन्तः) अग्निसे गर्म करते हुए (यं) जिस यज्ञकुण्डकी (अञ्जन्ति) स्तुति करते हैं। वह (घर्मः) यज्ञकुण्ड (ऋतयन्) यज्ञको पूर्ण करनेके लिए (अग्निं असादि) अपने अन्दर अग्निको उसीतरह धारण करता है कि जिस तरह (प्रेष्ठः पुत्रः) अत्यन्त प्रिय पुत्र अपने (पितुः उपसि न) पिताके गोदमें बैठता है ॥ ७ ॥

भावार्थ— सोम निचोडनेके समय होताकी दसों अंगुलियां, भुजायें और उसके हाथ सोम कूटनेके पत्थरोंके साथ संयुक्त होते हैं। तब वह पर्वतकी ऊंची चोटी पर उत्पन्न होनेवाले सोमको निचोडकर उसका रस निकालता है ॥ ४ ॥

हम इन्द्रके पराक्रम, बल और आनन्दको बढानेके लिए सोमरसको निचोडते हैं। वह इन्द्र अपने रथमें अपने प्रिय घोडोंको जोडकर अपने रथको हमारी तरफ प्रेरित करे ॥ ५ ॥

देशकी स्त्रियां अपरिमित बलवाली हों, वे सर्वत्र संचार करनेवाली हों। वे ऋत अर्थात् नैतिकताके मार्गको जाननेवाली हों, तेजस्विनी हों तथा सदा देवों अर्थात् विद्वान् सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करें। वेदोंमें स्त्रियोंको पर्देमें बन्द करके रखनेका आदेश नहीं है। वे देशकी उन्नतिके लिए देशमें सर्वत्र संचार करें, पर साथ ही स्वेच्छाचारिणी न हों। वे अपनी नैतिकताकी मर्यादामें रहकर सत्पुरुषोंके मार्ग पर चलने वाली हों ॥ ६ ॥

३५६ अच्छा मही बृहती शंतमा गी-र्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वा-ग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८ ॥
३५७ प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्या-ऽहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥ ९ ॥
३५८ आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वा-ना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥ १० ॥
३५९ आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११ ॥

अर्थ— [३५६] (अश्विना हुवध्यै) अश्विनीकुमारोंको बुलानेके लिए हमारी (मही बृहती शंतमा गीः) प्रशंसनीय, बडी और सुख देनेवाली वाणी (दूतः न) दूतके समान (अच्छ गन्तु) सीधी जाये । हे अश्विनौ ! (गन्तं धुरं नाभिं आणिः न) जानेवाले रथकी धुराकी नाभिके लिए जिस तरह कील आवश्यक है, उसी तरह [यज्ञके लिए आवश्यक] (मयोभुवा) सुखदायक (सरथा) एक ही रथ पर चढकर जानेवाले तुम दोनों (निधिं अर्वाक्) हमारे खजाने रूप इस यज्ञकी तरफ (आ यातं) आओ ॥ ८ ॥

[३५७] (या) जो पूषा और वायुदेव (राधसा) आराधना किए जाने पर (मतीनां चोदितारा) बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करनेवाले हैं, (उत) और (या) जो (त्मन्) स्वयं ही (वाजस्य द्रविणः-दा) बल और अन्नको देनेवाले हैं, उस (तव्यसः) उत्तम बलशाली (तुरस्य) शीघ्रता करनेवाले (पूष्णः) पोषक देवके लिए (उत) तथा (वायोः) वायुके लिए (अहं) मैं (नमः उक्तिं अदिक्षि) नम्रभावसे अपने वचन कहता हूँ ॥ ९ ॥

[३५८] हे (जातवेदः) अग्ने ! (हुवानः) हमारे द्वारा बुलाया जाकर तू (विश्वान् मरुतः) सभी मरुतोंको (नामभिः रूपेभिः आ वक्षि) नामों और रूपोंसे युक्त करके ले आता है । हे (मरुतः) मरुतो ! (विश्वे) तुम सब (जरितुः) स्तोताकी (गिरः सुस्तुतिं) वाणीसे निकलनेवाली उत्तम स्तुतिको सुनकर हमारे इस (यज्ञं) यज्ञकी तरफ (आ गन्त) आओ । (च] और (विश्वे) तुम सब (ऊती) रक्षासे युक्त होकर (आ) आओ ॥ १० ॥

[३५९] (दिवः) द्युलोकसे और (बृहतः पर्वतात्) बडे बडे पर्वतसे (यजता सरस्वती) पूज्य सरस्वती (नः यज्ञं आ गन्तु) हमारे यज्ञमें आवे । (घृताची) घृतके समान तेजयुक्त कांतिवाली वह देवी (हवं जुजुषाणा) हमारी हवियोंको स्वीकार करके (उशती) उत्कंठित मनसे (नः शग्मां वाचं शृणोतु) हमारी भक्तिरससे पूर्ण वाणीको सुने ॥ ११ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार कोई स्वस्थ शरीरका मनुष्य सुन्दर लगता है और लोग उसकी प्रशंसा करते है, इसी तरह यज्ञकुण्डको विस्तृत बनाकर ज्ञानी ऋत्विज उसमें अग्न्याधान करते हैं और फिर उसमें यज्ञ करते हुए मंत्रोंका पाठ करते हैं । उस समय जिस प्रकार कोई पिता अपने पुत्रको गोदमें बिठाता है, उसी प्रकार यह यज्ञकुण्ड अपने अन्दर अग्निको धारण करता है ॥ ७ ॥

हमारी यह प्रशंसनीय और सुख देनेवाली स्तुति दूतके समान अश्विनीकुमारोंके पास सीधी जाए। जिस प्रकार चलनेवाले रथकी धुराकी नाभिको टिकाये रखनेके लिए कीलें आवश्यक होती है, उसी तरह यज्ञके लिए अश्विनीकुमार आवश्यक हैं। ये अश्विनीकुमार प्राण और अपान हैं, जो जीवनरूपी यज्ञके खजानेकी रक्षा करते हैं । इन्हींके कारण यह जीवन यज्ञ चलता है। जिसप्रकार रथकी धुराकी नाभिमें जब तक अक्ष न हो वह चल नहीं सकता, उसी तरह जब तक प्राण, अपान न हों, यह जीवन-यज्ञ चल नहीं सकता ॥ ८ ॥

आराधना या प्रार्थना करने पर पूषा और वायुदेव बुद्धियोंको उत्तम मार्गमें प्रेरित करते हैं और प्रसन्न होकर स्वयं ही बल और अन्नको देनेवाले हैं । उन उत्तम बलशाली पूषा और वायुसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करता हूँ ॥ ९ ॥

यह अग्नि बुलाये जाने पर सभी नामों और रूपोंसे युक्त मरुतोंको ले आता है। हे मरुतो ! तुम सब स्तोताकी स्तुतिको सुनकर हमारे इस यज्ञकी तरफ आओ और हमारी रक्षा करो ॥ १० ॥

३६० आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥ १२ ॥
३६१ आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३ ॥
३६२ मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥ १४ ॥
३६३ बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १५ ॥

अर्थ— [३६०] (वेधसं) विधाता (नीलपृष्ठं) चमकीले अंगोंवाले (बृहन्तं बृहस्पतिं) महान् बृहस्पतिको (सदने सादयध्वं) यज्ञगृहमें बिठलाओ। हम भी (सादद्योनिं) अपने स्थान पर बैठे हुए (दीदिवांसं) तेजस्वी (हिरण्यवर्णं) सोनेके समान रंगवाले (अरुषं) अत्यन्त दीप्त ऐसे बृहस्पतिकी (सपेम) सेवा करें ॥ १२ ॥

[३६१] (धर्णसि) सब जगतका आधार (बृहत्-दिवः) बहुत तेजस्वी (रराणः) आनन्द देनेवाला, (विश्वेभिः ओमभिः) सम्पूर्ण संरक्षणके साधनोंके साथ (हुवानः) बुलाया जानेवाला वह अग्नि (आ गन्तु) हमारे पास आवे। (ग्नाः) प्रज्वलित ज्वालाओंवाला (ओषधिः वसानः) ओषधीरूपी वस्त्रको पहनता हुआ (अमृध्रः) किसीसे भी हिंसित न होनेवाला (त्रिधातुशृंगः) तीन रंगकी ज्वालाओंवाला (वृषभः) बलवान् और (वयः धाः) अन्नको खानेवाला है ॥ १३ ॥

[३६२] (मातुः) पृथिवीके (शुक्रे परमे पदे) तेजस्वी उत्तम स्थान पर (आयोः रास्पिरासः विपन्यवः) यजमानके साधन सम्पूर्ण स्तोता (आग्मन्) आ पहुंचे हैं। (वासे शिशुं न) वस्त्रसे जिस प्रकार छोटे बच्चेको साफ किया जाता है, उसी प्रकार (रातहव्याः आयवः) हविदेनेवाले मनुष्य (सुशेव्यं) सुखकारक अग्निको (नमसा मृजन्ति) नमस्कारोंसे शुद्ध करते हैं ॥ १४ ॥

[३६३] हे (अग्ने) अग्ने ! (धियाजुरः) तेरी स्तुति करते करते वृद्धावस्थाको प्राप्त हुए (मिथुनासः) पति पत्नी (बृहते तुभ्यं) महान् तुझे (बृहद्वयः सचन्ते) अत्यधिक अन्न प्रदान करते हैं। (देवो देवः) देवोंका भी देव अग्नि (मह्यं सुहवः भूत्) मेरे लिए आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो। (माता पृथिवी) माता पृथिवी (नः दुर्मतौ मा धात्) हमें दुष्ट बुद्धिमें स्थापित न करें ॥ १५ ॥

भावार्थ— द्युलोकसे और पर्ववाले अन्तरिक्षसे यह पूज्य वाणी हमारे यज्ञमें पधारे। उस सरस्वतीका तेज घृतके समान कान्तिमान् है। वह हमारी हवियोंको स्वीकार करनेवाली होकर उत्कंठित मनसे हमारी भक्तिरससे पूर्ण वाणीको सुने ॥ ११ ॥

यह महान् बृहस्पति सबको बनानेवाला, चमकीले अंगोंवाला, तेजस्वी, सोनेके समान कान्तिवाला अत्यन्त दीप्त है। ऐसे बृहस्पतिकी हम सेवा करें ॥ १२ ॥

यह अग्नि सब जगतको धारण करनेवाला और संरक्षणके सभी साधनोंसे युक्त होनेके कारण सभीको आनन्द देनेवाला है। उसमें ओषधि अर्थात् समिधाओंके पडनेके कारण उसकी ज्वालायें प्रज्वलित होती हैं। यह सभी तरहका अन्न खानेके कारण बहुत बलवान् है ॥ १३ ॥

जब पृथिवीके श्रेष्ठतम स्थान यज्ञवेदिके पास साधनोंसे सम्पूर्ण ऋत्विज पहुंच जाते हैं, तब अग्निको एक छोटे बच्चेके समान शुद्ध करके स्थापित करते हैं ॥ १४ ॥

अग्निकी सेवा करने अर्थात् यज्ञादि करनेमें जिन पतिपत्नीकी आयु व्यतीत हो गई है वे इस अग्निमें सदा हवि देते हैं। ऐसा देवोंका भी देव यह अग्नि मेरे लिए आसानीसे बुलाये जाने योग्य हो, तथा पृथिवी माता हमें दुर्बुद्धि प्रदान न करे ॥ १५ ॥

×

३६४ उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६ ॥

३६५ सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम ।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒रा —ना विश्वा॑न्यमृ॒ता सौभ॑गानि ॥ १७ ॥

[४४]

ऋषिः- काश्यपोऽवत्सारः (१० क्षत्र-मनस-एवावद्-यजत-सध्रि-अवत्साराः; ११ विश्ववार-यजत-मायी-अवत्साराः, १२ अवत्सारेण सह सदापृण-यजत-बाहुवृक्त-श्रुतवित्-तर्याः, १३ सुतंभरश्च) देवताः- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

३६६ तं प्र॒त्नथा॑ पू॒र्वथा॑ वि॒श्वथे॒मथा॑ ज्ये॒ष्ठता॑तिं ब॒र्हि॒षदं॑ स्व॒र्विद॑म् ।
प्र॒ती॒ची॒नं वृ॒जनं॑ दोहसे गि॒रा—ऽऽशुं जय॑न्त॒मनु॒ यासु॒ वर्ध॑से ॥ १ ॥

३६७ श्रि॒ये सु॒दृशी॒रुप॑रस्य॒ याः स्व॑—र्वि॒रोच॑मानः क॒कुभा॑मचो॒दते॑ ।
सु॒गो॒पा अ॑सि॒ न दभा॑य सुक्रतो प॒रो मा॒याभि॑रृ॒त आ॑स॒ नाम॑ ते ॥ २ ॥

अर्थ— [३६४] हे (देवाः) देवो ! हम (अनिबाधे) बाधाओंसे रहित (उरौ) विशाल सुखमें (स्याम) रहें ॥ १६ ॥

[३६५] हम (अश्विनोः) अश्विनी देवोंके (नूतनेन) नये और (मयोभुवा) कल्याणप्रद (सुप्रणीती) कृपाके साथ और (अवसा) रक्षणके साथ (सं गमेम) संयुक्त हों। हे (अमृता) अमर अश्विदेवो ! तुम (नः रयिं आ वहतं) हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो । (उत वीरान् आ) और वीर पुत्रपौत्रोंको भी प्रदान करो, (विश्वानि सौभगानि आ) सम्पूर्ण सौभाग्य भी प्रदान करो ॥ १७ ॥

[४४]

[३६६] (तं) उस इन्द्रको (प्रत्नथा) प्राचीन लोग (पूर्वथा) हमारे पूर्वज, (इमथा विश्वथा) तथा आजके सभी जन स्तुति करते रहे हैं, उसी प्रकार, हे इन्द्र ! (यासु अनु वर्धसे) जिन स्तुतियोंसें तू बढता है, इसीसे मैं (ज्येष्ठतातिं) सबसे ज्येष्ठ, (बर्हिषदं) यज्ञमें आकर बैठनेवाले (स्वः-विदं) सुखकी प्राप्ति करानेवाले (प्रतीचीनं) अत्यन्त सनातन (वृजनं) बलवान् तथा (आशुं जयन्तं) शीघ्रतासे शत्रुओंको जीतनेवाले तुझ इन्द्रकी स्तुति करता हूँ तू (दोहसे) हमारी अभिलाषाओंको पूर्ण कर ॥ १ ॥

[३६७] हे इन्द्र ! (स्वः विरोचमानः) द्युलोकमें तेजस्वी होता हुआ तू (अचोदते उपरस्य) पानीको न बहने देनेवाले मेघके (याः सुदृशीः) जो कान्ति युक्तजल हैं, उन्हें तू बहाता है, तथा (ककुभां श्रिये) दिशाओंकी शोभा बढाता है । हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र तू (सुगोपाः) उत्तम रीतिसे रक्षा करनेवाला है, (दभाय न असि) तू प्राणियोंकी हिंसा करनेके लिए नहीं है । (मायाभिः परः) तू छल कपट आदिसे परे अर्थात् दूर है इसीलिए (ते नाम ऋते आस) तेरा नाम ऋत अर्थात् सत्य है ॥ २ ॥

१ मायाभिः परः नाम ऋते आस— जो छल कपट आदि असत्य कामोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्यलोककी प्राप्ति होती है ।

भावार्थ— देवोंके द्वारा प्रदान किया गया सुख बहुत विस्तृत और बाधारहित होता है उसमें दुःखका जरासा भी मिश्रण नहीं होता । ऐसे सुखमें हम रहें ॥ १६ ॥

हे अश्विदेवो ! हम तुम्हारे नवीन और कल्याणप्रद कृपा तथा रक्षणके साथ संयुक्त हों । हे अमर देवो ! तुम हमें धन और ऐश्वर्य प्रदान करो, वीर पुत्रपौत्रोंको प्रदान करो और सभी तरहके सौभाग्योंको प्रदान करो ॥ १७ ॥

इस इन्द्रकी स्तुति प्राचीन कालसे हमारे पूर्वज करते चले आए हैं और आज भी सब कर रहे हैं। वह इन स्तुतियोंसे वृद्धिको प्राप्त होता है । इन्हीं स्तुतियोंसे प्रेरित होकर वह हमारी सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करता है ॥ १ ॥

३६८ अत्यं हविः सचते सच्च धातु चा॑ऽरिष्टगातुः स होता॑ सहोभ॑रिः ।
प्रसर्स्राणो अनु॑ बर्हिर्वृषा शिशु॑र्मध्ये युवाजरो॑ विस्रुहा॑ हितः ॥ ३ ॥

३६९ प्र वं एते सुयुजो याम॑न्निष्टये नीचीर॑मुष्मै युम्य॑ ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामा॑नि प्रवणे मुषायति ॥ ४ ॥

३७० संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥ ५ ॥

अर्थ— [३६८] (अरिष्टगातुः सहोभरिः होता सः) अप्रतिहत गमनवाला, बलका संपादक तथा यज्ञका निष्पादक वह अग्नि (अत्यं धातु सत् हविः) अस्थिर, स्थिर और सत् स्वरूपवाली हविको (सचते) प्राप्त होता है। वह (वृषा) बलवान् अग्नि (बर्हिः प्रसर्स्राणः) यज्ञमें जाने पर (शिशुः) छोटा रहता है, पर (विस्रुहा मध्ये हितः) समिधाओंके मध्यमें रखे जाने पर वही शिशु (अजरः युवा) जरावस्थासे रहित तरुण बन जाता है ॥ ३ ॥

[३६९] (एते) सूर्यकी ये किरणें (सुयुजः) परस्पर संयुक्त रहनेवालीं, (इष्टये यामन्) यज्ञमें जानेवालीं, (अमुष्मै यम्यः) यज्ञ करनेवालेको ऐश्वर्य प्रदान करनेवालीं, (नीचीः) नीचेकी तरफ जानेवालीं, तथा (ऋतावृधः) यज्ञको समृद्ध करनेवाली हैं। यह (क्रिविः) सबको उत्पन्न करनेवाला सूर्य (सुयन्तुभिः) उत्तम रीतिसे जानेवाली (सर्वशासैः) सब पर शासन करनेवाली (अभीशुभिः) किरणोंसे (प्रवणे) नीची जगहकी तरफ तेजीसे बहनेवाले (नामानि) जलोंको (मुषायति) चुराता है ॥ ४ ॥

[३७०] हे (ऋजुगाथ) सरल मार्गसे जानेवाले अग्ने ! तू (तरुभिः संजर्भुराणः) समिधाओंसे प्रदीप्त होता हुआ (वयाकिनं सुतेगृभं) आयुको दीर्घ करनेवाले निचोडे गए सोमको पीता हुआ (चित्तगर्भासु सुस्वरुः) हृदय रूपी गुहाओंमें विचरता है। तू (धारवाकेषु) वाणी अर्थात् विद्याको धारण करनेवाले विद्वानोंमें अधिक (शोभसे) शोभित होता है। तू (अध्वरे जीवः) यज्ञमें प्रदीप्त होता हुआ (पत्नीः अभि वर्धस्व) अपनी पत्नीरूप ज्वालाओंको बढा ॥ ५ ॥

१ धारवाकेषु शोभते— यह अग्नि विद्याको धारण करनेवालोंमें अधिक शोभित होता है।

भावार्थ— मेघोंमें रुके हुए तेजस्वी जलोंको इन्द्र जब बरसा देता है, तब सारी दिशायें प्रसन्न हो जाती हैं। सारी दिशायें समृद्ध हो जाती हैं। उनकी शोभा बढ जाती है। इन्द्र प्राणियोंको रक्षा करता है, उन्हें मारता नहीं। यह सत्पुरुषोंके साथ कभी भी छल कपट नहीं करता, इसीलिए वह हमेशा सत्यलोकमें निवास करता है ॥ २ ॥

अग्नि सर्वत्र संचार करता है। इसके संचारको कोई नहीं रोक सकता। वह बलका सम्पादक होकर हर एक तरहकी हवियोंको खाता है जब वह प्रथम यज्ञमें स्थापित किया जाता है, तब वह शिशु अर्थात् छोटेसे रूपमें ही रहता है, पर जब उसमें समिधायें डाली जाती हैं, तब वह तरुण हो जाता है और फिर वह सदा तरुण ही रहता है, कभी बूढा नहीं होता ॥ ३ ॥

सूर्यकी किरणें यज्ञका सम्पादन करनेवाली हैं। सूर्य किरणोंके प्रकट होने पर ही यज्ञकी क्रियायें प्रारम्भ होती हैं। ये किरणें द्युलोकसे पृथ्वीकी तरफ आती हैं। पृथ्वी पर आकर सभी पदार्थोंको पुष्ट बनाती हैं और यज्ञको समृद्ध करती हैं। ये किरणें सब पर शासन करती हैं तथा इन किरणोंके द्वारा सूर्य जलको चुराता अर्थात् पीता रहता है, पर उसके इस पीनेको कोई देख नहीं सकता। सूर्य की किरणोंके द्वारा नदी तालाबोंका जल सुखाया जाता है, पर यह उसका कार्य लोगोंकी नजरमें नहीं आता ॥ ४ ॥

समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ यह अग्नि आयुको बढानेवाले सोमसे और अधिक प्रज्वलित होकर हृदयोंमें संचार करता है। भक्तजन इस अग्निकी हृदयसे भक्ति करते हैं अग्नि विद्याका अधिष्ठाता देव होनेके कारण विद्वानोंमें और अधिक प्रकाशित होता है। यह यज्ञमें स्वयं प्रज्वलित होकर अपनी ज्वालाओंको चहुं ओर प्रकाशित करता है ॥ ५ ॥

३७१ यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत् सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६ ॥
३७२ वेत्यग्रुर्जनिवान् वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गय—मस्माकं शर्म वनवत् स्वावसुः ॥ ७ ॥
३७३ ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद् य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥ ८ ॥

अर्थ— [३७१] ये देवगण (यादृक् एव ददृशे) जैसे दिखाई देते हैं, (तादृक् उच्यते) वैसाही उनका वर्णन किया जाता है। उन देवोंने अपने (सिध्रया छायया) चारों ओर फैलनेवाले अपने तेजसे (अप्सु आ) जलोंमें छिपी हुई (उरुषां महीं) विस्तृत पृथ्वीको (दधिरे) धारण किया, प्रकट किया। वे देव (अस्मभ्यं) हमें (उरु ज्रयः) बहुत वेग तथा (सुवीरं अनपच्युतं) उत्तम वीरतासे पूर्ण तथा कभी क्षीण न होनेवाले (बृहत् सहः) बडे बलको प्रदान करें ॥ ६ ॥

[३७२] (जनिवान्) सबको उत्पन्न करनेवाला (अग्रुः) श्रेष्ठ (कविः) दूरदर्शी (सूर्यः) सूर्य (सं अर्यता मनसा) अपने श्रेष्ठ मनके कारण (स्पृधः अति) अपने शत्रुओंसे आगे बढ जाता है। (घ्रंसं गयं विश्वतः परि रक्षन्तं) तेजस्वी द्युलोककी चारों ओरसे रक्षा करनेवाले सूर्यकी हम उपासना करें। (स्वावसुः) उत्तम व श्रेष्ठ ऐश्वर्यको धारण करनेवाला यह सूर्य (अस्माकं शर्म वनवत्) हमें सुख प्रदान करे ॥ ७ ॥

१ कविः सं अर्यता मनसा स्पृधः अति— भविष्य पर नजर रखनेवाला विद्वान् अपनी श्रेष्ठ मानसिक शक्तिसे शत्रुओंको हराकर आगे बढ जाता है।

[३७३] (यासु ते नाम) जिन स्तुतियोंमें तेरा नाम है, उन स्तुतियोंके द्वारा (अस्य यतुनस्य केतुनः) इस यज्ञके प्रज्ञापक (ज्यायांसं) श्रेष्ठ अग्निकी (ऋषिस्वरं चरति) ऋषिकी वाणी सेवा करती है। मनुष्य (यादृश्मिन् धायि) जिस पदार्थमें अपना मन लगा देता है, (तं अपस्यया विदत्) उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर लेता है। (यः स्वयं वहते) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, (सः) वह (अरं करत्) अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है ॥ ८ ॥

१ यादृश्मिन् धायि, तं अपस्यया विदत्— मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है।

२ यः स्वयं वहते स अरं करत्— जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने काम को पूरी तरह सिद्ध करता है।

भावार्थ— यह विशाल पृथ्वी सृष्टिके पूर्व जलमें छिपी हुई थी। यह जल आधुनिक विज्ञानकी परिभाषामें गैसका रूप था। इसीके लिए कोहरा शब्दका प्रयोग किया गया है। उस कोहरेमें यह पृथ्वी ढकी हुई थी, जिसे प्रजापतिने सृष्टिकालमें प्रकट किया। इस मंत्रके दूसरे चरणमें सृष्टिविद्याका सूक्ष्म संकेत है ॥ ६ ॥

यह सूर्य सबको उत्पन्न करनेवाला होनेके कारण सबसे श्रेष्ठ है। वह भविष्यद्रष्टा तथा शक्तिशाली है। वह अपने तेजसे द्युलोककी रक्षा करता है। उत्तम और श्रेष्ठ ऐश्वर्यको धारण करनेवाला सूर्य हमें सुख प्रदान करे ॥ ७ ॥

ऋषियोंने अपनी वाणीसे स्वयं प्रेरित होकर इस अग्निदेवकी पूजा की, इसीलिए वे अग्निको प्रसन्न करनेमें और ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें सफल हुए। क्योंकि जो मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे प्राप्त करनेका संकल्प कर लेता है, उसे वह प्राप्त कर ही लेता है, तथा जिस कामको वह स्वयं परिश्रमसे करता है, उस कामको वह सिद्ध कर ही लेता है ॥ ८ ॥

३७४ समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९ ॥

३७५ स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभि- रेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० ॥

३७६ श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११ ॥

अर्थ— [३७४] (आसां अग्रिमा) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह (समुद्रं अव तस्थे) समुद्रकी सीमा तक जाकर प्रसिद्ध होती है । (यस्मिन् आयता) जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, (सवनं न रिष्यति) उस यज्ञमें किसी तरहकी हिंसा नहीं की जाती । (यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते) जिस जगह पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि रहती है, (अत्र) वहां (क्रवणस्य हार्दि) कर्म करनेवालेके हृदयके मनोरथ (न रेजते) कभी व्यर्थ नहीं होते ॥ ९ ॥

१ आसां अग्रिमा समुद्रं अव तस्थे— इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमा तक जाकर प्रसिद्ध होती है ।

२ यस्मिन् आयता सवनं न रिष्यति— जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, उन यज्ञोंमें किसी तरहकी हिंसा नहीं होती ।

३ यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र क्रवणस्य हार्दि न रेजते— जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहां उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जातीं ।

[३७५] (स हि) वही प्रकाशक है, हम उस (क्षत्रस्य मनसस्य) बलशाली मनवाले (एव- अवदस्य) उत्तम वाणीवाले (यजतस्य) पूज्य (सध्रेः) सबको धारण करनेवाले (अवत्सारस्य) अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यके (विदुषा चित् अर्ध्यं) विद्वानोंके द्वारा भी पूजनीय उस (शविष्ठं वाजं) बल और अन्नको (रण्वभिः चित्तिभिः) सुन्दर स्तोत्रोंसे (स्पृणवाम) चाहते हैं ॥ १० ॥

[३७६] (अदितिः श्येनः) अदितिका पुत्र श्येन (आसां) इन सोमरसोंका स्वामी है । इसका (मदः कक्ष्यः) आनन्द हृदयको भर देता है, इसलिए (विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः) सबके द्वारा चाहने योग्य, पूज्य और बलदायी इस सोमको (अन्यं अन्यं अर्थयन्ति) सभी जन चाहते हैं, और (ते) वे (एतवे) प्रगति करनेके लिए (विषाणं परिपानं) विशेष आनन्ददायक इस पानको (अन्ति विदुः) हमेशा प्राप्त करते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— ऋचाओंमें जो सर्व श्रेष्ठ ऋचा है, वह सारे संसारमें प्रसिद्ध होती है और जिन यज्ञोंमें ऐसी पवित्र ऋचायें बोली जाती हैं, उन पवित्र यज्ञोंमें किसी तरहकी हिंसा नहीं होती । इस मंत्रसे निश्चित होता है, कि वेदमंत्रों द्वारा किए जानेवाले यज्ञोंमें हिंसा निषिद्ध है । यज्ञ पवित्र होनेके कारण वहां होनेवाली बुद्धि भी पवित्र ही होती है, और जहां बुद्धि पवित्र होती है, वहां पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यके हृदयकी अभिलाषायें भी पूरी होती हैं ॥ ९ ॥

वह सूर्य प्रकाशक है । उसका मन बहुत ही शक्तिशाली है, उसकी वाणी मधुर है, वह पूज्य, सबको धारण करनेवाला और अन्धकारका नाश करनेवाला है । उसका जो बल है, उसे विद्वान् जन भी प्राप्त करना चाहते हैं, उसी बलको हम भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १० ॥

अदितिका पुत्र श्येन इस सोमको लाया था, इसलिए वही इसका स्वामी है इस सोमका आनन्द पीनेवालेके हृदय को भर देता है । इसलिए सबके द्वारा चाहे जाने योग्य पूज्य और बलदायी इस सोमको सभी जन चाहते हैं ॥ ११ ॥

३७७ सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद् बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥ १२ ॥
३७८ सुतंभरो यजमानस्य सत्पति- विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयो- ऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ १३ ॥
३७९ यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १४ ॥

अर्थ— [३७७] (यत्) जो (ईं गणं) इस देवोंके गणकी (सु प्रयावभिः) उत्तम स्तुतियोंसे (भजते) उपासना करता है, वह (सदापृणः) हमेशा धनसे भरपूर (यजतः) यज्ञ करनेवाला, (बाहुवृक्तः) बाहुओंसे कुटिल जनोंका नाश करनेवाला, (श्रुतवित्) ज्ञानसे सम्पन्न और (तर्यः) शक्तिशाली होकर (द्विषः वि वधीत्) शत्रुओंको मारता है। (सः) वह मनुष्य (वरा उभा प्रति एति) श्रेष्ठतासे युक्त दोनोंमें प्रगति करता जाता है, (च) और (भाति) प्रकाशित होता है ॥ १२ ॥

१ यः ईं गणः भजते सः वरा उभा प्रति एति— जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है।

[३७८] यह यज्ञ (यजमानस्य सुतंभरः) यजमानके पुत्रका भरण पोषण करनेवाला है, (सत्पतिः) सज्जनोंका पालक और स्वामी है। (सः) वह यज्ञ (विश्वासां धियां ऊधः) सभी तरहके उत्तम कर्मोंका स्रोत है, और (उत् अंचनः) वही सब तरहके कर्मोंको प्रकट करता है। इसीके लिए (धेनुः रसवत् पयः शिश्रिये) गाय सारवाले दूधको धारण करती है और (भरत्) भरपूर देती है। (अनुब्रुवाणः अधि एति) स्तुति करनेवाला ही इसे प्राप्त करता है (न स्वपन्) सोनेवाला नहीं ॥ १३ ॥

१ यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः— यह यज्ञ यजमानके पुत्रका भरण पोषण करनेवाला और सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है।
२ विश्वासां धियां ऊधः— यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्रोत है।
३ धेनुः रसवत् पयः भरत्— गाय इसी यज्ञके लिए सारयुक्त दूध देती है।
४ अनुब्रुवाणः अधिः एति न स्वपन्– स्तुति करनेवाला ही इस दूधको प्राप्त कर सकता है, सोनेवाला नहीं।

[३७९] (यः जागार) जो हमेशा जागता रहता है (तं ऋचः कामयन्ते) उसीको ऋचायें चाहती हैं। (यः जागार) जो जागता रहता है, (तं उ सामानि यन्ति) उसीके पास साम जाते हैं (यः जागार) जो जागता रहता है, (तं अयं सोमः आह) उससे यह सोम कहता है, (अहं तव अस्मि) मैं तेरा हूं (तव सख्ये नि ओकः) तेरी ही मित्रतामें मैंने अपना निवास बना लिया है ॥ १४ ॥

१ यः जागार तं ऋचः कामयन्ते— जो सदा जागता रहता है उसे ही ऋचायें अर्थात् ज्ञान चाहते हैं।
२ यः जागार, तं सामानि यन्ति— जो सदा जागता रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं।
३ यः जागार, तं अयं सोमः आह, अहं तव अस्मि, सख्ये नि ओकः— जो जागता रहता है, उसीसे यह सोम कहता है कि मैं तेरा हूँ और तेरी मित्रतामें ही मैं रहूंगा।

भावार्थ— जो व्यक्तिको छोडकर समुदायकी उपासना करता है, अर्थात् जो वैय्यक्तिक उन्नतिको छोडकर सामुदायिक उन्नतिको अपना उद्देश्य बनाता है वह सदा ऐश्वर्य सम्पन्न और ज्ञानसे सम्पन्न होकर अपने शत्रुओंका नाश करता है। इस प्रकार वह धनके द्वारा सांसारिक सुखोंको प्राप्त करके अभ्युदय और निःश्रेयसके ज्ञानको प्राप्त करता हैं ॥ १२ ॥

यह यज्ञ अपने सामर्थ्यसे यज्ञ करनेवालेके पुत्र अर्थात् कुटुम्बियोंकी रक्षा करता है, उनका पालन पोषण करता है। यज्ञ करनेसे घरकी हवा साफ रहनेसे उस घरके सदस्य स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं। यह यज्ञ सज्जनोंका पालक है, यज्ञोंमें केवल सज्जन ही जाते हैं। यह यज्ञ ही सब तरहके उत्तम कर्मोंका स्रोत है, इसीसे सब उत्तम कर्म निकलते हैं। पर इस यज्ञको वही आदमी कर सकता है, जो ज्ञानी है और प्रातः उठकर स्तुतियोंका उच्चारण करता है। जो अज्ञानी प्रातः देरतक सोता रहता है; वह इस यज्ञको नहीं कर सकता ॥ १३ ॥

३८० अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १५ ॥

[४५]

[ऋषिः- सदापृण आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्, ९ पुरस्ताज्ज्योतिः ।

३८१ विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद् वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १ ॥

३८२ वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २ ॥

अर्थ— [३८०] (अग्निः जागार) अग्नि सदा जागता रहता है, अतः (ऋचः तं कामयन्ते) ऋचायें उसीको चाहती हैं। (अग्निः जागार) अग्नि जागता रहता है (तं उ सामानि यन्ति) उसीके पास साम जाते हैं। (अग्निः जागार) अग्नि सदा जागता रहता है, (तं अयं सोमः आह) उससे यह सोम कहता है, (अहं तव अस्मि) मैं तेरा हूँ, (सख्ये नि ओकाः) तेरी मित्रतामें ही मेरा घर है ॥ १५ ॥

[४५]

[३८१] (उक्थैः) स्तुतियोंसे प्रशंसित होकर (दिवः) द्युलोकसे (अद्रिं विस्यन्) वज्रको फेंका, तब (आयत्याः उषसः) आनेवाली उषाकी (अर्चिनः) किरणें (गुः) सर्वत्र फैल गईं। (व्रजिनीः अप अवृत) रात दूर हो गई (स्वः उत् गात्) सूर्य उदय हुआ और उस (देवः) देवने (मानुषीः दुरः वि आवः) मनुष्योंके घरके दरवाजोंको खुला किया ॥ १ ॥

[३८२] (अमतिं न) जिस तरह एक तरुणी सुन्दर रूप धारण करती है, उसी तरह (सूर्यः श्रियं वि सात्) सूर्य शोभाको धारण करता है। (गवां माता) प्रकाशकिरणोंकी माता उषा (जानती) सब कुछ देखती और जानती हुई (उर्वात्) विशाल अन्तरिक्षसे (आ गात्) उदय होती है। (धन्व-अर्णसः) वेगसे बहनेवाले पानियोंवाली नदियां (खाद-अर्णाः) किनारोंतक भरकर बहती हैं। तब (द्यौः) द्युलोक (सुमिता स्थूणा इव) अच्छी तरह नाप-जोखकर बनाये गए खम्भेके समान (दृंहत) दृढ हो गई है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो सदा जागता रहता है अर्थात् प्रयत्नशील रहता है उसको ज्ञान चाहते हैं। जो सदा प्रयत्नशील रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं, उसीके पास जाकर सोम अर्थात् उत्तम बुद्धि जाकर कहती है, कि मैं तेरी ही हूँ और तेरी ही मित्रतामें मैं रहूंगी ॥ १४ ॥

अग्नि अर्थात् ज्ञानी सदा जागता रहता है, वह हमेशा प्रयत्नशील रहता है, इसलिए उसे ज्ञान या विद्याभी चाहती है, उसीके पास साम जाते हैं, उसीके पास उत्तम बुद्धि सदा बनी रहती है ॥ १५ ॥

स्तोत्रोंसे प्रशंसित होकर इन्द्रने द्युलोकसे वज्र अर्थात् अपने प्रकाशको पृथ्वीकी और चलाया, तब उदय होती हुई उषाकी किरणें सर्वत्र फैल गईं। उषाके बाद सूर्य उदय हुआ और सूर्यके उदय होते ही सभी मनुष्योंके घरोंके दरवाजे खुल गए ॥ १ ॥

जिस प्रकार कोई सुन्दरी तरुणी अपने सुन्दर रूपको धारण करती है, उसी तरह यह सूर्य उत्तम शोभाको धारण करता है। तब किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उषा विशाल अन्तरिक्षसे उदय होती है। नदियां भी जलोंसे भरकर बहती हैं और सूर्यके उदय होनेपर द्युलोक भी तेजस्वी होकर दृढ हो जाता है ॥ २ ॥

३८३ अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौ-राविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३ ॥

३८४ सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टै-रिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४ ॥

३८५ एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामा-ऽयाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ ॥

३८६ एता धियं कृणवामा सखायो-ऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [३८३] (अस्मा पूर्व्याय उक्थाय) इस प्राचीन मंत्रके कारण ही (महीनां जनुषे) भूमिको उत्पादक बनानेके लिए (पर्वतस्य गर्भः) मेघका गर्भरूप वृष्टिजल (वि जिहीत) गिरता है। (द्यौः च साधत) द्युलोकसे वृष्टि होती है, तब (आ विवासन्तः) काम करनेवाले (भूम दसयन्त) और अधिक परिश्रम करने लग जाते हैं ॥ ३ ॥

[३८४] हे (इन्द्रा अग्नी) इन्द्र और अग्नि ! मैं तुम दोनोंको (देवजुष्टैः) देवोंके द्वारा सेवनीय (सूक्तेभिः वचोभिः) अच्छी तरहसे बोले गए वचनोंसे (अवसे हुवध्यै) अपनी रक्षाके लिए बुलाता हूँ । (हि) क्योंकि (कवयः सुयज्ञाः आविवासन्तः मरुतः) ज्ञानी, उत्तम रीतिसे पूजनीय तथा तुम्हारी सेवा करनेवाले मरुद्गण भी तुम्हारी (यजन्ति) पूजा करते हैं ॥ ४ ॥

[३८५] हे देवो ! (अद्य) आज हमारे पास (नु एत) शीघ्र ही आओ। हम (सुध्यः भवाम) उत्तम कर्म करते हैं। हम (दुच्छुनाः वरीयः) शत्रुओंमेंसे श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीरोंको (मिनवाम) अच्छी तरह मारें। (सनुतः द्वेषांसि) छिपे हुए शत्रुओंको भी (आरे दधाम) दूर ही रखें। (प्र अञ्चः) आगे उन्नति करते हुए हम (यजमानं अच्छ अयाम) यज्ञ करनेवालेकी ओर सीधे जाएं ॥ ५ ॥

[३८६] हे (सखायः) मित्रो ! (एत) आओ । (या) जिस स्तुतिसे (माता) उषाने (गोः व्रजं) किरण या प्रकाशके समूहको (ऋणुत) उत्पन्न किया, (यया) जिस स्तुतिकी सहायतासे (मनुः विशिशिप्रं जिगाय) मनुने विशिशिप्रको जीता, (यया) जिस स्तुतिकी सहायतासे (वणिक् वंकुः) वंकु वणिक्ने (पुरीषं आप) जल प्राप्त किया, उस (धियं कृणवाम) स्तुतिको हम करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— पर्वत अर्थात् अनेक पर्तोंवाले मेघके अन्दर रहनेवाले जल भूमिकी उत्पादक शक्तिको बढानेके लिए बरसते हैं। पानीके बरसने ही परिश्रम करनेवाले मनुष्य अर्थात् कृषक आदि और अधिक परिश्रम करने लग जाते हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानी, पूजाके योग्य मरुत् भी इन इन्द्र और अग्निकी पूजा करते हैं, अतः हम भी अपनी रक्षाके लिए उत्तम वचनोंसे इन देवोंकी स्तुति करें ॥ ४ ॥

उत्तम कर्म करनेवालेके पास देवगण शीघ्र ही जाते हैं। मनुष्यको चाहिए कि वह स्पष्ट तथा छिपे हुए सभी शत्रुओंका नाश करके यज्ञ करनेवाले सज्जनकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

स्तुतिसे प्रेरित होकर उषा प्रकाशके समूहको उत्पन्न करती है, जिस स्तुतिसे प्रेरित होकर सबके लिए मान्य इन्द्रने वृत्रको मारा तथा जलकी इच्छा करनेवाले कंजूस और कुटिल मनुष्यने भी जल प्राप्त किया, उसी स्तुतिको हम किया करें ॥ ६ ॥

३८७ अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रि-रार्चन् येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद् विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७ ॥
३८८ विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्सं आसां परमे सधस्थे ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥ ८ ॥
३८९ आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥ ९ ॥
३९० आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णो-ऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥ १० ॥

अर्थ— [३८७] (येन) जिस पत्थरसे सोम पीसकर (नवग्वाः) नवग्वोंने (दश मासः) दस महीने तक (आर्चन्) पूजा की, वही (अद्रिः) पत्थर (अत्र) इस यज्ञमें (हस्तयतः) हाथोंसे संयुक्त होकर (अनूनोत्) शब्द करता है । तब (ऋतं यती) यज्ञकी तरफ जाती हुई (सरमा) सरमाने (गाः अविन्दत्) स्तुतियोंको प्राप्त किया, तब (अंगिराः) अङ्गिराने (विश्वानि सत्या चकार) सभी बातोंको सत्य करके दिखाया ॥ ७ ॥

[३८८] (यत्) जब (विश्वे अंगिरसः) सभी अंगिरा (अस्याः माहिनायाः वि उषि) इस पूजनीय उषाके प्रकट होनेपर (गोभिः सं नवन्त) गायोंसे संयुक्त हुए, तब उन्होंने (आसां उत्सः) इन गायोंके दूधको (परमे सधस्थे) अत्यन्त उत्कृष्ट स्थानमें स्थापित किया । (सरमा) सरमाने (ऋतस्य पथा) ऋतके मार्गसे (गाः विदद्) स्तुति प्राप्त की ॥ ८ ॥

१ सरमा ऋतस्य पथा गाः विदद्— प्रगति करनेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ।

२ आसां उत्सः परमे सधस्थे— अंगिरा ऋषियोंने इन गायोंके दूधको सर्वश्रेष्ठ स्थानमें स्थापित किया ।

[३८९] (सूर्यः) सूर्य (सप्ताश्वः) सातों घोडोंसे युक्त होकर (आयातु) आवे (यत्) क्योंकि (उर्विया क्षेत्रं) यह विशाल क्षेत्र (अस्य दीर्घयाथे) इस सूर्यके दीर्घ प्रवासके लिए ही है । (रघुः श्येनः) शीघ्रतासे जानेवाला तथा प्रशंसित गतिवाला यह सूर्य (अन्धः अच्छ पतयत्) हविकी तरफ सीधा जाता है, तथा (युवा कविः) यह तरुण तथा ज्ञानी सूर्य (गोषु गच्छन्) किरणोंके बीचमें रहकर (दीदयत्) प्रकाशित होता है ॥ ९ ॥

[३९०] (यत्) जब सूर्यने (हरितः वीतपृष्ठाः) तेजस्वी और कान्तिसे युक्त पीठवाले घोडोंको (अयुक्त) रथमें जोडा, तब (सूर्यः) सूर्य (शुक्रं अर्णः आ अरुहत्) तेजस्वी जलों पर चढ गया । तब लोग (उद्ना नावं न) जिस प्रकार जलमें डुबी हुई नावको जलसे बाहर निकालते हैं, उसीप्रकार (धीराः) विद्वानोंने उस सूर्यको बाहर (अनयन्त) निकाला, तब (आशृण्वतीः) उनकी स्तुति सुनकर (आपः) जल भी (अर्वाक् अतिष्ठन्) नीचेकी तरफ बहने लगे ॥ १० ॥

भावार्थ— नौ गायोंके स्वामी यजमानोंने दस मासतक सोम कूट पीसकर उसका रस निकाल कर इन्द्रकी पूजा की । उतने समयतक उनके यज्ञमें स्तुतियां होती रहीं । इस प्रकार उनके यज्ञोंमें सभी बातें सत्य प्रमाणित हुईं ॥ ७ ॥

उषाके प्रकट होने पर सभी ऋषियोंने गायोंके महत्त्वको जाना, और उन गायोंके दूधके महत्त्वको जानकर उस दूधको सर्वश्रेष्ठ बताया । इसी प्रकार एक प्रगति करनेवाली स्त्री भी उत्तम मार्गसे चलकर महत्व और लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है ॥ ८ ॥

इस सूर्यमें सात रंगकी किरणें होती हैं, ये सात रंगकी किरणें ही सूर्यके सात घोडे हैं । इन्हीं घोडोंपर सवार होकर यह सूर्य द्युलोकके विस्तृत मार्गसे प्रवास करता है । जब यह ज्ञानी सूर्यकिरणोंके मध्यमें स्थित होता है, वह तब प्रकाशित होता है ॥ ९ ॥

×

३९१ धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन् दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥ ११ ॥

[४६]

[ऋषिः- प्रतिक्षत्र आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः; ७-८ देवपत्न्यः । । छन्दः- जगती; २,८ त्रिष्टुप्,]

३९२ हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुन- र्विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १ ॥

३९३ अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२ ॥

अर्थ— [३९१] हे देवो ! (यया) जिस बुद्धिसे (नवग्वाः) नवग्वोंने (दश मासः अतरन्) दस महीनोंमें समाप्त होनेवाला यज्ञ किया, उस (अप्सु) उत्तम कर्मोंमें लगनेवाली तथा (सु अर्षां) सभी उत्तम ऐश्वर्योंको देनेवाली (वः धियं) तुम्हारी बुद्धिको मैं (दधिषे) धारण करना चाहता हूँ। (अया धिया) इस उत्तम बुद्धिके कारण हम (देवगोपाः स्याम) देवोंसे सुरक्षित हों। और (अया धिया) इस बुद्धिकी सहायतासे हम (अंहः अति तुतुर्याम) पापोंसे दूर हो जाएं ॥ ११ ॥

[४६]

[३९२] (हयः न) घोडा जिस तरह रथके जुवेमें जुड जाता है, उसी तरह (विद्वान्) एक विद्वान् मनुष्य (धुरि) यज्ञकी धुरामें (स्वयं अयुजि) स्वयं जुड जाता है । मैं भी (प्रतरणीं) संकटोंसे पार करनेवाली तथा (अवस्युवं) रक्षण करनेवाली इस यज्ञकी धुराको (वहामि) धारण करता हूँ। (अस्याः) इस धुराको (न विमुचं वश्मि) न छोडना चाहता हूँ (नः पुनः आवृतं) और न धारण ही करना चाहता हूँ । (पुर एता) आगे आगे जाने वाला (विद्वान्) विद्वान् ही मुझे (पथः) उत्तम मार्गसे (ऋजु नेषति) सरलतापूर्वक ले जाएगा ॥ १ ॥

[३९३] (अग्ने इन्द्र वरुण मित्र मरुत उत विष्णो देवाः) हे अग्ने, इन्द्र, वरुण, मित्र, मरुत् और विष्णु आदि देवो ! मुझे (शर्धः प्र यन्त) बल प्रदान करो । (उभा नासत्या) दोनों अश्विनीकुमार (रुद्रः पूषा भगः अध ग्नाः सरस्वती) रुद्र, पूषा, भग और उनकी शक्तियां तथा सरस्वती मेरी प्रार्थना (जुषन्त) सुनें ॥ २ ॥

भावार्थ— जब सूर्यने अपनी सतरंगी किरणोंसे जलको खींच कर बादल बनाया, तो बादलोंने उसे ढक दिया, इसप्रकार वह जलसे भरे बादलोंके ऊपर जाकर मानों वह उन पर सवार ही हो गया, तब उन बादलोंसे बुद्धिशाली देवोंने उस सूर्यको बाहर निकाला, तब उस सूर्यके चमकने पर बादल भी छिन्न भिन्न हो गए और वृष्टिका जल भी पृथ्वीकी तरफ गिरने लगा ॥ १० ॥

देवोंकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करके ही यज्ञ पूरे होते हैं । देवोंकी वह उत्तम बुद्धि उत्तम कर्मोंमें ही लगनेवाली तथा ऐश्वर्योंको देनेवाली है । इस बुद्धिको धारण करनेसे हम देवोंके द्वारा सुरक्षित हों और उनसे सुरक्षित होकर हम पापोंसे दूर रहें ॥ ११ ॥

जिसप्रकार एक विद्वान् यज्ञकर्म करनेमें प्रवृत्त होता है, उसी प्रकार एक साधारण मनुष्य भी यज्ञ कर्म करता है, पर एक बार यज्ञकर्म शुरु कर देने पर उसकी क्रियाओंसे अभिज्ञ होनेके कारण वह साधारण मनुष्य न उस यज्ञको पूरी तरह समाप्त ही कर पाता है और न उसे बीचमें ही छोड पाता है । ऐसे संकटके समय विद्वान् ज्ञाता मनुष्य ही उसे सरल मार्गसे ले जाकर उसकी रक्षा करता है ॥ १ ॥

अश्विनीकुमार, रुद्र आदि देव हमारी प्रार्थना सुनें तथा अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देव हमें बल प्रदान करें ॥ २ ॥

३९४ इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३ ॥

३९५ उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनो॒त त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४ ॥

३९६ उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद् दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद् वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५ ॥

३९७ उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गम॒दुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६ ॥

अर्थ—[३९४] मैं (ऊतये) अपनी रक्षाके लिए (इन्द्राग्नी) इन्द्र, अग्नि (मित्रावरुणा) मित्र, वरुण (अदितिं स्वः) अदिति आदित्य (पृथिवीं द्यां मरुतः) पृथिवी द्युलोक, मरुत् (पर्वतान् अपः) पर्वत, जल (विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं) विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, (भगं) भग और (नु शंसं सवितारं) निश्चयसे प्रशंसाके योग्य सविता इन सभी देवोंको (हुवे) बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

[३९५] (उत विष्णुः नः) और विष्णु हमारे लिए (उतः अस्रिधः वातः) और अहिंसनीय वायु देव (उत द्रविणोदाः सोमः) और धनको देनेवाला सोम (मयस्करत्) हमें सुख प्रदान करे । (उत ऋभवः) और ऋभुगण (उत अश्विना) और अश्विदेव (उत त्वष्टा) और त्वष्टा (उत विभ्वा) और विभ्वा (नः राये अनु मंसते) हमें ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए स्वीकृति दें ॥ ४ ॥.

[३९६] (उत) और (त्यत् दिविक्षयं यजतं) वह द्युलोकमें रहनेवाले तथा पूज्य (मारुतं शर्धः) मरुतोंका दल (नः बर्हिः आसदे) हमारे यज्ञमें बैठनेके लिए (आ गमत्) आवे । (बृहस्पतिः) बृहस्पति (नः) हमें (वरूथ्यं शर्म) घरमें मिलनेवाले सभी सुख (नः यमत्) हमें प्रदान करे । (उत) और (पूषा वरुण मित्र अर्यमा) पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा भी हमें सुख दें ॥ ५ ॥

[३९७] (उत) और (त्ये सुशस्तयः पर्वतासः) वे प्रशंसाके योग्य पर्वत तथा (सुदीतयः नद्यः) उत्तम तेजस्वी नदियां (नः त्रामणे भुवन्) हमारी रक्षाके लिए तत्पर रहें । (विभक्ता भगः) धनोंका विभाग करनेवाला भग देवता अपने (शवसा अवसा) बल और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास (आगमत्) आवे तथ (उरुव्यचाः अदितिः) विशाल तेजवाली अदिति देवी (मे हवं श्रोतु) मेरी प्रार्थना सुने ॥ ६ ॥

भावार्थ— मैं अपनी रक्षाके लिए शक्तिशाली, ज्ञानी, मित्रके समान हितकारी, सबके द्वारा वरणीय, अहिंसनीय, प्रकाशस्वरूप, विस्तृत, द्युलोकके समान तेजस्वी, व्यापक, पोषण, ज्ञानके स्वामी, ऐश्वर्यशाली और सबको उत्पन्न करनेवाले परमात्माको बुलाता हूँ ॥ ३ ॥

विष्णु, अहिंसक वायु, सोम, ऋभु, अश्विनौ, त्वष्टा और विभ्वा आदि देव हमें सुख प्रदान करें और ऐश्वर्यशाली बनायें ॥ ४ ॥

द्युलोकमें रहनेवाला वह पूज्य मरुतोंका बल हमारे यज्ञमें बैठनेके लिए हमारे पास आवे । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देव भी हमें घरमें मिलनेवाले सभी सुख प्रदान करें ॥ ५ ॥

वे प्रशंसाके योग्य पर्वत तथा तेजसे भरी हुई नदियां हमारी रक्षा करनेके लिए सदा तत्पर रहें । धनोंका विभाग करनेवाला भग देवता अपने बल और संरक्षणके साधनोंसे युक्त होकर हमारे पास आवे तथा अदिति हमारी प्रार्थना सुने ॥ ६ ॥

३९८ देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
या: पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥ ७ ॥

३९९ उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नी-रिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ ॥

[४७]

[ऋषिः- प्रतिरथ आत्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

४०० प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १ ॥

अर्थ— [३९८] (देवानां पत्नीः) देवोंकी पालक शक्तियां (उशतीः) अपनी इच्छासे या स्वयं प्रेरित होकर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें, तथा (तुजये वाजसातये) पुत्रकी तथा अन्नकी प्राप्तिके लिए (नः प्र अवन्तु) हमारी रक्षा करें । (याः) जो देवियां (पार्थिवासः) पृथ्वीपर स्थित हैं, (याः) जो (अपां व्रते अपि) जलोंके स्थान अन्तरिक्ष या द्युलोकमें रहती हैं, (ताः देवीः) वे देवियां (सुहवाः) हमारे द्वारा अच्छी तरह बुलाई जाकर (शर्म यच्छत) हमें सुख प्रदान करें ॥ ७ ॥

[३९९] (उत) उसी तरह (ग्नाः) दिव्य स्त्रियां तथा (देवपत्नीः) देवोंकी पालक शक्तियां अर्थात् (इन्द्राणी अग्नायी) इन्द्रकी शक्ति, अग्निकी शक्ति तथा (राट् अश्विनी) तेजसे प्रदीप्त होनेवाली अश्विनीकुमारोंकी पत्नियां (वि अन्तु) हमारी रक्षा करें तथा (देवीः रोदसी वरुणानी) दिव्य गुणोंसे युक्त रोदसी और वरुणकी शक्तियां (आ वि अन्तु) चारों ओरसे हमारी रक्षा करें, तथा (जनीनां यः ऋतुः) सबको उत्पन्न करनेवाली इन शक्तियोंका जो काल है, वह (शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ८ ॥

[४७]

[४००] (ब्रुवाणाः) प्रशंसित (मही माता) विस्तृत, सबको उत्पन्न करनेवाली यह उषा (दुहितुः बोधयन्ती) अपनी पुत्री पृथ्वीको जगाती हुई तथा (प्रयुंजती) लोगोंको अपने अपने कामोंमें लगाती हुई (देवः एति) द्युलोकसे प्रकाशित होती है । (आ विवासन्ती) सबकी सेवा करती हुई यह (युवतिः) तरुणी उषा (मनीषा जोहुवाना) उत्तम बुद्धिपूर्वक बुलाई जाती हुई (सदने) घरमें अपने (पितृभ्यः आ) पालक देवोंके साथ आती है ॥ १ ॥

भावार्थ— देवोंका पालन करनेवाली उनकी शक्तियां स्वयं अपनी इच्छासे प्रेरित होकर पुत्र और अन्नकी प्राप्तिके लिए हमारी रक्षा करें, तथा पृथ्वी पर तथा अन्तरिक्ष एवं द्युलोकमें रहनेवाली जो देवियां हैं, वे हमारे द्वारा अच्छी तरह बुलाई जाकर हमें सुख प्रदान करें ॥ ७ ॥

देवोंका पालन करनेवाली उनकी शक्तियां अर्थात इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंकी शक्तियां हमारी रक्षा करें तथा दिव्य गुणोंसे युक्त रोदसी और वरुणकी शक्तियां हमारी रक्षा करें ॥ ८ ॥

सबके द्वारा प्रशंसित तथा सबको उत्पन्न करनेवाली यह उषा पृथ्वी पर अपना प्रकाश फैलाती हुई तथा लोगोंको अपना काम करनेके लिए प्रेरित करती हुई द्युलोकसे प्रकाशित होती है । प्रातःकालके समय हर घरमें उषाका प्रकाश फैलते ही सभी देव प्रविष्ट होजाते हैं ॥ १ ॥

४०१ अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २ ॥
४०२ उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३ ॥
४०३ चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४ ॥
४०४ इदं वपुर्निवचनं जनास श्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥ ५ ॥

अर्थ— [४०१] (अजिरासः) सदा गति करनेवाली (अपः ईयमानाः) कर्मोंको प्रवृत्त करती हुई (अमृतस्य नाभिं आतस्थिवांसः) अमृत अर्थात् सूर्यकी नाभिमें स्थित (अनन्तासः) अनन्त (उरवः) विशाल तथा (पन्थाः) सदा चलनेवाली किरणें (द्यावापृथिवी विश्वतः परि यन्ति) द्यु और पृथ्वीके चारों ओर घूमती है ॥ २ ॥

[४०२] (उक्षा) जलसे सिंचन करनेवाला तथा (समुद्रः) जलका भण्डार (अरुषः सुपर्णः) तेजस्वी तथा तेजस्वी किरणोंवाला यह सूर्य अपने (पितुः) पालक आकाशके (पूर्वस्य योनिं) पूर्व स्थानमें (आ विवेश) प्रविष्ट हो गया है । (पृश्निः अश्मा) अनेक रंगोंवाली उल्काके समान यह सूर्य (दिवः मध्ये निहितः) आकाशके बीचमें स्थापित किया गया है । वह आकाशमें (वि चक्रमे) घूमता है और (रजसः अन्तौ पाति) द्युलोकके दोनों अन्तिम भागोंकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

[४०३] (चत्वारः) चार मुख्य दिशायें (क्षेमयन्तः) अपने कल्याणकी इच्छा करती हुई (ईं बिभ्रति) इस सूर्यको धारण करती हैं । (दश) दस दिशायें (गर्भं) गर्भरूपमें स्थित इस सूर्यको (चरसे) चलने फिरनेके लिए (धापयन्ते) परिपुष्ट करती हैं । (अस्यः) इस सूर्यकी (त्रिधातवः परमाः गावः) तीनों लोकोंको धारण करनेवाली उत्कृष्ट किरणें (सद्यः) उदय होनेके बाद ही (दिवः अन्तान् परि चरन्ति) द्युलोकके अन्तिम भागोंमें घूमने लगती हैं ॥ ४ ॥

[४०४] (यत् नद्यः चरन्ति) जिसके कारण नदियां बहती हैं, और (आपः तस्थुः) जल स्थिर रहते हैं, उस सूर्यका (इदं वपुः) यह शरीर, हे (जनासः) मनुष्यो ! (निवचनं) स्तुतिके योग्य है । (मातुः इहेह जाते) माताके गर्भसे यहीं उत्पन्न हुए (ईं) इस सूर्यको (यम्या) संसारका नियमन करनेवाले तथा (सबन्धू) भाईकी तरह रहनेवाले (द्वे) दो लोक (बिभृतः) धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— सूर्यकी ये किरणें हमेशा गति करनेवालीं तथा सवेरे होनेके साथ ही लोगोंको अपने अपने कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाली, अमृतरूप सूर्यकी नाभिमें रहनेवाली हैं । ये किरणें द्युलोक और पृथ्वीके चारों ओर घूमती हैं ॥ २ ॥

यह सूर्य जलोंको खींचकर इकट्ठा करता रहता है,और फिर उन जलोंसे पृथ्वीको सींचता है । यह रोज अपने पिता द्युलोककी पूर्वदिशामें प्रकट होता है । द्युलोकके बीचमें रहकर यह उसीप्रकार चमकता है कि मानों यह कोई अनेक रंगोंवाली उल्का हो । यह रोज द्युलोकके पूर्व और पश्चिम इन दो छोरोंको नापता हुआ उनकी रक्षा करता है ॥ ३ ॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार मुख्य दिशायें अपने कल्याणकी इच्छा करती हुईं इस-सूर्यको धारण करती हैं । यह सूर्य पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य, ऊर्ध्व और अधः इन दसों दिशाओंके बीचमें गर्भके समान रहता है । ये दिशायें ही इस सूर्यको चलने फिरनेके लिए धारण करती हैं । इस सूर्यकी किरणें पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीनों लोकोंको धारण करती हैं । सूर्यके उदय होते ही ये किरणें द्युलोकके सभी छोरों पर पहुंच जाती हैं ॥ ४ ॥

४०५ वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६ ॥

४०६ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ ॥

[४८]

[ऋषिः- प्रतिभानुरात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- जगती ।]

४०७ कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १ ॥

अर्थ— [४०५] जिसप्रकार (मातरः पुत्राय वस्त्रा वयन्ति) मातायें अपने अपने पुत्रके लिए कपडा बुनती हैं, उसी तरह (अस्मा) इस सूर्यके लिए (धियः अपांसि) स्तुतियां और यज्ञादि कर्म (वि तन्वते) किए जाते हैं। (वृषणः उपप्रक्षे) इस बलवान् सूर्यके प्रकट होते ही इसकी (वध्वः) पत्नीरूप किरणें (मोदमानाः) प्रसन्न होती हुई (दिवस्पथा) द्युलोकके मार्गसे (अच्छ यन्ति) चारों ओर फैल जाती हैं ॥ ६ ॥

[४०६] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (अस्मभ्यं शं योः) हमारे सुखप्राप्ति एवं दुःखनिवृत्तिके लिए (तत् इदं शस्तं अस्तु) वह यह स्तुति हो । हे (अग्ने) अग्ने ! (इदं शस्तं अस्तु) यह स्तुति तेरे लिए हो । हम (गाधं उत प्रतिष्ठां अशीमहि) उत्तम स्थान और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त करें । (बृहते सादनाय) संसारके लिए सबसे बडे आश्रय स्थान (दिवे) उस द्युलोकको (नमः) नमस्कार हो ॥ ७ ॥

[४८]

[४०७] (वयं) हम (स्वक्षत्राय स्वयशसे) अपने बल तथा अपने यशकी प्राप्तिके लिए (प्रियाय महे धाम्ने) सबको प्रिय लगनेवाले उस महान् तेजके लिए (कत् उ मनामहे) किस तरहकी स्तुति करें ? (यत्) क्योंकि (मायिनी) मायासे युक्त वह (आमेन्यस्य रजसः वृणाना) अपरिमित अन्तरिक्षको चारों ओरसे घेरकर (अभ्रे अपां वि तनोति) बादलोंमें पानीको फैलाती है ॥ १ ॥

भावार्थ— इसी सूर्यके कारण नदियां बहती हैं और अन्तरिक्षमें जल स्थिर रहते हैं इस सूर्यका मण्डल बहुत ही दर्शनीय और स्तुतिके योग्य होता है । यह जब आकाशके गर्भसे उत्पन्न होता है, तब इसे संसारका नियमन करनेवाले तथा बन्धुओंकी तरह परस्पर प्रेमसे रहनेवाले दो लोक धारण करते हैं ॥ ५ ॥

जिस तरह मातायें अपने अपने पुत्रोंके लिए स्नेहपूर्वक कपडा बुनती हैं, उसी तरह इस सूर्यके लिए लोग प्रेमसे स्तुति और यज्ञ आदि कर्म करते हैं । जैसे ही यह बलवान् सूर्य प्रकट होता है, उसी समय उस सूर्यकी पत्नीरूप किरणें प्रसन्न होती हुई द्युलोकके मार्गसे चारों ओर फैल जाती हैं ॥ ६ ॥

हम सुखप्राप्ति तथा रोगनिवृत्तिके लिए मित्र,वरुण तथा अग्निकी स्तुति करते हैं । इनकी स्तुति करके हम उत्तम स्थान और उत्तम प्रतिष्ठाको प्राप्त हों । जो संसारका सबसे बडा आश्रय-स्थान है, उस द्युलोकको हम नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

माया करनेवाली यह बिजली अपरिमित अन्तरिक्षको चारों ओरसे घेरती है और बादलोंमें पानीको फैलाती है । ऐसी बिजलीकी हम किस तरह स्तुति करें कि जिससे हम बल और यशको प्राप्त कर सकें ॥ १ ॥

४०८ ता अ॑त्नत व॒युनं॑ वी॒रव॑क्षणं स॒मा॒न्या वृ॒तया॒ विश्व॒मा रजः॑ ।
अपो॒ अपा॑ची॒रप॑रा॒ अपे॑जते॒ प्र पूर्वा॑भिस्तिरते देव॒युर्जनः॑ ॥ २ ॥
४०९ आ ग्राव॑भिरह॒न्ये॑भिर॒क्तुभि॒र्वरि॑ष्ठं॒ वज्र॒मा जि॑घर्ति मा॒यिनि॑ ।
श॒तं वा॒ यस्य॑ प्र॒चर॒न्त्स्वे दमे॑ संव॒र्तय॑न्तो॒ वि च॑ व॒र्तय॒न्नहा॑ ॥ ३ ॥
४१० ताम॑स्य री॒तिं प॑र॒शोरि॑व॒ प्रत्यनी॑कमख्यं भु॒जे अ॑स्य॒ वर्प॑सः ।
सचा॒ यदि॑ पितु॒मन्त॑मिव॒ क्षयं॒ रत्नं॒ दधा॑ति॒ भर॑हूतये वि॒शे ॥ ४ ॥
४११ स जि॒ह्वया॒ चतु॑रनीक ऋञ्जते॒ चारु॒ वसा॑नो॒ वरु॑णो॒ यत॒न्नरि॑म् ।
न तस्य॑ विद्म पुरुष॒त्वता॑ व॒यं यतो॒ भगः॑ सवि॒ता दाति॒ वार्य॑म् ॥ ५ ॥

अर्थ— [४०८] (ताः) उन उषाओंने (वीरवक्षणं वयुनं अत्नत) वीरोंके उत्साहको बढानेवाले कर्मका विस्तार किया तथा (समान्या वृतया) एक समान आचरणसे (विश्वं रजः आ) सारे लोकोंको घेर लिया । (देवयुः जनः) देव बननेकी इच्छावाले मनुष्य, जब (अपराः अपाचीः अप ईजते) एक उषा पश्चिमकी ओर मुख करके दूर चली जाती है, तब अपने (अपः) कर्मोंको (पूर्वाभिः प्र तिरते) आगे आनेवाली उषाओंमें फैलाते हैं ॥ २ ॥

[४०९] (यस्य शतं वा) जिस इन्द्र अर्थात् सूर्यकी सैंकडों किरणें (संवर्तयन्तः) प्राणियोंकी आयुको कम करती हुई (च) तथा (अहा विवर्तयन्) दिनोंके चक्रको घुमाती हुई (स्वे दमे प्रचरन्) अपने घर अर्थात् द्युलोक में घूमती रहती हैं, वह इन्द्र (अहन्येभिः अक्तुभिः) दिन और रात बराबर (ग्रावभिः) पत्थरोंसे कूटकर पीसे गए सोमसे उत्साहित होकर (मायिनि) माया करनेवाले वृत्रके ऊपर (वरिष्ठं वज्रं आ जिघर्ति) अपने श्रेष्ठ वज्रको फेंकता है ॥ ३ ॥

[४१०] (परशोः इव) परशुके समान तीक्ष्ण (अस्य) इस अग्निके (तां रीतिं) उस स्वभावको जानता हूँ । (वर्पस्य अस्य) सुन्दर रूपवाले इस अग्निका (अनीकं) किरण समूह (भुजे) ऐश्वर्य प्रदान करनेके लिए है, यह मैं (प्रति अख्यं) स्पष्ट कहता हूँ । (यत्) क्योंकि यह अग्नि (सचा) सहायक होकर (पितुमन्तं क्षयं इव) पालकसे युक्त घरके समान (भरहूतये) संग्राममें (विशे रत्नं दधाति) वीर मनुष्यको रत्न प्रदान करता है ॥ ४ ॥

[४११] (चतुरनीकः) चारों ओर ज्वालाओंको फैलानेवाला, (चारु वसानः) सुन्दर तेजको धारण करनेवाला (वरुणः) वरणीय (अरिं यतन्) शत्रुको मारनेवाला (सः) वह अग्नि (जिह्वया ऋंजते) जीभ या ज्वालाओंसे स्वयंको सुशोभित करता है । (यतः) जिस कारण (भगः सविता) ऐश्वर्यवान् तथा सबको प्रेरणा देनेवाला यह अग्नि (वार्यं दाति) वरणीय धनोंको देता है, इसलिए (वयं) हम (तस्य) उस अग्निके (पुरुषत्वता) पराक्रमका पार (न विद्म) नहीं पा सकते ॥ ५ ॥

भावार्थ— ये उषायें जब प्रकट होती हैं तब इनमें एक तरहकी स्फूर्ति होती है, जो वीरोंके उत्साहको बढाती है और उदय होनेके साथ ही यह अपनी प्रकाश किरणोंसे सब लोकोंको घेर लेती है, तब देवोंकी पूजाके लिए यज्ञ करनेवाले मनुष्य यज्ञ शुरु करते हैं, पर जब पहली उषा अस्त हो जाती है और उनका यज्ञ कर्म समाप्त नहीं होता, तब आगे आनेवाली उषाओंमें उन्हीं अधूरे यज्ञकर्मोंको फिर आगे बढाते हैं ॥ २ ॥

इस इन्द्र रूपी सूर्यकी किरणें प्रति दिन आकर एक एक दिन प्राणियोंकी आयुको कम करती है और दिन रातके चक्रको घूमाती हुई अपने घर द्युलोकमें घूमती रहती हैं । इन्द्र भी दिन रात लगातार कूटे गए सोमरसोंको पीकर माया करनेवाले वृत्रके उपर अपना श्रेष्ठ वज्र फेंकता है ॥ ३ ॥

इस अग्निका स्वभाव फरसेके समान तीक्ष्ण है, अर्थात् जो भी पदार्थ फरसेके निकट आता है, उसे यह काट देता है, उसी तरह जो भी पदार्थ पासमें आता है, उसे यह अग्नि जला डालता है । इस अग्निका यह किरण समूह सबको ऐश्वर्य प्रदान करता है, क्योंकि यह वीर मनुष्यका सहायक होकर उसे उसी तरह रत्न आदि प्रदान करता है कि जिस प्रकार एक पालक अपने घरमें रहनेवाले सदस्योंको अन्नादि प्रदान करता है ॥ ४ ॥

[४९]

[ऋषिः- प्रतिप्रभ आत्रेयः, (५ तृणपाणिः)। देवता- विश्वे देवाः। छन्दः- त्रिष्टुप्।]

४१२ देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १ ॥

४१३ प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान् त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ् ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २ ॥

४१४ अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्नि- रहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३ ॥

---

[४९]

अर्थ— [४१२] (आयोः भगं च रत्नं विभजन्तं) मनुष्यको ऐश्वर्य और रत्न देनेवाले (सवितारं देवं) सबके प्रेरक देवको (अद्य: वः एषे) आज तुम्हारे हितके लिए बुलाता हूँ। हे (नरा पुरुभुजा अश्विना) नेताओ तथा अनेक तरहसे भोग्य पदार्थोंको देनेवाले अश्विनी देवो! मैं तुमसे (सखीयन्) मित्रताकी इच्छा करते हुए (वां) तुम दोनोंको (दिवे दिवे आ ववृत्यां) प्रति दिन अपनी ओर बुलाता हूँ ॥ १ ॥

[४१३] हे मनुष्य! (असुरस्य प्रति प्रयाणं विद्वान्) उस प्राणदाता सूर्यके उदयको जानकर (सु उक्तैः) उत्तम वचनोंसे (सवितारं देवं) सविता देवकी (दुवस्य) स्तुति कर। (आयोः) मनुष्यको (ज्येष्ठं रत्नं विभजन्तं) श्रेष्ठ रत्न देनेवाले उस देवको (विजानन्) जानकर (नमसा उप ब्रुवीत) नम्रतापूर्वक उसकी स्तुति कर ॥ २ ॥

[४१४] (पूषा भगः अदितिः) पूषा, भग और अदिति ये देव अपने अपने (अदत्रया वार्याणि) खाने योग्य और ग्रहण करने योग्य हवियोंको (दयते) खाते हैं। तथा (इन्द्रः विष्णुः वरुणः मित्रः अग्निः) इन्द्र, विष्णु, वरुण, मित्र और अग्नि ये पांचों (दस्माः) सुन्दर देव (भद्रा अहानि जनयन्त) कल्याणकारी दिनोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— वह अग्नि जब प्रज्वलित होता है, तब उसकी ज्वालायें चारों दिशाओंमें फैलने लगती हैं, उसका रूप सुन्दर हो जाता है, और अन्धकाररूप अपने शत्रुको नष्ट कर देता है। यह अपने भक्तोंको सदा ही धन देता रहता है अतः इसके पास कितना धन है और कितना पराक्रम है, यह जानना संभव नहीं ॥ ५ ॥

सबको प्रेरणा देनेवाला देव मनुष्य ऐश्वर्य और रत्न देता है। ऐसे सविता देवको मैं आज बुलाता हूँ। हे अनेक तरहके भोग्य पदार्थ देनेवाले अश्विनी देवो! मैं तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ, इसीलिए मैं तुम्हें अपनी ओर बुलाता हूँ ॥ १ ॥

यह सूर्य उदय होनेके साथ ही सभी जगत्में प्राणोंका संचार करता है। सूर्यकी किरणोंके द्वारा द्युलोक स्थित उत्तम प्राण इस पृथ्वी पर आता है। यही सर्वप्रेरक देव मनुष्योंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसलिए उस देवकी नम्रता पूर्वक स्तुति करनी चाहिए ॥ २ ॥

पूषा, भग और अदिति ये देव अपने अपने खाने योग्य हवियोंको खाते हैं और सुन्दर तथा दर्शनीय इन्द्र, विष्णु वरुण आदि देव कल्याणकारी दिनोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

४१५ तन्नो॑ अन॒र्वा स॑वि॒ता वरू॑थं॒ तत् सिन्ध॑व इ॒षय॑न्तो॒ अनु॑ ग्मन् ।
उप॒ यद् वोचे॑ अध्व॒रस्य॒ होता॑ रा॒यः स्या॑म॒ पत॑यो॒ वाज॑रत्नाः ॥ ४ ॥

४१६ प्र ये वसु॑भ्य॒ ईव॒दा नमो॒ दुर्ये॑ मि॒त्रे वरु॑णे सू॒क्तवा॑चः ।
अवै॒त्वभ्वं॑ कृणु॒ता वरी॑यो दि॒वस्पृ॑थि॒व्योरव॑सा मदेम ॥ ५ ॥

[५०]

[ऋषिः- स्वस्त्यात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः । छन्दः- अनुष्टुप्, ५ पङ्क्तिः ।]

४१७ विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॑ ॥ १ ॥

४१८ ते ते॑ देव नेत॒र्ये चे॒माँ अ॑नु॒शसे॑ ।
ते रा॒या ते ह्या॒३पृचे॒ सचे॑महि सच॒थ्यैः ॥ २ ॥

अर्थ — [४१५] (यत्) जिसकारण (अध्वरस्य होता) इस यज्ञका होता मैं (उप वोचे) स्तुति करता हूँ, इस लिए (अनर्वा सविता) अपराजित सविता देव (नः) हमें (तत् वरूथं) वह संग्रहणीय धन देवे तथा (इषयन्तः सिन्धवः) बहनेवाली नदियां (तत् अनु ग्मन्) उस धनको प्रदान करें। हम (वाजरत्नाः) बल और रत्नोंके स्वामी बनकर (रायः पतयः स्याम) ऐश्वर्योंके स्वामी बनें ॥ ४ ॥

[४१६] (ये वसुभ्यः नमः ईवत्) जो वसुओंको हवि देते हैं, (ये मित्रे वरुणे) जो मित्र और वरुणके लिए (सूक्तवाचः दुः) उत्तम स्तुतियाँ प्रदान करते हैं, उन्हें (अभ्वं) बहुत सारा धन (अव एतु) प्राप्त हो। हे देवो ! उनके लिए (वरीयः कृणुत) श्रेष्ठ सुख प्रदान करो। हम (दिवः पृथिव्योः) द्युलोक और पृथिवी लोकके (अवसा) संरक्षणमें रहकर (मदेम) आनन्दित हों ॥ ५ ॥

[५०]

[४१७] (विश्वः मर्तः) सभी मनुष्य (नेतुः देवस्य) सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवकी (सख्यं वुरीत) मित्रताको स्वीकार करते हैं। (विश्वः) वे सभी मनुष्य (पुष्यसे) पुष्टिके लिए (द्युम्नं वृणीत) तेजको प्राप्त करते हैं और (राये इषुध्यति) ऐश्वर्यके स्वामी बनते हैं ॥ १ ॥

[४१८] हे (नेतः देव) नेता देव ! (ये) जो मनुष्य (ते) तेरी (च इमान्) और इन अन्य देवोंकी (अनुशसे) उपासना करते हैं, (ते ते) वे भी तेरे ही हैं। (ते राया आपृचे) वे धनसे संयुक्त हों तथा (ते) वे हम भी (सचथ्यैः सचेमहि) सभी कामनाओंसे संयुक्त हों ॥ २ ॥

भावार्थ— इस यज्ञको करनेवाला मैं देवोंकी स्तुति करता हूँ। अतः किसीसे भी पराजित या तिरस्कृत न होनेवाला सविता तथा बहनेवाली नदियां हमें धन प्रदान करें और हम भी बल और रत्नोंसे युक्त होकर धनके स्वामी बनें ॥ ४ ॥

जो सबको बसानेवाले देवोंको हवि देते हैं तथा मित्र और वरुणकी उत्तम स्तुति करते हैं, उन्हें बहुत सारा धन मिलता है और उस धनसे उन्हें सुख मिलता है और द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके संरक्षणमें रहकर वे आनन्दित होते हैं ५ ॥

सभी मनुष्य सबको उत्तम मार्गसे ले जानेवाले देवकी मित्रता स्वीकार करके अपनी पुष्टिके लिए तेज प्राप्त करते हैं और फिर धनोंके स्वामी बनते हैं ॥ १ ॥

हे देव ! जो तेरी या अन्य देवोंकी उपासना करते हैं, वे सभी मनुष्य तेरे अपने ही हैं। वे सभी मनुष्य धनसे संयुक्त हों और हमारी भी सभी कामनायें पूरी हों ॥

×

४१९ अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३ ॥
४२० यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४ ॥
४२१ एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तये इषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥ ५ ॥

[५१]

[ऋषिः- स्वस्त्यात्रेयः । देवता- विश्वे देवाः; ४, ६-७ इन्द्रवायू, ५ वायुः । छन्दः- १-४ गायत्री; ५-१० उष्णिक्; ११-१३ जगती त्रिष्टुब्वा १४-१५ अनुष्टुप् ।]

४२२ अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥ १ ॥

अर्थ— [४१९] (नः अतः) हमारे इस यज्ञमें (अतिथीन्) अतिथिके समान पूज्य (नॄन्) विद्वान् मनुष्योंकी (आ) पूजा करो (अतः) इस यज्ञमें (पत्नीः दशस्यत) उन विद्वानोंकी पत्नियोंकी भी पूजा करो । (यूयुविः) वह विघ्न विनाशक (विश्वं पथेष्ठां) सभी मार्गोंमें आनेवाले विघ्नोंको तथा (द्विषः) शत्रुओंको (आरे युयोतु) दूर ही करे ॥ ३ ॥

१ अतः अतिथीन् नॄन् पत्नीः दशस्यत— यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए ।

[४२०] (यत्र वह्निः अभि हितः) जहां अग्नि स्थापित किया गया है, और (द्रोण्यः पशुः) द्रोणी अर्थात् कलशमें रखा हुआ सोमरूपी पशु (दुद्रवत्) दौडता है वहां (नृमणाः) मनुष्योंके मन उत्साहपूर्ण और (वीरपस्त्यः) घर वीर पुत्रपौत्रादियोंसे भर जाते हैं, तथा (अर्णा) समृद्धि भी (धीरा इव) तरुणीके समान (सनिता) विशेष हो जाती है ॥ ४ ॥

[४२१] हे (देव नेतः) दिव्य गुणोंसे युक्त तथा सन्मार्ग पर ले जानेवाले देव ! (ते एषः रथपतिः) तेरा यह रथका स्वामी सारथि (शं रयिः) सुखको देनेवाला तथा ऐश्वर्य प्रदाता है । (इषः स्तुतः) सबके प्रेरक देवकी स्तुति करनेवाले हम (शं राये) कल्याणकारी धनके लिए तथा (शं स्वस्तये) सुखकारी कल्याणके लिए (मनामहे) स्तुति करते हैं । (देवस्तुतः) देवोंकी स्तुति करनेवाले हम सविताकी बार बार स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

[५१]

[४२२] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (हव्यदातये) हवि देनेवाले यजमानके पास (सुतस्य पीतये) सोमरसको पीनेके लिए (विश्वैः ऊमेभिः देवेभिः) सभी संरक्षक देवोंके साथ (आ गहि) आ ॥ १ ॥

भावार्थ— यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी तथा उनके पत्नियोंकी पूजा एवं सेवा करनी चाहिए । ऐसे विद्वान् मनुष्योंकी सेवा मार्गोंमें आनेवाले सभी विघ्नोंको दूर करनेवाली है और सभी शत्रुओंको नष्ट करनेवाली है ॥ ३ ॥

जहां यज्ञवेदिमें अग्नि स्थापित की जाती है तथा कलशका सोम बहने लगता है, उस स्थान पर मनुष्योंके मन उत्साहसे पूर्ण हो जाते हैं, घर पुत्रपौत्रोंसे भर जाते हैं और उस घरकी समृद्धि ऐसी हो जाती है कि जैसे कोई तरुणी समृद्धिसे भरपूर होती है ॥ ४ ॥

दिव्य गुणोंवाले देवका सारथि हमें सुख एवं धन प्रदान करे । हम भी सुख एवं कल्याणकी प्राप्तिके लिए देवोंकी और सविताकी स्तुति करें ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तू यजमानके पास सोम पीनेके लिए आ और अपने साथ हमारी रक्षा करनेवाले देवोंको भी ले आ ॥ १ ॥

४२३ ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् । अग्नेः पिबत जिह्वया ॥ २ ॥
४२४ विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥ ३ ॥
४२५ अयं सोमश्चमू सुतो ऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४ ॥
४२६ वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये । पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥
४२७ इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः । ताञ्जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥ ६ ॥
४२८ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः । निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥ ७ ॥
४२९ सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ ८ ॥

अर्थ— [४२३] (ऋतधीतयः) हे ऋत अर्थात् नियमोंके अनुसार बुद्धिवाले देवो ! तुम (अध्वरं आ गत) यज्ञमें आओ । हे (सत्यधर्माणः) सत्यको धारण करनेवाले देवो ! तुम हवि आदिको (अग्नेः जिह्वया पिबत) अग्निकी ज्वालाओंके द्वारा पीओ ॥ २ ॥

[४२४] हे (सन्त्य विप्र) सेवाके योग्य विद्वान् अग्ने ! तू (प्रातःयावभिः) प्रातःकाल दौडनेवाले घोडोंसे (विप्रेभिः देवेभिः) ज्ञानी और देवोंके साथ (सोमपीतये आ गहि) सोमको पीनेके लिए आ ॥ ३ ॥

[४२५] (चमू सुतः) पत्थरों पर कूटकर निचोडा गया सोम (अमत्रे परिषिच्यते) पात्रोंमें छाना जाता है । यह (इन्द्राय वायवे प्रियः) इन्द्र और वायुके लिए प्रिय है ॥ ४ ॥

[४२६] हे (वायो) वायो ! (वीतये) सोम पीनेके लिए तथा (हव्यदातये) हवि देनेवाले यजमानके लिए (जुषाणः) प्रसन्न होता हुआ तू (प्रयः अभि आ याहि) अन्नकी ओर आ और (सुतस्य अन्धसः पिब) निचोडे हुए अन्नरूप सोमको पी ॥ ५ ॥

[४२७] हे (वायो) वायु ! तू (इन्द्रः च) और इन्द्र दोनों (एषां सुतानां) इन निचोडे गए सोमरसोंको (पीतिं अर्हथः) पीने योग्य हो । अतः तुम (प्रयः अभि) इस अन्नकी ओर आओ और (अरेपसा) अहिंसक होकर तुम दोनों (तान् जुषेथां) उन सोमरसोंको पीओ ॥ ६ ॥

[४२८] (इन्द्राय वायवे) इन्द्र और वायुके लिए (दध्याशिरः सोमासः सुताः) दहीसे मिश्रित सोमरस निचोडे गए हैं । और ये (प्रयः) अन्न (सिन्धवः निम्नं न) जिस प्रकार नदियां सदा नीचेकी ओर बहती हैं, उसी प्रकार (अभि) तुम्हारी ओर (यन्ति) जाते हैं ॥ ७ ॥

[४२९] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अत्रिवत्) अत्रिके समान (विश्वेभिः देवेभिः सजूः) सभी देवोंके साथ (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विनी कुमार तथा उषाके साथ (आ याहि) आ और (सुते रण) सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥ ८ ॥

भावार्थ— इन देवोंकी बुद्धि सदा सत्यनियमोंके अनुसार चलती है और सत्यको धारण करती है ॥ २ ॥

हे सेवाके योग्य ज्ञानवान् अग्ने ! तू प्रातःकाल दौडनेवाले घोडोंसे ज्ञानी और देवोंके साथ सोम पीनेके लिए आ ॥ ३ ॥

पत्थरों पर कूटकर निचोडा गया सोम पात्रोंमें छाना जाता है । यह छाना गया सोम इन्द्र और वायुके लिए प्रिय है ॥ ४ ॥

हे वायो ! तू सोम पीनेके लिए तथा हवि देनेवाले यजमान पर प्रसन्न होनेके लिए तू सोमरसकी तरफ आ और इसे पी ॥ ५ ॥

हे वायु ! तू और इन्द्र दोनों ही देव इन सोमरसोंको पीनेके योग्य हो, अतः तुम दोनों अहिंसक होकर इस सोमरस-रूप अन्नकी तरफ आओ और इन सोमरसोंको पीओ ॥ ६ ॥

दहीसे मिश्रित ये सोमरस इन्द्र वायुके लिए निचोडे जाते हैं और उन्हें प्रदान किए जाते हैं ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! तू सभी देवों, अश्विनी कुमारों और उषाओंके साथ तथा अश्विनी कुमार तथा उषाके साथ आ और इस सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥ ८ ॥

४३० सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ ९ ॥
४३१ सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना । आ याह्यग्ने अत्रिवत् सुते रण ॥ १० ॥
४३२ स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥ ११ ॥
४३३ स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ १२ ॥
४३४ विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥ १३ ॥

अर्थ—[४३०] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अत्रिवत्) अत्रिके समान (मित्रावरुणाभ्यां सजूः) मित्र और वरुणके साथ तथा (विष्णुना सोमेन सजूः) विष्णु और सोमके साथ (आयाहि) आ और (सुते रण) सोमयागमें आनन्दित हो ॥ ९ ॥

[४३१] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (आदित्यैः वसुभिः सजूः) आदित्य और वसुओंके साथ तथा (इन्द्रेण वायुना सजूः) इन्द्र और वायुके साथ (आ याहि) आ और (अत्रिवत् सुते रण) अत्रिके समान सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥ १० ॥

[४३२] (अश्विना) दोनों अश्विनीकुमार (नः स्वस्ति मिमीतां) हमारे लिए कल्याण करें, (भगः स्वस्ति) भग देवता कल्याण करे, (देवी अदितिः) देवी अदिति कल्याण करे । (अनर्वणः असु-रः पूषा स्वस्ति दधातु) अपराजित तथा प्राणदाता पूषा देव हमारे लिए कल्याण प्रदान करे, (सुचेतुना द्यावापृथिवी) उत्तम ज्ञानसे युक्त द्यु और पृथ्वी (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें ॥ ११ ॥

[४३३] हम (स्वस्तये) कल्याणके लिए (वायुं उप ब्रवामहे) वायुकी स्तुति करें । (यः भुवनस्य पतिः) जो भुवनोंका स्वामी है, उस (सोमं) सोमकी (स्वस्ति) कल्याणके लिए स्तुति करता हूँ । (स्वस्तये) अपने कल्याणके लिए (सर्वगणं बृहस्पतिं) सब गणोंके स्वामी बृहस्पतिकी उपासना करता हूँ । तथा (आदित्यासः न स्वस्तये भवन्तु) आदित्य भी हमारे कल्याणके लिए हों ॥ १२ ॥

[४३४] (अद्य) आज (विश्वे देवाः) सभी देव (नः स्वस्तये) हमारे कल्याणके लिए हों, (वैश्वानरः वसुः अग्निः स्वस्तये) सम्पूर्ण विश्वका नेता तथा सबको बसानेवाला अग्नि कल्याण करनेके लिए हो । (देवाः ऋभवः) दिव्य गुणोंसे युक्त ऋभुगण (स्वस्तये) कल्याणके लिए हमारी (अवन्तु) रक्षा करें । (रुद्रः) रुद्र (नः स्वस्ति) हमारे लिए कल्याणकारी हो तथा हमें (अंहसः पातु) पापोंसे बचाये ॥ १३ ॥

भावार्थ—हे अग्ने ! तू मित्र, वरुण, सोम, विष्णु, आदित्य, इन्द्र, वायु आदि देवोंके साथ इस यज्ञमें आकर आनन्दित हो ॥ ९-१० ॥

दोनों अश्विनी कुमार, भग, देवी अदिति कभी पराजित न होनेवाला तथा प्राणदाता पूषा और ज्ञानयुक्त द्यु और पृथ्वी ये सभी हमारा कल्याण करें ॥ ११ ॥

हम अपने कल्याणके लिए वायु, भुवनोंके स्वामी सोम, सब गणोंके स्वामी बृहस्पति तथा आदित्यकी उपासना करते हैं ॥ १२ ॥

सभी देव, सभी विश्वका संचालक तथा सबका जीवनधारक अग्नि, सभी दिव्य गुणोंसे युक्त ऋभु हमारी रक्षा करके हमारा कल्याण करें तथा, पापियोंको रुलानेवाला देव हमारे लिए कल्याणकारी होकर हमें पापोंसे बचाये ॥ १३ ॥

४३५ स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ १४ ॥
४३६ स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ १५ ॥

[५२]

[ऋषिः— श्यावाश्व आत्रेयः । देवता— मरुतः । छन्दः— अनुष्टुप्; ६, १६-१७ पंक्तिः ।]

४३७ प्र श्यावाश्व धृष्णुयाऽर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।
ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥ १ ॥
४३८ ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २ ॥

अर्थ— [४३५] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम हमारा (स्वस्ति) कल्याण करो, (पथ्ये रेवति) हे मार्गकी रक्षा करनेवाली तथा धनसम्पन्न देवी ! (स्वस्ति) हमारा कल्याण करो । (इन्द्रः च अग्निः च) इन्द्र और अग्नि (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करें । हे (अदिते) अदिति देवी ! (नः स्वस्ति कृधि) हमारा कल्याण कर ॥ १४ ॥

[४३६] हम (सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमाके समान (स्वस्ति पन्थां अनुचरेम) कल्याणप्रद मार्ग पर ही चलें । हम (पुनः ददता) बार बार दान देते हुए (अघ्नता) परस्पर हिंसा न करते हुए तथा (जानता) ज्ञानसे युक्त होकर (सं गमेमहि) संगठित होकर चलें ॥ १५ ॥

१ सूर्याचन्द्रमसौ इव स्वस्ति पन्थां अनु चरेम— सूर्य और चन्द्रमाके समान हम कल्याणके मार्ग पर चलें ।

२ पुनः ददता अघ्नता जानता सं गमेमहि— बार बार दान देते हुए, एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर हम सभी संगठित होकर चलें ।

[५२]

[४३७] हे (श्याव-अश्व) भूरे रँगके घोडे पर बैठनेवाले वीर ! (धृष्णु-या) शत्रुका पराभव करनेमें उपयुक्त बलसे परिपूर्ण तू (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सराहनीय वीर मरुतोंके साथ (प्र अर्च) उनकी पूजा कर (ये यज्ञियाः) जो पूज्य वीर (अनु स्व-धं) अपनी धारक शक्तिसे युक्त हो, (अ-द्रोघं) द्रोहरहित (श्रवः) कीर्ति पाकर (मदन्ति) हर्षित हो उठते हैं ॥ १ ॥

[४३८] (धृष्णु-या ते हि) वे साहसी एवं आक्रमणकर्ता वीर (स्थिरस्य शवसः) स्थायि एवं अटल बलके (सखायः सन्ति) सहायक हैं । (ते यामन्) वे चढाई करते समय (शश्वतः) शाश्वत (धृषत्-विनः) विजयशील सामर्थ्यसे युक्त वीरोंका (त्मना) स्वयं ही (आ पान्ति) सभी ओरसे संरक्षण करते हैं ॥ २ ॥

१ धृष्णुया ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति— वे साहसी वीर मरुत् स्थिर बलवाले मनुष्योंके ही मित्र बनते हैं ।

२ ते धृषद्विनः त्मना आ पान्ति— वे विजयशील सामर्थ्यसे युक्त वीरोंकी स्वयं ही रक्षा करते हैं ।

भावार्थ— हे मित्र, वरुण देव ! तुम हमारा कल्याण करो, हे मार्गकी रक्षा करनेवाली देवी, हमारा कल्याण करो । इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें और देवी अदिति भी हमारा कल्याण करें ॥ १४ ॥

हम सभी मनुष्य दान देते हुए एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर सूर्य और चन्द्रमाके समान सबका कल्याण करते हुए तथा संगठित होकर उन्नति करें ॥ १५ ॥

जिससे शत्रुका पराभव हो, ऐसा बल प्राप्त करना चाहिए और वीरोंका भी सन्मान करना चाहिए । वीर अपनी धारक शक्ति बढा कर किसीसे भी द्वेष न करते हुए बडे बडे कार्योंमें सफलता पाकर यशस्वी बन जाते हैं । ॥ १ ॥

४३९ ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३ ॥
४४० मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४ ॥
४४१ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥
४४२ आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६ ॥
४४३ ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७ ॥

अर्थ— [४३९] (ते स्पन्द्रासः) शत्रुको विकम्पित करनेवाले (न उक्षणः) और बलवान् वीर (शर्वरीः अति स्कन्दन्ति) रात्रियोंका अतिक्रमण करके आगे चले जाते हैं। (अध) अब इसलिए (मरुतां) मरुतोंके (दिवि क्षमा च) द्युलोकमें एवं पृथ्वी पर विद्यमान (महः मन्महे) तेजपूर्ण काव्यका हम मनन करते हैं। ॥ ३ ॥

१ उक्षणः शर्वरीः अति स्कन्दन्ति— वे बलवान् वीर मरुत् दिन या रात्रीका तनिक भी ख्याल न करके अपना आक्रमण बराबर जारी रखते हैं।

[४४०] (ये) जो वीर (विश्वे) सभी (मानुषा युगा) मानवी युगोंमें (मर्त्यं) मानवको (रिषः पान्ति) हिंसकसे बचाते हैं, ऐसे (वः) तुम (धृष्णु-या) विजयशील सामर्थ्यसे युक्त (मरुत्सु) मरुतोंके लिए हम (स्तोमं यज्ञं च) स्तुति तथा पवित्र कार्य (दधीमहि) अर्पण करते हैं ॥ ४ ॥

[४४१] (ये) जो (अर्हन्तः) पूज्य, (सु-दानवः) दानशूर, (असामिशवसः) संपूर्ण बलसे युक्त तथा (दिवः) तेजस्वी, द्योतमान (नरः) नेता हैं, उन (यज्ञियेभ्यः) पूज्य (मरुद्भ्यः) वीर-मरुतोंके लिए (यज्ञं) यज्ञ करो और उनकी (प्र अर्च) पूजा करो। ॥ ५ ॥

[४४२] (रुक्मैः आ) स्वर्णमुद्राके हारोंसे और (युधा आ) आयुधोंसे युक्त, (ऋष्वाः नरः) बडे तथा नेतृत्वगुणसे युक्त (दिवः) दिव्य वीर (ऋष्टीः) अपने भालोंको और (एनान् अनु ह) इनके अनुरोधसे ही (जज्झतीः इव) धडधडाती हुई नदियोंके समान (विद्युतः) तेजस्वी वज्र शत्रु पर (असृक्षत) फेंक देते हैं। इनका (भानुः) तेज (त्मना) उनके साथ ही (अर्त) चला जाता है ॥ ६ ॥ ॥

[४४३] (ये पार्थिवाः) जो ये वीर पृथ्वी पर, (ये उरौ अन्तरिक्षे) जो विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें या (नदीनां) नदियोंके समीपके (वृजने वा) मैदानोंमें अथवा (महः दिवः) विस्तृत द्युलोकके (सध-स्थे वा) स्थानमें (आ वावृधन्त) सभी तरहसे बढते रहते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— ये साहसी और शूरवीर सैनिक बलकी ही सराहना करते हैं। जब ये शत्रुदल पर आक्रमण कर देते हैं, तब स्थायी एवं विजयी बलसे परिपूर्ण वीरोंकी रक्षा करनेका गुरुतर कार्यभार स्वयं ही स्वेच्छासे उठाते हैं ॥ २ ॥

जो बलिष्ठ वीर शत्रुके दिलमें धडकन पैदा करते हैं, वे रात्रीके समय दुश्मनों पर चढाई करते हैं और दिनके अवसर पर भी आक्रमण जारी रखते हैं। इसीलिए हम इनके मननीय चरित्रका मनन करते हैं ॥ ३ ॥

जो वीर मानवी युगोंमें शत्रुओंसे अपनी रक्षा करते हैं, उनके सामर्थ्यकी सराहना करनी चाहिए ॥ ४ ॥

पूजनीय, दानी वीरोंका अच्छा सत्कार करना चाहिए ॥ ५ ॥

हार एवं हथियारोंसे सजे हुए ये वीर बहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

ये वीर भूमंडल पर, अन्तरिक्षमें तथा द्युलोकमें भी अबाधरूपसे संचार करते हैं ॥ ७ ॥

४४४ शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८ ॥

४४५ उत स्म ते परुष्ण्या- मूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथाना- मद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९ ॥

४४६ आपथयो विपथयो- ऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभि- र्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥

४४७ अधा नरो न्योहते- ऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥ ११ ॥

अर्थ— [४४४] (सत्य-शवसं) सत्यके बलसे युक्त तथा (ऋभ्वसं) हमले करनेवाले (मारुतं शर्धः) वीर मरुतोंके सामुदायिक बलकी (उत् शंस) स्तुति करो। (उत स्म) क्योंकि (स्पन्द्राः) शत्रुको विच-लित एवं विकम्पित करनेवाले और (नरः) नेता वे वीर (शुभे) लोककल्याणके लिए किये जानेवाले सत्कार्यमें (त्मना) स्वयं अपनी सदिच्छासे ही (प्र युजत) जुट जाते हैं ॥ ८ ॥

[४४५] (उत स्म) और (ते) वे वीर (परुष्ण्यां) परुष्णी नदीमें (शुन्ध्यवः) पवित्र होकर (ऊर्णाः वसत) ऊनी कपडे पहनते हैं (उत) और (रथानां पव्या) रथोंके पहियोंसे तथा (ओजसा) बडे बलसे (अद्रिं भिन्दन्ति) पहाडको भी विभिन्न कर डालते हैं ॥ ९ ॥

[४४६] (आ-पथयः) समीपके मार्गसे जानेवाले, (वि-पथयः) विविध मार्गोंसे जानेवाले (अन्तः-पथाः) गुप्त सडकों परसे जानेवाले (अनु-पथाः) अनुकूल मार्गोंसे जानेवाले, (एतेभिः नामभिः) ऐसे इन नामोंसे (विस्तारः) विख्यात हुए ये वीर (मह्यं) मेरे लिए (यज्ञं ओहते) यज्ञके हविष्यान्न ढोकर लाते हैं ॥ १० ॥

[४४७] (अध) कभी कभी ये वीर (नरः) नेता बनकर संसारको (नि ओहते) धारण करते हैं, (अध नियुतः) कभी पंक्तियोंमें खडे रहकर सामुदायिक ढंगसे और (अध) उसी प्रकार (पारावताः) दूर-जगह खडे रहकर भी (ओहते) बोझ ढोते हैं, (इति) इस भाँति उनके (रूपाणि) स्वरूप (चित्रा) आश्चर्यकारक तथा (दर्श्या) देखनेयोग्य हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ— वीरोंके सच्चे बलका बखान करो। ये वीर जनताके हितके लिए स्वेच्छापूर्वक यत्न करते रहते हैं ॥ ८

वीर नदीमें नहाकर शुद्ध होते हैं और ऊनी कपडे पहनकर अपने रथोंके वेगसे पहाडों तकको लाँघ कर चले जाते हैं ॥ ९ ॥

भाँति भाँतिके मार्गोंसे जानेवाले वीर चहुँ ओरसे अन्नसामग्री लाते हैं ॥ १० ।

वीर पुरुष नेता बन जाते हैं और सेनामें दूर जगह या समीप खडे रहकर संरक्षणका समूचा भार उठा लेते हैं। ये सुस्वरूप तथा दर्शनीय भी हैं ॥ ११ ॥

४४८ छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन् दृशि त्विषे ॥ १२ ॥

४४९ य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥

४५० अच्छ ऋषे मारुतं गणं दाना मित्रं न योषणा ।
दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥ १४ ॥

४५१ नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।
दाना सचेत सूरिभि—र्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५ ॥

अर्थ— [४४८] (छन्दः-स्तुभः) छन्दोंसे सराहनीय तथा (कु-भन्यवः) मातृभूमिकी पूजा करनेवाले वीर (कीरिणः) स्तुति करनेवालेके लिए (उत्सं) जलप्रवाह (आ नृतुः) ला चुके । (ते के चित्) उनमेंसे कुछ (मे) मेरे लिए (तायवः न) चोरोंके समान अदृश्य, कुछ (ऊमाः) रक्षणकर्ता होकर (दृशि) दृष्टिपथमें अवतीर्ण और कई (त्विषे) तेजोबल बढाते (आसन्) थे ॥ १२ ॥

[४४९] हे (ऋषे) ऋषिवर ! (ये) जो (ऋष्वाः) बडे बडे, (ऋष्टि-विद्युतः) हथियारोंसे द्योतमान, (कवयः) ज्ञानी होते हुए (वेधसः) कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले हैं (तं मारुतं गणं) उस वीर मरुतोंके गणको (नमस्य) नमन कर और (गिरा रमय) वाणीसे आनन्द दे ॥ १३ ॥

[४५०] हे (ऋषे) ऋषिवर ! (योषणा मित्रं न) युवती जिस तरह प्रिय मित्रकी ओर चली जाती है, उसीप्रकार (मारुतं गणं अच्छ) मरुत्संघकी ओर (दाना) दान लेकर जाओ । (ओजसा धृष्णवः) बलके कारण शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर (दिवः वा) तेजस्वी हैं । हे वीरो ! (धीभिः स्तुताः) स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित तुम इधर (इषण्यत) आओ ॥ १४ ॥

[४५१] (वक्षणा न) वाहनके समान पार ले जानेवाले (एषां देवान् अच्छ) इन तेजस्वी वीरोंकी ओर (नु) शीघ्र पहुँच कर (मन्वानः) स्तुति करनेहारा, (सूरिभिः) ज्ञानी (यामश्रुतेभिः) चढाईके बारेमें विख्यात एवं (अञ्जिभिः) वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत ऐसे उन वीरोंसे (दाना) दानके साथ (सचेत) संगत होता है ॥ १५ ॥

भावार्थ— चूँकि वीर मातृभूमिके भक्त होते हैं, इसलिए वे सराहनीय हैं। उनमें कुछ गुप्त रूपसे, तो कई प्रकट रूपसे सबकी रक्षा करते हुए तेजकी वृद्धि करते हैं ॥ १२ ॥

वीर सैनिक महान् गुणी, विशेष ज्ञानी, कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे एवं आयुधधारी होनेके कारण द्योतमान हैं। इस मरुत्संघको रमणीय वाणीसे हर्षित कर और नमन कर ॥ १३ ॥

दान लेकर वीरोंके समीप चले जाना चाहिए। बलसे शत्रुदल पर चढाई करनी चाहिए। जो ऐसे आक्रमणकर्ता होंगे उनकी स्तुति होगी ॥ १४ ॥

वे वीर संकटोंमेंसे पार ले जानेवाले हैं और आक्रमण करनेमें बडे विख्यात हैं। वे ज्ञानी हैं और वस्त्रालंकारोंसे भूषित रहते हैं। ऐसे उन तेजस्वी वीरोंके पास दान लेकर पहुँच जाओ ॥ १५ ॥

४५२ प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६ ॥

४५३ सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद् राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥

[५३]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्दः- १, ५, १०-११, १५ ककुप्; २ बृहती; ३ अनुष्टुप्, ४ पुरउष्णिक्, ६-७, ९, १३, १४, १६ सतोबृहती; ८, १२ गायत्री ।]

४५४ को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् । यद् युयुज्रे किलास्यः ॥ १ ॥

४५५ एतान् रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥ २ ॥

अर्थ— [४५२] उनके (बन्धु-एषे) बांधवोंके जाननेकी इच्छा करने पर (ये सूरयः) जिन ज्ञानी वीरोंने (मे प्र वोचन्त) मुझसे कहा, उन्होंने " (गां) गो तथा (पृश्निं) भूमि हमारी (मातरं) माताएँ हैं " (वोचन्त) ऐसा कह दिया। (अध) और (शिक्वसः) उन्हीं समर्थ वीरोंने (इष्मिणं रुद्रं) " वेगवान् महावीर हमारा (पितरं) पिता है " ऐसा भी कह दिया ॥ १६ ॥

[४५३] (सप्त सप्त) सात सात सैनिकोंकी पंक्तिमें जानेवाले (शाकिनः) इन समर्थ वीरोंमेंसे (एकं-एका) हरेकने (मे शता ददुः) मुझे सौ गौएँ दीं। (श्रुतं) उस विश्रुत (गव्यं राधः) गोसमूहरूपी धनको (यमुनायां अधि) यमुना नदीमें (उत् मृजे) धो डालता हूँ और (अश्व्यं राधः) अश्वरूपी संपत्तिको वहीं पर (नि मृजे) धोता हूँ ॥ १७ ॥

[५३]

[४५४] वीर मरुतोंने (यत्) जब (किलास्यः) धब्बेवाली हिरनियाँ (युयुज्रे) अपने रथोंमें जोड दीं, तब (एषां) इनके (जानं) जन्मका रहस्य (कः वेद) कौन भला जानता था? (कः वा) और कौन भला (पुरा) पहले इन (मरुतां सुम्नेषु) वीर मरुतोंके सुख च्छत्रछायामें (आस) रहता था? ॥ १ ॥

[४५५] (रथेषु तस्थुषः) रथोंमें बैठे हुए (एतान्) इन वीरोंके समीप कौन भला (कथा ययुः) किस तरह जाते हैं? उसी प्रकार उनके प्रभावका वर्णन (कः आ शुश्राव). भला किसे सुननेको मिला ? (आपयः) मित्रवत् हितकर्ता एवं (वृष्टयः) वर्षाके समान शांतिदायक ये वीर अपनी (इळाभिः सह) गौओंके साथ (कस्मै सुदासे) किस उत्तम दानीकी ओर (अनु सस्रुः) अनुकूल होकर चले गये ? ॥ २ ॥

भावार्थ— गौ या भूमि मरुतोंकी माता है और रुद्र उनका पिता है ॥ १६ ॥

वीरोंसे दानरूपमें प्राप्त हुई गौएँ तथा मिले हुए घोडे नदीजलमें धोकर साफसुथरे रखने चाहिए ॥ १७ ॥

जब ये वीर रथमें बैठकर संचार करने लगे, तब भला किसे इनके जीवनका ज्ञान प्राप्त हुआ था? उसी प्रकार कौन लोग इनके सहारे रहते थे? (ये वीर जब जनताके सुखके लिए प्रयत्नशील हुए तभीसे लोगोंको इनका परिचय प्राप्त हुआ और लोग इनके आश्रयमें सुखपूर्वक रहने लगे ॥ १ ॥

वीर रथों पर बैठकर मित्रोंसे मिलनेके लिए जाते हैं, उस समय वे गायें साथ लेकर ही प्रस्थान करने लगते हैं। इनके शौर्यका बखान करना चाहिए। ॥ २ ॥

×

४५६ ते म आहुर्य आययु—रुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान् पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३ ॥
४५७ ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४ ॥
४५८ युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ ॥
४५९ आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६ ॥
४६० ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद् वर्तन्त एन्यः ॥ ७ ॥

अर्थ—[४५६] (ये) जो (द्युभिः विभिः) तेजस्वी सोमोंके साथ (मदे) आनंद पानेके लिए (उपआययुः) इकट्ठे हुए (ते मे आहुः) वे मुझसे बोले कि, " (नरः) नेता, (मर्याः) मानवोंके हितकारक (अ-रेपसः) तथा दोषरहित (इमान् पश्यन्) इन वीरोंको देखकर (स्तुहि इति) उनकी प्रशंसा करो " ॥ ३ ॥

[४५७] (ये) जो (स्व-भानवः) स्वयं प्रकाशमान् वीर, (अञ्जिषु) वस्त्रालंकारोंमें, (वाशीषु) कुठारोंमें, (स्रक्षु) मालाओंमें, (रुक्मेषु) स्वर्णमय हारोंमें, (खादिषु) कँगनोंमें (रथेषु) रथोंमें और (धन्वसु) धनुष्योंमें (श्रायाः) आश्रय लेते हैं, अर्थात् इनका उपयोग करते हैं ॥ ४ ॥

[४५८] हे (जीर-दानवः मरुतः) शीघ्रतापूर्वक विजय पानेवाले वीर मरुतो ! (मुदे) आनंदके लिए मैं (वृष्टी) वर्षाके समान (यतीः इव) वेगपूर्वक जानेवाले (द्यावः) बिजलियोंके समान तेजस्वी (युष्माकं रथान्) तुम्हारे रथोंका (अनु दधे स्म) अनुसरण करता हूँ ॥ ५ ॥

[४५९] (नरः) नेता, (सु-दानवः) अच्छे दानी एवं (दिवः) तेजस्वी वीर (ददाशुषे) दानी लोगोंके लिए (यं कोशं) जिस भाण्डारको (आ अचुच्यवुः) सभी स्थानोंसे बटोर लाते हैं, उसका वे (रोदसी) द्युलोकको एवं भूलोकका (पर्जन्यं) वृष्टिके समान (वि सृजन्ति) विभजन कर डालते हैं। (वृष्टयः) वर्षाके समान शांतता देनेवाले वे वीर अपने (धन्वना) धनुष्योंके साथ (अनु यन्ति) चले जाते हैं ॥ ६ ॥

[४६०] (यत् एन्यः) जो नदियाँ (अध्वनः विमोचने) मार्ग ढूँढ निकालनेके लिए (स्यन्नाः अश्वाः इव) वेगवान् घोड़ोंके समान (वि वर्तन्ते) वेगपूर्वक बह जाती हैं, वे (क्षोदसा) उदकसे भूमिको (ततृदानाः) फोडनेवाली (सिन्धवः) नदियाँ (धेनवः यथा) गौओंके समान (रजः) उपजाऊ भूमियोंकी ओर (प्रसस्रुः) बहने लगीं ॥ ७ ॥

भावार्थ— सोमयागमें इकट्ठे हुए सभी लोग कहने लगे कि, वीरोंके काव्यका गायन करना चाहिए ॥ ३ ॥

ये वीर तेजस्वी हैं और आभूषण, कुठार, माला, हार धारण करते हैं, तथा रथमें बैठकर धनुष्योंका उपयोग करते हैं ॥ ४ ॥

मैं वीरोंके रथके पीछे चला आ रहा हूँ. (मैं उनके मार्गका अवलम्बन करता हूँ।) ॥ ५ ॥

ये वीर शूरतापूर्ण कार्य करके चारों ओरसे धन कमा लाते हैं और उनका उचित बँटवारा करके जनताको सुखी करते हैं। ॥ ६ ॥

धुवाँधार वर्षाके पश्चात् नदियोंमें बाढ आने पर पृथ्वीको छिन्नभिन्न करके नदियाँ बहने लगती हैं और उपजाऊ भूभागको अधिक उर्वर बना देती हैं। ॥ ७ ॥

४६१ आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत ।
मावं स्थात परावतः ॥ ८ ॥
४६२ मा वो रसानितभा कुभा क्रुमु—र्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात् सरयुः पुरीषिण्य—स्मे इत् सुम्नमस्तु वः ॥ ९ ॥
४६३ तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० ॥
४६४ शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११ ॥
४६५ कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥ १२ ॥

अर्थ— [४६१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (दिवः) द्युलोकसे तथा (उत) उसी प्रकार (अ-मात् अन्तरिक्षात्) असीम अंतरिक्षमेंसे (आ यात) इधर आओ, (परावतः) दूरके देशमें ही (मा अव स्थात) न रहो ॥ ८ ॥

[४६२] (वः) तुम्हें (अन्-इत-भा) तेजहीन और (कु-भा) मलिन (रसा) रसानामक नदी (मा नि रीरमत्) रममाण न करे. (वः) तुम्हें (क्रुमुः) वेगपूर्वक आक्रमण करनेहारा (सिन्धुः) सिंधु नद बीचमें ही (मा) न रोक दे, (वः) तुम्हें (पुरीषिणी) जलसे परिपूर्ण (सरयुः) सरयु नदी (मा परिस्थात्) न घेर लेवे। (अस्मे इत्) हमें ही (वः सुम्नं) तुम्हारा सुख (अस्तु) प्राप्त हो, मिल जाये ॥ ९ ॥

[४६३] (तं) उस (वः) तुम्हारे (नव्यसीनां) नये (रथानां शर्धं) रथोंके बलके एवं सैन्यके (त्वेषं) तेजस्वी (मारुतं गणं) वीर मरुतोंके समूहके (अनु) अनुरोधसे (वृष्टयः प्र यन्ति) वर्षाएँ वेगसे चली जाती हैं ॥ १० ॥

[४६४] (एषां वः) इन तुम्हारे (शर्ध-शर्धं) हर सैन्यके साथ (व्रातं-व्रातं) प्रत्येक समुदायके साथ और (गणं-गणं) हरएक सैन्यके दलके साथ (सु-शस्तिभिः) अत्यन्त सराहनीय अनुशासनके (धीतिभिः) विचारोंसे युक्त होकर (अनु क्रामेम) हम अनुक्रमसे चलते रहें ॥ ११ ॥

[४६५] (अद्य) आज (मरुतः) वीर मरुत् (एना यामेन) इस रथमेंसे (कस्मै) भला किस (रात-हव्याय) हविष्यान्न देनेवाले एवं (सु-जाताय) कुलीन मानवकी ओर (प्र ययुः) चले जा रहे हैं ? ॥ १२ ॥

भावार्थ— वीर सदैव हमारे निकट आकर यहीं पर रहें ॥ ८ ॥

हे वीरो ! तुम रसा, सिन्धु, पुरीषिणी एवं सरयु नदियोंसे सींचे हुए प्रदेशमें ही रममाण न बनो, अपितु हमारे निकट आकर हमें सुख दिलाओ ॥ ९ ॥

जिधर मरुतोंके रथ चले जाते हैं, उधर युद्ध होता है, तथा वर्षा भी हुआ करती है ॥ १० ॥

गणवेश पहनकर दलबलका जैसा अनुशासन हो, वैसे ही अनुक्रमसे पग धरते चले जाँय ॥ ११ ॥

प्रश्न है कि, भला आजके दिन किस जगह मरुत् पहुँचना चाहते हैं ? (उधर हम भी चलें ।) ॥ १२ ॥

४६६ येन॑ तो॒काय॒ तन॑याय धा॒न्यं१ बीजं॒ वह॑ध्वे॒ अक्षि॑तम् ।
अ॒स्मभ्यं॒ तद् ध॑त्तन॒ यद्व॒ ईम॑हे॒ राधो॑ वि॒श्वायु॒ सौभ॑गम् ॥ १३ ॥

४६७ अती॑याम नि॒दस्ति॒रः स्व॒स्तिभि॒र्हि॒त्वाव॒द्यमरा॑तीः ।
वृ॒ष्ट्वी शं योराप॑ उ॒स्रि भे॑ष॒जं स्याम॑ मरुतः स॒ह ॥ १४ ॥

४६८ सु॒दे॒वः स॑महासति सु॒वीरो॑ नरो मरुतः॒ स मर्त्यः॑ ।
यं त्राय॑ध्वे॒ स्याम॒ ते ॥ १५ ॥

४६९ स्तु॒हि भो॒जान् त्स्तु॑व॒तो अ॑स्य॒ याम॑नि॒ रण॒न् गावो॒ न यव॑से ।
य॒तः पूर्वाँ॑ इव॒ सखीँ॒रनु॑ ह्वय गि॒रा गृ॑णीहि का॒मिनः॑ ॥ १६ ॥

अर्थ— [४६६] (येन) जिससे (तोकाय स्तनयाय) पुत्रपौत्रोंके लिए (अ-क्षितं) न घटनेवाले (धान्यं बीजं) अनाज तथा बीज (वहध्वे) ढोकर लाते हो, (यत् राधः) जिस धनके लिए (वः) तुम्हारे पास हम (ईमहे) आते हैं, (तत्) वह और (विश्व-आयु) दीर्घजीवन एवं (सौभगं) अच्छा ऐश्वर्य (अस्मभ्यं धत्तन) हमें दे दो ॥ १३ ॥

[४६७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (स्वस्तिभिः) हितकारक उपायोंद्वारा (अवद्यं हित्वा) दोष नष्ट करके, (अरातीः) शत्रुओंका एवं (तिरः निदः) गुप्त निन्दकका हम (अति इयाम) पराभव कर सकें। हमें (वृष्ट्वी) शक्ति (योः शं) एकतासे उत्पन्न होनेवाला सुख, (आपः) जल तथा (उस्रिः भेषजं) तेजस्वी औषधी (सह स्याम) एक ही समय मिले ॥ १४ ॥

[४६८] हे (नरः मरुतः) नेता वीर मरुतो ! (यं) जिसे (त्रायध्वे) तुम बचाते हो, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) अत्यन्त तेजस्वी, (स-मह) महत्तासे युक्त और (सु-वीरः) अच्छा वीर (असति) होता है। (ते स्याम) हम भी वैसे ही हों ॥ १५ ॥

[४६९] (स्तुवतः अस्य) स्तवन करनेवाले इस भक्तके यज्ञमें (भोजान्) भोजन पानेके लिए (यामन्) जाते समय (गावः न यवसे) गौएँ जिस तरह घासकी ओर जाती हैं वैसे ही (रणन्) आनन्दपूर्वक गरजते हुए जानेवाले इन वीरोंकी (स्तुहि) प्रशंसा करो, (यतः) क्योंकि वे (पूर्वान् इव) पहले परिचित तथा (कामिनः) प्रेमभरे (सखीन्) मित्रोंके समान अपने सहायक हैं। उन्हें (ह्वय) अपने समीप बुलाओ और (गिरा) अपनी वाणीसे उनकी (अनुगृणीहि) सराहना करो ॥ १६ ॥

भावार्थ— हमें धन, धान्य, ऐश्वर्य तथा बल चाहिए। हमें ये सभी बातें उपलब्ध हों ॥ १३ ॥

स्वस्ति तथा क्षेम हमें मिल जाए। हमारे सभी शत्रु विनष्ट हों। ऐक्यभावसे उत्पन्न होनेवाला, सुख, शक्ति, जल परिणामकारक औषधियाँ हमें मिल जायँ ॥ १४ ॥

जिन्हें वीरोंका संरक्षण प्राप्त होता है, वे बडे तेजस्वी, महान् तथा वीर होते हैं। हम उसी प्रकार बनें ॥ १५ ॥

भक्तके यज्ञोंमें जाते समय इन वीरोंको बडा भारी हर्ष होता है। चूँकि ये सबका हित चाहते हैं, इसलिए इनकी स्तुति सबको करनी चाहिए ॥ १६ ॥

[५४]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः। देवता- मरुतः। छन्दः- जगती, १४ त्रिष्टुप्।]

४७० प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १ ॥

४७१ प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २ ॥

४७२ विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३ ॥

---

[५४]

अर्थ— [४७०] हे मनुष्य (स्व-भानवे) स्वयंप्रकाश और (पर्वत-च्युते) पहाडोंको भी हिलानेवाले (मारुताय शर्धाय) मरुतोंके बलके लिए की गई (इमां वाचं) इस अपनी वाणीको-कविताको तुम (प्र अनज) भली भाँति सँवार, अलंकृत कर। (घर्म-स्तुभे) तेजस्वी वीरोंकी स्तुति करनेहारे, (दिवः पृष्ठयज्वने) दिव्य स्थानसे पीछेसे आकर यजन करनेवाले और (द्युम्न-श्रवसे) तेजस्वी यश पानेवाले वीरोंको (महि नृम्णं) विपुल धन देकर (आ अर्चत) उनकी पूजा करो ॥ १ ॥

[४७१] हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः तविषा) तुम्हारे बलवान्, (उदन्-यवः) प्रजाके लिए जल देनेवाले, (वयो-वृधः) अन्नकी समृद्धि करनेहारे तथा (अश्व-युजः) रथोंमें घोडे जोडनेवाले वीर जब (प्र परि-ज्रयः) बहुत वेगसे चतुर्दिक् घूमने लगते हैं और तुम्हारा (त्रि-तः) तीनों ओर फैलनेवाला संघ (विद्युता सं दधाति) तेजस्वी वज्रोंसे सुसज्ज होता है और (वाशति) शत्रुको चुनौती देता है, तब (परि-ज्रयः) चारों ओर विजय देनेवाला (आपः) जीवन, जल (अवना) पृथ्वीपर (स्वरन्ति) गर्जना करते हुए संचार करता है ॥ २ ॥

[४७२] (विद्युत्-महसः) बिजलीके समान बलवान्, (नरः) नेता, (अश्म-दिद्यवः) हथियारोंके चमकनेसे तेजस्वी, (वात-त्विषः) वायुके समान गतिशील एवं तेजस्वी, (पर्वत-च्युतः) पहाडोंको हिलानेवाले, (ह्रादुनि वृतः) वज्रोंसे युक्त, (स्तनयत्-अमाः) घोषणा करनेकी शक्तिसे युक्त, (रभसाः) वेगवान्, (उत-ओजसः) अच्छे बलशाली वे (मरुतः) वीर मरुत् (मुहुः चित्) वारंवार (आ अब्दया) चारों ओर जल देना चाहते हैं-शत्रुको अपना सच्चा तेज दिखाते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— अलंकारपूर्ण काव्य वीरोंके वर्णनपर बनाओ और उन्हें धन देकर उनका सत्कार करो ॥ १ ॥

बलिष्ठ वीर सैनिक प्रजाके लिए जलकी व्यवस्था करते हैं, अन्नको वृद्धिंगत करते हैं, रथोंमें घोडे जोडकर चारों ओर घूमकर समूची हालतको स्वयं ही देख लेते हैं। और विजयी बन जाते हैं। बडे अच्छे प्रबंधसे अपने हथियार समीप रख लेते हैं और यत्रतत्र विजयपूर्ण वायुमंडलका सृजन करते हैं, तथा भूमंडल पर नहरोंसे या अन्य किन्हीं उपायोंसे जलको चहुँ ओर पहुँचा देते हैं। ॥ २ ॥

तेजस्वी नेता शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित बनकर पहाडों तकको विकंपित कर देनेकी अपनी क्षमताको बढाते हैं और दुश्मनको आह्वान देकर अवश्य ही उन्हें अपना बल दर्शाते हैं। ॥ ३ ॥

[मेघविषयक अर्थ] बिजली चमक रही है, (अश्म) ओले गिर रहे हैं, भारी तूफान हो रहा है, दामिनीकी दहाड सुनाई दे रही है, वायुवेगसे जान पडता है कि, मानों पहाड उड जायेंगे। इसके बाद मूसलाधार वर्षा हो चहुँ ओर जल ही जल दीख पडता है।

४७३ व्य१क्तून् रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४ ॥

४७४ तद् वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषो ऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥ ५ ॥

४७५ अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषस श्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६ ॥

४७६ न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥ ७ ॥

अर्थ— [४७३] हे (धूतयः) शत्रुओंको हिलानेवाले, (शिक्वसः) सामर्थ्ययुक्त एवं (रुद्राः मरुतः) दुश्मनोंको रुलानेवाले वीर मरुतो ! (यत्) जब (अक्तून् वि) रात्रियोंमें (अहानि वि) दिनोंमें (अन्तरिक्षं वि) अन्तरिक्षमेंसे या (रजांसि वि अजथ) धूलिमय प्रदेशोंमेंसे जाते हो, उस समय (यथा नावः ईं) जैसे नौकाएँ समुन्दरमेंसे जाती हैं, वैसे ही तुम (अज्रान् वि) विभिन्न प्रदेशोंमेंसे तथा (दुर्गाणि वि) बीहड स्थानोंमेंसे भी जाते हो, तब तुम (न अह रिष्यथ) बिलकुल थक न जाओ, बिना थकावटके यह सब कुछ हो जाय ऐसा करो ॥ ४ ॥

[४७४] हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तत्) तुम्हारी वे (योजनं) आयोजनाएँ तथा (वीर्यं) शक्ति (सूर्यः न) सूर्यवत् (दीर्घं महित्वनं) अति विस्तृत (ततान) फैली हुई हैं (यत्) क्योंकि तुम (यामे) शत्रु पर किये जानेवाले आक्रमणके समय (एताः न) कृष्णसारोंके समान वेगवान् बनकर (अ-गृभीत-शोचिषः) पकडनेमें असंभव प्रभावसे युक्त हो और (अन्-अश्व-दां) जहाँ पर घोडे पहुँच नहीं सकते, ऐसे (गिरिं) पर्वत पर भी (नि अयातन) हमले चढाते हो। ॥ ५ ॥

[४७५] हे (वेधसः) कर्तृत्ववान् (मरुतः) वीर मरुतो ! तुम्हारा (शर्धः) बल (अभ्राजि) द्योतमान हो चुका है, (यत् कपना इव) क्योंकि प्रबल आँधीके समान (अर्णसं वृक्षं) लागवानी पेडोंको भी तुम (मोषथ) तोड-मरोड देते हो । (अध स्म) और हे (स-जोषसः) हर्षित मनवाले वीरो ! (चक्षुः इव) आँख जैसे (यन्तं) जानेवालेको (सु-गं) अच्छा मार्ग दर्शाती है, वैसे ही (अ-रमतिं नः) विना आराम लिए कार्य करनेवाले हमें (अनु नेषथ) अनुकूल ढंगसे सीधी राहपरसे ले चलो ॥ ६ ॥

[४७६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यं ऋषिं वा) जिस ऋषिको या (राजानं वा) जिस राजाको तुम अच्छे कार्यमें (सुसूदथ) प्रेरित करते हो, (सः न जीयते) वह विजित नहीं बनता है, (न हन्यते) उसकी हत्या नहीं होती है, (न स्रेधति) नष्ट नहीं होता है, (न व्यथते) दुःखी नहीं बनता है और (न रिष्यति) क्षीण भी नहीं होता है । (अस्य रायः) इसके धन (न उप दस्यन्ति) नष्ट नहीं होते हैं तथा (ऊतयः) इनकी संरक्षक शक्तियाँ भी नहीं घटतीं ॥ ७ ॥

भावार्थ— जो बलिष्ठ वीर होते हैं, वे रातको, दिनमें, अन्तरिक्षमेंसे या रेगिस्तानमेंसे चले जाते हैं। वे समतल भूमि परसे या बीहड पहाडी जगहमेंसे बराबर आगे बढते ही जाते हैं, पर कभी थक नहीं जाते। (इस भाँति शत्रुदल पर लगातार हमले करके वे विजयी बन जाते हैं ।) ॥ ४ ॥

वीरोंकी बनाई हुई युद्धकी आयोजनाएँ तथा उनकी संगठनशक्ति सचमुच बडी अनूठी है । दुश्मनों पर धावा करते वक्त वे जैसे समतल भूमि पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रुके दुर्ग पर भी चढाई करनेमें हिचकिचाते नहीं ॥ ५ ॥

कर्तृत्वशाली वीरोंका तेज चमकता ही रहता है । जिस प्रकार प्रचंड आँधी बडे पेडोंको जडमूलसे उखाड फेंक देती है, वैसे ही ये वीर शत्रुओंको हिलाकर गिरा देते हैं । नेत्र जैसे यात्रीको सरल सडक परसे ले चलता है, ठीक उसी प्रकार ये वीर हम जैसे प्रबल पुरुषार्थी लोगोंको सीधी राहसे प्रगतिकी ओर ले चलें ॥ ६ ॥

जिसे वीरोंकी सहायता मिलती है, उसकी प्रगति सब प्रकारसे होती है ॥ ७ ॥

४७७ नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरो॑ऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन् व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८ ॥

४७८ प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९ ॥

४७९ यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १० ॥

४८० अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥ ११ ॥

अर्थ— [४७७] (यथा) जैसे (नियुत्वन्तः) घोडे समीप रखनेवाले, (ग्राम-जितः) दुश्मनोंके गाँव जीतनेवाले, (नरः) नेता, (कबन्धिनः) समीप जल रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (अर्यमणः न) अर्यमाके समान (यत् इनासः) जब वेगसे जाते हैं, तब (अस्वरन्) शब्द करते हैं; (उत्सं पिन्वन्ति) जलकुण्डोंको परिपूर्ण बना रखते हैं और (पृथिवीं) भूमिपर (मध्वः) मिठास भरे (अन्धसा) अन्नकी (वि उन्दन्ति) विशेष समृद्धि करते हैं ॥ ८ ॥

[४७८] हे (जीरदानवः) शीघ्र विजयी बननेवाले वीरो ! (इयं पृथिवी) यह भूमि (मरुद्भ्यः) वीर मरुतोंके लिए (प्रवत्-वती) सरल मार्गोंसे युक्त बन जाती है, (द्यौः) द्युलोक भी (प्र-यद्भ्यः) वेगपूर्वक जानेवाले इन वीरोंके लिए (प्रवत्-वती) आसानीसे जानेयोग्य (भवति) होता है; (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) अन्तरिक्षकी सडकें भी उनके लिए (प्रवत्-वतीः) सुगम बनती हैं और (पर्वताः) पहाड भी (प्रवत्-वन्तः) उनके लिए सरल पथवत् बने दीख पडते हैं ॥ ९ ॥

[४७९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (सभरसः) समान रूपसे कार्यका बोझ उठानेवाले, मानों (स्वर् नरः) स्वर्गके नेता तुम (सूर्ये उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (मदथ) हर्षित होते हो । हे (दिवः नरः) तेजस्वी नेता एवं वीरो ! (यत्) जबतक (वः सिस्रतः अश्वाः) तुम्हारे दौडनेवाले घोडे (न अह श्रथयन्त) तनिक भी नहीं थक गये हैं, तभी तक (सद्यः) तुरन्तही तुम (अस्य अध्वनः पारं) इस मार्गके अन्त तक (अश्नुथ) पहुँच जाओ । ॥ १० ॥

[४८०] हे (रथे शुभः मरुतः) रथोंमें सुहानेवाले वीर मरुतो ! (वः अंसेषु) तुम्हारे कंधोंपर (ऋष्टयः) भाले विराजमान हैं, (पत्सु खादयः) पैरोंमें कडे, (वक्षःसु रुक्माः) उरोभागपर स्वर्णमुद्राओंके हार, (गभस्त्योः) भुजाओंपर पर (अग्नि-भ्राजसः विद्युतः) अग्निवत् चमकीले वज्र और (शीर्षसु) माथे पर (हिरण्ययीः वितताः शिप्राः) सुवर्णके भव्य शिरस्त्राण रखे हुए हैं । ॥ ११ ॥

भावार्थ— घुडसवार वीर शत्रुओंके ग्राम जीत लेते हैं, तथा वेगपूर्वक दुश्मनोंपर धावा करते हैं । उस समय वे बडी भारी घोषणा करते हैं और जलकुण्ड पानीसे भरकर भूमंडल पर मधुरिमामय अन्नजलकी समृद्धिकी यत्रतत्र विपुलता कर देते हैं ॥ ८ ॥

वीरोंके लिए पृथ्वी, पर्वत, अन्तरिक्ष एवं आकाशपथ सभी सुसाध्य एवं सुगम प्रतीत होते हैं । (वीरोंके लिए कोई भी जगह बीहड या दुर्गम नहीं जान पडती है ।) ॥ ९ ॥

सभी कामोंका भार वीर सैनिक समभावसे बराबर बाँटकर उठाते हैं । दिनका प्रारम्भ होनेपर (अर्थात् काम शुरु करना सुगम होता है, इसलिए) ये आनन्दित होते हैं । ऐसे उत्साही वीर घोडोंके थक जानेके पहले ही अपने गन्तव्यस्थान पर पहुँच जायँ ॥ १० ॥

इन मरुतोंका वेश वीरोंका वेश है । इनके कंधोंपर भाले, पैरोंमें कडे, वक्षस्थल पर स्वर्णहार, भुजाओंपर अग्निके समान चमकीले और माथेपर सोनेके किरीट होते हैं ॥ ११ ॥

४८१ तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत् स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२ ॥
४८२ युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्योऽ वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्योऽ यथा दिवोऽस्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥ १३ ॥
४८३ यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४ ॥
४८४ तद् वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नॄँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५ ॥

अर्थ— [४८१] हे (अर्यः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (तं अ-गृभीत-शोचिषं) उस अप्रतिहत तेजस्वी (नाकं) आकाशमेंसे (रुशत्) तेजस्वी (पिप्पलं) जलको (वि धूनुथ) विशेष हिलाओ, वर्षा करो। उसके लिए तुम (वृजना) अपने बलोंका (सं अच्यन्त) संगठन करके अपने (अतित्विषन्त) तेज बढाओ; (यत्) क्योंकि (ऋतायवः) पानी चाहनेवाले लोग (विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) घोषणा करके कहते हैं कि, हमें जल चाहिए। ॥ १२ ॥

[४८२] हे (वि-चेतसः मरुतः) विशेष ज्ञानी वीर मरुतो ! (युष्मा-दत्तस्य) तुम्हारे दिये हुए (वयस्-वतः) अन्नसे युक्त होकर (रायः) ऐश्वर्यके (रथ्यः) रथ भरके लानेवाले हम (स्याम) हों। हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अस्मे) हमें (यः) वह (दिवः तिष्यः यथा) आकाशमें विद्यमान् नक्षत्रके समान (न युच्छति) न नष्ट होनेवाला (सहस्रिणं) हजारों किस्मका धन देकर (रारन्त) संतुष्ट करो। ॥ १३ ॥

[४८३] हे (मरुत) वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (स्पार्ह-वीरं) स्पृहणीय वीरोंसे युक्त (रयिं) धनका संरक्षण करते हो; (यूयं साम-विप्रं) तुम शांतिप्रधान या सामगायक विद्वान् (ऋषिं अवथ) ऋषिका रक्षण करते हो; (यूयं) तुम (भरताय) जनताका भरणपोषण करनेवालेके लिए (अर्वन्तं वाजं) घोडे तथा अन्न देते हो और (यूयं) तुम (राजानं) नरेशको (श्रुष्टि-मन्तं) वैभवयुक्त करके उसे (धत्थ) धारित एवं पुष्ट करते हो। ॥ १४ ॥

[४८४] हे (सद्य-ऊतयः) तुरन्त संरक्षण करनेवाले वीरो ! (वः तत्) तुम्हारे उस (द्रविणं यामि) द्रव्यकी हम इच्छा करते हैं। (येन) जिससे हम (नॄन्) सभी लोगोंको (स्वः न) प्रकाशके समान (अभि ततनाम) दान दे सकें। हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (इदं मे सु-वचः) यह मेरा अच्छा वचन (हर्यत) स्वीकार करलो; (यस्य तरसा) जिसके बलसे हम (शतं हिमाः) सौ हेमन्तऋतु, सौ वर्ष (तरेम) दुःखमेंसे तैरकर पार पहुँच सकें, जीवित रह सकें। ॥ १५ ॥

भावार्थ— अपने बलका संगठन करके तेजस्विता बढाओ। वर्षाका भार इकट्टा करके वह बाँट दो, क्योंकि जनता जल पर्याप्त मात्रामें पानेके लिए अतीव लालायित है ॥ १२ ॥

सहस्रों प्रकारका धन और अन्न हमें प्राप्त हो। वह धन आकाशके नक्षत्रकी न्याई अक्षय एवं अटल रहे ॥ १३ ॥

वीर पुरुष शूरतायुक्त धनका वितरण करके ज्ञानी तत्त्वज्ञका पोषण करके प्रजापालनतत्पर भूपालका पालनपोषण एवं संवर्धन करते हैं ॥ १४ ॥

हे संरक्षणकर्ता वीरो ! हमें प्रचुर धन दो ताकि हम उसे सब लोगोंमें बाँट दें। मैं अपना यह वचन दे रहा हूँ। इसी भाँति करते हम सौ वर्षों तक दुःख हटाकर जीवनयात्रा बितायें ॥ १५ ॥

[५५]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः। देवता- मरुतः। छन्दः- जगती; १० त्रिष्टुप्।]

४८५ प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १ ॥

४८६ स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २ ॥

४८७ साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३ ॥

४८८ आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४ ॥

[५५]

अर्थ— [४८५] (प्र-यज्यवः) विशेष यजनीय कर्म करनेहारे (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियारोंसे युक्त तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः) वक्षःस्थलपर स्वर्णहार धारण करनेहारे वीर मरुत् (बृहत् वयः दधिरे) बडा भारी बल धारण करते हैं। (सु-यमेभिः) भली भाँति नियमित होनेवाले, (आशुभिः) वेगवान् (अश्वैः) घोडोंके साथ, वे (ईयन्ते) चले जाते हैं। उनके (रथाः) रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय उन्हींके (अनु अवृत्सत) पीछे चले जाते हैं॥ १॥

[४८६] (यथा) चूँकि तुम (विद) बहुत ज्ञान प्राप्त करते हो और (स्वयं तविषीं दधिध्वे) स्वयमेव विशेष बल भी धारण करते हो, तुम (महान्तः) बडे हो और (उर्विया) मातृभूमिका हित करनेकी लालसासे (बृहत् वि राजथ) विशेष रूपसे सुशोभित होते हो। (उत) और (ओजसा) अपने बलसे, (अन्तरिक्षं वि ममिरे) अन्तरिक्षको भी व्याप्त कर डालते हो, (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय, (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं॥ २॥

[४८७] जो (साकं जाता) एक ही समय प्रकट होनेवाले, (सु-भ्वः) अच्छी प्रकार उत्पन्न हुए, (साकं उक्षिता) संघ करके बलसंपन्न होनेवाले (नरः) नेता वे वीर, (श्रिये चित्) वैभव पानेके लिए ही (प्र-तरं) अधिकाधिक (आ ववृधुः) बढते हैं, वे (सूर्यस्य इव रश्मयः) सूर्यकिरणोंके समान (वि-रोकिणः) विशेष तेजस्वी हैं (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं॥३॥

[४८८] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वः महित्वनं) तुम्हारा बडप्पन (आ-भूषेण्यं) सभी प्रकारसे शोभायमान है और वह (सूर्यस्य इव चक्षणं) सूर्यके दृश्यके समान (दिदृक्षेण्यं) दर्शनीय है। (उत) इसीलिए तुम (अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन) हमें अमरपनको पहुँचाओ (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोक कल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं॥ ४॥

भावार्थ— अच्छे कर्म करनेहारे, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले, आभूषणोंसे सुशोभित वीर अपने बलको अत्यधिक रूपसे बढाते हैं और चपल अश्वोंपर आरूढ होकर जनताका हित करनेके लिए शत्रुदलपर धावा करना शुरू करते हैं॥ १॥

वीर पुरुष ज्ञान प्राप्त करके अपना बल बढाकर मातृभूमिका यश बढानेके लिए प्रयत्न करते हैं। अपने इन अदम्य अध्यवसायोंके फलस्वरूप वे अत्यन्त सुशोभित दीख पडते हैं और अपनी ऊँची उडानोंसे समूचा अन्तरिक्ष भी व्याप्त कर डालते हैं॥ २॥

ये वीर शत्रुदलपर आक्रमण करते समय एक ही समय प्रकट होते हैं, अपना उत्तम जीवन बिताते हैं, संघ बनाकर अपने बलकी वृद्धि करते हैं और सदैव यशके लिए ही सचेष्ट रहा करते हैं। ये सूर्यकिरणवत् तेजस्वी बनकर प्रकाशमान् होते हैं॥ ३॥

×

४८९ उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५ ॥
४९० यदश्वान् धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान् प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत् स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६ ॥
४९१ न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७ ॥
४९२ यत् पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८ ॥

अर्थ— [४८९] हे (पुरीषिणः मरुतः) जलसे युक्त वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (समुद्रतः) समुद्रके जलको (उत् ईरयथ) ऊपर प्रेरणा देते हो और (वृष्टिं वर्षयथ) वर्षाका प्रारम्भ करते हो। हे (दस्राः) शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीरो ! (वः धेनवः) तुम्हारी गौएं (न उप दस्यन्ति) क्षीण नहीं होती हैं। (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥ ५ ॥

[४९०] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत् पृषतीः अश्वान्) जब धब्बेवाले घोडोंको तुम (धूर्षु) रथोंके अग्रभागमें जोड देते हो और (हिरण्ययान् अत्कान्) स्वर्णमय कवच (प्रति अमुग्ध्वं) हर कोई पहनते हो, तब (विश्वाः इत्) सभी (स्पृधः) चढाऊपरी करनेवाले दुश्मनोंको तुम (वि अस्यथ) विभिन्न प्रकारोंसे तितरबितर कर देते हो। (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोक कल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥ ६ ॥

[४९१] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे मार्गमें (पर्वताः) पहाड (न वरन्त) रुकावट न डालें, (नद्यः न) नदियाँ भी रोडे न अटकायँ। (यत्र) जिधर (अचिध्वं) जानेकी इच्छा हो, (तत्) उधर (गच्छथ इत् उ) जाओ, (उत) और (द्यावा-पृथिवी) भूमंडल एवं द्युलोकमें (परि याथन) चारों ओर घूमो। (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥ ७ ॥

[४९२] हे (वसवः मरुतः) लोगोंको बसानेहारे वीर मरुतो ! (यत् पूर्व्यं) जो पुरातन, पुराना है (यत् च नूतनं) और जो नया है (यत् उद्यते) जो उत्कृष्ट है और (यत् च शस्यते) जो प्रशंसित होता है, (तस्य विश्वस्य) उस सभीके तुम (नवेदसः भवथ) जाननेवाले होओ। (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— हे वीरो ! तुम्हारा बडप्पन सचमुच वर्णनीय है। तुम सूर्यवत् तेजस्वी हो, इसीलिए हमें अमृतोंमें स्थान दो ॥ ४ ॥

समुद्रमें विद्यमान जलको ये मरुत् ऊपर आकाशमें उठा ले जाते हैं और यहाँसे फिर वर्षाके द्वारा उसे भूमिपर पहुँचा देते हैं। इस वर्षाके कारण गौओंका पोषण होता है ॥ ५ ॥

वीर सुन्दर दिखाई देनेवाले अश्वोंको रथमें जोडकर कवचधारी बन बैठते हैं और सारे शत्रुओंको मार भगा देते हैं ॥ ६ ॥

पर्वत तथा नदियोंके कारण वीरोंके पथमें कोई रुकावट खडी न होने पाये। विजयी बननेके लिए जिधर भी जाना इन्हें पसंद हो, उधर बिना किसी विघ्नके वे चले जायँ और सर्वत्र विजयका झंडा फहरायँ ॥ ७ ॥

पुराना हो या नया, जो कुछ भी ऊँचा या वर्णनीय ध्येय है, उसे वीर जान लें और उसके लिए सचेष्ट रहें ॥ ८ ॥

४९३ मृळत नो मरुतो मा वधिष्टना॒ऽस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ९ ॥

४९४ यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० ॥

[५६]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- बृहती; ३, ७ सतोबृहती ।]

४९५ अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद् रोचनादधि ॥ १ ॥

४९६ यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन् तान् वर्ध भीमसंदृशः ॥ २ ॥

अर्थ— [४९३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (नः मृळत) हमें सुखी बनाओ; (मा वधिष्टन) हमें न मारो (अस्मभ्यं) हमें (बहुलं शर्म वि यन्तन) बहुत सारा सुख दो और हमारी (स्तोत्रस्य सख्यस्य) स्तुतियोग्य मित्रताको तुम (अधि गातन) जान लो । (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोक कल्याणके लिए जाते समय (अनु अवृत्सत) इन्हींका अनुसरण करते हैं ॥ ९ ॥

[४९४] हे (गृणानाः मरुतः) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (अस्मान् अंहतिभ्यः निः) हमें दुर्दशासे दूर हटाकर (वस्यः अच्छ) बसनेके लिए योग्य जगहकी ओर (नयत) ले चलो । हे (यजत्राः) यज्ञ करनेवाले वीरो ! (नः हव्य-दातिं) हमारे दिये हुए हविष्यान्नका (जुषध्वं) सेवन करो । (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) विभिन्न प्रकारके धनोंके स्वामी या अधिपति बन जायँ, ऐसा करो ॥ १० ॥

[५६]

[४९५] हे (अग्ने !) अग्ने ! (अद्य) आज दिन (शर्धन्तं) शत्रुविनाशक, (रुक्मेभिः अञ्जिभिः) स्वर्णहारों एवं वीरोंके आभूषणोंसे (पिष्टं) अलंकृत (गणं) वीर मरुतोंके समुदायको तथा (मरुतां विशः) मरुतोंके प्रजाजनोंको (रोचनात् दिवः अधि) प्रकाशमय द्युलोकसे (अव आ ह्वये) मैं नीचे बुलाता हूँ । ॥ १ ॥

[४९६] हे अग्ने ! तू उन्हें (हृदा यथा चित्) अंतःकरणपूर्वक जैसे पूज्य (मन्यसे) समझता है, (तत् इत्) उसी प्रकार वे (आ-शसः) चतुर्दिक् शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले वीर (मे जग्मुः) मेरे निकट आ चुके हैं (ये) जो (ते) तुम्हारे (हवनानि) हवनोंके (नेदिष्ठं) समीप (आगमन्) आ गये, (तान् भीम-संदृशः) उन उग्र-स्वरूपी वीरोंको (वर्ध) तू बढा दे । ॥ २ ॥

भावार्थ— हमें सुख, आनन्द एवं कल्याण प्राप्त हो, ऐसा करो । जिससे हमारी क्षति हो, ऐसा कुछ भी न करो और हमसे मित्रतापूर्ण व्यवहार रखो ॥ ९ ॥

हमें वीर पुरुष पापोंसे बचाएँ और सुखपूर्वक जहाँ निवास कर सकें ऐसे स्थानतक हमें पहुँचा दें । हम जो कुछ भी हविष्यान्न प्रदान करते हैं, उसे स्वीकार कर हमें भाँति भाँतिके धन मिलें, ऐसा करना उन्हें उचित है ॥ १० ॥

जनताके हितके लिए हम अपने बीच वीरोंको बुलाते हैं । वे वीर सैनिक इधर आयें और अच्छी रक्षाके द्वारा सबको सुखी बनायें । ॥ १ ॥

पूज्य वीरोंको अन्न आदि देकर उनका यथावत् आदर सत्कार करें, तथा जिससे उनकी वृद्धि हो, ऐसे कार्य सम्पन्न करने चाहिए । ॥ २ ॥

४९७ मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥ ३ ॥
४९८ नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥
४९९ उत् तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥ ५ ॥
५०० युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ ६ ॥
५०१ उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणि—रिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत् प्र तं रथेषु चोदत ॥ ७ ॥

अर्थ— ४९७, (मीळ्हुष्मती इव) उदार तथा (पर-अ-हता) शत्रुसे पराभूत न हुई और इसीलिए (मदन्ती) हर्षित हुई वीरसेना (अस्मत् आ एति) हमारे निकट आ रही है। हे (मरुत !) वीर मरुतो ! (वः अमः) तुम्हारा बल (ऋक्षः न) सप्तर्षियोंके समान (शिमी-वान्) कार्यक्षम तथा (दु-ध्रः) शत्रुओंके द्वारा घेरे जाने में अशक्य है और (गौः इव) बैलके समान वह (भीम-युः) भयंकर ढंगसे सामर्थ्यवान् है। ॥ ३ ॥

[४९८] (दुर् धुरः गावः न) जीर्ण धुराका नाश जैसे बैल करते हैं, उसी प्रकार (ये) जो वीर (ओजसा) अपनी सामर्थ्यसे शत्रुओंका (वृथा) आसानीसे विनाश करते हैं, वे (यामभिः) हमलोंसे (अश्मानं गिरिं) पथरीले पहाडोंको तथा (स्वर्-यं पर्वतं चित्) आकाशचुम्बी पहाडोंको भी (प्र च्यावयन्ति) स्थान भ्रष्ट कर देते हैं। ॥ ४ ॥

[४९९] (उत् तिष्ठ) उठो, (नूनं) सचमुच (स्तोमैः) स्तोत्रोंसे (सम्-उक्षितानां) इकट्ठे बडे हुए (एषां मरुतां) इन वीर मरुतोंके (पुरु-तमं) बहुतही बडे (अ-पूर्व्यं) एवं अपूर्व गणकी, (गवां सर्गं इव) बैलोंके समूहकी जैसे प्रार्थनाकी जाती है, वैसे ही (ह्वये) मैं प्रार्थना करता हूँ । ॥ ५ ॥

[५००] तुम अपने (रथे हि) रथमें (अरुषीः) लालिमामय हरिणियाँ (युङ्ग्ध्वं) जोड दो और अपने (रथेषु) रथमें (रोहितः) एक लालवर्णवाला हरिण (युङ्ग्ध्वं) लगा दो, या (अजिरा) वेगवान् (वहिष्ठा हरि) ढोनेकी क्षमता रखनेवाले दो घोडोंको रथ (वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि) खींचनेके लिए धुरामें (युङ्ग्ध्वं) जोड दो । ॥ ६ ॥

[५०१] (उत) सचमुच (स्यः) वह (अरुषः) रक्तिम आभासे युक्त (तुवि-स्वनिः) बडे जोरसे हिन-हिनानेवाला (दर्शतः) देखनेयोग्य (वाजी) घोडा (इह) इस रथकी धुरामें (धायि स्म) जोडा गया है। हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः यामेषु) तुम्हारी चढाइयोंमें वह (चिरं मा करत्) विलम्ब न करेगा, (तं) उसे (रथेषु प्र चोदत) रथोंमें बैठकर भली भाँति हाँक दो ॥ ७ ॥

भावार्थ— शिकस्त न खायी हुई, उमंग भरी वीर सेना हमें सहायता पहुँचानेके लिए आ रही है। वह प्रबल है इसीलिए शत्रु उसे घेर नहीं सकते हैं और इसे देख लेनेसे दर्शकोंके मनमें भयका संचार होता है ॥ ३ ॥

अपनी शक्तिके सहारे ये वीर मरुत् वीर शत्रुओंका वध करते हैं और पर्वत श्रेणीको भी जगहसे हिला देते हैं। ॥ ४ ॥

ये वीर मरुत् बुलाये जानेपर इकट्ठे हो जाते हैं। मैं इन मरुतोंके इस अपूर्व दलकी प्रार्थना करता हूँ। ॥ ५ ॥

हे मरुतो ! तुम अपने रथमें अनेक रंगोंवाली हिरणियां जोडो और उसमें दो अच्छे और पुष्ट घोडे भी जोडो ॥ ६ ॥

रथको शीघ्र ही अश्वयुक्त करके शीघ्र चलनेके लिए उन्हें प्रेरणा करो और बहुत जल्द दुश्मनों पर धावा करो ॥ ७ ॥

५०२ रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥ ८ ॥
५०३ तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन् त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥ ९ ॥

[५७]

[ऋषिः— श्यावाश्व आत्रेयः । देवता— मरुतः । छन्दः— जगती, ७-८ त्रिष्टुप् ।]

५०४ आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय यन्तन ।
इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥ १ ॥
५०५ वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥ २ ॥

अर्थ— [५०२] (यस्मिन्) जिसमें (सु-रणानि) अच्छे रमणीय वस्तुओंको (बिभ्रती) धारण करनेवाली (रोदसी) द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतों के साथ (आ तस्थौ) बैठी हुई हैं, उस (श्रवस्-युं) कीर्तिको समीप करनेवाले (मरुतं रथं) वीर मरुतों के रथका (वयं आ हुवामहे) वर्णन हम सभी तरह से कर रहे हैं ॥ ८ ॥

[५०३] (यस्मिन्) जिसमें (सु-जाता) भलीभाँति उत्पन्न, (सु-भगा) अच्छे भाग्यसे युक्त एवं (मीळ्हुषी) उदार द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतोंके साथ (महीयते) महत्त्वको प्राप्त होती है, (तं) उस (वः) तुम्हारे (रथे-शुभं) रथमें सुहानेवाले (त्वेषं) तेजस्वी और (पनस्युं) सराहनीय (शर्धं) बलकी (आ हुवे) ठीक प्रकार मैं प्रार्थना करता हूँ ॥ ९ ॥

[५७]

[५०४] हे (इन्द्र-वन्तः) इन्द्रके साथ रहनेवाले, (स-जोषसः) प्रेम करनेहारे, (हिरण्य-रथाः) सुवर्णके बनाये रथ रखनेवाले तथा (रुद्रासः) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (सुविताय) हमारे वैभवको बढानेके लिए (आ यन्तन) हमारे समीप आओ । (इयं अस्मत् मतिः) यह हमारी स्तुति (वः प्रति हर्यते) तुममेंसे हरेककी पूजा करती है । हे (दिवः !) तेजस्वी वीरो ! जिस प्रकार (तृष्णजे) प्यासे और (उदन्-यवे) जलको चाहनेवालेके लिए (उत्साः न) जलकुंड रखे जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लिए तुम हो ॥ १ ॥

[५०५] हे (पृश्नि-मातरः मरुतः) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुतो ! तुम (वाशीमन्तः) कुठारसे युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) भाले धारण करनेवाले, (मनीषिणः) अच्छे ज्ञानी, (सु-धन्वानः) सुन्दर धनुष्य साथ रखनेहारे, (इषुमन्तः) बाण रखनेवाले, (निषङ्गिणः) तूणीरवाले, (सु-अश्वाः सु-रथाः) अच्छे घोडों तथा रथोंसे युक्त एवं (सु-आयुधाः) अच्छे हथियार धारण करनेहारे (स्थ) हो और इसीलिए तुम (शुभं) लोककल्याणके लिए (वि याथन) जाते हो । २ ॥

भावार्थ— द्यावापृथिवी अच्छे रमणीय वस्तुओंको धारण करके जिनके आधारसे टिकी है, उन मरुतोंके विजयी रथका काव्य हम रचते हैं तथा गायन भी करते हैं ॥ ८ ॥

जिसमें समूचा भाग्य समाया हुआ है, ऐसे तेजस्वी मरुतोंके दिव्य बलकी सराहना मैं करता हूँ ॥ ९ ॥

वीर हमारे पास आ जायँ और प्यासे हुए लोगोंको जल दें और हमारी वाणी उनका काव्यगायन करे ॥ १ ॥

सभी भाँतिके शस्त्रास्त्रों एवं हथियारोंसे सुसज्ज बनकर ये वीर शत्रुदल पर भीषण आक्रमणका सूत्रपात करते हैं ॥ २ ॥

५०६ धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ३ ॥
५०७ वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥ ४ ॥
५०८ पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानव स्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ॥ ५ ॥
५०९ ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥ ६ ॥

अर्थ— [५०६] (दाशुषे) दानीको (वसु) धन देनेके लिए जब तुम चढाई करते हो तब (द्यां) द्युलोकको और (पर्वतान्) पहाडोंको भी तुम (धूनुथ) हिला देते हो । उस (वः) तुम्हारे (यामनः भिया) हमलेके डरसे (वना) अरण्य भी (नि जिहते) बहुत ही काँपने लगते हैं । हे (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता समझनेवाले वीरो ! (शुभे) लोककल्याणके लिए (यत) जब तुम (उग्राः) उग्र स्वरूपवाले वीर वन (पृषतीः) धब्बेवाली हरिणियाँ रथोंमें (अयुग्ध्वं) जोडते हो, तब (पृथिवीं कोपयथ) भूमिको क्षुब्ध कर डालते हो ॥ ३ ॥

[५०७] (मरुतः) वीर मरुत् (वात-त्विषः) प्रखर तेजसे युक्त, (वर्ष-निर्णिजः) स्वदेशी कपडा पहननेवाले हैं । (यमाः इव) यमज भाईके समान (सु-सदृशः) बिलकुल तुल्यरूप तथा (सु पेशसः) सुन्दर रूपवाले हैं । वे (पिशङ्ग-अश्वाः) भूरे रंगके एवं (अरुण-अश्वाः) लाल रंगके घोडे समीप रखनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित तथा (प्र-त्वक्षसः) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाले अपने (महिना) महत्त्वके कारण (द्यौः इव उरवः) आकाशके तुल्य बडे हुए हैं ॥ ४ ॥

[५०८] (पुरु-द्रप्साः) यथेष्ट जल समीप रखनेवाले, (अञ्जि-मन्तः) वस्त्रालंकार-गणवेश-धारण करनेवाले, (सु दानवः) दानशूर, (त्वेष-संदृशः) तेजस्वी दीख पडनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं ले जा सकता ऐसे, (जनुषा सु-जातासः) जन्मसे उत्तम परिवारमें उत्पन्न (रुक्म-वक्षसः) सुवर्णके अलंकार छातीपर धरनेहारे, (दिवः) तेजःपुञ्ज तथा (अर्काः) पूजनीय वीर (अ-मृतं नाम भेजिरे) अमर कीर्ति पा चुके ॥ ५ ॥

[५०९] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः अंसयोः ऋष्टयः) तुम्हारे कंधों पर भाले रखे हैं । (वः बाह्वोः) तुम्हारी भुजाओंमें (सहः ओजः) शत्रुको पराभूत करनेका बल तथा (बलं) सामर्थ्य (अधि हितं) रखा हुआ है । (शीर्षसु) माथोंपर (नृम्णा) सुवर्णमय शिरोवेष्टन, (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (विश्वा आयुधा) सभी हथियार विद्यमान हैं । (वः तनूषु) तुम्हारे शरीरोंपर (श्रीः अधि पिपिशे) तेज अत्यधिक शोभा बढा रहा है ॥ ६ ॥

भावार्थ— वीर सैनिक हाथमें शस्त्रास्त्र लेकर जब सज्ज होते हैं तब सभी लोग सहम जाते हैं ॥३॥

ये सभी वीर मरुत् प्रखर तेजसे युक्त, जुडवें भाईके समान परस्पर प्यार करनेवाले, तुल्य रूपवाले और सुन्दर रूपवाले हैं । ये शत्रुओंका नाश करके अपने ही महत्त्वके कारण आकाशके समान बडे हुए हैं ॥ ४ ॥

ये मरुत् सभी अलंकारोंसे सभी अलंकारोंसे सजे धजे रहते हैं । उत्तम वीर परिवारमें उत्पन्न होनेके कारण ये स्वयं भी वीर हैं, अतः इनका धन कोई छीन नहीं सकता ॥ ५ ॥

वीरोंके कन्धोंपर भाले हों, भुजाओंमें शत्रुओंको हरानेवाला बल हो और सामर्थ्य हो । शरीरपर सभी हथियार विद्यमान हों और इनकी शोभा सदा बढे ॥ ६ ॥

५१० गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं चन्द्रवद् राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥ ७ ॥
५११ हये नरो मरुतो मृळता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५८]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- त्रिष्टुप्]

५१२ तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १ ॥
५१३ त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥ २ ॥

अर्थ— [५१०] हे (मरुतः) वीर मरुतो! (गो-मत्) गौओंसे युक्त, (अश्वा-वत्) घोडोंसे युक्त, (रथ-वत्) रथोंसे युक्त, (सु-वीरं) वीरोंसे परिपूर्ण तथा (चन्द्र-वत्) सुवर्णसे युक्त, (राधः) अन्न (नः दद) हमें दे दो। हे (रुद्रियासः) वीरो ! (नः) हमारी (प्र-शस्तिं) वैभवशालिता (कृणुत) करो। (वः) तुम्हारी (दैव्यस्य अवसः) दिव्य संरक्षणशक्तिका हम (भक्षीय) सेवन कर सकें ऐसा करो ॥ ७ ॥

[५११] (हये नरः मरुतः) हे नेता एवं वीर मरुतो! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) सत्यको जाननेवाले, (सत्य-श्रुतः) सत्यकीर्तिसे युक्त, (कवयः युवानः) ज्ञानी एवं युवक, (बृहत्-गिरयः) अत्यन्त सराहनीय और (बृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड बलसे युक्त तुम (नः मृळत) हमें सुखी बनाओ ॥ ८ ॥

[५८]

[५१२] (स्व-राजः) स्वयंशासक ऐसे (ये) जो वीर (आशु-अश्वाः) वेगवान् घोडोंको समीप रखनेवाले हैं, इसलिए (अम-वत् वहन्ते) अतिवेगसे चले जाते हैं, (उत) और जो (अमृतस्य ईशिरे) अमर लोकपर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं (तं उ नूनं) उस सचमुच (एषां) इन (नव्यसीनां) सराहनीय (मारुतं) वीर मरुतोंके (तविषी-मन्तं गणं स्तुषे) बलिष्ठगण-संघकी तू स्तुति कर ॥ १ ॥

[५१३] हे (विप्र) ज्ञानी पुरुष ! (ये मयो-भुवः) जो सुखदायक, (महित्वा) बडप्पनसे (अमिताः) असीम सामर्थ्यवान् तथा (तुवि-राधसः) यथेष्ट धनाढ्य हैं, उन (नॄन्) नेता वीरपुरुषोंको तथा (तवसं) बलिष्ठ एवं (खादि-हस्तं) हाथमें वलय-कडे-धारण करनेवाले, (धुनि-व्रतं) शत्रुओंको हिला देनेका व्रत जिन्होंने ले लिया हो, ऐसे (मायिनं) कुशल (दाति-वारं) दानी या शत्रुका वध करके उसे दूर करनेवाले, (त्वेषं) तेजस्वी ऐसे उन वीरोंके (गणं वन्दस्व) संघको नमन कर ॥ २ ॥

भावार्थ— हर तरहसे सहायता करके और हमारा संरक्षण करके वीर हमारी प्रगतिमें मददगार हों । हमें अन्नकी प्राप्ति ऐसी हो कि जिसके साथ गौ, रथ, अश्व एवं वीर सैनिककी समृद्धि हो ॥ ७ ॥

ऐसे वीर जनताका संरक्षण कर हम सबको सुखी बनावें ॥ ८ ॥

जो वीर वन्दनीय हों उनकी प्रशंसा सभीको करनी चाहिए । येही वीर इहलोक तथा परलोकपर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी क्षमता रखते हैं ॥ १ ॥

हे ज्ञानी पुरुष ! तू जो सुखदायक, अपने महत्त्वके कारण असीम सामर्थ्यवान् और धनाढ्य हैं, उन नेता वीर पुरुषोंको नमन कर ॥ २ ॥

५१४ आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥ ३ ॥
५१५ यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥ ४ ॥
५१६ अराइवेदचरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥ ५ ॥
५१७ यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वै- र्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वना- न्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥ ६ ॥

अर्थ— [५१४] (ये उद-वाहासः) जो जल देनेवाले (वृष्टिं जुनन्ति) वृष्टिको प्रेरणा देते हैं, वे (विश्वे मरुतः) सभी वीर मरुत् (अद्य) आज (वः) तुम्हारी ओर (आ यन्तु) आ जायँ। हे (कवयः) ज्ञानी तथा (युवानः मरुतः) युवक वीर मरुतो ! (यः अयं) जो यह (अग्निः सम्-इद्धः) अग्नि प्रज्वलित किया गया है, (एतं जुषध्वं) इसका सेवन करो ॥ ३ ॥

[५१५] हे (यजत्राः मरुतः) यज्ञ करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (जनाय) लोककल्याणके लिए (इर्यं) शत्रुविनाशक तथा (विभ्व-तष्टं) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे (राजानं) राजाको (जनयथ) उत्पन्न करते हो। (युष्मत्) तुमसे (मुष्टिहा) मुष्टि योधी और (बाहुबलः) बाहुबलसे शत्रुको हटाने (एति) आ जाता है, हमें प्राप्त होता है। (युष्मत्) तुमसे ही (सत् अश्वः) अच्छे घोडे रखनेवाला (सुवीरः) अच्छा वीर तैयार हो जाता है ॥ ४ ॥

[५१६] (अराः इव इत्) पहियेके अरोंके समानही (अ-चरमाः) सभी समान दीख पडनेवाले तथा (अहा इव) दिवसतुल्य (महोभिः) बडे भारी तेजसे युक्त होकर (अ-कवाः) अवर्णनीय ठहरनेवाले ये वीर (प्र प्र जायन्ते) प्रकट होते हैं। (उप-मासः) लगभग समान कदके (रभिष्ठाः) अतिवेगवान् ये (पृश्नेः पुत्राः) मातृभूमिके सुपुत्र (मरुतः) वीर मरुत् (स्वया मत्या) अपने मनसे ही (सं मिमिक्षुः) सब कोई मिलकर एकतापूर्वक विशेष कार्यका सृजन करते हैं ॥ ५ ॥

१ उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिक्षुः— ये मातृभूमिके सुपुत्र वीर समानतापूर्वक बर्ताव करते हैं। अविषमदशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको ऐक्यसे निभाते हैं।

[५१७] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यत्) जब (पृषतीभिः अश्वैः) धब्बेवाले घोडे जोते हुए (विळुप-विभिः) दृढ तथा सामर्थ्यवान् पहियोंसे युक्त (रथेभिः) रथोंसे तुम (प्र अयासिष्ट) जाने लगते हो, तब (आपः क्षोदन्ते) सभी जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठते हैं, (वनानि रिणते) वनोंका नाश होता है, तथा (उस्रियः वृषभः) प्रकाशयुक्त वर्षा करनेहारा (द्यौः) आकाश तक (अव क्रन्दतु) भीषण शब्दसे गूँज उठता है ॥ ६ ॥

भावार्थ— मरुत् वायु हैं, जो वृष्टि करते हैं। वायुके कारण वृष्टि होना प्रसिद्ध ही है। यह वायु यज्ञाग्निके साथ मिलकर शुद्ध हो। यज्ञ में शुद्ध और पवित्र पदार्थोंकी आहुति देनेसे उसके कण सूक्ष्म होकर वायुमें मिल जाते हैं और उस वायुको शुद्ध बनाते हैं और यह वायु मेघोंमें जाकर मेघोंमें स्थित जलको भी पवित्र बनाते हैं। इस प्रकार मेघोंका जल भी पवित्र हो जाता है ॥ ३ ॥

जनताका हित हो इसलिए दुश्मनोंको विनष्ट करनेवाला, कुशलतापूर्वक सभी राज्यशासनके कार्य करनेवाला नरेश राष्ट्रपतिकी हैसियतसे पदाधिकारी चुना जाता है। उसी प्रकार मुष्टियोधि महाबाहु वीर तथा अच्छे घोडे समीप रखनेवाला वीर भी राष्ट्रमें जन्म लेता है ॥ ४ ॥

ये सभी वीर तुल्यरूप दीख पडते हैं और समान ढंगके तेजस्वी हैं। वे अपना कर्तव्य वेगसे पूर्ण करते हैं, और अपनी मातृभूमिकी सेवामें मिलजुलकर अविषम भावसे विशिष्ट कार्यको संपन्न करते हैं ॥ ५ ॥

५१८ प्रथिष्ट यामन् पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥ ७ ॥

५१९ हये नरो मरुतो मृळता न स्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥ ८ ॥

[५९]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता मरुतः । छन्दः- जगती, ८ त्रिष्टुप् ।]

५२० प्र वः स्पळक्रन् त्सुवितायं दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान् तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥ १ ॥

अर्थ— [५१८] (एषां यामन्) इन वीरोंके आक्रमणसे (पृथिवी चित्) भूमितक (प्रथिष्ट) विख्यात हो चुकी है; (भर्ता इव) पति जैसे पत्नीमें (गर्भं) गर्भकी स्थापना करता है, वैसे ही इन्होंने (स्वं इत्) अपनाही (शवः धुः) बल अपने राष्ट्रमें प्रस्थापित किया (हि) और (वातान् अश्वान्) वेगवान् घोडोंको (धुरि आ युयुज्रे) रथके अगले भागमें जोड दिया और (रुद्रियासः) उन वीरोंने (स्वेदं वर्षं चक्रिरे) अपने पसीनेकी मानों वर्षासी की, पराक्रमकी पराकाष्ठा कर दिखायी ॥ ७ ॥

[५१९] (हये नरः मरुतः) हे नेता एवं वीर मरुतो ! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) सत्य को जाननेवाले, (सत्यश्रुतः) सत्य कीर्तिसे युक्त (कवयः युवान) ज्ञानी एवं युवक, (बृहत्-गिरयः) अत्यन्त सराहनीय और (बृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड बलसे युक्त तुम (न मृळत) हमें सुखी बनाओ ॥ ८ ॥

[५९]

[५२०] (वः सवितायः) तुम्हारा अच्छा कल्याण हो तथा (दावने) अच्छा दान दिया जा सके, इसलिए (स्पट्) याजक इस कर्मका (प्र अक्रन्) उपक्रम या प्रारंभ कर रहा है; तूभी (दिवे अर्च) प्रकाशक देव की, द्युलोकको पूजा कर और मैं भी (पृथिव्यै) मातृभूमिके लिए (ऋतं प्र भरे) स्तोत्रका गायन करता हूँ । वे वीर (अश्वान् उक्षन्ते) अपने घोडोंको बलवान् बनाते हैं तथा (रजः आ तरुषन्ते) अन्तरिक्षसे भी परे चले जाते हैं और (स्वं भानुं) अपने तेजको (अर्णवैः) समुद्रोंसे-समुद्रपर्यटनोंद्वारा समुद्रमें से भी (अनु श्रथयन्ते) फैला देते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— जब मरुत् शत्रुदल पर हमले चढाने लगते हैं, याने वायु बहने लगती है, उस समय जलप्रवाह बौखला उठते हैं, वनके पेड टूटकर गिरने लगते हैं और आकाशके मेघ भी गरजने लगते हैं ॥ ६ ॥

इन वीरोंके शत्रुदल पर होनेवाले आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमि विख्यात हुई । इन्होंने अपना बल राष्ट्रमें प्रस्थापित किया और घोडोंसे रथ संयुक्त करके जब ये चढाई करने लगे, तब (इस युद्धमें) पसीनेसे तर होने तक वीरता पूर्ण कार्य करते रहे ॥ ७ ॥

ऐसे वीर जनताका संरक्षण कर हम सबको सुखी बनावें ॥ ८ ॥

सबका भला हो और सबको सहायता पहुँचे, इस हेतुसे याजक इस यज्ञका प्रारम्भ करता है । प्रकाशके देवताकी पूजा करो और मातृभूमिके सूक्तोंका गायन करो । वीर अपने घोडोंको किसी भी भूभाग पर चढाई करनेके लिये सज्ज दशामें रखते हैं और (विमान पर चढकर) अन्तरिक्षमें संचार करते हैं, (तथा नौका एवं जहाजों परसे समुद्रयात्रा करके सुदूरवर्ती देशोंमें तेज फैला देते हैं) ॥ १ ॥

x

५२१ अमा॑देषां भि॒यसा॒ भूमि॑रेजति॒ नौर्न पू॒र्णा क्ष॑रति॒ व्यथि॑र्य॒ती ।
दू॒रे॒दृशो॒ ये चि॒तय॑न्त॒ एम॑भि॒ - र॒न्तर्म॒हे वि॒दथे॑ येति॒रे नरः॑ ॥ २ ॥

५२२ गवा॑मिव श्रि॒यसे॒ शृङ्ग॑मुत्त॒मं सूर्यो॒ न चक्षू॒ रज॑सो वि॒सर्ज॑ने ।
अत्या॑इव सु॒भ्व१॒॑श्चार॑वः स्थन॒ मर्या॑इव श्रि॒यसे॑ चेतथा नरः ॥ ३ ॥

५२३ को वो॑ म॒हान्ति॑ मह॒ताम॒ुद॑श्नव॒त् कस्काव्या॑ मरुतः॒ को ह॒ पौंस्या॑ ।
यू॒यं ह॒ भूमिं॑ कि॒रणं॒ न रे॑जथ॒ प्र यद्भर॑ध्वे सुवि॒ताय॑ दा॒वने॑ ॥ ४ ॥

अर्थ— [५२१] (एषां) इनके (अमात् भियसा) बलके डरसे (भूमिः एजति) पृथ्वी काँप उठती है और (पूर्णा) वस्तुओंसे भरी होनेके कारण (यती) जाते समय (व्यथिः नौः न) पीडित होनेवाली नौकाके समान यह (क्षरति) आन्दोलित, स्पन्दित हो उठती है (दूरे-दृशः) दूरसे दिखाई देनेवाले, (ये) जो (एमभिः) वेगयुक्त गतियोंसे (चितयन्ते) पहचाने जाते हैं, वे (नरः) नेता वीर (विदथे अन्तः) युद्धमें रहकर (महे) बडप्पन पानेके लिए (येतिरे) प्रयत्न करते हैं ॥ २ ॥

[५२२] हे (नरः) नेता वीरो ! (गवां इव उत्तमं शृङ्गं) गौओंके अच्छे सींगके तुल्य (श्रियसे) शोभाके लिए तुम सुन्दर शिरोवेष्टन धारण करते हो, तथा (रजसः विसर्जने) अँधेरा दूर हटानेके लिए (सूर्यः न चक्षुः) सूर्य की तरह तुम लोगोंके नेत्र बनते हो । (अत्याः इव) तुम शीघ्रगामी घोडोंके समान स्वयमेव (सु-भ्वः) उत्तम बने हुए एवं (चारवः) दर्शनीय (स्थन) हो और (मर्याः इव) मर्त्योंके समान (श्रियसे चेतथ) ऐश्वर्यप्राप्तिके लिए तुम सचेष्ट बने रहते हो ॥ ३ ॥

[५२३] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (महतां वः) तुम जैसे महान् सैनिकों की (महान्ति) महानता या बडप्पनकी (कः उत् अश्नवत्) भला कौन बराबरी करता है ? (कः काव्या) कौन भला तुम्हारे काव्य रचनेकी स्फूर्ति पाता है ? (कः ह पौंस्या) किसे भला तुम्हारे तुल्य सामर्थ्य प्राप्त हुए ? (यत्) जब (सुविताय दावने) अत्यन्त उच्च कोटिके दान देनेके लिए तुम (प्र भरध्वे) पर्याप्त धन पाते हो, तब (यूयं ह) तुम सचमुच (किरणं न) एकाध धूलिकणके समान (भूमिं रेजथ) पृथ्वीको भी हिला देते हो ॥ ४ ॥

भावार्थ— इन वीरोंमें भारी बल विद्यमान है, इस कारणसे भूमंडल परके देश मारे डरके काँपने लगते हैं । लदी हुई परिपूर्ण नौका जिस तरह पवनके कारण हिलनेडोलने लगी, तो तनिक भय प्रतीत होने लगता है, ठीक उसी प्रकार सभी लोग इनकी शीघ्रगामिताके परिणामस्वरूप कुछ अंशमें भयभीत हो जाते हैं । चूँकि इनका आक्रमण विद्युत्गतिसे हुआ करता है, अतः इन वीरोंको सभी पहचानते हैं । जब ये रणक्षेत्रमें शत्रुदलसे जूझते हैं, तब इनके मनमें एक ही विचार तथा ख्याल जागृत रहता है कि, यथासंभव बडप्पन प्राप्त करना ही चाहिए ॥ २ ॥

ये वीर शोभाके लिए माथों पर शिरोवेष्टन पहनते हैं । जैसे सूर्य अँधेरेको हटाता है, वैसे ही ये वीर जनता की उदासीनताको दूर भगा देते हैं और उसे उमंग एवं हौसलेसे भर देते हैं । घुडदौडके लिए तैयार किये हुए घोडे जैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं वैसे ही ये मनोहर स्वरूपवाले होते हैं और हमेशा अपनी प्रगति तथा वैभवशालिता करनेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं ॥ ३ ॥

इस अवनीतल पर भला ऐसा कौन है, जो इन वीरोंके समकक्ष बन सके ? इनके अतिरिक्त क्या कोई ऐसा है, जिसके विषयमें वीररसपूर्ण काव्योंका सृजन कोई करे ? इनमें जो वीरता है जो पुरुषार्थ है भला वह किसी दूसरेमें पाये भी जाते हैं ? जिस समय ये भूरि भूरि दान देनेके लिए प्रचुर धन बटोरनेकी चेष्टामें संलग्न रहते हैं, अर्थात् भीषण एवं लोमहर्षण युद्ध छेडते हैं तब समूची पृथ्वी विचलित हो उठती है, सारा भूमंडल स्पंदित हो जाता है ॥ ४ ॥

५२४ अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥ ५ ॥
५२५ ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो ऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥ ६ ॥
५२६ वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा ऽन्तान् दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७ ॥
५२७ मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ८ ॥

अर्थ— [५२४] वे वीर (अश्वाः इव इत्) घोडोंके समान ही (अरुषासः) तनिक लाल वर्णके हैं (स-बन्धवः) एक दूसरेसे भाईचारेका बर्ताव रखनेवाले हैं (उत) और उसी प्रकार (शूराः इव) शूरोंके समान (प्र-युधः) अच्छे योद्धा हैं, इसलिए वे (प्र युयुधुः) भलीभाँति लडते हैं। (नरः) वे नेता वीर (मर्याः इव) मानवोंके समान (सु-वृधः) अच्छी तरह बढनेवाले हैं, अतएव (वावृधुः) यथेष्ट बढते हैं। वे अपनी (वृष्टिभिः) वर्षाओंसे (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्यके तेजको भी (प्र मिनन्ति) घटा देते हैं। ॥ ५ ॥

[५२५] (ते) उनमें कोई (अ-ज्येष्ठाः) श्रेष्ठ नहीं, कोई (अ-कनिष्ठासः) कनिष्ठ भी नहीं और कोई (अ-मध्यमासः) मँझली श्रेणीका भी नहीं, वे सभी समान हैं, [साम्यवादको कार्यरूपमें परिणत करनेवाले हैं।] वे (उत्-भिदः) उन्नतिके लिए शत्रुका भेदन कर ऊपर उठनेवाले हैं, अतएव वे अपने (महसा) तेजसे (वि वावृधुः) विशेष ढंगसे वृद्धिंगत होते हैं। वे (जनुषा) जन्मसे (सु-जातासः) प्रतिष्ठित परिवारमें उत्पन्न अर्थात् कुलीन तथा (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले, (दिवः) स्वर्गीय (मर्याः) मानव ही हैं। वे (नः अच्छ) हमारी ओर (आ जिगातन) आ जायँ। ॥ ६ ॥

[५२६] (ये) जो वीर (वयः न) पंछियोंकी तरह (श्रेणीः) पंक्तिरूपमें समूहमें (ओजसा) वेगसे (दिवः अन्तान्) आकाशके दूसरे छोरतक तथा (बृहतः) बडे बडे (सानुनः) पर्वतोंके शिखर पर भी (परि पप्तुः) चारों ओरसे पहुँचते हैं। (यथा) जैसे एक दूसरेका बल (उभये विदुः) परस्पर जान लेते हैं, वैसे ही ये कर्म करते हैं। (एषां अश्वासः) इनके घोडे (पर्वतस्य नभनून्) पहाडके टुकडे करके (प्र अचुच्यवुः) नीचे गिरा देते हैं। ॥ ७ ॥

[५२७] (द्यौः) द्युलोक तथा (अदितिः) भूमि (नः वीतये) हमारे सुखसमाधानके लिए (मिमातु) तैयारी कर लें (दानु-चित्राः) दानद्वारा आश्चर्यचकित कर डालनेवाले (उषसः) उषःकाल हमारे लिए (सं यतन्तां) भली भाँति प्रयत्न करें। हे (ऋषेः) ऋषिवर! (गृणानाः) प्रशंसित हुए (एते) ये (रुद्रस्य मरुतः) वीरभद्रके वीर मरुत् (दिव्यं कोशं) दिव्य कोश या भाण्डारको (आ अचुच्यवुः) सभी ओरसे उडेल देते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ— ये वीर तेजस्वी हैं, तथा पर्याप्त भ्रातृभाव भी इनमें विद्यमान है। अच्छे कुशल सैनिक होते हुए वे भली भाँति लडकर युद्धोंमें विजयी बनते हैं। वे पूर्णरूपसे बढते हुए अपने तेजसे सूर्यको भी मानों परास्तसा कर देते हैं ॥ ५ ॥

इन वीरोंमें कोई भी ऊँचा, मँझला या नीचा नहीं है, इस तरहका भेदभाव नहीं के बराबर है। क्योंकि वे सभी समान हैं और उन्नतिके लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं। सभी कुलीन हैं और भूमिको मातृवत् आदरभरी निगाहसे देखते हैं। वे मानों स्वर्गसे भूमि पर उतरनेवाले मानव ही हैं। हमारी लालसा है कि वे हमारे मध्य आकर निवास करें ॥ ६ ॥

ये वीर पंक्तिमें रहकर समान रूपसे पग उठाते एवं धरते हुए चलने लगते हैं और इनकी वेगवान् गतिके कारण दर्शक यों समझने लगता है कि, मानों ये आकाशके अंतिम छोर तक इसी भाँति जाते रहेंगे। पर्वतश्रेणियों पर भी ठीक इसी प्रकार ये चढ जाते हैं। एक दूसरे की शक्तिसे परिचित वीर जैसे लडते हों, वैसे ही ये जूझते हैं और इनके घोडे पहाडों तकको चकनाचूर कर आगे निकल जाते हैं। ॥ ७ ॥

५४५ यो मे धेनूनां शतं वैदंदश्विर्यथा ददंत् । तरन्तइंव मंहना ॥ १० ॥
५४६ य ई वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु । अत्र श्रवांसि दधिरे ॥ ११ ॥
५४७ येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा । दिवि रुक्मइंवोपरि ॥ १२ ॥
५४८ युवा स मारुतो गण—स्त्वेषरथो अनेद्यः । शुभंयावाप्रतिष्कुतः ॥ १३ ॥
५४९ को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥ १४ ॥
५५० यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतारं इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥ १५ ॥
५५१ ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः । आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

अर्थ— [५४५] (यः) जिस (वैददश्विः) अश्वविद्यामें प्रवीण राजाने (मे) मुझ ज्ञानीको (धेनुनां शतं ददत्) सौ गायें प्रदान की हैं तथा (तरन्तः इव मंहना) तरन्तके समान प्रशंसनीय धन भी दिए ॥ १० ॥

[५४६] (ये) जो (मदिरं मधु) मिठासभरा सोमरस (पिबन्तः) पीनेवाले वीर (आशुभिः) वेगवान् घोडोंके साथ (ई वहन्ते) शीघ्र चले जाते हैं, वे (अत्र) यहाँ पर (श्रवांसि दधिरे) बहुतसा धन दे देते हैं ॥ ११ ॥

[५४७] (येषां श्रिया) जिनकी शोभासे (रोदसी) द्युलोक तथा भूलोक (अधि) अधिष्ठित-सुशोभित-हुए हैं, वे वीर (उपरि दिवि) ऊपर आकाशमें (रुक्मः इव) प्रकाशमान सूर्यके तुल्य (रथेषु आ विभ्राजन्ते) रथोंमें द्योतमान होते हैं ॥ १२ ॥

[५४८] (सः) वह (मारुतः गणः) वीर मरुतोंका संघ (युवा) तरुण, (त्वेष-रथः) तेजस्वी रथमें बैठनेवाला, (अ-नेद्यः) अनिंदनीय, (शुभं-यावा) शुभ कार्यके लिए ही हलचलें करनेवाला और (अ-प्रति-स्कुतः) अपराजित-सदैव विजयी है ॥ १३ ॥

[५४९] (धूतयः) शत्रुओंको हिलानेवाले (ऋतजाताः) सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न हुए (अरेपसः) निष्पाप ये वीर (यत्र मदन्ति) जहां आनन्दका उपभोग लेते हैं, वह (एषां) इनका स्थान (कः नूनं वेद) भला कौन जानता है ? ॥ १४ ॥

[५५०] हे (विपन्यवः) प्रशंसनीय वीरो ! (यूयं) तुम (इत्था) इस प्रकारसे (मर्तं प्र-नेतारः) मानवोंको उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और (याम-हूतिषु) शत्रुओंपर चढाई करते समय पुकारनेपर तुम (धिया) मनसे बडी लगनसे उस प्रार्थनाको (श्रोतारः) सुन लेते हो ॥ १५ ॥

[५५१] हे (पुरुश्चन्द्राः) अत्यन्त आल्हाददायक (रिशादसः) शत्रुओंके विनाशक (यज्ञियासः) पूज्य वीरो ! (ते) वे प्रसिद्ध तुम (नः काम्या) हमारी अभिलाषायें तथा (वसूनि) धन हमें (आ ववृत्तन) लौटा दो ॥ १६ ॥

भावार्थ— राजाको अश्वविद्यामें प्रवीण होना चाहिए तथा ज्ञानियोंकी हर तरहसे सहायता करनी चाहिए ॥ १० ॥

अच्छे अन्नपानका सेवन करना चाहिए और वेगवान् वाहनों द्वारा शत्रुसेनापर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कोटिका धन मिलता है ॥ ११ ॥

रथोंमें बैठकर वीर सैनिक जय कार्य करने लगते हैं, तब वे अतीव सुहाने लगते हैं ॥ १२ ॥

वीरोंका समुदाय सत्कर्म करनेमें निरत, निष्पाप, हमेशा विजयी तथा नवयुवकवत् उमंग एवं उत्साहसे परिपूर्ण रहता है ॥ १३ ॥

शत्रुओंको कंपित करनेवाले तथा सत्यकी रक्षाके लिए जन्मे हुए तथा पापसे रहित ये वीर मरुत् जहां जाकर आनंद प्राप्त करते हैं, उस स्थानको भला कौन जान सकता है ? ॥ १४ ॥

शत्रुपर चढाई करते समय मददके लिए बुलाये जानेपर ये वीर सैनिक तुरन्त उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं। सहायताके अभिलाषीकी पुकार सुन लेते हैं ॥ १५ ॥

वीरोंकी सहायतासे हमें सभी तरहके धन मिलें। यदि शत्रुने हमारा धन छीन लिया हो तो वह सारी सम्पदा हमें वापस मिले ॥ १६ ॥

५५२ एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥ १७ ॥
५५३ उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ । न कामो अप वेति मे ॥ १८ ॥
५५४ एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥ १९ ॥

[६२]

[ऋषिः- श्रुतविदात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्द- त्रिष्टुप्,

५५५ ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १ ॥
५५६ तत् सु वां मित्रावरुणा महित्व- मीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २ ॥

अर्थ— [५५२] हे (देवि ऊर्म्ये) रात्रि देवी ! (मे एतं स्तोमं गिरः) मेरे इस स्तोत्र तथा उत्तम वाणीको तू (दार्भ्याय परा वह) दर्भ बिछानेवाले मनुष्यकी तरफ उसी तरह ले जा, (रथीः इव) जिस प्रकार कोई रथी अपने गन्तव्य स्थानकी ओर जाता है ॥ १७ ॥

[५५३] (रथवीतौ सुतसोमे) रथवीतिके द्वारा शुरु किए गए (सुतसोमे) सोमयज्ञमें (मे कामः न अप वेति) मेरी इच्छा नष्ट नहीं हुई (इति मे वोचतात्) ऐसा ज्ञानी मुझसे कहता है ॥ १८ ॥

[५५४] (एषः मघवा रथवीतिः) यह धनवान् रथवीति (गोमतीः अनु) जलसे पूर्ण नदीके किनारे (क्षेति) रहता है तथा (पर्वतेषु अपश्रितः) पर्वतोंमें आश्रय लिए हुए है ॥ १९ ।

[६२]

[५५५] हे मित्रावरुण ! जो (वां ध्रुवं) तुम दोनोंका स्थिर स्थान है, (यत्र) जहांपर (सूर्यस्य अश्वान् वि मुंचन्ति) सूर्यके घोडे खोले जाते हैं वह सूर्यका (ऋतं) सत्यस्वरूप (ऋतेन अपिहितं) जलसे ढका हुआ है । वहां (दश शता सह तस्थुः) एक हजार घोडे एक साथ रहते हैं, उस (वपुषां देवानां) सुन्दर शरीरवाले देवोंके (तत् एकं श्रेष्ठं) इस श्रेष्ठ सौन्दर्यको (अपश्यं) मैंने देखा है ॥ १ ॥

१ सूर्यस्य ऋतं ऋतेन अपिहितं— सूर्यका सत्यस्वरूप जलसे ढका हुआ है ।

[५५६] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (वां तत् महित्वं सु) तुम दोनोंका वह महत्त्व बडा भारी है । तुममेंसे (ईर्मा) हमेशा गति करनेवाला एक (अहभिः) प्रतिदिन (तस्थुषीः दुदुह्रे) वृक्षवनस्पतियोंमेंसे रस दुहता है । तुम दोनों (स्वसरस्य) अपनी बहिनके (विश्वाः धेना) सभी तेजोंको (पिन्वथः) पुष्ट करते हो । (वां एकः पविः) तुममेंसे एकका चक्र (आ ववर्त) सब ओर चलता रहता है ॥ २ ॥

भावार्थ— हे देवी रात्रि ! तू मेरी स्तुतिसे पूर्ण इस वाणीको यज्ञ करनेवाले मनुष्यको उसी तरह पहुंचा, जिस तरह कोई रथ अपने रथीको उसके गन्तव्य स्थानतक पहुंचाता है ॥ १७ ॥

रथोंके मार्गोंको सम्यक्तया जाननेवाले राजाके यज्ञमें किसी भी ज्ञानीकी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहनी चाहिए ॥ १८ ॥

रथके मार्गोंको जाननेवाला यह धनवान् राजा यज्ञोंको समाप्त करके नदीके किनारे या पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहे अर्थात् भरपूर यज्ञ करनेके बाद वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करे ॥ १९ ॥

सूर्यका मण्डल सदा जलसे भरे समुद्रमें रहता है । द्युलोक भी एक समुद्र है, जो हमेशा जलसे पूर्ण रहता है । उस समुद्रमें चलता हुआ सूर्य अपनी असंख्य किरणरूपी घोडोंको मुक्त करता है । सभी देवोंमें वह सूर्य सबसे सुन्दर और तेजस्वी शरीरवाला है ॥ १ ॥

×

५४५ यो मे॑ धेनू॒नां श॒तं वैद॑दश्वि॒र्यथा॒ दद॑त् । त॒रन्त॑इव मं॒हना॑ ॥ १० ॥
५४६ य ईं॒ वह॑न्त आ॒शुभिः॒ पिब॑न्तो मदि॒रं मधु॑ । अत्र॒ श्रवां॑सि दधिरे ॥ ११ ॥
५४७ येषां॑ श्रि॒याधि॒ रोद॑सी वि॒भ्राज॑न्ते॒ रथे॒ष्वा । दि॒वि रु॒क्मइ॑वो॒परि॑ ॥ १२ ॥
५४८ युवा॒ स मारु॑तो ग॒णस्त्वे॒षर॑थो॒ अने॑द्यः । शु॒भंया॒वाप्र॑तिष्कुतः ॥ १३ ॥
५४९ को वे॑द नू॒नमे॑षां॒ यत्रा॒ मद॑न्ति॒ धूत॑यः । ऋ॒तजा॑ता अरे॒पसः॑ ॥ १४ ॥
५५० यू॒यं मर्तं॑ विपन्यवः प्रणे॒तार॑ इ॒त्था धि॒या । श्रोता॑रो॒ याम॑हूतिषु ॥ १५ ॥
५५१ ते नो॒ वसू॑नि॒ काम्या॑ पुरुश्च॒न्द्रा रि॑शादसः । आ य॑ज्ञियासो ववृत्तन ॥ १६ ॥

अर्थ— [५४५] (यः) जिस (वैददश्विः) अश्वविद्यामें प्रवीण राजाने (मे) मुझ ज्ञानीको (धेनुनां शतं ददत्) सौ गायें प्रदान की हैं तथा (तरन्तः इव मंहना) तरन्तके समान प्रशंसनीय धन भी दिए ॥ १० ॥

[५४६] (ये) जो (मदिरं मधु) मिठासभरा सोमरस (पिबन्तः) पीनेवाले वीर (आशुभिः) वेगवान् घोडोंके साथ (ईं वहन्ते) शीघ्र चले जाते हैं, वे (अत्र) यहाँ पर (श्रवांसि दधिरे) बहुतसा धन दे देते हैं ॥ ११ ॥

[५४७] (येषां श्रिया) जिनकी शोभासे (रोदसी) द्युलोक तथा भूलोक (अधि) अधिष्ठित-सुशोभित-हुए हैं, वे वीर (उपरि दिवि) ऊपर आकाशमें (रुक्मः इवः) प्रकाशमान सूर्यके तुल्य (रथेषु आ विभ्राजन्ते) रथोंमें द्योतमान होते हैं ॥ १२ ॥

[५४८] (सः) वह (मारुतः गणः) वीर मरुतोंका संघ (युवा) तरुण, (त्वेष-रथः) तेजस्वी रथमें बैठनेवाला, (अ-नेद्यः) अनिंदनीय, (शुभं-यावा) शुभ कार्यके लिए ही हलचलें करनेवाला और (अ-प्रति-स्कुतः) अपराजित-सदैव विजयी है ॥ १३ ॥

[५४९] (धूतयः) शत्रुओंको हिलानेवाले (ऋतजाताः) सत्यकी रक्षाके लिए उत्पन्न हुए (अरेपसः) निष्पाप ये वीर (यत्र मदन्ति) जहां आनन्दका उपभोग लेते हैं, वह (एषां) इनका स्थान (कः नूनं वेद) भला कौन जानता है ? ॥ १४ ॥

[५५०] हे (विपन्यवः) प्रशंसनीय वीरो ! (यूयं) तुम (इत्था) इस प्रकारसे (मर्तं प्र-नेतारः) मानवोंको उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और (याम-हूतिषु) शत्रुओंपर चढाई करते समय पुकारनेपर तुम (धिया) मनसे बडी लगनसे उस प्रार्थनाको (श्रोतारः) सुन लेते हो ॥ १५ ॥

[५५१] हे (पुरुश्चन्द्राः) अत्यन्त आल्हाददायक (रिशादसः) शत्रुओंके विनाशक (यज्ञियासः) पूज्य वीरो ! (ते) वे प्रसिद्ध तुम (नः काम्या) हमारी अभिलाषायें तथा (वसूनि) धन हमें (आ ववृत्तन) लौटा दो ॥ १६ ॥

भावार्थ— राजाको अश्वविद्यामें प्रवीण होना चाहिए तथा ज्ञानियोंकी हर तरहसे सहायता करनी चाहिए ॥ १० ॥

अच्छे अन्नपानका सेवन करना चाहिए और वेगवान् वाहनों द्वारा शत्रुसेनापर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कोटिका धन मिलता है ॥ ११ ॥

रथोंमें बैठकर वीर सैनिक जय कार्य करने लगते हैं, तब वे अतीव सुहाने लगते हैं ॥ १२ ॥

वीरोंका समुदाय सत्कर्म करनेमें निरत, निष्पाप, हमेशा विजयी तथा नवयुवकवत् उमंग एवं उत्साहसे परिपूर्ण रहता है ॥ १३ ॥

शत्रुओंको कंपित करनेवाले तथा सत्यकी रक्षाके लिए जन्मे हुए तथा पापसे रहित ये वीर मरुत् जहां जाकर आनंद प्राप्त करते हैं, उस स्थानको भला कौन जान सकता है ? ॥ १४ ॥

शत्रुपर चढाई करते समय मददके लिए बुलाये जानेपर ये वीर सैनिक तुरन्त उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं। सहायताके अभिलाषीकी पुकार सुन लेते हैं ॥ १५ ॥

वीरोंकी सहायतासे हमें सभी तरहके धन मिलें। यदि शत्रुने हमारा धन छीन लिया हो तो वह सारी सम्पदा हमें वापस मिले ॥ १६ ॥

५६० अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥ ६ ॥
५६१ हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्यश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥ ७ ॥
५६२ हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥ ८ ॥
५६३ यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥ ९ ॥

अर्थ—[५६०] हे (अक्रविहस्ता) निष्कपट हाथोंवाले, (परस्पा) दूसरे भी रक्षा करनेवाले (राजाना) तेजस्वी तथा (अहृणीयमाना) किसीकी भी हिंसा न करनेवाले (वरुणा) मित्र वरुण! तुम (द्वौ) दोनों (सह) एक साथ (इळासु अन्तः) यज्ञोंके अन्दर (यं त्रासाथे) जिसकी रक्षा करते हो, उस (सुकृते) उत्तम कर्म करनेवालेको तुम (क्षत्रं) धन और (सहस्रस्थूणं) हजार खंभोंवाला घर प्रदान करते हो ॥ ६ ॥

[५६१] (अस्य हिरण्यनिर्णिक्) इन देवोंके इस रथका रूप सुनहरा है, तथा (स्थूणा अयः) इस रथके खंभे भी सोनेके हैं, इसलिए यह रथ (दिवि अश्वाजनी इव वि भ्राजते) द्युलोकमें बिजलीके समान चमकता है। यज्ञ वेदि (तिल्विले भद्रे क्षेत्रे निमिता) रससे भरपूर कल्याणकारी जगहमें नापकर बनाई गई है। हम (अधिगर्त्यस्य मध्वः सनेम) इस रथ पर रखे हुए मधुर रसको प्राप्त करें ॥ ७ ॥

[५६२] हे (मित्रवरुण) मित्र और वरुण! तुम (उषसः वि उष्टौ) उषःकालके प्रकाशित होनेपर (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके उदय होनेपर (अयः स्थूणं गर्तं) सोनेके खम्भोंवाले रथ पर (आ रोहथः) चढते हो तथा (अतः) उस रथ परसे (अदितिं दितिं च चक्षाथे) पृथ्वी और पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणियोंको देखते हो ॥ ८ ॥

[५६३] हे (सुदानू भुवनस्य गोपा) उत्तम दान देनेवाले तथा लोकोंके रक्षक मित्र और वरुण! (यत्) जो (बंहिष्ठं) अत्यन्त विशाल (न अतिविधे) शत्रुओंसे अपराजेय तथा (अच्छिद्रं) दोषरहित (शर्म) घर है, (तेन) उस घरसे हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण! (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो, हम (सिषासन्तः) धनको प्राप्त करनेकी इच्छावाले होकर (जिगीवांसः स्याम) शत्रुओंके धनको जीतनेकी इच्छा करनेवाले हों ॥ ९ ॥

भावार्थ—ये दोनों निष्कपट हाथोंवाले, दूसरे भी रक्षा करनेवाले, किसीकी भी हिंसा न करनेवाले तेजस्वी मित्रवरुण जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं वह उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य उत्तम धन और गृह आदि ऐश्वर्य प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

इस सूर्य रूपी रथका रूप सुनहरा है और इसके किरणरूपी खंभ भी सुनहरे हैं, इसलिए यह सूर्य द्युलोकमें बिजलीके समान चमकता है। इन देवोंका रथ यज्ञमें आता है और यह यज्ञ उस वेदिमें होता है जो उपजाऊ भूमिपर नापकर बनाई जाती है। ऐसी जगह और वेदिमें किया गया उत्तम यज्ञ भी कल्याणकारी होता है और हरतरहके मधुर रसको प्रदान करता है ॥ ७ ॥

उषःकालमें सूर्यके उदय होनेपर मित्र और वरुण अपने सुनहरे रथ पर चढते हैं और पृथ्वीपरकी सारी प्रजाओंको देखते चलते हैं। सूर्य प्रातःकाल उदय होता है और अपनी किरणरूपी आंखोंसे मानों सब जगत्को देखता हुआ अपने रथको चलाता है (सूर्यके इस रूपका वर्णन ऋ. १, ३५, २, पर भी आया है) ॥ ८ ॥

हे उत्तम दान देनेवाले तथा भुवनोंकी रक्षा करनेवाले मित्र और वरुण! तुम हमें बहुत बडा, शत्रुओंसे अपराजेय और दोषरहित घर प्रदान करो और उस घरसे हमारी रक्षा करो। हम भी अपने सामर्थ्यसे शत्रुओंके धनोंको जीतकर धनवान् होनेकी इच्छा करें ॥ ९ ॥

[६३]

[ऋषिः- अर्चनाना आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- जगती ।]

५६४ ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत् पिन्वते दिवः ॥ १ ॥
५६५ सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥ २ ॥
५६६ सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥ ३ ॥
५६७ माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥ ४ ॥

---

[६३]

अर्थ— [५६४] हे (ऋतस्य गोपा सत्यधर्माणा) नियमोंके रक्षक तथा सत्यधर्मका पालन करनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (परमे व्योमनि) परम आकाशमें (रथं अधि तिष्ठथः) रथ पर बैठते हो, (अथ) इसके बाद (युवं) तुम दोनों (अत्र यं अवथ) इस संसारमें जिसकी रक्षा करते हो, (तस्मै) उसे (वृष्टिः) वर्षा (दिवः मधुमत्) द्युलोकसे मधुर जल बरसाकर (पिन्वते) पुष्ट करती है ॥ १ ॥

[५६५] हे (स्वर्दृशा मित्रावरुणा) तेजस्वी आंखोंवाले मित्र तथा वरुण ! तुम दोनों (अस्य भुवनस्य सम्राजा) इस संसारके सम्राट् हो, तुम (विदथे राजथः) यज्ञमें सुशोभित होते हो। हम (वां) तुम दोनोंसे (वृष्टिं राधः अमृतत्वं ईमहे) समयानुसार वृष्टि, ऐश्वर्य और अमरता मांगते हैं। तुम्हारी, (तन्यवः) किरणें (द्यावापृथिवी वि चरन्ति) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें विचरती हैं ॥ २ ॥

[५६६] हे (सम्राजौ) भुवनोंके सम्राट् (उग्रा) वीर (वृषभा) बलवान् (दिवः पृथिव्याः पती) द्युलोक और पृथ्वीके स्वामी तथा (विचर्षणी) सबको देखनेवाले (मित्रावरुणा) मित्र और वरुणो ! तुम (चित्रेभिः अभ्रैः) सुन्दर मेघोंके साथ (रवं उपतिष्ठथः) गर्जना करते हुए रहते हो, तथा (असुरस्य मायया) अपने बलके सामर्थ्यसे (द्यां वर्षयथः) जल बरसाते हो ॥ ३ ॥

[५६७] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (वां माया) तुम दोनोंका सामर्थ्य (दिवि श्रिता) द्युलोकमें आश्रित है, उसीके कारण (सूर्यः) सूर्यका (चित्रं आयुधं ज्योतिः) सुन्दर शस्त्ररूपी प्रकाश (चरति) विचरता है। तुम दोनों (दिवि) द्युलोकमें (तं) उस सूर्यको (वृष्ट्या अभ्रेण गूहथः) वर्षा करनेवाले बादलोंसे छिपा देते हो, तब हे (पर्जन्य) मेघ ! तुझसे (मधुमन्तः द्रप्सा ईरते) मधुर रसकी धारायें बहती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण ये दोनों देव सत्य नियमोंका पालन करनेवाले तथा उनकी रक्षा करनेवाले हैं। वे इस जगत्में जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह हरतरहसे पुष्ट होता है और प्रकृति भी उसकी हरतरहसे रक्षा करती है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण दोनों ही अपनी तेजस्वी आंखोंसे इस संसारको देखते हैं, इसीलिए ये इस संसारके स्वामी हैं। इन्हीं देवोंसे प्राणी ऐश्वर्य और अमरता मांगते हैं। इन दोनों देवोंकी किरणें द्युलोक और पृथ्वीलोकमें विचरती हैं ॥ २ ॥

ये मित्र और वरुण दोनों संसारके स्वामी बलवान्, द्युलोक और पृथ्वीलोकके स्वामी मित्र और वरुण सभीको देखनेवाले हैं। जब मेघ गर्जते हैं, तब मानों मेघोंमें ये ही देव गर्जते हैं और अपने सामर्थ्यसे जल बरसाते हैं ॥ ३ ॥

इन मित्र और वरुणके सामर्थ्यके कारण ही द्युलोकमें सूर्य स्थित है और उसका प्रकाश सर्वत्र विचरता है। सूर्यका प्रकाश रात्रिमें विचरनेवाले दुष्टोंका शत्रु है। इन्हीं मित्र और वरुणके सामर्थ्यसे बादल सूर्यको ढक लेते हैं, तब बादलोंको सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे तहस नहस करके वर्षारूपी मधुर रसकी धारायें बहाता है ॥ ४ ॥

५६८ रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु ।
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥ ५ ॥

५६९ वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥ ६ ॥

५७० धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥ ७ ॥

[६४]

[ऋषिः- अर्चनाना आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ७ पङ्क्तिः ।

५७१ वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥ १ ॥

अर्थ— [५६८] हे (मित्रावरुणा, मित्र और वरुण ! (गविष्टिषु) यज्ञोंमें (शुभे) अपने कल्याणके लिए (मरुतः) मरुद्गण (शूरः न) एक शूरवीरके समान (सुखं रथं युंजते) सुखकारी रथको जोडते हैं। तब (दिवः तन्यवः) द्युलोकसे प्रकट होनेवाली किरणें (चित्रा रजांसि वि चरन्ति) सुन्दर लोकोंमें फैलती हैं। हे (सम्राजा) तेजस्वी देवो ! (पयसा) उत्तम जलसे (नः उक्षतं) हमें सिंचित करो ॥ ५ ॥

[५६९] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! तुम्हारे ही कारण (पर्जन्यः) मेघ (इरावतीं) अन्नको उत्पन्न करनेवाली (त्विषीमतीं) तेजसे युक्त (चित्रां) सुन्दर और (सु वाचं वदति) उत्तमवाणीको बोलता है। (मरुतः) मरुद्गण (मायया) अपने सामर्थ्यसे (अभ्रा सु वसत) मेघोंको सर्वत्र फैलाते हैं। हे मित्र वरुण ! तुम (अरुणां अरेपसं द्यां) तेजसे युक्त तथा निर्मल द्युलोकको बरसाओ ॥ ६ ॥

[५७०] हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (विपश्चिता) बुद्धिमान् तुम दोनों (धर्मणा व्रता रक्षेथे) धर्मपूर्वक अपने नियमोंकी रक्षा करते हो और (असुरस्य मायया) मेघके सामर्थ्यसे विश्वकी रक्षा करते हो, इसी (ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः) सत्य नियमके कारण सारे विश्वमें तुम सुशोभित होते हो, तुम्हीं (दिवि) द्युलोकमें (चित्र्यं रथं सूर्यं) तेजस्वी तथा गति करनेवाले सूर्यको (धत्थ) स्थापित करते हो ॥ ७ ॥

१ विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे— बुद्धिमान् धर्मपूर्वक अपने व्रत-नियमोंका पालन करते हैं ।

२ ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते— मनुष्य अपने सत्यनियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है ।

[६४]

[५७१] (व्रजा इव) जिस तरह गायें बाडेमें जाती हैं, उसी तरह (बाह्वोः) अपने सामर्थ्यसे (परिजगन्वांसा) सर्वत्र जानेवाले (वः) तुम मित्र और वरुणको हम बुलाते हैं तथा (स्वर्ण-रं) सोनेके समान चमकीले धनको देनेवाले तथा (रिशादसं) शत्रुओंके विनाशक (मित्रं वरुणं) मित्र और वरुणको हम (ऋचा हवामहे) ऋचाओंसे बुलाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुणकी ही कृपासे मरुद्गण यज्ञोंमें जानेके लिए अपने कल्याणकारक रथोंको जोडते हैं। तब द्युलोकसे प्रकट होनेवाली किरणें सभी लोकोंमें फैलती हैं ॥ ५

मित्र और वरुणके कारण ही मेघ अन्नको उत्पन्न करनेवाली गंभीर गर्जना करते हैं, तब वायु भी अपने सामर्थ्यसे सारे आकाशको बादलोंसे ढक देते हैं, तब ये मित्र और वरुण द्युलोकसे तेजस्वी और निर्मल जल बरसाते हैं ॥ ६ ॥

मित्र और वरुण बुद्धिमान् होनेके कारण धर्मपूर्वक अपने नियमोंका पालन करनेके कारण ही ये सारे संसारमें सुशोभित होते हैं। इसी प्रकार जो बुद्धिमान् होते हैं वे सदा सत्यके मार्गपर चलते हुए अपने व्रतोंका आचरण करते हैं तथा अपने नियमपालनरूप व्रतके कारण ही वे सारे विश्वमें यशस्वी होते हैं ॥ ७ ॥

५७२ ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥ २ ॥
५७३ यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥ ३ ॥
५७४ युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।
यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥ ४ ॥
५७५ आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥ ५ ॥
५७६ युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥ ६ ॥

अर्थ— [५७२] हे मित्र वरुण ! तुम (ता बाहवा) अपने दोनों बाहोंको — हाथको (सुचेतुना) उत्तम मनसे (अर्चते अस्मा) तुम्हारी पूजा करनेवाले हमारी ओर (प्र यन्तं) फैलाओ । मैं भी (वां) तुम दोनोंके (जार्यं शेवं-हि) प्रशंसनीय सुखका यश (विश्वासु क्षासु) सभी लोकोंमें (जोगुवे) गाऊंगा ॥ २ ॥

[५७३] मैं (यत्) जब (नूनं गतिं अश्यां) निश्चयसे गतिको प्राप्त करूं तब (मित्रस्य पथा यायां) मित्रके मार्गसे ही आगे चलूं । सभी प्राणी (अस्य प्रियस्य अहिंसानस्य) इस प्रिय तथा दयालु मित्रके (शर्मणि) सुखमें (सश्चिरे) एकत्र होते ॥ ३ ॥

१ यत् गतिं अश्यां मित्रस्य पथा यायां — जब भी मैं गति करूं, तब मित्रके मार्गमें ही जाऊं ।

[५७४] (मघोनां स्तोतॄणां क्षये) धनवान् स्तोताओंके घरमें (यत् ह) जो धन (स्पूर्धसे) आपसी स्पर्धाका कारण बनता है, उस (युवाभ्यां उपमं) तुम्हारे धनको मैं हे (मित्रावरुणा) मित्र वरुण ! (ऋचा धेयां) स्तुतिके द्वारा धारण करूं ॥ ४ ॥

[५७५] हे (मित्र) मित्र ! तू (वरुणः च) और वरुण (सुदीतिभिः) उत्तम तेजोंसे युक्त होकर (मघोनां सखीनां वृधसे) धनसे युक्त मित्रोंकी वृद्धि करनेके लिए (नः क्षये आ) हमारे घर आओ (स्वे सधस्थे आ) हमारे घर अवश्य पधारो ॥ ५ ॥

[५७६] हे (वरुणा) मित्र और वरुण ! (युवं) तुम (नः येषु) हमारे जिन यज्ञोंमें (उरु बृहत् क्षत्रं च बिभृथः) अत्यन्त विशाल बल धारण करते हो, उसका उपयोग (नः वाजसातये राये स्वस्तये) हमारे बल बढाने तथा कल्याणको बढानेके लिए (कृतं) करो ॥ ६ ॥

भावार्थ— सर्वत्र गति करनेवाले, चमकीले धनोंको प्रदान करनेवाले तथा हिंसक शत्रुओंको मारनेवाले मित्र और वरुणको हम बुलाते हैं ॥ १ ॥

हे मित्र और वरुण ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ, अतः अपने वरद हस्त मेरे ऊपर रखो । मैं तुम्हारे यशका गान सर्वत्र करूंगा ॥ २ ॥

जब भी मैं जाऊं तब मित्रके मार्ग अर्थात् स्नेहपूर्ण मार्गपर ही चलूं, क्योंकि मित्र बडा ही प्रिय और दयालु है, अतः उसके आश्रयमें रहकर सभी प्राणी सुख प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

ऐश्वर्यके अभिमानमें फंसे धनियोंके घरोंमें यह धन आपसी स्पर्धा तथा आपसी मनमुटावका कारण बनती है । इसी धनके कारण एक धनी दूसरे धनीसे शत्रुता करता है । पर एक देवभक्तके घरमें यह धन देवोंकी स्तुतिका कारण बनता है । वह देव भक्त इस धनको पाकर यज्ञादि रूप देवोंकी पूजा करता है, देवपूजाके कार्यमें ही धनको खर्च करता है ॥ ४ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम तेजोंसे युक्त होकर धनी मित्रोंकी वृद्धि करनेके लिए हमारे घर आओ ॥ ५ ॥

हे मित्र और वरुण ! तुम अपनी विशालशक्तिसे हमारे बल, धन और कल्याणको बढाओ ॥ ६ ॥

५७७ उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभि-रा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥ ७ ॥

[६५]

[ऋषिः- रातहव्य आत्रेयः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ६ पङ्क्तिः ।]

५७८ यश्चिकेत स सुक्रतु-र्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥ १ ॥

५७९ ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जनेजने ॥ २ ॥

५८० ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥ ३ ॥

अर्थ— [५७७] हे मित्र और वरुण ! (यजता नरा) पूज्य, नेता तथा (अर्चनानसं बिभ्रतो) उपासना करनेवालेको धारण करनेवाले तुम दोनों (उच्छन्त्यां) उषाके प्रकट होनेपर (रुशत् गवि) अग्निकी किरणोंसे प्रकाशित (देवक्षत्रे) यज्ञमें (नः सुतं सोमं) हमारे द्वारा निचोडे गए सोमकी तरफ (हस्तिभिः पड्भिः) जुए रूपी हाथोंवाले तथा पहियों-रूपी पैरोंवाले रथोंसे (आ धावतं) दौडकर आओ ॥ ७ ॥

[६५]

[५७८] (दर्शतः वरुणः मित्रः वा) सुन्दर वरुण और मित्र (यस्य गिरः वनते) जिसकी स्तुतियां सुनते हैं, (यः चिकेत) जो इन देवोंको जानता है, (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला मनुष्य (देवत्रा) विद्वानोंके बीचमें बैठकर (नः ब्रवीतु) हमें उपदेश करे ॥ १ ॥

[५७९] (ता हि) वे दोनों देव (श्रेष्ठवर्चसा) उत्तम तेजस्वी, (राजाना) दीप्तिमान् (दीर्घश्रुत्तमा) दूरसे भी पुकार सुननेवाले हैं । (ता सत्पती) वे दोनों सज्जनोंके पालक, (ऋतावृधा) यज्ञके वर्धक, तथा (जने-जने) प्रत्येक मनुष्यमें (ऋतावाना) सत्यको स्थापित करनेवाले हैं ॥ २ ॥

[५८०] (ता पूर्वा) उन अत्यन्त प्राचीन (युवां) तुम दोनोंकी, हे मित्रावरुण ! (इयानः) मैं सर्वत्र गति करता हुआ (अवसे) अपने संरक्षणके लिए (सचा ब्रुवे) एक साथ स्तुति करता हूँ । (सु-अश्वासः) उत्तम घोडों-वाले हम (वाजान् दावने) अन्नोंको देनेके लिए (सुचेतुना) उत्तम ज्ञानवाले तुम्हारी (प्र) उत्तम रीतिसे स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र और वरुण ये दोनों ही देव पूज्य, नेता तथा इनकी भक्ति करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

अध्यात्मज्ञानका उपदेश वही दे सकता है कि जो इन देवोंको अच्छी तरह जानता है और जो देवोंका भक्त है ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव उत्तम तेजस्वी, दीप्तिवाले, दूरसे भी प्रार्थना सुननेवाले, सज्जनोंके पालक, यज्ञके वर्धक तथा प्रत्येक मनुष्यमें सत्य नियमोंके प्रवर्तक हैं ॥ २ ॥

ये मित्र और वरुण उत्तम ज्ञानवाले हैं और अपने उपासकोंको उत्तम अन्न देनेवाले हैं ॥ ३ ॥

५८१ मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥ ४ ॥
५८२ वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥ ५ ॥
५८३ युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः ।
मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥ ६ ॥

[६६]

[ऋषिः- रातहव्य आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- अनुष्टुप् ।

५८४ आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥ १ ॥

अर्थ— [५८१] (मित्रः) मित्र (अंहः चित् अपि) पापीको भी (उरुक्षयाय गातुं) महान् संरक्षणके उपायको (वनते) बताता है। (प्रतूर्वतः विघतः) हिंसक दुष्ट भक्तके बारेमें भी (अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति) इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है ॥ ४ ॥

१ मित्रः अंहः चित् अपि उरुक्षयाय गातुं वनते— यह मित्रदेव पापीको भी महान् संरक्षणका उपाय बताता है।

२ प्रतूर्वतः विघतः अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति— हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारेमें भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है।

[५८२] (वयं) हम (मित्रस्य) मित्रके (सप्रथस्तमे अवसि) अत्यन्त विशाल संरक्षणमें (स्याम) रहें। (वरुणशेषसः) वरुण देवकी हम सब सन्तानें (त्वा ऊतयः) तुझसे रक्षित होकर (अनेहसः सत्रा) पापसे रहित तथा संगठित होकर रहें ॥ ५ ॥

१ वरुणशेषसः अनेहसः सत्रा— वरुण देवके हम सभी पुत्र पापसे रहित होकर संगठित होकर रहें।

[५८३] हे (मित्रा) मित्र और वरुण! (युवं) तुम दोनों (इमं जनं यतथः) इस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हो (च) और (सं नयथः) उत्तम मार्गसे ले जाते हो। हे देवो! (मघोनः मा परि ख्यतं) ऐश्वर्यशाली भक्तोंको मत त्यागो, (ऋषीणां अस्माकं) मंत्रद्रष्टा अथवा अत्यन्त ज्ञानी हमारे पुत्रादियोंको (मो) मत त्यागो, अपितु (गोपीथे नः उरुष्यतं) यज्ञमें हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥

१ इमं जनं यतथः सं नयथः— ये देव जिस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हैं, उसे उत्तम मार्गसे ले जाते हैं।

[६६]

[५८४] हे (चिकितान मर्त) ज्ञानवान् मनुष्य ! तू (रिशादसा) हिंसक शत्रुओंके विनाशक (सुक्रतू) उत्तम कर्म करनेवाले (देवौ) मित्र और वरुण इन दोनों देवोंको (आ) बुला तथा (ऋतपेशसे) जलका रूप धारण करनेवाले (प्रयसे) अन्नको उत्पन्न करनेवाले (महे) महान् (वरुणाय) वरुणके लिए (दधीत) हवि प्रदान कर ॥ १ ॥

भावार्थ— मित्रदेवकी कृपा सब पर समान रूपसे रहती है। इसके लिए सभी मनुष्य समान हैं। दुष्ट उपासकके बारेमें भी उस देवके विचार उत्तम रहते हैं। उसे भी वह देव पापसे बचनेके उपाय बताता है ॥ ४ ॥

सभी मनुष्य मित्र और वरुण देवके पुत्र हैं, अतः इन दोनों देवोंसे रक्षित होकर सभी मनुष्य पापसे रहित हों, संगठनसे रहें और इन देवोंके विशाल संरक्षणमें रहें ॥ ५ ॥

ये देव अपने जिस मनुष्यको उद्योगी और परिश्रमी बनाना चाहते हैं, उसे सदा उत्तम मार्गमें ले जाते हैं। उत्तम मार्गसे जानेवाले मनुष्य सदा उद्योगी और परिश्रमी होते हैं। ऐसे सत्पुरुषोंकी और उनके पुत्रोंकी ये देव सदा रक्षा किया करते हैं ॥ ६ ॥

५८५ ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य१माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥ २ ॥

५८६ ता वामेषे रथाना—मुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥ ३ ॥

५८७ अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

५८८ तदृतं पृथिवि बृह—च्छ्रवएष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्व—ति क्षरन्ति यामभिः ॥ ५ ॥

अर्थ—[५८५] (हि) क्योंकि (ता) वे दोनों देव (अविह्रुतं) सत्पुरुषोंके लिए कुटिलतासे रहित पर (असुर्यं) असुर आदि शत्रुओंके विनाशक (क्षत्रं) बलको (सम्यक् आशाते) अच्छी तरह प्राप्त करते हैं, (अध) इसीलिए वे (मानुषं व्रता इव) मनुष्यमें जिसतरह कर्तृत्वशक्ति रहती है, अथवा (स्वः न) जिस प्रकार सूर्यमें प्रकाश होता है, उसी तरह (दर्शतं धायि) संसारमें बल स्थापित करते हैं ॥ २ ॥

१ क्षत्रं अविह्रुतं असुर्यं— इन देवोंका बल सज्जनोंके लिए कुटिलता रहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है।

[५८६] हे मित्र वरुण ! (एषां रथानां एषे) इन रथोंके जानेके लिए (गव्यूतिं उर्वीं) मार्ग विस्तृत हो, इस लिए (ता वां) उन तुम दोनोंकी तथा (रातहव्यस्य) हविको प्रदान करनेवाले मनुष्यकी (स्तोमैः) स्तुतियोंसे (दधृक् सुस्तुतिं मनामहे) उत्तम स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

[५८७] (अधा हि) इसलिए हे (पूतदक्षसा अद्भुता काव्या) पवित्र बलवाले, अद्भुत कार्य करनेवाले ज्ञानी मित्र और वरुण ! (दक्षस्य पूर्भिः) बलशाली मनुष्यके प्रशंसाओंसे प्रशंसित (युवं) तुम दोनों (जनानां) मनुष्योंकी प्रार्थनाओंको (केतुना चिकेथे) उत्तम मनसे जानो–समझो ॥ ४ ॥

[५८८] हे (पृथिवि) पृथिवी ! (ऋषीणां श्रव एषे) मंत्रद्रष्टा ज्ञानियोंके अन्नकी इच्छा करनेपर (ज्रयसानौ) सर्वत्र जानेवाले ये मित्र और वरुण (यामभिः) अपने कर्मोंसे (तत् पृथु बृहत् ऋतं) वह बहुत सारा जल (अरं अति क्षरन्ति) पर्याप्त मात्रामें बरसाते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—हे ज्ञानी मनुष्य ! शत्रुओंके विनाशक तथा उत्तम कर्म करनेवाले मित्र और वरुण इन दोनों देवोंको बुला और जलका रूप धारण करनेवाले तथा अन्नको उत्पन्न करनेवाले वरुणको हवि प्रदान कर ॥ १ ॥

मित्र और वरुण इन दोनोंका बल सज्जनोंकी रक्षा करनेवाला तथा दुष्टोंका विनाश करनेवाला है। जिसप्रकार मनुष्योंमें कर्तृत्वशक्ति रहती है, तथा सूर्यमें प्रकाश रहता है, उसी तरह संसारमें इन दोनोंका बल निहित है ॥ २ ॥

हमारे रथोंको आगे जानेके लिए विस्तृत मार्ग मिले, इसलिए हम मित्र और वरुणकी उत्तम स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥

हे पवित्र बलवाले तथा अद्भुत कार्य करनेवाले ज्ञानी देवो ! तुम दोनों हम मनुष्योंके द्वारा की गई प्रार्थनाको उत्तम मनसे सुनो ॥ ४ ॥

जब जब ज्ञानी अन्नकी इच्छा करते हैं, तब तब ये मित्र और वरुण अपने कर्मोंसे जलको पर्याप्त मात्रामें बहाते हैं ॥ ५ ॥

×

५८९ आ यद्वां ईयचक्षसा मित्र व॒यं च॑ सू॒रयः॑ ।
व्यचि॑ष्ठे ब॒हुपा॑य्ये॒ यते॑महि स्व॒राज्ये॑ ॥ ६ ॥

[६७]

[ऋषिः— यजत आत्रेयः । देवता— मित्रावरुणौ । छन्दः— अनुष्टुप् ।

५९० बळि॒त्था दे॑व निष्कृ॒त मादि॑त्या यज॒तं बृ॒हत् ।
वरु॑ण॒ मित्रार्य॑मन् वर्षि॑ष्ठं क्ष॒त्रमा॑शाथे ॥ १ ॥
५९१ आ यद्योनिं॑ हिर॒ण्ययं॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ सद॑थः ।
ध॒र्तारा॑ चर्षणी॒नां य॒न्तं सु॒म्नं रि॑शादसा ॥ २ ॥
५९२ विश्वे॒ हि वि॒श्ववे॑दसो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
व्र॒ता प॒देव॑ सश्चिरे॒ पान्ति॒ मर्त्यं॑ रि॒षः ॥ ३ ॥

अर्थ— [५८९] हे (ईयचक्षसा मित्रा) दूर दृष्टिवाले मित्र और वरुण ! (यत्) चूंकि (वयं सूरयः) हम ज्ञानी जन (वां आ) तुम दोनोंको बुलाते हैं, इसलिए (व्यचिष्ठे) अत्यन्त विस्तृत (बहुपाय्ये) बहुतोंके द्वारा पालने योग्य (स्वराज्ये प्र यतेमहि) अपने राज्यमें प्रयत्न करें ॥ ६ ॥

१ व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि— अत्यन्त विस्तृत और बहुतोंके द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें प्रयत्न करते रहें ।

[६७]

[५९०] (देवा आदित्या) तेजस्वी, रसोंका आदान प्रदान करनेवाले (वरुण) वरुण तथा (अर्यमन् मित्र) श्रेष्ठ मित्र ! तुम दोनों (निष्कृतं) अपराजित (यजतं) पूज्य, (बृहत्) विस्तृत तथा (वर्षिष्ठं) अत्यन्त श्रेष्ठ (क्षत्रं आशाथे) सामर्थ्यको धारण करते हो, (इत्था बट्) यह बात सत्य है ॥ १ ॥

[५९१] (यत्) चूंकि (हिरण्ययं) हितकारी और रमणीय (योनिं) स्थान पर, हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! तुम दोनों (आ सदथः) आकर बैठते हो, इसलिए हे (चर्षणीनां धातारा रिशादसा) मनुष्योंको धारण करनेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक देवो ! तुम (सुम्नं यन्तं) हमें सुख प्रदान करो ॥ २ ॥

[५९२] (वरुणः मित्रः अर्यमा) वरुण, मित्र और अर्यमा ये (विश्वे हि) सभी देव (विश्ववेदसः) सभी तरहसे समृद्ध हैं, तथा (पदा इव) अपने ही स्थानके समान (व्रता सश्चिरे) उत्तम कर्मोंवाले स्थानोंपर जाते हैं और (रिषः मर्त्यं पान्ति) दुष्टोंसे मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— हम सदैव मित्र और वरुणको बुलाते हैं, अतः उनकी कृपासे हम अपने अत्यन्त विस्तृत तथा प्रजाओं द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें ही राष्ट्रकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहें । इस मंत्रमें "बहुपाय्य" शब्दके द्वारा बहुत प्रजाओंद्वारा शासित प्रजातंत्र राज्यकी तरफ संकेत किया गया है । सभी प्रजातंत्र राज्यमें स्वतंत्रतापूर्वक रहकर अपने देशकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहें ॥ ६ ॥

मित्र और वरुण इन देवोंका बल किसीसे भी पराजित न होनेवाला, पूज्य विस्तृत और अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

हे मनुष्योंका पालन करनेवाले तथा शत्रुओंके विनाशक मित्रावरुण ! हम तुम्हें बैठनेके लिए हितकारी और रमणीय स्थान देते हैं, अतः तुम हमें सुख प्रदान करो ॥ २ ॥

वरुण, मित्र और अर्यमा ये सभी देव हर तरहसे समृद्ध हैं । ये देव उत्तम कर्म करनेवालेके घर उतने ही प्रेमसे जाते हैं कि मानों अपने ही घर जा रहे हों । वहां जाकर उस श्रेष्ठ मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥ ३ ॥

५९३ ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवो ऽंहोश्चिदुरुचक्रयः ॥ ४ ॥

५९४ को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत् सु वामेषते मति रत्रिभ्य एषते मतिः ॥ ५ ॥

[६८]

ऋषिः- यजत आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।]

५९५ प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १ ॥

५९६ सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २ ॥

५९७ ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३ ॥

अर्थ— [५९३] (ते हि) वे देव (सत्या:) सत्यस्वरूप (ऋतस्पृशः) सनातन नियमोंका अनुसरण करनेवाले तथा (जने जने ऋतावानः) प्रत्येक मनुष्य अर्थात् जगत्में वे ही सद्धर्मनिष्ठ है । वे (सुनीथासः) उत्तम मार्गसे ले जानेवाले (सुदानवः) उत्तम रीतिसे दान देनेवाले और (अंहः चित् उरुचक्रयः) पापियोंको भी समृद्ध करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

[५९४] हे (मित्र) मित्र ! (युवां) तुममें तू भी (वरुणः) वरुण ऐसा (कः नु) कौन है कि जो (तनूनां अस्तुतः) मनुष्योंसे स्तुत नहीं होता ? (तत् मतिः) वह हमारी बुद्धि (वां एषते) तुम्हारी तरफ दौडती है, (अत्रिभ्य मति एष:) ज्ञानी लोगोंकी बुद्धि भी तुम्हारी तरफ दौडती है ॥ ५ ॥

[६८]

[५९५] हे मनुष्यो ! (वः) तुम (मित्राय वरुणाय) मित्र और वरुणके लिए (विपा गिरा) स्वयं स्फूर्तीसे रच गए स्तोत्रोंसे (प्र गायत) विशेष रूपसे गान करो । हे (महिक्षत्रौ) महाबलशाली देवो ! तुम (बृहत् क्षत्रं) इन महान् स्तोत्रोंको सुनो ॥ १ ॥

[५९६] (या) जो दोनों (मित्रः च वरुणः च देवा) मित्र और वरुण देव (सम्राजा) सबके सम्राट् (घृतयोनी) जलके उद्गम स्थान और (देवेषु प्रशस्ता) देवोंमें प्रशंसनीय हैं ॥ २ ॥

[५९७] (ता) वे दोनों मित्र और वरुण देव (नः) हमें (पार्थिवस्य दिव्यस्य) पृथ्वी सम्बन्धी और द्युलोक सम्बन्धी (महः रायः) महान् ऐश्वर्यको देनेमें (शक्तं) समर्थ हैं । हे देवो ! (वां क्षत्रं) तुम दोनोंका बल (देवेषु महि) देवोंमें सर्वोत्तम है ॥ ३ ॥

भावार्थ— मित्र, वरुण और अर्यमा देव सत्यस्वरूप, सनातन नियमोंका अनुसरण करनेवाले तथा सच्चे धर्मके पालक हैं । वे लोगोंको सन्मार्गसे ले जानेवाले, उत्तम रीतिसे दान देनेवाले तथा पापियोंको भी समृद्ध करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

हे मित्र वरुण ! तुममें ऐसा कौन है कि जिसकी स्तुति मनुष्य नहीं करते, अर्थात् इनमें कोई भी ऐसा नहीं है कि जिसकी स्तुति नहीं होती हो । क्योंकि ज्ञानी और साधारण सभी मनुष्योंका मन या बुद्धि इन्हीं देवोंमें लगी रहती है ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! तुम मित्र और वरुणके लिए स्वयं स्फूर्तीसे रचे गए स्तोत्रोंको गाओ और हे देवो ! तुम भी बडे प्रेमसे उन गानोंको सुनो ॥ १ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों ही देव सबके स्वामी, जलको उत्पन्न करनेवाले होनेके कारण देवोंमें प्रशंसनीय हैं ॥ २ ॥

ये दोनों देव मनुष्योंको सभी तरहके पृथ्वी सम्बन्धी और द्युलोक सम्बन्धी ऐश्वर्य देनेमें समर्थ हैं, इसी कारण इन दोनों देवोंका बल सबसे श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

५९८ ऋतमृतेन सपन्ते—षिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४ ॥
५९९ वृष्टिद्यावा रीत्यापे—षस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ ॥

[६९]

[ऋषिः- उरुचक्रिरात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।]

६०० त्री रोचना वरुण त्रींरुत द्यून् त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्या—ऽनु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १ ॥
६०१ इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद् वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २ ॥

अर्थ— [५९८] (ऋतेन ऋतं सपन्ता) यज्ञसे यज्ञका उपभोग करनेवाले मित्र और वरुण (इषिरं दक्षं आशाते) शत्रु पर आक्रमण करने योग्य बलको प्राप्त करते हैं । (अ-द्रुहा देवौ) किसीसे भी द्रोह न करनेवाले दोनों देव अपने शक्तिको (वर्धेते) बढाते हैं ॥ ४ ॥

[५९९] (वृष्टि द्यावा) वर्षाके जलको आकाशसे बरसानेवाले (रीत्यापा) जल प्रवाहोंको बहनेके लिए मुक्त करनेवाले (इषस्पती) अन्नके स्वामी ये दोनों मित्र और वरुण देव (दानुमत्याः) उदार मनसे युक्त होकर (बृहन्तं गर्तं आशाते) विशाल रथपर चढते हैं ॥ ५ ॥

[६९]

[६००] हे (मित्र वरुण) मित्र और वरुण ! तुम (त्री रोचना) तीन तेज, (त्रीन् द्यून्) तीन द्युलोक तथा (त्रीणि रजांसि) तीन लोकोंको (धारयथः) धारण करते हो । तुम दोनों (क्षत्रियस्य अमतिं वावृधाना) क्षत्रियके सामर्थ्यको बढाते हो, तथा (अजुर्यं व्रतं अनु रक्षमाणा) नष्ट न होनेवाले व्रतकी तुम रक्षा करते हो ॥ १ ॥

[६०१] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र देवो ! (वां) तुम्हारे ही कारण (धेनवः इरावतीः) गायें दुधारु होती हैं, (वां) तुम्हारे ही कारण (सिन्धवः मधुमत् दुहे) नदियां मधुर जल दुहती हैं । (त्रयः वृषभासः रेतोधाः द्युमन्तः) तीन बलवान्, जलको धारण करनेवाले तथा तेजस्वी देव (तिसृणां धिषणानां तस्थुः) तीन स्थानोंपर रहते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—यज्ञ अर्थात् अपने श्रेष्ठतम कर्मोंके कारण ही ये दोनों देव यज्ञमें दी गई हविको पानेके अधिकारी होते हैं । ये दोनों देव अपने भक्तको हर तरहसे समृद्ध करते हैं ॥ ४ ॥

वर्षाके जलको गिरा कर जल प्रवाहोंको बनानेवाले तथा इस प्रकार अन्नको उत्पन्न करनेवाले ये दोनों देव उदार मनसे युक्त होकर विशाल रथ पर चढते हैं ॥ ५ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव, सूर्य, विद्युत्, अग्नि इन तीन तेजोंको, भूः, भुवः, स्वः इन तीन द्युलोकोंको तथा द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी इन तीन लोकोंको धारण करते हैं । ये ही दो देव मनुष्योंको शक्ति प्रदान करके उन्हें उत्तम कर्म करनेके लिए प्रेरणा देते हैं ॥ १ ॥

इन्हीं वरुण और मित्र देवके कारण गायें दुहती हैं, नदियां मधुर जल बहाती हैं, तथा अग्नि, विद्युत् और आदित्य ये तीनों जल बरसानेवाले तथा तेजस्वी देव पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु इन तीन स्थानोंमें रहते हैं ॥ २ ॥

६०२ प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वताते-ळे तोकाय तनयाय शं योः ॥ ३ ॥
६०३ या धर्तारा रजसो-रोचनस्यो-तादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४ ॥

[७०]

[ऋषिः- उरुचक्रिरात्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।

६०४ पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्य-वो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १ ॥
६०५ ता वां सम्यगद्रुह्वाणे-षमश्याम धायसे । वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २ ॥

अर्थ—[६०२] मैं (प्रातः) सुबहके समय (देवीं अदितिं) देवी अदितिको (जोहवीमि) बार बार बुलाता हूँ। (मध्यन्दिने) मध्यान्हके समय (उदिता सूर्यस्य) समृद्धशाली सूर्यकी उपासना करता हूँ। हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! मैं (राये) धनकी प्राप्तिके लिए (सर्वताता) यज्ञमें तुम्हारी (ईळे) स्तुति करता हूँ । हे देवो ! हमारे (तोकाय तनयाय शं योः) पुत्रों और पौत्रोंका कल्याण तथा रोगादि दूर हों ॥ ३ ॥

[६०३] (या) जो (रोचनस्य रजसः) द्युके लोकोंको तथा (पार्थिवस्य) पृथिवीके लोकोंको (धर्तारा) धारण करनेवाले हैं, वे मित्र और वरुण (आदित्या) रसका आदान प्रदान करनेवाले (उत) तथा (दिव्या) तेजस्वी हैं । हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण ! (वां ध्रुवाणि व्रतानि) तुम दोनोंके अटल नियमोंको (अमृताः देवाः न आ मिनन्ति) अमर देव भी नहीं तोड सकते ॥ ४ ॥

१ आदित्या दिव्या रोचनस्य पार्थिवस्य रजसः धर्तारा— रसका आदान-प्रदान करनेवाले तेजस्वी मित्रावरुण द्यु तथा पृथिवीके लोकोंको धारण करनेवाले हैं ।

२ वां ध्रुवाणि व्रतानि अमृताः देवाः न मिनन्ति— इन दोनोंके अटल नियमोंको देव भी नहीं तोड सकते ।

[७०]

[६०४] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र ! (वां अवः) तुम्हारी कृपा (नूनं) निश्चयसे (पुरूरुणा चित्) अत्यन्त विशाल और अपरम्पार है । मैं (वां) तुम दोनोंकी (सुमतिं) उत्तम बुद्धिको (वंसि) प्राप्त करूं ॥ १ ॥

१ वां अवः पुरूरुणा चित्— इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है ।

२ वां सुमतिं वंसि— मैं इन दोनों देवोंके उत्तम बुद्धिको प्राप्त करूं ।

[६०५] हे (अद्रुह्वाणा) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! (ता वां) उन तुम्हारी कृपासे हम (धायसे) खाने पीनेके लिए (इषं अश्याम) अन्न आदि प्राप्त करें । हे (रुद्रा) शत्रुओंको रुलानेवाले देवो ! (वयं ते स्याम) हम तेरे बनकर रहें ॥ २ ॥

१ रुद्रा, वयं ते स्याम— हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! हम तेरे बनकर रहें ।

भावार्थ— मैं सुबहके समय अदिति देवीकी, दोपहरके समय समृद्धशाली सूर्यकी तथा यज्ञमें मित्र और वरुणकी स्तुति करता हूँ । ये सभी देव हमारे पुत्रपौत्रोंके रोगादिको दूर करके उनका कल्याण करें ॥ ३ ॥

मित्र-सूर्य तथा वरुण-जल दोनों देव रसोंका आदान प्रदान करनेवाले हैं, ये दोनों ही देव वृक्ष वनस्पतियोंमें रसकी स्थापना करते हैं । ये दोनों ही तेजस्वी हैं । इसी कारण ये सभी लोकोंको धारण करते हैं । इन दोनों देवोंके नियम इतने अटल हैं कि अमर देव भी इनके नियमोंको तोड नहीं सकते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? ॥ ४ ॥

मित्र और वरुण इन दोनों देवोंकी कृपा निश्चयसे बहुत बडी और अपरम्पार है । मनुष्य उत्तम बुद्धिको प्राप्त करके इनकी कृपाका अधिकारी बने ॥ १ ॥

६०६ पातं नो रुद्रा पायुभि॒रुत त्रायेथां सुत्रात्रा । तुर्याम॒ दस्यू॑न् त॒नूभिः॑ ॥ ३ ॥
६०७ मा कस्या॑द्भुतक्रतू य॒क्षं भुजेमा त॒नूभिः॑ । मा शेष॑सा मा तन॑सा ॥ ४ ॥

[७१]

[ऋषिः- बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- गायत्री ।]

६०८ आ नो गन्तं रिशादसा वरु॑ण॒ मित्र॑ ब॒र्हणा॑ । उपे॒मं चारु॑मध्व॒रम् ॥ १ ॥
६०९ विश्व॑स्य॒ हि प्र॑चेतसा॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ राज॑थः । ई॒शा॒ना पि॑प्यतं॒ धियः॑ ॥ २ ॥
६१० उप॑ नः सु॒तमा ग॑तं॒ वरु॑ण॒ मित्र॑ दा॒शुषः॑ । अ॒स्य सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

अर्थ— [६०६] हे (रुद्रा) शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! तुम (पायुभिः) उत्तम पालनके साधनोंसे (नः पातं) हमारा पालन करो, (उत) और (सुत्रात्रा) उत्तम रक्षाके साधनोंसे हमारी (त्रायेथां) रक्षा करो। हम (तनूभिः) अपने स्वस्थ शरीरोंसे (दस्यून् तुर्याम) दुष्टोंका विनाश करें ॥ ३ ॥

[६०७] हे (अद्भुतक्रतू) आश्चर्यजनक कर्म करनेवाले मित्रावरुण ! हम (कस्य यक्षं) किसी दूसरेके अन्नका (मा भुजेम) उपभोग न करें, (शेषसा मा) अपने पुत्रोंके साथ [अन्यके अन्नका उपभोग] न करें, (तनसा मा) अपने सगे सम्बन्धियोंके साथ भी [अन्यके अन्नका उपभोग] न करें, अपितु (तनूभिः आ) अपने स्वस्थ शरीरोंसे ही उपभोग करें ॥ ४ ॥

१ कस्य यक्षं न भुजेम तनूभिः आ— हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपने शरीरसे कमाये गए अन्नको ही भोगें।

[७१]

[६०८] हे (रिशादसा बर्हणा) शत्रुओंको खा जानेवाले, उनके विनाशक मित्र और वरुण ! तुम दोनों (नः इमं चारुं अध्वरं) हमारे इस सुन्दर यज्ञमें (उप आ गन्तं) आओ ॥ १ ॥

[६०९] हे (प्रचेतसा मित्र वरुणा) ज्ञानी मित्र और वरुण ! तुम (विश्वस्य हि राजथः) सम्पूर्ण विश्वपर शासन करते हो, अतः हे (ईशाना) संसारके स्वामी मित्रावरुण ! तुम हमारी (धियः पिप्यतं) बुद्धियोंको तृप्त करो ॥ २ ॥

[६१०] हे (वरुण मित्र) वरुण और मित्र देवो ! (अस्य दाशुषः) इस दानशील मनुष्यके (सोमस्य पीतये) सोमको पीनेके लिए तथा (नः सुतं) हमारे द्वारा भी निचोडे गए सोमरसको पीनेके लिए (उप आ गतं) हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

भावार्थ— किसीसे द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण देवो ! हम तुम्हारी कृपासे अच्छी तरह खाने पीनेके लिए भरपूर अन्न आदि प्राप्त करें, तथा हम तेरे प्रिय बनकर रहें ॥ २ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण ! तुम अपने पालन करनेके उत्तम साधनोंसे हमारा पालन करो और रक्षाके उत्तम साधनोंसे हमारी रक्षा करो। हम भी अपने स्वस्थ शरीरोंसे दुष्टोंका विनाश करें ॥ ३ ॥

हे मित्र और वरुण ! हम पर ऐसी कृपा करो कि हमें, हमारे पुत्रपौत्रों तथा हमारे सगे सम्बन्धियोंको दूसरोंका अन्न खाकर जिन्दा न रहना पडे, अर्थात् हम दूसरोंके अन्नपर अपनी जीविका न चलायें, अपितु अपने ही स्वस्थ शरीरोंसे परिश्रम करके अन्नका सम्पादन करके अपनी जीविका चलायें ॥ ४ ॥

हे शत्रुका विनाश करनेवाले मित्र और वरुण ! तुम दोनों हमारे इस सुन्दर यज्ञमें आओ ॥ १ ॥

हे ज्ञानी मित्र और वरुण ! तुम सब संसारपर शासन करते हो, अतः तुम हमारी बुद्धियोंको परिपुष्ट करके तृप्त करो ॥ २ ॥

हे मित्र और वरुण ! इस दानशील मनुष्यके द्वारा तथा हमारे द्वारा तैय्यार किए गए सोमरसको पीनेके लिए हमारे पास आओ ॥ ३ ॥

[७२]

[ऋषिः- बाहुवृक्त आत्रेयः । देवता- मित्रावरुणौ । छन्दः- उष्णिक् ।]

६११ आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत् । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १ ॥

६१२ व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना । नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २ ॥

६१३ मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये । नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ ॥

[७३]

[ऋषिः- पौर आत्रेयः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्]

६१४ यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद् वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥ १ ॥

---

[७२]

अर्थ— [६११] (वयं) हम (मित्रे वरुणे) मित्र और वरुणको प्रसन्न करनेके लिए (अत्रिवत्) ज्ञानीके समान (गीर्भिः जुहुमः) स्तुतियोंसे आहुति देते हैं, हे देवो ! तुम (सोमपीतये) सोमरस पीनेके लिए (बर्हिषि नि सदतं) इस यज्ञमें आकर बैठो ॥ १ ॥

[६१२] हे (यातयज्जना) शत्रुओंका विनाश करने वाले मित्रावरुण ! तुम अपने (धर्मणा व्रतेन) धर्मपूर्वक कर्मोंके कारण ही (ध्रुवक्षेमा स्थः) अटल सुखवाले हो । ऐसे तुम (सोमपीतये) सोमरसको पीनेके लिए (बर्हिषि नि सदतं) यज्ञमें आकर बैठो ॥ २ ॥

१ धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः — धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है।

[६१३] (इष्टये) हमारी कामनायें पूर्ण करनेके लिए (मित्रः च वरुणः च) मित्र और वरुण (नः यज्ञं जुषेतां) हमारे यज्ञमें आवें और (सोमपीतये) सोमरसका पान करनेके लिए (बर्हिषि नि सदतां) यज्ञमें आकर बैठें ॥ ३ ॥

[७३]

[६१४] हे (पुरुभुजा अश्विना) अनेक भुजाओं वाले अश्विदेवो ! (अद्य) आज (यत् परावति स्थः) जो तुम दूर देशमें हो, (यत् अर्वावति) अथवा जो पासके देशमें हो, (वा) अथवा (यत् पुरू) जो अनेकोंके साथ हो (यत् अन्तरिक्षे) जो अन्तरिक्षमें हो, तो भी वहांसे (आगतं) हमारे पास आओ ॥ १ ॥

भावार्थ— हम ज्ञानियोंके समान मित्र और वरुणको प्रसन्न करनेके लिए स्तुतियोंको गाकर आहुति देते हैं । वे देव भी प्रसन्न होकर हमारे द्वारा दिए गए सोमरसको पीनेके लिए हमारे यज्ञमें आवें ॥ १ ॥

ये मित्र वरुण धर्मपूर्वक कर्म करते हैं, इसीलिए इन्हें अटल सुख और कल्याण मिलता है । इसीतरह जो मनुष्य धर्मपूर्वक उत्तम कर्मोंको करता है, उसे शाश्वत कल्याण और सुख प्राप्त होता है । और वह यज्ञमें सोम पीनेका अधिकारी होता है ॥ २ ॥

मित्र और वरुण ये दोनों देव हमारे यज्ञमें आकर बैठें और हमारे जो भी मनोरथ हों, उन्हें पूरा करें ॥ ३ ॥

हे अश्विनी देवो ! तुम चाहे दूरके प्रदेशमें हो, या चाहे पासके प्रदेशमें होओ, अथवा तुम अकेले रहो, या बहुतोंके साथ रहो, वहांसे हमारे पास तुम अवश्य आओ ॥ १ ॥

६१५ इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

६१६ ईर्मान्यद् वपुषे वपु- श्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

६१७ तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

६१८ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६१५] (इह) इस विश्वमें (पुरुभूतमा) अनेकों भक्तोंसे जिनका सम्बन्ध है, (पुरू दंसांसि बिभ्रता) जो अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, जो (वरस्या) सर्वश्रेष्ठ तथा (अध्रिगू) अप्रतिहत गतिवाले हैं, उन (तुविस्तमा) उत्कृष्ट बलवाले अश्विनी देवोंको (भुजे हुवे) हवि आदिके लिए बुलाता हूं ॥ २ ॥

[६१६] (रथस्य अन्यत्) रथका एक (वपुः चक्रं) सुंदर पहिया (ईर्मा वपुषे) गति द्वारा शोभा बढानेके लिए (येमथुः) तुम दोनों स्थिर कर चुके, (अन्या) दूसरे (रजांसि) लोकोंमें तथा अनेक (नाहुषा युगा) मानवी युगोंमें (मह्ना) अपनी महिमासे (परि दीयथः) तुम चले जाते हो ॥ ३ ॥

[६१७] हे (विश्वा) सब देवो ! (यत् वां अनु) जो तुम दोनोंके अनुकूल (स्तवे) मैं स्तुति करता हूं, (तत्) वह केवल (वां उ) तुम दोनोंके लियेही (एना सु कृतं) भलीभांति की है; (अ-रेपसा) निर्दोष और (नाना जातौ) अनेक कर्मोंमें लिये प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (अस्मे) हमारे साथ (बन्धुं सं ईयथुः) बन्धुभावको ठीक प्रकार दर्शाते हो ॥ ४ ॥

[६१८] (यत्) जब (सूर्या) सूर्यकी कन्या (वां) तुम्हारे (सदा) हमेशा (रघु-स्यदं रथं) शीघ्रगामी रथपर (आ तिष्ठत्) चढ गयी, तब (घृणा) प्रदीप्त (आतपः) शत्रुओंको परिताप देनेहारे (अरुषाः वयः) लाल रंगवाले पक्षीसदृश गतिशील घोडे (वां परि वरन्ते) तुम्हें घेर लेते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विनीकुमार अपने सभी भक्तोंसे प्रेम करते हैं, अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, उनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता, तथा वे उत्कृष्ट बलवाले हैं ॥ २ ॥

अश्विनीकुमारोंने रथका एक पहिया स्थिर कर दिया, फिर भी वह चक्र गति करता रहा । इनकी यह महिमा दूसरे लोकोंमें भी अनेक युगों तक गाई जाती रहेगी । इन्हीं अश्विनीकुमारोंके प्रभावसे इस संसाररूपी रथका एक चक्ररूप सूर्य गति करता है, फिर भी स्थिर प्रतीत होता है ॥ ३ ॥

दोनों अश्विनीकुमार निर्दोष और अनेक तरहके उत्तम कर्मोंके लिए प्रसिद्ध हैं, अतः ये देव ऐसे ही मनुष्यके साथ बन्धुभाव दर्शाते हैं कि जो सदा उत्तम कर्म करता है । जो स्वयं निर्दोष रहकर अनेक तरहके उत्तम कर्म कुशलतासे करता है, वही प्रशंसाके योग्य है ॥ ४ ॥

जब सूर्यकी कन्या उषा इन अश्विनीकुमारोंके रथपर चढती है, तब तेजस्वी और शत्रुओंको संताप देनेवाले घोडे अश्विनीकुमारोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

६१९ युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
६२० उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद् वां दंसोभिरश्विना ऽत्रिर्नरावुवर्तति ॥ ७ ॥
६२१ मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥
६२२ सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
६२३ इमा ब्रह्माणि वर्धना ऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवा ऽवोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

अर्थ— [६१९] हे (नरा नासत्या) नेता अश्विदेवो ! (अत्रिः सुम्नेन चेतसा) ज्ञानी आनन्दित मनसे (युवोः चिकेतति) तुम्हारी प्रशंसा करता है, (यत्) जबकि (आस्ना वां) मुँहसे तुम दोनोंकी स्तुति करके (अरेपसं घर्मं) निर्दोष अग्निको (भुरण्यति) प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[६२०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यामेषु) चढाइयोंमें (वां) तुम्हारे (उग्रः ककुहः) भीषण, ऊँचे (सन्तनिः) हमेशा आगे चलनेवाले (ययिः) गतिशील रथका (शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, (यत्) जब ज्ञानी (वां दंसोभिः) तुम दोनोंको अपने कर्मोंसे (आ ववर्तति) अपनी ओर आकर्षित करता है ॥ ७ ॥

[६२१] हे (मधूयुवा) मधुको मिश्रित करनेवाले (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले अश्विदेवो ! (मध्वः सु पिप्युषी) मधुर रससे भलीभाँति पुष्ट करनेवाली प्रशंसा तुम्हारी (सिषक्ति) सेवा करती है, (समुद्रा यत्) समुद्रोंको चूँकि (अति पर्षथः) तुम दोनों पारकर चले जाते हो, अतः (वां) तुम्हें (पक्वाः पृक्षः भरन्त) पके हुए अन्न दिए जाते हैं ॥ ८ ॥

[६२२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवां सत्यं इत्) तुम्हें सचमुच (मयोभुवा आहुः वै) सुखदायक बतलाते हैं, (यामन्) यात्राके समय (ता) वे तुम दोनों (यामहूतमा) युद्धोंमें बुलवाने योग्य हो, इसलिए (यामन् मृळयत्तमा) आक्रमणके समय वे तुम बहुत सुख देनेवाले बनो ॥ ९ ॥

[६२३] (अश्विभ्यां) अश्विदेवोंके लिए (इमा ब्रह्माणि) ये स्तोत्र (शंतमा वर्धना सन्तु) शान्तिदायक तथा उनका यश बढानेहारे हों, (या) जिन्हें (रथान् इव) रथोंके समान (तक्षाम) हम बना चुके हैं और (बृहत् नमः अवोचाम) बडा भारी अन्न भी देनेके लिये कह चुके हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— ज्ञानी जन आनन्दित मनसे इन अश्विनीदेवोंकी उपासना करता है, तब वह निर्दोष अग्नि प्राप्त करता है । अश्विनी प्राण और अपान हैं, ज्ञानी जन जब इन प्राण और अपानकी रक्षा करते हैं, तब शरीरस्थ यह अग्नि बलवान् होती है ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ! शत्रुपर आक्रमण करते समय तुम्हारे भयंकर तथा हमेशा आगे बढनेवाले गतिशील रथोंकी ध्वनि सुनाई देती है, तब ज्ञानी अपने कर्मोंसे इन देवोंकी स्तुति करता है ॥ ७ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले अश्विदेवो ! मीठी वाणीसे युक्त प्रशंसा तुम्हारी हर तरहसे सेवा करती है । जब तुम दोनों समुद्रोंको पार कर जाते हो, तब तुम्हारा हर तरहसे सत्कार किया जाता है ॥ ८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों सचमुच सुखदायक हो । शत्रुपर आक्रमण करनेके समय तुम सहायताके लिए बुलाने योग्य हो, इसलिए आक्रमणके समय तुम सुख प्रदान करो ॥ ९ ॥

काव्य ऐसा हो कि जो शान्ति बढानेवाला; यश बढानेवाला और नम्रता बढानेवाला हो अथवा अन्न देनेवाला हो ॥ १० ॥

×

६१५ इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २ ॥

६१६ ईर्मान्यद् वपुषे वपु-श्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्वा रजांसि दीयथः ॥ ३ ॥

६१७ तद् षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४ ॥

६१८ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥ ५ ॥

अर्थ— [६१५] (इह) इस विश्वमें (पुरुभूतमा) अनेकों भक्तोंसे जिनका सम्बन्ध है, (पुरू दंसांसि बिभ्रता) जो अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, जो (वरस्या) सर्वश्रेष्ठ तथा (अध्रिगू) अप्रतिहत गतिवाले हैं, उन (तुविस्तमा) उत्कृष्ट बलवाले अश्विनी देवोंको (भुजे हुवे) हवि आदिके लिए बुलाता हूं ॥ २ ॥

[६१६] (रथस्य अन्यत्) रथका एक (वपुः चक्रं) सुंदर पहिया (ईर्मा वपुषे) गति द्वारा शोभा बढानेके लिए (येमथुः) तुम दोनों स्थिर कर चुके, (अन्या) दूसरे (रजांसि) लोकोंमें तथा अनेक (नाहुषा युगा) मानवी युगोंमें (मह्वा) अपनी महिमासे (परि दीयथः) तुम चले जाते हो ॥ ३ ॥

[६१७] हे (विश्वा) सब देवो ! (यत् वां अनु) जो तुम दोनोंके अनुकूल (स्तवे) मैं स्तुति करता हूं, (तत्) वह केवल (वां उ) तुम दोनोंके लियेही (एना सु कृतं) भलीभांति की है; (अ-रेपसा) निर्दोष और (नाना जातौ) अनेक कर्मोंमें लिये प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (अस्मे) हमारे साथ (बन्धुं सं ईयथुः) बन्धुभावको ठीक प्रकार दर्शाते हो ॥ ४ ॥

[६१८] (यत्) जब (सूर्या) सूर्यकी कन्या (वां) तुम्हारे (सदा) हमेशा (रघु-स्यदं रथं) शीघ्रगामी रथपर (आ तिष्ठत्) चढ गयी, तब (घृणा) प्रदीप्त (आतपः) शत्रुओंको परिताप देनेहारे (अरुषाः वयः) लाल रंगवाले पक्षीसदृश गतिशील घोडे (वां परि वरन्ते) तुम्हें घेर लेते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ— अश्विनीकुमार अपने सभी भक्तोंसे प्रेम करते हैं, अनेक तरहके मनोहर रूप धारण करते हैं, सर्व श्रेष्ठ हैं, उनकी गतिको कोई रोक नहीं सकता, तथा वे उत्कृष्ट बलवाले हैं ॥ २ ॥

अश्विनीकुमारोंने रथका एक पहिया स्थिर कर दिया, फिर भी वह चक्र गति करता रहा । इनकी यह महिमा दूसरे लोकोंमें भी अनेक युगों तक गाई जाती रहेगी । इन्हीं अश्विनीकुमारोंके प्रभावसे इस संसाररूपी रथका एक चक्ररूप सूर्य गति करता है, फिर भी स्थिर प्रतीत होता है ॥ ३ ॥

दोनों अश्विनीकुमार निर्दोष और अनेक तरहके उत्तम कर्मोंके लिए प्रसिद्ध हैं, अतः ये देव ऐसे ही मनुष्यके साथ बन्धुभाव दर्शाते हैं कि जो सदा उत्तम कर्म करता है । जो स्वयं निर्दोष रहकर अनेक तरहके उत्तम कर्म कुशलतासे करता है, वही प्रशंसाके योग्य है ॥ ४ ॥

जब सूर्यकी कन्या उषा इन अश्विनीकुमारोंके रथपर चढती है, तब तेजस्वी और शत्रुओंको संताप देनेवाले घोडे अश्विनीकुमारोंकी रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

६१९ युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६ ॥
६२० उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद् वां दंसोभिरश्विना ऽत्रिर्नराववर्तति ॥ ७ ॥
६२१ मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८ ॥
६२२ सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९ ॥
६२३ इमा ब्रह्माणि वर्धना ऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवा ऽवोचाम बृहन्नमः ॥ १० ॥

अर्थ— [६१९] हे (नरा नासत्या) नेता अश्विदेवो ! (अत्रिः सुम्नेन चेतसा) ज्ञानी आनन्दित मनसे (युवोः चिकेतति) तुम्हारी प्रशंसा करता है, (यत्) जबकि (आस्ना वां) मुँहसे तुम दोनोंकी स्तुति करके (अरेपसं घर्मं) निर्दोष अग्निको (भुरण्यति) प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

[६२०] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यामेषु) चढाइयोंमें (वां) तुम्हारे (उग्रः ककुहः) भीषण, ऊँचे (सन्तनिः) हमेशा आगे चलनेवाले (ययिः) गतिशील रथका (शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, (यत्) जब ज्ञानी (वां दंसोभिः) तुम दोनोंको अपने कर्मोंसे (आ ववर्तति) अपनी ओर आकर्षित करता है ॥ ७ ॥

[६२१] हे (मधूयुवा) मधुको मिश्रित करनेवाले (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले अश्विदेवो ! (मध्वः सु पिप्युषी) मधुर रससे भलीभाँति पुष्ट करनेवाली प्रशंसा तुम्हारी (सिषक्ति) सेवा करती है, (समुद्रा यत्) समुद्रोंको चूँकि (अति पर्षथः) तुम दोनों पारकर चले जाते हो, अतः (वां) तुम्हें (पक्वाः पृक्षः भरन्त) पके हुए अन्न दिए जाते हैं ॥ ८ ॥

[६२२] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (युवां सत्यं इत्) तुम्हें सचमुच (मयोभुवा आहुः वै) सुखदायक बतलाते हैं, (यामन्) यात्राके समय (ता) वे तुम दोनों (यामहूतमा) युद्धोंमें बुलवाने योग्य हो, इसलिए (यामन् मृळयत्तमा) आक्रमणके समय वे तुम बहुत सुख देनेवाले बनो ॥ ९ ॥

[६२३] (अश्विभ्यां) अश्विदेवोंके लिए (इमा ब्रह्माणि) ये स्तोत्र (शंतमा वर्धना सन्तु) शान्तिदायक तथा इनका यश बढानेहारे हों, (या) जिन्हें (रथान् इव) रथोंके समान (तक्षाम) हम बना चुके हैं और (बृहत् नमः अवोचाम) बडा भारी अन्न भी देनेके लिये कह चुके हैं ॥ १० ॥

भावार्थ— ज्ञानी जन आनन्दित मनसे इन अश्विनीदेवोंकी उपासना करता है, तब वह निर्दोष अग्नि प्राप्त करता है । अश्विनी प्राण और अपान हैं, ज्ञानी जन जब इन प्राण और अपानकी रक्षा करते हैं, तब शरीरस्थ यह अग्नि बलवान् होती है ॥ ६ ॥

हे अश्विदेवो ! शत्रुपर आक्रमण करते समय तुम्हारे भयंकर तथा हमेशा आगे बढनेवाले गतिशील रथोंकी ध्वनि सुनाई देती है, तब ज्ञानी अपने कर्मोंसे इन देवोंकी स्तुति करता है ॥ ७ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले अश्विदेवो ! मीठी वाणीसे युक्त प्रशंसा तुम्हारी हर तरहसे सेवा करती है । जब तुम दोनों समुद्रोंको पार कर जाते हो, तब तुम्हारा हर तरहसे सत्कार किया जाता है ॥ ८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों सचमुच सुखदायक हो । शत्रुपर आक्रमण करनेके समय तुम सहायताके लिए बुलाने योग्य हो, इसलिए आक्रमणके समय तुम सुख प्रदान करो ॥ ९ ॥

काव्य ऐसा हो कि जो शान्ति बढानेवाला; यश बढानेवाला और नम्रता बढानेवाला हो अथवा अन्न देनेवाला हो ॥ १० ॥

×

[७४]

[ऋषिः- पौर आत्रेयः । देवताः- अश्विनौ । छन्दः- अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।)

६२४ कूष्ठो देवावश्विना ऽद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १ ॥

६२५ कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २ ॥

६२६ कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३ ॥

६२७ पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४ ॥

---

[७४]

अर्थ— [६२४] हे (मना-वसू) उत्कृष्ट मनवाले अश्विदेवो ! (कू-स्थः) तुम दोनों भूमिपर रहनेकी इच्छा करके (अद्य दिवः) आज द्युलोकसे इधर आओ । हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले देवो ! (अत्रि) ज्ञानी (वां आ विवासति) तुम्हारी सेवा करता है, (तत् श्रवथः) उसे सुनो ॥ १ ॥

[६२५] (नासत्या देवा दिवि) सत्यपालक अश्विदेव द्युलोकमें या (कुह) किधर (नु श्रुता) विख्यात हैं ? (त्या कुह) वे दोनों कहाँ हैं ? (कस्मिन् जने) किस मनुष्यके घर (आ यतथः) तुम प्रयत्न करते हो ? (वां नदीनां) तुम्हारी नदियोंका (कः सचा) भला कौन सहगामी है ॥ २ ॥

[६२६] (वयं) हम (इष्टये) इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए (वां उश्मसि) तुम्हारी कामना करते हैं. (कं ह गच्छथः) भला तुम किसके समीप जाते हो ? (कं याथः) किसके पास चले जाते हो ? (कं अच्छ) किसके प्रति पहुँचनेके लिए (रथं युञ्जाथे) रथको जोडते हो और (कस्य ब्रह्माणि) किसके स्तोत्रोंसे (रण्यथः) तुम रममाण होते हो ? ॥ ३ ॥

[६२७] हे (पौर) नागरिक ! (पौराय) नगरनिवासी जनके लिए (उदप्रुतं) जलमें डूबनेवाले (पौरं चित् हि) नागरिककी सहायतार्थ (जिन्वथः) तुमने तृप्त किया था, (यत् गृभीत-तातये) जब शत्रुद्वारा घेरे हुएको छुडवानेके लिए (ईं) इसे (द्रुहः पदे सिंहं इव) वनमें सिंहके समान तुमने सहायता की ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे उत्तम मनवाले अश्विदेवो ! द्युलोकमें रहनेवाले तुम आज भूमिपर रहनेकी इच्छा करते हुए हमारे पास आओ । ज्ञानी तुम्हारी सेवा करना चाहता है, अतः उसकी प्रार्थना सुनो ॥ १ ॥

ये दोनों अश्विनीकुमार सत्यके पालक होनेके कारण सर्वत्र प्रसिद्ध हैं ! सभी मनुष्योंके यहां ये जाते हैं ॥ २ ॥

हे अश्विनी देव ! तुम कहां रहते हो, कहां जाते हो, किन स्तोत्रोंसे तुम प्रसन्न होते हो, यह बतावो, क्योंकि हम तुम्हारी स्तुति करना चाहते हैं ॥ ३ ॥

जनताकी सहायता करनी चाहिए, कष्टोंसे नागरिकोंको सुरक्षा करनी चाहिए, शत्रुसे घेरे गये मनुष्योंको सहायता करके छुडाना चाहिए ॥ ४ ॥

६२८ प्र च्यवा॑नाज्जुजु॒रुषो॑ व॒व्रिमत्कं॒ न मु॑ञ्चथः ।
यु॒वा यदी॑ कृ॒थः पुन॒ रा काम॑मृण्वे व॒ध्वः॑ ॥ ५ ॥
६२९ अस्ति॒ हि वा॑मि॒ह स्तो॒ता स्मसि॑ वां सं॒दृशि॑ श्रि॒ये ।
नू श्रु॒तं म॒ आ ग॑त॒मवो॑भिर्वाजिनीवसू ॥ ६ ॥
६३० को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णा मा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम् ।
को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥ ७ ॥
६३१ आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना ।
पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥ ८ ॥
६३२ श॒मू षु वां॑ मधूयुवा॒ऽस्माक॑मस्तु च॒र्कृतिः॑ ।
अ॒र्वा॒ची॒ना वि॑चेतसा॒ विभिः॑ श्ये॒नेव॑ दीयतम् ॥ ९ ॥

अर्थ— [६२८] (जुजुरुषः च्यवानात्) बूढे च्यवनसे (वव्रिं) ढकनेवाली चमडीको (अत्कं न) कवचके समान (प्र मुञ्चथः) तुमने उतार डाला (यदि) और (पुनः) फिर (युवा कृथः) उसे युवक बना दिया, तब वह (वध्वः कामं) वधूके द्वारा कामना करने योग्य रूपको (आ ऋण्वे) प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

[६२९] (वां) तुम्हारी (स्तोता इह अस्ति हि) प्रशंसा करनेवाला यहीं है, (श्रिये वां संदृशि स्मसि) शोभाके लिए तुम्हारी दृष्टिकी कक्षामें हम रहते हैं, हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनसे युक्त अश्विदेवो ! (मे नु श्रुतं) मेरी पुकार अब सुन लो और (अवोभिः आगतं) संरक्षणकी आयोजनाओंसे युक्त होकर आओ ॥ ६ ॥

[६३०] हे (विप्र-वाहसा) ज्ञानियोंद्वारा सेवनीय और (वाजिनीवसू) सेनाको पास रखनेवाले अश्विदेवो ! (अद्य पुरूणां) आज नागरिकोंमेंसे (कः कः विप्रः) कौन ज्ञानी, तथा (कः यज्ञैः) भला कौन पुरुष यज्ञोंसे (आ वव्ने) पूर्णतया (वां) तुम्हें स्वीकार करता है ? ॥ ७ ॥

[६३१] हे (अश्विना) अश्विदेवो (रथानां) रथोंमें (येष्ठः वां रथः) विशेष वेगवाला तुम्हारा रथ (आ यातु) इधर आजाए; (मर्त्येषु) मानवोंमें (अस्मयुः) हमारीही कामना करनेवाला तथा (पुरु चित् तिरः) अनेक शत्रुओंको भी हटा देनेवाला (आंगूषः आ) वह प्रशंसनीय रथ इधर आये ॥ ८ ॥

[६३२] हे (मधू-युवा) मधुसे युक्त अश्विदेवो ! (अस्माकं) हमारा (वां चर्कृतिः) तुम्हारे लिए किया हुआ कर्म (सु शं अस्तु) भलीभाँति सुखदायक हो; (विचेतसा) तुम विशिष्ट चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिए (अर्वाचीना) हमारे सामने (श्येना इव) बाज पंछीके तुल्य (विभिः दीयतम्) वेगवान् घोडोंसे आ जाओ ॥ ९ ॥

भावार्थ— अश्विदेवोंने वृद्ध च्यवन ऋषिके शरीरपरसे चमडी, कवच उतारनेके समान, उतार दी, तब वह युवा बना और वधूकी इच्छा करने लगा। औषधि योजनासे वृद्धके शरीरपरसे चमडी उतार दी जाय, तो वह फिरसे तरुण बनेगा और वह तरुण स्त्रीकी कामना करनेयोग्य वीर्यवान् हो जायगा ॥ ५ ॥

संरक्षकोंकी सेनासे युक्त वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ आ जायें और जनताकी सुरक्षा करें। संरक्षक दल सिद्ध रखने चाहिए और संरक्षक साधनोंसे नागरिकोंकी सुरक्षा करनी चाहिए। दुष्टोंद्वारा नागरिक न मारे जायें ॥ ६ ॥

हे ज्ञानियोंद्वारा प्रशंसनीय तथा सेनाको पासमें रखनेवाले अश्विदेवो ! आज मनुष्योंमेंसे किस किसने तुम्हारी स्तुति की और किसने नहीं की, यह सभी बातें तुम जानते हो ॥ ७ ॥

हे अश्विनीदेवो ! रथोंमें सर्वोत्कृष्ट तुम्हारा रथ हमारे पास आवे। मनुष्योंमें हमारी ही इच्छा करनेवाला तथा अनेक शत्रुओंको नष्ट करनेवाला तुम्हारा रथ इधर आवे ॥ ८ ॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! हम जो तुम्हारे लिए कर्म करते हैं, वह तुम्हारे लिये सुखदायक हों। तुम दोनों विशेष चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिए तुम हमारे पास आओ ॥ ९ ॥

६३३ अश्विना यद्ध कर्हिचि च्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० ॥

[७५]

[ऋषिः- अवस्युरात्रेयः । । देवता- अश्विनौ । छन्दः- पङ्क्तिः ।]

६३४ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ १ ॥

६३५ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ २ ॥

६३६ आ नो रत्नानि बिभ्रता वश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३ ॥

अर्थ— [६३३] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इमं हवं) इस पुकारको (यत्) जहाँ (कर्हि चित् ह) कहीं भी तुम रहो लेकिन (शुश्रूयातं) सुन लो (वस्वीः भुजः) प्रशंसनीय भोजन (वां सु) तुम्हें ठीक प्रकार मिले इसलिए रखे हैं, (पृचः वां) अन्नोंको तुम्हारे लिए (सु पृञ्चन्ति) भलीभाँति मिश्रित करते हैं ॥ १० ॥

[७५]

[६३४] हे (माध्वी) मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! (स्तोता ऋषिः) प्रशंसा करनेवाला ऋषि (वां) तुम्हारे (प्रियतमं) अत्यन्त प्रिय, (वसुवाहनं) धन बढानेवाले और (वृषणं रथं प्रति) बलवान् रथका (स्तोमेन प्रति भूषति) स्तोत्रसे वर्णन करता है, तुम (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकारको सुन लो ॥ १ ॥

[६३५] हे (माध्वी) मिठाससे युक्त (सिन्धु-वाहसा) नदियोंमें जानेवाले ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथवाले (सु-सुम्ना दस्रा) अच्छे मनसे युक्त शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो और (अति आयातं) विघ्नोंको लाँघकर इधर आजाओ, तथा ऐसा प्रबंध करो कि (अहं) मैं (सना) हमेशा (विश्वाः तिरः) सभी बाधाओंको हटा सकूँ ॥ २ ॥

[६३६] हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले (वाजिनी-वसू) सेनारूप धनवाले अश्विदेवो ! (नः रत्नानि बिभ्रतौ) हमारे लिए रत्नोंको ले आते हुए (जुषाणा) हमारे कथनको ध्यानपूर्वक सुनते हुए (युवं) तुम दोनों (आगच्छतं) आओ । हे (माध्वी) मधुरतासे युक्त ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुनो ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम्हारे लिए ये प्रशंसनीय अन्न तैय्यार करके रखे गए हैं, इसलिए तुम जहां भी हो, वहींसे हमारी यह प्रार्थना सुनकर आओ ॥ १० ॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! ज्ञानी ऋषि तुम्हारे अत्यन्त प्रिय तथा बलवान् रथकी स्तुति करता है, इसलिए हे देवो ! मेरी पुकार सुनो ॥ १ ॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! तुम उत्तम मनवाले हो, अतः मेरी पुकार सुनो और जहां भी हो, वहांसे सभी विघ्नोंको पार करते हुए चले आओ तथा ऐसा करो कि मैं भी अपने रास्तेमेंसे सभी विघ्नोंको दूर कर सकूं ॥ २ ॥

हे शत्रुओंको रुलानेवाले अश्विदेवो ! मेरी पुकार सुनो और रत्नोंको प्रदान करनेके लिए हमारे पास आओ और हमारे कथनको ध्यानपूर्वक सुनो ॥ ३ ॥

६३७ सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

६३८ बोधिन्मनसा रथ्ये॒ऽषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ५ ॥

६३९ आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६ ॥

६४० अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ७ ॥

अर्थ — [६३७] हे (वृषण्वसू) धनोंकी वर्षा करनेवाले देवो ! मैं (वां सुस्तुभः) तुम दोनोंका अच्छा प्रशंसक हूँ; (वाणीची रथे आहिता) मेरी स्तुति तुम्हारे रथके विषयमें हो रही है (उत) और (ककुहः मृगः) महान्, तुम्हारा अन्वेषण कर्ता (वापुषः) बडे शरीरवाला (वां) तुम्हारे लिए (पृक्षः कृणोति) हविर्भाग तैयार करता है, इसलिए हे (माध्वी) मिठाससे पूर्ण देवो ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो ॥ ४ ॥

[६३८] हे (माध्वी) मिठाससे युक्त अश्विदेवो ! (रथ्या) रथपर चढे (इषिरा) गतिशील, (हवन-श्रुता) पुकार सुननेवाले और (बोधित्-मनसा) ज्ञानयुक्त मनवाले तुम दोनों (अद्वयाविनं च्यवानं) मनमें कुछ और बाहर कुछ ऐसे बर्ताव न करनेवाले च्यवानके समीप (विभिः नि याथः) वेगपूर्वक जानेवाले घोडोंसे पहुँचते हो, इसलिए मेरी पुकार सुनो ॥ ५ ॥

[६३९] हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (मनोयुजः) मनके इशारोंसे कार्यमें जुट जानेवाले, (प्रुषितप्सवः) धब्बेवाले रूपोंवाले (वयः अश्वासः) गतिशील घोडे (वां) तुम दोनोंको (सुम्नेभिः सह पीतये) सुखोंके साथ सोमपानके लिए (आ वहन्तु) इधर ले आयें । हे (माध्वी) मधुरतासे पूर्ण ! (मम हवं) मेरा बुलावा (श्रुतं) सुनो ॥ ६ ॥

[६४०] हे (अदाभ्या) न दबनेवाले ! (नासत्या) सत्यपालक (माध्वी अश्विना) मधुरिमावाले अश्विदेवो ! (इह आ गच्छतं), इधर आओ, (मा वि वेनतं) न उदासीन बनो, (आर्यया) तुम दोनों अधिपति हो, इसलिए (तिरः चित्) दूर देशसे भी (वर्तिः परि यातं) घर चले आओ और (मम) मेरी (हवं श्रुतं) पुकार सुनो ॥ ७ ॥

भावार्थ— हे धनोंकी वर्षा करनेवाले देवो ! तुम मधुरतासे युक्त हो, इसलिए मैं तुम्हारी सदा प्रशंसा करता हूँ । तुम्हारी पूजा करनेवाला मनुष्य तुम्हारे लिए सदैव हवि प्रदान करता है ॥ ४ ॥

च्यवान अर्थात् ज्ञानी मनुष्य सदा गति करनेवाला, ज्ञानसे युक्त मनवाला तथा अन्दर और बाहरके व्यवहारमें सदा एक जैसा होता है । उसके मनमें कुछ हो और बाहर कुछ और व्यवहार करे, ऐसा कभी नहीं होता ॥ ५ ॥

हे मधुरतासे युक्त अश्विनीकुमारो ! तुम मेरी प्रार्थना सुनो और मनमें इच्छा होते ही रथमें जुड जानेवाले तथा वेगसे जानेवाले घोडोंके रथमें बैठकर मेरे पास सोम पीनेके लिए आओ ॥ ६ ॥

किसीके दबावसे दबाना नहीं चाहिए, सत्यका सदा पालन करना चाहिए, मीठे स्वभाववाले बनना चाहिए आर्यत्वके योग्य व्यवहार करना चाहिए, कभी उदास न बनना चाहिए ॥ ७ ॥

६४१ अस्मिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८ ॥
६४२ अभूदुषा रुशत्पशु राग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९ ॥

[७६]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- अश्विनौ । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

६४३ आ भात्यग्निरुषसामनीक मुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १ ॥
६४४ न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठा ऽन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शंभविष्ठा ॥ २ ॥

अर्थ— [६४१] हे (शुभस्पती) शुभोंके पालनकर्ता (अदाभ्या माध्वी अश्विना) न दबनेवाले, मधुरिमामय अश्विदेवो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (जरितारं) प्रशंसक (अवस्युं) रक्षणकी इच्छा करनेहारे (युवं गृणन्तं) तुम दोनोंकी प्रशंसा करनेवालेके (उप भूषथः) समीप जाकर उसे अलंकृत करते हो, इसलिए (मम हवं) मेरी प्रार्थनाको (श्रुतं) सुनो ॥ ८ ॥

[६४२] हे (माध्वी दस्रौ) मधुरिमामय शत्रुविनाशक (वृषण्वसू) बलको स्थिर करनेहारे अश्विदेवो ! (उषाः अभूत्) प्रातःकाल हो चूका, (ऋत्वियः) ऋतुके अनुसार (रुशत्-पशुः अग्निः) प्रदीप्त तेजवाला अग्नि (आ अधायि) पूर्णतया रखा गया है (वां) तुम्हारा (अमर्त्यः रथः) न नष्ट होनेवाला रथ (अयोजि) युक्त किया गया है, इसलिए (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो ॥ ९ ॥

[७६]

[६४३] (उषसां अनीकं) प्रातःवेलाके समीप (अग्निः आ भाति) अग्नि पूर्णतया प्रदीप्त हो उठता है (विप्राणां देवया वाचः) ज्ञानियोंके देवोंको चाहनेवाले भाषण (उत् अस्थुः) होने लगे; हे (रथ्या अश्विना) रथपर चढे हुए अश्विदेवो (पीपिवांसं घर्मं अच्छ) पुष्ट होनेवाले अग्निके प्रति (नूनं इह) अवश्य इधर (अर्वाञ्चा यातं) हमारे पास आओ ॥ १ ॥

[६४४] (संस्कृतं न प्र मिमीतः) जो संस्कार करके सिद्ध किया है उसे वे दोनों नष्ट नहीं करते हैं, (नूनं उपस्तुता) अवश्यही प्रशंसित होनेपर अश्विदेव (इह अन्ति गमिष्ठा) इधर समीप आनेके लिए तैयार रहते हैं, (अवर्तिं प्रति) दरिद्रता के समीपसे उसे हटानेके लिए (दिवा अभिपित्वे) दिनके प्रारंभमें (अवसा आगमिष्ठा) संरक्षणके साथ आनेवाले और (दाशुषे शंभविष्ठा) दानी पुरुषको अत्यन्त सुख देनेवाले हैं ॥ २ ॥

१ संस्कृतं न प्र मिमीतः— ज्ञानी और संस्कृत मनुष्यको ये अश्विदेव कभी दुःख नहीं देते ।

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! तुम उत्तम कर्म करनेवालोंका पालन करनेवाले हो, किसीसे दबते नहीं । तुम दोनों यज्ञोंमें तुम्हारी स्तुति करनेवालेके पास जाकर उसे सुशोभित करते हो ॥ ८ ॥

हे बलोंको स्थिर करनेवाले अश्विदेवो ! अब सबेरा हो गया है, यज्ञवेदीमें अग्नि भी प्रदीप्त हो चुकी है, तुम्हारे रथमें भी घोड जुड चुके हैं अतः तुम मेरी पुकार सुनकर मेरे यज्ञमें आओ ॥ ९ ॥

प्रातःकाल होते ही अग्नि प्रज्वलित हो उठी है, ज्ञानियोंके मुंहसे देवोंकी महिमाका वर्णन करनेवाली स्तुतियां निकलने लगी हैं । अतः हे अश्विनौ ! तुम प्रदीप्त अग्निवाले हमारे यज्ञकी तरफ आओ ॥ १ ॥

ज्ञानी और सभ्य मनुष्यपर इन अश्विदेवोंकी सदा कृपा रहती है । उसे ये देव सदा हि दरिद्रतासे दूर रखते हैं । दानी पुरुषको ये हमेशा सुख देते हैं ॥ २ ॥

६४५ उत या॑तं संग॒वे प्रा॒तरह्नो॑ म॒ध्यंदि॑न॒ उदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
दिवा॒ नक्त॒मव॑सा॒ शंत॑मेन॒ नेदानीं॑ पी॒तिर॒श्विना त॑तान ॥ ३ ॥

६४६ इ॒दं हि वां॑ प्र॒दिवि॒ स्थान॒मोक॑ इ॒मे गृ॒हा अ॑श्विने॒दं दु॑रो॒णम् ।
आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा ऽद्भ्यो या॑त॒मिष॒मूर्जं॒ वह॑न्ता ॥ ४ ॥

६४७ सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम ।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृता॒ सौभ॑गानि ॥ ५ ॥

[७७]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । । देवता- अश्विनौ । । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

६४८ प्रा॒त॒र्यावा॑णा प्रथ॒मा य॑जध्वं पु॒रा गृध्रा॒दर॑रुषः पिबातः ।
प्रा॒तर्हि य॒ज्ञम॒श्विना॑ द॒धाते॒ प्र शं॑सन्ति क॒वयः॑ पूर्व॒भाजः॑ ॥ १ ॥

अर्थ— [६४५] (उत) और (संगवे अह्नः) दिनके उस समय जब कि गौएँ इकट्ठी होती हैं, (प्रातः) सुबह, (मध्यंदिने) दुपहरके समय, (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके उदय होनेपर (दिवा नक्तं) दिन और रात (शंतमेन अवसा) सुखदायक संरक्षणके साथ (आ यातं) इधर पधारो, (इदानीं) अबही (पीतिः) यह रसपान (अश्विना) अश्विदेवोंके साथ (आ ततान न) हो रहा है ऐसा नहीं है ।

[६४६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इदं ओकः) यह वसतिगृह (वां हि) तुम दोनोंके लिएही (प्रदिवि स्थानं) उत्कृष्ट जगह है, उसी प्रकार (इमे गृहाः) ये घर (इदं दुरोणं) यह मकानभी तुम्हारे लिए ही हैं; (दिवः) द्युलोकसे, (बृहतः पर्वतात्) बडे भारी पहाडसे (अद्भ्यः) जलोंसे (इषं ऊर्जं वहन्ता) अन्न और बल ले आते हुए (नः आयातं) हमारे समीप आओ ॥ ४ ॥

१ ओकः प्रदिवि स्थानं— घर सदा एक उत्कृष्ट जगहके रूपमें रहे ।

[६४७] (अश्विनोः नूतनेन) अश्विदेवोंके नये (मयोभुवा अवसा) सुखकारक संरक्षणसे, (सुप्रणीती) सुन्दर नेतृत्वसे (सं गमेम) हम भली प्रकार जीवन बितायें । हे अश्विनो ! (नः रयिं आ वहतं) हमें धन ले आओ, (उत) और वैसेही (वीरान्) वीरोंको तथा (विश्वानि सौभगानि अमृता) सभी सौभाग्य हमें देदो ॥ ५ ॥

[७७]

[६४८] (प्रातः यावाना प्रथमा) सुबह सबसे प्रथम आनेवाले अश्विदेवोंकी (यजध्वं) पूजा करो, (अररुषः गृध्रात्) अदानी तथा अतिलोभीसे (पुरा पिबातः) पहलेही ये सोमको पीते हैं, क्योंकि अश्विदेव (प्रातः हि) सुबहही (यज्ञं दधाते) यज्ञके पास आते हैं और (पूर्वभाजः कवयः) पूर्वकालीन् विद्वान् उनकी (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— हे अश्विदेवो ! प्रातः, मध्याह्न, सूर्यके उदय होनेके समय, दिन या रातमें अर्थात् जब चाहो तब अपने संरक्षणोंके साधनोंके साथ आओ । यह सोमरस तुम्हें हम आजही दे रहे हैं, यह बात नहीं, अपितु अनन्तकालसे हम तुम्हें देते आ रहे हैं ॥ ३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! यह हमारा घर एक बहुत उत्तम स्थान है, इसलिए यह घर तुम्हारे लिए ही है । तुम द्युलोकसे तथा अन्य सभी स्थानोंसे अन्न और बलको लेकर हमारे पास आओ ॥ ४ ॥

अश्विनीकुमारोंके सुखदायक संरक्षण तथा सुन्दर नेतृत्वको प्राप्त करके हम भली प्रकार जीवन व्यतीत करें । हम धन तथा हर तरहके सौभाग्य प्राप्त करें ॥ ५ ॥

६४९ प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २ ॥
६५० हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३ ॥
६५१ यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभि-रनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात् ॥ ४ ॥
६५२ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीरा-ना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ ॥

अर्थ— [६४९] अश्विदेवोंके लिए (प्रातः यजध्वं) सुबह यजन करो, (हिनोत) प्रेरणा करो, (सायं अजुष्टं) शामको वह असेवनीय बनता है और (देव-याः न अस्ति) देवोंके समीप जानेवाला नहीं रहता, (उत) और (अस्मत् अन्यः) हमसे पूर्व दूसरा कोई (यजते) यजन करता है तो (वि आवः च) उनकी विशेष तृप्ति करता है, क्योंकि (पूर्वः-पूर्वः यजमानः) पहले पहले जो यजन करनेवाला होता है, वही (वनीयान्) देवोंके लिए आदरणीय बनता है ॥ २ ॥

[६५०] (वां हिरण्य-त्वक्) तुम दोनोंका सुवर्णसे ढका हुआ (मधुवर्णः) मनोहर रंगवाला (घृत-स्नुः रथः) घृत टपकाता हुआ रथ (पृक्षः वहन्) अन्न ढोता हुआ, (आ वर्तते) हमारे सामने आता है, (मनो-जवाः) वह मनके तुल्य वेगवान् (वात-रंहाः) वायुके समान तेज दौडनेवाला है, हे अश्विदेवो ! (येन) जिस रथसे (विश्वा दुरिता) सभी बुराइयोंको (अति याथः) पार करके चले जाते हो ॥ ३ ॥

[६५१] (यः) जो (विभागे) विभाग करनेके मौकेपर (नासत्याभ्यां) अश्विदेवोंको (भूयिष्ठं चनिष्ठं विवेष) अत्यन्त अधिक मात्रामें अन्न परोसता है और (पित्वः ररते) अन्नका दान करता है, (सः अस्य तोकं) वह अपने पुत्रका (शमीभिः पीपरत्) शुभ कर्मोंसे पालन करता रहेगा, और (सदमित्) हमेशा (अनूर्ध्व-भासः) बहुत कम तेजवालोंको (तुतुर्यात्) हिंसित करेगा ॥ ४ ॥

[६५२] (अश्विनोः नूतनेन) अश्विदेवोंके नये (मयोभुवा अवसा) सुखकारक संरक्षणसे, (सुप्रणीती) सुन्दर नेतृत्वसे (सं गमेम) हम भली प्रकार जीवन बितायें । हे अश्विनो ! (नः रयिं आ वहतं) हमें धन ले आओ, (उत) और वैसेही (वीरान्) वीरोंको तथा (विश्वानि सौभगानि अमृता) सभी सौभाग्य हमें देवो ॥ ५ ॥

भावार्थ— सुबह सबसे प्रथम आनेवाले इन अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनी चाहिए । पूर्वकालीन विद्वान् भी इनकी स्तुति करते आये हैं ॥ १ ॥

प्रातःकाल उठकर देवोंकी पूजा करनी चाहिये । अपने पूर्व दूसरा कोई न उठे और वह हमसे पूर्व पूजा न करे । जो प्रथम पूजा करता है, उसपर देव प्रसन्न होते हैं ॥ २ ॥

रथ सुवर्ण जैसा तेजस्वी और अत्यंत वेगवान् हो । इसमें रखकर घी तथा अन्न लाया जाय और उससे सब दुःखदायक पाप दूर किये जाय ॥ ३ ॥

जो मनुष्य अश्विनीकुमारोंको भरपूर अन्नादि देकर उनका उत्तम रीतिसे सत्कार करता है, वह अपने शुभ कर्मोंसे अपने पुत्रोंका पालन करता रहेगा और सदा अपनेसे कम तेजस्वी शत्रुओंका विनाश करता रहेगा ॥ ४ ॥

अश्विनीकुमारोंके सुखदायक संरक्षण तथा सुन्दर नेतृत्वको प्राप्त करके हम भलीप्रकार जीवन व्यतीत करें । हम धन तथा हर तरहके सौभाग्य प्राप्त करें ॥ ५ ॥

[७८]

[ऋषिः- सप्तवध्रिरात्रेयः । देवता- अश्विनौ (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्)। छन्दः- अनुष्टुप्, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

६५३ अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १ ॥

६५४ अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २ ॥

६५५ अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये । हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३ ॥

६५६ अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेना ऽऽगच्छतमश्विना शंतमेन ॥ ४ ॥

६५७ वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

---

[७८]

अर्थ— [६५३] हे अश्विदेवो ! (इह आ गच्छतं) इधर आओ, (मा वि वेनतं) उदास न बनो (सुतान् उप) निचोडे हुए सोमरसोंके समीप (हंसौ इव आ पततं) हंसके तुल्य वेगपूर्वक आओ ॥ १ ॥

[६५४] हे अश्विदेवो ! (यवसं अनु) तृणके पीछे (हरिणौ इव) हिरनोंकी तरह (गौरौ इव) गौरमृगके समान (सुतान् उप) निचोडे हुए सोमोंके पास (हंसौ इव आ पततं) हंसोंके समान जल्दी आओ ॥ २ ॥

[६५५] हे (वाजिनी-वसू) सेनाको बसानेवाले अश्विदेवो ! (इष्टये) इष्टिके लिए (यज्ञं जुषेथां) यजन करो, और (हंसौ इव) हंसोंके समान (सुतान् उप आ पततं) निचोडे हुए सोमोंके पास आओ ॥ ३ ॥

[६५६] हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत्) जब (ऋबीसं अवरोहन्) अँधेरेसे पूर्ण जेलमें उतरते समय (अत्रिः नाधमाया योषा इव) अत्रिने याचना करती हुई नारीके समान (वां अजोहवीत्) तुम दोनोंको बुलाया, तब (शंतमेन) शांतिदायक (श्येनस्य नूतनेन जवसा चित्) बाज पंछीके नये वेगसेही (आगच्छतं) तुम दोनों आये ॥ ४ ॥

[६५७] हे (वनस्पते) वनके अधिपति पेड ! (सूष्यन्त्याः योनिः इव) प्रसवोन्मुख नारीकी योनिके समान (वि जिहीष्व) खुला रह । हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (मे हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुनो, (सप्तवध्रिं मुञ्चतं च) और सप्तवध्रिको मुक्त करो ॥ ५ ॥

भावार्थ— हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार घासके पीछे हिरण जाते हैं, उसी प्रकार तुम सोमरसके पास आओ । हमारी प्रार्थनाके प्रति उदासीन मत बनो ॥ १-२ ॥

हे सेनाको रखनेवाले अश्विनीकुमारो ! तुम हमें अभिमत फल प्रदान करनेके लिये यज्ञमें आओ और हंसोंके समान वेगसे सोमकी तरफ आओ ॥ ३ ॥

अत्रि ऋषिको जब कारागृहमें डाला गया, तब उसने स्त्रीके समान मनोभावसे अश्विदेवोंकी प्रार्थना की । अश्विदेव शीघ्र आये और उन्होंने अत्रि ऋषिकी सहायता की ॥ ४ ॥

हे वनस्पते ! तू हमारी सहायता कर । हे अश्विनौ ! तुम भी हमारी प्रार्थना सुनो, तथा पंच तन्मात्रा, अहंकार और महत् इन सात बंधनोंमें बंधे हुए मनुष्यको मुक्त करो ॥ ५ ॥

×

६५८ भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६ ॥

६५९ यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७ ॥

६६० यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८ ॥

६६१ दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ ॥

अर्थ— [६५८] हे अश्विदेवो ! (ऋषये सप्तवध्रये) ऋषि सप्तवध्रिको जोकि (भीताय नाधमानाय) भयभीत हो (सहायतार्थ) प्रार्थना कर रहा था, (मायाभिः) अपनी शक्तियोंसे (युवं) तुम दोनोंने (वृक्षं) पेडको (सं च वि च अचथ) विदीर्ण कर दिया ॥ ६ ॥

[५५९] (पुष्करिणीं) तालावको (यथा वातः) जैसे वायु (सर्वतः सं इङ्गयति) सभी ओरसे ठीक तरह हिलाता है, (एव) वैसेही (ते गर्भः) तेरा गर्भ (दशमास्यः) दस महिनेका होकर (एजतु) हलचल करना शुरु करदे और (निः एतु) बाहर निकल आये ॥ ७ ॥

[६६०] (यथा वातः) जैसे पवन हिलती है, (यथा वनं) जैसे जंगल हिलता डुलता है, (समुद्रः यथा एजति) समुन्दर जैसे चलायमान होता है, हे (दशमास्य) दश महिनोंके बने हुए गर्भ । (एव त्वं) उसी प्रकार तू (जरायुणा सह) वेष्टनके साथ (अव इहि) नीचे गिर जा ॥ ८ ॥

[६६१] (कुमारः) बालक (दश मासान्) दस महिनोंतक (मातरि अधि शयानः) मातामें सोता हुआ (अक्षतः जीवः) बिना किसी क्षति या व्यथाके जीवित दशामें (निः एतु) बहार निकल आये (जीवन्त्याः अधि जीवः) माताके जीवित रहते यह जीव निकल आये ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे अश्विनौ ! सात बंधनोंसे बंधा हुआ मनुष्य जब भयभीत होकर तुम्हारी प्रार्थना करता है, तब तुम उसे पेडको तोडनेके समान बंधनोंसे मुक्त करते हो ॥ ६ ॥

जिस तरह वायु तालाबके जलको हिलाता है, उसी तरह एक गर्भ मांके पेटमें दस मास तक रहकर गर्भमें डोलता रहता है, फिर बाहर निकल आता है ॥ ७ ॥

जिस तरह पवनसे वनके वृक्ष कांपते हैं, समुद्रका जल उफनने लगता है, उसी तरह हे बालक ! तू गर्भसे बाहर निकलकर गति कर ॥ ८ ॥

गर्भ दस महिनोंतक बिना किसी कष्टके या क्षतिके माताके गर्भाशयमें रहे और दसवें महिनेमें सुखसे प्रसूति हो। अश्विदेव वैद्य हैं वे इस सुखप्रसूतिके कर्ममें प्रवीण हैं । इसीलिए उनके सूक्तमें इन मंत्रोंको स्थान दिया गया है ॥ ९ ॥

[७९]

[ऋषिः- सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता- उषाः । छन्दः- पङ्क्तिः ।

६६२ म॒हे नो॑ अ॒द्य बो॑धयो॒-षो॑ रा॒ये दि॒वित्म॑ती ।
यथा॑ चिन्नो॒ अबो॑धयः स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ १ ॥
६६३ या सु॑नी॒थे शौ॑चद्र॒थे व्यौच्छो॑ दुहितर्दिवः ।
सा व्यु॑च्छ॒ सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ २ ॥
६६४ सा नो॑ अ॒द्याभ॒रद्व॑सु॒-र्व्यु॑च्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः॒ सही॑यसि स॒त्यश्र॑वसि वा॒य्ये सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ ३ ॥
६६५ अ॒भि ये त्वा॑ विभावरि॒ स्तोमै॑र्गृ॒णन्ति॒ वह्न॑यः ।
म॒घैर्म॑घोनि सु॒श्रियो॒ दाम॑न्वन्तः सुरा॒तयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥ ४ ॥

---

[७९]

अर्थ— [६६२] हे (उषः) उषा ! (दिवित्मती) दीप्तियुक्त तू (नः महे राये) हमें बडे धन प्राप्त करनेके लिये (अद्य बोधय) आज जाग्रत कर । (यथा चित् नः अबोधयः) जैसा तूने हमें पहिले जगाया था । हे (सुजाते) उत्तम रीतिसे उत्पन्न (अश्वसूनृते) घोडोंके लिए जिसकी प्रार्थना की जाती है वह उषा ! तू (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्य पुत्र सत्यकीर्तिवाले पर अनुग्रह कर ॥ १ ॥

[६६३] हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री ! (या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छः) तूने उत्तम नेता शुद्ध रथीके लिये पूर्व समयमें प्रकाश किया था । (सा) वह तू उषा जो कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होती है वह (सहीयसि) बलवान् (वाय्ये सत्यश्रवसि) वय्य पुत्र सत्यश्रवा पर अनुग्रह कर ॥ २ ॥

[६६४] हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये ! (आभरद्वसुः) धन लाकर देनेवाली (सा अद्य नः व्युच्छ) वह आज तू हमारे लिये अन्धकारको दूर कर । हे (सुजाते अश्वसूनृते) उत्तम कुलमें उत्पन्न और घोडोंके संबंधमें प्रशंसित होनेवाली (यो) उषा (सहियसि वाय्ये सत्यश्रवसि) सत्य बलवाले वाय्यपुत्र सत्य कीर्तिवाले पर (व्यौच्छः) प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

[६६५] हे (विभावरि) प्रकाशनेवाली उषा ! (ये वह्नयः त्वा) जो तेजस्वी स्तोतागण (त्वा स्तोमैः गृणन्ति) तेरी स्तोत्रोंसे स्तुति करते हैं, हे (मघोनि) भाग्यवाली (सुजाते अश्वसूनृते) उत्तम कुलिन और घोडोंके विषयमें अच्छा बोलनेवाली उषा ! वे स्तोतागण (मघैः सुश्रियः) धनोंसे उत्तम धनवान् (दामन्वंतः सुरातयः) और दानके लिये प्रशंसित अतएव उत्तम धन देनेवाले होते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे उषे ! तू तेजस्वी होकर हमें भी ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिए तेजस्वी कर । तू सत्यतत्त्वका श्रवण एवं उसपर मनन करनेवाले ज्ञानीपर कृपा कर । उसके अभ्युदय और निःश्रेयसमें सहायक हो ॥ १ ॥

हे स्वर्गकी कन्या उषे ! तू उत्तम नीतिके मार्गपर चलनेवाले, उत्तम रीतिसे संचालन करनेवाले तेजस्वी वीरको प्रकाशका मार्ग दिखा ॥ २ ॥

हे स्वर्गकन्ये उषा ! धन लानेवाली तू आज हमारे लिये प्रकाश दे । तथा हे उत्तम कुलमें उत्पन्न और हे अश्वोंके लिये प्रशंसित उषा ! तू बलवान् वाय्य सत्यश्रवाके लिये प्रकाशित होता रह ॥ ३ ॥

हे प्रकाशनेवाली उषा ! जो स्तोता तेरी प्रशंसा गाते हैं, तथा हे भाग्यवाली, उत्तम जन्मी और घोडोंके लिये प्रशंसित उषा ! वे स्तोतागण धनोंसे धनवान् होते हैं और वे दान देते हैं और दानके लिये अत्यंत प्रशंसित होते हैं ॥ ४ ॥

६६६ यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद् वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥ ५ ॥
६६७ ऐषु धा वीरवद् यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६ ॥
६६८ तेभ्यो द्युम्नं बृहद् यश उषो मघोन्या वह ।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७ ॥
६६९ उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः ।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८ ॥
६७० व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः ।
नेत् त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९ ॥

अर्थ— [६६६] हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! (यत् चित् हि इमे गणाः) जो भी कोई ये स्तोतागण (मघत्तये ते छदयन्ति) धन प्राप्तिके लिये तेरी स्तुति करते हैं, वे (चित् वष्टयः परि दधुः) निःसंदेह ऐश्वर्य धारण करते हैं और वे (अ-ह्रयं रायः ददतः) अविनाशी धन देते हैं ॥ ५ ॥

[६६७] हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन घोडोंके लिये प्रशंसित और (मघोनि उषः) धनवाली उषा ! (एषु सूरिषु वीरवत् यशः) इन विद्वानोंमें वीर पुत्रोंसे युक्त धन (आधाः) दे । (ये मघवानः) जो धनी (अ- ह्रया राधांसि) क्षीण न होनेवाले धन (नः अरासत) हमें देते हैं ॥ ६ ॥

[६६८] हे (मघोनि सुजाते अश्वसूनृते उषः) धनवाली कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (तेभ्यः द्युम्नं बृहत् यशः) उनके लिये बडा यशस्वी धन (आ वह) तू दे (ये सूरयः) जो विद्वान् (गव्या अश्व्या राधांसि) गौवें घोडे आदि धन (नः भजन्त) हमें देते हैं ॥ ७ ॥

[६६९] हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित होनेवाली उषा ! हे (दिवः दुहिताः) हे स्वर्ग कन्ये ! (नः गोमतीः इषः आवह) हमारे लिये गौओंसे युक्त धन ले आ । (उत) और (सूर्यस्य शुक्रैः शोचद्भिः अर्चिभिः रश्मिभिः साकं) सूर्यके स्वच्छ, पवित्रता करनेवाले दीप्तिमान किरणोंके साथ इधर आओ ॥ ८ ॥

[६७०] हे (दिवः दुहितः) स्वर्गकन्ये उषा ! (व्युच्छ) प्रकाशित हो । (अपः चिरं मा तनुथाः) हमारे कर्ममें आनेके लिये देरी न कर । हे (सुजाते अश्वसूनृते) कुलीन और घोडोंके लिये प्रसिद्ध उषा ! (यथा रिपुं स्तेनं तपाति) जैसा राजा चोर तथा शत्रुको ताप देता है, वैसा (सूरः अर्चिषा त्वा न इत्) सूर्य अपने तेजसे तुम्हें कष्ट न दे ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे उत्तम कुलीन और घोडोंके लिये प्रशंसित उषा ! जो लोग धन प्राप्तिके लिये तेरी स्तुति करते हैं, वे धनी होते और कभी विनष्ट न होनेवाला दान देते हैं। दान ऐसा देते हैं कि वह सतत लाभ देता रहे ॥ ५ ॥

हे उषा ! तू इन ज्ञानियोंको वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला यश और धन दे । धन चाहिये और उसके साथ वीरपुत्र भी चाहिये । अपने पुत्र ऐसे हों कि जो अपने धनका संरक्षण कर सकें ॥ ६ ॥

जो ज्ञानी गौओं घोडोंसे युक्त धन हमें देते हैं, उनको बडा तेजस्वी और यशस्वी धन दे ॥ ७ ॥

हमें गौओंके साथ धन तथा अन्न दे, और सूर्यके प्रकाशके साथ हमें प्रकाश भी दे ॥ ८ ॥

हे स्वर्गकन्ये ! हमारे यज्ञ कर्ममें प्रकाशित हो और यहां आनेमें देरी न कर । जिस तरह राजा चोर डाकूको कष्ट देता है वैसे कष्ट तुम्हें न हों । जो शत्रु और चोर होगा उसको कष्ट देना योग्य है । जिससे उसका आचरण सुधरे और वह सज्जन बने ऐसा राजप्रबंध द्वारा प्रयत्न करना योग्य है ॥ ९ ॥

६७१ एतावद् वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्यु-च्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १० ॥

[८०]

[ऋषिः- सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता- उषाः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

६७२ द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १ ॥

६७३ एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान् पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वो-षा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥ २ ॥

६७४ एषा गोभिररुणेभिर्युजाना ऽस्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥ ३ ॥

अर्थ— [६७१] हे (विभावरि सुजाते) तेजस्विनी कुलीन (अश्वसूनृते) घोडोंके लिये प्रसिद्ध (उषः) उषा ! (त्वं) तू (एतावत् वा इत्) इतना और (भूयः वा) अधिक भी धन (दातुं अर्हसि) दान देनेके लिये योग्य है, समर्थ है, (या स्तोतृभ्यः उच्छन्ती) जो स्तोताओंके लिये अन्धकार दूर करती हुई (न प्रमीयसे) उनका नाश नहीं करती है ॥ १० ॥

[८०]

[६७२] (द्युतत्-यामानं बृहतीं) तेजस्वी रथवाली बडी विशाल (ऋतेन ऋतावरीं) सरलताके भावसे आनेवाली (अरुणप्सुं विभातीं) सुंदर रंगवाली चमकती हुई (स्व आवहन्तीं) सूर्यको लानेवाली (देवीं उषसं) उषा देवीकी (विप्रासः मतिभिः प्रतिजरन्ते) ज्ञानी लोग अपनी बुद्धिसे अच्छी तरह स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

[६७३] (दर्शता एषा) यह दर्शनीय उषा (जनं बोधयन्ती) लोगोंको जगाती है, (पथः सुगान् कृण्वती) मार्गोंको सुगम बनाती है, और (अग्रे याति) आगे बढती है । यह (उषा) उषा (बृहद्रथा बृहती) बडे रथमें बैठनेवाली बडी (विश्वं इन्वा) सबमें व्यापनेवाली (अह्नां अग्रे ज्योतिः यच्छति) दिनोंके प्रारंभमें प्रकाशकी ज्योति देती है ॥ २ ॥

[६७४] (एषा) यह उषा (अरुणेभिः गोभिः युजानाः) लाल रंगवाले बैलोंको जोतनेवाली (अस्रेधन्ती रयिं अप्रायु चक्रे) क्षीण न होनेवाली धनको स्थिर करती है । (सुविताय पथः रदन्ती) उत्तम गमन करनेके लिये मार्गोंपर प्रकाश करती है, यह (पुरुष्टुता विश्ववारा) बहुतों द्वारा प्रशंसित और सबको स्वीकारने योग्य (विभाति) उषा विशेष चमकती है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे उषा ! तू इतना और इससे अधिक धन दे सकती है, स्तोताओंको प्रकाश देती है और उनका नाश कभी नहीं करती ॥ १० ॥

बडे सुन्दर तेजस्वी रथमें बैठकर उत्तम प्रकाशका फैलावा करती हुई उषा आती है जिसकी स्तुति ज्ञानी करते हैं ॥ १ ॥

दर्शनीय यह उषा आकर लोगोंको जगाती है । मार्गोंको चलनेके लिये सुगम करती है और आगे बढती है । प्रकाशके कारण चलना फिरना सहज और बिना कष्टके होता है । विशाल रथमें बैठनेवाली यह बडी उषा विश्वमें प्रकाशसे व्यापती हुई दिनोंके प्रारंभमें प्रकाशको देती है ॥ २ ॥

यह उषा लाल किरणोंसे प्रकाशती है, क्षीण नहीं होती परन्तु बढती जाती है धनको स्थायी रहनेवाला करती है । मार्गपर प्रकाश करती है और विशेष प्रकाशती है ॥ ३ ॥

६७५ एषा श्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ४ ॥
६७६ एषा शुभ्रा न तन्वो विदानो-र्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्यु-षा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५ ॥
६७७ एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन् योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ ॥

[८१]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- सविता । छन्दः- जगती ।]

६७८ युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इ-न्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥

अर्थ— [६७५] (एषा श्येनी भवति) यह निष्पाप होती है । यह (द्विबर्हा) दोनों ओर बाल रखनेवाली (पुरस्तात् तन्वं आविष्कृण्वाना) पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है, (ऋतस्य पन्थां साधु अन्वेति) सत्यके मार्गको ठीक तरह अनुसरती है, (प्रजानती इव दिशः न मिनाति) ज्ञानवती स्त्रीके समान दिशाओंमें भूल नहीं करती ॥ ४ ॥

[६७६] (एषा शुभ्रा न) यह गौरवर्ण स्त्रीके समान (तन्वः विदाना) अपने शरीरावयवोंको बताती हुई (स्नाती उर्ध्वा इव) स्नान करके ऊपर आयी हुई स्त्रीके समान (नः दृशये अस्थात्) हम सबके सामने दिखानेके लिये ऊपर उठी है । (द्वेषः तमांसि अपबाधमाना) द्वेष करने योग्य अन्धकारको दूर हटाती हुई (दिवः दुहिता उषाः) द्युलोककी पुत्री उषा (ज्योतिषा आगात्) प्रकाशके साथ आ गयी है ॥ ५ ॥

[६७७] (एषा प्रतीची दिवः दुहिता) यह सामने आयी स्वर्ग कन्या उषा (नॄन् भद्रा योषा इव) पुरुषोंके सामने कल्याणकारिणी स्त्रीके समान (अप्सः नि रिणीते) अपने रूपोंको प्रकट करती है । (दाशुषे वार्याणि व्युर्ण्वती) दाताको उत्तम धन देती है । यह (युवतिः ज्योतिः पूर्वथा अकः) तरुणी स्त्री अपना प्रकाश पूर्व कालके समान करती है ॥ ६ ॥

[८१]

[६७८] (बृहतः विपश्चितः विप्रस्य) महान् बुद्धिमान् और ज्ञानी सवितामें (विप्राः) ज्ञानी जन (मनः युंजते) अपना मन लगाते हैं (उत) और (धियः युंजते) बुद्धियोंको लगाते हैं । वह (वयुनावित्) प्रत्येक मार्ग और कर्मको जाननेवाला है, इसलिए वह (एकः इत्) अकेला ही (होत्राः विदधे) यज्ञोंको धारण करता है । (सवितुः देवस्य) सविता देवकी (परिष्टुतिः मही) स्तुति बहुत बडी है ॥ १ ॥

भावार्थ— यह उषा निष्पाप होती है । पूर्व दिशामें अपने शरीरको प्रकट करती है । सामने अपने शरीरावयवोंको दिखाती है । सहजहीसे तरुण स्त्रीयां इस तरह चलती हैं और न जानती हुई ऐसे आविर्भाव करती हैं । अवयव ढांक देनेके यत्नसे अपने अवयवोंको प्रकट करती हैं । सत्यमार्गमें अच्छी तरह चलती है ॥ ४ ॥

यह गौरवर्ण स्त्रीके समान, अपने शरीरको सहजहीसे दिखाती हुई स्नान करके ऊपर आयी तरुणीके समान हमारे सन्मुख आगयी है । उषाका उदय हुआ है । द्वेष करने अन्धकारको दूर करती हुई यह उषा प्रकाशके साथ आगयी है । प्रकाश रही है ॥ ५ ॥

यह कल्याण करनेवाली उषा स्वर्गकन्या कल्याण करनेवाली स्त्रीके समान पुरुषोंके सामने अपने विविधरूपोंको प्रकट करती है । दाताको उत्तम धन देती है और प्रकाशसे जगत्को भर देती है ॥ ६ ॥

सविता देव सभी कर्मोंको जाननेवाला है और वह अकेलाही सब यज्ञोंको पूरा करता है । इसीलिए उस ज्ञानी और बुद्धिमान् सविताकी स्तुति करनेमें सभी विद्वान् अपना मन और बुद्धि लगाते हैं, उसमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं ॥ १ ॥

६७९ विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २ ॥

६८० यस्य प्रयाणमन्वन्य इद् ययु- र्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३ ॥

६८१ उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनो- त सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४ ॥

अर्थ— [६७९] (कविः) दूरदर्शी सविता देव (विश्वा रूपाणि प्रति मुंचते) अपने सभी रूपोंको प्रकट करता है, तथा (द्विपदे चतुष्पदे) दोपाये और चौपायोंके लिए (भद्रं प्रासावीत्) कल्याणको उत्पन्न करता है। (वरेण्यः सविता) श्रेष्ठ सविता (नाकं वि अख्यत्) स्वर्ग या द्युलोकको प्रकाशित करता है, (उषसः प्रयाणं अनु) उषाके जानेके बाद (वि राजति) यह सुशोभित होता है ॥ २ ॥

[६८०] (यस्य देवस्य) जिस देव सविताके (महिमानं प्रयाणं) महिमासे सम्पन्न मार्गका (अन्ये देवाः) दूसरे देव (अनु इत् ययुः) अनुसरण करते हैं और (ओजसा) ओजस्वी होते हैं, (यः सविता देवः) जिस सविता देवने (महित्वना) अपनी महिमासे (पार्थिवानि रजांसि) पृथ्वीके लोकोंको (विममे) नापा था, (सः) वह देव (एतशः) तेजस्वी है ॥ ३ ॥

१ देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः ओजसा — इस सविता देवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं।

[६८१] हे (सवितः) सविता देव ! (उत) और तू (त्रीणि रोचना यासि) तीनों प्रकाशमान् लोकोंमें जाता है, (उत) और (सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि) सूर्यकी किरणोंसे संयुक्त होता है। (उत) और (रात्रीं उभयतः) रात्रीके दोनों ओरसे (परि ईयसे) तू आता है, (उत) और हे (देव) देव ! (धर्मभिः मित्रः भवसि) तू अपने गुणोंके कारण लोगोंका मित्र होता है ॥ ४ ॥

१ सविता-सूर्य—पूरी तरह उदय होनेके पूर्वकी सूर्यकी अवस्थाको सविता तथा अच्छीतरह उदय होनेके बाद अस्त होने तककी अवस्थाका नाम सूर्य है-" उदयात्पूर्वभावी सविता उदयास्तमयवर्ती सूर्यः " (सायण)

२ धर्मभिः मित्रः भवति— मनुष्य अपने उत्तम गुणोंके कारणही लोगोंका मित्र बनता है।

भावार्थ— ज्ञानी यह सविता देव अपने विविध रूपोंको प्रकट करता है। स्वयं उदय होकर सभी तरहके प्राणियोंके लिए कल्याण उत्पन्न करता है। सविताके प्रकट होनेपर सबका कल्याण होता है। जब उषा आकर चली जाती है, तब सविता प्रकट होता है और अपने प्रकाशसे द्युलोकको प्रकाशित करता है ॥ २ ॥

सविता देवकी महिमा बहुत बडी है, इसलिए दूसरे देव भी इसकी महिमाका अनुसरण करते है और तेजस्वी होते हैं। यह शुभ्रवर्ण अर्थात् तेजस्वी सवितादेव अपनी महिमासे सभी पृथ्वीके लोकोंको नापता है ॥ ३ ॥

यह सवितादेव अपने प्रकाशसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकको भर देता है। तब सूर्यकी किरणोंसे संयुक्त होता है। अपने उत्तम गुणोंके कारणही यह सविता सबका मित्र है ॥ ४ ॥

६८२ उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥ ५ ॥

[८२]

[ऋषिः- श्यावाश्व आत्रेयः । देवता- सविता । छन्दः- गायत्री, १ अनुष्टुप् ।

६८३ तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥
६८४ अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् । न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥ २ ॥
६८५ स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥ ३ ॥
६८६ अद्या नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् । परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४ ॥

अर्थ— [६८२] हे (सवितः देव) सविता देव ! (उत) और (त्वं एकः इत्) तू अकेलाही (प्रसवस्य ईशिषे) सभी उत्पन्न हुए जगत्‌का स्वामी और शासक है । तू (यामभिः) अपने प्रयत्नोंसेही (पूषा भवसि) इस जगत्‌का पोषक है । (उत) और तू (इदं विश्वं भुवनं वि राजसि) इस सारे संसारका राजा है । (श्यावाश्वः) तेजस्वी घोडोंवाला वीर (ते स्तोमं आनशे) तुझे स्तोत्र प्रदान करता है ॥ ५ ॥

१ एकः इत् प्रसवस्य ईशिषे— हे सविता देव ! तू अकेलाही सभी उत्पन्न हुए जगत्‌का स्वामी और शासक है ।

[८२]

[६८३] (वयं) हम (सवितुः देवस्य) सविता देवके (तत् भोजनं) वह धन (वृणीमहे) मांगते हैं । हम (भगस्य) ऐश्वर्यशाली सविताके (तुरं) शत्रुओंके विनाशक (सर्वधातमं) सबको धारण करनेवाले (श्रेष्ठं) श्रेष्ठ धनको (धीमहि) धारण करें ॥ १ ॥

[६८४] (अस्य सवितुः) इस सवितादेवके (स्वयशस्तरं) अपने यशको बढानेवाले तथा (प्रियं स्वराज्यं) प्रिय स्वराज्यको (कच्चन हि न मिनन्ति) कोई भी नष्ट नहीं कर सकता ॥ २ ॥

[६८५] (सः भगः सविता) वह ऐश्वर्यवान् सविता देव (दाशुषे रत्नानि सुवाति) दानशील मनुष्यको रत्न प्रदान करता है । हम भी (तं चित्रं भागं ईमहे) उस ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्यको मांगते हैं ॥ ३ ॥

[६८६] हे (सवितः देव) सविता देव (अद्य) आज तू (नः) हमें (प्रजावत् सौभगं सावीः) प्रजासे युक्त उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर, तथा (दुःष्वप्न्यं परा सुव) बुरे स्वप्न आदियोंको दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ— हे सविता देव ! तू अकेलाही सभी उत्पन्न हुए जगत्‌का शासक है, तू अपने प्रयत्नोंसेही इस जगत्‌का पोषण करता है । वही इस सारे संसारका राजा है । तेजस्वी घोडोंवाले वीर इसकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥

हम सविता देवसे उस धनको मांगते हैं, जो शत्रुओंका विनाशक, सबको धारण करनेवाला और श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

इस सविताका स्वराज्य यशको बढानेवाला तथा प्रिय है । इसके स्वराज्यको कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । राज्यका प्रबन्ध ऐसा हो कि कोई भी शत्रु इसकी स्वतंत्रतापर आक्रमण न कर सके, अथवा इसके स्वराज्यको कोई नष्ट न कर सके ॥ २ ॥

वह ऐश्वर्यवान् सवितादेव दान देनेवाले मनुष्यको रत्न प्रदान करता है । हम भी उससे धन मांगते हैं ॥ ३ ॥

हे सविता देव ! आज हमें तू प्रजासे युक्त उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर और दुःख दारिद्र्य आदिको दूर कर ॥ ४ ॥

६८७ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ ॥
६८८ अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६ ॥
६८९ आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७ ॥
६९० य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८ ॥
६९१ य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन । प्र च सुवाति सविता ॥ ९ ॥

अर्थ— [६८७] हे (सवितः देव) सविता देव ! तू हमसे (विश्वानि दुरितानि) सभी दुर्गुणोंको (परा सुव) दूर कर, (यत् भद्रं) जो कल्याणकारी हो, (तत् नः आसुव) उसे हमें प्रदान कर ॥ ५ ॥

१ देव सवितः ! विश्वानि दुरितानि परा सुव— हे सवितादेव ! सभी दुर्गुणोंको हमसे दूर कीजिए।

२ यत् भद्रं, तत् नः आ सुव— जो कल्याणकारी हो, वह हमें प्रदान कीजिए ।

[६८८] (देवस्य सवितुः सवे) सविता देवकी आज्ञामें रहकर हम (अदितये अनागसः) अखण्ड भूमिके लिए निरपराधी हों तथा (विश्वा वामानि धीमहि) सम्पूर्ण सुन्दर धनोंको धारण करें ॥ ६ ॥

१ सवितुः सवे अदितये अनागसः— सविता देवकी आज्ञामें रहकर हम अपनी मातृभूमिके प्रति निरपराधी रहें ।

[६८९] (विश्वदेवं सत्पतिं) सबके लिए देवरूप, सज्जनोंके पालक, (सत्यसवं) सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले (सवितारं) सविताको (अद्य) आज (सूक्तैः आ वृणीमहे) सूक्तोंसे बुलाते हैं ॥ ७ ॥

[६९०] (यः सविता देवः) जो सविता देव (इमे उभे अहनी) दिन और रात दोनों समय (स्वाधीः) उत्तम कर्म करता हुआ (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करते हुए (पुरः एति) उदय होता है, [उसे हम बुलाते हैं] ॥ ८ ॥

१ उभे अहनी अप्रयुच्छन् सु-आधीः पुरः एति— जो मनुष्य दिन और रात अर्थात् हमेशा प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है ।

[६९१] (यः सविता) जो सविता देव (इमा विश्वा जातानि) इन सम्पूर्ण प्राणियोंको (श्लोकेन आश्रावयति) अपने यश सुनाता है, तथा (प्र च सुवाति) उन्हें उत्पन्न करता है, [उसे हम बुलाते हैं] ॥ ९ ॥

भावार्थ— हे सबको प्रेरणा देनेवाले भगवन् ! हमसे सभी दुर्गुणोंको दूर कीजिए और जो कल्याणकारी गुण हों, वे हमें प्रदान कीजिए ॥ ५ ॥

सबको प्रेरणा देनेवाले सविताकी आज्ञामें रहकर हम अपनी अखण्ड मातृभूमिके निरपराधी रहें । हम कोई ऐसा काम न करें कि जिससे मातृभूमिकी अखण्डताको चोट पहुंचे और हम मातृभूमिकी नजरोंमें अपराधी बनें । इस प्रकार मातृभूमिकी सेवा करते हुए हम सभी तरहके धन प्राप्त करें ॥ ६ ॥

हम आज सबके लिए देववत् पूज्य, सज्जनोंके पालक, सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले सविताको बुलाते हैं ॥ ७ ॥

यह सविता देव दिन और रातके समय उत्तम कर्म करता हुआ और प्रमाद न करता हुआ अपने समयपर उदय होता है, उसे हम बुलाते हैं ॥ ८ ॥

यह सविता देव सबको उत्पन्न करता है और उनके सामने अपनी महिमा प्रकट करता है ॥ ९ ॥

×

[८३]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- पर्जन्यः । छन्दः- त्रिष्टुप्, २-४ जगती, ९ अनुष्टुप् ।]

६९२ अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद् वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १ ॥

६९३ वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत् पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २ ॥

६९४ रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत् पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३ ॥

६९५ प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत् पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४ ॥

[८३]

अर्थ— [६९२] जो (वृषभः) बलशाली (जीरदानुः) शीघ्रतासे दान देनेवाला मेघ (कनिक्रदत्) गर्जते हुए (ओषधीषु) वृक्ष वनस्पतियोंमें (गर्भं रेतः) गर्भको स्थापित करनेवाले वीर्यको (दधाति) स्थापित करता है, उस (तवसं पर्जन्यं) बलवान् मेघकी, हे मनुष्य ! तू (अच्छ वद) अच्छी तरह स्तुति कर । (आभिः गीर्भिः स्तुहि) इन वाणियोंसे स्तुति कर और (नमसा विवास) नम्रतापूर्वक उसका गुणगान कर ॥ १ ॥

[६९३] (यत्) जब (पर्जन्यः) मेघ (वृक्षान् विहन्ति) वृक्षोंको काटता है, (रक्षसः हन्ति) राक्षसोंको मारता है, इसके (महावधात्) भयंकर प्रहारसे (विश्वं भुवनं बिभाय) सारा विश्व डरता है । यह मेघ (स्तनयन्) गर्जते हुए (दुष्कृतः हन्ति) दुष्ट जनोंको मारता है, (उत) तथा (वृष्ण्यावतः) जलकी वर्षा करते हुए (अनागाः ईषते) निरपराधियोंकी रक्षा करनेकी इच्छा करता है ॥ २ ॥

[६९४] (यत् पर्जन्यः) जब मेघ (नभः वर्ष्यं कृणुते) आकाशको वृष्टिमय कर देता है, तब पर्जन्य (रथी कशया अश्वान् अभिक्षिपन् इव) जिसप्रकार एक रथी चाबुकसे घोडोंको शीघ्र चलाता है, उसी तरह (दूतान् वर्ष्यान्) शीघ्र गिरनेवाली जलधाराओंको (आविः कृणुते) प्रकट करता है । इसकी (स्तनथाः) गर्जनायें (सिंहस्य) सिंहकी गर्जनाके समान (दूरात् उत् ईरते) दूरसे ही सुनाई देती हैं ॥ ३ ॥

[६९५] (यत्) जब (पर्जन्यः) मेघ (रेतसा) वीर्यसे सम्पन्न होकर (पृथिवीं अवति) पृथिवीकी तरफ जाता है, तब (वाताः प्र वान्ति) वायु बहने लगता है, (विद्युतः पतयन्ति) बिजलियां कडकने या गिरने लगती हैं, (उत) और (ओषधीः जिहते) वृक्षवनस्पति आदि जल पीने लगते हैं और (स्वः पिन्वते) आकाश पुष्ट होने लगता है । (इरा) यह पृथिवी (विश्वस्मै भुवनाय) संपूर्ण संसारके हितके लिए (जायते) पुष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

भावार्थ— आकाशसे बरसनेवाला जल मेघके वीर्यके समान है । ये जलरूपी वीर्य वृक्ष वनस्पतियोंमें पडकर उन्हें फल फूलको उत्पन्न करनेमें समर्थ बनाते हैं । ये फल फूल मानों मेघद्वारा वृक्षादियोंमें स्थापित किए गए गर्भ ही हैं, जो कालान्तरमें इन वृक्षादिकोंके द्वारा प्रसूत किए जाते हैं ॥ १ ॥

जब बादल गर्जते हैं, तब उनमेंसे बिजली कडकती है, जो वृक्षोंपर गिरकर उन्हें जला डालती है, राक्षसोंकोभी मार देती है । बिजली जब कडकती है, या बादल जब गर्जते हैं तब सारा विश्व भयसे कांपने लगता है । मेघ अपने जलसे सबका पोषण करते हैं ॥ २ ॥

जब पर्जन्यसे आकाश छा जाता है, तब वर्षाकी जलधारायें उसी तरह शीघ्रतापूर्वक बहती हैं जिस तरह सारथिके द्वारा चाबुकके मार जानेपर घोडे दौडते हैं । गर्जते हुए बादलोंकी गरज दूरसे सुनाई देती है कि जैसे कोई सिंह गरज रहा हो ॥ ३ ॥

जब मेघकी जलधारायें पृथिवीपर गिरने लगती हैं, तब हवायें बहने लगती हैं, बिजलियां कडकने लगती हैं । वृक्षादि जल पीकर पुष्ट होजाते हैं और भूमि सारे संसारके कल्याणके लिए पुष्ट हो जाती है । इस मंत्रमें प्राकृतिक वर्णन प्रेक्षणीय है ॥ ४ ॥

६९६ यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नंन॑मीति॒ यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति ।
यस्य॑ व्र॒त ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ ॥ ५ ॥

६९७ दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒ प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑ ।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुनेह्य॒पो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑ ॥ ६ ॥

६९८ अ॒भि क्र॑न्द स्त॒नय॒ गर्भ॒मा धा॑ उद॒न्वता॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न ।
दृतिं॒ सु क॑र्ष॒ विषि॑तं॒ न्य॑ञ्चं स॒मा भ॑वन्तू॒द्वतो॑ निपा॒दाः ॥ ७ ॥

६९९ म॒हान्तं॒ कोश॒मुद॑चा॒ नि षि॑ञ्च॒ स्यन्द॑न्तां कु॒ल्या विषि॑ताः पु॒रस्ता॑त् ।
घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी व्यु॑न्धि सुप्रपा॒णं भ॑वत्व॒घ्न्याभ्यः॑ ॥ ८ ॥

अर्थ— [६९६] (यस्य व्रते) जिस मेघके कर्मके कारण (पृथिवी नन्नमीति) पृथ्वी बहुत उपजाऊ होती है, (यस्य व्रते) जिसके कर्मके कारण (शफवत्) सभी प्राणी (जर्भुरीति) पुष्ट होते हैं, (यस्य व्रते) जिसके कर्मके कारण (ओषधिः) वृक्ष वनस्पतियां (विश्वरूपाः) नानारूप धारण करती हैं, हे (पर्जन्य) मेघ ! (सः) वह तू (नः महि शर्म यच्छ) हमें बहुत सुख दे ॥ ५ ॥

[६९७] हे (मरुतः) मरुत् गणो ! तुम (नः) हमारे लिए (दिवः वृष्टिं ररीध्वं) द्युलोकसे वर्षा प्रदान करो। (वृष्णः अश्वस्य धाराः) वर्षणशील मेघकी जलधारायें हमें (प्र पिन्वत) पुष्ट करें। हे मेघ! (अनेन स्तनयित्नुना) इस गर्जनेवाले मेघके साथ (अर्वाङ् आ इहि) हमारी तरफ आ (अपः निषिंचन्) जलोंको सींचते हुए (असुरः) प्राणोंको देनेवाला वह मेघ (नः पिताः) हमारा पालन करनेवाला है ॥ ६ ॥

[६९८] हे पर्जन्य ! तू (अभि क्रन्द) गडगडा, (स्तनय) गरज और (गर्भं आ धा) वृक्षोंमें गर्भ स्थापित कर, तथा (उदन्वता रथेन) जलरूपी रथसे (परिदीय) चारों ओर भ्रमण कर। (विषितं दृतिं) जलसे पूर्ण घडेको (नि अंचं) नीचे मुखवाला कर तथा (सु कर्ष) उत्तम रीतिसे खाली कर, ताकि (उद्वतः निपादाः) ऊंचे और नीचे प्रदेश (समाः) बराबर हो जायें ॥ ७ ॥

[६९९] हे पर्जन्य ! तू अपने जलरूपी (महान्तं कोशं) महान् खजानेको (उदच) खुला कर और (नि षिंच) नीचेकी ओर बहा, ताकि (विषिताः कुल्याः) जलसे भरी हुई नदियां (पुरस्तात् स्यन्दन्तां) पूर्व दिशाकी ओर बहें। तू (घृतेन) जलसे (द्यावापृथिवी वि उन्धि) द्युलोक और पृथ्वीलोकको भर दे, ताकि (अघ्न्याभ्यः) गायोंके लिए (सुप्रपाणं भवतु) उत्तम पान मिले ॥ ८ ॥

भावार्थ— इसी मेघकी कृपासे पृथिवी उपजाऊ बनती है, पृथिवीसे उत्पन्न पदार्थोंको खाकर प्राणी पुष्ट होते हैं, वृक्ष वनस्पति आदि भी मेघके कारण वृद्धिको प्राप्त होते हैं और अनेकरूप धारण करते हैं ॥ ५ ॥

जब वायु आकाशसे पानी बरसाते हैं, तब मेघकी जलधारायें सबको पुष्ट करती हैं। गर्जनेवाले मेघ जल बरसाते हैं और वे जल मनुष्योंको प्राण देते हैं, इसलिए ये मेघ हमारा पालन करनेवाले हैं ॥ ६ ॥

हे मेघ ! तू गडगडा और गरज, फिर जलके रथ पर बैठकर चारों ओर घूम, तथा जल बरसाकर सब तरफ इतना पानी भर दे कि ऊंचों और नीचों जगहमें फरक ही न रहे ॥ ७ ॥

हे पर्जन्य ! तू अपने जलरूपी महान् खजानेको खुला कर और उसे नीचेकी ओर बहा। जलसे भरी नदियां पूर्व दिशाकी ओर बहें। तू जलसे सब स्थानोंको भर दे ताकि गाय आदि सभी प्राणियोंके लिए पीनेका पानी भरपूर मात्रामें मिले ॥ ८ ॥

७०० यत् पर्जन्य कनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत् किं च पृथिव्यामधि ॥ ९ ॥

७०१ अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभाया ऽकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० ॥

[८४]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- पृथिवी । छन्दः- अनुष्टुप् ।

७०२ बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १ ॥

७०३ स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २ ॥

अर्थ— [७००] हे (पर्जन्य) पर्जन्य ! (यत्) जब तू (कनिक्रदत् स्तनयत्) गडगडाते हुए और गर्जते हुए (दुष्कृतः हंसि) दुष्टोंको मारता है, तब (यत् किंच पृथिव्यां अधि) जो भी कुछ पृथ्वी पर है, (इदं विश्वं) वह सब (प्रति मोदते) प्रसन्न हो जाता है ॥ ९ ॥

[७०१] हे पर्जन्य ! तू (अवर्षीः) बहुत बरस चुका, (उत्) अब (वर्षं सु गृभाय) अपनी बरसातको पीछे खींच ले, तूने (धन्वानि) मरुस्थलके प्रदेशोंको (अति एतवै अकः) बहुत बहने योग्य बना दिया है । तूने (कं भोजनाय) सुखपूर्वक भोजनके लिए (ओषधीः अजीजनः) ओषधी वनस्पतियोंको उत्पन्न किया है । (उत) और (प्रजाभ्यः मनीषां अविदः) प्रजाओंसे स्तुति भी प्राप्त की है ॥ १० ॥

[८४]

[७०२] हे (प्रवत्वति महिनि पृथिवि) प्रकृष्ट गुणोंवाली तथा महत्तासे सम्पन्न पृथिवी ! (या) जो तू (भूमिं मह्ना जिनोषि) प्राणियोंको अपनी महिमासे तृप्त करती है, वह तू (बट् इत्था) निश्चयसे इस प्रकार (पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि) पर्वतोंके समूहको धारण करती है ॥ १ ॥

[७०३] हे (विचारिणि) अनेक तरहसे विचरण करनेवाली (अर्जुनि) तेजोयुक्त भूमे ! (या त्वं) जो तू (वाजं न) घोडेके समान (हेषन्तं) शब्द करनेवाले (पेरुं) मेघको (प्र अस्यसि) ग्रहण करती है, उस (त्वा) तेरी (स्तोमासः) स्तोतागण (अक्तुभिः) स्तोत्रोंसे (प्रति स्तोभन्ति) स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे पर्जन्य ! जब तू गरजता हुआ अकाल आदि दुष्ट तत्वोंको मारता है, तब जो कुछ भी पृथ्वी पर है, वह सब प्रसन्न हो जाता है ॥ ९ ॥

हे मेघ ! तू बहुत बरस चुका, तेरे बरसनेके कारण मरुस्थलमें भी जलप्रवाह बहने शुरु हो गए हैं, सुखपूर्वक भोजन करनेके लिए धान्यादि भी उत्पन्न हो गए हैं, विद्वानोंने तेरी स्तुति भी की है, इसलिए तू अपनी बरसात समेट ले ॥ १० ॥

यह प्रकृष्ट गुणोंवाली तथा महिमासे सम्पन्न पृथिवी प्राणियोंको अपनी महिमासे तृप्त करती है, तथा अपने ऊपर पर्वतोंको धारण करती है ॥ १ ॥

यह भूमि गडगडाते हुए मेघोंसे जल ग्रहण करती है, इस कारण वह उपजाऊ बनती है, और तब सभी स्तोता इस भूमि की पूजा करते हैं ॥ २ ॥

७०४ दृळ्हा चिद् या वनस्पतीन् क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत् ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३ ॥

[८५]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- वरुणः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।

७०५ प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १ ॥

७०६ वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥ २ ॥

७०७ नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३ ॥

अर्थ— [७०४] हे भूमे ! (यत्) जब (ते) तेरे ऊपर (दिवः अभ्रस्य) द्युलोकमें स्थित मेघसे (विद्युतः वृष्टयः) बिजलीसे प्रेरित बरसात गिरती है, तब (या) जो तू (दृळ्हा चित् क्ष्मया) अपने दृढ सामर्थ्य और (ओजसा) बलसे (वनस्पतीन् दर्धर्षि) वृक्ष वनस्पतियोंको धारण करती है ॥ ३ ॥

[८५]

[७०५] (शमिता चर्म इव) जैसे कोई व्याध चर्मके लिए पशुओंको मारता है, उसी तरह (यः) जिसने (सूर्याय उपस्तिरे) सूर्यके विचरण करनेके लिए (पृथिवीं जघान) विस्तृत द्युलोकको और अधिक विस्तृत किया, उस (सम्राजे श्रुताय वरुणाय) अत्यन्त तेजस्वी प्रसिद्ध वरुणके लिए (बृहद् गभीरं प्रियं ब्रह्म) विस्तृत, गंभीर और प्रिय लगनेवाली स्तुति (अर्च) कर ॥ १ ॥

[७०६] (वरुणः) वरुणने (वनेषु) मेघोंमें (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्षरूपी समुद्रको (वि ततान) विस्तृत किया, (अर्वत्सु वाजं) घोडोंमें बलको स्थापित किया, (उस्रियासु पयः) गायोंमें दूध रखा। (हृत्सु क्रतुं) हृदयोंमें कर्म करनेकी शक्ति दी (अप्सु अग्निं) जलोंमें अग्नि स्थापितकी, (दिवि सूर्यं अदधात्) द्युलोकमें सूर्यको स्थापित किया और (अद्रौ सोमं) पर्वत पर सोमको उगाया ॥ २ ॥

[७०७] (वरुणः) वरुण देवने (रोदसी अन्तरिक्षं) द्यु, पृथ्वी और अन्तरिक्षके हितके लिए (कवन्धं) मेघको (नीचीनवारं) नीचेकी ओर उसका मुख करके (प्र ससर्ज) मुक्त कर दिया। (तेन) उस वृष्टिसे (विश्वस्य भुवनस्य राजा) सभी भुवनोंका स्वामी यह वरुण (वृष्टिः यवं न) बरसात जिस तरह धान्यको पुष्ट करती है, उसी तरह (भूम व्युनत्ति) भूमिको उपजाऊ बनाता है ॥ ३ ॥

भावार्थ— हे भूमे ! जब द्युलोकसे बरसात गिरती है, तब तेरा सामर्थ्य और बल अत्यधिक बढ जाता है, तब तू वृक्षोंको धारण करनेमें समर्थ हो जाती है ॥ ३ ॥

इस वरुण देवने सूर्यके चलनेके लिए विस्तृत द्युलोकको और अधिक विस्तृत किया। इसलिए यह वरुण अत्यन्त स्तुत्य है ॥ १ ॥

वरुण देवने मेघोंमें जलका समुद्र भरा, घोडोंमें शक्ति रखी, गायोंमें दूध रखा, हृदयोंमें कर्मशक्ति दी, जलोंमेंभी अग्नि स्थापित की, द्युलोक अर्थात् अधरमें सूर्य स्थापित किया, और पर्वत जैसे कठोर स्थान पर सोम जैसे कोमल पदार्थको उगाया, ऐसे ऐसे आश्चर्यजनक काम इस वरुण देवने किए ॥ २ ॥

सभी भुवनोंके राजा इस वरुणने मेघरूपी बर्तनके मुंहको नीचेकी ओर कर दिया, जिसके कारण उस मेघमें भरा हुआ साराका सारा जल पृथ्वी पर गिर पडा। इस वृष्टिसे भूमि तो पुष्ट हुई ही हुई, पर द्यु और अन्तरिक्षका भी हित हुआ ॥ ३ ॥

७०८ उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतास स्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥ ४ ॥
७०९ इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ ॥
७१० इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनी रासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६ ॥
७११ अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत् सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७ ॥

अर्थ— [७०८] (यदा) जब (वरुणः) वरुण (दुग्धं वष्टि) जल बरसाना चाहता है, (आत् इत्) उसके बाद ही वह (भूमिं पृथिवीं उत द्यां) भूमि, विस्तृत अन्तरिक्ष और द्युलोकको (उनत्ति) जलसे सींच देता है। तभी (पर्वतासः) पर्वत (अभ्रेण सं वसत) मेघसे आच्छादित हो जाते हैं, और तब (तविषीयन्तः वीराः) बलवान् वीर मरुद्गण (श्रथयन्त) मेघोंको शिथिल कर देते हैं ॥ ४ ॥

[७०९] (यः) जिस वरुणने (अन्तरिक्षे तस्थिवान्) अन्तरिक्षमें रहकर ही (मानेन इव) दण्डके समान (सूर्येण पृथिवीं ममे) सूर्यके द्वारा पृथ्वीको मापा, उस (आसुरस्य श्रुतस्य वरुणस्य) प्राणदाता प्रसिद्ध वरुणकी (इमां महीं मायां) इस बडी मेधाकी मैं (प्र वोचं) प्रशंसा करता हूँ ॥ ५ ॥

[७१०] (यत्) जिसकारण (एनीः आसिंचन्तीः अवनयः) प्रवाहवाली, पृथ्वीको सींचनेवाली नदियां (उद्ना) अपने जलसे (एकं समुद्रं न पृणन्ति) एक समुद्रको भी नहीं भर पातीं, अतः (कवितमस्य देवस्य) अत्यन्त ज्ञानी वरुण देवके (इमां महीं मायां) इस बडी मायाको (नकिः नु आ दधर्ष) आज तक कोई नष्ट नहीं कर सका ॥ ६ ॥

[७११] हे (वरुण वरुण) वरणीय वरुण देव ! (अर्यम्यं) श्रेष्ठ सज्जन पुरुषके प्रति (मित्र्यं) मित्रके प्रति (सखायं वा) अथवा अपने सहायकके प्रति (सदं इत् भ्रातरं वा) अथवा सदा भाईके समान व्यवहार करनेवाले (नित्यं वेशं वा) अथवा सदा समीप रहनेवाले (अरणं वा) अथवा अपने नेताके प्रति (यत्) यदि हमने (सीं आगः चकृम) कोई अपराध किया हो, तो (तत्) उस अपराधसे हमें (शिश्रथः) मुक्त कर ॥ ७ ॥

१ अर्यम्यः, मित्र्यः, सखायः, सदं इत् भ्रातरः, अरणः— नेता श्रेष्ठ, मित्रके समान हितकारी, तथा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो ।

२ सीं आगः चकृमः तत् शिश्रथः — ऐसे नेताके प्रति यदि हम कोई अपराध करें, तो उस पापसे हम मुक्त हों ।

भावार्थ— जब वरुण वृष्टि करना चाहता है, तब मेघ पर्वतों पर छा जाते हैं, हवायें बहने लगती हैं और उन हवाओंसे शिथिल होकर मेघ बरस जाते हैं, उस बरसातसे पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक गीले हो जाते हैं ॥ ४ ॥

जिस वरुणने अन्तरिक्षमें ही रहकर सूर्यरूपी मानदण्डसे इस पृथ्वीको माप लिया, उस प्राणदाता प्रसिद्ध वरुणकी इस बडी मेधाकी प्रशंसा करनी चाहिए ॥ ५ ॥

यह वरुण देवकी माया है कि इतनी सारी नदियां हमेशा बहती रहती है और प्रतिदिन अपरिमित जल समुद्रमें उंडेलती रहती हैं पर इतनी सारी नदियां मिलकर भी एक समुद्रको नहीं भर पातीं। यह वरुणकी माया बडा अद्भुत है, इसीलिए इस वरुणकी मायाका आज तक कोई पार न पा सका ॥ ६ ॥

हे वरुण देव ! सज्जन पुरुष, मित्र, सहायक, भाई, पडौसी तथा अपने नेताके प्रति हमने कोई अपराध किया हो, तो उस अपराधसे हमें मुक्त कर ॥ ७ ॥

७१२ कितवासो यद् रिरिपुर्न दीवि यद् वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवा ऽधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ ॥

[८६]

[ऋषिः- भौमोऽत्रिः । देवता- इन्द्राग्नी । छन्दः- अनुष्टुप्, ६ विराट्पूर्वा]

७१३ इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित् स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १ ॥

७१४ या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभी न्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २ ॥

अर्थ— [७१२] (कितवासः दिवि न) जिस तरह जुआरी जुवेमें एक दूसरेपर दोषारोपण करते हैं, उसी प्रकार हम पर भी लोगोंने (यत् रिरिपुः) जो मिथ्या दोषारोपण किया हो, (वा) अथवा (यत् सत्यं) जो सचमुच हमने अपराध किया हो, (उत) और (यत् न विद्म) जिस अपराधको हम न जानते हों, हे (वरुण देव) वरुण देव ! (शिथिरा इव) बन्धनोंको शिथिल करनेके समान (ता सर्वा वि ष्य) उन सारे अपराधोंसे हमें मुक्त कर, (अध) ताकि हम (ते प्रियासः स्याम) तेरे प्रिय बने रहें ॥ ८ ॥

१ यत् रिरिपुः यत् सत्यं, यत् न विद्म ता सर्वा वि ष्य— जो हमपर मिथ्या दोषारोपण किया गया हो, अथवा जो अपराध हमने सचमुच किया हो, अथवा जो अपराध हमने अनजानेमें कर दिया हो, उससे हमें मुक्त कर ।

२ ते प्रियासः स्याम— हम वरुण देवके प्रिय बने रहें ।

(८६)

[७१३] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (उभा) तुम दोनों (वाजेषु) संग्रामोंमें (यं मर्त्यं अवथः) जिस मनुष्यकी रक्षा करते हो, (सः) वह (त्रितः वाणीः इव) ज्ञानी जिसप्रकार वाणीका मर्म समझ लेता है, उसी प्रकार (दृळ्हा द्युम्ना चित्) दृढ और तेजस्वी होने पर भी शत्रुकी सेनाको (भेदति) छिन्न भिन्न कर देता है ॥ १ ॥

१ वाजेषु यं अवथः सः दृळ्हा द्युम्ना चित् भेदति— संग्रामोंमें इन्द्र और अग्नि जिसकी रक्षा करते हैं, वह मनुष्य दृढ और तेजस्वी होने पर भी शत्रुसेनाको छिन्न भिन्न कर देता है ।

[७१४] (या) जो इन्द्राग्नी (पृतनासु दुस्तरा) युद्धोंमें अपराजेय हैं, (या) जो इन्द्र और अग्नि (वाजेषु श्रवाय्या) यज्ञोंमें पूज्य हैं, (या) जो इन्द्र और अग्नि (पंच चर्षणीभिः) पांच तरहके मनुष्यों द्वारा वन्दनीय हैं, (ता इन्द्राग्नी हवामहे) उन इन्द्र और अग्निको हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— हे वरुण ! किसीने हम पर यों ही मिथ्या दोषारोपण किया हो, अथवा हमने सचमुच ही कोई अपराध कर डाला हो, अथवा अनजाने ही हमसे कोई अपराध या पाप हो गया हो, उस अपराध या पापसे हमें मुक्त कर, ताकि हम तेरे प्रिय भक्त बनकर रहें ॥ ८ ॥

संग्रामोंमें ये इन्द्र और अग्नि जिस मनुष्यकी रक्षा करते हैं, वह इतना शक्तिशाली हो जाता है कि उसके शत्रुकी सेना चाहे कितनी भी दृढ और तेजस्वी हो, उसे वह मनुष्य छिन्न भिन्न कर देता है ॥ १ ॥

जो इन्द्र और अग्नि संग्रामोंमें अपराजेय हैं, जो यज्ञोंमें स्तुत्य हैं, जिन इन्द्र और अग्निकी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग स्तुति करते हैं, उन्हें ही हम बुलाते हैं ॥ २ ॥

७१५ तयोरिदमवच्छव—स्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्यो—र्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३ ॥

७१६ ता वामेषे रथाना—मिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४ ॥

७१७ ता वृधन्तावनु द्यून् मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित् पुरो दधे—ऽशेव देवावर्वते ॥ ५ ॥

७१८ एवेन्द्राग्निभ्यामहावि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद् रयिं गृणत्सु दिधृत—मिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [७१५] (तयोः मघोनोः) उन ऐश्वर्यशाली इन्द्र और अग्निके (गभस्त्योः) हाथोंमें (तिग्मा दिद्युत्) तीक्ष्ण वज्र रहता है, इसीलिए उन दोनोंका (इदं शवः अमवत्) यह बल शत्रुका विनाशक है। वे दोनों देव (गवां) गायोंको प्राप्त करनेके लिए तथा (वृत्रघ्ने) वृत्रको मारनेके लिए (द्रुणा) रथसे (प्रति आ ईषते) शत्रुओंकी ओर जाते हैं ॥ ३ ॥

[७१६] हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ! (तुरस्य राधसः पती) प्रेरणा देनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी (विद्वांसा) विद्वान् (गिर्वणस्तमा) अत्यन्त पूज्य (ता वां) उन तुम दोनोंको (रथानां एषे) रथोंके युद्धमें हम (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ४ ॥

[७१७] (मर्ताय अनुद्यून् वृधन्तौ) मनुष्यको प्रतिदिन बढानेवाले (ता देवौ) वे दोनों देव (अदभा) अहिंसनीय हैं. मैं (अर्हन्ता चित् देवौ) अत्यन्त योग्य उन देवोंको (अर्वते) घोडोंकी प्राप्तिके लिए (अंशा इव) सोमरसके समान (पुरः दधे) सबसे आगे स्थापित करता हूँ ॥ ५ ॥

[७१८] (एव) इस प्रकार मैंने (शूष्यं) बलदायक (घृतं न) घीके समान तेजस्वी (अद्रिभिः पूतं) पत्थरोंसे कूट और निचोड कर पवित्र किए गए (हव्यं) हविको (इन्द्राग्निभ्यां अहावि) इन्द्र और अग्निके लिए समर्पित किया है। (ता) वे दोनों देव (सूरिषु गृणत्सु) विद्वान् स्तोताओंको (श्रवः बृहद्रयिं) यश और महान् धन, (दिधृतं) प्रदान करें। (गृणत्सु इषं दिधृतं) स्तोताओंको अन्न प्रदान करें ॥ ६ ॥

भावार्थ— ऐश्वर्यशाली इन्द्र और अग्नि इन दोनों देवोंके हाथोंमें तीक्ष्ण वज्र होनेके कारण इनका बल अपराजेय है। ये दोनों देव वृत्रको मारकर गायोंको प्राप्त करनेके लिए रथ पर बैठकर शत्रुओंकी तरफ जाते हैं ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! तुम दोनों प्रेरणा देनेवाले ऐश्वर्योंके स्वामी, विद्वान् और अत्यन्त पूज्य हो। उन तुम दोनोंको हम रथोंके युद्धमें अपनी रक्षाके लिए बुलाते हैं ॥ ४ ॥

ये दोनों देव मनुष्यको प्रति दिन बढाते रहते हैं, उनके बलका कोई प्रतिकार नहीं कर सकता। इसलिए जिसप्रकार यज्ञोंमें सोमको सबसे आगे स्थापित किया जाता है, उसीप्रकार मैं भी इन दोनों देवोंको अपना नेता बनाता हूँ ॥ ५ ॥

मैंने इन इन्द्र और अग्निको बलकारक तेजस्वी और पवित्र हवि दी है, अतः वे भी मुझ जैसे विद्वान् स्तोताको धन, अन्न और यश प्रदान करें ॥ ६ ॥

[८७]

[ऋषिः- एवयामरुदात्रेयः । देवता- मरुतः । छन्दः- अतिजगती ।]

७१९ प्र वो॑ म॒हे म॒तयो॑ यन्तु॒ विष्ण॑वे म॒रुत्व॑ते गिरि॒जा ए॑व॒यामरु॑त् ।
प्र शर्धा॑य॒ प्रय॑ज्यवे सु॒खाद॑ये त॒वसे॑ भ॒न्ददि॑ष्टये॒ धुनि॑व्रताय॒ शव॑से ॥ १ ॥

७२० प्र ये जा॒ता म॑हि॒ना ये च॒ नु स्व॒यं प्र वि॒द्मना॑ ब्रु॒वत॑ एव॒यामरु॑त् ।
क्रत्वा॒ तद् वो॑ मरुतो॒ नाधृषे॒ शवो॑ दा॒ना म॒ह्ना तदे॑षा॒मधृ॑ष्टासो॒ नाद्र॑यः ॥ २ ॥

७२१ प्र ये दि॒वो बृ॑ह॒तः शृ॑ण्वि॒रे गि॒रा सु॒शुक्वा॑नः सु॒भ्व॑ एव॒यामरु॑त् ।
न येषा॒मिरी॑ स॒धस्थ॒ ईष्ट॒ आँ अ॒ग्नयो॒ न स्ववि॑द्युतः॒ प्र स्प॒न्द्रासो॒ धुनी॑नाम् ॥ ३ ॥

---

[८७]

अर्थ— [७१९] (एवयामरुत्) मरुतोंके अनुकरण करनेवाले ऋषिकी (गिरि-जाः) वाणीसे निकले हुए (मतयः) विचार एवं काव्यमय श्लोक (वः) तुम्हारे (मरुत्-वते) मरुतोंसे युक्त (महे विष्णवे) बडे व्यापक देवके पास (प्र यन्तु) पहुँचें। तुम्हारे (प्र-यज्यवे) अत्यन्त पूजनीय, (सु-खादये) अच्छे कडे, वलय धारण करनेहारे, (तवसे) बलवान्, (भन्दत्-इष्टये) अच्छी आकांक्षा करनेवाले, (धुनिव्रताय) शत्रुको हटा देनेका व्रत लेनेहारे (शवसे) वेगपूर्वक जानेवाले (शर्धाय) बलके लिए ही तुम्हारे विचार एवं काव्यप्रवाह (प्र-यन्तु) प्रवर्तित हों ॥ १ ॥

[७२०] (ये) जो अपनी निजी (महिना) महत्त्वसे (प्र जाताः) प्रकट हुए (ये च) और जो (नु) सचमुच (स्वयं विद्मना) अपनी निजी विद्यासे (प्र) प्रसिद्ध हुए, उन वीरोंका (एवयामरुत् ब्रुवत) एवयामरुत ऋषि वर्णन करता है। हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वः तत् शवः) तुम्हारा वह बल (क्रत्वा) कृतिसे युक्त होनेके कारण (न आ-धृषे) पराभूत नहीं हो सकता, (एषां तत्) ऐसे तुम वीरोंका वह बल (दाना) दानसे (मह्ना) तथा महत्त्वसे युक्त है। तुम तो (अद्रयः न) पर्वतोंके समान (अ-धृष्टासः) किसीसे परास्त न होनेवाले हो ॥ २ ॥

[७२१] (सु-शुक्वानः) अत्यन्त तेजस्वी तथा (सु-भ्वः) उत्तम ढंगसे रहनेहारे (ये) जो वीर (बृहतः) विशाल (दिवः) अन्तरिक्ष में से जाते समय जनताको की हुई स्तुतियाँ (प्र शृण्विरे) सुनते हैं, उनको ही (एवयामरुत् गिरा) एवयामरुत् ऋषि अपनी वाणीद्वारा स्तुति करता है। (येषां सधस्थे) जिनके प्रदेशमें उनके (इरी) प्रेरककी हैसियतसे उनपर (न आ ईष्टे) कोई भी प्रभुत्व नहीं प्रस्थापित करता है; वे (अग्नयः न) अग्निके तुल्य (स्व-विद्युतः) स्वयंप्रकाशी वीर (धुनीनां) गर्जना करनेहारे शत्रुओंको भी (प्र स्पन्द्रासः) अत्यन्त विकम्पित कर डालनेवाले हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— ऋषि सर्वव्यापक ईश्वरके सम्बन्धमें विचार करते हैं, उसके स्तोत्रोंका गायन करते हैं और उनकी प्रतिभा-शक्ति परमात्माकी ओर मुड जाती है। उसी प्रकार, बल बढाकर शत्रुको मटियामेट करनेके गुरुतर कार्यकी ओर भी उनकी मनोवृत्ति झुक जाये ॥ १ ॥

तुम्हारी विद्या एवं महत्ता असाधारण कोटिकी है। तुम्हारा बल इतना विशाल है कि, कोई तुम्हें पददलित तथा पराभूत या परास्त नहीं कर सकता। तुम्हारा दान भी बहुत बडा है और जैसे पर्वत अपनी जगह स्थिर रहा करता है, वैसे ही तुम जिधर भी कहीं रहते हो, उधर भले ही दुश्मन भीषण हमला करें, लेकिन तुम अपने स्थानपर अचल, अटल तथा अडिग रहकर उसे हटा देते हो ॥ २ ॥

ये वीर तेजस्वी तथा अच्छा आचरण रखनेवाले हैं। ये स्वयं-शासित हैं, इन पर अन्य किसीकी प्रभुता नहीं प्रस्थापित है। ये स्वयंप्रकाशी होते हुए गरजनेवाले बडे बडे वीर दुश्मनोंको भी भयभीत कर देते हैं, जिससे वे काँपने लगते हैं ॥ ३ ॥

×

७२२ स चंक्रमे महतो निरुंरुक्रमः समानस्मात् सदंस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभि- र्विष्पर्धसो विमंहसो जिगांति शेवृंधो नृभिः ॥ ४ ॥
७२३ स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारंश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥ ५ ॥
७२४ अपारो वो महिमा वृद्धशवस- स्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते नः उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥ ६ ॥
७२५ ते रुद्रासः सुमंखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७ ॥

अर्थ— [७२२] (यदा एवयामरुत्) जब एवयामरुत् ऋषि अपने (स्नुभिः नृभिः) वेगवान् लोगोंके साथ (त्मना) स्वयं ही (स्वात्) अपने निवासस्थानके समीप (अधि अयुक्त) अश्व जोतकर तैयार हुआ, तब (उरुक्रमः सः) बडा भारी आक्रमण करनेहारा वह मरुतोंका संघ (समानस्मात्) सबके लिए समान ऐसे (सदसः) अपने निवासस्थानसे (निः चक्रमे) बाहर निकल पडा और (वि-महसः) विलक्षण तेजस्वी एवं (शे-वृधः) सुख बढानेवाले वे वीर (वि-स्पर्धसः) विना किसी स्पर्धासे तुरन्त उधर (जिगाति) आ पहुँचे ॥ ४ ॥

[७२३] (वः अम-वान्) तुम्हारा बलवान् (वृषा) समर्थ, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) वेगसे जानेहारा एवं (तविषः स्वनः) प्रभावशाली शब्द (एवयामरुत् न रेजयत्) एवयामरुत् ऋषिको कंपित या भयभीत न करे। (येन) जिससे (सहन्तः) शत्रुओंका प्रतिकार करनेहारे (स्व-रोचिषः) अपने तेजसे युक्त, (स्थाः-रश्मानः) स्थायी तेज धारण करनेहारे, (हिरण्ययाः) सुवर्णालंकार पहननेवाले, (सु-आयुधासः) अच्छे हथियार रखनेवाले तथा (इष्मिणः) अन्नका संग्रह समीप रखनेवाले तुम वीर प्रगतिके लिए (ऋञ्जत) प्रयत्न करते हो ॥ ५ ॥

[७२४] हे (वृद्ध-शवसः) प्रबल सामर्थ्यवान् वीरो ! (वः महिमा) तुम्हारा बडप्पन सचमुच (अ-पारः) असीम एवं अमर्याद है । तुम्हारा (त्वेषं शवः) तेजस्वी बल इस (एवयामरुत् अवतु) एवयामरुत् ऋषिका रक्षण करे । शत्रुका (प्रसितौ) आक्रमण होनेपर भी (संदृशि) दृष्टिपथमें ही तुम (स्थातारः स्थन) स्थिर रहते हो । (अग्नयः न) अग्नितुल्य (शुशुक्वांसः) तेजस्वी (ते) ऐसे तुम (नः) हमें (निदः उरुष्यत) निन्दकसे बचाओ ॥ ६ ॥

[७२५] (सुमखाः) उच्च कोटिके यज्ञ करनेवाले (अग्नयः यथा) अग्निके समान (तुविद्युम्नाः) अति तेजस्वी (ते रुद्रासः) वे शत्रुओंको रुलानेवाले वीर (एवयामरुत् अवन्तु) एवयामरुत् ऋषिका संरक्षण करें। (दीर्घं) विस्तीर्ण तथा (पृथु) भव्य (पार्थिवं सद्म) भूमंडलपरका निवास स्थान उन्हींके कारण (पप्रथे) विख्यात हो चुका है । (अद्भुत-एनसां) पापरहित ऐसे (येषां) जिन वीरोंके (अज्मेषु) आक्रमणोंके समय (महः शर्धांसि) बडे बडे बल उनके साथ (आ) आते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थ— जब ऋषि इन वीरोंका सुस्वागत करनेके लिए तैयार हुआ, तब ये वीर उस अपने निवासस्थलसे जो सबके लिए समान था निकलकर स्वयं ही उसके समीप जा पहुँचे । ये वीर बडे ही तेजस्वी एवं जनताका सुख बढानेवाले थे ॥ ४ ॥

इन वीरोंकी महिमा असीम है और उनके सामर्थ्यसे ऋषियोंका रक्षण होता है । दुश्मनोंकी चढाई हो, तो वे समीप ही रहते हैं, इसलिए शीघ्र आकर जनताकी मदद करते हैं । हमारी इच्छा है कि, वे हमें निन्दकों से बचायें ॥ ५ ॥

तुम्हारी ध्वनिमें सामर्थ्य है, पर यह ऋषि उस गम्भीर दहाडसे भयभीत नहीं होता, क्योंकि इसके साथ तुम अच्छे शस्त्र लेकर सबकी उन्नतिके लिए सचेष्ट रहा करते हो ॥ ६ ॥

७२६ अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद् रथ्यो३ न दंसनाऽप द्वेषांसि सनुतः ॥ ८ ॥
७२७ गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥ ९ ॥

॥ इति पञ्चमं मण्डलं समाप्तम् ॥

अर्थ— [७२६] हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (अद्वेषः) द्वेष न करनेवाले तुम वीरोंके (गातुं) काव्यको गाते समय (नः आ इतन) हमारे पास आओ। (जरितुः एवयामरुत्) स्तुति करनेवाले एवयामरुत् ऋषिकी यह प्रार्थना (श्रोत) सुन लो। हे (समन्यवः) उत्साही वीरो ! तुम (विष्णोः महः) व्यापक देवकी शक्तियोंसे (युयोतन) एकरूप बनो। तुम (रथ्यः न) रथमें जोडने योग्य घोडेके समान (स्मत्) प्रशंसाके योग्य हो, अतः (दंसना) अपने पराक्रमसे-कर्मसे (सनुतः द्वेषांसि) गुप्त शत्रुओंको (अप) दूर हटाओ ॥ ८ ॥

[७२७] हे (यज्ञियाः) पूज्य वीरो ! (सुशमि) अच्छे शान्त ढंगसे (नः यज्ञं) हमारे यज्ञकी ओर (गन्त) आओ। (अ-रक्षः) अरक्षित ऐसे (एवयामरुत्) एवयामरुत् ऋषिकी (हवं) यह प्रार्थना (श्रोत) सुनो। (वि-ओमनि) विशेष रक्षणके कार्यमें तुम (पर्वतासः न) पहाडोंके तुल्य (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हो। (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ढंगसे विचार करनेवाले तुम (तस्य निदः) उस निन्दकके लिए (दु-धर्तवः) दुर्धर्ष अजेय (स्यात) बनो ॥ ९ ॥

भावार्थ— ये वीर अच्छे कर्म करनेवाले हैं। ये ऋषियोंका संरक्षण करते हैं। इन्हींके कारण पृथ्वीपर विद्यमान स्थान विख्यात हुआ है। ये पापरहित वीर जब शत्रुपर हमला करते हैं, तब इनकी अनेक शक्तियां व्यक्त हुआ करती हैं ॥ ७ ॥

हम वीरोंके काव्यकागायन करते हैं, उसे वे आकर सुनें। परमात्माकी शक्तिसे युक्त होकर अपने अपने अनवरत उद्यमसे सभी शत्रुओंको दूर करें ॥ ८ ॥

वीर यज्ञमें आवें और काव्यगायन सुनें। रक्षा करते समय स्थिर रूपसे प्रजाओंकी रक्षा करें। विचारपूर्वक निन्दकोंको हटाकर शत्रुसेनाके लिए स्वयं अजेय बननेकी कोशिश करें ॥ ९ ॥

॥ पंचम मंडल समाप्त ॥

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

चतुर्थ मण्डल

सु भा षि त

१. देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं—(६) उत्तम गोपालकी गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है।

२. धेनोः मंहना— (६) गायका दान भी श्रेष्ठ होता है।

३. यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्— (९) यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है।

४. वृषभस्य विपन्या प्रथमं शर्धः आर्त— (१२) उस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है।

५. ऋतस्य योना— (१२) सत्यके स्थानमें जाकर विराजता है।

६. धीभिः चकृपन्त ज्योतिः चिदन्त (१४) जो बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्ययुक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

७. एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्— (१४) इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं।

८. यः ते सिष्विदानः इध्मं आभरत् मूर्धानं ततपते, तस्य स्वतवान् भुवः पायुः विश्वस्मात् अघायतः उरुष्य— (२६) जो इस अग्निके लिए बहुत परिश्रम करके पसीनेसे लथपथ हो अपने सिरपर समिधायें ढोकर लाता है, उसे यह अग्नि धनवान् बनाता है और पापियोंसे चारों ओरसे उसकी रक्षा करता है।

९. यः अमृताय दाशत् दुवः कृणवते राया न वि योषत् अघायोः अंहः न परिवरत्— (२९) जो इस अमर अग्निको हवि देता और इसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

१०. त्वं यस्य मर्तस्य अध्वरं जुजोष, स प्रीता इत् असत्— (३०) वह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

११. मर्तान् चित्तिं अचित्तिं चिनवत्— (३१) यह अग्नि मनुष्योंके पाप और पुण्योंको पृथक् पृथक् करता है।

१२. दितिं रास्व अदितिं उरुष्य— (३१) हमें दानशीलता दे और कंजूसीसे हमारी रक्षा कर।

१३. यत् देवानां जनिम आ अख्यत्, अर्यः उपरस्य आयोः वृधे— (३८) जो देवोंके जन्मोंका वर्णन करता है, वह स्वामी अपने पुत्र और अन्य मनुष्योंके पालन पोषणमें समर्थ होता है।

१४. ते अकर्म, सु अपसः अभूम— (३९) हमने इस अग्निकी सेवा की, अतः उत्तम कर्म करनेवाले हुए।

१५. तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृज:— (५८) हे राजन्! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों ओर प्रेरित कर।

१६. अदब्धः विशः पायुः— (५१) किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो।

१७. यः अघशंसः दूरे अन्ति, माकिः आ दधर्षीत्— (५९) जो पापवचनों या दुष्टवचनोंको बोलनेवाला हो, वह चाहे पास हो या दूर, इन प्रजाओंको न सतावे।

१८. यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति— (६२) जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है।

१९. विश्वानि दिनानि सु— (६२) उसके सभी दिन उत्तम होते हैं।

२०. अर्यः दुरः वि द्यौत्— (६१) उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है।

२१. यः हविषा नित्येन पिप्रीषति, सः इत् सुभगः सुदानुः— (६३) जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता है, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील अर्थात् उदार हृदयवाला होता है।

२२. यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत्, तस्य त्राता सखा भवासि— (६६) हे अग्ने! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है।

२३. त्वया वयं सधन्यः— (७०) तेरे कारण हम धन्य हैं।

२४. तव प्रणीती वाजान् अश्याम— (७०) तेरे बताये मार्गपर चलकर हम अन्नोंको प्राप्त करें।

२५. मनीषां महि साम प्र वोचत्— (७४) ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे।

२६. भ्यन्तः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत— (७६) कुमार्गपर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिकनियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्यशील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है।

२७. दिवि पृथिव्यां यत् द्रविणं अस्य त्वं क्षयसि— (८२) द्युलोक और पृथ्वीलोकमें जो कुछ धन है, उसका तू ही स्वामी है।

२८. अध्वनः परमं— (८३) जो उत्तम मार्गसे जाता है उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है।

२९. निदानाः रेकु पदं न अगन्म— (८३) हम निन्दित होकर निर्धनके घर न जायें।

३०. अनिरेण फल्गेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति— (८५) नीरस और निष्फल वाणीके कारण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे?

३१. अनायुधासः असता सचन्तां— (८५) शस्त्र धारण न करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं।

३२. अस्य अनीकं श्रिये दमे आ रुरोच— (८६) इस अग्निका तेज मनुष्यके कल्याणके लिए ही घरमें प्रकाशित होता है।

३३. यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति— (८७) यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है।

३४. वेधसां मनीषा प्र तिरति— (८७) यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है।

३५. मन्द्रः मधुवचाः अग्निः परि एति— (९१) आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

३६ यत् अभ्राट् विश्वा भुवना भयन्ते— (९१) जब यह अग्नि प्रज्वलित होता है, तब सभी लोक इससे डरते हैं।

३७. देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु— (१११) जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है।

३८. बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य— (१२६) महान् यज्ञ या कर्मसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है।

३९. अक्षितं अन्नं रूपः— (१२३) घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है।

४०, वेपसा गृणते स्वं— (१३४) अपने उत्तम कर्मोंसे परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है।

४१. काव्या मनीषाः राध्यानि उक्था त्वत् जायन्ते— (११५) काव्य, उत्तम बुद्धि तथा आराधनाके योग्य स्तोत्र सब इस अग्निसे ही उत्पन्न होते हैं।

४२. शिवः देवः यं स्वस्ति, अमतिं अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे— (१३८) कल्याणकारी देव अग्नि जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता पाप और दुष्ट बुद्धिको दूर करता है।

४३. सस्मिन् अहन् त्रिः अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभि अस्तु— (१३९) जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन बार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है।

४४. यः शश्रमाणः अनीकं सपर्यते सः पुष्यन् अमित्रान् घ्नन् रयिं सचते— (१४०) जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता है।

४५. ईवतः अस्य अग्नेः मर्त्यः वीरः ईशीत— (१५९) सर्वत्र गमन करनेवाले इस अग्निकी उपासना करनेवाला मनुष्य वीर होकर सब ऐश्वर्योंका स्वामी बनता है।

४६. यः विश्वा भुवना अभि बभूव अमितं ववक्ष— (१६९) जो सारे भुवनोंको अधिकारमें कर लेता है, उसका यश अपरिमित होता है।

४७. महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ अतः चित् अस्य महिमा विरेचि— (१६९) वह अपने महत्त्वसे द्यु और पृथ्वी इन दोनों लोकोंको भर देता है, इसी कारण उसका महत्त्व सबकी अपेक्षा अधिक है।

४८. नृमणः कविं अच्छ गाः— (१७१) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे ज्ञानीके पास सीधा जा।

४९. धृष्न्हुतौ मायावान् अब्रह्मा दस्युः अर्त— (१७३) युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाते हैं।

५०. दस्युघ्ना मनसा अस्तं आयाहि— (१७४) दुष्टको मारनेके विचारसे अपने घर जाकर रहो।

५१. सरूपा स्वे योनौ निषीदतम्— (१७४) समान रूप या विचारवाले एकत्र रहें।

५२. ऋताचित् नारी वां चिकित्सत्— (१७४) सत्यज्ञानवाली स्त्री तुम दोनोंको जाने।

५३. ओकः न रण्वा सुदृशी पुष्टिः इव— (१७९) यह इन्द्र घरके समान सुखदायक तथा रमणीय और दीखनेमें उत्तम समृद्धिके समान पोषक है।

५४. यः ता पुरूणि नर्या चकार— (१८०) इन्द्रने मनुष्योंके बहुतसे हितकारक कार्य किए हैं।

५५. सखा अकुटिलः— (१८१) मित्र हमेशा अकुटिल हो। मित्र कुटिलतासे रहित होकर व्यवहार करे।

५६. त्वं महान्— (१८६) इन्द्र ! तू महान् है।

५७. क्षा तुभ्यं क्षत्रं अनु— (१८६) पृथ्वी तेरे क्षात्र-सामर्थ्यके पीछे चलती है।

५८. मंहना द्यौः मन्यत— (१८६) महिमासे युक्त द्युलोक भी तेरी महत्ताको स्वीकार करता है।

५९. यः ईं जजान, इन्द्रस्य कर्ता स्वपस्तमः अभूत्— (१८९) जिसने इस इन्द्रको उत्पन्न किया, वह इन्द्रका जन्मदाता उत्तम कर्म करनेवाला था।

६०. कृष्टीनां राजा इन्द्रः— (१९०) प्रजाओंका राजा इन्द्र है।

६१. एकः भूम च्यावयति— (१९०) वह अकेला ही बहुतसे शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है।

६२. यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते विश्वं एजत् दृळ्हं अस्मात् भयत्— (१९५) जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है, तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है।

६३. अस्य रायः विभक्ताः वस्वः संभरः— (१९१) यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

६४ आक्षियन्तं क्षियन्तं कृणोति— (१९८) वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है।

६५. अस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते, न मर्ताः... (२०४) इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले मित्रको न देव मार सकते हैं, न मनुष्य।

६६. अमुया मातरं पत्तवे मा कः— (२०७) अपनी कार्य प्रवृत्तिसे अपनी मातृभूमिकी गिरावट न कर।

६७. अयं पन्थाः अनुवित्तः पुराणः— (२०७) यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला और सनातन है।

६८. अतः चित् प्रवृद्धः जनिषीष्ट— (२०७) इस मार्ग पर चल कर मनुष्य निश्चयसे बढे होते हैं।

६९. एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय— (२०८) यह दुर्गम मार्ग है, अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा।

७० बहूनि कर्त्वानि अकृता तिरश्चता पार्श्वात् निर्गमाणि— (२०८) मैंने बहुतसे कर्तव्य अभीतक किए नहीं हैं, इसलिए मैं दूसरे सरल मार्गसे जाऊंगा।

७१. यं सहस्रं मासाः पूर्वीः शरदः च जभार सः ऋणक् किं कृणवत् — (२१०) जिसका बहुत मासों और वर्षों तक भरणपोषण किया गया है, वह मनुष्य अपना पोषण करनेवालेके विरुद्ध कोई काम क्यों करेगा ?

७२. जनित्वाः जातेषु अस्य प्रतिमानं नहि— (२१०) उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

७३. जनुषा अस्य वर्ता न अस्ति— (२३७) जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

७४. साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः सम्राट्— (२४१) शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल सम्राट् हो।

७५. यः बृहतः रायः ईशे, धृष्णुया वस्वः, तं विदथेषु स्तवाम— (२४५) जो वीर बडे धनको अपने आधीन रखता है, शत्रुओंका धर्षण करके जो धन प्राप्त करता है, उसकी हम यज्ञोंमें तथा युद्धोंमें प्रशंसा गाते हैं।

७६. सत्यः वस्वः सम्राट्— (२५१) यह इन्द्र सच्चे धनोंका सम्राट् है।

७७. पूरवे वरिवः कः— (२५१) यज्ञ करनेवालेको धन देता है।

७८. यः अश्मानं शवसा बिभ्रत् एति, महान् शुष्मी मघवा— (२५३) जो वज्रको धारण करके आता है, वह बडा बलवान् और धनवान् होता है।

७९. वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषंधिं श्रिये अस्यन्— (२५४) बलवान् उग्र श्रेष्ठ नेता बलवान् वीर अपनी भुजाओंसे वज्रको यशके लिए शत्रुपर फेंकता है।

८०. महतः ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या— (२५७) महान् इस इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं।

८१. ते ता विश्वा सत्या— (२५८) इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं, काल्पनिक नहीं।

८२. अस्य सुदृशः सर्गाः श्रिये— (२६९) इस सुन्दर इन्द्रकी रचनायें सबके आश्रय करनेके लिए हैं।

८३. अमत्रं सख्यं प्र ब्रवाम— (२६९) शत्रुसे रक्षण करनेवाली मित्रताका हम वर्णन करते हैं।

८४. ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति— (२७१) उचित कर्तव्यकी शक्तियां अनन्त हैं

८५. ऋतस्य धीतिः वृजनानि हन्ति— (२७१) उचित बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।

८६. ऋतस्य वपूंषि दळहा, धरुणानि चन्द्रा पुरूणि सन्ति— (२७२) सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनंददायी और अनेक होते हैं।

८७. सः सुस्तुतः इन्द्रः सत्यराधाः— (२७६) वह इन्द्र उत्तम प्रकारसे स्तुति करनेपर सच्चे ऐश्वर्यको देनेवाला होता है।

८८. नरः समीके तं विह्वयन्ते— (२७७) मनुष्य युद्धमें अपनी सहायताके लिए उस वीरको बुलाते हैं।

८९. रिरिक्वांसः तन्वः त्रां कृण्वत— (२७७) तेजस्वी लोग अपने शरीरकी सुरक्षा करते हैं।

९०. उभयासः नरः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्— (२७७) शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग अपने पुत्रपौत्रोंके पोषणके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं।

९१. उग्राः आशुषाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति— (२७८) उग्र प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते हैं।

९२. युध्मा विशः अभीके अववृत्रन्त आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते— (२७८) युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

९३. नेमे इन्द्रियं यजन्ते— (२७९) कई वीर इन्द्रियशक्तिसे सम्पन्न वीरको सम्मानित करते हैं।

९४. वृषभं जुजोष— (२७९) मनुष्य वीरकी ही सेवा करते हैं।

९५. मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्— (२८१) मननशील वीर बलिष्ठको अधिक बल देता है।

९६. उच्चरन्तं सूर्यं ज्योक् पश्यात्— (२८९) उदय होनेवाले सूर्यको मनुष्य दीर्घकाल तक देखे।

९७. इन्द्रे सुकृत्, मनायुः, सुप्रावीः प्रियः— (२९०) इन्द्रको उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला प्रिय होता है।

९८. तं दभ्राः बहवः न जिनन्ति— (२९०) उसको थोड़े या बहुत सारे शत्रु भी नहीं जीत सकते।

९९. अदितिः अस्मै उरुशर्म यंसत्— (२९९) प्रकृति उसको बडा सुख देती है।

१००. वीरः दुष्प्राव्यः अवाचः अवहन्ता— (२९१) वह वीर इन्द्र बुरे मार्गसे जानेवाले तथा स्तुति न करनेवालेको मारनेवाला है।

१०१. रेवता पणिना सख्यं न सं वृणीते (२९२) धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ वह इन्द्र मित्रता नहीं करता।

१०२. अस्य नग्नं वेदः खिदति— (२९२) ऐसे कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है।

१०३. अहं आर्याय भूमिं अददां— (२९५) इस इन्द्रने श्रेष्ठ पुरुषोंके लिए भूमि दी है।

१०४ अहं दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं— (२९५) इस इन्द्रने दानशील मनुष्यके लिए पानी बरसाया।

१०५. इन्द्र! दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः— (३०९) हे इन्द्र! तूने दस्युओंको सबसे नीच बना दिया।

१०६. दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः— (३०९) तूने दासभावसे युक्त प्रजाओंको निन्दाके योग्य किया।

१०७. सदावृधः चित्रः सखा— (३४०) सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला, विलक्षण और शक्तिशाली मित्र हो।

१०८. ऊती शचिष्ठया वृता नः आभुवत्— (३४०) संरक्षणके सामर्थ्यसे युक्त होकर वह हमारे पास आवे।

१०९. ऋभवः पितृभ्यां परिविष्टी दंसनाभिः अरं अक्रन्— (३८०) ऋभुओंने अपने माता पिताकी सेवा और उत्तम कर्मोंको करके स्वयंको सामर्थ्यशाली बनाया।

११०. देवानां सख्यं उप आयन्, मनायै पुष्टिं अवहन्— (३८०) देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया।

१११. श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति— (३८९) कष्ट उठाये विना देवगण मित्रता नहीं करते।

११२. सुकृत्या सखीन् चक्रिरे— (४०७) उत्तम कर्मोंके कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया।

११३. सुकृत्या देवासः अभवन्— (४०८) उत्तम कर्मोंसे ही देव बना जा सकता है।

११४. यं देवासः अवथ सः विचर्षणिः— (४१४) जिसकी रक्षा देवगण करते हैं वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

११५. धीभिः सनिता— (४२४) मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

११६. यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे सः वृत्रा हन्ति, प्र शृण्वे— (४४९) जो मनुष्य इन्द्र और वरुण इन दोनों देवोंको अपना भाई बनाता है, वह पापोंको नष्ट करता है और बहुत प्रसिद्ध होता है।

११७. यः बृहस्पतिं वन्दते, स इत् राजा विश्वा प्रतिजन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ— (५१८) जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है।

११८. यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति, स इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति— (५१९) जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है, वही राजा अच्छी तरहसे तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है।

११९. तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते— (५१९) उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है।

१२०. तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते (५१९) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती हैं।

१२१. यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति— (५२०) जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणकी धन आदि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं।

१२२. सः अप्रतीतः प्रति जन्यानि सजन्या धनानि सं जयति— (५२०) वह राजा कभी भी पराङ्मुख न होता हुआ शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको जीतता है।

१२३. य इमे द्यावापृथिवी जजान सः इत् सु-अपाः भुवनेषु आस— (५१६) जिस परमात्माने इस द्यावापृथिवीको उत्पन्न किया, वही उत्तम कर्म करनेवाला परमात्मा इन दोनों लोकोंमें व्याप्त है।

पंचम मण्डल

१. सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्— (२) उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उत्तम होता है।

२. महान् देवः तमसः निरमोचि— (२) वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है।

३. अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन्— (१५) इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे ? अग्निके उपासकका नास्तिक जन कुछ भी नहीं बिगाड सकते।

४. सुदृशः श्रिया पुरु दधानाः अमृतं सपन्त— (२८) उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेज प्राप्त कर अमृत पाते हैं।

५. त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः नः— (२९) इस अग्निके पहले न कोई स्तुतिके योग्य था और न आगे होगा।

६. यस्याः अतिथिः भवासि स मर्तान् वनवत्— (२९) जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है।

७. वयं देवेषु सुकृतः स्याम— (४४) हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों।

८. त्रिवरूथेन शर्मणा नः पाहि— (४४) तीन मंजिले घरसे हमारी रक्षा कर।

९. ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्— (११०) इस अग्निके मित्र भी जब अग्निकी उपासना करना भूल गए, तब दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासनासे उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१०. ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षत— (११०) जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्ट वचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

११. पूर्व्याय दुस्तरं वयः अंहोयुवः वि तन्वते— (१२६) जो इस श्रेष्ठ अग्निके लिए अन्यों द्वारा कठिनतासे प्राप्त होने योग्य अन्नको प्रदान करता है, वह पापसे छूटकर वृद्धिको प्राप्त होता है।

×

१२. येषु चित्रा दीधितिः— (१४२) यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते हैं।

१३. आसन् उक्था पान्ति— (१४२) ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं।

१४. वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति, ध्रुवः अभ्रिरे— (१५०) जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे डरते नहीं हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।

१५. सहन्तं रयिं द्युम्नस्य आ भर— (१६१) शत्रुको पराजित करनेवाला धन तेजस्वी मनुष्यको मिले।

१६. अजरं सूर्यं इव क्षत्रं सुवीर्यम्— (१९२) क्षीण न होनेवाले सूर्यके समान, तेजस्वी और निर्बलोंका रक्षक बल हो।

१७. इन्द्रः ऋषिः— (१९९) इन्द्र सब तरहके ज्ञानको देखता है।

१८. जनुषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्— (२१२) इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया।

१९. या चित् कृणवः तस्याः तविष्याः वर्ता न अस्ति— (२१२) यह इन्द्र जिन पराक्रमोंको करता है, उनका निवारण करनेवाला कोई नहीं है।

२०. बुबुधानाः नरः इन्द्रं अशेम— (२१५) ज्ञानवान् मनुष्य ही इन्द्रको प्राप्त करते हैं।

२१. ते या कृत्यानि, वयं ब्रवाम— (२१६) जो तेरे कर्म हैं, उनका वर्णन हम करते हैं।

२२. जातः मनः स्थिरं चकृषे— (२१७) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया।

२३. युधये एकः चित् भूयसः वेषीत्— (२१७) युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया।

२४. त्वत् वस्यः अन्यत् नहि अस्ति— (२३०) इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

२५. जने सुमतिं— (२५४) मनुष्योंमें इन्द्र उत्तम बुद्धि करता है।

२६. वाजसातौ समर्यः चिकेत - (२५४) युद्धमें उपयोगी वीरको जानता है ।

२७. यत् अस्मत् अयुक्ता असन् ते अब्रह्मता ते न— (२५६) जो हमसे पृथक् हुए हैं, वे अपने अज्ञानके कारण तेरे भक्त नहीं रहे हैं ।

२८. समत्सु दासस्य नामः चित् ततक्षे - (२५७) युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया ।

२९. यः अस्मै सोमं सुनोति द्युमान् भवति— (२६६) जो इस इन्द्रके लिए सोम निचोडता है, वह तेजस्वी होता है ।

३०. यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति— (२६६) जो दुष्टोंका मित्र है उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है ।

३१. पंचभिः दशभिः आरभं न वष्टि— (२६८) पांच और दस शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके लिए भी वह दूसरेकी सहायता नहीं चाहता ।

३२. भीपणः आर्यः दासं यथावशं नयाति— (२६९) अति पराक्रमी आर्यवीर दासको अपने वशमें करता है ।

३३. दाशुषे सूनरं वसु भजति— (२७०) इन्द्र दानशीलको उत्तम धन देता है।

३४. यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आध्रियते— (२७०) जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुजनोंको यह इन्द्र किलेमें कैद करके रखता है ।

३५. पणेः भोजनं मुषे अजति— (२७०) दुष्टोंका धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है ।

३६. यत् इन्द्रः सुधनौ विश्वशर्धसौ जनौ अवेत्, अन्यं युजं अकृत्— (२७१) जब इन्द्र धनी और बली ऐसे दो मानवोंको जानता है, तब वह उनमेंसे योग्यको ही अपना मित्र बनाता है ।

३७. तस्मिन् क्षत्रं त्वेषं अस्तु— (२७२) मनुष्यमें क्षात्रतेज और बल हो ।

३८. चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुस्तरं अस्मभ्यं अवसे आ भर— (२७३) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले, उत्तम तथा युद्धोंमें शत्रुको दुस्तर होनेवाले सामर्थ्यको हमारेमें भरपूर स्थापित करो ।

३९. मे मनः अमतेः भिया वेपते— (२८३) मेरा मन निर्बुद्धिताके कारण भयसे कांपता है ।

४०. यस्मिन् इन्द्रः सोमं पिबति, स राजा न व्यथते— (२९०) जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता ।

४१. सत्वनैः अजति— (२९०) वह राजा बलशाली होकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है ।

४२. सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति— (२९०) अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है ।

४३. योगे क्षेमे अभि भवाति— (२९१) वह मनुष्य अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षणमें समर्थ होता है ।

४४. सूर्ये अग्नौ प्रियः भवाति— (२९१) वह सूर्य और अग्निके लिए प्रिय होता है ।

४५. अस्याः तन्वः शिवां धासिं— (३२७) देवगण मेरे इस शरीरकी पुष्टिके लिए कल्याणकारी अन्नको प्रदान करें ।

४६. निर्ऋतिः मे जरां जग्रसीत— (३२७) बुरी अवस्था मेरे बुढापेको ही निगले ।

४७. सूरिभिः देवहितं ब्रह्मणा यज्ञियानां देवानां सुमत्या सं— (३३४) विद्वानों और देवोंके लिए कल्याणकारक ज्ञान तथा पूज्य देवोंकी बुद्धिसे संयुक्त कर ।

४८. बृहस्पते ! तव ऊतिभिः सचमानाः अरिष्टा मघवानाः सुवीराः— (३३८) हे बृहस्पते ! तेरी रक्षासे युक्त हुए मनुष्य रोगादिसे रहित, ऐश्वर्यवान् और उत्तम पुत्र पौत्रवाले होते हैं ।

४९. अश्वदाः, गोदाः, वस्त्रदाः सुमनाः रायः— (३३८) अश्व, गाय और वस्त्र दानमें देनेवाले मनुष्य उत्तम भाग्यशाली और धनवान् होते हैं ।

५०. उष्यैः नः अपृणन्तः भुंजते एषां वित्तं विसर्माणं कृणुहि— (३३९) जो मनुष्य प्रार्थना करने पर भी हमें न देकर स्वयं ही भोगते हैं, उनके धनको नष्ट हो जानेवाला कर ।

५१. अपव्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व— (३३९) दुष्ट कर्म करनेवाले दुष्ट मार्गसे संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर रख।

५२. यः देववीतौ रक्षसः ओहते, तं नियात— (३४०) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसे मार डालो।

५३. यः वः शशमानस्य निन्दात्, तिच्छ्यान् कामान् तुच्छ्यान् करते— (३४०) जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवाले की निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है।

५४. सु-इषुः सु-धन्वा— (३४१) वह रुद्रदेव उत्तम बाण और धनुषसे युक्त है।

५५. विश्वस्य भेषजस्य क्षयति— (३४१) यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका स्थान है।

५६. मह्ने सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व— (३४१) अपने महान् मनको उत्तम बनानेके लिए बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए।

५७. माता पृथिवी नः दुर्मतौ मा धात्— (३४६) माता पृथिवी हमें दुष्ट बुद्धिमें न रखे।

५८. मायाभिः परः नाम ऋते आस— (३६७) जो छल कपट आदि असत्य कार्मोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्यलोककी प्राप्ति होती है।

५९. धारवाकेषु शोभते— (३७०) यह अग्नि विद्याको धारण करनेवालोंमें अधिक शोभित होता है।

६०. यादृश्मिन् धायि, तं अपस्यया विदत्— (३७३) मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है।

६१. यः स्वयं वहते स अरं करत्— (३७३) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है।

६२. आसां अग्रिमा समुद्रं अवतस्थे— (३७४) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमातक जाकर प्रसिद्ध होती है।

६३. यस्मिन् आयता सवनं न रिष्यति— (३७४) जिन यज्ञोंमें इन ऋचाओंका विस्तार किया जाता है, उन यज्ञोंमें किसीतरहकी हिंसा नहीं होती।

६४. यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र कवणस्य हार्दि न रेजते— (३७४) जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहां उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जाती।

६५. यः ईं गणं भजते, सः वरा उभा प्रति एति— (३७७) जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है।

६६. यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः— (३७८) यह यज्ञ यजमानके पुत्रका भरणपोषण करनेवाला और सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है।

६७. विश्वासां धियां ऊधः— (३७८) यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्रोत है।

६८. धेनुः रसवत् पयः भरत्— (३७८) गाय इसी यज्ञके लिए सारयुक्त दूध देती है।

६९. अनुब्रुवाणः अधि एति, न स्वपन्— (३७८) स्तुति करनेवाला ही इस दूधको प्राप्त कर सकता है, सोनेवाला नहीं।

७०. यः जागार, तं ऋचः कामयन्ते— (३७९) जो जागता रहता है, उसे ही ऋचायें अर्थात् ज्ञान चाहते हैं।

७१. यः जागार, तं सामानि यन्ति— (३७९) जो सदा जागता रहता है, उसीके पास साम भी जाते हैं।

७२. यः जागार, तं अयं सोमः आह, तव अहम् अस्मि, सख्ये नि ओकः— (३७९) जो जागता रहता है, उससे यह सोम कहता है कि मैं तेरा हूँ और तेरी मित्रतामें ही मैं रहूंगा।

७३. सरमा ऋतस्य पथा गाः विदद्— (३८८) प्रगति करनेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है।

७४. आसां उत्सः परमे सधस्थे— (३८८) अंगिरा ऋषियोंने इन गायोंके दूधको सर्वश्रेष्ठ स्थानमें स्थापित किया।

७५. अतः अतिथीन्, नॄन् पत्नीः दशस्यत—(४१९) यज्ञमें अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए।

७६. सूर्याचन्द्रमसौ इव स्वस्ति पन्थां अनुचरेम—(४३६) सूर्य और चन्द्रमाके समान हम कल्याणके मार्ग पर चलें।

७७. पुनः ददता अघ्नता जानता संगमेमहि—(४३६) बार बार दान देते हुए, एक दूसरेकी हिंसा न करते हुए तथा ज्ञानसे युक्त होकर हम सभी संगठित होकर चलें।

७८. उक्षणः शर्वरी अति स्कन्दन्ति— (४३९) बलवान् वीर दिन या रातका तनिक भी ख्याल न करके अपना आक्रमण बराबर जारी रखते हैं।

७९. उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्रा स्वया मत्या सं मिमिक्षुः— (५११) ये मातृभूमिके सुपुत्र वीर समानतापूर्वक बर्ताव करते हैं। अविषमदशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको ऐक्यसे निभाते हैं।

८०. अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते भ्रातरः—(५१२) जिनमें न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है, ऐसे ये सभी वीर भाईके समान प्रीतिपूर्वक रहते हैं।

८१. सौभगाय वावृधुः— (५३२) ये मरुत् सौभाग्यकी प्राप्तिके लिए एक दूसरेको बढाते हैं।

८२. एषां पिता रुद्रः युवा सु अपाः— (५३२) इन मरुतोंका पालनकर्ता रुद्र तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है।

८३.अदेवत्रात् अराधसः पुंसः वस्यसी शशीयसी भवति— (५४१) देवको न माननेवाले और धनहीन पुरुषकी अपेक्षा धनयुक्त स्त्री अधिक प्रशंसनीय होती है।

८४. या जसुरिं तृष्यन्तं कामिनं वि जानाति, देवत्रा मनः कृणुते— (५४२) जो स्त्री दुःखी मनुष्यके प्यासे और धनके अभिलाषी मनुष्यके मनके भावोंको जानती है, तथा जो देवपूजामें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है।

८५. विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे— (५७०) बुद्धिमान् मनुष्य धर्मपूर्वक अपने व्रतनियमोंका पालन करते हैं।

८६. ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते— (५७०) मनुष्य अपने सत्य नियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है।

८७. यत् गतिं अश्यां मित्रस्य पथा यायां—(५७१) जब भी मैं गति करूं, तब मित्रके मार्गसे ही जाऊं।

८८. मित्रः अंहः चिदपि उरुक्षयाय गातुं वनते—(५८१) यह मित्रदेव पापीको भी महान् संरक्षणका उपाय बताता है।

८९. प्रतूर्वतः विधतः अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति— (५८१) हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारेमें भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है।

९०. वरुणशेषसः अनेहसः सत्रा—(५८२) वरुण देवके हम सभी पुत्र पापसे रहित होकर संगठित होकर रहें।

९१. इमं जनं यतथः सं नयथः — (५८३) ये देव जिस मनुष्यको प्रयत्नशील बनाते हैं, उसे उत्तम मार्गसे ले जाते हैं।

९२. क्षत्रं अविह्रुतं असुर्यं—(५८५) इन देवोंका बल सज्जनोंके लिए कुटिलतारहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है।

९३. व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि—(५८९) अत्यन्त विस्तृत और बहुतों द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें प्रयत्न करते रहें।

९४. आदित्या दिव्या रोचनस्य पार्थिवस्य रजसः धर्तारा— (६०३) रसका आदान-प्रदान करनेवाले तेजस्वी मित्रावरुण द्यु तथा पृथिवीके लोकोंको धारण करनेवाले हैं।

९५. वां ध्रुवाणि व्रतानि अमृताः देवाः न मिनन्ति—(६०३) इन दोनोंके अटल नियमोंको देव भी नहीं तोड सकते।

९६. वां अवः पुरूरुणा चित्— (६०४) इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है।

९७. वां सुमतिं वंसि— (६०४) मैं इन दोनों देवोंकी उत्तम बुद्धिको प्राप्त करूं।

९८. रुद्रा, वयं ते स्याम— (६०५) हे शत्रुओंको रुलानेवाले मित्र और वरुण! हम तेरे बनकर रहें।

९९. कस्य यक्षं न भुजेम, तनूभिः आ— (६०७) हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपने शरीरके परिश्रमसे कमाये गए अन्नको ही भोगें।

१००. धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः— (६१२) धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है।

१०१. संस्कृतं न प्र मिमीतः— (६४४) ज्ञानी और सुसंस्कृत मनुष्यको ये अश्विदेव कभी दुःख नहीं देते।

१०२. ओकः प्रदिवि स्थानं— (६४६) घर सदा एक उत्तम स्थानके रूपमें रहे।

१०३. देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः, ओजसा— (६८०) इस सवितादेवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं।

१०४. धर्मभिः मित्रः भवति— (६८१) मनुष्य अपने उत्तम गुणोंके कारण ही लोगोंका मित्र बनता है।

१०५. एकः इत् प्रसवस्य ईशिषे— (६८२) हे सवितादेव! तू अकेला ही सभी उत्पन्न हुए जगत्का स्वामी और शासक है।

१०६. देव सवितः! विश्वानि दुरितानि परा सुव —(६८७) हे सवितादेव! सभी दुर्गुणोंको हमसे दूर करो।

१०७. यत् भद्रं तत् नः आ सुव— (६८७) जो कल्याणकारी हो, वह हमें प्रदान करो।

१०८. सवितुः सवे अदितये अनागसः—(६८८) सवितादेवकी आज्ञाके रहकर हम अपनी मातृभूमिके प्रति निरपराधी रहें।

१०९. उभे अहनी अ-प्रयुच्छन् सु-आधीः, पुरः एति— (६९०) जो मनुष्य दिन और रात अर्थात् हमेशा प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है।

११०. अर्यस्यः मित्रः सखायः सदं भ्रातरः अरणः- (७११) नेता श्रेष्ठ, मित्रके समान हितकारी तथा हमेशा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो।

१११. सीं आगः चकृमः, तत् शिश्रथः— (७११) ऐसे नेताके प्रति यदि हम कोई अपराध करें, तो उस पापसे हम मुक्त हों।

११२ यत् रिरिपुः, यत् सत्यं, यत् न विद्म, ता सर्वा विष्य— (७१२) जो हम पर मिथ्या दोषारोपण किया गया हो, अथवा जो अपराध हमने सचमुच किया हो, अथवा जो अपराध हमने अनजानेमें कर दिया हो, उससे हमें मुक्त कर।

११३. वाजेषु यं अवथः, स दळ्हा द्युम्ना चित् भेदति— (७१३) संग्रामोंमें इन्द्र और अग्नि जिसकी रक्षा करते हैं, वह मनुष्य दृढ और तेजस्वी शत्रुको भी छिन्न भिन्न कर देता है।

ऋग्वेदका सुबोध-भाष्य

चतुर्थ मण्डल

इस मण्डलमें ऋषि, देवता, सूक्त और मंत्रोंकी संख्या इस तरह है—

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
वामदेवो गौतमः	५५
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	१
पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ	२
	५८

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्रसंख्या
वामदेवो गौतमः	५६२
त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः	१०
पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ	१४
इन्द्रः	२
अदितिः	१
	५८९

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्र
१ इन्द्रः	१९३
२ अग्निः	१२६
३ ऋभवः	४८
४ अश्विनौ	२६
५ दधिक्रा	१९
६ उषाः	१८
७ इन्द्रावरुणौ	१५
८ रक्षोहाऽग्निः	१५
९ वैश्वानरोऽग्निः	१५
१० सविता	११
११ अग्निः सूर्यो वाऽऽपो वा	११
१२ विश्वेदेवाः	१०
१३ इन्द्रवायू	९
१४ बृहस्पतिः	९
१५ इन्द्राबृहस्पती	८
१६ द्यावापृथिवी	८
१७ श्येनः	८
१८ वायुः	७
१९ त्रसदस्युः	६
२० वामदेवः	५
२१ अग्नीवरुणौ	४
२२ इन्द्रोषसौ	३
२३ ऋतं	३
२४ क्षेत्रपतिः	३
२५ इन्द्राग्नी	२
२६ शुनासीरौ	२
२७ सीता	२
२८ सोमकः साहदेव्यः	२
२९ शुनः	१
३० सूर्यः	१

इस मण्डलमें भी अनेक तरहका ज्ञान ऋषियोंने दिया है।

अग्निकी महिमा

१ वृषभस्य विप्न्या प्रथमं शर्धः आर्त — (१२) उस बलवान् अग्निकी स्तुतिसे मनुष्य सर्वोत्तम बल प्राप्त करता है। इस शरीरमें चेतनता जो दीख रही है, वह इसी अग्निका परिणाम है। जबतक शरीरमें उष्णता रहती है, तभी तक इस शरीरका पोषण होता है। जिस मनुष्यके शरीरमें यह अग्नि बलवान् रहता है, उसका शरीर पुष्ट होता है।

२ यः अमृताय दाशत् दुवः कृणवते, राया न वि योषत् अघायोः अंहः न परिवरत् — (२९) जो इस अमर अग्निको हवि देता और उसकी सेवा करता है, वह कभी भी निर्धन और पापी नहीं होता।

३ त्वं यस्य मर्त्यस्य अध्वरं जुजोष, स प्रीता इत् असत् — (३०) वह अग्नि जिस मनुष्यके यज्ञका सेवन करता है, वह हमेशा आनन्दमें ही रहता है।

४ ते अकर्म सु अपसः अभूम — (३९) हमने इस अग्निकी सेवा की, अतः हम उत्तम कर्म करनेवाले हुए।

५ यः ब्रह्मणे गातुं ऐरत् सः सुमतिं जानाति — (६२) जो इस महान् अग्निकी स्तुति करता है, वह इस देवकी कृपाको प्राप्त करता है।

६ विश्वानि दिनानि सु — (६२) उसके सभी दिन उत्तम होते हैं।

जो मनुष्य इस अग्निमें यज्ञ करता है, उसे उत्तम आहुतियां देता है, वह सभी तरहसे स्वस्थ रहता है। यज्ञ करनेसे आसपासका वातावरण पवित्र होता है और उस पवित्र वातावरणके कारण स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है। यज्ञको सबसे श्रेष्ठ कर्म बताया गया है (यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म)। यज्ञका कार्य जगहित साधक है। उसमें अग्निकी स्तुति की जाती है और उस स्तुतिके कारण इस अग्निकी कृपा उस साधक पर होती है। उसकी कृपा होनेपर सभी तरहका ऐश्वर्य प्राप्त होता है। और

७ अर्यः दुरः वि द्यौत् — (६२) उस श्रेष्ठ पुरुषका घर धनके कारण चमकने लगता है।

८ य हविषा नित्येन पिप्रीषति, स इत् सुभगः सुदानुः — (६६) जो हविके द्वारा प्रतिदिन इस अग्निको तृप्त करना चाहता है, वह उत्तम भाग्यशाली होकर उत्तम रीतिसे दानशील और उदार हृदयवाला होता है।

वेदोंमें अग्निको अतिथि पदसे सम्बोधित किया गया है, क्योंकि जिस तरह अतिथि पूज्य है, उसी तरह अग्नि भी पूज्य है। जिस प्रकार अतिथि विद्वान् होकर अन्योंको भी उत्तम मार्गमें प्रेरित करता है, उसी तरह यह अग्नि स्वयं सर्वज्ञाता होकर लोगोंको उत्तम मार्गमें जानेकी प्रेरणा देता है। अतः

९ यः ते आतिथ्यं आनुषक् जुजोषत्, तस्य त्राता सखा भवसि — हे अग्ने! जो तेरा अतिथिके समान सत्कार करता है, उसका तू रक्षक और मित्र होता है। तथा

१० शिवः देवः यं स्वस्तिः, अमतिं अंहः विश्वां दुर्मतिं आरे — (१३८) कल्याणकारी यह देव जिसका कल्याण करता है, उससे मूर्खता पाप और दुष्टबुद्धिको दूर करता है।

दुष्टबुद्धि और पापसे दूर होकर मनुष्य आगे बढता जाता है और एक उत्तम नेता होता है।

उत्तम नेता

१ मन्द्रः मधुवचाः अग्निः परि एति — (९१) आनन्द देनेवाला और मधुर भाषण करनेवाला तेजस्वी नेता अपने यशसे चारों ओर जाता है।

२ वृषा उग्रः नृतमः शचीवान् बाहुभ्यां वृषन्धि श्रिये अस्यत् — (२५४) बलवान्, उग्र, श्रेष्ठनेता, बलवान् वीर अपनी भुजाओंसे वज्रको यशके लिए शत्रु पर फेंकता है।

उत्तम नेताका यह कर्तव्य है कि वह सबसे मधुर भाषण करनेवाला हो, तेजस्वी हो, राष्ट्रके शत्रुओंका विनाशक हो, तथा अपने यशके कारण चारों ओर प्रसिद्ध हो। दुष्टोंको मारकर सज्जनोंकी रक्षा करना उत्तम नेताका काम है।

सज्जनोंके लिए वेदमें " आर्य " शब्द है। आर्यकी उत्पत्ति " ऋ–गतौ " धातुसे हुई है, जिसका अर्थ है गमन करना, उन्नति करना। अतः आर्यका अर्थ है आगे जानेवाला, उन्नति करनेवाला। उत्तम नेता ऐसे आर्योंकी रक्षा करके उन्हें अपने राष्ट्रमें बसाये। राष्ट्रमें बस्ती आर्योंकी ही हो, यह देखना उत्तम नेताका कार्य है। यदि दुष्टोंके पास भूमि हो,

तो उनसे छीनकर वह भूमि आर्योंको दे और राष्ट्रभरमें घोषणा कर दे कि—

३ अहं आर्याय भूमिं अददां— (२९५) मैंने श्रेष्ठ पुरुषोंको ही भूमि दी है। वह यह घोषणा कर दे कि इस राष्ट्रमें केवल वे ही रह सकेंगे कि जो आर्य हैं। अनार्योंके लिए इस राष्ट्रमें कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार एक उत्तम नेता अपने राष्ट्रका संचालन करे।

यज्ञका महत्त्व

१ यज्ञबन्धुः मनुष्यः चेतयत्— (९) यज्ञ अर्थात् संगठनके कार्योंसे प्रेम करनेवाला ही मनुष्योंको ज्ञान दे सकता है।

२ यजीयान् ऊर्ध्वः तिष्ठति— (८७) यज्ञ करनेवाला सदा उन्नत रहता है।

३ वेधसां मनीषा प्र तिरंते— (८७) यज्ञसे बुद्धिमानोंकी भी बुद्धि बढती है।

४ बृहतः क्रतोः भद्रस्य दक्षस्य— (१२६) महान् यज्ञसे कल्याणकारी बलकी प्राप्ति होती है।

यज्ञका अर्थ है– देवपूजा, संगतिकरण और दान। देवपूजासे ज्ञान बढता है और उस ज्ञानसे मनुष्य उत्तम होता है। देवपूजा, संगतिकरण और दानात्मक यज्ञ जो करता है, वह सदा उन्नत होता रहता है। वह सबसे श्रेष्ठ होता है। यज्ञानुष्ठानसे मनुष्योंकी बुद्धि बढती है और वे बुद्धिमान् होते हैं। जब मनुष्य बुद्धिको प्राप्त कर लेता है, तब वह इस महान् यज्ञके कारण कल्याणकारी बल भी प्राप्त करता है। यज्ञका एक अर्थ त्याग भी है। मनुष्य हरदम अनजाने ही यह त्यागरूप यज्ञ किया ही करता है। मनुष्यके लिए यह त्याग अनिवार्य है। यह जरूरी नहीं कि यह त्याग शिक्षित मनुष्य ही करें, अपितु शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके मनुष्य करते हैं। यथा

पुत्रोंके लिए सुखोंका त्याग

१ उभयासः नरः तोकस्य तनयस्य सातौ त्यागं अग्मन्— (२७७) शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके लोग अपने पुत्रपौत्रोंके पोषणके लिए अपने सुखोंका त्याग करते हैं। अपने पुत्र पुत्रियोंका पालन पोषण करनेके लिए शिक्षित और अशिक्षित दोनों तरहके मनुष्य अपने सुखोंका त्याग करते हैं। हर पिताकी यही इच्छा रहती है कि वह चाहे कैसा ही रहे, पर उसकी सन्तान अच्छा खाये, अच्छा पीये, अच्छा पहने। उसे सन्तानके सुखके आगे अपने सुखकी चिन्ता नहीं रहती। सन्तानको सुख देनेके बारेमें सभी समान हैं। यह त्यागरूप यज्ञ अनजाने ही सभी शिक्षित अशिक्षित कर रहे हैं। यह त्यागरूप कर्म ही वास्तविक स्वर्गसुख है।

स्वर्गसुखकी प्राप्ति

१ वेपसा गृणते स्वं— (१३४) अपने उत्तम कर्मोंसे परमात्माकी उपासना करनेवालेको स्वर्ग सुख मिलता है। अनजाने ही किए गए त्यागसे जब पिताको इतना सुख मिलता है, तब ज्ञानपूर्वक उत्तम कर्मों द्वारा किए गए त्यागयज्ञसे कितना सुख मिलेगा, यह सहजगम्य है। त्यागपूर्वक परमात्माकी उपासना जब की जाती है, तभी स्वर्गसुखकी प्राप्ति होती है। इस मंत्रभागसे स्पष्ट होता है कि स्वर्ग कहीं अन्यत्र नहीं है, जैसी कि कल्पना की जाती है। स्वर्ग तो इसी पृथ्वी पर है। यदि उत्तम कर्म किए जाएं, यज्ञ किये जाएं, परमात्माकी उपासना की जाए, तो इसी पृथ्वी पर स्वर्गकी स्थापना हो सकती है। पुराणोंमें ऐसे स्वर्गका राजा इन्द्र बताया गया है। इसका स्थान बहुत ऊंचा है, अतः वेदोंमें भी इसकी बहुत महिमा गाई गई है।

इन्द्रकी महिमा

१ त्वं महान्— (१८६) हे इन्द्र ! तू महान् है।

२ कृष्टीनां राजा इन्द्रः— (१९०) प्रजाओंका राजा इन्द्र है। वह इन्द्र सभी तरहकी प्रजाओंका राजा है। परमात्मा इन्द्र है क्योंकि वह उत्पन्न हुए संसारका स्वामी है। उसीके संकेतसे सारा संसार चल रहा है। इन्द्र इतना बलवान् है कि—

१ एकः भूम च्यावयति— (१९०) वह अकेला ही बहुतसे शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट कर देता है।

२ यदा इन्द्रः सत्यं मन्युं कृणुते, विश्वं एजत् दृळ्हं अस्मात् भयत्— (१९५) जब इन्द्र वास्तवमें क्रोध करता है, तब सारा जंगम और स्थावर जगत् इससे डरता है।

इतना वीर यह इन्द्र है। परमात्मा सर्वोत्तम बलशाली

है, उसकी शक्तिके आगे कोई टिक नहीं सकता। जब यह क्रोध करता है, तब उसके क्रोधसे सारा विश्व कांपने लगता है।

३ अस्य रायः विभक्तारः, वस्वः संभरः— (१९६) यह इन्द्र अपने धनको बांट देता है, फिर भी इसके पास भरपूर धन रहता है।

४ अक्षियन्त क्षियन्तं कृणोति— (१९८) वह इन्द्र आश्रयरहितको आश्रय प्रदान करता है।

परमात्मा सबसे बडा आश्रयदाता है। उसके जैसा आश्रय कहीं भी नहीं मिल सकता। क्योंकि इसकी शरणमें जो जाता है, वह अजेय हो जाता है।

५ अस्य शर्मन् अस्य प्रियः न किः देवाः वारयन्ते, न मर्ताः— (२०४) इस इन्द्रके आश्रयमें रहनेवाले इसके मित्रको न देव मार सकते हैं और न मनुष्य।

इसकी शरणमें जो जाता है, वह इस ऐश्वर्यवान् परमात्माकी कृपा प्राप्त करता है।

६ जनित्वा जातेषु अस्य प्रतिमानं न हि— (२१०) उत्पन्न होनेवालों और उत्पन्न हुए हुओंमें इस इन्द्रके समान कोई नहीं है।

७ जनुषा अस्य वर्ता न अस्ति— (२३७) जन्मसे ही इस इन्द्रका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

यह इन्द्र जब उत्पन्न हुआ, तभी ये सारे लोक कांपने लग गए थे। इसका बल इतना महान् था कि इसके बलके आगे कोई टिक नहीं पाता था। तबसे आजतक कोई ऐसा नहीं निकला कि जो इस इन्द्रका नाश कर सके। इसी लिए—

८ महतः ता महानि विश्वेषु इत् सवनेषु प्रवाच्या— (२५७) इस महान् इन्द्रके वे महान् कर्म सभी उत्तम उत्सवोंमें वर्णन करने योग्य हैं। क्योंकि—

९ ते ता विश्वा सत्या— (२५८) इन्द्रके वे सभी कर्म सत्य हैं। इन्द्र पराक्रम करता है, इसीलिए उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है, पर जो पराक्रम नहीं करते, वे सदा दुःख उठाते हैं—

१ अनायुधासः असता सचन्तां— (८५) शस्त्र न धारण करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य हमेशा दुःखी ही रहते हैं। पराक्रम करना शस्त्रास्त्र धारण करना सुरक्षित और सुखी होनेका उपाय है। जो मनुष्य पराक्रम करता है, वह तेजस्वी होता है। ऐसा ही तेजस्वी और पराक्रमशील व्यक्ति राजा होने योग्य है और अपने कर्तव्य उत्तम रीतिसे निभा सकता है।

राजाके कर्तव्य

१ अदब्धः विशः पायुः— (५१) किसीसे भी न दबनेवाला वीर राजा अपनी प्रजाओंका पालन करनेवाला हो। राजा इसीलिए होता है कि वह प्रजाका पालन करे, प्रजाको पुत्रके समान मानकर उसे सुखी करे। प्रजापालनके कार्यमें यदि उसे शत्रुओंसे भी लडना पडे, तो भी वह शत्रुओंसे लडे और कुशलतासे युद्ध करे।

२ सम्राट् साह्वान् तरुत्रः विदथ्यः— (२४२) राजा शत्रुओंका पराजय करनेवाला, शत्रुको नष्ट करनेवाला और युद्धमें कुशल हो।

राजा किसी भी हालतमें पीछे न हटे। अपने पराक्रमसे सदा आगे बढता जाए। आगे बढनेवाला राजा ही शत्रुओंका धन प्राप्त कर सकता है।

३ अप्रतीतः प्रति जन्यानि सजन्या धनानि सं जयति— (५२०) कभी पीछे न हटनेवाला राजा शत्रुओंके और अपनोंके धनोंको जीतता है।

आगे बढनेवाला राजा शत्रुओंके धनोंको तो जीतता ही है, पर जब प्रजायें स्वयंको सुरक्षित पाती हैं, तो वह भी प्रेमसे अपना धन राजाको देती हैं। इस प्रकार राजा अपने राष्ट्रको बाह्यरूपसे तो सुरक्षित रखे ही, पर आन्तरिक रूपसे भी प्रजा हर तरहसे सुरक्षित रहे।

४ यः अघशंसः दूरे अन्ति, मा किः आ दधर्षीत् — (५९) जो पाप या दुष्टवचनोंको बोलनेवाला हो, वह चाहे पास हो या दूर हो, इन प्रजाओंको न सताये राष्ट्रमें सज्जनोंकी अधिकता हो, यदि दुष्ट बढ गए, तो देशमें अराजकता हो जाएगी और उस देशमेंसे सज्जनोंका उच्चाटन हो जाएगा। इसलिए राजाको चाहिए कि वह दुष्टोंको दण्ड देकर सज्जनोंकी उत्तम रीतिसे रक्षा करे।

अपने राज्यमें सर्वत्र सुरक्षितता तथा सुख स्थापनाके लिए राजा सर्वत्र गुप्तचरोंका जाल बिछा दे।

५ तूर्णितमः स्पशः प्रति वि सृजः— ( ) हे राजन्! शीघ्रतासे काम करनेवाला तू अपने चरोंको चारों

ओर प्रेरित कर। राज्यमें सर्वत्र फैले हुए गुप्तचर राज्यभरका समाचार राजाको ईमानदारीसे देते रहें और राजा तदनुसार यथायोग्य काम करे। राजाके ये गुप्तचर प्रतिनिधि होते हैं, इन्हीं गुप्तचरोंकी आंखोंसे राजा राज्यका निरीक्षण करता है, इसीलिए राजाको सहस्राक्ष या चारचक्षुष कहा गया है। इस प्रकार राजा अपने राज्यमें सर्वत्र समृद्धि रखे।

कंजूसोंका शत्रु

राज्यमें कंजूस कोई न हो, सभी दानी हों। जो कोई कंजूस हो उसे यथायोग्य दण्ड दिया जाए। कंजूसोंके साथ राजा कभी मैत्री न करे।

१ रेवता पणिना सख्यं न सं वृणीते— (२९२) धनवान् होकर भी कंजूसी करनेवाले मनुष्यके साथ वह इन्द्र मित्रता नहीं करता। क्योंकि कंजूसके पास धनका दुरुपयोग ही होता है। वह न स्वयं भोगता है और न दूसरेको भोगने देता है। खजानेकी रक्षा करनेवाले सांपकी तरह कंजूस होता है। सांप उस खजानेको न स्वयं भोगता है, और न किसी दूसरेको भोगने ही देता है। इसीलिए कंजूसके पास पड़ा हुआ धन सड़ता रहता है और दुःखी होता है—

२ अस्य नग्नं वेदः खिदति— (२९१) इस कंजूस मनुष्यका धन निरर्थक होनेके कारण खेद करता है। इसके विपरीत—

३ दाशुषे मर्त्याय वृष्टिं— (२९५) दानशील मनुष्यके पास धनकी और अधिक वृष्टि होती है।

दासभावकी निन्दा

१ इन्द्र दस्यून् विश्वस्मात् अधमान् अकृणोः— (३०९) हे इन्द्र ! तूने दस्यु अर्थात् दुष्ट या दासमनोवृत्तिवाले, मनुष्योंको सबसे नीच बना दिया।

२ दासीः विशः अप्रशस्ताः अकृणोः—(३०९) तू ने दास प्रजाओंको अपयश प्रदान किया।

दास बनकर गुलामीगिरी करना बहुत नीच काम है। इस वृत्तिसे मन नीच हो जाता है, वह मनुष्य सर्वथा अप्रशंसित होता है, इसलिए मनुष्य कभी दास न बने, सदा स्वतंत्र रहे। राष्ट्र भी जब किसी अन्य राष्ट्रका दास बन जाता है, तो उसकी अधोगति हो जाती है, इसलिए राष्ट्र सदा स्वतंत्र रहकर तेजस्वी हो और उत्तम प्रगति करे। तेजस्वी एवं सदा स्वतंत्र रहनेकी मनोवृत्तिवाले अपनी मातृभूमिकी सदा उन्नति करते हैं।

मातृभूमिकी गिरावट न कर

१ अमुया मातरं पत्तवे मा कः— (२०७) अपनी कार्य प्रवृत्तिसे अपनी मातृभूमिकी अवनति मत कर। मातृभूमिकी उन्नत्ति या अवनति उस देशके वासियोंके कर्म पर निर्भर करती है। प्रजाओंको हमेशा ऐसे कर्म करने चाहिए कि जिससे मातृभूमिकी उन्नति हो। अपनी मातृभूमिकी जो उन्नति करते हैं, ऐसे वीरोंका सम्मान होना ही चाहिए।

वीरका सम्मान

१ नेमे इन्द्रियं यजन्ते— (२७९) लोग इन्द्रकी शक्तिसे सम्पन्न वीरको सम्मानित करते हैं।

२ वृषभं जुजोष— (२७९) प्रजायें वीरका ही आश्रय लेती हैं।

प्रजायें उसीका सम्मान करती हैं और उसीकी रक्षामें जाती हैं कि जो वीर होता है और प्रजाओंकी सुरक्षा करता है। वीर इन्द्र जैसा बलशाली हो, तभी वह इन्द्रको प्रिय हो सकता है।

३ इन्द्रे सुकृत् मनायुः सुप्रावीः प्रियः— (२९०) उत्तम कार्य करनेवाला, मननशील और उत्तम रक्षण करनेवाला मनुष्य ही इन्द्रको प्रिय होता है। तथा प्रजायें भी—

४ मनायोः वृषणं शुष्मं दधत्— (२८१) ऐसे मननशील वीरको और अधिक बल प्रदान करती हैं और

५ अदितिः अस्मै उरु शर्म यंसत्— (२९०) ऐसे वीरको बहुत सुख देती हैं।

संगठन

राजा वीर हो, सभी सैनिक वीर हों पर यदि प्रजाओंमें या सैनिकोंमें संगठन न हो तो राजाकी वीरता व्यर्थ ही होती है। इसलिए—

१ उग्राः आशुपाणाः क्षितयः मिथः अर्णसातौ योगे क्रतूयन्ति— (२७८) उग्र और प्रयत्नशील वीर मिलकर युद्धमें यश प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करते हैं।

२–युध्मा विशः अभीके अवबृत्रन्त, आत् इत् नेमे इन्द्रयन्ते— (२७८) युद्ध करनेवाले वीर युद्धमें संगठित होते हैं, तब वे अपनी सहायताके लिए इन्द्रको बुलाते हैं।

इन्द्र भी ऐसे ही वीरोंकी सहायता करता है कि जो स्वयं संगठित होकर प्रयत्न करते हैं। जब ये वीर स्वयं प्रयत्न करके भी सफल होते नहीं दीखते, तब वे इन्द्रको अपनी सहायताके लिए बुलाते हैं, तब इन्द्र भी आकर उनकी सहायता करता है।

तेज प्राप्तिका उपाय

तेज प्राप्तिके अनेक उपाय वेदोंमें बताये गए हैं, उदाहरणार्थ—

१ अरूक्षितं अन्नं रूपः— (१३३) घी आदि चिकने पदार्थोंसे युक्त अन्न खानेवाला रूपवान् होता है। मनुष्य घी, दुग्ध, मक्खन आदि उत्तम पदार्थोंको खानेसे उत्तम तेज प्राप्त कर सकता है। इन पदार्थों को खानेसे शरीरमें उत्तम रस बनता है, उस रसका परिपाक होकर तेज या ओज बनता है, इसी ओजके कारण मनुष्य रूपवान् होता है। इसके अलावा यज्ञादि साधनोंसे भी तेजकी प्राप्ति होती है।

२ सस्मिन् अहन् त्रि अन्नं कृणवत् सः द्युम्नैः सु अभिअस्तु— (१३९) जो प्रत्येक दिन इस अग्निको तीन बार हवि देता है, वह अपने तेजोंसे सबको परास्त कर देता है।

३ यः शश्रमाणः अग्निं सपर्यते स पुष्यन् अमित्रान् घ्नन् रयिं सचते— (१४०) जो परिश्रमपूर्वक इस अग्निके तेजकी सेवा करता है, वह पुष्ट होकर शत्रुओंको मारता है।

अग्निमें नित्य प्रति हवन करने तथा परमात्माकी उपासना करनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है। परमात्माकी उपासनासे मनोबल और आत्मबल बढता है और उस बलके कारण मनुष्य तेजस्वी होता है। पर जो दुष्ट होते हैं, नास्तिक होते हैं, वे तेजोहीन होते हैं, अतः उनका सदा पराभव होता है।

१ द्युम्नहूतौ मायावान् अ ब्रह्मा दस्युः अर्त— (१७३) युद्धमें कपटी और अज्ञानी दस्यु नष्ट हो जाते हैं। जो सदा छलकपटका आश्रय लेते हैं ऐसे दुष्टोंका सदा पराभव ही होता है।

पुरोहितका महत्त्व

वेदोंमें पुरोहितकी महिमा बहुत गाई गई है। पुरोहितका काम राजाको उत्तम सलाह देकर देशको आगे बढाना है। ये पुरोहित राष्ट्रमें सदा जागते अर्थात् सावधान रहें (राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः) जिस राष्ट्रमें पुरोहित सदा सावधान रहते हैं, वही राष्ट्र उन्नति कर सकता है। अतः राष्ट्र या राजाके लिए पुरोहित आवश्यक है, उसीकी महिमा इस मंडलमें इस प्रकार गाई गई है—

१ यः बृहस्पतिं वदन्ते सः इत् राजा विश्वा प्रति जन्यानि शुष्मेण वीर्येण अभि तस्थौ— (५१८) जो वेदज्ञाता पुरोहितकी वन्दना करता है, वही राजा सभी युद्धोंमें अपनी शक्तिसे विजय प्राप्त करता है।

२ यस्मिन् राजनि ब्रह्मा पूर्वः एति, सः इत् सुधितः स्वे ओकसि क्षेति— (५१९) जिस राजाके राज्यमें ब्रह्मज्ञानी पुरोहित सत्कृत होकर सबसे आगे रहता है, वही राजा अच्छी तरह तृप्त होकर अपने घरमें सुखसे रहता है।

३ तस्मै इळा विश्वदानीं पिन्वते— (५१९) उसके राज्यकी भूमि प्रतिदिन पुष्ट होती रहती है।

४ तस्मै विशः स्वयं एव आ नमन्ते— (५१९) उसके आगे प्रजायें स्वयं ही आदरपूर्वक झुक जाती है।

५ यः राजा अवस्यवे ब्रह्मणे वरिवः कृणोति, तं देवाः अवन्ति— (५२०) जो राजा रक्षाके अभिलाषी ब्राह्मणकी धन आदि देकर रक्षा करता है, उस राजाकी रक्षा देवगण करते हैं।

जो राजा अपने पुरोहितकी अच्छी तरह वन्दना करता है, उसके राज्यमें सदा खुशहाली रहती है, उसके राजाकी भूमि सदा उपजाऊ बनी रहती है। उसके राज्यकी प्रजाएं हृष्टपुष्ट एवं प्रसन्न तथा समृद्धि सम्पन्न होकर राजाका गुणगान करती हैं और उसका सम्मान करती हैं, तब राजा भी अपना राज्य सुखसे करता है। आपत्तिके समय भी उसकी रक्षा देवगण करते हैं।

गायका महत्त्व

देशमें अन्नकी समृद्धि तभी हो सकती है कि जब उस देशमें पशुओंकी समृद्धि हो, इसीलिए वेद गोधनके पालन एवं उसके महत्त्वपर जोर देता है—

१ देवस्य अघ्न्यायाः घृतं शुचि तप्तं— (६) उत्तम गोपालककी गायका दूध या घी पवित्र और तेज देनेवाला है। गायके सभी पदार्थ पवित्र हैं। दूध, दही,

घी, मूत्र, गोबर ये पंच गव्य परम पवित्र माने गए हैं। इसीलिए वैदिकशास्त्रोंमें गायके दानको बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है—

२ धेनोः मंहना— (६) गायका दान भी श्रेष्ठ होता है।

गायके दूध घृत आदिके भक्षण एवं उपयोगसे बुद्धिका तेज बढता है।

बुद्धिका तेज

१ धीभिः चक्रपन्त ज्योतिः विदन्त— (१४) जो बुद्धियों द्वारा अपनेको सामर्थ्ययुक्त बनाते हैं, वे ही ज्योति प्राप्त करते हैं।

२ एषां तत् अन्ये अभितः वि वोचन्— (१४) इनके उस यशका दूसरे लोग सर्वत्र गान करते हैं।

३ ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति— (२७१) उत्तम बुद्धि पापोंको नष्ट करती है।

जिनकी बुद्धि उत्तम होती है, वे तेजस्वी होते हैं और अपने तेजके कारण सर्वत्र यशस्वी होते हैं, सभी उसके यशका गुणगान करते हैं।

ज्ञानका प्रचार

देशकी उन्नतिके लिए शिक्षाका प्रसार अत्यावश्यक है, या कहा जा सकता है कि राष्ट्रोन्नति शिक्षाकी नींव पर ही खडी की जाती है। इसलिए सभी ज्ञानी उत्तम ज्ञानका प्रसार करें।

१ मनीषां महि साम-प्र वोचत्— (७४) ज्ञानियोंके महान् ज्ञानका उपदेश सर्वत्र करे। ज्ञानियोंके ही ज्ञानका सर्वत्र प्रचार हो, दुष्टज्ञानका प्रचार न हो। उत्तम ज्ञान सदा सत्य पर आधारित होता है. इसीलिए सदा सत्यका आश्रय लेना चाहिए।

सत्य

१ ऋतस्य वपूंषि दृळ्हा धरुणानि चन्द्रा पुरूणि सन्ति— (२७२) सत्यके शरीर सुदृढ, धारणक्षम, आनन्ददायी और अनेक होते हैं।

सत्य हमेशा सुदृढ होता है, वह त्रिकालमें भी बाधित नहीं होता। सत्य सदा सत्य ही रहेगा। वह सत्य सबको धारण करता है। "सत्येनोत्तभिता भूमिः" इस वचनके अनुसार सत्यके कारण ही यह पृथ्वी टिकी हुई है। सत्यभाषी कभी भी आपत्तिमें नहीं पडता, वह सदा आनन्दमें रहता है, यदि कभी संकट आ भी जाए, तो भी वह उसमें आनन्द ही मानता है।

दान

१ दितिं रास्व अदितिं उरुष्य— (३१) हमें दानशीलता दे और कंजूसीसे हमारी रक्षा कर। दानशीलता महापुण्य है और कंजूसी एक महापाप है। दानशीलतासे उन्नति होती है और कंजूसीसे अवनति।

उत्तम मित्रके लक्षण

"अमित्रस्य कुतः सुखं" इस सुभाषितके अनुसार मनुष्यके लिए मित्रका साथ अत्यन्त आवश्यक है। पर मित्रका चुनाव मनुष्य बहुत ही सावधानीसे करे, क्योंकि उत्तम मित्र मनुष्यको भाग्यसे ही मिलता है। मित्रमंडलीके आधार पर मनुष्यके चरित्रको जाना जा सकता है। जिस तरहके समाजमें वह विचरेगा, उसी तरहका वह मनुष्य भी होगा। इसलिए मनुष्य सदा उत्तम मित्रोंका ही चुनाव करे। मित्र कैसा हो, इसके बारेमें ऋग्वेदका कथन है—

१ सखा अकुटिलः— (१८२) मित्र हमेशा अकुटिल हो।

२ सदावृधः चित्रः सखा— (३१०) अपने सामर्थ्यसे सदा बढनेवाला, विलक्षण और शक्तिशाली मित्र हो।

मित्र सदा कुटिलतासे रहित हो। उसके हृदयमें छलकपट न हो। सदा सत्यमार्गका ही वह अवलम्बन करे और अपने मित्रसे कभी धोखा धडी न करे। मित्र सामर्थ्यशाली हो, अपने ही सामर्थ्यसे सामर्थ्यवान् हो। ऐसा मित्र हो। ऐसे मित्र जिसके होंगे, वह निश्चयसे उन्नति करेगा। इसीलिए सबसे उत्तम यह है कि मनुष्य देवोंकी मित्रता प्राप्त करे। देवोंकी मित्रतामें रहनेवाला मनुष्य कभी भी संकटमें पडकर अवनत नहीं होता।

देवोंकी मित्रता

१ यं देवासः अवथ स विचर्षणिः— (४१४) जिसकी रक्षा देवगण करते हैं, वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

२ यः मर्तः इन्द्रावरुणा देवौ आपी चक्रे सः वृत्रा हन्ति, प्र शृण्वे— (४४९) जो मनुष्य इन्द्र और वरुण

इन दोनों देवोंको अपना भाई बनाता है और वह पापोंको नष्ट करता है, ऐसा मैं सुनता हूँ।

देवोंके साथ मित्रता करनेका यह प्रथम लाभ है कि वह मनुष्य विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है। वह पापोंको नष्ट करके पुण्यशाली होता है। तथा—

३ देवानां सख्यं उप आयन् मनायै पुष्टिं अवहन् —(१८०) मैंने देवोंसे मैत्री स्थापित की और अपने मनको शक्तिशाली बनाया। देवोंकी मित्रता तथा उनकी उपासना करनेसे मनमें शक्ति उत्पन्न होती है और वह शक्तिशाली बनता है। परमात्माकी उपासना और विद्वानोंके सत्संगसे आत्माकी शक्ति बढती है। आत्मशक्तिके बढनेसे मनुष्य तेजस्वी होता है। पर देव सब मनुष्योंके मित्र नहीं बन सकते, देवोंकी मित्रता उन्हें ही प्राप्त हो सकती है कि जो स्वयं परिश्रम करते हैं—

४ श्रान्तस्य ऋते देवाः सख्याय न भवन्ति —(३८९) कष्ट उठाये बिना देवगण मित्रता नहीं करते। मनुष्य जब परिश्रम करके तथा भरपूर पसीना बहानेके बाद भी अपने काममें सफल नहीं होता, तब उसकी मददके लिए देवगण आते हैं। इसलिए देवोंकी मित्रता प्राप्त करनेका एकमात्र उपाय है ईमानदारीसे परिश्रम करना।

उत्तम मार्ग

१ एतत् दुर्गहा, अतः अहं न निरय— (२०८) यह दुर्गम मार्ग है, अतः मैं इससे नहीं जाऊंगा। कुमार्ग सदा दुर्गम होता है, क्योंकि उस परसे जानेवालेको अवनतिके गर्तमें गिरनेकी आशंका बनी रहती है। पर उत्तम मार्गसे जानेवाला निर्भीक होकर चला जाता है।

२ बहूनि कर्त्वानि अकृता, तिरश्चता पार्श्वात् निर्गमाणि— (२०८) मैंने बहुतसे कर्तव्य अभी तक नहीं किए हैं, इसलिए मैं दूसरे सरल मार्गसे जाऊंगा। कुमार्गसे जानेवालेका जीवन शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसके जितने भी काम हैं, सब अधूरे ही पडे रह जाते हैं, पर जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसका जीवन दीर्घ होता है और वह अपने सभी कामोंको पूरा कर लेता है।

३ अतः चित् प्रवृद्धः जानिषीष्ट— (२०७) इस उत्तम मार्ग पर चलकर मनुष्य निश्चयसे बडे होते हैं। उत्तम मार्गपर चलनेवाला मनुष्य निश्चयसे बडा और उन्नत होता है। इस मार्ग परसे चलनेवालेको कभी भी गिरनेका डर नहीं रहता।

उत्तम कर्म

मनुष्य कर्म करनेसे छूट नहीं सकता, वह एक क्षण भी बिना कर्म किए नहीं रह सकता। इसलिए जब उसे कर्म करना ही है, तो वह उत्तम कर्म ही क्यों न करे? उत्तम कर्म करनेसे ही उसका मानवजीवन सफल हो सकता है। इसीलिए उत्तम कर्मकी अनन्त महिमा गाई गई।

१ ऋतस्य शुरुधः पूर्वीः सन्ति— (२७१) उत्तम कर्मकी शक्तियां अनन्त हैं। कर्ममें अनन्त शक्तियां भरी पडी हैं, प्रत्येक उत्तम कर्म करनेके साथ ही कर्म करनेवालेको शक्तियां प्राप्त होती हैं। इन शक्तियोंसे मानव सामर्थ्यशाली बनता है।

२ ऋभवः पितृभ्यां परि विष्टी दंसनाभिः अरं अक्रन्— (३८०) ऋभुओंने अपने मातापिताकी सेवा की और उत्तम कर्मोंको करके स्वयंको सामर्थ्यशाली बनाया।

३ सुकृत्या सखीन् चक्रषे— (४०७) उत्तम कर्मों के कारण इन्द्रने ऋभुओंको अपना मित्र बनाया।

४ धीभिः सनिता— (४२४) मनुष्य अपने उत्तम कर्मों और उत्तम बुद्धियोंके कारण श्रेष्ठ उपभोगोंसे संयुक्त होता है।

माता पिताकी सेवाका बहुत महत्त्व है। इस उत्तम कर्मके द्वारा सभी प्रकारके फल प्राप्त किए जा सकते हैं। मनुष्य जब उत्तम कर्म करता है, तब वह श्रेष्ठ उपभोगोंको भोगता है। तभी उसे सच्चा सुख मिलता है।

उत्तम वाणी

उत्तम कर्मका आधार उत्तम वाणी है। मनुष्य जो कुछ मनमें सोचता है, उसे वाणीसे कहता है, जो कुछ वाणीसे बोलता है, उसके अनुसार कर्म करता है और जैसा कुछ कर्म करता है, तदनुसार उसका फल प्राप्त करता है। वाणीका सदा सदुपयोग करना चाहिए। उत्तम और मधुर वाणी वशीकरणका एक साधन है। मधुर वाणी बोलकर सबके हृदयोंको अपने वशमें किया जा सकता है। वाणीका अमूल्य कोष व्यर्थ न जाए, इसलिए उसका उपयोग मनुष्य दक्षतासे करे। उसके बारेमें वेदका कहना है—

१ अनिरेण फल्ग्वेन वचसा अतृपासः किं वदन्ति— (८५) नीरस और निष्फल वाणीके कारण अतृप्त रहनेवाले मनुष्य अग्निकी स्तुति क्या करेंगे? जिनकी वाणी नीरस और निष्फल होती है, वे किसी तरहके मनोरथको प्राप्त नहीं कर पाते, इसलिए वे हमेशा अतृप्त रहते हैं।

उनकी अभिलाषायें अधूरी ही रहती हैं। क्योंकि उनकी वाणी कभी भी परमात्माकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त नहीं होती, अतः ऐसे मनुष्योंकी वाणी निष्फल ही होती है। पर जो उत्तम वाणीका उपयोग करते हैं, वे उत्तम धनोंसे संयुक्त होते हैं।

धन—प्राप्तिका मार्ग

अध्वनः परमं— (८३) जो उत्तम मार्गसे जाता है, उसे उत्तम ऐश्वर्य मिलता है। ऐश्वर्यप्राप्तिका प्रथम उपाय है, उत्तम मार्गसे जाना। वेदोंमें सर्वत्र उत्तम मार्गसे ही धनार्जनका उपदेश दिया गया है। ऋग्वेदके ही एक दूसरे मंत्रमें ऋषि कहता है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। "हे अग्ने! तुम हमारे सब कर्मोंको यथावत् जाननेवाले हो, अतः हमें ऐश्वर्य प्राप्तिके लिए उत्तम मार्गसे ले चलो"। उत्तम मार्गसे कमाया गया धन ही दीर्घकाल तक टिकता है। धन प्राप्तिका दूसरा उपाय है—

२ देवान् आनमं वेद, प्रियाणि वसु— (११२) जो देवोंको नमस्कार करना जानता है, वही उत्तमोत्तम धन प्राप्त करता है। देवोंकी उपासनासे भी ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

३ अयं पन्थाः अनुवित्तः पुराणः— (२०७) यह मार्ग अनुकूलतासे धन देनेवाला और सनातन है। वेदोंके द्वारा बताया गया ऐश्वर्य—प्राप्तिका मार्ग बहुत प्राचीनकालका है। इससे प्राचीन मार्ग और कोई नहीं है। यह मार्ग निश्चयसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाला है। अतः सब मनुष्य इस मार्ग पर चलकर ऐश्वर्यवान् बनें। कोई भी दरिद्र न रहे, क्योंकि दरिद्र होना निन्दाका कारण बनता है, अतः—

४ निदानाः रेकु पदं न अगन्म— (८३) हम निन्दित होकर निर्धनके घर न जायें। हम इतने निर्धन न हो जाएं कि हमें दर दर भटकना पडे। हम सदा ऐश्वर्यवान् रहें, यह उपदेश वेदोंका है। जो ऐश्वर्यशाली है उसके लिए यह संसार स्वर्ग है और जो दरिद्र है, उसके लिए यह संसार नरक है। स्वर्ग और नरक इसी पृथ्वी पर है।

नरकका स्वरूप

१ अनृतः दुरेवाः अनृताः असत्याः पापासः इदं गभीरं पदं अजनत— (७६) कुमार्ग पर चलनेवाले, दुराचारी, नैतिक नियमोंका उल्लंघन करनेवाले असत्यशील पापियोंने ही इस गंभीर नरकका निर्माण किया है। यह संसार वस्तुतः स्वर्ग है, इसमें हर तरहके सुख प्राप्य हैं, पर दुष्ट और दुराचारी मनुष्य इस स्वर्गको नरक बना डालते हैं।

अतः वेदोंका यह उपदेश है कि मनुष्य उत्तम और नैतिक मार्गों पर चलकर हर तरहसे ऐश्वर्यशाली बनें, उन्नत हों और इस संसारको स्वर्ग बनायें।

इस प्रकार इस मण्डलमें अनेक बहुमूल्य उपदेशोंका संग्रह है।

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध - भाष्य

पञ्चम मण्डल

ऋषिवार सूक्त संख्या

ऋषि	सूक्त
१ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ	१
२ कुमारः आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा	१
३ वसुश्रुत आत्रेयः	४
४ इष आत्रेयः	२
५ गय आत्रेयः	२
६ सुतंभर आत्रेयः	४
७ धरुण आंगिरसः	१
८ पूरुरात्रेयः	२
९ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः	१
१० वव्रिरात्रेयः	१
११ प्रयस्वन्त आत्रेयाः	१
१२ सस आत्रेयाः	१
१३ विश्वसामा आत्रेय	१
१४ द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः	१
१५ गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च	१
१६ वसूयव आत्रेयाः	२
१७ त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः, पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः भारतोऽश्वमेधश्च राजानः (अत्रिर्भौम इति केचित्)	१
१८ विश्ववारात्रेयी	१
१९ गौरवीति शाक्त्यः	१
२० बभ्रुरात्रेयः	१
२१ अवस्युरात्रेयः	२
२२ गातुरात्रेयः	१
२३ प्राजापत्यः संवरणः	२
२४ प्रभूवसुरांगिरसः	२
२५ भौमोऽत्रिः	१३
२६ काश्यपोऽवत्सारः	१
२७ सदापृण आत्रेयः	१
२८ प्रतिक्षत्र आत्रेयः	१
२९ प्रतिरथ आत्रेयः	१
३० प्रतिभानु रात्रेयः	१
३१ प्रतिप्रभ आत्रेयः	१
३२ स्वस्त्यात्रेयः	२
३३ श्यावाश्व आत्रेयः	१२
३४ श्रुतविदात्रेयः	१
३५ अर्चनाना आत्रेयः	२
३६ रातहव्य आत्रेयः	२
३७ यजत आत्रेयः	२
३८ उरुचक्रिरात्रेयः	२
३९ बाहुवृक्त आत्रेयः	२
४० पौर आत्रेयः	२
४१ सप्तवध्रिरात्रेयः	१
४२ सत्यश्रवा आत्रेयः	२
४३ एवयामरुदात्रेयः	१
	८७

ऋषिवार मंत्रसंख्या

ऋषि	मंत्र संख्या
१ बुधगविष्ठिरावात्रेयौ	१२
२ कुमारः आत्रेयः, वृशो वा जानः, उभौ वा	१२
३ वसुश्रुत आत्रेयः	४४
४ इष आत्रेयः	१७
५ गय आत्रेयः	१४
६ सुतंभर आत्रेय	२४
७ धरुण आंगिरसः	५
८ पूरुरात्रेयः	१०
९ द्वितो मृक्तवाहा आत्रेयः	५
१० वव्रिरात्रेयः	५
११ प्रयस्वन्त आत्रेयाः	४
१२ सस आत्रेयः	४
१३ विश्वसामा आत्रेयः	४
१४ द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः	४
१५ गौपायना लौपायना वा बन्धुः सुबन्धुर्विप्रबन्धुश्च	४
१६ वसूयव आत्रेयाः	१८
१७ त्रैवृष्णस्त्र्यरुणः पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः भारतोऽश्वमेधश्च राजानः (अत्रिर्भौम इति केचित्)	६
१८ विश्ववारात्रेयी	६
१९ गौरवीति शाक्त्यः	१५
२० बभ्रुरात्रेयः	१५
२१ अवस्युरात्रेयः	२२
२२ गातुरात्रेयः	१२
२३ प्राजापत्यः संवरणः	१९
२४ प्रभूवसुरांगिरसः	१४
२५ भौमोऽत्रिः	११६
२६ काश्यपोऽवत्सारः	१५
२७ सदापृण आत्रेयः	११
२८ प्रतिक्षत्र आत्रेयः	८
२९ प्रतिरथ आत्रेयः	७
३० प्रतिभानुरात्रेयः	५
३१ प्रतिप्रभरात्रेयः	५
३२ स्वस्त्यात्रेयः	२०
३३ श्यावाश्व आत्रेयः	१३२
३४ श्रुतविदात्रेयः	९
३५ अर्चनाना आत्रेयः	१४
३६ रातहव्य आत्रेयः	१२
३७ यजत आत्रेयः	१०
३८ उरुचक्रिरात्रेयः	८
३९ बाहुवृक्त आत्रेयः	६
४० पौर आत्रेयः	२०
४१ सप्तवध्रिरात्रेयः	९
४२ सत्यश्रवा आत्रेयः	१६
४३ एवयामरुदात्रेयः	९
	७२७

देवतावार मंत्रसंख्या

देवता	मंत्रसंख्या
१ अग्निः	१८४
२ विश्वेदेवाः	१२०
३ मरुतः	११८
४ इन्द्रः	१०२
५ मित्रावरुणौ	५९
६ अश्विनौ	४८
७ उषाः	१६
८ सविता	१४
९ आप्रीसूक्त	११
१० पर्जन्यः	१०
११ वरुणः	८
१२ इन्द्राग्नी	७
१३ ऋणंचयेन्द्रौ	४
१४ अत्रिः	४
१५ तरन्तमहिषी शशीयसी	४
१६ दार्भ्यो रथवीतिः	३
१७ पृथिवी	३
१८ इन्द्रवायू	३
१९ देवपत्न्यः	२
२० वैददश्विः पुरुमीळ्हः	१
२१ वैददश्विस्तरन्तः	१
२२ इन्द्राकुत्सौ	१
२३ सूर्यः	१
२४ मरुद्रुद्रविष्णवः	१
२५ रुद्रः	१
२६ वायुः	१
	७२७

इस पंचम मंडलमें भी अनेक विचारणीय और आचरणीय बातें ऋषियोंने लिखी हैं, जिनका विचार हम अब करेंगे।

मंत्रोंकी रक्षा

वेदोंकी एक दूसरी संज्ञा श्रुति भी है। इनकी संज्ञा श्रुति इसलिए पडी कि इन मंत्रोंको शिष्यवर्ग अपने गुरुसे सुनता था और सुनकर कण्ठस्थ कर लेता है। इस प्रकार श्रवण करके सुननेके कारण वेदोंकी संज्ञा श्रुति हुई। इस प्रकार ब्राह्मणवर्गने इन वेदमंत्रोंको कण्ठस्थ करके इन मंत्रोंकी रक्षा की। इस बातका उल्लेख निम्न मंत्रभागमें है।

१ आसन् उक्था पान्ति— (१४२) ब्राह्मण मुखसे कण्ठस्थ करके मंत्रोंकी रक्षा करते हैं। " ब्राह्मणोंने इन वेदोंको कण्ठस्थ करके वेदोंमें मिलावटका स्पर्श नहीं होने दिया। यह ब्राह्मणोंका हम पर महान् उपकार था। यह ब्राह्मणोंकी ही महिमा थी कि हमें आज भी वेदोंका वही शुद्ध स्वरूप प्राप्त हुआ, जो आजसे हजारों और लाखों साल पहले था। इन वेदमंत्रोंमें ऐसा तत्त्वज्ञान भरा हुआ है कि जो सर्वत्र प्रसिद्ध है—

२ आसां अग्रिमा समुद्रं अवतस्थे— (३७४) इन ऋचाओंमें जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह समुद्रकी सीमा तक जाकर प्रसिद्ध होती है। " योंतो सभी ऋचायें प्रसिद्ध होने योग्य हैं, पर जो श्रेष्ठतम ऋचा है, वह सर्वत्र फैलती है। ऋग्वेदके दसवें मंडलका १२९ वां सूक्त, जो नासदीयसूक्तके नामसे प्रसिद्ध है, विदेशोंमें बहुत आकर्षक प्रमाणित हुआ। सभी देशी और विदेशी विद्वानोंने इस सूक्तकी मुक्तकंठसे सराहना की है। इसी प्रकार वे भी ऋचायें, जिनमें देवोंकी स्तुतियां की गई हैं, या उनका गुणगान किया गया है, सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इन ऋचाओंमें देवोंकी महिमा गाई गई है।

अग्निकी महिमा

१ अस्मै अमृतं ददानः अनिन्द्राः मां किं कृणवन् — (१५) इस अग्निको मैंने अमृततुल्य हवि प्रदान की है, अतः इस इन्द्रको न माननेवाले मेरा क्या करेंगे ? " जो तेजस्वीरूप प्रभुकी प्रार्थना करता है, और उसकी सहायता प्राप्त करता है, उस आस्तिक मनुष्यकी नास्तिक कुछ भी हानि नहीं कर सकते। अपने भक्तोंकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। उन्हें भगवान् तेज और समृद्धि प्रदान करते हैं—

२ सुदृशः श्रिया पुरुदधानाः अमृत सपन्त— (२८) उत्तम तेजस्वी लोग समृद्धिके कारण और अधिक तेज प्राप्त कर अमृत पाते हैं। अग्निरूप प्रभुकी जो उपासना करता है, वह समृद्धि और तेज प्राप्त करके अमर होता है।

३ त्वत् पूर्वः यजीयान् न, परः काव्यैः न— (२९) इस अग्निके पहले न कोई स्तुतिके योग्य था और न आगे होगा। यह अग्नि ही सदासे पूज्य रहा है। अग्नि जैसा पूज्य न कोई पहले थे हो न आगे होगा ही। यह अग्नि तो " पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यः, नूतनैः उत " (ऋग्वेद) प्राचीन ऋषियोंके द्वारा भी स्तुत्य था और नवीनोंके द्वारा भी स्तुत्य है। अतः—

४ यस्या अतिथिः भवासि, सः मर्तान् वनवत्— (२९) जो इस अग्निकी अतिथिके समान पूजा करता है, वह पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त होता है। " जिस प्रकार मनुष्य घरमें आए हुए अतिथिकी हर तरहसे पूजा करता है, उसी तरह जो मनुष्य इस अग्निकी पूजा करता है, उसे यह अग्नि पुत्रपौत्रादिकोंसे युक्त करता है, उसे यह अग्नि हर तरहसे समृद्ध करता है। इसलिए—

५ वयं देवेषु सुकृतः स्याम— (४४) हम देवोंमें उत्तम कर्म करनेवाले हों। देवोंके विषयमें हम सदा उत्तम विचार रखें। उनकी हम सदा पूजा एवं सेवा करते रहें। हम इन देवोंसे सम्पत्ति प्राप्त करके उनके प्रति कभी भी कृतघ्न न हों। क्योंकि—

६ वृद्धाः उग्रस्य शवसः न ईरयन्ति ह्वरः सश्चिरे— (१५०) जो अग्निकी कृपासे समृद्ध होकर भी इसके क्रोधसे नहीं डरते, वे नष्ट हो जाते हैं। कृतघ्नता एक बडा भारी दुर्गुण है। जो अपने ऊपर किए गए उपकारोंको भूल जाता है, वह बडा दुष्ट मनुष्य होता है। उसी तरह जो अग्नि, राजा, ज्ञानी या प्रभुसे हर तरहकी समृद्धि प्राप्त करके उनके उपकारोंको नहीं मानता, वह नष्ट हो जाता है।

इन्द्रकी शक्ति

१ जनुषा वीर्येण एता भूरि विश्वा चकृवान्— (२१२) इन्द्रने जन्मते ही अपने बलसे इस सारे विश्वको बनाया।

२ युधये एकः चित् भूयसः वेवीत्— (२१७) युद्धमें अकेले होते हुए भी इन्द्रने अनेकों शत्रुओंको नष्ट किया।

×

३ त्वत् वस्यः अन्यत् नहीं अस्ति— (२३०) इस इन्द्रसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

४ यः अस्य तविषीं अचुक्रुधत्, विश्वे पुरुजनः दुर्गे आभ्रियते— (२७०) जो इसके सामर्थ्यको क्रोधित करता है, उन सब शत्रुओंको यह किलेमें कैद करके रखता है।

इन्द्र इस प्रकार स्वयं महापराक्रमी है, वह अपने शत्रुओंका हर तरहसे नाश कर देता है। वह दासप्रथाका भी कट्टर विरोधी है, इसीलिए—

५ समत्सु दासस्य नाम चित् ततक्ष— (२५७) इन्द्रने युद्धोंमें दासका नाम भी हटा दिया।

६ भीषणः आर्यः दासं यथावशं नयति— (२६९) अतिपराक्रमी आर्य इन्द्र दासको अपने वशमें रखता है।

वह इन्द्र जब अपना भयंकर रूप धारण करता है तब उसके रूपको देखकर उसके शत्रु रोने लगते हैं, उस भयंकर रूपमें वह इन्द्र रुद्र बन जाता है। वह रुद्र

१ सु-इषुः सु-धन्वा— (३४१) उत्तम बाण और उत्तम धनुष धारण करता है।

२ विश्वस्य भेषजस्य क्षयति— (३४१) यह रुद्र सभी तरहकी ओषधियोंका स्थान है।

३ एषां पिता रुद्रः युवा सु-अपाः— (५३२) इन मरुतोंका पालनकर्ता रुद्र तरुण और उत्तम कर्म करनेवाला है।

इस प्रकार इन्द्र और रुद्रके वर्णनके रूपमें वेदने एक वीर शासकका वर्णन किया है। वीरशासक अपने राष्ट्रमें दासप्रथाको सर्वथा नष्ट कर दे। जो दुष्ट दासोंका व्यापार करके इस प्रथाको कायम रखना चाहते हों, उन दुष्टोंको भी यह शासक नष्ट कर दे। इसके अलावा उत्तम राजाका राज्य किस प्रकार हो सकता है, इसे वेदमें इस प्रकार बताया गया है—

उत्तम राजाका राज्य

१ यस्मिन् इन्द्रः सोमं पिबति, स राजा न व्यथते— (२९०) जिस राजाके राज्यमें इन्द्र सोम पीता है, वह राजा कभी दुःखी नहीं होता।

२ सत्वनैः अजति— (२९०) वह राजा बलशाली होकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है।

३ सुभगः नाम पुष्यन् क्षितीः क्षेति— (२९०) वह राजा अपने यशसे अपना नाम बढाता हुआ प्रजाका कल्याण करता है।

४ योगे क्षेमे अभि भवाति— (२९१) वह राजा अप्राप्त धनको प्राप्त करने और प्राप्त धनके रक्षणमें समर्थ होता है।

५ अर्यम्णः मित्रः सखायः सदं इत् भ्रातरः अरणः — (७११) वह राजा मित्रके समान हितकारी तथा हमेशा भाईके समान प्रेम करनेवाला हो।

इन उत्तम गुणोंसे युक्त जो राजा होता है, उसी राजाका राज्य भी उत्तम होता है। ऐसे राजाको प्रजायें अपना नेता चुनती हैं। राजाका प्रजाके द्वारा चुने जानेका उल्लेख वेदमें है। प्रजाओंके द्वारा राजाको चुने जानेकी पद्धति ही आजके शब्दोंमें " प्रजातंत्र " कहाता है। इसी प्रजातंत्रके लिए ऋग्वेदमें " बहुपाय्य स्वराज्य " शब्द आया है।

६ व्यचिष्ठे बहुपाय्ये स्वराज्ये यतेमहि— (५८९) अत्यन्त विस्तृत और बहुतों द्वारा पालने योग्य अपने राज्यमें हम सब अपनी उन्नतिके लिए प्रयत्न करते रहें।

समुदायकी उपासना

मनुष्य व्यक्तिकी उपासना न करके यदि समाजकी उपासना करे, तो वह बहुत श्रेष्ठ हो सकता है। इस बारेमें वेदका कथन है—

१ यः ईं गणं भजते, सः वरा उभा प्रति एति— (३७७) जो मनुष्य इस समुदायकी उपासना करता है, वह अभ्युदय और निःश्रेयस इन दोनोंमें प्रगति करता है।

यह समुदायको उपासना संघटन या संगतिकरणसे ही मनुष्यकी हर तरहसे उन्नति होती है। वैदिक परिभाषामें इसी संगतिकरणके कार्यको " यज्ञ " कहा गया है। इस यज्ञसे तेजकी प्राप्ति होती है।

यज्ञसे तेजःप्राप्ति

१ येषु चित्रा दीधितिः— (१४२) यज्ञशील मनुष्योंमें अनेक तरहके तेज होते है।

२ यजमानस्य सुतंभरः सत्पतिः— (३७८) यह यज्ञ यजमानके पुत्रका भरणपोषण करनेवाला, सज्जनोंका पालक तथा स्वामी है।

३ विश्वासां धियां ऊधः—(३७८) यह यज्ञ सभी तरहके कर्मोंका स्रोत है।

सभी उत्तम कर्म इस यज्ञमें सम्मिलित हो जाते हैं, इसी लिए " यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म " कहकर यज्ञको सर्वश्रेष्ठ कर्म कहा है। एक दूसरे वचनसे यज्ञको विष्णु अर्थात् परमात्माका रूप बताया गया है, (यज्ञो वै विष्णुः) इस प्रकार यज्ञ परमात्माकी उपासनाका भी एक साधन है। परमात्माकी उपासनासे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें ऋग्वेदका कथन है—

१ ते सखायः अशिवाः सन्तः शिवासः अभूवन्- (११०) इस अग्निके मित्र भी जब इस अग्निकी उपासना करना भूल गए, तब वे दुःखी और दुर्भाग्यशाली हो गए, पर फिर अग्निकी उपासना करनेसे उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ।

२ जने सुमतिं— (२५४) उपासना करनेसे इन्द्र मनुष्यमें उत्तम बुद्धि उत्पन्न करता है।

३ देवस्य महिमानं प्रयाणं अन्ये देवाः अनु ययुः, ओजसा— (६८०) इस सविता देवके महिमापूर्ण मार्गका दूसरे देव अनुसरण करते हैं और तेजसे युक्त होते हैं।

सत्य नियमोंका पालन

मनुष्य व्रत और सत्यनियमोंका पालन करे। उन्नतिके लिए व्रत और सत्यनियमोंका पालन अत्यन्त आवश्यक है। इस विषयमें वेदका कहना है—

१ विपश्चिता धर्मणा व्रता रक्षेथे— (५७०) बुद्धिमान् मनुष्य धर्मपूर्वक अपने व्रत नियमोंका पालन करते हैं।

२ ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजते— (५७०) मनुष्य अपने सत्यनियमोंके कारण ही सारे संसारमें सुशोभित होता है।

३ ध्रुवाणि व्रतानि अमृताः देवाः न मिनन्ति— (६०३) अटल नियमोंको अमरदेव भी नहीं तोड सकते।

ऐसे व्रत और सत्यनियमोंका जो पालन करता है, वह मित्र और वरुणदेवका प्रिय बनता है। उसके प्रति मित्रावरुण उदार होते हैं—

मित्रावरुणकी उदारता

१ मित्रः अंहश्चिदपि उरुक्षयाय गातुं वनते— यह मित्र देव पापीको भी महान संरक्षणका उपाय बताता है।

२ प्रतूर्वतः विधतः अस्य मित्रस्य सुमतिः अस्ति — (५८१) हिंसा करनेवाले दुष्ट उपासकके बारेमें भी इस मित्र देवकी उत्तम बुद्धि रहती है।

३ वां अत्रः पुरूरुणा चित्— (६०४) इन मित्रावरुणकी कृपा निश्चयसे अपरम्पार है।

इस प्रकार जो उत्तम आचरण करते हैं, उनसे सभी देव मैत्री करते हैं और उन्हें उन्नतिका मार्ग दिखाते हैं, पर जो दुष्टाचरण करते हैं, उनका स्वयं नाश हो जाता है—

दुष्टाचरणसे नाश

१ ऋजूयते वृजनानि ब्रुवन्तः स्वयं अधूर्षन्त— (११०) जो सत्याचरणी सज्जनोंसे दुष्ट वचन बोलते हैं, उन वचनोंसे वे स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

२ यः कवासखः ततनुष्टिं तनूशुभ्रं अप ऊहति— (२६६) जो दुष्टोंका मित्र है, उस ढोंगी और स्वार्थीका इन्द्र तिरस्कार करता है।

३ पणेः भोजनं मुषे अजति— (२७०) दुष्टोंका धन लूटनेके लिए यह वीर आगे बढता है।

४ अप व्रतान् प्रसवे वावृधानान् ब्रह्मद्विषः सूर्यात् यावयस्व— (३३९) दुष्ट कर्म करनेवाले, दुष्ट मार्गसे संसारमें वृद्धिको प्राप्त होनेवाले तथा ईश्वरसे द्वेष करनेवाले नास्तिकोंको सूर्यसे दूर रख।

५ यः देववीतौ रक्षसः ओहते, तं नियात— (३४०) जो यज्ञमें राक्षसोंको बुलाता है, उसे मार डालो।

६ यः वः शशमानस्य निन्दात्, सिष्विदानः कामान् तुच्छ्यान् करते— (३४०) जो मनुष्य तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी निन्दा करता है, वह अपनी कामनाओंको तुच्छ करता है।

७ क्षत्रं अविहुतं असुर्यं— (५८५) इन देवोंका बल सज्जनोंके लिए कुटिलता रहित पर दुष्टोंके लिए विनाशक है।

जो मनुष्य दूसरोंकी निन्दा करता है, वह स्वयं पहले लोगोंकी नजरोंसे गिर जाता है। दुष्ट स्वयं अपने दुष्ट आचरण से नष्ट हो जाता है ऐसे दुष्टोंकी सहायता देवगण भी नहीं करते। इसीलिए मनुष्य सदा दुष्टाचरणसे दूर रहे॥

८ मायाभिः परः नाम ऋते आस— (३६७) जो छलकपट आदि असत्य कामोंसे दूर रहते हैं, उन्हें सत्य-लोककी प्राप्ति होती है।

जो सदा सत्यका पालन करता हुआ असत्य कामोंसे दूर रहता है, उनका मन सदा उत्तम रहता है और उत्तम मनवालेकी हमेशा उन्नति होती है।

उत्तम मनवालेकी उन्नति

१ सुमनाः ऊर्ध्वः अस्थात्— (२) उत्तम मनवाला मनुष्य हमेशा उन्नत होता है।

२ महान् देवः तमसा निरमोचि— (२) वही मनुष्य महान् देव बनकर अज्ञानान्धकारसे छूट जाता है। जो मनुष्य उत्तम मनवाला होता है, वह मनुष्य ही देव बनता है। देवका अर्थ है प्रकाशक, तेजस्वी। देव बननेके बाद मनुष्यके पास कभी भी अन्धकार नहीं आता।

३ जातः मनः स्थिरं चकृषे— (२१७) उत्पन्न होते ही इन्द्रने अपने मनको स्थिर किया।

४ मे मनः अमते भिया वेपते— (२८३) मेरा मन निर्बुद्धिताके कारण भयसे कांपता है।

५ महे सौमनसाय असुरं देवं यक्ष्व— (३४१) अपने महान् मनका उत्तम बनानेके लिए बलवान् देवकी पूजा करनी चाहिए।

६ यादृश्मिन् धायि, तं अपस्यया विदत्—(३७३) मनुष्य जिस पदार्थ या ऐश्वर्यको प्राप्त करनेमें अपना मन लगा देता है, उसे अपने पुरुषार्थसे प्राप्त कर ही लेता है।

मनुष्यके शरीरमें मन एक ऐसा तत्त्व है, जो बहुत ही शक्तिशाली और अद्भुत है। जो मनुष्य अपने मनको वशमें कर लेता है, उसे यह मन देव बना देता है, पर जो इसे वशमें नहीं कर पाता, उसे यह पतित और दुष्ट बना देता है। मनको वशमें करनेके साधन हैं अभ्यास और वैराग्य। बार बार यह मन भागता है, अतः बार बार पकडकर उसी स्थान पर लानेसे मनकी चंचलता समाप्त होकर उसमें स्थिरता आ जाती है। मनमें स्थिरता आनेके साथ ही मनुष्यकी उन्नति होनी शुरु हो जाती है। अतः उन्नतिके लिए प्रथम मनको स्थिर करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

परिश्रमका महत्त्व

१ यः स्वयं वहते सः अरं करत्— (३७१) जो मनुष्य स्वयं परिश्रम उठाता है, वही अपने कामको पूरी तरह सिद्ध करता है। उन्नति करनेका एक और साधन है, परिश्रमशीलता। जो मनुष्य दूसरोंके भरोसे न रहकर स्वयं कष्ट उठाता है और प्रयत्न करता है, उसका काम हमेशा सिद्ध होता है।

२ इमं जनं यतथ, सं नयथः— (५८१) वे देव जिसे उन्नत करना चाहते हैं, उसे प्रयत्नशील बना देते हैं।

३ कस्य यक्षं न भुजेम तनूभिः आ—(६०७) हम किसी दूसरेके अन्नका उपभोग न करें, अपितु अपने ही परिश्रमसे कमाये गए अन्नको ही भोगें।

४ उभे अहनी अप्रयुच्छन् सु आधीः पुरः एति— (६९०) जो मनुष्य दिन और रात प्रमाद न करते हुए उत्तम कर्म करता है, वही आगे बढता है।

देवगण जिसे उन्नत करना चाहते हैं, उसे प्रयत्नशील बना देते हैं। परिश्रमके द्वारा ही मनुष्य उन्नति करता है। आलसी मनुष्य कभी भी उन्नति नहीं कर सकता। दूसरोंके भरोसे रहना बडी भारी दुर्गतिका स्वरूप है। मनुष्य कभी भी दूसरेके अन्न पर अवलम्बित न रहे, अपितु अपने ही परि-श्रमसे कमाये गए अन्न पर स्वयं तथा परिवारका पालन-पोषण करे। परिश्रमके साथ ही यदि मनुष्यमें उत्तम बुद्धि भी हो तो उसका काम कभी भी असिद्ध नहीं होता, इस-लिए बुद्धिको भी पवित्र बनानी चाहिए।

१ यत्र पूतबन्धनी मतिः विद्यते, अत्र श्रवणस्य हार्दिः न रेजते— (१७४) जहां पवित्रतासे बंधी हुई बुद्धि विद्यमान होती है, वहां उत्तम कर्म करनेवालेके हृदयकी अभिलाषायें कभी व्यर्थ नहीं जातीं।

कल्याणका मार्ग

१ अतिथीन्, नॄन्, पत्नीः दशस्यत— (४१९) अतिथियोंकी, विद्वानोंकी और उनकी पत्नियोंकी सेवा करनी चाहिए। अतिथि और विद्वानोंकी सेवा करनेसे मनुष्य कल्याण प्राप्त करता है।

२ धर्मणा व्रतेन ध्रुवक्षेमः— (६१२) धर्मपूर्वक कार्य करनेसे अटल और शाश्वत सुख और कल्याण प्राप्त होता है।

३ धर्मभिः मित्रः भवति— (६१२) धर्मपूर्वक व्यवहार करनेसे मनुष्य लोगोंका मित्र होता है।

स्त्री कैसी हो ?

१ सरमा ऋतस्य यथा गाः विदद्— (३१८) प्रगति करनेवाली स्त्री ऋत अर्थात् सच्चे और नैतिक मार्गसे चलने पर ही लोगोंकी प्रशंसा प्राप्त करती है।

२ अदेवत्रात् अराधसः पुंसः वस्यसी शशीयसी भवति— (५४९) देवको न माननेवाले और धनहीन पुरुषकी अपेक्षा धनयुक्त स्त्री अधिक प्रशंनीय होती है।

३ या जसुरिं तृष्यन्तं कामिनं वि जानाति, क्षेत्रा मनः कृणुते— (५४१) जो स्त्री दुःखी मनुष्यके, प्यासे और धनके अभिलाषी मनुष्यके भावोंको जानती है, तथा जो देवपूजामें अपने मनको लगाती है, वही स्त्री प्रशंसाके योग्य होती है।

इस प्रकार इस पंचम मण्डलमें अनेक कल्याणकारी और व्यावहारिक उपदेश दिए गए हैं। मनुष्य इन उपदेशों पर आचरण करके अपनी उन्नति सिद्ध कर सकता है।

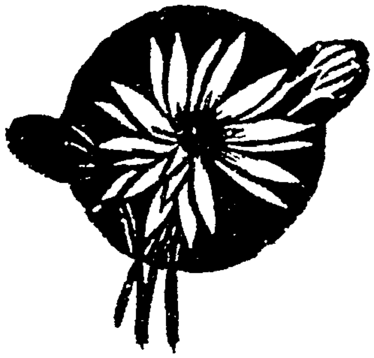

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध – भाष्य

पञ्चम मण्डल

मंत्रवर्णानुक्रम–सूची

अंसेषु व ऋष्टयः	४८०
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते	१२६
अक्रविहस्ता सुकृते	५६०
अग्न इन्द्र वरुण मित्र	३९३
अग्न ओजिष्ठमा भर	९३
अग्निमच्छा देवयतां	४
अग्निमीळेन्यं कविं	१२२
अग्निर्जागार तमृचः	३८०
अग्निर्जुषत नो गिरो	११४
अग्निर्जातो अरोचत	१२१
अग्निर्ददाति सत्पतिं	१७४
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निः	१७२
अग्निर्नो यज्ञमुप वेतु	१०३
अग्निर्हि वाजिनं विशे	६१
अग्निर्होता दास्वतः	८७
अग्निर्होता न्यसीदद्	६
अग्निश्च यन्मरुतो	५३४
अग्निस्तुविश्रवस्तमं	१७३
अग्निं घृतेन वावृधुः	१२३
अग्निं तं मन्ये यो वसुः	५९
अग्निं स्तोमेन बोधय	११८
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न	१६०
अग्ने त्वं नो अन्तम	१६५
अग्ने नेमिरराँ इव	११७
अग्ने पावक रोचिषा	१७८
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिः	५३५
अग्ने विश्वेभिरा गहि	१८१
अग्ने शर्ध महते	१९५
अग्ने शर्धन्तमा गणं	४९५
अग्ने सहन्तमा भर	१६१
अग्ने सुतस्य पीतये	४२२
अग्नेः स्तोमं मनामहे	११३
अच्छ ऋषे मारुतं	४५०
अच्छा मही बृहती	३५६
अच्छा वद तवसं	६९२
अच्छा वो अग्निमवसे	१६९
अजातशत्रुमजरा	२६४
अजिरासस्तदप ईयमाना	४०१
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास	५३२
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो	३५५
अतीयाम निदस्तिरः	४६७
अतो न आ नॄनतिथीन्	४१९
अत्यं हविः सचते	३६८
अत्यायातमश्विना	६३५
अत्रिर्यद् वामवरोहन्	६५६
अधारयतं पृथिवी	५५७
अदब्धया दयते वार्याणि	४१४
अदर्दरुत्समसृजो वि	२४२
अद्या नो देव सवितः	६८६
अद्वेषो नो मरुतो	७२६
अध क्रत्वा मघवन्	२०३
अध स्म यस्यार्चयः	९०
अधा नरो न्योहते	४४७
अधा हि काव्यो युवं	५८७
अधा ह्यग्न एषां	१३२
अध्वर्यवश्चकृवांसो	३५१
अनवस्ते रथमश्वाय	२३२
अनस्वन्ता सत्पतिः	१८७
अनागसो अदितये	६८८
अनु यदीं मरुतो	२००
अनु श्रुताममतिं	५५९
अनुनोदत्र हस्तयतो	३८७
अपारो वो महिमा	७२४
अबोधि होता यजथाय	२
अबोध्यग्निः समिधा	१
अभि क्रन्द स्तनय	६९८
अभि न इळा यूथस्य	३२९
अभि ये त्वा विभावरि	६६५
अभि वो अर्चे पोष्यावतो	३१८
अभूदुषा रुशत्पशुः	६४२
अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते	१४४
अभ्राजि शर्धो मरुतो	४७५
अमादेषां भियसा भूमिः	५२१
अयं सोमश्चमू सुतो	४२५

अरा इवेदचरमा अहेव	५१६
अर्चन्तस्त्वा हवामहे	११२
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं	७११
अर्हन्तो ये सुदानवो	४४१
अवर्पीवर्षमुदु षू	७०१
अव स्पृधि पितरं	३३
अव स्म यस्य वेषणे	७३
अवोचाम कवये	१२
अवाचचक्षं पदमस्य	२१५
अश्वा इवेदरुषासः	५२४
अश्विना यद्ध कर्हिचित्	६३२
अश्विना वाजिनीवसू	६५५
अश्विनावेह गच्छतं	६४०, ६५२
अश्विना हरिणाविव	६५४
असंमृष्टो जायसे	१०२
असावि ते जुजुषाणाय	३५३
अस्ति हि वामिह	६२९
अस्मा इत् काव्यं वच	३०१
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य	३८३
अस्माकमग्ने अध्वरं	४४
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं	२७९
अस्माकमिन्द्रे नो	२८०
अस्मिन् यज्ञ अदाभ्या	६४१
अस्य क्रत्वा विचेतसो	१३७
अस्य वासा उ अर्चिषा	१३६
अस्य स्तोमे मघोनः	१३१
अस्य हि स्वयशस्तरं	१३५,६८४
आ गावभिरहन्येभिः	४०९
आ चिकितान सुक्रतू	५८४
आ जुहोत दुवस्यत	१९८
आ ते अग्न इधीमहि	६२
आ ते अग्न ऋचा	६३
आ ते ऽवो वरेण्यं	२७५
आ ते हनू हरिवः	२८२
आ दैव्यानि पार्थिवानि	३२४
आद्य रथं भानुमो	११
आद् रोदसी वितरं	२०२
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो	३६१
आ धेनवः पयसा	३४९
आ नामभिर्मरुतो	३५८
आ नो गन्तं रिशादसा	६०८
आ नो दिवो बृहतः	३५९
आ नो महीमरमतिं	३५४
आ नो मित्र सुदीतिभिः	५७५
आ नो रत्नानि बिभ्रतो	६३६
आपथयो विपथयो	४४६
आ प्र द्रव हरिवो मा	२३०
आ भात्यग्निरुषसां	६४३
आभूषेण्यं वो मरुतो	४८८
आ मित्रे वरुणे वयं	६११
आ यज्ञैर्देव मर्त्य	१३४
आ यद् योनिं हिरण्ययं	५९१
आ यद् वां सूर्या रथं	६१८
आ यद् वामीयचक्षसा	५८९
आ यस्ते सर्पिरासुते	७७
आयं जना अभिचक्षे	२४०
आ यं नरः सुदानवो	४५९
आ यः सोमेन जठरम्	२६५
आ यात मरुतो दिव	४६१
आ याह्यद्रिभिः सुतं	३०२
आ ये तस्थुः पृषतीषु	५२९
आ वामश्वासः सुयुजो	५५८
आ वां नरा मनोयुजो	६३९
आ वां येष्ठाश्विना	३१३
आ विश्वदेवं सत्पतिं	६८९
आ वेधसं नीलपृष्ठं	३६०
आ वां रथो रथानां	६३१
आ वो यन्तूदवाहासो	५१४
आ रुक्मैरा युधा नर	४४२
आ रुद्रास इन्द्रवन्तः	५०४
आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो	१४६
आ सुष्टुती नमसा	३५०
आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः	३९०
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः	३८९
इति चिन्नु प्रजायै	३२७
इति चिन्मन्युमध्रिजः	७८
इत्था यथा त ऊतये	१५२
इदं वपुर्निवचनं जनासः	४०४
इदं हि वां प्रदिवि	६४६
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा	२१३
इन्द्रश्च वायवेषां	४२७
इन्द्राकुत्सा वहमाना	२३७
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादिति	३९४
इन्द्राग्नी यमवथ	७१३
इन्द्राग्नी शतदाव्नी	१९२
इन्द्रो रथाय प्रवतं	२२९
इमा ब्रह्माणि वर्धना	६२३
इमामू नु कवितमस्य	७१०
इमामू ष्वासुरस्य	७०९
इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्	३६
इरावतीर्वरुण धेनवो	६०१
इह त्या पुरुभूतमा	६१५
इळा सरस्वती मही	५५
ईर्मान्यद् वपुषे	६१६
ईळितो अग्न आवह	५०
ईळे अग्निं स्ववसं	५२८
उक्षा समुद्रो अरुषः	४०२
उग्रो वां ककुहो ययिः	६२०
उच्छन्त्यां मे यजता	५७७
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीः	३९९
उत घा नेमो अस्तुतः	५४३
उत त्यन्नो मारुतं	३९६
उत त्ये नः पर्वतासः	३९७
उत त्ये मा ध्वन्यस्य	२६३
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य	२६१
उत त्ये मा मारुताश्वस्य	२६२
उत त्वा स्त्री शशीयसी	५४१
उत नो गोपतीरिव	६६९
उत नो विष्णुरुत	३९५
उत ब्रह्माणो मरुतो	२०१
उत मेऽरपद् युवतिः	५४४
उत मे वोचतादिति	५५३
उत यासि सवितः	६८१
उत स्म दुर्गृभीयसे	८९
उत स्म ते परुष्ण्याम्	४४५

उत स्म यं शिशुं ८८
उत स्य वाज्यरुषः ५०१
उत स्वानासो दिवि २२
उता यातं संगवे ६४५
उतेशिषे प्रसवस्य ६८२
उतो नो अस्य कस्य २९५
उत् तिष्ठ नूनमेषां ४९९
उदीरय कवितमं ३३३
उदीरयथा मरुतः ४८९
उद्यत् सहः सहस २३१
उद् यदिन्द्रो महते २४८
उनत्ति भूमिं पृथिवीं ७०८
उप नः सुतमा गतं ६१०
उप व एषे वन्द्येभिः ३१७
उप स्तुहि प्रथमं ३३७
उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो ६७
उरोष्ट इन्द्र राधसो २९२
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ३४७,३६४
उशना यत् सहस्यैः २०७
ऊर्णम्रदा वि प्रथस्व ५१
ऋजीषी वज्री वृषभः ३०५
ऋतं चिकित्व ऋतं १०७
ऋतधीतय आ गत ४२३
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं ५९८
ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो ५६४
ऋतेन ऋतं धरुणं १२५
ऋतेन ऋतमपिहितं ५५५
ऋष्टयो वो मरुतो ५०९
एकं नु त्वा सत्पतिं २५२
एतं ते स्तोमं तुविजात २३
एतं मे स्तोममूर्म्ये ५५२
एता धियं कृणवामा ३८६
एतावद् वेदुषस्त्व ६७१
एता विश्वा चकृवाँ २१२
एतो न्वद्य सुध्यो ३८५
एदं मरुतो अश्विना १८६
एवा ते अग्ने सुमतिं १८९
एवा न इन्द्रोतिभिरव २६०
एवा हि त्वामृतुथा २५३
एवा अग्निमजुर्यमुः ६८
एवां अग्निं वसूयवः १७७
एवेन्द्राग्नीभ्यामहावि ७१८
एष क्षेति रथवीतिः ५५४
एष ग्रावेव जरिता २८४
एष ते देव नेता ४२१
एषः स्तोमो मारुतं ३४५
एषा गोभिररुणेभिः ६७४
एषा जनं दर्शता ६७३
एषा प्रतीची दुहिता ६७७
एषा व्येनी भवति ६७५
एषा शुभ्रा न तन्वो ६७६
ऐतान् रथेषु तस्थुषः ४५५
ऐषु घा वीरवद् ६६७
औच्छत् सा रात्री २२७
कथा दाशेम नमसा ३२६
कथा महे रुद्रियाय ३२१
कथो नु ते परि २११
कदु प्रियाय धामहे ४०७
कमेतं त्वं युवते १४
कया नो अग्न ऋतयन् १०८
कस्मा अद्य सुजाताय ४६५
कं याथः कं ह गच्छथः ६२६
कितवासो यद् रिरिपुः ७१२
कुत्रा चिद् यस्य ७०
कुमारं माता युवतिः १३
कुह त्या कुह नु श्रुता ६२५
कूष्ठो देवावश्विना ६२४
के ते अग्ने रिपवे १०९
के मे मर्यकं वि १७
के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा ५३६
को अस्य शुष्मं तविषी २५०
को नु वां मित्रावरुणो ३११
को नु वां मित्रास्तुतो ५९४
को वामद्य पुरूणाम् ६३०
को वेद जानमेषा ४५४
को वेद नूनमेषां ५४९
को वो महान्ति महताम् ५२३
क्रीळन् नो रश्म आ १४८
क्व वोऽश्वाः क्वाभीशवः ५३७
क्वस्य वीरः को अपश्यत् २१४
क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं १६
गन्तानो यज्ञं यज्ञियाः ७२७
गवामिव श्रियसे ५२२
गोमदश्वावद् रथवत् ५१०
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः ३०९
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत २८३
चतुः सहस्रं गव्यस्य २२८
चत्वार ईं बिभ्रति ४०३
चिकित्वन्मनसं त्वा १५९
चित्रा वा येषु दीधितिः १४२
छन्दः स्तुभः कुमन्यव ४४८
जघने चोद एषां ५३८
जनस्य गोपा अजनिष्ट १००
जनिष्ट हि जेन्यो ५
जुषस्वाग्न इळया ४०
जुष्टो दमूना अतिथिः ४१
जुहुरे वि चितयन्तो १४५
ज्यायांसमस्य यतुनस्य ३७३
तं त्वा घृतस्नवीमहे १७९
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः १६८
तं नाकमर्यो अगृभीत ४८१
तं नो अग्ने अभी ९२
तं प्रत्नथा पूर्वथा ३६६
तं वः शर्धं रथानां ४६३
त वः शर्धं रथेशुभं ५०३
त वो दीर्घायुशोचिषं १४१
तं हि शश्वन्त ईळते १२०
ततृदानाः सिन्धव ४६०
तत् सवितुर्वृणीमहे ६८३
तत् सु वां मित्रावरुणा ५५६
तदस्तु मित्रावरुणा ४०६
तदिन्नु ते करणं २३५
तदू षु वामेना कृतं ६१७
तदृत पृथिवि बृहत् ५८८
तद् वीर्यं वो मरुतो ४७४

तद् वो यामि द्रविणं ४८४
तन्नो अनर्वा सविता ४१५
तमग्ने पृतनाषहं १६९
तमध्वरेष्वीळते ११९
तमु नूनं तविषीमन्तं ५१२
तमु ष्टुहि यः स्विषुः ३४१
तयोरिदमवच्छवः ७१५
तव त्ये अग्ने अर्चयो ६५, ९७
तव द्युमन्तो अर्चयो १७६
तव श्रिया सुदृशो देव २८
तव श्रिये मरुतो २७
तवाहमग्न ऊतिभिः ९१
तवोतिभिः सचमाना ३३८
तां वो देवाः सुमति ३२८
ता अत्नत वयुनं ४०८
ता नः शक्तं पार्थिवस्य ५९७
ता बाहवा सुचेतुना ५७२
तामस्य रीतिं परशोरिव ४१०
ता वां सम्यगद्रुह्वाणा ६०५
ता वामियानोऽवसे ५८०
ता वामेषे रथानाम् ५८६, ७१६
ता वृधन्तावनु द्यून ७१७
ता हि क्षत्रमविह्रुतं ५८५
ता हि श्रेष्ठवर्चसा ५७९
तुजे नस्तने पर्वताः ३१९
तुभ्यं भरन्ति क्षितयो ९०
तुभ्येदमग्ने मधुमत्तमं १०४
तुभ्येदेते मरुतः २१९
तुविग्रीवो वृषभो २४
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास ५२५
ते ते देव नेतः ४१८
ते नो मित्रो वरुणो ३१२
ते नो वसूनि काम्या ५५१
तेभ्यो द्युम्नं बृहद् ६६८
ते म आहुर्य आययुः ४५६
ते रुद्रासः सुमखा ७२५
ते स्पन्द्रासो नोक्षणः ४३१
ते हि सत्या ऋतस्पृश ५९३
ते हि स्थिरस्य शवसः ४३८
त्यं चिदर्णं मधुपं २८९
त्यं चिदस्य क्रतुभिः २८६
त्यं चिदित्था कत्पयं २४६
त्यं चिदेषां स्वधया २४५
त्यस्य चिन्महतो २४४
त्री यच्छता महिषाणाम् २०६
त्री रोचना वरुण ६००
त्र्यर्यमा मनुषो १९९
त्वं तमिन्द्र मर्त्यं २७७
त्वं नो अग्ने अङ्गिरः ९९
त्वं नो अग्ने अद्भुत ९४
त्वं नो अग्न एषां ९५
त्वं हि मानुषे जने १५४
त्वमग्ने वरुणो जायसे २५
त्वमग्ने सप्रथा असि ११५
त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ ३५
त्वमपो यदवे तुर्वशाय २३६
त्वमर्यमा भवसि यत् २६
त्वमुत्सां ऋतुभिः २४३
त्वां विश्वे सजोषसो १५५
त्वामग्न ऋतायवः ७९
त्वामग्ने अङ्गिरसो १०५
त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं ८०
त्वामग्ने धर्णसिं ८२
त्वामग्ने पुरुरूपो ८३
त्वामग्ने प्रदिव ८५
त्वामग्ने मानुषीरीळते ८१
त्वामग्ने वसुपतिं ३७
त्वामग्ने वाजसातमं ११६
त्वामग्ने समिधानं ८४
त्वामग्ने हविष्मन्तो ८६
त्वामस्या व्युषि देव ३२
त्वामिद् वृत्रहन्तम २७८
त्वेषं गणं तवसं ५१३
दमूनसो अपसो ये ३४२
दश क्षिपो युञ्जते ३५२
दश मासाञ्छशयानः ६६१
दिवो नो वृष्टिं मरुतो [illegible]९७
दृळहा चिद् या ७०४
देव वो अद्य सवितार ४१२
देवं वो देवयज्यया १५६
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु ३९८
देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं ५२
देवो भगः सविता रायो ३३५
द्युतद्यामानं बृहतीम् ६७२
द्विताय मृक्तवाहसे १४०
धर्मणा मित्रावरुणा ५७०
धियं वो अप्सु दधिषे ३९१
धूनुथ द्यां पर्वतान् ५०६
न ते त इन्द्राभ्यस्मदृष्वा २५६
न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने २९
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं २६८
न पर्वता न नद्यो ४२१
नराशंसः सुषूदतीं ४९
नवग्वासः सुतसोमास २१०
नव यदस्य नवतिं २०४
नवा नो अग्न आ ६६
न संस्कृतं प्र मिमीतो ६४४
न स जीयते मरुतो ४७६
नियुत्वन्तो ग्रामजितो ४३७
नि ये रिणन्त्योजसा ४९८
नीचीनबारं वरुणः ७०७
नू त आभिरभिष्टिभिः २९६
नू न इद्धि वार्यं १३८
नू न एहि वार्यं १३३
नू नो अग्न ऊतये ९८
नू मन्वान एषा ४५१
न्यग्निं जातवेदसं १५८,१८४
न्यस्मै देवी स्वधितिः २५१
पदे पदे मे जरिमा नि ३२५
पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे २५९

परावीरास एतन	५३९
परो यत् त्वं परम	२१८
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो	५३०
पात नो रुद्रा पायुभिः	६०६
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः	५०८
पुरू यत् त इन्द्र	२५७
पुरूणा चित्	६०४
पुष्यात् क्षेमे अभि योगे	२९१
पौरं चिद्ध्युदप्रुतं	६२७
प्र च्यवानाज्जुजुरुषो	६२८
प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु	७
प्र तव्यसो नमउक्तिं	३५७
प्रति प्रयाणमसुरस्य	४१३
प्रति प्रियतमं रथं	६३४
प्रति मे स्तोममदितिः	३३२
प्र ते पूर्वाणि करणानि	२३४
प्र नु वयं सुते या ते	२१६
प्रथिष्ट यामन् पृथिवी	५१८
प्र यज्ञ एत्वानुषक्	१८५
प्रयज्यवो मरुतो	४८५
प्र युञ्जती दिव एति	४००
प्र ये जाता महिना	७२०
प्र ये दिवो बृहतः	७२१
प्र ये मे बन्ध्वेषे	४५२
प्र ये वसुभ्य ईवदा	४१६
प्र वः स्पळक्रन् त्सुवितायं	५२०
प्र व एते सुयुजो	३६९
प्रवत्वतीयं पृथिवी	४७८
प्र वाता वान्ति पतयन्ति	६९५
प्र विश्वसामन्नत्रिवत्	१५७
प्र वेधसे कवये	१२४
प्र वो मरुतस्तविषा	४७१
प्र वो महे मतयो	७१९
प्र वो मित्राय गायत	५९५
प्र वो रयिं युक्ताश्वं	३१५
प्र वो वायुं रथयुजं	३१६
प्र शंतमा वरुणं दीधिती	३३१
प्र शर्धाय मारुताय	४७०
प्र श्यावाश्व धृष्णुया	४३७
प्र सक्षणो दिव्यः	३१४
प्र सद्यो अग्ने अति	९
प्र सम्राजे बृहदर्चा	७०५
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं	३४४
प्र सू महे सुशरणाय	३४३
प्राग्नये बृहते	१०६
प्रातरग्निः पुरुप्रियो	१३९
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि	६०२
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य	२०८
प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत	६४९
प्रातर्यावाणा प्रथमा	६४८
प्रियं दुग्धं न काम्यं	१४७
प्रैष स्तोमः पृथिवीं	३४६
प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु	६४
बळित्था देव निष्कृतम्	५९०
बळित्था पर्वतानां	७०२
बृहद्वयो बृहते तुभ्यं	३६३
बृहद् वयो हि भानवे	१२९
बोधिन्मनसा रथ्या	६३८
भद्रमिद् रुशमा	२२५
भूरि नाम वन्दमानो	३४
भीताय नाधमानाय	६५८
मंहिष्ठं वो मघोनां	३००
मध्व ऊ षु मधूयुवा	६२१
मनुष्वत् त्वा नि	१५३
मरुत्वतो अप्रतीतस्य	३३६
मरुत्सु वो दधीमहि	४४०
महान्तं कोशमुदचा	६९९
महि महे तवसे दीध्ये	२५४
महे नो अद्य बोधय	६६२
मा कस्याद्भुतक्रतू	६०७
मातुष्पदे परमे शुक्र	३६२
मातेव यद् भरसे	१२७
मा मामिमं तव सन्तं	३०८
माया वां मित्रावरुणा	५६७
मार्जाल्यो मृज्यते स्वे	८
मा वो रसानितभा	४६२
मित्रश्च नो वरुणश्च	६१३
मित्रो अंहोश्चिदादुरु	५८१
मिमातु द्यौरदितिः	५२७
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी	४९७
मृळत नो मरुतो मा	४९३
यं मर्त्यः पुरुस्पृहं	७४
यं यज्जनो सुधनो	२७१
यं वै सूर्यं स्वर्भानुः	३१०
य इमा विश्वा जातानि	६९१
य इमे उभे अहनी	६९०
य ईं वहन्त आशुभिः	५४६
य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः	४४९
य ओहते रक्षसो	३४०
य च्चिद्धि ते गणा इमे	६६६
यजमानाय सुन्वते	१८२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं	१०१
यत् ते दित्सु प्रराध्यं	२९९
यत् त्वा सूर्य स्वर्भानु	३०६
यत् पर्जन्य कनिक्रदत्	७००
यत् पूर्व्यं मरुतो	४९२
यत् प्रावासिष्ट पृषतीभिः	५१७
यत्र वह्निरभिहितो	४२०
यत्र वेत्थ वनस्पते	५७
यथा चिन्मन्यसे हृदा	४९६
यथा वातः पुष्करिणीं	६५९
यथा वातो यथा वनं	६६०
यदद्य स्थः परावति	६१४
यदश्वान् धूर्षु पृषतीः	४९०
यदिन्द्र चित्र मेहना	२९१
यदिन्द्र ते चतस्रो	२७४
यदीं गणस्य रशनामजीगः	३
यदीं सोमा बभ्रुधूता	२२४
यदीमिन्द्र श्रवाय्यं	२९३
यदुत्तमे मरुतो	५३३
यद्वंहिष्ठं नातिविधे	५६३
यद् वाहिष्ठं तदग्नये	१७५
यन्नूनमश्यां गतिं	५७३
यन्मन्यसे वरेण्यं	२९८

यन्मरुत: सभरस: ४७९
यमग्ने वाजसातम १५९
यश्चिकेत स सुक्रतु: ५७८
यस्ते अग्ने नमसा १११
यस्ते साधिष्ठोऽवस २७३
यस्त्वा हृदा कीरिणा ४६
यस्मै त्वं सुकृते ४७
यस्य प्रयाणमन्वन्य ६८०
यस्य व्रते पृथिवी ६९६
यस्य मा परुषा: १९१
यस्यावधीत् पितरं २६७
यादृगेव ददृशे तादृक् ३७१
या धर्तारा रजस: ६०३
या पृतनासु दुष्टरा ७१४
या सुनीथे शौचद्रथे ६६३
युजं हि मामकृथा १२१
युञ्जते मन उत ६७८
युवं नो येषु वरुण ५७६
युवं मित्रेमं जनं ५८३
युवाभ्यां मित्रावरुणा ५६४
युवा स मारुतो ५४८
युवोरत्रिश्चिकेतति ६१९
युष्माकं स्मा रथाँ ४५८
युष्मादत्तस्य मरुतो ४८२
युङ्क्ष्वं ह्यरुषी रथे ५००
यूयं मर्तं विपन्यव: ५५०
यूयमस्मान् नयत ४९४
यूयं रयिं मरुत: ४८३
यूयं राजानमियँ जनाय ५१५
ये अग्ने चन्द्र ते गिर: ९६
ये अग्ने नेरयन्ति ते १५०
ये अञ्जिषु ये वाशीषु ४५७
ये चाकनन्त चाकनन्त २४१
येन तोकाय तनयाय ४६६
ये मे पञ्चाशत ददु: १४३
ये वावृधन्त पार्थिवा ४४३
येषां श्रियाधि रोदसी ५४७
यो अस्मै घ्रंस उत २६६
यो जागार तमृच: ३७९
यो न आगो अभ्येनो ३१
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां ६५१
यो म इति प्रवोचत् १९०
यो मे धेनूनां शतं ५४५
यो मे शता च विंशतिं १८८
यो रोहितौ वाजिनौ २८६
रथं नु मारुतं वयं ५०२
रथं युञ्जते मरुत: ५६८
रथीव कशयाश्वां ६९४
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति २८९
वधेन दस्युं प्र हि ४२
वनेषु व्यन्तरिक्षं ७०६
वयं ते अग्न उक्थै: ४३
वयं ते त इन्द्र ये च २५८
वयमग्ने वनुयाम ३०
वयं मित्रस्यावसि ५८२
वयो न ये श्रेणी: ५२६
वरा इवेद् रैवतासो ५३१
वरुणं वो रिशादसम् ५७१
वसां राजानं वसनिं १८
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा १६६
वाचं सु मित्रावरुणौ ५६९
वाजो नु ते शवस: १२८
वातत्विषो मरुतो ५०७
वातस्य पत्मन्नीळिता ५४
वातस्य युक्तान् त्सुयुज: २३८
वायवा याहि वीतये ४२६
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो ५०५
वि जिहीष्व वनस्पते ६५७
वि ज्योतिषा बृहता २१
वि वन्वते धियो ४०५
वित्वक्षण: समृतौ २६९
विदा चिन्नु महान्तो ३२३
विदा दिवो विष्यन् ३८१
विद्युन्महसो नरो ४७२
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य ४२५
वि या जानाति जसुरिं ५४२
वि वृक्षान् हन्त्युत ६९३
विशां कविं विश्पतिं ३९
विश्वस्य हि प्रचेतसा ६०९
विश्वानि देव सवित: ६८७
विश्वानि नो दुर्गहा ४५
विश्वा रूपाणि प्रति ६७९
विश्वे अस्या व्युषि ३८८
विश्वे देवा नो अद्या ४३४
विश्वे हि त्वा सजोषसो १६३
विश्वे हि विश्ववेदसो ५९२
विश्वो देवस्य नेतु: ४१७
वि षू मृधो जनुषा २२०
विसर्माणं कृणुहि ३३९
वि सूर्यो अमतिं न ३८२
वीतिहोत्रं त्वा कवे १८०
वृषा ग्रावा वृषा मदो ३०३
वृषा त्वा वृषणं २८५,३०४
वृषा ह्यसि राधसे २७६
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती ५९९
वृष्णे यत् ते वृषणो २२३
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य ३२०
वेत्यग्रुर्जनिवान् वा ३७२
व्यक्तून् रुद्रा व्यहानि ४७३
व्युच्छा दुहितर्दिवो ६७०
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा ६१२
शमू षु वां मधूयुवा ६३२
शर्धं शर्धं व एषां ४६४
शर्धो मारुतमुच्छंस ४४४
शिवस्त्वष्टरिहा गहि ५६
शुचि: ष्म यस्मा अत्रिवत् ७६
शुनश्चिच्छेपं निदितं १९
शुष्मासो ये ते २१४
शृणोतु न ऊर्जां ३२२
श्येन आसामदिति: ३७६
श्रिये सुदृशीरुपरस्य ३६७
संजर्भुराणस्तरुभि: ३७०
सं भानुना यतते २८७
सं यदिषो वनामहे ७१
स आ गमदिन्द्र यो २८१
सखाय: सं व: सम्यंचं ६९
सखायस्ते विषुणा ११०

सखा सख्ये अपचत्	२०५
सचक्रमे महतो	७२२
स जिह्वया चतुरनीक	४११
सजूरादित्यैर्वसुभिः	४३१
सजूर्मित्रावरुणाभ्यां	४३०
सजूर्विश्वेभिर्देवेभिः	४२९
सत्यमिद् वा उ अश्विना	६२२
स त्वं न इन्द्र धियसानो	२५५
सदापृणो यजतो वि	३७७
स न राजा व्यथते	२९०
सनत् साश्व्यं पशुम्	५४०
स नो धीति वरिष्ठया	१७१
स नो बोधि श्रुधी	१६७
सप्त मे सप्त शाकिन	४५३
समत्र गावोऽभितो	२२३
समश्विनोरवसा	३४८,३६५
	६४७,६५२
समिद्धस्य प्रमहसः	१९६
समिद्धाग्निर्वनवत्	२८८
समिद्धो अग्न आहुत	१९७
समिद्धो अग्निर्दिवि	१९३
समिधानः सहस्रजित	१८३
समिध्यमानो अमृतस्य	१९४
समिन्द्र जो मनसा	३२४
समीं पणेरजति भोजनं	२७०
समुद्रमासामव तस्थे	३७४
सम्राजा उग्रा वृषभा	५६६
सम्राजा या घृतयोनी	५९६
सम्राजावस्य भुवनस्य	५६५
स स्मा कृणोति	७२
सहस्रसामाग्निवेशि	२७२
स हि क्षत्रस्य मनसस्य	३७५
स हि द्युभिर्जनानां	१३०
स हि रत्नानि दाशुषे	६८५
स हि ष्मा धन्वाक्षितं	७५
स हि ष्मा विश्वचर्षणिः	१६४
स हि सत्यो यं पूर्वे	१७०
साकं जाताः सुभ्वः	४८७
सा नो अद्याभरद्वसुः	६६४
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टे	३३०
सुतंभरो यजमानस्य	३७८
सुता इन्द्राय वायवे	४२८
सुदेवः समहासति	४६८
सुपेशसं माव सृजन्त्यः	२२६
सुप्रतीके वयोवृधा	५३
सुष्टुभो वां वृषण्वसू	६३५
सुसमिद्धाय शोचिषे	४८
सूक्तेभिर्वो वचोभिः	३८४
सूरश्चिद् रथं परि	२२९
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे	६०
स्तुहि भोजान् त्स्तुवतो	७६९
स्तोमासस्त्वा गौरवीतेः	२०९
स्तोमासस्त्वा विचारिणि	७०३
स्त्रियो हि दास आयुधानि	५२२
स्थिरं मनश्चकृषे जात	२१७
स्वनो न वोऽमवान्	७२३
स्वयं दधिध्वे तविषीं	४८६
स्वर्भानोरध यदिन्द्र	३०७
स्वस्तये वायुमुप	४३३
स्वस्ति नो मिमीतामश्विना	४३२
स्वस्ति पन्थामनु	४३६
स्वस्ति मित्रावरुणा	४३५
स्वाहाग्नये वरुणाय	५८
ह्ये नरो मरुतो मृळता	५११, ५१९
ह्यो न विद्वाँ अयुजि	३९२
हव्यवाळग्निरजरः पिता	३८
हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो	६५०
हिरण्यदन्तं शुचिवर्णम्	१५
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य	५६१
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ	५६२
हूणीयमानो अप हि	२०
होतारं त्वा वृणीमहे	१५१